देशषष्ठौ क्रमात् षष्टिं तां निरेकां तु सप्तम. । पञ्चाशतमपूर्वाख्य क्रमादष्टषडन्विताम् ॥

यह श्लोक मा ग्र मु पुस्तक पृष्ठ २२० श्लोक ४४—४६ के बीचमें छूट गया है ।

इसी प्रकार पृष्ठ २२३, श्लोक ६८ के बीचमें एक श्लोक छूट गया है वह इस प्रकार है,—

अंगोपांगत्रय षट्क संस्थानानां शुभद्वयम् । अष्टौ स्पर्शा रसाः पञ्च वर्णा· पञ्च स्थिरद्वयम् ॥

ऐसी अशुद्धियोंके सिवाय शब्दसबधकी भी बहुतसी अशुद्धिया रह गई हैं जिससे अर्थबोध होनेमें बडा क्लेश होता है । जैसे पृष्ठ, २२३ के श्लोक ६७ के पूर्वार्धमें ' स्युरेत्यामा ' पाठ छप गया है, परंतु ' सुरेत्यामा ' पाठ चाहिये । ' सुरेत्या=सुरगत्या अमा ' ऐसा अर्थ है । ' स्यु ' ऐसा छप जानेसे उसका अर्थबोध होता ही नहीं है । और ' सुरगति ' एक प्रकृति गिनानेसे छूट जाती है इसलिये उस प्रकरणमें बताई हुई प्रकृतिसख्याका मेल भी बैठ नहीं पाता है । इत्यादि अनर्थ-परंपरा आजाती है ।

इस प्रकारकी बहुतसी अशुद्धिया माणिकचद ग्रथमालाकी छपी पुस्तकमें हो गई हैं । जहातक हमसे हो सका है, वे अशुद्धियां हमने इस प्रकाशनमें नहीं रहने दी हैं ।

प्रथम परिच्छेदके पाचवें श्लोकसे आगे गद्य चूर्णि है परंतु उसपर न ६ लगगया है । ऐसी जो अशुद्धि होगई हों इस आवृत्तिमेंसे उन्हे भी सुधार लेना चाहिये ।

मूल ग्रथ सर्व पद्यरूप है । बहुतसे श्लोकोंके नीचे कुछ गद्य रहता है उसमें पद्यसंबधी ही कुछ खुलासा रहता है और कहीं कहीं पर जो पद्यमें सख्या बताई जाती है उसे गद्यकार अकोंमें लिखकर फिरसे बतादेते हैं । यह सर्व गद्य मूलकारका नहीं है ऐसी हमारी समझ है ।

हमारे पास जो हस्तलिखित प्रति है वह १८०७ सवत्की लिखी हुई है और उसमें प्रमाण २७५० लिखा है ।

श्रीमान् धर्मात्मा शेठ नेमचद वालचद धाराशिववालोंके कहनेसे इस पुस्तककी हिंदी व्याख्या हमने की है और उन्हीके द्वारा यह प्रकाशित हुई है। कितने ही वर्ष पहिले, श्रीमती राजूबाई भ्र० वीरचद दोशी धाराशिववालोंकी तर्फसे कुछ रकम पुस्तक प्रकाशनकेलिये निकाली गई थी. उससे सर्वार्थसिद्धि आदि कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। वे पुस्तकें विकजानेसे रकम जो इकट्ठी हुई थी उसीसे यह पंचसंग्रह प्रकाशित करानेका इरादा शेठ नेमचद वालचदका हुआ था परतु रकम थोडी थी इसलिये शेटजीने अपनी तर्फसे रकमकी पूर्ति कर यह ग्रथ प्रकाशित करा दिया है। इस प्रकार ग्रथके छपनेका सर्व खर्च प्रकाशकोंकी तर्फसे हुआ है। शेठजीने और भी बहुतसे ग्रथोंको अपनी तर्फसे आज तक प्रकाशित कराकर धर्मज्ञानके प्रचारमें अपना प्रेम रक्खा है इस प्रवचनवात्सल्यकेलिये हम शेठजीको धन्यवाद देते हैं।

हमने इसकी जो हिंदी व्याख्या की है वह दूसरी अनेक चित्तव्यग्रताओंके रहते की है इसलिये इस व्याख्यामें और ग्रंथके शोधनमे त्रुटि रह गई है उन्हे विद्वान् प्रेमी शोध कर पढें ऐसी प्रार्थना है।

स्व० पं० धन्नालालजी काशलीवाल और प० गोपालदासजी वरैयाकी प्रेरणासे, कई वर्ष हुए, हमने जैनेंद्रपर पूर्व भागकी बृहत् प्रक्रिया तयार की थी उससे हमें स्वय सस्कृत व्याकरणके ज्ञानका बहुत लाभ हुआ था। इसी प्रकार पंचसग्रहकी व्याख्या भी प्रकाशककी उत्सुकतासे की परतु कर्मविषयक बहुत कुछ ज्ञानलाभ हमें इससे स्वय हुआ है इसकेलिये भी हम प्रकाशकके आभारी हैं।

वंशीधर पंडित सोलापुर.

॥ ५ ॥

वीरस्येन जिनेश्वरस्य गणभृद्भव्योपकारोद्यतो दुर्वारिस्मरदन्तिदारणहरिः श्रीगौतमोऽनुत्तमः ॥ ३ ॥
यदत्र सिद्धांतविरोधि बद्ध, ग्राह्य निराकृत्य तदेतदार्यैः ।
गृह्णति लोका ह्युपकारि यद्वत्, त्वचं निराकृत्य फलं पवित्रम् ॥ ४ ॥
अनश्वर केवलमर्चनीय यावत्स्थिर तिष्ठति मुक्तपक्तौ ।
तावद्धरायामिदमत्र शास्त्रं स्थेयाच्छुभं कर्मनिरासकारि ॥ ५ ॥
त्रिसप्तत्यधिकेऽब्दानां सहस्रे शकविद्विषः । मसूतिकापुरे जातमिदं शास्त्र मनोरमम् ॥ ६ ॥

इत्याचार्यवर्यश्रीमदमितगतिविरचित पचसंग्रह समाप्त ।

जिस प्रकार दुर्निवार कामहस्तीको दलित करनेवाले सिंहसमान, सब साधुओंमें श्रेष्ठ, भव्योंपर उपकार करनेमे तत्पर, वीर भगवान्के गणके स्वामी श्री गौतम हुए हैं उसी प्रकार ये भी अनेक गुणोंके धारक और गणके अग्रणी थे । ३ ।

जिस प्रकार लोग ऊपरके छिलकाको फेंककर भीतरसे उत्तम फलको लेलेते है उसी प्रकार इस शास्त्रमें जो सिद्धातविरुद्ध हो उसे छोडकर सार भाग सत्पुरुषोंको लेलेना चाहिये । ४ ।

मुक्त परमात्माओंकी पक्तिमें पूजनीय ऐसा अविनाशी केवल स्वरूप जबतक रहेगा तबतक इस लोकमें कर्मनाशक यह शुभ शास्त्र रहो । ५ ।

मसूतीपुरमें यह सुदर शास्त्र रचा गया है । उस समय शक संवत् एक हजार तिहत्तरि (१०७३) था । ६ ।

इति

ॐ

श्रीअमितगतिसूरिविरचितः

पंचसंग्रहः ।

प्रथमः परिच्छेदः ।

सर्वसंग्रहनिषेधकोऽपि यः पंचसंग्रहविधानदर्शकः । तत्त्वमार्गविनिवेदिनो जिनः शेमुषीं मम तनोतु सुस्थिराम् ॥१॥

॥ श्रीवीतरागसर्वज्ञाय नमः ॥

सर्व संग्रह करनेका निषेध करनेवाले, परंतु पंचसंग्रहका विधान करनेवाले ऐसे श्रीजिनेंद्र मेरी बुद्धिको तत्त्वार्थका विचार करनेमें स्थिर करें ।

सर्व अर्थात् इतर-परिग्रह, उसका संग्रह करना पापका कारण है इसलिये जिनेंद्रने परिग्रहके ग्रहण करनेका, उसमें ममत्व रखनेका, निषेध किया है । इधर इस ग्रंथका विषय पंचसंग्रह है- उसके नाम आगे दिये हैं-उसका निरूपण जिनेंद्रने ही किया है, इस लिये पंचसंग्रहका विधान करनेवाले भी जिनेंद्र ही हैं । जो सर्व ही संग्रहका निषेध करे वह किसी पांचका संग्रह

परीतानतयुक्तानंतानतानंतमेकशस्त्रयाणां जघन्योत्कृष्टाजघन्योत्कृष्टभेदेन त्रैविध्यादनतस्य नवधात्वमुन्नेयम् ॥ ६ ॥
नवधात्वेऽप्यनंतस्य प्रमाणस्य विचक्षणैः । अजघन्योत्कृष्टमत्रेदमनतानतमीर्यते ॥ ७ ॥
जीवभगो जिनैरुक्तः पुद्गलाद्धाविहायसाम् । अनंतगुणित पूर्वं परतः परतः परम् ॥ ८ ॥
गदितौ द्रव्यतोऽसख्यौ धर्माधर्मौ प्रदेशतः । क्षेत्रतो लोकमानौ तौ लोक व्याप्य यतः स्थितौ ॥ ९ ॥
अतीतानेहसोऽनन्तभागौ तौ कालतः स्मृतौ । भावतः केवलानन्तभागौ केवललोचनैः ॥ १० ॥
विज्ञातव्या गुणा जीवाः प्राणपर्याप्तिमार्गणाः । उपयोगा बुधैः संज्ञा विंशतिर्जीवरूपणाः ॥ ११ ॥
जीवा यैरवबुध्यन्ते भावैरौदयिकादिभिः । गुणागुणस्वरूपज्ञैरत्र ते गदिता गुणाः ॥ १२ ॥

चूर्णिमें अनतके उत्तर भेद बताते हैं –अनत सामान्य, उसके परीतानत, युक्तानंत, अनंतानत ऐसे तीन भेद हैं । पुन प्रत्येकके जघन्य, उत्कृष्ट तथा अजघन्योत्कृष्ट ऐसे तीन तीन भेद होनेसे अनंतके नौ उत्तर भेद करलेने चाहिये । ६ ।

अनत सख्या यद्यपि नौ प्रकारकी है परंतु यहापर अजघन्योत्कृष्ट (जघन्य तथा उत्कृष्टके बीचकी) अनतानंत संख्या लेनी चाहिये । ७ ।

जीवका प्रमाण इस प्रकार अजघन्योत्कृष्ट अर्थात् एक प्रकारका मध्यम,अनतानत रूप समझना । फिर आगे आगेके पुद्गल, काल और आकाशका प्रमाण क्रमसे पूर्वपूर्वके अनंत गुणित है । भावार्थ, जीवसे पुद्गल अनत गुणित है । पुद्गलसे काल अनत गुणा है । कालसे आकाश अनत गुणा है । ८ ।

धर्माधर्म द्रव्य प्रत्येक असंख्यप्रदेशी है । और क्षेत्र इनका लोकाकाशप्रमाण है । क्योंकि लोकभरमें ये दोनो द्रव्य पसरका रहे हुए हैं । कालसे इस प्रत्येक का प्रमाण अतीतकाल के अनतवें भाग है । भावसे इनका प्रमाण केवल ज्ञानके अनंतवें भाग सर्वज्ञने बताया है । ९ । १० ।

गुणस्थान, जीवसमास, प्राण, पर्याप्ति, मार्गणा चौदह, उपयोग, सज्ञा–ऐसे जीवकी प्ररूपणाके वीस अधिकार हैं । ११ ।

औदयिकादि जिन भावोंसे जीव समझे जा सकते हैं उन भावोंको, गुणागुण जानने वाले सर्वज्ञने, गुणस्थान कहा है । १२ ।

जन्तोरौदयिकोऽथापि क्षायिकः शामिको जिनैः । क्षायोपशमिको भावः स्वतत्त्व पारिणामिकः ॥ १३ ॥

बन्धमौदयिका मोक्ष क्षायिकाः शामिकाश्च ते । उभयं कुर्वते मिश्रा नोभय पारिणामिकाः ॥ १४ ॥

जिनेंद्रने जीवके औदयिकादि स्वभाव पाच प्रकार कहे हैं–औदयिक, क्षायिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक ।

कर्मके फलस्वरूप औदयिक । कर्म क्षय होनेपर जो जो स्वभाव प्रगट हों वे क्षायिक । कर्म जिन स्वभावोंको विगाड़ता है वे स्वभाव, जबतक कर्मोदय न होनेसे न बिगडें तबतक औपशमिक कहाते हैं । क्योंकि इन स्वभावोंके घातक कर्मका तबतक उपशम बना हुआ है । किसी गुण–स्वभावको घातनेवाला कर्म कुछ तो अनायास क्षीण होगया हो और कुछ रहते हुए भी उदयगत न हुआ हो–ऐसे दो दृष्टिसे उस स्वभावको प्रगट होनेमें मौका मिला हो तो उसे क्षायोपशमिक कहा है । इस क्षायोपशमिक कहानेवाले स्वभावके समय जो वाधक कर्मका क्षय तथा उपशम होता है वह जो सर्वांशघाती कर्ममात्रका होता है । किंतु अशघातक भी गुणघाती कर्मोंके कुछ भाग होते हैं, उन अशघाति या देशतोघाती कर्मोंका उदय क्षयोपशमके समय भी जारी रहता है । इसलिये क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक तथा औपशमिककी बराबर निर्मल या आत्मभूत नहीं होते । और क्षायिक अथवा औपशमिक भाव, मोक्षमार्गमें जिसका पैर पड़चुका है उसीकें प्रगट होते हैं, किंतु क्षायोपशमिकका यह नियम नहीं है । कुछ, क्षायोपशमिक भाव केवल ससारीकें भी होते है और कुछ, मोक्षमार्गरत जीवकें भी होते हैं और कुछ, दोनोंमें पाये जाते हैं । इन चारो प्रकारके भावोंमें कर्म प्रतिकूल या अनुकूलतासे निमित्त है। किंतु अनंतों भाव ऐसे भी हैं जिनका कर्मसे संबध नहीं है वे पारिणामिक कहाते हैं । ये पांचो ही भाव जीवके निजी स्वरूप हैं । १३ ।

औदयिक भाव कर्मके बंधनको पैदा करते हैं और क्षायिक तथा औपशमिक भाव मोक्षको करने वाले हैं । क्षायोपशमिक भाव बंधके भी कारण हैं और मोक्षके भी । पारिणामिक भाव न बंधके कारण हैं, न मोक्षके । १४ ।

मिथ्यादृष्टिर्जिनैराद्यो द्वितीयः स्रस्तदर्शनः । तृतीयोऽकथि मिश्रोऽन्यः सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥ १५ ॥
सयतासयतस्तस्मात्पंचमः शुद्धदृष्टिकः । प्रमत्तसंयतः षष्ठः सप्तमोऽतोऽप्रमत्तकः ॥ १६ ॥
अपूर्वकरणो द्वेधाऽनिवृत्तिकरणो द्विधा । द्वेधा सूक्ष्मकषायोऽतः शमकक्षपकत्वतः ॥ ॥ १७ ॥
शान्तक्षीणकषायौ स्तो योग्ययोगौ ततो जिनौ । चतुर्दशगुणातीता जीवाः सिद्धास्ततः परे ॥ १८ ॥
तत्त्वानि जिनदृष्टानि यस्तथ्यानि न रोचते । मिथ्यात्वस्योदये जीवो मिथ्यादृष्टिरसौ मतः ॥ १९ ॥

पहिला गुणस्थान मिथ्यात्व, दूसरा सासादन, तीसरा मिश्र, चौथा सम्यग्दर्शन, पांचवां सयतासंयत, छट्ठा प्रमत्त सयत, सातवां अप्रमत्त संयत, आठवां अपूर्वकरण, नौवां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसांपराय, ग्यारहवां उपशांतमोह, बारहवा क्षीणमोह, तेरहवां योगी और चौदहवा अयोगी—ये चौदह गुणस्थान हैं। इनसे ऊपर पहुंचजानेवाले सिद्ध कहाते हैं। इसे पद्रहवा स्थान समझना। आठवा नौवा और दशवा ये गुणस्थान दो दो प्रकारके हैं। क्योंकि, इनमेंके कुछ साधुओंके तो चारित्रमोहका उपशम होता है और कुछके क्षय होता जाता है।

उपशमवालोका उपशमक नाम पडता हैं और क्षय करते चलने वालोंका क्षपक नाम पडता है। दशवें तक उपशम करता हुआ जो ऊपर जाता है उसका गुणस्थान ग्यारहवा और उसका नाम उपशातमोह है। अर्थात् यहापर मोहका उदय पूरा पूरा बद पड जाता है। किंतु दवा हुआ मोह विद्यमान रहता है वह मुहूर्तके भीतर ही फिर उदित हो जाता है। मोह उदित होते ही उपशांतवाला साधु नीचेके गुणस्थानोंकी तरफ यथासभव उतरने लगता है। मोहका क्षय करते चढनेवाला क्षपक साधु दशवेंके आगे सीधा बारहवें स्थानमें पहुचता है। उसका नाम क्षीणमोह है इसलिये यह बारहवें गुणस्थानका साधु सिद्ध पर्यायको ही पाता है। क्षपण करनेवाला नीचे गिरता नहीं। १५ से १८।

जिन—सर्वज्ञके देखे हुए यथार्थ तत्त्वोंकी जो श्रद्धा नहीं होने देता वह मिथ्यात्व पहिला गुणस्थान है। ऐसी मिथ्या रुचि होनेका अतरंग कारण मिथ्यादर्शन कर्मका उदय है।

संयोजनोदये भ्रष्टो जीवः प्रथमदृष्टितः । अन्तराऽनात्तमिथ्यात्वो वर्ण्यते स्रस्तदर्शनः ॥ २० ॥
जघन्यः समयः कालः प्रकृष्टोऽस्य षडावलिः । कथ्यतेऽन्तर्मुहूर्तस्य शेषभूतो मनीषिभिः ॥ २१ ॥

रुचि, प्रतीति, श्रद्धा आदि अनेक शब्द दर्शनके अर्थको कहते हैं । सबका तात्पर्य एक यही है कि एक आत्मामें विषयकी तरफ झुकाव करानेवाली या लक्ष्यको बांधनेवाली शक्ति है वह ज्ञान गुणके सिवा एक जुदी ही मानी गई है । उसका झुकाव या उसके द्वारा आत्माका लक्ष्य जो एकाध पदार्थ पडता है वह यदि आत्माके लिए अहितकर हो तो उस दृष्टिको मिथ्यादृष्टि कहते हैं । यदि उसका झुकाव आत्माको हितकर हो तो उस दृष्टिको सम्यग्दृष्टि मानते हैं । क्योंकि, झुकावके अनुसार ही ज्ञान व चारित्र भी आत्माका हिताहित करनेवाले बनते हैं । इसमेंसे वास्तविक हितकी या हित साधनकी तर्फ लक्ष्य जीवका जाना कठिन बात है और वह बडे भाग्यकी बात है तथा वैसा सुअवसर मिलना कठिन है । किंतु अनादिसे अहितकी तर्फ दृष्टि जीवमात्रकी है । यदि यह अनादिकी दृष्टि हितकर होती तो इसके अनुसार ज्ञान चारित्र रहते हुए भी जीव अनेक संकट भोगता न फिरता । इस दृष्टिको वैषयिक दृष्टि भी कह सकते हैं । जिनेंद्रके धर्मोपदेशमें इसी दृष्टिको मिथ्यादृष्टि कहा है । इसके दो प्रकार हैं—तत्त्वमें अरुचि, और अतत्वमें रुचि ॥ १९ ॥

संयोजन अर्थात् अनंतानुबंधी नामके प्रथम कषाय । इन कषायोंका उदय हो आनेपर प्रथम प्राप्त हुए औपशमिक सम्यग्दर्शनसे जीव नीचे गिरता है । उसका पहुचना जबतक मिथ्यादर्शन नाम प्रथम दर्जेमें नहीं होता तबतक वह दूसरा गुणस्थान सासादन अथवा स्रस्तदर्शन कहाता है । इस गुणस्थान का रहना कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छह आवली काल प्रमाण है ।

भावार्थ—औपशमिक सम्यक्त्वका पूरा समय अंतर्मुहूर्त है । उसीके अंतिम समयोंमें यह सासादन भी हो लेता है । इस गुणस्थानका पूरा नाम सासादन सम्यक्त्व है । आसादन अर्थात् विराधना । विराधना सहित जो सम्यक्त्व सो सासादन सम्यक्त्व । इस शब्दसे यह तात्पर्य निकलता है कि इस दूसरे गुणस्थानमें केवल सम्यक्त्वकी विराधना है । दूसरा नवीन भाव कोई भी पैदा

॥७॥

सम्यग्मिथ्यारुचिर्मिश्रः सम्यङ्मिथ्यात्वपाकतः । सुदुष्करः पृथग्भावो दधिमिश्रगुडोपमः ॥ २२ ॥

पाकाच्चारित्रमोहस्य व्यस्तप्राण्यक्षसंयमः । त्रिष्वेकतमसम्यक्त्वः सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥ २३ ॥

नहीं हुआ । नवीन भाव मिथ्यात्व है । सम्यक्त्वके बिगड जानेपर भी वह नवीन भाव अर्थात मिथ्यात्व जबतक न हो तभीतक यह दूसरा गुणस्थान रहता है । इस गुणस्थानको पारिणामिक भाव कहा है । सम्यक्त्व औपशमिक है और मिथ्यात्व औदयिक; इन दोनो कर्मनिमित्तक भावोंके वीच यह पारिणामिक कैसा, यह शंका सहज होगी । परंतु सम्यक्त्व नष्ट हो गया और मिथ्यात्वका उदय नहीं हुआ, इस ऐसी अवस्थाको कर्मनिमित्तक कहना भी सयुक्तिक नहीं–केवल इसी अपेक्षासे इस द्वितीय गुणस्थानको पारिणामिक मानते है ।

सासादन शब्दका भी विराधितसम्यक्त्व ऐसा अर्थ होता है । नामैकदेशके त्यागसे इसे केवल सासादन भी कहते है । जैसे सम्यग्दर्शनको सम्यक्त्व कहते है । यह नामैकदेशकी रूढी और भी स्थलोंमें लगाकर शब्दोंका पूरा अर्थ समझना चाहिये ।२०।२१।

समीचीन और मिथ्या रुचिका कभी कदाचित् मिश्रण होकर एक दहिगुडके मिले स्वाद की भांति तीसरी श्रद्धा या रुचि, सम्यङ्मिथ्यात्व नाम मिश्र मोहनीके उदयसे होती है; यही तीसरा मिश्र गुणस्थान है । इस स्वभावमेंकी दोनो प्रकृतियोंकी जुदाइगी करना कठिन है । असभव ही है ॥ भावार्थ, शब्द मात्रसे भले ही जुदा करलिया जाय किंतु यह प्रकृति एक तीसरी ही है और इसका कारण कर्म भी स्वतंत्र जुदा है । इस कर्मको एक सर्वघाती कर्म कहते हैं: जो सम्यक्त्व के सर्वांशको घातता है । इसीलिये इस अवस्थाको आधासा सम्यक्त्व मानना भूल है । फिर भी इस गुणस्थानको औदयिक न मानकर क्षायोपशमिक भाव माना है । मिथ्यादर्शन कर्मका यहा उदय नहीं है, और वास्तव सर्वघाती मिथ्यादर्शन ही है, इसलिये सम्यङ्मिथ्यात्व कर्मको देशघातीके समान मानलें तो उसका उदय रहते भी सर्वघातीका क्षयोपशम होनेसे यह परिणाम होता है; अत इसे क्षायोपशमिक मानना भी ठीक है । २२ ।

चारित्रमोह कर्मके उदयसे जहा प्राणीन्द्रियसंयममेंसे एक भी संयम नहीं है, केवल तीन सम्यक्त्वोंमेंसे एक कोई भी सम्यक्त्व है वह चौथा गुणस्थान असंयत सम्यग्दृष्टि कहाता है ॥ २३ ॥

यस्त्राता त्रसकायानां हिंसिता स्थावराङ्गिनां । अप्रकाष्टकषायोऽसौ संयतासयतो मतः ॥ २४ ॥
सम्यग्दृष्टिर्व्रती ज्ञेयः सामायिकविधायकः । प्रोषधी प्रासुकाहारी निरस्तदिनमैथुनः ॥ २५ ॥
ब्रह्मचारी निरारंभः परिग्रहपराङ्मुखः । निरस्तानुमतिस्तेषा विमुक्तोद्देशिकाशनः ॥ २६ ॥
इत्थमेकादश प्रोक्ता भेदास्तस्य मुनीश्वरैः । त्रायते यदि यत्नेन त्रसानां दशक सदा ॥ २७ ॥
न यस्य प्रतिपद्यन्ते कषाया द्वादशोदयं । व्यक्ताऽव्यक्तप्रमादोऽसौ प्रमत्तः संयतः स्मृतः ॥ २८ ॥

जो त्रस काय—द्वींद्रियादि जीवोंकी रक्षा करने लगा है परन्तु स्थावर—एकेंद्रिय जीवोंकी हिंसाको बचा नहीं सकता, क्योंकि अभी उसके अप्रत्याख्यान कषाय चार तथा संज्वलन कषाय चार इन आठ कषायोंका उदय है। ऐसा यह संयतासंयत पाचवें गुणस्थानवाला माना जाता है। चौथे गुणस्थानसे लेकर आगेके सभी सम्यग्दृष्टि कहाते हैं। २४।

इस पाचवें गुणस्थानके ग्यारह भेद हैं—सम्यग्दर्शन, व्रती, सामायिककर्ता, प्रोषध पालनेवाला, प्रासुक आहार कर्ता, दिनमैथुनत्यागी, ब्रह्मचारी, आरंभत्यागी, परिग्रहत्यागी, अनुमतित्यागी, उद्दिष्टाहारत्यागी ॥ २५। २६ ॥

ये ग्यारह भेद आचार्योंने पाचवें गुणस्थानके माने हैं, यदि पर्याप्तापर्याप्त दश ही प्रकारके त्रसके त्याग करनेका यत्न किया जाय।

भावार्थ—इन ग्यारह उक्त भेदोंके पूर्ण पालनेपर ही त्रस घातका सर्वथा त्याग हो सकता है। ब्रह्मचर्यके पालनेसे, तथा आरंभ परिग्रहके त्यागसे त्रस जीवोंकी रक्षा होती है और अनुमति तथा उद्दिष्टाहारके छोडनेसे भी त्रसजीवोंके घातका पाप लगना छूटता है। ग्यारह भेदोंमेंसे जितनी भी कमी हो उतना ही किसी न किसी भगसे त्रसवधके पापका जीव भागी होता है। २७।

अनतानुबंधी कषाय चार, अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार व प्रत्याख्यानावरण कषाय चार इन बारह कषायोंका जिसके उदय नहीं है; किंतु प्रमाद व्यक्त और अव्यक्त दोनो प्रकारका है इसलिये इसे प्रमत्त संयत छट्ठा गुणस्थान कहते हैं। २८।

सज्वालनोकषायाणामुदये सत्यनुद्यमः । धर्मे शुद्ध्यष्टके वृत्ते प्रमादो गदितो यतेः ॥ २९ ॥
क्षान्तिः शौच संयमोऽकिंचनत्व सत्यं त्यागो ब्रह्मचर्य तपश्च । कार्यो भव्यैरार्जव मार्दव च प्राज्ञैर्धर्मो ह्यष्टधेति प्रणीतः॥
मनोवाक्कायभैक्षेर्याशय्योत्सर्गविनीतिषु । कुर्वतः सर्वदा शुद्धिं शुद्ध्यष्टकमुदीरित ॥ ३१ ॥
पंचपंचत्रिसख्यानाः समितिव्रतगुप्तयः । वृत्त निवेद्यते साधोस्त्रयोदशविकल्पकम् ॥ ३२ ॥
कषायप्रणयस्वापविकथाक्षाणि योगिनः । प्रमादाश्चतुरेकैकचतुःपच यथाक्रमम् ॥ ३३ ॥
शमक्षयपराचीनः कर्मणामुद्यसंयमः । निष्प्रमादोऽप्रमत्तोऽस्ति धर्म्यं ध्यानमधिष्ठितः ॥ ३४ ॥

सज्वलन कषायका और हास्यादि नोकषायोंका उदय रहनेसे दश धर्मोंमें, आठ शुद्धियोंमें तथा वृत्तोंमें अनुत्साह रहता है इसीको साधुका प्रमाद कहा है। २९।

क्षमा, शौच, सयम, अकिंचनत्व, सत्य, त्याग, ब्रह्मचर्य, तप, आर्जव और मार्दव ये दश धर्म कहे गये हैं। ३०।

मन, वचन, शरीर, भिक्षा, ईर्या—गमन, शयन, उत्सर्ग अर्थात् मलमूत्र त्याग तथा विनय इन आठ कार्योंमें शास्त्रोक्त यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करना सो आठ शुद्धि हैं। ३१।

पाच समिति, तीन गुप्ति, पांच अहिंसादि व्रत ये तेरह साधुके व्रत या चारित्र माने गये है। ३२।

कषाय चार, एक प्रणय, एक स्वाप, चार विकथा और इद्रिय पाच—ये पद्रह योगीके प्रमाद हैं॥ भावार्थ दश धर्मोंके पालनेमें, आठ शुद्धियोंके रखनेमें, और तेरह प्रकारके चारित्रमें ऊपरके पद्रह प्रकारसे प्रमाद होना सभव है। इस प्रमादका कारण संज्वलन कषायका और हास्यादि नोकषायका उदय रहना है। जबतक इनका उदय दबता नहीं है तबतक प्रमाद होना संभव है और प्रमाद ही छट्ठे गुणस्थानका कारण है। ३३।

धर्म्य ध्यानमें प्रवृत्त हुआ योगी चारित्रमोह कर्मके उपशम या क्षय करनेमें तत्पर होता हुआ संयमको बढाता है उस समय प्रमाद रहित होजाता है। यही अप्रमत्त नामका सातवां गुणस्थान है ॥ ३४ ॥

अपूर्वः करणो येषां भिन्नं क्षणमुपेयुषाम् । अभिन्नं सदृशोऽन्यो वा तेऽपूर्वकरणाः स्मृताः ॥ ३५ ॥
न पूर्वं करणाः प्राप्ता ये ते भिन्नक्षणस्थितैः । गुणस्थानमिदं यातैरपूर्वकरणास्ततः ॥ ३६ ॥
क्षपयन्ति न ते कर्म शमयन्ति न किंचन । केवलं मोहनीयस्य शमनक्षपणोद्यताः ॥ ३७ ॥

करण परिणामको कहते हैं। जिस गुणस्थानमें पहुचते ही जीवकी परिणामविशुद्धि उत्तरोत्तर समयमें तो नई नई ही हो और अभिन्न अर्थात् एक समय का आश्रय लेनेवाले अथवा साथीदार जितने योगी हों उनके परिणाम आपसमें सदृश भी हों और विसदृश भी हों उस गुणस्थानको अपूर्वकरण कहा है। उस गुणस्थानके परिणाम भी अपूर्वकरण कहाते हैं ॥ ३५ ॥

उत्तरोत्तर क्षणमें पहुचनेवाले, जो पूर्वमें न पाये हों ऐसे परिणामोंको पाते हैं इसलिये इस गुणस्थानमें आनेवालों को अपूर्वकरण कहते हैं ॥ भावार्थ—सातवें गुणस्थान तकके परिणाम ऐसे होते हैं जो अनेक वार उतार चढावमें बे-गिनती वार प्राप्त होते रहते हैं। परंतु आठवें गुणस्थानके परिणाम श्रेणीपर चढनेवाले माने गये हैं और उत्तरोत्तर समयमें नये ही होते हैं। श्रेणीका चढना भी बेगिनती नहीं है। इसलिये इस गुणस्थानके परिणामोंको अपूर्वकरण कहा है। ३६।

आठवें गुणस्थानवर्ती साधु किसी कर्मका न क्षय करते हैं, न उपशम, केवल मोहनीय कर्मके क्षय करनेमें या उपशम करनेमें उद्यत होते हैं ॥ भावार्थ, आठवें गुणस्थानका जीव मोहनीयका क्षय या उपशम करनेके लिये उद्यमशील हो जाता है, किंतु इस गुणस्थानमें क्षय या उपशमरूप कार्य थोडासा भी हो नहीं पाता है। इस आठवें गुणस्थानसे श्रेणी चढनेका कार्य आरंभ हुआ समझा जाता है। सातवें गुणस्थान तक जीव ऊपर नीचेके विशुद्ध परिणामोंको अनेक वार धारण करता रहता है। कोट्यों वर्षके कालमें घडी घडीमें नीचे ऊपर उतरता चढता है। इसमें करोडों वर्ष भी बीत जाते हैं। इसलिये यहांतकके साधुको सामान्य साधु माना जाता है। किंतु आठवा गुणस्थान पाजानेवाला साधु अंतर्मुहूर्तके ही भीतर तेरहवें गुणस्थान तक भी पहुच जाता है। इसलिये मोक्षकी श्रेणी या सीढी यहींसे सुरू हुई समझी जाती है। ३७।

ये संस्थानादिना भिन्नाः समानाः परिणामतः । समानसमयानस्थास्ते भवन्त्यनिवृत्तयः ॥ ३८ ॥
येनानिवृत्तयस्तुल्या भावास्तुल्यक्षणश्रिताम् । तेनानिवृत्तयो वाच्या वाच्यवाचकवेदिभिः ॥ ३९ ॥
क्षपयन्ति महामोहविद्विषं शमयन्ति वे । विनिर्मलतरैर्भावैः स्थूलकोपादिवृत्तयः ॥ ४० ॥
पूर्वापूर्वाणि विद्यन्ते स्पर्धकानि विशेषतः । संज्वालस्यानुभागस्य यानि तेभ्यो व्यपेत्य यः ॥ ४१ ॥
अनन्तगुणहीनानुभागो लोभे व्यवस्थितः । अणीयसि यथार्थाख्यं सूक्ष्मलोभं स समत । ४२ ॥

आगे नौवें गुणस्थानका स्वरूप बताते हैं । जिस गुणस्थानवर्ती साधुओंकी आकृति ही केवल भिन्न होगी किंतु परिणामसे जो आपसमें समान समयकी अवस्थामें सदृश ही होते हैं इसलिये इनके परिणामोंको अनिवृत्ति नामसे कहा है । भावार्थ, परस्परमें साधुओंके परिणाम वहांपर देखे जाय तो सबके एकसे ही पाये जायगे—निवृत्ति अर्थात् परस्परके परिणामोंमें विसमानता न रहेगी । इसलिये इसका नाम अनिवृत्तिकरण है । ३७ ।

जिससे कि तुल्यक्षण वालोंके भाव अनिवृत्ति अर्थात् तुल्य होते हैं इस कारण वाच्य वाचक समझने वालोंने इसे अनिवृत्ति अर्थात् अनिवृत्तिकरण कहा है । ३९ ।

कुछ निर्मल हुए परिणामों द्वारा महामोह—शत्रुका ये नौवें गुणस्थानवाले क्षय करते हैं अथवा उपशम करते हैं । स्थूल-कोप अर्थात् इस गुणस्थानवालेके परिणाम स्थूल कषायरूप होते हैं । ४० ।

संज्वलन कषायके अनुभागके जो पूर्व तथा अपूर्व कर्मस्पर्धक रह रहे हैं उन स्पर्धकोंको उस अवस्थासे जो हटाता है अर्थात् वह नौवा गुणस्थान है । भावार्थ—नौवें गुणस्थानमें संज्वलन कषायके उग्र सामर्थ्यको काटकर बारीक किया जाता है । यह क्रिया नौवें गुणस्थानमें होती है । ४१ ।

इस नौवें गुणस्थानकी क्रियासे स्पर्धकोंका अनुभाग पूर्वकी संख्यासे अनतगुणा घटता जाता है। और क्रमसे क्रोध मान माया लोभका अनुभाग स्थूलसे सूक्ष्म होकर उत्तरोत्तरमें पूर्वपूर्वका परिणमन होता हुआ अत्यंत सूक्ष्म लोभमें सबकी परिणति बदलकर केवल

लोभसंज्वलनः सूक्ष्मः क्षमं यत्र प्रपद्यते । क्षयं वा संयत सूक्ष्मः संपरायः स कथ्यते ॥ ४३ ॥
कौसुंभोऽन्तर्गतो रागो यथा वस्त्रेऽवतिष्ठते । सूक्ष्मलोभगुणे लोभः शोध्यमानस्तथा तनुः ॥ ४४ ॥
वर्गः शक्तिसमूहोऽणोरणूनां वर्गणोदिता । वर्गणानां समूहस्तु स्पर्धकं स्पर्धकापहैः ॥ ४५ ॥

शेष होजाते हैं । इस अवस्थाका सूक्ष्मलोभ यह यथार्थ नाम सूक्ष्म लोभ रह जाता है और बाकी क्रोध मान माया ये तीनो नि

है । यही दशवा गुणस्थान है । ४२ । आगेकी चढनेकी तयारी का

इस दशवें गुणस्थानकी प्राप्ति अर्थात् सूक्ष्म लोभ मात्र रहजानेपर इस गुणस्थानमें फिर

क्या कार्य होता है वह आगे बताते हैं । उपशमको प्राप्त होने लगता है और क्षपक

शेष रहा हुआ सूक्ष्म सज्वलन लोभ, उपशमपर चढने वालेका तो सर्वथा उपशमकी क्रिया जहा होने लगती है उसे सूक्ष्म-

श्रेणी चढनेवाले का वही लोभ क्षयको प्राप्त होने लगता है । यह सर्वथा क्षय या उपशमकी क्रिया जहा होने लगती है उसे सूक्ष्म-

संपराय भी कहते हैं, सूक्ष्मलोभ भी कहते हैं और सूक्ष्मकषाय भी कहते हैं । दशवें गुणस्थानके ये सभी अन्वर्थ नाम हैं । ४३

जैसे वस्त्रमें लगा हुआ कुसुमका रंग नहिंके बराबर बहुत ही फीका दीख पडता है वैसे ही दशवें गुणस्थानमें कृश

हुआ लोभ बारीक दिखाई पडता है । ४४ ।

कर्मके एक एक अणूमें जो शक्तिके सर्वसूक्ष्म अश हों उनके समूहका नाम वर्ग है । ऐसे बहुतसे अणुओंके समूहका

नाम वर्गणा है । अनेक वर्गणाओंके एक एक समूहका नाम स्पर्धक कहा है । किसने ? स्पर्धकोंका नाश करनेवाले परमात्माने ।

भावार्थ, अनेक कर्मयोग्य पुद्गल–अणुओंके बने हुए कर्मोंमें जो किसी एक विशिष्ट अशवाली– किसी प्रमाणको लिए हुए शक्तिको

रखनेवाला एक एक अणु है वह वर्ग कहाता है । ऐसे अनेक अणु या समान वर्गोंको मिलकर जो एक एक कार्य परिणतिके

योग्य कर्मपिंडकी रचना है वह वर्गणा कहाती है । अर्थात् समान समान शक्तिवाले अणुओंको मिलकर कर्मरूप स्कन्ध एक एक

वर्धमानं मतं पूर्वं हीयमानमपूर्वकं । स्पर्धकं द्विविधं ज्ञेयं स्पर्धकक्रमकोविदैः ॥ ४६ ॥

तयार होते हैं उन्हींको एक एक वर्गणा कहते हैं। एक एक समयमें जितनी वर्गणाओंका उदय होना निश्चित हुआ हो ऐसी एक जातिकी हीनाधिक अनेक वर्गणाओंके एक एक पिंडको स्पर्धक कहते हैं। ४५।

जिनकी शक्ति उत्तरोत्तर बढती हुई सत्तावाली है उन स्पर्धकोंको पूर्वस्पर्धक कहना। और जिनकी उत्तरोत्तर शक्ति घटती हुई है उन स्पर्धकोंको अपूर्वस्पर्धक कहना। ऐसे स्पर्धक दो प्रकारके, स्पर्धकका क्रम जाननेवालोंको जानने चाहिये।

एक एक समयमें बांधे हुए कर्मसमूहका उदय अनेक समयतक रहता है। अर्थात् पहिले समयमें कर्म बंधता है। बादमें कुछ समयतक वह फल देनेका उपक्रम न करके यों ही आत्मामें पडा रहता है। उस समयको कर्मका आबाधाकाल कहते हैं। आबाधा, स्थितिके अनुसार कुछ नियत होती है। वह आबाधा बीत जानेपर उस कर्मका उदय होना शुरू होता है। प्रथम समयमें उस बद्ध कर्मका एक सबसे बडा भाग फल देकर जीर्ण होजाता है। दूसरे तीसरे आदि समयोंमें उत्तरोत्तर थोडा कम कम होकर इसी तरह जीर्ण होता जाता है। इस तरह एक समयका बंधा हुआ कर्म अनेक समयमें जाकर खतम होपाता है।

इस प्रकार संसारी जीवोंके बंधनेवाले कर्म जो क्रमसे उदयमें आकर खिरते हैं उनमें दो बातें समझनेकी हैं। एक तो यह कि पहिले समयसे दूसरेमें, दूसरेसे तीसरे समयमें ऐसे उत्तरोत्तर समयोंमें–द्रव्य कम कम होता जाता है। दूसरी बात यह कि द्रव्य कम होता जाता है परन्तु फलदान शक्ति उत्तरोत्तर समयोंमें बढती हुई होती है। इसीको पूर्वस्पर्धक कहते हैं। यह सर्व संसारी जीवोंकी साधारण स्थिति है। और जो श्रेणी पर चढकर कर्मोंका नाश करनेमें तत्पर होते हैं उनके कर्मोंकी इन बातोंमें उल्टी स्थिति हो जाती है। अर्थात् पहिले एक समयमें वे अनुभागको जितना क्षीण कर देते हैं उससे उत्तरोत्तर असंख्य गुणा क्षीण करते जाते हैं। क्योंकि उत्तरोत्तर उनकी वीतरागता बढती जाती है इसलिये सत्ताके कर्मोंकी अनुभाग शक्ति घटती जाती है और प्रत्येक उत्तर समयमें कर्म द्रव्यकी आहुति अधिक अधिक होती जाती है।

अधो मले यथा नीते कतकेनाम्भोऽस्ति निर्मलं । उपरिष्टात्तथा शान्तमोहो ध्यानेन मोहने ॥ ४७ ॥
तदेवाम्भो यथाऽन्यत्र पात्रे न्यस्त मल विना । प्रसन्नं मोहने क्षीणे क्षीणमोहस्तथा भति ॥ ४८ ॥
घातिकर्मक्षये लब्धा नव केवललब्धयः । येनासौ विश्वतत्त्वज्ञः सयोगः केवली विभुः ॥ ४९ ॥
प्रदह्याऽघातिकर्माणि शुद्धध्यानकृशानुना । अयोगो याति शीलेशो मोक्षलक्ष्मीं निरास्रवः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रेणीस्थित चढमान योगीके जो कर्म स्पर्धक होते हैं उनका उत्तरोत्तर का अनुभाव पूर्वपूर्वसे कम हुआ समझमें आवेगा। इसीको अपूर्व स्पर्धक कहते हैं। ससारी जीवोंके स्पर्धकोंसे इन योगियोंके स्पर्धक उलटे स्वभावके होजाते हैं बस, इसीलिये ये अपूर्व कहाते हैं। ४६।

अब ग्यारहवें गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—कतक या निर्मली आदि मलशोधक द्रव्यके निमित्तसे पानीका मल नीचे बैठ जानेपर जैसे पानी निर्मल हो जाता है वैसे ही ध्यान द्वारा मोहकर्मके दब जानेसे शातमोह निर्मल समझा जाता है। ग्यारहवें गुणस्थानका शान्तमोह या उपशांतकषाय यह नाम है। ४७।

निर्मल पानीको दूसरे पात्रमें अछिया लेनेपर उस पानीका मल सर्वथा हट जानेसे वह पानी अत्यत निर्मल होजाता है उसी प्रकार मोहकी सत्ताका भीतरसे भी क्षय हो जानेपर साधु क्षीणमोह कहाता है। यह बारहवें गुणस्थानका नाम है। ४८।

बारहवें गुणस्थानमें घाति कर्मोंका नि शेष क्षय होना शुरू होता है। वह क्षय होते ही नौ केवल लब्धि जिसने प्राप्त करलीं इसलिये वह सर्वज्ञ बनचुका इसीको सयोग, योगी, केवली, विभु आदि नामोंसे कहते हैं—यह तेरहवां गुणस्थान है। ४९।

अघाति कर्मोंको शुक्ल ध्यानरूप अग्निसे जलाकर सर्व शीलोंका स्वामी होता हुआ योगरहित होना है यह चौदहवां गुणस्थान है। यहापर अतमें सर्व आस्रव बद पडजाते है और सचित घाती अघाती सर्व कर्मोंका अभाव हो ही चुका है इसलिये मोक्षरूप लक्ष्मीको यह पहुचता है। ५०।

संप्राप्ताष्टगुणा नित्याः कर्माष्टकनिराशिनः । लोकाग्रवासिन सिद्धा भवन्ति निहितापदः ॥ ५१ ॥
मोहद्वितयमाश्रित्य त्रयो ज्ञेया गुणा नव । चारित्रमोहमन्ये द्वौ योग गुणिभिरन्तिमौ ॥ ५२ ॥
मिथ्यादृष्टौ मतो मिश्रे भाव औदयिको जिनैः । मयोजनोदयोत्थाने सासने पारिणामिकः ॥ ५३ ॥

मुक्त होना यह चौदह गुणस्थानोंके बादकी अवस्था है इसलिये उसे जीवकी अंतिम दशा या पद्रहवा गुणस्थान कह सकते हैं । चौदहवें गुणस्थान तक कर्तव्य शेष रहता था इसलिये प्रत्येक गुणस्थानमें पहुचनेपर क्या कर्तव्य करना पडता है वह जहा का तहा दिखाया है । परंतु मुक्त दशाका कर्तव्य विशेष न बता कर आगे केवल उसका स्वरूप दिखाते हैं । इस दशाको गुणस्थानोंमें सामिल न करके गुणस्थानातीत माना जाता है । इसका कारण यह है कि गुण जहातक बढते रहें वे गुणस्थान, ऐसा गुणस्थानका अर्थ इस मुक्त कृतकृत्य–दशामें संभव नहीं है । इसलिये आगे इस दशाका कोई कर्तव्य शेष न बताकर इसके स्वरूप मात्रको दिखाते हैं ।

सम्यक्त्वादि आठ गुण मुक्त जीवोंके प्रगट होते हैं । फिर कभी उनकी वह संसारातीत दशा बदलती नहीं है । परिवर्तन करनेके कारण आठ कर्म हैं वे उनके सर्वथा नष्ट हो गये हैं । लोकके अग्र देशमें विराजमान हो चुके हैं । सिद्ध है अर्थात् कृतकृत्य हैं । सर्व आपदाए भी उनकी दूर हो गई हैं । ५१ ।

दर्शन चारित्र इस द्वितय मोहके कारण पहिले तीन गुणस्थान होते हैं । चौथेसे आगेके बारहवें तक नौ गुणस्थान चारित्रमोहके निमित्तसे होते हैं । और अंतिम दो गुणस्थान योगके रहने न रहनेसे होते हैं, ऐसा गुणस्थानोंके ज्ञाताओंको समझना चाहिये ।५२।

मिथ्यात्व पहिला गुणस्थान और मिश्र तीसरा, इन दो गुणस्थानोंमें औदयिक भाव माना है । अनंतानुबंधीका उदय हो आनेवाले दूसरे सासादनमें पारिणामिक भाव है । ५३ ।

१–मिच्छे खलु ओदइयो विदिये पुण पारिणामिओ भावो । मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्हि तिण्णेव ॥
यह गाथा गोमटसार जीवकांडके प्रथम गुणस्थानाधिकारकी है । इसमें 'मिस्से खओवसमिओ' इस वचनसे मिश्रमें क्षायोपशमिक भाव बताया है । तदनुसार हमने मिश्र गुणस्थानके वर्णनमें क्षायोपशमिकका समर्थन भी किया है । परंतु ये ग्रंथकार इस मिश्रको औदयिक कहते हैं । इसका कारण यह है कि मिश्र मोहनीका इस गुणस्थानमें उदय रहता है । अपेक्षा भेदसे ये दोनो कथन सयुक्तिक है ।

क्षायिकः शामिको भावः क्षायोपशमिकोऽथवा । वृत्तमोहोदयापेक्षं सम्यग्दृष्टावसंयते ॥ ५४ ॥

चौथे अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें क्षायिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक ये तीनो भाव संभव है । इसमें जो असंयतपना है वह चारित्रमोहके उदयका मात्र कार्य है ।

सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेमें सात कर्मप्रकृति बाधक कारण मानी गई हैं। उनमेंसे तीन दर्शनमोहकी हैं और चार चारित्र-मोहकी है । दर्शनमोहकी तीन—मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति । चारित्र मोहकी चार—अनंतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ । अनंतानुबन्धी चारके सिवा जो अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय हैं वे सम्यग्दर्शन के घातक न होकर चारित्रके घातक हैं । इसलिये सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेमें ऊपर बताई गई सात प्रकृतियोंके ही क्षय तथा उपशम को कारण माना जाता है ।

इन सात प्रकृतियोंके उपशम होनेपर जो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है वह औपशमिक कहाता है । जो इन सातके क्षयसे होता है वह क्षायिक कहाता है । और जिस सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेमें सातोंमेंके वर्तमान उदय योग्य अंशोंका क्षय तथा आगामी उदय योग्योंका उपशम हुआ हो तो उस सम्यग्दर्शनको क्षायोपशमिक कहते हैं । घातक कर्मके क्षय तथा उपशम होनेसे प्रगट होनेवाले सम्यग्दर्शनके ये तीन ही प्रकार संभव हैं ।

जहां केवल सम्यग्दर्शन ही प्रगट होता है किंतु चारित्रमोहके उदयसे चारित्र प्रगट नहीं हो पाता है उस गुणस्थानको असंयत सम्यग्दर्शन अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि कहते है । भावार्थ, इस स्थानमें चारित्र न रहनेसे असंयत या असंयमीपना भी रहता है और सम्यग्दर्शन गुण भी रहता है । सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे इस स्थानके परिणाम क्षायिक, औपशमिक अथवा क्षायो-पशमिक कहाते हैं । किंतु असंयमीपनेको देखकर इसे औदयिक भी मान सकते हैं । असंयम या संयमका अभाव चारित्रमोहके उदयका कार्य है इसलिये असंयम—अंशको औदयिक मानना चाहिये । इस प्रकार इस गुणस्थानमें औदयिक भाव भी है और क्षायिकादि भाव भी है। परन्तु इस स्थानको औदयिक न कहकर क्षायिकादिरूप बताया है । इसका कारण इतना ही है कि असंयम तो पूर्वसे ही चला आया है इसलिये उसे न गिनकर जो नवीन विशेषता प्रगट हुई है उसकी चर्चा यहांपर मुख्य विषय है । और उसी नवीन विशेषताके आधारपर इस स्थानका नामकरण करना न्यायप्राप्त हुआ है। ५४ ।

क्षायोशमिको भावो गुणानां त्रितये परे । क्षायिकः शामिकोऽन्यत्र शामिकः शान्तमोहने ॥ ५५ ॥
क्षायिकः क्षीणमोहेऽस्ति सयोगायोगयोरपि । आनुपूर्वीरितैतेपामुत्तरोत्तरशुद्धितः ॥ ५६ ॥

चौथेसे आगेके पांचवें, छट्ठे, सातवें इन तीन गुणस्थानोंमें क्षायोपशमिक भाव होते हैं । इसके आगे आठवें, नौवें, दशवें इन तीन गुणस्थानोंमें या तो क्षायिक भाव होते है, नहीं तो औपशमिक होते हैं। उपशम श्रेणीवालेके औपशमिक माने गये हैं और क्षपक श्रेणिवालेके क्षायिक माने गये हैं । उपशान्तमोह ग्यारहवें गुणस्थानमें औपशमिक भाव होते हैं । ५५ ।

क्षीणमोह बारहवें गुणस्थानमें और सयोग तेरहवें, अयोग चोदहवें गुणस्थानमें क्षायिक भाव रहते हैं । उत्तरोत्तर इन गुणस्थानोंके परिणामोंमें कपाय तथा योग घटते जानेसे वीतरागतारूप विशुद्धि बढती हुई बताई है । भावार्थ, इस बढती हुई विशुद्धिके कारण ही इन गुणस्थानोंका अनुक्रम लगाया गया है ।

श्रेणीका अर्थ सीढी है। छट्ठे तथा सातवें गुणस्थानमें चारित्र पूर्ण हुआ माना जाता है सो वह व्यवहारसे माना जाता है । पाच पाप जो बाह्य जग की दृष्टिमें असत् कृत्य हैं उनका त्याग छट्ठे गुणस्थान में पूरा पूरा हो जाता है इसलिये चारित्रको यहांपर पूर्ण मानलिया जाता है। सातवें गुणस्थानमें भी इसी व्यवहार चारित्रको निरवशेप सावधानीसे ध्याया जाता है इसलिये सातवां गुणस्थान भी व्यवहार चारित्रका ही परिस्कृत रूप है। इन दोनो गुणस्थानोंके आगे, चारित्रका जो मोहक्षपण कार्य है वह सुरू होता हैं। यहां आठवेंसे लेकर परिणामों की जो वीतरागता है वह मोहके उपशम अथवा क्षयरूप कार्यको करने लगती है इस लिये सीढी चढनेकासा कार्य आठवेंसे सुरू हुआ माना जाता है । और छट्ठे सातवें गुणस्थानोंको इस सीढी की भूमिका मानना सयुक्तिक है। इस सीढीमें बीचकी पैडी चार है। क्षपक सीढीमें आठवां नौवां दशवां व बारहवा गुणस्थान ये चार पैडी हैं और उपशम श्रेणिमें आठवां नौवां दशवा व ग्यारहवा गुणस्थान ये चार पैडी समझनी चाहिये ।

ये चारो पैडी कालक्रमसे नीचेसे ऊपर तक लगी हुई हैं और स्वरूप भी इन चारोंके जुदे जुदे हैं। आठवा गुणस्थान जो पहिली पैडी है उसमें मोहकर्मकी स्थिति तथा अनुभागरूप फलदान शक्ति बेहद घटाई जाती हैं । नौवें गुणस्थानमें स्थिति

मूर्च्छारंभपरित्यक्तमुपयोगगुणान्वितं । ते लिंगमपरापेक्ष संयता बिभ्रते नव ॥ ५७ ॥
रूपतः सदृशाः सर्वे त्यक्तबाह्यपरिग्रहाः । असदृक्षाः परीणामैरुपर्युपरिशुद्धयः ॥ ५८ ॥

तथा अनुभागका स्थूल सामर्थ्य नष्ट ही कर दिया जाता है। और फिर लोभके सूक्ष्म अंशोंको शेष रखकर बाकी क्रोध मान मायाके सूक्ष्म स्थिति-अनुभागांशको भी नष्ट कर दिया जाता है। जहांपर लोभके भी सूक्ष्म स्थिति--अनुभागांशको नष्ट किया जाता है वह दशवा गुणस्थान है अथवा तीसरी पैंडी है। जो पूर्ण वीतरागतारूप अथवा जहांपर मोहकर्मका संपूर्ण नाश हो गया है वह ग्यारहवा अथवा बारहवा गुणस्थान कहाता है। भावार्थ, यह चौथी सीढी मोहका उपशम करनेवालोंको जो प्राप्त होती है वह ग्यारहवा गुणस्थान कहाता है और मोहके क्षय करनेवालेको जो प्राप्त होती है वह बारहवा गुणस्थान कहाती है।

पहाडकी ऊपरली भूमिको जैसे उपत्यका कहते हैं वैसे ही मुक्ति आरोहणकी इन तेरह-चौदहवें गुणस्थानोंको उपत्यका भूमि समझना चाहिये। और छठे-सातवें गुणस्थान श्रेणीकी अधित्यका अर्थात् नीचली भूमि है। इन दोनों ही भूमियोंको अलग समझ लेनेपर आरोहणकी सीढी या श्रेणी आठवेंसे बारहवें तकके गुणस्थान ही समझे जाते हैं। इसीलिये इनको श्रेणी-गुणस्थान कहना चाहिये।

इनमेंसे आठवेंसे दशवें तकके गुणस्थानोंको वर्तमान नैगम नयकी अपेक्षासे औपशमिक अथवा क्षायिक कहना चाहिये और जो ग्यारहवेंको औपशमिक तथा बारहवेंको क्षायिक कहा है वह ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षासे ठीक बैठता है। क्योंकि, दशवें तकके परिणाम ईषत् क्षयसे उत्पन्न होते हैं और कुछ क्षय करना शेष भी रहता है। किंतु ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानके परिणाम पूर्ण उपशम तथा क्षय होकर ही उत्पन्न होते हैं इसलिये ग्यारह बारहवें गुणस्थानोंमें ईषद् अनिष्पन्नपना नहीं रहता। ५६।

परिग्रह तथा आरंभ जिसमें छूट चुका है और ज्ञानध्यान गुणकी ही जिसमें मुख्यता है ऐसे स्वाधीन लिंगको ये छठेसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तकके सभी संयत धारण करते हैं। ५७।

बाह्य वेष इन सबका समान है, क्योंकि बाहिरी वस्त्राभूषणादि सर्व परिग्रहका त्याग इन सबके एकसा है। परन्तु

अनन्तानन्तसंख्याना जीवा मिथ्यात्ववर्तिनः । पल्यासंख्यातभागास्तु परे गुणचतुष्टये ॥ ५९ ॥

शब्दसाम्येऽपि धीमद्भिः संख्याभेदः परस्परं । गुणस्थानचतुष्केऽत्र विबोद्धव्यो यथागमं ॥ ६० ॥

मि. अ. अ । सा प अ. । मि. प. अ । अ. प. अ । दे प अ । तदाह–षट्त्रिंशपंचशतपंचषष्टिसहस्रप्रमाण (६५५३६) पल्योपम परिकल्प्य द्वात्रिंशता ३२, षोडशभि १६, चतुर्भिः ४, अष्टाविंशतिशतेन १२८ आवल्यसंख्यभागेन हते क्रमेण सासादना अष्टचत्वारिंशद्विसहस्रप्रमा २०४८, मिश्रा षण्णवत्यधिकचतुःसहस्रप्रमाः ४०९६, असंयता चतुरशीत्यधिकशतत्रयषोडशसहस्रप्रमाः १६३८४, देशसंयता द्वादशोत्तरपचशतप्रमाः ५१२ ।

ये परिणामोंकी विशुद्धि उत्तरोत्तर बढती हुईको धारण करते हैं इसलिये अंतरगमें सब समान नहीं होते किंतु जुदे जुदे हैं । ५८ ।

बाह्य स्वरूप इन सबका एकसा बतानेमें कारण यह बताया है कि बाह्य परिग्रहका सबने एकसा ही त्याग किया है । इसपरसे साधु सभी नग्न होते हैं ऐसा सिद्ध होता है । स्थविर कल्पको जो श्वेताम्बरोंने वस्त्रधारी ठहराया है वह कल्पना मिथ्या ठहरती है।

आगे प्रत्येक गुणस्थानके जीवोंकी संख्याको बताते हैं —

मिथ्यात्ववर्ती जीव अनंतानत हैं और दूसरेसे पाचवें तकके चार गुणस्थानोंमें जीव पल्य के असख्यातवें २ भाग मात्र हैं ॥ दूसरेसे पाचवें तक प्रत्येक गुणस्थानके जीवोंका प्रमाण सामान्य रूपसे पल्यका असख्यातवा भाग बताया–परन्तु शब्द की यह समानता रहनेपर भी चारोंमें परस्पर कुछ सख्याका अतर है वह आगमानुसार समझ लेना चाहिये । ५९–६० ।

ग्रंथातरसे खुलासा–पैसठ हजार पाचसौ छत्तीस (६५५३६) इतना पल्यका प्रमाण कल्पित करना । आवलीके असंख्यातवें भाग सेइम पल्यको भाग देनेपर जो प्रमाण आता है वह यहांपर पल्यका असख्यातवां भाग समझना । यह आवलीका असंख्यातवा भाग प्रमाण जो भाजक है वह चारो गुणस्थानोंके लिये जुदा जुदा है । इसलिए पल्यासख्यातकी सख्या प्रत्येक गुणस्थानमें जुदी जुदी होजाती है ।

मनुष्यापेक्षया पुनराह—

द्विपंचाशत्तनूभाजो सासने मिश्रके मताः। द्विगुणाः सप्त सद्दृष्टौ देशे कोटयस्त्रयोदश ॥ ६१ ॥

सा. ५२००००००० । मि १०४०००००००। अस. ७००००००० । दे १३००००००० ।

प्रमत्ताः कोटयः पच लक्षास्त्रिनवतिप्रमा । सहस्राष्टनवत्याभा षडुत्तरशतद्वयं ॥ ६२ ॥ ५९३९८२०६

वह इस प्रकार—दूसरे गुणस्थानका प्रमाण निकालते समय आवलिके असंख्यातवें भागकी सख्या ३२ बत्तीस लेनी। तीसरे मिश्रके लिये १६ सोलह, चौथे असंयत सम्यक्त्व गुणस्थानके लिये ४ चार सख्या, और पाचवें देशसंयतके लिये १२८ एकसौ अट्ठाईस संख्या क्रमसे लेनी। इस इस आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण सख्यासे ऊपर कल्पित पैंसठ हजार पाचसौ छत्तीस मात्र पल्यप्रमाण संख्याको भाग देनेसे जो एक एक भाग प्रमाण लब्ध हो वह क्रमसे दूसरे आदि गुणस्थानवर्ती जीवोंकी संख्या समझना। भावार्थ, बत्तीस का भाग पैंसठ हजार पाचसे छत्तीसको देनेसे दो हजार अडतालीस (२०४८) सख्या प्राप्त होती है। यह प्रमाण सासादनके जीवोंका है। १६ से ६५५३६ को भागने पर ४०९६ सख्या लब्ध हुई—यह मिश्रके जीवोंका प्रमाण समझना। ४ से ६५५३६ को भागनेपर चौथे गुणस्थानके जीवोंका प्रमाण १६३८४ आता है। और १२८ से ६५५३६ को भागनेपर पांचसौ बारह ५१२ देशसयत पाचवें गुणस्थानवर्ती जीवोंकी संख्या समझना।'

मनुष्यकी अपेक्षासे सासादनादिका प्रमाण निराला बताते हैं—सासादनके मनुष्योंकी सख्या बावन कोटी ५२००००००० है। मिश्रगुणस्थानके मनुष्योंकी सख्या एकसौ चार कोटी १०४०००००००० है। असंयत चौथे गुणस्थानके मनुष्योंकी सख्या ७००००००० सात कोटी है। देशसयत पांचवें गुणस्थानवालोंकी सख्या १३००००००० तेरह कोटी है। ६१।

छट्ठे गुणस्थान की संख्या पाच कोटी तिरानवे लाख, अठानवे हजार दोसौ छह ५९३९८२०६ है। ६२।

अप्रमत्ता भवन्त्येते द्वाभ्यां भागे हृते सति । शमकक्षपकार्हद्भिर्युक्तास्ते सन्ति सयता ॥ ६३ ॥

द्वाभ्यां भागे हृते प्रमत्ता अप्रमत्ता भवन्ति । २९६९९१०३ । ते प्रमत्ताप्रमत्तसयताः शमकक्षपकार्हद्भिर्युक्ताः मर्वसंयता भवन्ति । ८९९९९९९७ ।

संयता पान्तु मां सर्वे त्रिहीना नवकोटयः । सर्वशीलगुणाधारा गुणानां नवके स्थिताः ॥ ६४ ॥

शमकाः पोडशापूर्वे विंशतिश्चतुरुत्तरा । त्रिंशत्पट्त्रिंशदेतेऽतो द्वाचत्वारिंशदीरिताः ॥ ६५ ॥

चत्वारिंशत्सहाष्टाभिः पंचाशद् द्विचतुर्युता । अष्टासु समयेष्वेते प्रविशन्ति क्षणे क्षणे ॥ ६६ ॥

अपूर्वकरणे सर्वे त्रिशती चतुरुत्तरा । शमका मीलिताः मन्ति क्षपका द्विगुणास्ततः ॥ ६७ ॥

अपूर्वे शमका ३०४ । क्षपकाः ६०८ ।

५४
५४
४८
४२
३६
३०
२४
१६

प्रमत्तकी सख्यामें दोका भाग देनेपर, अप्रमत्तकी सख्या होती है । अर्थात प्रमत्तके आधे अप्रमत्त २९६९९१०३ इतने हैं । उपशमक, क्षपक श्रेणीवाले तथा योगी-अयोगी दोनों अर्हत इन सबकी सख्या मिला देनेपर सर्व सयत ८९९९९९९७ इतने हैं । ६३ ।

नौह गुणस्थानोंके मिलाकर जो ये सर्व संयत हुए उनको आगे वताते है —

छट्ठेसे चौदहवें पर्यंत नौ गुणस्थानवर्ती सर्व मुनीश्वर तीन कम नौ कोटि हैं। अठारह हजार सर्व शील और चौराशी लाख उत्तर गुण तथा अट्ठाईस मूल गुण—इतने शील तथा गुणोंके ये मुनि धारक होते हैं । ये सर्व मेरी रक्षा करें । ६४ ।

उपशम श्रेणी चढनेवाले अपूर्वकरण गुणस्थानमें निरंतर आठ समयपर्यंत क्रमसे तीनसौ चार योगी प्रवेश करते है । वे इस प्रकार — पहिले समयमें १६, दूसरे समयमें २४, तीसरे समयमें ३०, चौथे समयमें ३६, पांचवें समयमें ४२, छट्ठे समयमें ४८, सातवें समयमें ५४, और आठवें समयमें ५४ । ये मिलकर आठ समय के सर्व तीन सौ (३०४) चार हुए । क्षपक श्रेणीके योगी इससे दूने दूने प्रत्येक समयमें प्रवेश कर सर्व ६०८ होजाते हैं । ६५-६७ ।

सर्वोत्कृष्टप्रमाश्लिष्टा लभ्यन्ते न यत क्षणा । आचार्यैरपरैरुक्ता पचभी रहितास्तत ॥ ६८ ॥
शमका मीलितास्तस्मादेकोनत्रिशतप्रमाः । द्व्यूनषट्शतसख्याना अपूर्वे क्षपकाः स्मृता ॥ ६९ ॥
शमकाः २९९ क्षपका ५९८ ।
तेषां चतुर्भिरभ्यासे शमकानां समुच्चय । पचभि क्षपकाणा तु कथ्यते क्षीणकल्मपै ॥ ७० ॥
गुणचतुष्के शमका ११९६ । गुणपचके क्षपका २९९० ।

इस प्रकरणमें एक बात ध्यानमें रखने की है। वह यह है कि कालकी गति ऊर्ध्व मानी जाती है। अर्थात् आगामी का अर्थ ऊर्ध्व रचना से बताया जाता है, यह आचार्योंकी शैली है । जैसे पहिले समयमें प्रवेश करनेवालोंकी सख्याको लिखकर दूसरे समयमें प्रवेश करनेवालोंकी सख्या उसके शिरपर लिखनी चाहिये । तीसरे समयकी संख्या उसके भी शिरपर लिखी जायगी । क्योंकि पहले समयसे दूसरा समय आगामी है, दूसरेसे तीसरा समय आगामी है। यह आगामीपना (उत्तरोत्तर कालवर्ती विवेचन) ऊपर ऊपर लिखना चाहिये। इसी अभिप्रायसे गोमटसारादि ग्रंथोंमें काल संबधी रचनाके उदाहरण सब नीचेसे प्रारंभ करके दूसरे तीसरे आदि आकडोंको एक दूसरेके ऊपर (शिरपर) लिखकर बताया गया है। यहांपर भी ऐसा ही समझना। ऊपर देखो, आठ समयोंमें प्रवेश करनेवालोंकी सख्या क्रमसे ऊपर २ लिखकर बताई है वह इसी क्रमसे हैं!

आठ समयसे अधिक समयतक निरंतर यह क्रम नहीं चलता इसलिये इससे अधिक सख्या नहीं हो पाती है। कुछ दूसरे आचार्योंने उपशमकोंकी संख्या पाच कम बताई है। अत एव क्षपकोंकी संख्या दश कम होजाती है। इस मतसे अपूर्व करणके आठ समयवर्ती उपशमक सर्व मिलकर २९९ माने गये हैं और क्षपक सर्व ५९८ होते हैं। ६८–६९।

इन उपशमक योगियोंकी संख्याको चारसे गुणित करने पर सर्व उपशमकोंकी संख्या ११९६ होजाती है। एवं क्षपक योगियोंकी आठ समयवर्ती संख्या (५९८) को पाचसे गुणनेपर २९९० संख्या सर्वज्ञने बताई है। ७०।

अर्थात्:—उपशम श्रेणीके गुणस्थान आठवेंसे ग्यारहवें तक चार हैं। इसलिये चार गुणस्थानोंकी संख्या अपूर्व करणसे चौगुनी (११९९) होती है। ग्यारहवें गुणस्थानमें से उपशम श्रेणीवाला जीव ऊपर न चढकर नीचे की तर्फ गिरता

क्षणाष्टकाधिके वर्षपृक्त्वे समयाष्टकं । जायते शमकश्रेणिप्रवेशार्हं तपस्विनां ॥ ७१ ॥
एकादिषोडशाद्यन्ता प्रविशन्ति क्षणे क्षणे । साधव शमकश्रेणौ मोहनीयशमोद्यता ॥ ७२ ॥
उपर्युपरि निक्षिप्य षोडशादीन् क्षिपेत्सुधी । एकैकाष्टकमादाय चतुर्विंशादितोऽग्रत ॥ ७३ ॥

है इसलिये अधिक से अधिक गुणचतुष्क अर्थात् चार गुणस्थानोंकी ही संख्या यहा जोडी गई है। उससे अधिक उपशम श्रेणीमें जीवोंकी संख्या नहीं हो पाती है। और यह संख्या भी उस समय हो सकती है जब अधिकसे अधिक जीव श्रेणीमें प्रवेश करते है।

क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करके जीव फिर नीचेकी तरफ गिरता नहीं है। इसलिये वह आठवेंसे बारहवें गुणस्थान तक तो पहुचता ही है किंतु बारहवेंसे भी आगे तेरहवें गुणस्थानमें उसका प्रवेश हो जाता है। इसलिये पाच गुणस्थानोंकी क्षपक श्रेणीवाले जीवोंकी सख्या यहांपर पाचगुणी करके (२९९०) बताई है।

आठ समय अधिक वर्षपृथक्त्वके भीतर आठ समय ऐसे होते हैं जब कि उपशम श्रेणीमें प्रवेश करनेका योगियोंको अवसर मिलता है॥ तीनसे ऊपर, नौ सख्याके भीतरके सर्व प्रमाणको पृथक्त्व कहते है। यहापर भी वर्षपृथक्त्वका अर्थ तीन वर्षसे आगे और नौ वर्षके भीतरका समय समझना चाहिये। ७१।

इस आठ समयके भीतर प्रत्येक समयमें योगीजन उपशमश्रेणिमें प्रवेश करते है वे योगी मोहकर्मका उपशम करनेमें उद्यत रहते हैं। प्रवेश करनेवालोंकी सख्या एकसे लेकर सोलह तक होती है। अर्थात् कभी एक योगी प्रवेश करता है, कभी दो, कभी तीन, चार आदि भी प्रवेश करते हैं। अधिकसे अधिक सोलह योगीतक प्रथम समयमें प्रवेश करते है। प्रथम समयमें इससे अधिकका प्रवेश नहीं होता। ७२।

एक एक अष्टकको लेकर ऊपर ऊपरकी तरफ रचना करते हुए सोलह आदि सख्याको जोडना चाहिये। इसी प्रकार इसके आगे चौवीस आदि संख्याको दिखावे अर्थात् पहिले समयके सोलहको प्रथम सबके नीचे लिखे। उसके ऊपर ऊपर क्रमसे चौबीस आदि संख्याए जो कि उपशमक श्रेणिके द्वितीयादि समयमें प्रवेश करने वालोंकी बताई है उन्हे लिखे। ऊपर (२२ वें पृष्ठमें) इसकी ऊर्ध्व रचना दिखाई है। ७३।

एकद्वित्रिचतुःपचषट्कानि त्रिंशदादित । गृहीत्वा क्रमतो विद्वानग्रे तेभ्यो विनिक्षिपेत् ॥ ७४ ॥
कृत्वा चतुर्दशैकत्र द्वौ द्वावष्टावतो बुध । गृहीत्वा स्थापयेत्तस्मिन्नेकैक यत्र षोडश ॥ ७५ ॥

जिस प्रकार एक दो आदि जघन्यसे लेकर सोलह उत्कृष्ट पर्यंत पहिले समयमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही दूसरे समयमें उत्कृष्ट सख्या यद्यपि चौवीस है परन्तु सोलहके आगे एक दो आदि आठ सख्यातक क्रमसे बढाकर चौवीस सख्याको उत्कृष्ट समझना । अर्थात् दूसरे समयमें जघन्य सत्रह (१७) का भी प्रवेश होता है और अठारह, उन्नीस, बीस, इकीस, वाईस तथा तेईसका भी यथासभव प्रवेश होता है । अर्थात दूसरे समयमें जघन्य हो तो १७ का प्रवेश होता है और मध्यम उन्नीस आदि का भी प्रवेश होता है । और यदि उत्कृष्ट प्रवेश हो तो २४ का होता है । ७३ ।

तीसरे समयमें उत्कृष्ट प्रवेश तीसका है । वह इस प्रकार है कि दूसरे समयके चौवीसमें एक, दो, तीन, चार, पांच तथा छह सख्याको क्रमसे अधिक बढाकर तीस तकका प्रमाण सिद्ध करे । अर्थात, इसमें जघन्य प्रवेश हो तो २५ का और उत्कृष्ट हो तो ३० का, तथा मध्यम २६ या २७, २८ व २९ तकका भी प्रवेश संभव है । ७४ ।

चौथे समयका प्रवेश उत्कृष्ट ३६ का है । यहापर भी तीसरे समयके ३० में एक दो तीन चार पाच तथा छह सख्या को क्रमसे जोडता हुआ जघन्यादि सर्व भेदोंको निकाले ।

अर्थः-एक चौदहकी सख्या तथा दो आठकी सख्याए-इनको एकत्र करनेसे जो तीस सख्या हुई वह तीसरे समय के उत्कृष्ट प्रवेशका प्रमाण हुआ । इस संख्याको ग्रहण कर इसमें क्रमसे एक आदि छह पर्यन्तकी सख्या को जोडे तो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट प्रवेशके भेद सिद्ध होते हैं ॥ अर्थात जघन्य प्रवेश ३१ का और ३२, ३३, ३४ तथा ३५ तकका कोई भी प्रवेश वह मध्यम और ३६ का प्रवेश उत्कृष्ट है । ७५ ।

४

॥२५॥

सर्वेषामग्रिमे शेषं निदध्यात्पट्कमग्रत । लब्ध्वा क्षणाष्टके वृद्धि पड्भि सप्तदशादित ॥ ७६ ॥
एकहीनं पदं वृद्ध्या ताडित द्विभिर्भाजितं । आदियुक्त पराभ्यस्तमीप्सितं गणितं मतं ॥ ७७ ॥ ३०४ ॥
पदं ८ । वृद्धिः १२ । आदि ३४ । आगत त्रैराशिकेन ६०८ क्षपकाः ।

सबसे प्रथम समयकी संख्या १६ । यह सबसे अग्रिम संख्या है । इसको आठ क्षणके लिये ऊपर ऊपर आठ स्थानपर लिखे । और प्रत्येक १६ में एक एक संख्याको जोडकर सोलहके स्थानमें सत्रह संख्या आठहू जगह लिख ले । फिर ऊपर ऊपरकी संख्याके आगे छह संख्याको एक वार, दो वार तथा तीन, चार, पाच, छह, सात वार पर्यंत क्रमसे जोडे इस प्रकार करनेसे द्वितीय यत्रका स्वरूप सिद्ध होता है । ७६ ।

द्वितीय यंत्र

० १७ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ।
० १७ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ।
० १७ ६ ६ ६ ६ ६ ।
० १७ ६ ६ ६ ६ ।
० १७ ६ ६ ६ ।
० १७ ६ ६ ।
० १७ ६ ।
० १७ ।

इस श्रेणीमें प्रवेश करनेवालोंकी आठ समयवर्ती संख्याको गणित द्वारा सिद्ध करते हैं ॥ इस प्रवेशकी संख्यामें जो उत्तरोत्तर वृद्धि होती है उसके पद (८) आठ हैं और वृद्धि का प्रमाण दूसरे यत्रके अनुसार सर्वत्र छह (६) संख्या है। और जहां से प्रारंभ होता है उस आदि स्थानका प्रमाण सत्रह (१७) संख्या है। ऐसे स्थानमें सर्व भेदोंका प्रमाण निकालनेकेलिये यह गणित सूत्र है ।

इसका अर्थ इस प्रकार है– एक कम पद प्रमाण संख्याको वृद्धि की संख्यासे गुणित करना । गुणित होकर जो संख्या लब्ध हो उसे दो संख्यासे भाजित करना । फिर आदि स्थानकी संख्याको उसमें जोडना । जोडनेपर जो लब्ध हो उसको फिर भी पद (८) प्रमाणसे गुणित करना । ऐसा करनेसे जो लब्ध संख्या हो उसको उत्तर समझो । इसका उदाहरण–

लभ्यते क्षपकश्रेणी क्षपकाणां प्रवेशने । अष्टक्षणाधिके योग्यं मासषट्के क्षणाष्टकम् ॥ ७८ ॥
द्वात्रिंशत्समयेऽष्टाग्रा चत्वारिंशत्ततस्ततः । षष्टिर्द्वासप्ततिस्तस्मादशीतिश्चतुरुत्तरा ॥ ७९ ॥
तत षण्णवतिर्द्वेधा शतमष्टोत्तर ततः । विशन्ति क्षपकश्रेणिं मोहक्षपणकांक्षिण ॥ ८० ॥

एक कम पदका प्रमाण ७ । इसे वृद्धि प्रमाण ६ सख्यासे गुणा करनेपर ४२ लब्ध हुए । इसे दो संख्यासे भाग देनेपर २१ आये । इसमें आदि स्थानकी संख्या १७ को जोडा तो ३८ हुए । इस ३८ को पदप्रमाण ८ से गुणित किया तो ३०४ संख्या प्राप्त हुई । यही प्रमाण आठ समयवर्ती उपशम श्रेणिवालोंका है । इसी प्रकार क्षपकका आदि स्थान ३४ है, पद का प्रमाण ८ है, वृद्धि १२ की है । इसका गणित करनेपर क्षपकका प्रमाण ६०८ सिद्ध हो जाता है । ७७ ।

एव क्षपका अष्टक्षणे स्थिता अनुक्रमेण

क्षपक श्रेणीका वर्णन.

आठ समय अधिक छह महीनेमें एक वार आठ समय ऐसे आते हैं जब कि क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करनेकी क्षपकोंको योग्यता प्राप्त हो । ७८ ।

आठ समयमेंसे प्रथम समयमें ३२ वत्तीस जीव क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करते हैं । दूसरे समयमें आठ अधिक चालीस अर्थात् ४८ योगी क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करते हैं । आगे तीसरे समयमें साठ योगी प्रवेश करते हैं । चौथे समयमें ७२ बहत्तर योगी, पांचवें समयमें ८४ चौराशी योगी, छठे समयमें ९६ छयानवे योगी, सातवें और आठवें समयमें एकसौ आठ एकसौ आठ योगी क्रमसे क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करते हैं । उसकी ऊर्ध्व रचना तीसरे नंबरके यत्रमें दी है । ये सभी योगी मोहकर्मका क्षय करनेकी इच्छा रखते हैं । ७९–८० ।

यत्र न ३
१०८
१०८
९६
८४
७२
६०
४८
३२

॥२७॥

संस्थाप्य क्रमत सर्वानुपर्युपरि पूर्ववत् । करोति पूर्वसूत्रेण क्षपकानयनं कृती ॥ ८१ ॥
द्वितीयादिक्षणस्थेभ्य क्रमेण क्रमकोविद । आदाय निक्षिपेत्तेभ्य पुरः षोडशषोडश ॥ ८२ ॥
तृतीयादिक्षणस्थेभ्यो द्वादशद्वादशाग्रत । एकद्वित्रिचतु पंचवारानादाय निक्षिपेत् ॥ ८३ ॥

पहिले उपशम श्रेणीके वर्णनमें आठो समय के प्रवेश करनेवाले योगियोंका यंत्र देकर जैसा वर्णन किया है और उसकी ३०४ सख्या जिस प्रकार गणितसे निकाल कर दिखाई है उसी प्रकार क्षपक श्रेणिकी सख्याको क्रमसे नीचेसे ऊपर तक समयानुसार आठ स्थानोंमें लिखकर ऊपरके 'एकहीनं पद' इस गणित सूत्रसे संख्याके उत्तर भेदोंको निकाल लेना चाहिए। उसका तीन नबरका यत्र भी पूर्वमें दिया है। और ऊपर उस गणित सूत्रके उदाहरणमें उपशम श्रेणीके भेद दिखानेके बाद इस क्षपक श्रेणीकी भेदसंख्या भी दिखादी है । ८१ ।

द्वितीयादि क्षणोंकी सख्या सिद्ध होनेकेलिये क्रम जानने वाले विद्वानको चाहिये कि उन पूर्व पूर्व की सख्याओंको लेकर उनके आगे सोलह सोलह सख्या को जोडे । अर्थात पहिले समयमें प्रवेश करनेवालोंकी संख्या क्षपक श्रेणी में बत्तीस है। उसके आगे सोलह सख्याको जोड देनेपर ४८ अडतालीस सख्या क्षपक अपूर्वकरण के दूसरे समयकी सिद्ध होजाती है। तृतीयादि क्षणोंकी संख्या सिद्ध करनेके लिय पूर्व की संख्यामें बारह बारह की संख्या जोडे । एक वार ४८ में १२ जोडनेसे तीसरे समयमें प्रवेश करनेवालोंकी ६० संख्या सिद्ध होजाती है। दो बार १२ जोडनेसे चौथी ७२ सख्या निकलती है। एवं ४८ में तीन वार बारह बारह जोडनेसे पाचवें समयकी ८४ संख्या निकलती है। चार वार बारह बारह जोडनेसे ९६ सख्या छट्ठे समय की निकलती है। पांच वार बारह बारह जोडनेसे सातवें समय की १०४ संख्या निकलती है। और आठवें समयमें सातवें समयके बराबर ही १०४ संख्या है। आठवें समयमें सख्याकी कोई वृद्धि नहीं हुई इसी कारण श्लोकमें 'पच वारान्' ऐसा शब्द दिया है ॥८२-८३

चतुरश्चतुरो लात्वा षोडशभ्य क्षिपेत्तत । द्वितय द्वितय तत्र द्वात्रिंशदत्र दृश्यते ॥ ८४ ॥
सर्वेषामग्रिमे शेषान्निक्षिपेद् द्वादशाग्रत । लब्ध्वा द्वादशभिर्वृद्धिं त्रिंशतश्चतुरग्रत । ॥ ८५ ॥
सक्षणाष्टकषण्मास्यामेकत्राष्टक्षणा यदि । इयतीनां तदा तासां सिद्धियोग्या कति क्षणा ॥ ८६ ॥

अब चौथे यंत्रकी रचनाका वर्णन करते है । चार चार सख्याओंके जोडसे १६ सख्या करे और उसे दूसरे सोलहमें जोड दे तो ३२ संख्या हो जाती है। यह वत्तीस बत्तीस की संख्या नीचेसे ऊपरकी तरफ आठ वार लिखे। इस प्रत्येक ३२ सख्यामें दो दो की सख्याको जोडकर आठ हो स्थानोंमें चौतीस चौतीस संख्या बनाले। फिर पहिलेसे ऊपरके समयोंकी संख्याको निश्चित करनेके लिये बारह बारहकी सख्या आगे आगे जोड देनेसे उत्तरोत्तरके समयोंकी संख्या बनती है। ३४ में एक वार १२ मिलाये तो दूसरे समयकी रचना होती है। तीसरे समयके ३४ के आगे दो वार १२ को मिलावे। चौथे ३४ के आगे तीन वार बारह, पांचवें समयके ३४ के आगे चार वार बारह और छठे समयके स्थानमें जो ३४ है उसके आगे पांच वार १२ जोडे। सातवें स्थानके ३४ के आगे छह वार १२ जोडे और आठवें समयके सबसे ऊपरी ३४ के आगे सात वार १२ को जोड दे। इस प्रकारसे ५ वें यत्र की रचना हो जाती है ॥ ८४–८५ ॥

४ था यत्र

० ३४ १२ १२ १२ १२ १२ १२ १२
० ३४ १२ १२ १२ १२ १२ १२
० ३४ १२ १२ १२ १२ १२
० ३४ १२ १२ १२ १२
० ३४ १२ १२ १२
० ३४ १२ १२
० ३४ १२
० ३४

आठ समय अधिक एक छह महीनेके भीतर यदि आठ समय सिद्धी योग्य आते हैं तो इतनी छमाहियोंमें कितने समय सिद्धिके योग्य होते हैं ? । ८६ ।

चत्वारिंशत्सहस्राणि षण्मास्योऽष्टक्षणाधिका भवन्त्यष्टशतान्येकचत्वारिंशानि सिद्धयताम् । ८७ ॥
[४०८४१]

आद्यन्तयो प्रमाणेच्छे विधायान्तस्तयो फल । अन्तेन गुणित कृत्वा भजनीय तदादिना ॥ ८८ ॥

इति त्रैराशिकेन लब्धा समया —

समयानां त्रयो लक्षा षड्विंशतिसहस्रकाः । अष्टाविंश विनोद्धव्यमपर शतमसक ॥ ८९ ॥
३२६७२८

क्षणेष्वष्टसु मोक्षार्हा सन्ति द्वाविंशतिर्यदि । इयत्सु कति लभ्यन्ते तदानीं मोक्षभागिन ॥ ९० ॥

एते मीलिता द्वाविंशतिः २२ त्रैराशिकेन लब्धा योगिजिनाः ॥

इस प्रश्नका उत्तर —चालीस हजार आठ सौ इकतालीस (४०८४१) इतनी अष्टक्षणाधिक छहमाही समझनी चाहिये कि जिनमें अधिकसे अधिक योगी सिद्ध होते हैं । ८७ ।

इतने अष्टसमयाधिक छहमहिनों में कितने सिद्ध होते है सो सब आगे बतावेंगे ।

अब त्रैराशिकसे यहा गणित करके सर्व समयोंकी संख्या निकालते हैं ।

आदिको प्रमाण राशि मानना और अंतकी सख्याको इच्छा राशि ठहराना । दोनोंके बीचकी संख्याको फलराशि कहना । फलको इच्छा (अंत्य) राशिसे गुणा करना और आदि (प्रमाण) राशिसे भाग देना । इस प्रकार त्रैराशिकसे कितने समय निकले सो आगे बताते हैं । ८८ ।

तीन लक्ष छब्बीस हजार सात सौ अट्ठाईस (३२६७२८) इतने सर्व समय गणित करनेसे निकलते हैं । ८९ ।

आठ समयमें यदि बाईस सिद्ध होना माना गया है तो इतने अर्थात् ३२६७२८ समयोंमें कितने सिद्ध होंगे ? इस प्रकार बाईसके आठ समय समझकर त्रैराशिक गणितसे सर्व (३२६७२८) समयोंमें होनेवाले

अष्टलक्षाणि लभ्यन्ते जिनानां जितजन्मनाम् । सहस्राष्टानवत्यामा द्व्युत्तर शतपचक ॥ ९१ ॥
चत्वारः श्वाभ्रदेवेषु पच तिर्यक्षु भाविताः । नृषु सर्वे गुणा जैनैरेकमेकेन्द्रियादिषु ॥ ९२ ॥

---

५ वा यन
०२
०२
०३
०३
०३
०३
०३
०३

सिद्ध जितने निकलते है वे आगेके सूत्रमें बताये हैं। आठ समयमें जो बाईस सिद्ध होना बताया है उसका यंत्र न. ५ का यहापर दिया है। पहिलेसे छट्ठे समय तक प्रत्येक समयमें तीन तीन सिद्ध होते हैं और सातवें आठवें समयोंमें दो दो सिद्ध होते हैं। ऐसा यंत्र परसे जान पडेगा। इस प्रकार एक वारके आठ समयोंमें सर्व बाईस सिद्ध होते है ॥ ९० ॥

जिन्होंने जन्म तथा उस जन्मके अविनाभावी मरण बुडापा आदि ससाररोगको जीत लिया है ऐसे सिद्ध होनेवाले जिन अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी आठ लाख अठानवे हजार पांच सौ दो (८९८५०२) इतने आते है क्योंकि आठ समयमें अथवा आठ समय अधिक एक छमाहीमें बाईस सिद्ध होते है इसलिये ४०८४१ छमाहियोंमें अथवा ३२६७२८ समयोंमें इतने ही सिद्ध होना गणितसे सिद्ध होता है। ९१।

देवोंमें आदिके चार गुणस्थान तक होते है। नरकके जीवोंमें भी ये चार ही संभव हैं। संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें पांचवें तक पांच गुणस्थान हो सकते हैं। मनुष्योंमें सभी होते हैं। एकेंद्रियादि असज्ञी पर्यंतके जीवोंमें पहिला एक ही गुणस्थान होता है। ९२।

उपशमक तथा क्षपक श्रेणीका वर्णन करते हुए आठ समयके जीव ३०४ और ६०८ बताये हैं। वहींपर अपर आचार्यके मतसे उपशमक श्रेणीमें पाच कम और क्षपक श्रेणीमें दश कम बताये हैं। इसलिये उनके मतसे २९९ और ५९८ होते हैं। इसी मतके अनुसार तीन कम नौ कोटि सर्व संयतोंका प्रमाण निकलता है। क्योंकि तेरहवें चौदहवें गुणस्थानवर्ति योगियोंका प्रमाण ८९८५७२ तथा प्रमत्ताप्रमत्तोंका प्रमाण क्रमसे ५९३९८२०६ व २९६९९१०३ इनके साथ उपशमकोंका

॥३१॥

चार गुणस्थान वर्ती २९९ से चौगुणा प्रमाण ११९६ तथा क्षपकोंके ५९८ का पांच गुणस्थान वर्ती पाच गुणा प्रमाण २९९० इतना जोडनेसे ही तीन कम नौ कोटि होता है। परंतु यंत्ररचना आदिमें सर्वत्र ३०४ व ६०८ का प्रमाण बताया है। इसका विचार बुद्धिमानोंको करना चाहिये।

बासठके श्लोकमें छट्ठे गुणस्थानवालोंका प्रमाण ५९३९८२०६ बताया है। और सातवें गुणस्थानका इससे आधा २०६९९१०३ इतना बताया है। उपशम श्रेणिकी सर्व संख्या ११९६ है और क्षपक सर्व २९९० है। और ९१ वें के श्लोक में बताया है कि क्षपक श्रेणीसे चढकर तेरहवें गुणस्थान तक दीर्घ कालमें इकट्ठे होते हुए चौदहवें के अंतमें जाकर जो सिद्ध होते हैं उनका प्रमाण ८९८५०२ हैं। इस प्रकार छट्ठे गुणस्थानकी संख्यासे लेकर सिद्ध होनेवाले योगियोंकी संख्यातक सर्व संख्याओंको मिलाया जाय तो तीन कम नौकोटि प्रमाण हो जाता है। सो ही ६४ वें श्लोकमें इतने सर्व योगियोंको नमस्कार किया है।

सर्ववर्मा आचार्यने भी इसी प्रकार सर्व संयतोंका स्मरण कातंत्रके प्रारंभमें किया है।

गुरुभक्त्या वयं सार्धद्वीपद्वितयवर्तिनः।
वन्दामहे त्रिसंख्योननवकोटिमुनीश्वरान्॥

भावार्थ—मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अढाई द्वीपमेंसे ही है। और वह जब कभी उत्कृष्ट क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करनेका तथा उपशम श्रेणीमें भी प्रवेश करनेका समय एकदम इकट्ठा आजाय और प्रमत्त तथा अप्रमत्तके योगी भी उत्कृष्ट संख्यामें मिलते हों तभी तीन कम नौ कोटी सर्व मुनीश्वर एक समयमें कहे जा सकते हैं। और बाकी समय में इतने उत्कृष्ट योगियोंका होना असंभव है। और यह संख्या किसी एक स्थानकी न होकर अढाई द्वीप भरमेंके योगियोंकी है। इस सर्व विषयका शक्यसंभव विचार करलेना चाहिये। शक्य संभवकी अपेक्षा ही यह सर्व मुनीश्वरोंको नमस्कार है।

इति गुणस्थान प्रकरण

॥३२॥

अनेकेऽनेकधा जीवा यैर्ज्ञायन्ते स्वजातिजा । ज्ञेया जीवसमासास्ते समासेन चतुर्दश ॥ ९३ ॥
एकाक्षा बादराः सूक्ष्मा द्व्यक्षाद्या विकलास्त्रयः । पञ्चाक्षाः सञ्ज्यसञ्ज्ञाख्याः सर्वे पर्याप्तकेतरे ॥ ९४ ॥
एकेन्द्रियेषु चत्वारः समासा विकलेषु षट् । पञ्चेन्द्रियेषु चत्वारो भवन्त्येते चतुर्दश ॥ ९५ ॥
चतुर्दशसु पञ्चाक्षः पर्याप्तस्तत्र वर्तते । एतच्छास्त्रमतेनाद्ये गुणस्थानद्वयेऽपरे ॥ ९६ ॥

अब जीवसमासके आधारपर जीवका वर्णन करते हैं ।

जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकारकी अतर्जाति जानी जाय उन धर्मोको अनेक प्रकारका सग्रह करने वाला होनेसे जीवसमास कहते है ऐसा समझना चाहिये । भावार्थ—उन धर्म विशेषोंको जीव समास कहते हैं जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक अतर्जातियोंका सग्रह किया जासके । इस जीवसमासके संक्षेपसे चौदह भेद हैं । ९३ ।

एकेंद्रियके बादर तथा स्थूल दो भेद, द्वींद्रियसे चतुरिंद्रिय पर्यंत तीन विकलेंद्रिय, और पचेंद्रियके सज्ञी तथा असज्ञी ऐसे दो भेद मिलकर सर्व सात भेद हुए । प्रत्येक भेदके जीव पर्याप्तक भी होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं । इसलिये ऊपरके सातो भेदोंको दूने करनेसे चौदह भेद होजाते हैं । ये ही चौदह जीवसमास हैं । ९४ । • १,० ० (१४)

एकेंद्रियमें बादर सूक्ष्म ये दो भेद और दोनोंके पर्याप्त अपर्याप्त ये दो दो भेद होनेसे एकेंद्रियमें चार जीवसमास सिद्ध होते हैं । विकलत्रय जीवोंके इसी पर्याप्तापर्याप्त भेद के कारण दो दो भेद होकर विकलत्रयमें छह समास होते हैं । सज्ञी असज्ञी दोनों पचेंद्रियके भेदोंमें इसी पर्याप्तापर्याप्त भेदके कारण चार समास हो जाते हैं । ये चौदह जीवसमास हुए । ९५ ।

१,०
१,०
१,०
• १,१ ०

चौदह समासोंमेंसे जो पचेंद्रिय (असज्ञी) पर्याप्त एक भेद है उसमें इस शास्त्रके मतसे पहिले दो गुणस्थान पाये जाते हैं । आगेके गुणस्थान नहीं पाये जाते । ९६ । संज्ञी पचेंद्रिय जो पर्याप्तक भेद है उसमें सिद्धातमतसे चौदह ही गुणस्थान होते हैं ।

पूर्णः पचेन्द्रियः संज्ञी चतुर्दशसु वर्तते । सिद्धान्तमततो मिथ्यादृष्टौ सर्वे गुणे परे ॥ ९७ ॥
चतुर्दशाङ्गिनां भेदा एकविंशतिरीरिताः । त्रिंशत्सा द्विपडष्टाग्रा चत्वारिंशद्युताष्टभिः ॥ ९८ ॥
चतुःपचाशदर्धैः सप्तपंचाशदप्यतः । विज्ञाय संयतै रक्ष्या विशेषेणेति सर्वदा ॥ ९९ ॥
अपर्याप्ता मता ये ये चतुर्दशसु देहिनः । ते ते निर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तयो द्विधा ॥ १०० ॥
चतुर्दशापि तैर्युक्तास्ते भवन्त्येकविंशतिः । इदानीं त्रिंशदुच्यन्ते निगद्येत्येकविंशतिः ॥ १०१ ॥

वाकीके सर्व जीवसमास एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही पाये जाते हैं । भावार्थ, ऊपरके जो गुणस्थान हैं वे पचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्तकके सिवाय दूसरे नीचले जीवोंमें हो ही नहीं सकते हैं । क्यों कि सम्यग्दर्शनादिका विकाश संज्ञी पर्याप्तकमें ही हो सकता है । पूर्ण अथवा पर्याप्तकका अर्थ एक ही होता है । पर्याप्तापर्याप्तका अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ९७ ॥

चतुर्दश जीवसमासोंके उत्तर भेद इक्कीस भी होते हैं । और उत्तरोत्तर भेद तीस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, अडतालीस, पचास, चौवन तथा सत्तावन तक भी होते हैं । इस प्रकार जीवोंके प्रकारोंको समझकर इन सर्व जीवोंकी संयमियोंको सदा और खासकर रक्षा करनी चाहिये । ९८—९९ ।

इक्कीस भेद कैसे होते हैं वह बताते हैं । चौदह समासोंमें सात अपर्याप्तक हैं । अपर्याप्तकके लब्ध्यपर्याप्तक तथा निर्वृत्त्यपर्याप्तक ऐसे दो दो भेद भी होते हैं । इस लिये सात अपर्याप्तकोंके चौदह अपर्याप्तक होजाते हैं । अर्थात् सात पर्याप्तक, सात लब्ध्यपर्याप्तक और सात निर्वृत्त्यपर्याप्तक ऐसे इक्कीस भेद होजाते हैं । तात्पर्य यह हुआ कि सामान्य अपर्याप्तक मानते थे तबतक जो चौदह भेद होते थे वहां अपर्याप्तकके सात भेद और भी बढ जानेसे चौदहमें वे सात भेद जोड दिये तो इक्कीस भेद होजाते हैं । इस प्रकार इक्कीस भेदोंको बताकर अब तीस भेदोंको आगे बताते हैं । यह बराबरमें इक्कीस भेदका यंत्र है । ॥ १००–१०१ ॥

```
० ० १ १ ० ० (२१)
    १ • ०
    १ ० ०
    १ ० ०
• ० १ १ ० ०
```

पच स्थावरकाया ये ते प्रत्येकं चतुर्विधा । दशत्रसयुता जीवसमासास्त्रिंशदीरिताः ॥ १०२ ॥
द्विधा साधारणो ज्ञेयः प्रत्येकाङ्गो वनस्पतिः । साधारणश्चतुर्धात्र प्रत्येकांगः पुनर्द्विधा ॥ १०३ ॥
पूर्णाऽपूर्णतया तत्र प्रत्येकाङ्गः स्मृतो द्विधा । वनस्पतिर्यत॰ पोढा द्वात्रिंशत्त्रिंशदस्त्यत. ॥ १०४ ॥
एकमेकस्य यस्याङ्ग प्रत्येकाङ्गः स कथ्यते । साधारणः स यस्याङ्गमपरैर्बहुभि समम् ॥ १०५ ॥
गूढसन्धिशिरापर्व समभगमहीरुहं । साधारणं वपुश्छिन्नरोहि प्रत्येकमन्यथा ॥ १०६ ॥

पृथिवी जल अग्नि वायु तथा वनस्पति ये पांच स्थावर हैं। इन पांचोंके चार चार भेद होते हैं, १ बादर, २ सूक्ष्म ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त । अर्थात् मूल भेद दो, एक बादर दूसरा सूक्ष्म । फिर बादरके पर्याप्त अपर्याप्त दो भेद तथा सूक्ष्म के भी पर्याप्त अपर्याप्त दो भेद होते हैं । इसलिये एक एक कायके चार चार भेद कहे जाते हैं । पांचों स्थावरोंके चार चार भेद गिनें तो सर्व भेद बीस होजाते हैं। इसमें द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, असज्ञी पर्चेद्रिय तथा संज्ञी पर्चेद्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त दो दो भेद हैं । इन दश त्रसोंको मिलानेसे तीस जीव समास होजाते हैं । यह बराबरमें तीस भेदका यत्र है ।१०२।

०११० (३०)
१०
१०
१०
०११०
०११०
०११०
०११०
०११०

बत्तीस भेदका विवरण —वनस्पतिके दो भेद हैं, साधारण और प्रत्येक । साधारणके चार प्रकार हैं, बादर सूक्ष्म पर्याप्त व अपर्याप्त । प्रत्येक वनस्पतिके पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं । तीस भेदोंके समय वनस्पतिके चार भेद ही लिये थे । किन्तु अब छह उत्तर भेद मान लिये, तो तीसके स्थानमें बत्तीस भेद जीवसमासके हो जाते हैं । १०३—१०४ ।

साधारणका लक्षण यह है कि अपने स्वत के सिवाय और भी अनेक जीवोंका वह शरीर होता है । और जो एक शरीर एक ही जीवका आश्रय हो वह प्रत्येक है ॥ १०५ ॥

साधारणकी पहिचान —जिसकी संधि स्पष्ट न हुई हों, अथवा शिरा स्पष्ट न हुई

एकत्र म्रियमाणे ये म्रियन्ते देहिनोऽखिला । जायन्ते जायमाने ते लक्ष्या. साधारणा बुधै· ॥ १०७ ॥
नित्येतरनिगोदत्वभेदात्साधारणा द्विधा । प्रत्येक ते चतुर्भेदा स्थूलसूक्ष्मादिभेदतः ॥ १०८ ॥
अष्टभेदा यतो जाता साधारणशरीरिण । द्वात्रिंशदुच्यते पूर्वा षट्त्रिंशत्साधुभिस्तत ॥ १०९ ॥

हों अथवा तोडनेसे एकसे (सम) टुकडे हो जांय, अथवा टूटने पर तन्तु न निकलें, अथवा छेदने पर भी ऊग आवें ऐसे सर्व वनस्पति उक्त इन अवस्थाओंमें साधारण माने गये हे । इनसे उलटे हों वे प्रत्येक है । १०६ ।

माधारण का मुख्य लक्षण —एक शरीरमें रहनेवाले जितने जीव हों उनमेंसे एकके मरनेपर वे सभी मरजाय और जहा उनमेंसे एक जनमता हो वहीं पर वे सब जनमें उन्हे साधारण कहते है । उनको जानलेना बुद्धिमानका काम है । क्योंकि जीव का यह साधारण पर्याय दूसरे किसीने भी नहीं माना है । इसका कारण यही है कि साधारण पर्यायका समझना चर्मचक्षुओंका तथा अनुमानका काम नहीं है । वह आगमगम्य है। दूसरे पर्याय ऐसे है कि वे प्रत्यक्ष तथा अनुमेय भी होजाया करते हैं । १०७ ।

०११० सा प्र
१० १० स प्र
१० अ प्र
१० ३२

०११०
०११०
०११०
०११०
०११०

छत्तीस भेदोंका विवेचन--साधारण के नित्य निगोद व इतर निगोद (अथवा अनित्य निगोद) ऐसे दो भेद हे । फिर नित्य निगोदके चार भेद है, १ बादर, २ सूक्ष्म, ३ पर्याप्त, ४ अपर्याप्त । इसी प्रकार इतर निगोदके भी ये ही बादरादि चार भेद है । इस प्रकार साधारणके भेद आठ हो जाते है । एक साधारणके ही बादर सूक्ष्म व पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे चार भेद ऊपर [बत्तीस भेदोंके जोडनेमें] माने थे परतु इन चारके स्थानमें यदि ये नित्यनिगोद तथा इतर निगोदके जुदे जुदे बादरादि चार चार भेद लेलिये जांय तो बाकी त्रस तथा स्थावरोंके अट्ठाईस भेद जोडनेपर वे छत्तीस भेद हो जाते हैं । १०८–१०९

॥३६॥

त्रसत्वं ये प्रपद्यन्ते कालानां त्रितयेऽपि नो । ज्ञेया नित्यनिगोदास्ते भूरिपापवशीकृताः ॥ ११० ॥
कालत्रयेऽपि यैर्जीवैस्त्रसता प्रतिपद्यते । सन्त्यनित्यनिगोदास्ते चतुर्गतिविहारिणः ॥ १११ ॥
प्रत्येका देहिनो द्वेधा प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिताः । प्रत्येक तेऽपि जायन्ते पूर्णापूर्णतया द्विधा ॥ ११२ ॥
प्रत्येकाङ्गाश्चतुर्भेदा यत सन्ति शरीरिणः । अष्टत्रिंशत्ततः पूर्वा षट्त्रिंशद्गदिता बुधैः ॥ ११३ ॥

निगोदमें नित्य तथा अनित्यपना कैसे आता है वह बताते हैं। जो निगोद जीव कभी तीन कालमें भी त्रस पर्यायको न पा सकते हो ऐसे तीव्र पापयुक्त निगोदोंको नित्य निगोद कहते हैं। जो जीव तीन कालमेंसे आगे पीछे कभी भी त्रस पर्यायको पाने वाले हों वे अनित्य निगोद अथवा इतर निगोद कहाते है। चतुर्गतिमें वे भ्रमण करने वाले ठहरते हैं इसलिये चतुर्गतिनिगोद भी उन्हीको कहते हैं। ११०-१११।

अढतीस जीवसमासोंका खुलासा—प्रत्येक वनस्पतिके प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित अथवा सप्रतिष्ठ और अप्रतिष्ठ ऐसे दो भेद हो जाते हैं। और पर्याप्त अपर्याप्तके भेदसे सप्रतिष्ठ भी दो प्रकारका है। और अप्रतिष्ठ भी दो प्रकारका है। इस प्रकार प्रत्येक वनस्पतिके चार भेद होगये। छत्तीस भेद ऊपर गिनाये हैं उनमें प्रत्येक वनस्पतिके दो भेद किये हैं किंतु यहांपर चार भेद देनेसे जीवसमास अढतीस प्रकारका हो जाता है। ११२–११३।

०११० ३६	० ११० ३८
१०	सा इ १०
१०	नि १०
१०	१०
०११०|०११०|१०	०११०|०११०|०११०
नि ०११० सा प्र	०११० अ प्र
०११०	०११०
०११०	०११०
०११०	०११०

॥३७॥

पृथिव्यां ये प्ररोहन्ति ते भण्यन्ते प्रतिष्ठिताः । उपरिष्ठाद्ये जलादीनां ते भवन्त्यप्रतिष्ठिताः ॥ ११४ ॥
सन्ति निर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदतः । अपर्याप्ता यतो द्वेधा द्वात्रिंशत्ते शरीरिणः ॥ ११५ ॥
चत्वारिंशत्ततोऽष्टाग्रा सा द्वात्रिंशन्निवेदिता । चतुःपंचाशदादिष्टा तथा षट्त्रिंशदुत्तमैः ॥ ११६ ॥

प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितका लक्षण —पृथिवीका आधार लेकर वनस्पति जो ऊगते हों वे प्रतिष्ठित अथवा सप्रतिष्ठ कहाते हैं । जो अधर या जलादिके ऊपर उत्पन्न हो जाते हैं वे अप्रतिष्ठित हैं ॥ ११४ ॥

ऊपर बताये बत्तीस जीवसमासोंमेंसे सोलह अपर्याप्त हैं । उन अपर्याप्तोंके निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त ऐसे दो दो भेद करदें तो सोलह भेद बढ जानेसे बत्तीसके स्थानमें अडतालीस जीव समास हो जाते हैं ॥ ११५ ॥

इसी युक्तिसे वे ही चौवन भेद हो जाते हैं जब कि पहिले जो छत्तीस भेद बताये हैं उनमेंके आधे अठारह अपर्याप्तोंके निर्वृत्यपर्याप्त तथा लब्ध्यपर्याप्त ऐसे दो दो भेद करके अठारह सख्या बढादी जाती है । अर्थात् अठारह पर्याप्त, अठारह निर्वृत्यपर्याप्त और अठारह लब्ध्यपर्याप्त—इस प्रकार चौवन सर्व जीवसमास हो जाते हैं ॥ इसी प्रकार पहिले अडतीस भी भेद बताये हैं। उनमेंके उन्नीस अपर्याप्तोंके निर्वृत्यपर्याप्त तथा लब्ध्य-

००११०० ४८
१●० प्र.
१००१००
१००
●०११००
००११००
००११●०
०●११००
००११●०

००११०० ५४
सा इ. १०●
नि १०●
१०●
००११००|००११●●|१००
००११०●
००११०●
●०११०●
●●११००

अष्टात्रिंशत्पुरः प्रोक्ता सप्तपंचाशदच्यते । लब्धिनिर्वृत्यपर्याप्तमेदतोऽपूर्णदेहिनाम् ॥ ११७ ॥
अथवा जीवसामान्यस्थावरत्रसपूर्वकैः । जीवभेदा विबोद्धव्या भेदैर्भेदविशारदैः ॥ ११८ ॥

पर्याप्त ऐसे दो दो भेद करके उन्नीस भेद बढ़ाकर जोड़ें तो सर्व सत्तावन समास हो जाते हैं ॥ ११६–११७ ॥

अथवा जीव सामान्य एक भी हो सकता है । उसके त्रस स्थावर ऐसे दो जीवसमास भी होते हैं । इस प्रकार एकसे लेकर सत्तावन पर्यंत मध्यके सभी भेद हो जाते हैं सो लगालेने चाहिये । एकसे उन्नीस तकके भेदोंके नाम नीचे दिये हैं । एकसे सत्तावन तकके यंत्र आगे दिये हैं । ११८ ।

००११०० ५७
सा. नि १००
१००
१००
००११००|००११००|१००|१००
००११००|१०प्र अ
००११००
००११००
००११००

१		
सा.	स्था.	त्र
१	१	१

२		
ए	वि	स
१	१	१

३			
ए	वि.	अ	स.
१	१	१	१

४				
ए	द्वी	त्री	च	प
१	१	१	१	१

५					
पृ.	अ	ते.	वा	व	त्र.
१	१	१	१	१	१

६						
पृ.	अ	ते.	वा.	व	वि.	स
१	१	१	१	१	१	१

७							
पृ	अ	ते.	वा.	व.	वि.	अ.	स
१	१	१	१	१	१	१	१

८								
पृ	अ.	ते	वा.	व.	द्वी	त्री	च	पं
१	१	१	१	१	१	१	१	१

९									
पृ	अ	ते	वा.	व.	द्वी.	त्री.	च.	अ	सं.
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

॥३९॥

११
प्र अ ते वा. व त्र.
२ २ २ २ २ १

१२
प्र. अ. ते वा व. त्र.
२ २ २ २ २ २

१३
प्र. अ. ते वा व वि अ. स
२ २ २ २ २ १ १ १

१४
प्र अ ते वा. व. द्वी त्री. च प
२ २ २ २ २ १ १ १ १

१५
प्र. अ ते वा व द्वी. त्री. च. अ. सं.
२ २ २ २ २ १ १ १ १ १

१६
प्र अ ते वा. नि. च प्र वि अ. सं.
२ २ २ २ २ २ १ १ १ १

१७
प्र. अ ते वा नि च प्र. अ. वि. अ स.
२ २ २ २ २ २ १ १ १ १ १

१८
प्र अ. ते वा. नि च प्र द्वी. त्री च अ. म
२ २ २ २ २ २ १ १ १ १ १ १

१९
प्र अ ते. वा नि च. प्र अ द्वी त्री च. अ स
२ २ २ २ २ २ १ १ १ १ १ १ १

धरादयो द्विधा ज्ञेया बादरेतरभेदतः । जीवभेदावबोधाय पटीयोभिर्यथाक्रमम् ॥ ११९ ॥

पृथ्वी कायिक तथा जलकायिक, अग्निकायिक व वायुकायिक आदि इनमेंसे प्रत्येकके भी बादर व सूक्ष्म ऐसे दो दो भेद हैं। दो से लेकर आगेकी सख्या निश्चित करनेमें यथाक्रम एक दो आदि के उत्तर भेद करते हुए उन्नीस सख्यासे आगेके जीवसमास भी ठहरालेने चाहिये। उनके नाम आगे दिये हैं। ११९।

एकादय समासा ये यावदेकोनविंशतिः । ते पर्यासितराभ्यस्ताः कार्या भेदाववुद्धये ॥ १२० ॥

१ २ ३. ४ ५ ६ ७ ८. ९ १० ११. १२. १३ १४. १५ १६ १७. १८ १९

ते पर्यासितराभ्यस्ताः—

२ ४ ६ ८ १०. १२. १४ १६. १८ २०. २२ २४ २६ २८. ३० ३२ ३४. ३६. ३८.

पर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तकैस्त्रिभि । एकादीनां विधे ज्ञेया जीवभंगप्रकृष्टयः ॥ १२१ ॥

३. ६. ९ १२ १५ १८. २१. २४ २७ ३० ३३ ३६. ३९ ४२. ४५. ४८ ५१ ५४ ५७

सप्तपंचाशत ज्ञात्वा भेदान् ये पान्ति जन्मिन । ते ससारपयोराशे सयतास्तारयन्तु माम् ॥ १२२ ॥

एकसे आदि लेकर उन्नीस पर्यन्त इसी प्रकार भेद निकाल लेने चाहिये। इन उन्नीसमेंमे प्रत्येकके पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे भेद कर देनेसे अडतीस तक भेद हो जाते हैं । भावार्थ, उन्नीसमेंसे एकके ही पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे दो भेद किये और बाकी सब सामान्य रक्खे तो बीस भेद हो जाते हैं । दो के दो दो भेद किये और बाकी सत्रह सामान्य ही रक्खे तो इक्कीस भेद हो जाते हैं । इस प्रकार एक एक भेद बढाकर अडतीस पर्यत सर्व भेद बन जाते हैं ॥ १२० ॥

उन्नीसमें दोसे उन्नीसतकके पर्याप्त तथा अपर्याप्त ऐसे दो दो ही भेद रक्खे जाय और पहिले एकके निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त व पर्याप्तक ऐसे तीन भेद कर लिये जाय तो अडतीस भेदमे एक आगेका स्थान उन्तालीसवां सिद्ध हो जाता है । इसी प्रकार दो, तीन, चार आदिके क्रमसे तीन तीन भेद करके बाकी दो दो भेद रक्खे तो चालीस का स्थान, इकतालीसका स्थान इत्यादि सत्तावन पर्यन्त सर्व भेदस्थानोंके समास बन जाते हैं । १२१ ।

इस प्रकार सत्तावन जीवसमासोंके भेदोंको जानकर जो सर्व भेदगत रक्षणीय जीवोंकी रक्षा करते है वे योगी–संयत संसार समुद्रसे मुझे तारें । १२२ ।

प्राणन्ति यैः सदा जीवाः प्राणैर्बाह्यैरिवांतरैः । प्राणाः प्रवर्तमानास्ते प्राणिनां जीवितावधि ॥ १२३ ॥
हृषीकपंचकं स्वान्तवचःकायबलत्रयम् । आयुरुच्छ्वासनिःश्वासौ दश प्राणा भवन्त्यमी ॥ १२४ ॥
सर्वेष्वङ्गेन्द्रियायूंषि पूर्णेष्वानः शरीरिषु । वाग्द्व्यादिहृषीकेषु मनः पूर्णेषु संज्ञिषु ॥ १२५ ॥

अब जीवके प्राणोंका वर्णन करते हैं

जिस प्रकार आभ्यंतर प्राणोंके कार्यभूत नेत्रोंका खोलना, वचन प्रवृत्ति, उच्छ्वास निश्वास आदि बाह्य प्राणोंके द्वारा जीव प्राणति अर्थात् जीते हैं उसी प्रकार जिन आभ्यंतर इंद्रियावरण कर्मके क्षयोपशमादिके द्वारा जीवमें जीवितपनेका व्यवहार हो उनको प्राण कहते हैं ।

सदा जीव प्राणोंके द्वारा ही जीवनक्रियाको रखते हैं । अर्थात् प्राणोंके विना कभी भी जीव जीवित नहीं रह सकता है । इसीलिये 'जीव प्राणधारणे' ऐसा जीवका अर्थ बताया है । अर्थात् प्राणोंको धारण करके जो रहे वह जीव है । प्राण रहें तभी तक जीव जीवित रहता है । प्राणोंके नाश होनेको मरण कहते हैं ॥ १२३ ॥

पाच इद्रिय, मन वचन कांय ये तीन बल कहाते हैं, आयु, उच्छ्वास निश्वास ये दश प्राण हैं । १२४ ।

जबसे जीव शरीरको धारण करता है तभीसे सर्व जीवोंके शरीर, यथायोग्य इद्रियें तथा आयु ये प्राण प्रगट हो जाते हैं और श्वासोच्छ्वास पर्याप्त (पूर्ण) अवस्था होनेपर सुरू होता है । दो इद्रिय वाले आदि जीवोंमें पर्याप्त अवस्थामें वचन प्राण भी होता है । सज्ञी पचेंद्रिय पर्याय वाला जीव हो तो उसको पूर्ण (पर्याप्त) अवस्था प्राप्त होने पर मन सुरू होता है । १२५ ।

ते सज्ञिनि दशकैकैको हीनोऽन्येष्वन्त्ययोर्द्वयं । अपर्याप्तेषु सप्ताद्योरेकैकोऽन्येषु हीयते ॥ १२६ ॥
४-४-६-७-८-९-१० । ७-७-६-५-४-३-३

सज्ञी पंचेंद्रियके दशो प्राण होते हैं । और जैसे जैसे इंद्रिय कम होती हैं वैसे वैसे प्राण भी कम होते हैं। मन रहित पंचेंद्रियकें नौ प्राण होते हैं । अर्थात् उसके मन प्राण नहीं होता है । चतुरिंद्रियकें एक श्रोत्रेंद्रिय प्राण और भी कम हो जानेसे आठ प्राण रहते हैं। एक एक इंद्रिय प्राण कम होकर त्रींद्रिय जीवकें चक्षूरहित सात, द्वींद्रियकें नासिकारहित छह प्राण होते हैं । एकेंद्रियकें छह प्राणोंमेंसे एक रसना इंद्रिय तथा दूसरा वचनबल ये दो प्राण कम हो जानेसे चार प्राण रह जाते हैं। चार प्राण कौनसे ? एक स्पर्शन इंद्रिय, दूसरा शरीरबल, तीसरा श्वासोच्छ्वास, चौथा आयु ये चार प्राण एकेंद्रियके हैं। यह पर्याप्त जीवोंके प्राणोंकी व्यवस्था है । अपर्याप्तोंमें सज्ञी असंज्ञी पचेंद्रिय जीवोंकें मनोबल वचन बल तथा श्वासोच्छ्वास नहीं होता, इस लिये सात प्राण वहांपर माने गये हैं । और जैसे इद्रिय कम वैसे इद्रिय प्राण कम समझना चाहिये। अतमें एकेंद्रिय कें अपर्याप्त अवस्थामें तीन प्राण होते हैं, एक स्पर्शन इद्रिय, दूसरा शरीर, तीसरा प्राण आयु ।

यहांपर प्रथम जीवसमासोंका वर्णन कर आये हैं । उसमें ' एकाक्षा बादरा सूक्ष्मा ' इस वाक्य से एकेंद्रियके दो भेदोंको जुदा जुदा गिनाया है । इसलिये इस १२६ वें श्लोकके ' अन्त्ययोर्द्वयं ' का अर्थ करनेमें एकेंद्रियके बादर सूक्ष्म ये दो भेद लेकर द्विवचनको सार्थक करना चाहिये । इस श्लोकके पूर्वार्ध में सात पर्याप्तकोंके इद्रियविभागको बताकर आगे अपर्याप्तक सातके इंद्रियविभागको बताया है । इसलिये समासके चौदह भेदोंकी अपेक्षा मानकर ही यहाका इंद्रियविभाग बताया गया है ऐसा मानना सयुक्तिक है ।

चतुर्दश जीवसमासोंमें क्रमसे प्राणोंका विभाग —उनमेंके पर्याप्तक सात भेदोंमेंसे बादर एकेंद्रियमें ४ प्राण, सूक्ष्म एकेंद्रियमें ४ प्राण, द्वींद्रियमें ६, त्रींद्रियमें ७, चतुरिंद्रियमें ८, असंज्ञी पंचेंद्रियमें ९, और सज्ञी पचेंद्रियमें १० हैं । अब अपर्याप्तक सात भेदोंमेंसे संज्ञी पचेंद्रियकें ७ प्राण, असज्ञी पचेंद्रियकें भी ७, चतुरिंद्रियकें ६, त्रींद्रियके ५, और बादर एकेंद्रियके ३, सूक्ष्म एकेंद्रियके भी ३ प्राण हैं । इति प्राणवर्णन ।

पूर्णापूर्णा यथा सन्ति पदार्था भवनादयः । पूर्णापूर्णास्तथा जीवा विज्ञातव्या मनीषिभिः ॥ १२७ ॥

अब पर्याप्तियों द्वारा जीवका वर्णन करते हैं।

गोमटसारमें जीवसमास प्रकरणके बाद पर्याप्ति अधिकार है और फिर प्राणाधिकार है। इसका कारण यह है कि उत्पत्ति क्रम देखा जाय तो पर्याप्ति प्रथम हो जानेपर ही प्राणों की प्रवृत्ति होती है। परतु यहांपर जीवकी पहिचान कराना इष्ट जान पडता है। पर्याप्ति से जो पहिचान जल्दी नहीं होसकती वह प्राणोंसे होती है। इसलिये समासके बाद प्राणोंका वर्णन करदेना ग्रथकार को ठीक मालूम पडा। और फिर समासमें आये पर्याप्तापर्याप्त विषयको खुलासा किया है। १२६।

जैसे अचेतन घर आदि वस्तुए पूर्ण अपूर्ण दोनो प्रकारकी हो सकती हैं वैसे ही जीव भी पूर्ण तथा अपूर्ण दोनो प्रकारके होते हैं। मूल जीव द्रव्यमें पूर्ण अपूर्ण ऐसे दो भेद नहीं हैं क्योंकि जीव अखंड अनेकप्रदेशी ही द्रव्य है। वह पुद्गल के छोटे बडे स्कंधोंकी भांत अनेक परमाणुओंसे बनता नहीं है। इसलिए पूर्ण अपूर्णताका व्यवहार पुद्गलमें ही माना जाना ठीक है। परंतु यहापर जीवका अर्थ एकाकी जीव द्रव्य नहीं है, किंतु शरीरयुक्त ससारी जीवकी यहापर विवक्षा है। इसलिये शरीरका विशरारु स्वभाव होनेके कारण जब प्रारभिक अवस्थामें शरीर अपूर्ण रहता है तब जीवको ही अपूर्ण कहा जाता है। और जब शरीर पूर्ण हो जाता है तब भी पूर्ण जीव ही कहाता है। अर्थात् शरीरसहित जीवकी दशामें जीव और शरीर ऐसे दो वस्तुए माननेकी परिपाटी नहीं है। इसलिये शरीरकी पूर्णता अपूर्णतासे जीवको ही पूर्ण अपूर्ण माना जाता है। पूर्ण अपूर्ण शब्दोंके ही अर्थमें पर्याप्त अपर्याप्त शब्द भी बोले जाते हैं। १२७।

विशेष—पर्याप्तिका अर्थ पूर्णता है। यह पूर्णतारूप या पर्याप्ति रूप शक्ति है तो आत्माकी ही, परंतु शरीरके ग्रहण करते समय इसका उपयोग होता है। इसलिये इसका व्यवहारमें अर्थ ऐसा माना गया है कि शरीर उत्पन्न जिससे होता है ऐसे शरीर के योग्य अवयवरूप पुद्गलोंका संबंध मिलने पर जो शरीरको बनानेकी आत्मामें शक्ति आती है वह पर्याप्ति है। एक शरीरको

छोडकर दूसरे नवीन शरीरको जब यह जीव ग्रहण करनेमें लगता है उस समय वहांके स्थानमें जो शरीरोपयोगी द्रव्य इस जीवके साथमें कर्मानुसार आकर इकट्ठे होते हैं उसे आहार कहा है। यह आहार का संग्रह होना पहिली पर्याप्ति है। इसको आहार पर्याप्ति कहते हैं। सर्व पर्याप्ति छह मानी गई है। उनके नाम आहार पर्याप्ति शरीर पर्याप्ति इन्द्रिय पर्याप्ति श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति। आहार ग्रहण करना पहिली आहार पर्याप्ति हुई। उसी आहारसे शरीर बनता है। उसके बननेमें जो आत्मशक्ति लगती है वह शरीरपर्याप्ति है। शरीरके सिवाय इंद्रियोंकी रचनाका होना जिस शक्तिसे होता है वह तीसरी इंद्रियपर्याप्ति है। जहा शरीर होता है वहापर श्वासोच्छ्वास भी शुरू होता है। उस श्वासोच्छ्वास रचनाकेलिये जो शक्ति प्रगट होती है वह श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति है। जो द्वींद्रिय प्रभृति जीव बोलनेकी योग्यता रखते हैं इनके भीतर एक भाषाशक्ति भी प्रगट होती है, उसे भाषा पर्याप्ति कहते है। मनन चिंतन करनेकी जिन योनियोंमें योग्यता है उन योनियोंके जीवोंमें जो मन उत्पन्न होनेकी शक्ति प्रगट होती है वह मन पर्याप्ति है।

एकेंद्रिय अवस्थाके जीवोंमें शरीरकी ऐसी रचना है कि वहां भाषा तथा मन होते ही नहीं हैं। इसलिये उनके भीतर पहिली चार ही पर्याप्ति प्रगट होती हैं। भाषा पर्याप्ति पांचवीं है। वह द्वींद्रियसे लेकर जीवोंमें प्रगट होती है। इसलिये द्वींद्रियादि जीवोंमें पांच पर्याप्ति मानी हैं। समनस्क जो पचेंद्रिय जीव होते हैं उनमें छट्ठी मन पर्याप्ति भी होती है। इस प्रकार एकेंद्रियकें पहिली चार पर्याप्ति मानी गई हैं। द्वींद्रियादि अमनस्क पर्यन्तोंमें भाषासहित पाच पर्याप्ति होती हैं। समनस्क पंचेंद्रियोंमें छहो पर्याप्ति होना बताया है। अर्थात् जिस जीवकें जितनी पर्याप्ति होना संभव है वह जीव उतनी ही पर्याप्तियोंके कारण पर्याप्त कहाता है। इन सब योनियोंमें बहुतसे जीव ऐसे होते हैं कि वे शरीर पूर्ण होनेसे प्रथम ही मर जाने चाहिये। उनमें शक्तिकी इतनी कमी है कि वे शरीरको पूरा कर ही नहीं सकते। उन जीवोंको अपर्याप्त कहते है। जो शरीरको पूरा करनेकी शक्ति रखते है वे फिर चाहें तब मर जाय, परंतु शरीर पूर्ण हुए तक वज्राघातसे भी वे नहीं मर सकते। उन जीवोंको पर्याप्त कहते हैं। पर्याप्त और अपर्याप्त होनेके कारणभूत कर्म भी नामकर्मोंके भेदोंमें दो गिनाये हैं, एक पर्याप्तिनाम कर्म

॥४५॥

दूसरा अपर्याप्ति नाम कर्म । पर्याप्ति नाम कर्म जिन जीवोंके समयानुसार उदयमें आता है वे जीव पर्याप्तियोंको पूरी करते हैं और वे ही पर्याप्त कहाते हैं । और जिनके अपर्याप्ति नामका उदय है वे अपर्याप्त कहाते हैं । अपर्याप्त जीव शरीर पूर्ण होनेसे पहिले मर ही जाते हैं । उन्हे ऐसा ही योग मिलता है । यही अपर्याप्ति नाम कर्मका कार्य है ।

वास्तवमें अपर्याप्त उन्हीका नाम है जो पर्याप्तियोंको पूरी न कर सकें । और इसी प्रकार जिनकें पर्याप्ति कर्मका उदय हुआ है वे तब भी इस कर्मोदयकी अपेक्षासे पर्याप्त ही हैं जबतक कि शरीरादि पूर्ण न हुए हों, क्योंकि सुरू होकर शरीरकी पूर्णता होनेमें घडीभर देरी लगती है और जबतक शरीरादिक पूर्ण नहीं हुए तबतक व्यवहारमें वे भी अपूर्ण ही कहावेंगे, परन्तु घडीभर बाद वे अवश्य पूर्ण होनेवाले हैं इसलिए उन जीवोंकी सुमार पर्याप्तकोंमें ही होती है । जहांपर पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे दो ही भेद हैं वहांका विभाग यह ऊपर कहा हुआ समझना । किंतु पर्याप्ति पूर्ण न हों तबतककी अवस्थाको अपर्याप्त मानें तो अपर्याप्तोंके दो भेद हो जाते हैं—एक ऐसे अपर्याप्त कि जो घडीभर बाद जरूर पर्याप्त होनेवाले हैं और दूसरे वे अपर्याप्त कि जो पूर्ण होंगे ही नहीं—पूर्ण होनेसे प्रथम ही मरण कर जानेवाले हैं । जो घडीभर बाद पूर्ण होंगे उन्हें निर्वृत्त्यपर्याप्त कहते हैं । और जो पूर्ण होनेसे प्रथम ही मरेंगे उन्हें लब्ध्यपर्याप्त कहते हैं । दोनों शब्दोंके अर्थ इस प्रकार हैं— लब्धि अर्थात् लाभ जिनके अपर्याप्ति कर्मका लाभ हुआ है वे लब्ध्यपर्याप्त । वास्तवमें उदय तो पर्याप्ति कर्मका है परन्तु निर्वृत्ति अर्थात् रचनाकी अपेक्षासे जो अभी पूर्ण नहीं हुए वे निर्वृत्त्यपर्याप्त कहाते हैं ।

गोमटसारमें एक विशेष बात बताई है । वह यह है कि जितनी पर्याप्ति जिस योनिमें संभव हैं उतनी सभी पर्याप्ति सुरू एक साथ होती हैं किंतु पूर्ण उस क्रमसे होती हैं जिस क्रमसे उनके नाम गिनाये हैं । इसका तात्पर्य यह है कि शरीरकी रचना आहार ग्रहण करनेके समयमें ही सुरू हो जाती है । शरीरमें जो अंगोपांग हैं तथा विशेषताएं हैं उन सबका प्रारंभ आगे पीछे होता हुआ माना जाय तो शरीरके भीतर उन सबकी यथास्थित रचना नहीं हो सकेगी तथा उन सबका शरीरके साथ पूरा एकावगाहीपना भी नहीं बन सकेगा । इसलिये प्रारंभ तो सर्वांशोंका एक साथ ही मानना ठीक है । और पूर्ण

आहाराङ्गहृषीकानभाषामानसलक्षणाः । पर्याप्तय षडङ्गादिशक्तिनिष्पत्तिहेतवः ॥ १२८ ॥
अन्तर्मुहूर्त्तवर्तिन्यश्चतस्रः पच षण्मताः । ता यथाक्रममेकाक्षविकलेन्द्रियसंज्ञिनाम् ॥ १२९ ॥
आयुःपर्याप्तिनिष्पन्नाः सर्वकालोपलब्धितः । प्राणिना शक्तय प्राणाः शस्वज्जीवनहेतव ॥ १३० ॥

होना आगे पीछे भी हो सकता है। आहार पर्याप्ति प्रथम है। उसकी समाप्ति भी प्रथम ही होजाती हैं किंतु शरीरकी पूर्णता पीछे-तक होती रहती है। एव शरीरका कार्य जो इतर की अपेक्षाविना आत्माका धारण करलेना-वह कार्य होजानेपर भी इद्रियोंमें जो विषय ग्रहण करनेकी शक्ति आना है वह पीछेसे भी हो सकता है। इस प्रकार उत्तरोत्तरकी पूर्णता क्रमवार होना भी सयुक्तिक ही ठहरता है।

आहार शरीर इंद्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा और मन ये छह पर्याप्ति मानी गई हैं। शरीरादि पर्याय उत्पन्न होनेके ये कारण हैं। १२८।

ये सभी पर्याप्ति अंतर्मुहूर्त पर्यंत में पूर्ण हो जाती हैं। इनमेंसे पहिली चार पर्याप्ति एकेंद्रिय जीवमें होती हैं। और द्वींद्रियसे असज्ञी पंचेंद्रिय पर्यन्तके जीवोंमें भाषा सहित पाच पर्याप्ति होती हैं। मन सहित सज्ञी जीवमें छहो पर्याप्ति होती है। १२९।

आयु पर्याप्तिके द्वारा ऊपर बताये हुए दश प्राण प्राप्त होते हैं। ये प्राण जीवनपर्यंत सदा ही रहते हैं। और सारे जीवनके ये ही हेतु या आधार हैं। ये प्राण भी प्राणियोंकी शक्ति ही हैं। भावार्थ, जो इस प्रकरणमें पर्याप्ति बताई हैं वे शरीर धारणके आरंभ कालमें उत्पन्न होकर अंतर्मुहूर्त पर्यंत ही रहती हैं किंतु प्राण फिर जीवनपर्यंत सदा ही रहते हैं। पूर्व अवस्थामें पर्याप्ति होती है और प्राण उसके बाद होते हैं। प्राण कार्य हैं, पर्याप्ति कारण हैं। १३०।

इति पर्याप्ति स्वरूप.

यकाभिर्यासु वा जीवा मार्ग्यन्तेऽनेकधास्थिता । मार्गणा मार्गणादक्षैस्ताश्चतुर्दश भाषिता ॥ १३१ ॥
गतय. करणं कायो योगो वेद कुधादय । वेदन सयमो दृष्टिर्लेश्या भव्य सुदर्शनम् ॥ १३२ ॥
संज्ञी चाहारकः प्रोक्तास्ताश्चतुर्दश मार्गणाः । मिथ्यादृशादयो जीवा मार्ग्या यासु सदादिभिः ॥ १३३ ॥
४–५–६–१५–३–४–८–७–४–६–२–६–२–२ ।
नरो गत्यामपर्याप्तः संयमे सूक्ष्मसयमः । साहारकद्वयो योगे मिश्रवैक्रियिकः परः ॥ १३४ ॥
सम्यक्त्वे शामिको मिश्रः सम्यग्दर्शनविच्युत । सान्तरा मार्गणाश्चाष्टौ पराः सन्ति निरन्तराः । १३५ ।
गतौ १ । सयमे १ । योगे ३ । सम्यक्त्वे ३ । मीलिताः ८ ।

मार्गणाओं द्वारा जीवका वर्णन.

प्रवचनमें बताये गये अनेक प्रकारसे स्थित जीवोंका जिन भावोंके द्वारा अथवा जिन पर्यायोंमें विचार किया जाय उन्हीको, सूक्ष्म स्वरूप व परोक्ष स्वरूप देखनेमें चतुर आचार्योंने, मार्गणा कहा है । मार्गणा सर्व चौदह बताई है ॥ १३१ ॥

मार्गणाओंके नाम—गति इंद्रिय काय योग वेद कषाय ज्ञान सयम दर्शन लेश्या भव्य-त्व सम्यक्त्व संज्ञित्व आहारक ये चौदह है । मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानवर्ती जीव इन्ही चौदह मार्गणाओंमें सत् संख्यादि अनुयोगोंद्वारा देखे जाते है । इन मार्गणाओंके उत्तर भेद क्रमसे ४–५–६–१५–३–४–८–७–४–६–२–६–२–२ हैं । १३२–१३३ ।

आगे मार्गणाओंके शिवाय आठ अन्तर मार्गणाओंको बताते हैं —(१) गतियोंमें पर्याप्तक अवस्थाका मनुष्य, (२) संयमोंमें सूक्ष्म सांपराय सयम, योगोंमें (३) आहारक योग, (४) आहारक मिश्रयोग तथा (५) वैक्रियिक मिश्र योग, सम्यक्त्वोंमें (६) उपशम सम्यक्त्व, (७) सासादन सम्यक्त्व तथा (८) मिश्र सम्यक्त्व, ये आठ सान्तर मार्गणा कहाती हैं । अन्तर सहित मार्गणाओंको सान्तर मार्गणा कहा है और ऊपर जो चौदह मार्गणाएं बताई हैं वे निरंतर हैं । १३४–१३५ ।

॥४८॥

यया गच्छन्ति ससारं या कृता गतिकर्मणा । श्वभ्रगत्यादिभेदेन गति सास्ति चतुर्विधा ॥ १३६ ॥
न रमन्ते महादुःखा ये द्रव्यादिचतुष्टये । ये परस्परतो दीना नारकास्ते निरूपिताः ॥ १३७ ॥
कुटिला ये तिरोऽञ्चन्ति विवेकविकलाशया । मायाकर्मबलोत्पन्नास्ते तिर्यंच प्रकीर्तिता ॥ १३८ ॥

इनका अतर कितना है वह ऊपरसे बताते हैं—इसमें जघन्य व उत्कृष्ट ऐसे अंतरके दो दो भेद हैं। १ अपर्याप्तक मनुष्यका उत्कृष्ट अंतर पल्यका असख्यातवां भाग है। २ सूक्ष्म सांपरायका छह महीना है। ३ आहारक योगका पृथक्त्व वर्ष प्रमाण है। ४ आहरक मिश्र योगका पृथक्त्व वर्ष प्रमाण है। ५ वैक्रियिक मिश्रका बारह मुहूर्त है। ६ उपशम सम्यक्त्वका सात दिन है। ७ मिश्रसम्यक्त्वका पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है। और ८ सासादनका भी उत्कृष्ट अंतरकाल पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है। जघन्य अतर इन आठो ही का एक एक समय है।

उत्कृष्टसे लेकर एक समयके पहिले तक मध्यम अंतर समझना चाहिये। अर्थात् इन ऊपरकी आठ बातोंमें जघन्य मध्यम या उत्कृष्टमेंसे कोई न कोई अतर अवश्य पडता है। इसी लिये इन आठ विषयोंको सांतर अर्थात् अतर सहित बताया है। और जो ऊपर चौदह मार्गणा गिनाई हैं वे निरतर हैं—उनमें अतर नहीं पडता है। जैसे गति मार्गणा है, सो कोई न कोई गति सदा ही प्रत्येक जीवकी रहती है। यही सातर तथा निरंतरका मतलब है। अतरका अर्थ विरहकाल है ॥ १३५ ॥

अब मार्गणाओंका विशेष वर्णन करते हैं। सबसे प्रथम गति मार्गणाको बताते हैं। जिसके द्वारा ससारमें फिरे या जो अवस्था गति नाम कर्मके द्वारा प्राप्त होती है उसे गति कहते हैं। उस गतिके नरक तिर्यंच मनुष्य देव गति ऐसे चार भेद हैं। १३६।

जो महादुःखी हैं, दीन हैं, परस्परमें प्रेम नहीं रखते और अपने क्षेत्र कालादिकमें भी रमते नहीं हैं अर्थात् जिनके क्षेत्र कालादि भी अरुचिको उत्पन्न करनेवाले हैं वे नरक गतिके जीव नारकी कहे जाते हैं। १३७।

जो कुटिल हैं, अतएव जिनका रहना तिरछा या वक्र है, जिनका विवेक मद है या नहीं ही है और जिनकी उत्पत्ति माया कर्म के उदयवश होती है वे तिर्यंच बताये हैं। १३८।

नारका मानवा देवास्तिर्यंचश्च चतुर्विधाः । सामान्येन विशेषेण पचाक्षा बहुधा स्थिताः ॥ १५० ॥
इन्द्रियार्थसुखातीता लोकालोकविलोकिनः । क्षायिकातीन्द्रियज्ञाना जीवाः सन्ति निरिन्द्रियाः ॥ १५१ ॥
कर्मभार वहत्यङ्गी कायमादाय सर्वदा । सुदुर्वह महाभार कावटीमिव कर्मठः ॥ १५२ ॥
पिण्डः पौद्गलिकः कायो जीवव्यापारसचितः । भेदाः षडस्य भूम्यम्भोवन्हिवायुतरुत्रसाः ॥ १५३ ॥
समानास्ते मसूराम्भोविन्दु शूचीव्रजध्वजैः । धराम्भोऽग्निमरुत्कायाः क्रमाच्चित्रास्तरुत्रसाः ॥ १५४ ॥

सर्व नारकी, सर्व मनुष्य, सर्व देव तथा तिर्यंच (चतुरिंद्रिय पर्यंतको छोडकर) पचेंद्रिय हैं। इनके उत्तर भेद बहुत हैं परतु ये सभी पचेंद्रिय होते हैं । १५० ।

इंद्रिय विषयके सुखसे परें, लोकालोकके ज्ञाता, अतींद्रिय क्षायिक ज्ञानके धारी अर्थात् सिद्ध जीव इंद्रियरहित माने गये हैं । १५१ ।

बोझा ढोनेवाला बेंगीवाला जैसे बेंगीको कधेपर रखकर बोझा ढोता है उसी प्रकार बेंगीके समान शरीरको धारण कर संसारी जीव दुर्वह कर्मभारको सदा ढोता है । १५२ ।

पुद्गलमय शरीर पिंडको काय कहते हैं । जीवकी रागद्वेषयुत प्रवृत्तिसे इस कायका सचय होता है । इस कायके छह भेद हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस । इन्हीको षट्कायके जीव कहते हैं । इन षट्कायोंके भीतर सभी शरीर-धारियोंका अतर्भाव होजाता है । १५३ ।

भूमि अथवा पृथिवीकायके जीवोंका काय अर्थात् शरीर मसूरके समान होता है । यद्यपि एक एक पृथ्विकायिक जीवका विस्तार अत्यंत सूक्ष्म अर्थात् घनागुलके असख्यातवें भाग प्रमाण है, परंतु आकारकी सदृशता उसकी मसूरके समान है । जल-बिंदुके समान जलकायिक जीवका शरीर होता है । अग्निकायिक जीवका शरीर सुइयोंके पिंडके समान होता है । अर्थात् नीचेसे ऊपरकी तरफ लंबा नुकीला और पतला ऐसा उसका आकार होता है । वायुकायिक जीवोंका काय ध्वजके आकारका होता है । इन

शर्करा सिकता पृथ्वी रत्नोपलशिलादयः । षट्त्रिंशद्धरणीभेदा दर्शिता जिनपुंगवैः ॥ १५५ ॥
करका महिकाविन्दुहिमावश्यायसीकराः । शुद्धं घनोदकं तोयं तोयकायास्तनूभृतः ॥ १५६ ॥
अगारो मुर्मुरो ज्वाला स्फुलिंगशुद्धपावकाः । अर्चिरग्न्यादयो ज्ञेया बहुधा वन्हिकायिकाः ॥ १५७ ॥
घनो महांस्तनुर्वात्या गुंजा मण्डलिरुत्कलि' । प्रभंजनादयः प्रोक्ता विचित्रा वातकायिका ॥ १५८ ॥
मूलाग्रविष्टपस्कन्धग्रन्थिवीजादिरोहिणः । सम्मूर्छिनो मताश्चित्रा वनस्पतिशरीरिण ॥ १५९ ॥

सबोंके भी शरीर अत्यत सूक्ष्म अर्थात् घनागुलके असख्यातवें भाग मात्र होते हैं । परन्तु आकारकी सदृशता मात्र ऊपर कही हुई समझनी चाहिये । वनस्पति तथा त्रसोंके आकार अनेकानेक हैं । १५४ ।

बालू, बारीक ककरेली रेती, पृथिवि अर्थात् कठिन जमी हुई भूमि, रत्न, पाषाण, शिला इत्यादिक छत्तीस प्रकारकी पृथ्वी बताया है । इन सबोंमें पृथ्वीकायिक जीव रहते हैं ऐसा जिनेंद्रका उपदेश है । १५५ ।

करका अर्थात् ओला, महिका अर्थात् बरफ, बूंद, हिम, ओस, तुषार, शुद्ध पानीका समूह अथवा मेघोंका समूह और पानी ये सर्व जलकायके जीव हैं । अर्थात् जलके अनेक मूल प्रकार हैं वे सर्व जलशरीरयुक्त जीव होते हैं । १५६ ।

अगार, मुर्मुर, ज्वाला, स्फुलिंग, अर्चि, शुद्ध पावक, अग्नि इत्यादि अनेक प्रकारके अग्निकायिक जीव होते हैं ।१५७।

घनवात, महावात, तनुवात, गुंजावात, मण्डलिवात, उत्कलिवात, प्रभंजनवात–इत्यादि वायुकायिक अनेक प्रकारके जीव होते है ॥ १५८ ॥

मूलरोहि, अग्ररोहि, विष्टपरोहि, स्कंधरोहि, ग्रथिरोहि, बीजरोही तथा समूर्छन वनस्पति–इत्यादि वनस्पतिकायोंके अनेक प्रकार है । मूल अर्थात् जड । जडके बोनेपर जो ऊग आते हैं वे मूलरोहि समझने । कुछ भी न बोनेपर पैदा होनेवाले समूर्छन कहाते हैं । समूर्छन जिनका जन्म हो वे संमूर्छि हैं । १५९ ।

त्रसा द्वित्रिचतुःपचहृषीका भवभागिन । विकलासंज्ञिसंज्ञ्याख्यास्त्रसप्रकृतियंत्रिता ॥ १६० ॥
त्रसनाड्या वहि सन्ति नाङ्गिनस्त्रसकायिकाः । उपपादं गतांस्त्यक्त्वा देहिनो मारणान्तिकान् ॥ १६१ ॥

दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इद्रिय, पाच इंद्रिय जीव नथा पचेंद्रियके संज्ञी असंज्ञी भेद–ये सर्व त्रस कहाते हैं। द्वींद्रियसे चतुरिंद्रिय तकके जीव विकलेंद्रिय अथवा अपूर्णेद्रिय कहात हैं। और पचेंद्रियके असज्ञी संज्ञी ऐसे दो उत्तर भेद है। ये सर्व जीव त्रस इसलिये माने जाते है कि त्रस नाम कर्मके उदयसे इनका जन्म होता है। त्रस शव्दका अर्थ उद्वेग है। उद्वेग अर्थात् हलन चलन जिनमे हो उन्हें त्रस कहना चाहिये। परंतु अड या मूर्छित सरीखी अवस्थाओंमें हलन चलन नहीं भी दीख पडता है तो भी उनकी जाति त्रस मानी गई है। एव, वायु अथवा जल चलते हैं परतु वे त्रस नहीं है किंतु स्थावर है। १६०।

उपपाद अर्थात् आगामी जन्मकेलिये पहुचने वाले विग्रहगतिप्राप्त त्रस जीव, तथा मारणातिक समुद्‌घातको करनेवाले त्रसजीव त्रसनालीके बाहिर भी मिल सकते हैं। परंतु इन दो अवस्थाओंको छोडकर बाकी कोई भी त्रस पर्याय वाले जीव त्रसनालीके बाहिर नहीं रहते हैं। नीचेसे ऊपर तक पूरी चौदह राजू ऊची तथा एक राजू चौडी मोटी, लोकके मध्यवर्तिनी नालीको त्रसनाली इसी लिये कहते हैं कि उसीके भीतर त्रस जीव सदा रहते हे। चौडाईसे जिसकी लंबाई अधिक हो तथा भीतर पोली हो उसको नाली अथवा नली कहते हैं। नलीके समान होनेसे इसको भी नाली कहा हे। कहीं कहीं नाडी भी इसको कहा है।

उपपादगत त्रस तथा मारणातिक त्रसोंका इस नालीके बाहिर कैसे रहना सभव है वह बताते हैं --उपपादका अर्थ यहा-पर विग्रह गति है। विग्रह गति पर्यंत जीवका पूर्व नाम कायम रहता है। एक जीव मरकर दूसरी गतिकेलिये रवाना हुआ। वह जबतक दूसरे पर्यायको न पालेगा तब तक उसका नाम पूर्वका ही कायम रहेगा। वह त्रस से स्थावर होनेवाला है तो भी विग्रह गति पर्यंत त्रस ही कहावेगा। स्थावरसे त्रस होनेवाला है वह विग्रह गति पर्यंत स्थावर कहावेगा। इसका कारण ऐसा है कि नवीन शरीरको जिस समयमें जीव धारण करता है उस समयमें नवीन उन उन कर्मोंका उदय होना सुरू होता है। और विग्रह गति

पर्यंत बहुतसे पूर्वके कर्म ही उदयमें बने रहते हैं। त्रस स्थावर कर्म भी जो विग्रहगतिपर्यंत उदयमें रहते हैं वे पूर्वके रहते हैं। इस प्रकार त्रस जीव शरीर को धारण कर मरे पर्यंत त्रसनालीके भीतरसे बाहिर नहीं जा सकता। परन्तु वह यदि स्थावर होनेवाला हो और उत्पत्ति त्रसनालीके बाहिर होनेवाली हो तो वह विग्रह गतिमें कहावेगा तो त्रस ही, परंतु वह रहेगा त्रसनाली के बाहिर भी।

अब समुद्घातका स्वरूप बताते हैं। समुद्घातका अर्थ है—मूल शरीरको न छोडते हुए आत्माके कुछ प्रदेश शरीरके बाहिर हो जाना। ऐसा समुद्घात सात प्रकारका हो सकता है, १ वेदना समुद्घात, २ कषाय समुद्घात, ३ वैक्रियिक समुद्घात, ४ मारणांतिक समुद्घात, ५ तैजस समुद्घात, ६ आहारक समुद्घात और ७ वा केवलि समुद्घात। प्रत्येक समुद्घात अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं ठहरता है। वेदना अतितीव्र होनेसे यदि सही न जाती हो तो कदाचित् कुछ आत्मप्रदेश शरीरके बाहिर निकल पडते हैं। वे वहांतक पसरते हैं जहांपर कि कोई औषधि उस वेदनाका शमन करने वाली हो। उस औषधिका स्पर्श होते ही वे प्रदेश संकुचित होकर अपने मूल शरीरके भीतर आजाते हैं। इस प्रसरण संकोचन क्रियाको वेदना समुद्घात कहते हैं। २ तीव्र कषायके निमित्तसे आत्मप्रदेश बाहिर निकल कर कषायके निमित्तका स्पर्श कर सकोच पाते हैं, इसको कषाय समुद्घात कहते हैं। ३ वैक्रियिक शरीरवाले अपनेसे बाहिर विक्रिया करते हैं वह वैक्रियिक समुद्घात है। ४ मरणके अंत्य समयमें किसी किसी जीवके प्रदेश बाहिर निकलकर अपने आगे उत्पन्न होनेवाले जन्मके स्थानका स्पर्श कर हाल ही लौट आते हैं इसे मारणांतिक समुद्घात कहते हैं। ५ तैजस शरीरका जो अपने शरीरसे बाहिर निकलना वह तैजस समुद्घात है। यह भी अंतर्मुहूर्तके भीतर ही संकुचित होकर पूर्वशरीरप्रमाण रचना हो जाती है। ६ आहारक शरीर सहित आत्मप्रदेशोंका बाहिर निकलना आहारक समुद्घात है। ७ तेरहवें गुणस्थानवर्ती कोई कोई केवली समुद्घात करते हैं वह केवलि समुद्घात है। इस प्रकार मारणांतिक समुद्घात वालेके प्रदेश त्रसनालीके बाहिर जासकते हैं। वह यदि त्रस है तो उस अवस्थामें उस त्रसका त्रस नालीके बाहिर रहना संभव है। इसीलिये उपपाद तथा मारणांतिक त्रस जीवोंका त्रसनालीके बाहिर रहना संभव बताया है। १६१।

प्रत्येककायिका देवा श्वाभ्रा केवलिनोर्द्वयम् । आहारकधरातोयपावकानिलकायिकाः ॥ १६२ ॥
निगोतैर्बादरै सूक्ष्मैरेते सन्त्यप्रतिष्ठिता । पञ्चाक्षा विकला वृक्षा जीवाः शेषाः प्रतिष्ठिता ॥ १६३ ॥ युग्मम्
ध्यानेन नाशितो येषां कायबन्धः कृशानुना । हेमाश्मनामिवाशेषो मलस्ते सन्त्यकायिकाः ॥ १६४ ॥
आत्मनो वीर्यविघ्नस्य क्षयोपशमने सति । यः प्रदेशपरिस्पद स योगो गदितस्त्रिधा ॥ १६५ ॥
प्रत्येक वाङ्मनोयोगौ सत्यासत्यद्वयाद्वयैः । चतुर्धा कथितः प्राज्ञैः काययोगस्तु सप्तधा ॥ १६६ ॥

देव नारकी केवली (दोनो) आहारक शरीरधारी तथा पृथिवी जल अग्नि वायु इन आठ शरीरोंमें दूसरे जीव नहीं रहते इसलिये ये आठो प्रत्येक शरीर कहे गये हैं। इन जीवोंके शरीरोंमें बादर तथा सूक्ष्म दूसरे कोई भी निगोद जीव नहीं रहते । किंतु बाकी बचे जीव सर्व पचेंद्रिय तथा सर्व विकल त्रय और वृक्ष अर्थात् वनस्पति ये सर्व, इतर निगोद जीवोंके आश्रय होनेसे. सप्रतिष्ठ अथवा प्रतिष्ठित कहाते हैं। १६२—१६३।

इस प्रकार सर्व काय छह हैं। इस काय बन्धन को ध्यान द्वारा जिन्होंनें नष्ट कर दिया है ऐसे सिद्ध परमेष्ठी अकाय अर्थात् कायरहित हैं। जिस प्रकार सुवर्ण पाषाणको अग्निमें तपानेसे उसका सारा मल जल जाकर सुवर्ण मलरहित हो जाता है। १६४।

आत्माके साथ लगे हुए आठ कर्मोंमेंसे एक अंतराय कर्म है। उसको विघ्न भी कहते हैं। यह कर्म आत्माके वीर्यमें अथवा शक्तिगुणमें विघ्न डालता है। इस कर्मका थोडा बहुत क्षयोपशम होनेपर वीर्य प्रगट होता है तभी आत्मा अपना प्रदेश परिस्पद कर सकता है। इस प्रदेशपरिस्पदको योग कहते हैं। इस योगकी प्रवृत्ति होनेमें मन शरीर अथवा वचन ये निमित्त लगते हैं। उस निमित्तभेदके कारण योगको तीन प्रकारका माना गया है—१ मनोयोग, २ वचनयोग व ३ काययोग । १६५ ।

वचनयोगके सत्य असत्य उभय अनुभय ऐसे चार भेद हैं। मनोयोगके भी ये ही चार भेद है। सत्यमनोयोग, असत्य-मनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग ये चारोंके नाम हैं। काययोगके सात प्रकार हैं व आगे बताये गये हैं। १६६ ।

सत्यं मनो यथावस्तु प्रवृत्त परथा मृषा । द्वये सत्यमृषा ज्ञेयमस्त्यसत्यमृषाऽद्वये ॥ १६७ ॥
यथेति मनसो योगश्चतुर्धा प्रतिपादितः । वाचिकोऽपि तथा ज्ञेयो योगनिग्रहणोद्यतैः ॥ १६८ ॥
जनान्त-सम्मति-न्यास-नाम-रूप-प्रतीतिषु । सत्यं संभावने भावे व्यवहारोपमानयोः ॥ १६९ ॥
इत्थं सत्यवचोयोगो दशधातोऽन्यथा मृषा। द्वाभ्यां सत्यमृषा ताभ्यां युक्तोऽसत्यमृषान्यथा ॥ १७० ॥
वागसत्यमृषा ज्ञेया विकलाक्षशरीरिणाम्। योगिनां संज्ञिता चैषा याचनामत्रणादिका ॥ १७१ ॥

वस्तु जैसी है वैसा मनोयोग हो तो वह सत्य मनोयोग है। नहीं तो, वस्तु जैसी है उससे उलटी मन प्रवृत्ति हो तो वह असत्य मनोयोग है। जिस मनःप्रवृत्तिमें विषयभूत वस्तु सत्यासत्य हो वह उभय अथवा सत्यासत्य मनोयोग है। जिस प्रवृत्तिके विषयको सत्य भी न कहा जासके, असत्य भी न कहा जासके वह अनुभय मनोयोग है ॥ १६७ ॥

जैसा मनोयोगका चार प्रकार वर्णन किया है वैसा ही, योग निग्रह करने वालोंने, वचन योगको भी चार प्रकारही बताया है ॥ १६८ ॥

सत्यके दश भेद दिखाते हैं—१ जनपद सत्य, २ समति सत्य, ३ न्यास अथवा स्थापना सत्य, ४ नामसत्य ५ रूप सत्य ६ प्रतीत्य सत्य, ७ व्यवहार सत्य ८ समावना सत्य, ९ भाव सत्य, १० उपमा सत्य ये दश उस सत्यके नाम हैं। १६९।

इस प्रकार सत्य वचन योग दश प्रकारका होता है। इससे उलटा असत्य वचन होता है। यदि सत्यासत्य दोनो ही वचनके विषय हों तो वह वचन उभय वचन कहाता है। जिसमें सत्यता भी न ठहरती हो और असत्यता भी न सिद्ध होती हो वह अनुभय वचन है। १७०।

विकलेंद्रिय जीवोंकी भाषाको असत्यमृषा अथवा अनुभय भाषा कहते हैं। योगी अर्थात केवलीकी भाषा भी अनुभय भाषा है। और संज्ञी जीवोंकी आमत्रणी आदि भाषा हो तो वह भी अनुभय भाषा कहाती है। आमंत्रणीका अर्थ है आमत्रण देनेकी भाषा। याचना करने आदि शब्दसे पृच्छना आदिकी जो भाषाएं हैं वे भी सर्व अनुभय कहाती हैं। ऐसी भाषाओंके नौ भेद किये हैं। वे गोमटसार द्वारा आगे बताते हैं। प्रथम दश प्रकारके सत्यके उदाहरण देते हैं—। १७१।

भत्त देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदि जिणदत्तो । सेदो दिग्घो रज्झदि कूरोत्ति य जं हवे वयणं ॥२२२॥ गो०
सक्को जंबूदीवं पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च । पल्लोवमं च कमसो जणपदसच्चादिदिट्ठंता ॥ २२३ ॥ गोम०

भक्तं देवी चन्द्रप्रभप्रतिमा तथा च भवति जिनदत्त । श्वेतो दीर्घो रध्यते क्रूरमिति च यद्भवेद्वचनम् ॥ २२२ ॥ गो०
शक्रो जम्बूद्वीपं परिवर्तयति पापवर्जवचनं च । पल्योपमं च क्रमशः जनपदसत्यादिदृष्टान्ता ॥ २२३ ॥ गो०

अर्थ—उक्त दश प्रकारके सत्य वचनके ये दश दृष्टान्त हैं। भावार्थ—तत्तद्देशवासी मनुष्योंके व्यवहारमें जो शब्द रूढ होरहा है उसको जनपद सत्य कहते हैं। जैसे भक्त-भात-कुछ । बहुत मनुष्योंकी सम्मतिसे जो साधारणमें रूढ हो उसको सम्मतिसत्य या संवृतिसत्य कहते हैं। जैसे पट्टराणीके सिवाय किसी साधारण स्त्रीको भी देवी कहना। भिन्न वस्तुमें भिन्न वस्तुके समारोप करनेवाले वचनको स्थापनासत्य कहते हैं। जैसे प्रतिमाको चन्द्रप्रभ कहना। दूसरी कोई अपेक्षा न रखकर केवल व्यवहारके लिये जो किसीका संज्ञाकर्म करना इसको नामसत्य कहते हैं। जैसे जिनदत्त। यद्यपि उसको जिनेन्द्रने दिया नहीं है तथापि व्यवहारकेलिये उसको जिनदत्त कहते हैं। पुद्गलके रूपादिक अनेक गुणोंमेंसे रूपकी प्रधानतामे जो वचन कहा जाय उसको रूपसत्य कहते हैं। जैसे किसी मनुष्यके केशोंको काला कहना, अथवा उसके शरीरमें रक्तादिकके रहनेपर भी उसको श्वेत कहना। किसी विवक्षित पदार्थकी अपेक्षा दूसरे पदार्थके स्वरूपका कथन करना इसको प्रतीत्यसत्य अथवा आपेक्षिक सत्य कहते हैं। जैसे किसीको बडा, लम्बा या स्थूल कहना। नैगमादि नयोंकी प्रधानतासे जो वचन बोला जाय उसको व्यवहारसत्य कहते हैं। जैसे नैगम नयकी प्रधानतासे 'भात पकाता हूं' संग्रहनयकी अपेक्षा 'सम्पूर्ण सत् हैं' अथवा सम्पूर्ण असत् हैं' आदि। असंभवताका परिहार करते हुए वस्तुके किसी धर्मको निरूपण करनेमें प्रवृत्त वचनको सभावनासत्य कहते हैं। जैसे इन्द्र जम्बूद्वीपको लौटादे अथवा लौटा सकता है ऐसा वचन। आगमोक्त विधिनिषेधके अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थोंमें सकल्पित परिणामोंको भाव कहते हैं, उसके आश्रित जो वचन हो उसको भावसत्य कहते हैं। जैसे शुष्क पक्व तप्त, और निमक मिर्च खटाई आदिसे अच्छी तरह मिलाये हुए द्रव्यको प्राशुक कहना। यहांपर यद्यपि सूक्ष्म जीवोंको इन्द्रियोंसे देख नहीं सकते तथापि आगमप्रामाण्यसे उसकी

॥५८।

प्रासुकताका वर्णन किया जाता है। इसलिए इसही तरहके पापवर्ज वचनको भावसत्य कहते हैं। दूसरे प्रसिद्ध सदृश पदार्थको उपमा कहते हैं। इसके आश्रयसे जो वचन बोला जाय उसको उपमासत्य कहते हैं। जैसे पल्य। यहांपर रोमखण्डोंका आधारभूत गड्ढा, पल्य अर्थात् खासके सदृश होता है इसलिए उसको पल्य कहते हैं। इस प्रमाणको उपमासत्य कहते हैं। इस प्रकार ये दश प्रकारके सत्यके दृष्टान्त हैं। और भी इस ही तरह जानना।

अब दो गाथाओंमें अनुभय वचनके नौ भेदोंको गिनाते हैं।

आमंतणि आणवणी याचणिया पुच्छणी य पण्णवणी। पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य॥ २२४॥
णवमी अणक्खरगदा असच्चमोसा हवंति भासाओ। सोदाराणं जम्हा वत्तावत्तंससंजणया॥ २२५॥

आमन्त्रणी आज्ञापनी याचनी आपृच्छनी च प्रज्ञापनी। प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोम्नी च॥ २२४॥
नवमी अनक्षरगता असत्यमृषा भवन्ति भाषा। श्रोतॄणां यस्मात् व्यक्ताव्यक्तांशसंज्ञापिका॥ २२५॥

अर्थः— आमन्त्रणी, आज्ञापनी, याचनी, आपृच्छनी, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, संशयवचनी, इच्छानुलोम्नी, अनक्षरगता ये नव प्रकारी अनुभयात्मक भाषा है। क्योंकि इनके सुननेवालेको व्यक्त और अव्यक्त दोनोंही अंशोंका ज्ञान होता है। **भावार्थ**—हे देवदत्त! यहां आओ, इस तरहके बुलानेवाले वचनोंको आमत्रणी भाषा कहते हैं। यह काम करो, इस तरहके आज्ञावचनोंको आज्ञापनी भाषा कहते हैं। यह मुझको दो, इस तरहके प्रार्थनावचनोंको याचनी भाषा कहते हैं। यह क्या है? इस तरहके प्रश्नवचनोंको आपृच्छनी भाषा कहते हैं। मैं क्या करूं, इस तरहके सूचनावाक्योंको प्रज्ञापनी भाषा कहते हैं। इसको छोडता हूं, इस तरहके छोडनेवाले वाक्योंको प्रत्याख्यानी भाषा कहते हैं। यह बलाका है अथवा पताका, ऐसे संदिग्ध वचनोंको सशयवचनी भाषा कहते हैं। मुझको भी ऐसा ही होना चाहिये, ऐसे इच्छा प्रकट करनेवाले वचनोंको इच्छानुलोम्नी भाषा कहते हैं। द्वीन्द्रियादिक असज्ञि पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंकी भाषा अनक्षरात्मक होती है। ये सब ही भाषाएं अनुभय वचनरूप हैं क्योंकि इनके सुननेसे व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही अंशोंका बोध होता है। इसलिये सामान्य अशके व्यक्त होनेसे असत्य भी नहीं कह सकते, और विशेष अंशके व्यक्त न होनेसे सत्य भी नहीं कह सकते।

उदरे यो भवः स्थूले यस्योदारं प्रयोजनं। औदारिकोऽस्त्यसौ कायो मिश्रोपर्याप्त इष्यते ॥ १७२ ॥

काययोगके सात भेद हैं उनका स्पष्टीकरण —

औदारिक काययोग, २ औदारिक मिश्र काययोग, ३ वैक्रियिक काययोग, ४ वैक्रियिकमिश्र काययोग, ५ आहारक काययोग, ६ आहारकमिश्र काययोग और ७ वा कार्मण काययोग ये उन सात योगोंके नाम हैं।

औदारिक शब्दका अर्थ कई प्रकारसे किया है। उदरसे जो शरीर हो वह औदारिक है। अथवा उदार अर्थात् स्थूल रचना जिसकी हो—जिसे सब कोई चर्मचक्षुसे देख सके वह औदारिक है। अथवा उदार अर्थात् बडे बडे महत्वके कार्य तपश्चरण सरीखे जिसके प्रयोजन हों वह औदारिक है। उदरसे हो ऐसा अर्थ करके औदारिक शब्द बनाना हो तो वह निपातित शब्द कहना होगा। सामान्य अर्थमें 'उदरे भव औदरिक' ऐसा बनता है।

इस औदारिक शरीरके आश्रयमे जो योग अर्थात् आत्मप्रदेशपरिस्पंद होता है वह औदारिक काययोग है। दूसरा औदारिकमिश्र काययोग है। यह दूसरा योग अपर्याप्त अवस्थामें होता है। और पहिला औदारिक काययोग पर्याप्त अवस्थामें होता है। जब शरीर पर्याप्त होजाता है तब अर्थ ग्रहणादि कार्य करनेमें वह पूरा समर्थ होता है इसलिये दूसरे किसीकी अपेक्षा नहीं करता है। उस अवस्थामें जीवके प्रदेशोंमें जो चंचलतारूप योगप्रवृत्ति होती है वह केवल औदारिक शरीरके द्वारा होती है। इसलिये पर्याप्तक दशामें औदारिक शरीरवालेके शुद्ध औदारिक काययोग माना जाता है।

परंतु जबतक औदारिक शरीर पूर्ण नहीं होता ऐसी आरंभकी घडीभरकी अपर्याप्त दशामें जीवके प्रदेशपरिस्पंदको वह अकेला अपूर्ण औदारिक शरीर सहायता करनेमें असमर्थ होता है इसलिये उस समयके कार्य को कार्माण कायके सहारेसे करना पडता है। इसलिये उस समयका योग औदारिकमिश्र काययोग कहाता है। औदारिकने कार्मणकी सहायता ली यही मिश्रण है। यह सहायताकी अपेक्षा, असमर्थ अपूर्ण अवस्थामें ही होना संभव है। और जब शरीर पूर्ण हो चुकता है तब स्वयं समर्थ होजानेसे औदारिक, कार्मणकी सहायता की अपेक्षा नहीं करता इसलिये पर्याप्तक दशामें मिश्र योग न रहकर शुद्ध औदारिक काययोग हो जाता है ॥ १७२ ॥

॥६०॥

विक्रियायां भव कायो विक्रिया वा प्रयोजनं । यस्य वैक्रियिको ज्ञेयो मिश्रोऽपूर्णः स कथ्यते ॥ १७३ ॥
एकानेकलघुस्थूलशरीरविविधक्रिया । विक्रिया कथिता प्राज्ञैः सुरश्वाभ्रादिगोचरा ॥ १७४ ॥
अर्थानाहरते सूक्ष्मान् गत्वा केवलिनोऽन्तिकम् । संशये सति लब्धर्द्धेरसंयमजिहासया ॥ १७५ ॥
य प्रमत्तस्य मूर्धोत्थो धवलो धातुवर्जित । अन्तर्मुहूर्तस्थितिकः सर्वव्याघातविच्युतः ॥ १७६ ॥

तीसरा योग वैक्रियिक काय योग है । चौथा वैक्रियिक मिश्र काय योग है । विक्रियामें जो हो अथवा विक्रिया करना प्रयोजन जिसका है वह वैक्रियिक कहाता है । यहांपर भी पूर्ण (पर्याप्त) अवस्थामें शुद्ध वैक्रियिक काययोग माना गया है । और अपर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिक मिश्र काययोग होता है । यहांपर भी औदारिक व औदारिक मिश्रकायकी भांत पूर्ण अपूर्ण अवस्थाका संबंध समझना ॥ १७३ ॥

एक शरीर बना लेना, अनेक शरीर कर लेना, शरीरको छोटा बना लेना, बडा बना लेना इत्यादि विविध रूप धारण करनेको विक्रिया कहते हैं । यह विक्रिया देवोंमें हो सकती है और नारकियोंमें हो सकती है । देव तथा नारकी जीवोंमें यह विक्रिया शक्ति सभीमें पायी जाती है । तपश्चरणके विशेष सामर्थ्यसे किसी किसी महायोगीको भी यह आत्मशक्तिकी ऋद्धि प्राप्त हो जाती है । किसी किसी तिर्यचमें भी अपृथक् विक्रियाका होना बताया है । उदाहरणार्थ, सर्पोमें विक्रिया कहीं कहीं बताई है । वह विक्रिया क्या चीज है? हम समझते हैं कि सर्पका फणा जो संकोच विकाशको प्राप्त हो सकता है यह सर्पकी अपृथक् विक्रिया है । और सर्पका विष चढनेपर कोई कोई आदमी सर्प के साथका पूर्वसंबंध कहते हैं ऐसा सुना है वह उस सर्पकी ही विक्रिया हो सकती है । १७४ ।

अब आहारक काययोगका और आहारक मिश्र काययोगका खुलासा करते हैं —

आहारक शरीरवाला जीव सूक्ष्म तत्वोंमें संशय उत्पन्न होनेपर केवलीके निकट पहुंचकर श्रुतज्ञानके सूक्ष्म अर्थोंको ग्रहण करता है, अथवा संयम मलिन होनेके कारणोंको दूर करनेके लिये और अकृत्रिम चैत्यों तथा चैत्यालयोंकी वंदना करनेकी

पवित्रोत्तमसंस्थानो हस्तमात्रोऽनघद्युतिः । आहारक स बोद्धव्यो मिश्रोऽपर्याप्त उच्यते ॥ १७७ ॥
कर्मैव कार्मणः कायः कर्मणां वा कदम्बकं । एकद्वित्रिक्षणानेष विग्रहतौ प्रवर्तते ॥ १७८ ॥

इच्छासे, आहारक शरीर छट्ठे गुणस्थानवर्ती योगीके मस्तकमेंसे प्रगट होता है । परन्तु वह सभी योगियोंके नहीं होता किंतु जिसको वह ऋद्धि प्राप्त होजाती है वही योगी आहारक शरीरको प्रगट कर सकता है ।

उस शरीरका विशेष वर्णन करते हैं–वह धवल वर्णका होता है । रस रुधिरादि धातु उसमें नहीं होते । उसको कोई रोक नहीं सकता और उससे कोई रुकता भी नहीं है । पवित्र होता है और उसकी आकृति उत्तम होती है । उसकी कांति मनोहर होती है । वह एक हस्तप्रमाण ऊंचा होता है । अंतर्मुहूर्तकी स्थिति प्रमाण वह टिकता है । यह आहारक शरीरका स्वरूप है । इसके संबंधसे जो आत्मप्रदेश परिस्पंद होता है वह पांचवा आहारक काययोग कहाता है । और इस आहारककी अपर्याप्त अवस्थामें जो योग होता है वह छट्ठा आहारकमिश्र काय योग है । १७५–१७७ ।

सातवां काययोग कार्मण है । कर्मको ही कार्मण कहते हैं । अथवा कर्मोंके सर्व समूहको कार्मण कहना चाहिये । यह योग विग्रहगति मात्रमें होता है । एक, दो, तीन समय पर्यंत विग्रहगति के समय हैं । इस प्रकार सात काय योग हैं ।

गोमटसारमें ' जोगोवि एक्कसमये एक्केव होदि णियमेण ' ऐसा वचन है । इसका अर्थ है कि एक समयमें योग एक ही होता है । इस वचनके अनुसार पंद्रह योगोंमेंसे एक समयमें एक ही कोई योग हो सकता है । मनोयोगके समय वचन योग तथा काययोग नहीं होता । वचनयोगके समय मनोयोग तथा काययोग नहीं होता । एवं काययोगके समय मनोयोग तथा वचनयोग नहीं होता । इसी प्रकार उत्तर भेदोंमें भी यही नियम है। आहारक योगके समय औदारिक काययोग नहीं होता और औदारिकके समय आहारक काययोग नहीं होता । भावार्थ, आहारकके समय औदारिकका हलन चलन बंद पड जाता है । ऐसा ही सर्वत्र समझना । १७८ ।

तैजस शरीरके द्वारा न तो कुछ बंध होता है और न निर्जरा ही होती है, और किसी प्रकारका उपभोग भी नहीं

तैजसेन शरीरेण बध्यते न न जीर्यते । न चोपभुज्यते किंचिद्यतो योगोऽस्य नास्त्यतः ॥ १७९ ॥
अकाया सन्ति निर्मुक्ताः शुभाशुभप्रवर्तिना । सप्तधा काययोगेन भवातीता निरास्रवा ॥ १८० ॥
स्थूला विकुर्वते पूर्णास्तेज पवनकायिका । पंचाक्षाश्च तनूभाजां परेषां नास्ति विक्रिया ॥ १८१ ॥
विग्रहतौ समस्तानां कायौ तैजसकार्मणौ । युक्तौ वैक्रियिकेनमौ स्वर्गश्वभ्रनिवासिषु ॥ १८२ ॥
औदारिकेण तिर्यक्षु नृणामाहारकेण च । सहाहारकयोगेन जातु वैक्रियिकोऽस्ति नो १८३ ॥

होता इसलिये इसके द्वारा योग भी होना नहीं माना गया है। इद्रियों द्वारा किसी रूप रसादि विषयको ग्रहण करना उपभोग कहाता है। कर्मोका बंध, कर्मोकी निर्जरा तथा इंद्रियविषयोंका ग्रहण–इन तीन ही कार्योंके होनेमें योगकी आवश्यकता होती है। अर्थात् इन कार्योंको न तो अकेला शरीर कर सकता है और न अकेला आत्मा ही कर सकता है। और बधन तो हो ही रहा है तथा होता भी है। इसलिये शरीर तथा आत्माका योग भी अनादिकालसे मानना पड़ता है। और योग ही बंधका कारण है। तैजस शरीर इस योगमें निरुपयोगी है। इसलिये तैजस नामका योग नहीं माना गया है। १७९।

शुभाशुभ कर्मोंके कारणभूत सप्त ही काययोगोंसे मुक्त जीव रहित होते हैं। इसलिये वे अकाय अर्थात् कायरहित है। मुक्त जीव अत एव संसारसे रहित हैं और सर्व कर्मोंके आस्रवसे रहित हैं। जब काय ही उनके नहीं है तो मन तथा वचन जो कि कायके विना नहीं होते वे भी नहीं हैं ऐसा सिद्ध होता है। इस प्रकार सिद्ध परमात्मा सर्व योगोंसे रहित हैं ॥ १८० ॥

स्थूल पर्याप्तक ऐसे अग्निकायिक जीव तथा वायुकायिक जीव विक्रियाको करते हैं और पचेंद्रिय तिर्यंच विक्रियाको करसकते हैं। बाकी तिर्यचोंमें विक्रिया होना संभव नहीं है। वैक्रियिक योगके वर्णनमें पूर्व, देव नारकोंमें सभीकें वैक्रियिक बताया है और आदिशब्द जोडकर मनुष्य तिर्यचोंको भी इसका संभव दिखाया था। उस परसे यह निश्चय नहीं होता था कि किन तिर्यचोंमें वैक्रियिक योग होसकता है। उसका खुलासा इस श्लोकमें बताया है ॥ १८१ ॥

विग्रहगतिमें जीवमात्रके तैजस तथा कार्मण ये दो शरीर ही होते हैं। देव तथा नारकोंके वैक्रियिक शरीर अधिक होता है ॥ तिर्यचोंमें औदारिक अधिक होता है इसलिये तैजस कार्मण औदारिक ये तीन शरीर तिर्यचोंमें समझना। मनुष्योंमें

वक्रतौ सकला व्यङ्गा देवश्चाश्चित्रिविग्रहा । त्रिकाया मर्त्यतिर्यंचश्चतुःकायाश्च केचन ॥ १८४ ॥
द्वयोस्त्रयोदशैकत्र दशान्यत्र त्रयोदश । नवैकादश ते षट्सु नवातः सप्त योगिनि ॥ १८५ ॥
१३ । १३ । १० । १३ । ९ । ११ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ७ । ० ।

औदारिक तो होता ही है किंतु आहारक भी मनुष्योंमें ही हो सकता है । इसलिये मनुष्योंमें चार शरीरतक होते हैं । आहारक
के साथ वैक्रियिक नहीं होता । १८२-१८३ ।

वक्रगतिसे विग्रहगतिमें चलनेवालोंके तैजस कार्मण ये दो शरीर रहते हैं । देव तथा नारकी तीन शरीरवाले होते है ।
मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें भी तीन शरीर ही होते है । परन्तु कदाचित् कोई मनुष्य चार शरीरको भी धारण करते हैं ॥ १८४ ॥

चार मनोयोग, चार वचनयोग तथा सात काययोग इस प्रकार सर्व पद्रह योग हुए । इनमेंसे प्रथम दो गुणस्थानोंमें
तेरह तेरह योग होना सभव है । तीसरेमें दश योग सभव है । चौथेमें तेरह, पांचवेंमें नौ योग और छट्ठे गुणस्थानमें ग्यारह योग
हो सकत है । सातवेंसे बारहवें गुणस्थान पर्यंत प्रत्येक गुणस्थानमें नौ नौ योग होना संभव है । तेरहवें सयोग गुणस्थानमें सात
योग होते हैं । चौदहवा गुणस्थान योगरहित है ॥ १८५ ॥

शुद्ध आहारक और मिश्र आहारक ये दो योग पांचवें गुणस्थान तक नहीं होते । क्योंकि आहारक शरीर छट्ठे
गुणस्थानमें ही हो सकता है । इस प्रकार पहिले दूसरे. गुणस्थानोंमें पद्रह योगोंमेंसे तेरह योग होना संभव है । तीसरे गुणस्थान
में मरण नहीं होता इसलिये कार्मण योग संभव नहीं है और अपर्याप्तक दशा न हो सकनेके कारण औदारिक मिश्र तथा
वैक्रियिक मिश्र भी संभव नहीं हैं । तेरहमें ये तीन कम हो जानेसे बाकी दश योग तीसरे मिश्र गुणस्थानमें होते हैं । चौथेमें
पहिलेकी भात तेरह समझना । पाचवें गुणस्थानमें वैक्रियिक, आहारक, कार्मण, और तीनो मिश्र नहीं होते इसलिए नौ योग
होते हैं । छट्ठे गुणस्थानमें आहारक तथा आहारक मिश्र हो सकते हैं इसलिए पंद्रहमेंसे केवल चार योगोंको कम किया तो ग्यारह
योग रह जाते हैं । सातवेंसे बारहवें गुणस्थान पर्यंत पांचवें गुणस्थानकी भांत नौ नौ योग समझना । तेरहवें गुणस्थानमें दो वचन-
योग, तीन काययोग तथा दो मनोयोग ऐसें सात योग होते हैं । १३।१३।१०।१३।९।११।९।९।९।९।९।९।७।० ।

नोकषायविशेषाणामुदये त्रिविधोऽङ्गिनाम् । स्त्रीपुंनपुंसकाभिख्यो वेदो मूढत्वकारक. ॥ १८६ ॥
वेदोदीरणया जीव सुषुप्तमनुजोपम । कृत्याकृत्यविचाराणां जायते करणाक्षम ॥ १८७ ॥
वेदकर्मोदयोत्पन्नो भाववेदस्त्रिधा स्मृत । नामकर्मोदयोत्पन्नो द्रव्यवेदोऽपि च त्रिधा ॥ १८८ ॥
जीवस्वभावसंमोहो भाववेदोऽभिधीयते । योनिलिंगादिको दक्षैर्द्रव्यवेदः शरीरिणाम् ॥ १८९ ॥

वेदमार्गणा.

अब वेदमार्गणाके अनुसार जीवका स्वरूप बताते हैं—नोकषाय मोह कर्मके नौ भेद हैं। इन्हींमेंसे स्त्रीलिंग पुल्लिंग नपुंसक लिंग ऐसे तीन वेदकर्म हैं। इनमें से स्त्री वेद का जिस जीवके उदय होता है वह स्त्रीके भावको धारण करता है। इसीका नाम स्त्री वेद है। जिसके पुरुषवेदका उदय होता हैं वह पुरुषके भावको धारण करता है। इसको पुरुषवेद कहते हैं। जिसके नपुंसक वेद कर्मका उदय होता है वह नपुंसकके भावको धारण करता है। इसका नाम नपुंसक वेद है। इन तीनो ही वेदोंके उदयसे जीवमें एक मूढता उत्पन्न होती है उसीको वेद कहते हैं॥ १८६ ॥

वेदकर्मोंकी उदीरणा होनेपर जीव, जैसे सोते समय मनुष्य विवेकशून्य होजाता है वैसे ही, कृत्य अकृत्यके विचारको करनेमें असमर्थ हो जाता है। १८७।

वेदकर्म मोहनीय कर्मका भेद है। मोहनीय कर्म घाती कर्म है। घाती कर्म जीवके गुणोंको सीधे घातते हैं। तदनुसार मोहकर्म भी जीवके परिणामोंमें विकार उत्पन्न करता है इसलिये वेदकर्मके विकारको भाववेद बताया है। इस भाववेदके तीन प्रकार हैं। १८८।

जीवका जो ऊपर बताया गया भिन्न भिन्न विकृत स्वभाव है वह भाव वेद है। अथवा जीवके निर्मल स्वभावमें जो समोह अर्थात् मूढता अथवा अविवेक—उन्माद दीख पडता है वह भाव वेद है। और योनि स्तन, दाढी लिंग आदि शरीरके चिन्ह हैं यह द्रव्य वेद है। सर्व ही चैतन्य भाव परिवर्तनशील होते हैं। तदनुसार भाव वेद भी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थायी है।

योऽभिलाषः स्त्रियाः पुंसि पुरुषस्य च यः स्त्रियाम् । स्त्रीपुंसयोश्च संढस्य भाववेदोऽस्ति स त्रिधा ॥ १९० ॥
नान्तर्मौहूर्तिका वेदास्ततः सन्ति कषायवत् । आजन्ममृत्युतस्तेषामुदयो दृश्यते यतः ॥ १९१ ॥
स्त्रीपुंनपुंसका जीवाः सदृशा द्रव्यभावत. । जायन्ते विसदृक्षाश्च कर्मपाकनियन्त्रिता. ॥ १९२ ॥
या स्त्री द्रव्येण, भावेन साऽस्ति स्त्री ना नपुंसकः । पुमान्न द्रव्येण, भावेन पुमान्नारी नपुंसकः ॥ १९३ ॥

यह प्रतिदिन अनेक वार बदल कर नवीन नवीन विजातीय अथवा सजातीयरूप उत्पन्न होता रहता है। द्रव्यवेद मात्र शरीरके साथ अविनाभावी है ॥ १८९ ॥

स्त्रीको भोगनेकी इच्छा तथा स्त्रीके भोगनेमें प्रवृत्त करना, दूसरा पुरुषके साथ भोगनेकी इच्छा तथा पुरुषसे सम्बन्ध करनेमें प्रवृत्त करना, और तीसरा ऐसा भाव कि संभोगकी इच्छा होना परन्तु उस इच्छामें विभाग न हो सकना । स्त्रीसे भोगनेकी इच्छाको पुरुष वेद कहते हैं। पुरुषके साथ भोगनेकी इच्छाको स्त्री कहते हैं। ये दोनो इच्छाएं विभागको लिए हुए हैं। परन्तु जिस इच्छामें न पुरुषकी ही विशिष्ट इच्छा हो और न स्त्रीकी ही, उस वेदको नपुसक कहते हैं। ये तीनो भावरूप वेदके स्वरूप हैं। और नामकर्मके उदयसे हुई शरीररचनाको द्रव्यवेद कहते हैं । द्रव्यवेदके भी भाववेदकी भांत तीन भेद हैं, स्त्री पुरुष नपुंसक ॥ १९० ॥

अथवा ये वेद अंतर्मुहूर्तवर्ती नहीं मानने चाहिये, क्योंकि, जन्मसे मरेपर्यंत ये दिखाई देते हैं। जैसे कि कषाय सदा दिखाई देते हैं इसलिये वे शाश्वतिक माने जाते हैं ॥ १९१ ॥

स्त्री पुरुष तथा नपुंसक जीव, द्रव्य व भावसे परस्पर सदृश ही होते हैं। और कर्मका तीव्र उदय अथवा उदीरणा होने लगे तो उसके वश होकर स्वभावमें भेद भी उत्पन्न हो जाया करता है ॥ १९२ ॥

ऊपरके कथनका आगे खुलासा करते हैं:—जो द्रव्यसे स्त्री है वह भावसे भी स्त्री स्वभावको ही धारण करती है । यह द्रव्य तथा भावकी समानता हुई। अर्थात् नामकर्मके उदयने स्त्री बनाया और नोकषायका उदय भी स्त्री वेदका रहनेसे

पंढो द्रव्येण, भावेन षढो नारी नरो मतः । इत्येवं नवधा वेदो द्रव्यमात्रविभेदतः ॥ १९४ ॥
स्तनयोनिमती नारी पुमान् सश्मश्रुमेहनः । न स्त्री न पुरुषः पापो द्वयरूपो नपुंसकः ॥ १९५ ॥
श्रोणिमार्दवस्रस्तत्व–मुग्धत्वक्लीबतास्तनाः । पुंस्कामेन समं सप्त लिंगानि स्त्रैणसूचने ॥ १९६ ॥

उसके भाव भी स्त्रीवेदरूप ही रहते हैं। किंतु कभी किसी स्त्रीके भाव पुरुषरूप अथवा नपुंसक रूप भी हो जाया करते हैं। उस समय द्रव्यसे भाव विषमरूप हुआ कहना चाहिये। इसी प्रकार द्रव्यसे पुरुष है वह भावसे भी पुरुष ही रहता है। परंतु क्वचित् कदाचित् वह स्त्री अथवा नपुसकके भी भावोंको धारण करता है ॥ १९३ ॥

द्रव्यसे एक नपुंसक है, वह भावसे नपुसक भी रह सकता है और भाव पुरुष अथवा स्त्रीकासा भी हो सकता है। भावार्थ, एक स्त्रीके परिणाम स्त्रीरूप भी रहते हैं और स्त्री भोगनेरूप पुरुषभाव भी हो सकते हैं तथा भावत नपुंसकपना भी आ सकता है। पुरुषके द्वारा भोगमें प्रवृत्त होना–यह स्त्रीस्वभाव है। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य लिंग वालेके भाव तीन प्रकारके परिवर्तन को कर सकते हैं। इसलिये तीनों वेदोंके नौ भेद हो जाते हैं। १९४।

द्रव्यत अर्थात् शरीररचनासे तीनो लिंगोंके लक्षण बताते हैं। स्तन योनि ये लक्षण स्त्रीके हैं। लिंग तथा दाढी मूछ ये लक्षण पुरुषके हैं। और वास्तवमें न तो जहा पूरा लक्षण स्त्रीका ही हो और न पुरुषका ही हो किंतु अपूरे लक्षण दोनोंमेंसे किसी एकके हों वह पापबहुल नपुसक पर्याय है। इंद्रियसुखोंको भोगना, भोग सकना पुण्यवान्को होता है। नपुंसकके उस साधनका अभाव है। इसलिये उसके पापका प्रचुर उदय समझा जाता है। और दूसरी बात यह है कि साधन न होनेसे नपुंसकके वार वार भोगोंकी इच्छा प्रदीप्त होती है। किंतु संतोष नहीं होता। यह भी पापका ही फल है। १९५।

स्त्रीके स्वभावोंका वर्णनः–योनि, मृदुता, स्रस्तता, मुग्धता, क्लीवता, स्तन और पुरुषके साथ रमनेकी इच्छा–ये सात लक्षण स्त्रीस्वभावके सूचक हैं। स्त्रीका शरीर–अवयव मृदु होता है। उसमें पसरनेका धर्म होता है। कामवासनामें स्त्री मुग्ध हो जाती है। अर्थात् कामके वेगका असर होनेपर उसका शून्यसा विवेकरहित हाल हो जाता है। उस अवस्थामें वह पुरुषार्थहीन बन जाती है। और पुरुषके साथ रमण करनेकी इच्छा उसे होती है। १९६।

खरत्वमेहनस्ताब्ध्यशौंडीर्यश्मश्रुधृष्टताः । स्त्रीकामेन समं सप्त लिंगानि पौंस्नवेदने ॥ १९७ ॥
यानि स्त्रीपुंसलिंगानि पूर्वाणीति चतुर्दश । सर्वाणि तानि मिश्राणि पढभावनिवेदने ॥ १९८ ॥
गर्भः स्त्यायति यस्यां या दोषैश्छादयति स्वयं । नराभिलापिणी नित्यं या सेह स्त्री निरुच्यते ॥ १९९ ॥
कुरुते पुरुकर्माणि गर्भ रोपयते स्त्रियां । यतो भजति राभस्यं ज्ञेयः सद्भिस्ततः पुमान् ॥ २०० ॥
सुष्ठु क्लिष्टमनोवृत्तिर्द्वयाकांक्षी नपुसक । नरप्रजावतीरूपो दु.सहाधिकवेदन ॥ २०१ ॥

कठोरता, लिंग, स्तब्धता, सौंडीर्य, श्मश्रु, धृष्टता, और स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा—ये सात लक्षण पुरुष वेदके हैं। पुरुषके शरीर–अवयव कठोर होते हैं। मेहन अर्थात् लिंग इंद्रिय होता है । पसरनेके धर्मसे उलटा स्तब्धता अर्थात् स्थिर रहनेका स्वभाव होता है। मुग्धताके बदले चतुरता अथवा सावधानी रहती है। श्मश्रु अर्थात् दाढी मूछ होती हैं । धृष्टता अर्थात् साहस भी रहता है। और स्त्रीको भोगनेकी इच्छा होती है॥ द्रव्यवेदके अविनाभावी ये सात सात स्वभाव स्त्री पुरुषोंमें साहजिक रहते हैं। और कुसंस्कार सुसंस्कारोंके निमित्तसे कुछ स्वभाव बदलते भी देखे जाते हैं । स्त्रीमें पुरुषकेसे साहसादि लक्षण प्रगट हों यह सुसंस्कारका फल है। पुरुषमें स्त्रीकेसे स्वभाव हों यह कुसंस्कारका फल है। १९७।

स्त्री पुरुषके मिलाकर ये चौदह लक्षण हैं। इनमेंके अपूरे मिश्रित लक्षण नपुसकमें होते हैं । १९८ ।

जिसमें गर्भधारण हो, जो अपनेको दोषोंसे आच्छादित करे, सदा पुरुषकी अभिलाषिणी रहे वह इस वेद प्रकरणमें स्त्री समझनी चाहिये॥ १९९ ॥

जो बडे महत्त्वके कार्मोको करे, स्त्रीमें गर्भका रोपण करे और जो शीघ्रता रक्खे उसे विद्वानों ने पुरुष कहा है॥ २०० ॥

जिसकी मनोवृति अत्यंत क्लेशयुक्त रहे, जो स्त्री पुरुष इन दोनोंकीसी आकांक्षाए रक्खे और जिसका स्वरूप स्त्रीकासा भी हो और पुरुषकासा भी हो, दु सह अधिक वेदना को भोगता हो वह नपुंसक है॥ २०१ ॥

करीषजेन तार्णेन पावकेनेष्टकेन च । समतो वेदतोऽपेताः सन्त्यवेदा गतव्यथा ॥ २०२ ॥

ये चारित्रपरीणाम कषन्ति शिवकारणं । क्रुन्मानवंचनालोभास्ते कषायाश्चतुर्विधा ॥ २०३ ॥

सन्त्यनन्तानुबन्ध्याख्याः अप्रत्याख्याननामकाः । ते प्रत्याख्यानसंज्ञाकाः क्रमात्सञ्ज्वलनाभिधा. ॥ २०४ ॥

तैराद्यैर्दृष्टिचारित्रे द्वितीयैर्देशसंयमः । तृतीयैः संयमस्तुर्यैर्यथाख्यातश्च हन्यते ॥ २०५ ॥

करीषज—भूसामें लगी हुई अग्निके समान, तृणमें लगी हुई अग्निके समान और ईंटोंके भट्टामें लगी हुई अग्निके समान
स्त्री पुरुष नपुंसकके भोग परिणाम प्रज्वलित रहते हैं । इन तीनो ही वेदोंसे रहित सिद्ध परमात्मा, उक्त सर्व प्रकारकी वेदनासे
रहित होते हैं । स्त्रीके भोग परिणाम कारीष अग्निके समान होते हैं । पुरुषके भोगपरिणाम तृणाग्निके समान होते हैं । और
नपुंसकके भोगपरिणाम ईंटोंके भट्टेकी अग्निके समान होते हैं । करीषाग्नि कुछ अधिक समय पर्यंत टिकती है । तृणाग्नि भडककर
जल्दी बुझ जाती है । और भट्टेकी अग्नि महिनों तक धदकती रहती है । करीषका अर्थ तुष है ॥ २०२ ॥

कषाय मार्गणाद्वारा जीवका वर्णन

मोक्षके कारणीभूत चारित्रपरिणामों को नष्ट करें वे कषाय कहाते हैं । वे चार हैं, क्रोध मान माया लोभ । २०३ ।

इन कषायोंकी तरतम हीनाधिक स्वभावके कारण चार जातियां हैं, (१) अनन्तानुबंधी, (२) अप्रत्याख्यानावरण,
(३) प्रत्याख्यानावरण, (४) संज्वलन ये उनके नाम हैं । क्रोधमें भी ये चारो जातिया हैं, और मान माया लोभमें भी ये
चार चार जातियां हैं । इसलिये क्रोधादि चार कषायके सोलह भेद हो जाते हैं । २०४ ॥

आदिके अनतानुबन्धी कषायोंसे सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरण नामका चारित्र घाता जाता है । दूसरे अप्रत्याख्यानावरण
कषायोंसे देशसयम पचम गुणस्थानका श्रावकचारित्र घाता जाता है । तीसरे प्रत्याख्यान कषायोंसे संयम अर्थात् छठे गुणस्थानका
मुनिचारित्र घाता जाता है । चौथे संज्वलन कषायोंसे यथाख्यात चारित्रका घात होता है । २०५ ।

॥६९॥

कोपतः समतो ग्रावाभूरेणूदकराजिभिः । गतिं चतुर्विधां याति श्वभ्रतिर्यग्नृनाकिनाम् ॥ २०६ ॥
अश्मस्तंभास्थिदार्वार्द्रवल्लरीसमतो गतिं । मानतो गच्छति श्वभ्रतिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ॥ २०७ ॥

अनंतानुबंधी क्रोधादिके उदाहरण और फल बताते हैं ।—पाषाणके ऊपर की हुई रेखाके समान क्रोध, भूमिके ऊपर की
हुई रेखाके समान क्रोध, धूलिमें काढी हुई रेखाके समान क्रोध, और पानीपरकी रेखाके समान क्रोध हो तो उसका फल क्रमसे
यह है कि नरक, तिर्यच, मनुष्य तथा देवोंकी जो ये चार गति हैं उन को जीव प्राप्त हो ।

भावार्थ, पाषाणपर रेखा हो जाय तो वह बहुत ही दीर्घकाल पर्यंत टिकती है । अनंतानुबंधी क्रोध भी इसी प्रकार
दीर्घकाल पर्यंत टिकनेवाला मजबूत समझना चाहिये । और उसका फल नरकगति प्राप्त होना है ।

भूमिपर की हुई रेखा पाषाणरेखासे कम टिकाऊ होती है । वैसे ही दूसरे वर्गका (अप्रत्याख्यानावरण) क्रोध अनंता-
नुबंधीसे कम टिकाऊ होता है । उसका फल तिर्यच गतिको प्राप्त होना है । धूलिपर खेंची हुई रेखा भूमिरेखा से भी कम
टिकाऊ होती है । वैसे ही तीसरे वर्गका (प्रत्याख्यानावरण) क्रोध अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे कम टिकाऊ होता है । उसका
फल मनुष्य गति प्राप्त होना है । चौथा भेद संज्वलन कषायका है । इसका दृष्टांत जलरेखा है । जलपर खेंची हुई रेखा बहुत ही
कम टिकती है । वैसे ही संज्वलन क्रोध बहुत कम टिकता है और अपने अस्तित्व समयमें परिणामोंको मलिन भी अप्रत्याख्या-
नादि क्रोधकी अपेक्षा कम करता है । इसलिये उसका फल देवगति प्राप्त होना है । २०६ ।

क्रोधकी चारो जातियोंका दृष्टांत तथा फल बताकर अब चारो मान कषायोंका क्रमसे दृष्टांत तथा फल बताते हैं ।

पाषाणके स्तंभ समान अर्थात् जो कभी न नवे ऐसा अनतानुबंधी मान होता है । उसके फलस्वरूप जीवको नरक-
गति प्राप्त होती है । अस्थि नाम हड्डी । उसके समान अप्रत्याख्यानावरण मान होता है । उससे जीवको तिर्यच गति प्राप्त होती
है । तीसरा प्रत्याख्यानावरण मान लकडी के समान अस्थिसे कुछ अधिक नरम होता है । उससे जीवको मनुष्यगति प्राप्त होती
है । चौथा संज्वलन मान वेतकी वेलिके समान जल्दी नव जानेवाला है । उससे जीव देवगतिको पाता है । २०७ ।

तुल्यया वंशमूलाविशृङ्गगोमूत्रचामरैः । मायया नारकस्तिर्यङ् जायते मानवोऽमरः २०८ ॥
क्रमिनीलीहरिद्राङ्गमलरागसमानतः । लोभतो जायते श्वाभ्रस्तैरश्चो मानुषः सुर ॥ २०९ ॥

वशमूलके तुल्य माया कषाय अनंतानुबंधी होता है। मेडके सींगके समान कुटिल माया कषाय अप्रत्याख्यानावरण होता है। तीसरा प्रत्याख्यानावरण माया कषाय गोमूत्रके समान कुटिल होता है। चौथा संज्वलन माया कषाय चामरके समान थोडा कुटिल होता है। ये उत्तरोत्तर कमती कमती कुटिलताको धारण करनेवाले हैं। पहिले माया कषायसे नरक गतिको जीव प्राप्त होता है। दुसरेसे तिर्यंच गतिका, तीसरे माया कषायसे मनुष्यगतिका और चौथे संज्वलन माया कषायसे देवगतिका बंध जीवको होता है। २०८।

लोभ कषायके जो अनंतानुबंधी आदि चार भेद होते हैं उनके क्रमसे दृष्टांत कृमिरंग, नीलरंग, हल्दीरंग, शरीरमल हैं। कृमिरंग अर्थात् किरमिजी रंग बहुत ही दृढ होता है। इसके उदयसे जीव नरकगतिमें जाता है। नीलका रग थोडा कम दृढ होता है। इसके समान अप्रत्याख्यानावरण लोभ है। इस लोभके उदयवश जो जीवके परिणाम मलिन होते हैं उससे जीव तिर्यंच बनता है। तीसरा लोभ हल्दीके समान कम दृढ होता है। इससे जीव मनुष्य बनता है। चौथा लोभ कषाय शरीरके मल समान जल्दी छूट जानेवाला होता है। इसके फलसे देव गति प्राप्त होती है। २०९।

किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दराएण सरिसओ लोहो। णारयतिरिक्खमाणुसदेवेसुप्पायओ कमसो॥

यह गोमटसारकी २८६ वी गाथा है। इसमें अनंतानुबंधी लोभको कृमिरंगके समान ही बताया है। अप्रत्याख्यान लोभ कषायको चक्रराग (ओंगन) के समान बताया है। और तीसरेको शरीरमलके समान, तथा चौथे संज्वलन लोभको हल्दीके समान बताया है। इस प्रकार दृष्टांतोंमें थोडासा फेरफार है॥ मायाके दृष्टांतोंमें भी चौथा दृष्टांत 'क्षुरप्र' अर्थात् खुरपा बताया है जिससे घास काटी जाती है। उसमें मोडा होता है परंतु अधिक नहीं होता।

क्रुद्ध श्वभ्रेषु तिर्यक्षु मायायाः प्रथमोदयः । जातस्य नृषु मानस्य लोभस्य स्वर्गवासिषु ॥ २१० ॥
आचार्या निगदन्त्यन्ये कोपादिप्रथमोदये । भ्रमतां भवकान्तारे नियमो नास्ति जन्मिनाम् ॥ २११ ॥
स्वान्यपीडाकरा निन्द्या बन्धासंयमहेतवः । कषायाः सन्ति नो येषां तेऽकषाया जिनोत्तमाः ॥ २१२ ॥

नरकगतिमें मुख्य क्रोध रहता है और जब नरकमें जीव पहुंचता है तो प्रथम उस जीवके क्रोध ही जाज्वल्यमान रहता है । तिर्यच गतिमें सबसे प्रथम माया कषायका उदय होता है । मनुष्य गतिमें उत्पन्न होनेवालेके प्रथम मान कषायका उदय होता है । स्वर्गमें पहुचने वालोंके प्रथम लोभका उदय आता है ॥ २१० ॥

कुछ आचार्योंका कहना है कि ससार-वनमें फिरनेवाले जीवोंके गतियोंके अनुसार जैसा प्रथम क्रोधादिकका उदय होना ऊपर बताया है वह नियम नहीं मानना चाहिये ॥ २११ ॥

भावार्थ, चाहे जिस कषायका चाहे जब उदय हो सकता है । और सभी संसारी जीव चारो कषायोंसे भरे हुए हैं । इसलिये संसारमें परिभ्रमण करते हुए किसी कषायका कहींपर प्रतिबंध हुआ मानना ठीक नहीं है । किसी भी कषायका अभाव होगा तो गुणस्थानोंके चढनेपर होगा । परन्तु मार्गणाओंमें कहींपर भी किसी भी विशिष्ट कषायका उदयाभाव नहीं सिद्ध होता है । परन्तु ये दोनो ही मत गोमटसारमें भी बताये गये हैं । यथा,

णारयतिरिक्खणरसुर-गईसु उप्पण्णपढमकालह्मि ।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥ गाथा-२८७ ॥

कषाय अपनेको तथा दूसरेको पीडा करनेवाले हैं, निंद्य हैं, बंधके कारण हैं और संयमका नाश करते हैं । जिनेंद्र-भगवानने इन कषायोंका नाश कर दिया है इसलिये वे अकषाय अथवा कषाय रहित माने गये हैं । भावार्थ, ससारी सभी जीवोंमें कम अधिक कषाय रहते हैं । और जिनके कषाय नष्ट होगये हैं वे संसारातीत माने जाते हैं ॥ २१२ ॥

गुणपर्ययवद् द्रव्य ध्रौव्योत्पादव्ययात्मकम् । तत्त्वतो ज्ञायते येन तज्ज्ञानं कथ्यते जिनैः ॥ २१३ ॥
इन्द्रियानिन्द्रियैरर्थ—ग्रहण मननं मतिः । विकल्पा विविधास्तस्याः क्षयोपशमसंभवाः ॥ २१४ ॥
क्षिपेद्गुत्वेन्द्रियैः षड्भिश्चतुरोवग्रहादिकान् । व्यञ्जनावग्रह तत्र मूलभङ्गं चतुर्विधम् ॥ २१५ ॥ २४।२८।३२ ।

अथ ज्ञानमार्गणाके द्वारा जीवका वर्णन करते हैं।

जो द्रव्यके स्वरूपको गुणपर्याययुक्त अथवा ध्रौव्य उत्पाद व्यय—इन तीन धर्मोंसे युक्त, यथार्थरूपसे जानता है उसे जिनेंद्रने ज्ञान कहा है । २१३ ।

मनसहित सर्व इंद्रिय छह हैं । परंतु मनको अनिंद्रिय भी कहते हैं । क्योंकि मन इतर इंद्रियोंकी भांति वाहिरी इंद्रिय नहीं है । और न इंद्रियोंकी भांति कोई एक नियत इसका विषय है । इन इंद्रियोंसे तथा मनसे जो पदार्थोंका ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं । मतिका शब्दार्थ मनन करना है । मनन मनद्वारा ही हो सकता है । इतर इंद्रियोंसे जो ज्ञान होता है वह मननरूप नहीं होता । इसलिये मतिका मनन अर्थ करना शब्दार्थ मात्र समझना है । और सर्व इंद्रियों के ज्ञानको मति कहना उपचारसे है । क्योंकि बहुतसे इन इंद्रियजन्य ज्ञानोंमें मनकी भी सहायता रहती ही है । क्षयोपशमके भेदसे इस ज्ञानके अनेक भेद होते हैं ॥ २१४ ।

सामान्य दृष्टिसे मतिज्ञान एक है । उसके अवग्रह ईहा अवाय धारणा ये चार उत्तर भेद हैं । इन चार भेदोंको छह इंद्रियोंसे गुणित करें तो चौवीस भेद होते हैं । इस संख्यामें व्यंजनावग्रहके चार इंद्रिय सम्बन्धी चार भेदोंको मिला दें तो अट्ठाईस भेद होजाते हैं । और मूल चार भेदोंको और भी जोड देनेसे बत्तीस भेद होजाते हैं ।

भावार्थ, मूल भगका मतलब—सामान्य दृष्टिसे जो अवग्रहादि चार भेद होते हैं वे लेने चाहिये । जुदे जुदे इंद्रिय संबंधी जो अवग्रहादि हैं वे चौवीस होते हैं । उन्हे उत्तर भंग कहा है । और इंद्रियोंका संबंध न लगाकर अवग्रहादिकोंको मूल भंग कहना चाहिये । इस प्रकार मिलानेसे बत्तीस भेद होजाते हैं ।

॥७३॥

राजवार्तिककारने बत्तीसका खुलासा दूसरे प्रकारसे भी किया है। —

'तत् सामान्यमेकम्। इन्द्रियानिन्द्रियभेदाद् द्विधा। अवग्रहादिभेदाच्चतुर्धा। तैरिन्द्रियगुणितैश्चतुर्विंशतिविधं। तैरेव व्यञ्जनावग्रहाधिकैरष्टाविंशतिविधं। तैरेव मूलभङ्गाधिकैर्द्रव्यादिसहितैर्वा द्वात्रिंशद्विधम्।'

इसका तात्पर्य ऊपर बताया है वही है। केवल बत्तीसका समर्थन दो प्रकारसे किया है–मूल भंगोंको अट्ठाईसमें जोडकर भी बत्तीस संख्या होना बताया है और द्रव्य क्षेत्र काल भाव ये चार भेद जोडकर भी बताया है।

विषय और इंद्रियोंकी योग्य स्थिति होनेपर प्रथम दर्शन होता है। वह निराकार माना गया है। अर्थात् दर्शनमें विषयकी विशिष्टता किंचित् भी नहीं प्रतिभासित होती है इसलिये उसे निराकार माना जाता है। भावार्थ, वस्तुमें सामान्याकार विशेषाकार ये दो आकार माने जाते हैं। उनमेंसे दर्शन वस्तुके एक सामान्याकारको ही ग्रहण करता है। सामान्याकारको ही यहांपर निराकार कहा है। इस दर्शनके बादमें वस्तुकी बहुत ही थोडी विशिष्टता भासने लगती है। उसे अवग्रह ज्ञान कहते हैं। इसमें विषयकी थोडीसी विशिष्टताका ग्रहण हुआ इसलिये इस चैतन्यपर्यायको साकार कहते हैं। यह किसी भी विषयके ज्ञानकी पहिली (प्रारंभिक) अवस्था है। इसके बाद कुछ अधिक विशिष्टताओंका सशय उत्पन्न होकर ईहा ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ज्ञानका दूसरा भेद है। उदाहरणार्थ, स्थाणु और पुरुषके ऊंचाई धर्मको देखकर, विशेष न दीख सकनेपर यह स्थाणु है या पुरुष ऐसा संशय उत्पन्न होता है। बादमें जो वहांपर वस्तु हो उसकी कुछ थोडीसी विशिष्टताकी तरफ लक्ष्य पहुंच जानेसे स्थाणु पुरुषमेंसे यह अमुक होना चाहिये ऐसा निश्चयकी तरफ झुकता हुआ ज्ञान होता है वह ईहा ज्ञान कहाता है।

यदि उस गृहीत विषयकी विशिष्टता अधिक दीख जाय तो ज्ञान भी अधिक निश्चित होजाता है। उसे अवाय ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञानका तीसरा भेद है। इसको अवायज्ञान कहते हैं और अपायज्ञान भी कहते हैं। ईहासे पूर्व जो संशय होता है उसका ईहा ज्ञानमें स्पष्ट निराकरण नहीं होता। इसीलिये उसे ईहा कहते हैं। अर्थात् वह दृढ निश्चय नहीं है। किंतु अवाय ज्ञानमें संशय की इतर कोटियोंका स्पष्ट निराकरण होजाता है। इसलिये अवायज्ञान इतर का (अविवक्षितका अथवा

॥७४॥

त्रयोपि राशयस्ताड्या बह्वादिभिरसेतरैः । तैः सेतरैः पुनस्ताड्या मतिभेदावबुद्धये ॥ २१६ ॥
१४४ । १६८ । १९२ । ते त्रयो राशयः सेतरैर्बह्वादिभिर्द्वादशभिर्गुणिताः ॥ २८८ । ३३६ । ३८४ ॥

पूर्व संशयकी इतर कोटियोंका) निराकरण कर्ता समझा जाता है । अतएव उसका अपायज्ञान यह दूसरा नाम सार्थक ठहरता है । अवाय ज्ञानके बाद एक ऐसी दृढता ज्ञानमें उत्पन्न होती है कि जिससे कालान्तर में उसका स्मरण हो सके । उस दृढतावाले ज्ञानको धारणा कहते है । यह चौथा भेद है । अवायसे इस धारणामें केवल दृढताकी ही विशिष्टता है । उत्तरोत्तर दृढता तो सभीमें अधिक होती है । परंतु यह धारणाकी दृढता केवल टिकाऊ पनेकी अपेक्षासे मानी जाती है । अर्थात्, अवाय पर्यंतके ज्ञान होकर छूट जांय तो उनका स्मरण नहीं हो सकता है । किंतु स्मरण तभी होगा जब कि उस चीजकी धारणा हो चुकी हो । धारणा नाम भी इसीलिये सार्थक है ।

अवग्रह ज्ञान यावज्जीवोंको होता है किंतु ईहादि ज्ञानोंमें मनकी सहायता लगती है । इस लिये ईहादि ज्ञान समनस्कके ही हो सकते हैं । और जैसे क्रमसे इनकी उत्पत्ति होती है वैसे ही क्रमसे उत्तरोत्तर ये नाम बोले जाते हैं ॥ २१५ ॥

ऊपर एक २४ की दूसरी २८ की और तीसरी राशि ३२ की ऐसे तीन राशि बताई हैं । प्रत्येक राशिको बहु आदिकी छह सख्यासे गुणित करें तो २४ के १४४ भेद होते हैं, २८ के १६८ भेद होते हैं । ३२ के १९२ भेद होते हैं । यदि बहु आदि छह तथा बहु आदिके उलटे छह इन बारहोंसे ऊपरकी राशियोंको गुणे तो २४ के २८८ भेद होते हैं, २८ के ३३६ भेद होते हैं, और ३२ के ३८४ भेद हो जाते हैं । सर्व ज्ञान पांच हैं उनमेंसे पहिला यह मतिज्ञान है । उसके इतने उत्तर भेद होते हैं । इन सबोंमें क्षयोपशमकी हीनाधिकता तथा विशिष्टता कारण है ।

बहु आदिक छहके नाम (१) बहु, (२) बहुविध, (३) क्षिप्र, (४) अनिःसृत, (५) अनुक्त, (६) ध्रुव ये हैं । इनसे उलटे छह–(१) अल्प, (२) एकविध, (३) चिर अर्थात् देरीसे, (४) निःसृत, (५) उक्त, (६) अध्रुव ये हैं । बहुतका जानना, बहुविधका जानना इत्यादि प्रकारसे विषयके विशेषण इन बारहोंको समझना चाहिये ।२१६।

मतिपूर्वं श्रुतं प्रोक्तं द्व्यनेकद्वादशात्मकम् । शब्दाद् घटादिविज्ञानं वन्हिज्ञानं च धूमतः ॥ २१७ ॥
मतिपूर्वं श्रुतं दक्षैरुपचारान्मतिर्मता । मतिपूर्वं ततः सर्वं श्रुतं ज्ञेयं विचक्षणैः । २१८ ।

घट इत्युक्ते घकाराऽकारटकारविसर्जनीयविषयं मतिज्ञानं । ततः पृथुबुध्नोदराद्याकारविषयं श्रुतज्ञानं, ततोपि जलधारणादिविषयं श्रुतज्ञानम् । तथा धूमदर्शनं मतिज्ञानं ततोग्निविषयं विज्ञानं श्रुतज्ञानम् । इति श्रुताच्छ्रुतोत्पत्तेर्मतिपूर्वं श्रुतमेतल्लक्षणमव्यापीति चेत्, नैष दोषो मतेर्यच्छ्रुतज्ञानं तदपि मतिज्ञानमेव कार्ये कारणोपचारात् । अन्नं वै प्राणा आयुर्वै घृतमित्यादिवत् । ततो व्याप्त्येव लक्षणम् ।

पूर्वमें जो मतिज्ञानका वर्णन किया है उस मतिज्ञानके होनेके बाद उसी विषयम जो उस विषय संबंधी इतर विषयका ज्ञान होता है उसे श्रुत ज्ञान कहते हैं। श्रुतज्ञान केवल मनसे ही होता है। इसके अगबाह्य और अगप्रविष्ट ऐसे दो भेद हैं। अंगप्रविष्ट श्रुतके आचार आदि बारह अग हैं और अंगबाह्यके दशवैकालिक आदि अनेक प्रकार हैं। यह मतिपूर्वक कैसे होता है उसके दो उदाहरण देते हैं। जैसे घटशब्द सुनकर घटज्ञान होना, अथवा धुआंको देखकर अग्निका ज्ञान होना। २१७।

मतिपूर्वक पहिला श्रुत होता है इसलिये उत्तरोत्तर सभी श्रुत ज्ञानोंके पूर्ववर्ती श्रुतज्ञानोंको उपचारसे मति मान लेना चाहिये। ऐसा मानलेनेपर सभी श्रुतज्ञान मतिपूर्वक सिद्ध होजाते हैं। २१८।

श्रुतज्ञानमें शब्दजन्य ज्ञान द्वादशांगादिक की मुख्यता जतानेकेलिये घटज्ञानका प्रथम उदाहरण दिया है। घट शब्द सुननेसे घ अक्षर, अ अक्षर, ट अक्षर, अ अक्षर तथा विसर्ग इतने अक्षरोंके समूहरूप शब्दका ज्ञान होना यह तो मतिज्ञान है। और उस ज्ञानके आधारसे घटाकृतिका ज्ञान होना श्रुतज्ञान है। घटका उदर पृथु तथा बुध्न अर्थात् चपटा होता है। इसलिये घटकी आकृतिको 'पृथुबुध्नोदरादि आकार' ऐसा कहनेकी परिपाटी है। इस घटाकृतिके ज्ञान को तो श्रुतज्ञान कहते ही हैं। परंतु इस श्रुतविषयको ग्रहणकर उत्तरोत्तर और भी जलधारणादि ज्ञान होते हैं वे भी श्रुतज्ञान ही कहाते हैं।

॥७६॥

अवाच्यानामनन्तांशो वाच्या भावा मता जिनैः। तद्वत् तेषामनन्तांशो वाच्यानामागमे पुनः ॥ २१९ ॥
मूर्ताशेषपदार्थानां वेदको गद्यतेऽवधिः । स भवप्रत्ययः प्रोक्तो नारकेष्वमरेषु च ॥ २२० ॥

जहां शब्दकी मुख्यता नहीं है ऐसे इतर इंद्रिय संबंधी मतिज्ञानके विषयको लेकर भी श्रुतज्ञान होते हैं । इसका उदाहरण–धुआँ देखकर अग्निका ज्ञान होना बताया है। धुआंका ज्ञान मतिज्ञान, और बादमें जो अग्निका अनुमान वह श्रुतज्ञान है। इस अग्निज्ञानरूप श्रुतसे भी आगे दाह पाकादि श्रुतज्ञान होता है– यह श्रुतसे श्रुत हुआ मानना चाहिये। श्रुतज्ञानका लक्षण बताते हुए मतिपूर्वको श्रुतज्ञान बताया है। इसलिये यह लक्षण अव्याप्त है–पूरे स्थलमें व्याप्त नहीं होता इसलिये यह श्रुतका लक्षण सदोष होनेसे ठीक नहीं है, ऐसी शंका होना साहजिक है। क्योंकि, ऊपर श्रुतसे श्रुतोत्पत्तिके भी उदाहरण बताये हैं । इस शंकाको दूर करनेके लिये पूर्व श्रुतको उपचारसे मति मानलेना बताया है। क्योंकि, सबके आदिमें कारण ज्ञान है वह सर्वत्र मतिज्ञान ही होता है। इसलिए कार्यमें यह कारणका उपचार हुआ समझना चाहिए। जैसे अन्नको प्राण कहना अथवा घृतको आयु कहना । इस प्रकार पूर्वके श्रुतज्ञानोंको उपचरित मति मान कर लक्षणको सर्व श्रुतज्ञानमें व्याप्त कर लेना चाहिये। गद्य–२१८ ।

चराचर सर्व विषयोंमेंसे अनंत बहुभाग प्रमाण अवाच्य हैं और अनंतवें एक भाग प्रमाण वाच्य पदार्थ हैं। वाच्य सर्व पदार्थोंके भी अनंतवें एक भाग प्रमाण आगममें कहे जासके हैं। और निबद्ध हो भी उतने ही सकते हैं॥ वाच्यका अर्थ वचनगोचर होना है। यहांपर दिव्यध्वनिके गोचर होनेको वाच्य कहा है । और जितने पदार्थ दिव्यध्वनिसे प्रतिपादित होते हैं उनका अनंतवा भाग आगममें आ सकता है। अधिक सूक्ष्मको प्रतिपादन करनेका शब्दमें सामर्थ्य नहीं है । २१९ ।

मूर्त जितने पदार्थ है उन सबको अवधिज्ञान जाननेवाला है। उत्कृष्ट अवधिज्ञानमें मूर्तिक सभी पुद्गल जाने जाते हैं। पुद्गलसे संबंध रखनेवाले संसारी जीव मूर्तिक हैं इसलिये संसारी जीवका भी ज्ञान अवधिद्वारा होता है। इस ज्ञानका विषय मूर्तिक ही है अमूर्तिक नहीं है इसलिये इसे अवधि नाम प्राप्त हुआ है। मति श्रुत ये प्रथम कहे हुए दो ज्ञान परोक्ष होते हैं और इंद्रिय

क्षयोपशमजः षोढा शेषाणां जन्मभागिनाम् । अधोगतबहुद्रव्यबोधनादवधिर्मतः ॥ २२१ ॥
अनुगोऽननुगः शश्वदवस्थोऽप्यनवस्थितः । मुनिभिर्वर्द्धमानोऽसौ हीयमानश्च कथ्यते ॥ २२२ ॥
सर्वाङ्गोत्थोऽवधिस्तीर्थकर्तृनारकनाकिनाम् । परेषां शंखराजीवस्वस्तिकाद्यङ्गचिन्हजः ॥ २२३ ॥
नन्द्यावर्तो ध्वजः पद्मः श्रीवत्सः कलशो हलम् । पावनं नरतिर्यक्षु नाभेरुपरि लक्षणं ॥ २२४ ॥

प्रकाश आदि पर कारणोंके अधीन होते है । अवधिज्ञानसे लेकर सर्व ज्ञान साक्षात् प्रत्यक्षज्ञान हैं । अवधिके दो अवांतर भेद हैं; भवप्रत्यय और क्षयोपशमनिमित्तक । भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवोंमें और नारकोंमें होता है । ये भव जिन जीवोंको प्राप्त हों, उनको अवधिज्ञान अवश्य हो ऐसा भवप्रत्ययका अर्थ है ॥ २२० ॥

बाकी जीव रहे मनुष्य तथा तिर्यंच । इनमें यदि अवधिज्ञान हो तो वह क्षयोपशमनिमित्तक होता है । भावार्थ जैसा भवप्रत्ययका, देव नारक भवके साथ अवश्य उत्पन्न होनेका नियम है वैसा क्षयोपशमजन्य अवधिका नियम नहीं है । जानने-वाला जहां हो वहांसे नीचेके द्रव्यको अवधिज्ञान अधिक तर जानता है ऐसा भी अवधि शब्दका अर्थ है । राजवार्तिकमें कहा है कि अवाग्धानादवच्छिन्नविषयत्वाद्वाऽवधिः । इस क्षयोपशमजन्य अवधिज्ञानके छह भेद हैं । २२१ ।

छह भेदोंके नाम इस प्रकार हैं.–१ अनुगामी, २ अननुगामी, ३ अवस्थित, ४ अनवस्थित, ५ वर्धमान और ६ हीयमान । २२२ ।

तीर्थंकर, देव और नारक जीवोंके अवधिज्ञान सर्वांगसे उत्पन्न होता है। बाकी अर्थात् सर्व तिर्यंच तथा मनुष्योंमें जो अवधिज्ञान होता है वह नियत चिन्होंके स्थानगत आत्मप्रदेशोंमें ही प्रगट होता है। शंख, कमल, स्वस्तिक आदि चिन्ह इसके लिये नियत बताये हैं । २२३ ।

नंद्यावर्त, ध्वज, कमल, श्रीवत्स, कलश, हल ऐसे पावन लक्षण उन अवधि होनेवाले मनुष्य तिर्यंचोंमें नाभिके ऊपर होते हैं ॥ २२४ ॥

सरटो मर्कटो गोधा कंकः काको बकः खरः । अधस्ताल्लक्षण नामेर्विभंगस्य तु निन्दितम् ॥ २२५ ॥
क्षयोपशमयोगस्य तारतम्यव्यवस्थितेः । उत्पत्तिक्षेत्रमासाद्य जायते तारतम्यतः ॥ २२६ ॥
योऽन्यदीयमनोजातरूपिद्रव्यावबोधकः । स मनःपर्ययो द्वेधा विपुलर्जुमती मतः ॥ २२७ ॥
लब्धान्यतमलब्धीनां संयतानां प्रजायते । मर्त्यक्षेत्रस्थितद्रव्यप्रकाशी स प्रकर्षत· ॥ २२८ ॥
साक्षात्कृताखिलद्रव्यपर्यायमविपर्ययम् । अनन्त केवलज्ञानं कल्मपक्षयसंभवम् ॥ २२९ ॥
मतिश्रुतावधिज्ञान मिथ्यात्वसमवायतः । विपरीतं त्रिधा ज्ञेयं विपरीतार्थदर्शकम् ॥ २३० ॥

सरट, मर्कट, गोधा, कंक, काक, बक, खर ऐसे निंदित लक्षण, विभग अवधि होनेवाले मनुष्य तिर्यचोंमें नाभिके नीचे उत्पन्न होते हैं ॥ २२५ ॥

अवधिज्ञानके आवरण कर्मका क्षयोपशम संबध जैसा तरतम रूपसे प्राप्त होता है और अवधिके उत्पन्न होनेका क्षेत्र भी जैसा होता है उसके अनुसार अवधिज्ञान हीनाधिक प्रगट होता है ॥ २२६ ॥

दूसरोंके मनोंमें विषय होकर रहनेवाले रूपि द्रव्योंको साक्षात् प्रत्यक्ष रूपसे जाननेवाला जो ज्ञान है वह मन·पर्यय कहाता है । उसके दो प्रकार हैं, एक ऋजुमति, दूसरा विपुलमति ॥ २२७ ॥

जिनको कोई ऋद्धि प्राप्त हो चुकी है ऐसे सयमियोंको यह मन पर्ययज्ञान उत्पन्न होता है । इस मन पर्ययका उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्यलोक ढाई द्वीप है। भावार्थ, उत्कृष्ट मन पर्यय ज्ञान प्रगट हुआ हो तो वह ढाई द्वीप पर्यतके समनस्कोंकी मनोगत बातको जान सकता है । २२८ ।

जिसमें सर्व द्रव्य और सर्व द्रव्योंके सर्व पर्याय यथार्थरूपसे साक्षात् प्रकाशित होते हैं ऐसा अनंत—अपरिमित केवलज्ञान तब प्रगट होता है जब संपूर्ण घातिकर्मरूप पापोंका क्षय हो जाता है । २२९ ।

इस प्रकार सर्व ज्ञान पाच हैं, मति श्रुत अवधि मन.पर्यय तथा केवल । इनका वर्णन ऊपर कर दिया है। इनमेंसे पहिले

रूपादौ यद्विपर्यस्तं मत्यज्ञानं तदक्षजम् । धर्मरिक्तं श्रुताज्ञानं विज्ञेयं शब्दकारणम् ॥ २३१ ॥
पर्याप्तस्यावधिज्ञान मिथ्यात्वविपद्रूपितम् । विभंग भण्यते सद्भिः क्षयोपशमसंभवम् ॥ २३२ ॥
उदये यद्विपर्यस्तं ज्ञानावरणकर्मणः । तदस्थास्नुतया नोक्तं मिथ्याज्ञान सुदृष्टिषु ॥ २३३ ॥

तीन ज्ञान—मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान—ये मिथ्यात्व कर्मके उदय रहनेसे विपरीत अर्थको दिखाने वाले होते है। इसलिये इन तीनोंको विपरीत ज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान कहते हैं। २३०।

रूपादि विषयोंमें जो विपरीतताको दिखावे वह मतिज्ञान मति अज्ञान कहाता है। और धर्मरहित अर्थात् अधर्मपोषक शब्दद्वारा उत्पन्न हुए मिथ्या श्रुतज्ञान को श्रुत अज्ञान कहते हैं। २३१।

मिथ्यात्व रूप विषसे दूषित हुआ जो क्षयोपशमजन्य अवधिज्ञान है वह विभग अथवा मिथ्या अवधि कहाता है। यह अवधिज्ञान पर्याप्तक अवस्थामें ही होता है। २३२।

ऊपर जो तीनो मिथ्या ज्ञान बताये वे मिथ्यादर्शन कर्मके उदय रहनेसे मिथ्या ज्ञान कहे हैं। ज्ञानावरण कर्मका उदय होने से भी ज्ञानमें विपरीतता आती है परंतु वह विपरीतता स्थिर नहीं होती। उस ज्ञानावरणका क्षयोपशम होते ही वह विपरीतता दूर हो जाती है। इसलिये सम्यग्दृष्टिके तीनो मत्यादि ज्ञानोंको मिथ्या न कह कर सम्यग्ज्ञान ही माना जाता है। २३३।

भावार्थ यह है कि ज्ञानावरण कर्मका उदय सदा ही हीनाधिक होता रहता है। इसलिये ज्ञानावरणके उदयसे जो ज्ञानमें मंदता आती है वह वास्तवमें ज्ञानका विपर्यास नहीं है। ज्ञानावरणके उदयसे जीव पदार्थको कम समझेगा। ज्ञानकी इस मंदतासे कोई कोई विपर्यास होता है वह ज्ञानावरणके हटनेसे हट जाता है। परन्तु मिथ्यादर्शनका उदय काललब्धि आदिके विना कभी भी हटता नहीं है। इसलिए जब तक जीव मिथ्यादृष्टि है तब तक उसके ज्ञानमें आत्माबोधसे विमुखता तो सदा ही बनी रहती है। अपने स्वरूपका शुद्ध ज्ञान न हो तो विश्वभरके ज्ञानसे क्या लाभ है? कुछ नहीं। इसलिये मिथ्यादृष्टि ही वास्तवमें मिथ्याज्ञानी है।

यह ज्ञान मार्गणाका स्वरूप हुआ।

॥८०॥

कषायाः षोडश प्रोक्ता नोकषाया यतो नव । ईषद्भेदो न भेदोऽतः कषायाः पचविंशतिः ॥ २३४ ॥
शामिक शमतस्तेषां क्षायिक क्षयतो मतम् । क्षयोपशमतो वृत्त क्षायोपशमिक पुन' ॥ २३५ ॥
द्वादशाद्यकषायाणामुदयस्य क्षये सति । यत्सत्त्वोपशमे तेषा चारित्रोदयघातिनाम् ॥ २३६ ॥
त्रयोदशकषायाणा परेषामुदये सति । चारित्र जायते तत्स्यात् क्षायोपशमिक यतः ॥ २३७ ॥ युग्मम् ॥

संयम मार्गणाके अनुसार जीवका वर्णन.

अनतानुबधी क्रोधादि कषाय सोलह हैं । हास्यादि नोकषाय नौ हैं। नोकषायका अर्थ ईषत् कषाय है । ईषत् भेद कोई मुख्य भेदमें नहीं है इसलिये कषायके सर्व भेद पचीस होजाते हैं । २३४ ।

कषायोंका उपशम होनेपर जो संयम होता है वह औपशमिक संयम कहाता है । कषाय के क्षयसे होता है वह क्षायिक सयम कहाता है । कषायोंके ही क्षयोपशमसे जो होता है वह क्षायोपशमिक कहा जाता है ॥ २३५ ॥

सयम वृत चारित्र इन शब्दोंका अर्थ एक ही है । क्षायोपशमिक चारित्र का लक्षण बताते हैं । चारित्रके मुख्य घातक कषाय हैं । उनमेंसे पहिले बारह कषायके जो अश उदयमें आने योग्य हों उनका उदय न होकर क्षय हो, और उन ही बारह आद्य कषायोंके जो अश अभी उदयमें आने योग्य नहीं हैं उन अशोंका सत्तामें पडे रहना यह यहां क्षयोपशम प्रकरणमें उपशमका अर्थ होता है । यह हुई बारह कषायोंकी व्यवस्था । आगेके बचे तेरह कषायोंका उदय हो रहा हो ऐसे कारणसे जो चारित्र प्रगट होता है वह यतिका क्षायोपशमिक चारित्र है । चारित्रके उदयका घात कषायोंसे होता है इसलिये चारित्रोदयघाती शब्दका अर्थ कषाय है । क्षायोपशमिक किसी भी भावमें उस भावके देशघाती कर्मका उदय रहता है । इसी प्रकार यहां भी देशघाती कषायोंका उदय रहता है । और इसीलिये क्षायोपशमिक भाव पूरे निर्मल नहीं होते । २३६–२३७ ।

व्रतदण्डकषायाक्षसमितीनां यथाक्रमम् । संयमो धारण त्यागो निग्रहो विजयोऽवनम् ॥ २३८ ॥
क्रियते यदमेदेन व्रतानामधिरोपणम् । कषायस्थूलतालीढः स सामायिकसंयमः ॥ २३९ ॥
व्रतानां मेदनं कृत्वा यदात्मन्यधिरोपणम् । शोधनं वा विलोपेनच्छेदोपस्थापनं मत ॥ २४० ॥
सावद्यपरिहारेण प्राप्यते यः समाहितैः । व्रतगुप्तिसमित्याढ्यैः स परीहारसंयमः ॥ २४१ ॥

क्रमसे, व्रतोंका धारण करना, दंडोका त्याग करना, कषायोंका निग्रह करना, इंद्रियोंका विजय करना, और समितियोंका अवन अर्थात् रक्षण करना–यही सयम है । अहिंसादि पाच व्रत हैं । योगप्रवृत्तिका नाम यहांपर दड है । अक्ष अर्थात इंद्रिय । समिति यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्तिको कहते हैं । २३८ ।

अभेद रूपसे व्रतोंके धारण करनेमें संज्वलन कषायोंकी स्थूल प्रवृत्ति जबतक होरही हो तबतक वह सामायिक संयम कहाता है । सयमके सर्व पाच भेद हैं । १ सामायिक, २ छेदोपस्थापन, ३ परिहारविशुद्धि, ४ सूक्ष्मसांपराय, और ५ यथाख्यात चारित्र । इन पाचोंमेंसे यह सामायिक संयम प्रथम है । इसका ग्रहण भी प्रथम ही होता है । २३९ ।

व्रतोंमें मेद करके व्रतोंको अपनेमें धारण करना अथवा प्रायश्चित्त लेनेका प्रसंग आजाय तो दोषोंका त्याग कर व्रतोंको शुद्ध करना इसका नाम छेदोपस्थापन है । यह पाच संयमोंमेंसे दूसरा सयम है । भावार्थ, दोषोंके अनेक भेद होते हैं । उन दोषोंको जुदा जुदा छोडनेकी कल्पनासे छोडकर शुद्धि करना छेदोपस्थापन है । और जुदी जुदी दोषोंके निराकरणकी कल्पनाको मनमें न लाकर समुदित आत्माकी शुद्धि करनेमें लगना सामायिक संयम है । इन दोनों संयमोंमें मेद तथा अमेद दृष्टिकी मुख्यतासे परस्पर फरक है । २४० ।

समाहित अर्थात् समाधान वृत्ति रखते हुए, सावद्यको छोडकर जो व्रत गुप्ति समितियोंके साथ सयम भाव होता है वह परिहारविशुद्धि तीसरा चारित्र अथवा सयम है । इस संयममें भी ऊपर के सामायिक छेदोपस्थापनकी भांति सर्व विधी रहती है । किंतु अधिक ध्यानाध्ययनादिके द्वारा एक परिहारविशुद्धि नामकी ऋद्धि जिसे प्राप्त हो जाती है उसकें सर्व प्रकारके सावद्यका

वर्तते सूक्ष्मलोभे यः शमके क्षपके गुणे। स सूक्ष्मसांपरायाख्यः संयमः सूक्ष्मलोभत. ॥ २४२ ॥

सहजमें त्याग हो जाता है। इसीलिये उसके एक विशिष्ट आत्मविशुद्धि प्राप्त होती है तब उसका नाम परिहारविशुद्धि पड़ता है। सावद्यके परिहार होजानेसे जो विशुद्धि हो वह परिहारविशुद्धि है ऐसा अर्थ भी सार्थक है । २४१ ।

गोमट सारके अनुसार परिहार विशुद्धि का विशेष खुलासा इस प्रकार है—

पचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदावि जो हु सावज्ज। पचेकजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ॥ ४७१ ॥

पञ्चसमित त्रिगुप्त परिहरति सदापि यो हि सावद्यम्। पञ्चैकयम पुरुष. परिहारकसयत स हि ॥ ४७१ ॥

अर्थ—पाच प्रकारके सयमियोंमेंसे जो जीव पाच समिति तीन गुप्तिको धारण कर सदा सावद्यका त्याग करता है उस पुरुषको परिहारविशुद्धिसयमी कहते हैं।

इसीका विशेष स्वरूप कहते हैं।

तीस वासो जम्मे वासपुधत्त खु तित्थयरमूले। पचक्खाण पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ॥ ४७२ ॥

त्रिंशद्वर्षो जन्मनि वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्थकरमूले। प्रत्याख्यानं पठित सध्योनद्विगव्यूतिविहार ॥ ४७२ ॥

अर्थ—जन्मसे तीस वर्षतक सुखी रहकर दीक्षा ग्रहण करके श्री तीर्थंकरके पादमूलमें आठ वर्षतक प्रत्याख्यान नामक नौमें पूर्वका अध्ययन करनेवाले जीवके यह सयम होता है। इस सयमवाला जीव तीन संध्याकालोंको छोडकर दो कोस पर्यंत गमन करता है, किन्तु रात्रिको गमन नहीं करता। और वर्षाकालमें गमन करनेका नियम नहीं है। भावार्थ—जिस संयममें परिहारके साथ विशुद्धि हो उसको परिहारविशुद्धि सयम कहते हैं। प्राणिपीडाके त्यागको परिहार कहते हैं। इस संयमवाला जीव जीव-राशिमें विहार करता हुआ भी जलसे कमलकी तरह हिंसासे लिप्त नहीं होता।

उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करके दशवें सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें लोभ अत्यत सूक्ष्म हो जानेसे जो कषाय की मंदताके कारण विशुद्ध सयम होता है वह सूक्ष्मसांपराय नामका चौथा संयम है। अर्थात् दशवें गुणस्थानकी आत्मविशुद्धिको सूक्ष्मसापराय संयम कहा है। २४२।

चारित्रमोहनीयस्य प्रशमे प्रक्षयेऽपि वा । संयमोऽस्ति यथाख्यातो जन्मारण्यदवानलः ॥ २४३ ॥
चतुर्णां संयमावाद्यौ तृतीयोऽद्यादि पूर्वयोः । सूक्ष्मस्य सूक्ष्मलोभाह्वश्चतुर्णां पंचमस्ततः ॥ २४४ ॥
प्रथमाष्टकषायाणामुदयप्रलये सति । यः सत्त्वोपशमे तेषामन्येषामुदये सति ॥ २४५ ॥
चतुःस्थावरविध्वंसी दशधात्रसरक्षकः । सम्पद्यते परीणामः संयमासंयमोऽस्ति सः ॥ २४६ ॥ युग्मम् ॥

पांचवा संयम यथाख्यात चारित्र है। चारित्रमोह कर्मका पूर्ण उपशम अथवा क्षय हो जानेपर यह संयम प्रगट होता है। संसाररूप जंगलको जलानेकेलिये यह दावानल के समान है। २४३।

सामायिक और छेदोपस्थापन ये दो संयम छट्ठेसे नौवें पर्यंत चार गुणस्थानोंमें होते हैं। तीसरा परिहार विशुद्धि संयम छट्ठे सातवें इन दो गुणस्थानोंमें होता है। चौथा सूक्ष्मसांपराय संयम दशवें सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें होता है। पांचवा यथाख्यात संयम अंतके चार गुणस्थानोंमें होता है। २४४।

जो देशचारित्र अथवा संयमासंयम है वह पांचवें गुणस्थानमें प्राप्त होता है। उसका स्वरूप बताते हैं — अनंतानुबंधी तथा अप्रत्याख्यानावरण ये आदिके आठ कषाय हैं। इनका उदय रुक जानेपर, और आगामी उदय योग्य इन्हीका सत्तारूप उपशम होनेपर, तथा बाकी सत्रह कषायोंका उदय रहते हुए यह देशसंयम होता है। दश प्रकारके त्रसोंकी हिंसा इसमें रुक जाती है। परंतु चारो स्थावरों की हिंसा रुक नहीं पाती है। इसलिये इस संयममें स्थावर संबंधी संयम पूर्ण न पल सकनेके कारण असंयम रूप परिणाम भी रहते हैं। इसको संयमासंयम भी कहते हैं।

त्रसोंके द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय असज्ञी सज्ञी पंचेंद्रिय यें पांच भेद हैं। प्रत्येकके पर्याप्तक अपर्याप्तक ये दो दो भेद होजानेपर त्रसोंके दश भेद पर्याप्ति प्रकरणमें बताये हैं। एकेंद्रिय स्थावरके बादर सूक्ष्म ये दो मूल भेद हैं। फिर प्रत्येकके पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे दो दो भेद करनेसे चार भेद हो जाते हैं। देशसंयम चारित्र धारी दश त्रस जीवोंकी हिंसाका तो सकलरूपसे त्यागी हो जाता है परंतु स्थावर जीवोंकी हिंसाको यथासाध्य ही छोडता है। विना प्रयोजन स्थावर हिंसा नहीं करता है। इस देशसंयममें

।८४॥

सत्रह कषायोंका उदय रहता है। उनमेंसे पहिले चार प्रत्याख्यानावरण कषाय है। प्रत्याख्यानका अर्थ त्याग है। सर्व त्यागको यहां प्रत्याख्यान कहा है। इस प्रत्याख्यानको जो आवरण करें अर्थात न होनेदें ऐसे कषायोंका नाम प्रत्याख्यानावरण है। इसी कषायका यह कार्य है कि सकल सयम नहीं होपाता है। २४५-२४६।

सयमासयममें आठ आद्य कषायोंका उपशम होना बताया है उनमें से अनतानुबंधी चार का उपशम तो चौथे गुणस्थानसे ही हो जाता है। किंतु अप्रत्याख्यानावरण दूसरी चौकडीका उपशम होना यहा पाचवेंके प्रारभमें अत्यावश्यक है। क्योंकि यह दूसरी कषाय चौकडी देशसंयमकी असली घातक है। इसका नाम अप्रत्याख्यानावरण इसीलिये पडा है। प्रत्याख्यानका अर्थ त्याग है। अप्रत्याख्यानका अर्थ ईषत् त्याग है। ईषत थोडेसे त्यागको भी जो आवरण करे अर्थात रोके उसका नाम अप्रत्याख्यानावरण है। जबतक इस अप्रत्याख्यानावरणका उदय रहता है तबतक थोडासा भी त्याग अथवा सयम नहीं होपाता है। इसलिये यह सयम चौथे गुणस्थान पर्यंत होता ही नहीं है। चौथे गुणस्थानका विशेषण असयम लगाया जाकर 'असंयत सम्यग्दर्शन' ऐसा नाम माना गया है। इसके आगे जब अप्रत्याख्यानावरण नाम दूसरी कषायचौकडीका उपशम होता है तब पाचवा गुणस्थान सुरू होता है।

इस प्रकार पांचवें गुणस्थानका प्रारभ होनेमें तो अप्रत्याख्यानावरण कर्मका उपशम कारण है। इसलिये इसका उपशम होते ही जीव देशसंयमको धारण कर सकता है। परतु देशसयमके दर्शन व्रत सामायिक प्रोषधोपवास सचित्तत्याग रात्रिभुक्तित्याग ब्रह्मचर्य आरंभत्याग परिग्रहत्याग अनुमतित्याग उद्दिष्टत्याग—ये ग्यारह भेद जो बताये हैं वे किस कारणसे होते है? क्योंकि देशसयमका घातक जो दूसरा कषाय अप्रत्याख्यानावरण है उसका उपशम हो चुकनेपर देश संयमकी पूर्णता होनी चाहिये थी। किंतु देश सयमकी पूर्णता ग्यारहवीं प्रतिमाके अतमें होती है और पहिली आदि प्रतिमाए देशसंयमकी अपूर्ण प्रारभिक अवस्था मानी जाती है। ऐसा क्यों?

इस प्रश्नका उत्तर—यद्यपि देशसयमका प्रत्यक्ष घातक अप्रत्याख्यानावरण कषाय है। परंतु प्रत्याख्यानावरण तीसरे कषायका हीनाधिक उदय भी देशसंयममें बाधा उत्पन्न करता है। इसलिये उस तीसरे कषायका जैसा तीव्र तीव्रतर उदय रहता है वैसी प्रतिमाएं भी ऊंचली ऊचली नहीं हो पाती हैं। और जैसा तीसरे कषायका उदय मद मंदतर होता है वैसे देशसयमकी पूर्णता होती जाती है। पूर्णताके दर्जोंको प्रतिमा कहते हैं।

अष्टौ स्पर्शा रसाः पंच द्वौ गन्धौ वर्णपंचकं । षड्जादयः स्वराः सप्त दुर्मनोऽक्षेष्वसंयमाः ॥ २४७ ॥
इत्यष्टाविंशतिः सन्ति चतुर्दशशरीरिषु । तेषामरक्षका जीवा ज्ञेया दक्षैरसंयताः ॥ २४८ ॥
इन्द्रियेष्वसंयमाः २८—जीवेषु १४ ।

आठ स्पर्श—गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठिन–ये हैं । रस पांच—तिक्त, आम्ल, कटु, मधुर, कषाय–ये हैं । गंध दो हैं-सुगंध, दुर्गन्ध । वर्ण पांच–कृष्ण, नील, पीत, शुक्ल, लाल-ये हैं । शब्द अर्थात् स्वर षड्जादि सात–षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद–ये हैं । ये सर्व पांच इन्द्रियोंके विषय सत्ताईस हैं । और मनकी एक दुष्ट प्रवृत्तिको मिलानेसे अट्ठाईस हो जाते हैं । ये अट्ठाईस इन्द्रियसंबंधी असंयम होते हैं । जीवोंके समास चौदह पूर्वमें बताये हैं । इन जीवोंकी रक्षा जो नहीं करते और इन्द्रियोंसे भी विरक्त नहीं हैं वे असंयत कहे गये हैं । प्रथम गुणस्थानसे चौथे गुणस्थान पर्यंतके जीव असंयत कहाते हैं ॥ २४७–२४८ ॥

गोमटसारमें सामायिकादि संयमियोंकी संख्या इस प्रकार बताई है.–

पमदादिचउण्ह जुदी सामयियदुगं कमेण सेसतियं । सत्तसहस्सा णवसय णवलक्खा तीहिं परिहीणा ॥ ४७९ ॥
प्रमत्तादिचतुर्णां युति सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रिकम् । सप्त सहस्राणि नव शतानि नव लक्षाणि त्रिभि परिहीनानि ४७९

अर्थ—प्रमत्तादि चार गुंणस्थानवर्ती जीवोंका जितना प्रमाण है उतने सामायिकसंयमी होते हैं । और उतने ही छेदोपस्थापनासंयमी होते हैं । परिहारविशुद्धि संयमवाले तीन कम सात हजार (६९९७), सूक्ष्मसांपराय संयमवाले तीन कम नौ सौ (८९७), यथाख्यात संयमवाले तीन कम नौ लाख (८९९९९७) होते हैं ।

इति संयम मार्गणा

१—तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् । २—कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् । सर्वार्थसिद्धिः । 'स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गला' इत्यस्य व्याख्यायाम् । ३—षड्ज मयूरो वदति, ऋषभं चातको वदेत् । अजा वदति गांधारं, क्रुंचो वदति मध्यमं ॥१॥ पुष्पसाधारणाकाले पंचमं कोकिलो वदेत् । दर्दुरं ध्रुवकं चैव निषादं वदते गज ॥ २ ॥

॥८६॥

रूपादीनां पदार्थाना सामान्यस्यावलोकनम् । चतुर्धा दर्शनं ज्ञेय जीवसामान्यलक्षणम् ॥ २४९ ॥
प्रकाशश्चक्षुषोऽर्थाना चक्षुर्दर्शनमिष्यते । शेषाणा पुनरक्षाणामचक्षुर्दर्शन जिनैः ॥ २५० ॥
साक्षाद्रूपिपदार्थानां सोऽवाद्यवधिदर्शनम् । मूर्त्तामूर्त्तपदार्थानामसौ केवलदर्शनम् ॥ २५१ ॥
मनःपर्ययविज्ञानं विशेपविपय यतः । मतिपूर्वं श्रुतज्ञान दर्शनं न ततस्तयोः ॥ २५२ ॥

दर्शन मार्गण द्वारा जीवका वर्णन

रूपादिक पदार्थोंके सामान्य स्वरूपका अवलोकन होना दर्शन है । इस दर्शनके चार भेद हैं—चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन तथा केवल दर्शन । जीवमात्रका यह दर्शन लक्षण है । २४९ ।

चक्षु इंद्रियके द्वारा पदार्थोंका अवलोकन हो वह चक्षुर्दर्शन है । इतर इंद्रियोंद्वारा पदार्थोंका अवलोकन हो वह अचक्षु-दर्शन माना गया है । २५० ।

रूपी पदार्थोंका साक्षात् अवलोकन होना सो अवधिदर्शन है । और मूर्त अमूर्त सर्व पदार्थोंका साक्षात् अवलोकन सो केवल दर्शन कहाता है । २५१ ।

मन पर्यय ज्ञानके पूर्वमें होनेवाला तथा श्रुतज्ञानके पूर्वमें होनेवाला कोई जुदा दर्शन नहीं माना है । इसका कारण बताते हैं कि इन दोनो ज्ञानोंमेंसे मन पर्यय ज्ञान तो विशेष विषयका होता है इसलिये उसके पूर्वमें दर्शन होनेकी आवश्यकता नहीं है, और श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है इसलिये श्रुतज्ञानके पूर्व भी दर्शन उत्पन्न होनेकी योग्यता नहीं है ।

भावार्थ, जो ज्ञान विषयका ग्रहण आरंभसे करते है उन्ही ज्ञानोंकी उत्पत्तिसे प्रथम, दर्शन अर्थात् सामान्य अवलोकन होना संभव है । मतिज्ञान विषयको आरंभसे ग्रहण करता है इसलिये उसके पूर्वमें दर्शन होता है । उस दर्शन के चक्षुर्दर्शन अच-क्षुर्दर्शन ऐसे दो भेद करके गिनाये हैं ॥ २५२ ॥

इति दर्शन मार्गणा

॥८७॥

प्रवृत्तियौंगिकी लेश्या कषायोदयरंजिता । भावतो द्रव्यतो देहच्छविः षोढोभयी मता ॥ २५३ ॥
कृष्णा नीला च कापोती पीता पद्मा सिता स्मृता । लेश्या षड्भि सदा ताभिर्गृह्यते कर्म जन्मिभिः ॥ २५४ ॥
पृथ्वीकायेषु सा षोढा शुक्ला तोयशरीरिषु । पीता पावककायेषु कापोती पवनांगिषु ॥ २५५ ॥
षोढा पादपकायेषु बादरेषु निवेदिता । कापोती सूक्ष्मकायेषु सर्वापर्याप्तकेषु च ॥ २५६ ॥
सर्वेषां जन्मिनां शुक्ला लेश्या वक्रगतौ स्मृता । शरीरं कार्मणं शुक्लं पीतं भवति तैजसम् ॥ २५७ ॥

अथ लेश्या मार्गणा.

कषायोंके उदयसे अनुरंजित योग प्रवृतिका नाम लेश्या है । लेश्या द्रव्य भाव भेदसे दो प्रकारकी मूलमें है और उत्तर भेद प्रत्येक के छह छह है ॥ २५३ ॥

छह लेश्याओंके नाम १ कृष्ण लेश्या, २ नीललेश्या, ३ कापोतलेश्या, ४ पीतलेश्या, ५ पद्मलेश्या तथा ६ शुक्ल या श्वेतलेश्या । इन छह लेश्याओंसे ही संसारी जीवोंका सदा कर्मबन्ध होता है । यह कर्मबंध होना भावलेश्याओंका कार्य है ॥ २५४ ॥

द्रव्य लेश्याओंका अर्थ उस उस प्रकारका शरीररंग होता है । वह द्रव्यलेश्या पृथ्वी कायमें छहो प्रकारकी मिलती है । सर्व रंगोंकी पृथ्वी देखनेमें आती है । जलकायके जीवोंमें शुक्ल द्रव्यलेश्या होती है । भावार्थ, जलका मूलरंग सफेद ही होता है । इसपरसे जलमें दीखनेवाले बाकी रंगोंको औपाधिक समझना चाहिये । अग्निकाय जीवोंमें पीतलेश्या होती है । अर्थात्, अग्निका रंग पीला होता है । वायुकायोंमें कापोतलेश्या होती है । पवनका रंग कापोत होता है । बादर वृक्ष-वनस्पति कायमें छहो लेश्याएं मिलती हैं । सूक्ष्म कायोंमें सभीकी लेश्या कापोत होती है । अपर्याप्तक सभीकी कापोतलेश्या मानी गई है ।२५५-२५६।

विग्रहगतिमें यदि वक्रगति अर्थात् मोडे लेकर गति हो तो उसमें सर्वत्र सभी जीवोंकी शुक्ल लेश्या मानी गई है । शरीरोंमेंसे कार्मण शरीर शुक्ल होता है । तैजस शरीर पीता होता है । २५७ ।

औदारिक नृतिर्यक्षु सपट्लेश्य कलेवरम्। पीता वैक्रियिके पद्मा शुक्ला लेश्या सुधाशिनाम् ॥ २५८ ॥
मूलनिर्वर्त्तने पीता देवीना तु कलेवरे । श्वाभ्राणां कथिता कृष्णा सा पोढोत्तरकालिकी ॥ २५९ ॥
पट्लेश्यांगा मतेऽन्येषां भौमज्योतिष्कभावनाः । गोमूत्रमुद्गकापोतवर्णाङ्गाः पवनांगिनः ॥ २६० ॥
योगाविरतिमिथ्यात्वकषायजनितोऽङ्गिनाम् । संस्कारो भावलेश्यास्ति कल्मषास्रवकारणम् ॥ २६१ ॥
कापोती कथिता तीव्रो नीला तीव्रतरो जिनैः कृष्णा तीव्रतमो लेश्यापरिणामः शरीरिणाम् ॥ २६२ ॥
पीता निवेदिता मंदः पद्मा मंदतरो बुधैः । शुक्ला मंदतमस्तासां वृद्धिः पट्स्थानयायिनी ॥ २६३ ॥

मनुष्य तिर्यंचोंमें औदारिक शरीरकी लेश्याएं छहो पाई जाती हैं । देवोंके वैक्रियिक शरीरमें क्रमसे उत्तरोत्तर पीत पद्म तथा शुक्ल ये तीन लेश्याएं मिलती हैं । २५८ ।

देवियोंके मूल शरीर पीतलेश्यावाले होते हैं । नारकियोंके मूल शरीर कृष्ण होते हैं । जब वे विक्रिया करते हैं तो उनमें छहो लेश्याएं होना संभव है । २५९ ।

भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क इन तीन जातिके देवोंमें छहो लेश्याएं होती हैं । और वायुशरीर गोमूत्र वर्णके भी होते हैं तथा मूंग और कापोत वर्णके भी होते हैं । यह दूसरोंका मत है । २६० ।

यह द्रव्य लेश्या कही, अब भाव लेश्या आगे बताते हैं ।

जीवोंके योगद्वारा, अविरतिद्वारा, मिथ्यात्वद्वारा तथा कषायद्वारा जो आत्मामें संस्कार (विकृत) उत्पन्न होता है वह भावलेश्या है । इससे कर्मोंका आस्रव होता है ॥ २६१ ॥

जीवोंके कापोत लेश्यारूप संस्कार तीव्र होता है । नील और भी तीव्र होता है । कृष्ण अत्यंत तीव्र होता है ।२६२।

पीत लेश्यारूप संस्कार मंद होता है । पद्म लेश्याका परिणाम और भी मंद होता है । शुक्ल लेश्याका परिणाम अतिशय मंद होता है । इन लेश्याओंमें जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंत पट्स्थानयुक्त वृद्धि होती है । २६३ ।

षट्स्थानयुक्त वृद्धिका स्वरूप-

छह प्रकारसे जो वृद्धि होती है उसे षट्स्थानयुक्त अथवा षट्स्थानपतित वृद्धि कहते है। षट्स्थानोंके नाम-अनतभाग असख्यातभाग, संख्यातभाग, संख्यातगुण, असंख्यातगुण तथा अनतगुण-ये है। अनंत बडी संख्या है। उससे नीचेकी सख्या असख्यात सख्या है। और उससे भी नीचेकी संख्या संख्यात संख्या है। छोटी सख्यासे किसी एक संख्याको भाग देनेपर लब्ध अधिक आता है। और बडी सख्यासे उसी सख्याको भाग दिया जाय तो लब्ध कम आता है। उदाहरणार्थ, चौवीस सख्याको आठसे भागा जाय तो लब्ध तीन आता है। छहसे भागा जाय तो चार आता है। और चारसे उसी चौवीस को भागा जाय तो लब्ध छह आता है। गुणाकार में इससे उल्टी बात है-गुणाकारकी संख्या जैसी अधिक होगी वैसा लब्ध अधिक आवेगा। गुणकार कम होगा तो लब्ध कम आवेगा। पाचको दोसे गुणनेपर दश आता है। चारसे गुणनेपर लब्ध वीस आता है। इसी प्रयोजनसे षट् स्थानोंके उत्तरोत्तर नाम माने गये हैं। किसी एक जघन्य स्थानकी वस्तुसख्याको प्रथम स्थान मानकर उसमें उत्तरोत्तर अधिक अधिक वृद्धि होनेकी जातिया छह हैं। मूल एक विवक्षित राशिमें, अनतका भाग देनेपर जो लब्ध हो, उतना प्रथम स्थानकी राशिमें मिलानेपर जो सख्याकी वृद्धि होगी उसे अनतभाग वृद्धि कहते हैं। उससे आगे जो ऐसी अधिक वृद्धि हो कि असख्यातका भाग देनेपर वह लब्ध राशि ठहरती हो तो, उसे असंख्यातभागवृद्धि कहते हैं। इसके आगे अधिक वृद्धि हो तो वह सख्यात भाग वृद्धि कहाती है।

अनंतभाग वृद्धिके समय भाग जिसका दिया जाता है ऐसी अनंत संख्याकी कोई मर्यादा निश्चित नहीं की जासकती है। किसी एक मध्यम अनत संख्यासे भाग देना आरंभ कर दिया जाता है। सख्यातका प्रमाण निश्चित है। उसके ऊपर एक अधिक होनेसे असंख्यातकी सख्या शुरू हो जाती है। और जहासे अनंत संख्या शुरू होती है उससे एक सख्या नीचेतक असख्यात संख्या मानी जाती है। सख्यात सख्याके सख्यात भेद हैं। असख्यातके असख्यात भेद है। और अनतका अर्थ यह है कि छद्मस्थको उसका अत न लगे। केवलीके ज्ञानमें समीका अत लगता है इसलिये अनतका भी अत लगना मानना चाहिए।

किंतु वहांपर अंत लग जानेसे भी वस्तुमें अनंतकी अनंतता ज्योंकी त्यों रहती है। कारण अनंतका केवलीको ज्ञान होता है अवश्य परन्तु अनंतका यथार्थ ज्ञान तो वही कहावेगा जो अनंतको अनंत समझा हो। अर्थात्, केवलीका ज्ञान इतना अनंत है कि उसमें जगत्के सभी अनंत प्रतिभासित होते हैं। इसलिए केवल ज्ञानमें प्रतिभासित होनेके कारण अनंतकी अनंतता नष्ट नहीं हो जाती है। अनंतके भेद भी अनंत हैं। अनंतभाग वृद्धिका जो प्रारंभ होता है वह एक कोई मध्यम अनंतके भागसे रहता है।

जो एक बीचके अनंतका भाग प्रारंभमें दिया हो उससे एक कम अनंतका भाग देनेपर लब्ध और भी अधिक आवेगा। उसको जोडनेसे अनंत भाग वृद्धिका आगेका स्थान सिद्ध होजाता है। इसी प्रकार एक एक कम करके उस अनंतका भाग देते जानेसे अनंत भाग वृद्धिके तीसरे चौथे आदि ऊपर के स्थान सिद्ध होते हैं। इस क्रमसे जघन्य अनंतका भाग देनेका भी नंबर प्राप्त हो जाता है। उस समय जो लब्ध आवेगा उसे अनंतभाग वृद्धिका अंतिम अथवा सर्वोत्कृष्ट स्थान समझना चाहिये।

जिस प्रकार एक एक कम करते भाजक संख्यामें जघन्य अनंत प्राप्त हो गया उसी प्रकार एक और भी संख्या कम की तो उत्कृष्ट असंख्यात संख्या लगती है। उसका भाग विवक्षित संख्याको देकर जो लब्ध हो उतना अनंतभाग वृद्धिके ऊपर जोडनेसे असंख्यातभाग वृद्धिका प्रथम स्थान लगता है। उत्कृष्ट असंख्यातमें एक एक कम करके उसका विवक्षितको भाग देकर ऊपर जोडते जानेसे असंख्यात भाग वृद्धिके दूसरे तीसरे आदि स्थान सिद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार जघन्य असंख्यातका विवक्षित को भाग देकर जो लब्ध आवे उतना अधिक जोडनेसे असंख्यात भाग वृद्धिका अंतिम उत्कृष्ट स्थान सिद्ध होजाता है। उससे एक संख्या नीचे उतरते ही उत्कृष्ट संख्या लगती है। वहांसे जघन्य दो संख्यातक सर्व संख्याओंके क्रमसे भाग देकर लब्ध संख्याओंको उत्तरोत्तर जोडते जानेसे संख्यात भाग वृद्धिके सर्व स्थान सिद्ध हो जाते हैं। भाग वृद्धि दो का भाग देने पर समाप्त होती है

अब जघन्य संख्यातसे लेकर उत्कृष्ट संख्यापर्यंत सब संख्याओंका विवक्षित संख्याको गुणित करके लब्धको वृद्धिके स्थानोंमें क्रमसे जोडता जाय तो संख्यातगुण वृद्धिके जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंत स्थान निकल आते हैं। यह चौथा संख्यात भाग वृद्धिका स्वरूप है। उत्कृष्ट संख्यासे गुणित करके जो लब्ध आया था उसको जोडनेसे संख्यात गुण वृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है।

उत्कृष्ट संख्यामें एक मिलानेसे जघन्य असंख्यात हो जाता है । इससे पूर्व विवक्षित संख्याको गुणित कर जो लब्ध आया वह संख्यात भाग वृद्धिके ऊपर जोडा तो असंख्यात भाग वृद्धिका प्रथम जघन्य स्थान सिद्ध होगा । आगे एक एक संख्या बढाकर मध्यम सर्व असंख्यात संख्याओंसे क्रमसे पूर्व विवक्षित को गुणित कर उत्तरोत्तर वृद्धिके स्थानोंमें जोडते जानेसे असंख्यात भाग वृद्धिके दूसरे तीसरे आदि अंत पर्यंतके स्थान सिद्ध हो जाते हैं । यह पांचवी असंख्यातगुण वृद्धि है ।

उत्कृष्ट असंख्यातमें एक मिलानेसे जघन्य अनंत संख्या होती है । इसका गुणा पूर्व विवक्षित संख्याको करने पर जो लब्ध आवे उतना उत्कृष्ट असंख्यातगुण वृद्धिके स्थानमें जोडनेसे जघन्य अनंतभाग वृद्धिका स्थान निकलता है । एक एक अधिक अनंतका गुणा करके इसी प्रकार जोडते जानेसे दूसरे तीसरे आदि अनंतगुण वृद्धिके स्थान सिद्ध हो जाते हैं । छठी अनंतगुण वृद्धिका यह स्वरूप है ।

लेश्याके परिणामोंमें भी जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंत अनंत भेद होते हैं । पहिली अशुभ तीन लेश्याओंमें निकृष्टताके अंश उत्तरोत्तर बढनेसे ऊपर ऊपरके स्थान होते हैं । और पीतादि शुभ तीन लेश्याओंमें विशुद्धताके अंश बढनेसे उत्तरोत्तरके स्थान होते हैं । परिणामोंमें सूक्ष्म अंशोंको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं । सबसे जघन्य जो लेश्या होगी उसमें ऐसे सूक्ष्म अंश अनंतों होते हैं । आगे इस जघन्य स्थानके अंशोंकी संख्याको क्रमसे एक विशिष्ट अनंत संख्यासे भाग देकर जो लब्ध आवें उतने अंश जघन्य स्थान के अंशोंमें जोड देनेसे अनंत भाग वृद्धिका प्रारंभ होता है । जबतक उत्तरोत्तर थोडी वृद्धि होती है तबतक अनंतवें भागकी वृद्धि समझना । आगे जिन स्थानोंमें अधिक अधिक वृद्धि हुई दीखे उन स्थानोंमें असंख्यात तथा संख्यात भाग वृद्धि हुई समझना । और भी आगे चलकर ऊपरके स्थानोंमें बहुत अधिक वृद्धि हुई दीखे तो वे स्थान संख्यात गुणी, असंख्यात गुणी तथा अनंतगुणी अंशोंकी वृद्धि होकर तयार हुए समझने चाहिये । इसमेंसे प्रत्येक लेश्याके सामान्यसे जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ऐसे तीन तीन भेद किये जाते हैं ।

॥९२॥

निर्मूलस्कंधयोश्छेदे भावाः शाखोपशाखयोः । उच्चये पतितादाने भावलेश्याः फलार्थिनाम् ॥ २६४ ॥
षट् षट् चतुर्षु विज्ञेयास्तिस्रस्तिस्रः शुभास्त्रिषु । शुक्ला गुणेषु षट्स्वेका लेश्या निर्लेश्यमन्तिमम् ॥ २६५ ॥
६ । ६ । ६ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ० । इति मिथ्यादृष्ट्यादिषु लेश्या ।
कर्मभूमिष्वपूर्णानामाद्यास्तिस्रो विचक्षणैः । जघन्यात्रादि कापोती लेश्या क्षायिकदृष्टिषु ॥ २६६ ॥
षट् नृतिर्यक्षु तिस्रोऽन्त्याः संत्यसख्येयजीविषु । एकाक्षविकलासञ्ज्ञिष्वाद्यास्तिस्रो भवन्ति ताः ॥ २६७ ॥

उदाहरण द्वारा इन लेश्याओंके परिणामोंको दिखाते हैं—फलकी इच्छासे किसी वृक्षको जडसे काटनेकी भावना होना कृष्ण लेश्याका उदाहरण है । स्कंधको काटनेके भाव होना नील लेश्याका उदाहरण है । शाखा काटनेके भाव होना कापोत लेश्या समझो । छोटी-छोटी डाली काटनेके भाव होना पीतलेश्याके तुल्य है; लगे हुए फल मात्रोंको तोडनेके परिणाम पद्मलेश्याका उदाहरण समझो । केवल पडे हुए फलोंको लेनेके भाव होना शुक्ल लेश्याका उदाहरण है । भावार्थ, ऊपरके उदाहरणोंमें जैसे परिणामोंकी उत्कटता तथा मंदता माननी पडती है उसी प्रकार लेश्याओंके परिणाम कृष्णसे लेकर शुक्लपर्यंत क्रमसे उत्कट तथा मंद होते हैं । २६४ ।

पहिले चार गुणस्थानोंतक छह छह लेश्याएं पाई जाती है । पांचवें छठे सातवें इन तीन गुणस्थानोंमें ऊपरकी शुभ तीन तीन लेश्याएं रहती हैं । आठवेंसे तेरहवें गुणस्थान पर्यंत छह स्थानोंमें एक शुक्ल लेश्या ही पाई जाती है । अंतिम चौदहवां गुणस्थान लेश्यारहित है । योग की प्रवृत्तिको लेश्या कहा है । चौदहवें गुणस्थानमें योगका भी अभाव हो जाता है इसलिये वहां लेश्याका भी अभाव हो जाता है । इस प्रकार गुणस्थानोंमें लेश्याओंका स्वरूप है ॥ २६५ ॥

कर्मभूमिके अपर्याप्तक जीवोंमें विद्वानोंने पहिली कृष्णादि तीन लेश्याएं बताई हैं । क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जघन्य कापोत लेश्या ही रहती है ॥ २६६ ॥

मनुष्य तिर्यंचोंमें छहों लेश्याएं रहती हैं । असंख्यात वर्ष आयुवाले भोगभूमिज जीवोंमें अंतकी पीत पद्म शुक्ल ये तीन लेश्याएं होती हैं । एकेंद्रिय, विकलत्रय तथा असंज्ञी पर्यंतके जीवोंमें आदिकी कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्याएं होती हैं ॥ २६७ ॥

॥९३॥

द्विः कापोताथ कापोतानीले नीला च मध्यमा । नीलाकृष्णे च कृष्णातिकृष्णा रत्नप्रभादिषु ॥ २६८ ॥
रत्नप्रभायां जघन्या कापोता, शर्करायां मध्यमा कापोता, वालुकायामुत्कृष्टा कापोता नीला जघन्येत्येव त्रिक योज्यम् ।
अपूर्णेष्वादिमास्तिस्रो जघन्या भावनादिषु । त्रिषु पूर्णेषु पीतैका लेश्याऽन्यापि सुधाशिषु ॥ २६९ ॥
सौधर्मैशानयो पीता पीतापद्मे द्वयोस्ततः । कल्पेषु षट्स्वत पद्मा पद्माशुक्ले द्वयोस्तत ॥ २७० ॥
आनतादिषु शुक्लाऽतस्त्रयोदशसु मध्यमा । चतुर्दशसु सोत्कृष्टा विज्ञेयाऽनुदिशादिषु ॥ ७१ ॥

नरकोंमें लेश्याओंका विभाग बताते है ऊपरसे पहिले दूसरे दो नरकोंमें कापोत लेश्या है । तीसरे नरकके ऊपरी भागमें कापोत लेश्या है, नीचले भागमें नील लेश्या है । चौथे नरकमें मध्यम नील लेश्या है । पाचवें नरकमें ऊपर नील लेश्या है और नीचेके भागमें कृष्ण लेश्या है । छट्ठे नरकमें मध्यम कृष्ण लेश्या है । सातवें नरकमें अतिकृष्ण लेश्या है । पहिले नरकमें जो कापोत लेश्या बताई है वह जघन्य कापोत समझनी । दूसरे नरकमें मध्यम कापोत समझनी । तीसरे नरकके ऊपरी भागमें कापोत लेश्या है वह उत्कृष्ट समझनी । और तीसरे नरकके नीचले भागमें नील लेश्या बताई है वह जघन्य नील लेश्या समझनी । इस प्रकार जहा नीचे नीचे तीन स्थानोंतक एक एक लेश्या बताई है वहा जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ऐसे क्रमसे तीन भाग एक एक लेश्याके समझने चाहिए। २६८।

भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क इन तीन जातिके देवोंमें अपर्याप्तक अवस्था पर्यंत पहिली तीन जघन्य लेश्याए होती है । इन तीनो देवोंमें पर्याप्तक अवस्थामें एक पीत लेश्या ही रहती है । २६९ ।

सौधर्म ऐशान इन दो स्वर्गोमें पीतलेश्या है । इसके ऊपर सानत्कुमार माहेंद्र इस दूसरे पटलके दोनों विमानोमें पीत और पद्म लेश्या है । पाचवेंसे लेकर छह स्वर्गोमें पद्मलेश्या है । शतार सहस्रार इन ग्यारहवें बारहवें दो स्वर्गोमें पद्म तथा शुक्ल लेश्याए हैं (आनतादि स्वर्गोमें शुक्ललेश्या है। तेरहवेंमें मध्यम शुक्ल लेश्या है । चौदहवे स्वर्गसे अनुदिश पर्यंत उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या है ॥ २७०–२७१ ॥

आद्ये निकायत्रये देवानामपर्याप्तानामाद्यास्तिस्रः पर्याप्तानामेका जघन्या पीतेति चतस्रो लेश्याः। सौधर्मैशान-योर्मध्यमा पीता, ततो द्वयोरुत्कृष्टा पीता, जघन्या पद्मेत्येव त्रिक त्रिकं योज्यमिति भाव ।

लेश्याः समाप्ताः अथ लेश्याकर्मोच्यते।

रागद्वेपमदाविष्टो दुर्ग्रहो दुष्टमानस । क्रोधमानादिभिस्तीव्रैर्ग्रस्तोऽनतानुबधिभि ॥ २७२ ॥
निर्दयो निरनुक्रोशो मद्यमासादिलपटः। सर्वदा कदनासक्तः कृष्णलेश्यो मतो जनः ॥ २७३ ॥
कोपी मानी मायी लोभी रागी द्वेपी मोही शोकी। हिंस्रः क्रूरश्चण्डश्चौरो मूर्खः स्तब्धः स्पर्द्धाकारी ॥ २७४ ॥

पहिले तीन निकायोंके देवोंमें अपर्याप्त अवस्था पर्यंत आदिकी तीन–कृष्ण नील कापोत–ये लेश्याए होती है । इन देवोमें पर्याप्तक अवस्थामें जघन्य पीत लेश्या होती है। इस प्रकार पहिले तीन निकायोंमें चार लेश्याए समझना । सौधर्म तथा ईशानमें जो पीत लेश्या बताई है वह मध्यम पोत है । इससे ऊपर के तीसरे चौथे दो स्वर्गोंमें भी पीत लेश्या है परतु वह उत्कृष्ट पीत लेश्या समझनी। और वहा तीसरे चौथे स्वर्गमें जो पद्मलेश्या बताई है वह जघन्य पद्म समझनी । इसी प्रकार पद्म तथा शुक्ल लेश्याके भी तीन तीन भाग करके ऊपर उत्कृष्ट, नीचे जघन्य और मध्यमें मध्यम समझना। ऐसे इन लेश्याओंके तीन तीन भेद हो जाते है।

अब किस लेश्यावालेकी कैसी प्रवृत्ति होती है यह विषय आगे बताते है —

कृष्ण लेश्यावालेका स्वरूप—राग, द्वेष, मद इत्यादि दोषोंसे भरा हुआ, जिसका सकल्प अत्यंत दुष्ट, दुराग्रही, अनतानुबधी क्रोध मान मायाचार तथा लोभसे ग्रसित, दयारहित, पश्चात्ताप रहित, मद्य मासादिके सेवन में अति आसक्त, सदा निषिद्ध बुरे अन्नको खानेवाला-ऐसा जो मनुष्य हो उसे कृष्ण लेश्यावाला समझो। २७२–२७३ ।

नील लेश्याके कर्म—कोप युक्त, मानयुक्त, मायाचारसे पूर्ण, लोभी, रागसहित, द्वेप सहित, मोही, शोकयुक्त, हिंसामें

॥९५॥

निद्रालुः कामुको मंदः कृत्याकृत्याविचारकः। महामूर्च्छो महारंभो नीललेश्यो निगद्यते ॥ २७५ ॥
शोकभीमत्सरासूयापरनिन्दापरायणः। प्रशंसति सदात्मानं स्तूयमानः प्रहृष्यति ॥ २७६ ॥
वृद्धिहानी न जानाति न मूढः स्वपरान्तरम् । अहंकारग्रहग्रस्तः समस्तां कुरुते क्रियाम् ॥ २७७ ॥
श्लाघिने नितरां दत्ते रणे मर्तुमपीहते । परकीययशोध्वंसी युक्तः कापोतलेश्यया ॥ २७८ ॥
सम्यग्दृष्टिरविद्विष्टो हिताहितविवेचकः । वदान्यः सदयो दक्षस्तेजोलेश्यो महामनाः ॥ २७९ ॥

रत, क्रूर स्वभावका, चंड-उग्र स्वभावका, चोर, धूर्त, आलसी, दूसरोंसे ईर्ष्या करनेवाला, निद्रा अधिक लेनेवाला, कामासक्त, मंद प्रवृत्ति वाला, कर्तव्य अकर्तव्य का विचार न करनेवाला, बहुत ममत्व रखनेवाला, बहुत आरंभयुक्त–ऐसे मनुष्य को नील-लेश्यावाला समझो। २७४-२७५।

शोक भय मत्सर असूयासे भराहुआ तथा पर निंदा करनेमें तत्पर हो, अपनी सदा प्रशंसा करे, अपनी कोई स्तुति करत हो तो प्रसन्न हो, अपने हानि लाभको न समझे, अपने परायेका अंतर न समझ पाता हो, अहंकारसे ग्रसित होकर सर्व कार्योंको करे, प्रशंसा करनेवालेको अपनी वस्तुका दान कर देता हो संग्राममें मरने तक को तयार हो जाय, दूसरेकी कीर्तिको मिटाना चाहे, ऐसे मनुष्यको कापोत लेश्यावाला समझो। २७६–२७७–२७८।

'कपोतस्येयं कापोती' ऐसा कपोत शब्दसे कापोत बनकर स्त्रीलिंगमें कापोती बनना चाहिये। परन्तु मूल पाठमें बहुतसे स्थानोंमें 'कापोता' ऐसा पाठ मिलता है और कहीं कहीं पर 'कापोती' ऐसा भी मिलता है। कबूतरको कपोता कहते हैं। कबूतरकासा रंग होना कापोती लेश्याका अर्थ है।

सम्यग्दर्शन सहित होना, दूसरसे द्वेष न करना, हिताहितका विचार करना, दान देनेवाला होना, सदय होना, चतुर होना–ऐसे उदार बुद्धिके मनुष्यको तेजोलेश्यावाला समझो। पीत लेश्याको तेजोलेश्या भी कहते हैं। २७९।

॥९६॥

शुचिर्दानरतो भद्रो विनीतात्मा प्रियंवदः । साधुपूजोद्यत शान्तः पद्मलेश्योऽनवक्रियः ॥ २८० ॥
निर्निदानोऽनहङ्कारः पक्षपातोज्झितोऽशठः । रागद्वेषपराचीनः शुक्ललेश्यः स्थिराशयः ॥ २८१ ॥
निरस्तोभयलेश्याका नित्यसौख्यपरंपरा । संसारप्रक्रमातीताः सिद्धाः संति निरापदः ॥ २८२ ॥

शुचि रहता हो, दान करनेमें तत्पर हो, भद्र हो, विनयशील हो, प्रिय भाषी हो, साधु जनोंकी पूजा करनेमें उद्यत रहता हो, शान्त प्रकृतिवाला हो—ऐसी निर्दोष क्रिया करने वाला मनुष्य पद्म लेश्यावाला है ऐसा समझो । २८० ।

आगामी भोगोंकी इच्छारूप निदानका संकल्प न करता हो और अहंकाररहित, पक्षपातरहित, सरल परिणामी, रागद्वेष रहित हो—ऐसे मनुष्यको शुक्ल लेश्यावाला समझो । यह मनुष्य स्थिर बुद्धिका होता है । २८१ ।

इस प्रकार भाव लेश्याओंके द्वारा कैसे कैसे स्वभाव उत्पन्न होते हैं और मनुष्य कैसे कर्मोंको करनेमें प्रवृत्त होता है—यह बात खुलासा करके बताई । अब लेश्या जिनकी नष्ट होगई हैं ऐसे परमात्माओंका स्वरूप बताते हैं ।

जिनकी द्रव्य भाव दोनो लेश्याएं नष्ट होगई हैं उन्हे नित्य परम सुखोंकी परंपरा प्राप्त होती है, वे संसारके चक्रसे हटकर निर्बाध अवस्थाको प्राप्त होते हैं और व सर्व आपदाओंसे मुक्त होजाते हैं ऐसे वे परमात्मा सिद्ध कहाते हैं । २८२ ।

छह लेश्याओंमेंसे कृष्ण लेश्याको भ्रमरके समान बताया है । नीललेश्या नील मणिके समान है । कापोत लेश्या कबूतरके समान मैले रंगकी होती है । पीत लेश्या सुवर्णके समान होती है । पद्म लेश्या कमलके समान होती है । शुक्ललेश्या शंखके समान होती है । ये जिस प्रकार नाम हैं उसी प्रकार परिणामोंमें मलिनता तथा उज्वलताकी मात्रा रहती है । शुक्ललेश्या सयोग केवलीके भी होती है और उसका उदाहरण शंख है । तो भी है वह परिणामोंका विकार ही । इसीलिये तेरहवें गुणस्थानमें योगके सद्भावसे उसका अस्तित्व माना गया है । अत्यंत निर्विकार स्वरूप लेश्यारहितका होता है इसलिये चौदहवें गुणस्थानक केवली लेश्यारहित माने गये हैं । क्योंकि, उनके योग भी नष्ट हो गये होते हैं । कर्मबंधका अभाव भी लेश्या नष्ट हो जानेवालेके ही होता है । इसलिये लेश्या ही कर्मबंधका कारण है ।

इति लेश्या मार्गणा.

प्रागुपात्तकर्मपटलानुभागस्पर्द्धकानां शुद्धियोगेन प्रतिसमयानंतगुणहीनानामुदीरणा क्षायोपशमिकी लब्धिः।
क्षयोपशमविशिष्टोदीर्णानुभागस्पर्द्धकप्रभवः परिणामः सातादिकर्मबन्धनिमित्तः सावद्यकर्मबन्धविरुद्धः शौद्धी लब्धिः।

यथार्थतत्वोपदेशतदुपदेशकाचार्याद्युपलब्धिरुपादिष्टार्थग्रहणधारणाविचारणाशक्तिर्वा देशनिकी लब्धिः।

अन्त कोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बंधमापद्यमानेषु विशुद्धिपरिणामयोगेन सत्कर्मसु सख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्त:कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु आद्यसम्यक्त्वयोग्यता भवतीति प्रायोगिकी लब्धि ।

अथाप्रवृत्तकापूर्वानिवृत्तिकरणत्रयम्। विधाय क्रमतो भव्य सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते ॥ २८८ ॥

पांचो लब्धियोंका अर्थ आगे विस्तारसे बताते हैं।

शुद्धिके द्वारा प्रतिसमय अनंतगुण हीन हुए पूर्वोपात्त कर्मपटलोंके अनुभाग स्पर्धकोंकी उदीरणा होना सो पहिली क्षायोपशमिक लब्धि है।

क्षयोपशम विशिष्ट अनुभाग स्पर्धक उदीर्ण हो जानेसे उत्पन्न हुए विशुद्ध परिणाम, व सातावेदनीय आदि पुण्यप्रकृतियोंके बांधनेमें कारण होते हैं और पाप कर्मोंके बंधको रोकनेमें कारण होते हैं, ऐसे इन परिणामोंको शुद्धि लब्धि कहते हैं। यह दूसरी लब्धि है।

यथार्थ तत्त्वोंके उपदेशको देनेवाले आचार्य आदिकोंका योग प्राप्त होना अथवा उपदेशके अर्थको ग्रहण करनेकी, विचारणा करनेकी शक्ति प्रगट होना—यह सर्व देशना लब्धि कहाती है। यह तीसरी लब्धि है।

नवीन बंध होनेवाले कर्म अंत:कोटीकोटी सागरोपम स्थितिवाले होने चाहिये और सत्ताके कर्मोंकी स्थिति, परिणामोंकी विशुद्धतासे सख्यात हजार सागर कम अंत:कोटीकोटी सागर प्रमाण घटकर रह जानी चाहिये तब प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न होनेकी योग्यता प्राप्त होती है। यह चौथी प्रायोग्यलब्धि है।

अध:प्रवृत्त अपूर्व अनिवृत्ति इन तीन करणोंको क्रमसे करके पीछे भव्य जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होता है ॥ २८८ ॥

भव्योऽनादिमिथ्यादृष्टि षड्विंशतिमोहप्रकृतिसत्कर्मक सादिमिथ्यादृष्टिर्वा षड्विंशतिमोहप्रकृतिसत्कर्मक सप्तविंशतिमोहप्रकृतिसत्कर्मको वा अष्टाविंशतिमोहप्रकृतिसत्कर्मको वा प्रथमसम्यक्त्वमादातुकाम शुभपरिणामाभिमुखोऽन्तर्मुहूर्तमनतगुणवृद्धया वर्द्धमानविशुद्धिश्चतुर्पु मनोयोगेष्वन्यतमेन मनोयोगेन चतुर्पु वाग्योगेष्वन्यतमेन वाग्योगेनौदारिकवैक्रियिककाययोगयोरन्यतरेण काययोगेन त्रिपु वेदेष्वन्यतमेन वेदेनालीढो निरस्तसकलशो हीयमानान्यतमकषायः साकारोपयोगो वर्द्धमानशुभपरिणामयोगेन सर्वप्रकृतीनां स्थितिं ह्रासयन्नशुभप्रकृतीनामनुभागबधमपसारयन् शुभप्रकृतीना रस संवर्द्धयन् त्रीणि करणानि प्रत्येकमतर्मुहूर्त्तकालानि कर्त्तुमुपक्रमते । तत्रान्तःकोटीस्थितिकानि कर्माणि कृत्वा अथाप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरण च क्रमेण प्रविशति। तत्र सर्वकरणाना प्रथमसमये स्वल्पा शुद्धिः । तत प्रतिसमयमान्तर्मुहूर्त्तसमाप्तेरनतगुणा द्रष्टव्या । सर्वाणि करणान्यन्वर्थानि,—अथ प्रागप्रवृत्ताः कदाचिदीदृशाः करणा परिणामा यत्र तदथाप्रवृत्तकरणं । अधउपरिस्थाः समानाः करणाः यत्र तदधःप्रवृत्तकरणमिति वान्वर्थसज्ञं । अपूर्वाः समये समये अन्ये शुद्धतराः करणा यत्र तदपूर्वकरण । एकसमयस्थानामनिवृत्तयोऽभिन्नाः करणा यत्र तदनिवृत्तिकरण । सर्वेपु करणेपु नानाजीवानामसंख्येयलोकप्रमाणाः परिणामा द्रष्टव्याः । तत्राथाप्रवृत्तकरणे स्थितिखंडनानुभागखडनगुणश्रेणिसक्रमा न सति परमनतगुणवृद्धया विशुद्धया अशुभप्रकृतीरनतगुणानुभागहीना बध्नाति शुभप्रकृतीरनंतगुणरसवृद्धाः स्थितिमपि पल्योपमासख्येयभागहीनां करोति । अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणयोः स्थितिखडनादयः संति । क्रमेणाशुभप्रकृतीनामनुभागबधोऽनतगुणहान्या शुभप्रकृतीनां चानतगुणवृद्धया वर्त्तते । तत्रानिवृत्तिकरणस्यासंख्येयेपु भागेपु गतेष्वान्तरकरणमारभते, येन दर्शनमोहनीय निहत्य चरमसमये त्रिधा करोति शुद्धाशुद्धमिश्रभेदेन, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्वं चेति।

प्रशमय्य ततो भव्यः सहानतानुबंधिभिः । ता मोहप्रकृतीस्तिस्रो याति सम्यक्त्वमादिमम् ॥ २८९ ॥

सम्यग्दर्शनकी योग्यताको गद्य द्वारा दिखाया है उसका अर्थ इस प्रकार है—सम्यग्दर्शन जिसको प्राप्त हो सकता है वह भव्य होना चाहिये । वह अनादि मिथ्यादृष्टि हो तो उसके एक दर्शनमोहनीय तथा पच्चीस चारित्रमोहनीय इस प्रकार सर्व

तीनों करणोंके नाम अन्वर्थ हैं। अथ अर्थात् इस अवस्थासे पूर्वमें ऐसे करण अर्थात् परिणाम नहीं होते थे इसलिये प्रथम करणको अथाप्रवृत्त करण कहते हैं। इस प्रथम करणकी दूसरी सज्ञा अधःप्रवृत्त करण ऐसी भी है। नीचेके समय वालोंके परिणामोंके समान भी जहा ऊपर समय वालोंके परिणाम रहते हैं वह अधःप्रवृत्त करण ऐसा दूसरे पर्याय नामका अर्थ है। समय समयमें जहा अपूर्व अपूर्व ही अर्थात् नवीन नवीन परिणाम शुद्धतर प्रगट होते हों वह अपूर्वकरण है। समान समान समय वालोंके परिणाम जहांपर निवृत्त अर्थात् भिन्न न हो अथवा जुदे जुदे न हों वह अनिवृत्ति करण तीसरा करण है। तीनों करणोंमें रहनेवाले सर्व जीवोंके ये परिणाम असंख्य लोक प्रमाण होते हैं।

भावार्थ, पहिले अध करणमें जितने समयतक जीव रहता है उतने समयतक प्रत्येक समयमें जुदे जुदे जीवोंके जुदे जुदे हीनाधिक विशुद्धिवाले परिणाम भी हो सकते हैं और परस्परमें समान परिणाम भी हो सकते हैं। तथा ऊपर नीचेके समयोंमें रहनेवालोंमें भी कुछ अवधि पर्यंत समान तथा जुदे जुदे दोनों प्रकारके परिणाम रह सकते हैं।

दूसरे करण वालोंमें ऐसा नियम है कि ऊपर नीचेके समयोंमें रहनेवाले जुदे जुदे योगियों के परिणाम एक दूसरेमे मिलत नहीं है। उत्तरोत्तर समयोंके अनुसार नाना जीवोंकी विशुद्धि बढती हुई ही होती है। पहिले करणमें यह बात नहीं थी। वहांपर किसी ऊपर समय वालेके परिणाम नीचले समयवालेके साथ कदाचित् मिल भी जाते थे। दूसरे करणमे भी मात्र समान समयवालोंके परिणाम बहुत प्रकारके होते है इसलिये समान समयो में रहने वाले अनेक योगियोंके परिणाम परस्परमें जुड भी जाते हैं और किसी किसीके एक दूसरेमे जुदे भी रहा करते है।

तीसरे करणमें पूर्वके दोनो करणोंसे जुदी बात है। तीसरे करणमें जितने समयतक जीव ठहरता है उतने ही प्रकारके उत्तरोत्तर बढती विशुद्धिवाले उसके परिणाम होते है। इसलिये तीसरे करणके जुदे जुदे समयोंमें परस्परके जुदे जुदे ही परिणाम होते है और समान समयोंमें रहने वालोंके परिणाम परस्परमें समान ही रहते है।

पहिले अध प्रवृत्त करणमे स्थिति खंडन, अनुभागखडन, गुणश्रेणि निर्जरा या गुणश्रेणि संक्रम ये कार्य नहीं होते। ये कार्य दूसरे तीसरे करणमें होते हैं। पहिलेमें केवल यह कार्य होता है कि अनंतगुणी बढती हुई परिणामविशुद्धिसे अशुभ प्रकृ-

संवेगप्रशमास्तिक्यदयादिव्यक्तलक्षणम् । तत्सर्वदुःखविध्वंसि त्यक्तशङ्कादिदूषणम् ॥ २९० ॥
निसर्गाधिगमाभ्यां यच्छ्रद्धानं तत्वगोचरम् । अज्ञानच्छेदकं त्रेधा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ २९१ ॥

तियोंको अनतगुणी हीनानुभाग करके बाधता है और शुभ प्रकृतियोंको अनंतगुणा रस चढाकर बांधता है, स्थितिको भी पल्यो-पमके असख्यातवें भाग प्रमाण कम करके बाधता है।

दूसरे अपूर्वकरणमें तथा तीसरे अनिवृत्ति करणमें स्थितिखंडनादिक कार्य होते हैं। क्रमसे अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग बंध अनंतगुणा घटकर कम रह जाता है और शुभ प्रकृतियोंका अनुभाग बंध अनंतगुणा बढकर रहने लगता है। इन तीनों करणोंमेंसे तीसरे अनिवृत्ति करण परिणामोंके असंख्यात भाग बीत जानेपर आतर करणको जीव करता है। इस आंतर करणमें जीव दर्शनमोहको कुचलता है। कुचलते कुचलते अंत समयमें दर्शनमोहके तीन टुकडे करदेता है। एक टुकडा फिर भी पूरा दर्शन मोहरूप अशुद्ध ही रहता है। दूसरा शुद्ध हो जाता है। तीसरा टुकडा अर्थात् कुछ प्रदेशोंमें शुद्धाशुद्धकी मिश्र अवस्था होजाती है। शुद्धको सम्यक्त्व अथवा सम्यक्त्वमोहनीय कहते हैं। अशुद्धको मिथ्यात्व यह पहिला ही नाम देते हैं। मिश्रको मिश्र-मोहनीय अथवा सम्यङ्मिथ्यात्व कहते हैं।

इस प्रकार तीसरे करणके भीतर दर्शन मोहके तीन भाग करके जीव इन तीनोंका तथा अनंतानुबन्धी चार कषायोंका उपशम कर देता है और आदिके उपशम सम्यग्दर्शनको प्राप्त हो जाता है। २८९।

सवेग रहना, प्रशम उत्पन्न होना, आस्तिक्य होना, दया भाव रहना इत्यादि गुण प्रगट हुए तो सम्यक्त्वके लक्षण समझे जाते हैं। सम्यग्दर्शनसे सर्व दुःख दूर होते है। परंतु शंकादि दोष सम्यक्त्वमें न रहने चाहिये। शंका कांक्षा विचिकित्सा अन्यदृष्टि प्रशंसा, अन्य दृष्टि स्तुति इन पाचको शंकादि दोष कहते हैं। अथवा शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढता, आदि आठ दोष भी बताये हैं। २९०।

निसर्गसे भी यह सम्यक्त्व उत्पन्न होता है और अधिगमसे अर्थात् परोपदेशसे भी होता है। तत्त्वका श्रद्धान

शम सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रानंतानुबधिनाम् । प्रादुर्भवति सम्यक्त्वं शामिक क्षायिक क्षयं ॥ २९२ ॥
क्षाणोदयेषु मिथ्यात्वमिश्रानतानुबन्धिषु । लब्धोदये च सम्यक्त्वे क्षायोपशमिक भवेत् ॥ २९३ ॥
रूपैर्भयकरैर्वाक्यैर्हेतुदृष्टान्तदर्शिभिः । जातु क्षायिकसम्यक्त्वो न क्षुभ्यति विनिश्चलः ॥ २९४ ॥
नृगतौ दृष्टिमोहस्य मर्त्यः प्रारभते क्षयम् । निर्वर्त्तते समस्तासु कर्मभूमिभव स्फुटम् ॥ २९५ ॥
क्षयस्यारभको यत्र पर तस्माद्भवत्रयम् । अनतिक्रम्य निर्वाति क्षीणदर्शनमोहतः ॥ २९६ ॥

यह सम्यक्त्वका स्वरूप है । इस सम्यक्त्वसे अज्ञान अर्थात् मिथ्याज्ञानोंका नाश हो जाता है । इस सम्यक्त्वमें तीन भेद है, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक । २९१ ।

चार अनतानुबंधी प्रथम कषायोंको तथा सम्यक्त्वमोह, सम्यङ्मिथ्यात्व, मिथ्यात्व इन सात कर्मोंको सम्यक्त्वका घातक माना जाता है । इस लिये इन सातो कर्मोंका उपशम हो जाय तो औपशमिक सम्यक्त्व प्रगट होता है । इन सातोंका क्षय हो जाय तो क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है । २९२ ।

मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व तथा चार अनतानुबधी कषाय इन छह कर्मोंके उदयगत अशोंका उदयाभाव क्षय हो जानेपर तथा सम्यक्त्व मोहनीयका उदय रहते जो सम्यक्त्व प्रगट होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है । २९३ ।

भयकर रूप दीखनेपर अथवा हेतु दृष्टांतादिके वाक्योंको सुनकर भी क्षायिक सम्यक्त्वी कभी चलायमान नहीं होता । वह निश्चलचित्त होता है । भावार्थ, उसे पर वस्तुका भय नहीं होता । २९४ ।

मनुष्यगतिमें ही दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयका आरभ मनुष्य कर सकता है । और फिर उस दर्शनमोहका पूरा क्षय चारो गतियोंमेंसे कहीं भी कर्म भूमिका मनुष्य कर सकता है ॥ २९५ ॥

जीव जहांपर दर्शनमोहका क्षय आरभ करता है उस भवमे आगे तीसरे भवपर्यंत दर्शनमोहका पूरा घात कर जीव निर्वाणको पहुंच जाता है । तीन भवमे अधिक भव उसको नहीं लगते । २९६ ।

शमको दृष्टिमोहस्य श्रेयो गतिचतुष्टये । संज्ञी पंचेन्द्रियः पूर्णः सान्तरः शुद्धमानसः ॥ २९७ ॥
निकायत्रितये पूर्वे श्वभ्रभूमिषु षट्स्वपि । वनितासु समस्तासु सम्यग्दृष्टिर्न जायते ॥ २९८॥
चतुर्थसंयतान्तेषु सम्यक्त्वत्रयमिष्यते । वेदकेन विनान्येषु क्षायिकं त्रितये परं ॥ २९९ ॥

दर्शन मोहका उपशम करके उपशम सम्यग्दृष्टी होना चारों गतियोंमें हो सकता है, परन्तु वह जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तथा शुद्ध मनवाला होना चाहिये । उपशम सम्यक्त्व को सान्तर मार्गणा बताई गई है ॥ २९७ ॥

देवोंके तीन निकाय—भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क—इनमें सम्यग्दृष्टि मरकर उत्पन्न नहीं होता है । पहिले नरकके सिवाय नीचेके छह नरकोंमें भी, सम्यग्दृष्टि मरकर पैदा नहीं होता है । और सम्यग्दृष्टि स्त्री पर्यायमें कभी भी उत्पन्न नहीं होता है । भावार्थ, सम्यग्दर्शन सहित मरण करनेवाला जीव इतन पर्यायोंमें उत्पन्न नहीं होता है । सम्यग्दर्शन सहित जीव ऐसे कर्मोंको भी नहीं बांधता है जिससे नरकमें जाना पड़े, भवनत्रिक (भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क) में जाना पड़े अथवा स्त्रीपर्यायमें कहीं भी उत्पन्न होना पड़े । २९८ ।

असंयत सम्यक्त्व चौथा गुणस्थान है । इस चतुर्थ गुणस्थानसे सातवें गुणस्थानपर्यंत चार गुणस्थानोंमें तीनों सम्यक्त्व रह सकते हैं । अंतके बारहवें तेरहवें चौदहवें इन तीन गुणस्थानोंमें केवल क्षायिक सम्यक्त्व ही रहता है । इनके सिवाय बाकी गुणस्थान चार रहे—आठवां, नौवां, दशवां, ग्यारहवां—इन चारों गुणस्थानोंमें वेदक सम्यक्त्व नहीं होता—बाकी दो सम्यक्त्व—क्षायिक अथवा औपशमिक—ये दो होते हैं । अर्थात आठवें गुणस्थानसे लेकर उपशम अथवा क्षपक श्रेणीमेंसे एक कोई भी श्रेणी होती है । यदि उपशम श्रेणी हो तो वह उपशम श्रेणीवाला जीव क्षायिक सम्यक्त्वी भी हो सकता है अथवा औपशमिक सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है । परन्तु क्षपक श्रेणीमें क्षायिक सम्यक्त्व ही हो सकता है । उपशम सम्यक्त्वधारी जीव क्षपक श्रेणीको प्राप्त नहीं होता । तथा वेदक सम्यक्त्व रहते हुए श्रेणीपर चढ़ना ही नहीं होता है । वेदकका अर्थ क्षायोपशमिक है । २९९ ।

नृभोगभूमितिर्यक्षु सौधर्मादिषु नाकिषु । आद्यायां श्वभ्रभूमौ च सम्यक्त्वत्रयमिष्यते ॥ ३०० ॥
शेषत्रिदशतिर्यक्षु षट्स्वधःश्वभ्रभूमिषु । पर्याप्तेषु द्वय ज्ञेयं क्षायिकेण विनांगिषु ॥ ३०१ ॥
आयुश्चतुष्कबन्धेऽपि दृष्टिलाभोऽस्ति निश्चितम् । देवायुष्ये च बद्धेऽङ्गी स्वीकरोति व्रतद्वयम् ॥ ३०२ ॥
आद्यसम्यक्त्वतो भ्रष्टः पाकेऽनतानुबधिनाम् । मिथ्यादर्शनमप्राप्तः सासनः कथ्यतेतराम् ॥ ३०३ ॥

सर्व मनुष्योंमें अर्थात् किसी भी मनुष्यमें, भोगभूमिके तिर्यचोंमें, सौधर्मादिक स्वर्गोंके देवोंमें, पहले नरकमें—इतने स्थानोंमें पर्याप्तक अथवा अपर्याप्तक सभी अवस्थामें तीनो सम्यग्दर्शन रह सकते हैं।

भावार्थ, उत्पत्ति तो किसी भी सम्यग्दर्शन की पर्याप्तक अवस्थामें हो होती है। परन्तु किसी भी समग्दर्शनको रखते हुए मरण करके वह जीव नवीन पर्यायको धारण करे तो उसकी अपर्याप्तक अवस्थामें सम्यग्दर्शन मिल सकता है। ऐसी अवस्था वाले सम्यग्दृष्टि जीव भोगभूमि तथा कर्मभूमिके मनुष्य हो सकते हे, तिर्यच भोगभूमिके ही होंगे, नारकी प्रथम नरकके ही होंगे और देव सौधर्मादिक ही होंगे। एव, इन जीवोंकी अपर्याप्तक अवस्थामें तीनों सम्यग्दर्शन हो सकते हैं। ३००।

जिन पर्यायोंमें सम्यग्दर्शनको साथ लेकर जीव नहीं जा सकता उनका खुलासा आगे करते हैं। सौधर्मादि स्वर्गोंके अतिरिक्त देव—भवनत्रिक, तिर्यंच कर्मभूमिके, नीचेके छह नरक इतने स्थानोंमें अपर्याप्तक अवस्थामें कोई भी सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। यहाकी पर्याप्तक अवस्थामें भी क्षायिक को छोडकर शेष दो सम्यक्त्व हो सकते हैं। ३०१।

चार गतियोंमेंसे किसी भी गतिका आयुर्बंध हो जानेपर भी सम्यग्दर्शन प्रगट हो सकता है। परतु अणुव्रत अथवा महाव्रतों को बद्धायुवालोंमेंसे केवल देवकी आयु बाधलेने वाले ही ग्रहण—धारण कर सकते हैं। भावार्थ, देव आयुके अतिरिक्त इतर आयुको जिसने बाधलिया है वह महाव्रतोंको भी ग्रहण नहीं कर सकता तथा अणुव्रतोंको भी ग्रहण नहीं कर सकता है। ३०२।

जिनकी गणना सम्यग्दृष्टियोंमें नहीं होती उनके भेद तथा लक्षणोंको दिखाते हैं—

ऐसे जीव मिथ्यादृष्टि तो होते ही हैं किंतु सासादन—दूसरे गुणस्थानवर्ती, तथा मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती भी सम्यग्दर्शनसे रहित ही समझे जाते हैं। उनमेंसे सासादनका स्वरूप —

सम्यङ्मिथ्यात्वपाकेन परिणामो विमिश्रिताः । विषमिश्रामृतास्वादः सम्यङ्मिथ्यात्वमुच्यते ॥ ३०४ ॥
मिथ्यात्वोदयतस्त्रेधा मिथ्यात्वं जायतेऽङ्गिनाम् । तच्च सांशयिकं ज्ञेयं गृहीतमगृहीतकम् ॥ ३०५ ॥
मिथ्यात्वभूषितस्तत्त्वं नादिष्टं रोचते कुधीः । सदादिष्टमनादिष्टमतत्त्वं रोचते पुनः ॥ ३०६ ॥
जिनेन्द्रभाषितं तत्त्वं किमु सत्यमुतान्यथा । इति द्वयाश्रया दृष्टिः प्रोक्ता सांशयिकी जिनैः ॥ ३०७ ॥
परोपदेशतो जातं तत्त्वार्थानामरोचनम् । गृहीतमुच्यते सद्भिर्मिथ्यादर्शनमङ्गिनाम् ॥ ३०८ ॥
भेदाः क्रियाऽक्रियावादिविनयाज्ञानवादिनाम् । गृहीतासत्यदृष्टीनां त्रिषष्टित्रिशतप्रमाः ॥ ३०९ ॥ अङ्कतः ३६३

आदिके–औपशमिक सम्यग्दर्शनसे छूटे हुए मनुष्यके अनंतानुबंधी कषायका प्रादुर्भाव हो जाय किंतु मिथ्यात्वका उदय न हो पाया हो तो उस जीव की थोडे समयतक जो अवस्था होती है उसे सासादन कहते हैं । ३०३ ।

सम्यङ्मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहके उदयसे जो विष तथा अमृतकी मिश्रित अवस्थाके समान मिश्रित परिणाम होता है उसको सम्यङ्मिथ्यात्व कहते हैं । ३०४ ।

मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे जीवोंके जो विपरीत परिणाम होते हैं वे यहां तीन प्रकारके माने गये हैं संशयरूप, गृहीतरूप तथा अगृहीतरूप । ये तीनों मिथ्यात्व के भेद हैं । ३०५ ।

मिथ्यात्व परिणामयुक्त कुबुद्धि जीव सच्चे तथा श्रेष्ठ–हितकर तत्त्वका उपदेश मिलनेपर भी उसमें रुचि नहीं करता है । मिथ्या तत्त्वका उपदेश मिलनेपर तथा स्वयमेव भी उसमें सदा रुचि करता है । ३०६ ।

संशय मिथ्यात्वका लक्षण —जिनेंद्र–भाषित तत्त्व क्या सत्य है अथवा असत्य ऐसी जो द्विधा दृष्टि हो उसे संशयमिथ्यात्व कहा है । ३०७ ।

परोपदेश मिलनेपर जो तत्त्वार्थसे जीवोंकी रुचि हट जाय उसे गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं । ३०८ ।

गृहीत मिथ्यादृष्टियोंके क्रियावादी अक्रियावादी, विनयवादी, अज्ञानवादी ऐसे चार मूल भेद है । इन चारोंके उत्तर भेद तीनसौ त्रेसठि (३६३) हैं । ३०९।

तत्राशीतिशत ज्ञेयमशीतिश्चतुरुत्तरा । द्वात्रिंशत्सप्तषष्टिश्च तेषां भेदा यथाक्रमम् ॥ ३१० ॥

तत्र क्रियावादिनामास्तिकाना कोक्षुल्लकठेविद्धिकौशिकहरिश्मश्रुमांथविकरोमशहारितमुडाश्वलायनादयो अशीतिशतप्रमाणभेदा । तेषामानयनमुच्यते स्वभावनियतिकालेश्वरात्मकर्तृत्वानां पचानामधो जीवादिपदार्थाना नवानामधः स्वतःपरतोनित्यत्वानित्यत्वानि च चत्वारि सस्थाप्य, अस्ति स्वतो जीव स्वभावतः १, अस्ति परतो जीवः स्वभावतः २, अस्ति नित्यो जीवः स्वभावत ३, अस्त्यनित्यो जीवः स्वभावतः ४ इत्याद्युच्चारणया राशित्रयस्य परस्परवधेन भेदा लभ्यन्ते १८० । तेषामित्थं संदृष्टि —

इन चारोंमेंसे क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी भेद हैं । अक्रियावादियोंके चौरासी भेद है । विनयवादियोंके बत्तीस तथा अज्ञान वादियोंके सरसठि भेद होते हैं । ३१० ।

इनमेंसे क्रियावादी आस्तिकोंके कोक्षुल कठेविद्ध कौशिक हरि श्मश्रु मांथविक रोम शहारित मुड आश्वलायन आदि एकसौ अस्सी भेद हैं। वे कैसे लाना सो बताते हैं। स्वाभाव नियति काल ईश्वर आत्मकर्तृता इन पांचोंको ऊपर लिखना फिर नीचे जीवादि नौ पदार्थोंको लिखना । उसके नीचे स्वत परत नित्यत्व अनित्यत्व ये चार विषय लिखना। इनका गुणन परस्पर करनेसे एकसौ अस्सी भेद हो जाते हैं । उसका यंत्र नीचे दिया है । इसका उच्चार ऐसे करना-अस्ति स्वतो जीव स्वभावत । अस्ति परतो जीव स्वभावत । अस्ति नित्यो जीवः स्वभावत । अस्त्यनित्यो जीव स्वभावत । ये स्वभावपर चार भेद हुए । इसी प्रकार स्वभावके स्थानमें नियति आदि बदल कर चार चार मेद करना । इसी प्रकार अजीवादिकों को तथा नास्ति आदिकोंको क्रमसे बदलकर बोलना । इसका यत्र नीचे दिया है ।

स्व.		नियति		काल		ईश्वर		आत्म
जी	अ	आ.	ब.	सं.	नि	मो.	पु.	पा.
स्व		प		नित्य		अनित्य		

॥१०९॥

स्वभावादीनाह,—

कः स्वभावमपहाय वक्रतां कंटकेपु विहगेपु चित्रताम् । मत्स्यकेपु कुरुते पयोगतिं पंकजेपु खरदण्डता परः ॥३११॥
यदा यथा यत्र यतोऽस्ति येन यत्, तदा तथा तत्र ततोऽस्ति तेन तत् ।
स्फुट नियत्येह नियन्त्र्यमाण, परो न शक्तः किमपीह कर्तुम् ॥ ३१२ ॥
सुप्तेपु जागर्त्ति सदैव कालः, कालः प्रजा संहरते समस्ताः ।
भूतानि कालः पचतीति मूढाः कालस्य कर्तृत्वमुदाहरन्ति ॥ ३१३ ॥
अज्ञः शरीरी नरकेऽथ नाके, प्रप्रेर्यमाणो व्रजतीश्वरेण ।
स्वस्याक्षमो दुःखसुखे विधातुमिद वदन्तीश्वरवादिनोऽन्ये ॥ ३१४ ॥

स्वभावादिकोंका वर्णन (ग्रंथान्तरों के उदाहरण द्वारा)—

कांटोंमें वक्रताको, पक्षियोंमें चित्रताको, मत्स्योंमें जलकी गतिको, कमलोंमें कठोर दंड उत्पन्न करनेको स्वभावके शिवाय कौन समर्थ है ॥ ३११ ॥

यह स्वभावका समर्थन हुआ । अब नियतिका समर्थन—

जब जैसे जहा जिस हेतुसे जिसके द्वारा जो होना है तभी तैसे ही, वहा ही, उसी हेतुसे, उसीके द्वारा वह होता है । यह सर्व नियतिके अधीन है । दूसरा कोई कुछ भी नहीं कर सकता है । ३१२ ।

आगे कालका समर्थन—सोते हुओंमें भी काल सदा जगता रहता है । काल ही सर्व प्रजाका संहार करता है । सर्व भूतोंको काल पकाता है । ऐसा मूर्ख जन कालको कर्ता मानते हैं । ३१३ ।

ईश्वरकी कर्तृताका समर्थन—ईश्वरवादी कहते हैं—जीव अज्ञ है, वह नरकमें अथवा स्वर्गमें ईश्वरकी प्रेरणासे जाता है । स्वय जीव दुःख तथा सुखको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ३१४ ॥

एको देव सर्वभूतेषु लीनो, नित्यो व्यापी सर्वकार्याणि कर्त्ता ।
आत्मा मूर्त्तः सर्वभूतस्वरूप, साक्षाज्ज्ञाता निर्गुणः शुद्धरूपः ॥ ३१५ ॥

अक्रियावादिनां नास्तिकाना मरीचिकुमारोलूककपिलगार्ग्यव्याघ्रभूतिवाग्वलिमाठरमौद्गिल्यादयश्चतुरशीतिप्रमा भेदाः। तेपामानयनमाह—स्वभावादीना पचानामधः पुण्यपापानिष्टेः सप्ताना जीवादीनामधः स्वपरद्वय निक्षिप्य नास्ति स्वतो जीवः स्वभावतः १ नास्ति परतो जीवः स्वभावतः २ इत्याद्युच्चारणे परस्पराभ्यस्ते वा लब्धा भेदाः सप्ततिः ७० । तेपां सदृष्टिरित्यम्—

आत्माका समर्थन—देव एक है । वह सर्व भूतोंमें लीन है, नित्य है, व्यापी है, सर्व कार्योंका कर्ता है । आत्मा मूर्त (परिच्छिन्नप्रमाण) है, सर्व भूत स्वरूपका साक्षात् ज्ञाता निर्गुण तथा शुद्धरूप है ॥ ३१५ ॥

अक्रियावादी नास्तिकोंके मरीचि कुमार उलूक कपिल गार्ग्य व्याघ्रभूति वाग्वलि माठर मौद्गिल्य इत्यादि चौरासी भेद है । चौराशी भेदको इस प्रकार निकाले—स्वभावादिक पांच ऊपर लिखे । नीचे पुण्य पापको जुदे न मानकर जीवादि सातको लिखे । इसके नीचे स्व पर ऐसे दो भेद लिखे । इसका उच्चारण इस प्रकार करे–१ नास्ति स्वतो जीव स्वभावत । २ नास्ति परतो जीव स्वभावत । इत्यादि उच्चारणसे अथवा परस्परको गुणित करनेसे सत्तरि भेद हो जाते हैं । इसका यत्र नीचे दिया है ।

स्व	नियति		काल	ईश्वर		आत्मा
जी	अ	आ	बंध.	स	नि	मो
स्वत			परत			

नियतिकालयोरधो जीवादिसप्तक विन्यस्य नास्ति जीवो नियतितः नास्त्यजीवो नियतितः इत्याद्युच्चारणेन लब्धाः १४ चतुर्दश। तेषां सदृष्टिरित्थम्—पूर्वैः सहैवे मीलिताः मन्तश्चतुरशीति (८४) भेदा भवन्तीति ॥

विनयवादिनां वशिष्ठपराशरजतुकर्णवाल्मीकिरोमहर्षणशक्तिदत्तव्यासैलापुत्रोपमन्य्वैन्द्रदत्तायस्थूणादयो द्वात्रिंशद्भेदाः। तेषामानयनमाह.—देवनृपतियतिज्ञातिवृद्धबालजननीजनकानामधो वाक्कायदानमनश्चतुष्टय निक्षिप्य विनयो मनसा देवेषु कार्यः १, विनयो वाचा देवेषु कार्यः २, विनयः कायेन देवेषु कार्यः ३, विनयो दानेन देवेषु कार्यः ४ इत्याद्युच्चारणेन लब्धा भेदाः ३२ ॥ तेषां सदृष्टिरित्थं ज्ञेया,—

नियति तथा कालके नीचे जीवादि सातको रखकर गुणनेसे चौदह भेद हो जाते हैं। इसका उच्चारण—नास्ति जीवो नियतित। नास्ति अजीवो नियतित। इत्यादि। इसका यत्र नीचे दिया है।

नि.	का.					
जीव	अजीव	आ.	ब	स	नि	मो.

पूर्वके सत्तरि भेद थे उनके साथमें इनको मिला देनेसे सर्व चौराशी भेद हो जाते हैं। ३११।

वशिष्ठ, पराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, रोम हर्षण, शक्तिदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, ऐंद्रदत्त, अयस्थूण इत्यादिक बत्तीस भेद विनयवादियोंके हैं। इनकी बत्तीस सख्या लानेका प्रकार— १ देव, २ राजा ३, यति, ४ ज्ञाति, ५ वृद्ध, ६ बाल ७ जननी तथा ८ जनक इन आठोंके नीचे जोड कर वचन, शरीर, दान, मन इन चारोंका अर्पण करे। देवका विनय मनसे करे। देवका विनय वचनसे करे। देवका विनय शरीरसे करे। देवका विनय दान देकर करे। ये चार प्रकारके विनय देवके हुए। इसी प्रकार राजा आदिक सातोंका भी विनय चार चार प्रकारसे करे तो आठके भेद बत्तीस हो जाते हैं। यह विनय वादियोंका मत है। उदाहरणका यत्र नीचे है ॥ ३१२ ॥

देव.	नृप.	यति	ज्ञाति	वृद्ध	बाल	जननी.	जनक
वचन		काय		दान		मन	

अज्ञानवादिनां साकल्यवाकलकुथुमिचारायणकठमध्यन्दिनमौदपिप्पलादवादरायणैतिकायनवसुजैमिनिप्रभृतयः सप्तषष्टिसंख्याभेदाः । तेषामानयनमाह,—जीवादीनां नवानामधः सत्, असत्, सदसत्, अवाच्यं, सदवाच्यं, असदवाच्यं, सदसदवाच्यमिति सप्त निक्षिप्य सज्जीवभावं को वेत्ति, असज्जीवभावं को वेत्ति, इत्याद्युच्चारणेन लब्धा भेदाः ६३। तेषां संदृष्टिरित्थम्,—

पुनर्भावोत्पत्तिमाश्रित्य सद्भावासद्भावसदसद्भावावाच्यानां चतुष्टयं प्रस्तार्य (तत्संदृष्टिः • • ० •) "सद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति, असद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति, सदसद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति, अवाच्यभावोत्पत्तिं को वेत्ति" इत्युच्चारणया लब्धैश्चतुर्भिरेतैः सह पूर्वभेदाः ६३ मीलिताः ६७ सप्तषष्टिसंख्याका भवन्ति । सर्वसमासे ३६३ भेदा भवन्ति ।

अज्ञानवादियोंके साकल्य वाकल्य कुथुमि चारायण कठ मध्यन्दिन मौद पिप्पलाद बादरायण ऐतिकायन वसु जैमिनि इत्यादि सरसठि भेद हैं। सरसठिका खुलासा इस प्रकार है– जीवादिक नौ पदार्थोंके नीचे १ सत्, २ असत्, ३ सदसत्, ४ अवाच्य, ५ सदवाच्य, ६ असदवाच्य, ७ सदसदवाच्य ऐसे सात भेद जोडनेसे त्रेसठि भेद हो जाते हैं। इनका उच्चारण इस प्रकार करे— सत् जीवभावको कौन जानता है। असत् जीवभावको कौन जानता है। इस प्रकार जीवपर सातो भेद लगाकर भंगोंका उच्चारण करे। इसी प्रकार अजीवादि प्रत्येकके सात सात भंग कर उच्चारण करे। यंत्र नीचे दिया है।

१—

जीव	अजीव	आस्रव	बंध	संवर	निर्जरा	मोक्ष	पुण्य	पाप
सत्	असत्	सदसत्	अवाच्य	सदवाच्य	असदवाच्य	सदसदवाच्य		

इस प्रकार त्रेसठि भेदोंको सिद्ध करके सामान्य भावकी उत्पत्तिकी अपेक्षाको लेकर चार भेद करे। पहिला भेद सद्भाव, दूसरा असद्भाव, तीसरा भेद सदसद्भाव तथा चौथा भेद अवाच्य है। इन भेदोंका भी उच्चारण पूर्ववत् करे। सद्भावोत्पत्तिको कौन जानता है। असद्भावोत्पत्तिको कौन जानता है। सदसद्भावकी उत्पत्तिको कौन जानता है। अवाच्य भावकी उत्पत्तिको कौन जानता है। ये चारोंके उच्चारण हुए। इनका यंत्र (० ० ० ०) इस प्रकार है। ये चार भेद तथा पूर्वके त्रेसठि भेद मिलनेसे सरसठि संख्या अज्ञान वादियोंकी हो जाती है। ये सर्व गृहीत मिथ्यादृष्टियोंके मिलकर ३६३ भेद होते हैं।

एकेन्द्रियादिजीवानां घोराज्ञानविवर्त्तिनाम् । तीव्रसन्तमसाकारं मिथ्यात्वमगृहीतकम् ॥ ३१६ ॥
एकैकं न त्रयो द्वे द्वे रोचंते न परे त्रयः । एकस्त्रीणीति जायते सप्ताप्येते कुदर्शनाः ॥ ३१७ ॥
सकलोपशमे प्राप्तिः सम्यक्त्वस्यादिमेप्यते । निश्चयेनापरा सर्वदेशोपशमने पुनः ॥ ३१८ ॥
मिथ्यात्वं पृष्ठतो लाभे सम्यक्त्वस्यादिमे भवेत् । मिथ्यात्वं मिश्रकं वास्य लाभेऽन्यत्रास्ति पृष्ठतः ॥ ३१९ ॥

अब अगृहीत मिथ्यात्वको दिखाते हैं–

घोर अज्ञानमें पडे हुए एकेंद्रियादि जीवोंका तीव्र अंधकारके समान जो मिथ्यात्व रहता है वह अगृहीत मिथ्यात्व है। ३१६। उसका खुलासा आगे करते हैं।

पदार्थोंका विवेचन सात भंगोंसे होता है। सातों ही भंग अपेक्षाभेदसे वास्तव ठहरते हैं। उनके उदाहरण इस प्रकार हैं– (१) स्यात् अस्ति, (२) स्यात् नास्ति, (३) स्यात् अवक्तव्य, (४) स्यात् अस्तिनास्ति, (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य, (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य, (७) स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य। इनमेंसे तीन मिथ्यात्वी तो ऐसे हैं जो शुरूके तीन मूल भंगोंको क्रमसे पसंद नहीं करते। जो चौथे पांचवें तथा छट्ठे भंगको पसंद नहीं करनेवाले हैं वे द्विसयोगी तीन भंगोंके विरुद्ध तीन मिथ्यात्वी हैं। सातवें त्रिसंयोगी भंगको पसंद न करनेवाला सातवां मिथ्यात्वी है। ऐसे सात कुदर्शन अर्थात् मिथ्यादर्शन हैं।३१७।

मिथ्यात्वादि पांच प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यग्दर्शनकी प्रथम उत्पत्ति होती है वह अनादि मिथ्यादृष्टिको प्राप्त होती है। द्वितीय वार जो उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है वह सर्वघाति तथा देशघाति कर्मके उपशमसे होती है। ३१८।

सम्यक्त्वका आदिम लाभ हो जानेके बादमें मिथ्यात्व प्राप्त होता है। फिर जो कभी द्वितीय वार सम्यक्त्व प्रगट होता है तो उसके बाद पीछेसे मिश्र अवस्था भी प्राप्त हो सकती है तथा मिथ्यात्व भी प्राप्त हो सकता है। ३१९।

इति सम्यक्त्व मार्गणा।

शिक्षालापोपदेशानां ग्राहको यः समानसः । स सञ्ज्ञी कथितोऽसञ्ज्ञी हेयादेयाविवेचकः ॥ ३२० ॥
गृण्हाति शिक्षते कृत्यमकृत्य सकलं तदा । नाम्नाहूतः समभ्येति समनस्कोऽन्यथेतरः ॥ ३२१ ॥
क्षयोपशमतः सञ्ज्ञी स्वान्तावरणकर्मणः । भवत्युदयतोऽसंज्ञी विचेतीभूतचेतनः ॥ ३२२ ॥
अन्नादिसंज्ञया सर्वा प्रवृत्तिं कुरुते यतः । ततो न मानसाभावे प्रवृत्तिस्तस्य बाध्यते ॥ ३२३ ॥

अथ संज्ञी मार्गणा.

शिक्षा आलाप उपदेश–इनको ग्रहण कर सके ऐसा मनसहित जीव सञ्ज्ञी कहाता है। यहापर सञ्ज्ञाका अर्थ एक प्रकारका विशिष्ट चैतन्य होता है । उस चैतन्यका खुलासा इस वचनमें इस प्रकार किया है कि शिक्षा आलाप तथा उपदेशको ग्रहण करनेकी योग्यता और उसको ग्रहण करना । शिक्षाका अर्थ सीखना अथवा शिक्षण है। आलापका अर्थ नामनिर्देश है । जो शिक्षा ग्रहण कर सके, नामकरण कर देनेपर उस नामकरणके उच्चारणसे अथवा उस नामे द्वारा संबोधन कोई करे तो वह उसका अर्थ समझ सके कि मुझे बुलाया है, एवं उपदेश श्रवण ग्रहण करनेकी पात्रता–इतने ये सर्व चैतन्य पर्याय होनेकी जिसमें योग्यता हो वह सञ्ज्ञी है । अर्थात् मन सहितकी यह पहिचान है । और असंज्ञी जीवको हेयादेयका विवेक नहीं होता ।३२०।

जो ग्रहण कर सके अर्थात शिक्षा ले सके, कृत्य क्या है और अकृत्य क्या है इस बातको जान सके, तथा नाम लेकर बुलाया जानेपर आजाय वह समनस्क है; नहीं तो अमनस्क समझो । ३२१ ।

मनका आवरण करनेवाले ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेपर जीव सञ्ज्ञी होता है और उस मनके आवरण कर्मका उदय रहने पर जीव असंज्ञी होता है । असञ्ज्ञी जीवकी चेतना दबी हुई रहती है । ३२२ ।

आहारादि ग्रहण करनेमें प्रवृत्ति होना आहारादि संज्ञाओंका कार्य है। आहार भय मैथुन परिग्रहरूप चार वांछाए अथवा सञ्ज्ञाएं संसारी जीवमात्रकें होती हैं । इसलिये मनके विना भी आहारादि प्रवृत्ति होती है । मनके विना वह प्रवृत्ति रुकती नहीं है । भावार्थ, आहारादिमें प्रवृत्ति होती देखकर मनका अस्तित्व मान लेना भूल है । ३२३। इति सञ्ज्ञीमार्गणा

शरीरत्रयपर्याप्तिषट्कयोर्योग्यपुद्गलाः । गृह्यंते येन स ज्ञेयो दक्षैराहारको भवी ॥ ३२४ ॥
समुद्घात गतो योगी मिथ्यादृक्सासनायताः । विग्रहर्त्तावनाहाराः सिद्धायोगाश्च भाषिताः ॥ ३२५ ॥
सवेदौदारिकोदंड मिश्रो दंडकपाटयोः । कार्मणो योगिनो यागः प्रतरे लोकपूरणे ॥ ३२६ ॥
सदंडाररिमथानपूरणानि यथाक्रमम् । चतुर्भिः समयैः कृत्वा तावद्भिर्विनिवर्त्तते ॥ ३२७ ॥
षण्मासायुषि शेषे स्यादुत्पन्नं यस्य केवलम् । समुद्घातमसौ याति केवली नापरः पुनः ॥ ३२८ ॥

अथ आहार मार्गणा.

पर्याप्ति छह होती हैं वे प्रथम बताई हैं । तीन शरीर औदारिक, वैक्रियिक तथा आहारक । ये नौ कार्य जिनसे हो सकें ऐसे पुद्गलोंको जो ग्रहण करता है उस संसारीको आहारक समझो ॥ ३२४ ॥

अनाहारक कौन कौन होते हैं वह आगे बताते हैं । समुद्घातको प्राप्त हुए योगी-सयोग केवली अनाहारक होते हैं । वे तीन शरीरके तथा छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गलका ग्रहण नहीं करते हैं । मिथ्यादृष्टि सासादन तथा असंयत सम्यग्दृष्टि-इन तीन गुणस्थानोंवाले जीव जब वक्र विग्रहगतिमें हों तो वे भी अनाहारक होते हैं । सर्व सिद्ध तथा सर्व अयोगी-चौदहवें गुणस्थान वर्ती तपस्वी अनाहारक होते हैं । ३२५ ।

समुद्घातके समय योगी के कौन कौनसे योग होते हैं वह आगे बताते हैं । दंड समुद्घातसे पहिले औदारिक योग होता है । दंड कपाट समुद्घातके समय औदारिक मिश्र योग होता है । तीसरे प्रतर तथा चौथे लोक पूरणके समुद्घात समयमें योगीके कार्मण काय योग होता है । ३२६ ।

दंड कपाट प्रतर लोकपूरण इन चार समुद्घातोंको क्रमसे चार समयमें करके उल्टे उसी क्रमसे चार समयमें निवृत्ति करता है । तब वह पूर्व शरीरप्रमाण हो जाता है । अररिका अर्थ कपाट है, मथानका अर्थ प्रतर है । ३२७ ।

जिसकी आयु छह महीने शेष रहने पर केवलज्ञान होता है वह योगी इस समुद्घातको करता है । दूसरे इस समुद्घातको नहीं करते ॥ ३२८ ॥

इति आहार मार्गणा ।

उपयोगो मतो द्वेधा बाह्याभ्यन्तरभेदतः । स सामान्यविशेषाणां द्रव्याणां दर्शने क्षमः ॥ ३२९ ॥
बाह्योऽष्टविधं ज्ञान विशेषाकारदर्शकम् । सामान्यदृक् चतुर्धास्ति दर्शन ज्ञेयमान्तरम् ॥ ३३० ॥
घातिकर्मक्षये वृत्तिस्तस्य केवलिनोः समम् । तत्क्षयोपशमेऽन्यत्र क्रमतो वृत्तिरीरिता ॥ ३३१ ॥
छद्मस्थेषूपयोगोस्ति द्वेधाप्यन्तर्मुहूर्त्तग । साद्यपर्यवसानोऽसौ जायते जिनयोः समम् ॥ ३३२ ॥

अथ उपयोगाधिकार

दो प्रकारका उपयोग माना गया है, एक सामान्य द्रव्योंका ग्राहक, दूसरा विशेष द्रव्योंका । सामान्य स्वरूपका ग्राहक दर्शन कहाता है । वह वस्तुके सामान्य स्वरूपको दिखानेमें समर्थ होता है । दूसरा विशेष स्वरूपका ग्राहक उपयोग है वह ज्ञान कहाता है । उसके द्वारा वस्तुके विशेष स्वरूपका दर्शन होता है। ज्ञानको भी उपयोग कहते हैं और दर्शनको भी उपयोग ही कहते हैं । ज्ञानको बाह्य उपयोग कहते हैं । और दर्शन आभ्यन्तर उपयोग कहाता है । ३२९ ।

ज्ञानरूप बाह्य उपयोग आठ प्रकार है और वह सभी विशेष आकारको ग्रहण करानेवाला है । सामान्यका ग्राहक जो दर्शन है उसके उत्तर भेद चार हैं । इस दर्शनको आभ्यंतर उपयोग कहते हैं । ३३० ।

दोनो केवली भगवानके ज्ञान दर्शन ये दोनो उपयोग एक साथ रहते हैं और अपने अपने विषयको ग्रहण करनेमें प्रवृत्त रहते हैं । केवलीके एक साथ दोनो उपयोग होनेका कारण यह है कि केवलीके सर्वघाती कर्म नष्ट हो जाते हैं। दूसरे जीवोंमें ज्ञानदर्शनके घातक ज्ञानावरण दर्शनावरण—इन दोनो कर्मोंका क्षय न होकर केवल क्षयोपशम रहता है । इसलिये केवलीके सिवाय दूसरे जीवोंमें दर्शन तथा ज्ञान दोनो एक साथ न रहकर क्रमसे रहते हैं । ३३१ ।

छद्म अर्थात् ज्ञान दर्शनके आवरण कर्म । ये आवरण कर्म जिनके नष्ट नहीं हुए है उन जीवोंको छद्मस्थ कहते हैं । छद्मका सामान्य अर्थ ढकना है । आवरणकर्म जीवके उपयोगको ढकते हैं इसलिये इन आवरणोंको भी छद्म कहते है । आवरणको साथ रखकर जो जीव रहनेवाले है वे केवलीके सिवाय सभी संसारी जीव हैं । इन ससारी जीवोंमें इन आवरणोंका हीनाधिक

॥१२७॥

आत्मयोग्यतया जातो यो भावो वस्तुदर्शक: । उपयोगो द्विधा सोऽस्ति साकारेतरभेदत: ॥ ३३३ ॥
विशेषार्थप्रकाशो यो मनोऽवधिमतिश्रुतैः । उपयोगः स साकारो जायतेऽन्तर्मुहूर्त्तगः ॥ ३३४ ॥
सामान्यार्थावभासो यो हृषीकावधिमानसैः । उपयोगो निराकारः स ज्ञेयोऽन्तर्मुहूर्त्तगः ॥ ३३५ ॥

प्रमाणमें अस्तित्व सदा ही बना रहता है और कुछ आवरण के भागका उदय न होकर उदयका क्षय होता रहता है, आगामीका
उपशम रहता है। इस क्षयोपशमकी अवस्थामें जीव पूर्ण ज्ञानी नहीं हो सकता है। इसलिये छद्मस्थका अर्थ अल्पज्ञानी भी
होता है।

छद्मस्थ जीवोंके ज्ञान दर्शन—ये दोनो ही उपयोग अतर्मुहुर्तसे अधिक नहीं टिकते हैं। अर्थात् बादमें दूसरे ही दर्शन
ज्ञान उत्पन्न होते हैं। केवली भगवान्के दोनो उपयोग उत्पन्न होकर सदा ही शाश्वत बने रहते हैं। इसलिये तेरहवें चौदहवें
गुणस्थानवर्ती दोनो केवलियोंके उपयोगको 'सादि अपर्यवसान' माना जाता है। ३३२।

दोनो आवरण कर्मोंका अंशत अथवा पूर्ण रूपसे अभाव होनेपर आत्मामें एक ऐसी योग्यता उत्पन्न होती है जो वस्तुका
ग्रहण करावे। उस योग्यता अथवा योगको ही उपयोग कहते हैं। वह उपयोग दूसरी कोई चीज नहीं है किंतु उसे आत्माका ही
भाव समझना चाहिये। इस उपयोगरूप भावके दो भेद बताये हैं। उनमेंसे एक भेद साकाररूप माना गया है, दूसरा निराकार
होता है। ३३३।

विशेषार्थको प्रकाशित करना—यही यहांपर साकारका अर्थ है। छद्मस्थोंका साकार उपयोग मन पर्यय, अवधि, मति
तथा श्रुत ऐसे चार प्रकार माना है। और ये प्रत्येक उपयोग अतर्मुहूर्तवर्ती ही होते हैं। ३३४।

इन्द्रिय, मन अथवा अवधिद्वारा जो वस्तुके सामान्य रूपका दर्शक उपयोग होता है वह अंतर्मुहूर्तवर्ती, निराकार उप-
योग है। दर्शनोपयोग इसीको कहते हैं। ३३५।

द्विविधोऽप्युपयोगोऽसौ युगपज्जिनयोर्भवेत् । प्रत्यक्षीकृतनिःशेषतत्त्वः सादिरनन्तकः ॥ ३३६ ॥
द्वित्रिसप्तद्विषु ज्ञेया गुणेषु क्रमतो बुधैः । पंच षट् सप्त सन्ति ह्युपयोगा यथाक्रमम् ॥ ३३७ ॥
तेषां सद्दृष्टिरित्थम् — ५, ५, ६, ६, ६, ७, ७, ७, ७, ७, ७, ७, २, २ ।

जो कुछ है उस सबका प्रत्यक्ष केवली भगवान्, एक साथ करते हैं इसलिये दोनो केवलियोंमें दोनो ही उपयोग युगपत् होते रहते हैं । करण, क्रम, व्यवधान-ये कोई भी दोष केवलीके उपयोग में नहीं रहते हैं इसीलिये उन्हे निःशेष तत्वका प्रत्यक्ष द्रष्टा माना जाता है और इसीलिये उनका उपयोग सादि अपर्यवसान है । ३३६ ।

साकार उपयोगके अथवा ज्ञानोपयोगके छद्मस्थ अवस्थामें चार भेद बताये हैं (१) मति, (२) श्रुत, (३) अवधि, (४) मनःपर्यय । केवलियोंके साकार उपयोगको केवलज्ञान कहते हैं । इस प्रकार साकार उपयोगके सर्व भेद पांच माने गये हैं । ये पांच ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहे जाते हैं । मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पहिले तीन ज्ञान तक हो सकते हैं और वे मिथ्यात्व दशामें मिथ्याज्ञान कहाते हैं । पांच सम्यग्ज्ञान, तीन मिथ्याज्ञान, इस प्रकार साकार उपयोगके आठ भेद हैं । निराकार दर्शनोपयोग है । उसके (१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधि दर्शन तथा (४) केवलदर्शन ऐसे चार भेद हैं । इस प्रकार सर्व भेद मिलानेसे उपयोग बारह प्रकारका हो जाता है ।

इन बारह उपयोगोंमेंसे पहिले दो गुणस्थानोंमें पांच पांच उपयोग होते हैं । तीसरे चौथे पाचवें इन तीन गुणस्थानोंमें छह छह उपयोग होते हैं । छट्ठेसे बारहवें पर्यंतके सात गुणस्थानोंमें सात सात उपयोग होते हैं । तेरहवें चौदहवें दो गुणस्थानोंमें दो दो उपयोग होते हैं । पांच उपयोगोंमें तीन मिथ्याज्ञान तथा चक्षु अचक्षु ये दो दर्शन समझने चाहिये । तीसरे गुणस्थानसे लेकर छह उपयोग बताये हैं उनमें तीन तो पहिले सम्यग्ज्ञान हैं और सम्यक् अवधिज्ञानके पूर्वमें अवधिदर्शन भी होने लगता है इसलिये दर्शनोपयोग तीन होजाते हैं । मिलानेसे ये छह उपयोग हुए । छट्ठे गुणस्थानसे मनःपर्यय ज्ञान होना भी संभव है

---

१ कुज्ञानत्रय दर्शनद्वयमेव पंच, ज्ञानत्रय दर्शनत्रयमेव षट्, ज्ञानचतुष्टय दर्शनत्रयमेव सप्त, ज्ञानमेकं दर्शनमेकमिति द्वयम् ।

॥११९॥

सयोगविक्रियातेज कषायवेदनासु वै। आहारे मरणे सप्त समुद्घाता निवेदिताः ॥ ३३८ ॥
बहिरात्मप्रदेशानां ते समूहेन निर्गमाः। एकदिकौ स्मृतावंत्यौ सर्वदिक्का परे पुनः ॥ ३३९ ॥
चतुर्थे वासराः सप्त पञ्चमे ते चतुर्दश। आद्यसम्यक्त्वविच्छेदो गुणे पञ्चदश द्वयोः ॥ ३४० ॥
तृतीयः संयमस्तुर्यं ज्ञानं सम्यक्त्वमादिमम्। आहारकद्वयं ज्ञेयं यत्रैकं तत्र नापरम् ॥ ३४१ ॥

इसलिये छट्ठेसे सर्व उपयोग सात पर्यंत हो सकते हैं। केवलीके केवलदर्शन तथा केवलज्ञान ये दो उपयोग ही रहते हैं। शेष उपयोग नहीं रहते। ३३७।

केवलीकी सयोग अवस्थामें, विक्रिया अवस्थामें, तैजस शरीरके निकलते समय, कषायके बढनेपर, वेदनाकी तीव्रतामें आहारक शरीरके समय तथा मरणके थोडे पहिले—इन सात अवसरोंमें समुद्घात होते हैं इस लिये समुद्घात सात माने गये हैं। ३३८

कुछ आत्मप्रदेशोंका मूल शरीरके बाहिर होजाना सो समुद्घात है। आहारक तथा मरण समयमें जो समुद्घात होते हैं वे दोनों एक दिशामें फैलने वाले होते हैं। शेष पांचों समुद्घात सर्व दिशाओंमें पसरनेवाले माने गये हैं। ३३९।

आद्य सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व कहाता है। आद्य सम्यक्त्वका चौथे गुणस्थानमें रहकर विच्छेद हो तो सात दिन पर्यंत होगा। पंचम गुणस्थानमें विच्छेद हो तो चौदह दिनका होगा। छट्ठे सातवें इन दो गुणस्थानोंमें विच्छेद हो तो पंद्रह दिन पर्यंत होगा। ३४०।

तीसरा संयम—परिहारविशुद्धि नामक संयम चौथा—मनःपर्यय ज्ञान, आदिम—औपशमिक सम्यक्त्व, आहारक शरीर तथा आहार मिश्र शरीर ये दोयोग इन चार बातोंमेंसे जिसके कोई भी एक होगी उसके बाकी तीन नहीं होती हैं। ३४१।

---

१ समुद्घाता. । २ अन्त्यौ आहारमरणयोर्द्वौ समुद्घातावेकस्यामेव दिशि गच्छतः पुनरन्ये पंच सर्वत्र गच्छन्ति। ३ चतुर्थगुणे यदि उपशमसम्यक्त्वस्यान्तरं भवति तदा दिनसप्तकं, पञ्चमे चतुर्दश, षष्ठसप्तमयोः पञ्चदश।

उत्तीर्योपशमश्रेणे समनःपर्यये गते । प्रमत्तं साद्यसम्यक्त्वं तुर्यं ज्ञानं विभाव्यते ॥ ३४२ ॥
न पश्चात्कृतमिथ्यात्वे प्राप्तशामिकदर्शने । संभवाभावतस्तत्र प्रमत्ते तुर्यबोधनम् ॥ ३४३ ॥
आहारर्द्धिः परीहारस्तीर्थकृत्तुर्यवेदनम् । नोदये तानि जायते स्त्रीनपुंसकवेदयोः ॥ ३४४ ॥

उपशम श्रेणिसे मन पर्यय ज्ञानके साथ उतरकर जो योगी प्रमत्त नामक छट्ठे गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके आद्य–उपशम सम्यक्त्वके साथ चौथा ज्ञान मनःपर्यय एक साथ रह सकता है ॥ किंतु वह उपशम श्रेणीसे उतरनेवाला यदि मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पीछेसे उपशम सम्यक्त्वको नवीन प्राप्त हुआ हो तो उसको छट्ठे प्रमत्त गुणस्थानमें चतुर्थ ज्ञान, उपशम सम्यक्त्वके साथ नहीं रह सकता है। क्योंकि छट्ठे गुणस्थानमें नवीन मन पर्ययका प्रादुर्भाव उपशम सम्यक्त्वके साथ होना असंभव है । ३४२–३४३ ।

स्त्रीवेदका अथवा नपुंसक वेदका जिसके उदय है उसके आहारक ऋद्धि नहीं हो सकती है, एव परिहारविशुद्धि संयम, तीर्थंकर प्रकृति तथा चतुर्थ ज्ञान (मन पर्यय) भी उस जीवके नहीं हो सकता है । ३४४ ।

उपयोगका सामान्य अर्थ ज्ञान दर्शन होता है । परन्तु युज धातुका उपयोग शब्द बनता है इसलिये योग अथवा संबध होना जहांतक संभव हो वहांतक उपयोग शब्दका प्रयोग करना अन्वर्थ है । जो छद्मस्थ जीवके ज्ञान तथा दर्शन होते हैं वे विषयकी तरफ उन्मुख होनेपर होते हैं । एक विषयसे हटकर दूसरे विषयकी तरफ आत्मा प्रवृत्ति करता है । यह प्रवृत्ति छद्मस्थ अवस्था रहेतक सदा ही होती है । ऐसी प्रवृत्ति किये विना छद्मस्थ का ज्ञान प्रवृत्त नहीं होता । इसलिये, चार ज्ञान पर्यंत उपयोग शब्दका प्रयोग करना अन्वर्थ होता है । किंतु केवलज्ञान केवलदर्शन अखड अविच्छिन्न हैं । केवलज्ञान तथा केवल दर्शनको न तो कहींसे हटाना पड़ता है और न कहीं नवीन जोडना ही पडता है । इसलिये केवलज्ञान तथा केवलदर्शनको उपयोग कहना उपचरित है ।

इस प्रकारके अभिप्रायसे मिलती जुलती ही उपयोग शब्दकी व्याख्या द्रव्यसंग्रहकी टीकामें ब्रह्म देवने की है ।

इहामुत्र परं दुःखं यकाभिरुपयांति ताः । संज्ञाश्चतस्र आहारभीमैथुनपरिग्रहाः ॥ ३४५ ॥
पूर्णाः पूर्णेषु ताः सर्वाः प्रमत्तांतेषु देहिषु । आहारसंज्ञया हीनास्तिस्रस्ता गुणयोर्द्वयोः ॥ ३४६ ॥
पचस्वाद्येऽनिवृत्त्यंशे द्वे मैथुनपरिग्रहे । सूक्ष्मलोभं ततो यावत्संज्ञा ज्ञेया परिग्रहे ॥ ३४७ ॥

" किञ्च ज्ञानदर्शनोपयोगविवक्षायामुपयोगशब्देन विवक्षितार्थपरिच्छित्तिलक्षणोऽर्थग्रहणव्यापारो गृह्यते । शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयविवक्षायां पुनरुपयोगशब्देन शुभाशुभशुद्धभावनैकरूपमनुष्ठान ज्ञातव्यमिति ।

अर्थ—यहां ज्ञान दर्शनरूप उपयोगकी विवक्षामें उपयोग शब्दसे विवक्षित (कथन करनेको अभिमत) जो पदार्थ है उस पदार्थके ज्ञानरूप वस्तुके ग्रहणरूप व्यापारका ग्रहण किया जाता है। और शुभ, अशुभ तथा शुद्ध इन तीनो उपयोगोंकी विवक्षामें उपयोग शब्दसे शुभ, अशुभ तथा शुद्ध भावना एकरूप अनुष्ठान जानना चाहिये। "

इति उपयोगाधिकार ॥

अथ संज्ञाद्वारा जीव वर्णन

आहार भय मैथुन परिग्रह—ऐसें संज्ञा चार हैं। इनके द्वारा जीव वर्तमानमें भी अत्यत दुःखोंको भोगते हैं तथा परलोकमें भी पाप कर्मको बांधलेनेके कारण तीव्र दुःखोंको प्राप्त होते हैं। ३४५।

छट्ठे गुणस्थानपर्यंत पूर्ण अवस्थावाले जीवोंमें सर्व संज्ञाएं मिलती हैं। आगेके सातवें आठवें इन दो गुणस्थानोंमें आहार संज्ञा नहीं होती और बाकी तीन संज्ञाएं होती हैं। ३४६।

अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके आदिमें पांच भाग पर्यंत मैथुन तथा परिग्रह ये दो संज्ञाएं रहती हैं। इस पांचवें भागसे आगेके संपूर्ण अनिवृत्ति करणमें तथा सूक्ष्मलोभ—दशवें गुणस्थान पर्यंत एक परिग्रह संज्ञा रहती है। बाकी तीन संज्ञाएं यहांपर नहीं रहती हैं। और दशवें गुणस्थानके आगे कोई भी संज्ञा नहीं रहती है। ३४७।

असद्वेद्योदयाभावादप्रमत्तेऽन्नसंज्ञया । विना संज्ञाः परास्तिस्त्रः संभवंति यथागमम् ॥ ३४८ ॥
असातोदयतो रिक्तीभूतकोष्ठतयाऽङ्गिनः । अन्नोपयोगदृष्टिभ्यामन्नसंज्ञा प्रवर्तते ॥ ३४९ ॥
भयोपयोगतो भीमदृष्टितः सत्त्वहानितः । भयकर्मोदयाज्जीवे भयसंज्ञोपजायते ॥ ३५० ॥

असातावेदनीय कर्मके उदयसे आहार संज्ञा होती है । अप्रमत्त गुणस्थानमें असाता कर्मका उदय नहीं रहता इसलिये सातवें गुणस्थानमें आहारसंज्ञा नहीं रहती, शेष तीन संज्ञाएं रहती हैं ऐसा आगममें बताया है । ३४८ ।

यहांपर असाता कर्मका उदय न होनेसे सातवें गुणस्थानसे लेकर आहार संज्ञाका अभाव बताया है । परन्तु उदयका अर्थ उदीरणा करना चाहिये । छठेसे आगेके गुणस्थानोंमें असाताकी उदीरणा नहीं होती । और आहारमें प्रवृत्ति होना असाताकी उदीरणाका ही कार्य है । छठे गुणस्थानसे नीचे भी असाताका उदय बहुत वार रहता है । परन्तु जब जब उदय होता है तभी तभी जीव आहारमें प्रवृत्त नहीं होता । इसलिये आहारकी प्रवृत्तिका कारण असाताका उदय न होकर असाताकी उदीरणा ही कारण है ऐसा मानना चाहिये । गोमटसारमें चारो ही संज्ञाओंके कारण तत्तत् कर्मकी उदीरणाओंको ही बताया है ।

आहारसंज्ञाका वर्णन करते हुए जीवकांडकी १३४ वीं गाथामें 'सादिदरुदीरणाए' ऐसा लिखा है । भयसंज्ञाका कारण 'भयकम्मुदीरणाए' ऐसा लिखा है । मैथुनसंज्ञाका कारण 'वेदस्सुदीरणाए' और परिग्रहसंज्ञाका कारण 'लोहस्सुदीरणाए' ऐसा लिखा है । और वेदनीयकी उदीरणा प्रमत्तपर्यंत ही होती है ।

असाताका उदय होनेपर, तथा पेट रिक्त रहनेसे, एवं अन्नकी तरफ देखनेसे और अन्नका उपयोग करनेसे जीवको आहार संज्ञा होने लगती है । ३४९ ।

भयमें पडनेसे, भयानक कारणोंकी तरफ लक्ष्य जानेसे, शक्ति कम होनेसे तथा भय कर्मका उदय होनेसे भयसंज्ञा उत्पन्न होती है । ३५० ।

स्ववेदोदीरणात्पुंसि वृष्यभोजनतः स्त्रियाः । सगोपयोगतः संज्ञा पुंसो मैथुनिकी स्त्रियाम् ॥ ३५१ ॥
पण्ढकर्मोदयात्तीव्रा वन्हिज्वालेव तापिका । द्वयोर्योगोपयोगाभ्यां संज्ञा पण्ढस्य मैथुने ॥ ३५२ ॥
लोभकर्मोदयाज्जतारं.क्षणादुपयोगिनः । मूर्च्छोपयोगतः संज्ञा प्रादुरस्ति परिग्रहे ॥ ३५३ ॥

य: प्रमाणनयमार्गकोविदो जीवमार्गणगुणावलोकनम् ।
आदरेण विदधाति शुद्धधीः सोऽश्नुतेऽमितगतिः शिवास्पदम् ॥ ३५४ ॥

इत्यमितगत्याचार्यप्रणीते पचसंग्रहनामकग्रन्थे जीवसमासाख्य प्रथम परिच्छेद ।

पुरुषको अपने वेदकी उदीरणा होनेसे, गरिष्ठ पौष्टिक भोजनके करनेसे, स्त्रीका सम्बन्ध होनेसे, स्त्रीकी तरफ लक्ष्य लगानेसे—इन चार कारणोंसे स्त्रीमें मैथुन करनेकी संज्ञा प्रगट होती है । इसी प्रकार पुरुषके सम्बन्धसे इन्हीं कारणोंके द्वारा स्त्रीको पुरुषमें मैथुन करनेकी संज्ञा प्रकट होती है । संज्ञाका अर्थ इच्छा है । ३५१ ।

नपुंसक वेदका उदय होनेसे, तीव्र वन्हिज्वालाके समान संताप उत्पन्न करनेवाली यह मैथुन संज्ञा नपुंसकको स्त्री पुरुषमेंसे किसीका भी संबंध होनेपर तथा किसीका भी चितवन करनेपर उत्पन्न होती है । ३५२ ।

लोभ कर्मका उदय होनेसे, उपयोगी वस्तुओंके देखनेसे तथा ममत्व बढनेसे जीवको परिग्रह संज्ञा प्रगट होती है ।३५३।

जो प्रमाण नयके मार्गमें विद्वान् है, जीवका मार्गणा और गुणस्थानों द्वारा आदरपूर्वक अवलोकन करता है वह शुद्धधी अर्थात् सम्यग्दृष्टि होता हुआ और अमितगति बनता हुआ अर्थात् अपरिमित गति—ज्ञानको धारण करता हुआ शिवस्थानको पहुंचता है । इस ग्रथके कर्ताका नाम भी अमितगति है । ३५४ ।

इस प्रकार अमितगति आचार्य विरचित पचसंग्रह नामक ग्रथका जीव समास नाम प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ ।

अथ प्रकृतिस्तवो द्वितीयः परिच्छेदः ।

यो ज्ञात्वा प्रकृतीर्देवो दग्धवान् ध्यानवन्हिना । तं प्रणम्य महावीरं क्रियते प्रकृतिस्तव ॥ १ ॥
ज्ञानदृष्ट्यावृती वेद्य मोहनीयायुषी मताः । नामगोत्रान्तरायाश्च मूलप्रकृतयोऽष्टधा ॥ २ ॥
एता पच नव द्वे स्युरष्टाविंशतिरुत्तराः । चतस्रो नवतिस्त्र्यग्रा द्वे पच च यथाक्रमम् ॥ ३ ॥
गृहीतः पुद्गलस्कंधो मिथ्यात्वासयमादिभिः । प्रयाति कर्मरूपेण परिणाममनेकधा ॥ ४ ॥
ज्ञानस्योदयमापन्नाः शरीरिणि पिधायिकाः । भुवनोद्योतिनो व्योम्नि सूर्यस्येवाम्बुदावलीः ॥ ५ ॥

अथ प्रकृतिस्तवः ।

जिस देवने कर्मकी प्रकृतियोंको जान कर ध्यानाग्निसे जला दिया उस महावीरको प्रणाम कर प्रकृतिस्तव नाम द्वितीय परिच्छेदको बनाता हू। सर्व कर्मोंके मूल तथा उत्तर भेद इस परिच्छेदमें बनाये गये हैं इसलिये इस परिच्छेदका नाम प्रकृतिस्तव है।१।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु तथा नाम, गोत्र, अतराय ये आठ मूल प्रकृति हैं । २ ।

इनके उत्तर भेद यथाक्रमसे आगे बताते हैं । ज्ञानावरणके भेद पांच हैं । दर्शनावरण के नौ भेद हैं । वेदनीय कर्मके दो भेद हैं । मोहनीयके अट्ठाईस भेद हैं । आयु कर्मके चार भेद हैं । नामकर्मके तिरानवे भेद हैं । गोत्र कर्मके दो भेद हैं। अंतरायके पांच भेद हैं । आठो कर्मोंके ये उत्तर भेद सर्व एकसौ अडतालीस हैं । ३ ।

मिथ्यात्व असयमादि कारणोंके द्वारा कर्मरूपसे ग्रहण हुआ पुद्गल अनेक प्रकारोंको परिणत होता है । ४ ।

जीवमें ज्ञानावरण कर्म जब उदयको प्राप्त होते हैं तब ज्ञानका ऐसा आच्छादन करते हैं जैसे आकाशमें सूर्यका आच्छादन मेघमालाए करदेती हैं । सूर्यका स्वभाव भी भुवनको प्रकाशित करनेका है और ज्ञान भी तीनो लोकको प्रकाशित करनेका स्वभाव रखता है । आच्छादित होनेपर सूर्य भी प्रकाश नहीं कर सकता और ज्ञान भी आवरणके कारण वस्तुओंको प्रकाशित नहीं कर सकता है। मेघमालाए जितनी सूर्य परसे हट जाती हैं उतना ही सूर्यका प्रकाश होने लगता है। इसी प्रकार

मतिश्रुतावधिज्ञानं मनःपर्ययकेवले । पचानामावृतेस्तेषा पचज्ञानावृतीर्विदुः ॥ ६ ॥
निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानादिगृद्धयो निद्रा । प्रचला चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावृतयः ॥ ७ ॥
वारिका दर्शनस्यैता प्रतीहार्य इवात्मन । दर्शनावरणस्योक्ता नव प्रकृतयो जिनैः ॥ ८ ॥
मध्वक्तसायकस्येव सुखदु खविधायिन । द्वे सद्वेद्यमसद्वेद्य वेद्यस्य प्रकृती मते ॥ ९

ज्ञानका आवरण कर्म जितना हटता रहता है उतना वस्तुओंको प्रकाशित करनेका स्वभाव ज्ञानमें प्रगट होता रहता है । सूर्यपर भारीसे भारी मेघमाला आजाय तो भी सूर्यमेंसे अत्यत मंद पान्तु प्रकाश होता ही रहता है । इसका कारण यह है कि सूर्यमें एक प्रताप गुण ऐसा है जिसका सर्वथा घात कभी भी नहीं हो पाता है । इसलिये सूर्य मेघमालाका थोडासा विच्छेद तो सदा ही करता रहता है । इसी प्रकार जीवके अत्यंत सूक्ष्म ज्ञानको नित्योद्घाट तथा निरावरण माना है । ५ ।

ज्ञानके उत्तर भेद पाच माने गये हैं । ये भेद ज्ञानके मूलमें नहीं हैं किंतु आवरण कर्म पांच प्रकारसे ज्ञानको घातता है इस लिये जबतक आवरणके पराधीन ज्ञान है तबतक आवरणके तत्तत् क्षयोपशमानुसार ज्ञानको पाच प्रकारका माना है । वे ज्ञानके पाच प्रकार ये हैं—मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान तथा केवल ज्ञान । ज्ञानावरण इन पाच प्रकारोंका आवरण करता है इसलिये इस ज्ञानावरणको भी पांच प्रकार का माना गया है । ६ ।

दर्शनावरणके नौ भेद हैं । निद्रानिद्रा एक, दूसरा प्रचलाप्रचला, तीसरा स्त्यानगृद्धि, चौथा निद्रा, पाचवां प्रचला । ये पाच निद्राके भेद दर्शनावरणमें गर्भित किये हैं । और छठ्ठा चक्षुर्दर्शनावरण, सातवां अचक्षुर्दर्शनावरण, आठवां अवधिदर्शनावरण और नौवां केवलदर्शनावरण है । ७ ।

ये नौह आवरण दर्शनका आवरण जुदी जुदी तरहसे करते हैं । जैसे प्रतीहारी [द्वारपाल] मालिकका दर्शन नहीं होने देते वैसे ही ये आत्माका दर्शन नहीं होने देते । इसीलिये इन नौ प्रकृतियोंको जिनेंद्रने दर्शनावरण बताया है । ८ ।

मधुसे लपिटे हुए बाणकी भांति कुछ सुखको भी जो पैदा करता है और कुछ दुःखका भी अनुभव कराता है ऐसा

नीयते येन मूढत्वं मद्येनेव शरीरवान् । मोहनं तद् द्विधा प्रोक्त दृष्टिचारित्रमोहतः ॥ १० ॥
एकधा बंधतस्तत्र सत्त्वतो दृष्टिमोहनम् । त्रेधा सम्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यक्मिथ्यात्वमेदतः ॥ ११ ॥
कषाया नोकषायाश्च द्वेधा चारित्रमोहनम् । षोडश प्रथमास्तत्र द्वितीया नव भाषिता ॥ १२ ॥
क्रोधो मानो जिनैर्माया लोभ प्रत्येकमीरिता । तत्रानंतानुबंध्यादिविकल्पेन चतुर्विधाः ॥१३ ॥

वेदनीय कर्म है । उसके सातावेदनीय असाता वेदनीय मे दो उत्तर भेद हैं। साता वेदनीय सुख का कारण है और असाता दुःखका कारण है । साताको सद्वेद्य और असाताको असद्वेद्य भी कहते हैं । साताका शुद्ध शब्द सात है । सातका अर्थ सुख है । असातका अर्थ दुःख है । सुख दुःखके कारणभूत कर्मोंको भी सात असात कहा है । ९ ।

मद्यके समान जीवको जो मूढ बनाता है उसे मोह कर्म कहा है । उसके दर्शनमोह तथा चारित्रमोह ये दो मूल भेद हैं । सम्यग्दर्शनको बिगाड कर जो जीवको बहिर्दृष्टि बनानेवाला है वह दर्शनमोह है । जो चारित्र को विपरीत करता है वह चारित्रमोह है । १० ।

दर्शनमोह कर्म बँधते समय एकरूप ही होता है । उसका नाम मिथ्यादर्शन अथवा मिथ्यात्व है । यह मिथ्यात्वकर्म सत्तामें रहता हुआ तीन भेद होकर रहता है । एक भेदका नाम सम्यक्त्वमोह है । दूसरेका नाम सम्यक्मिथ्यात्व है । तीसरेका नाम मिथ्यात्व है । भावार्थ, ये तीन भेद प्रथमोपशम सम्यक्त्वके माहात्म्यसे हो जाते हैं । ११ ।

चारित्रमोहके कषाय नोकषाय ये दो मूल भेद हैं । कषायके उत्तर भेद सोलह हैं । नो कषायके नौ उत्तर भेद हैं । १२ । वे सोलह भेद कौनसे हैं यह बताते हैं । अनतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण तथा सज्वलन ये चार भेद होकर प्रत्येकके क्रोध मान माया लोभ ये चार चार उत्तर भेद होते हैं । इस प्रकार चार अनतानुबधी आदिकोंके क्रोधादि चार चार भेद होनेसे सोलह उत्तर भेद हो जाते हैं । १३ । अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन ये

ते च यथार्थनामानः सहानतानुबधिभिः । अप्रत्याख्यानावृत्प्रत्याख्यानावृत्सज्वलना स्मृताः ॥ १४ ॥
हास्य रत्यरतो शोको भय साक जुगुप्सया । स्त्रीपुनपुसका वेदा नोकषाया नवेरिता ॥ १५ ॥
आयुः श्वाभ्र तैर्यग्योन मार्त्य दैव तज्ज्ञातव्यम् । कारागारेणेवोद्धद्धो येनाङ्गयास्ते स्थास्नुर्भूयः ॥ १६॥
गतिजातिशरीराद्या क्रियते येन भूरिश । कुलालेनेव कुमाद्या नामकर्म तदुच्यते ॥ १७ ॥
पिंडापिंडाभिधास्तस्य द्वेधा प्रकृतयो मता । पिंडाश्चतुर्दश प्राज्ञस्तत्राष्टाविंशतिः परा ॥ १८ ॥

चारो नाम अन्वर्थ हैं—अर्थके अनुसार है। अनत अर्थात् ससारको बढानेवाले कर्मको बांधे वह अनतानुबधी है । अ—ईषत्, प्रत्याख्यान—त्यागको भी होनेसे रोके वह अप्रत्याख्यानावरण है । प्रत्याख्यान—सर्वत्यागको, जो आवरण करे–रोके वह प्रत्याख्यानावरण है। चारित्रका घात न कर सके किंतु जो स—अर्थात् चारित्रके साथ रहकर ज्वलति अर्थात् थोडीसी चारित्रमें मलिनता उत्पन्न करे वह सज्वलन है। ऐसे चारोंके शब्दार्थ हैं। यही इन चारोंका जुदा जुदा कार्य है । १४ ।

(१) हास्य, (२) रति, (३) अरति (४) शोक, (५) भय, (६) जुगुप्सा, (७) स्त्री वेद, (८) पुरुष वेद, तथा (९) नपुंसक वेद ये नौ नोकषाय हैं । नोकषायको अकषाय भी कहते हैं ॥ १५ ॥

आयुकर्मके चार भेद हैं । श्वाभ्र— नरकायु, तैर्यग्योन—तिर्यंच आयु, मार्त्य—मनुष्यायु और दैव अर्थात देवायु ये चारोंके नाम हैं । कारागृहके द्वारा जीव जैसे बधनयुक्त हो जाता है वैसे ही इन आयु कर्मोंसे जीव शरीरोंमें परतत्र हो जाते हैं ।१६।

जैसे कुम्हार घट शरावादि अनेक प्रकारके वर्तन बनाता है वैसे ही जाति शरीरादिक अनेकों प्रकारसे जिसके द्वारा जीवमें पुद्गलरचना होती है उसको नामकर्म कहते हैं । १७ ।

नाम कर्ममें कुछ प्रकृति पिंडरूप हैं और कुछ अपिंडरूप हैं । पिंडप्रकृति चौदह हैं और अपिंड प्रकृति अट्ठाईस है। इस प्रकार यहां पिंडापिंड सर्व ४२ प्रकृति गिनाई हैं । पिंड प्रकृतियोंके उत्तर भेद जोडे जाय तो नाम कर्मके सर्व तिरानवे उत्तर भेद हो जाते हैं । १८ ।

पिंडा १४ । अपिंडा २८ । मीलिता ४२ । भेदतः ९३ ।

गतिर्जाति शरीरांगोपांगौ संघातसंहती । वर्णगन्धरसस्पर्शानुपूर्व्यः सस्थितिः ॥ १९ ॥
निर्माणागुरुलघ्वाह्व परघातोपघातने । उच्छ्वास आतपोद्योतौ तीर्थकृत्त्वनभोगती ॥ २० ॥
त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकानि स्थिरं शुभम् । सुभगं सुस्वरादेये यशःकीर्तिश्च सेतरा ॥ २१ ॥
नारकी येन तैरश्चो मानुषी त्रैदशी गतिः । क्रियते तदादिष्टं गतिनाम चतुर्विधम् ॥ २२ ॥
एकद्वित्रिचतुःपंचहृषीका येन देहिनः । क्रियते पंचधा तस्याज्जातिनामेह पंचधा ॥ २३ ॥
औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसं परं कर्म । इति पंचकायजनकं शरीरनामास्ति पंचविधम् ॥ २४ ॥

गति जाति शरीर अंगोपांग संघात संहनन वर्ण गंध रस स्पर्श आनुपूर्वी संस्थान निर्माण अगुरुलघु परघात उपघात उच्छ्वास आतप उद्योत तीर्थंकरत्व विहायोगति (आकाश गमन) ये बाईस, और त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय यशःकीर्ति ये दश इस तरह कुल बत्तीस, इस प्रकार सब पिंडापिंड मिलकर ब्या-लीस नामकर्मकी प्रकृतियां हैं। त्रसादिकोंसे उलटी दश प्रकृतियां स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण अस्थिर अशुभ दुर्भग दुःस्वर अनादेय अयश कीर्ति ये हैं। इनमेंसे पहिली १४ पिंड प्रकृति हैं। बाकी सब अपिंड हैं। १९-२०-२१।

पिंड प्रकृतियोंमें उत्तर भेद कौन कौनसे हैं यह बताते हैं। गतिनाम कर्मके चार भेद हैं। १ जिससे जीव नारकी बने वह नरकगति कर्म है। २ जिससे जीव तिर्यंच बने वह तिर्यंच गति है। ३ जिससे जीव मनुष्य बने वह मानुषगति है। ४ जिससे जीव देव बने वह देवगति कर्म है। २२।

जिस कर्मके उदयसे जीव एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय तथा पंचेंद्रिय इन पांच जातियोंमेंसे किसी जातिको प्राप्त होता है वह जाति नामकर्म है। इंद्रियोंके अनुसार उसके भी पांच भेद समझने चाहिये। २३।

औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस और अंतको कार्माण इन पांच शरीरोंको उत्पन्न करनेवाला पांच प्रकारका शरीरनामकर्म है। २४।

पचागबधन ज्ञये पचधा नाम बधनम्। चतुर्विधानुपूर्व्यस्ति चतुर्गतिप्रवेशिका ॥ ३१ ॥
ज्ञय समचतुरस्र न्यग्रोध स्वातिकुब्जके भविन । हुड वामनकाख्य सस्थान जायते षोढा ॥ ३२ ॥
नभोरीतिर्द्विधा ज्ञेया शस्ताशस्तगतिप्रदा। चतुर्दशेति निर्णीता पिंडप्रकृतयो जिनै ॥ ३३ ॥

पाच शरीरोंके अवयवोंको जिसके उसमें बांधनेवाला एक कर्म है उसका नाम बंधन नामकर्म है। उस कर्मके भेद पांच हैं, क्योंकि जिन शरीरोंको बाधा जाता है व शरीर पाच ही हैं। जो शरीरके नाम हैं वे ही बंधन कर्मोंके नाम हैं। जैसे औदारिक शरीरमें अवयवोंको बांधनेका काम करनेवाला औदारिक बंधन नाम कर्म है।

चारो गतियोंमें प्रवेश करनेके प्रारंभसे जिनका उदय आता है और उत्तर गतिमें जाते समय जो पूर्व शरीरके आकारको स्थिर रखनेका कार्य करते हैं ऐसे चार आनुपूर्वी कर्म हैं। नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी—ये चारों उन कर्मोंके नाम हैं। ३१।

संस्थान नाम कर्म छह प्रकारका है। शरीरमें आकृति उत्पन्न करना इस संस्थान कर्मका कार्य है। पहिला सस्थान समचतुरस्र है। दूसरा न्यग्रोध है। तीसरा स्वाति है। चौथा कुब्जक है। पाचवां वामन है। छट्ठा हुंडक है। समचतुरस्र सर्वोत्कृष्ट सस्थान है। इस सस्थानको उत्पन्न करनेवाला कर्म भी समचतुरस्र कहाता है। इसी प्रकार जो सस्थानोंके नाम हैं वे ही उनके कारणभूत कर्मोंके नाम हैं। ३२।

आकाशमें गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न करनेवाला नाम कर्म विहायोगति नाम है। इसके प्रशस्त अप्रशस्त ऐसे दो भेद हैं। गतिसे लेकर यहातक ये नामकर्मकी चौदह प्रकृति हुई। ये सर्व पिंड प्रकृति हैं।

गति चार, जाति पाच शरीर पांच, अगोपांग तीन, सघात पाच, सहनन छह, वर्ण पाच, गध दो, रस पांच, स्पर्श आठ, बधन पाच, आनुपूर्वी चार, सस्थान छह और विहायोगति दो—इस प्रकार चौदह पिंड प्रकृतियोंके उत्तरभेद पैसठि (६५)

क्रियते येन नीचोच्चैःस्थाने चित्रकृतो यथा । प्रकृती तस्य नीचोच्चे द्वे प्रोक्ते गोत्रकर्मणि ॥ ३४ ॥

यो दानलाभभोगानां विघ्नं वीर्योपभोगयोः । भाण्डागारिकवद्धत्ते सोऽन्तरायोऽस्ति पञ्चधा ॥ ३५ ॥

नाम्नः षड्विंशतिं त्यक्त्वा मोहनप्रकृतिद्वयम् । सर्वेषां कर्मणां शेषा बंधप्रकृतयः स्मृताः ॥ ३६ ॥

१२० बन्धप्रकृतयः ।

अबन्धा मिश्रसम्यक्त्वे बन्धसंघातयोर्दश । स्पर्शे सप्त भवन्त्येवं गन्धेऽष्टौ रसवर्णयोः ॥ ३७ ॥

२ । ५ । ५ । ७ । १ । ८ मीलिताः २८ ।

हो जाते हैं । इनमें त्रसादिक दश, तथा स्थावरादि दश और निर्माणादिक आठ प्रकृतियोंको जोडनेसे सर्व । नाम कर्मकी प्रकृति तिरानवे (९३) हो जाती हैं । ३३ ।

चित्रकार जिस प्रकार किसी चित्रको नीचा करदेता है किसी को ऊंचा, इसी प्रकार जिस कर्मके द्वारा जीवकी नीच ऊंच अवस्था ठहरती है उसे गोत्र कर्म कहते हैं । इसके नीच गोत्र कर्म, उच्च गोत्र कर्म ऐसे दो भेद है । ३४ ।

भंडारीके समान जो कर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्यमें विघ्न उपस्थित करता है वह अंतराय कर्म है । दानादि पांच विषयमें विघ्न करनेवाला यह कर्म भी पांच ही प्रकार का है । दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय तथा वीर्यांतराय—ये उनके नाम हैं । ३५ ।

सर्व १४८ प्रकृतियोंमेंसे मोहकर्मकी दो प्रकृतियोंको और नामकी छव्वीसको छोड कर बाकी एकसौ वीस प्रकृति बंधयोग्य मानी गई हैं । ३६ ।

मिश्रमोह तथा सम्यक्त्वमोह ये दो मोहकी प्रकृति, नाम कर्मकी—पांच बंधन पांच संघात ऐसे दश, तथा स्पर्श आठमेंसे सात, दो गंधमेंसे एक गंध, रस-वर्णकी दशमेंसे चार चार करके आठ—ये अट्ठाईस प्रकृति अबंधरूप हैं ॥

भावार्थ. नाम कर्म की सर्व प्रकृति ९३ गिनाई हैं । उनमेंसे पांच बंधन नाम कर्म तथा पांच संघात नाम कर्मका बंधकी प्रकृतियोंमें जुदा बंध नहीं होता है। और वर्ण, गंध, रस, स्पर्शके उत्तर भेद वीस हैं । वे वीसहू भेद बंधके प्रकरणमें न गिने जाकर

सम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिद्वितयोज्झिताः। एताः प्रकृतयो यांति कदाचिदपि नोदयम् ॥ ३८॥

२६ अनुदयाः। १२२ उदयप्रकृतयः।

मतेनापरसूरीणां सर्वाः प्रकृतयोगिनाम्। यथोदयं प्रपद्यन्ते स्वहेतु प्राप्य सर्वदा ॥ ३९ ॥ सर्वाः १४८।

वैक्रियिकाहारकनृश्वाभ्रविद्वद्वयानि सम्यक्त्वम्। सम्यङ्मिथ्यात्वोच्चैस्त्रयोदशोद्वेल्लना ज्ञेयाः ॥ ४० ॥

त्रयोदश १३ उद्वेल्लनप्रकृतयः।

या विनश्यत्यनासाद्य स्वमुखेनोदयं बुधैः। उद्वेल्लनाभिधाः प्रोक्ताः कर्मप्रकृतयोऽत्र ताः ॥ ४१ ॥

सामान्य चार ही गिनी जाती है। इसलिये बीस संख्याके स्थानमें चार संख्या रह जानेसे सोलह संख्याकी यह कमी हो जाती है। इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंमेंसे नामकर्मकी छब्बीस (२६) प्रकृति बंधके प्रकरणमें कम हो जाती हैं।

मोहकर्मके दर्शनमोह भेदमें उत्तर भेद तीन हैं इनमेंसे बंध एक मिथ्यात्वका ही होता है। सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है। इसलिये बंधकी प्रकृतियोंको गिनाते समय मोहकी ये दो प्रकृति भी छोड देनी पडती हैं। ३७।

अब उदययोग्य प्रकृतियोंको गिनाते हैं—अबन्ध प्रकृति अट्ठाईस ऊपर बताई गई हैं। उनमेंसे मोहकी सम्यक्त्व प्रकृति तथा सम्यङ्मिथ्यात्व ये दो प्रकृति तो उदयमें आती हैं परन्तु नामकी छब्बीसका कभी उदय नहीं होता है। इसलिये १४८ मेंसे २६ कम करदेनेपर उदययोग्य एकसौ बाईस (१२२) प्रकृति मानी गई हैं। ३८।

दूसरे आचार्योंके मतसे सभी प्रकृति, अपने अपने-बन्धोदयके कारण प्राप्त होनेपर बन्ध तथा उदयको प्राप्त होती है ऐसा माना गया है। ३९।

जो प्रकृति स्वमुखसे उदयमें न आकर भी विनाशको प्राप्त हो जाती है, उन प्रकृतियोंको विद्वानोंने उद्वेलन प्रकृति कहा है। ऐसी उद्वेलन प्रकृति तेरह हैं। उनके नाम ये हैं— वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति, तथा उच्च गोत्रकर्म। ४० ४१

दशविघ्नज्ञानावृतयो दृष्ट्यावृतयो नवोपघाताख्यम् । तैजसकार्मणनिर्मितवर्णचतुष्टयभयजुगुप्साः ॥ ४२ ॥
मिथ्यात्वागुरुलघुनी कषायषोडशकमीरिताः सद्भिः । सप्तयुता चत्वारिंशद् ध्रुवसंज्ञाः प्रकृतयस्ताः ॥ ४३ ॥
परघातोद्योतातपतीर्थकृदाहारकद्वयानि चोच्छ्वासः । आयुश्चतुष्कमेता एकादश सन्ति शेषाख्या ॥ ४४ ॥
द्वे वेद्ये गतयो हास्यचतुष्कं द्वे नभोगती । षट्के संस्थानसंहत्योर्गोत्रे वैक्रियिकद्वयम् ॥ ४५ ॥

अंतराय तथा ज्ञानावरणकी दश प्रकृति, दर्शनावरणकी नौ, उपघात, तैजस, कार्मण, निर्माण—ये एक एक, वर्णादि चार, भय, जुगुप्सा, मिथ्यात्व, अगुरुलघु ये एक एक, सोलह कषाय—ये सर्व मिलकर सेंतालीस प्रकृति हैं। इन्हे ध्रुव प्रकृति माना है ॥ ४२ । ४३ ॥

परघात, उद्योत, आतप, तीर्थकृत्, आहारक—युगल, उच्छ्वास, चार आयु—ये ग्यारह प्रकृति शेष अर्थात् अध्रुव कहाती हैं। कदाचित् किसी जीवके होती हैं ॥ ४४ ॥

दो वेदनीय कर्म, चार गति, चार हास्यादि, दो विहायोगति, छह संस्थान, छह संहनन, दो गोत्र, वैक्रियिकद्वय, चार आनुपूर्वी, त्रस स्थावरादि दशयुगल अर्थात् वीस प्रकृति, पांच जातिनाम, औदारिक शरीर द्वय, तीन वेद—इतनी प्रकृति परिवर्तनशील हैं। भावार्थ, इसके पूर्व ध्रुव प्रकृति गिनाई हैं। उसका अर्थ यह है कि वे प्रकृति सदा उदयमें आती रहती हैं। और इन वचनोंमें जो वेदनीयादि गिनाई हैं वे सर्व प्रकृति सदा और सर्वोके उदयमें नहीं आती। इसीका नाम परिवर्ती अथवा परिवर्तनशील है।

भावार्थ, जैसे साता वेदनीयका जब जिस जीवके उदय होता है तब उस जीवके असाता वेदनीयका उदय नहीं हो सकता, क्योंकि परस्परमें विरुद्ध स्वभावको ये धारण करती हैं। इसलिये दोनो वेदनीय कर्म एक साथ उदयमें न आकर एक के बाद दूसरा आसकता है। दोनो इसी प्रकार सत्तामें गति कर्मकी चारो प्रकृति रह सकती हैं परन्तु उदयमें एक साथ न आकर एकके बादही दूसरी प्रकृतिका उदय होगा। यदि उदयमें एक प्रकृति रहते समय

चतुष्कमानुपूर्वीणां दशयुग्मानि जातयः । औदारिकद्वय वेदा एता सपरिवृत्तयः ॥ ४६ ॥ सख्या ६२ ।
एताः प्रकृतयः साष्टाचत्वारिंशच्छतप्रमः । सत्युत्तरोत्तरा ज्ञेयाः संख्यातीता विचक्षणैः ॥ ४७ ॥

दूसरी प्रकृतिकी स्थिति समाप्त होजाय तो वह उदयमें न आकर ही खिर जाती है । ऐसी प्रकृतियोंको परिवर्तनवाली प्रकृति कहा है । और जो ऊपर अध्रुव प्रकृति बताई है उसका अर्थ यह है कि वे सर्व प्रकृति सर्व जीवोंकी सत्तामें ही सदा नहीं रहती हैं । इस प्रकार ध्रुव अध्रुव और परिवर्तनवाली प्रकृतियोंमें परस्पर अंतर है । ४५ । ४६ ।

इस प्रकार ये सर्व एकसौ अडतालीस उत्तर प्रकृति हैं। इनके भी उत्तरोत्तर भेद किये जांय तो असंख्यातों भेद होजाते हैं । वे भेद विचक्षणोंको समझलेने योग्य हैं ।

सर्व ससारकी रचना कर्मके ही अधीन है । संसारकी विचित्रताकी संख्या करना असंभव बात है । इसलिये उस सबके कारणभूत कर्मोंकी भी सूक्ष्म भेदगणना होना कठिन है । इस प्रकार देखनेसे मानना पडता है कि कर्मोंके जो मूल भेद आठ और उत्तर भेद एकसौ अडतालीस दिखाये हैं वे स्थूल भेद हैं । इनके उत्तरोत्तर सूक्ष्म भेद अनंतो होने ही चाहिये । इसीलिये उत्तरोत्तर भेद सख्यातीत हैं ऐसा मूलमें लिखा है ।

उदाहरणार्थ थोडाविचार आगे देते हैं--वर्ण नाम कर्मके पाच भेदोंमें कृष्ण वर्ण कर्म गिनाया है। परंतु नील वर्ण और कृष्ण वर्णमें थोडासा अंतर है । एकका शरीर कृष्ण वर्णका है, दूसरे का नील वर्णका है–दोनोंके शरीरमें जो यह वर्णभेद हुआ है वह एक प्रकारके कृष्णकर्म का कार्य नहीं है । इसलिये कृष्ण कर्मके नील और कृष्ण ऐसे दो भेद मानने पडेंगे । जैसे कृष्णके ये दो भेद हैं ऐसे हो तर तम रूपसे तथा इतर वर्णोंके मिश्रण संबंधसे अनेकों भेद मानना भी न्यायप्राप्त होजाता है ।

दूसरा उदाहरण--यावत् मनुष्य तिर्यंचोंके शरीरको औदारिक कहा है । वनस्पति पर्यंतके जीवोंको भी तिर्यंचोंमें माना जाता है और मनुष्योंके भी देशादि भेदसे अपरिमित भेद परस्परमें दीख पडते हैं । इन सर्व शरीरोंका कारण एक ही औदारिक नहीं हो सकता है । इसलिये औदारिकके ही मनुष्यौदारिक तिर्यगौदारिक आदि भेद मानने पडते हैं ।

आगममार्गप्रकटितसारः यो हृदि कुरुते प्रकृतिविचारम्
याति स भव्यो ऽमितगतिदृष्टं नाकिनिषेव्यं पदमनदृष्टम् ॥

इति श्रीमदमितगत्याचार्यप्रणीते पञ्चसंग्रहनामकग्रन्थे प्रकृतिस्तवाख्यो द्वितीयः परिच्छेदः ॥

इसी प्रकार पांचों इन्द्रियोंके नामसे जातिकर्म पांच माने हैं। परंतु मनुष्यकी पंचेंद्रियजाति जुदी तरहकी है। इस प्रकार पांच जातिकर्मोंके उत्तरोत्तर अधिक भेद माननेमें रहते हैं। इसी तरहकी है, तिर्यंचकी जुदी तरहकी है। श्री आदिपुराण पर्व ३८ के आरंभमें एक मनुष्यजाति कर्म जुदा बताया है। वे लिखते हैं ' मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोद- योद्भवा '। यह मनुष्यजाति कर्म पंचेंद्रिय जातिका उत्तर भेद है। जैसे मनुष्यजातिके उत्तर भेद हैं वैसे मनुष्य जाति कर्मके भी उत्तरोत्तर भेद माननेमें प्रायः दोष नहीं जान पड़ता है॥ ४७॥

आगमके द्वारा जो सिद्धांत सिद्ध हैं उनका यहांपर सार दिया गया है। ऐसे इस प्रकृतियोंके विचारको जो हृदयमें धारण करता है, वह भव्य देवोंसे सेवनीय होकर अमितज्ञानमें दीखनेवाले ऐसे अनुपम पदको प्राप्त होता है ॥ ४८॥

इति प्रकृतितत्त्व द्वितीय परिच्छेद समाप्त ।

॥ अथ कर्मबन्धस्तवस्तृतीयः परिच्छेदः ॥

प्रणम्य भक्तितः सर्वान् सर्वज्ञान् सर्वदर्शिनः । बन्धोदयसदुच्छेदवर्णना क्रियते मया ॥ १ ॥
बधोऽभिधीयतेऽन्योऽन्य संपर्को जीवकर्मणोः । द्रव्यादे फलदातृत्वं कर्मणामुदयो जिनैः ॥ २ ॥
समुदीर्यानुदीर्णानां स्वल्पीकृत्य स्थितिं बलात । कर्मणामुदयान्यां प्रक्षेपणमुदीरणा ॥ ३ ॥
कर्मणां फलदातृत्व द्रव्यक्षेत्रादियोगतः । उदयः पाकज श्चथमुदीरणमपाकजम् ॥ ४ ॥

अथ कर्मप्रकृतिबंधस्तवः ।

सर्व सर्वदर्शी सर्वज्ञ परमेष्ठियोंको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके मैं बधोदयसत्ताका और उनकी व्युच्छित्तियोंका वर्णन करता हू । १ ।

जीव तथा कर्मके परस्पर मिळाप होनेको बध कहते हैं । द्रव्य क्षेत्रादि निमित्तसे जो कर्मोंका फल प्राप्त होता है उसे उदय कहते हैं। कर्मोंमें फल देनेकी शक्ति बधके समयमें ही उत्पन्न हो जाती है । परतु उसे अनुभाग कहते हैं । और फलका प्राप्त होना उदय है । यह उदय कर्मकी स्थितिके समाप्त होनेपर होता है । इस प्रकार उदयमें और अनुभागमें परस्पर अतर है । २ ।

उदयको प्राप्त न हुए कर्मोंकी स्थितिको बलात्कार घटाकर उदीर्ण करनेकेलिये उन कर्मोंको उदयकी पक्तिमें रखदेना सो उदीरणा है । ३ ।

कर्मोंकी स्थिति पकजानेपर अर्थात समाप्त हो जानेपर जो द्रव्य क्षेत्रादिका सहारा पाकर कर्मोंमें फल देनेकी अवस्था प्राप्त होती है वह उदय है । अर्थात् उदय पाकज माना जाता है । स्थिति पूरी होनेपर ही वह कर्मका फल प्राप्त होता है । किंतु उदीरणा अपाकज होती है । वह पालमें देकर फलको जल्दी ही पका देनेके समान है । ४ ।

कर्मणां विद्यमानत्वं यत्सत्त्वं तन्निगद्यते । तानि चत्वारि जायते प्रथमोत्तरकर्मणाम् ॥ ५ ॥
तदुक्तम्,– ' परस्परं प्रदेशानां प्रवेशो जीवकर्मणोः । एकत्वकारको बंधो रुक्मकांचनयोरिव ॥ ६ ॥
ग्रहण कर्मयोग्याणां पुद्गलानां प्रतिक्षणम् । सकषायस्य जीवस्य बधोऽनेकविधः स्थितः ॥ ७ ॥
कर्मणां संगृहीतानां सत्तोक्ता विद्यमानता । उदयो भुक्तिकालस्तु धान्यानामिव कोविदैः ॥ ८ ॥
कृष्ट्वा कृष्ट्वोपरिस्थानां प्रक्षेपणमुदीरणा । असंख्यकर्मभागानां स्थिराणामुदयावलौ ॥ ९ ॥'
जीवकर्मप्रदेशानां विश्लेषो यः परस्परम् । अपुनर्भविकोऽत्रापि स क्षयः क्षीणकल्मषैः ॥ १० ॥

आत्माके साथ कर्मोंका रहना सो सत्त्व कहा जाता है । इस प्रकार कर्म की चार अवस्थाएं हुईं । बंध उदय उदीरणा तथा सत्त्व । ये चारो अवस्थाएं मूल कर्मोंमें भी यथासंभव होती हैं और उत्तर प्रकृतियोंमें भी होती हैं । ५ ।

इस पूर्व लेखकी प्रमाणतामें इतर प्रमाण दिखाते हैं ।– जीवकर्मके प्रदेशोंका परस्परमें जो एकत्वकारक प्रवेश होता है वह बंध है । सुवर्ण तथा मलका जैसा बंध एकत्वकारक तथा अनादिकालिक होता है वैसा ही यह बंध अनादिकालिक भी है ।६।

कर्मयोग्य पुद्गलोंका, कषाय सहित आत्मामें जो प्रतिक्षण ग्रहण होता है वह बंध है । इस बंधमें अनेक प्रकार होते हैं । ७ ।

संग्रह हुए कर्मोंका जो आत्मामें बने रहना वह सत्ता अथवा सत्त्व कहाता है । जैसे धान्यका संग्रह रहता है । कर्मोंके भोगनेकी अवस्था प्राप्त होनेको उदय कहते हैं । जैसे आवश्यकताके समय धान्यका भोगना होता है । विद्वानोंने सत्ता तथा उदयका ऐसा ही अर्थ किया है । ८ ।

उपरिस्थ अर्थात् आगामी उदय योग्य असंख्यात कर्म जो अभी स्थिर रह रहे थे उन की स्थितिको काट काटकर उन असंख्य कर्मभागोंको उदयावलीमें लाकर डाल देना सो उदीरणा है । ९ ।

जीवसे कर्मके प्रदेशोंका ऐसा विच्छेद होना जिसका फिर कभी बंध हो ही नहीं, उसको वीतराग देवोंने क्षय कहा है ।१०।

॥१३८

प्रबध्नन्त्यप्रमत्तान्ताः सप्ताष्टौ मिश्रवर्जिताः । वर्जितान्यायुषा सप्त मिश्रापूर्वानिवृत्तयः ॥ ११ ॥
विनायुर्मोहनीयाभ्यां षट्कं सूक्ष्मकषायकाः । एकमेव त्रयो वेद्यं निर्बन्धो योगवर्जितः ॥ १२ ॥
अष्टौ कर्माणि सूक्ष्मान्ता भुंजते मोहनं विना । शान्तक्षीणकषायाख्यावन्तिमौ घातिभिर्विना ॥ १३ ॥
८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।७।७।४।४।
स्वस्थावस्थायामिति ।
उदीरयन्ति घातीनि तत्स्था मोहं समोहनाः । वेद्यायुषी प्रमत्तान्ता योग्यता गोत्रनामनी ॥ १४ ॥

मिश्र (तीसरे) गुणस्थानको छोडकर शेष प्रथमसे सातवें [अप्रमत्त] गुणस्थान पर्यंतके जीव मूल सात कर्मोंका भी बंध करते हैं और कभी कभी आठ कर्मोंका भी वे सर्व बंध करते हैं । अर्थात् भुज्यमान अपनी आयुके त्रिभाग शेष रह जानेपर जो अन्तर्मुहूर्तका समय आता है उस समयमें नवीन आयुका बंध होनेकी योग्यता मानी गई है। उस समय बंध आठो कर्मोंका हो सकता है । उसके अतिरिक्त समयोंमें आयुके विना शेष सात कर्मोंका बंध होता है । और मिश्र गुणस्थानमें तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें आयुको छोडकर सात कर्मोंका ही बंध होता है । ११ ।

सूक्ष्मकषाय-दशम गुणस्थानके जीव आयु तथा मोहकर्मका बंध नहीं करते, बाकी छह कर्मोंका बंध करते हैं । दशवेंके ऊपर तेरहवें पर्यंतके तीन गुणस्थानवाले जीव एक वेदनीय का ही बंध करते हैं । शेष सात कर्मोंका उनके बंध नहीं होता है । चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग जिन किसी प्रकारका भी बंध नहीं करते हैं । १२ ।

सूक्ष्मलोभ-दशवें गुणस्थान पर्यंतके सर्व जीव आठो कर्मोंको भोगते हैं । उपशांतकषाय-ग्यारहवें, क्षीणकषाय—बारहवें गुणस्थानवर्तियोंके मोहका उदय नहीं रहता, शेष सात कर्मोंका उदय उनके रहता है । अतके तेरहवें चौदहवें दो गुणस्थान-वाले जीव चार घाति कर्मोंको नष्ट कर केवल अघाती चार कर्मोंका उदय रखते हैं । स्वस्थ अवस्थाका यह सर्व नियम है ॥ १३ ॥

घातिकर्म जहातक रहते हैं वहातक अर्थात् बारहवें गुणस्थान पर्यंत घाति कर्मोंकी उदीरणा होती है । मोहसहित दशवें गुणस्थान पर्यंतके जीव मोहकी उदीरणा करते हैं । वेदनीय तथा आयु कर्मकी उदीरणा छठे गुणस्थान पर्यंतके जीव ही करते हैं । गोत्र और नाम कर्मकी उदीरणाको योगी तेरहवें गुणस्थान पर्यंतके जीव करते हैं । १४ ।

यतोऽत्रायुषो मरणावल्यामुदीरणा नास्ति ततः—

सप्तैव मरणावल्यां प्रमत्तान्ता अमिश्रकाः । अष्टौ च सर्वदाऽमिश्रस्तस्य तस्यामभावतः ॥ १५ ॥

पच मोह विना सूक्ष्मः क्षीणो द्वे गोत्रनामनी । कर्मणी स्फुटमावल्यामुदीरयति निश्चितम् ॥ १६ ॥

सत्ता कथ्यते,——

शांतान्तेषु समस्तानि सप्त मोहमृते परे । जिनयोः संत्यघातीनि घातिकर्मविमुक्तयोः ॥ १७ ॥

तत्सदृष्टिर्यथा— ८।८।८ ८।८।८।८।८।८।८।८।७।४।४।

बधहेतुः कथ्यते,—

सम्यक्त्व तीर्थकर्तृत्वे वृत्तमाहारकद्वये । बधस्य हेतुरन्येषु मिथ्यात्वासंयमादयः ॥ १८ ॥

म ग निकट आजानेपर जो अंतर्मुहूर्त शेष रहता है वहांसे मरणावली समझी जाती है। आयुकी उदीरणा मरणावलीसे पहिले हो सकती है। मरणावली लग जानेपर आयुकी उदीरणा नहीं होती। इसलिये, मरणावलीमें प्राप्त हुए, मिश्रके विना प्रमत्त—छठे गुणस्थान पर्यतके जीव सात ही कर्मोंकी उदीरणा कर सकते हैं। मरणावलीके सिवाय शेष समयवर्ती, आठ हू कर्मोंकी उदीरणा करते हैं, परन्तु मिश्रगुणस्थानवाले यहा भी वर्जित हैं। क्योंकि मिश्र गुणस्थान मरणावलीके समय होता ही नहीं है।१५

इस आवलीमें सूक्ष्मलोभवाला मोहके सिवाय पांचकी उदीरणा करता है। क्षीणकषाय-बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव गोत्र तथा नाम इन दो कर्मोंकी उदीरणा करता है। १६।

अब सत्ता कितने कर्मोंकी किस अवस्थामें रहती है यह बताते हैं।—उपशांत—ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत आठो कर्मोंकी सत्ता रहती है। आगेके—बारहवें गुणस्थानमें मोहके सिवाय सात कर्मोंकी सत्ता रहती है। योगी अयोगी दोनो जिनके घाती चारो कर्म नष्ट हो जाते हैं इसलिये वहा अघाती चार कर्मोंकी सत्ता रहती है। १७।

अब बधके हेतुओंको बताते हैं-तीर्थकर प्रकृतिका कारण सम्यक्त्वविशुद्धि है। आहारक शरीरद्वयका कारण वृत्त—अर्थात् चारित्र है। शेष सर्व प्रकृतियोंके कारण मिथ्यात्व तथा असयम आदि रूप परिणाम हैं। १८।

बंधविच्छेदो भण्यते,—

मताः षोडश दुर्दृष्टौ सासने पचविंशतिः । दशाविरमणे देशे चतस्रः पट् प्रमादिनि ॥ १९ ॥

एकातो द्वे ततस्त्रिंशच्चतस्रः पच पचसु । सूक्ष्मे षोडश विच्छिन्ना वेध योगिनि बन्धतः ॥ २० ॥

बन्धे सर्वाः प्रकृतयः १२० ।

एतास्तीर्थकराहारकद्वयहीना मिथ्यादृष्टौ सासने, सुरनरायुर्भ्यां विना मिश्रे, तीर्थंकरनरसुरायुर्भिः सहासयते देशे प्रमत्ते, आहारकद्वयेन सहाप्रमत्ते अपूर्वे, सप्तसु भागेपु बधविच्छेदः, अनिवृत्तौ पंचसु भागेपु, सूक्ष्मादिपु ।

बधका विच्छेद कैसे कैसे होता है सो आगे बताते हैं । —सोलह प्रकृतियोंका विच्छेद दुर्दृष्टि अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान में हो जाता है । सासादनमें पच्चीसका विच्छेद होता है । असयत—चौथे गुणस्थानमें दशका विच्छेद होता है । देशविरत—पांचवेंमें चारका और प्रमादी अर्थात् छट्ठे गुणस्थानमें छहका विच्छेद होता है । १९ ।

छट्ठेसे आगे सातवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है । आठवेंमें प्रथम दो प्रकृतियोंकी, फिर तीस प्रकृतियोंकी और उसके भी आगे चार प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है । नौवेंके पांच भागोंमें पांचकी व्युच्छित्ति होती है । दशवें—सूक्ष्म लोभमें सोलहकी, और योगी—तेरहवें गुणस्थानमें एक वेदनीय कर्मकी व्युच्छित्ति होती है । व्युच्छित्ति अथवा विच्छेदका अर्थ ऐसा है कि जिस गुणस्थानमें जितने कर्मोंकी व्युच्छित्ति बताई है उतने कर्म उस गुणस्थानमें तो बंधते हैं । किंतु उससे आगे उन कर्मोंका बंध होना बद पडजाता है । जिन गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति नहीं बताई है उनमें नवीन कोई व्युच्छित्ति नहीं होती है । २० ।

बधयोग्य सर्व प्रकृति १२० हैं । इनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थंकर प्रकृतिकी और आहारक दो की बधयोग्यता नहीं है । इसलिये यहा एकसौ सत्रह प्रकृति बंधयोग्य समझी गई हैं । ऊपरकी तीन प्रकृति सासादनमें भी बंधयोग्य नहीं हैं । मिश्रमें ऊपरकी तीन और देवायु, मनुष्यायु ये पांच बधयोग्य नहीं हैं । चौथे गुणस्थानमें तीर्थंकर, नर सुरायु ये बंधयोग्य हैं । यहा केवल आहारक दो बधयोग्य नहीं हैं । पाचवें तथा छट्ठे गुणस्थानमें भी केवल आहारकद्वय ही बधयोग्य नहीं हैं । सातवें, आठवेंमें आहारक ये दो प्रकृति बधयोग्य हो जाती हैं ।

सूक्ष्मं संहतिरत्या बधान्मिथ्यात्वलब्धजन्मान । षोडश विच्छिद्यन्ते मिथ्यादृष्टौ गुणस्थाने ॥ २२ ॥ युग्मम् ॥
आद्यकषायचतुष्क तिर्यग्द्वयतिर्यगायुरुद्योताः । दुर्भगदु स्वरमध्यमसहतिसस्थितिचतुष्काणि ॥ २३ ॥
सत्रानादेयेन स्त्री नीच स्त्यानगृद्धयस्तिस्र । अशुभविहायोगतिर्विच्छिद्यन्ते द्वितीयगुणे ॥ २४ ॥ युग्मम् ॥
प्रथमकषायोदयजा एता बधादभावतस्तेषा । रभसेन पचविंशतिरुपरिष्टात्प्रकृतयस्तस्मात् ॥ २५ ॥
द्वितीयानां कषायाणां चतुष्कमादिसहतिः । नृद्वयौदारिकद्वन्द्वे मनुष्यायुर्दशात्रते ॥ २६ ॥

द्वियादि चतुरिंद्रिय पर्यंत चार जाति, ११ स्थावर, १२ साधारण, १३ आतप, १४ अपूर्ण अर्थात् अपर्याप्त, १५ सूक्ष्म, १६ अतका संहनन (असंप्राप्त असृपाटिका) इन सोलह प्रकृतियोंकी बंधव्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमें हो जाती है। भावार्थ, मिथ्यात्वके आगे इन सोलहका बंध नहीं होता है। क्योंकि इन कर्मोंके बंधका कारण मिथ्यात्व परिणाम ही है। २१–२२।

दूसरे गुणस्थानके अंतमें पच्चीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होना बताया है। उनके नाम—आदिके चार कषाय (अनतानुबंधी क्रोधादि), तिर्यगति तथा तिर्यगत्यानुपूर्वी ये दो, तिर्यगायु उद्योत, दुर्भग, दु स्वर, बीचके चार संहनन, बीचके चार ही सस्थान, अनादेय, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला ये तीन निद्रा, अप्रशस्त विहायोगति ये पच्चीस हैं। २३–२४।

इन पच्चीस प्रकृतियोंका बध अनतानुबधी कषायजन्य है इसलिये ऊपर इन कषायोंका उदय न होनेसे इन पच्चीसो प्रकृतियोंके बंधका अभाव हो जाता है। २५।

दूसरे कषाय—अप्रत्याख्यानावरण चार, प्रथम—वज्रऋषभनाराच संहनन, मनुष्यगति युगल, औदारिक युगल, अर्थात् औदारिक शरीर औदारिक शरीरांगोपांग, मनुष्यायु ये दश प्रकृति असयत सम्यक्त्व-चौथे गुणस्थानके अंतमें व्युच्छिन्न हो जाती हैं। २६।

॥१४४॥

॥१४५॥

द्वितीयकषायोत्थाना एताः प्रकृतयः स्फुटम् । प्रपद्यन्ते व्यवच्छेद परं तेषामभावतः ॥ २७ ॥
तृतीयाना कषायाणा चतुष्कं याति विच्छिदम् । देशव्रते तदुत्थानामभावात्परतस्ततः ॥ २८ ॥
अरत्ययशसी शोकाऽस्थिरासाताशुमानि षट् । प्रमत्ते यांति विच्छेद सुरायुश्चाप्रमत्तके ॥ २९ ॥
अपूर्वे प्रथमे भागे द्वे निद्राप्रचले ततः । षष्टे प्रकृतयस्त्रिंशच्चतस्रः सप्तमे ततः ॥ ३० ॥

द्वितीय कषायोंका उदय चौथे गुणस्थानमें रहता है। चौथेसे ऊपर इन कषायोंका अभाव हो जाता है। ऊपर बताई दश प्रकृति द्वितीय कषायमे ही उत्पन्न होती हैं। इसलिये चौथेके अंतमें इन दश प्रकृतियोंकी बंधसे व्युच्छित्ति मानना ठीक ही है॥ २७॥

तृतीय कषाय-प्रत्याख्यानावरण। इन चार कषायोंका बंध इन्ही चार कषायोंके उदयपर्यंत होता है। इन कषायोंका उदय होना देशव्रत-पाचवें गुणस्थानमें माना है। पाचवेंसे आगे इन कषायोंका उदय नहीं होता है। इसलिये पाचवेंके अंतमें तृतीय कषाय कर्मोंके बंधका व्युच्छेद हुआ माना जाता है। देशव्रतमें व्युच्छिन्न होनेवाली चार प्रकृति बताई थी वे ये ही हैं। २८।

प्रमत्त गुणस्थानमें जो छह प्रकृतियोंका व्युच्छिन्न होना बताया है वे प्रकृति कौनसी हैं सो बताते हैं। अरति, अयश-कीर्ति, शोक, अस्थिर, असाता, अशुभ ये छह हैं। अप्रमत्त-सातवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिका व्युच्छेद होना बताया है वह देवायु कर्म है। २९।

अपूर्वकरण-आठवें गुणस्थानके कई उत्तर भाग किये हैं। उनमेंसे प्रथम भागके अंतमें निद्रा प्रचला ये दो प्रकृति विच्छिन्न हो जाती हैं। इसके आगे छट्ठे भागके अंतमें तीस प्रकृतियोंका व्युच्छेद होता है। और सातवें भागके अंतमें चार प्रकृति विच्छेदको प्राप्त हो जाती हैं। ३०।

तैजस कार्मणं पंचहृपीकममरद्वयम् । स्थिरं प्रथमसस्थान शुभं वैक्रियिकद्वयम् ॥ ३१ ॥
त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् । सुभगं सुस्वरादेये निर्माणं सन्नभोगतिः ॥ ३२ ॥
आहारकद्वय तीर्थकृत्त्वं त्रिंशदिमास्ततः । हास्यं रतिर्जुगुप्सा भीश्चतस्रः सप्तमे ततः ॥ ३३ ॥ विशेषकम् ।
पुवेदोन्त्यकपायाणां चतुष्क पच पचसु । भागेषु यान्ति विच्छेदमनिवृत्तेः क्रमादिमाः ॥ ३४ ॥
पच ज्ञानावृत्तेरुच्च चतस्रो दर्शनावृतेः । यशः पंचान्तरायस्य छिन्नाः सूक्ष्मे च षोडश ॥ ३५ ॥
शातक्षीणावषाकृत्य सात योगिनि केवलम् । वंधः सान्तोऽप्यनतोऽथमोघरूपेण जायते ॥ ३६ ॥

ऊपर वताई तीस तथा चार प्रकृतियोंके नाम यहापर गिनाते हैं । १ तैजस, २ कार्मण, ३ पंचेंद्रिय जाति, ४ देवगति तथा ५ देवगत्यानुपूर्वी ये दो, ६ स्थिर, ७ प्रथम सस्थान—समचतुरस्र संस्थान, ८ शुभ, ९ वैक्रियिक शरीर तथा १० वैक्रियिक शरीरागोपाग, ११–१४ त्रसादिक चार-अर्थात् त्रस वादर पर्याप्त प्रत्येक, १५–१८ अगुरुलघ्वादि चार अर्थात् अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास ये चार, १९-२२ वर्णादि चार अर्थात् वर्ण रस गध स्पर्श ये चार, २३ सुभग, २४ सुस्वर, २५ आदेय, २६ निर्माण, २७ प्रशस्त विहायोगति, २८–२९ आहारक द्वय (आहारक शरीर व आहारकागोपांग), ३० तीर्थकरत्व ये तीस प्रकृति छठे भागके अतमें विच्छिन्न होनेवाली है। सातवें भागकी चार प्रकृति—हास्य रति भय जुगुप्सा ये हैं । ३१-३२-३३।

अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके पाच भाग मान कर क्रमसे उन पाचों भागों में पुरुषवेद तथा अतके संज्वलन चार कषाय इन पाच प्रकृतियोंके बधका क्रमसे विच्छेद होजाता है । ३४ ।

ज्ञानावरण की पाच प्रकृति, उच्चगोत्र, दर्शनावरणकी चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृति, यश कीर्ति, पाच अतरायकी प्रकृति- ये सोलह प्रकृति सूक्ष्मसापराय—दशवें गुणस्थानके अतमें बधसे व्युच्छिन्न होती हैं । ३५ ।

उपशातकषाय ग्यारहवां गुणस्थान और क्षीणकषाय बारहवा गुणस्थान—इन दो गुणस्थानोंमें बधकी नवीन व्युच्छित्ति नहीं है । इसलिये दोनोंको छोडदेना । आगेके तेरहवें सयोगकेवलि गुणस्थानमें केवल एक साता वेदनीय प्रकृति बधसे व्युच्छिन्न होती

उदयः कथ्यते—

मिश्रकमुदेति मिश्रे सम्यक्त्वं गुणचतुष्टये तस्मात् । आहारक प्रमत्ते तीर्थकरत्व सयोगजिने ॥ ३७ ॥
यस्मान्न याति नरक न तत सासादने तदनुपूर्वी । मिश्रेऽखिलानुपूर्व्यो न सति येनैष न म्रियते ॥ ३८ ॥

उदयविच्छेद कथ्यते—

पच नवैका सप्तदशाष्टौ पचादितश्चतस्रश्च । षट् षड् गच्छत्युदयादेका द्वे षोडश त्रिंशत् ॥ ३९ ॥

है । सर्वत्र विच्छेदका अर्थ ऐसा ही है कि जहा विच्छेद जिसका हो वहांतक उसका बध समझना और आगे बंधका अभाव समझना । यद्यपि कर्मबध अनंत है परन्तु गुणस्थानोंपर ऊपर ऊपर चढनेवालेके क्रमक्रमसे सांत हो जाता है अर्थात् अतको प्राप्त हो जाता है । यहापर गुणस्थानके अर्थमें ओघ शब्द आया है । ३६ ।

अब आगे उदय और उदयव्युच्छित्तिको गुणस्थानोंमें बताते हैं ।

मिश्र मोहनीय प्रकृतिका उदय तीसरे मिश्र गुणस्थानमें ही होता है । सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय चार गुणस्थानोंमें ही होता है । वे चार गुणस्थान चौथेसे सातवें तकके हैं । आहारकशरीर नामकर्मका उदय प्रमत्त— छट्ठे गुणस्थानमें ही होता है । तीर्थकरत्व प्रकृतिका उदय सयोग जिनके अर्थात् तेरहवें गुणस्थानमें ही होता है । ३७ ।

सासादन गुणस्थानका जीव मरकर नरकमें नहीं जाता है इसलिये सासादनमें नरक गत्यानुपूर्वीका उदय नहीं होता है । मिश्र गुणस्थानमें मरण ही नहीं होता है इसलिये मिश्रमें चारोंमेंसे किसी भी आनुपूर्वीका उदय नहीं होता है । ३८ ।

पहिलेसे चौदहवें गुणस्थान पर्यंत प्रत्येक गुणस्थानमें कितनी कितनी प्रकृतियोंका उदयविच्छेद होता है उसको अब क्रमसे गिनाते हैं । —

पहिलेमें पांच, दूसरेमें नौ, तीसरेमें एक, चौथेमें सत्रह, पाचवेंमें आठ, छट्ठेमें पाच, सातवेंमें चार, आठवेंमें छह, नौवेंमें छह, दशवेंमें एक, ग्यारहवेंमें दो, बारहवेंमें सोलह, तेरहवेंमें तीस प्रकृति आदिसे लेकर क्रमसे उदयविच्छिन्न होती हैं । और नियोग

द्वादश निर्योगान्ते गुणे प्रकृतयः क्षयाद्व्यवच्छेदम् । द्वाविंशशता सम्यक् प्रत्येतव्या बुधैः सर्वाः ॥ ४० ॥

एताः सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वाहारकद्वयतीर्थकरहीना मिथ्यादृष्टौ, नरकानुपूर्व्या विना शासने, तिर्यङ्नरसुरानुपूर्वीभिर्विना सम्यग्मिथ्यात्वेन च सह मिश्रे, चतसृभिरानुपूर्वीभिः सम्यक्त्वेन च सहासयते, देशे, आहारकद्वयेन सह प्रमत्ते, अप्रमत्ते, अपूर्वे, अनिवृत्तौ, सूक्ष्मादिषु, क्षीणे द्विचरमसमये, क्षीणचरमसमये, तीर्थकरेण सह सयोगे, अयोगे। (उदयविच्छेदप्रकारो निम्नलिखितरीत्या ज्ञेयः)।

अर्थात् चौदहवें अयोग नामक गुणस्थानके अंतमें बारह प्रकृति उदयसे विच्छिन्न होती हैं। ये सर्व प्रकृति एकसौ बाईस हैं।

पहिले उदययोग्य प्रकृति सर्व एकसौ बाईस ही बताई हैं। उदयविच्छित्तिका अर्थ भी बंधविच्छित्तिके समान ऐसा ही समझना चाहिये कि जिन प्रकृतियोंकी जिस गुणस्थानमें उदयविच्छित्ति बताई है वे प्रकृति उस गुणस्थान पर्यंत उदयको प्राप्त होती हैं किंतु उसके आगे उन प्रकृतियोंका उदय नहीं रहता। और इसीलिये जिस गुणस्थानमें जिसका उदयविच्छेद होना बताया हो उसका उस गुणस्थानके अंत पर्यंत उदय होना समझना चाहिये। प्रत्येक गुणस्थानके अंतमें उदयकी विच्छित्ति होती है ऐसा समझलेना चाहिये। चालीसवें श्लोकमें जो 'निर्योगान्ते' पाठ है उसका अर्थ दो प्रकारसे होता है। एक तो ऐसा कि निर्योग अर्थात् चौदहवां गुणस्थान अंत अर्थात् अंतका है। दूसरा ऐसा कि विच्छेद चौदहवेंके अंतमें होता है। इस दूसरे अर्थको उपलक्षण मानकर सभी गुणस्थानोंका विच्छेद अपने 'अपने स्थानके अंतमें ही समझना। ३९—४० ॥

सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति, आहारक शरीर तथा आहारक अंगोपांग ये दो, तीर्थकरत्व—इन पांच प्रकृतियोंका उदय मिथ्यात्व गुणस्थानमें नहीं होता इसलिये इन पांचोंको कम करके बाकीकी सर्व प्रकृति मिथ्यात्वमें उदययोग्य हैं। उदययोग्य सर्व प्रकृति १२२ हैं। इनमेंसे पांच कम हो जानेसे मिथ्यात्वमें उदययोग्य प्रकृति एकसौ सत्रह रहती हैं।

अब सासादनकी उदय अनुदय प्रकृतियोंको बताते हैं। मिथ्यात्वमें पांचका उदयविच्छेद बताया है। वे प्रकृति आगे

१— कोष्ठकपरिवृतोय पाठो नास्ति हस्तलिखितप्रतिमध्ये। अयं पाठो मुद्रितपुस्तकस्य।

उदयमें नहीं आती इसलिये सासादमें पाच तो ये प्रकृति कम हो जाती हैं। और मिथ्यात्वमें जो पाच अनुदयरूप बताई हैं वे यहा भी अनुदयरूप ही हैं इसलिये ये पांच भी यहा उदयमेंसे कम कर देनी चाहिये। इनके सिवाय एक प्रकृति नरकानुपूर्वी नामकी भी यहा उदययोग्य नहीं है इसलिये वह यहा उदयमेंसे घटा देनी चाहिये। इस प्रकार ग्यारह प्रकृति यहा उदयमेंसे घट जानेसे उदययोग्य एकसौ ग्यारह रहती हैं। और एकसौ अडतालीस सर्व प्रकृतियोंमेंसे यहा सेंतीस प्रकृति कम रहती हैं।

तीसरे मिश्र गुणस्थानमें दूसरे गुणस्थानकी उदयविच्छिन्न नौ (९) प्रकृति कम हो जानेसे उदययोग्य एकसौ दो होनी चाहिये थीं। परतु एक सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय यहा बढ जाता है और तिर्यंच, मनुष्य तथा देव नामकी तीन आनुपूर्वी और भी कम हो जाती हैं। इसलिये उदययोग्य यहापर सौ प्रकृति मानी गई हैं।

चौथे—असयत गुणस्थानमें मिश्र प्रकृतिका उदय नहीं है किंतु चारो आनुपूर्वीका तथा सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होना सभव है। इसलिये चौथेमें उदययोग्य एकसौ चार प्रकृति हैं॥ देशसयत—पांचवेंमें चौथेकी सत्रह उदयविच्छिन्न प्रकृतियोंको घटादेनेपर उदययोग्य सतासी प्रकृति रह जाती हैं। देशसंयतकी उदयविच्छिन्न आठ प्रकृतियोंको घटाना और आहारक दो को बढाना तो छट्ठे—प्रमत्तमें इक्यासी प्रकृति उदययोग्य ठहरती हैं। अप्रमत्त—सातवें गुणस्थानमें, प्रमत्तकी उदयविच्छिन्न पाच प्रकृतियोंको कम कर देनेसे उदययोग्य छिहत्तरि प्रकृति हैं। अप्रमत्तकी विच्छिन्न चार सख्या घट जानेसे अपूर्वमें उदययोग्य प्रकृति बहत्तरि हैं। अपूर्वकी विच्छिन्न छह प्रकृति घट जानेसे अनिवृत्ति—नौवेंमें उदययोग्य छयासठि हैं। नौवेंकी व्युच्छिन्न छह प्रकृति आगे कम होजानेसे दशवेंमें उदययोग्य साठ प्रकृति हैं। दशवेंकी एक विच्छिन्न प्रकृतिको घटानेपर उपशांत—ग्यारहवेंमें उनसठि प्रकृति उदययोग्य हैं।

क्षीणकषाय—बारहवेंमें सोलह प्रकृतियोंका विच्छेद माना है उनमेंसे चौदहका ठीक अतसमयमें विच्छेद होता है और दोका उससे पहिले समयमें ही विच्छेद होजाता है। इसलिये अतसे पहिले (द्विचरम) समयमें सत्तावन प्रकृति उदययोग्य मानी हैं। उपशातमें उदययोग्य उनसठि थीं और दो विच्छेदवाली थीं। वे दो यहा कम होजानेसे सत्तावन रह जाती हैं। फिर द्विचरम समयमें जो दोका विच्छेद था उन दोको घटानेसे बारहवेंके अतसमयमें उदययोग्य पचपन प्रकृति रह जाती हैं।

नीचोद्योतौ तृतीयानां कषायाणां चतुष्टयम् । तिर्यग्गत्यायुषी अष्टौ देशे यांत्युदयक्षयम् ॥ ४६ ॥
आहारकद्वय स्त्यानगृद्धित्रयमिमा गुणे । प्रमत्तसंयते पंच श्रयन्त्युदयतश्च्युतिम् ॥ ४७ ॥
अंत्याः संहतयस्तिस्रः सम्यक्त्वं चाप्रमत्तके । अपूर्वे नोकषायाणां षट्कं यात्युदयच्युतिम् ॥ ४८ ॥
संज्वालत्रितयं वेदत्रयं षडनिवृत्तिके । क्षणेंते लोभसंज्वालः सूक्ष्मे यात्युदयक्षयम् ॥ ४९ ॥
वज्रनाराचनाराचे शान्ते द्वे उदयक्षयम् । द्वे निद्राप्रचले यात क्षीणस्योपांतिके क्षणे ॥ ५० ॥
दश ज्ञानान्तरायस्थाश्चतस्रो दर्शनस्थिताः । चतुर्दशोदयाद्यान्ति क्षीणस्यांते क्षणे क्षयम् ॥ ५१ ॥

देश अर्थात् पांचवें गुणस्थानमें नीचगोत्र, उद्योत, तीसरे-प्रत्याख्यानावरण कषाय चार, तिर्यग्गति तथा तिर्यगायु ये आठ प्रकृति व्युच्छिन्न होने वाली हैं । ४६ ।

आहारकद्वय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राकर्म ये पाच प्रकृति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उदयसे च्युत होती हैं अर्थात् विच्छिन्न होती हैं । ४७ ।

अंतके तीन संहनन और सम्यक्त्व प्रकृति ये चार प्रकृति, अप्रमत्त-सातवें गुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली हैं । अर्धनाराच, कीलित, असंप्राप्तासृपाटिका ये तीन अंतके सहनन हैं । अपूर्वकरण—आठवें गुणस्थानमें हास्यादि नोकषाय छह प्रकृतियोंका उदयसे विच्छेद होता है । ४८ ।

नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें तीन सज्वलन कषाय और तीनो वेद इन छह प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति होती है ॥ तीन वेदोंको छोड कर शेष चार सज्वलनोंमेंसे एक बचे हुए लोभ कषायका उदयविच्छेद, सूक्ष्मलोभ नामके दशवें गुणस्थानके अंतिम क्षणमें, होता है । ४९॥

वज्रनाराच तथा नाराच—ये दूसरे तीसरे दो संहनन उपशांतकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें उदयक्षयको प्राप्त होते हैं ॥ क्षीणकषायके अंत्य समयसे पहिले अर्थात् द्विचरम समयमें दो प्रकृति निद्रा और प्रचला ये उदयविच्छेद को प्राप्त होती है ।५०।

ज्ञानावरण तथा अंतरायकर्मकी पाच पाच प्रकृति, पांच निद्राओंको छोडकर दर्शनावरणकी शेष चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृति— ये चौदह प्रकृति क्षीणकषायके अंतिम क्षणमें उदयविच्छेदको प्राप्त होती हैं । ५१ ।

वेद्यमेकतर वर्णचतुष्कौदारिकद्वये । आद्यसंहनन षट्कं संस्थानानां स्थिरद्वयम् ॥ ५२ ॥
शुभसुस्वरयोर्युग्मे निर्मितेजो नभोगती । चतस्रोगुरुलघ्वाद्याः प्रत्येककार्मणे इमाः ॥ ५३ ॥
अशयन्त्युदयतस्त्रिंशत् सयोगस्यान्तिमे क्षणे । वेदनीय द्वयोरेकं मर्त्यगत्यायुषी त्रसम् ॥ ५४ ॥
पचाक्ष सुभग स्थूल पर्याप्त तीर्थकर्तृता । आदेयं यश उच्च च निर्योगे द्वादश च्युताः ॥ ५५ ॥

प्रयात्युदीरणाच्छेदं पच प्रकृतयो नव । एका सप्तदशाष्टाष्टौ चतस्रः षट् षडादितः ॥ ५६ ॥
एका द्वे षोडशैकोनचत्वारिंशत्क्रमादिमाः । एकाप्युदीर्यते जातु नायोगे प्रकृतिर्जिने ॥ ५७ ॥

दो वेदनीयमेंसे कोई भी एक वेदनीय, वर्णादि चार, औदारिक शरीरादि दो, पहिला एक संहनन, छह संस्थान स्थिर अस्थिर दो, शुभ अशुभ दो, सुस्वर दु स्वर दो, निर्माण, तैजस शरीर, विहायोगति दो, अगुरुलघु[१] आदि चार, प्रत्येक, कार्मण शरीर, इन तीस प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति सयोग–तेरहवें गुणस्थानके अत्य समयमें होती है ॥

दो वेदनीयमेंसे बची हुई एक वेदनीय, मनुष्य गति, मनुष्यायु, त्रसत्व, पचेंद्रियत्व जाति, सुभग, स्थूल, पर्याप्त, तीर्थंकरत्व, आदेय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र ये बारह प्रकृति अयोग—चौदहवें गुणस्थानमें विच्छिन्न होती हैं ॥ ५२ – ५५ ॥

उदयका समय प्राप्त होनेसे प्रथम ही निमित्त पाकर जो कर्मोंकी स्थिति घटकर फल प्राप्त होने लगता है उसे उदीरणा कहते हैं । सर्व गुणस्थानोंका उदयविच्छेद ऊपर बताया है । अब उदीरणाकी व्युच्छित्तिको बताते हैं ।

पहिले गुणस्थानमें पाच, दूसरेमें नौ, तीसरेमें एक, चौथेमें सत्रह, पांचवेंमें आठ, छठेमें आठ, सातवेंमें चार, आठवेंमें छह, नौवेंमें छह, दशवेंमें एक, ग्यारहवेंमें दो, बारहवेंमें सोलह, और तेरहवेंमें उन्तालीस प्रकृति क्रमसे उदीरणासे विच्छिन्न होती है । चौदहवें गुणस्थानमें एक भी प्रकृति की उदीरणा नहीं होती है । ५६–५७ ।

---

१ अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास ये चार प्रकृति अगुरुलघ्वादि चार लिखनेसे समझनी चाहिये ।

॥१५३

प्रमत्ते	अप्रमत्ते	अपूर्वे	अनिवृत्तौ	सूक्ष्मे
८	४	६	६	१
८१	७३	६९	६३	५७
४१	४९	५३	५९	६५
६७	७५	७९	८५	९१
उपशान्ते	**द्विचरमे क्षीणे**	**चरमे क्षीणे**	**योगिनि**	**अयोगे**
२	२	१४	३९	•
५६	५४	५२	३९	०
६६	६८	७०	८३	१२१
९२	९४	९६	१०९	१४८

सातासातमनुष्यायुःसंयुक्ताः सन्त्युदीरणे । अष्ट प्रकृतयः पच प्रमत्तस्योदयस्थिताः ॥ ५८ ॥
सातासातनरायुर्भिर्नियोगोदयजा विना । संति योगिन एकोनचत्वारिंशदुदीरणे ॥ ५९ ॥

छट्ठे गुणस्थानकी उदीरणाव्युच्छिन्न प्रकृति आठ हैं । यहा उदयव्युच्छिन्न प्रकृवि पांच बताई थी । तीन अधिक कौनसी हुई सो इस श्लोकमें बताई हैं । सातावेदनीय, असाता वेदनीय तथा मनुष्यायु ये तीन प्रकृति उदयव्युच्छित्तिके समय चौदहवें गुण-स्थानमें उच्छिन्न होती हैं । वे ही उदीरणाके समय यहा छट्ठे गुणस्थानमें व्युछिन्न हो जाती हैं । इसलिये चौदहवेंकी उदयव्युच्छिन्न बारह प्रकृतियोंमेंसे ये तीन वहा कम हो जाती हैं और यहा [छट्ठेमें] बढकर पांचके स्थानमें आठ प्रकृति हो जाती हैं । ५८ ।

इसी प्रकार साता असाता तथा मनुष्यायुके सिवाय नौ प्रकृति और भी ऐसी हैं जो चौदहवेंमें ही उदय आती हैं और चौदहवेंमें ही उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। उन नौकी यदि उदीरणा हो तो तेरहवें गुणस्थानमें ही हो जाती है । इसीलिये तेरहवेंमें उदीरणाव्युच्छित्ति उन्तालीसकी बताई गई है । ५९ ।

उदयोदीरणे तुल्ये भवतोऽन्येषु सर्वथा । त्रीभिरस्य गुणानेतान् प्रमत्तायोगयोगिनः ॥ ६० ॥
न सत्याहारकद्वंद्वे न तीर्थकृति शासनः । नैति तिर्यक्त्वमिश्रत्वे सत्त्वे तीर्थकृतो भवी ॥ ६१ ॥

इस प्रकार केवल तीन गुणस्थान–छठ्ठा, तेरहवां, चौदहवां–इन्हींमें उदीरणा तथा उदयकी संख्याका फरक है। अत एव उदीरणाव्युच्छित्ति तथा उदयव्युच्छित्तिकी संख्यामें भी इन तीन गुणस्थानोंमें ही फरक पडता है। किंतु शेष सर्व गुणस्थानोंमें उदय तथा उदीरणाकी प्रकृतियोंमें कोई अंतर नहीं है। भावार्थ, चौदहवेंकी नौ प्रकृति तो तेरहवेंमें आजाती हैं और तीन छट्ठेमें आजाती हैं। इसलिये इन दो गुणस्थानोंमें तो संख्या बढ जाती है। और चौदहवेंमें उदीरणा रहती ही नहीं है। ६०।

इति उदय—उदीरणा प्रकरण समाप्त ॥

अब सत्ताका निरूपण करते हैं। जहांपर कुछ विशेष बतानेकी आवश्यकता है वहांकी विशेषताओंको दिखाते हैं।

आहारक द्वय तथा तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता एक साथ मिथ्यादृष्टिमें नहीं रहती है। अतएव जिसकें ये तीनो प्रकृति सत्तामें होंगी वह जीव मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त नहीं होगा। भावार्थ, मिथ्यात्व में भी किसीकें आहारक द्वय और दूसरे किसीकें तीर्थंकर प्रकृति ये जुदी जुदी रह सकती हैं। इसलिये सत्ता नाना जीवोंकी अपेक्षा पूरी १४८ की मिथ्यात्वमें मानी जाती है। किंतु सासादनमें ऊपरकी तीनो प्रकृतियोंमेंसे एक भी नहीं रहती है। इसलिये सासादनमें सर्व १४५ की ही सत्ता है।। तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता जिसकें है वह मिश्र गुणस्थानको नहीं पहुंचता है। इसलिये मिश्रमें सर्व सत्ता १४७ की रहती है। तिर्यक्त्वका अर्थ मिथ्यात्व है।

---

१ इसका अन्वय इस प्रकार करना चाहिये
भवी आहारकद्वन्द्वे तीर्थकृति (च युगपत्) सति तिर्यक्त्व नैति। तीर्थकृति आहारकद्वन्द्वे (च पृथग् युगपद्वा) सति शासनो न (भवति)। तीर्थकृत सत्त्वे भवी मिश्रत्व नैति।

२—उदय तथा उदीरणाकी विशेषता छठे, तेरहवें, चौदहवें इन तीन गुणस्थानोंमें ही पाई जाती है। सोही कहा है–'मोत्तूण तिण्णि ठाण पमत्त जोगी अजोगी य।'। २७८। कर्मकांड।

सत्ताक्षयः कथ्यते,—

चतुर्षु निर्व्रताद्येषु काप्यनंतानुबंधिनः । मिथ्यात्वं मिश्रसम्यक्त्वे सप्त यांति क्षयं समम् ॥ ६२ ॥
षोडशाष्टकमेकैका षडेकैका चतुर्ष्वतः । क्षयं प्रकृतयो याति नवांशेष्वनिवृत्तिके ॥ ६३ ॥
एका याति क्षयं सूक्ष्मे क्षीणे गच्छन्ति षोडश । समये गतयोगस्य द्वासप्ततिरुपान्तिमे । ६४ ॥

'मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र इन तीनों गुणस्थानोंमें क्रमसे तीर्थंकर, आहारक द्वय एककालमें नहीं होती, तथा सब (तीनों) ही किसी कालमें नहीं होती, और तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती अर्थात् मिथ्यात्वमें नानाजीवोंकी अपेक्षा सब १४८ प्रकृतियोंकी सत्ता है, सासादनमें तीनोंहीके किसी कालमें न होनेसे १४५ की सत्ता है और मिश्रगुणस्थानमें एक तीर्थंकर प्रकृतिके न होनेसे १४७ प्रकृतियोंकी सत्ता है। क्योंकि इन सत्त्वप्रकृतियोंवाले जीवोंके वे मिथ्यात्वादि गुणस्थान ही संभव नहीं हैं।' ऐसा गोमटसार की गाथा ३३३ में कहा है ॥ ६१ ॥

किन किन कर्मोंकी सत्ताका कहा कहा पर क्षय होता है वह आगे बताते हैं—

असंयतादि सातवें पर्यंत चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानमें, चार अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व—ये दर्शनमोहकी तीन प्रकृति—इन सात प्रकृतियोंका एक साथ क्षय होजाता है ॥ ६२ ॥

अनिवृत्ति करणके नौ भाग मानकर प्रत्येक भागमें इस प्रकार प्रकृतियोंका क्षय होता है।—पहिले भागमें सोलह प्रकृति क्षयको प्राप्त होती हैं। दूसरेमें आठ, तीसरेमें एक, चौथेमें एक, पांचवें भागमें छह, और छठे सातवें आठवें नौवें—इन चार भागोंमें एक एक प्रकृति क्षयको प्राप्त हो जाती हैं। ६३।

सूक्ष्मसांपराय दशवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिका क्षय होता है। और क्षीणकषाय बारहवेंमें सोलहका क्षय होता है। एवं अयोग केवली चौदहवेंके उपान्त्य समयमें बहत्तरि प्रकृति क्षयको प्राप्त हो जाती हैं। ६४।

१—'काप्यनन्तानुबन्धिना' ऐसा पाठ मूल पुस्तकमें है। इस तृतीयाविभक्त्यंत पाठको मानलेनेपर 'सह' शब्दका अध्याहार करके 'अनंतानुबंधीके साथ' ऐसा अर्थ करना चाहिये।

त्रयोदशातिंम तत्र निहत्य प्रकृतीर्जिनम् । मुक्तिं प्राप्तं नमाम्यष्टचत्वारिंशच्छतप्रमाः ॥६५॥ सर्वाः प्रकृतय १४८

एताः श्वभ्रतिर्यक्सुरायुर्हीनाश्चतुर्षु अपूर्वे अनिवृत्तौ नवांशेषु सूक्ष्मादिषु—

तद्दर्शनप्रकारः—

	मि०	सा०	मि०	असं.	देश.	प्र०	अप्रमत्ते	अपूर्वे
असत्त्व—	०	०	०	७	७	७	७	०
सत्त्व—	१४८	१४५	१४७	१४५	१४५	१४५	१४५	१३८

न० १ का यंत्र

अनिवृत्तौ नवांशेष्वित्थम्—

१६	८	१	१	६	१	१	१	१
१३८	१२२	११४	११३	१०७	१०६	१०५	१०४	१०३

न० २ का यंत्र

चौदहवेंके अंत्य समयमें बची हुई तेरह प्रकृतियोंका भी क्षय हो जाता है । इस प्रकार सर्व एकसौ अडतालीस प्रकृतियोंका नाश करके मुक्तिको प्राप्त होनेवाले सिद्ध भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूं । ६५ ।

सत्ताकी सर्व प्रकृति १४८ हैं । उनके गुणस्थान क्रमसे वर्णनके साथ आगे यंत्र दिये हैं उनपरसे जुदे जुदे गुणस्थानोंमें सत्ता तथा असत्ताकी (अथवा क्षयकी) प्रकृति समझमें आ सकती हैं ।

चौथेसे सातवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें नरकायु तिर्यगायु तथा देवायु इन तीन प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं रहती है । इसलिये इन चार गुणस्थानोंमें तीन प्रकृतियोंको घटाकर शेष प्रकृति सत्तामें समझनी चाहिये । अपूर्वकरणमें अनंतानुबंधी आदि सातका क्षय मानलें तो दश कम हो जाती हैं । अनिवृत्तिकरणके नौ अंशोंमें तथा सूक्ष्मादिकोंमें भी ऊपरके वचनानुसार क्षयकी प्रकृतियोंको घटाकर शेष प्रकृतियोंकी सत्ता समझनी चाहिये ।

प्रथमसे आठवें गुणस्थान पर्यंतकी सत्ता असत्ता न० १ के यंत्रमें ऊपर बताई है ।

अनिवृत्तिके नौ अंशोंमें जो सत्ताका विच्छेद होता है उसका यंत्र ऊपर नं० २ में दिया है ।

गोमट सारमें सामादन गुणस्थानमें तीन प्रकृतियोंका असत्व माना है। और मिश्रमें एक प्रकृतिका असत्व माना है। नीचे जो गुणस्थानोंके यत्र टिप्पणीमें दिये हैं वे गोमटसारके अनुसार हैं। और ऊपर जो अपूर्व पर्यंत आठ कोष्टकोंका यंत्र है वह इस प्रथका है।

गुण	सत्त्व	असत्त्व	सत्त्व व्यु.
मिथ्यात्व	१४७	×	×
सामादन	१४५	३	×
मिश्र	१४७	१	×

क्षायिक रहित सम्यक्त्ववालेका यत्र इस प्रकार है। —

अविरत—	१४८	×	१
देशविरत	१४७	१	१
प्रमत्त वि.	१४६	२	×
अप्रमत्त	१४६	२	×
अपूर्वकरण उपशमक	१४६	२	×
अनिवृत्तिकरण उ	१४६	२	×
सूक्ष्मसांपराय उ.	१४६	२	×
उपशान्त	१४६	२	×

क्षायिक सम्यक्त्व वालेकी सत्ता असत्ता आदिका यंत्र —

अविरत	१४१	७	२
देशविरत	१३९	९	×
प्रमत्त	१३९	९	×
अप्रमत्त	१३९	९	×
अपूर्व उ	१३९	९	×
अनि. उ	१३९	९	×
सूक्ष्म उ.	१३९	९	×
उपशान्त	१३९	९	×
अपूर्व करण क्षपक	१३८	१०	×
अनिवृत्ति करण क्षपक.	१३८-१२२-११४ ११३-११२-१०६ १०५-१०४-१०३ १०२-	१०-२६-३४-३५ ३६-४२-४३-४४ ४५-४६	१६-८ १-१-६- १-१-१-१
सूक्ष्म सा राय	१०२-	४६	१
क्षीण कषाय.	१०१	४७	१६
सयोग केवली	८५	६३	×
अयोगकेवली द्वि.	८५	६३	७२
" च,	१३	१३५	१३

सूक्ष्मसांपराये—१ । १०२ ।

उपशाते	क्षी द्वि	क्षी.च	स.	अयोग प्रथमसमये	अयोग द्वितीयसमये
०	२	१४	०	७२	१३
०	१०१	९९	८५	८५	१३
१४२					

यत्र न० ३

अथवा द्वितीयो विकल्पः—

श्वभ्रतिर्यक्सुरायुर्हीना मिथ्यादृष्टौ ०, १४५, ३ । "न सत्याहारकद्वन्द्वे न तीर्थकृति शासन" इति वचनादाहारक-तीर्थकरहीनाः सासने ०, १४२, ६ । " नेति तिर्यक्त्वमिश्रत्वे सत्त्वे तीर्थकृतो भवी " ति वचनादाहारकद्वयेन सह तीर्थकरेण विना मिश्रे ०,१४४,४ । तीर्थकरेण सहासयते ७, १४५, ३ । देशे ७, १४५, ३ । प्रमत्ते ७, १४५, ३ ।

सूक्ष्म सापरायादिका सत्ताक्षयादिका यत्र ऊपर न० ३ दिया है ।

अब दूसरे विकल्पसे बताते हैं । नरक, तिर्यंच तथा देवायुको छोडकर यदि मिथ्यादृष्टि हो तो क्षय कुछ नहीं, सत्ता १४५ की, असत्ता ३ की । (०,१४५, ३)॥ 'सासादनमें आहारकद्वयका भी निषेध किया है और तीर्थंकर प्रकृति भी वहा नहीं होती ' ऐसा वचन पूर्वमें दिया है । इसलिये आहारकद्वयकी तथा तीर्थंकर प्रकृतिकी भी असत्ता माननेसे सासादनमें क्षय तो कुछ नहीं है किंतु सत्ता १४२ की है और असत्ता ६ की है । (०,१४२, ६)॥ ' मिश्र गुणस्थानकी अवस्थाको तीर्थंकर प्रकृतिवाला प्राप्त नहीं होता ' इस पूर्व वचनसे मिश्रमें तीर्थंकर प्रकृतिको छोडकर और आहारक दो को जोडकर, क्षय किसीका नहीं है किंतु, सत्ता १४४ की और असत्ता ४ की है । (०,१४४, ४)॥

तीर्थंकर प्रकृति चौथेसे सत्तामें रह सकती है इसलिये तीर्थंकर प्रकृतिको जोडकर असंयतमें क्षय ७ का, सत्ता १४५ की, असत्ता ३ की है । (७, १४५, ३) । देशविरतमें क्षय ७ का, सत्ता १४५ की, असत्ता ३ की । प्रमत्तमें क्षय ७ का,

अप्रमत्ते ७, १४५, ३ । अपूर्वे ०, १३८, १० । अनिवृत्तौ नवांशेपु इत्थम् —

१६	८	१	१	६	१	१	१	१
१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५

यंत्र न० ४

सूक्ष्मे	उपशान्ते	क्षीणे १	क्षीणे २	सयोगे	अयोगे १	अयोगे २
१	०	२	१४	०	७२	१३
१०२	१३८	१०१	९९	८५	८५	१३
४६	१०	४७	४९	६३	६३	१३५

प्रभ्रश्योपशमश्रेणेर्यो मिथ्यात्व विगाहते । तस्य प्रकृतयः साष्टाश्चत्वारिंशच्छतप्रमाः ॥ ६६ ॥
श्वेऽन्यजन्मनि क्षीणे श्वभ्रतिर्यक्सुरायुषाम् । सत्क्षयो नृभवे प्राप्ते गुणस्थानेषु कथ्यते ॥ ६७ ॥

सत्ता १४५ की, असत्ता ३ की । अप्रमत्तमें क्षय ७ का, सत्ता १४५ की, असत्ता ३ की । अपूर्वमें क्षय नहीं, सत्ता १३८ की, असत्ता १० की । अनिवृत्तिके नौ अशोंमें तथा आगे किस प्रकार हैं सो ऊपर यंत्र न० ४ में बताया है । —

उपशम श्रेणीसे गिरकर जो मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके प्रकृति एकसौ अडतालीस होती हैं ॥ ६६ ॥

नरकायु तिर्यगायु तथा देवायु ये तीन प्रकृति जिसकी पहिले भवमें क्षीण हो चुकी हैं उसको मनुष्य भव प्राप्त होनेपर गुणस्थानोंमे कर्मोंकी सत्ताका क्षय किस प्रकार होता है सो आगे बताते है । ६७ ।

स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्यग्द्वितयं नारकद्वयम् । सूक्ष्मं साधारणोद्योतावाद्यजातिचतुष्टयम् ॥ ६८ ॥
आतप. स्थावरो ज्ञेयाः षोडश प्रथमे क्षणे । अनिवृत्तेर्द्वितीयेंऽशेऽष्टकषाया मध्यमास्ततः ॥ ६९ ॥
पंढवेदो वधूवेदो हास्यषट्कं क्रमात्ततः । पुंवेदोऽस्तस्ततः क्रोधो मानोऽतो वचना ततः ॥ ७० ॥
अनिवृत्तौ १६ । ८ । १ । १ । ६ । १ । १ । १ । १ ।
सूक्ष्मे लोभसज्वालो द्वे निद्राप्रचले क्षणे । आद्ये क्षीणान्तिमे ज्ञानदृग्विघ्नस्थाश्चतुर्दश ॥ ७१ ॥
१ । २ । १४ ।
अयोगस्य शरीराणि पंच बंधनपचकम् । सघातपंचकं षट्कं सस्थानानां सुरद्वयम् ॥ ७२ ॥
त्रीण्यगोपांगकान्यष्टौ स्पर्शाः सहननानि षट् । अपर्याप्तं रसाः पंच द्वौ गंधौ वर्णपंचकम् ॥ ७३ ॥

स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, तिर्यगति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी ये दो, नरकगति दो, सूक्ष्म, साधारण, उद्योत, एकेंद्रियादि चार जाति, आतप, स्थावर—ये सोलह प्रकृति उस जीवके अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके नौ भागोंमेंसे पहिले भागमें क्षयको प्राप्त होती हैं। दूसरे भागमें मध्यम (दूसरे तथा तीसरे मिलकर) आठ कषाय क्षीण होते हैं । तीसरे भागमें नपुंसक वेद, चौथे भागमें स्त्रीवेद, पाचवेंमें हास्यादि छह नोकषाय, छट्ठे भागमें पुरुषवेद, सातवें भागमें संज्वलन क्रोध, आठवेंमें मान और फिर नौवें भागमें माया कषाय—इस प्रकार क्रमसे क्षयको प्राप्त होती हैं ॥ ६८ – ७० ॥

सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानमें लोभ सज्वलन कषायकी व्युच्छित्ति होती है। क्षीणकषायके उपांत्य समयमें निद्रा प्रचला इन दोका और अंत्य समयमें चौदहका क्षय होता है। उन चौदह प्रकृतियोंके नाम—पाच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पांच अंतराय—ये हैं। ७१ ।

पांच शरीर, पाच बधन, पाच संघात, छह सस्थान, देवगति दो, तीन अगोपांग, आठ स्पर्श, छह संहनन, अपर्याप्त, पांच रस, दो गध, पाच वर्ण, अयश कीर्ति, अगुरुलघ्वादि चार, प्रशस्ताप्रशस्त दो विहायोगति, स्थिर अस्थिर दो, शुभ अशुभ दो,

अयशोगुरुलघ्वादिचतुष्क द्वे नभोगती । स्थिरद्वन्द्व शुभद्वन्द्वं प्रत्येकं सुस्वरद्वयम् ॥ ७४ ॥
वेद्यमेकमनादेय नीचदुर्भगनिर्मितः । उपांत्यसमये क्षीणा द्वासप्ततिरिमाः समम् ॥ ७५ ॥

७२ प्रकृतयः ॥

अंत्ये वेद्य द्वयोरेक नरायुर्नृद्वये त्रसम् । सुभगादेयपर्याप्तपचाक्ष तीर्थकर्तृता ॥ ७६ ॥
बादरोच्चयशासीति त्रयोदश क्षणे क्षयम् । यस्य प्रकृतयो यांति तमयोग स्तुवे त्रिधा ॥ ७७ ॥

१३ प्रकृतयः ।

किं प्राक् विच्छिद्यते बधः किं पाकः किमुभौ समम् । किं स्वपाकेन वधोऽन्यपाकेनोभयथापि किम् ॥ ७८ ॥
सान्तरोऽनतरः किं किं वधो द्वेधा प्रवर्त्तते । इत्येवं नवधा प्रश्नक्रमेणास्त्येतदुत्तरम् ॥ ७९ ॥

प्रत्येक, सुस्वर दु स्वर दो, एक वेदनीय, अनादेय, नीचगोत्र, दुर्भग, निर्माण -ये बहत्तरि प्रकृति, अयोग केवली चौदहवें गुणस्थानके उपांत्य समयमें एक साथ नाशको प्राप्त होती हैं । ७२ – ७५ ।

दो वेदनीयमेंसे बची हुई एक वेदनीय प्रकृति, मनुष्यायु, मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये दो, त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्त, पचेंद्रिय जाति, तीर्थकरत्व, बादर, उच्च गोत्र, यश कीर्ति- ये सर्व तेरह प्रकृति चौदहवें गुणस्थानके अंत समयमें क्षय को प्राप्त हो जाती हैं । इस प्रकार सर्व प्रकृति जिनकी सत्तामेंसे चली गई हैं ऐसे अयोग-चौदहवें गुणस्थानवर्ती अर्हंतकी मैं स्तुति करता हू । ७६–७७

१ कौनसा बध उदयसे पहिले विच्छिन्न हो जाता है । २ किसका उदय पहिले विच्छिन्न होता है । ३ किसके बध और उदय एक साथ विच्छिन्न होते हैं । ४ कौनसा अपने ही पाकसे बंध विच्छिन्न होता है । ५ कौनसा दूसरे पाकसे बंधक्षय होता है । ६ कौनसा अपने तथा दूसरेके दोनो प्रकारके पाकसे बंध विच्छिन्न होता है । ७ कौनसा बध सांतर है अर्थात् कभी होता है और कभी नहीं होता है । ८ कौनसा बध निरतर होनेवाला है । ९ कौनसा बध सांतर निरतर-दोनों प्रकारका है । इस प्रकार नौ प्रश्न हैं । उत्तर भी इनके क्रमसे ये हैं । ७८ – ७९ ।

॥१६५

देवायुर्विक्रियद्वन्द्वं देवाहारद्वयेऽयशः । इत्यष्टानां पुरा पाकः पश्चाद्बधो विनश्यति ॥ ८० ॥

अत्र उपरि बधोच्छेदगुणस्थानाकसख्या, अधस्तात्तूदयविच्छेदगुणस्थानांकसख्या द्रष्टव्या—

देवायुषः-वंध, गु. ७, गु. ४. उदय । वैक्रियिकद्वयस्य—८, ४ । देवद्वयस्य—८, ४ । आहारकद्वयस्य—८, ६ । अयशःकीर्तेः—६, ४ ।

हास्यरतिजुगुप्साभीमिथ्यापुस्थावरातपाः । साधारणमपर्याप्त सूक्ष्म जातिचतुष्टयम् ॥ ८१ ॥
कोपादयोऽविसज्वाललोभा मर्त्यानुपूर्विका । इत्येकत्रिंशतो बधपाकच्छेदौ सम मतौ ॥ ८२ ॥

देवायु, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपांग—ये दो, देवगति देवगत्यानुपूर्वी—ये दो, आहारक द्वय, अयश कीर्ति—ये आठ प्रकृति उदयसे विच्छिन्न पहिले होती हैं और इनका बधविच्छेद पीछेसे होता है । ८० ।

यहापर जो नीचे गुणस्थानोंकी प्रथम संख्या बताई है वह बंधविच्छेद की है और उदयविच्छेदके गुणस्थानोंकी सख्या पीछे पीछेसे दी है वह है । (मूल ग्रथमें यह प्रत्येक सख्या ऊपर नीचे लिखकर बताई है) ।

देवायुका बंध० ७ वें गु० में है । उदय० ४ थे गु० में है । वैक्रियिक द्वयका बंध वि० ८ वें में है । उदय वि० ४ थे में है । देवगतिद्वयका बंध० ८ वेंमें है । उदय० ४ थे में है । आहारक द्वयका बध वि० ८ वेंमें है । उदय० ६ छट्ठेमें है । अयश कीर्तिका बंध वि० ६ ट्ठेमें है । उदय ४ थेमें है ।

हास्य, रति, जुगुप्सा, भय, मिथ्यात्व, पुरुष वेद, स्थावर, आतप, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, आदिकी चार जाति, संज्वलन लोभको छोडकर क्रोधादिक पद्रह कषाय, मनुष्यानुपूर्वी, ये इकतीस प्रकृति ऐसी हैं कि इनका बधविच्छेद तथा उदयविच्छेद एक साथ होता है । ८१—८२

एकस्मिन् गुणस्थाने बंधपाकद्वयोर्दर्शनाद्बंधपाकौ समं द्रष्टव्यौ। हास्यस्य ८, ८। रतेः ८, ८। जुगुप्सायाः ८, ८। भयस्य ८, ८। मिथ्यात्वस्य १, १। पुंवेदस्य ९, ९। स्थावरस्य १, १। आतपस्य १, १। साधारणस्य १, १। अपर्याप्तस्य १, १। सूक्ष्मस्य १, १। जातिचतुष्टयस्य १, १। यद्यपि शासने जातिचतुष्टयस्योदयस्तथापि न दोषस्तस्य मिथ्यादृष्टिसदृशत्वात्। नरानुपूर्व्याः ४, ४। अनंतानुबंधिचतुष्टयस्य २, २। अप्रत्याख्यानचतुष्टयस्य ४, ४। प्रत्याख्यानचतुष्कस्य ५, ५। क्रोधसंज्वलनस्य ९, ९।

जिस गुणस्थानमें बंधविच्छेद इनका देखा गया है उन्हींमें उदयविच्छेद भी इन प्रकृतियोंका होता है। इसलिये इनका बंधच्छेद तथा उदयच्छेद एक साथ माना गया है। हास्यका बंध ०८ वें में है। उदयच्छेद भी ८ वें में है। रतिका बंध० ८ वें में, उदय० भी ८ वें में है। जुगुप्साका बंध० ८ वें में, उदय० ८ वें में है। भयका बंध० ८ वें में है, उदय० ८ वें में है। मिथ्यात्वका बंध० १ ले में, उदय० १ ले में है। पुरुषवेदका बंध० ९ वें तक, उदय० भी ९ वें तक है। स्थावरका बंध० १ लेमें है, उदय० १ लेमें है। आतपका बंध० १ लेमें है, उ० १ लेमें है। साधारणका बंध० १ लेमें है, उदय० १ लेमें है। अपर्याप्तका बंध० १ ले में है, उदय० १ ले में है। सूक्ष्मका बंध० १ ले में है, उदय० १ ले में हैं। एकेंद्रियादि जाति चारका बंध० १ ले में है, उदय० १ ले में है। यद्यपि इन चार जातियोंका उदय सासादनमें भी है परन्तु सासादन मिथ्यात्वके ही समान है, इसलिये समानतामें कोई दोष नहीं आता है। मनुष्यानुपूर्वीका बंध० ४ थे में है, उदय ४ थे में है। अनंतानुबंधी कषाय चारका बंध० २ रे में है, उदय० २ रे में है। अप्रत्याख्यान कषाय चारका बंध० ४ थे में है, उदय० ४ थे में है। प्रत्याख्यान कषाय चारका बंध० ५ वें में है, उ० ५ वें में है। संज्वलन क्रोध (तथा मान माया) का ९ वें में बंध० है, उदय० ९ वें में है।

प्रकृतीनां तु शेषाणामेकाशीतेः शरीरिणः। पूर्वं विच्छिद्यते बंधः पश्चात्पाकस्य विच्छिदा ॥ ८३ ॥
वेद्यांतरायदृग्ज्ञानरोधगोत्रभगा यशः। शोकारत्यंतलोभाः स्त्रीषढतीर्थविधाश्रिताः ॥ ८४ ॥
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूंषि श्वभ्रतिर्यङ्नृरीतयः। तिर्यक्श्वभ्रानुपूर्व्यौ द्वे पचाक्षौदारिकद्वये ॥ ८५ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीना चतुष्टयम्। षट्के संस्थानसंहत्योरुद्योतो द्वे नभोगती ॥ ८६ ॥
स्थिरादिपंचयुग्मानि निर्मितं तैजसकार्मणे। एकाशीतेः पुरा बंधः पश्चात्पाको विनश्यति ॥ ८७ ॥

अत्र उपरि पाकोच्छेदगुणस्थानांकसंख्या, अधस्तात्तु बंधच्छेदगुणस्थानांकसंख्या द्रष्टव्या—

पचानां ज्ञानावरणानां, चतुर्णां दर्शणावरणानां, पंचानामन्तरायाणां–पाकच्छेदः १२, बंधच्छेद १०। यश - कीर्त्युच्चगोत्रयो १४, १०। स्त्यानगृद्धित्रयस्य ६, २। निद्राप्रचलयोः १२, ८। सद्वेद्यस्य १४, १३। असद्वेद्यस्य १४, ६। संज्वलनलोभस्य १०, ९ स्त्रीवेदस्य ९, २। नपुसकवेदस्य ९, १।

जीवकी शेष बची इक्यासी प्रकृतियोंका पहिले बंधच्छेद होता है, फिर बादमें उदयविच्छेद होता है। ८३।

वेदनीय, अतराय, दर्शनावरण, ज्ञानावरण, गोत्र, गति, यश कीर्ति, शोक, अरति, संज्वलन लोभ, स्त्रीवेद, नपुसक वेद, तीर्थकरत्व, नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु, नरकगति, तिर्यगति, मनुष्यगति, तिर्यगानुपूर्वी, नरकानुपूर्वी, पंचेंद्रियजाति, औदारिक शरीर द्वय, वर्णादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, त्रसादि चार, छह संस्थान, छह सहनन, उद्योत, विहायोगति दो, स्थिरादि पांचके युगल (अर्थात् दश), निर्माण, तैजस, कार्मण–इन इक्यासी प्रकृतियोंका बंधच्छेद पहिले होता है और उदयविच्छेद पीछेसे होता है। ८४–८७।

अब यहापर जो गुणस्थानोंकी संख्या नीचे देते हैं उसमें पहिली पहिली संख्या उदयच्छेद की समझना और पीछे पीछेकी संख्या बंधच्छेदकी समझना।

पाच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पांच अतराय–इनका उदयच्छेद १२ में, बंधच्छेद १० में होता है। यश कीर्ति उच्चगोत्र इनका १४, १०। स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंका ६, २। निद्रा प्रचलाका १२, ८। सातावेदनीयका १४,

अरतिशोकयोः ८, ६। नरकायुषः ४, १। तिर्यगायुषः ५, २। मनुष्यायुषः १४, ४। नरकगतेः ४, १। तिर्यग्गतेः ५, २। मनुष्यगतेः १४, ४। पञ्चेन्द्रियजातेः १४, ८। औदारिकशरीरस्य १३, ४। तैजसस्य १३, ८॥ कार्मणस्य १३, ८। समचतुरस्रसंस्थानस्य १३, ८। मध्यमसंस्थानचतुष्टयस्य १३, २। हुंडस्य १३, १। औदारिकशरीराङ्गोपांगस्य १३, ४। वज्रर्षभनाराचसंहननस्य १३, ४। वज्रनाराचनाराचयोः ११, २। अर्द्धनाराचकीलकसंहननयोः ७, २। असंप्राप्तासृपाटिकासंहननस्य ७ १। वर्णादिचतुष्टयस्य १३, ८। नरकगत्यानुपूर्व्या ४, १। तिर्यग्गत्यानुपूर्व्याः ४, २। अगुरुलघ्वादिचतुष्टयस्य १३, ८। उद्योतस्य ५, २। प्रशस्तविहायोगतेः १३, ८। अप्रशस्तविहायोगतेः १३, २। त्रसबादरपर्याप्तानां १४, ८। प्रत्येकशरीरस्य १३, ८। स्थिरस्य १३, ८। अस्थिरस्य १४, ६। शुभस्य १३, ८। अशुभस्य १३, ६। सुभगस्य १४, ८। दुर्भगस्य ४, २। सुस्वरस्य १३, ८। दुःस्वरस्य १३, २। आदेयस्य १३, ८। अनादेयस्य ४, २। निर्माणस्य १३, ८। तीर्थविधायितायाः १४, ८। नीचस्य ५, २।

१३। असातावेदनीयका १४, ६। संज्वलन लोभका १०, ९। स्त्री वेदका ९, २। नपुंसक वेदका ९, १। अरति शोकका ८, ६। नरकायुका ४, १। तिर्यगायुका ५, २। मनुष्यायुका १४, ४। नरक गतिका ४, १। तिर्यग्गतिका ५, २। मनुष्य गतिका १४, ४। पंचेंद्रिय जातिका १४, ८। औदारिक शरीरका १३, ४। तैजसका १३, ८। कार्मणका १३, ८। समचतुरस्र संस्थानका १३, ८। मध्यके चार संस्थानोंका १३, २। हुंडक संस्थानका १३, १। औदारिक शरीरांगोपांगका १३, ४। वज्रर्षभनाराच संहननका १३, ४। वज्रनाराच तथा नाराचका ११, २। अर्धनाराच तथा कीलक संहननका ७, २। असंप्राप्त सृपाटिका संहननका ७, १। वर्णादि चारका १३, ८। नरकगत्यानुपूर्वीका ४, १। तिर्यग्गत्यानुपूर्वीका ४, २। अगुरुलघ्वादि चारका १३, ८। उद्योतका ५, २। प्रशस्त विहायोगतिका १३, ८। अप्रशस्त विहायोगतिका १३, २। त्रस बादर तथा पर्याप्तकका १४, ८। प्रत्येकशरीरका १३, ८। स्थिरका १३, ८। अस्थिरका १३, ६। शुभका १३, ८। अशुभका १३, ६। सुभगका १४, ८। दुर्भगका ४, २। सुस्वरका १३, ८। दुःस्वरका १३, २। आदेयका १३, ८। अनादेयका ४, २। निर्माणका १३, ८। तीर्थंकरत्वका १४, ८। नीचगोत्रका ५, २।

विक्रियाषट्कमाहारद्वयं श्वभ्रामरायुषी । तीर्थकृच्चेति बध्यंते एकादश परोदयात् ॥ ८८ ॥

नरकगतिनरकगत्यानुपूर्वी-देवगतिदेवगत्यानुपूर्वी-वैक्रियिकशरीरवैक्रियिकशरीरांगोपांगानां षण्णां बंधयोग्येषु गुणेषु परोदयेन बंध, स्वोदयेन बंधस्य विरोधात्। आहारकद्वयमपि परोदयेन बध्यते। आहारकद्वयोदयरहितयोरप्रमत्तापूर्वयोर्बंधोपलंभात् । नारकामरायुषोरपि परोदयेन बंधस्तद्बंधोदययोः समानकाले वृत्तिविरोधात् । तीर्थकरनाम्नोऽपि परोदयेन बंधः तीर्थकरकर्मोदयसंभवि गुणस्थानयोः सयोगायोगयोस्तद्बंधानुपलभात् ।

ज्ञानावृत्त्यंतरायस्था दश तैजसकार्मणे । शुभस्थिरद्वये वर्णचतुष्क हक्चतुष्टयम् ॥ ८९ ॥

निर्माणागुरुलघ्वाह्वे मिथ्यात्वं सप्तविंशतिः । बध्यन्ते स्वोदयाच्छेषा द्व्यशीतिः स्वपरोदयात् ॥ ९० ॥

विक्रियासंबंधी छह प्रकृतियोंके नाम इस प्रकार हैं— १ वैक्रियिक शरीर, २ वैक्रियिक अंगोपांग, ३ देवगति ४ देवगत्यानुपूर्वी, ५ नरकगति, ६ नरकगत्यानुपूर्वी ये छह प्रकृति और आहारक दो, देवायु, नरकायु तथा तीर्थंकरत्व—इन ग्यारह प्रकृतियोंका बंध पर प्रकृतिके उदयमें होता है । ८८ ।

ऊपरकी छह प्रकृति—जिन्हे वैक्रियिक-षट्क कहा है—उनका बंध अपने उदयके समय नहीं होता किंतु अपने बंधयोग्य गुणस्थानोंमें परोदयसे ही बंध होता है । आहारक द्वयका भी यही नियम है । आहारक द्वयका उदय छट्ठे गुणस्थानमें होता है । परन्तु बंध सातवें आठवें गुणस्थानोंमें देखा गया है । नरकायु तथा देवायुका भी परोदयमें ही बंध होता है । समान कालमें इन दोनोंका भी बंध तथा उदय नहीं होता । अर्थात् देवायुका बंध देवायु भोगते हुए नहीं होता । इसी प्रकार नरकायु भोगनेवाला नारकी जीव नरकायुका बंध नहीं करता । तीर्थंकर प्रकृतिका भी परोदयमें ही बंध है । तीर्थंकर प्रकृतिका उदय तेरहवें चौदहवें इन दो गुणस्थानोंमें सभव है । परन्तु वहा तीर्थंकरका बंध होना संभव नहीं है ।

ज्ञानावरण पाच, अतराय पाच—ये दश, तैजस, कार्मण, शुभ दो, स्थिर दो, वर्णादि चार, दर्शनावरण चक्षुर्दर्शनावरणादि चार, निर्माण, अगुरुलघु, मिथ्यात्व—इन सत्ताईस का बंध अपने उदयमें ही होता है ॥ बाकी बची हुई ब्यासी प्रकृति अपने उदयमें भी बंधको प्राप्त होती हैं तथा दूसरे उदयमें भी बंधको प्राप्त होती हैं । ८९—९० ।

ज्ञानावरणान्तरायस्था दश प्रकृतयो, दर्शनावरणस्य चतस्रो, बंधयोग्येषु गुणस्थानेषु स्वोदयेन बध्यन्ते । मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तेष्वेतासां निरन्तरोदयोपलंभात् । तैजसकार्मणवर्णगंधरसस्पर्शनिर्माणागुरुलघुस्थिरास्थिरशुभाशुभानि स्वोदयेनैव बध्यन्ते, ध्रुवोदयत्वात् । मिथ्यात्वस्यापि स्वोदयेनैव बंधो मिथ्यात्वकारणषोडशप्रकृतिषु पाठाद् बंधोदययोः समानकाले वृत्तिविरोधाभावाद्वा । दर्शनावरणपंचकवेदद्वयकषायषोडशकनोकषायतिर्यगायुर्मनुष्यायुस्तिर्यग्गतिमनुष्यगत्येकद्वित्रिचतुःपंचेन्द्रियजात्यौदारिकौदारिकांगोपांगसंस्थानषट्कसंहननषट्कतिर्यग्गतिमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्युपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तप्रत्येकसाधारणसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिनीचोच्चगोत्रनामिकानां द्व्यशीतिप्रकृतीनां स्वपरोदयाद्बंधो द्रष्टव्यः, स्वोदयेनेव परोदयेनापि बंधाविरोधात् ।

ज्ञानावरण—अंतरायकी दश प्रकृति, दर्शनावरणकी चार, अपने बंधयोग्य गुणस्थानोंमें अपने उदयके रहते हुए बंधती हैं। क्योंकि, मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यंत इन चौदहका निरंतर उदय रहना माना गया है और बंध भी इनका पहिले बारह ही गुणस्थानोंमें होता है । तैजस कार्मण वर्ण गंध रस स्पर्श निर्माण अगुरुलघु स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ—ये बारह प्रकृति भी अपने उदय पर्यंत बंधको प्राप्त होती हैं । क्योंकि ये ध्रुवबंधवाली प्रकृति बताई गई हैं । मिथ्यात्वका बंध भी अपने मिथ्यात्व उदयमें ही होता है । क्योंकि मिथ्यात्वसे बंधनेवाली सोलह प्रकृतियोंमें मिथ्यात्व प्रकृतिका भी पाठ गिनाया है । तथा इसका बंध तथा उदय एक साथ होनेमें कोई विरोध भी नहीं है ।

अब उन ब्यासी प्रकृतियोंको गिनाते हैं जिनका बंध और उदय समान समयमें भी होता है और आगे पीछे भी होता है दर्शनावरणकी पांच निद्रा, वेदनीय दो, कषाय सोलह, नोकषाय नौ, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्य गति, एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पचेंद्रिय ये पांच जाति, औदारिक शरीर, औदारिकांगोपांग, संस्थान छह, संहनन छह, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर,

कषायाः सकलाः सर्वा ज्ञानदृष्ट्यन्तरायगाः । उपघातजुगुप्से भीर्मिथ्यातैजसकार्मणे ॥ ९१ ॥
निर्माणागुरुलघ्वाख्ये वर्णादीनां चतुष्टयम् । ध्रुवबधा मताः सप्तचत्वारिंशदिमा जिनैः ॥ ९२ ॥

ध्रुवबधत्वमेतासां बधयोग्यगुणस्थाने नित्य बंधोपलभात् ।

आयुश्चतुष्टयाहारद्वयतीर्थकरैर्युताः । चतुःपञ्चाशदेताश्च बध यांति निरन्तरम् ॥ ९३ ॥

ध्रुवबधस्य निरन्तरबंधस्य च को विशेषः ? महान् विशेषो यतः—

बधयोग्यगुणस्थाने याः स्वकारणसन्निधौ । सर्वकाल प्रबध्यन्ते ध्रुवबधा भवन्ति ताः ॥ ९४ ॥
बन्धकालो जघन्योऽपि यासामन्तर्मुहूर्त्तकः । बन्धसमाप्तितस्तत्र ता निरन्तरबन्धनाः ॥ ९५ ॥

सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र, उच्चगोत्र-ये व्यासी प्रकृति हैं । इनका बंध अपने उदयके साथ भी होना संभव है तथा परके उदयमें भी इनके बंध होनेमें कोई विरोध संभव नहीं है ।

सोलह सर्व कषाय, ज्ञानावरणकी सर्व प्रकृति पाच, दर्शनावरण की सर्व प्रकृति नौ, अन्तराय सर्व पाच, उपघात, जुगुप्सा, भय, मिथ्यात्व, तैजस, कार्मण, निर्माण, अगुरुलघु, वर्णादि चार—ये सैंतालीस प्रकृति ध्रुवबधरूप हैं ॥ ९१–९२ ॥

इनके बधयोग्य गुणस्थान जहांतक हैं वहांतक इनका बंध निरतर होता है इसलिये इन्हे ध्रुव बधवाली प्रकृति कहा है।

चार आयु, आहारक द्वय, तीर्थकरत्व—इन सात प्रकृतियोंका और ऊपरकी सैंतालीस प्रकृतियोंका बध निरतर होता है इसलिये ये चौअन प्रकृति निरतर बंधवाली भी मानी जाती हैं । ९३ ।

ध्रुव तथा निरतर बधमें क्या विशेष है ? महान् विशेष है वह आगे बताते हैं ।

बंधयोग्य गुणस्थानोंमें अपने बधके कारण रहते हुए जिनका सर्वदा बध होता रहे उन्हें ध्रुवबध कहते हैं । और बंधका प्रारंभ होकर समाप्तिपर्यत जिनका अन्तर्मुहूर्त जघन्य काल भी निश्चित है वे प्रकृति उतने कालतक निरतर बधको प्राप्त होती हैं

अन्त्ये सहतिसस्थानपचके स्थावरातपौ । पढवेदो वधूवेद आद्य जातिचतुष्टयम् ॥ ९६ ॥
शोकारत्यशुभोद्योतसूक्ष्मसाधारणा यशः । अस्थिरामन्नभोरीतिदुर्भगापूर्णदुःस्वराः ॥ ९७ ॥
श्वभ्रद्वयमनादेयासाते त्रिंशचतुर्युताः । वध्यन्ते सांतरा वन्धेन्याः सातरनिरन्तराः ॥ ९८ ॥
बधो भूत्वा क्षण यासामसमाप्तो निवर्त्तते । बधापूर्तेः क्षणेनैताः सातरा विनिवेदिताः ॥ ९९ ॥
अन्तर्मुहूर्त्तमात्रत्वाज्जघन्यस्यापि कर्मणाम् । सर्वेषा बधकालस्य बध सामयिकोऽस्ति नो ॥ १०० ॥
तिर्यग्द्वय नरद्वन्द्व पुंवेदौदारिकद्वये । गोत्रे सात सुरद्वन्द्व पचाक्ष वैक्रियद्वयम् ॥ १०१ ॥

यह निरतरका अर्थ है । अर्थात् उस कालके अनतर निरतर प्रकृतियोंका बध होना रुक भी जाता है । ९४–९५ ।

छहमेंसे पहिलोंको छोडकर अंतके पाच सहनन, पांच सस्थान, स्थावर, आतप, नपुसक वेद, स्त्रीवेद, पंचेंद्रिय जातिको छोडकर आदिकी चार जाति, शोक, अरति, अशुभ, उद्योत, सूक्ष्म, साधारण, अयश कीर्ति अस्थिर, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, अपर्याप्त, दु स्वर, नरकगति-नरकगत्यापूर्वी ये दो, अनादेय, असाता—ये चौतीस प्रकृति सांतर बंधती हैं । और शेष बत्तीस प्रकृति सांतर भी बधती हैं, निरतर भी बधती हैं । ९६–९७–९८ ।

जिनेंद्र भगवान्‌ने इन्हे इसलिये सातर कहा है कि इनका क्षणमात्र बध होकर अधूरा भी रुक जाता है । ९९ ।

सर्व कर्मोंका जघन्य बध भी हो तो अंतर्मुहूर्त मात्र उसका जघन्य काल है । इसलिये एक समयमात्रका बध कोई भी नहीं हो सकता है । भावार्थ, एकसमयिक बंधकी असभवता इसलिये यहा दिखाई है कि एक क्षण बध होकर जो रुक जाता है वह अधूराही रुकजानेसे सांतर समझना चाहिये । १०० ।

तिर्यगति तिर्यगत्यानुपूर्वी ये दो, ऐसे ही मनुष्यगति द्वय, पुरुषवेद, औदारिक शरीर द्वय, दोनो गोत्र, साता वेदनीय देवगतिद्वय, पचेंद्रिय जाति, वैक्रियिक शरीरद्वय, परघात, रति, हास्य, प्रथम संस्थान, प्रथम सहनन, त्रसादि दश युगलके आद्य दश भेद अर्थात् त्रस बादर पर्याप्ति स्थिर आदेय यश कीर्ति शुभ सुस्वर सुभग आदेय ये दश, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति–

परघातं रतिहास्यमाद्यं संस्थानसंहती । दश त्रसादियुग्मानामाद्यान्युच्छ्वाससद्गती ॥ १०२ ॥
द्वात्रिंशदिति जायंते ताः सांतरनिरन्तराः । यस्मादुभयथा बन्धः सर्वदाप्युपलभ्यते ॥ १०३ ॥
उच्चनृत्वे न बध्नंति तेजःपवनकायिकाः । स्त्रीपंढकोदये साधुर्नाहारर्द्धिं कदाचन ॥ १०४ ॥
मिथ्यात्वभावतो जातु मिथ्यात्वबलभाविषु । शासनो जायते नैव श्वाभ्रतेजोनिलांगिषु ॥ १०५ ॥

वंधोदयोदीरणसत्क्षयाणां, विचारणां यो विदधाति नित्यम् ।
विविक्तमात्मानमपास्तकर्मा, ज्ञानात्मकं सोऽमितगत्युपैति ॥ १०६ ॥

इति श्रीमदमितगत्याचार्यप्रणीते पंचसंग्रहग्रन्थे
कर्मबंधस्तवस्तृतीय परिच्छेद ।

ये बत्तीस प्रकृति हैं जो ऊपर सांतर तथा निरंतर दोनो स्वभाववाली बताई हैं। इनका सदा दोनो प्रकारका बंध होता दीख पडता है। अर्थात् ये सांतर रूपसे भी बंधको प्राप्त होती हैं और निरंतर भी बंधनेवाली ये हैं। १०१—१०३।

तेज कायिक तथा पवनकायिक जीव उच्चगोत्रका तथा मनुष्यायुका बंध नहीं करते हैं। और स्त्रीवेदका उदय रहते हुए अथवा नपुंसक वेदका उदय रहते हुए साधु आहारक ऋद्धिका बंध नहीं कर सकता है॥ १०४॥

नारकी, तेज कायिक तथा वायुकायिक जीवोंके पर्याय मिथ्यात्वके बलसे उत्पन्न होनेवाले हैं। इसलिये इन तीनों पर्यायोंमें, सासादन—दूसरे गुणस्थानका धारी जीव जन्म ग्रहण नहीं करता है। १०५।

बंधका, उदयका, उदीरणाका, सत्ताका तथा बंधोदय—उदीरणा—सत्ताके क्षयका जो नित्यप्रति विचार करता है वह कर्मोंका नाश करके अमित ज्ञान को धारण करता हुआ ज्ञानात्मक शुद्ध आत्मदशाको पहुंचता है।

इस प्रकार कर्मबंधस्तव नामका तीसरा परिच्छेद हुआ।

इस परिच्छेदमें विशेप ध्यानमें लाने योग्य अनेक बातें हैं परतु थोडीसी बातोंका उल्लेख भी कर देते हैं। इस उल्लेख परसे अनेक बातोंके विचार करनेकी दिशा प्राप्त होगी इसी लिये ये थोडीसी बातें यहापर बताई जाती हैं।

१—नव्यानवे (९९ के श्लोकमें कुछ प्रकृति सातर जो बधती हैं उनके सांतरपनेका अर्थ बताया है । उसका खुलासा तात्पर्य १०० वें श्लोकमें है । इसमें बताया है कि कोई कर्म जघन्य समयतक भी बंधता हो तो भी अतर्मुहूर्त पर्यंत बधता है । अर्थात् एक समय बंधका पूरा हो जाता हो ऐसा एक भी कर्म नहीं है । एक वार बध होना किसी कर्मका सुरू हुवा तो वह कमसे कम अतर्मुहूर्त पर्यंत बधता रहेगा । तब कहीं पूरा होगा । गोमटसारमें एक समयमें कर्म बधता है और उसका उदय आबाधा के बादमें सुरू होता है वह उदय वहुत समय पर्यंत चलता है ऐसा वर्णन है । उसका अर्थ इतना ही है कि प्रत्येक समयके बंधकी आगामी कैसी व्यवस्था लगती है सो बताया है । उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह बंध एक समयमें पूरा हो जाता हो ।

२—श्लोक सतासीसे आगे यह बताया है कि अमुक अमुक कर्मका बध होना जल्दी रुक जाता है और उदय उसके बाद भी होता रहता है । जैसे ज्ञानावरण, अंतराय तथा चक्षुर्दर्शनावरणादि चार—इन चौदहका बध दशवेंके आगे नहीं होता किंतु उदय बारहवेंके अततक होता रहता है। और मोहनीय कर्मका बध तथा उदय दोनो ही दशवेंसे आगे नहीं होते हैं। इससे यह तात्पर्य लेना चाहिये कि मोहनीयके नाश पाते ही सर्व घाती कर्म फिर नवीन बंधको प्राप्त नहीं होते । इस प्रकार चारो ही घाती कर्मोंका बध होना एक दम रुक जाता है । कारण, मोह ही सर्व कर्मोंमें मुख्य है । उसकी वृद्धि होना बद पडते ही इतर मुख्य कर्मोंकी वृद्धि होना भी बंध पड जाता है

३—श्लोक ९६ वें में नपुसवेदको तथा स्त्रीवेदको सातर बध बताया है और पुरुषवेदको निरतर तथा सांतर दोनो प्रकारका १०१ वें श्लोकमें बताया है । सातरका अर्थ हम ऊपर बताचुके हैं कि सातर बंध अधूरा बध होता है । अर्थात् निरतर बधका अर्थ बधकी पूर्णता है । स्त्रीवेद तथा नपुसकवेदका जब बंध सातर होनेसे सदा अपूरा ही है तो इन दोनो वेदोंका सामर्थ्य भी पूरा नहीं हो सकता है । अर्थात, नपुसक अथवा स्त्रीवेदवाला जीव महत्वके कार्योंको पूरा भी नहीं कर सकता है । पुरुष

वेद भी जो सांतर बधा हुआ है उसके उदयको भोगनेवाला जीव महत्वके कार्योंको पूर्ण नहीं कर सकता है। परंतु पुरुषवेद निरंतर भी बधता है। वह पुरुष वेदवाला जीव महत्वके कार्योंको पूर्ण कर सकता है।

इसलिये श्री गोमटसारमें पुरुषका स्वरूप वर्णन करते हुए लिखा है वह सिद्धांतके ठीक अनुकूल होता है। वह लेख इस प्रकार है।

पुरु गुण भोगे सेदे करेदि लोयह्मि पुरु गुण कम्म। पुरु उत्तमोय जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरुपो ॥
एवं, छादयदि सय दोसेणयदो छाददि परंवि दोसेण। छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥

इसके शिवाय, औदारिक शरीरादिकको भी सातर तथा निरंतर दोनो प्रकारका बताया है। इसका भी यही तात्पर्य है कि जो सातर औदारिक कर्म है उसके उदयमें औदारिक शरीर जो होता है वह अधिक सुदृढ नहीं होगा। और जो निरंतर बंधे हुए कर्मके उदयसे औदारिक शरीर प्राप्त होगा वह अधिक सुदृढ होगा।

४—श्लोक ५७ वेंमें बताया है कि उदीरणा हो तो तेरहवें गुणस्थान पर्यंत सर्व कर्मोंकी उदीरणा हो जाती है। उसमेंसे साता असाता मनुष्यायु इन तीन कर्मोंकी उदीरणा छट्टेमें ही समाप्त हो जाती है। अर्थात् वह उदीरणावाला जीव चौदहवें पर्यंतके गुणस्थानोंको इस शरीरमें रहकर पूर्ण करता है ऐसा नहीं माना जा सकता है। क्योंकि छट्टेसे आगे मनुष्यायुकी उदीरणा नहीं रहती। इसलिये जो केवली होते हैं उनके मनुष्यायु कर्मकी उदीरणा नहीं होती है ऐसा मानना सयुक्तिक है। जो मनुष्यायु की उदीरणा करनेवाला है वह केवली नहीं होसकता है—यह भी मानना सयुक्तिक ठहरता है। इसीलिये तत्त्वार्थसूत्रमें जो चरमदेहको अनपवर्त्यायु बताया है वह यावत् चरमदेहोंकेलिये समझना चाहिये। और चरमका ' उत्तम ' विशेषण है वह प्रशंसा मात्रकेलिये है।

इस अनपवर्त्यायुके प्रकरणमें उत्तम विशेषणका ऐसा खुलासा किया है कि, ' चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तम ग्रहण, नार्थान्तरविशेषोस्ति '।

॥१७६॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

जयताज्जनितानंद जिनेन्द्रवचनामृतम् । जन्ममृत्युजरातृष्णाश्रमतापापनोदनम् ॥ १ ॥

दृष्टिवादादपोद्धृत्य वक्ष्यन्ते मारयोगिनः । श्लोका जीवगुणस्थानगोचराः कतिचिन्मया ॥ २ ॥

ये सन्ति यस्मिन्नुपयोगयोगाः सप्रत्ययास्तान्निगदामि तत्र । जीवे गुणे वा परिणामतोऽहमेकत्र बंधादिविधिं च किंचित् ।३।

सत्येकाक्षेषु चत्वारि जीवाना विकलेषु षट् । पचेंद्रियेषु चत्वारि स्थानानीति चतुर्दश ॥ ४ ॥

तिर्यग्गतावशेषाणि द्वे सज्ञि.थे गतित्रये । जीवस्थानानि नेयानि सत्येव मार्गणास्वपि ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

जन्म मरण जरा तृष्णा श्रम ताप आदि दोषोंको हरनेवाले और सच्चे आनंदको देनेवाले जिनेन्द्रके वचनामृत जयवत रहो ।१।

जीवसमास तथा गुणस्थानोंके गोचर, सच्चे योगियोंको दिखानेवाले कुछ श्लोकोंको मैं दृष्टिवादसे लेकर कहूगा । २ ।

जिस जीवसमासमें अथवा गुणस्थानमें जो उपयोग, योग रहते हैं और उनके कारण मार्गणा आदि वहा जो कुछ होते हैं उन सबोंको मैं जीवसमास तथा गुणस्थानोंमें तथा मार्गणाओंमें एकत्र करके सक्षेपमें कहता हू । और जो बंधादिविधि, परिणामोंके द्वारा एक एक स्थानमें होती है उसको भी थोडीसी कहूगा । आगे कर्मके कारण मिथ्यात्वादिका भी वर्णन गुणस्थान तथा मार्गणा आदिमें करेंगे । ३ ।

जीवसमासोंके सर्व स्थान चौदह हैं । उनमेंसे एकेंद्रियोंमें चार स्थान होते हैं । विकलेंद्रियोंमे छह स्थान होते हैं । पचेंद्रियोंमें चार हैं । इस प्रकार चौदह स्थान जीवसमासके हो जाते हैं । ४ ।

तिर्यच गतिमें जीवसमास चौदह ही मिलते हैं । बाकी तीन गति-देव मनुष्य नरकगति—इन तीनोंमें जीव सज्ञी ही रहते हैं । इसलिए इन तीन गतियोंमें जीवसमासके दो दो स्थान मिलते हैं । इसी प्रकार सर्व मार्गणाओंमें जीवसमासोंको लगा लेना चाहिये । ५ ।

२३

॥१७७॥

न	ति	म.	दे.	ए.	द्वी	त्री	
२	१४	२	२	४	२	२	
च	प.	पृ	अ.	ते	वायु.	व.	
२	४	४	४	४	४	४	
त्रस	स म	अस म	उ म.	अनु म	स. व.	अस व	
१०	१	१	१	१	१	१	
उ व	अनु व.	औ	औ मि	वै.	वै. मि.	आ.	
१	५	७	८	१	१	१	
आ मि	का	स्त्री	पुं	न	को	मा	
१	८	४	४	१४	१४	१४	
माया	लोभ	कुम	कुश्रु	विभंग	म	श्रु	
१४	१४	१४	१४	१	२	२	
अ	मन	के	सामा	छेदो	परि	सूक्ष्म	
२	१	१	१	१	१	१	
यथा	सयमा	अस	च	विग्रह च	अच	अव	
१	१	१४	३	६	१४	२	
के	कृष्ण	नील	कापोत	पीत	पद्म	शु	
१	१४	१४	१४	२	२	२	
म	अभ	औप. द.	औप. विग्रह	वेदक	क्षा	शासन	
१४	१४	१	२	२	२	२	
सा. वि.	मिश्र	मिथ्या	संज्ञी	असं.	अ वि	आहा	अनाहा
८	१	१४	२	२	१२	१४	८

ऊपरके यंत्रमें संपूर्ण मार्गणाओंके उत्तर भेदोंमें क्रमसे जीवसमास कितने कितने संभव हैं सो बताया है। मार्गणा भेदोंके नाम यंत्रमें संक्षेपसे दिये हैं। उन नामोंका यथाक्रमसे पूरा उच्चारण इस प्रकार समझना। न–नरकगति। ति–तिर्यंचगति। म–मनुष्यगति। दे–देवगति। ए–एकेंद्रिय मार्गणा। द्वी–द्वीन्द्रिय मार्गणा। त्री–त्रींद्रिय मार्गणा। च–चतुरिंद्रिय मार्गणा। प–पंचेंद्रिय मार्गणा। पृ–पृथ्वीकाय। अ–अपकाय। ते–तेज काय। वा–वायुकाय। व–वनस्पतिकाय। त्र–त्रसकाय। स म–सत्य मनोयोग। अ म–असत्य मनोयोग। उ म–उभय मनोयोग। अनु. म–अनुभय मनोयोग। स व–सत्य वचन योग। अस व–असत्य वचनयोग। उ व–उभय वचनयोग। अनु व–अनुभय वचन योग। औ–औदारिक काययोग। औ मि–औदारिक मिश्र काययोग। वै–वैक्रियिक काययोग। वै मि.–वैक्रियिकमिश्र काययोग। आ–आहारक काययोग। आ मि.–आहारक मिश्र काययोग। का–कार्मण काययोग। स्त्री–स्त्री वेद। पु–पुरुष वेद। न–नपुंसक वेद। क्रो–क्रोध कषाय। मा–मान कषाय। माया–माया कषाय। लो–लोभ कषाय। कुम–कुमति ज्ञान। कुश्रु–कुश्रुत ज्ञान। वि–विभंग (मिथ्या अवधि) ज्ञान। म–सम्यग् मतिज्ञान। श्रु–सम्यक् श्रुतज्ञान। अ–अवधि ज्ञान। मन–मनःपर्ययज्ञान। के–केवलज्ञान। सामा–सामायिक संयम। छेदो–छेदोपस्थापन संयम। परि–परिहारविशुद्धि संयम। सूक्ष्म–सूक्ष्मसांपराय संयम। यथा–यथाख्यात संयम। संयमा–संयमासंयम। अस–असंयम (प्रथम गुणस्थानसे चतुर्थगुणस्थान पर्यंत की अवस्था) च–चक्षुर्दर्शन मार्गणा। विग्रह च–विग्रह चक्षुर्दर्शन। अच–अचक्षुर्दर्शन। अव–अवधि दर्शन। के–केवल दर्शन। कृष्ण–प्रथमलेश्या। नील–द्वितीय लेश्या। कापोत–तृतीयलेश्या। पीत–चतुर्थलेश्या। पद्म–पंचमलेश्या। शु–छट्ठीलेश्या मार्गणा। भ–भव्यत्व। अभ–अभव्यत्व। औप. द–औपशमिक दर्शन। औप विग्रह–औपशमिक दर्शन विग्रहगति। वेदक–वेदक दर्शन अथवा क्षायोपशमिक दर्शन। क्षा–क्षायिक दर्शन। शासन–सासादन सम्यग्दर्शन। सा. वि.–सासादन विग्रह। मिश्र–मिश्रमोह (तीसरे गुणस्थानके परिणाम)। मिथ्या–मिथ्यादर्शन। संज्ञी–संज्ञी मार्गणा। अस–असंज्ञी मार्गणा। अ वि.–असंज्ञी विग्रह। आहा–आहारक मार्गणा। अनाहा–अनाहारक मार्गणा। जिस नामके नीचे जितनी संख्या दी है उस मार्गणामें उतने ही जीवसमास समझलेने चाहिये। इसका खुलासा आगे करते हैं।—

श्वभ्रमानवदेवेषु द्वौ द्वौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ। तिर्यक्षु चतुर्दशापि जीवसमासाः। एकाक्षे बादरसूक्ष्मपूर्णापूर्णाश्चत्वारः। द्वित्रिचतुरक्षेषु निजौ पर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ। पचाक्षे सद्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताश्चत्वारः। पचस्थावरकायेषु प्रत्येकं प्रथमाश्चत्वारः। त्रसकायेषु द्व्यक्षाद्या दश। आद्येषु सप्तसु योगेषु एकः सज्ञी पूर्णः। अष्टमे तु पच द्व्यक्षाद्याः पर्याप्ताः। औदारिके सप्त पर्याप्ता। मिश्रे सप्तापर्याप्ताः संज्ञिपर्याप्तोऽष्टमः। वैक्रियिकाहारकाहारकमिश्रेष्वेकः सज्ञो पर्याप्तः। वैक्रियिकमिश्रे सद्यपर्याप्त। कार्मणे सप्तापर्याप्ताः संज्ञिपर्याप्तोऽष्टमः। स्त्रीपुंवेदयोः सद्यसंज्ञिपूर्णापूर्णाश्चत्वारः। षढवेदे सर्वे। कषायचतुष्के समस्ता। मतिश्रुताज्ञानयोर्नि शेषा। विभगे संज्ञ्येकः पूर्ण। मतिश्रुतावधिषु सज्ञिपूर्णापूर्णौ। मनःपर्ययकेवलयो सद्येकः पूर्ण। सयमपचकदेशसयमयोरेकः सज्ञी पूर्ण। असयमे सकला। चक्षुर्दर्शने चतुरक्षाद्याः पर्याप्तास्त्रयः। विग्रहगत्यपेक्षया षट् ते

---

(१) नरकगति, मनुष्यगति, देवगति–इन तीनो गतियोंमें सज्ञिपर्याप्त, संज्ञिअपर्याप्त ऐसे दो दो जीवसमास मिलते हैं। तिर्यंच गतिमें चौदह ही समास हैं। २ इंद्रिय मार्गणामेंसे एकेंद्रियके बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त ये चार जीवसमास हैं। द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय–इन प्रत्येकमें अपने अपने पर्याप्त अपर्याप्त–ये दो जोवसमास होते हैं। पचेंद्रियमें सज्ञि असज्ञि पर्याप्त अपर्याप्त–ये चार जीवसमास हैं। (३) पांच स्थावरोंमेंसे प्रत्येकमें बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त–ये आदिके चार समास हैं। त्रसमें इंद्रियके अनुसार जोडनेसे सर्व समास दश होते हैं। (४) पद्रह योगोंमेंसे पहिले सात योगोंमें एक सज्ञीपर्याप्त समास है। आठवें अनुभय वचन योगमें द्वींद्रियादि पर्याप्तक पाच समास हैं। औदारिक काय योगमें पर्याप्तसबधी सात समास हैं। औदारिक मिश्रमें अपर्याप्तक सात समास हैं, और आठवां सज्ञि पर्याप्तक समास भी है। सर्व चौदह समास हैं उनमेंसे सात पर्याप्तक हैं, सात अपर्याप्तक हैं। वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, आहारक मिश्र–इन तीन योगोंमें एक सज्ञी पर्याप्तक नामका समास होता है। वैक्रियिक मिश्र योगमें एक सज्ञि अपर्याप्तक समास है। कार्मण काय योगमें सात अपर्याप्तक समास हैं, और आठवां सज्ञिपर्याप्तक भी है। (५) वेद मार्गणामेंसे स्त्रीवेद तथा पुरुष वेदमें सज्ञी असज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त–ये चार चार समास होते हैं। नपुंसक वेदमें चौदह ही समास हैं। (६) कषाय मार्गणामेंसे प्रत्येक कषायमें चौदह समास पाये जाते हैं। (७) ज्ञान मार्गणाके अनुसार कुमति तथा

पर्याप्तापर्याप्ताः । अचक्षुर्दर्शने सर्वे । अवधिदर्शने संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । केवलदर्शने पूर्णः सञ्ज्येकः । कृष्णनीलकापोतासु सर्वे। पीतपद्मशुक्ललेश्यासु सञ्ज्ञिपूर्णापूर्णौ द्वौ। भव्याभव्ययोः प्रत्येकमशेषाः। औपशमिकदर्शने सञ्ज्येकः। विग्रहगत्यपेक्षया पूर्णापूर्णौ द्वौ सञ्ज्ञिनौ। वेदकक्षायिकशासनेषु सञ्ज्ञिपूर्णापूर्णौ। शासने तु विग्रहगत्यपेक्षया सप्तापर्याप्ताः सञ्ज्ञी पूर्णोऽष्टमः। मिश्रे सञ्ज्येकः पूर्ण । मिथ्यादृष्टौ सर्वे । सञ्ज्ञिनि द्वौ सञ्ज्ञिपूर्णापूर्णौ । असञ्ज्ञिनि द्वावसञ्ज्ञिनौ पूर्णापूर्णौ । विग्रहगत्यपेक्षया द्वादश सञ्ज्ञिपूर्णापूर्णवर्जिताः । आहारके समस्ता । अनाहारके सप्तापर्याप्ताः, सञ्ज्ञिपर्याप्तोऽष्टमः । एव मार्गणासु जीवसमासा यार्जिता ।

कुश्रुतमें चौदह चौदह समास हैं। विभगमें एक एक संज्ञी पर्याप्त समास है। मति श्रुत अवधिमेंसे प्रत्येकमें सञ्ज्ञीके पर्याप्त अपर्याप्त ये दो समास हैं । मन पर्यय तथा केवल ज्ञानमें एक एक सञ्ज्ञी पर्याप्तक समास है । (८) सामायिकादि पांच सयमोंमें तथा देशसंयममें एक सञ्ज्ञी पर्याप्तक समास है । असयममें चौदह ही समास हैं । (९) दर्शनमार्गणामेंसे चक्षुर्दर्शनमें चतुरिंद्रिय, पचेंद्रिय, असञ्ज्ञी, पचेंद्रिय सञ्ज्ञी ये तीन पर्याप्तक समास हैं । और विग्रहगतिकी अपेक्षा भी रखलें तो पर्याप्त तीन तथा अपर्याप्त तीन ऐसे छह समास हैं । अचक्षुर्दर्शनमें चौदह ही समास हैं । अवधि दर्शनमें सञ्ज्ञीसबधी पर्याप्त अपर्याप्त ये दो समास हैं। केवल दर्शनमें एक सञ्ज्ञी पर्याप्तक नामका समास है । (१०) कृष्ण नील कापोत-इन तीन लेश्याओंमेंसे प्रत्येकमें चौदह चौदह समास हैं । पीत पद्म शुक्ल इन तीन लेश्याओंमेंसे सञ्ज्ञीसबंधी पर्याप्त अपर्याप्त ये दो समास हैं । (११) भव्य मार्गणामें भव्यके चौदह समास हैं । अभव्यके भी चौदह हैं । (१२) सम्यक्त्व मार्गणामेंसे औपशमिक दर्शनमें एक सञ्ज्ञी पर्याप्तक समास है । विग्रह गतिकी अपेक्षाको जोड लेनेसे सञ्ज्ञी सबधी पर्याप्त अपर्याप्त—ये दो समास हैं । वेदक सम्यक्त्वमें, क्षायिक सम्यक्त्वमें तथा सासादनमें सञ्ज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त—ये दो दो समास हैं । सासादनमें विग्रहगतिकी अपेक्षासे अपर्याप्तक सात और आठवां सञ्ज्ञी पर्याप्तक ऐसे सर्व आठ समास भी सभव हैं । मिश्रमें एक सञ्ज्ञी पर्याप्तक समास है । मिथ्यादृष्टिमें चौदह ही समास होते हैं । (१३) सञ्ज्ञिमार्गणामें सञ्ज्ञी पर्याप्त, सञ्ज्ञी अपर्याप्त—ये दो समास होते हैं । असंज्ञीमें असञ्ज्ञीसबन्धी पर्याप्त अपर्याप्त—ये दो समास होते हैं । विग्रहगतिकी अपेक्षाको लेलेनेपर बारह समास होते हैं । चौदहमेंसे सञ्ज्ञीसम्बन्धी दो पर्याप्त अपर्याप्त— ये दो दो कम हो

मार्गणासु गुणस्थानानि ।

सर्वाणि नृगतौ पञ्च तिर्यक्षु श्वाभ्रदेवयोः । गुणस्थानानि चत्वारि मार्गणास्वपराम्विति ॥ ६ ॥

नरक	ति	मनु.	देव	एक	द्वी	त्रीन्द्रि.	चतु	पंचे	पृथि.	अप्काय	तेज	वायु	वन
४	५	१४	४	२	१	१	१	१४	२	२	१	१	२

त्रस	स.म.	अ.म.	उभय म.	अनु म	स व	अ.व	उ.व.	अ.व.	औदा.	औ मि	वै.	वै.मि.
१४	१३	१२	१२	१३	१३	१२	१२	१३	१३	४	४	३

आ	आ मि.	का.	स्त्री.	पु	नपुं.	क्रो.	मान	माया	लो.	कुम	कुश्रु	वि.	म.	श्रु	अ.
१	१	४	९	९	९	९	९	९	१०	२	२	२	९	९	९

मनः	कें.	सामा	छेदो.	परि.	सूक्ष्म	यथा	सं	असं.	च.	अ	अव	कें.	कृष्ण	नील	कापो.
७	२	४	४	२	१	४	१	४	१२	१२	९	२	४	४	४

पीत	पद्म	शु	भ	अभ.	औप	वेदक	क्षा	सा	मिश्र.	मिथ्या.	स	अ	आ.	अ
७	७	१३	१२	१	८	४	११	१	१	१	१२	२	१३	५

जाते हैं । (१४) आहारक मार्गणामें आहारकके चौदह ही जीवसमास हैं । अनाहारकमें सात अपर्याप्तक और आठवां संज्ञिपर्याप्तक ऐसे आठ समास पाये जाते हैं । इस प्रकार मार्गणाओंमें जीवसमासोंकी योजना समझनी चाहिये ।

अब मार्गणाओंमें गुणस्थानोंको बताते हैं । मनुष्य गतिमें सर्व अर्थात् चौदह ही गुणस्थान होते हैं । तिर्यंच गतिमें आदिके पांच, और नरक गतिमें तथा देव गतिमें आदिके चार चार गुणस्थान हैं । इसी प्रकार इतर मार्गणाओंमें भी समझ लेना चाहिये । ६ ।

नारकसुधाशिकयोश्च चार्याद्यानि गुणस्थानानि । तिर्यक्षु पंच । मनुष्येषु सर्वाणि । एकद्वित्रिचतुरक्षेषु द्वे प्रथमे, पचाक्षेषु समस्तानि। धरावारिवनस्पतिकायेषु द्वे प्रथमे। तेजोवातकाययोरेकमाद्य। त्रसेषु चतुर्दश । मनोवचनयोगयोराद्ययोरन्त्ययोरौदारिककाययोगे च त्रयोदश सयोगांतानि। मध्यमयोः क्षीणांतानि द्वादश। कार्मणौदारिकमिश्रयोः प्रथमद्वितीयचतुर्थसयोगाख्यानि चत्वारि। वैक्रियिके प्रथमानि चत्वारि । तन्मिश्रे मिश्र विना त्रीणि। आहारकाहारकमिश्रयोरेक प्रमत्ताख्य। वेदत्रिके प्रत्येक नवाद्यानि। आद्यकषायत्रिके नवाद्यानि । लोभे दश। अज्ञानत्रये द्वे मिथ्यादृष्टिशासने । प्रथमे ज्ञानत्रये प्रत्येकं नवासयतादीनि । मनःपर्यये प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तानि सप्त। केवले द्वे अत्ये। सामायिकच्छेदोपस्थापन-

---

इस ऊपरके यत्रमें ऊपर ऊपर जो नामैकदेश हैं वे मार्गणाओंके वाचक हैं और नीचे नीचे जो अंक दिये हैं उनका अर्थ गुणस्थानसंख्या है। अर्थात् अमुक अमुक मार्गणामें इतने इतने गुणस्थान हो सकते हैं ऐसा ऊपरके यंत्रसे तात्पर्य दिखाया है।

यत्र ऊपर दिया है उससे, किस मार्गणामें कितने गुणस्थान हैं, उनकी संख्या मालम पडजाती है । परतु वे कौन कौनसे गुणस्थान हैं यह बात आगे नाम लिखकर स्पष्ट की जाती है। [१] गति मार्गणामेंसे नरक गतिमें और, देव गतिमें आदिके चार गुणस्थान पर्यंत संभव होते हैं। तिर्यंच गतिमें आदिके पाच गुणस्थान हैं। मनुष्य गतिमें सर्व गुणस्थान संभव हैं। (२) एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय तथा चतुरिंद्रियमें आदिके दो गुणस्थान पर्यंत होते हैं। पचेंद्रियमें सर्व गुणस्थान हैं। (३) तीसरी काय मार्गणामेंसे पृथिवी अप् वनस्पति कायमें पहिले दो दो गुणस्थान हैं। तेज काय तथा वायुकायमें पहिला एक ही गुणस्थान है। त्रसकायमें सर्व गुणस्थान है। (४) मनोयोग आदि तथा अतके ऐसे दोमें तथा वचनयोग आदि तथा अतके दो (सत्य, अनुभय) में और औदारिक काययोगमें चौदहवेंके सिवाय पहिलेसे तेरहवें तकके गुणस्थान पाये जाते हैं। बीचके (असत्य तथा उभय) दो मनोयोग तथा बीचके ही दो वचन योगोंमें प्रथमसे बारहवें गुणस्थान पर्यंत होते हैं। कार्मणमें और औदारिक मिश्रमें प्रथम गुणस्थान, द्वितीय गुणस्थान, चतुर्थ गुणस्थान तथा तेरहवा गुणस्थान ऐसे चार गुणस्थान होते हैं। वैक्रियिकमें पहिले चार गुणस्थान होते

योश्चत्वारि प्रमत्तादीनि। परिहारे द्वे प्रमत्ताप्रमत्ते। एकं सूक्ष्मे सूक्ष्मकषायाख्य। यथाख्याते चत्वार्युपशांतादीनि, एकं संयमासयमे पचम। असयमे चत्वार्याद्यानि। चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोर्द्वादशाद्यानि। अवधिदर्शने नवासयतादीनि। केवलदर्शने द्वे अन्त्ये। आद्ये लेश्यात्रये चत्वार्याद्यानि। तेजःपद्मयोराद्यानि सप्त। शुक्लाया त्रयोदश मयोगातानि। द्वादशाद्यानि भव्ये। एकमभव्ये प्रथमं। औपशमिकेऽष्टासयतादीनि। वेदके चत्वार्यसयतादीनि। क्षायिके चतुर्थादीन्येकादश। शासनमिश्रमिथ्या-

---

है। वैक्रियिक मिश्रमें मिश्रको छोडकर शेष प्रथम तीन गुणस्थान होते हैं। आहारक और आहारकमिश्र काय योगमें छट्ठा एक गुणस्थान है। (५) तीनों वेदोंमेंसे प्रत्येक वेदमें आदिके नौ गुणस्थान हैं। [६] क्रोध मान माया इनमेंसे प्रत्येक कषायमें प्रथमके नौ गुणस्थान हैं। लोभ कषायमें आदिके दश गुणस्थान हैं। (७) अज्ञान तीनोंमें पहिले दो गुणस्थान है। पहिले तीन सुज्ञानोंमें चौथे—असंयतसे लेकर बारहवें पर्यंत नौ गुणस्थान हैं। मन पर्ययमें छट्ठेसे क्षीणकषाय पर्यंत सात गुणस्थान हैं। केवलज्ञानमें अतके दो गुणस्थान है। (८) सामायिक तथा छेदोपस्थापन इन दो सयमोंमें छट्ठेसे नौवें पर्यंत चार गुणस्थान हैं। परिहारविशुद्धि संयममें प्रमत्त अप्रमत्त—ये दो हैं। सूक्ष्मकषाय नामके चौथे सयममें एक दशवा गुणस्थान है। यथाख्यात पाचवें सयममें ऊपरके चार उपशातादि गुणस्थान है संयमासयममें एक पाचवा गुणस्थान होता है। असयममें आदिके चार गुणस्थान हैं। (९) चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शनमें प्रथमके बारह गुणस्थान हैं। अवधिदर्शनमें असयत—चौथे गुणस्थानसे बारहवें पर्यंत नौ गुणस्थान है। केवलदर्शनमें अतके दो गुणस्थान है। (१०) कृष्ण नील कापोत—इन तीन लेश्याओंमें आदिके चार गुणस्थान होते हैं। तेजोलेश्या और पद्मलेश्यामें आदिके सात गुणस्थान हैं। शुक्ल लेश्यामें अतका एक छोडकर शेष तेरह गुणस्थान हैं। (११) भव्य मार्गणामें भव्यके आदिके बारह गुणस्थान है। अभव्यके पहिला एक गुणस्थान है। (१२) औपशमिक सम्यक्त्वमें असयत—चौथेसे ग्यारहवें पर्यंतके आठ गुणस्थान हैं। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें चौथेसे सातवें पर्यंतके चार गुणस्थान हैं। क्षायिक सम्यक्त्वमें चौथेसे अततक के ग्यारह गुणस्थान है। सासादन, मिश्र, मिथ्यात्व इनमें अपना अपना एक एक ही गुणस्थान है।

।१८४॥

दृष्टिषु प्रत्येकमेकं स्वकीयं । सञ्ज्ञिनि द्वादश क्षीणान्तानि । असंज्ञिनि द्वे प्रथमे । आहारके त्रयोदशाद्यानि । मिथ्यादृष्टिशासनाविरतयोग्ययोगाख्यानि पचानाहारके । एव मार्गणासु गुणस्थानानि योजितानि ।

सति मर्त्यगतौ सर्वे नवान्यासु विना त्रिभिः । नेतव्या मार्गणास्वेवमुपयोगा यथाक्रमम् ॥ ७ ॥

नरक	ति.	मनु.	देव.	ए.	द्वी.	त्री.	चतु	प.	पृ.	अप्.	तेजो	वायु	व	त्रस	सम.	असम
९	९	१२	९	३	३	३	४	१२	३	३	३	३	३	१२	१२	१०

उ. म.	अनु म	स व	अ. व	उ व	अ व	औ	मिश्र	वै	मिश्र	आ.	मिश्र	का.	स्त्री.
१०	१२	१२	१०	१०	१२	१२	९	९	[illegible]	६	६	९	९

पु.	नपुं.	क्रो.	मा.	माया	लोभ	कुम.	कुश्रु.	विभ.	म.	श्रु.	अ.	मनः	के.	सामा.	छेदो.
१०	९	१०	१०	१०	१०	५	५	५	७	७	७	७	२	७	७

परि.	सू.	यथा	सयमा.	अस	च.	अ	अव.	केव.	कृ.	नी.	का.	तेजो.	प.	शु.	भ.
६	७	९	६	९	१०	१०	७	२	९	९	९	१०	१०	१२	१०

अ.	औ.	वेद.	क्षा.	सा.	मिश्र.	मि.	स.	अ.	आ.	अ.
५	६	७	९	५	६	५	१०	४	१२	९

---

(१३) संज्ञी मार्गणामें सज्ञीकें प्रथमसे बारहवें पर्यंतके बारह गुणस्थान हैं । असज्ञीकें प्रथमके दो गुणस्थान हैं । [१४] चौदहवीं आहार मार्गणा है । इसमें आहारककें प्रथमके तेरह गुणस्थान होते हैं । अनाहारककें मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरत, योगी, अयोगी—ये पांच गुणस्थान होते हैं । इस प्रकार मार्गणाओंमें गुणस्थानोंका संभव बताया ।

अब मार्गणाओंमें उपयोगोंको लगाते हैं ।—ज्ञान दर्शनके बारह उपयोगोंमेंसे मनुष्यगतिमें सर्व ही उपयोग होते हैं । शेष तीन गतियोंमें नौ नौ उपयोग होते हैं । तीन उपयोग कौनसे छूट जाते हैं ? मन पर्यय ज्ञान, केवल दर्शन तथा केवल ज्ञान—ये तीन उपयोग नहीं होते हैं । इसी प्रकार और मार्गणाओंमें भी यथासंभव उपयोग क्रमसे लगा लेने चाहिये ॥ ७ ॥

॥१८५॥

केवलद्वयमनःपर्ययवर्जिता नवोपयोगाः श्वभ्रतिर्यग्देवेषु। मनुष्येषु सर्वे। मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनान्येकद्वित्र्यक्षेषूपयोगास्त्रय । चतुरक्षेषु चक्षुर्दर्शनाधिकास्ते चत्वारः । पंचाक्षेषु द्वादश। पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिष्वेकाक्षोक्तास्त्रयः । त्रसेषु सर्वे। मनोवचोयोगयोराद्ययोरन्त्ययोश्च द्वादश। मध्यमेषु केवलद्वयहीना दश। औदारिके निखिलाः। तन्मिश्रकार्मणयोर्मनःपर्ययविभंगचक्षुर्दर्शनहीना नव। वैक्रियिके मनःपर्ययकेवलद्वयहीना नव। तन्मिश्रे मनःपर्ययकेवलद्वयविभंगचक्षुर्दर्शनहीनाः

मार्गणाओंके प्रत्येक भेदमें बारह उपयोगोंमेंसे कितने कितने उपयोग संभव होते हैं यह बात इस ऊपरके यंत्रमें बताई है। यंत्रमें ऊपर ऊपर मार्गणाओंके संक्षेपमें नाम दिये हैं और नीचे नीचे उपयोगोंकी संख्या दी है। अब किस मार्गणामें वे उपयोग कौन कौनसे हैं यह बात आगे बताते हैं।

(१) नरक तिर्यंच तथा देवगतिमें, केवल दर्शन, केवल ज्ञान, तथा मन पर्यय ज्ञान—ये तीन उपयोग नहीं होते। शेष नौ उपयोग होते हैं। मनुष्यगतिमें बारह ही उपयोग हैं। (२)—एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रियमें मत्यज्ञान श्रुताज्ञान अचक्षुर्दर्शन—ये तीन उपयोग हैं। चतुरिंद्रियमें तीन ऊपरके उपयोग और एक चक्षुर्दर्शन ऐसे चार उपयोग हैं। पंचेंद्रियमें बारह ही उपयोग हैं। (३)—पृथिवी अप् तेज वायु वनस्पति—इन पांच कायोंमें, जो एकेंद्रियके तीन बताये थे, वे ही तीन उपयोग हैं। त्रसोंमें सर्व उपयोग हैं। (४)—आदिके एक एक मनोयोग तथा वचनयोग और अंतके एक एक मनोयोग, वचनयोग—इन चार योगोंमें बारह ही उपयोग हैं। बीच बीचके दो दो मनोयोग, वचनयोगोंमें दश दश उपयोग हैं। बारह उपयोगोंमेंसे केवलदर्शन केवलज्ञान ये दो उपयोग मध्यके इन चार योगोंमें नहीं हैं। औदारिकमें सभी उपयोग (१२) हैं। औदारिकमिश्र तथा कार्मण काययोगमें मन.पर्ययज्ञान, विभगज्ञान, चक्षुर्दर्शन—इन तीन उपयोगोंको छोडकर शेष नौ उपयोग हैं। कार्मण योग विग्रह गतिमें तथा केवलिके है। वैक्रियिक काय योगमें मन पर्यय और केवलद्वय—ये तीन उपयोग नहीं हैं, शेष नौ उपयोग हैं। वैक्रियिक मिश्रमें मन पर्यय, केवलद्वय, विभग, चक्षुर्दर्शन—ये पांच उपयोग नहीं हैं, शेष सात उपयोग हैं। आहारक दोनोंमें प्रथमके तीन ज्ञान, चक्षु,

सप्त । आहारकद्वये प्रथमज्ञानत्रयचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि षट् । स्त्रीषढवेदयोस्तुर्यज्ञानकेवलद्वयवर्जिता नव । पुवेदे विकेवलद्वया दश। चतुर्षु कषायेषु पुवेदोक्ता दश। त्रिष्वज्ञानेष्वज्ञानत्रिकचक्षुरचक्षुर्दर्शनानि पंच। प्रथमज्ञानचतुष्के केवलद्वयाज्ञानत्रिकहीना सप्त। केवले केवलद्वय। सामायिकच्छेदोपस्थापनसूक्ष्मसाम्परायेष्वज्ञानत्रिककेवलद्वयहीनाः सप्त। परिहारदेशसयमयोराद्यज्ञानत्रयचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि षट्। यथाख्याते पचज्ञानचतुर्दर्शनानि नव। असयमे तुर्यबोधकेवलद्वय हीना नव। चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्द्विके केवलद्वयहीना दश । अवधिदर्शने केवलयुग्माज्ञानत्रिकहीना. सप्त । केवले केवलद्वयं । आद्यलेश्यात्रये केवलद्वयतुर्यबोधहीना नव । तेजःपद्मलेश्ययो केवलद्वयविवर्जिता दश । शुक्लाया सर्वे । भव्ये केवलद्वयोना

अचक्षु, अवधि–ये तीन दर्शन–इस प्रकार छह उपयोग हैं। आहारकवालेके मन.पर्यय ज्ञान प्रगट नहीं होता है। (५) स्त्रीवेद नपुसक वेदमें मन पर्यय ज्ञान और केवल युगल–ये तीन उपयोग नहीं हैं, शेष नौ उपयोग हैं। स्त्रीवेद अथवा नपुसक वेदके रहते मन पर्यय ज्ञान नहीं होता है ऐसा भी नियम है। पुरुष वेदमें केवलद्वयके शिवाय शेष दश उपयोग हैं। (६) चार कषायोंमें, पुरुष वेदकेसे, दश उपयोग है। (७ तीन अज्ञानोंमें तीन अज्ञान और चक्षु अचक्षु दो दर्शन -ये पाच उपयोग हैं। प्रथमके चार ज्ञानोंमें केवलके दो तथा अज्ञान तीन -इन पाचके शिवाय शेष सात उपयोग हैं। केवलज्ञानमें केवलद्वय–ये दो उपयोग हैं। (८) सामायिक छेदोपस्थापन सूक्ष्मसापराय- इन तीन सयमोंमें तीन अज्ञान और केवल दो ये पाच उपयोग नहीं हैं, शेष सात उपयोग हैं। परिहारविशुद्धि और सयमासयममें आदिके तीन ज्ञान और आदिके तीन दर्शन-ये छह उपयोग हैं। यथाख्यात संयममें पांच सम्यग्ज्ञान तथा चार दर्शन ऐसे नौ उपयोग हैं। असयममें मन पर्यय ज्ञान और केवल द्वय—इन तीनके शिवाय, शेष नौ उपयोग हैं। (९)–दर्शन मार्गणामेंसे चक्षु अचक्षु इन दो दर्शनोंमें केवलद्वयहीन दश उपयोग हैं। अवधि दर्शनमें केवलद्वय और अज्ञानत्रयके शिवाय, शेष सात उपयोग हैं। केवलदर्शनमें केवलद्वय—ये दो उपयोग हैं। (१०) आदिकी तीन

॥१८७॥

दश। अभव्ये चक्षुरचक्षुरज्ञानत्रिकाणि पंच। औपशमिकसम्यक्त्वे प्रथमज्ञानत्रयचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि षट्। वेदके केवल-युगाज्ञानत्रिकहीनाः सप्त। अज्ञानत्रयहीनाः क्षायिके नव। शासनमिथ्यादृशोश्चक्षुरचक्षुर्दर्शनाज्ञानत्रिकाणि पंच। मिश्रे प्रथमज्ञानत्रिकचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि मिश्राणि षट्। सञ्ज्ञिनि केवलद्वयहीना दश। मतिश्रुताज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनानि चत्वारोऽसंज्ञिनि। आहारे सर्वे। अनाहारके विभंगमनःपर्ययचक्षुर्दर्शनहीना नव। मार्गणासु एवमुपयोगा निरूपिताः।

लेश्याओंमें केवलद्वय और मनःपर्यय ज्ञान—इन तीन उपयोगोंके शिवाय, शेष नौ नौ उपयोग हैं। पीत और पद्म लेश्यामें केवलद्वयके शिवाय; शेष दश दश उपयोग हैं। शुक्ल लेश्यामें बारह ही उपयोग हैं। (११)—भव्यमें केवलद्वयके शिवाय; शेष दश उपयोग हैं। अभव्यमें अज्ञानत्रय और चक्षु अचक्षु दो दर्शन—ऐसे पांच उपयोग हैं। (१२)—सम्यक्त्व मार्गणामेंसे औपशमिक सम्यक्त्वमें पहिले तीन सुज्ञान और पहिले तीन दर्शन—ऐसे छह उपयोग हैं। मनःपर्यय नहीं है। वेदक सम्यक्त्वमें केवलद्वय तथा अज्ञानत्रयके शिवाय, शेष सात उपयोग हैं। क्षायिक सम्यक्त्वमें तीन अज्ञान नहीं हैं, शेष नौ उपयोग हैं। सासादनमें तथा मिथ्यात्वमें तीन मिथ्याज्ञान और चक्षु अचक्षु ये दो दर्शन—ऐसे पांच उपयोग हैं। मिश्रमें पहिले तीन ज्ञान और पहिले तीन दर्शन ये मिश्ररूप छह उपयोग हैं। (१३)—सञ्ज्ञीमें केवलद्वयके शिवाय, शेष दश उपयोग हैं। असञ्ज्ञीमें कुमति कुश्रुत ये दो मिथ्याज्ञान तथा चक्षु अचक्षु ये दो दर्शन—ऐसे चार उपयोग हैं। (१४) आहारक चौदहवी मार्गणा है। इसके आहारक अनाहारक—ये दो भेद हैं। आहारकमें सर्व [१२] ही उपयोग हैं। अनाहारकमें विभंग, मनःपर्यय ये दो ज्ञान और एक चक्षुर्दर्शन—इन तीनके शिवाय, शेष नौ उपयोग हैं। इस प्रकार मार्गणाओंमें उपयोगोंका वर्णन हुआ।

अथ योगा निरूप्यन्ते—

त्रयोदश मनुष्यतांत्रेकादश गतित्रये । योगा योज्या परेष्वेवमिन्द्रियादिषु कोविदै. ॥ ८ ॥

नरक ति मनु. दे. ए द्वी. त्री. च. पं. पृ. अ तेज वायु वन त्रस. स. म.
११ ११ १३ ११ ३ ४ ४ ४ १५ ३ ३ ३ ३ ३ १५ १

अ म उ म अ म. स. व. अ व. उ व अ. व. औदा औ. मिश्र वै वै. मिश्र आहा.
१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १

आ मिश्र. का. स्त्री. पु. नपु. क्रो मा माया लोभ कुमति कुश्रुत विभ. मति श्रु.
१ १ १३ १५ १३ १५ १५ १५ १५ १३ १३ १० १५ १५

अव मनः केवल सामा छेदो परि सू यथा संयमास असंय चक्षु. द अच द. अव द.
१५ ९ ७ ११ ११ ९ ९ ११ ९ १३ १२ १५ १५

के द कृ. नील का. तेजो पद्म शु. भव्य. अभ. औप. वेदक क्षायिक सास मिश्र
७ १३ १३ १३ १५ १५ १५ १५ १३ १३ १५ १५ १३ १०

मि. स. अ. आ. अ
१३ १५ ४ १४ १

अब योगोंका निरूपण मार्गणाओंमें लगाकर करते हैं ।— योग सर्व पन्द्रह हैं । चार मनोयोग हैं, चार वचन योग हैं और सात काय योग हैं । इनमेंसे मनुष्यगतिमें तेरह योग रहते हैं । शेष तीन गतियोंमें ग्यारह ग्यारह योग रहते हैं । इसी प्रकार इन्द्रियादिक शेष मार्गणाओंमें भी योगोंको लगा लेना चाहिये । ८ ।

गतावनाहारकद्वयाः श्वभ्रदेवयोरेकादश योगाः। निराहारकयुगवैक्रियिकयुगाः तिर्यक्ष्वेकादश। वैक्रियिकद्वयहीना मनुष्येषु त्रयोदश। एकाक्षे कार्मणौदारिकौदारिकमिश्राभिधास्त्रयः। निकलेष्वसत्यमृषावचोयोगसहितास्ते चत्वारः। पञ्चाक्षे सकला।। पञ्चसु स्थावरेष्वेकाक्षोक्तास्त्रयः। त्रसेषु सर्वे। योगेष्वेको निजो निज। स्त्रीनपुंसकयोर्निराहारकद्वयास्त्रयोदश। पुंसि पंचदश। कषायचतुष्के सर्वे। मत्यज्ञानश्रुताज्ञानयोर्निराहारकास्त्रयोदश। विभगे मिश्रत्रिकाहारककार्मणहीना दश। मतिश्रुतावधिषु सर्वे। तुर्यंज्ञाने मनोवचश्चतुष्कौदारिकयोगा नव। आद्यंतमनोवचोयोगौदारिकद्वयकार्मणा सप्त केवले। आद्यसयमयो- वैक्रियिकमिश्रत्रिकोनाः। यथाख्याते वैक्रियिकद्वयाहारकद्वयोना। परिहारसूक्ष्मसांपरायदेशसंयमेषु मनोवचनौदारिकयोगा

किस मार्गणामें कितने योग हैं इसका सूचक यंत्र ऊपर दिया है।

अब प्रत्येक मार्गणाके उत्तर भेदमें संभव होनेवाले वे कौन कौनसे योग हैं सो आगे खुलासा करते हैं। —(१)— गति मार्गणा पहिली है। उसके चार उत्तर भेदोंमेंसे नारक और देव इन दो भेदोंमें आहारक शरीर आहारक शरीरांगोपांग तथा औदारिक औदारिकांगोपांग ये दो युगल अर्थात् चार योग नहीं होते शेष ग्यारह योग होते हैं। तिर्यंचोंमें आहारक द्वय और वैक्रियिक द्वय—ये चार चार नहीं हैं; शेष ग्यारह योग हैं। मनुष्योंमें वैक्रियिक द्वय के शिवाय शेष तेरह योग हैं। (२)- एकेंद्रियमें कार्मण औदारिक औदारिकमिश्र ये तीन हैं। विकलत्रयमें तीन ऊपरके हैं और एक असत्यमृषा वचनयोग अधिक है-इसलिये चार योग हैं। पचेंद्रियमें सर्व अर्थात् पद्रह ही योग हैं। (३)—पांच स्थावरोंमें एकेंद्रियके समान तीन योग हैं। त्रसोंमें सर्व हैं। (४)—योग मार्गणामेंसे अपने अपने स्थानमें एक वही वही योग है। (५) स्त्रीवेद नपुंसक वेदमें आहारक द्वयके विना शेष तेरह योग हैं। पुरुषवेदमें पद्रह हैं। (६) चारोंमेंसे प्रत्येक कषायमें सर्व योग हैं। (७)-मति श्रुत अज्ञानोंमें आहारकद्वयरहित तेरह योग हैं। विभंग ज्ञानमें तीन मिश्र योग और आहारक कार्मण—ये पांच योग नहीं हैं; शेष दश योग हैं। मति श्रुत अवधि इन तीन सुज्ञानोंमें सर्व योग हैं। मनःपर्यय ज्ञानमें चार मनोयोग, चार वचनयोग और एक औदारिक काययोग -ये नौ योग हैं। केवलज्ञानमें आदि अंतके दो मनोयोग, दो ही आद्यंतके वचनयोग, एवं औदारिक, औदारिकमिश्र,

नव। त्रयोदशासयमे निराहारकद्वयाः। चक्षुर्दर्शने मिश्रत्रिकहीना द्वादश। अचक्षुरवधिदर्शनयो सर्वे। केवलदर्शने केवलज्ञानोक्ता। कृष्णनीलकापोतासु निराहारकद्वयास्त्रयोदश। औपशमिकसम्यक्त्वशासनमिथ्यादृष्टिषु आहारकद्वयहीनास्त्रयोदश। वेदकक्षायिकयो सर्वे। मिश्रे मिश्रत्रिकाहारककार्मणहीना दश। सञ्ज्ञिनि सर्वे, असञ्ज्ञिनि कार्मणौदारिकद्वयांत्यवचोयोगाश्चत्वार। आहारके नि:कार्मणाश्चतुर्दश। एक' कार्मणोऽनाहारके। एव मार्गणासु योगा योजिता। जीवसमासेषूपयोगा उच्यन्ते—

जीवस्थानेषु चत्वार उपयोगा द्वयोर्द्वयो। त्रय एकादशस्त्रिष्ठा एकत्र द्वादश स्फुटम्॥ ९॥

कार्मण--ये सात योग रहते है। (८) आदिके दो सयमोंमें वैक्रियिक और तीन मिश्र--ये चार योग नहीं रहते हैं, शेष ग्यारह योग हैं। यथाख्यातमें वैक्रियिक युगल और आहारकयुगल--ये चार योग नहीं हैं, शेष ग्यारह योग हैं। परिहारविशुद्धिमें सूक्ष्मसांपरायमें और संयमासयममें मन पर्ययकी भांति चार वचनयोग, चार मनोयोग और एक औदारिक काय—ऐसे नौ नौ योग हैं। असयममें आहारक युगलके विना शेष तेरह योग हैं। ९) चक्षुर्दर्शनमें तीन मिश्रोंके विना बारह योग हैं। अचक्षु और अवधिदर्शनमें सर्व योग हैं। केवलदर्शनमें केवलज्ञानके समान सात योग हैं। (१०) कृष्ण नील कापोत लेश्याओंमें आहारक द्वयके विना शेष तेरह योग हैं। अतिम तीन लेश्याओंमें सर्व योग हैं। (११) भव्यमें सर्व योग हैं। अभव्यमें आहारकद्वयके विना शेष तेरह योग हैं। (१२) औपशमिक सम्यक्त्वमें, सासादनमें, मिथ्यात्वमें आहारक युगलके शिवाय तेरह योग हैं। वेदकमें और क्षायिक सम्यक्त्वमें, सर्व योग हैं। मिश्रमें विभगकी भाति तीन मिश्र और आहारक, कार्मण—इन पाचके विना शेष दश योग हैं। (१३) सञ्ज्ञीमें सर्व योग हैं। असञ्ज्ञीमें कार्मण, औदारिक, औदारिकमिश्र, तथा अनुभय वचन—ये चार योग हैं। (१४) आहारकमें कार्मणके शिवाय चौदह योग हैं। अनाहारकमें एक कार्मण काय योग है। इस प्रकार मार्गणाओंमें योगोंका अस्तित्व मिलाकर समझना चाहिये।

[illegible] आगे चौदह जीवसमासोंमें उपयोगोंको मिलाकर दिखाते हैं। जीवके चौदह समास—स्थानोंमेंसे दो में चार उपयोग [illegible] में तीन माने हैं, और एक स्थानमें बारह उपयोग माने हैं। ९।

तत्र मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनान्येकादशसु त्रय । मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनचक्षुर्दर्शनानि चतुरिंद्रियासञ्ज्ञि-पूर्णयोर्द्वयोश्चत्वारः । सञ्ज्ञिनि पूर्णे द्वादशोपयोगाः ।

जीवस्थानेषु योगा उच्यन्ते—

द्वौ चतुर्षु नवस्वेकः समस्ताः सति संज्ञिनि । जीवस्थानेषु विज्ञेया योगा योगविशारदैः ॥ १० ॥

तदित्थम्— ९, १ । ४, २ । १, १५ ।

तत्प्रकारः सूच्यते—

द्वयोरेकेन्द्रिययोः पर्याप्तयोरौदारिक एकः । सप्तस्वपर्याप्तेष्वौदारिकमिश्र एकः इति । समुदायेन नवस्वेको योगो, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिषु पर्याप्तेषु चतुर्षु द्वौ कायवाग्योगौ, सञ्ज्ञिनि पर्याप्ते पचदश योगाः ।

वे इस प्रकार हैं—चतुरिंद्रिय और असञ्ज्ञी पंचेंद्रियके पर्याप्तक दो समासोंमें एक मति अज्ञान, दूसरा श्रुताज्ञान और तीसरा चक्षुर्दर्शन, चौथा अचक्षुर्दर्शन—ये चार उपयोग हैं । सञ्ज्ञी पर्याप्तक इस एक समासमें सभी [१२] उपयोग हैं । शेष ग्यारह समासोंमें मतिअज्ञान, श्रुताज्ञान, अचक्षुर्दर्शन—ये तीन उपयोग हैं ।

अब जीवसमासोंमें योगोंको जोडते हैं ।

चार जीवसमासोंमें दो दो योग हैं । नौ समासोंमें एक एक योग है । एक सञ्ज्ञी समासमें सर्व योग होते हैं । १० ।

वे इस प्रकार है—एकेंद्रियके पर्याप्तक दो भेदोंमें औदारिक काय--यह एक योग है । अपर्याप्त सात स्थानोंमें औदारिकमिश्र--यह एक योग है । इस प्रकार समुदायसे नौ स्थानोंमें एक योग कहा गया है । द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय तथा असञ्ज्ञी--इन चार पर्याप्तक स्थानोंमें दो योग हैं—एक औदारिक काययोग और दूसरा एक वचन योग । सञ्ज्ञी पर्याप्तक-इस एक स्थानमें सर्व ही (१५) योग रहते हैं ।

पंच पट् सप्त ज्ञेया द्वौ द्विस्त्रिसप्तद्विपु क्रमात् । गुणस्थानेषु निद्वद्धिरुपयोगा भवंत्यमी ॥ ११ ॥

५ । ५ । ६ । ६ । ६ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । २ । २ ।

तत्राज्ञानत्रयचक्षुरचक्षुर्दर्शनानि मिथ्यादृष्टिसासनयोर्द्वयोः प्रत्येकं पच । ज्ञानत्रयचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि मिश्रा-संयतदेशसंयतेषु त्रिषु षडेकशः । परं मिश्रे ज्ञानान्यज्ञानमिश्राणि । चत्वारि ज्ञानानि त्रीणि दर्शनानि, सप्तसु यतिषु सप्तैकशः । केवलज्ञानकेवलदर्शने द्वयो केवलिनो प्रत्येक द्वावुपयोगौ ।

३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	सयोगायोगयो	१	१
२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३		१	१

अब गुणस्थानोंमें उपयोगोंको लगाते हैं ।—

पहिले दो गुणस्थानोंमें पांच पाच उपयोग हैं। फिर आगेके तीन गुणस्थानोंमें छह छह उपयोग हैं। फिर क्रमप्राप्त सात गुणस्थानोंमें सात सात उपयोग होते हैं। फिर अंतके दो गुणस्थानोंमें दो दो उपयोग हैं। ११।

इस श्लोकार्थका स्पष्टीकरण गद्यद्वारा आगे करते हैं। — मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानमें और सासादन दूसरेमें पांच पाच उपयोग इस प्रकार हैं कि, वहां तीन मिथ्याज्ञान और चक्षु अचक्षु-ये दो दर्शन रहते हैं। तीन ज्ञान, और चक्षु अचक्षु अवधि-ये तीन दर्शन-इस प्रकार छह छह उपयोग तीसरे, चौथे, पांचवें—इस प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं। तीसरेमें यह बात विशेष है कि वहां तीनो सुज्ञानोंको कुज्ञानसे मिश्रित समझा जाता है। छट्ठे गुणस्थानसे बारहवें पर्यंत योगियोंके सात गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानमें चार पहिले सम्यग्ज्ञान और तीन पहिले दर्शन—ये सात उपयोग रहते हैं। दोनों केवलियोंमें केवलज्ञान तथा केवल दर्शन ये दो दो उपयोग रहते हैं। नीचे इसका यंत्र देते हैं उसमें ऊपरकी पंक्तिमें क्रमसे प्रत्येक गुणस्थानमें ज्ञानोपयोगकी संख्या है और नीचेकी पक्तिमें दर्शनोपयोगकी सख्या है।

३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	१	१
२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	१	१

आद्ययोरव्रते योगा विज्ञातव्यास्त्रयोदश । दश मिश्रे प्रमत्ताख्य एकादश विचक्षणैः ॥ १२ ॥
गुणानां सप्तके योगा नव सप्त मता जिनैः । सयोगे योगनिर्मुक्ते न योगा योगिपूजिते ॥ १३ ॥

१३ । १३ । १० । १३ । ९ । ११ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ७ । ० ।

मिथ्यादृक्शासनाव्रतेषु त्रिष्वाहारकद्वयहीनास्त्रयोदश । मिश्रे मिश्रद्वयाहारकद्वयकार्मणहीना दश । प्रमत्ते वैक्रियिकद्वयौदारिकमिश्रकार्मणहीना एकादश । देशसंयताप्रमत्तादिषु सप्तसु वैक्रियिकद्वयाहारकद्वयौदारिकमिश्रकार्मणहीना नव । आद्यंतमानसद्वयाद्यंतवचनद्वयौदारिकद्वयकार्मणलक्षणा योगिनि सप्त योगाः ।

अब गुणस्थानोंमें योगोंका संभव बताते हैं ।— आदिके दो गुणस्थानोंमें और चौथेमें तेरह तेरह योग होते हैं । मिश्रमें दश योग हैं । प्रमत्त—छट्ठे गुणस्थानमें ग्यारह योग हैं । एवं सयोग—तेरहवें गुणस्थानमें सात योग हैं । योगियोंसे पूजित ऐसे अयोग—चौदहवेंमें योगोंका अभाव है । शेष बचे सात गुणस्थान—पाचवा तथा सातवेंसे बारहवें पर्यंत—इनमें नौ नौ योग हैं ॥ १२—१३ ॥

मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत चौथा गुणस्थान—इस प्रत्येकमें दो आहारकके शिवाय शेष तेरह योग हैं । मिश्र—तीसरे गुणस्थानमें तीन मिश्र, एक आहारक, एक कार्मण—इन पाच योगोंको छोड कर शेष दश योग हैं । प्रमत्त—छट्ठेमें दोनो वैक्रियिक, औदारिक—मिश्र, कार्मण—इन चारके विना शेष ग्यारह योग हैं । देशसंयत—पाचवा और अप्रमत्त—सातवेंसे बारहवें पर्यंत—इन सात गुणस्थानोंमें वैक्रियिक दो, आहारक दो, औदारिक मिश्र, कार्मण—इन छहको छोडकर शेष नौ योग हैं । सत्य मन, अनुभय मन, सत्य वचन, अनुभय वचन, औदारिक दो और कार्मण—ये सात योग सयोग केवली—तेरहवें गुणस्थानमें हैं । तेरहवें गुणस्थानमें तीन काययोग किस प्रकार हैं वह आगे बताया है ।

योगिन्यौदारिको दंडे मिश्रो योगः कपाटके । कार्मणो जायते तत्र प्रतरे लोकपूरणे ॥ १४ ॥
मिथ्यात्वाविरती योगः कषायः कथितो जिनैः । चत्वारः प्रत्यया मूले कर्मबन्धविधायिनः ॥ १५ ॥
उत्तरा प्रत्यया पच द्वादश प्रत्ययातिगै । जिनैः पचदश प्रोक्ताः क्रमतः पचविंशतिः ॥ १६ ॥
सामान्येन विशेषेण मौलिकाः प्रत्यया बुधैः । गुणस्थानेषु सर्वेषु योजनीया यथागमम् ॥ १७ ॥

योगी-तेरहवेंके शेष समयोंमें तो औदारिक काययोग ही रहता है । किंतु समुद्घातोंके होनेमें परिवर्तन भी होता है ।
वह इस प्रकार है ।-पहिले दड समुद्घातमें औदारिक योग रहता है। फिर दूसरे कपाट समुद्घातमें औदारिकमिश्र योग होता है।
आगे तीसरे प्रतर समुद्घातमें और चौथे लोकपूरण समुद्घातमें कार्मण काययोग रहता है । सिद्धांतमें यह भी नियम है कि
'जोगो वि एक्ककाले एक्केव्य होदि णियमेण'। अर्थात् एक समयमें योग कोई एक ही होता है। इस नियमके अनुसार कार्मण
काययोगके समय औदारिकादि योग नहीं रहते हैं, ऐसा समझना चाहिये । १४ ।

अब आगे कर्मबंधके कारणोंका वर्णन करते हैं । कर्मबधके मूलभूत कारण जिनेंद्र भगवान्ने चार बताये हैं, (१)
मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) योग और (४) कषाय । १५ ।

कर्मबधके कारण सर्वथा जिनके नष्ट होगये हैं ऐसे अर्हतने इन चार कारणोंके उत्तर भेद सत्तावन गिनाये हैं ।
मिथ्यात्वके उत्तर भेद पाच, अविरतिके बारह, योगके पद्रह और कषायके पच्चीस—इस प्रकार चारके सत्तावन उत्तर भेद होजाते
हैं । १६ ।

सामान्य रूपसे और विशेष रूपसे इन मूल चार कारणोंको समझलेना आवश्यक है । सामान्यका अर्थ गुणस्थान
और विशेषका अर्थ मार्गणा भी है । प्रथम, गुणस्थानोंमें चारो कारणोंका यथासभव अस्तित्व आगमानुसार लगा लेना चाहिये ।

मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानमें चारो ही बधकारण रहते हैं । और इससे ऊपरके दूसरे तीसरे चौथे—इन तीन गुणस्थानोंमें
मिथ्यात्व—यह एक कारण नहीं रहता, शेष तीन कारण रहते हैं । देशसंयम—पांचवें गुणस्थानमें विरति तथा अविरतिकी मिश्रित

मिथ्यात्वयुजि चत्वारो निर्मिथ्यात्वा गुणत्रये । विरत्यविरतिर्मिश्रा देशे द्वौ गुणपंचके ॥ १८ ॥
गुणानां त्रितये योगः केवलः प्रत्ययः स्मृतः । अन्तिमः प्रत्ययातीतः कर्मकक्षनिकर्त्तनः ॥ १९ ॥
दशत्रमविरत्याढ्या स्थावराविरतिर्मता । सार्द्धं योगकपायाभ्यां संयतासयते त्रयः ॥ २० ॥
नानैकसमयेप्येते नानैकप्राणभागिनाम् । गुणस्थानेषु सर्वेषु प्रथमाः प्रत्यया मताः ॥ २१ ॥
४।३।३।३।३।२।२।२।२।२।१।१।१।० ।

अवस्था है । और आगेके दो कारण यहां पूर्ण हैं । इस पांचवेंके आगे छट्ठेसे दशवें पर्यतके पाच गुणस्थानोंमें मिथ्यात्व तथा अविरतिके विना आगेके दो कारण हैं ॥ ग्यारहवेंमे तेरहवें पर्यतके तीन गुणस्थानोंमें केवल एक योग कारण रहता है । अतिम चौदहवा गुणस्थान कारणरहित है—अर्थात् इस गुणस्थानमें कर्मबधके चारो कारणोंमेंसे एक भी कारण नहीं रहता है । क्योंकि, यह गुणस्थान कर्मके सर्वथा संबधका भी अभाव करनेवाला है । १७-१८-१९ ।

पाचवें गुणस्थानमें विरति अविरतिका मिश्रण कैसे हैं सो वताते हैं । जीवोंके छह भेद हैं, पाच स्थावर, एक त्रस । इनमेंसे पांचवें गुणस्थानका जीव त्रसकी विराधनाका त्यागी हो जाता है, किंतु स्थावरकी विराधना उससे नहीं छूटती है । इस-लिये त्रसकी हिंसासे यहा विरति मानी गई है और स्थावरहिंसाकी अविरति अर्थात् प्रवृत्ति है । इस प्रकार पाचवें गुणस्थानमें बंधका अविरति कारण कुछ है, कुछ नहीं है । इसीको विरति–अविरतिका मिश्र कहा है । भावार्थ, अविरति एक पूरा कारण यहा नहीं रहा किंतु अधूरी अविरति शेष रही है । इसलिये इस तीसरे कारणका अस्तित्व ही मानना पडता है । इस प्रकार योग, कषाय—इन दो कारणोंको जोडनेसे संयतासयतमें भी तीन कारण माने गये हैं । २० ।

नाना प्राणोंको अथवा एक प्राणको धारण करनेवाले ससारी त्रस स्थावर जीवोंके, पहिलेसे अत पर्यतके सर्व गुण-स्थानोंमें प्रथम अर्थात् मूल बधकारण इस प्रकार माने हैं । ये कारण नाना समय पर्यंत भी रहते हैं और एक एक समयमें बदल भी जाते हैं । (४।३।३।३।३।२।२।२।२।२।१।१।१।०) । २१ ।

उत्तरप्रत्ययानाह—

आद्यं सांशयिकं ज्ञेयं प्रतीपाज्ञानिके परे । विनयैकान्तिके चान्ये मिथ्यात्वं पञ्चधा मतम् ॥ २२ ॥
सर्वज्ञेन विरागेण जीवाजीवादि भाषितम् । सत्यं न वेति संदेहस्तत्र सांशयिकं स्मृतम् ॥ २३ ॥
केवली कवलाहारः सग्रन्थो मोक्षसाधकः । जीवविध्वंसनं धर्मो विपरीतमिदं विदुः ॥ २४ ॥
हिताहितापरीक्षायामाज्ञानिकमुदाहृतम् । सर्वेषु देवधर्मेषु साम्यं वैनयिकं मतम् ॥ २५ ॥
इदमेवेत्थमेवेति सर्वथा धर्मधर्मिणो । ग्राहिका शेमुषी प्राज्ञैरैकान्तिकमुदाहृतम् ॥ २६ ॥
जीवानां हिंसने षण्णामिन्द्रियाणामयंत्रणे । द्वादशाविरतेर्भेदा गदिता गतकल्मषैः ॥ २७ ॥

अब इन चार बंधकारणोंके उत्तर भेदोंको बताते हैं । आद्य बंधकारण मिथ्यात्व है । इसके उत्तर भेद पांच हैं, (१) सांशयिक, (२) प्रतीप अर्थात् विपरीत, (३) अज्ञानिक, (४) विनय, (५) ऐकांतिक । २२ ।

वीतराग सर्वज्ञके भाषित जीवाजीवादि तत्व सत्य हैं अथवा सत्य नहीं हैं—ऐसे संदेहको सांशयिक मिथ्यात्व माना है २३।

केवलज्ञानी कवलाहारी हैं, परिग्रहसहित मोक्षमार्ग है, जीववध करना धर्म है—इत्यादि मति विपरीत मिथ्यात्व है ।२४।

हित अहितकी परीक्षा जिससे न होसके ऐसे विचारको अज्ञान मिथ्यात्व कहा जाता है । सर्व देवोंमें, सर्व धर्मोंमें समानता मानना वैनयिक मिथ्यात्व है । समानता मानलेनेसे सभीमें विनयबुद्धि उत्पन्न होती है, इसलिये इस भेदका नाम वैनयिक है । २५ ।

धर्मधर्मि-आदि तत्त्वोंमें अभेद भेद आदि किसी एक पक्षको ही सर्वथा सत्य मानकर ऐसा मह उत्पन्न होना कि—यही ठीक है, ऐसा ही ठीक है—इस बुद्धिको ऐकांतिक मिथ्यात्व माना है । २६ ।

छह कायके जीवोंकी हिंसा होनेमें और छह इंद्रियोंके अनियंत्रित रहनेमें बारह प्रकारकी अविरति, गतपाप भगवानने बताई है । २७ ।

चत्वारो मानसा योगाश्चत्वारो वाचिका मताः । कोविदैः कायिकाः सप्त योगाः पचदशेत्यतः ॥ २८ ॥
तैजसेन यतः कर्म बध्यते न न जीर्यते । तैजसो न ततो योगो गीयते योगवेदिभिः ॥ २९ ॥
सदा निरुपभोगस्य क्षण एको जघन्यतः । उक्ता प्रकर्षतस्तस्य षट्षष्टिः सागराः स्थितिः ॥ ३० ॥
कषायाः षोडश प्राज्ञैर्नोकषाया नवेरिताः । ईषद्भेदो न भेदोऽस्ति कषायाः पंचविंशतिः ॥ ३१ ॥

चार मनोयोग, चार वचनयोग और सात काययोग—इस प्रकार योग पद्रह हैं । २८ ।

तैजस शरीरके निमित्तसे न तो कर्म बंधते ही हैं, न जीर्ण ही होते हैं, इसलिये योगके ज्ञाताओंने तैजस नामका जुदा योग नहीं माना है । काययोगका अर्थ शरीरसबधी योग है । शरीर सर्व पांच हैं । उनमेंसे चार शरीरोंके संबंधसे चार शुद्ध योग और तीन मिश्रित योग होत हैं । परतु तैजस शरीरके सबधसे योग होनेकी योग्यता नही है । २९ ।

योगप्रवृत्ति जहा होती है वहां इंद्रियद्वारा विषयोंका ग्रहण होता है । इस विषयग्रहणको उपभोग कहते हैं । परन्तु इद्रियोंके विषयका ग्रहण न करते हुए भी योगप्रवृत्ति होती है । ऐसी योगप्रवृत्तिकी जघन्य स्थिति एक क्षणकी है और उत्कृष्ट छ्यासठि सागरकी भी बताई है । विशेष—एक क्षण अथवा दो, तीन क्षणपर्यंत जो उपभोगरहित योगप्रवृत्ति विग्रहगतिमें होती है वह कार्मण कायकी योगप्रवृत्ति है । कार्मणकी योगप्रवृत्ति सदा निरुपभोग ही होती है । शेष कायोंकी योगप्रवृत्तिका नियम नहीं है । अर्थात्, शेष कायोंकी योगप्रवृत्ति निरुपभोग भी होती है और सोपभोग भी होती है—ऐसा इस वचनपरसे तात्पर्य सिद्ध होता है । तभी निरुपभोग योगप्रवृत्तिकी उत्कृष्ट स्थिति छ्यासठि सागर मानी जा सकती है । ३० ।

विद्वानोंने कषाय सोलह बताये हैं और नोकषाय नौ बताये हैं । परतु थोडेसे इस मेदको न माननेसे पच्चीस भी कषाय ही कहाते हैं । ये सब मिलकर बधकारणोंके ५७ मेद होते हैं । बंधकारणोंको आस्रव अथवा आस्रवकारण भी कहते हैं । इसलिये आस्रवके भी ये सत्तावन मेद कहाते हैं । ३१ ।

समुदिताः ५७ ।

गुणेष्वेतानाह—

प्रथमे पचपचाशत् पचाशत्प्रत्ययाः परे । त्रिचत्वारिंशदन्यत्र पट्चत्वारिंशदन्यतः ॥ ३२ ॥

सप्तत्रिंशच्चतुर्द्विद्वियुक्ता विंशतयस्त्रिपु । पोडशैकैकनिर्मुक्ता यावत्ते नवमे दश ॥ ३३ ॥

दश सूक्ष्मे नव प्रोक्ताः प्रशान्तक्षीणयोर्द्वयोः । सयोगे सप्त नियोगः प्रतीतः प्रत्ययोज्झितः ॥ ३४ ॥

इति नानाक्षणेष्वेते नानाजीवेपु कोविदैः । उत्तराः प्रत्यया नेया गुणस्थानेपु यत्नतः ॥ ३५ ॥

अष्टसु गुणस्थानेपु५५।५०।४३।४६।३७।२४।२२।२२ अनिवृत्तौ१६।१५।१४।१३।१२।११।१० सूक्ष्मादिपु पंचसु१०।९।९।७।०

आहारकद्वयोना मिथ्यादृष्टौ । ते मिथ्यात्वपंचकहीनाः शासने । प्रथमकपायचतुष्कवैक्रियिकौदारिकमिश्रकार्मण-

---

इन सत्तावन भेदोंमेंसे कितने किस गुणस्थानमें संभव हैं—यह खुलासा आगे करते हैं ।

प्रथम गुणस्थानमें ५५ बंधकारण हैं । दूसरेमें ५० हैं । तीसरेमें तेतालीस हैं । चौथेमें ४६ हैं । पाचवमें सेंतीस हैं । छट्ठेमें २४ हैं । सातवेंमें २२ हैं । आठवेंमें २२ हैं । नौवें अनिवृत्ति करणके सात भागोंमेंसे प्रथम भागमें १६ हैं, दूसरेमें १५ हैं, तीसरेमें १४ हैं, चौथेमें १३ हैं, पांचवेंमें १२ हैं, छट्ठेमें ११ हैं, सातवेंमें दश संभव हैं । सूक्ष्मलोभ—दशवें गुणस्थानमें १० हैं । ग्यारहवें और बारहवेंमें ९–९ हैं । सयोग—तेरहवेंमें सात कारण हैं । अयोग—चौदहवा गुणस्थान बंधकारणसे रहित है । ३२—३३—३४ ॥

ये ऊपर जो कर्मबंधके कारणोंके उत्तर भेद गुणस्थानोंमें बताये हैं वे सर्व एक एक समयमें एक एक जीवमें नहीं होते; किंतु नाना जीवोंके अथवा जुदे जुदे समयोंमें हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥

सर्व ये कारण सत्तावन हैं । इनमेंसे किस गुणस्थानमें कौन कौनसे नहीं होते—यह खुलासा आगे करते हैं। मिथ्यादृष्टिमें आहारक दो काययोग नहीं हैं । सासादनमें मिथ्यात्वके पाचो भेद भी नहीं हैं और आहारकद्वय तो नहीं ही हैं । अनंतानुबंधी

हीना मिश्रे। वैक्रियिकौदारिकमिश्रकार्मणयुक्ताश्चतुर्थे। वैक्रियिकद्वयौदारिकमिश्रकार्मणद्वितीयकषायचतुष्कत्रसाविरतिहीनाः पंचमे। तृतीयकषायचतुष्कैकादशाविरतिहीना आहारकद्वययुक्ताः षष्ठे। आहारकद्वयहीनाः सप्तमाष्टमयोः। हास्यादिषट्केन षढवेदेन स्त्रीवेदेन पुंवेदेन क्रोधेन मानेन मायया हीनाः क्रमेण सप्तस्वनिवृत्तिक्षणेषु। सूक्ष्मे त एव दश। लोभहीनाः शांतक्षीणयोर्नव। आद्यतमनोवचनौदारिकद्वयकार्मणाभिधाः सप्त प्रत्ययाः सयोगे।

कषाय चार, वैक्रियिक मिश्र, औदारिक मिश्र, कार्मण—ये सात और सासादनके सात—ऐसे चौदह आस्रवभेद मिश्र गुणस्थानमें नहीं हैं। चौथेमें वैक्रियिक मिश्र, औदारिक मिश्र तथा कार्मण—ये तीन हैं; ऊपरके शेष ग्यारह आस्रव नहीं हैं। इसलिये चौथेमें सर्व ४६ आस्रवकारण है। वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्र काययोग, औदारिक मिश्र कार्मणकाययोग, दूसरे अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय, त्रसाविरति और सासादनमें जो सात कारण—(आहारक द्वय तथा पाच मिथ्यात्व)—घटे थे वे तथा प्रथम कषाय चार—इस प्रकार वीस कारण घट जानेसे पाचवें गुणस्थानमें सेंतीस कारण रह जाते हैं। तीसरे प्रत्याख्यानावरण चार कषाय, ग्यारह बची हुई अविरति—ये पद्रह और पूर्वके वीसमेंसे आहारक द्वयके शिवाय अठारह—इस प्रकार तेतीस बंधकारण छट्ठे गुणस्थानमें नहीं रहते इसलिये छट्ठेमें सर्व कारण चौबीस हैं। सातवेंसे आहारकद्वय योग भी घट जाते हैं इसलिये सातवें आठवेंमें बाईस बाईस कारण हैं। नौवें गुणस्थानके प्रथम भागमें हास्यादि छह नोकषाय और भी घट जाते हैं इसलिये सोलह कारण रह जाते हैं। दूसरे भागमें, नपुसक वेद नोकषाय घट जानेसे १५ कारण हैं। तीसरे भागमें स्त्रीवेद घटजानेसे १४ कारण हैं। चौथे भागमें पुरुषवेद घटजानेसे १३ कारण हैं। पाचवें भागमें सज्वलन क्रोध घटजानेसे १२ कारण हैं। छठे भागमें मान संज्वलन घटकर ११ कारण रहते हैं। सातवें भागमें सज्वलन माया घटजानेसे १० कारण रह जाते हैं। दशवें गुणस्थानमें दश ही कारण हैं। यहापर कोई कारण घटता नहीं है। ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानमें संज्वलन लोभ कम हो जाता है, इसलिये यहा नौ नौ कारण हैं। आद्यत दो मनोयोग, आद्यत ही दो वचनयोग, दो औदारिक, कार्मण—ये सात योग तेरहवें गुणस्थानमें रहते हैं।

मार्गणाया प्रत्यया दीयन्ते—

पचाशद्द्वित्रिकैकाग्राः स्वस्तिर्यक्श्वाभ्रीतिषु । नृगतौ पंचपचाशन्मार्गणास्त्रपरास्त्रपि ॥ ३६ ॥

नरक	तिर्य.	मनुष्य	देव	एकें.	द्वीन्द्रि	त्रींद्रि	चतु.	पं	पृ.	अप्
५१	५३	५५	५२	३८	४०	४१	४२	५७	३८	३८
तेजो	वायु	व.	त्रस	स.म.	अस.म.	उ.म.	अनु.म	स व.	अ.व.	उ व
३८	३८	३८	५७	४३	४३	४३,	४३	४३	४३	४३
अ व.	औदा.	औ. मि	वै.	वै. मि	आहा.	आ मि	कार्मण	स्त्री.	पु.	नपु
४३	४३	४३	४३	४३	१२	१२	४३	५५	५७	५५
क्रो.	मा	माया	लोभ	कुमति	कुश्रुत	विभ.	मति	श्रु.	अव	मनः
४५	४५	४५	४५	५५	५५	५२	४८	४८	४८	२०
केवल	सामा	छेदो.	परि.	सू	यथा	सयमा	असय.	चक्षु द	अचक्षु	अव.
७	२४	२४	२२	१०	११	३७	५५	५७	५७	४८
के. द	कृ	नील	का	तेजो	पद्म	शु	भव्य	अभ.	औप	वेदक
७	५५	५५	५५	५७	५७	५७	५७	५५	४६	४८
क्षायिक	सासा.	मिश्र	मि.	संज्ञी.	अ.	आ	अना.			
४८	५०	४३	५५	५७	४५	५६	४३			

मार्गणाओंमें आस्रवकारणोंको जोडकर दिखाते हैं।—

देवगतिमें दो अधिक पचास अर्थात् बावन कारण हैं। तिर्यंच गतिमें त्रेपन कारण हैं। नरकगतिमें एक अधिक पचास अर्थात् इक्यावन कारण हैं। मनुष्यगतिमें पचपन कारण हैं। और मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार लगालेने चाहिये। ३६।

सर्व मार्गणाओंके उत्तर भेदोंमें जितने जितने बंधकारण संभव होते हैं वे ऊपरके यत्रमें क्रमसे दिखाये हैं।

स्त्रीपुंवेदौदारिकद्वयाहारकद्वयोना नरकगत्यां ५१। वैक्रियिकद्वयाहारकद्वयोनास्तिर्यग्गत्यां ५३। वैक्रियिकद्वयोना नृगत्यां ५५। नपुंसकवेदौदारिकद्वयाहारकद्वयोना देवगत्यां ५२। रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनःस्त्रीपुंवेदसर्वमनोवचोयोगवैक्रियिकाहारकद्वयोना एकाक्षेषु ३८। त एवांत्यभाषारसनाभ्यां सह द्व्यक्षे ४०। घ्राणेन सह त्र्यक्षे ४१। चक्षुषा सह चतुरक्षे ४२। त्रसपंचाक्षयोः सर्वे ५७। एकाक्षोक्ताः स्थावरेषु ३८। विमुच्याहारकद्वयं शेषेषु निजं निजं हित्वा शेषाहीनाः ४३। संज्वलस्त्रीनपुंसकद्वयहीननोकषायनिजयोगा आहारकद्वये १२। स्त्रीषंढवेदयोराहारकद्वयहीनाः ५५। पुंवेदे सर्वे ५७।

यंत्र ऊपर दिया है उसमें यह बताया है कि किस मार्गणाके भेदमें कितने बंधकारण हो सकते हैं। ऊपर ऊपर मार्गणाओंके भेदोंके क्रमसे नाम दिये हैं, और नीचे नीचे बंधकारणोंकी संख्या दी है। जितने जितने बंधकारण जहां जहां क्रम हैं उनका स्पष्टीकरण गद्यद्वारा आगे करते हैं।—

नरकगतिमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, औदारिक द्वय, आहारक द्वय— ये छह कारण नहीं हैं इसलिये ५१ कारण हैं। तिर्यंच गतिमें वैक्रियिक द्वय, आहारक द्वय नहीं हैं, शेष ५३ कारण हैं। मनुष्यगतिमें वैक्रियिक द्वयको छोडकर शेष ५५ कारण हैं। देवगतिमें नपुंसकवेद, औदारिक द्वय, आहारक द्वय—इन पांचके विना ५२ हैं। एकेंद्रियमें रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, वैक्रियिक द्वय, आहारक द्वय—इन १९ के विना शेष ३८ हैं। द्वींद्रियमें अनुभय वचनयोग तथा रसना इंद्रिय बढ जाती हैं, इसलिये यहां ४० आस्रव हैं। त्रींद्रियमें घ्राणइंद्रिय और बढ जानेसे ४१ आस्रव हैं। चतुरिंद्रियमें चक्षुइन्द्रिय बढ जानेसे ४२ आस्रव हैं। त्रसमें तथा पंचेंद्रियमें सर्व ५७ आस्रव हैं। स्थावरमें एकेंद्रियके समान समस्त ३८ हैं। योगोंमेंसे आहारक द्वयके आस्रवोंको आगे बतावेंगे इसलिये यहां शेष योगोंमें आस्रवोंको बताते हैं। वह इस प्रकार कि, अपने अपने योगमें उस उस योगको रखना और आहारकद्वय तथा शेष बारह योगोंको घटाना तो प्रत्येक योगमें ४३ आस्रव हैं। आहारक दोनोंमें १२–१२ आस्रव हैं। वे बारह इस प्रकार हैं कि, संज्वलन चार कषाय, और स्त्रीवेद नपुंसक वेदके शिवाय सात नोकषाय, तथा आहारकद्वयमेंसे एक—ये बारह हैं। वेदमार्गणामेंसे स्त्रीवेदमें आहारकद्वयके विना ५५ आस्रव हैं।

परि

॥२०

निजहीनान्यकषायद्वादशकोनाः क्रोधादिषु ४५। मत्यज्ञानश्रुताज्ञानयोराहारकद्वयहीनाः ५५। वैक्रियिकौदारिकमिश्रकार्मणाहारकद्वयोना विभंगे ५२। ज्ञानत्रये मिथ्यात्वपंचकानंतानुबंधिहीनाः ४८। नवाद्ययोगसंज्वालस्त्रीषंढहीननोकषाया मनःपर्यये २०। आद्यन्तमनोवचनौदारिकद्वयकार्मणाः केवलज्ञाने ७। संज्वालनोकषायवैक्रियिकद्वयौदारिकमिश्रकार्मणहीनैकादशयोगाः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः २४। आहारकद्वयहीनास्ते परीहारे २२। नवाद्ययोगान्त्यलोभाः सूक्ष्मे १०। अन्त्यलोभोनौदारिकमिश्रकार्मणयुक्ता यथाख्याते ११। नवनोकषायनवाद्ययोगाष्टांत्यकषायत्रसासंयमोनाखिलासंयमाः संयमासंयमे ३७। असंयमे आहारकद्वयहीनाः सर्वे ५५। चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोः सर्वे ५७। ज्ञानत्रयमानिनोऽवधिदर्शने ४८।

नपुंसक वेदमें भी ये ही ५५ हैं। पुरुषवेदमें सर्व ५७ आस्रव हैं। क्रोधादिकमें, अनंतानुबंधी आदिमेंसे अपने चारके शिवाय अन्य १२ कषाय घट जानेसे ४५ आस्रव हैं। मत्यज्ञान तथा श्रुताज्ञानमें दो आहारकको घटाकर ५५ आस्रव समझने। विभंगमें वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र, कार्मण, आहारकद्वय—इन पांचके विना शेष ५२ हैं। मति, श्रुत, अवधि—इन तीन सुज्ञानोंमें पांच मिथ्यात्व, चार अनंतानुबंधी—इन ९ के विना शेष ४८ आस्रव हैं। मनःपर्ययमें चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक काययोग—ये आदिके नौ योग तथा चार संज्वलन, स्त्रीनपुंसकके शिवाय शेष सात नोकषाय—ये २० आस्रव हैं। केवलज्ञानमें ७ आस्रव हैं—आदि अन्तके एक एक करके दो मनोयोग, दो वचनयोग, और दो औदारिक तथा एक कार्मण—ये हैं। सामायिकमें तथा छेदोपस्थापनमें चार संज्वलन, नौ नोकषाय, चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक, आहारकद्वय—ये २४ आस्रव हैं। यद्यपि वैक्रियिकद्वय, औदारिक मिश्र तथा कार्मण—ये चार योग संभव नहीं हैं। क्योंकि यहांपर न तो विग्रह गति है और न अपर्याप्त अवस्था है। परिहारविशुद्धिमें आहारकद्वय नहीं होते इसलिये २२ हैं। आदिके नौ योग और सूक्ष्मलोभ ये १० सूक्ष्मसांपरायमें हैं। यथाख्यातमें ऊपरके १० मेंसे सूक्ष्मलोभ एक घटाना और औदारिकमिश्र, कार्मण—ये दो बढ़ाना इस प्रकार ११ आस्रव हैं। संयमासंयममें नौ नोकषाय, नौ आदिके योग, अंतके आठ कषाय, त्रसाविरतिके शिवाय शेष सर्व ११ अविरति—ये ३७ आस्रव हैं। असंयममें आहारक द्वयको छोडकर शेष ५५ आस्रव हैं। चक्षुर्द-

केवलज्ञानभाविनः केवलदर्शने ७। आद्यलेश्यात्रये आहारकद्वयहीना ५५। अन्त्यलेश्यात्रये सर्वे ५७। भव्ये सर्वे ५७ अभव्ये आहारकद्वयहीनाः ५५। मिथ्यात्वपंचकानन्तानुबन्धिचतुष्टयाहारकद्वयहीना औपशमिके ४६। आहारकद्वयाविना वेदकक्षायिकयोः ४८। मिथ्यात्वपंचकाहारकद्वयहीनाः सासने ५०। मिथ्यात्वपंचकाहारकद्वयानन्तानुबन्धिवैक्रियिकौदारिकमिश्रकार्मणहीना मिश्रे ४३। आहारकद्वयहीना मिथ्यात्वे ५५। सञ्ज्ञिनि सर्वे ५७। असञ्ज्ञिनि औदारिकद्वयासत्यमृषाभापेतरयोगहीनाः ४५। आहारके कार्मणहीनाः ५६। अनाहारके कार्मणहीनसकलयोगहीनाः ४३।

उत्तराः प्रत्ययाः प्रोक्ता मार्गणास्वखिलास्विति। इदानीमिति कथ्यन्ते ते गुणेषूत्तरोत्तराः ॥ ३७ ॥

र्शन, अचक्षुर्दर्शनमें ५७-५७ आस्रव हैं। अवधि दर्शनमें ज्ञानत्रयके समान ५ मिथ्यात्व तथा चार अनन्तानुबन्धीके विना ४८ हैं। केवलदर्शनमें केवलज्ञानके समान ७ आस्रव हैं। आदिकी तीन लेश्याओंमें आहारक युगलके विना ५५ हैं। अन्तकी तीन लेश्याओंमें ५७ हैं। भव्यमें सर्व (५७) हैं। अभव्यमें आहारक युगलके विना ५५ हैं। औपशमिक सम्यक्त्वमें पांच मिथ्यात्व, चार अनंतानुबन्धी, दो आहारक—इन ग्यारहके विना शेष ४६ कारण हैं। क्षायोपशमिकमें तथा क्षायिकमें आहारकद्वय कम नहीं होते इसलिये ४८ कारण हैं। सासादनमें पांच मिथ्यात्व तथा आहारकद्वय—ये सात नहीं हैं इसलिये ५० कारण हैं। मिश्रमें पांच मिथ्यात्व, दो आहारक, चार अनतानुबन्धी, वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र, कार्मण—इन चौदहके घटजानेसे ४३ आस्रव हैं। मिथ्यात्वमें आहारकद्वयके शिवाय शेष ५५ आस्रव हैं। सञ्ज्ञीमें सर्व (५७) आस्रव हैं। असञ्ज्ञीमें औदारिक शरीरद्वय और असत्यमृषा वचनके शिवाय शेष बारह योग नहीं रहते हैं इसलिये सर्व आस्रव ४५ हैं। आहारकमें कार्मणके शिवाय शेष ५६ हैं। अनाहारकके पन्द्रह योगोंमेंसे केवल एक कार्मण योग है इसलिये शेष चौदह योग घटजानेसे ४३ आस्रव रहते हैं।

सर्व मार्गणाओंमें कर्मास्रवके कारणोंके उत्तर भेद जैसे जैसे संभव थे वैसे वैसे ऊपर बताये। अब वे उत्तरोत्तर गुणस्थानोंमें कैसे कैसे संभव हैं उसका खुलासा करते हैं। ३७।

जघन्याः प्रत्ययाः प्रोक्ता द्वयोर्दश नव द्वयोः । एकत्राष्ट त्रये पंच द्वये द्वावेककत्त्रये ॥ ३८ ॥
अष्टादशादितः सप्तदश षोडशक द्वयोः । चतुर्दश त्रये सप्त त्रिद्व्येकैकैककाः क्रमात् ॥ ३९ ॥
उत्कृष्टाः प्रत्यया जीवमेक प्रत्युत्तरोत्तराः । गुणस्थानेषु विज्ञेया नानैकसमय प्रति ॥ ४० ॥

ज.	१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उ.	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

एक समयमें कितने कारण कहापर होते हैं इस बातका स्पष्टीकरण यहापर करते हैं । वह इस प्रकार है–दो आदिके गुणस्थानोंमें दश दश कारण हैं । उससे आगेके तीसरे चौथे इन दोमें नौ नौ हैं । इसके आगे पाचवें एक गुणस्थानमें आठ हैं । छट्ठे, सातवें, आटवें-इन तीनमें पाच पांच हैं। आगे दोमें दो दो हैं। फिर तीनमें एक एक हैं । भावार्थ चौदहवेंमें कोई भंग नहीं है।३८

नाना समयोंमें एक जीवकें हों तो आदिके प्रथम गुणस्थानमें अठारह आस्रवके भंग हैं । दूसरेमें सत्रह, तीसरेमें तथा चौथेमें सोलह सोलह हैं । पांचवें एकमें चौदह हैं । आगेके तीनमें सात सात भग हैं । फिर एकमें तीन है । फिर एकमें दो भग हैं । आगे ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें–इस प्रत्येकमें एक एक है । अतके गुणस्थानमें भग नहीं हैं । ३९ ।

एक जीवके आश्रयसे सर्व गुणस्थानोंमें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आस्रव नाना समयोंकी अपेक्षाको लेकर तथा एक समयकी अपेक्षाको लेकर इस प्रकार समझना । ४० ।

इस ऊपरके वर्णनका यत्र इस प्रकार है—इस यत्रमें ऊपरकी पक्ति है उसमें प्रत्येक गुणस्थानके क्रमसे जघन्य संभव आस्रवोंकी सख्या बताई है । नीचेकी पक्तिमें उत्कृष्ट सभव सख्या बताई है । जघन्य सख्या एक समयवर्तीकी है, और उत्कृष्ट सख्या नाना समयवर्तीकी मिलाकर जो सभव है वह है ऐसा समझना ।

ज०	१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उ०	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

कालमावलिकामात्र पाकोऽनतानुवधिनाम् । जतोऽस्ति न सम्यक्त्व हित्वा मिथ्यात्वयायिनः ॥ ४१ ॥
सम्यक्त्वतो न मिथ्यात्व प्रयातोऽन्तर्मुहूर्त्तकम् । मिथ्यात्वतो न सम्यक्त्व शरीरी याति पचताम् ॥ ४२ ॥
जघन्या प्रत्यया ज्ञेया गुणस्थानेषु कोविदैः । प्रकृष्टमध्यमैः सार्द्धं क्रमेणेति यथागमम् ॥ ४३ ॥
एकद्वित्रिचतुःपचषट्सयोगेन कायिकाः । गुणकारा भवेयुर्ये ते षट्पंचदशादयः ॥ ४४ ॥
अनुलोमविलोमाभ्यामेकैकोत्तरवृद्धितः । एकद्व्यादिसयोगे विनिक्षिप्य पटीयसा ॥ ४५ ॥
पूर्वकेण पर राशि गुणयित्वा विलोमत । क्रमादेकादिकैरकैर्भाजिते लभ्यते फलम् ॥ ४६ ॥

जब जीव सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वकी तर्फ जानेको उद्यत होता है तब एक आवली प्रमाण काल पर्यंत उस जीवके अनंतानुबधियोंका उदय होने लगता है इस कारण उस जीवका सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है । ४१ ।

जब जीव मरणको प्राप्त होने लगता है तब अंतके अंतर्मुहूर्तपर्यंत समयमें वह सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वको प्राप्त भी नहीं होता और मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें भी नहीं जाता है। भावार्थ, या तो सम्यक्त्वमें ही टिका रहता है अथवा मिथ्यात्वी हो तो वह मिथ्यात्वमें ही रुका रहता है । ४२ ।

अब यह बताते हैं कि गुणस्थानोंमें कर्मबंधमें जघन्य कारण कितने कितने होते हैं और प्रकृष्ट अर्थात् उत्कृष्ट कितने कितने हैं । तथा मध्यम अर्थात् बीचके भेद कितने कितने हैं । क्रमसे और आगमानुसारे यह सर्व बताते हैं । ४३ ।

एक दो तीन चार पाच छहके सयोगसे जीवोंके गुणकार जो होते हैं वे छह पद्रह आदि हैं । ४४ ।

अनुलोम तथा विलोम–दो प्रकारसे, एक दो तीन आदि सख्याके संयोगमें उत्तरोत्तर एक एककी वृद्धि करके जोड दिये जांय, और पूर्वकी राशीसे दूसरकी राशीको गुणित कर दिया जाय और क्रमसे एकादि सख्याओंसे भाजित कर दिया जाय तो फल निकल आता है। ४५–४६ ।

६ ५ ४ ३ २ १

१ २ ३ ४ ५ ६

लब्धा गुणकाराः— ६ १५ २० १५ ६ १

एकत्रिपचषट्पट्पट्चतुस्त्र्येकांकभूपितैः । आनेया नवभिः कूटैर्भंगा मिथ्यादृशो बुधैः ॥ ४७ ॥

कू १ । कू ३ । कूट ५ । कूट ६ । कूट ६ । कूट ६ । कूट ४ । कूट ३ । कूट १ ।

काय १, अनतानुबंधि ०, भय ०, योग १० । एते दश जघन्यप्रत्ययाः ।

वह इस प्रकार–है–

६ ५ ४ ३ २ १ ।

१ २ ३ ४ ५ ६

इनके गुणकार इस प्रकार हैं– ६ । १५ । २० । १५ । ६ । १ ।

पहिला एकका, दूसरा तीनका, तीसरा पाचका, चौथा छहका, पाचवा भी छहका, छट्ठा भी छहका, सातवा चारका, आठवां तीन का और नौवा एकका–इस प्रकार ये सर्व कूट नौ प्रकारके हुए। इन कूटोंसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के भंग समझने चाहिये। ४७।

कूट १ । कूट ३ । कूट ५ । कूट ६ । कूट ६ । कूट ६ । कूट ४ । कूट ३ । कूट १ ।

काय १—अनंतानुबंधी ० । भय ० । योग १० । ये दश जघन्य आस्रवकारण हुए। इन दशका खुलासा आगेके श्लोकमें देते हैं ।

मिथ्यात्वमिन्द्रिय कायः कषायैकतमत्रयम् । एको वेदो द्वियुग्मैकं दशयोगैककः परः ॥ ४८ ॥
१ । १ । १ । ३ । १ । २ । ० । १ । पिंडिताः १० ।

अत्र पचाना मिथ्यात्वानामेकतमस्योदयेऽस्तीत्येको मिथ्यात्वप्रत्ययः, षण्णामिन्द्रियाणामेकतमेन षण्णां कायानामेकतमस्य विराधने द्वावसंयमप्रत्ययौ, प्रथमचतुष्कहीनाना चतुर्णां कषायाणामेकतमत्रिकोदये त्रयः कषायप्रत्यया, त्रयाणां वेदानामेकतमोदये एको वेदप्रत्ययः, हास्यरतियुग्मारतिशोकयुग्मयोरेकतरोदये द्वौ युग्मप्रत्ययौ, आहारकद्वयमिश्रत्रयहीनानां दशाना योगानामेकतमोदये एको योगप्रत्ययः । एवमेते मिथ्यादृष्टेरेकत्र समये जघन्यप्रत्यया दश । १० ।

सत्रयोदशयोगस्य सम्यग्दर्शनधारिणः । मिथ्यात्वमुपयातस्य शान्तानतानुबधिनः ॥ ४९ ॥

एक मिथ्यात्व, एक इंद्रिय, एक काय, चारमेंसे अनतानुबधीको छोडकर ऊपरके तीन कषायोंमेंसे एक एक कषाय करके सर्व तीन कषाय, एक वेद, दो युगलोंमेंसे एक कोई युगल, दश योगोंमेंसे एक योग–इस प्रकार प्रथम गुणस्थानवालेके एक समयके सर्व आश्रवकारण दश होते हैं । ४८ ।

यहा पाच मिथ्यात्वोंमेंसे एक किसी मिथ्यात्वका उदय होगा इसलिये मिथ्यात्वरूप कारण एक लिया । छह इद्रियोंमेंसे एक इद्रियकी प्रवृत्ति होगी, वह एक लेना, और छह कायोंमसे किसी एक कायकी विराधना होगी इसलिये एक काय लेना–इस प्रकार ये दो अविरतिरूप कारण हुए । अनतानुबधी आदि चार भेदोंमेंसे प्रथमके चार कषायोंको छोडकर शेष तीन जातिके कषायोंमेंसे कोई एक एक कषाय लेनेसे तीन कषायरूप आस्रव हुए । तीन वेदोंमेंसे किसी एक वेदका उदय होगा इसलिये एक वेदरूप आस्रव हुआ । हास्य और रति अथवा अरति शोक–इन दो युगलोंमेंसे एक युगल–इस प्रकार दो ये नोकषाय हुए । आहारक द्वय और तीन मिश्रको छोडकर शेष रहे दश योगोंमेंसे किसी एकका एक समयमें उदय होगा इसलिये योगरूप एक आस्रव हुआ । इस प्रकार मिथ्यादृष्टिके एक समयमें जघन्य ये दश आस्रव कारण होते हैं ।

जिसके तेरह योग हैं, और सम्यग्दर्शनको प्राप्त हो रहा है वह यदि मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाय तो अनंतानुबधीका उसके उपशम कायम रहना संभव है । ४९ ।

पाको नाऽऽवलिकां यस्मादस्त्यनतानुबंधिनाम् । ततोऽनतानुबंध्यूनकषायप्रत्ययत्रयम् ॥ ५० ॥
असौ न म्रियते यस्मात्कालमंतर्मुहूर्त्तकम् । मिश्रत्रयं विना तस्माद्यौगिका· प्रत्यया दश ॥ ५१ ॥

मिथ्यात्वपचकेंद्रियषट्ककायषट्ककषायचतुष्कवेदत्रययुगमद्वययोगदशकैकतमभंगाः ।

५+६×६+४+३+२+०×१०=४३२०० परस्पराभ्यस्ताः ।

सामान्यस्य विशेषस्य सख्याया· कूटमुच्यते । चतुर्थं गुणकारस्य भंगराशेश्च पंचमम् ॥ ५२ ॥

यह जीव जब सम्यक्त्वसे गिरकर नीचे प्रथम गुणस्थानमें आता है उस समय अनंतानुबंधीका आवलीप्रमाण काल पर्यंत उदय नहीं होता इसलिये अनंतानुबंधीका उदय यहां आस्रवकारण नहीं होता ।

भावार्थ–अनंतानुबंधीका इस समय उपशम क्यों रहता है ? इसका कारण बताते हैं ।–यहांपर अनंतानुबंधी कषायों की उदयावली सुरू नहीं हुई है इस कारण अनंतानुबंधी के उदयको छोड कर शेष तीन कषायोंकी चौकडीमेंके एक एक का उदय इस भंगमें माना गया है । ५० ।

अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत यह (सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें आनेवाला) मरता भी नहीं है इसलिये योग संबंधी पंद्रह संख्यामें से तीन मिश्र काययोगोंकी सख्या घट जाती है और आहारकद्वय यहांपर संभव ही नहीं है इसलिये पंद्रह योगोंमें से यहां पांच कम हो कर दश योग शेष रहे बताया है सो योग्य ही है । आहारकद्वयका अर्थ यहांपर ' आहारकशरीर और कार्मणशरीर ' ऐसा लेना चाहिये, क्योंकि, पांच शरीरोंमेंसे कार्मण शरीरकृत योग भी मरण हुए विना नहीं प्राप्त होता है । ५१ ।

मिथ्यात्व पांच, इंद्रिय छह, काय छह, कषाय चार, वेद तीन, हास्य रति व अरतिशोक इन दो मेंसे एक युगल, योग दश—इनमेंसे कोई भी एक एक लेनेसे एक एक भंग बनते हैं , इसलिये इन संख्याओंका परस्परमें गुणन करनेसे सर्व भग तेतालीस हजार और दो सौ हुए । इसका यंत्र इस प्रकार है—५×६×६×४×३×२×०×१०=४३२०० ।

कूट पांच प्रकारके हैं–(१) सामान्यकूट, (२) विशेषकूट, (३) सख्याका कूट, (४) चौथा गुणाकारका, और (५) पांचवां भंगराशिका ॥ ५२ ॥

गुणस्थानेषु सर्वेषु कूटस्थानेषु पंचसु । आनेया सकला भंगा निज्ञाय प्रत्ययस्थिता ॥ ५३ ॥

सामान्यकूटमिदं, गुणकारकूट सामान्यकूटाकारेण विरचितं विशेषकूटं, सख्याकूट, गुणाकारकूटं, भंगराशिकूटम् ।

सामान्यकूट	विशेषकूट
१५	१०
२	०
२–२	२–२
१–१–१	१ १ १
४–४–४–४	३–३–३–३
१–१–१–१–१–१	१ १ १ १ १ १
१–१–१–१–१–१	१ १ १ १ १ १
१–१–१–१–१	१ १ १ १ १

सख्याकूट	गुणाकारकूट		भंगराशिकूट
१०	१	यो.	
०	०	म.	
२	२	हा.	४३२००
३	१	वे.	
४	३	को.	
६	१	का	
६	१	इं.	
५	१	मि	

सर्व गुणस्थानोंमें, पांचोंही कूटोंमें आस्रवकारणसंबंधी जितने भंग होते हैं वे सर्व लाने चाहिए । ५३ ।

गुणकारके कूटको सामान्य कूटके आकारसे रचना सो विशेषकूट, और सख्याकूट, गुणकारकूट, और पांचवा भगराशिकूट होता है । इनमेंसे भगराशिकूटका खुलासा यंत्र [४३२००] इस प्रकारका दिया है उसपरसे देख लेना । शेष चार कूटोंकी रचना भी क्रमसे दी है ।

चौथा कूट गुणकारकूट है । इसमें, जघन्य आस्रव एक जीवके एक समयमे सर्व कितने होते हैं यह वताया है। नीचेसे ऊपरतक सर्व संख्या दस होती है ।

पहिला कूट सामान्य कूट है । और दूसरा विशेष कूट है । सामान्यकूट में यह वताया है कि मिथ्यात्वादिकका विरलन करके नीचेसे ऊपर तक कैसे लिखना । दूसरे कूटकी रचना सामान्य कूटके ही समान है । केवळ ऊपरकी सख्या १५ के स्थानमें १० है । और चौथे स्थानमें ४ की जगह ३ है । तथा सातवें स्थानमें २ के वदलें शून्य है । इसका कारण ऐसा है

दशभिः प्रत्ययैर्मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति षोडश । अर्पिताः प्रकृतीरेतैर्जघन्येनेति दर्शितम् ॥ ५४ ॥

कि योग आगे पीछे पंद्रह भी हो सकते हैं। इसलिये सामान्य कूटमें १५ संख्या दी है। परतु मिथ्यात्वीका जो जघन्य आस्रव का प्रमाण है वह विशेष कूटमें १० ही लिखना योग्य है। सातवें स्थानमें भी भय युगलकी संख्या २ सामान्य कूटमें सभवती है, किंतु दश भेदके विशेष कूटमें वह संभव नहीं है, इसलिये दूसरे कूटमेंके सातवें स्थानमें शून्य दिया है। सामान्य कूटके चौथे स्थानमें चार चार संख्या है। क्योंकि आगे पीछे अनंतानुबंधी आदि चारों सभव हैं। किंतु दूसरे कूटकी रचना जघन्य आस्रवोंकी अपेक्षासे है—इसमें अनतानुबंधी उदयगत नहीं रहता इसलिये वहां संख्या ३ है।

कूटोंकी रचना नीचेसे ऊपरकी तर्फ की गई है ऐसा समझना। देखनेकी पद्धति भी—नीचेसे ऊपरकी तर्फ तक क्रमसे देखा जाता है-ऐसी है। इसलिये सबसे नीचे मिथ्यात्व है, फिर दूसरे आस्रव हैं। तीसरा संख्याकूट है। इसमें मिथ्यात्वादिके कितने कितने भेद हैं-यह बताया है। सबसे नीचे मिथ्यात्वका आकडा ५ है। उसके ऊपर इंद्रियाविरति की संख्या ६ है। उसके ऊपर काय अविरति ६ है। फिर कषायकी संख्या ४ है। क्रोध मान माया लोभ—ये वे चार चार भेद समझने चाहिये। उसके ऊपर नोकषायमेंके वेद की संख्या ३ है। फिर ऊपर हास्यादि दो युगलमेंकी संख्या २ है। फिर ऊपर सातवें स्थानमें शून्य है। यह स्थान भयजुगुप्साके युगलका है। फिर आठवें स्थानमें योग की संख्या १० है। इस कूटके आगे चौथा गुणकारकूट है।

पाचवा कूट भग राशिका है। उसका विवरण प्रथम ही कर दिया है। सबको परस्परमें गुणित करनेपर भंगोंकी सर्व संख्या ४३२०० होती है—वह भी ऊपर बताया गया है।

मिथ्यादृष्टि जघन्य दश कारणोंसे सोलह प्रकृतियोंको बाधता है। इसलिये इन सोलह प्रकृतियोंको इन जघन्य दश कारणोंके द्वारा अर्पित करना चाहिये। इन सोलह प्रकृतियोंके मिथ्यात्व, हुडक सस्थानादि नाम प्रथम बतादिये गये हैं। ५४।

इत्यमेकादशादीनां विज्ञातव्या प्ररूपणा । प्रत्ययानां पटीयोभिरवबुध्य यथागमम् ॥ ५५ ॥

एकादशः—कां	अन.	भं.	यो
२	०	०	१०
१	१	०	१३
१	०	१	१०

सं		गु.	सं.	गु.	सं.	गु.
यो.	१	१०	१	१३	१	१०
	म	०		म.	१	२
हा	२	२	२	२	२	२
वे.	१	३	१	३	१	३
क	३	४	४	४	३	४
इ	१	६	१	६	१	६
मि.	१	५	१	५	१	५
काय.	२	१५	१	६	१	६

१०८०००
५६१६०
८६४००
सर्वे मीलिताः
२५०५६०
११

इसी प्रकार ग्यारह आदि कारणभेदोंका वर्णन भी विद्वानोंको यथाशास्त्र समझकर करना चाहिये । ५५ ।

ग्यारह, वारह, तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह तथा सत्रह आस्रवभेदोंके यत्र यथाक्रम दिये हैं उन्हे देखलेना चाहिये ।

का.	अन.	म.	यो.
३	•	०	१०
२	१	०	१३
२	०	१	१०
१	१	१	१३
१	०	२	१०

इयं चूलिका

सर्वे मीलिताः

१४४०००
१४०४००
२१६०००
११२३२०
४३२००
६५५९२०
(१२)

द्वादश.

संख्या

यो १	यो १	यो १	यो १	यो १
भ •	भ •	भ १	भ १	भ २
हा २	हा २	हा २	हा २	हा २
वे १	वेद १	वे १	वे १	वे १
क्रो ३	क्रो ४	क्रो ३	क्रो ४	क्रो ३
इं १	इ १	इं १	इं १	इ १
मि १	मि १	मि १	मि १	मि १
का ३	का २	का २	का १	का १

गुणाकारः

१०	१३	१०	१३	१०
भ०	भ०	ए२	ए२	×
२	२	२	२	२
३	३	३	३	३
४	४	४	४	४
६	६	६	६	६
५	५	५	५	५
२०	१५	१५	६	६

त्रयोदशः ।

का.	अन.	म.	यो.
४	०	०	१०
३	१	०	१३
३	०	१	१०
२	१	१	१३
२	०	२	१०
१	१	२	१३

यो	१	यो	१	यो	१	यो	१	१	१
म	०	म	०	म	१	म	१	२	२
हा	२	हा	२	हा	२	हा	२	२	२
वे	१	वे	१	वे	१	वे	१	१	१
क्रो	३	क्रो	४	क्रो	३	क्रो	४	३	४
इ	१	इ	१	इ	१	इ	१	१	१
मि	१	मि	१	मि	१	मि	१	१	१
का	४	का	३	का	३	का	२	२	१

१०	१३	१०	१३	१०	१३
म०	म०	ए२	ए२	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
५	५	५	५	५	५
१५	२०	२०	१५	१५	६

सर्वे मीलिता.

१०८०००
१८७२००
२८८०००
२८०८००
१०८०००
५६१६०
१०२८१६०
१३

चतुर्दशः।

का	अ	म	यो
५	०	०	१०
४	१	०	१३
४	०	१	१०
३	१	१	१३
३	०	२	१०
२	१	२	१३

यो १	यो १	यो १	यो १	यो १	यो १
म ०	म ०	म १	म १	म २	म २
हा २	हा २	हा २	हा २	हा २	हा २
वे १	वे १	वे १	वे १	वे १	वे १
क्रो ३	क्रो ४	क्रो ३	क्रो ४	क्रो ३	क्रो ४
इं १	इं १	इं १	इं १	इं १	इं १
मि १	मि १	मि १	मि १	मि १	मि १
का ५	का ४	का ४	का ३	का ३	का २

१०	१३	१०	१३	१०	१३
म०	म०	ए२	ए२	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
५	५	५	५	५	५
६	१५	१५	२०	२०	१५

सर्वे मीलिताः-

४३२००
१४०४००
२१६०००
३७४४००
१४४०००
१४०४००
१०५८४००
(१४)

पञ्चदशः ।

का	अन	म.	यो.
६	०	०	१०
५	१	०	१३
५	०	१	१०
४	१	१	१३
४	०	२	१०
३	१	२	१३

१०	१३	१०	१३	१०	१३
म	म.	ए२	ए२	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
५	५	५	५	५	५
१	६	६	१५	१५	२०

७२००
५६१६०
८६४००
२८०८००
१०८०००
१८७२००

सर्वे मीलिताः–
७२५७६०
(१५)

षोडशः ।

का	अन.	म.	यो
६	०	१	१०
५	१	१	१३
५	०	२	१०
४	१	२	१३

१०	१३	१०	१३
ए २	ए २	दो×	दो×
२	२	२	२
३	३	३	३
४	४	४	४
६	६	६	६
५	५	५	५
१	६	६	१५

सर्वे मीलिताः—
१४४००
११२३२०
४३२००
१४०४००
३१०३२०
(१६)

सप्तदशः ।

का	अ	भ	यो
६	१	१	१३
६	०	२	१०
५	१	२	१३

१३	१०	१३
ए २	दो ×	दो ×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
५	५	५
१	१	६

सर्वे मीलिताः—

१८७२०
७२००
५६१६०
———
८२०८०
(१७)

भावार्थ—मिथ्यादृष्टिके दश आस्रवकारणोंका एक जघन्य भग ऊपर बताया है। उस प्रकारके दश दश आस्रव कारणोंके सर्व भग ४३२०० होते हैं। मिथ्यात्व पाच हैं, इनमेंसे किसीकें कभी पहिला सभव होगा, किसीकें दूसरा, तीसरा, चौथा अथवा पांचवा होगा। इसलिये पाच मिथ्यात्वोंमेंसे बदल बदल कर भेद जोडे जाय तो पाच भग होजाते हैं। इंद्रिय छह हैं। उनमेंसे कभी प्रथमेंद्रियजन्य अविरति होगी और कभी द्वितीयेंद्रियजन्य आदि अविरति होगी। इसलिये पाचो मिथ्यात्वोंके साथ छह अविरतियोंको एक एक करके जोडा जाय तो तीस भंग द्विसयोगमे हो जाते हैं। आगे काय-असयम छहमेंसे एक एक को जुदा जुदा करके तीसके साथ जोडनेसे एकसौ अस्सी भग हो जाते हैं। फिर आगे तीन कषायोंके क्रोधादि चार भेदोंको एक एक करके एकसौ अस्सीमें जोडें तो ७२० भंग हो जाते हैं। फिर वेद तीनमेंसे एक एक को जोडनेसे २१६० भग हो जाते हैं। आगे रतिहास्य अथवा अरतिशोक इन दो युगलोंको जुदा जुदा जोडनेसे ४३२० भग हो जाते हैं। फिर दश योगोंमेंसे एक एक जुदे जुदे योगको प्रत्येक भंगमें जोडनेसे ४३२० के दशगुणित होकर तेतालीस हजार और दोसौ सर्व भग दश-आस्रवके जघन्य प्रथम भगके उत्तर भंग होजाते हैं। इसी प्रकार एकादशादि स्थानोंके भी भंग यथासंभव समझना।

ग्यारह आस्रवके भगमें दश ऊपरके समान और एक काय असयम अधिक बढ जाता है । अथवा एक अनतानुबंधी, अथवा भय युगलमेंसे एक बढ जानेसे भी ग्यारह होते हैं । इसके कूट तीन हैं । दो काय और दश योगका एक, दूसरा एक काय एक अन० और तेरह योगवाला, तीसरा एक काय एक भय दशयोगवाला । तीन कूटोंके सर्व भग मिलकर २५०५६० होते हैं ।

तेरह योगका स्पष्टी करण—जहा पर जीव सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें आता है उस समय आवलीपर्यंत अनतानुबधीका उदय नहीं होता और मरण भी नहीं होता इसलिये मिश्र योग और कार्मण काय योग तथा आहारक न होसकनेसे दश योग होसकते थे। किंतु सम्यक्त्वसे गिरकर जो आवलीपर्यंत समय है उसके बाद अथवा सदाके मिथ्यादृष्टी जीवके अनतानुबंधी भी उदयमें रहजाता है और मरण होसकनेसे दो मिश्र तथा कार्मणकाय योग भी बढजाते हैं । इस प्रकार योग तेरह पर्यंत ग्यारहसे लेकर सर्व भेदोंमें संभव हैं और अनंतानुबधी भी समव हैं ।

इसी प्रकार वारह आस्रव वाले भगमें काय तीन हैं और कूट पाच हैं । योग दश भी हैं, तेरह भी हैं । अनंतानुबंधी भी है और भय युगल भी है । देखो यंत्र परसे । इसके सर्व भग ६५५९२० हैं ।

तेरह आस्रववाले भंगमें काय चार हैं, कूट छह हैं । अनंतानुबधी एक और भय एक के साथ काय दो हैं । जहा पर भययुगल है वहांपर अनतानुबधी नहीं है किंतु काय दो हैं । भय दो और एक अनतानुबधी है वहांपर काय एक ही लेना । इसके सर्व भग १०२८१६० हैं ।

चौदह आस्रववाले भगोंमें काय पांच हैं। योग तेरह तक हैं। अनतानुबधीके तथा भय युगलके उदय होने न होनेसे कूट ६ होते हैं । सर्व भग मिल कर १०५८४०० हैं । यत्रके ऊपरी भागमें प्रथम कूट दिखाये हैं, फिर सख्या दिखाई है । नीचेके भागमें गुणकार और भगराशीकी जोडकर सख्या बताई है ।

पद्रह आस्रववाले भगोंमें काय छह हैं, कूट छह हैं और सर्व कूटोंकी मिलाकर भगराशी ७२५७६० है । इसमें सख्याका यत्र जुदा नहीं दिया है ।

सोलह आस्रव कारण वाले भगमें कूट चार हैं और सर्व कूटोंकी भगसख्या ३१०३२० है । सोलह आस्रवोंको यत्रोंपरसे समझना । सत्रह आस्रववाले भगमें तीन कूट हैं और उसके सर्व भंग ८२०८० हैं ।

॥२१८॥

का ६ । अ १ । म २ । यो १३ ।

मिथ्यात्वमिन्द्रिय कायाः पट् कषायचतुष्टयम् । वेदो द्वियुगलैकं भीयुग्म योगो दशाष्ट च ॥ ५६ ॥

१ । १ । ६ । ४ । १ । २ । २ । १ ।– मीलिताः १८ ।

पचानां मिथ्यात्वानामेकतमः, षण्णामिन्द्रियाणामेकतमेन पट्कायविराधने सप्तासंयमप्रत्ययाः, चतुर्णां कषायाणामेकतमचतुष्कोदये चत्वारः, एकतरो वेदः, एकतरयुगलं, भयजुगुप्साद्वयं, आहारकद्वय विना त्रयोदशानां योगानामेकतमः । एवमेतेऽष्टादशोत्कृष्टप्रत्ययाः १८ ॥

मिथ्यात्वपचकेन्द्रियपट्कैककायकषायचतुष्कवेदत्रयहास्यादियुग्मद्वयभयजुगुप्सैकत्रयोदशयोगा भगा । ५।६—
१ । ४ । ३ । २ । १ । १३ —परस्पराभ्यस्ताः ९३६० । मिथ्यादृष्टेः सर्वे भगा मीलिताः ४१६३७६० ।

ग्यारहसे लेकर सत्रह तकके आस्रवोंके मध्यम प्रकार कैसे होते हैं वह ऊपर यंत्रोंद्वारा बताया है । अब १८ आस्रव-वाले भेदको बताते हैं ।

पाच मिथ्यात्वोंमेंसे एक कोई मिथ्यात्व, एक इद्रिय, छह काय-इस प्रकार सात अविरति अथवा असयम, कषाय चार—अनतानुबंधी आदि, एक कोई वेद, दो युगलोंमेंसे एक कोई युगल, भय जुगुप्साका एक युगल, एक योग–इस प्रकार जो आस्रव सभव हैं वे १८ हैं । १ । १ । ६ । ४ । १ । २ । २ । १ । –ये मिलकर अठारह हुए । ५६ ।

पांच मिथ्यात्वोंमेंसे कोई एक, छह इद्रियोंमेंसे किसी एक इद्रिय द्वारा छह काय जीवोंकी विराधना होनेमें सात असयम आस्रव, चार अनतानुबंधी आदि कषायोंमेंसे किसी एक एक (क्रोधादि) के उदयसे चार कषाय, कोई एक वेद, हास्यादि दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, तथा भय जुगुप्साका एक युगल, आहारक द्वयको छोडकर शेष तेरह योगोंमेंसे कोई एक योग—इस प्रकार उत्कृष्ट आस्रव कारण अठारह होते हैं ।

मिथ्यात्व पाच, इद्रिय छह, काय एक, कषाय चार, वेद तीन, हास्यादि युगलोंमेंके दो, भय जुगुप्सामेंका एक, और योग तेरह—इन सबको गुणित करे तो अठारह आस्रवके सर्व भग ९३६० होते हैं । और दश आस्रवके जघन्य भेदसे उत्कृष्ट अठारह आस्रवपर्यंतके

सासादनो यतो जातु श्वभ्रभूमिं न गच्छति । मिश्रे वैक्रियिके योगे स्त्रीपुवेदद्वयं ततः ॥ ५७ ॥
योगैर्द्वादशभिस्तस्मान्मिश्रवैक्रियिकेण च । त्रिभिर्द्वाभ्यां च वेदाभ्यां तस्य भंगप्रकल्पना ॥ ५८ ॥
सस्थाप्य शासनं द्वेधा योगवेदैर्यथोदितः । गुणयित्वाऽखिला भगास्तस्यानेया यथागमम् ॥ ५९ ॥
का १ । अन १ । भ ० । यो० १२ ।
० । १ । १ । ४ । १ । २ । ० । १ । मीलिताः १० ।

नों भेदोंके सर्व भंग मिलकर ४१६३७६० होते हैं । वे इस प्रकार–दशके ४३२०० हैं । ग्यारहके २५०५६० हैं । बारहके ६५५९२० हैं । तेरहके १०२८१६० हैं । चौदहके १०५८४०० हैं । पन्द्रहके ७२५७६० हैं । सोलहके ३१०३२० हैं । सत्रहके ८२०८० हैं । अठारहके ९३६० हैं । जघन्यके समान इस उत्कृष्ट भगमें भी कूट एक ही है । मिथ्यात्वके आस्रवभंग समाप्त हुए ।

अब सासादन दूसरे गुणस्थानमें आस्रवकारणोंके भंगादिका खुलासा करते हैं ।

सासादन गुणस्थानका जीव नरक गतिको नहीं जाता । इसलिये वैक्रियिकमिश्र योग इस गुणस्थानवालेके यदि होगा तो देवगतिको जानेवालेके ही होगा और अत एव उसके नपुसक वेद न होकर स्त्रीवेद तथा पुरुषवेद ये वेद दो ही होंगे ।५७।

इसलिये बारह योगोंके साथ तीन वेदोंको जोडकर भंगोंकी रचना करनी चाहिये और वैक्रियिक मिश्र योगके साथ नपुसक वेदको न लेकर शेष दो वेदोंको ही जोडकर भंगोंकी रचना करनी चाहिये ।५८।

इस प्रकार योग और वेदोंका जो ऊपर भेद बताया है उसके अनुसार सासादनको दो प्रकारसे स्थापित कर परस्परका गुणन करके सासादनके सर्व भंग यथाशास्त्र लाने चाहिये ।५९।

इस दूसरे गुणस्थानमें भी जघन्य आस्रव दश बताये हैं। यहापर–काय १ । अनतानुबंधी १ । भय० । योग १२–है । इस गुणस्थानमें मिथ्यात्व नहीं रहता इसलिये उसकी एक संख्या कम हो जाती है किंतु अनतानुबंधीकी एक सख्या बढ जाती है इसलिये जघन्य आस्रव दशही यहापर रहते हैं । भावार्थ, मिथ्यात्वका प्रथम स्थान मानकर आस्रवस्थान सर्व आठ बताये हैं उनमेंसे

एतेषामेते । ० । ६ । ६ । ४ । ३ । २ । ० १२ । अन्योन्यगुणा भगाः १०३६८ । मिश्रवैक्रियिकयोगे यतः शासनो नरक न गच्छति ततो देवेषु स्त्रीपुवेदयोरेते–०×६×६×४×२×२×०×१=अन्योन्यगुणाः ५७६ । एते १०३६८ एते च ५७६ मीलिता जघन्याः १०९४४ ।

मिथ्यात्वके प्रथम स्थानमें शून्य देना । दूसरे इंद्रियके स्थानमें एक सख्या लिखनी । तीसरे कायके स्थानमें एककी संख्या लिखनी । चौथे कपायके स्थानमें अनतानुबधी आदि चारो कपाय सभव है इसलिये प्रत्येक कपायका एक एक भेद सभव मान कर चारकी संख्या चौथे स्थानमें लिखनी । पांचवें स्थनमें वेदकी एक सख्या लिखनी । छट्ठे स्थानमें हास्यादि दो युगलोमेंसे एक युगलकी दो संख्या लिखनी । सातवें स्थानमें भययुगलका अभाव मानकर शून्य लिखना । आठवें स्थानमें वारह योगोंमेंसे एक योगकी एक सख्या लिखनी ।–० । १ । १ । ४ । १ । २ । ० । १ ।–इस प्रकार दश संख्या जघन्य आस्रवकी हुई ।

इन आठ स्थानोंमें सभव संख्याओंका परस्पर गुणा किया तो १०३६८ भग होते है ।–(०×६×६×४×३×२×० ×१२=१०३६८) ।

मिश्र वैक्रियिक काय योगमें सासादन वाला नरकको न जाकर देवगतिमें जाता है इसलिये वहांकी अपेक्षासे वेद स्त्री पुरुष–ये दो ही लिये जायगे । इसका यत्र–(० । ६ । ६ । ४ । २ । २ । ० । १)–ऐसा है । इनके अन्योन्य गुणनसे ५७६ भग होते है । पहिले १०३६८ और ये ५७६ दोनों मिलकर १०९४४ हुए । ये सासादनके जघन्य स्थानके उत्तर भंग सर्व १०९४४ हैं ।

ग्यारह आदि आस्रवके भगोंके यत्र आगे बताते है ।—

एकादशः ।

का	अन	भ	यो.
२	१	०	१२ । १
१	१	१	१२ । १

	वै मि.		वै मि
१२	१	१२	१
म०	म०	ए २	ए २
२	२	२	२
३	२	३	२
४	४	४	४
६	६	६	६
२५९२०	१४४०	२०७३६	११५२

सर्वे मीलिताः—

२७३६०ए
२१८८८ए
४९२४८
(११)

द्वादशः ।

का.	अन	भ.	यो
३	१	०	१२ ।१
२	१	१	१२ ।१
१	१	२	१२ ।१

	वै. मि		वै मि		वै मि.
१२	१	१२	१	१२	१
म०	म०	ए २	ए २	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	२	३	२	३	२
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
२०	२०	१५	१५	६	६
३४५६०		५१८४०		१०३६८	
१९२०		२८८०		५७६	

मीलिता -
३६४८०
५४७२०
१०९४४
१०२१४४
(१२)

फा.	अन	भ.	यो	
४	१	०	१२	।१
३	१	१	१२	।१
२	१	२	१२	।१

त्रयोदशः ।

	व मि		वै मि.		वै. मि.
१२	१	१२	१	१२	१
भ०	भ०	ए२	ए२	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	२	३	२	३	२
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
१५	१५	२०	२०	१५	१५
२५९२०		६९१२०		२५९२०	
१४४०		३८४०		१४४०	

सर्वे मीलिता —

ए	२७३६०
ए.	७२९६०
ए	२७३६०
	१२७६८०
	(१३)

का.	अन	भ.	यो	
५	१	०	१२	।१
४	१	१	१२	।१
२	१	२	१२	।१

चतुर्दशः ।

	वै. मि.		वै. मि.		वै. मि.
१२	१	१२	१	१२	१
भ०	भ०	ए२	ए२	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	२	३	२	३	२
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
६	६	१५	१५	२०	२०
१०३६८		५१८४०		२५९२०	
५७६		२८८०		१९२०	

मीलिताः—

१०९४४
५४७२०
३६४८०
१०२१४४
(१४)

पञ्चदशः ।

का	अन	भ	यो	
६	१	०	१२	।१
५	१	१	१२	।१
४	१	२	१२	।१

	वै. मि		वै मि.		वै. मि.
१२	१	१२	१	१२	१
भ०	भ०	ए२	ए२	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	२	३	२	३	२
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
१	१	६	६	१५	१५
१७२८		२०७३६		२५९२०	
९६		११५२		१४४०	

मीलिताः—

१८२४
२१८८८
२७३६०
५१०७२
(१५)

षोडशः ।

का:	अन	भ.	यो	
६	१	१	१२	।१
५	१	२	१२	।१

	वै.मि		वै.मि
१२	१	१२	१
ए२	ए२	दो×	दो×
२	२	२	२
३	२	३	२
४	४	४	४
६	६	६	६
१	१	६	६
३४५६		१०३६८	
१९२		५७६	

मीलिताः—

३६४८
१०९४४
१४५९२
(१६)

सप्तदशः ।

का	अन.	ग	यो.			वे मि	तयो
६	१	२	१२	।१	१२	१	१७२५
					दो×	दो×	९६
					२	२	
					३	२	मीलिता
					४	४	१८२४
					६	६	(१७)
					१	१	

अमी सर्वे—४५९६४८ भगाः ।

इति सासादनभगा ।

आगे ग्यारहका मध्यम भग है । इनके उत्तर भग ४९२४८ हैं । कायसबधी असयम यहा एक बढ जाता है इसलिये ग्यारह का यह भंग है । तीसरे बारहके भगमें कायसंबधी असंयम तीन लेकर बारहकी सख्या करनी। इसके उत्तर भंग १०२१४४ हैं। चौथे तेरहके भगमें कायासंयम चार हैं। उत्तर भंग १२७६८० हैं।

चौदह संख्याके भगमें कायासंयम ५ हैं। उत्तर भगसख्या १०२१४४ है। पद्रहके मध्यम भगमें कायासंयम छहो हैं। उत्तर भग ५१०७२ हैं। सोलहके भगमें काय छह हैं परतु भय भी रहता है। इसके उत्तर भ। १४५९२ हैं। सत्रहका उत्कृष्ट भग है। इसमें भययुगलकी दो संख्या है। इसके उत्तर भंग १८२४ हैं।

सासादनके जघन्य दशके स्थानसे सत्रह तकके आठ स्थानोंके उत्तर भंग मिलाकर सर्व ४५९६४८ होते हैं।

इति सासादन भंग रचना ।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः प्रत्ययभंगा निरूप्यन्ते—

नवमः ।

का	म.	यो.
१	०	१०

१०
०
२
३
४
६
६

मीलिताः—

८६४०
(९)

दशमः ।

का.	म.	यो
२	०	१०
१	१	१०

१०	१०
भ०	ए०
२	२
३	३
४	४
६	६
१५	६

मीलिताः—

२१६००
१७२८०
३८८८०
(१०)

आगे सम्यङ्मिथ्यादृष्टि तीसरे गुणस्थानके आस्रवभंगोंका वर्णन करते है ।

इसमें सबसे जघन्य स्थान नौ आस्रवोंका है । और दशसे सोलह आस्रवके भग पर्यंत मध्यम उत्कृ त्र आगे दिये है ।

॥२२६॥

एकादशः ।

का	भ	यो
३	०	१०
२	१	१०
१	२	१०

१०	१०	१०
म०	ए२	दो×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
२०	१५	६

मीलिताः—

२८८००
४३२००
८६४०
———
८०६४०
(११)

द्वादशः ।

का	भ	यो
४	०	१०
३	१	१०
२	२	१०

१०	१०	१०
म०	ए२	दो×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
१५	२०	१५

मिलिताः—

२१६००
५७६००
२१६००
———
१००८००
(१२)

त्रयोदशः ।

का.	म	यो.
५	०	१०
४	१	१०
३	२	१०

१०	१०	१०
म०	ए२	दो×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
६	१५	२०

मीलिता –

८६४०
४३२००
२८८००
८०६४०
(१३)

चतुर्दशः ।

का	भ.	या.
६	०	१०
५	१	१०
४	२	१०

१०	१०	१०
म०	ए२	दो×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
६	६	६
१	६	१५

मीलिता –

१४४०
१७२८०
२१६००
४०३२०
(१४)

।।२२८।।

पंचदशः ।

का.	भ	यो
६	१	१०
५	२	१३

१०	१०
ए२	दो×
२	२
३	३
४	४
६	६
१	६

मीलिता –

२८८०
८६४०
११५२०
(१५)

षोडशः ।

का.	भ	यो
६	२	१०

१०
दो×
२
३
४
६
१

सर्वे मीलिता —

१४४०
(१६)

सर्वे मीलिताः=—

३६३८८०

इति सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्भंगा प्ररूपिता ।

इस प्रकार यन्त्रोंद्वारा सम्यङ्मिथ्यादृष्टिके सर्व उत्तर भग ३६३८८० का विवेचन किया ।

अथ असयतस्य भगा निरूप्यते—

योगे वैक्रियिके मिश्रे कार्मणे च सुधाशिषु । पुवेदः षण्ढवेदश्च श्वभ्रेऽवद्धायुषः पुनः ॥ ६० ॥
तिर्यक्ष्वौदारिके मिश्रे पूर्वबद्धायुषो मतः । मनुष्येषु च पुंवेद सम्यक्त्वालकृतात्मन ॥ ६१ ॥
त्रिभिर्द्वाभ्यां तथैकेन वेदेनास्य प्रताडना । भगानां दशभिर्योगैर्द्वाभ्यामेकेन च क्रमात् ॥ ६२ ॥

अस्यार्थः--चिरंतनचतुश्चत्वारिंशच्छतादिलक्षणं राशिं त्रिधा व्यवस्थाप्यैकं त्रिभिर्वेदैः, अन्यं द्वाभ्यां पुनपुसक-

---

अब असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थानके भंगोंको कहते हैं ।

चतुर्थ गुणस्थानवाला यदि बद्धायु नहीं है तो उसे वैक्रियिकमिश्र काययोग अथवा कार्मण काययोग–ये दोनो योग देवोंमें ही मिलेगे। और वहां उसकें वैक्रियिकमिश्रके साथ पुरुषवेद ही रह सकता है । यदि वह पूर्वका बद्धायु है तो नरक गतिमें भी जायगा और उसकें वैक्रियिक मिश्रके साथ नपुंसक वेद रहेगा । ६० ।

पूर्वबद्धायुके कारण जो सम्यग्दृष्टि तिर्यंच गतिमे जायगा अथवा मनुष्यगतिमें जायगा उसकें औदारिकमिश्र काययोगके साथ पुरुषवेद ही होगा । ६१ ।

इसलिये तीन वेदोंसे भी इसको गुणित करना चाहिए तथा दो वेदोंसे तथा एक वेदसे भी गुणित करना चाहिये । फिर सिद्ध हुई राशियोंको क्रमसे दश योगोंसे गुणे, तथा दो योगोंसे और एक योगसे भी गुणे । ६२ ।

इसका खुलासा आगे करते है– पूर्वबद्ध एकसौ चवालीस आदि कर्म प्रकृतियोंकी सख्याको तीन जगह स्थापित करे । उनमेंसे एक राशिको तीन वेदसख्यासे गुणे, दूसरी राशिको पुरुप नपुंसक की दो वेदसंख्यासे गुणे, तीसरी बची राशिको नपुसक वेदकी एक सख्यासे ही गुणे । इस प्रत्येक लब्ध राशिको फिर हास्यादिकी दो सख्यासे गुणे । फिर एक राशिको दश

वेदाभ्यां, परमेकेन नपुंसकवेदेन गुणित, युगलेन गुणयित्वा, योगैरेक दशभिः, अन्य द्वाभ्यां वैक्रियिकमिश्रकार्मणाभ्या, परमेकेनौदारिकमिश्रेण गुणयेत् । तत एकीकरणे फल भवति ।

नवम ।

का	भ.	यो.	यो.	यो.
१	०	१०	२	१

१०	२	१
भ०	भ०	भ०
२	२	२
३	२	१
४	४	४
६	६	६
६	६	६

मीलिताः—
८६४०
११५२
२८८
१००८०
(९)

दशमः ।

का.	भ.	यो		
२	०	१०	२	१
१	१	१०	२	१

१०	२	१	१०	२	१
भ०	भ०	भ०	ए२	ए२	ए२
२	२	२	२	२	२
३	२	१	३	२	१
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
१५	१५	१५	६	६	६

मीलिताः—
२५२००
२०१६०
४५३६०
(१०)

योगोंसे गुणे, दूसरी राशिको वैक्रियिक मिश्र तथा कार्मण–इन दो योगोंसे गुणे, तीसरी राशिको एक औदारिकमिश्र मात्रसे गुणे । इन सबको फिर मिलालेनेसे फल निकल आता है ।

॥२३१॥

एकादशः ।

का	म.	यो	यो.	यो.
३	०	१०	२	१
२	१	१०	२	१
१	२	१०	२	१

१०	२	१	१०	२	१	१०	२	१
म०	म०	म०	ए२	ए२	ए२	दो×	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	२	१	३	२	१	३	२	१
४	४	४	४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६	६	६	६
२०	२०	२०	१५	१५	१५	६	६	६
२८८००	३८४०	९६०	४३२००	५७६०	१४४०	८६४०	११५२	२८८

मीलिता:—
ए ३३६००
ए ५०४००
ए १००८०
९४०५०
[११]

द्वादशः ।

का.	म.	यो	यो	यो.
४	०	००	२	१
३	१	१०	२	१
२	२	१०	२	१

१०	२	१	१०	२	१	१०	२	१
म०	म०	म०	ए२	ए२	ए२	दो×	दो२	दो×
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	२	१	३	२	१	३	२	१
४	४	४	४	४	४	५	४	४
६	६	६	६	६	६	६	६	६
१५	१५	१५	२०	२०	२०	१५	१५	१५
२१६००	२८८०	७२०	५७६०	७६८०	१९२०	२१६००	२८८०	७२०

मीलिता:—
ए २५२००
ए ६७२००
ए. २५२००
११७६००
(१२)

त्रयोदशः ।

का.	भ.	यो	यो.	यो
५	०	१०	२	१
४	१	१०	२	१
३	२	१०	२	१

१०	२	१	१०	२	१	१०	२	१
भ०	भ०	भ०	एर	एर	एर	दो×	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	२	१	३	२	१	३	२	१
४	४	४	४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६	६	६	६
६	६	६	१५	१५	१५	२०	२०	२०
८६४०	११५२	२८८	४३२००	५७६०	१४४०	२८८००	३८४०	९६०

मीलिताः—
१००८०
५०४००
३३६००
९४०८०
(१३)

चतुर्दशः ।

का	भ	यो.	यो.	यो
६	०	१०	२	१
५	१	१०	२	१
४	२	१०	२	१

१०	२	१	१०	२	१	१०	२	१
भ०	भ०	भ०	एर	एर	एर	दो×	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	२	१	३	२	१	३	२	१
४	४	४	४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६	६	५	६
१	१	१	६	६	६	१५	१५	१५
१४४०	१९२	४८	१७२८०	२३०४	५७६	२१६००	२८८०	७२०

मीलिताः—
१६८०
२०१६०
२५२००
४७०४०
(१४)

का	म	यो.	यो	यो
६	१	१०	२	१
५	२	१०	२	१

१०	२	१	१०	२	१
ए२	ए२	ए२	दो×	दो×	दो×
२	२	२	२	२	२
३	२	१	३	२	१
४	४	४	४	४	४
६	६	६	६	६	६
१	१	१	६	६	६
२८८०	३८४	९६	८६४०	११५२	२८८

मीलिता —

३३६०
१००८०
१३४४०
(१५)

तीसरे गुणस्थानके समान इस चौथे गुणस्थानमें भी जघन्य आस्रव नौ है। दूसरे गुणस्थानसे मिथ्यात्वकी एक संख्या कम हो जाती है। इसलिये यहा जघन्य की दश संख्या न रहकर नौ हो जाती है। आगे दश ग्यारह आदि आस्रवोंके मध्यम भग और सोलह आस्रवोंका उत्कृष्ट भग है वे सर्व काय तथा मध्युगलके हीनाधिक होनेसे होते हैं।

नौ आस्रवके सर्व भगोंकी उत्तर संख्या १००८० है, कूट एक है। दश आस्रवके भगोंके कूट दो है, भगसंख्या सर्व ५५३६० है। ग्यारहमें कूट तीन है, भगराशि सर्व ९४०५० है। बारहमें कूट तीन और भगराशि सर्व ११७६०० है। तेरहमें कूट तीन और भग सर्व ०४०८० है। चौदहमें कूट तीन और भग सव ४७०४० है। पद्रहमें कूट दो और भग सर्व १३४४० हैं। सोलह आस्रववाले यत्रमें कूट एक है, भगसंख्या १६८० है। सर्व आठो स्थानोंके मिलकर भग ४२३३६० होते हैं।

पोडशः ।

का. भ यो यो यो.				
६ २ १० २ १	१०	२	१	मीलिता --
	दो×	दो×	दो×	
	२	२	२	
	३	२	१	
	४	४	४	१६८०
	६	६	६	[१६]
	१	१	१	
	१४४०	१९२	४८	

एवं सर्वे मीलिता ४२३३६० भंगा भवन्ति ।

असयतस्य भगा समाप्ता ।

देशसयतस्याभिधीयन्ते –

ज्ञेयाः पच दश प्राज्ञैः दश पचैककः क्रमात् । गुणकारविधानेन संयतासंयतस्थितेः ॥ ६३ ॥

५ । १० । १० । ५ । १ ।

इस प्रकार चतुर्थ गुणस्थानके आस्रवभग यत्रोंपरसे समझना ।

अब देशसयत पांचवें गुणस्थानके अस्रवोंके भगोंको बताते हैं ।

सयतासयतमें असयुक्त भग पांच हैं, द्विसयुक्त भग दश हैं, त्रिसयोगी भग भी दश हैं, चतु सयोगी पाच और पंचसंयोगी एक भग है ऐसा गुणकार विधानसे विद्वानोंको समझलेना चाहिये ॥ ६३ ॥ (५ । १० । १० । ५ । १ ।)

अष्टमः ।

का.	म.	यो.
१	०	९

तस्य $\frac{६४८०}{(८)}$

नवमः ।

का	म.	यो.
२	०	९
१	१	९

१	यो
२	हा
१	वे
२	क
१	इ
२	का

९	९
म०	ए२
२	२
३	३
४	४
६	६
१०	५

मीलिताः—

१२९६०
१२९६०
२५९२०
(९)

दशमः ।

का.	म.	यो.
३	०	९
२	१	९
१	२	९

९	९	९
म०	ए२	दो×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
१०	१०	५

मीलिताः—

१२९६०
२५९२०
६४८०
४५३६०
(१०)

एकादशः ।

का	म.	यो.
४	०	९
३	१	९
२	२	९

९	९	९
म०	ए२	दो×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
५	१०	१०

मीलिताः—
६४८०
२५९२०
१२९६०
४५३६०
(११)

द्वादशः ।

का.	म	यो
५	०	९
४	१	९
३	२	९

९	९	९
म०	ए२	दो×
२	२	२
३	३	३
४	४	४
६	६	६
१	५	१०

मीलिता —
१२९६
१२९६०
१२९६०
२७२१६
(१२)

चतुर्दश ।

का	भ.	यो
५	२	९

९
दो×
२
३
४
६

८

तस्य
१२९६
---
(१४)

सर्वे देशसंयतस्य भगाः १६०७०४ ।

प्रमत्तभङ्गानाह—

आहारकद्वय ज्ञेय पुवेदस्योदये ततः । प्रमत्तस्य यतो नेद निंद्यवेदोदये सति ॥ ६४ ॥

कर्त्तव्या नवभिर्द्वाभ्यां योगाभ्यां भगकल्पना । त्रिभिरेकेन वेदेन द्वेधा संस्थाप्य स क्रमात् ॥ ६५ ॥

भगके उत्तर भग २७२१६ हैं । छट्ठे तेरह आस्रववाले भंगके उत्तर भंग ९०७२ हैं । सातवें चौदह आस्रववाले भगके उत्तर भग १२९६ हैं । इस प्रकार देशसयतके सर्व उत्तर आस्रवभग १६०७०४ है । इसका खुलासा ऊपर दिये यन्त्रोंपरसे समझना ।

इस प्रकार पंचम गुणस्थानके उत्तर आस्रवभग समाप्त हुए ।

अब छट्ठे प्रमत्त गुणस्थानके आस्रवभगोंको दिखाते हैं ।–छट्ठे गुणस्थानमें आहारक द्वय योगोंका होना पुरुषवेदके रहते होता है, स्त्री और नपुंसक इन दो निंद्य वेदोंके उदयमें वे आहारकद्वय योग नहीं होते । इसलिये नौ योगोंको तो तीन वेदोंके साथ जोड़ना चाहिये । और आहारक दो योगोंको एक पुरुष वेदके साथ ही जोड़ना चाहिये । इस प्रकार क्रमसे स्थापित कर उत्तर भग निकालने चाहिये । ६४–६५ ।

प्रमत्तस्य सर्वे भंगा ९२८ ।

यो.	१	९	२
		भ०	०
हा.	२	२	२
वे.	१	३	१
क	१	४	४
	५	२१६+१६	
		२३२	

यो.	१	९	२
भ	१	२	२
हा.	२	२	२
वे	१	३	१
क.	१	४	४
	६	४३२+३२	
		४६४	

यो.	१	९	२
भ.	२	×	×
हा	२	२	२
वे.	१	३	१
क.	१	४	४
	७	२१६+१६	
		२३२	

२३२ + ४६४ + २३२ = ९२८

अप्रमत्तापूर्वगुणद्वयभगानाह—

पुवेदाहारकद्वन्द्वविहीनः प्रक्रमः परः । प्रमत्तावस्थितः कृत्यो गुणस्थानद्वये परे ॥ ६६ ॥

छट्ठे गुणस्थानमें अविरति बारह ही नष्ट हो जाती हैं । कषाय एक सज्वलन रहता है । इसमें उत्तर भंग सर्व ९२८ होते हैं । वे यंत्रपरसे देखना ।

इस प्रकार छट्ठे गुणस्थानके भग हुए ।

अब अप्रमत्त सातवें और अपूर्वकरण आठवें इन दो गुणस्थानोंके आस्रवभगोंको बताते हैं ।

छट्ठे गुणस्थानमें पुरुषवेद तथा आहारक द्वयका एक भेद बताया था उसको छोडकर शेप सर्व रचना छट्ठे गुणस्थानके समान ही इस सातमें तथा आठवें गुणस्थानद्वयमें करनी चाहिये । ६६ ।

तत्राप्रमत्तस्य तावत्सर्वे भंगाः,—

१	९	१	९	१	९	२१६
	म०	१	२	२	दो×	ज ५
२	२	२	२	२	२	४३२
१	३	१	३	१	३	म ६
१	४	१	४	१	४	२१६
५	०	६	०	७	०	उ ७
	०		०		०	अप्रमत्तस्य
	०		०		०	८६४

१	९	१	९	१	९	२१६
२	म०	१	ए२	२	दो×	ज ५
१	२	२	२	२	२	४३२
१	३	१	३	१	३	म. ६
५	४	१	४	१	४	२१६
	०	६	०	७	०	उ. ७
	०		०		०	अपूर्वस्य
	०		०		०	८६४

अनिवृत्तिगुणस्याह—

जघन्यौ प्रत्ययौ ज्ञेयौ द्वाववेदानिवृत्तिके । सञ्ज्वालेषु चतुर्ष्वेको योगानां नवके परः ॥ ६७ ॥

१ । १ । भंगाः । ४ × ९ = अन्योन्याभ्यस्तौ ३६ ।

अप्रमत्त सातवें गुणस्थानकी उत्तर भंगसंख्या सर्व ८६४ हैं। और अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानकी भी सर्व उत्तर भंगसंख्या ८६४ ही है।

अब अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके आस्रवोंको बताते हैं।—

नौवें गुणस्थानमें जहां वेदका अभाव हो जाता है वहांपर जघन्य आस्रव दो रहते हैं—सज्वलन चार कषायोंमेंसे एक कषाय तथा नौ योगोंमेंसे एक योग। (१ । १ ।)। इस जघन्यमें सज्वलन चार कषाय और नौ योग हैं। इनको परस्पर गुणेसे छत्तीस भंग—(४×९=३६)—जघन्य आस्रवके होते हैं। ६७।

शोकस्तापो वधो दुःखमाक्रन्दः परिदेवनम् । स्वान्योभयस्थितैरेतैरसातं कर्म गृह्यते ॥ ७४ ॥
तपोधर्मागमस्वर्गिसंघकेवलचक्षुषाम् । बध्नात्यवर्णवादेन प्राणी दर्शनमोहनम् ॥ ७५ ॥
कषायोदयतस्तीव्रः परिणामो विनिन्दितः । द्वेधाचारित्रमोहस्य कर्मणो बन्धकारणम् ॥ ७६ ॥
मिथ्यादृष्टिर्व्रतापेतो बह्वारम्भपरिग्रहः । आयुर्बध्नाति निःशीलो नारक दुष्टमानसः ॥ ७७ ॥
उन्मार्गदेशको मायी सशल्यो मार्गदूषकः । आयुर्जाति तैरश्च शठो मूढो दुराशयः॥ ७८ ॥

शोक संताप वध दुःख आक्रंदन परिदेवन–ये भाव अपनेमें हों अथवा दूसरेमें उत्पन्न करना अथवा अपने तथा दूसरेमें–दोनोंमें जागृत करना, तो इन अशुभ परिणामोंसे असाता वेदनीय कर्मका बंध होता है ।

अनुग्रह करनेवालेका वियोग हो जानेपर जो परिणामोंमें खेद होता है वह शोक है । अपनी निंदा आदि होनेके कारण परिणामोंमें तीव्र पश्चात्ताप अथवा संताप होता है उसे ताप कहते हैं । आयुका घात करना, इंद्रियादि अंगोपांगोंका काटना छेदना–इत्यादि प्राणघात करनेको वध कहते हैं । परिणाम पीडित होना सो दुःख है । विलापादि कर करके, आंसू बहाते हुए रोना सो आक्रंदन है । अपने, दूसरेका अनुग्रह चाहते हुए ऐसा रोना जो दया उत्पन्न हो जाय उसे परिदेवन कहते हैं । ७४ ॥

संघमें धर्ममें आगममें देवताओंमें चतुर्विध मुनिसंघमें केवलज्ञानियोंमें मिथ्यादोष लगानेसे दर्शनमोह कर्मका बंध होता है । ७५ ।

कषायके उदयसे परिणामोंमें जो निंदनीय भावना होती है उससे, कषाय और नोकषाय–इन दोनो चारित्रमोह कर्मोंका बंध पडता है । ७६ ।

मिथ्यादृष्टि हो और व्रतरहित तथा शीलरहित हो, वह यदि बहुत आरंभ परिग्रह करे तो वह अपने परिणामको दूषित करता है और उससे नरकायुका बंध करता है । ७७ ।

शठ मूढ और दुष्टाशय मनुष्य मायाचारको रक्खे, माया मिथ्या निदान–इन तीन शल्योंको न छोडे और मिथ्या मार्गका उपदेश दे और समीचीन मोक्षमार्गको दूषण लगावे वह तिर्यंच आयुको बांधता है ॥ ७८ ॥

निःशीलो निर्व्रतो भद्रः प्रकृत्याल्पकषायकः । आयुर्बध्नाति मर्त्यानामल्पारम्भपरिग्रहः ॥ ७९ ॥
अकामनिर्जराबालतपःशीलमहाव्रती । सम्यक्त्वभूषितो दैवमायुरर्जति शांतधीः ॥ ८० ॥
वक्रस्वान्तवचःकायो गौरवी वञ्चनापरः । अशस्त नाम बध्नाति प्रशस्तमपरस्ततः ॥ ८१ ॥
स्वप्रशंसी परद्वेषी जिनशासननिन्दकः । नीचैर्गोत्र प्रबध्नाति विपरीत ततः परः ॥ ८२ ॥
दानलाभोपभोगादिप्रत्यूहकरण मतम् । निमित्तमन्तरायस्य पचभेदस्य देहिनः ॥ ८३ ॥

शीलरहित व्रतरहित परतु भद्रपरिणामी, स्वभावसे ही कषायोंको अधिक प्रज्वलित न करता हो, आरभ परिग्रह कम रक्खे वह मनुष्यायुको बाधता है । ७९ ।

अकाम कर्मनिर्जरा करता हो, बाल तप अर्थात सम्यक्त्व रहित कायक्लेशादि तप करे, शील पाले, अथवा सम्यक्त्व सहित हो, महाव्रत धारण करे, परिणामोंको शांत रक्खे वह देवायुका बध करता है ।

भावार्थ, देवायुका बध मिथ्यादृष्टि जीव भी करते हैं और सम्यग्दृष्टि भी करते हैं । मिथ्यादृष्टि होकर भी जो अनिच्छित प्रसग पाकर कष्टोंको शांततासे सहे वह अकामनिर्जरा है । बालतप–बाल अर्थात् अज्ञान अवस्थामें, तप अर्थात् कायक्लेशादिको धारण करना । शील रखना । इत्यादि ऐसे कारण हैं कि मिथ्यात्व अवस्थामें भी इनसे देवायुके बंध हो जाते हैं । यदि सम्यक्त्व सहित महाव्रतादि हों तो वह उत्तम देवोंके पर्यायको पाता है ॥ ८० ॥

जिसके मन वचन शरीर क्रूर रहते हैं, जो गर्व रखता है, जो ठगनेमें तत्पर रहता है, वह अशुभ नाम कर्मको बाधता है । इससे उलटे स्वभाववाला शुभ नाम कर्मको बांधता है । ८१ ।

अपनी प्रशंसा करे, दूसरोंसे द्वेष करे, जिनशासनकी निंदा करे वह नीचगोत्र कर्मको बाधता है । जो इससे उलटा स्वभाव रखता है वह उच्चगोत्र कर्मको बांधता है । ८२ ।

किसी जीवको दान देते रोके, किसीके लाभमें विघ्न करे, भोगोपभोगोंमें बाधा डाले, अथवा किसीके बलको घटानेमें प्रयत्न करे तो यथायोग्य दानान्तराय आदि पाच प्रकारके अतराय कर्मका बध होता है ऐसा माना गया है । ८३ ।

॥२४५॥

अप्रमादकषायाननुदीरणेति वचनादुदयावलिकायां प्रविष्टायाः कर्मस्थितेर्नोदीरणा। इति मरणावलिकायामायुषः, सूक्ष्मे मोहस्य, क्षीणे घातित्रयस्योदीरणा नास्ति. मरणावलिकाशेषे चायुषि मिश्रं न संभवति ।

बंधोदयोदीरणाः कथ्यन्ते.—

घातिकल्मषनिर्ध्वंसी भुङ्क्ते कर्मचतुष्टयम् । कर्मबन्धव्यतिक्रान्तो निर्योगोऽष्टानुदीरकः ॥ ९२ ॥

द्वितयोदीरको योगी वेद्यस्यैकस्य बंधकः । भुङ्क्ते चत्वार्यघातीनि घातिकर्मनिसुंभकः ॥ ९३ ॥

बधको वेदनीयस्य शांतक्षीणकपायकौ । भुजते सप्त कर्माणि पचकोदीरणापरौ ॥ ९४ ॥
षट्क नन्नाति भुक्तेऽष्टौ दशमः षडुदीरकः । द्वयोः कपाय पचानां क्षीणसूक्ष्मावुदीरकौ ॥ ९५ ॥
षट्कस्योदीरकाः सप्तबध ा क्रमतस्त्रय । अनिवृत्त्यादयः शश्वदष्टकर्माणि भुजते ॥ ९६ ॥

उपशातकपाय तथा क्षीणकपाय ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानवाले, बध एक वेदनीयका ही करते हैं और वे भोगते मोहके विना सात कर्मोंको हैं, और उदीरणा पाच कर्मोंकी करते है । उदीरणाके पाच कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र तथा अतराय–ये हैं ।९४।

दशम गुणस्थानवर्ती मोह तथा आयुके शिवाय छह कर्मोंको बाधता है, भोगता आठो कर्मोंको है, और उदीरणा छह कर्मोंकी करता है । वे उदीरणाके छह कर्म, वदनीय तथा आयुको छोडकर, शेष हैं । और यदि मरणावली प्राप्त हुई हो तो दशम गुणस्थानवाला पाच कर्मोंकी ही उदीरणा करता है । वह मोहनीयकी उदीरणा नहीं करता और वेदनीय तथा आयुकी उदीरणा भी नहीं करता । एवं, क्षीणकपायवाला नाम गोत्र–इन दो कर्मोंकी उदीरणा करता है । इस प्रकार क्रमसे समझना । भावार्थ, यदि मरणावली प्राप्त न हुई होती तो नाम गोत्रकी उदीरणा तेरहवें गुणस्थानमें होती है । ९५ ।

अनिवृत्ति (नौवें) आदि तीन गुणस्थानवाले–नौवें, दशवें, ग्यारहवें–ये, छह छह कर्मोंकी उदीरणा करते हैं, सात सात कर्मोंको बाधते हैं; और आठ आठ कर्मोंके उदयको भोगते हैं । ९६ ।

---

१ — यह क्रमसे उस अवस्थाका वर्णन है जब कि जीव उपशम श्रेणीसे नीचे गिरता है । ग्यारहवें गुणस्थानमें मोहका उपशम रहता है इसलिये उदय सात कर्मोंका [illegible] ना गया है । वहा मोहका उदय नहीं रहता है । और जब वह मोहके उदय-वश होता है तो नीचेके गुणस्थानोंकी तर्फ गिरता है इस प्रकार मोहके उदयकी अवस्था गिरते हुए जीवकी दशवें गुणस्थानकी माननी चाहिये । परतु वह गिरता है मोहके उदयसे ही, इसलिये यहां मोहका उदय कारण और गिरना कार्य है । कारणका अस्तित्व प्रथम मानलें तो मोहके उदयका अस्तित्व ग्यारहवेंमें मानना कथचित् सयुक्तिक हो सकता है । संभवत इसी आशयसे ग्रंथकारने अनिवृत्त्यादि तीन गुणस्थानोंको आठ कर्मोंका भोक्ता लिखा है ।

चत्वारः कर्मणां षण्णां साद्यनादिध्रुवाध्रुवाः । वेद्यस्येति विना सादिं त्रयोऽनादिध्रुवाध्रुवाः ॥ १०६ ॥
साद्यध्रुवौ मतो व्यवायुषो द्वावनन्यकैः । चत्वारोऽपीति ते ज्ञेया उत्तरप्रकृतिष्वपि ॥ १०७ ॥
कषायाः षोडश ज्ञानदर्शनान्तराययोर्दश । उपघातो जुगुप्सा भीर्दर्शनावरणे नव ॥ १०८ ॥
मिथ्यात्वागुरुलघ्वाह्व निर्मिद्वर्णचतुष्टयम् । तैजसं कार्मणं सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवा मताः ॥ १०९ ॥
आसां भवंति चत्वारः साद्यनादिध्रुवाध्रुवाः । साद्यध्रुवा मताः शेषास्तथा सपरिवृत्तयः ॥ ११० ॥
आहारकद्वयं तीर्थकृत्वमायुश्चतुष्टयम् । परघातातपोद्योतोच्छ्वासाः शेषा इमा मताः ॥ १११ ॥
इति निष्प्रतिपक्षाः ११ ।

आठमेंसे आयु और वेदनीयके शिवाय शेष छह कर्मोंमें सादि अनादि ध्रुव अध्रुव-ये चार चार भेद समव हैं । वेदनीयमें एक सादि भेदको छोडकर शेष-अनादि ध्रुव अध्रुव-ये तीन भेद रहते हैं । कर्मका नाश करनेवाले सर्वज्ञने आयु कर्ममें सादि और अध्रुव ये दो भेद बताये हैं । इसी प्रकारके कथनानुसार उत्तर प्रकृतियोंमें भी इन सादि आदि चार भेदोंकी व्यवस्था है । उसको आगे बताते हैं । १०६-१०७ ॥

सोलह कषाय, ज्ञानावरण अंतरायकी पाच पाच करके दश प्रकृति, उपघात, जुगुप्सा, भय, दर्शनावरणकी नौ, मिथ्यात्व, अगुरुलघु, निर्माण, वर्णादि चार, तैजस शरीर, कार्मणशरीर-ये सैंतालीस प्रकृति ध्रुव हैं । १०८—१०९ ।

इन ऊपरकी सैंतालीस ध्रुव प्रकृतियोंमें सादि अनादि ध्रुव अध्रुव-ये चारो भेद मिलते हैं । और शेष प्रकृति सादि और अध्रुव होती हैं तथा परिवर्तनवाली भी शेष प्रकृति कहाती हैं । शेष कौनसी, सो आगे बताते हैं । ११० ।

आहारक दो, तीर्थंकरत्व, चार आयु, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास-ये ग्यारह शेष प्रकृति समझनी चाहिये । ये ही प्रकृति परिवर्तनरहित अथवा प्रतिपक्षरहित निष्प्रतिपक्ष समझनी चाहिए । १११ ।

गोत्रे संस्थानसंहृत्योः षट्के हास्यचतुष्टयम् । वैक्रियिकद्वय वेद्ये गतयो द्वे नभोगती ॥ ११२ ॥

चतुष्कमानुपूर्वीणां दश युग्मानि जातयः । औदारिकद्वय वेदा ज्ञेयाः सपरिवृत्तयः ॥ ११३ ॥

सप्रतिपक्षा इत्यर्थः । ६२ ।

जिनैः स्थानानि चत्वारि भुजाकारास्त्रयस्त्रयः । बंधे चाल्पतराः प्रोक्ताश्चत्वारोऽप्यवस्थिताः ॥ ११४ ॥

बंधस्थानानि ८ । ७ । ६ । १ । भुजाकारा १,६ । ६,७ । ७,८ । अल्पतरा ६,१ । ७,६ । ८,७ । अवस्थिता ८,८ । ७,७ । ६,६ । १ १ ।

दर्शनावरणे त्रीणि स्थानानि दश मोहने । नाम्नोऽष्टौ भुजाकारा शेषेषु स्थानमेककम्[1] ॥ ११५ ॥

स्थानानि नवकं षट्कं चतुष्कं त्रीणि दृग्रुधि । भुजाकारोऽत्र वाच्योऽल्पतरोऽवस्थितको बुधैः ॥ ११६ ॥

दो गोत्र, छह संस्थान, छह संहनन, हास्य रति अरति शोक—ये हास्यादि चार, वैक्रियिक दो, वेदनीय दो, चार गति, प्रशस्त अप्रशस्त दो विहायोगति, चार आनुपूर्वी, त्रसस्थावरादि दश युगल अर्थात् बीस, पांच जाति, औदारिक दो, तीन वेद—इतनी (६२) प्रकृति परिवर्तनशील अथवा सप्रतिपक्ष हैं। ११२—११३ ।

आठ ही कर्मोंमें स्थान चार है, भुजाकार तीन हैं, अल्पतर बंध तीन हैं और अवस्थित बंध चार हैं ।११४।

बंधस्थान—(८।७।६।१) ये चार हैं । भुजाकार तीन—(१,६।६,७।७,८)—ये हैं । अल्पतर—(६,१।७,६।८,७)—ये तीन हैं । अवस्थित—(८,८।७,७।६,६।१,१)—ये चार है ।

दर्शनावरणमें तीन स्थान हैं, मोहमें दश स्थान हैं, नाममें आठ भुजाकार हैं, शेषमें एक स्थान है ।११५।

दर्शनावरणमें तीन स्थान—एक नौका, दूसरा छहका, तीसरा चारका—इस प्रकार है । इसमें भुजाकार, अल्पतर तथा अवस्थित ये तीन भेद भी कहलेने चाहिये । ११६ ।

---

१ 'शेषेषु पंच कर्मसु' ऐसा हस्तलिखित प्रतिमें पाठ है ।

॥२५३॥

वंधस्थानानि ९ । ६ । ४ । भुजाकाराल्पतरौ ४, ६। ६, ९। ६, ४। ९, ६ । अवस्थिता ९, ९। ६, ६। ४, ४ ।
नवक सकलाः पट्कं स्त्यानगृद्धित्रय विना । चतुष्क प्रचलानिद्राहीनाः स्थानेष्विति त्रिषु ॥ ११७ ॥
९ । ६ । ४ ॥

द्वावाद्यौ नव, मिश्राद्या पट् पड् वध्नति दृग्रुधि । अपूर्वान्ताश्चतस्रोऽत्रापूर्वाद्याः सूक्ष्मपश्चिमाः ॥ ११८ ॥
९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । अपूर्वप्रथमसप्तमभागे ६ । अपूर्वद्वितीयसप्तमभागादारभ्य यावत्सूक्ष्मं ४ ।

द्व्येकाग्रे विंशती सप्तदश वधे त्रयोदश । नव पच चतुष्कत्रिद्व्येकस्थानानि मोहने ॥ ११९ ॥
२२ । २१ । १७ । १३ । ९ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

बधस्थान–९।६।४। भुजाकार तथा अल्पतर–४,६।६,९।६,४।९,६।–ये हैं। अवस्थित इस प्रकार हैं–९,९।६,६।४,४। तीन स्थानोंमेंसे नौका स्थान, संपूर्ण दर्शनावरणका है। छहका स्थान स्त्यानगृद्धि, प्रचलाप्रचला, निद्रानिद्रा–इन तीनको छोड़कर है। चारका स्थान, प्रचला तथा निद्राको भी छोड़नेपर होता है। ११७।

आदिके दो गुणस्थानोंमें नौ नौ दर्शनावरणका बध होता है। मिश्र तीसरेसे आठवेंके प्रथम सप्तमभाग पर्यंत छह गुणस्थान छह छह दर्शनावरणोंको बाधते हैं। अपूर्वके द्वितीय सप्तमभागसे लेकर दशवें गुणस्थानके अंत पर्यंत तीन गुणस्थान, चार चार दर्शनावरणोंको बांधते हैं। अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें इसके भाग सात माने हैं ॥ ११८ ॥

९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । अपूर्वके प्रथम सप्तमभागमें ६ । अपूर्वके द्वितीय सप्तमभागसे अततक तथा नौवें, दशवें–इन तीनमें ४ । ४ । ४ ॥

मोहके दश बधस्थान– एक बाईस प्रकृतिका, दूसरा इक्कीसका, तीसरा सत्रहका, चौथा तेरहका, पाचवा नौका, छठा पांचका, सातवां चारका, आठवां तीनका, नौवां दोका, दशवा एकका–इस प्रकार क्रमसे है। ॥ ११९ ॥

द्वाविंशतिः समिथ्यात्वा कषाया षोडशैकक: । वेदो हास्यादिकेष्वेक युग्मं भयजुगुप्सने ॥ १२० ॥
१ । १६ । १ । २ । १ । १ । मीलिता २२ ।
एषादिमे द्वितीये सा निर्मिथ्यात्वनपुंसका । न्यूनाऽनंतानुबंधिस्त्रीवेदैर्मिश्रेऽव्रते तथा ॥ १२१ ॥
हीना द्वितीयकोपाद्यैर्देशे षष्ठे तृतीयकैः । सप्तमाष्टमयोर्ज्ञेया शोकारतिविनाकृता ॥ १२२ ॥
मिथ्यादृष्टौ २२ । प्रस्तार । २ । भगा ६ । शासने २१ । भगा ४ । मिश्रासंयतयो १७ । भगा २ ।

मिथ्यादृष्टौ	शासने	मिश्रे	असयते	देशे १३ ।	प्रमत्ते ९ ।	अप्रमत्तापूर्वयो ९ ।
				२ (भगौ)	२ (भंगौ)	२ (भग) १
२	२	२	२	२।२ २	२।२ २	२
२।२	२।२	२।२	२।२	१	१	१
१।१।१	१।१	१	१	८	४	४
१६	१६	१२	१२			
१						

एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, वेद एक, हास्यादि दो युगलोमेंसे एक युगल अर्थात् दो, भय एक, जुगुप्सा एक—इस प्रकार मिलकर बाईस मोहका एक स्थान है । १२० ॥

यह बाईसकी सख्या आदिके मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती है । दूसरे सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्व नहीं रहता इसलिये इक्कीसकी सख्या है । और सासादनमें नपुंसक वेद भी नहीं होता है—इस कारण सासादनके भंग कम हो जाते हैं । मिश्र तथा अव्रतमें अनतानुबधीकी चार सख्या और भी घट जाती है इसलिये तीसरे, चौथे गुणस्थानोंमें सत्रहकी संख्या रहती है । और यहा स्त्री वेद कम हो जाता है । इस कारण तीसरे चौथे गुणस्थानमें हास्यादि युगलके कारण भग दो दो ही रह जाते हैं । १२१ ।

देशसंयत पाचवें गुणस्थानमें दूसरे अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय कम हो जाते हैं इसलिये मोह प्रकृति तेरह रह जाती हैं । छठे गुणस्थानमें तीसरे प्रत्याख्यानावरण चार कषाय भी घट जाते हैं इसलिये मोहप्रकृति नौ रह जाती हैं । सातवें आठवेंमें भी मोहप्रकृति नौ नौ ही रहती हैं । परतु यहा शोक अरति ये दो नहीं रहती इसलिये भग अधिक नहीं होते हैं । १२२ ।

मिथ्यादृष्टिमें २२ मोहप्रकृति हैं, प्रस्तार २ होते हैं, और भग छह होते हैं । सासादनमें इक्कीस मोहप्रकृति हैं, भग

सन्ति पुंवेदसंज्वालाः सज्वाला नवमे क्रमात् । विनैकद्वित्रिभिर्बन्धे पंच स्थानानि मोहने ॥ १२३ ॥
५ । ४ । ३ । २ । १ ।

षट् स्युर्द्वाविंशतेर्भङ्गाश्चत्वारस्त्वेकविंशतेः । स्थानत्रये ततो द्वौ द्वावेकोऽतो मोहबन्धने ॥ १२४ ॥
६ । ४ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ ।

एषामानयनमाह,—

अभ्यस्ते युग्मयुग्मेन वेदानां त्रितये सति । भङ्गा द्वाविंशतेर्बन्धे मिथ्यादृष्टे षडीरिता । ६ ॥ १२५ ॥

चार हैं । मिश्र तथा असयतमें प्रकृति सत्रह सत्रह हैं, भंग दो दो हैं । देश सयतमें प्रकृति १३, भग दो हैं । छट्ठे गुणस्थानमें प्रकृति ९, भग दो हैं । सातवें आठवें गुणस्थानोंमें भी प्रकृति नौ हैं, परतु भग एक ही है । ऊपरके यत्रपरसे देखेसे खुलासा होता है ।

नौवें गुणस्थानमें मोहके पाच स्थान हैं । प्रथम स्थान पुरुषवेद तथा चार सज्वलनका । दूसरा स्थान केवल चार सज्वलनका । तीसरा स्थान एक सज्वलन कम होजानेसे तीन संज्वलनका । चौथा स्थान दो सज्वलन कम हो जानेसे दो सज्वलनका । पांचवां स्थान तीन सज्वलन कम हो जानेसे एक सज्वलन मोहका । ५ । ४ । ३ । २ । १ ॥ १२३ ॥

बाईस मोहप्रकृतिस्थानके भंग छह होते हैं । इक्कीस मोहप्रकृतिवाले स्थानके भग चार होते हैं । इसके आगेके मोहप्रकृतिके तीन स्थानोंमें भंग दो दो होते हैं । उसके आगे एक एक भग है (६।४।२।२।२।२।१।१।१।१) । १२४ ।

उन भंगोंको सिद्ध करनेकेलिये आगे गणित करके दिखाते हैं । हास्यादि चारके दो युगल इसमें क्रमसे होते हैं । अर्थात् कभी एक युगल होता है, कभी दूसरा युगल होता है । और वेद तीनमेंसे कभी कोई, कभी कोई एक एक वेद होता है । इसलिये दो चारके युगलको वेदत्रयसे गुणित करें तो छह लब्ध सख्या आती है । इस प्रकार बाईसके बधमें छह भग हो जाते हैं । कषाय सोलह प्रत्येक भगमें एकसे रहते हैं इसलिये कषायसख्यासे कोई अधिक भग नहीं होता । १२५ ।

।२५६।।

विना पण्ढ हते द्वाभ्यां वेदाभ्या युगलद्वये । सन्त्येकविंशतेर्बन्धे चत्वारः शामने तु ते । ४ ॥ १२६ ॥
मिश्रासयतयो सप्तदशबधविधायिनोः । सयतासयतस्थस्य त्रयोदशकबंधिनः ॥ १२७ ॥
प्रमत्तस्य च विज्ञेय नवबधविधायिनः । युगभगद्वयं प्राज्ञैर्बंधस्थानत्रये स्फुटम् । २ ॥ १२८ ॥
अप्रमत्तो यतोऽपूर्वः शोकारत्योरबधकौ । एकैकोऽतस्तयोर्भङ्गो विज्ञेयो नवबधिनो ॥ १२९ ॥
एकद्वित्रिचतु पचबधके चानिवृत्तिके । एकैक कथितो भंगो बधस्थानेषु पचसु ॥ १३० ॥
५।४।३।२।१। एकैको भगः १।१।१।१।१।
मोहनीयभुजाकारा विंशतिर्गदिता बुधै । बधा एकादशैतस्मिन् क्रमादल्पतराः पुनः ॥ १३१ ॥
द्वावव्यक्तौ मतौ बधौ त्रयस्त्रिंशदवस्थिता । चतुर्विधेति विज्ञेया मोहे बधप्ररूपणा ॥ १३२ ॥

सासादनमे नपुंसक वेद नहीं रहता—दो ही वेद रहते हैं । इसलिये हास्यादिके युगलको वेद दोसे गुणित करनेपर सासादनमें इक्कीस प्रकृतिके बधमें चार भंग हो जाते हैं । १२६ ।

सत्रह प्रकृतिके बध वाला मिश्रमें तथा असंयतमें एक स्थान है । सयतासंयत अथवा देशसंयतमें तेरहका एक बंध-स्थान है । प्रमत्त-छट्ठेमें नौ प्रकृतिके बंधका एक स्थान है । इन तीनो स्थानोंमें हास्यादि दो युगलके जुदे जुदे रहनेसे दो दो भग हो जाते हैं । १२७–१२८ ।

अप्रमत्त सातवें और अपूर्व आठवें—इन दो गुणस्थानोंमें शोक तथा अरतिका बध नहीं होता, इसलिये यद्यपि हास्य रति रहनेसे इन दोनोंमें बंध नौ मोहप्रकृतिका ही होता है परतु भग एक एक ही दोनोंमें रहता है । अधिक भग होनेके कारण परस्पर बंधविरुद्ध कोई अधिक प्रकृति यहां शेष नहीं रही है । १२९ ।

एक, दो, तीन, चार तथा पांच प्रकृतिवाले अनिवृत्तिके पांच बंधस्थानोंमें प्रत्येकका एक एक ही भंग होता है।१३०।

मोहनीयके भुजाकार बीस बताये गये हैं और क्रमसे अल्पतर इस मोहमें ग्यारह होते हैं । दो अव्यक्त बध हैं और तेतीस अवस्थित बंध हैं । इस प्रकार मोहमें चार प्रकारसे बंधकी प्ररूपणा है । यंत्र आगे दिया है ।१३१-१३२।

२०।१।१।२।३३। भुजाकाराः—

१	२	३	४	५	९	१३	१७	२१	२१	२२
२	३	४	५	९	१३	१७	२१	२२	२२	
१७	१७	१७	१७	१७	१७	२१	२२			

अल्पतरा —

२२	१७	१३	९	५	४	३	२
१७	१३	९	५	४	३	२	१
१३	९	५					

एक बन्धनधो गत्वा बध्नाति प्रकृतिद्वयम् । तत्र मृत्वाऽपरो भूत्वा जीव सप्तदशार्जति ॥ १३३ ॥
सर्वत्रेत्युच्चारणा कार्या ।
अव्यक्त' कथ्यते—
सूक्ष्मोपशमकोऽधस्तादवतीर्यानिवृत्तिक । भूत्वा स्वीकुरुते कश्चिदेकां प्रकृतिमग्रवान् ॥ १३४ ॥

उपशम श्रेणीसे उतरने वाला जीव यदि मरण करे तो देवगतिको जाता है ऐसा नियम है। उसको लक्ष्यमें लाकर भुजा-कारका उदाहरण देते हैं कि–दशवेंमें अथवा नौवें गुणस्थानके अंतिम भागमें मोहकी एक प्रकृतिको बाधता हुआ जीव नीचे आवे तो फिर मोहकी दो प्रकृतियोंको बाधता है । और वहांपर मर कर देव होकर, जीव फिर सत्रह मोह प्रकृतियोंको बांधता है । यह एक भुजाकार हुआ । पहिले कमती प्रकृतियोंको बांधे फिर अधिक प्रकृतियोंको बांधे इसका नाम भुजाकार है। इसी प्रकार यन्त्रके दूसरे भुजाकारोंको समझना । १३३ ।

अव्यक्तको खुलासा करते हैं ।–सूक्ष्म–सांपरायका उपशम श्रेणी वाला जीव नीचे गिरकर अनिवृत्ति–नौवा गुणस्थान पाकर किसी एक प्रकृतिको स्वीकार करता है । अथवा कोई सूक्ष्म उपशमक जीव मरकर देव होकर सत्रह प्रकृतियोंको बाधने

॥२५८॥

सूक्ष्मोपशमको मृत्वा देवभूय गतोऽथवा । बध्नाति प्रकृतीर्जीव कश्चित्सप्तदश स्फुटम् ॥ १३५ ॥

अव्यक्तभुजाकारौ शून्यत· ०।१–१७ इति द्वौ ।

क्रमतोऽत्र भुजाकाराऽल्पतराव्यक्ताख्यबन्धसंक्षेपे । सद्भिरवस्थितसंज्ञा बन्धविशेषा विबोद्धव्या ॥ १३६ ॥

भुजाकारा २० । अल्पतरा ११ । अव्यक्तौ द्वौ २ । संक्षेप. ३३ ।

स्यात्त्रिभिर्विंशति पचपडष्टनवभि क्रमात् । दशैकादशभिर्युक्ता स्थानमेक च नामनि ॥ १३७ ॥

२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ।

क्रमेण गतियुक्तानि श्वभ्रतिर्यङ्नृनाकिनाम् । एकपचत्रिपचाहुर्बन्धस्थानानि नामनि ॥ १३८ ॥

१ । ५ । ३ । ५ ।

लगता है । ये अव्यक्त, भुजाकार दो हैं । यहां शून्यसे अथवा एक प्रकृतिसे सत्रह प्रकृतियोंको बाधा जाता है (० । १– १७) । १३४–१३५ ।

यहापर क्रमसे भुजाकार, अल्पतर, अव्यक्त दो इन सबके भेद तेतीस होते हैं । इनमें अवस्थित नामभेदको भी देख लेना चाहिये । १३६ ।

भुजाकार २०, अल्पतर ११, अव्यक्त २–मिलकर सर्व ३३ हुए ।

अब नामकर्मके स्थानादिको दिखाते हैं । नाम कर्ममें तीन अधिक वीसका अर्थात् तेईसका एक स्थान है । दूसरा पांच अधिक वीस–पच्चीसका स्थान है । तीसरा छह अधिक वीस–छब्बीसका स्थान है । चौथा आठ अधिक वीस–अट्ठाईसका एक स्थान है । पाचवा नौ अधिक वीस–उन्तीसका एक स्थान है । छट्ठा दश अधिक वीस–तीसका एक स्थान है । सातवा ग्यारह अधिक वीस अर्थात् इकतीसका स्थान है आठवा एक प्रकृतिका स्थान है । १३७ ।

नरकगति, तिर्यंचगति मनुष्यगति, देवगति–इन कर्मोंको बाधनेवालोंके क्रमसे एक स्थान, पाच स्थान, तीन स्थान तथा पाच स्थान नाम कर्मके होते हैं । १३८ ।

तत्र श्वभ्रद्वय हुडं निर्माणं दुर्भगास्थिरे। पचेन्द्रियमनादेयमयशो दुःस्वराशुभे ॥ १३९ ॥
तेजो वैक्रियिकद्वन्द्वं कार्मणासन्नभोगती। वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ १४० ॥
इत्यष्टाविंशतिस्थानमेक मिथ्यात्ववाहिनः। युक्तं श्वभ्रगतिपचाक्षपूर्णैर्बध्नति जन्तवः ॥ १४१ ॥ भगः। १
एकाक्षविकलाक्षाणा बध्यन्ते नात्र जातयः। श्वभ्रगत्या सम तासा सर्वदा वृत्त्यभावतः ॥ १४२ ॥
दशभिर्नवभिः षड्भिः पंचभिर्विंशतिस्त्रिभिः। युक्तस्थानानि पंचेति तिर्यग्गतियुतानि वै ॥ १४३ ॥
३० । २९ । २६ । २५ । २३ ।
तत्र सहतिसस्थानषट्कस्यैकतरद्वयम्। नभोगतियुगस्यैकतरमौदारिकद्वयम् ॥ १४४ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम्। स्थिरादिषड्युग्मेष्वेकतर पचाक्षनिर्मिती ॥ १४५ ॥

प्रथम नरकगतिके स्थानका खुलासा करते हैं।— नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी—ये दो कर्मप्रकृति, हुडक सस्थान, निर्माण, दुर्भग, अस्थिर, पचेंद्रिय जाति, अनादेय, अयशःकीर्ति, दुस्वर, अशुभ, तैजस काय, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिकागोपाग-युगल, कार्मण काय, अप्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार—इन अट्ठाईस नामकर्मकी प्रकृतियोंको मिथ्यादृष्टि जीव वे बाधते है जो पचेंद्रिय, पर्याप्तक तथा नरकगतिको बाधनेवाले हैं। इसमें भग एक ही है। १३९–१४१।

एकेंद्रिय तथा विकलेंद्रिय—ये चार जाति कर्म यहा बाधे नहीं जाते। क्योंकि नरक गति कर्मके साथ इन चार जाति कर्मोंका उदय कभी नहीं होता है ॥ १४२ ॥

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका, उन्तीस प्रकृतियोंका, छब्बीस प्रकृतियोंका, पचीस प्रकृतियोंका, तेईस प्रकृतियोंका—ये पाच स्थान तिर्यंच गतिके साथ होते हैं ॥ १४३ ॥

इनमेंसे तीस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं।—छह सस्थानमेंसे एक कोई, छह सहननमेंसे एक कोई—ये दो हुए। दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, औदारिकद्वय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, स्थिरादि छह युगलोंमेंसे एक एक ऐसे छह, पचेंद्रिय जाति, निर्माण, तैजस, कार्मण, तिर्यंगति—तिर्यगत्यानुपूर्वी ये दो, उद्योत—ये सर्व तीस प्रकृति होती हैं। इनको

॥२६०॥

तैजस कार्मणं तिर्यग्द्वयमुद्योतमादिमम् । पचाक्षोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥ १४६ ॥

मिथ्यादृष्टि प्रबध्नाति त्रिंशत शासनोऽपि च । एतां द्वितीयकां हुंडासंप्राप्तापाकृतां पराम् ॥ १४७ ॥

तत्र प्रथमत्रिंशति षट्संस्थानषट्संहननविहायोगतियुगलस्थिरादिषड्युगलानि । ६ । ६ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः । ४६०८ ।

द्वितीयत्रिंशति शासनेऽतिमसंस्थानसंहनने बंधं न गच्छतस्तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् । अतः–५ । ५ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भगाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टाः पुनरुक्ता इति न गृह्यन्ते ।

परा त्रिंशत् तृतीयेयं तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तैजसौदारिकद्वन्द्वे हुंडासंप्राप्तदुर्भगम् ॥ १४८ ॥

वह मिथ्यादृष्टि बाधता है जो पचेंद्रिय, उद्योत, पर्याप्ति तथा तिर्यंच गति–इन चार प्रकृतियोंको बाधनेवाला है । सासादन गुणस्थानवर्ती भी इन तीस प्रकृतियोंको बाधता है परंतु वह हुंडक सस्थानको तथा असंप्राप्तासृपाटिका संहननको नहीं बाधता इसलिये यह दूसरा तीसका भग है और मिथ्यादृष्टिका तीस प्रकृतिवाला प्रथम भंग है । १४४–१४७ ।

पहिली तीस प्रकृतियोंमें छह सस्थान, छह सहनन, विहायोगतिका एक युगल और स्थिरादि छहके छह युगल ६×६×२×२×२×२×२×२×२= ४६०८ ये सर्व परस्परमें गुणित होनेपर ४६०८ भग हो जाते हैं ।

सासादनमें जो तीस प्रकृतियोंका बंध होता है उस समय अतिम संस्थानका तथा अतिम सहननका बध नहीं होता, क्योंकि, इन दो कर्मोंको बाधने योग्य तीव्र संक्लेश परिणाम सासादन गुणस्थानमें नहीं हो पाते हैं । इसलिये–५–५–२–२–२–२–२–२–२ इन संख्याओंको परस्पर गुणनेसे ३२०० भग होजाते हैं । परतु इन ३२०० का पूर्वके भंगोंमें समावेश होजाता है इसलिये ये जुदे नहीं गिनाये हैं ।

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका तीसरा एक स्थान इस प्रकार है–तिर्यंगति दो, कार्मण, तैजस, औदारिक दो, हुडक सस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका सहनन, दुर्भग, त्रसादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, विकल तीन जातियोंमेंसे एक,

तत्र श्वभ्रद्वय हुडं निर्माणं दुर्भगास्थिरे । पचेन्द्रियमनादेयमयशो दु स्वराशुभे ॥ १३९ ॥
तेजो वैक्रियिकद्वन्द्वं कार्मणासन्नभोगती । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ १४० ॥
इत्यष्टाविंशतिस्थानमेक मिथ्यात्ववाहिनः । युक्तं श्वभ्रगतिपचाक्षपूर्णैर्बध्नति जन्तवः ॥ १४१ ॥ भगः । १
एकाक्षविकलाक्षाणा वध्यन्ते नात्र जातय । श्वभ्रगत्या सम तासां सर्वदा वृत्त्यभावत ॥ १४२ ॥
दशभिर्नवभिः षड्भिः पंचभिर्विंशतिस्त्रिभिः । युक्तस्थानानि पचेति तिर्यग्गतियुतानि वै ॥ १४३ ॥
३० । २९ । २६ । २५ । २३ ।
तत्र सहतिसस्थानषट्कस्यैकतरद्वयम् । नभोगतियुगस्यैकतरमौदारिकद्वयम् ॥ १४४ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् । स्थिरादिषड्युग्मेष्वेकतर पंचाक्षनिर्मितो ॥ १४५ ॥

प्रथम नरकगतिके स्थानका खुलासा करते हैं ।— नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी—ये दो कर्मप्रकृति, हुडक सस्थान, निर्माण, दुर्भग, अस्थिर, पचेंद्रिय जाति, अनादेय, अयशःकीर्ति, दु स्वर, अशुभ, तैजस काय, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिकांगोपाग—युगल, कार्मण काय, अप्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार—इन अट्ठाईस नामकर्मकी प्रकृतियोंको मिथ्यादृष्टि जीव वे बाधते है जो पचेंद्रिय, पर्याप्तक तथा नरकगतिको बाधनेवाले हैं । इसमें भग एक ही है । १३९-१४१ ।

एकेंद्रिय तथा विकलेंद्रिय—ये चार जाति कर्म यहा बाधे नहीं जाते । क्योंकि नरक गति कर्मके साथ इन चार जाति कर्मोंका उदय कभी नहीं होता है ॥ १४२ ॥

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका, उन्तीस प्रकृतियोंका, छब्बीस प्रकृतियोंका, पचीस प्रकृतियोंका, तेईस प्रकृतियोंका—ये पाच स्थान तिर्यंच गतिके साथ होते हैं ॥ १४३ ॥

इनमेंसे तीस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं ।—छह सस्थानमेंसे एक कोई, छह सहननमेंसे एक कोई—ये दो हुए । दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, औदारिकद्वय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, स्थिरादि छह युगलोंमेंसे एक एक ऐसे छह, पचेंद्रिय जाति, निर्माण, तैजस, कार्मण, तिर्यग्गति—तिर्यग्गत्यानुपूर्वी ये दो, उद्योत—ये सर्व तीस प्रकृति होती हैं । इनको

तैजसं कार्मण तिर्यग्द्वयमुद्योतमादिमम् । पचाक्षोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥ १४६ ॥

मिथ्यादृष्टि प्रबध्नाति त्रिंशत शासनोऽपि च । एतां द्वितीयकां हुडासम्प्राप्तापाकृता पराम् ॥ १४७ ॥

तत्र प्रथमत्रिंशति षट्संस्थानषट्संहनननभोगतियुगलस्थिरादिषड्युगलानि । ६ । ६ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः । ४६०८ ।

द्वितीयत्रिंशति शासनेंऽतिमसंस्थानसंहनने बंधं न गच्छतस्तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् । अतः—५ । ५ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भगाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टाः पुनरुक्ता इति न गृह्यन्ते ।

परा त्रिंशत् तृतीयेय तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तैजसौदारिकद्वन्द्वे हुडासम्प्राप्तदुर्भगम् ॥ १४८ ॥

वह मिथ्यादृष्टि बाधता है जो पचेंद्रिय, उद्योत, पर्याप्ति तथा तिर्यंच गति—इन चार प्रकृतियोंको बाधनेवाला है। सासादन गुणस्थानवर्ती भी इन तीस प्रकृतियोंको बाधता है परंतु वह हुडक सस्थानको तथा असप्राप्तासृपाटिका संहननको नहीं बाधता इसलिये यह दूसरा तीसका भग है और मिथ्यादृष्टिका तीस प्रकृतिवाला प्रथम भग है । १४४—१४७ ।

पहिली तीस प्रकृतियोंमें छह सस्थान, छह संहनन, विहायोगतिका एक युगल और स्थिरादि छहके छह युगल ६×६×२×२×२×२×२×२×२= ४६०८ ये सर्व परस्परमें गुणित होनेपर ४६०८ भग हो जाते हैं ।

सासादनमें जो तीस प्रकृतियोंका बंध होता है उस समय अतिम संस्थानका तथा अतिम संहननका बध नहीं होता, क्योंकि, इन दो कर्मोंको बांधने योग्य तीव्र सक्लेश परिणाम सासादन गुणस्थानमें नहीं हो पाते हैं। इसलिये—५—५—२—२—२—२—२—२—२ इन संख्याओंको परस्पर गुणनेसे ३२०० भग होजाते हैं। परतु इन ३२०० का पूर्वके भंगोंमें समावेश होजाता है इसलिये ये जुदे नहीं गिनाये हैं ।

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका तीसरा एक स्थान इस प्रकार है—तिर्यंगति दो, कार्मण, तैजस, औदारिक दो, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका सहनन, दुर्भग, त्रसादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, विकल तीन जातियोंमेंसे एक,

॥२६१॥

त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् । विकलेन्द्रियजात्येकतरं दु स्वरनिर्मिती ॥ १४९ ॥
यश स्थिरशुभद्वन्द्वत्रितयैकतरत्रयम् । उद्योतासन्नभोरीती अनादेय तृतीयकम् ॥ १५० ॥
विकलोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् । मिथ्यात्वकलितस्वान्तो जीवो बध्नाति दुर्मना ॥ १५१ ॥

अत्र विकलेन्द्रियाणा हुडसस्थानमेवैक, तथैतेषां बंधोदययोर्दुःस्वरमेव । इति तिस्रो जातयस्त्रीणि युगलानि ।३। २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि, भगाः । २४ ।

यथैतास्त्रिंशतस्तिस्र एकोनत्रिंशतस्तथा । विशेपोऽय पर तासु यदुद्योतो न बध्यते ॥ १५२ ॥
एतासु पूर्वोक्ता भगाः ४६०८ । २४ ।

दु.स्वर, निर्माण, यश कीर्ति—स्थिर-शुभ- इन तीन युगलोंमेंसे एक एक करके तीन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, अनादेय-इन तीसरी तीस प्रकृतियोंको मिथ्यात्वसे दूषित मनवाला वह जीव बाधता है जिसके विकलेंद्रिय जाति, उद्योत, पर्याप्ति तथा तिर्यंगति- ये चार प्रकृति बधको प्राप्त होरही हैं । अर्थात इन विकलादि चारकी अविनाभावी होकर ऊपर बताई तीस प्रकृति बधको प्राप्त होती है । १४८-१५१ ।

यहा विकलेंद्रियके साथ सस्थान हुडक ही एक रहता है और इनके साथ बध तथा उदय दु.स्वर कर्मका ही होता है । इसलिये जातिकर्म तीन तथा यश आदि तीन युगलका-३×२×२×२=परस्पर गुणन करनेसे भग २४ हो जाते हैं ।

जिस प्रकार ये तीस प्रकृतिके प्रकार तीन हैं उसी प्रकार उन्तीसका भी तिर्यंगतिका एक पाच स्थानोंमेंसे स्थान है उसके भी तीन ही प्रकार हैं, परन्तु इस उन्तीसके तीनों स्थानोंमें उद्योत नहीं रहता-यही विशेष है अथवा इसीलिये तीसके स्थानमें उन्तीस प्रकृतिसख्या है ॥ १५२ ॥

इनमें भी भग पूर्वके समान ४६०८ तथा २४ हैं ।

षड्विंशतिरियं तेजस्तिर्यग्द्वितयकार्मणे । बादरौदारिकैकाक्षहुडपर्याप्तदुर्भगाः ॥ १५३ ॥
उद्योतातपयोरेक प्रत्येक स्थावरं परम् । शुभद्वन्द्वयशोद्वन्द्वस्थिरद्वन्द्वत्रयैककम् ॥ १५४ ॥
निर्मित्यागुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् । अनादेयमितीयां च स्वीकरोति कुदर्शनः ॥ १५५ ॥
बादरैकाक्षपर्याप्ततिर्यग्गतिभिरन्विताम् । तथैकतरसयुक्तामातपोद्योतयोरपि ॥ १५६ ॥
अत्राष्टागाभावादेकेन्द्रियस्याङ्गोपाङ्ग नास्ति । सस्थानमप्येकं हुडमेव, यस्मात्तस्मादातपोद्योतास्थिरस्थिरशुभाशुभयशोऽयशोयुगानि । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः १६ ।
षड्विंशतिरियं तस्य जायते पञ्चविंशति । निरुद्योतातपा सूक्ष्मप्रत्येकद्वित यैकयुक् ॥ १५७ ॥

नामकर्मका एक छब्बीस प्रकृतिका स्थान है, उसे गिनाकर दिखाते हैं।— तैजस, कार्मण, तिर्यग्गतिद्विय, बादर, औदारिक, एकेंद्रिय, हुडक, पर्याप्त, दुर्भग, उद्योत तथा आतप—इन दोमेंसे कोई एक, प्रत्येक, स्थावर, शुभयुगलमेंका एक, यश - कीर्ति युगलमेंका एक, स्थिर युगलमेंका एक, निर्माण, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, अनादेय—इन छब्बीस प्रकृतियोंको मिथ्या-दृष्टि बांधता है। बादर, एकेंद्रिय, पर्याप्त, तिर्यग्गति—ये चार तथा आतप उद्योतमेंसे एक—इन पांच प्रकृतियोंके साथ ही ऊपरकी छब्बीस प्रकृतिका बंध होता है ऐसा नियम है। १५३—१५६।

यहांपर औदारिक शरीरकी अगोपांग प्रकृति नहीं गिनाई है। इसका कारण यह है कि एकेंद्रियकें आठ अगरूप रचना नहीं होती इसलिये वहां अगोपाग कर्मका समव नहीं है। सस्थान भी एकेंद्रियके एक हुडक ही है। इस लिये यहा आतप उद्योतके युगलको, अस्थिर—स्थिरके युगलको, शुभाशुभके युगलको, और यशःकीर्ति—अयशःकीर्तिके युगलको—इन चार युगलोंको परस्पर गुणित करनेसे छब्बीसके भग १६ हो जाते हैं २×२×२×२=१६ ।

आतप—उद्योतमेंसे एकका भी बंध न हो तो छब्बीसके स्थानमें पच्चीस प्रकृतिका स्थान बन जाता है। परतु पच्चीस प्रकृतिवाला सूक्ष्म बादर—इस युगलमेंसे किसी भी एकको बांधता है, एव प्रत्येक साधारण—इस युगलमेंसे भी किसी भी एकको

त्रयोविंशतिरपात्र तेजस्तिर्यग्द्वयाशुभे । कार्मणौदारिके हुडमयशो वर्णचतुष्टयम् ॥ १६१ ॥
एकाक्षागुरुलघ्वाह्वे दुर्भग स्थावरास्थिरे । उपघातमनादेयमपर्याप्तकनिर्मिती ॥ १६२ ॥
सूक्ष्मप्रत्येकयुग्मैकतरे मिथ्यात्वदूषितः । बध्नात्यपूर्णकैकाक्षतिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥ १६३ ॥

अत्र संहननबन्धो नास्ति, एकाक्षेषु संहननोदयाभावात् । ततः सूक्ष्मबादरयोः प्रत्येकसाधारणाभ्यामभ्यासे चत्वारो भगाः ४ । इत्थ तिर्यग्गतियुक्ताः सर्वे भगाः ९३०८ ।

विंशतिर्दशभिर्युक्ता नवभिः पचभिः क्रमात् । नृगत्यां त्रीणि जायते बंधस्थानानि नामनि ॥ १६४ ॥
३० । २९ । २५ ।

होता, क्योंकि, ये परस्पर विरुद्ध हैं और अपर्याप्त अवस्थावाले जीवके अपर्याप्त कालमें इनका उदय भी नहीं होता । इसलिये यहां चार जातिकर्मोंके द्वारा चार ही भंग होते हैं (४)।

अब तेईस प्रकृतिके स्थानको दिखाते हैं ।—तैजस, तिर्यग्गति दो, अशुभ, कार्मण, औदारिक, हुडक, अयशःकीर्ति, वर्णादि चार, एकेंद्रिय, अगुरुलघु, दुर्भग, स्थावर, अस्थिर, उपघात, अनादेय, अपर्याप्त, निर्माण, सूक्ष्मयुगलका एक, प्रत्येक युगलका एक—इन तेईसको अपर्याप्तक, एकेंद्रिय, तिर्यगति—इन तीन कर्मोंको बांधनेवाला ही मिथ्यादृष्टि बांधता है ॥ १६१ । १६३ ॥

यहां संहननका बंध नहीं है, क्योंकि, एकेन्द्रियमें संहननका उदय नहीं होता । इसलिये यहां सूक्ष्म बादरके युगलका प्रत्येक- साधारणके युगलसे गुणन करनेपर चार भंग होते हैं । इस प्रकार तिर्यंच गतिके सर्व भंग ९३०८ हैं ।

मनुष्यगतिमें नाम कर्मके तीस, उनतीस, पच्चीस--३०।२९।२५ ।--प्रकृतिवाले तीन स्थान हैं । १६४।

॥२६५॥

त्रिंशदेपाऽत्र पचाक्ष नृद्वयौदारिकद्वये । सुस्वर सुभगादेयमाद्ये सस्थानसहती ॥ १६५ ॥
शुभास्थिरयशोयुग्मेकेक शस्तनभोगतिः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीना चतुष्टयम् ॥ १६६ ॥
तीर्थकृत् कार्मण तेजो निर्मिद्बध्नात्यसयतः । इमा नृगतिपचाक्षपूर्णतीर्थकरैर्युता ॥ १६७ ॥
न दुर्भगमनादेय दुस्वरं याति बधता । सम्यक्त्वतीर्थकृत्त्वाभ्या सह बंधविरोधतः ॥ १६८ ॥
सुभगसुस्वरादेयानामेव यतोऽत्र बंधस्ततस्त्रीणि युगानि– २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः ८ ।
विना तीर्थकृता त्रिंशदेकोनत्रिंशदस्त्यमूम् । युक्ता मनुष्यगत्याद्यैर्बध्नीतो मिश्रनिव्रती ॥ १६९ ॥
२९ । अत्राष्टौ भगा. पुनरुक्ता. ८ ।

इन तीनोंमेसे तीस प्रकृतिके स्थानको बताते हैं ।—पचेंद्रिय जाति, मनुष्यगति द्वय, औदारिक द्वय, सुस्वर, सुभग, आदेय, प्रथम सस्थान, प्रथम सहनन, शुभद्वय–स्थिरद्वय–यश कीर्तिद्वय–इन तीन युगलोंमेसे एक एक तीन, प्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, त्रसादि चार, तीर्थकरत्व, कार्मण, तैजस, निर्माण–इन तीसका बध असयत सम्यग्दृष्टि करता है । किंतु मनुष्यगति, पचेंद्रिय जाति, पर्याप्ति तथा तीर्थकरत्व–इन चार प्रकृतियोंको नियमसे साथ बाधनेवाला ही बाधता है । १६५–१६७ ।

सम्यक्त्व तथा तीर्थकर प्रकृतिके साथ दुर्भग अनादेय दु स्वर–इन तीन प्रकृतियोंके बंधका विरोध है, इसलिये यहा ये तीन प्रकृति बाधी नहीं जाती हैं । १६८ ।

सुभग सुस्वर आदेय–इन तीनका यहा अकेला बध होता है इसलिये शेष रहे तीन युगलोंको परस्पर गुणनेसे सर्व भग ८ होते हैं ।

तीसमेंसे तीर्थकर प्रकृतिका बध जब नहीं होता तब उन्तीस प्रकृतिका स्थान हो जाता है । इस स्थानको मनुष्यगति पचेंद्रिय जाति तथा पर्याप्त इन तीन प्रकृतियोंको बाधनेवाला असयत सम्यग्दृष्टि तथा 'मिश्र गुणस्थानवाला बाधता है ।१६९।

इस उन्तीसके स्थानमें भी भग तीसके समान आठ ही हैं परतु तीसके समान होनेसे ये भग पुनरुक्त हैं ।

॥२६६॥

एकोनत्रिंशदन्येव द्वितीयैकतरैर्युता । युग्मानां सुस्वरादेयसुभगानां त्रिभिः स्फुटम् ॥ १७० ॥
एता संहतिसंस्थानषट्कैकतरसंयुताम् । सनभोगतियुग्मैकतरां बध्नाति वामदृक् ॥ १७१ ॥
२ । २ । २ । २ । २ । २ । ६ । ६ । २ । एषामन्योन्याभ्यासे भंगाः– ४६०८ ।
तृतीयापि द्वितीयेव बध्यते सास्वादर्शिना । हुंडासंप्राप्तके त्यक्त्वा तच्छेषैकतरान्विता ॥ १७२ ॥
२ । २ । २ । २ । २ । २ । ५ । ५ । २ । एषामन्योन्यवधे भंगा ३२०० । एते पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते ।
पंचविंशतिरेषात्र मनुष्यद्वयकार्मणे । हुंडासंप्राप्ततेजोभि–पंचाक्षौदारिकद्वये ॥ १७३ ॥
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्वस्थूलापर्याप्तदुर्भगम् । उपघातमनादेयं त्रसं वर्णचतुष्टयम् ॥ १७४ ॥

दूसरी तरहसे भी उन्तीस प्रकृति बांधी जाती हैं उनको आगे दिखाते हैं।—सुस्वर आदेय सुभग–इन तीन युगलोंके प्रत्येक युगलमेंसे कोई एक एक (तीन) प्रकृतिको लेकर और छह संस्थान–छह संहननमेंसे किसी एक एकको लेकर और विहायोगतिके युगलमेंसे किसी भी एकको लेकर जो उन्तीस प्रकृतिको बांधता है वह मिथ्यादृष्टि ही बांधता है। १७०—१७१ ।
उसके भंग २।२।२।२।२।२।६।६।२।=४६०८ ।

तीसरे प्रकारसे उन्तीस प्रकृति बांधी जाती हैं उनको दिखाते हैं।—तीसरी उन्तीसी दूसरीके समान ही बांधी जाती है। केवल अंतर, हुंडक संस्थान तथा असंप्राप्तासृपाटिका संहननको न बांधकर शेष पांच पांच संस्थान संहननोंमेंसे एक एकको बांधे, यह है। इसको सासादन गुणस्थानवाला बांधता है। इसके भंग (२।२।२।२।२।२।५।५।२=३२०० होते हैं। परंतु ये भंग पुनरुक्त होनेसे जुदे सम्हारे नहीं जाते, ऊपरके भंगोंमें गर्भित हो जाते हैं। १७२ ।

अब पच्चीस प्रकृतिको मनुष्यगतिमें बांधनेका स्थान दिखाते हैं।— मनुष्यगति द्वय, कार्मण, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, तैजस शरीर, पंचेंद्रिय जाति, औदारिक काय द्वय, प्रत्येक, अगुरुलघु, बादर, अपर्याप्त, दुर्भग, उपघात, अनादेय,

अयशोऽस्थिरनिर्माणमशुभं स्वीकरोत्ययम् । नृगत्यपर्याप्तपंचाक्षयुक्तां मिथ्यात्ववासितः ॥ १७५ ॥ (२५) ।
सक्लेशाद्व्यमानेन नापूर्णेन सह स्फुटम् । शुद्धाना कर्मणा बन्धः स्थिरादीनां प्रजायते ॥ १७६ ॥

यतस्ततो भगः २ । एवं मनुष्यगतेः सर्वे भंगाः ४६१७ ।

एकद्वित्रिचतुर्न्यूना द्वात्रिंशद्वदिता क्रमात् । चत्वारि देवगत्याशा निर्गन्येकं तु पंचनाम् ॥ १७७ ॥

३१ । ३० । २९ । २८ । १ ।

तत्रैकत्रिंशदाद्येयं कार्मणं त्रिदशद्वयम् । पञ्चेन्द्रियाद्यसंस्थाने तेजो वैक्रियिकद्वयम् ॥ १७८ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् । सुभगं सुस्वरं शस्तव्योमरीतिर्यशः शुभम् ॥ १७९ ॥
स्थिरमाहारकद्वन्द्वं निर्माणादेयतीर्थकृत् । अर्जयत्यप्रमत्तोऽमूमपूर्वकरणोऽपि च ॥ १८० ॥

त्रस, वर्णादि चार, अयश कीर्ति, अस्थिर, निर्माण, अशुभ–इन पच्चीस प्रकृतियोंको वह मिथ्यादृष्टि बांधता है जिसके मनुष्यगति, अपर्याप्त, पंचेंद्रिय जाति–ये प्रकृति बांधी जा चुकी हैं ।१७३–१७५।

संक्लेश परिणामोंके द्वारा अपर्याप्तक प्रकृतिके साथ जब बंध होता है तब स्थिरादि शुद्ध कर्मप्रकृतियोंका बंध नहीं होता । १७६ । इसलिये भंग यहां दो ही हैं । और सर्व भंग मनुष्यगतिके ४६१७ हैं ।

अब देवगतिके नामकर्म संबंधी स्थानोंको बताते हैं–३१, ३०, २९, २८, १–इनमेंसे पहिले चार देवगतिके साथ नामकर्मके स्थान होते हैं । और एक बंधवाला गतिरहित है । १७७ ।

इन पांचो भेदोंमेंसे इकतीसका प्रथम स्थान बताते हैं।–कार्मण, देवगति द्वय, पंचेंद्रिय, आदिका संस्थान तैजस, वैक्रियिक द्वय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, सुभग, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, यश कीर्ति, शुभ, स्थिर, आहारक द्वय, निर्माण, आदेय, तीर्थकरत्व–इन इकतीस प्रकृतिको सातवें गुणस्थानका तथा अपूर्व करण–आठवें गुणस्थानका जीव बांधता है । १७८–१८० ।

तीर्थकर्तृत्वपर्याप्तपचाक्षाहारकद्वयैः । एकत्रिंशदिय युक्ता स्थान देवगतौ मतम् ॥ १८१ ॥
देवगत्या सम बधः संहतेर्नात्र जायते । उदयाभावतस्तस्या यतो देवेषु सर्वदा ॥ १८२ ॥ ततो भंगः १ ।
एकत्रिंशदिय त्रिंशत्त्यक्ता तीर्थकृता भवेत् । जायेते सयतौ तस्या बंधकौ सप्तमाष्टमौ ॥ १८३ ॥
न बंधोऽत्रास्थिरादीनां यतः सक्लेशभाविनाम् । विशुद्ध्या सममेतेषा सदा बंधविरोधतः ॥ १८४ ॥ ततो भंगः २ ।
एकत्रिंशद्भवत्यत्र निरस्ताहारकद्वया । एकोनत्रिंशदाद्यैषा बध्यते सप्तमाष्टमैः ॥ १८५ ॥ भगः १ ।
एकोनत्रिंशदन्यैव बध्यतेऽस्या पर त्रिभिः । यशःशुभस्थिरद्वन्द्वेष्वेकैकं निर्व्रतादिभिः ॥ १८६ ॥

तीर्थकरत्व, पर्याप्तता, पचेंद्रिय, तथा आहारकद्वय-इन पांच प्रकृतियोंके साथ इस इकतीसीको बांधनेका देवगतिमें एक स्थान है । देवगति प्रकृतिके साथ संहननोंका बध नहीं होता, क्योंकि, सहननोंका देवोंमें कभी उदय ही नहीं होता । इसका भंग एक ही है । १८१-१८२ ।

तीर्थकर प्रकृति यदि न बांधी जायं तो इकतीसके स्थानमें तीसकी संख्या हो जाती है । इसके भी बांधनेवाले सातवें आठवें गुणस्थानवर्ती दोनो सयमी ही होते हैं । विशुद्ध परिणामोंसे बाधी जानेवाली इन प्रकृतियोंके साथ सक्लिष्ट परिणामोंसे बँधने योग्य अस्थिरादि प्रकृतियोंका बध नहीं होता है । क्योंकि, इनका परस्परमें विरोध है । अतएव भग यहापर दोनो गुण-स्थानका एक एक ही है । १८३-१८४ ।

इकतीसमेंसे यदि आहारक द्वयका बध न हो तो वह उन्तीस प्रकृतिका स्थान हो जाता है । यह उन्तीसका प्रथम स्थान है । इसको भी सातवें आठवें गुणस्थानवाले ही बाधते है । इसका भग एक ही है ॥ १८५ ॥

उन्तीसका दूसरा एक स्थान है । इसमें यश कीर्ति-शुभ-स्थिर-इन तीनके युगलोंमेंसे किसी भी एक-एकका बंध होता है । इसको बाधनेवाले असयत देशसयत प्रमत्त ये तीन हैं ॥ १८६ ॥

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न बध्यते तत्र तस्योदयाभावात् । तिर्यग्गतिमपाकृत्य तस्यान्यया गत्या सह बंधविरोधात् । देहदीप्तिर्देवानां तर्हि कुतः ? वर्णनामकर्मोदयात् । अत्र त्रीणि युगानि २।२।२। अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः ८

एकत्रिंशद्विना तीर्थकृत्त्वमाहारकद्वयं । अष्टाविंशतिराद्येमां गृहीतः सप्तमाष्टमौ ॥ १८७ ॥

अत्र भंग १ पुनरुक्तः ।

अष्टाविंशतिरेकान्नत्रिंशदस्ति द्वितीयका । अन्या तीर्थकरेणोना तं बध्नंति षडादिमाः ॥ १८८ ॥

अप्रमत्तादीनामुपरिजानामस्थिराशुभायशसां बंधाभावाद्भंगाः ८ । एवं देवेषु भंगाः १९ ॥

अपूर्वादित्रयेऽत्रैक यशो भंगास्तु नामनि । चतुर्दशसहस्राणि पंचपंचाशतं विना ॥ १८९ ॥
१३९४५ ।

यहांपर देवगतिके साथ उद्योतका बंध नहीं होता क्योंकि, देवगतिमें उद्योतका उदय नहीं है । तिर्यग्गतिके सिवाय उद्योतका दूसरी गतिके साथ बंध नहीं है । देवोंमें देहदीप्ति फिर कहांसे आती है ? वर्णनाम कर्मोदयसे आती है । यहांपर तीन युगल हैं— इनका परस्परमें गुणा करनेसे भंग ८ हो जाते हैं ।

इकतीसमेंसे आहारक द्वय और तीर्थंकरत्व ये तीन प्रकृति न बंधे तो अट्ठाईस बंधती है । यह अट्ठाईसका पहिला स्थान है । इसको सप्तम तथा अष्टम दो गुणस्थानवर्ती बांधते हैं । यहां भंग एक ही है, वह भी पुनरुक्त है । १८७ ।

उन्तीसके भेदमेंसे तीर्थंकर प्रकृतिको कम करके जो अट्ठाईस प्रकृति रहती हैं उन्हें छट्ठेसे आदि लेकर बांधते हैं । १८८ ।

अप्रमत्तादिक ऊपरके स्थानोंमें अस्थिर, अशुभ, अयश कीर्ति- इन तीन प्रकृतिका बंध नहीं होता इसलिये भंग आठ हैं । इस प्रकार देवगतिमें भंग १९ हैं ।

अपूर्वादि तीन गुणस्थानोंमें यहां एक यश कीर्ति ही है । और नामकर्ममें भंग सर्व पचपन कम चौदह हजार हैं अर्थात् १३९४५ हैं । १८९ ।

द्वाविंशतिर्भुजाकारा नाम्न्यल्पतराः पुनः । एकविंशतिरव्यक्तास्त्रयः सर्वेऽप्यवस्थिताः ॥ १९० ॥

२२ । २१ । ३ । ४६ ।

नामनि भुजाकाराः—

१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
२९	२६	२८	२९	३०	३१	
३०	२८	२९	३०	३१		
३१	२९	३०				
	३०					
४	५	४	३	३	२	१

अल्पतराः—

३१	३०	२९	२८	३१	३०	२९	२८	२६	२५
				३०	२९	२८	२६	२५	२३
				२९	२८	२६	२५	२३	
					२६	२५	२३		
					२५	२३			
					२३				
१	१	१	१	२.	५	४	३	२	१

भुजाकार नाममें बाईस हैं और अल्पतर इक्कीस हैं, अव्यक्त तीन हैं । ये सभी अवस्थित रूप हैं । १९० । (२२ । २१ । ३ । ४६) । भावार्थ, यंत्रोंमें जो नीचे नीचे संख्या बताई है वह भुजाकारकी सर्व मिलकर २२ और अल्पतरोंकी २१ है ।

अवतीर्योपशान्ताख्यो बध्नन् सूक्ष्मसाम्परायः । यशःकीर्तिं [illegible] ॥ १९१ ॥
मृत्वा देवत्वमाप्तो मनुष्यगतियुतः । त्रिंशतं नृगतिविशिष्टमेकत्रिंशतमथवा ॥ १९२ ॥

अल्पतरा भुजाकाराः शून्यतः ०।१-३०-३१ ते सन्ति भुजाकाराल्पतराव्यक्तकाः समासतो ज्ञेयाः, चत्वारिंशद्युक्ता षट्काः सर्वेऽवस्थितकाः ४३ । भुजाकाराः २२ । अल्पतरा २१ । अव्यक्ताः ३ । सर्वे मीलिता अवस्थितकाः ४६ ।

इति स्थानबंधः समाप्त ।

उपशामक श्रेणीमें प्राप्त हुआ उपशांत कषाय– ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव नीचे उतरकर दशवें सूक्ष्मकषाय गुणस्थानवाला होकर यशःकीर्ति नामकर्मको स्वीकार करता है अर्थात बांधता है । वहांपर यदि वह मरण करे अथवा उपशांतकषायवाला ही यदि मरण करे तो देवपर्यायको पाता है । वह वहां ऊपर बताई हुई तीसको ग्रहण करता है, और मनुष्यगति कर्मको मिलाकर इकतीसको भी ग्रहण करता है । भावार्थ, उपशांतमें शून्य था, फिर दशवेंमें आकर एक प्रकृति बांधी और फिर तीस तथा इकतीसको देवगतिमें बांधा । इस प्रकार उपरोक्त बंधमें प्रकृतिसंख्या बढती हुई है । १९१—१९२ ।

अल्पतर भुजाकार शून्यसे-०।१।३०।३१–ये हैं । इस प्रकार भुजाकार अल्पतर अव्यक्त ये सर्व संक्षेपमें समझना । छह और चालीस यानी छयालीस ही अवस्थित बंध हैं । भुजाकार सर्व २२, अल्पतर २१, अव्यक्त ३–ये सर्व मिलादेनेपर ४६ अवस्थित बंध होते हैं ।

इस प्रकार स्थानबंधोंका प्रकरण समाप्त हुआ ।

समिथ्यात्वेन बध्यन्ते सर्वाः प्रकृतयोऽगिना । विनैवाहारकद्वन्द्वतीर्थकर्तृत्वनामभि ॥ १९३॥
सम्यक्त्व तीर्थकर्तृत्वे वृत्तमाहारकद्वये । बंधस्य हेतुरन्यासु मिथ्यात्वासंयमादयः ॥ १९४ ॥

गुणस्थानेषु प्रकृतीनां स्वामित्व कथ्यते–

हीनास्तीर्थकराहारद्वन्द्वाभ्यां प्रथमे मताः । विना नरसुरायुर्भ्यां मिश्रके पूर्विकाः पुनः ॥ १९५ ॥
तीर्थकृन्नृसुरायुर्भिश्चतुर्थे सहिता मताः । आहारकद्वयेनामा प्रमादपरिवर्जिता ॥ १९६ ॥

मिथ्यात्वादिषु सप्तसु,— अपूर्वे सप्तसु भागेषु—

११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
१६	२५	०	१०	४	६	१	२	०	०	०	०	३०	४

अनिवृत्तौ पंचसु भागेषु— सूक्ष्मादिषु—

२२	२१	२०	१९	१८	१७	१	१	१	०
१	१	१	१	१	१६	०	०	१	०

आहारक दो और तीर्थंकरत्व–इन तीन कर्मोको छोडकर शेष सर्व कर्म, जीवोंको मिथ्यात्व भावके रहते, बधको प्राप्त होते हैं। १९३ ।

तीर्थंकरत्व तथा आहारक द्वय-इन तीन के बंधका कारण सम्यक्त्व माना गया है। अन्य प्रकृतियोंमें बंधके कारण मिथ्यात्व तथा असयम अर्थात् अविरति आदि माने गये हैं। आदि शब्दसे कषाय तथा योग लेने चाहिये। १९४ ।

अब गुणस्थानोंके अनुसार प्रकृतियोंका स्वामी कहते हैं।--तीर्थंकरत्व और आहारक दो को छोडकर शेष सर्व प्रकृति पहिले गुणस्थानमें बंधती हैं। मिश्र गुणस्थानमें मनुष्यायु तथा देवायुको छोडकर तथा पूर्वकी तीन को छोडकर शेष प्रकृति बंधती हैं। आहारकद्वयको छोडकर तीर्थंकर, मनुष्यायु, देवायु का और शेषका बंध चतुर्थ गुणस्थानमें होता है। प्रमाद रहित अप्रमत्त अवस्थाके–सातवें गुणस्थानमें आहारकद्वयको लेकर बंध होता है। १९५–१९६ ।

यंत्रमें मिथ्यात्वसे सातवें पर्यतका बंध तथा बंधविच्छेद प्रथम बताया है। फिर आठवेंके सात भागोंका जुदा जुदा

तत्र मिथ्यात्वनपुंसकवेदनरकायुर्नरकद्वयप्रथमजातिचतुष्कसूक्ष्मसाधारणातपापर्याप्तासंप्राप्तहुंडस्थावराणां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ बंधविच्छेदः १६ । स्त्यानगृद्धित्रयतिर्यगायुस्तिर्यग्द्वयप्रथमकषायचतुष्कानादेयस्त्रीवेदनीचोद्योतदुःस्वरसहननसंस्थानमध्यचतुष्कद्वयदुर्भगाप्रशस्तनभोगतीनां पंचविंशतीनां सासादने २५ । मिश्रं व्यतिक्रम्य, द्वितीयकषायचतुष्काद्यसंहनननरायुर्नरद्वयौदारिकद्वयानां दशानामसंयते १० । चतुर्णां तृतीयकषायाणां संयतासंयते ४ । शोकारत्यसातास्थिरासुभायशसां षण्णां प्रमत्ते ६ । एकस्य देवायुषोऽप्रमत्ते १ । अपूर्वस्य प्रथमे सप्तमभागे द्वयोर्निद्राप्रचलयोः २ ।

बंध बंधविच्छेद बताया है । फिर नौवें गुणस्थानके पांच भाग करके उनमें बंध बंधविच्छेद बताया है । फिर दशवेंसे चौदहवें गुणस्थान पर्यंतका बंध बंधविच्छेद बताया है । ऊपरकी पंक्तियोंमें बंधकी संख्या है और नीचे विच्छिन्नकी संख्या है ।

बंधविच्छेदकी प्रकृति कहांपर कौनसी हैं यह बात यहां गद्यद्वारा नाम देकर स्पष्ट करते हैं । प्रथम इसका वर्णन ' कर्म प्रकृति बंध स्तव ' के इकीसवें श्लोकसे लेकर मूलमें भी किया है ।

मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानमें–मिथ्यात्व, नपुंसक वेद, नरकायु, नरकगतिद्वय, एकेंद्रियादि जातिकर्म चार, सूक्ष्म, साधारण, आतप, अपर्याप्त, असंप्राप्तासृपाटिका, हुंडक संस्थान, स्थावर–ये सोलह प्रकृति बंधसे विच्छिन्न होती हैं । ये प्रकृति मिथ्यात्वके रहते बंधती हैं, अंतमें विच्छिन्न होती हैं । स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, तिर्यगायु, तिर्यग्गतिद्वय, अनंतानुबंधी कषाय चार, अनादेय, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, उद्योत, दुःस्वर, बीचके चार संस्थान, बीचके चार ही संहनन, दुर्भग, अप्रशस्त विहायोगति–इन पच्चीस प्रकृतियोंका बंधच्छेद सासादनमें होता है ।

मिश्रमें नवीन बंधच्छेद नहीं है । अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय, आदिका संहनन, मनुष्यायु, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक शरीरद्वय–इन दशका असंयत–चौथे गुणस्थानमें बंधच्छेद है । पांचवें गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरण चार कषायका बंधच्छेद है । शोक, अरति, असाता, अस्थिर, अशुभ, अयश कीर्ति—इन छहका बंधच्छेद छठे गुणस्थानमें है । देवायु एकका बंधच्छेद सातवेंमें है । अपूर्वके सर्व सात भाग प्रयोजनवश माने गये हैं । उन भागोंमेंसे प्रथम भागमें निद्रा प्रचला—इन दोका बंधच्छेद है ।

तैजसकार्मणपचाक्षस्थिरदेवद्वयवैक्रियिकद्वयप्रथमसंस्थानशुभत्रसाद्यगुरुलघ्वादित्रर्णादिचतुष्टयत्रयसुभगसुस्वरादेयनिर्माणाप्र-स्तनभोगत्याहारकद्वयतीर्थकृतां त्रिंशतः षष्ठे ३० । हास्यरतिजुगुप्साभियां चतसृणां सप्तमे ४ । पुंवेदसज्वालक्रोधमान-मायालोभानां पचानां क्रमादनिवृत्तिपचभागेषु ५ । उच्चगोत्रयशोदर्शनावृतिचतुष्कज्ञानावृतिपचकान्तरायपचकानां षोडशकानां सूक्ष्मसांपराये १६ । शांतक्षीणकषायौ व्यतीत्यैकस्य सातस्य सयोगे बंधविच्छेदो द्रष्टव्यः ।

इति स्वामित्व समाप्तम् ॥

गत्यादाविति योग्यानां प्रकृतीनां यथागमम् । स्वामित्वमवबोद्धव्य सिद्धानामोघरूपतः ॥ १९७ ॥

इति प्रकृतिबंध समाप्त ।

तैजस, कार्मण, पचेंद्रिय, अस्थिर, दवगतिद्वय, वैक्रियिकद्वय, प्रथम सस्थान, शुभ, त्रसादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति, आहारकद्वय, तीर्थंकरत्व—इन तीसका छठे भागमें बंधच्छेद है । हास्य, रति, जुगुप्सा, भय—इन चारका अतके सातवें भागमें बंधच्छेद है। अनिवृत्ति नौवें गुणस्थानके पांच भागोंमें क्रमसे पुरुषवेद, संज्वलनके क्रोध, मान, माया, लोभ—इन पांचका बंधविच्छेद है । उच्चगोत्र, यश कीर्ति, दर्शनावरण चार, ज्ञानावरण पांच, अंतराय पाच—इन सोलहका सूक्ष्मसापरायके अंतमें बधच्छेद है । ग्यारहवें बारहवेंमें बंधच्छेद नवीन नहीं है। तेरहवें सयोग केवलीमें साता एक प्रकृतिका बधच्छेद है । चौदहवेंमें बध होना शेष ही नहीं रहता है ।

इस प्रकार स्वामित्वका वर्णन हुआ ।

गत्यादि मार्गणाओंमें भी यथाशास्त्र गुणस्थानक्रमसे सिद्ध होनेवाली संभव प्रकृतियोंका स्वामित्व समझलेना चाहिये । १९७ ॥

इति प्रकृति बंधः ।

॥२७५॥

त्रयाणा म तरायाणां प्रकर्षेणाद्यकर्मणाम् । कोटीकोट्यः स्थितिस्त्रिंशत्सागराणामुदाहृताः ॥ १९८ ॥
सप्ततिर्मोहनीयस्य विंशतिर्नामगोत्रयोः । आयुषोऽस्ति त्रयस्त्रिंशत्समुद्राणां स्थितिः परा ॥ १९९ ॥
सप्तस्वब्दशत आर्द्रिकोटीकोटीस्थितेर्बुधैः । आबाधायुषि विज्ञेया पूर्वकोटित्रिभागता ॥ २०० ॥
प्रकृतीनां पराऽऽबाधा सर्वासामनुरूपतः । सान्तर्मुहूर्त्तमुद्दिष्टा जघन्याखिलकर्मणाम् ॥ २०१ ॥
सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियः पूर्णो घोरमिथ्यात्वभावितः । कर्मणामिह सप्तानामुत्कृष्टां कुरुते स्थितिम् ॥ २०२ ॥
सम्यग्दृष्टिरसद्दृष्टिः पर्याप्तौ कुरुतः स्थितिम् । प्रकृष्टमायुषो जीवौ शुद्धिसंक्लेशभाजिनौ ॥ २०३ ॥

अथ स्थितिबंध ।

आदिकी ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय—इन तीनका और अंतरायका इस प्रकार चार प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस सागर कोटीकोटी प्रमाण बताया है । १९८ ॥

सत्तर कोटीकोटी सागरोपम मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबंध है । बीस कोटीकोटी सागरोपम उत्कृष्ट स्थितिबंध नामकर्म तथा गोत्रकर्मका है । आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबंध केवल तेतीस सागरोपम है ॥ १९९ ॥

एक कोटीकोटी सागरोपम स्थितिबंधकी आबाधा सौ वर्ष प्रमाण है ऐसा सात कर्मोंमें नियम है । आयुकर्मकी आबाधा पूर्वकोटीके त्रिभागमात्र समझनी चाहिये ॥ २०० ॥

सर्व प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबाधा स्थितिके अनुसार है । और सर्व ही कर्मोंकी जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्तमात्र है । बन्ध होनेके बाद जबतक उदय होना शुरू ही न हो उस कालावधिको आबाधा कहते हैं ॥ २०१॥

सात कर्मोंमें उत्कृष्ट स्थितिको वह जीव बांधता है जो सञ्ज्ञी पंचेंद्रिय, पर्याप्त तथा घोर मिथ्यात्वसे ग्रसा हुआ होता है ।२०२।

आयुकर्ममें जो शुभ आयु है उसकी उत्कृष्ट स्थितिको सम्यग्दृष्टि परिणाम–विशुद्धिके कारण बांधता है । जो आयु अशुभ है उसकी उत्कृष्ट स्थितिको मिथ्यादृष्टि जीव परिणाम–संक्लेशके कारण बांधता है । २०३ ।

सम्यग्दृष्टिरसंक्लिष्टो जघन्यां कुरुते स्थितिम् । सप्तानां जीवितव्यस्य मिथ्यादृष्टिः कुमानुषः ॥ २०४ ॥

तत्रोत्कृष्टाऽऽबाधा—

आद्यानां सांतरायाणां त्रयाणां कर्मणां त्रयः । सहस्राः सप्त मोहस्य द्वौ ज्ञेयौ नामगोत्रयोः ॥ २०५ ॥

३००० । ३००० । ३००० । ३००० । ७००० । २००० । २००० ।

त्रयस्त्रिंशज्जिनैर्लक्षाः सत्रिभागा निवेदिताः । आबाधा जीवितव्यस्य पूर्वकोटीस्थितेः स्फुटम् ॥ २०६ ॥

पूर्वाणां त्रयस्त्रिंशल्लक्षा इति शेषः । ३३ $\frac{1}{3}$

कर्मणामिह सप्तानां सा त्रैराशिकतः क्रमात् । आनेतव्याऽऽयुषो भाग हृत्वा दक्षैस्त्रिभिः पुनः ॥ २०७ ॥

सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिको विशुद्ध परिणाम वाला सम्यग्दृष्टि जीव बांधता है । जीवितव्य अर्थात् आयुकी जघन्य स्थितिको दुष्ट स्वभाववाला मिथ्यादृष्टि कुभोगभूमिज बांधता है । २०४ ।

इन कर्मोंकी उत्कृष्ट आबाधाको आगे बताते हैं।—आदिकी ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय, तथा अंतराय—इन प्रकृतियोंकी आबाधा तीन हजार वर्षकी उत्कृष्ट है । मोहकी उत्कृष्ट आबाधा सात हजार वर्षकी है । नाम गोत्र—इन दो की उत्कृष्ट आबाधा दो हजार वर्षकी है । २०५ ।

पूर्वकोटीवाले आयुकर्मकी उत्कृष्ट आबाधा एकके तृतीय भाग सहित तेतीस लाख $33\frac{1}{3}$ वर्षकी होती ह । २०६ ।

इसमें जो तेतीस लक्ष और एक तृतीयांश—इतने वर्षकी आबाधा बताई वह तेतीस लक्ष पूर्व समझने चाहिये ।

सात कर्मोंकी आबाधा त्रैराशिक गणित द्वारा और आयुकी आबाधा भुज्यमान आयुके त्रिभाग करके एक भाग प्रमाण लानी चाहिये । सो विद्वानोंको सर्वत्र देखलेना चाहिये । भावार्थ, आयु कर्मको जीव त्रिभागमें बांध सकता है । त्रिभागका अर्थ भुज्यमान आयुके तीन भाग करके दो भागके अनंतर तीसरे भागके आरंभमें किसी भी आयुका बंध होता है। ऐसे त्रिभाग कई वार होसकते हैं । प्रथम त्रिभागमें आयुबंधकी योग्यता न मिली हो तो फिर दूसरे वारके त्रिभागमें पहुचनेपर आयुबंध होगा । दूसरेमें भी न हुआ तो तीसरे आदि किसी भी त्रिभागमें ही आयुबंध होगा । यदि किसी भी बीचमें आयुबंध नहीं होता ।

यावत्कालमुदीयन्ते न कर्मपरमाणवः । उदीरणां विनाऽऽबाधा तावत्कालेऽभिधीयते ॥ २०८ ॥
आबाधोनास्ति सप्तानां स्थितिः कर्मनिषेचनम् । कर्मणामायुषोऽबाधि स्थितिरेव निजा पुनः ॥ २०९ ॥
पंचसंग्रहाभिप्रायेणेदं; सिद्धान्ताभिप्रायेण पुनरायुषोऽप्याबाधोनास्ति स्थितिः कर्मनिषेचनम् ।

त्रिभागमें न हुआ हो तो मरणके समय अवश्य आयुर्बंध होगा। और आयुर्बंध होनेपर शेष त्रिभागके कालपर्यंत उस आयुकी आबाधा समझनी चाहिये। मरण होजानेपर नवीन शरीर धारण करनेवालेके उस पूर्वबद्ध आयुका उदय सुरू होता है इसलिये फिर आबाधा रहना संभव ही नहीं है।२०७।

आबाधाका अर्थ—बांधे हुए किसी एक एक समयप्रबद्ध कर्मके परमाणुओंका जबतक उदय नहीं सुरू होता तबतककी कालमर्यादाको आबाधा कहते हैं। उस आबाधाके कालमें उदीरणा भी उस कर्मकी नहीं होती है। २०८।

सात कर्मोंमें आबाधाको छोडकर शेष स्थिति जो बचती है उसमें कर्मांशोंका निषेचन अर्थात् उदय होना सुरू होजाता है। और आयुकी आबाधा भुज्यमान आयुका अवशिष्ट काल मात्र ही है अथवा त्रिभाग रूप शेषसमयप्रमाण है ऐसा कहा है। भावार्थ, आबाधा रहे पर्यंत बद्धकर्मोंके अंश उदयको प्राप्त नहीं होते और आबाधाको छोडकर जो शेष स्थिति रहती है उसका अर्थ कर्मनिषेचन है। अर्थात् उस शेष स्थितिमें प्रारंभसे अंत पर्यंत कर्मांशोंका निषेचन अर्थात् उदय होता रहता है। और आयुकर्ममें भुज्यमान आयुका तीसरा आदि भाग आबाधा कही जा सकती है परंतु वह उपचारसे आबाधा माननी चाहिये। क्योंकि आयुकी स्थिति जितनी बधती है वह उदय सुरू होनेसे भुमारी जाती है। आबाधाका काल उस स्थितिमेंसे घटाया नहीं जाता ॥ २०९ ॥

१— इस उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है। सिद्धांतके मतमें और पंचसंग्रहके मतमें कोई विरोध या भेद नहीं है।

॥२७८॥

आबाधोर्ध्वस्थितावस्यां समयं समय प्रति । कर्माणुस्कन्धनिक्षेपो निषेकः सर्वकर्मणाम् ॥ २१० ॥
परतः परतः स्तोकः पूर्वतः पूर्वतो बहुः । समये समये ज्ञेयो यावत्स्थितिसमापनम् ॥ २११ ॥
स्वां स्वामाबाधां मुक्त्वा सर्वकर्मणां निषेका वक्तव्यास्तेषां च गोपुच्छाकारेणावस्थिति ॥
उत्तरप्रकृतीनां स्थितिः कथ्यते—
ज्ञानदृग्रोधविघ्नानामसातस्य च विंशतेः । कोटीकोट्यः स्थितिस्त्रिंशद्विज्ञातव्याः सरस्वताम् ॥ २१२ ॥
२० कर्मणाम् ३० कोटीकोट्य ।

यही बात आगे बताते हैं ।—आबाधाके बाद ऊपरकी जो बची हुई स्थिति है उसमें समय समय प्रति कर्माणुस्कंधोंका निक्षेपण दिया जाता है । इसी प्रकार सर्व कर्मोंका निषेक समझना । यहांपर भी यह वर्णन सात कर्मोंमें लग सकता है । आयुकी आबाधा जुदी न काटकर शुरूसे संपूर्ण स्थितिके समयों में कर्माणुस्कंधोंका निक्षेपण होता है ॥ २१० ॥

किसी कर्मकी स्थिति जो बांधी जाती है उसकी आबाधाको छोडकर शेष रही स्थितिके जितने समय हैं उतने ही उस एक समयप्रबद्ध पिंडके भाग होते हैं । उन भागोंमेंसे एक एक भाग क्रमसे एक एक समयमें उदयको प्राप्त होता रहता है । इस प्रकार स्थितिके अंतिम समयमें अंतिम निषेकभाग उदयको प्राप्त होकर वह समयप्रबद्ध पूरा निर्जीर्ण होजाता है । ये निषेक भाग पूर्व पूर्वके बडे अर्थात् अधिक द्रव्यवाले होते हैं और उत्तरोत्तर स्तोक-छोटे—कम द्रव्यको रखनेवाले होते हैं । २११ ।

अपनी अपनी आबाधाको छोडकर सर्व कर्मोंके निषेक कहने चाहिये । उनकी रचना गोपुच्छाकार यंत्रद्वारा बताई है अर्थात् वे सर्व निषेक गोपुच्छाकारसे निर्जीर्ण होते हैं । यह यंत्र गोम्मटसारमेंसे देखना ।

अब उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितिमें जो विशेष है उसको बताते हैं-ज्ञानावरण दर्शनावरण विघ्न—इनके उत्तर भेद १९ और वेदनीयमेंसे १ असातावेदनीय-इन वीस उत्तर प्रकृतियोंकी तीस कोटीकोटी सागरोपम स्थिति है । जो इनकी मूल प्रकृतियोंके समय उत्कृष्ट स्थिति बताई है उतनी ही इन उत्तर प्रकृतियोंकी है । २१२ ।

॥२७९॥

मिथ्यात्वे सप्तति कोटीकोट्य पञ्चदशोदिता. । सातस्त्रीनरयुग्मेषु चत्वारिंशत्कुधादिषु ॥ २१३ ॥

मिथ्यात्वे कर्म १, ७० को. । सातादिषु कर्म ४, १५ को. । षोडशसु कषायेषु १६, ४० को. ।

श्वभ्रदेवायुषोरब्धित्रयस्त्रिंशत्परा स्थितिः । २ । ३३ सा. ।

तिर्यङ्नरायुषोरुक्ता त्रिपल्योपमसम्मिता । २१४ ॥ २ । ३ प. ।

नीचैर्गोत्रारती शोकौ जुगुप्सा भीर्नपुंसकम् । श्वभ्रतिर्यग्द्वये हुडं पञ्चाक्षं कर्मतेजसी ॥ २१५ ॥

उद्योतौदारिकद्वन्द्वे निर्मिद्वैक्रियिकद्वयम् । वर्णागुरुत्रसादीनि चतुष्कान्यस्थिराशुभे ॥ २१६ ॥

एकाक्षासन्नमोरीती दुर्भग स्थावरातपौ । असम्प्राप्तमनादेयं दुःस्वरायशसी मता ॥ २१७ ॥

कोटीकोट्योंबुराशीनामेतासां विंशतिः स्थितिः । त्रिचत्वारिंशतोऽत्राचि प्रकृतीनां परा बुधैः ॥ २१८ ॥

कर्म ४३ । आसां स्थितिः २० को ।

मिथ्यात्वकी सत्तर कोटीकोटी सागरोपम स्थिति है । सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति द्वय-इन चार उत्तर प्रकृतियोंकी पन्द्रह कोटीकोटी सागरोपम बताई है । क्रोधादि अर्थात् कषायवेदनीय-मोह १६ में चालीस कोटीकोटी सागरोपम स्थिति है।२१३।

मिथ्यात्वमें कर्म १, ७० को० । सातादिमें कर्म ४, १५ को० । क्रोधादि कषाय १६, ४० कोटि ।

नरकायु तथा देवायुकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है । २ । ३३ सा० । तिर्यंच आयुकी और मनुष्यायुकी तीन पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है । २ । ३ प० ॥ २१४ ॥

नीचगोत्र, अरति, शोक, जुगुप्सा, भय, नपुंसकवेद, नरकगतिद्वय, तिर्यग्द्वय, हुंड, पचेंद्रिय, कार्मण, तैजस, उद्योत, औदारिकद्वय, निर्माण, वैक्रियिकद्वय, वर्ण चार, अगुरुलघु चार त्रस चार, अस्थिर, अशुभ, एकेंद्रिय, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, स्थावर, आतप, असम्प्राप्तासृपाटिका, अनादेय, दुस्वर, अयश कीर्ति- इन तेतालीस प्रकृतियोंकी बीस कोटीकोटी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है । २१५–२१८।

कर्म ४३ । इनकी स्थिति २० को. ।

नरवेदो रतिर्हास्य सुस्वरं मनमोगतिः । सुरद्वन्द्व स्थिरादेये शुभोच्चे सुभग यशः ॥ २१९ ॥
सस्थानसंहती चाद्ये कोटीकोट्यो दश स्थितिः । समुद्राणा परैतासां प्रकृतीनां निवेदिताः ॥ २२० ॥
कर्म १५ । आसा स्थितिः १० को. ।
द्वित्र्यक्षचतुरक्षेपु सूक्ष्मापर्याप्तयोः स्थितिः । साधारणे जिनैः कोटीकोट्योऽष्टादश भाषिताः ॥ २२१ ॥
कर्म ६ । स्थितिरासा १८ को. ।
स्थिति सस्थानसहत्योः कोटीकोट्यो द्वितीययो । अब्धीनां द्वादश प्राज्ञैश्चतुर्दश तृतीययोः ॥ २२२ ॥
कर्म २ । १२ को. । कर्म २ । १४ को. ।
तुर्ययो पोडशाब्धीनां तयो' पचमयोरिमाः । कोटीकोट्यः पटीयोभिरष्टादश निवेदिताः ॥ २२३ ॥
कर्म २ । १६ को. । कर्म २ । १८ को ।

पुरुपवेद, रति, हास्य, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, देवगतिद्विय, स्थिर, आदेय, शुभ, उच्चगोत्र, सुभग, यश कीर्ति, प्रथम सस्थान, प्रथम संहनन—इन पद्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति दश कोटीकोटी सागरोपम प्रमाण बताई है । २१९।२२० ।

द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण—इन छह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम बताई है । २२१ ।

दूसरे सहनन, दूसरे संस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति बारह कोटीकोटी सागरोपम है । तीसरे सस्थान–सहननकी चौदह कोटी कोटी सागरोपम है । २२२ ।

चौथे सस्थान–संहननकी उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम है । पाचवें सस्थान–सहननकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम बताई है । २२३ ।

जघन्याऽऽबाधा कथ्यते—

सुदृश्याहारकद्वन्द्वतीर्थकृत्कर्मसु त्रिषु । अन्तर्मुहूर्तमात्राबाधाऽन्तःकोटीकोट्यथ स्थितिः ॥ २२४ ॥ कर्म ३ ।
मुहूर्ता द्वादश प्रोक्ता वेद्येऽष्टौ नामगोत्रयोः । स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तोऽस्ति जघन्यान्येषु कर्मसु ॥ २२५ ॥
ज्ञानरोधान्तरायाणां दशानां दृक्चतुष्टये । अन्त्ये संज्वलने लोभे स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तका ॥ २२६ ॥
अष्टोच्चयशसोः साते मुहूर्ता द्वादशोदिताः । क्रोधे मासद्वयं माने मासोऽर्द्धं निकृतौ मतम् ॥ २२७ ॥
अत्र संज्वलने क्रोधे मासौ २ । माने मासः १ । निकृतौ (मायायाम्) पक्ष ।
नृतिर्यगायुषोरन्तर्मुहूर्त्ता शेषयोः स्थिति । दश वर्षसहस्राणि पुंवेदे वत्सराष्टकम् ॥ २२८ ॥

अब जघन्य स्थिति और जघन्य आबाधाको बताते हैं।—सम्यग्दृष्टिके आहारकद्वय तथा तीर्थंकरत्व-इन तीन कर्मोंमें जघन्य आबाधा अंतर्मुहूर्त है और अंत कोटीकोटी सागर जघन्य स्थिति है। एक कोटीकोटीसे कम स्थितिको अंत कोटीकोटी कहा है। और कोटीको कोटीसे ही गुणनेपर जो संख्या सिद्ध हो उसे कोटीकोटी कहते हैं। २२४।

वेदनीयकी बारह मुहूर्त जघन्य स्थिति है। नामकी तथा गोत्रकी आठ मुहूर्त है। शेष कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है। मुहूर्तके भीतरकी एक आवलीसे ऊपरतक अंतर्मुहूर्त कहाता है। २२५।

उत्तर प्रकृतियोंमें—ज्ञानावरण अंतरायकी दश प्रकृतियोंकी और दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंकी तथा अंतके सज्वलन लोभकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र है। २२६।

उच्चगोत्रकी तथा यश कीर्तिकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त हैं। सातावेदनीयकी बारह मुहूर्त है। सज्वलन क्रोधकी दो महीना है। मानकी एक महीना है। मायाकी स्थिति आधा महीना है। अनंतानुबंधी आदि बारह कषायोंकी स्थिति आगे बताई है इसलिये यहांके कषाय संज्वलन ही लेने चाहिये। २२७।

मनुष्यायु, तिर्यगायुकी अंतर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है। देवायु तथा नरकायुकी दश हजार वर्षकी जघन्य स्थिति है। पुरुष वेद की आठ वर्ष जघन्य स्थिति है। २२८।

असातसहितेऽपूर्वे दर्शनावृतिपचके । मिथ्यात्वेऽस्ति कषायाणामाद्ये द्वादशके स्थिति ॥ २२९ ॥
नोकषायाष्टकेऽभोधेस्त्रिकसप्तचतुर्द्वया । सप्त भागा क्रमात्पल्याऽसख्यभागविवर्जिता ॥ २३० ॥ युग्मम्

३/७	७/७	४/७	२/७
क. ६	१	१२	८
अ १ निद्रा ५	मि. १	क १२	नो ८

मर्त्यतिर्यग्गतिद्वन्द्वे आतपो जातिपचकम् । षट्कं सस्थानसहत्योरुद्योतो द्वे वियद्गती ॥ २३१ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादिचतुष्के कर्मतेजसी । नव त्रसादियुग्मानि नीचमौदारिकद्वयम् ॥ २३२ ॥

असाता वेदनीय तथा आगेके पांच दर्शनावरण—पांच निद्रा-इन छह प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासख्यातमाग कम, तीन भाग प्रमाण है । मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासख्यातमागहीन, सात भाग प्रमाण है । अर्थात्, कुछ कम एक सागर प्रमाण है । सोलह कषायोंमेंसे आदिके बारह कषायोंकी स्थिति सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासख्यातमागहीन, चार भाग प्रमाण है । और क्रमसे नोकषाय आठकी सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासंख्यात-भागहीन, दो भाग प्रमाण है । इसका यंत्र ऊपर दिया है ॥ २२९—२३० ॥

मनुष्यगतिद्वय, तिर्यगतिद्वय, आतप, एकेंद्रियादि पांच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, उद्योत, दोनो विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, कार्मण, तैजस, त्रसादि नौ युगल, नीचगोत्र, औदारिकद्वय, निर्माण, अयश कीर्ति—इन ५८

२८३॥

निर्माणमयश कीर्सिजघन्याऽऽसां स्थितिर्मता । द्वौ पल्यासंख्यभागोनौ सप्तभागौ पयोनिधेः ॥ २३३ ॥

कर्म ५८ स्थितिः २ - $\frac{२}{७}$

पयोनिधिसहस्रस्य सप्तभागौ स्थितिः स्मृता । द्वौ वैक्रियिकषट्कस्य पल्यासंख्यांशवर्जितौ ॥ २३४ ॥

$\frac{२०००}{७}$

अपूर्वक्षपक तीर्थंकरत्वाहारयुग्मयोः । जघन्यस्थितिबन्धोऽतःकोटीकोटी सरस्वताम् ॥ २३५ ॥

सर्वत्रान्तर्मुहूर्त्तवर्त्तिनी जघन्याबाधा ॥

प्रकृतियोंकी सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासंख्यातभागहीन दो भाग (२ $\frac{२}{७}$) प्रमाण जघन्य स्थिति है । पल्यकी निशानी सातकी संख्या है । असंख्यातवें भागकी सहनानी दोकी संख्या है । दो बटे सात जो दोके आगे दिये हैं उसका अर्थ पल्यासंख्यातवा भाग कम ऐसा करना । पहिली दो संख्या सागरके सातवें दो भागकी वाचक है । २३१ - २३३ ।

वैक्रियिक षट्कका अर्थ—वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिकांगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी—ये छह प्रकृति ऐसा है। इस वैक्रियिकषट्ककी जघन्य स्थिति—सागरके सप्तम भाग दो हजार प्रमाण—पल्यासंख्यातभाग कम—इतनी है। पयोनिधि सहस्रके सप्तभाग दो अर्थात् सागरके दो हजार सप्तम भाग। इस दो हजारकी संख्याको सातसे भाग देनेपर २८५$\frac{२}{७}$ आते हैं। ये दो सौ पचासी पूर्ण सागर हुए और सप्तम भाग अपूर्ण पाच हुए। इसमें पल्यासंख्यातवा भाग कम करना चाहिये। इसको (२०००$\frac{२}{७}$) ऐसा लिखना चाहिये । २३४ ।

क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण—आठवें गुणस्थानमें तीर्थंकरत्व तथा आहारकद्वय—इन तीन कर्मोंका जघन्य स्थितिबंध अंत-कोटीकोटि सागर प्रमाण है । और इन सबोंमें जघन्य आबाधा अंतर्मुहूर्त मात्र है । २३५ ।

१—श्लोकोंमें ' सरस्वतां ' पद आया है उस सरस्वत् शब्दका अर्थ ~~कर्म है~~ । सागर है।

॥२८४॥

उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यसाद्यनादिध्रुवाध्रुवस्वामित्वलक्षणा नव वधाः । तत्र—

स्थितिबंधश्चतुर्भेदः सप्तानामजघन्यकः । साद्यध्रुवास्त्रयोऽन्ये स्युश्चत्वारोऽप्यायुषो द्विधा ॥ २३६ ॥

इति मूलप्रकृतिषु बंधमुक्त्वोत्तरास्वाह—

दृक्चतुष्टयसज्वालज्ञानदरोधान्तरायका । अष्टादश चतुर्द्धासा प्रकृतीनामजघन्यक ॥ २३७ ॥

आसामष्टादशानां ते शेषाः साद्यध्रुवास्त्रय । १५ । सत्युत्कृष्टादयोऽन्यासा चत्वार सादयो ध्रुवा । १०२ ॥२३८॥

शुभाशुभेषु सर्वेषु समस्ताः स्थितयोऽशुभाः । तिर्यङ्नरसुरायूंषि सति सन्त्यष्टकर्मसु ॥ २३९ ॥

स्थितिमें जघन्य अजघन्य उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट सादि अनादि ध्रुव अध्रुव स्वामित्व ये नौ बंध समझनेके हैं। इन नौमेंसे—

सात कर्मोंका अजघन्य स्थितिबंध, सादि आदि चार प्रकारका है। तथा अन्य—जघन्य उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट—ये तीन भेद सादि तथा अध्रुव ऐसे दो भेदरूप हैं। आयुके जघन्यादि चारो ही भेदोंमें सादि अध्रुव—ये दो दो प्रकार हैं॥ २३६ ॥

इस प्रकार मूल प्रकृतियोंमें भेद दिखाकर अब उत्तर प्रकृतियोंमें दिखाते हैं। —

चार दर्शनावरण, सज्वलन चार कषाय, ज्ञानावरण पाच, अतराय पाच—इन अठारह प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबंध साद्यादि चारो प्रकारका होता है। २३७।

इन्हीं ऊपरकी अठारह प्रकृतियोंके शेष जो जघन्यादि तीन भेद हैं उनमें सादि और अध्रुव ये दो दो प्रकार होते हैं। अन्य प्रकृतियोंमें जो उत्कृष्टादि भेद चार हैं वे सादि तथा ध्रुव ऐसे दो दो प्रकारके होते हैं॥ २३८ ॥

शुभ तथा अशुभ—अर्थात् पुण्य और पाप—सभी प्रकृतियोंमें स्थितिबंध जो होता है वह अशुभ ही माना जाता है। और आठ कर्मोंमेंसे तिर्यंच आयु मनुष्यायु देवायु—ये शुभ अथवा पुण्य प्रकृति मानी जाती है। २३९।

१–दो वार 'सति' पद है। उनमेंसे एक क्रियापद है। दूसरा प्रशस्तवाचक सत् शब्दका नपुसकलिंगी प्रथमाका बहुवचन प्रयोग है।

बध्यन्ते स्थितय सर्वा. कषायवशतो यत । तिर्यङ्मर्त्यामरायूषि तत्प्रायोग्यविशुद्धित ॥ २४० ॥
अप्रशस्तास्तत सर्वा कर्मणा स्थितयो मता· । आयुषां त्रितय मुक्त्वा तिर्यगादिशुवां बुधैः ॥ २४१ ॥
उत्कृष्टा स्थितिरुत्कर्षे सक्लेशस्य जघन्यका । विशुद्धेरन्यथा ज्ञेया तिर्यङ्नरसुरायुषाम् ॥ २४२ ॥
विशुद्धि सातबधस्य योग्या परिणतिर्मता । सक्लेशोऽसातबधस्य योग्या साऽत्र मनीषिभि ॥ २४३ ॥
संक्लेशवृद्धितो यस्माद् वर्धन्ते स्थितयोऽखिला । विशुद्धिवृद्धितस्तस्माद्धीयते ता निसर्गतः ॥ २४४ ॥

तत्रोत्कृष्टस्थितौ विशुद्धय स्तोका भूत्वा तावद्वर्धन्ते यावज्जघन्यस्थितिहेतव· । जघन्यस्थितौ सक्लेशा· स्तोका भूत्वा तावत्क्रमेण वर्धन्ते यावदुत्कृष्टस्थितिहेतवः ॥

सर्व कर्मोमें स्थितिबंध कषाय द्वारा होते हैं और तिर्यगायु मनुष्यायु देवायु–ये तीन शुभ प्रकृति बताई हैं, इसलिये ये तीन प्रकृति, कषायकी तद्योग्य विशुद्धिसे बंधको प्राप्त होती हैं ऐसा समझना । २४० ।

इसलिये तीन इन तिर्यगायु आदि आयुओंको छोडकर शेष सभी कर्मोंकी स्थितिए अशुभ मानी गई है । २४१ ।

इसीलिये सक्लेशकी वृद्धिमें सर्व स्थितिबंध उत्कृष्ट होते हैं और कषायकी मदतासे प्रगट हुई वीतरागतारूप विशुद्धिसे सर्व स्थितिबंध जघन्य होते हैं । किंतु तिर्यचादि तीन आयुओंकी स्थितिमें उलटी रीति है । अर्थात सक्लेशवृद्धिसे तीन आयुकी स्थिति जघन्य होती है और विशुद्धिसे उत्कृष्ट होती है । २४२ ।

सातावेदनीयके बधके लिये परिणामोंकी योग्य विशुद्धि परिणति कारण है । असाता वेदनीयके बधमें योग्य परिणाम संक्लेश हैं । २४३ ।

जिस कारण सक्लेशकी वृद्धिसे संपूर्ण स्थिति बढती हैं अतएव विशुद्धिकी वृद्धिसे वे स्थिति अपने आप घटती हैं ।२४४।

इनमेंसे उत्कृष्ट स्थितिमें विशुद्धिंए अत्यंत कम रहती हैं । और वे विशुद्धियें जघन्य स्थिति बध पर्यंत जैसी जैसी स्थितिएं घटती जाती हैं वैसी विशुद्धिए बढती जाती हैं । इसी प्रकार जघन्य स्थितिमें सक्लेशकी मात्रा बहुत थोडी होती है । आगे अंतिम उत्कृष्ट स्थितिबंध पर्यंत उत्तरोत्तर वे संक्लेश बढते जाते हैं ।

समिथ्यात्वेन बध्यन्ते प्रकृष्टा स्थितयोऽखिला । मुक्त्वाऽऽहारकदेवायुस्तीर्थकर्तृत्वकर्मणाम् ॥ २४५ ॥
निर्व्रतस्तीर्थकर्तृत्वे प्रमत्तस्त्रिदशायुषि । करोत्याहारके बधमप्रमत्त परस्थिते ॥ २४६ ॥
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूषि षट्कं वैक्रियिकाह्वयम् । विकलत्रितय सूक्ष्मं साधारणमपूर्णकम् ॥ २४७ ॥
नृतिर्यंच स्थितिं पंचदशाना कुर्वते पराम् । १५ । आतपस्थावरैकाक्षेष्वीशानाता सुरास्त्रिषु । ३ ॥ २४८ ॥
तिर्यग्द्वयमसम्प्राप्तमुद्योतौदारिकद्वये । नारकत्रिदशाः षण्णामुत्कृष्टा कुर्वते स्थितिम् ॥ ६ । २४९ ॥
चतुर्गतिगता जीवाः शेषाणां कर्मणां स्थितिम् । मध्यमोत्कृष्टसंक्लेशाः प्रकृष्टां कुर्वते स्फुटम् ॥ ९२ । २५० ॥

जघन्यस्थितिस्वामित्वं कथ्यते—

आहारक, देवायु, तीर्थंकरत्व–इन कर्मोंको छोडकर उत्कृष्ट सर्व स्थितिबंध मिथ्यात्वके सहारेसे बंधको प्राप्त होते है । २४५ ।

अव्रत सम्यग्दृष्टि, तीर्थंकर कर्ममें उत्कृष्ट स्थितिबंधको करता है । देवायुमें उत्कृष्ट स्थितिबंधको प्रमत्त–छट्ठे गुणस्थानवाला करता है । इसी प्रकार आहारकमें उत्कृष्ट बंधको अप्रमत्त सातवें गुणस्थानवाला करता है । २४६ ।

नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तथा वैक्रियिकषट्क, विकल तीन जाति, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति–इन पंद्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको मनुष्य तथा तिर्यंच बांधते हैं । और आतप, स्थावर, एकेंद्रियजाति–इन तीन कर्मोंमें उत्कृष्ट स्थितिको भवनत्रिक तथा ईशान पर्यंतके देव करते हैं । २४८ ।

तिर्यंचगति–तिर्यंच गत्यानुपूर्वी–ये दो, असंप्राप्तासृपाटिका, उद्योत, औदारिकद्वय–इन छह प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिको नारकी तथा देव करते हैं । २४९ ।

शेष ९२ कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको चतुर्गतिके जीव मध्यम तथा उत्कृष्ट सक्लेशके द्वारा करते है । २५० ।

जघन्य स्थितिके स्वामित्वको बताते हैं ।–

आहारकद्वयेऽपूर्वस्तीर्थकृत्त्वे च सयतः । ३ । अनिवृत्तिस्तु पुंवेदे सज्वालानां चतुष्टये ॥ ५ । २५१ ॥
दशके ज्ञानविघ्नस्थे प्रथमे दृक्चतुष्टये । जघन्यां कुरुते सूक्ष्मस्तां सातोच्चयशःस्वपि ॥ १७ । २५२ ॥
असंज्ञी विक्रियाषट्के जघन्यां कुरुते स्थितिं । चतुर्णामायुषामेनां यथास्वं संज्ञ्यसञ्ज्ञिनौ ॥ २५३ ॥

दशानामासां पुनर्विशेषमाह—

पूर्णः पचेन्द्रियोऽसंज्ञी श्वभ्रीतिद्वये स्थितिं । तद्योग्यप्राप्तसक्लेशो विदधाति जघन्यिकाम् ॥ २५४ ॥
सुरगतिद्वयेऽप्येष जघन्यां कुरुते स्थितिं । वहमानः परां शुद्धिं योग्यां वैक्रियिकद्वये ॥ २५५ ॥

आहारकद्वयमें जघन्य स्थितिको अपूर्व—आठवें गुणस्थानवाला करता है । तीर्थंकर प्रकृतिमें जघन्य स्थितिको सयत अर्थात छट्ठे गुणस्थानवाला करता है। पुरुषवेदमें और सज्वलन कषायोंमें जघन्य स्थितिको अनिवृत्ति—नौवें गुणस्थानवाला करता है। ज्ञानावरण-अतरायकी दश प्रकृतियोंमें तथा पहिले चक्षुर्दर्शनावरणादि चार दर्शनावरणोंमें, ये चौदह, एव सातावेदनीय, उच्च गोत्र, यश कीर्ति—इन सत्रहमें जघन्य स्थितिको सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानवाला करता है । २५१ - २५२ ।

वैक्रियिक षट्कमें जघन्य स्थितिको असज्ञी जीव करता है । चार आयुओंमें जघन्य स्थितिको यथायोग्य सज्ञी असज्ञी करते हैं । संज्ञी पर्याप्तक जीव विशुद्धिके द्वारा नरकायुमें जघन्य स्थितिको करता है । असज्ञी पचेंद्रिय पर्याप्तक जीव सक्लेशके द्वारा देवायुमें जघन्य स्थितिको करता है। इसी प्रकार मनुष्यायु—तिर्यगायुके विषयमें समझना । २५३ ।

इन वैक्रियिकषट्कादि दश स्थितियोंमें और भी विशेष दिखाते हैं ।—

पंचेंद्रिय पर्याप्तक असज्ञी जीव नरकगति द्वय में, जघन्य स्थितिके योग्य सक्लेशको पाकर जघन्य स्थितिको करता है।२५४।

यही—पचेंद्रिय पर्याप्तक असज्ञी जीव उत्कृष्ट विशुद्धिको जब धारण करता है तब देवगति द्वयमें जघन्य स्थितिको बाधता है, और वैक्रियिक द्वयमें भी यथायोग्य स्थितिको बाधता है । भावार्थ, देवगतिके साथ वैक्रियिक द्वयको बांधता है उस समय वह विशुद्धिके द्वारा उस वैक्रियिकद्वयमें जघन्य स्थितिको करता है । यदि नरक गतिके साथ वैक्रियिक द्वयको बाधता है तो वह वैक्रियिक द्वयमें सक्लेशके द्वारा जघन्य स्थितिको बाधता है । २५५ ।

सम्प्राप्तशुद्धिसंक्लेशौ पचाक्षौ संज्ञ्यसंज्ञिनौ । जघन्यां कुरुते पूर्णौ श्वभ्रदेवायुपोः स्थितिम् ॥ २५६ ॥
कुर्वते नरतिर्यञ्चो योग्यसंक्लेशभागिनः । नृतिर्यगायुषोरेनामभोगावनिजा स्थितिं ॥ २५७ ॥
एकाक्षो बादर पूर्ण प्राप्तसर्वविशुद्धिक । प्रकृतीना परासान्तु जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥ २५८ ॥
नारका विबुधा जीवा भोगविश्वम्भराभवाः । भोगभूप्रतिबद्धा ये ते षण्मासायुपि स्थितिं ॥ २५९ ॥
यथास्व कुर्वते योग्यशुद्धिसंक्लेशभागिन । त्रिभागे स्वायुषः शेषे स्थिते सति परे पुन ॥ २६० ॥
भोगभूप्रतिभागोऽसौ यदतरमुदाहृतम् । मानुषोत्तरशैलस्य स्वयंप्रभनगस्य च ॥ २६१ ॥

इति स्थितिबन्ध. समाप्त. ।

पचेंद्रिय पर्याप्तक, सज्ञी तथा असज्ञी जीव विशुद्धिको प्राप्त होकर नरकायुमें जघन्य स्थितिको बाधते हैं और संक्लेशको प्राप्त होकर देवायुमें जघन्य स्थितिको बांधते हैं । २५६ ।

अभोगावनिमें पैदा हुए—अर्थात् कर्मभूमिज मनुष्य—तिर्यंच योग्य संक्लेशको धारण करते हुए मनुष्यायुमें तथा तिर्यगायुमें जघन्य स्थितिको बाधते हैं । २५७ ।

बादर पर्याप्तक एकेंद्रिय जीव स्वयोग्य विशुद्धिको धारण करता हुआ शेष पचासी प्रकृतियोंमें सदा जघन्य स्थितिको बाधता है । २५८ ।

नारकी, देव तथा भोगभूमिके नियोगसे भोगभूमिमें जन्मे हुए जो जीव हैं वे अपनी आयुके छह महिना शेष रह जानेपर यथायोग्य विशुद्धि अथवा संक्लेशको धारण करते हुए आयुकर्मकी यथायोग्य स्थितिको बाधते हैं । बाकी सर्व जीव अपनी भुज्यमान आयुका त्रिभाग शेप रहजानेपर यथायोग्य आयुकी स्थितिको बांधते हैं ।२५९–२६०।

भोगभूमिका जो छह महीना शेष रहनेपर स्थिति बाधनेका प्रतिभाग है यह अंतर मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके बीचकेलिये ही समझना चाहिये । २६१ ।

इति स्थितिबंध. ।

कर्मणां रसविशेषोऽनुभागस्तस्य भेदानाह–

अष्टभिरुत्कृष्टाद्यै सहानुभागे चतुर्दश ज्ञेया । शस्ताशस्तौ सज्ञा स्वामित्वप्रत्ययविपाका ॥ २६२ ॥
घातीनामजघन्यो वेद्ये नामनि भवत्यनुत्कृष्टः । अजघन्यानुत्कृष्टौ गोत्रे सर्वे चतुर्द्धा ते ॥ २६३ ॥
चतुर्भेदा भवन्त्येते साद्यनादिध्रुवाध्रुवा । परे साद्यध्रुवा बंधा जायन्ते पूर्वकर्मणां ॥ २६४ ॥

कर्मोके रसविशेषको अनुभाग कहते हैं । इस अनुभागका आगे वर्णन करते हैं ।–

अनुभागमें चौदह विषय वर्णनीय हैं ।–१ उत्कृष्ट अनुभाग, २ अनुत्कृष्ट अनुभाग, ३ जघन्य अनुभाग, ४ अजघन्य अनुभाग, ५ सादि अनुभाग, ६ अनादि अनुभाग, ७ ध्रुव अनुभाग, ८ अध्रुव अनुभाग–ये आठ भेद हुए । ९ प्रशस्त अनुभाग, १० अप्रशस्त अनुभाग, ११ संज्ञा–उत्तर अनुभागभेदोंके नाम, १२ स्वामित्व–किस अनुभागको कौनसा जीव बाघता है–यह वर्णन, १३ प्रत्यय–मिथ्यात्वादिक बंधके कारण, १४ विपाक–किस कर्मका क्या और कहांपर तथा किस रूपसे उदय होता है–इसका स्पष्टीकरण, अथवा जीवविपाक, पुद्गलविपाक, भवविपाक, क्षेत्रविपाक–ऐसे विपाकके चार भेद करके सर्व प्रकृतियोंको उन चार भेदोंमें बांटना । ये चौदह विषय अनुभागके प्रकरणमें वर्णन करनेके हैं । अनुभागको अनुभव भी कहते हैं । २६२ ।

इन चौदह विभागोंका क्रमसे वर्णन करते हैं ।–

घाती चार कर्मोमें अजघन्य अनुभाग होता है । ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अन्तराय–इन चार कर्मोको घाती कहते हैं सो सज्ञाप्रकरणमें आगे बतावेंगे । वेदनीय तथा नामकर्ममें अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है । गोत्र कर्ममें अजघन्य तथा अनुत्कृष्ट–दो प्रकारका अनुभाग होता है । ये ऊपर बताये सर्व भेद साद्यादि चार चार उत्तर भेदोंको रखते हैं । २६३ ।

ऊपर जो चार प्रकार बताये है वे सादि अनादि ध्रुव अध्रुव ये चार उत्तर भेद रूप होते हैं । और इन पूर्व कर्मोके दूसरे बंध अर्थात् जघन्य उत्कृष्ट ये सादि तथा अध्रुवरूप होते है । २६४ ।

चत्वारोऽप्यायुषो द्वेधा बुधैः साद्यध्रुवा मता । अनुभागो भवत्येव मूलप्रकृतिगोचर ॥ २६५ ॥
कार्मणागुरुलघ्वाढ्ये शस्त वर्णचतुष्टय । तैजस निर्मिदष्टानामनुत्कृष्टश्चतुर्विधः ॥ २६६ ॥
शेषाः साद्यध्रुवास्तासामनुत्कृष्टोज्झितास्त्रयः । बबध्वसिभिरष्टानामनुभागा निवेदिताः ॥ २६७ ॥
दश ज्ञानातरायस्था दृग्रोधे नव षोडश । कोपादयो जुगुप्सा भीर्निन्द्य वर्णचतुष्टयम् ॥ २६८ ॥
मिथ्यात्वमुपघातश्च त्रिचत्वारिंशत स्मृताः । अजघन्यश्चतुर्भेदः परे साद्यध्रुवास्त्रय ॥ २६९ ॥ युग्मम् ॥

आयुकर्मके चारो ही भेद सादि और अध्रुव ये दो भेदरूप रहते हैं । इस प्रकार मूल प्रकृतियोंमें अनुभागके आठ भेदोंका संभवासभव समझना । २६५ ।

अब उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्टादि तथा उसके साथ सादि आदि भगोंको जोडकर आठ भेदोंको बताते हैं ।— कार्मण, अगुरुलघु, प्रशस्त वर्ण रस गध स्पर्श—ये चार, तैजस, निर्माण—इन आठ प्रकृतियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभाग सादि आदि चारो प्रकारका है । वर्ण गध रस स्पर्श—ये नामकर्ममें चार नामकर्म हैं । इनमेंसे गंधके दो भेद—सुगंध दुर्गंध ये हैं । रसके पाच भेद, वर्णके पाच भेद तथा स्पर्शके आठ उत्तर भेद हैं । यह वर्णन पूर्वमें प्रकृतियोंके भेद दिखाते समय आचुका है । परन्तु इनके अनुभागमें प्रशस्त तथा अप्रशस्तपना रहता है इसलिये ये वीसो भेद अथवा मूल चार भेद प्रशस्त अनुभागवाले भी माने जाते हैं और अप्रशस्त अनुभागवाले भी माने जाते हैं । प्रशस्तको पुण्यानुभाग और अप्रशस्तको पापानुभाग कहते हैं । २६६ ।

इन्ही ऊपरकी आठ प्रकृतियोंमें अनुत्कृष्टको छोडकर शेप जो उत्कृष्ट जघन्य अजघन्य ये तीन भेद होते हैं वे सादि तथा ध्रुव ऐसे दो उत्तर भेदोंको लिए हुए होते हैं । ऐसा सर्वज्ञ देवने बताया है । २६७ ।

ज्ञानावरण और अंतरायके उत्तर भेद दश, दर्शनावरण नौ, क्रोधादि कषाय सोलह, जुगुप्सा, भय, अप्रशस्त वर्णादि चार, मिथ्यात्व, उपघात—इन तेतालीस प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभाग सादि आदि चार ही प्रकारका है । और इन्ही तेतालीसके जघन्यादि शेष तीन अनुभाग सादि तथा अध्रुव ऐसे दो भेदको लिए हुए होते हैं । २६८–२६९ ।

॥२९१॥

उत्कृष्टाद्या· समस्तानां प्रकृतीनामुदाहृताः । चत्वारोऽपि द्विधान्यासां साद्यध्रुवविकल्पतः ॥ २७० ॥
स्वमुखेनैव पच्यन्ते मूलप्रकृतयोऽखिला· । उत्तरास्तुल्यजातीया पुनरन्यमुखेन च ॥ २७१ ॥
आयुर्दर्शनचारित्रमोहप्रकृतयः पर । स्वमुखेनैव पच्यते सर्वदैवोत्तरास्वपि ॥ २७२ ॥
उदीयते मनुष्यायुर्नरकायुर्मुखेन नो । चारित्रमोहन जातु दृष्टिमोहमुखेन नो ॥ २७३ ॥
अनुभाग प्रकृष्टोऽस्ति प्रशस्तानां विशुद्धित । सक्लेशतोऽप्रशस्तानां जघन्य· पुनरन्यथा ॥ २७४ ॥

इन ऊपरकी तेतालीस प्रकृतियोंके शिवाय शेष रही सर्व उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्टादिक चारो ही भेदोंमें सादि और अध्रुव ये दो दो भेद मिलते है ॥ २७० ॥

आठ मूल प्रकृति अपने अपने मुखसे ही विपाकको प्राप्त होती हैं। और उत्तर प्रकृतियोंमें जो समान समान जातिकी प्रकृति है वे पर मुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं और स्वमुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं। जिस प्रकृतिका जो नाम है और उसका जो अर्थ होता है उसीके अनुसार फल देना वह स्वमुखसे विपाक कहाता है। अपने नामके अनुसार फल न देकर जो प्रकृतिका फल उसकी सजाति दूसरी किसी प्रकृतिके अनुसार देना उसे परमुख विपाक कहते हैं। जैसे अनंतानुबंधी कर्म विसयोजनादि क्रियाद्वारा अप्रत्याख्यानावरणादि रूप होकर भी फल देते हैं। इस विपाकको परमुखसे हुआ विपाक कहते हैं। और जो बाधते समय अनतानुबधी रूप है वह फल भी अनतानुबधीका ही दे तो उसको स्वमुखसे हुआ विपाक कहते हैं। २७१ ।

आयु चारो, दर्शन मोह, चारित्र मोह—ये प्रकृति उत्तर प्रकृति होकर भी सदा स्वमुखसे ही विपाकको प्राप्त होती हैं। तात्पर्य-मनुष्यायु कभी भी नरकायुके रूपसे परिणत नहीं होती। चारित्र मोह कर्म कभी दर्शनमोहरूप नहीं होता ।२७२-२७३।

सक्लेशकी घटती रहकर विशुद्धिकी बढवारी रहनेसे प्रशस्त प्रकृतियोंमें अनुभाग प्रकृष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पडता है। और यदि सक्लेशकी वृद्धि हो तो अप्रशस्त—अशुभ प्रकृतियोंमें अनुभाग उत्कृष्ट पडता है। और जघन्य अनुभागके कारण इससे उलटे हैं। अर्थात्, विशुद्धिकी हीनतासे शुभ प्रकृतियोंमें अनुभाग जघन्य पडता है। संक्लेशकी हीनतासे अशुभ प्रकृतियोंमें अनुभाग जघन्य पडता है। २७४ ।

द्वाचत्वारिंशतस्तीव्र' प्रशस्तानां विशुद्धितः । सक्लेशतोऽप्रशस्तानां द्वाशीतेर्वामदृष्टिषु ॥ २७५ ॥
त्रीण्यायूंषि शरीराणि पंच त्रसचतुष्टयम् । अगोपांगत्रय निर्मिदाद्ये सस्थानसंहती ॥ २७६ ॥
परघातागुरुलघ्वाह्वे सुरद्वयनरद्वये । सुभगोच्चस्थिरोच्छ्वासाः सद्गमोरीतिसुस्वरे ॥ २७७ ॥
पचेन्द्रिय शुभादेये शस्तं दर्णचतुष्टयं । तीर्थकृत्वातपोद्योता यश साते शुभाः स्मृता' ॥ २७८ ॥ विशेषकम् ॥
प्रशस्तास्वातपोद्योततैरश्चमनुजायुषाम् । तीव्रो मिथ्यादृशि ज्ञेयः शेषाणां शुद्धदर्शने ॥ २७९ ॥
मानुषौदारिकद्वन्द्वे जीवौ सहतिमादिमाम् । प्रकृष्टीकुरुत पंच सद्दृष्टी सुरनारकौ ॥ २८० ॥

आगे व्यालीस प्रकृतियोंका वर्णन करते हैं । उन शुभ व्यालीस प्रकृतियोंमें तीव्र अनुभाग परिणाम-विशुद्धिके द्वारा होता है । और व्यासी अशुभ प्रकृतियोंमें तीव्र अनुभाग संक्लेशकी वृद्धिसे मिथ्यादृष्टियोंके पडता है । २७५ ।

अब शुभ व्यालीस प्रकृतियोंको गिनाते हैं ।—नरकायुको छोडकर शेष तीन आयु, पांच औदारिकादि शरीर नाम कर्म, त्रसादि चार—त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, अंगोपांग नामकर्म तीन—औदारिक शरीरांगोपाग, वैक्रियिक शरीरागोपाग, आहारक शरीरागोपाग, निर्माण, प्रथम संस्थान, प्रथम संहनन, परघात, अगुरुलघु, देवगतिद्वय, मनुष्यगतिद्वय, सुभग, उच्चगोत्र, स्थिर, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, सुस्वर, पचेंद्रिय, शुभ, आदेय, शुभ दर्णादि चार, तीर्थकरत्व, आतप, उद्योत, यश कीर्ति, सातावेदनीय—ये व्यालीस शुभ प्रकृति हैं । २७६--२७८ ।

इन शुभ प्रकृतियोंमें जो आतप, उद्योत, तिर्यगगति, मनुष्यगति—ये चार प्रकृति हैं इनका तीव्र अनुभाग बध मिथ्यात्व गुणस्थानमे होता है, शेष अडतीसका तीव्र अनुभाग बध शुद्ध सम्यग्दृष्टिके होता है । २७९ ।

वे सम्यग्दृष्टि कौनसे हैं जो अडतीसका तीव्र अनुभागबंध करते हैं ? इस बातको आगे दिखाते हैं ।—

मनुष्यद्वय, औदारिकद्वय, आदिका एक संहनन—इन पाच प्रकृतियोंमें तीव्र अनुभागबधको सम्यग्दृष्टि देव तथा सम्यग्दृष्टि नारकी करते हैं । २८० ।

॥२९३॥

द्वाचत्वारिंशतस्तस्य देवायुरप्रमत्तकः । तीव्रां द्वात्रिंशतं शेषां कुर्वते क्षपकाः परं ॥ २८१ ॥
४×५×१+३२=मिश्रिता· ४२ ॥
दश ज्ञानांतरायस्था दर्शनावरणे नव । नीच षड्विंशतिं मोहे निन्द्यं वर्णचतुष्टयं ॥ २८२ ॥
श्वभ्रतिर्यग्द्वये पच सस्थानान्ययशोऽशुभं । नारकायुरनादेयमसातं विकलत्रिकम् ॥ २८३ ॥
पंचसहतयः सूक्ष्मं दुःस्वरासन्नभोगती । साधारणमपर्याप्तं दुर्भगं स्थावरास्थिरे ॥ २८४ ॥
एकाक्षमुपघात च द्व्यशीतिर्वामदृष्टिना । प्रकृतीनामप्रशस्तानां प्रकृष्टीक्रियतेऽगिना ॥ २८५ ॥ कालापकम् ।
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूंपि श्वभ्रद्वयमपूर्णकम् । विकलत्रितयं सूक्ष्मं साधारणकमित्यमूः ॥ २८६ ॥
एकादश नृतिर्यञ्चः प्रकृतीरप्रशस्तकाः । मिथ्यात्ववासितस्वांतास्तीव्रीकुर्वंति जन्तवः ॥ २८७ ॥ युग्मम् ॥

ब्यालीसमेंसे एक देवायु है उसमें तीव्र अनुभागबंधको अप्रमत्त—सातवें गुणस्थानवाला जीव करता है । पची बत्तीस प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट अनुभाग बधको क्षपक श्रेणीवाले आठवें गुणस्थानसे लेकर करते हैं । २८१ । (४+५+१+३२=४२)

ज्ञानावरण तथा अंतरायकी दश प्रकृति, दर्शनावरणकी नौ, नीचगोत्र, मोहकी सर्व छब्बीस प्रकृति, अप्रशस्त वर्णादि चार, नरकगति द्वय, तिर्यंचगतिद्वय, आदिके संस्थानको छोडकर शेष पाच सस्थान, अयश कीर्ति, अशुभ, नरकायु, अनादेय, असातावेदनीय, विकलेंद्रिय तीन, आदिके एक संहननको छोडकर शेष पाच संहनन, सूक्ष्मत्व, दु:स्वर, अशुभ विहायोगति, साधारण, अपर्याप्त, दुर्भग, स्थावर अस्थिर, एकेंद्रिय, उपघात-इन ब्यासी अप्रशस्त प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट अनुभागबधको मिथ्यादृष्टि जीव करता है । २८२—२८५ ।

इन ब्यासी प्रकृतियोंमेंसे कौन कौनसी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागको कौन कौनसा मिथ्यादृष्टि बांधता है इसका विशेष वर्णन आगे करते हैं ।—

नरकायु, तिर्यंच आयु, मनुष्यायु—ये तीन आयु, नरकगतिद्वय, अपर्याप्त, विकलेंद्रियके तीन जाति नामकर्म, सूक्ष्म, साधारण—इन ग्यारह अशुभ प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागको मिथ्यादर्शनसे दूषित अतःकरणवाले मनुष्य तथा तिर्यंच जीव बांधते हैं ।२८६—२८७।

देवो वामदृगुत्कृष्टानेकाक्षस्थावरातपान् । उद्योत कुरुते श्वाभ्रः सप्तमीभूमिमाश्रितः ॥ २८८ ॥
तिर्यग्द्वयमनादेय प्रकृतीनामिद त्रय । प्रकृष्टीकुरुतो देवौ कुदृष्टी देवनारकौ ॥ २८९ ॥
प्रकृतीनामष्टषष्टिं चतुर्गतिगताः पर । उत्कृष्टीकुर्वते तीव्रकषाया वामदृष्टयः ॥ २९० ॥
तिर्यगायुर्मनुष्यायुरातपोद्योतलक्षणम् । प्रशस्तासु पुरा दत्त प्रकृतीनां चतुष्टयम् ॥ २९१ ॥

एकेंद्रिय, स्थावर, आतप–इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग बंधको मिथ्यादृष्टि देव करते हैं । एक उद्योत प्रकृतिके तीव्र अनुभागबंधको सातवीं नरकभूमिमें रहनेवाले मिथ्यादृष्टि नारकी जीव करते हैं। २८८ ।

तिर्यगतिद्विय, अनादेय–इन तीन प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट अनुभाग बंधको मिथ्यादृष्टि देव–नारकी करते हैं । २८९ ।

अशुभ ब्यासी प्रकृतियोंमेंसे शेष रही अडसठि (६८) प्रकृति–इन अडसठिमें तीव्र अनुभाग बंधको चारो गतिके तीव्रकषायी मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं । २९० ।

प्रथम ऊपर प्रशस्त प्रकृति ब्यालीस और अप्रशस्त प्रकृति ब्यासी गिनाई हैं । उनमेंसे आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यगायु–इन चार प्रकृतियोंका ब्यालीस प्रशस्त प्रकृतियोंमें संग्रह किया है । ब्यासी अप्रशस्त प्रकृतियोंको, गिनाते समय, उन अप्रशस्तोंमें इन चारका संग्रह नहीं किया है । परतु उन ब्यासी प्रकृतियोंको गिनाकर उनमेंसे नीचे जो जुदी जुदी प्रकृतियोंका विशेष स्पष्टीकरण किया है उस समय उक्त चार प्रकृति (आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यगायु-) का फिरसे ग्रहण किया है । इस लिये ब्यासीके स्थानमें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी संख्या छयासी हो जाती है । अब यहां शंका यह होती है कि अप्रशस्त प्रकृति ब्यासी मानी जाय किंवा छयासी मानी जाय ? यदि वास्तवमें ये चार प्रकृति अप्रशस्त भी हैं तो अप्रशस्त प्रकृति ब्यासी न बता कर छयासी बतानी चाहिये थी ? और यदि अप्रशस्त प्रकृति ब्यासी ही मानी गई हैं । और वह मानना ठीक है तो अप्रशस्त प्रकृतियोंके विशेष स्पष्टीकरण वाले प्रकरणके बीचमें इन आतपादि चार प्रकृतियोंका समावेश करना ठीक नहीं था ? इस प्रश्नमालाको ध्यानमें लेकर ग्रथकार उसका खुलासा आगे करते हैं ।–

तिर्यगायु, मनुष्यायु, आतप, उद्योत–ये चार प्रकृति, प्रशस्त ब्यालीस प्रकृतियोंमें प्रथम ऊपर गिनाई हैं । वे वास्तवमें

तीव्रानुभागबंधासु मध्ये यद्यपि तत्त्वतः । संभवापेक्षया भूयो मिथ्यादृष्टेः प्रदीयते ॥ २९२ ॥
अप्रशस्तं तथाप्येतत्केवल व्यपनीय ते । षडशीतेरपनीते द्व्यशीतिर्जायते पुनः ॥ २९३ ॥
८६ अपनयने ८२ ॥

प्रशस्त ही हैं । और यहां तीव्रानुभाग बंधवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंके बीचमें भी मिथ्यादृष्टिके संभव होनेसे वे फिरसे बताई हैं। परंतु यहांपर जो उनका संग्रह किया है वह उनका अप्रशस्तपना दिखानेके लिये नहीं है किंतु उस देव मिथ्यादृष्टिकी और सप्तम नरकके मिथ्यादृष्टिकी तथा मनुष्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंकी उत्कृष्ट अनुभागबंधवाली प्रकृतियोंको मात्र दिखानेके बीचमें आ जानेसे वे चार प्रकृति भी यहींपर संग्रह करके बतानेमें आई हैं। इसलिये यहांपर गिनानेसे जो उन चारोंमें भी औरोंके संसर्गसे अप्रशस्तपना आना संभव है वह अप्रशस्त विशेषण उनका केवल हटादेना चाहिये और तीव्रानुभाग बंधके स्वामी आदिका प्रयोजनभूत ज्ञान लेना चाहिये । इस प्रकार छ्यासीमेंसे अप्रशस्तकी संख्याको देखनेके समय उक्त चारको घटाकर ब्यासी ही अप्रशस्त प्रकृति समझनी चाहिये । २९१–२९३ ।

विशेष– ब्यासी अप्रशस्त और ब्यालीस प्रशस्त प्रकृतियोंको मिलानेसे सर्व एकसौ चौवीस संख्या होती है। और बंधकी प्रकृति सर्व १२० ही बताई हैं । सत्ताकी १४८ प्रकृतियोंमेंसे पांच बंधन, पांच संघात तथा वर्णादि चारके उत्तरभेद २० मेंसे बंध किसी एक एकका ही होनेसे बंधकी चार संख्या रखकर शेष १६ वर्णादि–इस प्रकार सर्व २६ प्रकृति बंधमें नहीं जोडी जाती । इस लिये बंधप्रकृति १२० है । और इन्हीके शुभ अशुभ अथवा प्रशस्त अप्रशस्त ऐसे दो सामान्य विभाग है । परंतु यहांपर ब्यालीस प्रशस्त और ब्यासी अप्रशस्तको जोडनेसे जो १२४ सर्व संख्या होती है वह कैसे? चार संख्या कैसे बढ जाती है? इसका उत्तर यह है कि वर्णादि चार प्रकृतियोंको ब्यालीस प्रशस्तमें भी गिनाया है और अप्रशस्त ब्यासीमें भी गिनाया है । इसलिये चार संख्या बढी हुई जान पडती है ।

दश ज्ञानांतरायस्था दृगावृतिचतुष्टयम् । मदत्वं नयते सूक्ष्मः समयेन्त्ये चतुर्दश ॥ २९४ ॥
पच पुवेदसंज्वालाः प्रकृतीरनिवृत्तिक । रतिं हास्य जुगुप्सा भीर्निन्द्य वर्णचतुष्टयम् ॥ २९५ ॥
नयते प्रचलितानिद्रे उपघातमपूर्वक । मदानुभागबधत्वमेकादश विशुद्धधीः ॥ २९६ ॥
आहारकद्वय शश्वदप्रमत्तेन साधुना । शोकारती प्रमत्तेन मदत्व नीयते पुनः ॥ २९७ ॥
मिथ्यात्वमादिकोपादिचतुष्क स्त्यानगृद्धय । तिस्रश्चाष्टेति नीयन्ते मदत्व वामदृष्टिना ॥ २९८ ॥
असयतो द्वितीयाना कषायाणां चतुष्टय । देशव्रतस्तृतीयानां मदत्व नयते पुन ॥ २९९ ॥

अव उत्कृष्ट अनुभागको दिखाकर जघन्य अनुभागको दिखाते हैं ।—

ज्ञानावरण—अतरायकी मिलाकर दश प्रकृति, और दर्शनावरणकी चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृति—इन चौदह प्रकृतियोंमें सूक्ष्मकषाय—दशवें गुणस्थानका जीव अत समयमें मद अर्थात् अनुभाग बधको जघन्य करता है । २९४ ।

पुरुषवेद तथा सज्वलन चार क्रोधादि कषाय— इन पाच प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग बधको अनिवृत्ति-करण नौवें गुणस्थानवाला करता है ।

रति, हास्य, जुगुप्सा, भय, अप्रशस्त वर्णादि चार, प्रचला, निद्रा, उपघात—इन ग्यारह प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको अपूर्वकरण—आठवें गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि जीव करता है । २९५-२९६ ।

आहारक शरीर तथा आहारक शरीरांगोपाग—इन दो प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको अप्रमत्त—सातवें गुणस्थानवाला ही साधु बाधता है । और शोक, अरति—इन दो प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबधको प्रमत्त—छट्ठे गुणस्थानवाला करता है ।२९७।

मिथ्यादर्शन, आदिके—अनंतानुबधी चार क्रोधादि कषाय, स्त्यानगृद्धि—प्रचलाप्रचला—निद्रानिद्रा—ये तीन दर्शनावरण—इन आठ प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागबधको मिथ्यादृष्टि करता है । २९८ ॥

असयत सम्यग्दृष्टि—चौथे गुणस्थानवाला दूसरे—अप्रत्याख्यानावरण कषाय चारमें जघन्य अनुभागको करता है । तीसरे—प्रत्याख्यानावरण कषाय चारमें देशव्रत—पाचवें गुणस्थानवाला जघन्य अनुभागबंधको करता है ॥ २९९ ॥

इत्येताः प्रकृतीरेते सयमाभिमुखास्त्रय । मन्दानुभागवन्धत्वं नयन्ते पोडश क्रमात् ॥ ३०० ॥
आयुश्चतुष्टय सूक्ष्म षट्कं वैक्रियिकाह्वयं । साधारणमपर्याप्त त्रय विकलगोचरम् ॥ ३०१ ॥
मिथ्यादृशो नृतिर्यञ्चो मदीकुर्वन्ति पोडश । उद्योतौदारिकद्वन्द्वे तिस्रस्त्रिदशनारका ॥ ३०२ ॥
तिर्यग्द्वितयनीचानां तिसृणां कुर्वतेऽगिन । मन्दानुभागवन्धत्वं सप्तमीभवनीङ्गताः ॥ ३०३ ॥
मंदत्वं स्थावरैकाक्षे द्वे तिर्यग्देवमानवा । कुर्वते मध्यमे भावे वर्तमानाः शरीरिण ॥ ३०४ ॥

इस प्रकार मिथ्यात्व, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, और अनतानुबंधी आदि बारह कषाय–इन सोलह प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागबधको करनेवाले क्रमसे मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि तथा देशसयत–ये तीन गुणस्थानवाले बताये हैं, परतु ये तीनों सयमके सम्मुख जब होते हैं तभी इन सोलह प्रकृतियोंमें जघन्यानुभागको बाधते हैं।

भावार्थ, यदि ये तीनो गुणस्थानवाले अपने अपने स्थानमें रह कर सकल सयमकी तरफ वर्धमान विशुद्धिवाले न हों तो उक्त सोलह प्रकृतियोंमें मंद अनुभागको नहीं बांध सकते । ३०० ।

चार आयु, सूक्ष्म, वैक्रियिक षट्क (छह), साधारण, अपर्याप्त, विकलेंद्रियकी तीन जाति–इन सोलह प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको मिथ्यादृष्टि मनुष्य–तिर्यंच बाधते हैं। और उद्योत, औदारिकद्वय–इन तीन प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको मिथ्यादृष्टि देव अथवा नारकी बांधते हैं । ३०१–३०२ ।

तिर्यग्गतिद्वय तथा नीचगोत्र–इन तीन प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको सातवीं नरकभूमिके नारकी जीव करते हैं । ३०३ ।

स्थावर, एकेंद्रिय जाति–इन दो प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको वे तिर्यंच, देव, मनुष्य बाधते हैं जो मध्यम परिणामोंको धारण करनेवाले होते हैं । ३०४ ।

एकं सौधर्मदेवान्ता आतप वामदृष्टय । मनुष्यास्तीर्थकर्तृत्वं मदीकुर्वन्त्यसंयता ॥ ३०५ ॥
उच्छ्वासागुरुलघ्वाह्वे निर्मित त्रसचतुष्टय । पचाक्ष कार्मण तेजश्चारु वर्णचतुष्टयम् ॥ ३०६ ॥
परघात च सक्लिष्टाश्चतुर्गतिनिवासिनः । मदाः पचदशाप्येताः कुर्वते वामदृष्टयः ॥ ३०७ ॥
मिथ्यात्वाकुलितास्तीव्रविशुद्धिगतमानसा । आरोपयन्ति मदत्व स्त्रीनपुसकवेदयो ॥ ३०८ ॥
वेद्यद्वय स्थिरद्वंद्व शुभद्वन्द्व यशोद्वयम् । अष्टैताः कुरुते मन्दाः सद्दृष्टिरितरोपि च । ३०९
षट्के सस्थानसहत्योरुच्चैर्गोत्र सुरद्वयम् । मनुष्यद्वयमादेयद्वय हि सुभगद्वय ॥ ३१० ॥
विहायोगमनद्वंद्वं विंशति त्रिभिरन्विताम् । प्रपन्ना मध्यम भावं मन्दीकुर्वन्ति दुर्दृश' ॥ ३११ ॥

एक आतप प्रकृतिमें जघन्य अनुभागको सौधर्म पर्यंतके मिथ्यादृष्टि देव बाधते हैं। और तीर्थंकर प्रकृतिमें जघन्य अनुभागको असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य बांधते हैं। ३०५।

उच्छ्वास, अगुरुलघु, निर्माण, त्रसादि चार, पचेंद्रिय जाति, कार्मण, तैजस, वर्णादि प्रशस्त चार, परघात–इन पंद्रह प्रकृतियोंमें चारो गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीव जघन्य अनुभागको बाधते हैं।३०६–३०७।

मिथ्यादृष्टि जीव, परंतु जिनकी मानसिक विशुद्धि उत्कृष्ट है, वे स्त्री वेद, नपुसक वेद—इन दो प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको करते हैं।३०८।

वेदनीय दो, स्थिर दो, शुभ दो, यश कीर्ति दो—इन आठ प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको सम्यग्दृष्टि भी बाधता है और मिथ्यादृष्टि भी बांधता है।३०९।

छह सस्थान, छह सहनन, उच्चगोत्र, देवगतिद्विय, मनुष्यगतिद्विय, आदेय द्वय, सुभग द्वय, विहायोगति द्वय,—इन तेईस प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको वे मिथ्यादृष्टि बाधते हैं जो मध्यम परिणामोंके धारक हैं।३१०–३११।

॥२९९॥

संज्ञा कथ्यन्ते—

भवन्ति सर्वघातिन्य कषाया द्वादशादिमा । आद्या दृग्रोधने पच प्रान्ते ज्ञानेक्षणावृती ॥ ३१२ ॥

मिथ्यात्व विंशतिर्बंधे सम्यग्मिथ्यात्वसयुता । उदये ता पुनर्दक्षैरेकविंशतिरीरिताः ॥ ३१३ ॥

बधे २० । उदये २१ ॥

अब अनुभागोंकी विशेष सज्ञाएं कहते हैं ।—

सोलह कषायोंमेंसे अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण—ये बारह कषाय, दर्शनावरणके आदिके पाच निद्रारूप दर्शनावरण, और प्रात अर्थात अतका एक दर्शनावरण—केवल दर्शनावरण, पव एक केवल ज्ञानावरण, मिथ्यात्व—ये बीस प्रकृति बधके प्रकरणमें सर्वघाती कहाती हैं । उदयके प्रसगमें ये बीस और सम्यङ्मिथ्यात्व—ऐसे इक्कीस प्रकृति सर्वघाती मानी गई हैं । बधमें २० । उदयमें २१ ।

किसी आत्मगुणको जो प्रकृति सर्वांशमें घात करे उसे सर्वघाती कहते हैं । सर्वघातीके उदयमें जीवका वह घाता जानेवाला गुण नाममात्र भी प्रकाशित नहीं रहता है । मोहके सर्व २८ भेद हैं । उनमेंसे दर्शनमोहके ३ भेद हैं और चारित्रमोहके २५ भेद हैं । दर्शनमोहके तीन भेदोंमेंसे पहिला मिथ्यात्व है वह सर्वघाती है । मिथ्यात्वकर्मका हुआ जो बंध वह सम्यग्दर्शन गुणके सर्वांशको घातनेवाला है । उस अवस्थामें सम्यग्दर्शनका अशमात्र भी ऐसा शेष नहीं रहता जो कर्म बधनसे छूटा हुआ हो । यद्यपि बंधके समय कर्मका फलरूप कोई कार्य प्रगट नहीं होता है । और इसलिये उस कर्मकी घातुकताका भी कोई परिचय अथवा अनुभव नहीं हो पाता है । परतु बधमें आजानेवाले कर्मके जोरसे अथवा ससर्गसे भी अनेक अनिष्ट परिणाम होते हैं । उदाहरणार्थ, मिथ्यात्वके बध मात्रसे जीवके इतर बहुतसे कर्मोंके अनुभाग मद नहीं पडपाते हैं । इतर बहुतसे कर्म जो कि मिथ्यात्वके ही साथ रह सकते हैं उनका बध भी मिथ्यात्वके बंध होनेसे होता है । अर्थात् मिथ्यात्वकर्म बधके समयसे ही अपना इतर कर्मोंका मंडल ऐसा संग्रहमें तयार करता है कि मिथ्यात्वरूप परिणाम होनेमें वह मडल सहायता करे । जैसे अनंतानुबधीका बध मिथ्यात्वके

बंधवालेके रहता ही है। इसलिये बंधकी प्रकृति भी जीवके पारतन्त्र्यको वैसी ही बनाये रखनेमें सहायक होती हैं जैसा कि उन अनुभागबंध सर्वघाती अथवा देशघाती उत्पन्न हुआ हो। और वास्तवमें वे सर्वघातरूप फलको उदयमें आकर देते है।

चारित्रमोहके सर्व पच्चीस भेद हैं उनमेंसे अनंतानुबंधी आदि बारह आदिके कषाय सर्वघाती माने हैं। अनंतानुबंधीसे अप्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरणसे प्रत्याख्यानावरण—ये उतरती हुई घातक शक्तिको रखते हैं तो भी सर्वघाती बारह ही कषाय माने गए हैं। इसपरसे शका यह होती है कि जो सर्वोत्कृष्ट घातक शक्तिको रखता है वह कर्म सर्वघाती माना जाना ठीक है, परन्तु जो उससे उतरती शक्तिको रखता है वह कर्म जीवशक्तिका सर्वांशघातक कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि घातिके अर्थ दो हैं, एक तो ऐसा कि जीवकी पूरी शक्तिको घातना, दूसरा अर्थ ऐसा कि उस जीवशक्ति अधूरी चाहे तो भले ही प्रगट हो जाय परतु उसको पूर्ण प्रगट न होने देना। पहिला अर्थ लेनेसे जीवकी शक्तिका प्रादुर्भाव ही होने नहीं पाता है। जैसे, मिथ्यात्वके उदयसे जीवका सम्यग्दर्शन गुण प्रगट ही नहीं होता है। चारित्रमोहके प्रथम चार अनंतानुबंधी कषाय भी ऐसे ही हैं कि जीवके चारित्र गुणको प्रगट ही नहीं होने देते। अनंतानुबंधीके उदयमें जीवका चारित्र गुण सर्वथा मलिन अथवा विकृत बना रहता है। इसलिए अनंतानुबंधीके उदयमें जीव अपने हिताहितकी प्रवृत्तिनिवृत्तीको कर ही नहीं सकता है। यद्यपि इसका कारण मिथ्यात्वका भी उदय है। जबतक मिथ्यात्वका उदय है तबतक जीवकी हिताहित पहिचाननेकी शक्ति नष्ट रहती है, परन्तु हिताहितको न पहिचानना मिथ्यात्वका कार्य मानलें तो भी न पहिचाननेसे जो प्रवृत्तिका भी अनुकूल न होना—यह कार्य है वह दूसरे कर्मका कार्य है। अनुकूल प्रवृत्ति न होने देनेका कारण चारित्रमोह कर्मका उदय ही मानना पडता है। इसीलिये मिथ्यात्वके हट जानेसे जहा केवल सम्यग्दर्शन होता है वहा सयमका अश जागृत न होते हुए भी स्वरूपाचरण चारित्ररूप अनुकूल परिणाम प्रगट होते ही हैं और उन परिणामोंके प्रगट होनेका कारण अनंतानुबंधीका अभाव हो जाना है। इसीलिये सम्यग्दर्शन जब प्रगट होता है उस समय अनंतानुबंधीका भी उपशम होना माना गया है।

एवं मिथ्यात्वका उदय न रहनेपर केवल अनंतानुबंधीका उदय होजानेसे स्वरूपाचरणका अभाव भी हो जाता है ऐसी अवस्था सासादन नामके दूसरे गुणस्थानमें होती है। वहापर चाहे सम्यग्दर्शनका अस्तित्व व्यवहारमें न माना जाय परन्तु 'सासादन—

सम्यक्त्व ' इस नामसे दूसरे गुणस्थानमें केवल स्वरूपाचरण चारित्रका ही अभाव होता है, सम्यक्त्वका नहीं, ऐसा अर्थ ध्वनित होता है। स्वरूपाचरण चारित्र सम्यक्त्वके विना नहीं रहता है और सम्यक्त्व स्वरूपाचरणके विना नहीं रहता है—ऐसा नियमसा हो रहा है। ऐसा माननेका प्रयोजन इतना ही है कि एकके विना दूसरा प्रगटमें कार्यकारी न हो। इसीलिये दोनों जहा प्रगट होते हैं ऐसे चतुर्थ गुणस्थानमें दोनो स्वभावोंकी सार्थकता होती है और मुख्यताकी अपेक्षासे सम्यग्दर्शनका अस्तित्व भी वहींपर माना जाता है। इस सार्थक वृत्तिके न रहनेसे दूसरे गुणस्थानमें सम्यक्त्वका नाश मानलिया जाता है। परन्तु जहांतक मिथ्यात्वका उदय नहीं हुआ वहातक सम्यक्त्वका पूरा नाश कैसा ?

सम्यक्त्वका पूरा नाश जहांपर नहीं हुआ ऐसी एक अवस्था, और सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व जहांपर प्रगट होगया ऐसी एक अवस्था—ये दो ही अवस्था सम्यक्त्वके बाद नीचेकी हो सकती हैं। दूसरे गुणस्थानमें सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व प्रगट नहीं होता इसलिये सम्यक्त्वका पूरा नाश नहीं हुआ, ऐसा मानना पडता है। यहापर केवल अनतानुबंधीके उदय होजानेसे स्वरूपाचरण चारित्रगुण नहीं रहता, यह चारित्र अथवा संयमके पूर्ण अभावका उदाहरण है। यहापर अनंतानुबंधीने जो सयम गुणका घात किया है वह सर्वांश रूपसे किया है। दूसरा सर्वघातीका अर्थ यह है कि उस गुणको पूर्ण प्रगट न होने दे। यह अर्थ प्रत्याख्यानावरणके उदय समय दीख पडता है।

प्रत्याख्यानावरणका अर्थ ऐसा है कि प्रत्याख्यान अर्थात् त्याग, उस त्यागको रोके वह प्रत्याख्यानावरण है। यहांपर प्रत्याख्यानका अर्थ सर्वथा त्याग है। उपाधिका सर्वथा त्याग करके सयमकी विशुद्धताको प्राप्त करनेवाले जो होते हैं वे संन्यासी, मुनि, छट्ठे गुणस्थानवर्ती साधु कहाते हैं। उनकें सयम गुणकी प्राप्ति सर्वघातीके अभावसे ही होती है। इससे प्रथम जो देशसयमकी प्राप्ति पांचवें गुणस्थानमें हुई है वह भी सर्वघाती—अप्रत्याख्यानावरणके अभाव होजानेसे ही हुई है। अप्रत्याख्यानावरणमें 'अ' का अर्थ ईषत्, थोडासा—ऐसा है। थोडेसे प्रत्याख्यान—अर्थात् त्यागको भी जो न होने दे उस अप्रत्याख्यानके आवरण करनेवाले कर्मको अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं। इसका उदय जबतक होता है तबतक संयममें प्रवेश ही नहीं होता। यह भी सर्वघाती ही कर्म है।

इस प्रकार सर्वघाती चारित्रमोहके तीन भेद हैं। ये तीनो ही जुदा जुदा कार्य करते हैं। परंतु इनमेंसे एकका भी उदय जबतक होता रहता है तबतक जीव सयमको प्राप्त नहीं होता है। देशसयम-श्रावकके संयमको सयम नहीं कहते हैं। देशसंयमका अर्थ संयमकी तरफ उन्मुख होना है। देशसयमवाला जीव सयम अर्थात् त्यागकी केवल तयारी करता है। तयारीका अर्थ ऐसा, कि पापारभमें जो निरर्गल प्रवृत्ति आजतक होरही थी उसकी वह सीमा बाधता है। अत्यंत दुष्कृत्योंको विचार कर छोड देता है। परतु यह त्यागका अथवा सयमका साक्षात् स्वरूप नहीं है, किंतु असंयमका परिशोधन, संस्कार अथवा संयमकी तरफ सम्मुख होना है। इस तयारीके होते हुए भी सयमका लाभ जो नहीं होने देता वह प्रत्याख्यानावरण कषाय है। इसको एक इस प्रकारसे भी कह सकते हैं कि—अनतानुबधी सयमके संरभको ही नहीं होने देता, अप्रत्याख्यानावरण समारभको नहीं होने देता, और प्रत्याख्यानावरण सयमके आरभको नहीं होने देता।

इस प्रकारसे देखते हैं तो चारित्रमोहके अनंतानुबंधी आदि तीनो ही भेद संयमके सर्वघाती कर्म हैं। ये तीनो ही कर्म संयमका घात केवल तरतम भावसे ही नहीं करते हैं किंतु इनके घातनेकी तरह ही जुदी जुदी है। इसलिये इन तीनोंमें सयमघातके तरतम सामर्थ्यद्वारा ही परस्परके भेद प्राप्त नहीं हुए हैं किंतु तीनोंकी जातिमें भी भेद है। इसीलिये ये तीनो ही सर्वघाती कहाये हैं। यदि केवल तरतमका ही भेद होता तो केवल अनतानुबंधी ही सर्वघाती कहाता, शेष अप्रत्याख्यानावरणादि सर्व मोह देशघाती कहाने चाहिये थे। क्योंकि, जो जीवके संयमको पूरा न घात सके वह देशघाती होता है। और प्रत्याख्यानावरणके उदय रहते भी देशसंयम होता है किंतु प्रत्याख्यानावरण, संयमका सर्वघाती कर्म है। इस प्रकार देखते हैं तो सर्वघातीके उदयमें संयमका अभाव रहना भी मानना पडता है। इसीलिये देशसयमको संयम न कहकर सयमकी तरफ सम्मुख होना मात्र कहना चाहिये।

आदिमें जो पांच निद्रा बताई हैं वे, और अंतका एक दर्शनावरण—केवल दर्शनावरण—ये छह प्रकृति दर्शनावरणकी सर्वघाती हैं। ज्ञानावरणमेंसे अंतकी एक केवलज्ञानावरण प्रकृति सर्वघाती है। इन प्रकृतियोंके रहते शुद्ध ज्ञान तथा शुद्ध दर्शन

गुण प्रगट नहीं होते। केवलज्ञानावरणके रहनेपर जितना ज्ञान प्रगट होता है वह निर्विकार अथवा ऐसा प्रगट नहीं होता जिसमें केवल—अर्थात् असहायपना रहता हो। इसीलिये केवलज्ञानके शिवाय शेष मतिज्ञानादि ज्ञान हैं उन्हे ज्ञान कहना उपचरित कथन ठहरता है। वास्तवमे उन्हे उपयोग कहा जाता है। क्योंकि ज्ञानका शुद्ध यदि अश भी प्रगट होजाय तो उसमें ऐसा कोई पदार्थ शेष न रहना चाहिये जो प्रतिभासित न हो। ज्ञान है तो, किसी भी पदार्थका अज्ञान क्यों रहे ? परन्तु मतिज्ञानादिक शेष चारो ही ज्ञान ऐसे है कि युगपत् सर्व वस्तुओंका सीधा ज्ञान ही उनमें नहीं होता है। अत एव शेष ज्ञान क्षायोपशमिक ही होते हैं और करणक्रमव्यवधानको लिए हुए होते हैं।

यह करणक्रमव्यवधान दोष है। इसी दोषको केवलज्ञानावरण कर्म उत्पन्न करता है। ज्ञानका केवलपना नष्ट करना इसका अर्थ दुसरे शब्दोंसे यही है कि करणक्रमव्यवधान उत्पन्न करना। और इसीको एकशब्दद्वारा कहना हो तो क्षायोपशमिकता होती है ऐसा कहना चाहिये। क्षायोपशमिक भी ज्ञानका एक ऐसा असाधारण दोष है कि वह ससारके सभी जीवोंके सर्वसमयवर्ती ज्ञानपर्यायोंमें रहता ही है। सर्वघाती ज्ञानावरणका ज्ञानगुणमें यही कार्य होता है कि जो ज्ञानको मूल स्वरूपमें न रहने देना।

घातक कर्मका ऐसा अर्थ लोग करते हैं कि वह अपने गुणको नष्ट करदे। परंतु ज्ञानावरणमें ज्ञानका घातना—इसका अर्थ नष्ट करना नहीं है। यदि सर्वघातीके उदयसे ज्ञानका नष्ट होना समव हो तो जीवका यह असाधारण गुण ही नष्ट हो जायगा। और इस असाधारण गुणके नाशसे जीवका लक्षण ही मिट जायगा। परतु यह बात वस्तुस्वभावके विरुद्ध है। इसलिये जुदे जुदे घातियोंका घातना भी जुदे जुदे प्रकारका मानना चाहिये।

अर्थात् जैसा घात जिम गुणमें सभव हो वैसा ही घातका अर्थ जुदे जुदे गुणोंमें करना चाहिये। घातक कर्मोंके नाम भी इसीलिये तत्तत्क्रियानुरूप जुदे जुदे माने गये हैं। चारित्रको घातनेवाले कर्मका नाम मोह है, ज्ञानके घातकका नाम ज्ञानावरण है। इसी प्रकार दानलाभादिका अर्थ बाह्य वस्तुके संबधसे अथवा अपेक्षासे सिद्ध होता है इसलिये इन गुणोंमें विघ्न करनेवाले कर्मका नाम अतराय है। दर्शन तथा ज्ञानकी परिस्थिति और कार्य एकसे हैं, इसलिये उन गुणोंके घातकोंके नाम आवरण— इस समान शब्द द्वारा बताये हैं।

दर्शनावरणे तिस्रश्चतस्रो ज्ञानरोधने । सज्वाला नोकषायाश्च मोहने विघ्नपचक ॥ ३१४ ॥
जायन्ते देशघातिन्यो बंधने पचविंशति । षड्विंशतिर्भवन्त्येता सम्यक्त्वेन सहोदये ॥ ३१५ ॥
बंधे २५ । उदये २६ । पिंडिता ४७ ॥

दर्शनावरणके नौ भेदोंमेंसे पाच निद्रा तथा एक केवलदर्शनावरण—ये छह प्रकृति सर्वघाती गिनाई है। केवलज्ञानावरणके समान केवलदर्शनावरणको समझना। निद्राए जो पाच हैं वे दर्शनावरणके ही भेद क्यो हैं और वे सर्वघाती क्यों हैं इसका खुलासा करते हैं। निद्राओंके समय सामान्य अवलोकनका कार्य बंद हो जाता है इसलिये वे दर्शनावरणमें गर्भित होती हैं और इसीलिये वे सर्वघातक मानी गई हैं।

वधकी अपेक्षासे ये बीस सर्वघाती हैं। और उदयकी अपेक्षासे भी वीस ये प्रकृति तो सर्वघाती हैं ही परतु एक सम्यङ्मिथ्यात्व नामकी और भी प्रकृति सर्वघाती मानी जाती है। सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति बंधमें जुदी नहीं मानी है और वह सम्यङ्मिथ्यात्व नामके तीसरे गुणस्थानके परिणामोंको पैदा करती है। वे परिणाम अपेक्षाभेदसे सम्यक् भी कहे जाते हैं और मिथ्यात्वरूप भी कहे जाते हैं। इसलिये इस सम्यङ्मिथ्यात्व नामकी प्रकृतिको अपेक्षाभेदसे ही उदयमें सर्वघाती कहते हैं।३१३।

दर्शनावरणकी सर्व प्रकृति नौ हैं उनमेंसे छह प्रकृति सर्वघाती ऊपर बताई हैं। शेष रही तीन प्रकृति—चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण ये तीन, ज्ञानावरणकी शेष रही चार प्रकृति—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण—ये चार, मोहनीयमेंसे सज्वलन चार कषाय, नौ हास्यादि नोकषाय, अतराय पांच—ये पच्चीस प्रकृति बंधप्रकरणमें देशघाती कहाती हैं। उदयके प्रकरणमें ऊपरकी पच्चीस तथा एक सम्यक्त्व प्रकृति—ये छब्बीस देशघाती मानी जाती हैं। बधमें २५ । उदयमें २६ । देश और सर्वघाती दोनो मिलकर ४७ हुई । ३१४–३१५ ।

विशेष— सम्यक्त्व प्रकृतिको देशघाती बताया है परंतु उदयमें ही उसकी गिनती की है, बंधमें नहीं की। इसी प्रकार सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिको ऊपर सर्वघाती गिनाया है, वह भी बंधमें गिनाई नहीं गई है। और अनादि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व प्रकृतिकी तथा सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिकी सत्ता भी नहीं बताई है। केवल प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेपर सत्तामेंकी मिथ्यात्व एक प्रकृतिमेंसे ही दो अधिक टूटकर टुकडे हो जाते है, उन दो टुकडोंमेंसे एकका नाम सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति है, दूसरे एक टुकडेका नाम सम्यक्त्व प्रकृति है। ये टुकडे जब हो जाते हैं उस समय सत्तामें एक मिथ्यात्वके बदले, छोटे बडे तीन कर्म हो जाते हैं। उनमेंसे दो तो ये प्रकृति हैं जो कि मिथ्यात्वमेंसे झडकर नवीन तयार हुई हैं; और एक पूर्वकी मिथ्यात्व प्रकृति ही है। इनमेंसे झडकर जो दो नवीन प्रकृति बनी हैं वे समय पाकर जब खिर जाती हैं तो फिर भी जीवकी सत्तामें मिथ्यात्व नामकी एक ही मूलकी प्रकृति शेष रह जाती है। इन दोनोंका स्वतंत्र बंध कभी नहीं होता इसीलिये बंधमें इनकी गिनती नहीं की है।

सर्वघाती प्रकृतियोंको गिनाते समय अंतरायकी प्रकृति एक भी नहीं गिनाई है। इसका कारण यह है कि अंतराय कर्म अपने सर्वांश गुणका कभी घात करता ही नहीं है। अंतरायके द्वारा घाते जानेवाले गुणका सर्व घात होना वस्तुस्वभावके विरुद्ध भी है। अंतरायके द्वारा दानादि गुणोंका भी घात होता है, परंतु मुख्य घात अव्याबाध गुणका होना बताया है। संसारके नष्ट होनेपर जो अव्याबाध गुण, शुद्ध परमात्म दशामें प्रगट होता है उसका नामशेष संसारदशाके रहते हुए भी नहीं होता। अव्याबाधका अर्थ है सर्व बाजूकी व्याबाधा हट जाना। और व्याबाधाको उत्पन्न करना अंतरायका काम है। यह अव्याबाध गुण अथवा व्याबाधा दोष ऐसा चीज नहीं है कि किसी गुणमें मलिनता थी वह हट गई हो। किंतु ज्ञानदर्शनावरण मोहनीय —इनकर्मोंके द्वारा ज्ञानादि गुण विकारी होजानेसे निराकुलता अथवा स्वस्थावस्था जीवमें नहीं रहती थी। और इस दोषको इतर घाति कर्मोंके रहते, अंतराय कर्म पैदा करता था। इसलिये ज्ञानावरणादिके हटते ही अंतरायका हटना अथवा नष्ट होना अनायास प्राप्त हो जाता है। और संसारदशामें जो व्याबाधा है वह भी जीवको पूरा बाधित नहीं करती, नहीं तो जीवका अस्तित्व ही मिट जानेका प्रसंग आ जाय। इसीलिये उस अव्याबाधको सदा शेष रहनेकी आवश्यकता है और इसीलिये अंतरायका सर्वघाती भाग कभी आवश्यक नहीं पडता।

॥३०६॥

वेद्यायुर्नामगोत्राणां प्रोक्ताः प्रकृतयोऽखिला । अघातिन्य पुन प्राज्ञैरेकोत्तरशतप्रमाः ॥ ३१६ ॥
अघातिन्य १०१ ॥ विंडिताः १४८ ॥
घातिकाभिरिमा युक्ता घातिकाः सन्त्यघातिकाः । घातिकास्तत्र पापाख्या पुण्यपापाभिधा पराः ॥ ३१७ ॥
सज्वाला ज्ञानरुध्याद्याश्चतस्रो विघ्नपञ्चक । तिस्रो दृग्रुधि पुवेदः सति सप्तदशेति याः ॥ ३१८ ॥
चतुर्विधेन भावेन सदा परिणमति ताः । त्रिविधेन पुनः शेषाः सप्तोत्तरशतप्रमाः ॥ ३१९ ॥

वेदनीयको, आयुकी, नामकी, गोत्रकी, सपूर्ण ही उत्तर प्रकृति अघाती कहाती हैं। और ये सर्व अघाती प्रकृति एकसौ एक हैं। अघाती १०१। घाति ४७ के साथ मिलानेसे १४८ होती हैं।३१६।

अघाती प्रकृति १०१ ऊपर बताई हैं। वे अघाती होकर भी घाती प्रकृतियोंके साथमें घाती समान हो जाती है। अर्थात्, घातियोंके साथमें वे अघाती भी घाति प्रकृतियोंकासा फल देती हैं। अथवा अघाती प्रकृति तभीतक फल देनेमें समर्थ रहती हैं जबतक घाती कर्मोंकी सत्ता शेष रहती है। घाती प्रकृति सर्व पापप्रकृति ही हैं, किंतु अघातियोंमें कुछ पापरूप हैं और कुछ पुण्यरूप भी हैं। ४२ पुण्य प्रकृति ऊपर गिनाई हैं और ८२ पापरूप गिनाई हैं। ३१७।

क्रोधादि चार सज्वलन कषाय, ज्ञानावरणमें आदिके चार–मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय-ज्ञानावरण–ये चार, अंतराय पांचो ही, दर्शनावरणमें आदिके तीन–चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण अवधिदर्शनावरण–ये तीन, एक पुरुषवेद–ये सर्व सत्रह प्रकृति हुई। इन सत्रहकी परिणति चार चार प्रकारसे सदा होती है। अर्थात् प्रत्येक समयमें जो इन प्रकृतियोंमें अनुभागशक्ति पडती है वह चार चार प्रकारकी होती है। और उक्त सत्रह प्रकृतियोंके शिवाय जो शेष एकसौ सात प्रकृति हैं उनका परिणमन तीन तीन प्रकारसे ही होता है। उन चार अथवा तीन प्रकारके परिणमनोंको आगे बताते हैं। ३१८–३१९।

लतादार्वस्थिपाषाणतुल्यास्ता भावतो मता । अन्या दार्वस्थिपाषाणतुल्याः सप्तोत्तरं शतम् ॥ ३२० ॥
प्रशस्तानां समा भावा गुडखडसितामृतै । अन्यासां निंबकजीरविषहालाहलैर्मताः ॥ ३२१ ॥

लता दारु अस्थि पाषाण—ये चार चीजें प्रकृतियोंके अनुभागकी तुलना दिखानेके लिये ली गई हैं। इन चार चीजोंके समान सत्रह प्रकृतियोंका अनुभाग तारतम्यको लिये हुए होता है। और जिन शेष प्रकृतियोंमें तीन प्रकारका ही परिणमन होना बताया है वह लताको छोडकर आगेके दारु अस्थि पाषाण—इन तीनके समान समझना। शेष प्रकृति १०७ हैं।

लताका अर्थ बेलि है। बेलि बहुत नरम होती है। इसी प्रकार कुछ कर्मपरमाणुओंमें फलदान शक्ति अत्यंत नरम या कोमल होती है—उस शक्तिको लता अथवा बेलिके समान कहा है। दारु लकडीको कहते हैं। लतासे लकडी अधिक कठोर होती है। इसी प्रकार लकडीके समान जो अजघन्य फलदान शक्ति होती है वह दारुसमान कहाती है। तीसरी शक्ति अस्थिके समान बताई है। अस्थिका अर्थ हड्डी है। अस्थि लकडीसे भी अधिक कठोर होती है। जो कर्मशक्ति अस्थिके समान अनुत्कृष्टरूप हो उस अस्थिसमान तीसरे दर्जेका अनुभाग समझना चाहिये। -अस्थिसे भी बढकर कठोर पाषाण होता है। यह सबसे बढकर कठोर है। इसके समान जो कर्मकी फलदान शक्ति होती है उसे पाषाणसमान बताया है। यह चौथे दर्जेकी कठोरता है। इससे बढकर कोई कर्कशता नहीं होती इसलिये इस कर्मस्वभावकी कर्कशताको उत्कृष्ट अनुभाग शक्ति कहा जाता है। पहिली सत्रह प्रकृतियोंमें ये चारो दर्जे पाये जाते हैं। शेष १०७ में लताके समान सबसे जघन्य परिणमन कभी नहीं होता।३२०।

ये चार उदाहरण केवल कठोरता दिखानेकेलिये बताये हैं। परंतु प्रकृतियोंमेंसे कुछ पुण्यरूप पूर्वमें बताई हैं और कुछ पापरूप बताई हैं। इसलिये पुण्य तथा पाप स्वरूपमें तारतम्य दिखानेके लिये आगे चार चार भेद और भी करते हैं। वे भेद भी क्रमसे लता आदि चार भेदोंको लिये हुए ही समझने चाहिये। व इस प्रकार है—

प्रशस्त—पुण्य प्रकृति जो ४२ गिनाई हैं उनके फल, जघन्य अजघन्य अनुत्कृष्ट उत्कृष्ट क्रमसे गुड खाड शर्करा अमृतके समान समझने चाहिये। पापप्रकृति ८२ गिनाई हैं उनके फल, नींब कजीर विष हालाहलके समान चार प्रकारके तरतमरूप बताये गये हैं। ३२१ ॥

इस प्रकार संज्ञाप्रकरण समाप्त हुआ।

योगेन बध्यते सातं मिथ्यात्वेनात्र षोडश । असयमेन पचाग्रास्त्रिंशदन्याः कषायतः ॥ ३२२ ॥

अब आस्रवोंको प्रकृतियोंके साथ जोडकर यह बताते हैं कि किन किन प्रकृतियोंके कौन कौनसे मुख्य आस्रव हैं ।—

मिथ्यादर्शन अविरति कषाय योग—ये मुख्य चार आस्रव होते हैं । जो आस्रव होते हैं वे ही बंधके कारण माने गये हैं । उनमेंसे योगसे सातावेदनीय प्रकृति बधती है । मिथ्यात्वसे सोलह प्रकृति, अविरतिसे पैंतीस प्रकृति, और शेष सर्व प्रकृति कषायसे बधती हैं । असयम अविरतिको ही कहते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानके अतमें जिनका बधविच्छेद होना बताया है वे मिथ्यात्व, हुडक संस्थान, नपुंसक वेद इत्यादि सोलह प्रकृति मिथ्यात्वसे बधनेवाली हैं । अविरतिसे बधनेवाले कर्म पैंतीस बताये हैं । वे कौनसे पैंतीस हैं इस बातको बताते हैं ।— मिथ्यात्व गुणस्थानके ऊपर दूसरा सासादन गुणस्थान है । इस गुणस्थानमे मिथ्यात्व नहीं रहता है किंतु अविरति आदि तीन कारण रहते हैं । उन तीनमेंसे अविरति कारण चौथे गुणस्थान पर्यंत मुख्य है इसलिये चौथे पर्यंत जो कर्म बांधे जाते हैं वे अविरतिकी मुख्यतासे बांधे जाते हैं । दूसरे गुणस्थानमें पूर्ण अविरति है । उस अविरतिके द्वारा पच्चीस प्रकृतियोंका बंध होता है । वे प्रकृति पूर्वमें इस प्रकार गिनाई हैं ।— अनतानुबधी चार कषाय, स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला—ये तीन निद्राप्रकृति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमंडल आदि बीचके चार संस्थान, वज्रनाराच आदि बीचके चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यगतिद्विक, उद्योत, तिर्यंच आयु- ये पच्चीस प्रकृति हैं ।

चौथे गुणस्थानके अंतमें दश प्रकृतियोंकी बधव्युच्छित्ति होती है । वे दश प्रकृति इस प्रकार हैं ।—अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय, वज्रर्षभनाराच सहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यगतिद्विक, मनुष्यायु । चौथे गुणस्थानसे आगे जो बंध होता है उसमें अविरतिकी मुख्यता न रहकर कषायकी मुख्यता रह जाती है । इसलिये आगेकी सर्व प्रकृति कषायसे बधको प्राप्त होनेवाली बताई हैं । ३२२ ।

वृत्त आहारकद्वद्वे सम्यक्त्व तीर्थकारिणि । प्रधानप्रत्ययास्तासामिति बन्धो न तैर्विना ॥ २२३ ॥

इति प्रधानप्रत्ययनिर्देशः ।

अपरेप्येवमाहुः —

" मिथ्यात्वस्योदये यांति पोडश प्रथमे गुणे । संयोजनोदये बंधं शामने पचविंशतिः ॥
कपायाणा द्वितीयानामुदये निर्वृते दश । स्वीक्रियन्ते तृतीयानां चतस्रो देशसंयते ॥

आहारक द्वयका बंधकारण वृत अथवा सयम माना गया है । सम्यक्त्व तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका कारण है । इस प्रकार इन तीन प्रकृतियोंके बंधमें वृत अथवा सम्यक्त्वको जो कारण बताया है वह भी प्रधानताकी अपेक्षासे है । इसलिये इसका तात्पर्य ऐसा समझना चाहिये कि बंधका कारण तो यहां सर्वत्र कपाय ही है परन्तु इन तीनमेंसे जो आहारक द्वय है उनका बंध वृत अर्थात् महाव्रतके विना नहीं होता । एव, तीर्थंकर प्रकृतिका बंध सम्यक्त्वके रहने पर ही होता है, विना सम्यक्त्वके नहीं होता। ऊपर जो अविरति, मिथ्यात्व तथा कपायके द्वारा प्रकृतियोंका बंध होना जुदा जुदा बताया है वहांपर भी मिथ्यात्वादि एक एक की प्रधानताका ही तात्पर्य है । इस प्रकार यहां बंधके प्रधान कारणोंको दिखाया है । २२३ ।

मिथ्यात्वकी प्रकृति १६, अविरतिकी ३५, योगकी १, संयमकी २, सम्यक्त्वकी १, और शेष रही कपायकी ६५ प्रकृति—इस प्रकार सर्व १२० बंधप्रकृति हैं ।

औरोंने भी इसका खुलासा इस प्रकार दिया है ।—

" प्रथम गुणस्थानमें मिथ्यात्वके उदयसे सोलह प्रकृति बंधको प्राप्त होती हैं । संयोजन अर्थात् अनंतानुबंधीके उदयमें बंधको प्राप्त होनेवाली सासादन दूसरे गुणस्थानकी पच्चीस प्रकृति हैं ।

द्वितीय कपायोंके उदयसे, असंयत सम्यक्त्व—चौथे गुणस्थानमें दश प्रकृति बंधको प्राप्त होती हैं । देशसंयत-पांचवें गुणस्थानमें तीसरे—प्रत्याख्यानावरण कपायोंके उदयसे चार प्रकृतियोंका बंध होता है ।

सयोगे योगतः सातं शेषाः स्वे स्वे गुणे पुनः ।
विमुच्याहारकद्वन्द्वतीर्थकृत्वे कषायतः । षष्टिः पंचाधिका बंधं प्रकृतीनां प्रपद्यते ॥
आहारकद्वयस्योक्तं संयमस्तीर्थकारिणः । सम्यक्त्वं कारणं पूर्वैर्बंधने बंधवेदिभिः ॥ ”
मिथ्यात्वं षोडशानामिह प्रधानं कारणमन्येषामप्रधानं इत्यादि ज्ञेयं ॥
प्रधाना हेतवः प्रोक्ता ये येषामिह कर्मणाम् । तेभ्योऽन्यत्राप्रधानास्ते निश्चीयन्ते मनीषिभिः ॥ ३२४ ॥

सयोग — तेरहवें गुणस्थानमें योगद्वारा एक सातावेदनीयका बंध होता है । शेष प्रकृतियोंका बंध अपने अपने गुणस्थानोंमें यथासंभव समझना ।

आहारक द्वय और तीर्थंकर प्रकृति—इन तीन प्रकृतियोंको छोडकर शेष बची ६५ प्रकृति—इन पैंसठिका बंध कषायसे होता है ।

आहारक द्वयके बंधका मुख्य कारण संयमरूप परिणाम है । और तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका कारण मुख्य सम्यक्त्वरूप परिणाम है । ऐसा बंधके ज्ञाताओंने बताया है । ”

ऊपर सभी प्रकृतियोंके कारण बताये हैं उसका अर्थ प्रधान कारण ऐसा करना । जैसे मिथ्यात्वको जहां कारण सोलह प्रकृतियोंका बताया है वह उन प्रकृतियोंका प्रधान कारण है । पहिले गुणस्थानमें सोलहके शिवाय और भी बहुतसी प्रकृति बंधको प्राप्त होती हैं । परन्तु उन शिवाय प्रकृतियोंका मिथ्यात्व अप्रधान कारण है । ऐसा ही सर्वत्र जानना ।

जो जिन प्रकृतियोंके बंधके कारण यहांपर जुदे जुदे बताये हैं वे उन उन प्रकृतियोंके बंधमें प्रधान कारण हैं ऐसा समझना । उन प्रकृतियोंके शिवाय अन्य प्रकृतियोंके बंधमें भी वे कारण होते हैं परंतु उन अन्य प्रकृतियोंके बंधमें वे अप्रधान कारण हैं ऐसा विद्वानोंने निश्चय किया है । ३२४ ।

शरीरपंचकं वर्णपंचकं रसपंचकं । षट्के संस्थानसंहत्योरष्टकं स्पर्शगोचरं ॥ ३२५ ॥
अंगोपांगत्रयं गंधद्वयं प्रत्येकयुग्मकं । निर्माणागुरुलघ्वाह्वे स्थिरद्वन्द्वं शुभद्वयम् ॥ ३२६ ॥
परघातोपघाताह्वे देहबंधनपंचकं । आतपोद्योतसंघातपंचकानीति भाषिताः ॥ ३२७ ॥
द्वाभ्यां पुद्गलपाकिन्यः षष्टिः प्रकृतयो युता । एतदीयेन पाकेन शरीराद्युपलभ्यते ॥ ३२८ ॥
ज्ञानदृग्रोधविघ्नस्था वेद्यमोहनगोत्रजा । गतयो जातयस्तीर्थकृदुच्छ्वासो नभोगती ॥ ३२९ ॥

किन किन प्रकृतियोंके फल कहां कहांपर होते हैं ? इस प्रश्नके उत्तरमें यावत् प्रकृतियोंके चार भाग करके एक भागको पुद्गलविपाकी, दूसरे भागको जीवविपाकी, तीसरे भागको क्षेत्रविपाकी और चौथे भागको भवविपाकी मानना—ऐसा आगे वर्णन करते हैं।—

शरीरकर्म पांच, वर्णकर्म पांच, रसकर्म पांच, छह संस्थान, छह संहनन, स्पर्शकर्म आठ, अंगोपांग कर्म तीन, गंधकर्म दो, प्रत्येक साधारण—यह एक युगल, निर्माण, अगुरुलघु, स्थिर अस्थिर—यह एक युगल, शुभ अशुभ—यह एक युगल, परघात, उपघात, शरीरके बंधन कर्म पांच, आतप, उद्योत, शरीरके संघात नाम कर्म पांच—ये बासठि प्रकृति पुद्गलविपाकी हैं। शरीर इंद्रियादिरूप पुद्गलोंकी रचना इन्हींके उदयका फल है। शरीरको और शरीरसंबंधी सर्व जड रचनाको यहांपर पुद्गल कहा है। शरीर, अंगोपांगादि जितने ऊपर कर्म बताये हैं वे शरीरसंबंधी ही सर्व रचनाको करनेवाले हैं इसलिये इतने कर्मोंको पुद्गलविपाकी कहा है। पुद्गल अर्थात् शरीरपर जिनका विपाक हो उन्हें शरीरविपाकी कहना सयुक्तिक भी है। ३२५–३२८।

ज्ञानावरणकी सर्व प्रकृति पांच, दर्शनावरणकी सर्व प्रकृति नौ, अंतरायकी सर्व प्रकृति पांच, मोहकी सर्व प्रकृति अट्ठाईस दोनो वेदनीय, दोनो गोत्र, नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे सत्ताईस—चार गति, पांच जाति, तीर्थंकरत्व, उच्छ्वास, दोनो विहायोगति, त्रस

॥३१२॥

त्रससुस्वरपर्याप्तस्थूलादेययश शुभा । सेतरा जीवपाकाः स्युरष्टाग्राः सप्तति पुनः ॥ ३३० ॥
ज्ञानरोधादयः सर्वा यतो जीव विकुर्वते । जीवपाकास्ततो ज्ञेयास्तत्र तत्पाकदर्शनात् ॥ ३३१ ॥
अत्रात्मनि निबद्धा सप्तविंशतिनामप्रकृतय तासा तत्र विपाकोपलब्धे ।
आनुपूर्व्यश्चतस्रोऽपि क्षेत्रपाका निवेदिताः । जिनैरायूंषि चत्वारि भवपाकानि सर्वदा ॥ ३३२ ॥

इत्युनुभागबंध. समाप्त ॥

स्थावर दो, सुस्वर दुःस्वर दो, पर्याप्त अपर्याप्त दो, बादर सूक्ष्म दो, आदेय अनादेय दो, यश कीर्ति अयश कीर्ति दो, शुभ अशुभ दो—इस प्रकार त्रसादि सात और उनके उल्टे स्थावरादि सात—ये चौदह प्रकृति—ये सर्व मिलकर ७८ प्रकृति होती हैं—ये सर्व जीवविपाकी हैं। जीवविपाकी प्रकृतियोंमें आयुकर्म नहीं है। और नामकर्मकी २७ प्रकृति हैं। शेष रहे छह कर्मोंकी सर्व उत्तर प्रकृति ५१ होती हैं, वे सभी जीवविपाकी हैं। ३२९–३३० ।

ज्ञानावरणादि जो ७८ प्रकृति ऊपर जीवविपाकी बताई हैं वे जीवको विकृत करती है इसलिये जीवमें इनका विकार दीखनेसे इन्हे जीवविपाकी माना गया है। ३३१ ।

चार आनुपूर्वी प्रकृति क्षेत्रविपाकी है । आयु प्रकृति चारो सदा भवविपाकी हैं। ऐसा जिन भगवान्ने प्ररूपण किया है। विग्रहगतिके क्षेत्रमें आत्माकी आकृति पूर्वशरीराकार आनुपूर्वी कर्मके उदयसे रहती है। आत्माकी आकृतिका नाम यहांपर क्षेत्र है। इस क्षेत्रकी स्थिरताका कार्य अथवा उस क्षेत्रको ज्योंका त्यों सम्हाले रखनेका कार्य आनुपूर्वी प्रकृति करती हैं इसलिये आनुपूर्वियोंको क्षेत्रविपाकी कहते हैं। शरीर धारण करनेका कार्य आयु करता है। शरीर धारणका ही नाम भव है। इसलिये आयुकर्म भवविपाकी बताया है वह भी ठीक ही है। ३३२ ।

बासठि (६२) पुद्गलविपाकी, अठत्तरि (७८) जीवविपाकी, चार (४) भवविपाकी, चार (४) क्षेत्रविपाकी -इस प्रकार १४८ प्रकृतियोंका चार भागोंमें बटवारा हो जाता है। इस प्रकार सज्ञाए समझना ।

इति अनुभागबंध प्रकरण समाप्त ।

स्वामित्वभागभागाभ्यामष्टोत्कृष्टादयः सह । दश प्रदेशबन्धस्य प्रकारा कथिता जिनैः ॥ ३३३ ॥
पुद्गला ये प्रगृह्यन्ते जीवेन परिणामतः । रसादित्वमिवाहारा कर्मत्वं यान्ति तेऽखिलाः ॥ ३३४ ॥
एकक्षेत्रावगाढास्ते योग्याः सर्वप्रदेशगाः । गृह्यन्ते हेतुतो जीवैः सादयोऽनादयः सदा ॥ ३३५ ॥

अब प्रदेशबन्धको कहते हैं ।—

स्वामित्व, भाग प्रतिभाग रचना, और उत्कृष्टादि आठ प्रकार—ये दश प्रकार प्रदेशबन्धमें जिनेंद्रने बताये हैं । उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अजघन्य जघन्य—ये चार तथा सादि अनादि ध्रुव अध्रुव—ये चार इस प्रकार आठ बातें पूर्वमें स्थितिके प्रकरणमें तथा अनुभागके प्रकरणमें भी दिखाई हैं । इन आठके साथ स्वामित्व और भाग प्रतिभागकी रचना—ये दो विषय जोडदेनेसे दश भेद हो जाते हैं । अर्थात् प्रदेशबन्धको दश प्रकारसे समझना चाहिये । ३३३ ।

बांधे हुए पुद्गलपिंड अनेक प्रकार कर्मके परिणमनको कैसे प्राप्त होते हैं । इस प्रश्नके उत्तरमें आगे एक दृष्टांत दिखाकर बन्धकी विचित्रताको सुदृढ करते हैं और स्वामित्वका वर्णन भी इसीके साथ करते हैं ।—

जीव जो आहारको ग्रहण करता है उसकी रस रुधिर मज्जा वीर्य अस्थि आदि अनेक प्रकारकी परिणति हो जाती है । इसी प्रकार राग द्वेषादि अथवा योग कषायादि परिणामोंके द्वारा जीव जो पुद्गलोंको ग्रहण करता है उन सर्व पुद्गलोंकी विविध कर्मरूप परिणति हो जाती है । ३३४ ।

जो पुद्गल ग्रहण किये जाकर कर्मरूप परिणामको प्राप्त होते हैं वे जीवके सर्व प्रदेशोंमें पहुचते हैं और एक क्षेत्रावगाढ होकर ठहरते हैं । वे पुद्गल, ऐसा नहीं है कि चाहे जिस जातिके आकार बंधको प्राप्त हो जाते हों, किंतु कर्मरूप पर्यायको परिणत होनेके योग्य हों वे ही बंधको प्राप्त होते हैं । वे पुद्गल अपने आप—जीवका प्रयत्न न रहते हुए भी बंधको प्राप्त होजाते हैं —ऐसा भी नहीं है. किंतु कषायादि अथवा योगादि कारण मिलनेपर ही वे पुद्गल बंधको प्राप्त होते हैं । बंधके कारणोंको कौन कर सकता है ? तो जीव ही कर सकता है । भावार्थ, जीवके शिवाय पुद्गलमात्रमें बंधकी विचित्रता प्राप्त होकर चैतन्यादि

विकारोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है । बंधके योग्य प्रकृति एकसौ अडतालीस हैं । उनमेंसे कुछ अनादि बंधरूप हैं—उनका बंध होना अनादिसे चला आरहा है । और कुछ प्रकृति ऐसी भी हैं जो बीचमेंसे बंधको प्राप्त होने लगती हैं—उन्हे सादिबंधरूप कहते हैं । रागद्वेषादि कारण मिलनेपर ही बंध होता है तो जब वे हेतु मिलेंगे तभी बंध होगा, नहीं तो नहीं—ऐसी किसीकी समझ होगी। उसे दूर करनेकेलिये कहते हैं कि, बंध सदा ही होता है । एक क्षण मात्र भी कभी बंध थमता नहीं है ।

इस श्लोकमें बंधकेलिये जितने विशेषण अथवा क्रियाविशेषणादि दिये गये हैं वे सर्व सार्थक हैं। उन सर्व पदोंका विचार करनेपर बंधकी अवस्थाका ठीक ज्ञान हो सकता है । अनादि बंध होना बताया है । इसपरसे यह शंका हो सकती है कि जब अनादिसे बंध हो रहा है तो उसका छूटना युक्तिविरुद्ध है । क्योंकि, जो अनादिकी वस्तु होती है वह सदा कायम रहती है । अर्थात् बन्धनबद्ध संसारी कभी मुक्त भी नहीं हो सकता है और वारंवार नवीन बंध होनेकी बात भी असमंजस है । इत्यादि विपर्यासको दूर करनेकेलिये बंधको स्यात् अनादि मानना चाहिये। बीजवृक्षकी संततिके समान अनादि कालसे सदा बंधका संतान हो रहा है । अर्थात् पूर्व बंधका विपाक होनेपर जो रागद्वेषादि भाव उत्पन्न होते हैं वे नवीन बंधको करते हैं और वह बंध अपने आयुष्यके अंतमें उदित होते हुए फिर रागद्वेषको उत्पन्न करदेता है, उससे फिर भी नवीन बंध हो जाता है । इस संतानका कोई आदि समय नहीं है केवल इसलिये बंधको अनादि माना गया है ।

बंधका विशेषण जैसे अनादि दिया है वैसे सादि भी एक विशेषण दिया है । परंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि स्यात् बंध अनादि है और स्यात् सादि है । उसका अर्थ ऐसा है कि कुछ प्रकृति अनादि कालसे सदा ही बंधको प्राप्त होती रहती हैं और कुछ प्रकृति सदा बंधको प्राप्त होनेवाली नहीं हैं किंतु वे किसी विशेष अवस्थामें ही बंधको प्राप्त होती हैं । वह अवस्था न रहनेपर वे सादि कहानेवाली प्रकृति नहीं भी बंधती हैं । सादि अनादि प्रकृतियोंका विभाग इसी चौथे परिच्छेदमें ...वें श्लोकके आगे स्पष्ट किया है वहांपरसे देखना । ३३५ ।

गंधवर्णरसै सर्वै स्पर्शैश्चतुर्भिरन्वितै । विमुक्तानतभागोस्ति कर्मानंतप्रदेशकं ॥ ३३६ ॥
एकैकत्र क्षणे येऽत्र बंधमायान्ति पुद्गला । अष्टधा बध्नत कर्म तेषां भागप्रकल्पना ॥ ३३७ ॥
शीतोष्णस्निग्धरूक्षत्वकलिता परमाणव । योग्यत्व प्रतिपद्यन्ते कर्मबंधस्य नापरे ॥ ३३८ ॥
एकेन परिणामेन गृहीता परमाणव । अष्टकर्मत्वमायांति शुद्धिसंक्लेशवृद्धित ॥ ३३९ ॥

और भी प्रदेशबंधका विशेष खुलासा करते हैं ।—जो प्रदेश बंधको प्राप्त होते हैं उनमें दोनो प्रकारका गंध रहता है, वर्ण और रस भी सर्व प्रकारके रहत हैं, किंतु स्पर्शके आठ भेदोंमेंसे चार ही स्पर्श कर्मबन्धमें मिल सकते हैं । शेष चार स्पर्श कर्मके पिंडोंमें नहीं रहते हैं । जिनमें शेष चार प्रकारके स्पर्श मिलते है वे स्कन्ध कर्मबंधके योग्य नहीं माने गये हैं । ऐसे कर्म-पिंड प्रतिसमय अनंतरूप बंधको प्राप्त होते हैं परंतु वे सिद्ध जीवराशिके अनंतवें भाग ही मात्र रहते हैं । ३३६ ।

प्रत्येक समयमें आत्मप्रदेशोंमें एक एक समयके जितने प्रदेश संचित अथवा बद्ध होते हैं वे उसी समयमें जुदे जुदे कर्मरूप कितने कितने और कैसे बट जाते है इस बातको आगे बताते है ।—कर्मके मूल भेद आठ हैं इसलिये जीव जो प्रतिसमय कर्मको बांधता है उसके प्रदेशोंके आठ भाग तो मूलमें हो जाते है । और अर्थात् मूलमें प्रत्येक कर्मके बाटमें जितने प्रदेश आते हैं उतनोंका अपने अपने उत्तर भेदोंमें भी उसी समय बटवारा हो जाता है । कितना हीनाधिक भाग किस कर्ममें पहुचता है इस बातको आगे खुलासा करेंगे । ३३७ ।

ऊपर जो बताया है कि कार्मण पुद्गलोंमें चार ही स्पर्श होते हैं उसका खुलासा यहापर करते हैं ।—शीत स्पर्श, उष्ण स्पर्श, स्निग्ध स्पर्श, रूक्ष स्पर्श-इन चार स्पर्शवाले प्रदेश ही कर्मके बंधनके योग्य होते हैं, दूसरे प्रदेश कर्मबंधके योग्य नहीं होते । इन चारमेंसे भी एक एक प्रदेशमें दो दो ही स्पर्श रह सकते हैं । परमाणुको द्विस्पर्शवान् इसी कारण माना है । ३३८ ।

रागद्वेषादि किसी एक परिणामद्वारा ग्रहण किये हुए कर्मपरमाणु परिणामोंकी शुद्धिकी वृद्धिसे अथवा संक्लेशकी वृद्धिसे आठ कर्मरूपको प्राप्त हो जाते हैं । विशुद्धि है वह भी कषायकी एक अवस्था है, परतु वह कषायकी मंदतासे वीतरागताकी वृद्धिरूप होती है । और संक्लेश है वह भी कषायकी एक अवस्था है । यह अवस्था कषायकी उत्कट प्रवृत्तिसे वीतरागताके विरुद्ध

वृद्धिर्यथायथाक्षाणा विवर्द्धेते तथातथा । जतोविंशुद्धिसक्लेशौ हीयेतेपरथा पुन ॥ ३४० ॥
स्वल्पस्तत्रायुपस्तुल्यो गोत्रनाम्नोस्ततोऽधिक । विघ्नदृग्ज्ञानरोधेपु समो भागस्ततोऽधिक ॥ ३४१ ॥
समस्तोपरिमो भागो मोहनीये निवेदित । वेदनीयेऽधिकस्तस्मादितीत्थ भागकल्पना ॥ ३४२ ॥

स्वभावको रखती है । सक्लेशकी जैसी वृद्धि होती है वैसी शुद्धि घट जाती है । और शुद्धि बढती है तो सक्लेश घटता है। परतु दोनो ही अवस्थाए कपायके रहते होती हैं इसलिये ये दोनो ही पर्याय बधके कारण है । विशुद्धिसे पुण्य प्रकृतियोंमें अनुभाग अधिक पडता है और पाप प्रकृतियोमें कम पडता है । सक्लेशसे पापप्रकृतियोंमें अनुभाग अधिक पडता है और पुण्यप्रकृतियोंमें कम पडता है । परतु प्रदेशोंका आठ अथवा सात कर्मोमें जो बटवारा होता है उसका कारण संक्लेश और विशुद्धि है । यदि ये कपायके पर्याय न रहे हों तो आगे बटवारा न होकर एक साताकर्मरूप सर्व प्रदेशबंध होने लगता है। ३३९ ।

इंद्रियोंकी जैसी जैसी वृद्धि होती है वैसे वैसे विशुद्धि तथा सक्लेश भी बढते हैं । नहीं तो–यदि इद्रियोंकी वृद्धि न हो तो–विशुद्धि तथा सक्लेश घटते है । ३४० ।

यह स्वामित्वका विवेचन हुआ ।

जितना कुछ एक समयमें प्रदेशबध होता है उसके आठ कर्मोमें बटवारे कैसे होते हैं वह आगे बताते हैं।—

एक समयमें प्रदेशबध जो होता है उसके अनेक छोटे बडे प्रमाण रहते हैं । अर्थात् प्रत्येक समयकी प्रदेशसख्या सदा एकसी नहीं रहती है । योगोंकी हीनाधिकतासे प्रदेशसख्या कभी कुछ कम सगृहीत होती है और कभी कुछ अधिक भी होती है। परतु सामान्य दृष्टिसे वह अनतानत प्रमाण बताई है । उसके आठ भाग करने चाहिये । वे सर्व भाग भी एकसे नहीं रहते, हीनाधिक होते हैं, वही आगे बताते हैं।–

आयुकर्ममें सबसे थोडा भाग रहता है। उससे कुछ अधिक परतु परस्परमें समान ऐसे दो भाग नामकर्मके तथा गोत्र कर्मके होते हैं । इससे कुछ अधिक प्रमाणवाले परस्परमें समान ऐसे तीन भाग होते हैं वे अंतरायके, दर्शनावरणके तथा ज्ञानावरण के लिये पहुचते हैं । इससे और भी अधिक प्रमाणका एक भाग मोहकर्मके लिये विभक्त होता है । और वेदनीयके लिये जो भाग होता है वह सबसे अधिक बडा होता है । इस प्रकार आठ भागोंकी कल्पना है । ३४१–३४२ ।

सुखदु खे यतोऽनल्पे दत्तो भागस्ततोऽधिक । वेदनीये परेषां तु भूयंवस्थाव्यपेक्षया ॥ ३४३ ॥
आवल्यसंख्यभागेन खडिते कर्मसचये । आधिक्यमेकखंडेन कर्तव्य सर्वकर्मसु ॥ ३४४ ॥

सुख तथा दु ख अपरिमित रहते है इसलिये सुख दु खके कारणभूत वेदनीय कर्ममें सबसे अधिक भाग पहुंचना माना गया है । शेष कर्मोंका ऐसा नियम है कि उनमेंसे जिन प्रकृतियोंकी स्थिति अधिक होती है उनको अधिक भाग पहुंचते है । ३४३ ।

आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाणसे एक समयबद्ध परमाणुओंमें भाग देकर एक भागको जुदा रखले और शेष बहु भागोंके समान आठ भाग होकर आठ कर्मोंके लिये नियत हो जाते हैं । फिर जुदा रक्खा हुआ एक भाग है उसको आवल्यसख्यातवें भागसे भाजित कर एक भागको उसमेंसे भी जुदा रखले, शेष सर्व भागोंको वेदनीयके प्रथम बडे भागमें जोड देना चाहिये । इसके बाद फिर भी जुदे रक्खे हुए एक भागको आवल्यसख्य भागसे भाजित कर एक भागको जुदा रखकर बहुभागको मोहनीयके मुख्य भागमें जोड देना चाहिये । फिर भी जुदे रक्खे हुए एक भागको आवल्यसख्य भागका भाग देकर एक भागको जुदा रखकर बहुभागके समान तीन भाग करके अतराय, दर्शनावरण तथा ज्ञानावरणके तीन मुख्य भागोंमें उस एक एक भागको मिलादे । और जुदे रक्खे हुए एक भागका आधा आधा द्रव्य नाम तथा गोत्रके मुख्य भागोंमें मिला दे । इस प्रकार एक जुदे रक्खे हुए आवल्यसख्यातवें भागसे जो उत्तरोत्तर कर्मोंमें अधिकाधिकता है उसे सिद्ध करे ॥ ३४४ ॥

इस विषयको स्पष्ट करनेकेलिये नीचे गोमट सारको सार्थ उद्धृत करदेते हैं।—

" आगे वेदनीयकर्मका अधिक भाग होनेमें गोमटसारके कर्ता कारण बतलाते हैं,—

सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स । सव्वेहिंतो बहुगं दव्व होदित्ति णिद्दिट्ठ ॥१९३॥ गो० कर्म० ।
सुखदु खनिमित्तात बहुनिर्जरक इति वेदनीयस्य । सर्वेभ्य बहुकं द्रव्यं भवतीति निर्दिष्टम् ॥ १९३ ॥

अर्थ—वेदनीयकर्म सुखदु'खका कारण है इसीलिये इसकी निर्जरा बहुत होती है । इसवास्ते सब कर्मोंसे बहुत द्रव्य इस वेदनीयका जिनेन्द्र भगवानने कहा है ॥ १९३ ॥

आगे अन्य कर्मोंका द्रव्यविभाग स्थितिके अनुसार दिखाते हैं,—

सेसाण पयडीण ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु । आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ॥ १९४ ॥

शेषाणां प्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन भवति द्रव्य तु । आवल्यसख्यभाग प्रतिभागो भवति नियमेन ॥ १९४ ॥

अर्थ–वेदनीयके सिवाय बाकी सब मूलप्रकृतियोंके द्रव्यका स्थितिके अनुसार बटवारा होता है । जिसकी स्थिति अधिक है उसका अधिक द्रव्य हिस्सामें होता है । कमको कम तथा समानस्थितिवालेको समान जानना । इनके बाट करनेमें प्रतिभागहार आवलिके असख्यातवें भाग प्रमाण नियमसे समझना ॥ १९४ ॥

अब उत्तर प्रकृतियोंमें बटवारा (हिस्सा) होनेका क्रम दिखाते हैं,–

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागह्मि । उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥ १९५ ॥

बहुभागे समभाग अष्टानां भवति एकभागे । उक्तक्रम तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥ १९५ ॥

अर्थ—इन आठ प्रकृतियोंको प्रतिभाग करके बहुभाग तो समान भाग करके देना, और बचेहुए एक भागमें पहले कहेहुए क्रमसे आवलीके असख्यातवें भागका भाग देते जाना । जो बहुत द्रव्य हो उसको बहुभाग देना ऐसा अंत तक प्रतिभाग (भागमेंसे भाग) करते जाना ॥ १९५ ॥

अब विभाग (हिस्सा) होनेका क्रम दिखाते हैं,—

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा । अहियकमा पुण णामा विग्घा य ण भंजण सेसे ॥ १९६ ॥

उत्तरप्रकृतिषु पुन. मोहावरणा भवन्ति हीनक्रमा· । अधिकक्रमा पुन नाम विघ्नाश्च न भञ्जनं शेषे ॥ १९६ ॥

अर्थ—उत्तर प्रकृतियोंमें तो मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरणके भेदोंमें क्रमसे हीन २ द्रव्य है, और नामकर्म–अतराय कर्मके भेदोंमें क्रमसे अधिक २ है, तथा बाकी बचे वेदनीय–गोत्र--आयुकर्म इन तीनोंके भेदोंमें बटवारा नहीं होता क्योंकि इनकी एक एकही प्रकृति एक कालमें बंधती है । जैसे वेदनीयमें साताका बंध होवै या असाताका बंध होवै परतु दोनोंका एक साथ बंध नहीं होता । इसकारण मूलप्रकृतिके द्रव्यके प्रमाण इन तीनोंमें द्रव्य जानना ॥ १९६ ॥

आगे घातिया कर्मोंमें सर्वघाति तथा देशघाती बटवारा कहते हैं,—

सव्वावरण दव्व अणंतभागो दु मूलपयडीणं । सेसा अणतभागा देसावरण हवे दव्वं ॥ १९७ ॥

सर्वावरण द्रव्यमनन्तभागस्तु मूलप्रकृतीनाम् । शेषा अनन्तभागा देशावरणं भवेत् द्रव्यम् ॥ १९७ ॥

अर्थ—ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय इन तीन मूल प्रकृतियोंके अपने २ द्रव्यमें यथायोग्य अनंतका भाग देनेसे एक भाग सर्वघातीका द्रव्य होता है। और बाकी अनत बहुभागप्रमाण द्रव्य देशघाती प्रकृतियोंका कहा है ॥ १९७ ॥

अब सर्वघाती द्रव्यके प्रमाण निकालनेकेलिये प्रतिभागका प्रमाण कहते हैं,—

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणतसखमेत्त खु । सव्वावरणधणट्ठ पडिभागो होदि घादीण ॥ १९८ ॥

देशावरणान्योन्याभ्यस्त तु अनन्तसख्यामात्र खलु । सर्वावरणधनार्थं प्रतिभागो भवति घातिनाम् ॥ १९८ ॥

अर्थ—चार ज्ञानावरणादि देशघाती प्रकृतियोंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिभी अनतसख्या प्रमाण है। वह राशि सर्वघाती प्रकृतियोंके द्रव्य प्रमाण लानेकेलिए घातिया कर्मोंका प्रतिभाग जानना ॥ १९८ ॥

आगे सर्वघाती, देशघाति द्रव्यका विशेष विभाग (हिस्सा) दिखाते है,—

सव्वावरण दव्व विभजणिज्ज तु उभयपयडीसु । देसावरण दव्व देसावरणेसु णेविदरे ॥ १९९ ॥

सर्वावरण द्रव्य विभजनीय तु उभयप्रकृतिषु । देशावरण द्रव्य देशावरणेषु नैवेतरस्मिन् ॥ १९९ ॥

अर्थ-सर्वघाती द्रव्यका सर्वघाती देशघाती दोनों प्रकृतियोंमें विभाग करदेना । देशघाती द्रव्यका विभाग देशघातीमें देना । केवलज्ञानावरणादि सर्वघातिया प्रकृतियोंमें नहीं देना ॥ १९९ ॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें विभाग दिखाते हैं;—

बहुभागे समभागो बधाण होदि एक्कभागम्हि । उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥ २०० ॥

बहुभागे समभागो बन्धानां भवति एकभागे । उक्तक्रम तत्रापि बहुभाग बहुकस्य देयस्तु ॥ २०० ॥

॥३२०॥

अर्थ—जिनका एक समयही बंध हो उन प्रकृतियोंमें अपने २ पिंड द्रव्यको आवलीका असंख्यातवें भागका भाग देनेसे बहुमागका तो बराबर बांटकर अपनी उत्तर प्रकृतियोंमें समान द्रव्य देना। और शेष एक भागमें पूर्व कहे क्रमसे भाग करके बहुभाग बहुत द्रव्यवालेको देना ॥ २०० ॥

यही बात दिखाते हैं,—

घादितियाण सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्व तु। उत्तक्रमेण य देय विवरीय णामविग्घाण ॥ २०१ ॥

घातित्रयाणा स्वकस्वकसर्वावरणीयसर्वद्रव्यं तु। उक्तक्रमेण च देय विपरीत नामविघ्नानाम् ॥ २०१ ॥

अर्थ—ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय इन घातिया कर्मोंका अपना २ सर्वघाती द्रव्य प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता देना। और नाम तथा अंतराय इनकी प्रकृतियोंका द्रव्य विपरीत अर्थात् वढता वढता अतसे लेकर आदि प्रकृति पर्यन्त देना ॥ २०१ ॥

आगे मोहनीय कर्ममें विशेषता दिखाते हैं;—

मोहे मिच्छत्तादीसत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीण। संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ॥ २०२ ॥

मोहे मिथ्यात्वादिसप्तदशाना तु दीयते हीनम्। सज्वलनाना भाग इव भवति पञ्चनोकपायाणाम् ॥ २०२ ॥

अर्थ—मोहनीय कर्ममें मिथ्यात्वादिक सत्रह प्रकृतियोंको क्रमसे हीन (कम) २ द्रव्य देना, और पांच नोकषायका भाग सज्वलन कषायके भागके समान जानना ॥ २०२ ॥

यहा पाच नोकषायका युगपत [एक कालमें] वध होता है इस कारण नोकपाय पाचही लिये गये हैं।

अब इनके विभाग होनेके क्रमको दिखाते हैं।

संजलणभागबहुभागद्ध अकसायसगय दव्व। इगिभागसहियबहुभागद्ध सजलणपडिवद्धं ॥ २०३ ॥

सज्वलनभागबहुभागार्द्धमकषायसगत द्रव्यम्। एकभागसहितबहुभा[illegible]र्द्ध सज्वलनप्रतिबद्धम् ॥ २०३ ॥

अर्थ—सज्वलन कपायका हिस्सा जो बहुभाग उसका आधा [illegible]षायका द्रव्य जानना। और एक भाग सहित आधा बहुभाग सज्वलन कपायका देशघाती सम्बन्धी द्रव्य है ॥ २०३ ॥

अनुत्कृष्टो यतः षण्णां चतुर्भेदस्त्रयः परे । बधाः साद्यध्रुवाः सर्वे मोहनीयायुषोर्द्विधा ॥ ३४५ ॥
दर्शनावरणे षट्कं स्त्यानगृद्धित्रिकं विना । दश ज्ञानान्तरायस्थाः कषाया द्वादशान्तिमाः ॥ ३४६ ॥
जुगुप्सा भयमित्यासां प्रकृतीनां चतुर्विधः । अनुत्कृष्टस्त्रयः शेषा बन्धाः साद्यध्रुवा द्विधा ॥ ३४७ ॥

आगे नोकषायरूप प्रकृतियोंमें विशेषता दिखाते हैं;–

तण्णोकसायभागो सबधपणणोकसायपयडीसु । हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं ॥ २०४ ॥
तन्नोकषायभाग सबन्धपञ्चनोकषायप्रकृतिषु । हीनकमो भवति तथा देशे देशावरणद्रव्यम् ॥ २०४ ॥

अर्थ –वह नोकषायके हिस्सामें आया हुआ द्रव्य एकसाथ बधनेवाली पांच नोकषाय प्रकृतियोंमें क्रमसे हीन २ देना । और देशघाति संज्वलनकषायका देशघातिसम्बन्धी द्रव्य है वह युगपत् जितनी प्रकृति बँधें उनको हीनक्रमसे देना ॥२०४॥"

इस प्रकार ऊपर भाग प्रतिभागोंका वर्णन हुआ ।

अब जघन्यादि भेद प्रकृतियोंमें कैसे संभव होते हैं सो बताते हैं ।– छह प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबध सादि आदि चार चार प्रकारका होता है । और उन्ही छह कर्मोंके शेष जो जघन्यादि तीन भेद हैं वे सादि तथा अध्रुव ऐसे दो दो प्रकारके हैं । मोहनीय तथा आयु कर्मके प्रदेशबधमें जघन्यादि चारो ही भेद सादि अध्रुव–ऐसे दो दो प्रकारके होते हैं । मोहनीय तथा आयुके जुदे भेद बतानेसे ऊपर जो छह कर्मोंके प्रकार बताये हैं वे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र, अतराय- ये छह समझने चाहिये । ३४५ ।

अब उत्तर प्रकृतियोंमें जघन्यादि तथा सादि आदि भेदोंको दिखाते हैं ।–दर्शनावरणके–स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंको छोडकर शेष–छह उत्तर भेद लेने चाहिये, और ज्ञानावरण दर्शनावरणके दश उत्तर भेद, अनतानुबधीको छोडकर कषायोंके अतिम बारह भेद, तथा जुगुप्सा, भय–इन तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट बध सादि आदि चार चार प्रकारका है । और इन्ही कर्मोंके शेष जो जघन्यादि तीन भेद हैं उनमें सादि तथा अध्रुव ये दो दो प्रकार मिलते हैं । ३४६–३४७ ।

॥३२२॥

उत्कृष्टाद्या द्विधा बधाश्चत्वारः सादयोऽध्रुवाः । प्रकृतीनां प्रदेशाख्याः शेषाणां नवतेः पुनः ॥ ३४८ ॥
जघन्यो नाधरो यस्मादजघन्योऽस्ति साधरः । उत्कृष्टो नोत्तरो यस्मादनुत्कृष्टोस्ति सोत्तरः ॥ ३४९ ॥
उत्कृष्टो जायते बंधः षट्सु मिश्रं विनायुषः । प्रदेशाख्यो गुणस्थाननवके मोहकर्मणः ॥ ३५० ॥
अनायुर्मोहनीयानां षण्णां भवति कर्मणाम् । अमायुत्कृष्टयोगेन गुणे सूक्ष्मकषायके ॥ ३५१ ॥
बन्धो जघन्ययोगस्य जघन्योस्त्यष्टकर्मणाम् । अपर्याप्तस्य सूक्ष्मस्य निगोतस्य शरीरिणः ॥ ३५२ ॥
क्षुद्रभवग्रहस्योक्तं त्रिभागे परमायुषः । बधन कर्मणां प्राज्ञैरन्येषां प्रथमे क्षणे ॥ ३५३ ॥

इनके शिवाय शेष सर्व नब्बे (९०) उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्टादिक चारो ही प्रकारके प्रदेशबंध सादि तथा अध्रुव–ऐसे दो दो प्रकारके रहते हैं । ३४८ ।

क्योंकि, जघन्यवालेके अधर नहीं है, अजघन्य है वह अधर सहित है । एव, उत्कृष्टमें उत्तरका नहीं है, अनुत्कृष्ट उत्तरसहित है ।३४९।

अब गुणस्थानोंमें जघन्यादिका विभाग करके बताते हैं ।—आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबंध, मिश्र गुणस्थानके शिवाय शेष छह गुणस्थानोंमें होता है । मोह कर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिश्रके शिवाय शेष नौ गुणस्थानोंमें होता है । आयु और मोहकर्मके शिवाय शेष छह मूल प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबंध, सूक्ष्मकषाय–दशवें गुणस्थानमें उत्कृष्ट योगके द्वारा होता है ।३५०–३५१।

आठो कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध जघन्य योगवाले सूक्ष्म अपर्याप्त निगोद जीवके होता है ।३५२।

इन आठ कर्मोंमेंसे विशेष नियम आगे बताते हैं ।–आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबंध जो सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक क्षुद्रभव ग्रहण करनेवाले जीवके बताया है वह अपने आयुके त्रिभागमें ही होता है किंतु शेष सात कर्मोंका उसके जघन्य प्रदेशबंध उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होता है, आगे नहीं होता । सूक्ष्म अपर्याप्तक निगोद जीवकी आयु अवांतर छोटी बडी असंख्यात प्रकारकी होती है । उन सबमें जो जघन्य आयुवाला पर्याय होता है उसे क्षुद्रभव कहते हैं । ३५३ ।

दृग्ज्ञानरोधविघ्नानां चतस्रः पंच पंच च। सातमुच्चं यशः सप्तदशानां विदधाति नै ॥ ३५४ ॥
प्रदेशबंधमुत्कृष्टं सूक्ष्मलोभगुणस्थितः। संज्वालनखेदाना पंचानामनिवृत्तिकः ॥ ३५५ ॥
तीर्थकृत्प्रचला निद्रा षट्क हास्यादिगोचर। नवानां कुरुते बंधमुत्कृष्टं शुभदर्शनः ॥ ३५६ ॥
चतुष्कस्य द्वितीयस्य कषायाणामसंयत। विदधाति तृतीयस्य प्रकृष्टं देशसयत ॥ ३५७ ॥
सुरद्वितयमादेय सुभग नृसुरायुषी। आद्ये संहतिसस्थाने सुस्वरः सत्नभोगतिः ॥ ३५८ ॥
असात विक्रियाद्वद्वमित्येता यास्त्रयोदश। तामा सद्दृष्टिदुर्दृष्टी बंधोत्कृष्टत्वकारिणौ ॥ ३५९ ॥

दर्शनावरणके चार, ज्ञानावरणके पाच, अतरायके पाच, सातावेदनीय, उच्चगोत्र, यश कीर्ति—इन सत्रह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको सूक्ष्मलोभ—दशवें गुणस्थानवर्ती करता है। और चार संज्वलन कषाय, एक पुरुषवेद—इन पाच कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको अनिवृत्तिकरण—नौवें गुणस्थानका जीव करता है।३५४—३५५।

तीर्थकरत्व, प्रचला, निद्रा—ये तीन तथा हास्यादि छह नोकषाय—इन नौ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको सम्यग्दृष्टि—चौथे गुणस्थानवाला जीव करता है। तीर्थंकर प्रकृतिके नवीन बंधका आरंभ भी चौथे गुणस्थानमें ही होता है—यह विशेष ३२४ के श्लोकसे ऊपर जो इसी परिच्छेदमें उक्तच—श्लोकमें 'सम्यक्त्व कारण पूर्वबन्धने बन्धनेदिभि' ऐसा वचन कहा है उससे सिद्ध होता है। ३५६।

दूसरे—अप्रत्याख्यानावरण कषाय चारके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको असंयत—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती करता है। तीसरे—प्रत्याख्यानावरण कषाय चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको देशसयत—पाचवें गुणस्थानवर्ती करता है। ३५७।

देवगति देवगत्यानुपूर्वी ये दो, आदेय, सुभग, मनुष्यायु, देवायु, प्रथम—वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रथम—समचतुरस्र संस्थान, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, असातावेदनीय, वैक्रियिकद्वय—वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग—ये दो—सर्व मिलकर ये तेरह प्रकृति होती हैं। इन तेरहके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनो करते हैं। ३५८—३५९।

आहारकद्वयस्योक्तः प्रदेशोत्कर्पणक्षमः। अप्रमत्तः परासा तु जीवो मिथ्यात्वदूपितः ॥ ३६० ॥
उत्कृष्टयोगवान् सञ्ज्ञी पूर्णांगी स्तोकवधकः। प्रकृप्ट कुरुते वध जघन्यं विपरीतक ॥ ३६१ ॥
चतस्र श्वभ्रदेवायुःश्वभ्रद्वितयलक्षणाः। असञ्ज्ञी कुरुते स्वल्पा मध्ययोगव्यवस्थितः ॥ ३६२ ॥
आहारकद्वय साधुः प्रमादरहिताशयः। पच निःसयमः तीर्थकृद्देवस्य चतुष्टय ॥ ३६३ ॥
शेपाः सूक्ष्मनिगोतोऽगी स्वल्पत्व नयते पुनः। मध्ययोगस्थितः सर्वा नवाधिकशतप्रमाः ॥ ३६४ ॥

आहारकशरीर तथा आहारकशरीरागोपाग–इन दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको अप्रमत्त–सातवें गुणस्थानवाला जीव करता है। और शेष रही सर्व प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है। ३६०।

उत्कृष्ट प्रदेशबंधको वह जीव करता है जो सञ्ज्ञी, पर्याप्त तथा उत्कृष्ट योगोंको धारण करनेवाला है और थोडे कर्मको बांधता है। इससे उलटा जीव जघन्य प्रदेशबधको करता है वह जीव कौनसा है इसका स्पष्टीकरण आगे करते हैं। ३६१।

नरकायु, देवायु, नरक गति द्वय–अर्थात् नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी–इन चार प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबंधको मध्यम योगोंको धारण करनेवाला असञ्ज्ञी जीव करता है। ३६२।

आहारकद्वयके जघन्य प्रदेशबन्धको प्रमादरहित- सातवें गुणस्थानका साधु करता है। और तीर्थंकर प्रकृति, देवचतुष्टय –देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरागोपांग-ये चार प्रकृति–इन पाच प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबंध, असंयत सम्यग्दृष्टि- चौथे गुणस्थानवाला जीव करता है। ३६३।

शेष बची हुई सर्व प्रकृति एकसौ नौ हैं। इन एकसौ नौ प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबंधको मध्यम योगोंको धारण करनेवाला सूक्ष्मनिगोद जीव करता है। ऊपरके दो श्लोकोंमें ग्यारह प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धको करनेवाले जुदे बताये हैं। इसलिये यहां शेष प्रकृति एकसौ नौ बचती हैं। ३६४।

प्रदेशप्रकृती बन्धौ योगतः स्तः कषायतः। जन्तो स्थित्यनुभागौ स्तः तद्द्वयपाये व्यपायतः ॥ ३६५॥

बन्धमें सर्व भेद चार हैं, (१) प्रकृति, (२) स्थिति, (३) अनुभाग (४) प्रदेशबन्ध। इन चारमेंसे जीवके प्रकृतिबंधका तथा प्रदेशबधका होना योगसे है। और स्थितिबन्ध तथा अनुभागबंध कषायसे होते हैं। योग तथा कषाय—इन दोनो कारणोंके अभाव हो जानेसे चारो प्रकारके बधका अभाव हो जाता है।३६५।

शंका—केवल योगके निमित्तसे एक साता वेदनीयका बध होता है। और शेष सर्व प्रकृति कषायके रहनेसे बधती हैं। ऐसी भी वस्तुस्थिति है। मिथ्यादर्शनादि चार बधके कारण पूर्वमें बताये हैं। उन चारोंके निमित्तसे जुदी जुदी प्रकृतियोंका बंध होना भी बताया है। किंतु यहांपर सर्व ही प्रकृतियोंके प्रकृति तथा प्रदेशबधका कारण योगको बताते हैं और सर्व ही प्रकृतियोंके स्थिति अनुभागका कारण कषायको बताते हैं। यह परस्परका विरोध जान पडता है उसका निराकरण कैसे होगा?

इसका उत्तर इस प्रकारसे होता है।—

मिथ्यादर्शन तथा अविरति—ये दोनो कषायके ही विशेष प्रकार हैं। मिथ्यादर्शनसे युक्त कषाय ही एक ऐसी विशिष्ट शक्तिको धारण करता है जिससे नरकायु आदिका बध हो सके। यहांपर कषायमें जो विशिष्ट शक्ति उत्पन्न होती है वह मिथ्यादर्शनके निमित्तसे होती है। इसलिये नरकायु आदि कुछ प्रकृतियोंका कारण कषायको न बताकर विशिष्टताधायक मिथ्यादर्शनको बताया गया है। इससे कषायकी कारणता यहांपर नष्ट नहीं होजाती है। इसी प्रकार अविरतिको जहा कारण बताया है वहां भी यही तात्पर्य है कि मिथ्यात्वसे कमती, परंतु एक प्रकारकी अधिकता ही कषायमें अविरतिके द्वारा प्राप्त होती है। ऐसी विशिष्टताको धारण करनेवाले कषायका वर्ग जुदा दिखानेके लिये विशिष्टताधायक अविरतिको ही कारण बतादिया गया है। ऐसी दोनों विशिष्टताएं जहांपर नहीं रहती हैं ऐसे ऊपरके स्थानोंके कषायका कषाय शब्दसे वर्णन किया गया है। इसीलिये जहां बधके चार कारण बताये हैं वहांपर कषायके विशिष्टताधायकोंकी मुख्यता मानलेनेसे भेद होगये हैं। वे विशिष्टताएं मुख्य न मानी जांय तो कषाय तथा योग—ये दो ही बधके कारण शेष रह जाते हैं।

दूसरा प्रश्न ऐसा है कि योग, आठ कर्मोंके प्रकृति प्रदेशबंधका कारण है अथवा एक सातावेदनीयका ही कारण है? इसका उत्तर इस प्रकारसे करना चाहिये।— योग कर्मपरमाणुओंके लानेमें अथवा संग्रह करनेमें कारण है। योगका अर्थ चंचलता है। चंचलतासे कर्मपरमाणु आत्माके साथ बंधनेको तत्पर होजाते हैं। उस तत्परताकी उत्पत्ति अथवा बंधकी निश्चितता कुछ नियत कर्मपरमाणुओंमें ही होना संभव है। सो जितने परमाणुओंमें वह बंधावस्था नियुक्त होजाती है उस निश्चित प्रदेशसंख्याको प्रदेशबंध कहते हैं। उस प्रदेशसमूहमें अथवा प्रदेशबंधमें आत्माके साथ बद्ध होकर टिकनेकी कोई एक मर्यादा जिसे स्थिति कहते हैं वह, और पारतन्त्र्यकी विविधताको रखनेवाले फलानुभवको करानेका सामर्थ्यविशेष–ये दो कार्य कषायाधीन हैं। इन्हीं दो सामर्थ्योंको स्थिति तथा अनुभागबन्धके नामसे कहा है। पारतन्त्र्यकी विविधता आठ प्रकारकी है। आठसे अधिक दोष होना संभव नहीं है। जो फलोत्पादन तथा स्थितिको करता है वही फलोत्पादनकी विविधताको भी उत्पन्न करेगा। इसलिये स्थिति अनुभागके कारणभूत कषायद्वारा ही कर्मोंमें आठ भेद भी होजाते हैं।

इस प्रकार कर्मपरमाणुओंमें स्थिति तथा अनुभागको और आठ विभागोंको तथा उत्तर विभागोंको करनेका कारण कषाय परिणाम ठहरा। वह कषाय जहांपर नहीं रहा, केवल योग शेष रहा हो वहांपर योगका कार्य जो प्रदेशबंध वह तो होगा किंतु कषायकृत ऊपर बताये हुए स्थितिनियमन, फलदान सामर्थ्य निर्माण, तथा अष्ट प्रकारका विभागीकरण–ये कार्य नहीं होते। इसीलिये ऐसे योगियोंके जो कर्मबंध होता है उसे ईर्यापथ नाम दिया गया है। ईर्यापथ शब्दका अर्थ है कि जैसा आवे वैसा ही उसी समयमें चला जाय। अर्थात् वह कर्म जो कर्मत्व रूपसे प्रदेशसंख्यामें अवधारित होता है वह ठहरता एक क्षण भी नहीं है। हटता हुआ ही आता है। यह क्यों? यह इसीलिये कि स्थितिका कारण कषाय है, वह वहांपर न रहनेसे उस कर्मको रोके कौन? जैसे उस योगीके बंधमें स्थिति नहीं पडती वैसे अनुभाग तथा आठ विभाग भी नहीं हो पाते हैं। इसीलिये वह कर्म पूर्व कर्मोंके समान बाधक भी नहीं होता इसलिये केवल शब्दव्यवहारार्थ उसे साता वेदनीय माना गया है। साताके स्वभावकी और इस कर्मकी समानता है।

इस प्रकार जो केवल योगके रहते कर्मबंध होता है उसे अनुभागकी अपेक्षासे सातावेदनीयरूप न मानकर प्रकृतिकी

स्वभाव प्रकृतिर्ज्ञेया स्वभावादच्युतिः स्थितिः। अनुभागो रसातासां प्रदेशोंऽशावधारणम् ॥ ३६६ ॥
प्रकृतिस्तिक्तता निंबे स्थितिरच्यवन पुनः। रसस्तस्यानुभाग' स्यादित्येव कर्मणामपि ॥ ३६७ ॥
काल क्षेत्र भवं द्रव्यमुदयः प्राप्य कर्मणाम्। जायमानो मतो द्वेधा विपाकेतरभेदतः ॥ ३६८ ॥

अपेक्षासे उसका साता वेदनीय नाम पडता है। प्रकृति सामान्य स्वभाव है। वह योगका ही कार्य बताया गया है। इसलिये योगके कारण जो बंध होता है वह इतर रूप परिणत न होनेसे केवल सात स्वरूपसे परिणत हुआ माना जाता है। इस प्रकारसे देखें तो प्रकृति प्रदेशबंधका कारण जो योगको बताया है वह भी कहना ठीक हो जाता है और योगकृत एक साता वेदनीयका ही बंध होना बताया है वह भी सयुक्तिक हो जाता है।३६५।

सामान्य स्वभावका होना वह प्रकृति कहाती है। कर्म अथवा ज्ञानावरणादि अथवा मतिज्ञानावरणादि मूलोत्तर भेदोंके स्वभावसे न हटनेकी जो कालमर्यादाका नियोगधारण वह स्थिति है। उन प्रकृतियोंके फल देनेकी जो नियत अवस्था अथवा रसविशेष वह अनुभाग कहाता है। कर्मोंकी परमाणुसंख्याका जो निश्चित प्रमाण ठहरना वह प्रदेशबन्ध है। चारो बंधभेदोंका यह जुदा जुदा अर्थ है।३६६।

नींबका उदाहरण सामने रखकर चार बंधको दिखाते हैं।—

नींबवृक्षमें जो जातिद्वारा तिक्तता मानी जाती है वह नींबकी प्रकृति है। नींब पर्याय रहने तक जो उस तिक्तस्वभावसे न हटना वह तिक्तताकी कालावधिरूप स्थिति है। उस तिक्तताका जो अनुभवरूप विशेष स्वरूप है वह अनुभाग है। अर्थात् नींबकी पिंडरचनाको प्रदेश कहना चाहिये। इसी प्रकार कर्मोंके भी प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश—ये चार भेद समझलेने चाहिये।३६७।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव—इन चार साधनोंकी अनुकूलता प्रतिकूलताको पाकर जो कर्मोंका उदय होता है उसके दो भेद है, एक विपाकरूप, दूसरा अविपाकरूप। उदयका अर्थ यहांपर ऐसा है कि बन्धमेंसे बाहिर पडना। वह उदय एक तो ऐसा रहता है जो द्रव्य क्षेत्रादिकी अनुकुलता रहनेसे अपना फल देकर निर्जीर्ण होता है। दूसरा ऐसा होता है कि द्रव्य क्षेत्रादिकी प्रतिकूलता रहनेसे वह फलको न देकर ही निर्जीर्ण होजाता है। स्थितिके पूर्ण होनेपर कर्मका उदय होता ही है। इसलिये द्रव्यक्षेत्रादिकी अनुकूलता उस समय न रहनेसे फल न देसकनेपर भी उदयागत कर्मोंकी निर्जरा अवश्य होती है। ३६८।

भागोऽसंख्यातिमः श्रेणेर्योगस्थानानि देहिनः । ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेय सर्वप्रकृतिसंग्रह ॥ ३६९ ॥
ततोऽसख्यगुणानि स्युः स्थितिस्थानान्यतः स्थितेः । स्थानान्यध्यवसायानामसख्यातगुणानि वै ॥ ३७० ॥
असख्यातगुणान्यस्माद्रसस्थानानि कर्मणाम् । ततोऽनंतगुणाः सति प्रदेशाः कर्मगोचराः ॥ ३७१ ॥
अविभागपरिच्छेदाः सर्वेषामपि कर्मणाम् । एकैकत्र रसस्थाने ततोऽनतगुणा मताः ॥ ३७२ ॥

जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंत योगोंके स्थान, प्रकृतिस्थान, स्थितिस्थान, अध्यवसाय स्थान, रसस्थान, प्रदेशस्थान, अविभाग प्रतिच्छेदस्थान—इन सात विषयोंका इस बंधमें सबंध रहता है । इनमेंसे कुछ कार्यरूप हैं, कुछ कारणरूप हैं । उत्तरोत्तर एकसे दूसरेका प्रमाण अधिक अधिक है ।

[१] जीवोंके प्रदेशबंधके लिये कारणीभूत योगोंके स्थान जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंत सर्व, श्रेणीप्रमाणके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । यह एक मध्यम असख्यातकी सख्या है ।

(२) इस जुदे जुदे योगस्थानसे जो प्रकृतियोंका बंध होता है वे प्रकृतिएं योगस्थानोंकी सर्व सख्यासे असंख्यातगुणी हैं । प्रकृतियोंमें जो प्रदेश होते हैं उनका यह प्रमाण नहीं है किंतु प्रकृति इतने असख्यात प्रकारकी हैं ऐसा समझना चाहिये । प्रकृतियोंके मूल भेद आठ हैं, उत्तर भेद एक सौ अडतालीस हैं । इसी प्रकार इनके उत्तरोत्तर भेद जो होते हैं वे भेद योगस्थानोंकी संख्यासे असख्यात गुणे हैं । उन भेदोंके नामोंका उल्लेख ग्रंथोंमें नहीं किया गया है क्योंकि, सर्व भेद लिखना असभव है । परतु किसी किसी उदाहरणमें ऐसे उत्तरोत्तर एकाध भेदका नाम कहीं कहींपर आजाता है । जैसे जिनसेन स्वामीने ‘ मनुष्यजातिरेकैव ’ इस वचनसे मनुष्यजातिका उल्लेख किया है ।

[३] तीसरा स्थान स्थितियोंका है । एक एक कर्मकी जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंतकी स्थिति असख्यात प्रकारकी होती हैं । सर्व कर्मोंकी जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंतकी सर्व मिलाकर देखी जांय तो प्रकृतियोंकी असख्यात सर्व सख्यासे असंख्यात गुणे स्थितिबध हैं । भावार्थ, एक एक प्रकृतिमें स्थिति असंख्यात प्रकारकी होती है । किसीके, और कर्मोकी एक किसी प्रकृतिमें जो स्थिति उत्पन्न हुई हो उससे दूसरेकी दूसरे समयवर्ती वैसी ही प्रकृतिमें स्थिति दूसरी तरहकी भी होसकती है । इस प्रकार प्रकृति सर्व जब कि असख्यात प्रकारकी हैं तो स्थितिस्थान उस प्रकृतिसख्यासे और भी असख्यात गुणे होने चाहिये, वही यहांपर बताया है ।

[४] अध्यवसायका अर्थ कषाय है । जो स्थितिबध-अनुभागबधके कारणीभूत कषाय होते हैं उनके जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंतके स्थान स्थितिस्थानोंसे असख्यात गुणे हैं ।

कर्मप्रवादांबुधिविन्दुकल्प श्चतुर्विधो बंधविधिः स्वशक्त्या ।
संक्षेपतो य कथितो मयाऽसौ । विस्तारणीयो महनीयबोधैः ॥ ३७३ ॥
बंधविचार बहुतमभेद यो हृदि धत्ते निगलितखेदम् । याति स भव्यो व्यपगतकष्टा सिद्धिमबंधोऽमितगतिरिष्टाम् ॥
गुणस्थानविशेषेषु प्रकृतीना नियोजने । स्वामित्वमिह सर्वत्र स्वयमेव विबुध्यताम् ॥ ३७५ ॥

इति शतक समाप्तम् ।

(५) अध्यवसाय स्थानोंसे असंख्यातगुणे कर्मोंके रसस्थान अथवा अनुभागस्थान हैं । अनुभागशक्तिको रस कहा है । एक अध्यवसायस्थानके द्वारा असंख्यात प्रकारके अनुभाग, द्रव्य क्षेत्रादिके निमित्तसे बांधे जाते हैं । जो एक एक अध्यवसाय द्वारा कर्मोंके अनुभाग बांधे जाते हैं वे भिन्न कर्मोंके और अनेक प्रकारके होत है । इसलिये अध्यवसायोंके भेदोंसे अनुभागके स्थान असंख्यात गुणे सिद्ध हो जाते हैं ।

(६) एकेक प्रकारके अनुभागको रखनेवाले कर्मप्रदेश अनंतानंत होते हैं । इसलिये सर्व अनुभागस्थानोंसे कर्मप्रदेश अनंतगुणे माने गये हैं ।

[७] एक एक अनुभागस्थानमें जो अविभागी प्रतिच्छेद अर्थात रसांश रहते हैं वे संपूर्ण संपूर्ण कर्मप्रदेशोंसे अनंत गुणे होते हैं । जिनके द्वारा शक्ति अथवा किसी गुणका अंदाज किया जाता है वे गुणके अत्यंत सूक्ष्म अंश कहे जाते हैं । उनके फिर छोटे अंश नहीं हो सकते हैं इसलिये उन अंशोंको अविभाग प्रतिच्छेद भी कहते हैं । विभाग न होनेसे वह अविभाग अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म । ऐसा जो प्रतिच्छेद अर्थात् गुणांश उसका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है । अविभाग परिच्छेद भी कहते हैं।३६९-३७२

कर्मप्रवादनामके अगाध समुद्रमेंसे विन्दुके समान यह जो चार प्रकारका बंधविधान मैंने अपनी शक्तिके अनुसार संक्षेपसे कहा है, उसे विशाल आर्ष बोधके धारक विस्तृत करें । ३७३ ।

बन्धके विचारमें बहुत बहुत सूक्ष्म भेद हैं । उसको जो खेद रहित हृदयमें समझता है—धारण करता है वह भव्य कर्मबंधनसे छूटकर अपरिमित ज्ञानका धारी होकर, कष्ट बाधाओंसे रहित और इष्ट ऐसे सिद्धपदको प्राप्त हो जाता है ।३७४।

जुदे जुदे गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके संभवासंभवको लगानेमें स्वामित्वका ज्ञान भी अनायास ही होजाता है ।३७५।

अब गोमटसारके अनुसार मूलोत्तर प्रकृतियोंको सार्थ दिखाते हैं ।—

पच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरा कमेण तेणउदी । तेउत्तर सय वा दुग पणग उत्तरा होंति ॥ २२ ॥

पञ्च नव द्वौ अष्टाविंशति चत्वार क्रमेण त्रिनवति । त्र्युत्तर शतं वा द्विक पञ्चकमुत्तरा भवन्ति ॥ २२ ॥

अर्थ —ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंके प्रत्यक भेद क्रमसे पाच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवैं अथवा एकसौ तीन, दो, पाच होते हैं ऐसा जानना । भावार्थ–ज्ञानावरणके मतिज्ञानावरण १ श्रुतज्ञानावरण २ अवधिज्ञानावरण ३ मन पर्ययज्ञानावरण ४ केवलज्ञानावरण य ५ भेद । दर्शनावरणके चक्षुर्दर्शनावरण १ अचक्षुर्दर्शनावरण २ अवधिदर्शनावरण ३ केवलदर्शनावरण ४ और स्त्यानगृद्धि ५ निद्रानिद्रा ६ प्रचलाप्रचला ७ निद्रा ८ प्रचला ९ ये पाच निद्रा इस प्रकार नौ भेद हैं ॥ २२ ॥

अब दर्शनावरणीयके भेदमें पाच निद्राका कार्य तीन गाथाओंसे कहते है ,—

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्म कदेदि जप्पदि य । णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घादिदु सक्को ॥ २३ ॥

स्त्यानगृद्ध्युदयेन उत्थापिते स्वपिति कर्म करोति जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन च न दृष्टिमुद्घाटयितु शक्य ॥ २३ ॥

अर्थ —स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणी कर्मके उदय कर उठाया हुआ भी सोता रहै, उस नींदमें ही अनेक कार्य करै तथा कछ बोले भी परन्तु सावधानी न होय ॥ और निद्रानिद्राकर्मके उदयसे अनेक तरहसे सावधान किया हुआ भी आखोंको नहीं उघाड सकता है ॥ २३ ॥

पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलति अगाइं । णिद्दुदये गच्छतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ ॥ २४ ॥

प्रचलाप्रचलोदयेन च वहति लाला चलन्ति अङ्गानि । निद्रोदये गच्छन् तिष्ठति पुन विशति पतति ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रचलाप्रचलाकर्मके उदयसे मुखसे लार बहती है और हाथ वगैर अग चलते हैं, स्थिर नहीं रहते । तथा निद्रा कर्मके उदय होनेसे गमन करता हुआ खडा होजावै बैठजावै गिर पडै इत्यादि क्रिया करता है ॥ २४ ॥

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि । ईसं ईसं जाणदि मुहु मुहु सोवदे मद ॥ २५ ॥

प्रचलोदयेन च जीव ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोपि । ईषदीषज्जानाति मुहुर्मुहु स्वपिति मन्दम् ॥ २५ ॥

अर्थ—प्रचलाकर्मके उदयसे यह जीव कुछ एक आखोंको उघाडकर सोता है, और सोता हुआ भी थोडा थोडा जानता है, बार बार मन्द (थोडा) शयन करता है। यह निद्रा श्वानके समान है, सब निद्राओंसे उत्तम है॥ इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके कुछ भेदोंका कार्य कहा॥ २५॥

वेदनीयकर्म सातावेदनीय १ असातावेदनीय २ दो भेदस्वरूप है। मोहनीयकर्म भी साधारण रीतिसे दो प्रकारका है—दर्शनमोहनीय १ चारित्रमोहनीय २, इनमें दर्शनमोहनीय बंधकी अपेक्षा मिथ्यारूप एक ही है और उदय तथा सत्ताकी अपेक्षा मिथ्यात्व १ सम्यग्मिथ्यात्व २ सम्यक्त्वप्रकृति ३ इन तीन स्वरूप है॥

आगे ये तीन भेद किस तरह हो जाते हैं? इसका उत्तर कहते हैं,—

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण। मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा॥ २६॥
यंत्रेण कोद्रवं वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रेण। मिथ्यात्वं द्रव्यं तु त्रिधा असंख्यगुणहीनद्रव्यक्रमात्॥ २६॥

अर्थ—यंत्र अर्थात् घरटीकरि दले हुए कोदोंकी तरह प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामरूप यंत्रसे मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य क्रमसे असंख्यात गुणा कम होता हुआ तीन प्रकार हो जाता है। भावार्थ—जैसे कोदों–धान्यविशेष दलनेपर भुसी, तंडुल और कण ऐसे तीन रूप होजाता है उसीतरह मिथ्यात्वरूप कर्मद्रव्य भी उपशमसम्यक्त्वरूपी यंत्रके द्वारा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीन स्वरूप परिणमन करता है। इस कारण एक मिथ्यात्वरूप दर्शनमोहनीयकर्मके तीन भेद कहे हैं॥ २६॥

चारित्रमोहनीयके दो भेद हैं एक कषायवेदनीय दूसरा नोकषायवेदनीय, उनमें कषायवेदनीय १६ प्रकार है, उसको क्षय होनेके क्रमसे कहते हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध ५ मान ६ माया ७ लोभ ८, प्रत्याख्यानावरण क्रोध ९ मान १० माया ११ लोभ १२, संज्वलन क्रोध १३ मान १४ माया १५ लोभ १६। और नोकषायवेदनीयके नव भेद हैं—पुरुषवेद १ स्त्रीवेद २ नपुंसकवेद ३ रति ४ अरति ५ हास्य ६ शोक ७ भय ८ जुगुप्सा ९। आयुकर्म चार तरहका है—नरकायु १ तिर्यंच आयु २ मनुष्यायु ३ देव आयु ४। तथा नामकर्म पिंड

[भेदवाली] और अपिंड [भेद रहित] प्रकृतियोंसे व्यालीस प्रकार हैं, उन दोनों प्रकृतियोंमें पिंड [भेदवाली] प्रकृति १४ हैं—गति १ (नरक १ तिर्यंच २ मनुष्य ३ देवगति ४) जाति २ (एकेन्द्री १ दोइन्द्री २ तेइन्द्री ३ चौइन्द्री ४ पचेंद्रीजाति ५) शरीरनाम ३ (औदारिक १ वैक्रियिक २ आहारक ३ तैजस ४ कार्मणशरीर ५) ॥

अब इन पांच शरीरोंके भी सयोगी (मिले हुए) भेद कहते हैं;—

तेजाकम्मेहिं तिए तेजा कम्मेण कम्मणा कम्म । कयसंजोगे चदुचदुचदुदुग एक्क च पयडीओ ॥ २७ ॥

तैजसकार्मणाभ्यां त्रये तैजस कार्म्मणेन कार्म्मणेण कार्म्मण । कृतसंयोगे चतुश्चतुश्चतुर्द्विकमेक च प्रकृतय. ॥ २७ ॥

अर्थ—तैजसशरीर और कार्मण शरीरके साथ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरका आपसमें संबंध करनेसे चार, चार और चार—इस तरह मिलकर १२ भेद होते हैं । तथा कार्मणशरीरके साथ तैजसशरीरके मिलनेसे दो भेद और कार्मणशरीरके साथ कार्मणका संबंध होनेसे एक भेद—इस तरह सब मिलकर १५ भेद होते हैं । इनका खुलासा यह है—औदारिकऔदारिक १ औदारिकतैजस २ औदारिककार्माण ३ औदारिकतैजसकार्माण ४ वैक्रियिकवैक्रियिक ५ वैक्रियिकतैजस ६ वैक्रियिककार्माण ७ वैक्रियिकतैजसकार्माण ८ आहारकआहारक ९ आहारकतैजस १० आहारककार्माण ११ आहारकतैजसकार्माण १२ तैजसतैजस १३ तैजसकार्माण १४ कार्माणकार्माण १५—इस प्रकार पंद्रह भेद हुए । इनमेंसे पांच जो " औदारिकऔदारिक, वैक्रियिक-वैक्रियिक, आहारकआहारक, तैजसतैजस, कार्माणकार्माण " हैं वह पहले कहे हुए पांच शरीरोंमें शामिल हो जाते हैं । इस कारण मुख्य यहां १० भेद हुए । जैसे चक्रवर्ती जब विक्रिया करके १ कम ९६००० छ्यानवै हजार शरीर बनाता है तब औदारिकसे औदारिकशरीर बनाता है उसको औदारिकऔदारिक कहते हैं । इसीतरह देवके वैक्रियिकसे वैक्रियिक होता है उसे वैक्रियिक-वैक्रियिक कहते हैं । इस प्रकार और भेद भी समझलेना ॥ २७ ॥

बन्धन नामकर्म ४ (औदारिकशरीरबंधन १ वैक्रियिकबंधन २ आहारकबंधन ३ तैजसबंधन ४ कार्माणशरीरबंधन ५) । संघातनामकर्म ५ (औदारिकशरीरसंघात १ वैक्रियिकसंघात २ आहारकसंघात ३ तैजससंघात ४ कार्माणशरीरसंघात ५)

॥३२३॥

शरीरसस्थाननामकर्म ६ (समचतुरस्रसस्थान १ न्यग्रोधपरिमण्डल २ स्वाति ३ कुब्ज ४ वामन ५ हुडसस्थान ६) शरीरआंगोपांग नामकर्म ७ (औदारिकशरीर आगोपाग १ वैक्रियिक आगोपाग २ आहारकशरीर आगोपाग ३) तैजस तथा कार्माणके आगोपांग नहीं हैं ।

अब आगोपाग कौन २ हैं यह कहते हैं,—

णलया बाहू य तहा णियब पुट्ठी उरो य सीसो य । अट्ठेव दु अगाइ देहे सेसा उवगाइ ॥ २८ ॥

नलकौ बाहू च तथा नितम्ब पृष्ठ उरश्च शीर्षं च । अष्टैव तु अङ्गानि देहे शेषाणि उपाङ्गानि ॥ २८ ॥

अर्थ—दो पग, दो हाथ, कमरके पीछेका भाग (चूतड), पीठ, हृदय, और मस्तक ये शरीरमे आठ अग हैं और दूसरे नेत्र कान वगैर सब उपाग कहेजाते हैं ॥ २८ ॥

सहननननामकर्म ८ (वज्रवृषभनाराच १ वज्रनाराच २ नाराच ३ अर्द्धनाराच ४ कीलित ५ असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन ६)॥

आगे ये छहसहननवाले जीव किस २ सहननसे कौन २ गतिमें उत्पन्न होते हैं यह कहते है,—

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति । तत्तो दुजुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति ॥ २९ ॥

असृपाटेन च गम्यते आदित चतुर्षु कल्पयुगल इति । तत द्वियुगलयुगले कीलितनाराचार्द्ध इति ॥ २९ ॥

अर्थ—असृपाटिकासहननवाले जीव स्वर्गगतिमें जो उत्पन्न होवें तो पहले–सौधर्मयुगल (सौधर्म, ऐशानस्वर्ग २) से चौथे लातवयुगल (लांतव १ कापिष्टस्वर्ग २) तक चार युगलोंमें उत्पन्न होते हैं । फिर चौथे युगलके बाद दो दो युगलोंमें क्रमसे कीलित सहननवाले और अर्द्धनाराच संहननवाले तकके चार सहननवाले जीव जन्म धारते हैं। अर्थात् पाचवें तथा छट्ठे स्वर्गयुगलमें कीलित सहननवाले तक पाच सहननवाले और सातवें तथा आठवें स्वर्गयुगलमें अर्द्धनाराच सहननवाले चार संहनन तक के जन्म लेते हैं ॥ २९ ॥

णवगेविज्जाणुद्दिसणुत्तरवासीसु जांति तं णियमा । तिदुगेगे सवडणे णारायणमादिगे कमसो ॥ ३० ॥

नवग्रैवेयिकानुदिशानुत्तरवासिषु यान्ति ते नियमात् । त्रिद्विकैकेन सहननेन नाराचादिकेन क्रमश ॥ ३० ॥

अर्थ— नाराच आदि तीन सहननसे अर्थात् नाराच, वज्रनाराच, वज्रवृषभनाराच इन तीन सहननोंवाले ये जीव नवग्रैवेयिकमें, वज्रनाराच, वज्रवृषभनाराच दो संहननवाले नव अनुदिश विमानोंमें तथा वज्रवृषभनाराच सहननवाले पाच अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार स्वर्गमें जन्मनेकी मर्यादा कही ॥ ३० ॥

सण्णी छस्सहणणे वज्जदि मेघ तदो पर चापि । सेवट्टादीरहिदो पणचदुरेगसहणणो ॥ ३१ ॥

सञ्ज्ञी षट्सहननो व्रजति मेघां तत परं चापि । असृपाटादिरहित पञ्चमीं पञ्चचतुरेकसहनन. ॥ ३१ ॥

अर्थ—छह सहननवाले सैनी (मनसहित) जीव यदि नरकमें जन्म लेवें तो मेघानाम तीसरे नरकपर्यंत जाते हैं, और असृपाटिकासहननरहित पाच सहननवाले अरिष्टा नाम पाचवीं नरककी पृथ्वीतक उपजते हैं, चार सहननवाले अर्थात् अर्द्धनाराचपर्यंत-वाले पाचवींके वाद जो मघवी नाम छट्ठी पृथिवी है वहातक, और आदिके वज्रवृषभनाराच सहननवाले सातवीं माघवी नाम पृथिवीतक उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥

अंतिमतियसहणणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाण । आदिमतिगसहणण णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठ ॥ ३२ ॥

अन्तिमत्रयसहननस्योदय पुन कर्मभूमिमहिलानाम् । आदिमत्रिकसहनन नास्तीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अन्तके तीन अर्द्धनाराचादि सहननोंका उदय कर्मभूमिकी स्त्रियोंके होता है और आदिके तीन वज्रवृषभनारा-चादि सहनन कर्मभूमिकी स्त्रियोंके होते ही नहीं ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है ॥ ३२ ॥

वर्ण नामकर्म ९ (काला १ हरा २ लाल ३ पीला ४ सफेद ५) । गंध नामकर्म १० (सुगंध १ दुर्गंध २) रस नामकर्म ११ (तीखा अथवा चरपरा १ कडुआ २ कसैला ३ खट्टा ४ मीठा ५) स्पर्श नामकर्म १२ (कठोर १ कोमल २ भारी ३ हलका ४ रूखा ५ चिकना ६ ठडा ७ गर्म ८) । आनुपूर्वी नामकर्म १३ (नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी १ तिर्यंचगति-प्रायोग्यानुपूर्वी २ मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी ३ देवगतिप्रायोग्य आनुपूर्वी ४) इस प्रकार तेरह ये और उद्योतके पीछे विहायोगति नाम-कर्म १४ (प्रशस्तविहायोगति १ अप्रशस्तविहायोगति २) ये सब १४ पिंडप्रकृतिया हैं। और २८ अपिंड प्रकृतिया हैं। वे इस प्रकार हैं—

अगुरुलघुक १ उपघात २ परघात ३ उच्छ्वास ४ आतप ५ उद्योत ६ ।

यहा पर कोई भ्रम करे कि, आतपप्रकृतिका उदय अग्निकायमें भी होना चाहिये, क्योंकि जो संताप करे अर्थात् उष्णपनेसे जलावे वह आताप है । इस भ्रमके दूर करनेके लिए आगसे भिन्न आतपका लक्षण गाथामें कहते हैं,–

मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा । आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥ ३३ ॥

मूलोष्णप्रभा अग्निः आतापो भवति उष्णसहितप्रभा । आदित्ये तिरश्चि उष्णोनप्रभा हि उद्योत ॥ ३३ ॥

अर्थ:–आग है वह मूलसे ही उष्णप्रभासहित है इस कारण उसके स्पर्शनामकर्मका भेद उष्णस्पर्शनामकर्मका उदय जानना । और जिसकी प्रभा (किरणोंका फैलाव) ही उष्ण होवे उसको आतप कहते हैं । इस आतपनामकर्मका उदय सूर्यके बिंब [विमान] में उत्पन्न हुए बादरपर्याप्त पृथ्वीकायके तिर्यंच जीवोंके समझना । तथा जो उष्णरहित प्रभा है उसको उद्योत नियमसे जानना ॥ ३३ ॥

" विहायोगति नामकर्म " जोकि पिंड प्रकृतियोंमें गिनाया है । त्रस नामकर्म ७ बादर नामकर्म ८ पर्याप्त नामकर्म ९ प्रत्येकशरीर नामकर्म १० स्थिर नामकर्म ११ शुभ नामकर्म १२ सुभग नामकर्म १३ सुस्वर नामकर्म १४ आदेय नामकर्म १५ यशःकीर्ति नामकर्म १६ निर्माण नामकर्म १७ तीर्थंकर नामकर्म १८ स्थावर नामकर्म १९ सूक्ष्म नामकर्म २० अपर्याप्त नामकर्म २१ साधारणशरीर नामकर्म २२ अस्थिर नामकर्म २३ अशुभ नामकर्म २४ दुर्भग नामकर्म २५ दुःस्वर नामकर्म २६ अनादेय नामकर्म २७ अयशःकीर्ति नामकर्म २८ इस रीतिसे पिंड प्रकृति १४ तथा अपिंड (जुदी जुदी) प्रकृतिया २८=सब मिलकर नामकर्मकी ४२ प्रकृतियां हैं । यदि सब भेद अलग २ बोले जावें तो ९३ अथवा शरीर नामकर्मके मिले हुए दश भेद जोडनेसे १०३ प्रकृतिया हैं । इसी अपेक्षासे कोई आचार्य सब सयोगी कर्मोंकी १५८ प्रकृतियां कहते हैं । जो इन भेदोंको पांच शरीरमें ही गर्भित करलें तो १४८ ही प्रकृतियां हैं ॥ गोत्रकर्म है उसके दो भेद हैं–ऊंच गोत्र तथा नीच गोत्र । अन्तराय कर्मके पांच भेद हैं–दानान्तराय १ लाभांतराय २ भोगांतराय ३ उपभोगांतराय ४ वीर्यांतराय ५ । इस तरह कर्मोंके आठ मूल भेदोंके १४८ उत्तर भेद कहे ॥

इति शतक नाम चतुर्थ परिच्छेद समाप्त.

अथ सप्ततिर्नाम पञ्चमः परिच्छेदः ।

नत्वाहमर्हतो भक्त्या घातिकल्मषघातिनः । स्वशक्त्या सप्तर्ति वक्ष्ये बंधभेदाववुद्धये ॥ १ ॥
बधोदयसत्त्वानां सिद्धपदैर्दृष्टिवादपाथोधेः । स्थानानि प्रकृतीनामुद्धृत्य समासतो वक्ष्ये ॥ २ ॥

अथ पंचम परिच्छेदः ।

इस परिच्छेदमें बन्धके भेदोंका वर्णन है ।

घाती कर्मरूप पातकोंका नाश करडालनेवाले अर्हत देवको भक्तिपूर्वक मैं नमस्कार करता हू और बंधोंके भेद समझनेके लिये अपनी शक्तिक अनुसार सप्तति नाम अधिकारको कहता हू । यह पांचवां अधिकार है । विषय भी इस ग्रंथके वर्णनीय पाच थे उनमेंसे यह बन्धभेदका विषय पांचवा ही इस परिच्छेदमें कहा जानेवाला है । १ ।

दृष्टिवादरूपी समुद्रसे उद्धार करके सिद्धपदों द्वारा प्रकृतियोंके वन्ध—उदय—सत्तासंबन्धी स्थानोंको संक्षेपसे कहता हू ।

बन्ध—उदय—सत्वका सविस्तर वर्णन दृष्टिवादमें है । दृष्टिवाद द्वादशांगोंमेंसे बारहवा अंग है । सपूर्ण श्रुतज्ञानके विषयोंका वर्णन जो सर्वज्ञ देवसे सुनकर गणधरोंने किया है उसके सर्व बारह अग हैं। उन्हींमेंसे यह बारहवें अगका नाम दृष्टिवाद है। दृष्टि-वादके पाच भेद किये हैं, उनमेंसे चौथा भेद पूर्वगत है । पूर्वगतके उत्तर भेद चौदह हैं उन्हींको चौदह पूर्व कहते हैं। उनमेंसे एक पूर्व कर्मप्रवाद नामका है । उसका लक्षण राजवार्तिकालकारमें बताया है कि— " बन्धोदयोपशमनिर्जरापर्याया अनुभवप्रदेशा-धिकरणानि स्थितिश्च जघन्यमध्यमोत्कृष्टा यत्र निर्दिश्यते तत्कर्मप्रवादम् " ।

अर्थात्—उस कर्मप्रवादमें वन्ध उदय उपशम निर्जरारूप परिणमन होनेका वर्णन है, अनुभाग तथा प्रदेशबन्धके कारण कषायादि कैसे होते हैं—यह वर्णन है, और जघन्य मध्यम उत्कृष्ट स्थितिके भेदोंका वर्णन है ।

इस कर्मप्रवादका आधार लेकर ग्रथकार इस परिच्छेदमें कर्मप्रकृतियोंके बन्धका, उदयका, सत्ताका वर्णन करेंगे । ऊपरके

बंधे कत्युदये सत्त्वे सति स्थानानि वा कति । मूलोत्तरगताः सन्ति कियन्त्यो भंगकल्पनाः ॥ ३ ॥
अष्टकं सप्तकं षट्कं[1] बंधेऽष्टोदयसत्त्वयोः । एकबंधे त्रयो भेदा एको बंधविवर्जिते ॥ ४ ॥

बंध	८	७	६
उदय	८	८	८
सत्ता	८	८	८

एकबंधे-

बंध	१	१	१
उदय	७	७	४
सत्ता	८	७	४

अबंधे-

बं.	०
उ.	४
स.	४

चौथे परिच्छेदके अंतमें भी ग्रंथकारने कर्मप्रवादके आधारसे उस वर्णनको किया बताया है । वह कर्मप्रवाद भी यही है । इस प्रकरणके मूल श्लोकमें ग्रंथकारने दृष्टिवाद शब्द लिखा है । परंतु कर्मप्रवादका ही यह विषय होनेसे दृष्टिवादका सामान्य अर्थ न लेकर यहांपर 'कर्मप्रवाद' ही अर्थ लेना ठीक है । २ ।

बन्धमें कितने स्थान हैं, उदयमें कितने स्थान हैं, और सत्तामें कितने स्थान हैं, और मूल तथा उत्तर प्रकृतियोंमें भंग कितने कितने होते हैं ? इस प्रश्नको लेकर क्रमसे आगे उत्तर दिये गये हैं । ३ ।

बंधमें जहांपर आठका, सातका, छहका–ऐसे तीन स्थान हैं वहांपर उदय तथा सत्तामें आठ आठ ही कर्म हैं । एकके बंधमें तीन भंग हैं । और बंधरहितका एक ही भेद है । यंत्र आगे दिये हैं । ४ ।

बंध	८	७	६
उदय	८	८	८
सत्ता	८	८	८

एकबंधमें–

बंध	१	१	१
उदय	७	७	४
सत्ता	८	७	४

अबंधमें—

बंध	०
उदय	४
सत्ता	४

१—मूलमें पाठ 'षष्ठं' ऐसा है परंतु 'षट्कं' यह पाठ ठीक मालूम होता है ।

इस संबधमें ये तीन यंत्र दिये हैं उनका खुलासा इस प्रकार है।—

पहिले यत्रमें बध ८, ७, ६ प्रकृतियोंका बताया है। उसमेंसे पहिले सात गुणस्थान पर्यंत तीसरे गुणस्थानको छोडकर सर्वत्र आठ प्रकृति पर्यंत का बंध होता है।

और इसके आगे अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरणमें तथा मिश्र—तीसरे गुणस्थानमें—इन तीन गुणस्थानोंमें आयुका बंध होता ही नहीं है इसलिये सर्व सात प्रकृतियोंका ही बंध होता है। अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके आगे दशवें गुणस्थानमें आयुका भी बंध नहीं होता तथा मोहका भी बध नहीं होता इसलिये दशवेंमें छह प्रकृतियोंका बंध होता है। इन सर्व गुणस्थानोंमें उदय तथा सत्त्व आठो आठो ही कर्मोंका है। यह प्रथम यंत्रकी रचनाका अर्थ है।

आगे चलकर दशवें गुणस्थानसे ऊपर तेरहवें पर्यंत बध एक वेदनीय कर्मका ही रह जाता है। उनमेंसे ग्यारहवें बारहवें इन दो गुणस्थानोंमें मोहके शिवाय उदय सात सात कर्मोंका रहता है। फिर तेरहवें गुणस्थानमें घाती चार कर्म न रहनेसे अघाती मात्र चार कर्मोंका उदय रह जाता है। सत्ता ग्यारहवेंमें आठो कर्मोंकी है। बारहवेंमें सात कर्मोंकी है। तेरहवेंमें चार कर्मोंकी है। यह दूसरे यत्रका अर्थ हुआ।

तीसरे यत्रमें जहांपर बध होना सर्वथा रुक जाता है ऐसे अबधरूप चौदहवें गुणस्थानका खुलासा है। वहांपर बधका शून्य है, उदय—स्थानमें अघाती चार कर्म हैं, सत्तामें भी चार वे ही अघाती कर्म है।

गोमटसारमें इसका खुलासा इस प्रकार है।—

छसु सगविहमट्ठविहं कम्मं बंधंति तिसु य सत्तविहं। छव्विहमेक्कट्ठाणे तिसु एक्कमबंधगो एक्को ॥ ४५२ ॥

षट्सु सप्तविधमष्टविधं कर्म बध्नन्ति त्रिषु च सप्तविधम्। षड्विधमेकस्थाने त्रिषु एकमबन्धकमेकम् ॥ ४५२ ॥

अर्थ—मिश्रगुणस्थानके विना अप्रमत्त पर्यंत ६ गुणस्थानोंमें आयुके विना सातप्रकार अथवा आयुसहित आठप्रकार कर्मको बांधते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण-इन तीन गुणस्थानोंमें आयुविना सात प्रकार ही कर्म बंधरूप होते हैं। एक

त्रयोदशसु सप्ताष्टौ बंधेऽष्टोदयसत्तयोः । भेदा. संज्ञिनि पर्याप्ते पंच द्वौ केवलिद्वये ॥ ५ ॥

	बं.	७ ८		८ ७ ६ १ १		१ ०
त्रयोदशसु जीवसमासेषु–	उ.	८ ८	एकस्मिन् संज्ञिनि पूर्णे–	८ ८ ८ ७ ७	केवलिद्वये–	४ ४
	स.	८ ८		८ ८ ८ ८ ७		४ ४

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें आयु–मोहके विना ६ प्रकार ही कर्मोंका बंध होता है । उपशांतकषायादि तीन गुणस्थानोंमें एक वेदनीय-कर्मका ही बंध है । और अयोगीगुणस्थान बंधरहित है अर्थात् उसमें किसी प्रकृतिका भी बंध नहीं होता ॥ ४५२ ॥ गो. क

अट्ठुदओ सुहुमोत्ति य मोहेण विणा हु संतखीणेसु । घादिदराण चउक्कस्सुदओ केवलिदुगे णियमा ॥ ४५४ ॥

अष्टोदय सूक्ष्म इति च मोहेन विना हि शान्तक्षीणयो । घातीतराणां चतुष्कस्योदयः केवलिद्विके नियमात् ॥ ४५४ ॥

अर्थ–सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान तक आठ मूलप्रकृतियोंका उदय है, उपशांतकषाय और क्षीणकषाय इन दो गुणस्थानोंमें मोहनीयके विना सात का उदय है तथा सयोगी और अयोगी इन दोनोंके चार अघातिया कर्मोंका उदय नियमसे जानना ॥ ४५४॥

संतोत्ति अट्ठ सत्ता खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि । जोगिम्मि अजोगिम्मि य चत्तारि हवंति सत्ताणि ॥ ४५७ ॥

शान्त इति अष्ट सत्ता क्षीणे सप्तैव भवन्ति सत्त्वानि । योगिनि अयोगिनि च चत्वारि भवन्ति सत्त्वानि ॥ ४५७ ॥

अर्थ—उपशान्तकषाय गुणस्थानपर्यंत आठो प्रकृतियोंकी सत्ता है । क्षीणकषाय गुणस्थानमें मोहनीयके विना सात कर्मोंकी ही सत्ता है, और सयोगकेवली तथा अयोगकेवली इन दोनोंमें चार अघातिया कर्मोंहीकी सत्ता है ॥ ४५७ ॥

अब चौदह जीवसमासोंमें बंधोदयसत्ताके स्थानभंगोंको दिखाते हैं ।—

पूर्वमें जीवसमास सर्व चौदह बताये हैं उनमेंसे संज्ञी पर्याप्तकके एक समासको छोडकर शेष तेरह समासोंमें बंधमें सात तथा आठके ऐसे दो भेद हैं, वहां उदयमें तथा सत्तामें आठ आठके ही स्थान हैं । ऐसे समझना । संज्ञी पर्याप्तकके भंग पांच हैं । दोनो गुणस्थानवर्ती केवलियोंके दो दो भंग हैं । यंत्र आगे दिया है ।

	बंध	७ ८		बंध–८ ७ ६ १ १		बंध–१ ०
तेरह जीवसमासोंमें–	उदय	८ ८	संज्ञी पर्याप्तक एक जीवसमासमें—	उदय–८ ८ ८ ७ ७	दोनो केवलियोंमें–	उदय–४ ४
	सत्ता	८ ८		सत्ता–८ ८ ८ ८ ७		सत्ता–४ ४

द्वौ विकल्पौ गुणस्थानषट्के मिश्र विनाष्टसु । एकैकः कर्मणां बंधपाकसत्वेषु जायते ॥ ६ ॥

मिथ्यादृष्ट्यादीनां षण्णां मिश्रवर्जितानां द्वौ विकल्पौ–		
	८	७
	८	८
	८	८

एकैकोऽष्टानां–	मिश्र	अपू.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
	७	७	७	६	१	१	१	०
	८	८	८	८	७	७	४	४
	८	८	८	८	८	७	४	४

भावार्थ, संज्ञी पर्याप्तकके सर्व गुणस्थान हो सकते हैं इसलिये, भंग पांच हैं–एक आठ बंधका है, दूसरा सातका है, तीसरा छहका है, चौथा एकका है, और पांचवेंमें बंधका शून्य है। और संज्ञीके सिवाय शेष तेरह ही समासोंमें क्षपकादि कोई ऊपरके गुणस्थान नहीं होते इसलिये वहांपर या तो आयुसहित आठका ही बंध होता है, नहीं तो यदि आयुर्बंधका समय न हो तो सर्व सातका ही बंध होता है। ऐसे यहां भेद दो हैं। ५।

जीवसमासोंमें तेरह जीवसमास आयुसहित आठ अथवा आयुरहित सातके बंधवाले और सत्ता तथा उदयमें आठ आठ कर्मोंकी संख्या रखनेवाले हैं। किंतु संज्ञी पर्याप्तक समासमें सर्व तेरह गुणस्थान संभव हैं इसलिये गुणस्थानक्रमके अनुसार ही इस समासमें बंधोदयसत्ताको समझना। यह जीवसमासोंके यंत्रोंका स्पष्टीकरण है।

अब गुणस्थानोंमें विकल्पोंको दिखाते हैं।–

मिथ्यादृष्ट्यादि प्रथमसे लेकर, और मिश्रको छोडकर, सात गुणस्थान पर्यंत छह गुणस्थानोंमें आयु सहित बंध होता है तो आठ आठ प्रकृतियोंका होता है। यदि आयुका बंध नहीं हो तो सात सातका बंध होता है। इसलिये इन छह गुणस्थानोंमें दो दो विकल्प हैं। और सातवेंसे आगेके तेरहवें पर्यंत सात गुणस्थानोंमें तथा मिश्र तीसरे गुणस्थानमें–इन आठ गुणस्थानोंमें विकल्प एक एक ही है। क्योंकि बंध इन गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानमें है तो किसी एक एक प्रकारका ही है, सत्ता भी एक एक प्रकारकी ही है, और उदय भी किसी एक एक प्रकारका ही है। और बंध चौदहवें गुणस्थानमें है ही नहीं। इसको स्पष्ट करनेके लिये ऊपर यंत्र दिये हैं। ६।

वधोदयास्तिता मूलप्रकृतीनां निवेदिताः । उत्तरप्रकृतीनां ता कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
वंधादित्रितये पच विघ्ने ज्ञानावरोधने । शांते क्षीणे च निर्बन्धे पंचानामुदयास्तिते ॥ ८ ॥
दशसु—व ५, ५ । उ. ५, ५ । स. ५, ५ । शान्तक्षीणयोः—०, ० । ५, ५ । ५, ५ ।
नव स्युः पट् चतस्रश्च दृग्रोधे वधसत्वयोः । स्थानानि त्रीणि पाके द्वे चतस्रः संति पंच वा ॥ ९ ॥

इस प्रकार तीनो जोडकर मूल प्रकृतियोंकी बंध उदय सत्ता बताई । अब उत्तर प्रकृतियोंके अनुसार बंध–उदय––सत्ता इन तीनोंको बताते हैं । ७ ।

प्रथम अंतराय तथा ज्ञानावरणके उत्तर भेदोंमें वधोदयसत्त्वको गुणस्थानक्रमसे दिखाते हैं ।—

दश गुणस्थान पर्यंत अंतराय तथा ज्ञानावरणकी पाच पाच प्रकृतियोंका उदय है, पाच पाचकी ही सत्ता है, और पाच पाचका ही बध है । इस प्रकार बंधादि तीनो अवस्थाएं पाच पाचकी ही हैं । शांतकषाय–ग्यारहवेंमें, क्षीणकषाय--बारहवें गुणस्थानमें उदय पाच पाच का है और सत्ता भी पांच पाचकी है । बध इनमेंसे एकका भी नहीं है, इसलिये इन दोनो गुणस्थानोंका विशेषण ' निर्बंध ' ऐसा दिया है । ८ ।

आदिसे दशवें गुणस्थान पर्यंत–बंधमें ५ अंतराय, ५ ज्ञानावरण । इसी प्रकार उदयमें ५ अतराय, ५ ज्ञानावरण । सत्तामें भी ५ अतराय, ५ ज्ञानावरण । इसके आगे उपशात तथा क्षीणकषायमें बधके स्थानमें अतरायका भी शून्य है, ज्ञानावरणका भी शून्य है । और उदयके तथा सत्ताके स्थानोंमें ५–५ सख्या है । यह यंत्रोंका अर्थ हुआ ।

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणके नौ भेदोंमेंसे यथासभव प्रकृतियोंके बंध–उदय–सत्वको जोडकर दिखाते हैं ।—

दर्शनावरणकी सर्व नौ प्रकृतियोंमेंसे कुछ स्थानोंमें नौका ही बध तथा नौकी ही सत्ता रहती है। कुछ गुणस्थानोंमें छह छह प्रकृतियोंका बध तथा कुछ गुणस्थानोंमें छहकी सत्ता रहती है । कुछ गुणस्थानोंमें चारका बध और चारकी कुछ गुणस्थानोंमें सत्ता रहती है। इस प्रकार बंध तथा सत्ताके तीन स्थान हैं। उदयके स्थान दो हैं, एक चार प्रकृतियोंका है, दूसरा पांच प्रकृतियोंका है ।९।

भवंति नव सर्वाः पट् स्त्यानगृद्धित्रयं विना । चतस्रः प्रचलानिद्रारहिता बंधसत्वयोः ॥ १० ॥
९ । ६ । ४ ।
चतस्रोऽत्रोदये चक्षुर्दर्शनावरणादयः । जायते पच वा निद्रादीनामेकतरोदये ॥ ११ ॥ ४ । ५ ।
बंधत्रये सति नवात्र सत्त्वे षट्क चतुर्बन्धिनि बंधहीने । नवाथ षड् द्वौ सकलेषु पाकौ सत्त्वे च पाके च चतुष्कमंतये ।१२।

नौके जो स्थान हैं वहापर दर्शनावरणकी सर्व प्रकृति समझनी चाहिये । जहा छह प्रकृतियोंके स्थान हैं वहांपर स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राकर्म छूट जाते हैं । और चार प्रकृतिके स्थानमें निद्रा तथा प्रचला ये दो भी छूट जाती हैं और स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा भी छूट जाती हैं । यह बंध तथा सत्ताके विषयमें समझना । १० ।

उदयमें जहांपर दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंका उदय है वहापर चक्षुर्दर्शनावरण आदि चार लेनी चाहिये । इनमें निद्रा पाचो ही छूट जाती हैं । और यदि पाच प्रकृतियोंके उदयका स्थान मानें तो चार चक्षुर्दर्शनावरणादिके साथ निद्रादि पांच निद्राओंमेंसे एक किसी भी निद्रा प्रकृतिको जोड देना चाहिए । जागृत अवस्थामें चार दर्शनावरणोंका उदय होता है । और एक निद्रासहित पाचका उदय सोनेकी अवस्थामें होता है । ११ ।

बध उदय सत्ता—इन तीनोंका एक यंत्र करना । उस यत्रमें यह बताया है कि सत्ता उदय तथा बंध—ये तीनों साथमें कितने कितने रहते हैं । अर्थात् जहां सत्ता दर्शनावरणकी एक अमुक प्रकृतियोंकी है वहांपर बंध कितनी दर्शनावरण प्रकृतियोंका है और उदय कितनी दर्शनावरण प्रकृतियोंका है ' इत्यादि स्पष्टीकरण उस यत्रसे होता है । वह यत्र नीचे दिया है । उसीके ऊपरसे आगेके दो श्लोकोंका अर्थ जल्दी समझमें आजायगा ।

क्षीणकषाय—बारहवें गुणस्थान पर्यंत दर्शनावरणोंका उदय दो प्रकारसे होता है, चक्षुर्दर्शनावरणादि चार चार प्रकृतियोंका, अथवा एक किसी निद्राके उदय रहनेपर पाच पांच प्रकृतियोंका । इसलिये उदयके छह स्थानोंमें दो दो कोष्टक होते हैं । इसीलिये फिर बध तथा सत्ताकी प्रकृतियोंको भी दो दो बार दिखाना पडता है । इस प्रकार छह स्थानोंके बारह

द्वयोर्नव द्वयोः षट्कं चतुर्षु च चतुष्टयम् । पंच पंचसु शून्यानि भंगाः संति त्रयोदश ॥ १३ ॥

बंध	९	९	६	६	४	४	४	४	०	०	०	०	०
उदय	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
सत्ता	९	९	९	९	९	९	६	६	९	९	६	६	४

कोष्ठक होगये हैं । इसके आगे बारहवें गुणस्थानके अंतमें जहांपर निद्राओंका अभाव होगया है वहांपर चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृतियोंका ही केवल उदय है । वहांपर कोष्ठक भी एक ही है । इस प्रकार सर्व कोष्ठक तेरह करने पडते हैं ।

अब उन सात स्थानोंके तेरह कोष्ठकोंमें देखते हुए श्लोकोंका अर्थ करना चाहिये । वह इस प्रकार है—

बंधादित्रयके तीन पहिले स्थानोंमें सत्तामें दर्शनावरणकी प्रकृति नौ नौ हैं । फिर चार प्रकृतियोंके बंधवाले चौथे एक स्थानमें सत्तामें प्रकृति छह छह हैं । फिर बंधरहित एक पांचवें स्थानमें सत्तामें प्रकृति नौ नौ हैं। और फिर आगे छट्ठे स्थानमें सत्तामें प्रकृति छह छह हैं । और अंतमें [सातवें स्थानमें] सत्तामें भी प्रकृति चार ही हैं तथा उदयमें भी प्रकृति चार ही हैं । उदयके शेष छह स्थानोंमें पाक अर्थात् उदय दो दो प्रकारके हैं, एक चारका, दूसरा पांच प्रकृतियोंका ।

इन तेरह स्थानोंमेंसे आदिके दो स्थानोंमें बंध नौ नौ प्रकृतियोंका है । फिर तीसरे चौथे दो स्थानोंमें बंधमें छह छह प्रकृति हैं । फिर पांचवेंसे आठवें स्थान पर्यंत चार स्थानोंमें बंधप्रकृति चार चार हैं । फिर नौवेंसे तेरहवें पर्यंतके पांच स्थानोंमें पांच शून्य हैं । इस प्रकार सर्व भंग तेरह होजाते हैं। उसका यह नीचे यंत्र है । १२—१३ ।

बंध—	९	९	६	६	४	४	४	४	०	०	०	०	०
उदय—	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
सत्ता—	९	९	९	९	९	९	६	६	९	९	६	६	४

॥३४४॥

बंधत्रये ९ । ६ । ४—सर्वे मूलभंगाः १३ ।

सत्तायां नवकं षट्कं द्वये षट्कं नव द्वये । द्वितये षट्कमेकत्र गतबंधे चतुष्टयम् ॥ १४ ॥

इति मूलभंगेषु सत्त्वभंगाः । उदयभंगाश्चत्वार पंच वा सर्वत्र ।

द्वितये नवक षट्कं ततोऽपूर्वस्य पूर्वकम् । यावद्भाग ततः सूक्ष्मं बंधे यावच्चतुष्टयम् ॥ १५ ॥

इसी ऊपरके विवेचनको आगे खुलासा करते हैं ।—

सत्तामेंकी प्रकृतियोंको बताते हैं ।—छह स्थानोंमें नौ नौ दर्शनावरण हैं। फिर सातवें आठवें इन दो स्थानोंमें छह छह दर्शनावरण हैं । फिर नौवें दशवें—इन दो स्थानोंमें नौ नौ प्रकृति हैं । फिर दो स्थानोंमें छह छह प्रकृति हैं । फिर अंतके बंधरहित स्थानमें चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृति हैं । १४ ।

इस प्रकार मूल भंगोंमें सत्ताके भंग समझना । उदयके भंग सर्वत्र चार अथवा पांच प्रकृतिके संभवसे दो दो हैं ।

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणके बंधको बताते हैं ।—

पहिले दूसरे इन दो गुणस्थानोंमें नौ नौ दर्शनावरण प्रकृतियोंका बध होता है । फिर अपूर्वकरण—आठवें गुणस्थानके पहिले भाग पर्यंत छह प्रकृतियोंका बंध होता है। फिर सूक्ष्म—दशवें गुणस्थान पर्यंत—नौवें दशवें—इन दो गुण-स्थानोंमें चार चार प्रकृतियोंका बंध होता है। अर्थात फिर ऊपर उपशांत कषायसे लेकर दर्शनावरणका बंध नहीं है ।

भावार्थ, नौ प्रकृतियोंमेंसे स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंका बंध होना तीसरे गुण स्थानसे लेकर रुक जाता है । दूसरे गुणस्थानमें इन तीन निद्राओंकी बंधव्युच्छित्ति होना बताया है । इसलिये तीसरे गुणस्थानसे अपूर्वकरणके सात भाग पर्यंत दर्शनावरणकी छह प्रकृतियोंका बंध है । आगे दो बची हुई निद्राओंका भी बंध होना रुक जाता है इसलिये आगे बंधमें चार ही दर्शनावरणकी प्रकृति रहती हैं । फिर आगे उपशांतादि गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी शेष चार प्रकृतियोंका भी बंध होना रुक जाता है । इसलिये आगे बंधस्थानोंमें शून्य हैं । १५ ।

॥३४५॥

गुणस्थानेषु बंधः—९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ४ । ४ । ० । ० । ० । ० ।

सत्वे नवोपशांतांता क्षीणे षट् प्रथमे क्षणे । चतस्रोऽत्रांतिमे ज्ञेयाः सत्त्व नास्ति तत परम् ॥ १६ ॥
क्षपके सत्यपूर्वस्य नव प्रकृतय स्फुटम् । अनिवृत्तेरसख्येयभागेषु षडत. परम् ॥ १७ ॥

९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ६ ४ ० ०
९ ९।६ ६ क्षी प्र. क्षी अ
क्ष. (क्षपक श्रेणी)

गुणस्थानोंमें क्रमसे बंध [९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ४ । ४ । ० । ० । ० । ० ।] इस प्रकार है ।

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी सत्ताको बताते हैं ।—प्रथम गुणस्थानसे उपशात-ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्तामें दर्शनावरणकी नौ प्रकृति रहती हैं । क्षीण—बारहवें गुणस्थानके प्रथम क्षणमें अर्थात् उपात्य समय पर्यंत आदिकी छह प्रकृति रहती हैं । और बारहवें गुणस्थानके अतिम समयमें चक्षुर्दर्शनावरणादि आदिकी चार प्रकृति रहती हैं । इसके आगे अर्थात् तेरहवें चौदहवें गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी सत्ता नहीं है । १६ ।

क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण गुणस्थानमें नौ प्रकृति हैं । और अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यंत नौ प्रकृति हैं, फिर आगे छह प्रकृति रहती हैं । भावार्थ, दशवेंमें क्षपक हो तो छह प्रकृति रहती है; यदि उपशम श्रेणीवाला हो तो नौ प्रकृति रहती हैं । क्षीणकषायके प्रथम क्षणमें अर्थात् उपात्य समयमें छह प्रकृति रहती हैं, अतिम समयमें चार प्रकृति सत्तामें रहती है । आगे तरहवें चौदहवें गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी सत्ताका अभाव है । ऊपर इसका यत्र दिया । १७ ।

गोमटसारमें इसका वर्णन इस प्रकार है।—

णव सासणोत्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति। चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरिमोत्ति ॥ ४६० ॥
नव सासन इति बन्धः षट् चैव अपूर्वप्रथमभाग इति। चतस्रो भवन्ति ततः सूक्ष्मकषायस्य चरम इति ॥ ४६० ॥

अर्थ—दर्शनावरणको ९ प्रकृतिरूप–सासादनगुणस्थानपर्यंत बांधता है, इसके ऊपर अपूर्वकरण गुणस्थानके पहले भागतक दर्शनावरणकी ६ प्रकृतियोंका ही बंध होता है, इसके बाद सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानके अंतसमयतक उसीकी ४ प्रकृतियोंका बंध होता है ॥ ४६० ॥

खीणोत्ति चारि उदया पचसु णिद्दासु दोसु णिद्दासु। एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पचुदया ॥ ४६१ ॥
क्षीण इति चतस्र उदया पञ्चसु निद्रासु द्वयोर्निद्रयोः। एकस्यामुदय प्राप्तायां क्षीणद्विचरम इति पञ्चोदया. ॥ ४६१ ॥

अर्थ–दर्शनावरणकी चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृतियोंका उदयरूप स्थान जागृतावस्थावाले जीवके क्षीणकषायगुणस्थान-पर्यंत है, और निद्रावान् जीवके क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यंत पांच निद्राओंमेंसे एकका उदय होनेपर पांच प्रकृतिरूप स्थान तथा क्षीणकषायके अंतके समीपके समयतक निद्रा और प्रचला–इन दो निद्राओंमेंसे एकका उदय होनेपर दर्शनावरणकी पांच प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना ॥ ४६१ ॥

मिच्छादुवसंतोत्ति य अणियट्टीखवगपढमभागोत्ति। णव सत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदुचरिमे ॥ ४६२ ॥
मिथ्यात्वादुपशान्त इति च अनिवृत्तिक्षपकप्रथमभाग इति। नव सत्ता क्षीणस्य द्विचरम इति च षट् चतुरुपरिमे ॥ ४६२ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानसे उपशांतकषाय गुणस्थानतक और क्षपक श्रेणीमें अनिवृत्तिकरणके पहले भागतक दर्शनावरणकी ९ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। इनके ऊपर क्षीणकषायगुणस्थानके अंतके पहले समयतक दर्शनावरणकी ६ प्रकृतिरूप तथा उसके बाद अंतके समयमें ४ प्रकृतिरूप स्थान है ॥ ४६२ ॥

॥३४७॥

सर्वत्र चत्वारः पच चोदये परं क्षीणस्यांत्यक्षणे चतुष्टयमिति ।

४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४
५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

मिथ्यादृष्टिशासनयो -बधः ९, ९ । उदय ४, ५ । सत्ता ९, ९, । सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिपु द्विविधापूर्वकरणप्रथमसप्तमभाग यावत्-च ६, ६ । उ. ४, ५ । स ९, ९ । शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मोपशमकेपु, क्षपकेपु चापूर्वकरणस्य सप्तभागेपु पट्स्वनिवृत्त्यसख्यातान् बहून भागान् यावत्-बं ४, ४ । उ. ४, ५ । स. ९, ९ । तत पर क्षपितपोडशप्रकृतेरनिवृत्तेः शेपसख्याभागे सूक्ष्मक्षपके च-

ब ४, ४ । उ. ५ । स. ६, ६ । उपशांते-ब ०, ० । उ ४, ५ । स. ९, ९ । क्षीणे प्रथमे क्षणे-ब ०, ० उ ४, ५ । स ६, ६ । क्षीणांत्यक्षणे-ब ० । उ ४ । स. ४ ।

सर्वत्र उदय चारका अथवा पाचका—ऐसे दो दो प्रकारका रहता है। किंतु क्षीणकपाय—बारहवें गुणस्थानके अतमें पाचका उदय नहीं रहता, केवल चारका ही उदय रहता है। यत्र ऊपर दिया है।

अब बंध उदय सत्ता—इन तीनोंको सर्व गुणस्थानोंमें क्रमसे एकत्र करके बताते हैं। — मिथ्यादृष्टि—प्रथम गुणस्थान, सासादन—द्वितीय गुणस्थान। इन दोनोंमें बध ९, ९। उदय ४, ५। सत्ता ९, ९ की। सम्यङ्मिथ्यादृष्टि तीसरे आदि गुणस्थानोंसे लेकर, दो प्रकारके अपूर्वकरणमेंसे अपूर्वकरणके पहिले सातवें भाग पर्यंत छह गुणस्थानोंमें बंध ६, ६। उदय ४, ५। सत्ता ९, ९। शेपके अपूर्वकरण भागमें तथा अनिवृत्तिकरण—नौवें, सूक्ष्मसांपराय—दशवें, इन तीन गुणस्थानोंमें तथा क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरणमें सातवें अतिम छह भाग पर्यंत, एव अनिवृत्तिकरणके असख्यात बहुभाग पर्यंत—इस प्रकार इन छह स्थानोंमें बध ४, ४। उदय ४, ५। सत्ता ९, ९। इस अनिवृत्ति करणके असख्यात बहुभागके आगे असख्यातवें सख्यातभागमें और सूक्ष्मकपाय-दशवें गुणस्थानमें—बध ४, ४। उदय ४, ५। सत्ता ६, ६। फिर उपशात कषाय—ग्यारहवें गुणस्थानमें बध नहीं है ०, ०। उदय ४, ५। सत्ता ९, ९। क्षीणकषायके प्रथम अर्थात् उपात्य क्षणमें बंध ०, ०। उदय ४, ५। सत्ता ६, ६। क्षीणकषायके अंतिम समयमें बध ०। उदय ४। सत्ता ४।

सप्त गोत्रेऽष्ट वेद्ये स्युर्भंगाः पंच नवोदिताः । नव पंच क्रमाच्छ्वभ्रतिर्यङ्नरसुरायुषाम् ॥ १८ ॥

गोत्रे ७ । वेद्ये ८ । आयुषि—५ । ९ । ९ । ५ ।

अब दूसरी प्रकृतियोंके भंग बताते हैं ।—गोत्र कर्ममें भंग सात हैं । वेदनीयमें भंग आठ हैं । और क्रमसे नरक आयुके भंग पांच हैं, तिर्यंच आयुके भंग नौ हैं, मनुष्य आयुके भी नौ हैं, देव आयुके भंग पांच हैं । १८ ।

गोत्रमें ७ । वेदनीयमें ८ । आयुमें क्रमसे ५ । ९ । ९ । ५ ।

वेदनीयके तथा गोत्रके बंधादि त्रयको गोमटसारमें किस प्रकारसे बताया है उसको आगे दिखाते हैं ।—

पहले वेदनीयके भंगोंको कहते हैं,—

सादासादेक्कदर बंधुदया होंति संभवट्ठाणे । दोसत्त जोगित्ति य चरिमे उदयागद सत्तं ॥ ६३३ ॥ गो० क० ।

छट्ठोत्ति चारि भंगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे । चउभंगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स ॥६३४॥ जुम्मं ।

सातासातैकतरं बन्धोदयौ भवतः संभवस्थाने । द्विसत्त्वं योगीति च चरमे उदयागतं सत्त्वम् ॥ ६३३ ॥

षष्ठ इति चत्वारो भङ्गा द्वौ भङ्गौ भवतो यावत् योगिजिनम् । चतुर्भङ्गा अयोगिजिने स्थानं प्रति वेदनीयस्य ॥६३४॥ युग्मम्

अर्थ—साता और असाता इन दोनोंमें एक ही का बंध तथा उदय योग्यस्थानमें होता है और सत्त्व दो दो का ही सयोगीपर्यंत है । अयोगीके जिसका उदय उसीका सत्त्व होता है । इसलिये वेदनीयकर्मके गुणस्थानों प्रति भंग इस प्रकार कहे हैं कि-प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत चार भंग हैं, सयोगीजिनपर्यंत दो भंग होते हैं, और अयोगी गुणस्थानमें ४ भंग कहे हैं ॥६३३–६३४॥

आगे गोत्रकर्मके भंग कहते हैं,—

णीचुच्चाणेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे । दोसत्ताजोगित्ति य चरिमे उच्चं हवे सत्तं ॥ ६३५ ॥

नीचोच्चयोरेकतरं बंधोदयौ भवतः संभवस्थाने । द्विसत्त्वमयोगीति च चरमे उच्चं भवेत् सत्त्वम् ॥ ६३५ ॥

अर्थ– नीचगोत्र और ऊचगोत्र इन दोनोंमेंसे एक ही का बंध तथा उदय यथायोग्य स्थानोंमें होता है। और सत्त्व तो अयोगीके अंतके दूसरे समयपर्यंत दोनोंका ही पाया जाता है। तथा अयोगीके अंतके समयमें उच्चगोत्रका ही सत्त्व होता है।६३५।

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्त तु। सेसिगिवियले सयले णीचं च दुग च सत्त तु ॥ ६३६ ॥

उच्चोद्वेलिततेजसि वायौ च नीचमेव सत्त्व तु। शेषैकविकले सकले नीचं च द्विक च सत्त्व तु ॥ ६३६ ॥

जिसके ऊंचगोत्रकी उद्वेलना हुई ऐसे तेजःकायिक और वायुकायिक जीवोंके नीचगोत्रका ही सत्त्व है। और शेष एकेंद्री—विकलेंद्री तथा पंचेंद्री, इनके नीचगोत्रका अथवा दोनोंका सत्त्व है। ६३६।

यही दिखलाते हैं,—

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु। उप्पण्णपढमकाले णीच एयं हवे सत्त ॥ ६३७ ॥

उच्चोद्वेलिततेजसि वायौ शेषे च विकलसकलेपु। उत्पन्नप्रथमकाले नीचमेक भवेत् सत्त्वम् ॥ ६३७ ॥

अर्थ —उच्चगोत्र उद्वेलना सहित तेज.कायिक और वायुकायिक जीवोंके एक नीचगोत्रका ही सत्त्व है। और इन दोनोंका मरण होकर शेष एकेन्द्री–विकलेन्द्री और पंचेन्द्रीमें उत्पन्न होनेके अंतर्मुहूर्तकाल पहले एक नीच गोत्रका ही सत्त्व है, पीछे उच्चगोत्रको बांधनेसे दोनोंका सत्त्व होता है। ६३७।

मिच्छादिगोदभंगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु। एक्केका जोगिजिणे दो भंगा होंति णियमेण ॥ ६३८ ॥

मिथ्यादौ गोत्रभङ्गा पञ्च चत्वार त्रिषु द्वौ अष्टस्थानेषु। एकैकः अयोगिजिने द्वौ भङ्गौ भवतो नियमेन ॥ ६३८ ॥

अर्थ —गोत्रके भंग नियमसे मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानोंमें क्रमसे ५ और ४ होते हैं, मिश्रादि तीन गुण—स्थानोंमें दो दो भंग हैं, प्रमत्तादि आठ गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मका एक एक ही भग है, और अयोगकेवलीके दो भग होते हैं।५३८।

आगे आयुके भंग १३ गथाओंसे कहते हैं,–

सुरणिरया णरतिरिय छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स। णरतिरिया सव्वाउ तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥ ६३९ ॥

भोगभुमा देवाउ छम्मासवसिट्ठगे य बंधति। इगिविगला णरतिरिय तेउदुगा सत्तगा तिरिय ॥ ६४० ॥

सुरनिरया नरतिर्यञ्चं षण्मासावशिष्टके स्वकायुष. । नरतिर्यञ्च सर्वायूषि त्रिभागशेषे उत्कृष्टम् ॥ ६३९ ॥
भोगभूमा देवायु षण्मासावशिष्टके च बध्नन्ति । एकविकला नरतिर्यञ्च तेजोद्विकौ सप्तक· तिर्यञ्चम् ॥ ६४० ॥ युग्मम्

अर्थ—भुज्यमान अपनी आयुके अधिकसे अधिक ६ महीने शेष रहनेपर देव और नारकी मनुष्यायु–तिर्यचायुका बंध करते है। मनुष्य और तिर्यंच, अपनी आयुके तीसरे भागके शेष रहनेपर चारों आयुओंको बाधते हैं । भोगभूमिया जीव अपनी आयुके ६ महीने बाकी रहनेपर देवायुका बंध करते हैं। एकेन्द्री और विकलत्रय जीव, मनुष्यायु वा तिर्यचायुको बाधते हैं, परंतु तेज कायिक–वायुकायिक जीव और सातवीं पृथिवीके नारकी तिर्यचआयुका ही बंध करते हैं ॥ ६३९–६४० ॥ इस प्रकार आयुके बंधको कहा ।

अब आयुके उदयसत्त्वको कहते हैं,–

सगसगगदीणमाऊ उदेदि बंधे उदिण्णगेण समं । दो सत्ता हु अबंधे एक्कं उदयागदं सत्तं ॥ ६४१ ॥
स्वकस्वकगतीनामायुरुदेति बन्धे उदीर्णकेन समम् । द्वे सत्त्वे हि अबंधे एकमुदयागतं सत्त्वम् ॥ ६४१ ॥

अर्थ– नारकी आदि जीवोंके अपनी अपनी गतिकी एक आयु ही उदय होती है । और परभवकी आयुका भी बंध हो जावे तो उदयरूप आयुसहित दो आयुकी सत्ता है, और जो परभवकी आयुका बंध न हो तो एक ही उदयागत आयुकी सत्ता है, ऐसा नियमसे जानना ॥ ६४१ ॥

एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे । अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसे व सव्वत्थ ॥ ६४२ ॥
एकस्मिन्नेकमायुरेकभवे बन्धमेति योग्यपदे । अष्टवार वा तत्रापि त्रिभागशेषे एव सर्वत्र ॥ ६४२ ॥

अर्थ– एक जीवके एक भवमें जो एक ही आयु बंधरूप होती है वह योग्यकालमें आठ वार बंधती है, वहांपर सब जगह आयुका तीसरा २ भाग शेष रहनेपर ही बंधती है ॥ ६४२ ॥

इगिवारं वज्जित्ता वड्ढी हाणी अवट्ठिदी होदि । ओवट्टणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं ॥ ६४३ ॥
एकवारं वर्जयित्वा वृद्धि· हानि· अवस्थिति भवति । अपवर्तनघात. पुन. परिणामवशेन जीवानाम् ॥ ६४३ ॥

अर्थ– पूर्वकथित आठ अपकर्षों (त्रिभागों) में पहलीवारके विना द्वितीयादि वारमें जो पहले आयु बांधी थी उसकी स्थितिकी वृद्धि–हानि अथवा अवस्थिति होती है। और आयुके बंध करनेपर जीवके परिणामोंके निमित्तसे उदयप्राप्त आयुका अपवर्तनघात (कदलीघात–घटजाना) भी हो जाता है ॥ ६४३ ॥

एवमबंधे बंधे उवरदबंधेवि होंति भंगा हु। एक्कस्सेक्कम्मि भवे एक्काउं पडि तये णियमा ॥ ६४४ ॥

एवमबन्धे बन्धे उपरतबन्धेपि भवन्ति भङ्गा हि। एकस्यैकस्मिन् भवे एकायु प्रति त्रयो नियमात् ॥ ६४४ ॥

अर्थ—इस प्रकार बंध होनेपर अथवा बंध नहीं होनेपर व आगामी बंध अवस्थामें एक जीवके एकपर्यायमें एक एक आयुके प्रति तीन तीन भंग नियमसे होते हैं। ६४४।

एक्काउस्स तिभंगा संभवआऊहिं ताडिदे णाणा। जीवे इगिभवभंगा रूऊणगुणूणमसरित्थे ॥ ६४५ ॥

एकायुषः त्रिभङ्गाः संभवायुर्भिस्ताडिते नाना। जीवेषु एकभवभङ्गा रूपोनगुणोनमसदृशे ॥ ६४५ ॥

अर्थ—उन एक एक आयुके तीन तीन भंगोंको गतिमें संभव होनेवाली आयुकी संख्यासे गुणा करनेपर नाना जीवोंकी अपेक्षा एक एक भवके भंग होते हैं। और अपुनरुक्त भंगोंकी अपेक्षा वध्यमान आयुकी संख्यारूप गुणाकारमें एक घटाके जो प्रमाण हो उसे पूर्वकथित भंगोंमें घटानेसे अपुनरुक्त भंग होते हैं ॥ ६४५ ॥

अब गुणस्थानोंमें आयुके अपुनरुक्त भंगोंको दिखाते हैं;—

पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु होंति मिच्छम्मि। णिरयाउबंधभंगेणूणा ते चेव विदियगुणे ॥ ६४६ ॥

पञ्च नव नव पञ्च भङ्गा आयुश्चतुष्केषु भवन्ति मिथ्यात्वे। निरयायुर्बन्धभङ्गेनोनास्ते चैव द्वितीयगुणे ॥ ६४६ ॥

अर्थ—वे अपुनरुक्त भंग मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें नरकादिगतिकी चार आयुओंमें क्रमसे ५, ९, ९, ५, जानना चाहिये। और दूसरे गुणस्थानमें नरकायुके बंधरूप भंगके विना शेष भंग होते हैं। अर्थात् वहांपर ५, ८, ८, ५ भंग जानना ॥ ६३६ ॥

सव्वाउबंधभंगेणूणा मिस्सम्मि अयदसुरणिरये। णरतिरिये तिरियाऊ तिण्णाउगबंधभंगूणा ॥ ६४७ ॥

सर्वायुर्बन्धभङ्गेनोना मिश्रे अयतसुरनिरये। नरतिरश्चि तिर्यगायु त्रिकायुष्कबन्धभङ्गोना ॥ ६४७ ॥

अर्थ — जोकि पहले आयुबन्धकी अपेक्षा भंग कहे गये थे वे सब कम करनेसे मिश्रगुणस्थानमें नरकादि गतियोंमें क्रमसे ३, ५, ५, ३ भंग होते हैं, और असंयतगुणस्थानमें देव–नरकगतिमें तो तिर्यंचआयुका बन्धरूप भंग न होनेसे चार-चार भंग हैं, तथा मनुष्य–तिर्यंचगतिमें आयुबन्धकी अपेक्षा नरकतिर्यंचमनुष्यायुबन्धरूप तीन भंग न होनेसे छह छह भंग हैं, क्योंकि इनके बन्धका सासादनगुणस्थानमें ही व्युच्छेद (बंधका अभाव) हो जाता है ॥ ६४७ ॥

देस णरे तिरिये तियतियभंगा होंति छट्ठसत्तमगे । तियभंगा उवसमगे दो दो खवगेसु एक्केक्को ॥ ६४८ ॥

देशे नरे तिरश्चि त्रिकत्रिकभङ्गा भवन्ति षष्ठसप्तमके । त्रयभङ्गा उपशमके द्वौ द्वौ क्षपकेषु एकैकः ॥ ६४८ ॥

अर्थ — देशसंयतगुणस्थानमें तिर्यंच और मनुष्योंमें बन्ध–अबंध–उपरतबन्धकी अपेक्षा तीन तीन भंग होते हैं। छट्ठे सातवें गुणस्थानमें मनुष्यके ही देवायुके बन्ध आदिकी अपेक्षा तीन तीन भंग होते हैं । उपशमश्रेणीमें देवायुका भी बन्ध न होनेसे देवायुके अबन्ध–उपरतबन्धकी अपेक्षा दो दो भंग हैं । और क्षपकश्रेणीमें उपरतबन्धके भी न होनेसे अबन्धकी अपेक्षा एक एक ही भंग है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६४८ ॥

आगे गुणस्थानोंमें जो सब गतियों सम्बन्धी आयुके भंग कहे गये हैं उनका सब जोड कहते हैं ।

अडछव्वीस सोलस वीस छत्तिगतिगं च चदुसु दुगं । असरिसभंगा तत्तो अजोगिअंतेसु एक्केक्को ॥ ६४९ ॥

अष्टषड्विंशति षोडश विंशति षड् त्रिकत्रिकं च चतुर्षु द्विकम् । असदृशभंगा ततः अयोग्यन्तेषु एकैकः ॥ ६४९ ॥

अर्थ — सब मिलकर अपुनरुक्तभंग मिथ्यादृष्टि आदि ७ गुणस्थानोंमे क्रमसे २८, २६, १६, २०, ६, ३, ३ हैं । उपशमश्रेणीवाले चार गुणस्थानोंमें दो दो भंग जानना । उसके बाद क्षपकश्रेणीसे लेकर अयोगिगुणस्थानतक एक एक भंग कहा गया है ॥ ६४९ ॥

उच्चं द्वयोर्द्वयोर्नीचं बधे पाके चतुष्टये । उच्चनीचोच्चनीचानि द्वयं सत्त्वे चतुष्टये ॥ १९ ॥
पंचमे सकलं नीचमित्थं वेद्येऽपि बुध्यताम् । एकोऽङ्कः प्रथमेऽन्यत्र शून्यस्तत्र निवेश्यते ॥ २० ॥

आगे वेदनीय–गोत्र–आयु इन तीनोंके मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या कहते हैं –

वादालं पणुवीसं सोलसअहियं सयं च वेयणिये । गोदे आउम्मि हवे मिच्छादिअजोगिणो भंगा ॥ ६५० ॥
द्वाचत्वारिंशत् पञ्चविंशति षोडशाधिक शत च वेदनीये । गोत्रे आयुषि भवेयु मिथ्यादययोगिनो-भङ्गाः ॥ ६५० ॥

अर्थ—पहले जो मिथ्यादृष्टि आदि अयोगीपर्यंत गुणस्थानोंमें भंग कहे थे वे सब मिलकर वेदनीयके ४२, गोत्रके २५ और आयुके ११६ होते हैं ॥ ६५० ॥

आगे पूर्वोक्त वेदनीय - गोत्र - आयु इनके सामान्य रीतिसे मूल भंगोंकी संख्या कहते हैं,—

वेयणिये अडभंगा गोदे सत्तेव होंति भंगा हु । पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु विसरित्था ॥ ६५१ ॥
वेदनीये अष्ट भङ्गा गोत्रे सप्तैव भवन्ति भङ्गा हि । पञ्च नव नव पञ्च भङ्गा आयुश्चतुष्केषु विसदृशा ॥ ६५१ ॥

अर्थ—अपुनरुक्त भंग वेदनीयके ८, गोत्रके ७ होते हैं तथा चारों आयुओंके क्रमसे ५, ९, ९, ५ होते हैं ॥६५१॥

गोत्रके सात भंगोंमें परस्पर भेद क्या है । उसे आगे मूल ग्रंथकार बताते हैं ।—

बधमें देखें तो दो भंगोंमें उच्च गोत्र बधको प्राप्त होता है, दोमें नीच गोत्र बधको प्राप्त होता है । उदयमें भी दोमें उच्च गोत्रका उदय है, दोमें नीच गोत्रका उदय है । और इन चार भंगोंमें सत्तामें उच्च नीच, उच्च नीच–ऐसे दोनो दोनोंकी सत्ता है । आगे पांचवें भंगमें सपूर्ण नीच ही है अर्थात् बध भी नीचका ही है, उदय भी नीचका ही है और सत्ता भी नीचकी ही है । ऐसे ही भंगरचना वेदनीय प्रकृतिमें भी समझनी चाहिये । यंत्र बनाते समय प्रथम प्रकृतिको दिखानेकेलिये अर्थात् प्रथम भेदके स्थानमें एकका आकडा लिखना चाहिये और दूसरे प्रकृतिभेदको दिखानेमें शून्य रखना चाहिये । गोत्रमें प्रथम प्रकृति उच्च गोत्र है । इसलिये उच्च गोत्रको दिखानेकेलिए एकका अक लिखना । द्वितीय प्रकृति नीच गोत्र है । उसको दिखानेकेलिए शून्यका संकेत

बंध	१	१	०	०	०
उदय	१	०	१	०	०
सत्ता	१।०	१।०	१।०	१।०	०।०

अत्रांकसदृष्टेरुच्चे एको नीचे शून्यः १।० । एकः साते शून्योऽसाते १।० ।

आद्ये पञ्चादिमा भंगाश्चत्वारः स्वस्तदर्शने । द्वावाद्यौ त्रितयेऽन्यत्र पंचकेस्त्येक आदिमः ॥ २१ ॥

लिखना चाहिए। वेदनीयमें भी सातावेदनीय प्रथम है। उसका एक अंक लगाना। असातावेदनीय द्वितीय है। उसका शून्य रखना। यह संकेतकी संख्या है। यंत्र आगे दिया है। १९ - २०।

भावार्थ, यंत्रपरसे देखनेसे मालूम होता है कि एक भंगमें बंध उच्च गोत्रका, उदय उच्च गोत्रका, सत्ता उच्चनीच-दोनो प्रकृतियोंकी है। दूसरा भंग ऐसा है जिसमें बंध उच्चगोत्रका, उदय नीचगोत्रका, सत्ता दोनोंकी है। तीसरा एक भंग ऐसा है जिसमें बंध नीच गोत्रका, उदय उच्चगोत्रका, सत्ता दोनों की है। चौथा भंग ऐसा है जिसमें बंध नीच गोत्रका, उदय नीच गोत्रका, सत्ता दोनोंकी है। पांचवा भंग ऐसा है जिसमें बंध भी नीचगोत्रका, उदय भी नीचगोत्रका, और सत्ता भी नीचगोत्रकी ही है। देखो यंत्रपरसे—

बंध—	१	१	०	०	०
उदय—	१	०	१	०	०
सत्ता—	१।०	१।०	१।०	१।०	०

किस गुणस्थानमें गोत्रके कितने भंग हैं वह आगे दिखाते हैं।—

आदिके प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आदिके पांच भंग होते हैं। स्वस्तदर्शन अर्थात् सासादन दूसरे गुणस्थानमें आदिके चार भंग होते हैं। उसके आगे तीन गुणस्थान—तीसरा, चौथा, पांचवा—इन तीन गुणस्थानोंमें आदिके दो भंग होते हैं। इससे आगेके पांच—छट्ठेसे दशवें पर्यंतके—इन पांच गुणस्थानोंमें आदिका एक एक भंग है। २१।

मिथ्यादृष्ट्यादिषु दशसु पंचानां विभागः ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ ।
उच्च पाके द्वय सत्त्वे चतुर्ष्के बंधवर्जिते । अयोगस्योच्चमत्येऽस्ति समये पाकसत्त्वयोः ॥ २२ ॥
चतुर्षु उ. १ । स. १।० । अयोगांत्यक्षणे उ १ । स. १ । एवं सप्त ७ ।
चत्वारो गोत्रवद्भंगा वेद्यस्य प्रथमा मताः । आद्येषु षट्सु ते संति प्रथमौ द्वौ च सप्तसु ॥ २३ ॥
आद्यौ बंधपरित्यक्तावयोगे द्वावुपान्तिमे । द्वावसाते तथा साते तस्यान्ते पाकसत्त्वयो ॥ २४ ॥

मिथ्यादृष्टि आदि दश गुणस्थानोंमें पांच भंगोंका विभाग— ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ इस प्रकार है ।

अब दश गुणस्थानके ऊपर बताते हैं — ग्यारहवेंसे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें गोत्रके बंधका अभाव है । उदयमें उच्च गोत्र है । सत्तामें दोनों गोत्र हैं । परंतु अयोग–चौदहवें गुणस्थानके अंत समयमें उदयमें भी एक उच्चगोत्र है और सत्तामें भी एक उच्च गोत्र ही रह जाता है । चारमें–उ०–१ । स १ । ० । तथा अयोगके अंतमें उ० १ । स. १ । इस प्रकार भंग ७ हुए ॥ २२ ॥

अर्थात् प्रथमसे दशवें गुणस्थान पर्यंत दश गुणस्थानोंमें पांच पर्यंतके भंग होना ऊपर बताया है, और ग्यारहवेंसे चौदहवेंके उपांत्य समय पर्यंत एक भंग, और फिर अंत्य समयमें एक दूसरा भंग–ऐसे मिलकर सात भंग हो जाते हैं ।

गोत्रकी भांति वेदनीयके भी आदिके छह गुणस्थानोंमें पहिले चार भंग हैं । और फिर तेरहवें पर्यंत आगेके सात गुणस्थानोंमें आदिके दो भंग हैं । अयोग–चौदहवें गुणस्थानमें उपांत्य समय पर्यंत आदिके दो भंग हैं । अयोगके उपांत्य समयवाले इन दोनों भंगोंमें वेदनीयका बंध नहीं है । और अंत्य समयमें बंधरहित केवल उदयके तथा सत्ताके ही संबंधसे दो भंग होते हैं वे–एक तो सातावेदनीयमें समझना और दूसरा असातामें समझना–ऐसे दो हैं । मिलकर ये सर्व आठ भंग हुए । २३–२४ ।

एवमष्ट ८ ।

श्वभ्रायुरुदित सश्च तिर्यगायुरबध्नतः । बध्नतस्तत्र जायेते बध्यमानोदिते सती ॥ २५ ॥
सती बद्धोदिते भङ्गे मर्त्यायुष्यप्यय क्रमः । एकद्वित्रिचतुर्भिश्च संज्ञांकैरायुषां क्रमात् ॥ २६ ॥

इस वेदनीयका यंत्र इस प्रकार है ।—

बंध—	१	१	०	०				
उदय—	१	०	१	०	१	०	०	१
सत्ता—	१|०	१|०	१|०	१|०	१|०	१|०	०	१

यहांपर भी शून्यका अर्थ असाता है और एक अंकका अर्थ सातावेदनीय है।

अब आयुप्रकृतिके भगोंको समझाते हैं ।

प्रथम नरकायुको लेकर उसमें पांच भंग बताये हैं उनका स्पष्टीकरण करते हैं ।– एक जीव नरकगतिमें है, उसके नरकायुका उदित अर्थात् उदय है, सत्ता भी नरकायुकी है । उसने किसी आयुको नवीन बांधा नहीं है। ऐसा एक भग हुआ । दूसरा भंग ऐसा कि एक नारकी तिर्यंच आयुको बाधता है उसके सत्ता दो आयुओंकी होजाती है, एक बध्यमान तिर्यंच आयुकी और दूसरी उदय पाई हुई नरकायुकी । यही क्रम मनुष्यायुको बांधनेवाले नारकी जीवमें समझना । एक बध्यमान मनुष्यायु और दूसरी उदीयमान नरकायु—इन दोकी सत्ता वहांपर समझना । इन आयुओंमें यंत्र बनाते समय नरकायुके स्थानमें एकका अक लिखना चाहिये, तिर्यंच आयुके लिये दो का अक, मनुष्यायुके लिये तीन का अक, और देवायुकेलिये चारका अंक लगाना चाहिये । भावार्थ, क्रमसे चार अकोंका अर्थ चार आयु करना चाहिये ॥ २५ - २६ ॥

मानवभवायुरुदयेऽबंधे बंधे पुनश्चतुष्कस्य । मानुषजीवितसत्त्वे सत्त्वे वा परचतुष्कस्य ॥ २९ ॥

मनुष्यायुर्भंगाः९—

०	१	०	२	०	३	०	४	०
३	३	३	३	३	३	३	३	३
३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

पाके देवायुषोऽबन्धे बन्धे तिर्यङ्नरायुषोः । सत्त्वे देवायुषो भङ्गास्तदाद्यो. परयोरपि ॥ ३० ॥

देवायुर्भंगाः५—

०	२	०	३	०
४	४	४	४	४
४	४।२	४।२	४।३	४।३

मनुष्यायुके उदय होनेसे जो मनुष्य भवको धारण कर रहा है उस जीवके तिर्यंचके ही समान नौ भंग होते हैं। उसका अर्थ इस प्रकार है।— मनुष्यभवायुका उदय है, बंध नहीं है, सत्तामें मनुष्यायु है–ऐसा एक भंग है। उदय एक मनुष्यायुका लेकर, बंधमें क्रमसे चारो आयुओंका दिखाकर तथा सत्तामें नवीन चारों आयुओंमेंसे एक एक और भुज्यमान मनुष्यायु एक—इस प्रकार दो दो की सत्ता रखकर चार भंग होते हैं। और बंध नवीन आयुका होकर रुक जानेपर बंधमें शून्य, और सत्तामें दो दो आयु—इस प्रकारके चार भंग होते हैं। सत्ताकी दो दो आयुओंमेंसे एक तो नवीन बंधी हुई आयु और एक भुज्यमान आयु—मनुष्यायु—ये दो समझनी चाहिये। इस प्रकार मनुष्यभवायुकी सत्तामें और मनुष्यायुके उदयमें जो मनुष्य पर्यायको धारण कर रहा है उसके आयुकर्मके नौ भंग हैं। यंत्र ऊपर दिया है। यंत्रका अर्थ तिर्यंचके नौ भंगवाले यंत्रके समान समझना। २९।

देवायुके भंगोंको बताते हैं। नरकगतिके समान देवायुमें भंग सर्व पांच हैं और उनकी यंत्ररचना भी नरकगतिके समान ही होती है। वह इस प्रकार है।—

देवायुका उदय होनेपर देव पर्यायको पालेनेवाले जीवके देवायुका सदा उदय भी है और सत्तामें भी सदा देवायु है ही। देवायुको जतानेके लिये यंत्रमें चार संख्याका संकेत है। प्रथम भंग ऐसा है जिसके बंधमें नवीन कोई आयु नहीं है इसलिये

द्वयेकाग्रे विंशती ते त्रिसप्तन्यूने मनीषिणः । नव पंच च चत्वारि त्रीणि द्वे विदुरेककम् ॥ ३१ ॥
यानीति मोहनीयस्य स्थानानि दश कर्मणः । बन्धं सन्ति गुणस्थाने तेषामस्तीति योजना ॥ ३२ ॥

बंधस्थानमें शून्य है । उदय एक देवायुका अर्थात् चार संख्याका है । सत्तामें भी एक देवायु है । दूसरे भंगमें बंध तिर्यंच आयुका है । उसकी अंकसंज्ञा दो है । उदयमें देवायु ही है । सत्तामें दो आयु हैं—एक भुज्यमान देवायु, दूसरी बध्यमान तिर्यंच आयु । इसलिये सत्त के दूसरे कोष्ठकमें ४–२ अंक हैं । तिर्यंच आयुका बंध होजानेपर जब बंध थम गया हो तबकी अपेक्षासे तीसरा स्थान है, इसलिये बंधमें शून्य है, परंतु सत्तामें ४–२ अंककी सत्ता है । चौथे भंगमें मनुष्यायुका बंध बताया है । यहां बंधमें एक मनुष्यायु जिसका अंक ३ है वह है, उदयमें देवायु है, सत्तामें देवायु तथा मनुष्यायु ये दो हैं । इसके अंक ४–३ हैं । पांचवें भंगमें मनुष्यायुका बंध होकर थम गया है इसलिये बंधस्थानमें शून्य है, उदय तथा सत्ता चौथे भंगके ही समान है ।

श्लोकार्थ—देवायुके उदयमें नवीन बंधका अभाव रहनेपर; एवं तिर्यगायु तथा देवायु—इन दोका क्रमसे बंध होनेपर अथवा बंध होकर थम जानेपर, एवं सत्तामें केवल देवायुके रहनेपर, तथा देवायुके साथ दूसरी दो आयु–तिर्यंच आयु मनुष्यायु —इन दोके रहनेपर भंग होते हैं । अर्थात् वे भंग पांच हैं ॥ ३० ॥

देवायुके भंग ५—

बंध–	०	२	०	३	०
उदय–	४	४	४	४	४
सत्ता–	४	४।२	४।२	४।३	४।३

मोहनीय कर्मके दश स्थान बंधमें बताये हैं । एक तो दो अधिक बीस अर्थात् बाईस मोह प्रकृतियोंका स्थान है । दूसरा एक अधिक बीसका अर्थात् इकीसका स्थान है । तीसरा स्थान तीन कम बीसका अर्थात् सत्रह प्रकृतियोंका है । चौथा स्थान सात कम बीसका अर्थात् तेरह प्रकृतियोंका है । पांचवां स्थान नौ प्रकृतियोंका है । छठा स्थान पांच प्रकृतियोंका, सातवां स्थान चार प्रकृतियोंका, आठवां स्थान तीन प्रकृतियोंका, नौवां स्थान दो प्रकृतियोंका, और दशवा स्थान एक प्रकृतिका है । ये जो मोहनीय कर्मके बंध संबंधी दश स्थान हैं उनको गुणस्थानोंमें आगे जोडकर दिखाते हैं ॥ ३१–३२ ॥

॥३६१॥

२२ । २१ । १७ । १३ । ९ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

मिथ्यात्वयुजि मिथ्याव कषाया षोडशैककः । वेदो हास्यादिकेष्वेकं युग्म भयजुगुप्सने ॥ ३३ ॥
द्वाविंशति।मिथ्यात्विषढका सास्तदर्शने । न्यूनानन्तानुबन्धिस्त्रीवेदैर्मिश्रचतुर्थयो। ॥ ३४ ॥
१ । १६ । १ । २ । १ । १ । मीळिता २२ । इति ।

---

२२ । २१ । १७ । १३ । ९-५ । ४ । ३ । २ । १ ।

बाईस मोहप्रकृतियोंका स्थान मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है उसको आगे दिखाते हैं ।—

मिथ्यात्वयुक्त जीवके एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदोंमेंसे एक कोई भी वेद, हास्यादि दो युगलोंमेंसे एक युगलकी दो प्रकृति, भय, जुगुप्सा–ये बाईस मोह प्रकृति हैं जो मिथ्यात्व गुणस्थानमें बधको प्राप्त होती हैं । सास्तदर्शनमें अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्व छूट जाता है इसलिये प्रकृति यहा इक्कीस रहती हैं । और नपुसक वेदका भी बंध नहीं होता, इसलिये यहा दो वेदोंमेंसे ही एक किसी वेदका बध समझना ।

एव, मिश्र–तीसरे गुणस्थानमें और चौथे असयत गुणस्थानमें सत्रह सत्रह प्रकृतियोंका बधस्थान रहता है । यहांपर अनतानुबंधीकषाय चारका बध नहीं होता है इसलिये इक्कीसमेंसे चारकी सख्या घट जानेम सत्रह सख्या रह जाती है । इसके शिवाय यहांपर स्त्रीवेद भी बधको प्राप्त नहीं होता है और नपुसक वेदका बंध होना द्वितीय गुणस्थानसे रुक जाता है । इसलिये यहापर वेद केवल पुरुष वेद ही बधको प्राप्त होनेवाला है ऐसा समझना । इस प्रकार वेदकी एक एक प्रकृति तो यहापर उत्तरोतर बंधमेंसे कम हो जाती है । परंतु पुरुषवेदके शेष रहनेसे स्थानकी सख्यामें कोई अंतर नहीं पडता है । हा, जहांपर स्थानोंके भग बतायेंगे वहांपर वेदके द्वारा भगसख्या घट जायगी । ३३—३४ ।

मिथ्यादृष्टौ प्रस्तार —२ । २, २ । १, १, १ । १६ । १ । शासने २१ । प्रस्तारः—२ । २, २ । १, १ । १६ । मिश्राव्रतयो १७ । प्रस्तारः—२ । २, २ । १ । १२ ।

अप्रत्याख्यानकैरूना देशे षष्ठ तृतीयकै । सप्तमाष्टमयोरेते शोकारतिं विना कृताः ॥ ३५ ॥

देशे १३ । प्रस्तारः—२ । २,२ । १ । ८ । षष्ठे ९ । प्रस्तारः—२ । २,२ । १ । ४ । सप्तमाष्टमयो ९ । प्रस्तारः—२ । २ । १ । ४ ।

बधे पुवेदसंज्वालाः सज्वाला नवमे क्रमात । एकद्वित्रिभिरूनास्ते मोहने क्रमतो बुधैः ॥ ३६ ॥

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जो बाईस मोहप्रकृति बताई ह उसका प्रस्तार इस प्रकार है ।— २ । २, २ । १, १, १ । १६ । १ । सासादनमें प्रकृति २१ हैं उनका पस्तार—२ । २, २ । १, १ । १६ । मिश्र गुणस्थानमें और अव्रत–चौथे गुणस्थानमें प्रकृति १७, उनका प्रस्तार इस प्रकार—२ । २, २ । १ । १२ ।

देशविरत—पांचवें गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण नामके दूसरे चार कषायोंका बधाभाव होजानेसे तेरह प्रकृतियोंका स्थान रह जाता है । छट्ठे गुणस्थानमें तीसरे कषाय प्रत्याख्यानावरण चारका बधाभाव होजानेसे मोहकी नौ प्रकृतिका स्थान रह जाता है । और सातवें आठवें–इन दो गुणस्थानोंमें शोक तथा अरति–इन दो प्रकृतियोंका बध होना रुक जाता है इसलिये सातवें आठवें गुणस्थानोंके प्रस्तारमें अतर पड जाता है । किंतु प्रकृतिसंख्या छट्ठे गुणस्थानके समान नौ ही रहती है ॥ ३५ ॥

देशसयतमें मोहकी बधप्रकृति १३ और प्रस्तार इस प्रकार है।—२।२–२।१।८। छट्ठे गुणस्थानमें प्रकृति नौ और प्रस्तार इस प्रकार है । —२।२–२।१।४। सातवें आठवें गुणस्थानोंमें प्रकृति नौ और प्रस्तार इस प्रकार है ।—२।२।१।४।

नौवें गुणस्थानमें प्रारभमें पुरुषवेद तथा चार सज्वलन कषाय–इन पाचका बध होता है । फिर पुरुषवेद भी छूट जाता है, केवल चार सज्वलन कषायोंका बध होता रहता है । फिर आगे चलकर सज्वलन चार कषायोंमेंसे एक क्रोधका बंध होना रुक जाता है तब तीन सज्वलन प्रकृतिके बधका स्थान प्राप्त होजाता है । उसके आगे सज्वलन मान इस एक प्रकृतिका भी बंधाभाव हो जाता है, तब दो मोह प्रकृतिका बंधस्थान रह जाता है । इसके आगे चल कर फिर एक माया सज्वलन प्रकृतिका भी बंधाभाव होजाता

नवमे ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

भंगाः षडादिमे बंधे चत्वारस्ते द्वितीयके । द्वौ द्वौ त्रिषु परेषु स्यादेकैको मोहकर्मणः ॥ ३७ ॥

६ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ ।

उदयस्थानानि कथ्यन्ते—

नव स्थानानि मोहस्य क्रमाद्दश दशोदये । एकद्वित्रिचतुःपंचषडष्टनवत्रर्जिताः ॥ ३८ ॥

१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।

है, तब केवल एक सज्वलन लोभ प्रकृतिका बंधस्थान रह जाता है । इस प्रकार चार सज्वलनमेंसे क्रमसे एक दो तीन प्रकृतियोंका घट जाना समझना चाहिये । ३६ ।

नौवें गुणस्थानमें ५।४।३।२।१। इस प्रकार पाच बंधस्थान हैं ।

इन दश स्थानोंमें भग कितने कितने किस किस स्थानमें होते हैं वह आगे बताते हैं ।—

आदिम—बंधके प्रथम बाईस प्रकृतिवाले एक स्थानमें भंग छह होते हैं । दूसरे स्थानमें भंग चार हैं । तीसरे, चौथे, पांचवें—इन आगेके तीन स्थानोंमें दो दो भंग होते हैं । फिर क्रमसे आगेके पाच स्थानोंमें एक एक ही भंग है । (६।४।२।२।२ १।१।१।१।१।) । तीन वेदोंके बदलनेसे और हास्यादि दो युगलोंके बदलेसे प्रथम स्थानमें छह भंग हो जाते हैं । ३७ ।

अब मोहके उदय स्थानोंको दिखाते हैं ।—

मोहके उदयस्थान नौ हैं । पहिला स्थान मोहकी दश प्रकृतिका है । फिर क्रमसे दशके प्रथम स्थानमेंसे एक, दो तीन, चार, पाच, छह, आठ, तथा नौ प्रकृति कम होकर दूसरा स्थान ९ प्रकृतिका होता है, तीसरा ८ प्रकृतिका, चौथा ७ प्रकृतिका, पाचवा ६ प्रकृतिका, छट्ठा ५ प्रकृतिका, सातवा स्थान ४ प्रकृतिका, आठवा स्थान २ प्रकृतिका, और नौवां स्थान १ प्रकृतिका रह जाता है । (१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।) । ३८ ।

मिथ्यात्वमेकमेकं च कषायाणां चतुष्टयम् । वेद एकतमो युग्म हास्यादिष्वेकक भयम् ॥ ३९ ॥
जुगुप्सेत्युदये सन्ति दश प्रकृतयः स्फुटम् । मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने द्वाविंशतिनिबधने ॥ ४० ॥

तत्र मिथ्यात्व १ । अनंतानुबध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनेषु चत्वारः क्रोधमानमायालोमाः ४ । त्रिषु वेदेष्वेकतमो वेदः १ । हास्यरत्यरतिशोकयोरेकतरं युग्म २ । भय १ । जुगुप्सा १ । दशोदयस्थानमिद द्वाविंशतिबधस्थानिनि मिथ्यादृष्टौ १० ।

दश मोहकी प्रकृतियोंके उदयस्थानको प्रथम बताते हैं फिर क्रमसे दूसरे तीसरे आदि स्थानोंको बतावेंगे ।—

मिथ्यात्व एक प्रकृति, अनंतानुबंधी आदि चार कषायोंमेंसे प्रत्येकके जो क्रोधादि चार चार भेद होते हैं उनमेंसे कोई एक एक क्रोधादि चार कषाय अर्थात् अनंतानुबंधी आदि चार क्रोध अथवा चार मान, अथवा चार माया, अथवा चार लोभ—इस प्रकार चार कषाय, तीन वेदोंमेंसे एक वेद, हास्य रति, अथवा अरति शोक—इन दो युगलमेंसे एक युगलका एक समयमें उदय होगा इसलिए एक युगलकी दो संख्या, एक भय, एक जुगुप्सा—ये दश प्रकृति एक समयमें उदययोग्य हैं । इस प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें बध ऊपर बाईस मोहप्रकृतिका बताया था किंतु उदयमें ये १० ही प्रकृति एक समयमें सभव होती हैं । भावार्थ, प्रथम जो उक्त बाईसका बध होजाता है उन्हींमेंसे उदययोग्य एक समयमें दश प्रकृति फिर उदयको प्राप्त होती हैं । ३९ - ४० ।

दश उदयप्रकृतियोंमें मिथ्यात्व एक है । अनतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण सज्वलन—इन चारमेंके चार चार क्रोध मान माया लोभ—कोई एक ये चार, तीन वेदोंमेंसे कोई एक-वेद, हास्य रति, अरति शोक—इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगलकी दो प्रकृति, एक भय, एक जुगुप्सा—यह दशका उदयस्थान, बंधस्थानकी बाईस प्रकृतियोंको लिये मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें होता है ।

---

१ 'बन्धस्थानानि' इति मूले पाठ ।

मिथ्यात्वमाद्याः क्रमतो द्वितीयास्त्याज्यास्तृतीया भयजुगुप्सनैकम् ।
तद्युग्महास्यादियुगे सवेदे स्थाने परत्रोदययोजनाय ॥ ४१ ॥

अस्यार्थः—दशोदयस्थानतो मिथ्यात्वत्यागे नवोदयस्थानमेकविंशतिबंधके शासने । ततः कषायाणामादिचतुष्कत्यागे परचतुष्कत्रयैकतरत्रयग्रहे एकतरवेदादिपंचकग्रहे चाष्टोदयस्थान सप्तदशबंधकस्य सम्यग्मिथ्यादृष्टेरसंयतस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च ८ । ततो द्वितीयचतुष्कत्यागे परचतुष्कद्वयान्यतरद्वयग्रहे एकतरवेदादिपंचकग्रहे च सप्तोदयस्थान त्रयोदशबन्धकस्य संयतासंयतस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च ७ । ततस्तृतीयचतुष्कत्यागे चतुर्णां

इसके आगे द्वितीयादि स्थानोंकी सिद्धि करते हैं ।—

दूसरे स्थानमें मिथ्यात्वकी एक प्रकृति कम होजाती है । फिर क्रमसे प्रथम कषाय, द्वितीय कषाय, तीसरे कषाय, फिर भय तथा जुगुप्सा–एक एकको घटाकर, हास्यादि दो युगलवाले स्थानोंमें और वेदसहित भागपर्यंत तथा उसके आगे वेदको तथा संज्वलनोंकी प्रकृतियोंको घटाकर उदयके स्थानोंको सिद्ध करना चाहिये । उसका खुलासा नीचे देते हैं । ४१ ।

ऊपरके श्लोकका भावार्थ—दश प्रकृतिवाले प्रथम उदयस्थानमेंसे मिथ्यात्व प्रकृतिका अभाव होजानेपर सासादनमें इक्कीस प्रकृतिका बंधस्थान है और नौ प्रकृतिका उदयस्थान है । इसके आगे सत्रह प्रकृतियोंके बंधवाले मिश्र तथा असंयत औपशमिक सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टिके भी आठ प्रकृतियोंका एक उदयस्थान है । वह इस प्रकार है कि दूसरे गुणस्थान पर्यंत अनंतानुबंधी आदि चारों भेदके एक एक करके चार कषाय युगपत् उदयको प्राप्त होते थे, उनमेंसे अनंतानुबंधीका तीसरे गुणस्थानसे लेकर उदय नहीं होता, इसलिये अनंतानुबंधी कषायकी एक संख्या चार उदीयमान कषायोंमेंसे घट जाती है । इस प्रकार नौ उदययोग्य कषायोंमेंसे एक कषाय घट जानेपर उदयस्थान आठ प्रकृतिका रह जाता है । यहांपर अप्रत्याख्यानावरणादि तीन कषायोंमेंसे एक एक प्रकृतिको लेकर तीन प्रकृति इकट्ठी की जाती हैं और एक वेद तथा चार हास्यादि नोकषाय–इस प्रकार आठ प्रकृति रहती हैं ।

सज्वलनानामेकतरग्रहे एकतरवेदादिपंचकग्रहे च षडुदयस्थानं नवकबन्धकानामौपशमिकक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वाणां ६। ततो भयजुगुप्सयोरेकतरत्यागे पंचोदयस्थानं प्रमत्तादीनामेव ५। ततो भयजुगुप्साद्वयत्यागे चतुरुदयस्थानं प्रमत्तादीनामेव ४। एषामुदयस्थानानां दशादीनां कषायचतुष्कवेदत्रययुग्मद्वयानां परस्पराभ्यासे चतुर्विंशतिभंगाः २४। ततो हास्यादित्यागे च चतुर्णां सज्वलनानामेकतरग्रहे त्रयाणां च वेदानामेकतरग्रहे सवेदस्यानिवृत्तेर्द्विकमुदयस्थान

आगे द्वितीय कषायका भी अभाव होजाता है। उस स्थानमें अन्तकी दो कषायचौकडी रह जाती हैं। उनमेंसे प्रत्येक चौकडीका कोई एक एक कषाय लेनेसे दो कषाय होते हैं। और नोकषायमेंसे एक कोई वेद तथा हास्यादि तथा भयादिके मिलाकर चार शेष नोकषाय—इस प्रकार पाच सर्व नोकषाय लेनेसे सात प्रकृतिका यह उदयस्थान होता है। यह पाचवें गुणस्थानमें होता है। इस पांचवें गुणस्थानका जीव तेरह मोह प्रकृतियोंको बाधनेवाला है और वह औपशमिक सम्यग्दृष्टि भी रह सकता है तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी रह सकता है। फिर आगे छट्ठे गुणस्थानसे लेकर तीसरे- प्रत्याख्यानावरण कषाय चार प्रकृतिका उदय होना बंद पडजाता है इसलिये केवल सज्वलन मात्र चार कषाय उदयमें शेष रह जाते हैं। इन सज्वलन चारमेंसे किसी एकका उदय लेना। और एक कोई वेद तथा हास्यादिमेंके चार शेष नोकषाय—इस प्रकार पाच नोकषाय लेना। यह छह मोह प्रकृतिका उदयस्थान हुआ। यह छट्ठे सातवें आठवें—इन तीन गुणस्थानोंमें उदयस्थान होता है। इन तीन गुणस्थानोंमें नवीन जो मोह प्रकृति बंधको प्राप्त होती हैं वे नौ हैं इसलिये यहां बंधस्थान नौका है। इन छह प्रकृतिमेंसे यदि भय—जुगुप्सामेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय होना रुक जाता है, तो उस अवस्थामें पांच प्रकृतिका उदय माना जाता है। यदि भय जुगुप्सा ये दोनो भी रुक जांय तो इन्हीं तीन प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें चार प्रकृतिका भी उदयस्थान होजाता है। इस प्रकार दशके उदयस्थानसे चारके उदयस्थान-पर्यंत सात स्थानोंमें क्रोधादि चार कषायोंका, वेद तीनका तथा हास्यादि दो युगलोंका युगपत संभव न होकर अन्यतरका संभव होता है। कभी किसीका, कभी किसीका। इसलिये कषायकी चार संख्यासे, फिर वेदकी तीन संख्यासे और हास्यादि युगल दो की संख्यासे क्रमसे परस्पर गुणा जाय तो दशादि उदयस्थानके भंग २४ पर्यंत हो जाते हैं।

२। अस्य द्वादश भगाः १२। चतुर्बंधकस्यानिवृत्तेरुदयस्थाने द्वे द्वावेकश्च। तत्राद्ये द्वादश भगाः १२। द्वितीये निर्वेदस्यानिवृत्तेश्चतुर्णां सज्वलनानामेकतरेणैकमुदयस्थान १। अस्य चत्वारो भगा ४। त्रयबंधकस्य क्रोधवर्ज्यानां सज्वलनानामेकतरेणै-

---

भावार्थ, कषाय चारको वेदकी तीन सख्यासे गुणा करनेपर १२ संख्या हुई। फिर १२ को हास्यादि दो युगलकी दो सख्यासे गुणनेपर २४ संख्या हो जाती है। ये अपुनरुक्त चौवीस भग हो जाते हैं। दशके उदयस्थानमें ये चौवीस ही भंग सभव हैं। नौ आदिके ऊपरी स्थानोंमें भग कम कम होंगे क्योंकि, आगे गुणनकी चार तीन, दो इन सख्याओंमें क्रमसे घटवारी होती जाती है। जैसे नौके उदयस्थानमें कषाय चार न रहकर तीन रह जाते हैं। तीन कषायको तीन वेदसे, फिर दो युगलसे गुणनेपर अठारह भग होते हैं। इसी प्रकार आगेके भी यथासभव भंग समझना। परतु ये सर्व भग ऊपरके चौवीस भंगोंमें आजाते हैं इसलिये ये पुनरुक्त भग हैं। मूल भंग चौवीस ही हैं।

आगे नौवें गुणस्थानमें जहातक वेदोंका उदय नष्ट नहीं होता वहा पर्यंत संज्वलन चार कषायोंमेंसे एक कोई कषाय और तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद—इस प्रकार दो प्रकृतिका उदयस्थान होता है। यहांपर हास्यादि दोनो युगलोंका उदय नहीं रहता—बद पड जाता है। इस दोके स्थानमें कषाय चारकी बदलन हो सकती है और वेद तीनकी बदलन हो सकती है। इसलिये चारको तीनसे गुणनेपर १२ सख्या होजाती है। ये १२ भग इस दोके उदयस्थानमें जानना। यहांपर बधस्थान चार कषायका संभव है। भावार्थ, नौवें गुणस्थानके इस चार बधवाले भागमें उदयके स्थान दो प्रकार हैं, दो प्रकृतिका, तथा एक प्रकृतिका। इस प्रकार इस नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सवेद भाग जहांतक है वहातक दोका उदयस्थान है। और आगे वेदका उदय बंद पड जाता है वह अवेद भाग कहाता है। उस अवेद भागमें केवल एक कषायका उदय रह जाता है। सवेदके दोवाले उदयस्थानमें भग बारह बताये। किंतु चार सज्वलनका बध रहते जहांपर वेदके अभाव हो जानेपर उदय एक किसी संज्वलनका ही है वहांपर उस एक उदयस्थानमें चार संज्वलनके परिवर्तन हो सकनेके कारण चार भग होते हैं। यहातक बध चार प्रकृतिका है।

इसी नौवें गुणस्थानमें आगे चलकर क्रोध छूट जाता है उस समय शेप तीन संज्वलनमेंसे किसी एकका उदय होने

कमुदयस्थान १। अस्य त्रयो भगाः ३। द्व्यबंधकस्य क्रोधमानवर्ज्ययोः सज्वलनयोरेकतरेणैकमुदयस्थान १। अस्य द्वौ भंगौ २। एकबंधकस्य लोभसज्वलनेनैकमुदयस्थानं १। अस्यैको भग १। अबंधकस्य सूक्ष्मस्य लोभसज्वलनेनैकमुदयस्थान १। अस्याप्येको भगः।

पचदश सत्तास्थानानि कथ्यन्ते—

क्रमाद् द्वित्रिचतुःपट्सप्ताष्टनववर्जितम्। सप्तक त्रिंशतां कृत्वा त्रिद्व्येकसहितान् दश ॥ ४२ ॥

लगता है। इस एकके उदयस्थानमें भग तीन होते हैं। बंध यहापर तीनका होता है इसलिये बंधस्थान तीनका है। इसके भी आगे क्रोध मान—दोका बंध छूट जाता है इसलिये वहापर बंधस्थान शेष दोका है। और उदय जो शेष रहे माया लोभ-इन दोमेंसे एकका है। इस एक उदयस्थानके भंग दो हैं। फिर आगे चलकर माया संज्वलन कषायका भी बंध होना रुक जाता है। वहांपर बंधस्थान भी एक लोभ सज्वलनका है, और उदयस्थान भी एक लोभ सज्वलनका है। इस उदयस्थानका भग एक ही है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके अन्तपर्यंत बन्धस्थान तथा उदयस्थानोंका साथमें सम्भव समझना। नौवें गुणस्थानके आगे दशवें सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें मोहके बन्धका अभाव है। केवल उदयस्थान एक सूक्ष्मलोभका रह जाता है। इसका भी भग एक ही है।

अब मोहके सत्तास्थानोंको बताते हैं। सत्तामें स्थान सर्व पद्रह हैं। उनको क्रमसे दिखाते हैं। सबसे प्रथम यह बताते हैं कि पद्रह स्थानोंमेंके किस किस स्थानमें कितनी कितनी सत्वप्रकृति हैं।—

तीसकी सख्यामें क्रमसे दो तीन चार छह सात आठ नौ—ये संख्याए घटाई तो २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१—ये सात सख्याएं निकल आती हैं। अर्थात् ये ही क्रमसे सत्ताके सात पहिले स्थान हैं। इसके आगे आठवें आदि सत्ता-स्थानोंकी संख्या इस प्रकार समझो कि दशकी संख्यामें क्रमसे तीन, दो, एक—ये संख्याए जोडना। दशमें तीन जोडनेसे १२ हुए, यह सत्ताप्रकृतियोंका आठवां स्थान है। दशमें दो जोडनेसे बारह होते हैं। यह नौवां सत्तास्थान १२ मोह प्रकृतियोंका है।

एकद्वित्रिचतुःपचहीनान् षण्मोहकर्मणः । सत्त्वे पचदश प्राहुः स्थानानीति मनीषिणः ॥ ४३ ॥

२८ । २७ । २६ । २४ । २३ । २२ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

दशमें एकको जोडकर ग्यारहकी सख्या होती है । यह दशवां सत्ताका स्थान ११ प्रकृतियोंका है । इसके आगेके ग्यारहवें बारहवें आदि स्थानोंको निकालनेके लिये छह संख्यामें क्रमसे एक, दो, तीन, चार, तथा पाच संख्याको घटाकर जो सख्या रहे उतनी उतनी सत्वप्रकृतियोंके वे एकेक स्थान समझना । ग्यारहवां स्थान एक घाट छह अर्थात् पाचका है । बारहवा स्थान चार प्रकृतिका है । तेरहवां स्थान तीन घाट छह अर्थात् तीन प्रकृतिका है । चार घाट छहका अर्थात् दो प्रकृतिका चौदहवा स्थान है । पाच घाट छहका अर्थात् एक प्रकृतिका पद्रहवा सत्तास्थान है । इस प्रकार तीसकी संख्यामें दो तीन आदि सख्याओंको घटाकर पहिले सात स्थान दिखाये । फिर दश सख्यामें तीन, दो, एकको जोडकर आगेके तीन स्थान दिखाये । फिर छह सख्यामें एक दो तीन चार पाचकी सख्याको घटाकर ग्यारहवेंसे पद्रहवें पर्यंतके पाच स्थान दिखाये । इस प्रकार पद्रह स्थानोंकी सत्त्वसंख्या इन श्लोकोंसे दिखाई है । ४२ – ४३ ।

२८ । २७ । २६ । २४ । २३ । २२ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

अब आगे मोहके बधोदयसत्त्वको गोमट्टसारके अनुसार दिखानेके लिये ६९१ वें के गाथा पर्यंतका वर्णन करते हैं ।—

आगे मोहनीयके त्रिसयोगी भंगोंको कहते हैं,—

मोहस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभगा हु । पत्तेउत्त व हवे तियसजोगेवि सव्वत्थ ॥ ६५२ ॥

मोहस्य च बन्धोदयसत्त्वस्थानाना सर्वभङ्गा हि । प्रत्येकोक्त व भवन्ति त्रिकसयोगेपि सर्वत्र । ६५२ ।

अर्थः—मोहनीयकर्मके बंध उदय सत्त्वस्थानोंके सब भंग जिस तरह पहले जुदे २ कहे थे उसीतरह बधादिके संयोगरूप त्रिसयोगमें भी सब जगह भग होते हैं ॥ ६५२ ॥

आगे गुणस्थानोंमें मोहके स्थानोंकी संख्या कहते हैं,—

अट्ठसु एक्को बंधो उदया चदु ति दुसु चउसु चत्तारि। तिण्णि य कमसो सत्तं तिण्णेगदु चउसु पणग तियं ॥ ६५३।
अणियट्टीबंधतिय पणदुगएक्कारसुहुमउदयसा। इगि चत्तारि य संते सत्त तिण्णेव मोहस्स॥ ६५४ ॥ जुम्मं।
अष्टसु एको बन्ध उदया चत्वार त्रय द्वयो चतुर्षु चत्वार। त्रीणि च क्रमश सत्त्वं त्र्येकद्विक चतुर्षु पञ्चक त्रिकम् ।६५३।
अनिवृत्तिबन्धत्रिक पञ्चद्व्येकादश सूक्ष्मोदयांशा। एक चत्वारश्च शाते सत्त्व त्रीण्येव मोहस्य। ६५४। युग्मम्।

अर्थ—मोहनीयके पूर्वोक्त बन्ध उदय सत्त्वस्थानोंमें यथासंभव बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि आदि ८ गुणस्थानोंमें तो एक एक ही है। उदयस्थान पहले गुणस्थानमें ४, इससे आगे दो गुणस्थानोंमें तीन तीन, इसके बाद चार गुणस्थानोंमें चार चार, एकमें तीन–इस तरह क्रमसे जानना। और सत्त्वस्थान हैं वे क्रमसे मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें तो ३, १, २, जानना। इसके बाद चार गुणस्थानोंमें पांच पांच, इससे आगेके गुणस्थानोंमें ३ ही हैं। और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें बन्ध उदय सत्त्व-स्थान क्रमसे ५, २, ११, जानना चाहिये। सूक्ष्मसांपरायमें उदयस्थान और सत्त्वस्थान क्रमसे एक और चार है। उपशांतकषाय नामा ग्यारहवें गुणस्थानमें बन्ध—उदयका अभाव होनेसे सत्त्वस्थान ही ३ पाये जाते हैं। ६५३–६५४।

आगे वे कौन २ स्थान हैं उनको दिखाते हैं,—

बावीस दसयचऊ अडवीसतियं च मिच्छबंधादी। इगिवीस णवयतियं अट्ठावीसं च विदियगुणे॥ ६५५॥
द्वाविंशति दशकचतुष्कमष्टाविंशतित्रिकं च मिथ्ये बन्धादि। एकविंशति नवकत्रिकमष्टाविंशतिश्च द्वितीयगुणे। ६५५।

अर्थ—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें बन्ध उदय सत्त्वस्थान क्रमसे २२ का, १० वें को लेकर चार, २८ वें को लेकर तीन हैं। और सासादनगुणस्थानमें बन्धस्थान २१ का, उदयस्थान ९ वें से लेकर तीन अर्थात् ९ वां ८ वा ७ वां तथा सत्त्वस्थान २८ का जानना चाहिये। ६५५।

सत्तरसं णवयतियं अडचउवीसं पुणोवि सत्तरसं। णवचउ अडचउवीसं य तिवीसतियमसयं चउसु॥ ६५६॥
सप्तदश नवकत्रयमष्टचतुर्विंशं पुनरपि सप्तदश। नवचतुष्कमष्टचतुर्विंशं च त्रयोविंशत्रयमशकं चतुर्षु ॥ ६५६॥

अर्थ—मिश्र गुणस्थानमें बंध उदय सत्त्वस्थान ये तीनों क्रमसे १७ का, ९ को आदि लेकर तीन, २८–२४ के दो स्थान हैं। उसके बाद असंयतगुणस्थानमें बंधादि तीन क्रमसे १७ का, ९ को आदिलेकर चार स्थान, २८-२४ और २३ को आदिलेकर तीन इस तरह पांच हैं। इसी तरह ५ सत्त्वस्थान असंयतादि अप्रमत्तगुणस्थानतक चार गुणस्थानोंमें जानने चाहिये ॥ ६५६ ॥

तेरट्ठचऊ देसे पमदिदरे णव सगादिचत्तारि। तो णवग छादितिय अडचउरिगिवीसय च नवतियं ॥ ६५७ ॥

त्रयोदश अष्टचतुष्क देशे प्रमत्तेतरयो नव सप्तकादिचत्वारि। अतो नवकं षडादित्रयमष्टचतुरेकविंशक च बंधत्रयम् ॥६५७॥

अर्थ—देशसंयत गुणस्थानमें बंध उदय सत्त्व ये तीनों स्थान क्रमसे १३ का, ८ को आदि लेकर चार स्थान, तथा पूर्ववत् ५ हैं। प्रमत्तगुणस्थान और अप्रमत्तगुणस्थान इन दोनोंमें बंधादिस्थान क्रमसे ९ का, ७ को लेकर चार, तथा पहलेकी तरह ५ हैं। इसके बाद अपूर्वकरण गुणस्थानमें तीनों स्थान क्रमसे ९ का, ६ को आदि लेकर तीन, २८–२४–२१ का इस प्रकार हैं, और क्षपकके २१ का ही स्थान है ॥ ६५७ ॥

पंचादिपंचबंधो णवमगुणे दोण्णि एक्कमुदयो दु। अट्ठचदुरेक्कवीस तेरादीअट्ठय सत्त ॥ ६५८ ॥

पञ्चादिपञ्चबन्धो नवमगुणे द्वौ एक उदयस्तु। अष्टचतुरेकविंशं त्रयोदशाद्यष्टक सत्त्वम् ॥ ६५८ ॥

अर्थ—नवमे गुणस्थानमें ५ को आदि लेकर पांच बंधस्थान हैं। २ का १ का इसप्रकार दो उदयस्थान हैं। और २८–२४–२१ का इसतरह तीन सत्त्वस्थान हैं। तथा क्षपकश्रेणीवालेके १३ के को आदि लेकर ८ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६५८ ॥

लोहेक्कुदओ सुहुमे अडचउरिगिवीसमेक्कय सत्तं। अडचउरिगिवीससा संते मोहस्स गुणठाणे ॥ ६५९ ॥

लोभैकोदय सूक्ष्मे अष्टचतुरेकविंशमेक सत्त्वम्। अष्टचतुरेकविंशांशा शान्ते मोहस्य गुणस्थाने ॥ ६५९ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें उदयस्थान एक सूक्ष्मलोभरूप ही है। और सत्त्वस्थान २८–२४–२१ के तीन तथा क्षपकश्रेणीवालेके १ प्रकृतिरूप एक ही है। उपशांतकषाय गुणस्थानमें सत्त्वस्थान ही २८–२४–२१ के तीन हैं। "यहां पर इतना और समझना कि दशवें गुणस्थानमें बंधस्थानका अभाव होनेसे दो स्थान कहे हैं, ग्यारहवेंमें उदयका भी अभाव होनेसे एक

हो स्थान कहा है। इससे आगे मोहका सत्त्व भी नहीं रहता" इसप्रकार मोहनीयके बंधादि स्थान गुणस्थानोंमें जानना चाहिये ॥ ६५९ ॥

आगे मोहनीयके बंध उदय और सत्त्वस्थानोंके त्रिसंयोगमें विशेषता दिखाते हैं —

बंधपदे उदयंसा उदयट्ठाणेवि बंध सत्त च। सत्ते बंधुदयपदं इगिअधिकरणे दुगाधेज्जं ॥ ६६० ॥

बन्धपदे उदयांशा उदयस्थानेपि बन्धः सत्त्व च। सत्त्वे बन्धोदयपदमेकाधिकरणे द्विकाधेयम् ॥ ६६० ॥

अर्थ—बन्धस्थानमें उदयस्थान और सत्त्वस्थान ये दो स्थान, उदयस्थानमें बंधस्थान और सत्त्वस्थान, तथा सत्त्वस्थानमें भी बंधस्थान और उदयस्थान होते हैं। इसप्रकार एक अधिकरणमें दो आधेय रहते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ ६६० ॥

उनमें पहले बंधस्थानमेंसे उदय सत्त्वस्थानोंको कहते है,—

बावीसयादिबंधेसुदयंसा चदुतितिगचऊपंच। तिसु इगि छद्दो अट्ठ य एक्कं पंचेव तिट्ठाणे ॥ ६६१ ॥

द्वाविंशकादिबन्धेषूदयांशा चतुस्त्रित्रिकैकचतुःपञ्च। त्रिष्वेक षट् द्वौ अष्ट च एकं पञ्चैव त्रिस्थाने ॥ ६६१ ॥

अर्थ—बाईसके स्थानको आदिलेकर बंधस्थानोंमें क्रमसे उदयस्थान और सत्त्वस्थान" २२ के में ४ उदयस्थान और ३ सत्वस्थान हैं, दूसरे बंधस्थानमें ३ उदयस्थान १ सत्त्वस्थान है, इससे आगेके तीन स्थानोंमें उदयस्थान चार चार और सत्वस्थान पाच पाच हैं, इसके बाद एक बंधस्थानमें उदयस्थान १ सत्वस्थान ६ हैं, उससे आगेके एक बंधस्थानमें उदयस्थान २ सत्त्वस्थान ८ हैं, उसके बाद तीन बंधस्थानोंमें उदयस्थान १ सत्वस्थान पाच पाच हैं" इसप्रकार कहे हैं ॥ ६६१ ॥

आगे उन्हीं उदयादिस्थानोंको दिखाते हैं,—

दसयचऊ पढमतियं णवतियमट्ठवीसयं णवादिचऊ। अडचदुतिदुइगिवीस अडचदु पुव्वं व सत्तं तु ॥ ६६२ ॥

दशकचतुष्कं प्रथमत्रिक नवत्रिकमष्टाविंशक नवादिचतुष्कम्। अष्टचतुस्त्रिद्व्येकविंशमष्टचतुष्क पूर्वं व सत्त्व तु ॥ ६६२ ॥

अर्थः—उन उदयादि स्थानोंमेंसे बाईसके बंधस्थानमें १० के स्थानको आदिलेकर चार उदयस्थान हैं और २८ को आदिलेकर तीन सत्त्वस्थान हैं। २१ के बंधस्थानमें ९ के स्थानसे लेकर तीन उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान एक अट्ठाईसका ही

है। १७ के बंधस्थानमें ९ के स्थानसे लेकर ४ उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान २८–२४–२३–२२–२१ के पांच हैं। १३ के बंधस्थानमें ८ के स्थानसे लेकर ४ उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान पूर्व कहे हुए ५ हैं॥ ६६२॥

सगचउ पुव्वं वसा दुगमडचउरेक्कवीस तेरतिय। दुगमेक्क च य सत्तं पुव्व वा अत्थि पणगदुगं॥ ६६३॥

सप्तचतुष्क पूर्वं वाशा द्विकमष्टचतुरेकविंश त्रयोदशत्रयम्। द्विकमेकं च च सत्त्व पूर्वं वा अस्ति पञ्चकद्विकम्॥ ६६३॥

अर्थ—९ के बंधस्थानमें ७ को आदिलेकर ४ उदयस्थान हे और सत्त्वस्थान पूर्वकथित ५ हैं। ५ के बंधस्थानमें २ का ही एक उदयस्थान है और सत्त्वस्थान उपशमकके २८–२४–२१ के तीन तथा क्षपकके १३ से लेकर तीन, इसप्रकार ६ है। ४ के बंधस्थानमें २ और १ प्रकृतिरूप दो उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान पूर्वोक्त कहे हुए ६ तथा पांचको आदिलेकर २–इसतरह ८ हैं॥ ६६३॥

तिसु एक्केक उदओ अडचउरिगिवीससत्तसजुत्त। चदुतिदयं तिदयदुग दो एक्कं मोहणीयस्स॥ ६६४॥

त्रिपु एकैक उदयः अष्टचतुरेकविंशसत्त्वसयुक्तम्। चतुस्त्रितय त्रितयद्विक द्वे एकं मोहनीयस्य॥ ६६४॥

अर्थ—३–२–१ प्रकृतिरूप तीन बंधस्थानोंमें उदयस्थान एक एक प्रकृतिरूप ही हैं और सत्त्वस्थान २८–२४–२१ के तीन स्थानोंमें तीनके बंध स्थानके ४–३ के स्थानोंको मिलानेसे ५ होते हैं। २ के बंधस्थानके २–३ के स्थानोंको पूर्वोक्त तीन स्थानोंमें मिलानेसे पांच होते हैं, तथा १ के बंधस्थानके सत्त्वस्थान पूर्वोक्त तीन स्थानोंमें २–१ के स्थानको मिलानेसे ५ हो जाते हैं। भावार्थ—जिस जीवके जिस समयमें २२ का बंध है उसके उदय १० का अथवा ९ वा ८ का अथवा ७ का भी पाया जाता है और सत्त्व २८ का, २७ का अथवा २६ का भी पाया जाता है। इसतरह आगेका कथन भी ऐसा ही समझलेना। इसप्रकार मोहनीयके बंधस्थानोंको अधिकरण मानके उदय सत्त्व इन दोनोंके आधेयरूप भंग गुणस्थानोंकी विवक्षासे कहे गये हैं॥६६४॥

आगे उदयस्थानको अधिकरण बनाके बंधस्थान–सत्त्वस्थानके आधेयरूप भंगको कहते हैं;—

दसयादिसु बंधंसा इगितिय तियछक्क चारिसत्त च। पणपण तियपण दुगपण इगितिग दुगछक्कऊणनय॥ ६६५॥

दशकादिषु बन्धांशा एकत्रिकं त्रिकषट्कं चतुःसप्त च। पञ्चपञ्च त्रिकपञ्च द्विकपञ्च एकत्रिकं द्विकषट्चतुर्नवकम्॥ ६६५॥

अर्थ—१० के स्थानको आदि लेकर उदयस्थानोंमें बंधस्थान और सत्त्वस्थान क्रमसे १—३, ३—६, ४—७ ५—५, ३—५, २—५, १—३, २—६ और ४–९ जानने चाहिये ॥ ६६५ ॥

पढम पढमतिचउपणमत्तरतिग चदुसु बधयं क्रमसो । पढमतिछस्सगमडचउतिदुइगिवीसमय दोसु ॥ ६६६ ॥

प्रथम प्रथमत्रिचतु पञ्चसप्तदशत्रिक चतुर्षु बन्धक क्रमश । प्रथमपपट्सप्त अष्टचतुस्त्रिद्विकैकविंशाशक द्वयो ॥ ६६२ ॥

अर्थ—पहले उदयस्थानमें बधस्थान पहला (२२ का) है, उसके बाद चार स्थानोंमें क्रमसे २२ के को आदि लेकर ३, २२ के को लेकर ४, २२ के को आदि लेकर ५, १७ के स्थानको आदि लेकर तीन बधस्थान हैं। और सत्त्वस्थान पहले बंधस्थानमें २८ आदि तीन हैं, दूसरेमें पहले २८ वेंको आदि लेकर ६ हैं, तीसरेमें २८ वेंको आदि लेकर ७ हैं, और चौथा तथा पाचवा इन दो उदयस्थानोंमें २८–२४–२३–२२–२१ के इसतरह पाच सत्त्वस्थान हैं ॥ ६६६ ॥

तेरदु पुव्वं वंसा णवमडचउरेक्कवीससत्तमदो । पणदुगमडचउरेक्कावीस तेरसतिय सत्त ॥ ६६७ ॥

त्रयोदशद्विकं पूर्वं बाशा नवममष्टचतुरेकविंशसत्त्वमत । पञ्चद्विकमष्टचतुरेकविंश त्रयोदशत्रिकं सत्त्वम् ॥ ६६७ ॥

अर्थ—पाच प्रकृतिके उदयस्थानमें १३ के स्थानको लेकर दो बधस्थान हैं और सत्त्वस्थान पहलेकी तरह ५ हैं, चारके उदयस्थानमें ९ का बधस्थान है और २८–२४ २१ के तीन सत्त्वस्थान हैं, उसके बाद २ के उदयस्थानमें ५ के स्थानको लेकर दो बधस्थान हैं और-२८–२४–२१–१३ के को आदि लेकर तीन, इसतरह ६ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६६७ ॥

चरिमे चदुतिदुगेक्क अट्ठयचदुरेक्कसंजुद वीसं । एक्कारादी सव्वं कमेण ते मोहणीयस्स ॥ ६६८ ॥

चरमे चतुस्त्रिद्विकैकमष्टकचतुरेकसयुत विंशम् । एकादशादि सर्वं क्रमेण तानि मोहनीयस्य ॥ ६६८ ॥

अर्थ—अन्तके १ प्रकृतिवाले उदयस्थानमें ४-३-२-१ के चार बन्ध हैं और २८-२४ २१-और ११ के स्थानसे लेकर सब ६ स्थान, इस प्रकार नौ सत्त्वस्थान है । इसरीतिसे ये सब मोहनीयके स्थान क्रमसे जानने चाहिये ।६६८।

आगे सत्त्वको अधिकरण मानके और बन्धउदयको आधेयरूप समझकर भङ्गोंको कहते हैं,—

सत्तपदे बधुदया दसणव इगिति दुसु अडड तिपण दुसु।
अडसग दुगि दुसु बिबिगिगि दुगि तिसु इगिसुण्णमेक्क च ॥ ६६९ ॥

सत्त्वपदे वन्धोदया दशनव एकत्रिकम् द्वयो अष्टाष्ट त्रिपञ्च द्वयो।
अष्टसप्त द्व्येकं द्वयो द्विद्विकमेकैक द्व्येक त्रिषु एकशून्यमेक च ॥ ६६९ ॥

अर्थ—२८ के स्थानको आदिलेकर सत्त्वस्थानोंमें जो क्रमसे बन्धउदयस्थान कहे हैं वे पहले स्थानमें १०–९, उसके बाद दो स्थानोंमें १–३, उसके आगेके स्थानमें ८–८, उसके बाद दो स्थानोंमें ३–५, उससे आगेके स्थानमें ८–७ उसके बाद दो स्थानोंमें २–१, उसके आगे २–२, उसके बाद १-१, उसके बाद तीन स्थानोंमें २-१, और एक सत्त्वस्थानमें १ अथवा शून्य-१ स्थान हैं।

अब उन्हीं स्थानोंको दिखाते हैं;—

सव्व सयल पढमं दसतिय दुसु सत्तरादिय सव्व। णवयप्पहुदीसयल सत्तरति णवादिपण दुपदे ॥ ६७० ॥
सत्तरसादि अडादीसव्व पण चारि दोण्णि दुसु तत्तो। पचचउक दुगेक्क चदुरिगि चदुतिण्णि एक्क च ॥ ६७१ ॥
तत्तो तियदुगमेक्कं दुप्पयडीएक्कमेक्कठाणं च। इगिणभबधो चरिमे एउदओ मोहणीयस्स ॥ ६७२ ॥ विसेसय ॥

सर्वं सकल प्रथमं दशत्रिकं द्वयो सप्तदशादिक सर्वम्। नवकप्रभृति सकल सप्तदशत्रिक नवादिपञ्च द्विपदे ॥ ६७० ॥
सप्तदशादि अष्टादि सर्वं पञ्च चत्वारि द्वे द्वयो तत। पञ्चचतुष्क द्विकैकं चतुरेक चतुस्त्रीणि एकं च ॥ ६७१ ॥
तत त्रिकद्विकमेक द्विप्रकृत्येकमेकस्थान च। एकनभोबन्ध. चरमे एकोदयो मोहनीयस्य ॥ ६७२ ॥ विशेषकम् ॥

अर्थ—मोहनीयके सत्त्वस्थानोंमेंसे पहले २८ के सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान और उदयस्थान क्रमसे २२ को लेकर सब (१०)–१० को आदि लेकर सब (९), उसके बाद २७ और २६ के दो स्थानोंमें २२ का–१० को लेकर तीन, २४ के सत्त्वस्थानमें १७ को लेकर सब (८)–९ को लेकर सब स्थान, उसके बाद २३ और २२ के दो सत्त्वस्थानोंमें १७ को लेकर तीन-९ को लेकर पांच हैं। २१ के सत्त्वस्थानमें बन्ध उदयस्थान १७ को लेकर सब–८ को आदि लेकर सब, उसके

वाद १३ और १२ के दो सत्त्वस्थानोंमें पाच चार–२ का स्थान, उसके बाद ११ के स्थानमें ५ और ४ का–दो और १ का, ५ के सत्त्वस्थानमें ४ का–१ का, ४ के सत्त्वस्थानमें ४ और ३ के–१ का है। उसके बाद ३ के सत्त्वस्थानमें बन्ध उदयस्थान ३ और २ के–१ का, २ के सत्त्वस्थानमें २ और १ के–१ का और १ के सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ का अथवा शून्य तथा उदयस्थान १ का है ॥ ६७० ॥ ६७१ ॥ ६७२ ॥

आगे मोहनीयके बन्ध उदय और सत्त्वमें दो आधार एक आधेयकर भंग कहते हैं,—

बंधुदय सत्तपदं बंधसे णेयमुदयठाण च। उदयसे बंधपद दुट्ठाणाधारमेक्कमाधेज्जं ॥ ६७३ ॥

बन्धोदये सत्त्व बन्धांशे ज्ञेयमुदयस्थान च। उदयांशे बन्धपदं द्विस्थानाधारमेकमाधेयम्। ६७३।

अर्थ —बन्ध उदयके स्थानोंमें सत्त्वस्थान, बन्धसत्त्वस्थानोंमें उदयस्थान और उदय सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थान इस प्रकार दोस्थान आधार तथा एकस्थान आधेयको लेकर तीनप्रकार भंग जानना चाहिये ॥ ६७३ ॥

अब उनमेंसे पहले प्रकारको ६ गाथाओंसे कहते हैं,—

बावीसेण णिरुद्धे दसचउरुदये दसादिठाणतिये। अट्ठावीसतिं सत्त सत्तुदये अट्ठवीसेव ॥ ६७४ ॥

द्वाविंशेन निरुद्धे दशचतुष्कोदये दशादिस्थानत्रये। अष्टाविंशत्रिकं सत्त्व सप्तोदये अष्टविंशमेव ॥ ६७४ ॥

अर्थ —२२ के बंधसहित जीवके १० के स्थानको आदि ले चार उदयस्थानोंमेंसे दशसे लेकर तीन स्थानोंमें तो २८ के को आदिलेकर तीन सत्त्वस्थान हैं, और ७ के उदयस्थानमें २८ के स्थानका ही सत्व है। ६७४।

इगिवीसेण णिरुद्धे णवयतिये सत्तमट्ठवीसेव। सत्तरसे णवचदुरे अडचउतिदुगेकवीससा ॥ ६७५ ॥

एकविंशेन निरुद्धे नवकत्रिके सत्त्वमष्टविंशमेव। सप्तदशे नवचतुष्के अष्टचतुस्त्रिद्विकैकविंशांशा। ६७५।

अर्थ —२१ के बंधसहित जीवके ९ आदि लेकर ३ के उदय होनेपर २८ का ही सत्त्वस्थान हैं, और १७ के बंधसहित जीवके ९ आदिलेकर ४ के उदय होनेपर २८–२४–२३–२२–२१ के सत्त्वस्थान हैं। ६७५।

यहांपर कुछ विशेषता कहते हैं,—

इगिवीसं ण हि पढमे चरिमे तिदुवीसयं ण तेरणवे। अडचउसगचउरुदये सत्तं सत्तरसयं व हवे ॥ ६७६ ॥
एकविंशं न हि प्रथमे चरमे त्रिद्विविंशकं न त्रयोदशनवके। अष्टचतुःसप्तचतुरुदये सत्त्वं सप्तदशकं व भवेत् ॥ ६७६ ॥

अर्थ—पहले (९ के) का उदय होनेपर २१ का सत्त्व नहीं होता है और ६ के उदय होनेपर २३ तथा २२ का सत्त्व नहीं होता, और १३ के बंधसहित ८ के स्थानको आदि लेकर चार उदयस्थानोंके होनेपर अथवा ९ के बंधसहित ७ को आदि लेकर ४ चार उदयस्थानोंके होनेसे सत्त्वस्थान १७ के बंधसहित स्थानमें जैसे कहे हैं उसतरह जानने चाहिये ॥६७६॥

और भी विशेषता कहते हैं;—

णवरि य अपुव्वणवगे छादितियुदयेवि णत्थि तिदुवीसा। पणबंधे दोउदये अडचउरिगिवीसतेरसादितियं ॥६७७॥
नवरि च अपूर्वनवके षडादित्रयोदयेपि नास्ति त्रिद्विविंशम्। पञ्चबन्धे द्विकोदये अष्टचतुरेकविंशत्रयोदशादित्रयम् ॥६७७॥

अर्थ—इतनी विशेषता है कि अपूर्वकरणगुणस्थानमें ९ के बंधसहित ६ के स्थानको आदिलेकर ३ के उदय होनेपर भी २३ और २२ का सत्त्व नहीं होता है, और पांचके बंधसहित दोके उदय होते समय २८–२४–२१—और १३ को आदि लेकर तीन सत्त्वस्थान हैं ॥ ६७७ ॥

चदुबंधे दोउदये सत्तं पुव्वं व तेण एक्कुदये। अडचउरेक्कावीसा एयारतियं च सत्ताणि ॥ ६७८ ॥
चतुर्बन्धे द्विकोदये सत्त्वं पूर्वं व तेन एकोदये। अष्टचतुरेकविंशानि एकादशत्रिकं च सत्त्वानि ॥ ६७८ ॥

अर्थ—४ के बंधसहित दोके उदय होनेपर पहलेकी तरह (५ के बंधसहित) कहा हुआ सत्त्व जानना चाहिये, उसी ४ के बंधसहित १ के उदय होनेपर २८–२४–२१ और ११ के को आदि ले ३ सत्त्वस्थान जानने योग्य हैं ॥ ६७८ ॥

तिदुइगिबंधेक्कुदये चदुतिगठाणेण तिदुगठाणेण। दुगिठाणेण य सहिता अडचउरिगिवीसया सत्ता ॥ ६७९ ॥
त्रिद्विकैकबन्धे एकोदये चतुस्त्रयस्थानेन त्रिद्विकस्थानेन। द्विकैकस्थानेन च सहितानि अष्टचतुरेकविंशकानि सत्त्वानि ॥६७९॥

अर्थ--३--२ -१ के बंधसहित एकके उदय होनेमे २८--२४--२१ के तीन सत्त्वस्थानोंमें क्रमसे ४ और ३ के दो सत्त्वस्थान मिलानेसे, ३ और २ के दो सत्त्वस्थान मिलानेसे, २ और १ के दो सत्त्वस्थान मिलानेसे सब जगह पाच पाच सत्त्वस्थान होते हैं ॥ ६७९ ॥

आगे बंध-सत्त्वको आधारका और उदयको आधेय समझकर ५ गाथाओंसे भग कहते हैं,

बावीसे अडवीसे दसचउरुदओ अणे ण सगवीसे । छव्वीसे दसयतिय इगिअडवीसे दु णवयतिय ॥ ६८० ॥
द्वाविंशतौ अष्टविंशतौ दशचतुष्कोदय अने न सप्तविंशतौ । षड्विंशतौ दशकत्रयमेकाष्टविंशतौ तु नवकत्रयम् ॥ ६८० ॥

अर्थ —२२ के बन्धसहित चारगतिके मिथ्यादृष्टि जीवोंके २८ का सत्त्व होनेपर १० के को आदि लेकर चार उदयस्थान हैं, क्योंकि यहां अनन्तानुबन्धी रहित भी उदयस्थानोंका सम्भव है, २७—२६ का सत्त्व होनेपर १० को आदि ले तीन उदयस्थान होते हैं, २१ के बन्धसहित सासादन गुणस्थानवालोंके २८ का सत्त्व होनेपर ९ को आदि लेकर तीन स्थानोंका उदय होता है । ६८० ।

सत्तरसे अडचदुवीसे णवयचदुरुदयमिगिवीसे । णो पढमुदओ एव तिदुवीसे णंतिमस्सुदओ ॥ ६८१ ॥
सप्तदश अष्टचतुर्विंशे नवकचतुष्कोदय एकविंशे । नो प्रथमोदय एव त्रिद्विविंशे नातिमस्योदय ॥ ६८१ ॥

अर्थ —१७ के बंधसहित चारों गतिके जीवोंके २८—२४ का सत्त्व होनेसे ९ को आदि लेकर ४ उदयस्थान हैं, २१ का सत्त्व होनेपर पहला (९ का) उदयस्थान नहीं शेष ८ को आदि लेकर ३ ही उदयस्थान हैं, इसीप्रकार २३—२२ का सत्त्वस्थान होनेपर अतका (६ का) स्थान नहीं है इसलिये यहांपर ९ को आदि लेकर ३ ही उदयस्थान हैं । ६८१ ।

तेरणवे पुव्वसे अडादिचउ मगचउण्हमुदयाण । सत्तरस व विआरो पणगुवसते सगेसु दो उदया ॥ ६८२ ॥
त्रयोदशनवमे पूर्वांशे अष्टादिचतुष्क सप्तचतुष्कमुदयानाम् । सप्तदशं व विचार पञ्चकोपशान्ते स्वकेषु द्वौ उदयौ ॥६८२॥

अर्थ— १३ के बंधसहित तिर्यचमनुष्यदेशसंयतके और ९ के बंधसहित प्रमत्त दोनों श्रेणियोंवाले अपूर्वकरणके पूर्ववत् १७ के बंधकी तरह सत्त्व होनेपर क्रमसे ८ के को आदि लेकर ४ उदयस्थान और ७ के को आदि लेकर चार उदयस्थान होते हैं। इसमें विशेष बातका विचार १७ के बंधकी तरह समझलेना। तथा उपशातकषाय गुणस्थानमें २८ आदिके सत्व होनेपर ५ के बंधसहित २ का उदय है और ५–४ के बंधसहित भी २ का उदय है ॥ ६८२ ॥

यही कहते हैं,—

तेणेव तेरतिये चदुबंधे पुव्वसत्तगेसु तहा। तेणुवसतसेयारतिए एक्को हवे उदओ ॥ ६८३ ॥

तेनैवं त्रयोदशत्रये चतुर्बन्धे पूर्वसत्त्वकेषु तथा। तेनोपशातांशे एकादशत्रये एको भवेत् उदयः ॥ ६८३ ॥

अर्थ—उन ५ के बंधसहित क्षपक अनिवृत्तिकरणमें पूर्ववत् १३ आदिक तीनके सत्त्व होनेपर तथा ४ के बंधसहित २८ के को आदिलेकर ३ का अथवा १३ को आदि लेकर ३ का सत्त्व होनेपर २ का उदय होता है। और ४ के बंधसहित उपशात कषायमें पूर्वोक्त २८ को आदि लेकर ३ का सत्त्व होनेपर तथा ११ को आदिलेकर तीनका सत्त्व होनेपर १ का ही उदय है ॥ ६८३ ॥

तिदुइगिबंधे अडचउरिगिवीसे चदुतिएण ति दुगेण। दुगिसत्तेण य सहिदे कमेण एक्को हवे उदयो ॥ ६८४ ॥

त्रिद्विकैकबन्धे अष्टचतुरेकविंशे चतुस्त्रिकेण त्रिद्विकेन। द्व्येकसत्वेन च सहिते क्रमेण एको भवेत् उदय ॥ ६८४ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणमें ३–२–१ के बंधसहित क्रमसे २८–२४–२१ के सत्त्व होनेपर अथवा ४–३ का सत्त्व होनेसे वा ३–२ का सत्त्व होनेसे वा २–१ सत्त्व होनेसे एक एकका ही उदय होता है ॥ ६८४ ॥ यहा नवक समयप्रबद्धकी विवक्षा और अविवक्षासे दो प्रकारके सत्त्व कहेगये हैं।

आगे उदय–सत्त्व आधार और बंधको आधेय करके ७ गाथाओंसे कहते हैं,—

दसगुदये अडवीसतिमत्ते बावीसबंध णवअट्ठे। अडवीसे बावीसतिचउबंधो सत्तवीसदुगे ॥ ६८५ ॥

बावीसबंध चदुतिदुवीससे सत्तरसयददुगबंधो। अट्ठुदये इगिवीसे सत्तरबंध विसेस तु ॥ ६८६ ॥ जुम्म ॥

॥३८०॥

दशकोदये अष्टविंशत्रिसत्त्वे द्वाविंशबन्ध' नवाष्टके । अष्टविंशतौ द्वाविंशतित्रिचतुर्बन्ध, सप्तविंशद्विके ॥ ६८५ ॥

द्वाविंशबन्ध' चतुस्त्रिद्विविंशांशे सप्तदशायतद्विकबन्ध. । अष्टोदये एकविंशे सप्तदशबन्धा विशेषस्तु ॥ ६८६ ॥ युग्मम्।

अर्थ —१० के उदयसहित २८ को आदिलेकर ३ का सत्त्व होनेपर २२ का ही बंध होता है, ९ के उदयसहित असंयतपर्यंत वा ८ के उदयसहित देशसयतगुणस्थानतक २८ का सत्त्व होनेपर क्रमसे २२ को आदिलेकर ३ और ४ का बंधस्थान है तथा उन्हींमें २७ का वा २६ का उदय होनेपर २२ का बंध होता है। और पूर्वोक्त उदयसहित मिश्रगुणस्थानमें २४ का सत्त्व होनेपर तथा असयतगुणस्थानमें २४—२३—२१ इन तीन सत्त्वोंके होनेपर १७ का बंध है। देशसंयतगुणस्थानमें ८ के उदयसहित २४ को आदिलेकर तीन सत्त्व होनेपर १३ का बंध है। इतना विशेष है कि २१ के सत्त्व होनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टि असयतके १७ का बंध होता है ॥ ६८५—६८६ ॥

सत्तुदये अडवीसे बन्धो वावीसपञ्चय तेण । चउवीसतिगे अयदतिबंधो इगिवीसगयददुगबंधो ॥ ६८७ ॥

सप्तोदये अष्टविंशे बन्धो द्वाविंशपञ्चक तेन । चतुर्विंशत्रिके अयतत्रिबन्ध एकविंशके अयतद्विकबन्ध । ६८७ ।

अर्थ—७ के उदयसहित २८ का सत्त्व होनेपर २२ को आदिलेकर ५ बंधस्थान हैं। पूर्वोक्त उदयसहित २४ को आदि लेकर ३ सत्त्व होनेपर असयतगुणस्थानमें १७ को आदिलेकर ३ बंध होते हैं और पूर्वोक्त उदयसहित २१ का सत्त्व होनेपर असंयतयुगलमें कथित १७—१३ इन दो का बंध होता है ॥ ६८७ ॥

छप्पणउदये उवसंतसे अयदतिगदेसदुगबंधो । तेण तिदोवीससे देसदुणवबंधय होदि ॥ ६८८ ॥

षट्पञ्चोदये उपशांतांशे अयतत्रिकदेशद्विकबंध । तेन त्रिद्विविंशांशे देशद्विनवबंधकं भवति ॥ ६८८ ॥

अर्थ—६ और ५ के उदयसहित उपशांतकषायमें कहे हुए तीन सत्त्वस्थान होनेपर क्रमसे असंयतयुगलकथित १७

को आदिलेकर ३ तथा तेशसंयतयुगलकथित १३ को आदिलेकर दो बंधस्थान हैं। और पूर्वोक्त ६–५ के उदयसहित २३-२२ के सत्त्व होनेपर देशसयतयुगलकथित १३ का बधस्थान तथा ९ का बधस्थान होता है ॥ ६८८ ॥

चउरुदयुवसतसे णवबंधो दोण्णिउदयपुव्वसे। तेरसतियसत्तेवि य पण चउ ठाणाणि बंधस्स ॥ ६८९ ॥

चतुरुदयोपशातांशे नवबन्धो द्विकोदयपूर्वांशे। त्रयोदशत्रयसत्त्वेपि च पञ्चचतु स्थानानि बन्धस्य ॥ ६८९ ॥

अर्थ — ४ के उदयसहित उपशातकषायोक्त २८–२४–२१ के सत्त्व होनेपर ९ का बध पाया जाता है। २ के उदयसहित पूर्ववत् ३ सत्त्व होनेपर तथा १३ को आदि लेकर तीन सत्त्व होनेपर भी ५ का अथवा ४ का बधस्थान है ।६८९।

एक्कुदयुवसतसे बंधो चदुरादिचारि तेणेव। एयारदु चदुबंधो चदुरंसे चदुतियं बंधो ॥ ६९० ॥

एकोदयोपशान्तांशे बन्ध चतुरादिचत्वार तेनैव। एकादशद्विके चतुर्बन्ध चतुरंशे चतुस्त्रिको बन्धः ॥ ६९० ॥

अर्थ—एकके उदयसहित उपशातकषायोक्त २८–२४–२१ के सत्त्व होनेपर ४ के को आदिलेकर चार बधस्थान हैं। एकके ही उदयसहित ११–५ ये दो सत्त्व होनेपर ४ का बंधस्थान है। और ४ के सत्त्व होनेपर ४ वा ३ का बधस्थान है ॥ ६९० ॥

तेण तिये तिदुबंधो दुगसत्ते दोण्णि एक्कय बंधो। एक्कंसे इगिबंधो गयणं वा मोहणीयस्स ॥ ६९१ ॥

तेन त्रये त्रिद्विबन्धो द्विकसत्त्वे द्वौ एको बन्धः। एकांशे एकबन्धो गगनं वा मोहनीयस्य ॥ ६९१ ॥

अर्थ—उसी एकके उदयसहित अनिवृत्तिकरणोक्त ३ का सत्त्व होनेपर ३ का वा २ का बध होता है। २ का सत्त्व होनेपर २ का वा १ का बध होता है। और मोहनीयके १ के स्थानका सत्त्व होनेपर १ ही का बधस्थान होता है अथवा गगन अर्थात् बधाभाव होता है ॥ ६९१ ॥ इसप्रकार मोहनीयके त्रिसयोगी भग कहे।

मोहेऽष्टाविंशतिः सर्वाः सम्यक्त्वे सप्तविंशतिः। क्रमात्षड्विंशतिर्मिश्रे भवत्युद्वेलिते सति ॥ ४४ ॥

२८। २७। २६।

अष्टाविंशतित क्षीणे कषायाणा चतुष्टये। प्रथमेऽसति मिथ्यात्वे मिश्रसम्यक्त्वयोः क्रमात् ॥ ४५॥

कोपादिकाष्टके षढे स्त्रियां हास्यादिगोचरे। पट्के पुंसि क्रमान्नष्टे सञ्ज्वालाना त्रये सति ॥ ४६ ॥

२४। २३। २२। २१। १३। १२। ११। ५। ४। ३। २। १।

अब मूलकार यह बताते हैं कि अट्ठाईस आदि कितनी प्रकृतियोंकी सत्ता किस गुणस्थानमें होती है?—

मोहमें अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवके सबसे अधिक मोहकी सत्ता पूरी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी है। यदि सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना होजाय तो सत्ताईसकी सत्ता है। इसी प्रकार क्रमसे यदि सम्यङ्मिथ्यात्वनामक मिश्रमोहकी भी उद्वेलना होजाय तो छब्बीस प्रकृतियोंकी मिथ्यात्वमें सत्ता रह जाती है। (२८। २७। २६) ॥ ४४ ॥

चौवीस प्रकृतियोंकी सत्ता किस प्रकार और कहांपर हो सकती है वह आगे बताते हैं।—

अनतानुबंधी चार कषायोंका अट्ठाईस प्रकृतियोंमेंसे जिसके क्षय हो जाता है ऐसे जीवोंके चौवीस मोह प्रकृतिकी सत्ता रह जाती है। यह सत्ताका स्थान आगे सत्रह प्रकृतिके बंधवालेके तथा १३ और ९ प्रकृतिके बंधवालेके होता है ऐसा आगे बताया है। सत्रहका बंध तीसरे चौथेमें है। १३ का पाचवेंमें है। ९ का छट्ठेमें है।

ऐसे जीवके यदि मिथ्यात्व कर्मका भी अभाव हो जाय तो उसके २३ का सत्तास्थान रहता है। और यदि सम्यक्त्व प्रकृति न रही हो तो २२ का सत्त्व स्थान रह जाता है। और यदि मिश्रमोहनीय प्रकृति भी न रही हो तो २१ प्रकृतिका सत्त्व स्थान रहजाता है।

फिर आगे क्रोधादि आठ कषाय के नष्ट होनेपर, नपुंसक वेद के नष्ट होनेपर, स्त्रीवेदके नष्ट होनेपर, हास्यादि छह नोकषायोंके क्रमसे यथासंभव नष्ट होने पर, पुरुषवेदके नष्ट होनेपर, और फिर सज्वलन तीनका क्रमसे नाश होने पर क्रमसे सत्ताके स्थान २४ का, २३ का, २२ का, २१ का, १३ का, १२ का, ११ का, ५ का, ४ का, ३ का, २ का, १ का--ऐसे ये मोहके सत्तास्थान ऊपर ऊपर क्षपण करनेवालेके घटती प्रकृतियोंके रहते हैं। ४५। ४६।

सत्त्वस्थानानि शेषाणि ज्ञेयानीति यथागमम् । उदस्थानयोगोऽतो बंधस्थानेषु कथ्यते ॥ ४७ ॥
पंचस्वाद्येषु बधेषु पच पाका दशादिकाः । द्वौ परे द्विकमेको वा परेऽन्येष्वेकको मतः ॥ ४८ ॥

ब	२२	२१	१७	१३	९	अनिवृत्तौ—	बं	५	४	३	२	१	सूक्ष्मे–	०
उ	१०	९	८	७	६		उ	२	२	१	१	१		१

इस प्रकार सत्ताके सर्व स्थान समझना । अब आगे बधस्थानोंके साथ उदयस्थानोंको जोडकर क्रमसे बताते हैं । ४७ ।

सर्व बधस्थान दश हैं । उनमेंसे आदिके बधस्थान पांच २२ प्रकृतिका, २१ का, १७ का, १३ का, ९ का—ये पाच हैं । और उदयके सर्व नौ स्थान हैं उनमेंसे आदिके पाच उदयस्थान—१० प्रकृतिका पहिला, ९ का दूसरा, ८ का तीसरा, ७ का चौथा तथा ६ का पांचवा—ये हैं ।

ये यथाक्रमसे साथमें होते हैं । भावार्थ, २२ प्रकृतिवाले प्रथम बंधस्थानके साथ उदयस्थान दश प्रकृतिका होता है । इसी प्रकार शेप चार बधस्थानोंमें भी क्रमसे दूसरे तीसरे आदि आदि उदयस्थान होते हैं । इससे आगेके ५ प्रकृतिवाले बंधस्थानमें उदय दो प्रकृतिका है । उससे आगेके सातवें ४ प्रकृतिवाले बधस्थानमें भी उदय २ प्रकृतिका है । इसके आगेके ३ प्रकृतिके, २ प्रकृतिके तथा १ प्रकृतिके बधवाले आठवें नौवें दशवें स्थानमें उदयस्थान एक एक प्रकृतिका रहता है । बध जहां नहीं है वहां भी सूक्ष्मलोभ दशवें गुणस्थानमें उदय १ प्रकृतिका है । यत्र नीचे दिये हैं । ४८ ।

बंध—	२२	२१	१७	१३	९	अनिवृत्तिकरणमें—	बध—	५	४	३	२	१	सूक्ष्ममें	बंध– ०
उदय—	१०	९	८	७	६		उदय—	२	२	१	१	१		उदय– १

आद्ये संयोजनोनोऽन्यो द्वौ (च) सप्तदशे परौ । पाकौ समिश्रसम्यक्त्वौ मसम्यक्त्वौ द्वयोः परौ ॥ ४९ ॥

२२	२१	१७	१३	९
१०।९	९	९।८	८।७	७।६

आद्य अर्थात् बंधका प्रथम स्थान २२ प्रकृतिरूप है, इसमें उदय एक तो अनतानुबंधीके विसयोजन होजानेसे अनंतानुबधी रहित ९ प्रकृतिरूप है और अन्य अर्थात् दूसरा—अनंतानुबन्धी सहित १० प्रकृतिरूप है। संयोजनका अर्थ अनंतानुबंधी है। सत्रहके बधवाले स्थानमें भी आगेके दो उदयस्थान हैं। एक तो केवल मिथ्यात्वरहित ९ प्रकृतिवाला है। इसमें अनंतानुबन्धीका उदय कम हो जाता है परतु मिश्रमोहनीयका उदय बदलेमें बढ जाता है। इसलिये ९ का उदय होजाता है। दूसरा ऐसा नौका भेद है कि अनतानुबन्धी कम होजाता है परतु सम्यक्त्व मोहका उदय हो जाता है। इस प्रकार सम्यक्त्व और मिश्र मोहके साथ ये दो प्रकारसे उदय समझने चाहिये। इस सत्रहके बन्धस्थानमें यदि उपशम सम्यग्दृष्टि हो अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो उदयस्थान आठ प्रकृतिका ही रहता है। ऐसे सत्रहके बंधमें उदय ९ का तथा ८ का ऐसे दो रहते हैं।

इसके आगे १३ प्रकृतिका बंध करनेवाला पांचवां गुणस्थान है। इसमें उदय ८ प्रकृति का तथा ७ प्रकृतिका ऐसे दो प्रकार होता है। प्रत्याख्यान एक, संज्वलन एक, एक वेद, सम्यक्त्व-मोहनीय एक, हास्यादि चार—यह आठ प्रकृतिका उदय समझना। यदि सम्यक्त्व मोहनीयकी सत्ता न रही हो तो सात प्रकृतिका उदय समझना। ऐसे दो प्रकारका उदयस्थान इस तेरह प्रकृतिके बंधस्थानमें हुआ। आगे नौ प्रकृतिके बंधवाले छट्ठे सातवें आठवें—ये तीन गुणस्थान हैं। इनमेंसे, सम्यक्त्व मोहनीयका उदय आठवें गुणस्थानमें नहीं होता इसलिये वहांपर उदयस्थान छह प्रकृतिका ही है। ऊपर जो सात प्रकृति उदयस्थानमें बताई हैं उनमेंसे प्रत्याख्यानावरण तीसरे कषाय की एक प्रकृति यहां घट जाती है। छट्ठे और सातवें गुणस्थानमें सम्यक्त्व मोहके उदयसे यदि वेदक सम्यग्दृष्टि जीव है तो उसके सम्यक्त्वमोहके साथ सात प्रकृतिवाला उदय है। और क्षायिक सम्यग्दृष्टि तथा उपशम सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वमोहका उदय न रहनेसे छह प्रकृतिरूप ही उदयस्थान होता है। यंत्र आगे दिया है ॥ ४९ ॥

बंधके स्थान—	२२	२१	१७	१३	९
उदयके स्थान—	१०।९	९	९।८	८।७	७।६

भिया जुगुप्सया हीना द्वितयेन दशाप्यमी । उपर्युपरि त्रयो भंगा एकैकत्र ततो मताः ॥ ५० ॥

बंध—	२२		२१	१७		१३		९	
	८	७	७	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.
उदय—	९।९	८	८।८	७	६	६	५	५	४
	१०	९।९	९	८।८	७।७	७।७	६।६	६।६	५।५
		१०		९	८	८	७	७	६

भय तथा जुगुप्सा—इन दो नोकषायोंका उदय अपूर्वकरण–आठवें गुणस्थानपर्यंत होता है । परंतु कभी कभी दोनोंका उदय रहता है, कभी दोनोंमेंसे किसी एकका ही उदय रहता है, और कभी एकका भी उदय नहीं रहता है । इसलिये नीचे यत्रमें दिखाये हुए क्रमके अनुसार आदिसे ऊपर ऊपरके पाच बन्धस्थानोंमें अर्थात् अपूर्वकरण गुणस्थानपर्यंतके प्रत्येक बंधस्थानमें तीन तीन भंग होना बताया है । बंधके सर्व दश स्थान हैं । ५० ।

बंध—	२२		२१	१७		१३		९	
	८	७	७	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.
उदय—	९।९	८	८।८	७	६	६	५	५	४
	१०	९।९	९	८।८	७।७	७।७	६।६	६।६	५।५
		१०		९	८	८	७	७	६

अब यंत्रपरसे अर्थका विचार करते हैं।—

भय तथा जुगुप्सा—इन दोनोंका उदय रहे तो उदयस्थान दशका भी होता है। और अनतानुबंधीके विसंयोजनमें नौ प्रकृतिका उदयस्थान रहता है। भयका अथवा जुगुप्साका उदय न हो तो आठका उदय रहता है। यदि भय तथा जुगुप्सा इन दोनोंका उदय न हो तो सातका उदयस्थान हो जाता है। यह बाईस प्रकृतिके बंधस्थानमें उदयके भेद समझना। इक्कीस प्रकृतिका बंधस्थान दूसरे गुणस्थानमें होता है वहां पर उदय अनतानुबंधीका रहता है परंतु मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता इसलिये नौ का उदय है। भयजुगुप्साके न रहनेसे आठ तथा सातका भी उदय है।

सत्रह प्रकृतिके बंधवाले स्थानसे लेकर तेरहके और नौके बंधवाले स्थान पर्यंत तीन स्थानोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रहता भी है, और नहीं भी रहता है। इसलिये सत्रह प्रकृतिके बंधस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न रहनेपर आठका उदयस्थान है। और भय अथवा जुगुप्सामेंसे एकके न रहनेसे सातका उदयस्थान है। दोनोंके न रहनेपर छहका उदयस्थान है।

तेरह प्रकृतिके बंधस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिके रहनेपर आठका उदयस्थान है, सम्यक्त्व प्रकृतिके न रहनेपर सातका उदयस्थान है। भय तथा जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदय न रहनेसे छहका उदयस्थान है। भय–जुगुप्सा—दोनोंके उदय न रहनेपर पांचका उदयस्थान है।

नौ प्रकृतिके बंधस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रहनेपर सातका उदयस्थान है। सम्यक्त्वप्रकृतिके न रहनेपर छहका उदयस्थान है। भय जुगुप्सामेंसे एकके न रहनेपर पांचका उदयस्थान है। भय जुगुप्सा—दोनोंके उदय न रहनेपर चारका उदयस्थान है। यह यंत्रका तात्पर्य है।

अत्रैको दशानामुदय, षड् नवानामेकादशाष्टानां, दश सप्तानां, सप्त षण्णां, चत्वारः पचानामेकश्चतुर्णा द्वावनिवृत्तौ द्वयोः पचानामेकैकभेदा पाका ज्ञेया । तत्र पंचसु स्थानेषु १ । ६ । ११ । १० । ७ । ४ । १ । पिंडिताः ४० । अनिवृत्तौ २ । ४ । सूक्ष्मे १ ।

तत्र द्वाविंशतेर्बंधे सप्ताद्या दशैकविंशतेर्नव सप्ताद्याः, सप्तदशानां नव षडाद्यास्त्रयोदशानामष्ट पंचाद्या नवानां सप्त चतुराद्याः पाका द्रष्टव्याः १४० ।

अब उदयके कितने प्रकार होते हैं उन्हे बताते हैं ।—

यहांपर दशका उदय एक है । नौके उदय छह हैं । आठके उदय ग्यारह हैं । सातके उदय दश हैं । छहके उदय सात हैं । पांचके उदय चार हैं । चारका उदय एक है । फिर अनिवृत्तिकरणमें दोके दो हैं । और पांच स्थानोंका एकेक भेदरूप उदय है । इनमेंसे पांच पहिले बधस्थान १ । ६ । ११ । १० । ७ । ४ । १ ।—ये हैं । इनके जोडसे ४० उदयके भेद हो जाते हैं । अनिवृत्तिकरणमें २ । ४ । हैं । सूक्ष्ममें १ है ।

प्रत्येक बंधस्थानमें जघन्य तथा उत्कृष्ट कितनी कितनी प्रकृतियोंके उदयस्थान सभव हैं उन्हे बताते हैं ।—

पहिले बाईस प्रकृतिवाले बंधस्थानमें जघन्य सातका उदय है, उत्कृष्ट दशका उदय है । इकोसके बंधस्थानमें जघन्य सातका उदय है, उत्कृष्ट नौका उदय है । सत्रहके बंधस्थानमें जघन्य उदय छहका है, उत्कृष्ट नौका उदय है । तेरहके बंधस्थानमें जघन्य उदय पांचका है, उत्कृष्ट उदय आठका है । नौके बधस्थानमें जघन्य उदय चारका है; उत्कृष्ट उदय सातका है । ऐसे सर्व भेद १४० हो जाते हैं ।

इन प्रत्येक बधस्थानोंमें जघन्य उदय कितनी प्रकृतियोंका तथा उत्कृष्ट कितनी प्रकृतियोंका होता है—यह बात उच्चारण करके बताई । इनके बीचके जो उदयस्थान यंत्रमें बताये हैं वे भी मध्यम भेदोंमें समझलेने चाहिये ।

कषायवेदयुग्मानां भगाघाते परस्परम् । चतुर्विंशतिरादिष्टा बंधस्थानेषु पचसु ॥ २४ । ५१ ॥
चतुर्विंशत्या चत्वारिंशतस्ताडने सत्युदयभेदाः ९६० ।
भगा वै द्वादश प्रोक्ता वेदैः कोपादिताडने । आद्ययोर्बंधयोर्दक्षैर्द्वितयस्योदये सति ॥ ५२ ॥
एकपाके चतुर्बंधे ज्ञेय भगचतुष्टयम् । त्रिद्व्येकबधने भंगास्त्रिद्व्येकेऽन्यत्र चैककः ॥ ५३ ॥

चार कषायके तीन वेदोंके और हास्यादि दो युगलोंके जो भंग होते हैं उन्हे परस्परमें गुणनेपर पांच बंधस्थानोंमें सर्व चौवीस भेद होते हैं । आदिके बाईस आदि प्रकृतियोंके पांच बधस्थानोंमें जुदे जुदे कषाय चार हैं और वेद तीन हैं । इन्हे परस्परमें गुणनेसे १२ भेद हो जाते हैं । फिर हास्यादि दो युगलोंकी दो सख्यासे १२ को गुणनेपर चौवीस सख्या हो जाती है । जिन प्रकृतियोंका वदल बदल कर बध होता है उनका परस्परमें गुणा करके भेद निकालने चाहिये । अर्थात आदिके पांच बधस्थानोंमें अवान्तर भेद चौवीस पर्यंत होते हैं । जहापर वेद अथवा कषाय कम हो जाते हैं । ऐसे बधस्थानोंके भेद कम होते हैं । परन्तु वे सभी चौवीसके अतर्गत ही रहते हैं । ५१ ।

इन पाच बधस्थानोंके चौवीस मेदोंसे, ऊपर बताये हुए उदयके चालीस भेदोंको परस्पर गुणनेसे ९६० भेद हो जाते हैं । ये बधस्थानोंमें जो उदयस्थान जोडकर ऊपर दिखाये हैं उनके उत्तर भेद ९६० हैं ।

क्रोधादि चार कषायोंका वेद तीनसे गुणन करनेपर बारह भग होते हैं । ये बारह भंग हुए । ये बारह भग आदिके दो– ५ बधवाले तथा ४ बंधवाले–दो स्थानोंके होते हैं । परन्तु वहा इन दोके ही उदय होने चाहिये । यह सर्व विद्वानोंको समझना आवश्यक है । ५२ ।

जहापर उदय एकका है और बध चार प्रकृतिका है वहापर भग चार होजाते हैं । तीनके बधमें उदय एकका रहनेपर तीन भग होते हैं । एकके ही उदयमें दोके बधसे भग दो होजाते हैं । एकका ही उदय और एकका ही बंध जहापर है वहांपर भंग एक ही है । आगे भी अर्थात् बधके अभावमें फिर भंग एक है और उदय भी एक ही है । ५३ ।

	५	४	४	३	२	१		०
	२	२	१	१	१	१	सूक्ष्मे—	१
	१२	१२	४	३	२	१		१

सर्वे भगा मीलिता ३५ । पूर्वैः सहिताः ९९५ ।

पाकप्रकृतिभिर्हत्वा पाकस्थानानि ताडयेत् । चतुर्विंशतिभंगाद्यैः पदबंधोपलब्धये ॥ ५४ ॥

दशादीनि चतुरतानि पाकस्थानानि	१०	९	८	७	६	५	४
	१	६	११	१०	७	४	१

दशादिपाकप्रकृतिताडितानि—१०।५४।८८।७०।४२।२०।४ पिंडितानि २८८। चतुर्विंशतिभंगताडितानि

बंध—	५	४	४	३	२	१		बंध	०
उदय—	२	२	१	१	१	१	आगे सूक्ष्मलोभमें	उदय	१
भंग—	१२	१२	४	३	२	१		भग	१

ये सर्व भग मिलकर ३५ होते हैं । पहिले ९६० को और इन ३५ को मिलानेसे ९९५ भग होजाते हैं ।

उदयकी प्रकृतियोंसे उदयके स्थानोंको गुणित करे फिर चौवीस आदि भंगसंख्याओंसे गुणित करे तो सर्व पदबंध निकल आते हैं । ५४ ।

ऊपरके श्लोकका स्पष्टीकरण—दशका प्रथम उदयस्थान है । उसमें स्थान एक ही है इसलिये उस एकके साथ प्रकृतिसंख्या दशको गुणनेपर दश संख्या ही रहती है । दूसरा उदयस्थान नौका है । उसके स्थान ६ को ९ से गुणने पर ५४ भेद होते हैं । तीसरे उदय स्थानकी प्रकृति ८ हैं । उसके स्थान ११ हैं । दोनोंके गुणनेपर ८८ संख्या होती है । चौथे उदयस्थानमें प्रकृतिसंख्या ७ है । उसके स्थान १० हैं । परस्पर इन दोनोंको गुणनेपर ७० संख्या होती है । पाचवें उदयस्थानकी प्रकृति ६ हैं और उसके स्थान ७ हैं । परस्पर गुणनेसे ४२ होते हैं । छठे उदयस्थानमें प्रकृति ५ हैं और स्थान उसके चार हैं । परस्परमें गुणनेसे २० होते हैं । सातवें उदयस्थानकी प्रकृति ४ हैं, स्थान एक ही है । इसलिये परस्परमें गुणनेपर भी ४ ही रहते हैं । ये सर्व मिलकर २८८

६९१२। अनिवृत्तौ पूर्वोक्ता द्विकादिपाकप्रकृतयः २।२।१।१।१।१। सूक्ष्मे १। एभिर्भंगैरेताः १२।१२।४।३।२।१।१। गुणिता एतावतः— २४।२४।४।३।२।१।१।=पिंडिताः ५९। पूर्वैः सह पदबंधा एतावतः ६९७१।

मोहप्रकृतिसंख्यायाः पदबंधा भवंत्यमी। एकोनत्रिंशता हीनाः सहस्राः सप्त निश्चितम् ॥ ५५ ॥

पदबंध होते हैं। उदयस्थानोंके ये भेद ऊपर बताये हैं। चौवीस भंगसंख्यासे इस २८८ को गुणनेपर सर्व भंग ६९१२ हो जाते है।

इसका यंत्र इस प्रकार है।—

उदय प्रकृति —	१०	९	८	७	६	५	४
स्थान—	१	६	११	१०	७	४	१

गुणनसे प्राप्त हुए भेद— १० ५४ ८८ ७० ४२ २० ४=मिलानेपर २८८ भेद होगये।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें दो आदि उदयप्रकृति पूर्वमें क्रमसे बताई हैं—२।२।१।१।१।१। और सूक्ष्मसांपराय-दशवें गुणस्थानमें १ बताई है। इन भंगोंको इन-१२।१२।४।३।२।१।१—भंगोंसे क्रमसे गुणित करनेपर—२४।२४।४।३।२।१।१ इतने हुए। इनका जोड ५९ होता है। पूर्वमें ६९१२ पदबंध बताये हैं उनमें इन ५९ को जोडदेनेसे ६९७१ सर्व पदबन्ध हुए।

इसी संख्याको ग्रंथकार बताते हैं।

मोहनीय प्रकृतिकी संख्याके पदबंध उन्तीस कम सात हजार सर्व होते हैं वह ऊपर बताया है ॥ ५५ ॥

बंधस्थानं प्रति सत्तास्थानानि दीयंते—

आद्ये त्रीण्येकमन्यत्र त्रिषु पंच षडेककः । सप्तापरत्र चत्वारि सत्तास्थानान्यतः परे ॥ ५६ ॥

मोहस्य सत्तास्थानानि बंधस्थानेषु सामान्येनाह—

बं	२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१	०
स.	३	२	५	५	५	६	७	४	४	४	४

तानि विशेषेणाह—

आद्यमाद्ये त्रय बंधे द्वितीये चाष्टा विंशतिः । त्रिषु विंशतिरुक्ताष्टचतुस्त्रिद्व्येकसंयुता ॥ ५७ ॥

अब बंधस्थानके साथ सत्तास्थानोंको दिखाते हैं ।—

आदिके प्रथम बंधस्थानमें तीन प्रकारके सत्तास्थान होते हैं । दूसरे बंधस्थानमें एक सत्तास्थान है । फिर आगेके तीन बंधस्थानोंमें पांच पांच सत्तास्थान हैं । फिर आगे पांच बंधवाले छट्ठे एक बंधस्थानमें छह सत्तास्थान हैं । इसके आगेके चार बंधवाले सातवें एक बंधस्थानमें सात सत्तास्थान हैं । इससे आगेके आठवें आदि बंधस्थानोंमें सत्तास्थान चार चार है ॥ ५६ ॥

ये मोहके बंधस्थानोंमें सामान्य रूपसे सत्ताके स्थान बताये हैं उसका यंत्र नीचे दिया है ।

बंध स्थान—	२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१	०
सत्ताके प्रकार—	३	१	५	५	५	६	७	४	४	४	४

इन स्थानोंका अब खुलासा करते हैं ।—

आदिके अर्थात् बाईस प्रकृतिवाले प्रथम बंधस्थानमें आदिके तीन सत्तास्थान हैं—२८, २७, २६ । इसका खुलासा ४४ वें श्लोकमें पूर्वमें किया है । दूसरे २१ वाले द्वितीय बंधस्थानमें सत्तास्थान एक अट्ठाईस प्रकृतिका है । इससे आगेके तीन बंधस्थान १७ का, १३ का, ९ का—ये तीन हैं । इन तीनोंमें पांच पांच सत्तास्थान रहते हैं । वे इस प्रकार कि एक तो सर्वो प्रकृतिका, दूसरा चार अधिक बीस—२४ का, तीसरा तीन अधिक बीस—२३ का, चौथा दो अधिक बीस—२२ का, अधिक बीस—२१ का—ये पांच सत्तास्थान हैं । ५७ ।

सत्रह प्रकृतिका बंधस्थान तीसरे चौथे गुणस्थानमें होता है । १३ प्रकृतिका बंधस्थान पांचवें गुणस्थानमें होता है और

एषाष्टचतुरेकाग्रा त्रिद्व्येकाग्रा मता दश । पंचाग्राणि परे तानि चत्वार्येव ततः परम् ॥ ५८ ॥

---

९ प्रकृतिका बंधस्थान छट्ठे सातवें आठवें–इन तीन गुणस्थानोंमें पाया जाता है । और ९ प्रकृति वाले बंधस्थानमें सत्ताके स्थान २८, २४, २३, २२, २१–ये पाच बताये हैं । अर्थात् आठवें गुणस्थानमें भी अट्ठाईस प्रकृति पर्यंत मोहप्रकृतियोंकी सत्ता रहती है । और आगे मोहके बंधरहित गुणस्थानमें भी २८ की सत्ता आगे बताते हैं। मोहका बंध ग्यारहवें गुणस्थानमें नहीं होता इसलिये औपशमिक सम्यग्दर्शनको लेकर जो उपशम श्रेणीपर चढता है वह ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत चढ कर भी मोहकी सत्ताको अंशमात्र भी कम नहीं कर पाता है–क्योंकि इस ग्यारहवें गुणस्थानमें अथवा बंधशून्य स्थानमें चार प्रकारके सत्तास्थान जो बताये हैं उन चार सत्तास्थानोंमेंसे पहिला स्थान २८ मोह प्रकृतिका है । ऐसा तात्पर्य निकलता है । ५७ ।

पांच प्रकृतियोंका जहां बंध होता है वह नौवां गुणस्थान है। उसमें सत्ताके स्थान कौनसे होते हैं वह आगे बताते हैं ।–

इसमें सत्ताके सर्व छह स्थान हैं । 'एषा' अर्थात् वीस संख्या । इस वीसमें आठ, चार, एक इन तीन संख्याओंको क्रमसे जोडें तो २८, २४, २१–ये तीन स्थान निकल आते हैं । फिर आगे दश संख्यामें क्रमसे ३, २, १, संख्याको जोडनेसे १३, १२, ११—ये तीन स्थान निकल आते हैं । ये ही छह सत्त्वस्थान पाचके बंधवाले एक बंधस्थानमें समझना । फिर आगेके चार बंधवाले एक बन्धस्थानमें सर्व सत्तास्थान सात हैं । उनमेंसे छह तो २८, २४, २१, १३, १२, ११ के ऊपर बताये हुए ही छह हैं । और एक पाच प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान अधिक है । इस प्रकार यहा सर्व सात स्थान सत्ताके होजाते हैं ।

इसके आगे फिर बन्धस्थान चार रह जाते हैं । ३ का, २ का, १ का, तथा बंधशून्य अंतका चौथा । इन चारो ही बंधस्थानोंमें प्रत्येकमें सत्तास्थान चार चार हैं । वे किस प्रकार चार चार हैं सो आगेके श्लोकमें बताते हैं ॥ ५८ ॥

प्रत्येक त्रिंशतिर्युक्ता तत्राष्टचतुरेककैः । बंधकाबंधकेऽग्रे चतुस्त्रिद्व्येककाः परे ॥ ५९ ॥

द्वाविंशतिबंधके सत्तास्थानानि २८ । २७ । २६ । एकविंशतिबंधके २८ । सप्तदशत्रयोदशनवबंधकेषु २८ । २४ । २३ । २२ । २१ । पंचबंधके २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ । चतुर्बंधके २८ । २४ । २१ । १३ । १२।११।५। त्रिबंधके २८।२४।२१।४। द्विबंधके २८।२४।२१।३। एकबंधके २८।२४।२१।२। अबंधके २८।२४।२१।१।

इन अतके चारो बधस्थानोंमें जो चार चार सत्तास्थान हैं वे इस प्रकार हैं कि आठ अधिक वीसका (२८ का) प्रथम स्थान, चार अधिक वीसका (२४ का) दूसरा स्थान, और एक अधिक वीसका (२१ का) तीसरा स्थान ये तीन स्थान चारो बंधस्थानोंमें समान हैं । और चौथा सत्त्वस्थान चारो बधस्थानोंके साथमें जुदा जुदा है । तीन बधवाले स्थानमें चौथा सत्त्वस्थान चार प्रकृतिका है । दो बंधवाले बधस्थानमें चौथा सत्त्वस्थान तीनका है । एक बधवाले बधस्थानमें दोका सत्त्वस्थान चौथा सत्वस्थान है । बधरहित जो बंधस्थान अर्थात्-अबध स्थान है उसके साथमें चौथा सत्त्वस्थान एक प्रकृतिका है । यह सर्व क्षपक श्रेणीवालेके समय होता है । एकका बधस्थान क्षपक श्रेणीवाले नौवें गुणस्थानके अतमें होता है वहापर सत्ता दो सज्वलन मोहकी रहती है । वहापर अतमें माया तथा लोभ सज्वलनकी सत्ता रहकर माया सज्वलनकी सत्ता व्युच्छिन्न होती है । इसलिये दशवेंमें केवल एक लोभ सज्वलनकी सत्ता रह जाती है, और बध रुक जाता है । ५९ ।

बाईसके एक बंधस्थानमें सत्ताके स्थान २८ । २७ । २६ । इक्कीसके बधस्थानमें सत्तास्थान २८ का एक । सत्रहके, तेरहके, नौके बधस्थान तीनमें २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ये पाच सत्तास्थान हैं । पाचके बधस्थानमें २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ ये छह सत्तास्थान हैं । चारके बधस्थानमें २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ ये सात सत्तास्थान हैं । तीनके बधस्थान एकमें २८ । २४ । २१ । ४ ।— ये चार सत्तास्थान हैं । दो के बधस्थान एकमें २८।२४।२१।३।—ये चार सत्त्वस्थान हैं । एकके बधस्थानमें २८।२४।२१।२।—ये चार सत्तास्थान हैं । बधरहित स्थानमें २८।२४।२१।१।—ये चार सत्ता स्थान हैं ।

चौवीस आदि प्रकृतियोंके स्थान कैसे बनते हैं वह विशेष आगे दिखाते हैं।

प्रथमका सत्तास्थान २८ प्रकृतिका है। उस प्रथम स्थानमेंसे अनतानुबंधीको कम करदेनेसे चार संख्या कम हो जाती है इसलिये २४ प्रकृतिका स्थान चौथा बन जाता है। इनमेंसे मिथ्यात्वके हटनेसे २३ का सत्त्वस्थान होजाता है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी सत्ता न रहे तो २२ प्रकृतिका सत्वस्थान हो जाता है। मिश्रमोहनीयके भी न रहनेपर २१ प्रकृतिका सत्वस्थान हो जाता है। यह सत्ताका स्थान क्षपकश्रेणीमें नौवें गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यंत संभव है। क्षपकश्रेणीवाले अनिवृत्तिकरणके दूसरे भागमें अप्रत्याख्यानावरणकी चार प्रकृति तथा प्रत्याख्यानावरणकी चार प्रकृति—ये आठ क्रोधादि कषाय प्रकृति सत्तासे विच्छिन्न होती हैं इसलिये २१ प्रकृतिमें आठकी सत्ता कम होजानेपर १३ मोह प्रकृतिकी सत्ताका स्थान क्षपक अनिवृत्तिकरणके तीसरे भागमें मिलता है। अनिवृत्तिकरणके तीसरे भागमें नपुसक वेदकी सत्ताका अभाव होजाता है इसलिये चौथे भागमें १२ प्रकृतिका सत्तास्थान है। अनिवृत्तिकरणके चौथे भागमें स्त्री वेदकी विच्छित्ति होती है इसलिये पाचवें भागमें ११ प्रकृतिकी सत्ताका स्थान रहता है। फिर पाचवें भागमें हास्यादि छह नोकषायोंका एक साथ विच्छेद हो जाता है, तब छट्ठे भागमें ग्यारहमेंसे छह प्रकृति घट जानेसे ५ प्रकृतिका सत्तास्थान होजाता है। अनिवृत्तिकरणके छट्ठे भागमें पुरुषवेदकी सत्ताका विच्छेद होता है, तब सातवें भागमें ४ प्रकृतिका सत्त्वस्थान रहजाता है। फिर सातवें भागमें संज्वलन क्रोधकी सत्तामेंसे विच्छित्ति होती है, तब आठवें भागमें ३ प्रकृतिकी सत्ताका स्थान रहता है। आठवें भागमें मान सज्वलनकी सत्ताका विच्छेद हो जाता है; तब नौवें भागमें २ प्रकृतिका सत्त्वस्थान रह जाता है। फिर अनिवृत्तिके नौवें—अंतिम भागमें सज्वलन माया कषायका भी सत्तामेंसे विच्छेद हो जाता है इसलिये दशवें गुणस्थानमें मोहकी १ प्रकृतिका सत्त्वस्थान रह जाता है। दशवें गुणस्थानके आगे मोहकी सत्ता क्षपक श्रेणीवालेके सर्वथा ही नहीं रहती है। और उपशमश्रेणीवाले जीवके इकीसके स्थानसे कम सत्ताके स्थान नहीं पाये जाते हैं। क्योंकि आगे आठ कषायादिके नाश होजानेपर जो तेरह आदि प्रकृतिरूप सत्तास्थान हैं वे क्षपक श्रेणीवालेके ही संभव होते हैं।

इस प्रकार मोहके बंधोदयसत्ताके स्थान तथा भंग समाप्त हुए।

नामकर्म कथ्यते—

दश स्थानानि वधेऽत्र मोहनीये नवोदये । सत्त्वे पचदशाख्याय कथ्यन्ते नामकर्मणि ॥ ६० ॥

त्रिकपचषडष्टाग्रा नवकाग्रा दशाधिका । एकादशाधिका ज्ञेया विंशतिर्नाम्नि चैककम् ॥ ६१ ॥

नामनि वधस्थानान्याह—२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ।

एक पचं त्रयं पच श्वभ्रतिर्यङ्नृनाकिनाम् । क्रमतो गतियुक्तानि वधस्थानानि नामनि ॥ ६२ ॥
१ ५ ३ ५

अब नाम कर्मके बंध–उदय–सत्त्वको क्रमसे कहते हैं ।—

मोहनीयमें बधके दश स्थान बताये और उदयमें नौ स्थान बताये हैं । एव सत्ताके पंद्रह स्थान बताये हैं । तथा परस्परमें सबध जोडकर सयोगी भग भी बताये हैं । अब नामकर्मोंमें बधादि भेदोंको बताते हैं । ६० ।

नामकर्मके बधस्थान सर्व आठ बताये हैं । एक तीन अधिक वीस (२३) का स्थान है । दूसरा पांच अधिक वीस अर्थात् पच्चीसका स्थान है । तीसरा एक स्थान छह अधिक वीस अर्थात छव्वीसका है । चौथा एक स्थान आठ अधिक वीस (अट्ठाईस) का है । पांचवा एक स्थान नौ अधिक वीस (२९) का है । छट्ठा एक स्थान दश अधिक वीस (३०) का है । सातवां एक स्थान ग्यारह अधिक वीस (३१) का है । और एक आठवा नामकर्मका बंधस्थान एक प्रकृतिका है । इस प्रकार–२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।—ये आठ नामके बंधस्थान हैं । ६१ ।

क्रमसे इन स्थानोंमेंसे नरकगतिके साथ एक स्थान है, तिर्यंच गतिके साथ पाच स्थान हैं । मनुष्यगति कर्मके साथ तीन स्थान हैं । देवगति नामकर्म वध होनेके साथमें पाच स्थान हैं । इस प्रकार जुदी जुदी गतियोंमें नामके ये संभव स्थान हैं । ६२ ।

हुंडं श्वभ्रद्वय निर्मितकार्मण सुभगास्थिरे । अयशोऽसन्नभोरीतिस्तैजस दुःस्वराशुभे ॥ ६३ ॥
त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् । पचेन्द्रियमनादेय द्वय वैक्रियिकाद्वयम् ॥ ६४ ॥
इत्यष्टाविंशतिस्थानमेक मिथ्यात्ववासिताः । सश्वभ्रगतिपचाक्षपूर्णं बध्नति जन्तवः ॥ ६५ ।

२८। स्थान १। भंगः १। नरकगत्या सह वृत्तिविरोधादेकाक्षविकलाक्षजातिसंहननानि नात्र बध्यन्ते ।
एकत्रिंशद्वियुक्तैकद्विकपंचषडष्टकैः । पंच स्थानानि जायते तिर्यग्गत्यामिति स्फुटम् ॥ ६६ ॥

३० । २९ । २६ । २५ । २३ ।

नरक गतिके साथमें जो एक बंधस्थान है वह २८ प्रकृतिका है । उसमें कौनसी प्रकृति हैं यह बताते हैं ।—

हुडक संस्थान, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी—ये दो, निर्माण, कार्मण, सुभग, अस्थिर, अयश.कीर्ति, अप्रशस्त विहायोगति, तैजस शरीर, दु स्वर, अशुभ, त्रस बादर पर्याप्ति प्रत्येकशरीर—ये चार प्रकृति, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास—ये अगुरुलघ्वादि चार प्रकृति, वर्ण गध रस स्पर्श—ये वर्णादि चार प्रकृति, पंचेंद्रियत्वजाति, अनादेय, वैक्रियिकशरीर वैक्रियिक शरीरागोपांग—ये वैक्रियिकद्वय—यह अट्ठाईस प्रकृतियोंका जो एक बंधस्थान है उसको पर्याप्तक, पचेंद्रिय तथा नरगति—इन तीन प्रकृतियोंके बंधके साथमें अविनाभावी बनाकर मिथ्यादृष्टि जीव बाधते हैं । ६३–६५ ।

यह २८ का एक स्थान है । इसका भंग १ है । नरकगति-कर्मके साथ एकेंद्रिय, विकल तीन—ये चार जाति, और सर्व संहनन—ये प्रकृति नहीं बधती हैं । नरकगतिके साथमें इनका रहना नहीं होता यही इनके न बधनेका हेतु है ।

तिर्यंच गतिके बंधवालेके पांच स्थान बताये हैं उन्हें दिखाते हैं ।—

एक, दो, पांच, छह, आठ-इन पाच प्रकारकी सख्याओंसे हीन इकतीस सख्या अर्थात् ३०, २९, २६, २५, २३—ये क्रमसे संख्या होती हैं । ये ही पांच स्थान नामकर्मके बधके तिर्यंच गतिमें होते है । ६६ ।

एक संस्थानषट्कस्य षट्कस्यैकं च संहतेः । षण्णां स्थिरादियुग्मानामेकैकं कर्म तैजसम् ॥ ६७ ॥
नभोगतियुगस्यैकं निर्मिदौदारिकद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ ६८ ॥
तिर्यग्द्वितयमुद्योत पंचाक्ष त्रिंशदादिमा । पर्याप्तोद्योतपंचाक्ष–तिर्यग्गतिसमन्विता ॥ ६९ ॥
मिथ्यादृष्टिभिरेषात्र बध्यते शासनैरपि । द्वितीया त्रिंशदेषैव व्यन्त्यसंस्थानसंहतिः ॥ ७० ॥

तत्र प्रथमत्रिंशति संस्थानषट्कसंहननषट्कनभोगतियुग्मस्थिरादियुग्मषट्कानां–६।६।२।२।२।२।२।२।२– परस्पराभ्यासे भंगाः ४६०८ । द्वितीयत्रिंशतो भंगाः ३२०० तेत्र पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते ।

इन पांच स्थानोंमेंसे पहिला स्थान ३० प्रकृतिका हैं। वे तीस प्रकृति इस प्रकार हैं। छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान नाम कर्म, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, स्थिरादि छह युगलरूप नामकर्म हैं उनमेंसे एक एक करके छह प्रकृति, तैजस, कार्मण, प्रशस्त अप्रशस्त–दो विहायोगति हैं उनमेंसे एक कोई विहायोगति कर्म, निर्माण, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग–ये दो प्रकृति, वर्णादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, त्रसादि चार, तिर्यंगति तिर्यंगत्यानुपूर्वी–ये दो, उद्योत, पंचेंद्रिय जाति नाम कर्म–ये तीस प्रकृति हुईं। इन तीस नाम प्रकृतियोंको पर्याप्त, उद्योत, पंचेंद्रिय जाति तथा तिर्यंगतिको बांधनेवाला मिथ्यादृष्टि बांधता है। सासादनवाला भी इन तीसको ही बांधता है परंतु अंतके संस्थानको तथा अंतके संहननको सासादनवाला नहीं बांधता इसलिये यह दूसरी तीसी है। ६७–७०।

स्थिरादि छह युगल इस प्रकार हैं– १ स्थिर अस्थिर, २ शुभ अशुभ, ३ सुभग दुर्भग, ४ सुस्वर दुःस्वर, ५ आ-देय अनादेय, ६ यशःकीर्ति अयशःकीर्ति। इन छह युगलोंमेंसे एक एक कर्मको बांधते हुए दूसरे छह कर्म बंधसे छूट जाते हैं। और विहायोगतिके युगलमेंसे भी किसी एक एकका एक जीवके एक समयमें बंध होता है, दूसरोंका बंध नहीं होता है। इस प्रकार इन सात युगलोंके परस्परमें गुणा होकर तीसके उत्तर भंग निकलते हैं। इसी प्रकार छह संहनन और छह संस्थानोंमेंसे भी एक समयमें एक जीवके किसी एक एक प्रकृतिका बंध होता है, उस समय शेष पांच पांच प्रकृति छूट जाती हैं। और बदल बदल कर बंधको गिनें तो संस्थान छहके कारण तथा संहनन छहके कारण छह छहको परस्परमें गुणा करनेसे छत्तीस उत्तर भंग तीस-के हो जाते हैं। इस प्रकार ६ × ६ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ = ४६०८ भंग परस्पर गुणित करनेसे

हुडमौदारिकद्वन्द्वं तेजोऽसम्प्राप्तदुर्भगे । त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् ॥ ७१ ॥
यशःस्थिरशुभद्वन्द्वत्रितयैकतरत्रयम् । निर्मिद्विकलजात्येकमुद्योतासन्नमोगती ॥ ७२ ॥
तिर्यग्द्वयमनादेय कार्मण दु स्वर त्विमाम् । तृतीयां त्रिंशत मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति दुष्टधी ॥ ७३ ॥
विकलेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्गतिभिरन्विताम् । अत्रान्योन्याहतैर्भंगा जातित्रययुगत्रये ॥ ७४ ॥
सस्थान विकलाक्षाणां हुडं भवति सर्वदा । जातिस्वभावतस्तेषां दु स्वर बधपाकयोः ॥ ७५ ॥

३ । २ । २ । २ । भगा २४ ।

सम्थान संहनन पांच पांच ही हैं । इसलिये भग ३२०० सिद्ध होते हैं । दूसरी तीसीको जो सासादनवाला बांधता है उसमें ये ऊपरके भगोंमें अंतर्भूत हैं इसलिये पुनरुक्त होनेके कारण जुदे नहीं गिने जाते हैं । हैं ।

तीसरे प्रकारकी तीस नामकर्मप्रकृतियोंको बांधनेका स्वरूप बताते हैं । —

हुडक सस्थान, औदारिक द्वय, तैजस, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, दुर्भग, त्रसादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, यश कीर्ति अथवा अयश कीर्ति एक, स्थिर अथवा अस्थिर एक, शुभ अथवा अशुभ एक, निर्माण, विकल तीन जातियोंमेंसे कोई एक जाति, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, तिर्यगद्विद्वय, अनादेय, कार्मणशरीर, दु स्वर—इन तीसरी प्रकारकी तीस प्रकृतियोंको वह दुष्ट बुद्धिका मिथ्यादृष्टि बांधता है जो विकल त्रय तथा पर्याप्ति, तिर्यगगति—इन कर्मोंको बांधनेवाला है ।

इस भेदमें तीन विकल जातिकर्म ऐसे हैं जो उनमेंसे किसीके प्रथम, किसीके दूसरा, किसीके तीसरा—ऐसे एक एकका ही बंध होता है । एक साथ तीनोंका बध नहीं होता । और तीसकी सख्या भी एक एक जातिके जोडनेसे ही होती है । इसलिये इन तीन जातिकर्मोंके द्वारा तीसके तीन भग हो जाते हैं । एव तीन युगलकर्म भी ऐसे हैं कि उनमेंसे एक एकका बध होता है इसलिये फिर तीनको तीन बार दो दोसे गुणा करनेपर २४ भग हो जाते हैं । (३×२×२×२=२४) । ७१–७४ ।

विकलेंद्रिय तीनो जातियोंके साथ संस्थान एक हुडक ही रहता है यह इन पर्यायोंका जन्मजात स्वभाव है । और बध भी उनके दु स्वर कर्मका ही होता है तथा उदय भी दु स्वर कर्मका ही है । यह भी उनका जन्मस्वभाव है । इसलिये भग चौवीस ही होते हैं । सस्थान प्रकृतियोंकी दु स्वरकी युगल प्रकृतिसे गुणा होकर अधिक भग नहीं होते हैं । ७५ ।

यथेति त्रिंशतस्तिस्र एकोनत्रिंशतस्तथा । पर भेदोऽयमेतासु यदुद्योतो न वध्यते ॥ ७६ ॥

४६८८ । २४ एते भगा राशौ गृह्यन्ते । शासनस्य ३२०० एते पूर्वोक्ता न गृह्यन्ते ।

प्रत्येकानादेये वर्णागुरुलघुचतुष्टयद्वितयम् । तिर्यग्द्वयमेकाक्षां तैजसमौदारिकं पूर्णम् ॥ ७७ ॥

स्थिरशुभयशोयुगानामेकैकं दुर्भगाद्वय स्थूलम् । स्थावरमुद्योतातपयोरेक कार्मण हुडम् ॥ ७८ ॥

निर्माण षड्विंशतिरेतां बन्धाति वृद्धमिथ्यात्व । पूर्णैकेन्द्रियतिर्यग्गतिबादरसंयुतां जीव ॥ ७९ ॥

अब उन्तीसका स्थान बताते हैं ।—

जैसे तीस प्रकृतियोंका स्थान है वैसे ही एक घाट कर देनेसे उन्तीस प्रकृतिका स्थान बनता है । तीसके तीन स्थानोंमें जो प्रकृति हैं वे ही उन्तीसके स्थानोंमें हैं, केवल एक उद्योत प्रकृति घट जाती है । तीसमें स्थान तीन हैं वैसे ही उन्तीसमें भी तीन हैं । ७६ ।

इस उन्तीसके भेदमें भी उत्तर भंग ४६८८ होते हैं । विकलेंद्रिय वाले ऊपर २४ भग बताये हैं । सासादनकी तीसके भग ३२०० होते हैं वे ऊपर बताये हैं । वे यहा ग्रहण नहीं किये जाते, क्योंकि वे पुनरुक्त हैं—४६८८ भगोंमें गर्भित हो जाते हैं ।

अब तिर्यंच गतिकी अविनाभाविनी छब्बीस प्रकृतिके स्थानको दिखाते हैं ।—

प्रत्येक, अनादेय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, तिर्यगतिद्वय, एकेंद्रिय, तैजस, औदारिक शरीर एक, पर्याप्ति, स्थिर अस्थिरमेंसे एक, शुभ अशुभमेंसे एक, यश कीर्ति अयश कीर्ति—इन दोमेंसे एक, दुर्भग, बादर, स्थावर, उद्योत तथा आतपमेंसे कोई एक, कार्मण, हुडक संस्थान, निर्माण—ये छब्बीस प्रकृति हैं । इन्हे मिथ्यात्व भावोंकी प्रचुरता रखनेवाला वह बांधता है जो पर्याप्ति, एकेंद्रिय, तिर्यगति, बादर—इन चार प्रकृतियोंको बांधनेवाला है । अर्थात् जो इन बादरादि चार प्रकृतियोंका बांधनेवाला है वही इनके साथमें बाईस और भी प्रकृतियोंको बाधता है जो ऊपर बताई हैं । ७७—७९ ।

॥४००॥

एकेंद्रियजीवानामष्टांगाभावतो यतो नास्ति । अंगोपांग हुंडं संस्थानं जायते चैकम् ॥ ८० ॥

तस्मादातपोद्योतस्थिरास्थिरशुभाशुभयशोऽयशोयुगानां २ । २ । २ । २ । परस्पराभ्यासे भंगाः १६ । १ उद्योतातपहीनां षड्विंशतिमेकतरयुता पूर्वाम् । प्रत्येकसूक्ष्मयुगयोः स्वीकुरुते पंचविंशति पूर्वः ॥ ८१ ॥

मिथ्यादृष्टिः ।

एकेंद्रिय जीवोंके शरीरमें आठ अगोपाग नहीं होते इसलिये एकेंद्रिय जाति कर्मके साथ औदारिकद्वयका बंध न बताकर केवल औदारिकका बध बताया है। इन एकेंद्रिय जीवोंके सस्थान भी विकल्के समान एक हुडक ही रहता है ॥८०॥

इस छव्वीसके भेदमें एक आतप उद्योतका, दूसरा स्थिर-अस्थिरका, तीसरा शुभ-अशुभका, चौथा यशःकीर्ति-अयश-कीर्तिका—ये चार युगल ऐसे हैं जिनमेंसे एक समयमें एक एकका ही बदल बदलकर बंध होता है इस कारण चार युगलोंको परस्पर गुणनेसे सोलह भग हो जाते हैं।

अब तिर्यंच गतिके पच्चीस नामकर्मके बंधभेदको बताते हैं।—

ऊपर छव्वीस प्रकृतियोंका बधस्थान बताया है उसमें उद्योत—आतपमेंसे एकका अवश्य बध होना बताया है। परतु पच्चीसके भेदमें वह उद्योत—आतपमेंकी कोई भी प्रकृति बधको प्राप्त नहीं होती है। इसलिये पच्चीसका यह स्थान होजाता है। और दूसरी विशेष बात यहापर यह है कि ऊपरकी छव्वीसमें प्रत्येक एक प्रकृति और बादर एक प्रकृति—ऐसे दो प्रकृति गिनाई हैं, परंतु पच्चीसमें इन दोनोंके युगलोंमेंसे कोई भी एक एक बंधको प्राप्त होती है। अर्थात् प्रत्येक अथवा साधारणका, और सूक्ष्म अथवा बादरका—इस प्रकार बंध होता है। यहांपर एक उद्योतातपका युगल कम हुआ, परतु दो युगल बढगये इसलिये भग अधिक हो जाते हैं। और 'पूर्व' अर्थात् मिथ्यादृष्टि ही इस भेदको भी बांधता है। ८१।

भावनादीशानांताः सूक्ष्मं साधारणं न बध्नन्ति । अवरुध्यायशस्तस्मात्स्थिरयुग्मं ताड्यते शुभयुगेन ॥ ८२ ॥
भगाः ४ ।
स्थूलप्रत्येकस्थिरशुभयुग्मानां परस्पराभ्यासे । अयशःकीर्त्तिं श्रित्वा षोडश भंगाः प्रजायंते ॥ ८३ ॥
चतुर्णां युगानां २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यासे भंगाः १६ । द्वये २० ।
अयशःकीर्त्युपघाते तेजोऽगुरुलघु हुंडास्थिरे त्रसापूर्णे । वर्णचतुष्क स्थूल निर्मितिर्यग्द्वयमनादेयम् ॥ ८४ ॥

भवनवासीसे लेकर ईशान स्वर्गपर्यंतके देव सूक्ष्म तथा साधारण इन दो प्रकृतियोंको नहीं बांधते हैं । अयशःकीर्तिका भी बंध नहीं होता है इसलिये केवल स्थिरयुग्मको शुभयुग्मके साथ गुणित करदेना चाहिये । इससे भग चार होजाते हैं ॥ ८२ ॥

बादरयुगल, प्रत्येकयुगल, स्थिरयुगल, शुभयुगल–इन चार युगलोंकी दो दो सख्याको चार वार रखकर परस्पर गुणित कर दिया जाय तो उक्त पच्चीस प्रकृतिवाले स्थानके सोलह भंग हो जाते हैं । ऊपर जो चार भंग बताये हैं उनमें अयश·कीर्ति प्रकृतिको छोडकर केवल यश कीर्ति जोडी गई थी । और ये सोलह भंग अयशःकीर्तिको साथमें लेकर होते हैं ।

भावार्थ, भवनादि ईशान पर्यंतके देव पच्चीस प्रकृतियोंको बाधते हैं वे सूक्ष्म तथा साधारण–इन दो को नहीं बाधते और अयशःकीर्तिको भी नहीं बांधते । इसलिये यहा स्थिर और शुभके युगलमेंसे ही एकतर दो दो प्रकृति बांधी जाती हैं और इसीलिये भंग भी दो युगलोंको गुणित करके चार बताये हैं । और जहां स्थिरादि चार युगलोंमेंसे एक एकतर चारका बंध होता है वहापर यश कीर्ति नहीं बांधी जाती । इसलिये वहांपर चार युगलके परस्पर गुणित करनेसे १६ भंग बताये हैं । इस सोलहके साथ दो युगलके ऊपरवाले चार भगोंको भी जोडदें तो २० भग हो जाते हैं । ८३ ।

अब पच्चीस प्रकृतियोंके एक जुदे प्रकारको बताते हैं ।—

अयश कीर्ति, उपघात, तैजस, अगुरुलघु, हुडक संस्थान अस्थिर, त्रस, अपर्याप्त, वर्णादि चार, बादर, निर्माण, तिर्यगति द्वय, अनादेय, प्रत्येक, असंप्रासासृपाटिका संहनन, दुर्भग, औदारिकद्वय, और कर्म अर्थात् कार्मण प्रकृति (कार्मण शरीर), विक-

प्रत्येकमसंप्राप्तं दुर्भगमौदारिकद्वयं परं कर्म । विकलेन्द्रियपंचेन्द्रियजात्येकतरमशुभं ज्ञेयम् ॥ ८५ ॥
साऽपूर्णत्रसतिर्यग्गतिमेता पंचविंशतिं जीवः । बध्नाति वामदृष्टिर्भंगचतुष्टययुतामन्याम् ॥ ८६ ॥

यतोऽत्र परघातोच्छ्वासद्विस्वरविहायोगतीनामपर्याप्तेन सह बन्धो नास्ति विरोधादपर्याप्तकाले तेषामुदयाभावाच्च । ततश्चत्वारो जातिभंगाः ४ ।

त्रयोविंशतिरेकाक्षं तिर्यग्द्वितयनिर्मिती । दुर्भगागुरुलघ्वाह्वे तेजऔदारिकेशुभं ॥ ८७ ॥
अयश कीर्तिरेकैक स्थूलप्रत्येकयुग्मयोः । उपघातमनादेयमपर्याप्तकदुर्भगे ॥ ८८ ॥

लेंद्रिय तीन और पंचेंद्रिय एक–इन चार जातिकर्मोंमेंसे कोई एक जाति, अशुभ–ये पच्चीस प्रकृति हैं। इस दूसरे प्रकारकी पच्चीसीको वह मिथ्यादृष्टि जीव बांधता है जो अपर्याप्त, त्रस, तिर्यग्गति–इन तीन कर्मोंको बांध रहा है। इसमें भंग, चार जाति कर्मोंके क्रमसे एक एक बंध होनेके कारण चार होते हैं। वामदृष्टिका अर्थ मिथ्यादृष्टि होता है। इसमें अपर्याप्त, त्रस तथा तिर्यग्गतिका अविनाभाव बताया है, यही इस भेदमें विशेष है। ८४–८६।

यहांपर परघातका, उच्छ्वासका, दोनो स्वरका, दोनो विहायोगतिका–इन कर्मोंका बंध अपर्याप्तकर्मबंधके साथ नहीं होता। ये इस अपर्याप्तयुक्त पच्चीसीके साथ विरुद्ध प्रकृति हैं और उदय भी इनका अपर्याप्तक अवस्थामें नहीं होता है। विहायोगति युगल तथा स्वरयुगलमेंसे किसी एक एकका भी बंध त्रस तथा पर्याप्ति कर्मबंधके साथ ही होता है। यहांपर अपर्याप्तिका बंध गिनाया है इसलिये स्वर दोनो तथा दोनो विहायोगतियोंका बंध नहीं होता। उच्छ्वास और परघातका बंध स्थावरमें भी होता है परंतु वह भी पर्याप्तिबंधके साथ ही नियत है। यहांपर अपर्याप्तिका बंध बताया है इसलिये इस स्थानमें उच्छ्वास तथा परघातका भी बंध नहीं होता है। इसलिये चार जातिके कारण भंग केवल चार ही इस भेदमें हैं।

अब तेईस नाम प्रकृतियोंके स्थानको तिर्यंच गतिमें बताते हैं।–

एकेंद्रियजाति, तिर्यग्गतिद्विय, निर्माण, दुर्भग, अगुरुलघु, तैजस, औदारिक एक, अशुभ, अयश कीर्ति, बादर तथा प्रत्येक–इन दोके दो युगलोंमेंसे एक एक, उपघात, अनादेय, अपर्याप्तक, दुर्भग, वर्णादि चार, हुंडक संस्थान, स्थावर, कार्मण—

वर्णचतुष्कं हुंडं स्थावरमथ कार्मणं समिथ्यात्वैः । तिर्यग्गत्येकाक्षाऽपूर्णयुता बध्यते दीनैः ॥ ८९ ॥

अत्र संहननबंधो नास्ति एकेन्द्रियेषु संहननोदयाभावात् । अत्र बादरप्रत्येकयुग्मयोरन्योन्याभ्यासे चत्वारो भंगाः ४ ।

इति तिर्यग्गतिगताः सर्वे भंगाः । ९३०८ ।

विंशतिर्दशभिर्युक्ता नवभिः पंचभिः क्रमात् । बंधस्थानानि जायते नृगत्यां त्रीणि नामनि ॥ ९० ॥

३० । २९ । २५ ।

त्रिंशदेयात्र पंचाक्ष नृद्वयौदारिकद्वये । सुस्वरं सुभगादेये पूर्वे संस्थानसंहती ॥ ९१ ॥

इन तेईस प्रकृतियोंको दीन मिथ्यादृष्टि वे जीव बांधते हैं जिनके तिर्यगति, एकेंद्रिय, अपर्याप्त—इन तीन कर्मोंका बंध हो रहा हो । अर्थात् इस तेईसके बंधमें तिर्यगति तथा एकेंद्रिय और अपर्याप्त—ये तीन प्रकृति मुख्य हैं । इन तीनको ही साथ लेकर यह तेईसी बांधी जाती है । ८७—८९ ।

यहांपर संहननका बंध नहीं है । एकेंद्रियोंमें संहननका उदय होता नहीं है, यही संहननका बंध न होनेका कारण है । औदारिकांगोपांग कर्मका भी यहां बंध नहीं होता है । एकेंद्रियके अंगोपांग भी नहीं होते हैं । बादर तथा प्रत्येकके युगलोंमेंसे एक एकका बंध होता है इसलिये दो युगलोंके परस्पर गुणनसे भंग चार यहांपर होते हैं ।

इस प्रकार तिर्यगतिमें नामकर्मके बंधके सर्व भंग ९३०८ हैं ।

अब मनुष्यगतिमें नामकर्मके बंधस्थानोंको दिखाते हैं ।—

मनुष्यगतिमें अर्थात् जिस जीवके जब मनुष्यगतिका बंध होता है उस समय उस जीवके, दश अधिक वीस—अर्थात् ३० प्रकृतिका एक बंधस्थान संभव है । दूसरा नौ अधिक वीस अर्थात् उनतीस प्रकृतिका बंधस्थान संभव है। तीसरा पांच अधिक वीस अर्थात् पच्चीस प्रकृतिका बंधस्थान संभव है । ऐसे मनुष्यगतिमें सर्व तीन बंधस्थान हो सकते हैं । (३०।२९।२५) ।९०।

तीस प्रकृतिका बंधस्थान आगे दिखाते हैं ।— पंचेंद्रिय जाति, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक शरीर द्वय, सुस्वर, सुभग, आदेय, प्रथम संस्थान—समचतुरस्र संस्थान, प्रथम संहनन—वज्रर्षभनाराच संहनन, शुभ—स्थिर—यशःकीर्ति—इन तीनके युगलोंमेंसे

शुभस्थिरयशोयुग्मेष्वेकैकं सन्नभोगतिः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ ९२ ॥

तीर्थकृत्कार्मणं तेजो निर्मिद्बध्नात्यसयतः । एतां नृगतिपचाक्षपूर्णतीर्थकरैर्युताम् ॥ ९३ ॥ (३०) ।

अत्र दुर्भगदुःस्वरानादेयानां तीर्थकरसम्यक्त्वाभ्यां सह विरोधाच्च बंधः सुभगसुस्वरादेयानामेव बधो यतः, ततस्त्रयाणां युगानां २ । २ । २ । परस्पराभ्यासे भंगाः ८ ।

मानवगत्यादियुतामेकोनत्रिंशत नियध्नीतः । हीनां त्रिंशतमेतां तीर्थकृता मिश्रसद्दृष्टी ॥ ९४ ॥ (२९) ।

अत्राष्टौ भंगाः पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते ८ ।

कोई एक एक—ऐसे तीन प्रकृति, प्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, त्रसादि चार, तीर्थंकरप्रकृति, तैजस, कार्मण, निर्माण—ये तीस प्रकृति हैं । इनका बंध असयत—चौथे गुणस्थानवाला जीव करता है । ये तीस प्रकृति मनुष्यगति, पचेंद्रियजाति, पर्याप्ति और तीर्थंकर प्रकृति—इन चार प्रकृतियोंके साथ अविनाभाविनी हैं । अर्थात् इन तीस प्रकृतियोंमें मनुष्यगति आदि चार प्रकृति अवश्य बंधको प्राप्त होती हैं । ९१—९३ ।

दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय—इन तीन प्रकृतियोंका तीर्थंकर तथा सम्यक्त्वके साथ विरोध है इसलिये इस तीसीमें दुर्भगादि तीन प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है। केवल सुभग सुस्वर आदेय—इन तीन प्रकृतियोंका ही बंध होता है। इसलिये युगल तीन ही ऐसे शेष रहते हैं कि जिनमेंसे एक समयमें किसी एक एक-तीनका ही बंध होता है; इतर तीनका नहीं होता। वे तीन युगल—१ शुभद्वय, २ स्थिरद्वय, ३ यशःकीर्तिद्वय—ये हैं । इन तीन युगल संख्याका परस्परमें गुणा करनेसे सर्व भग इस तीसीमें आठ हो जाते हैं ।

उन्तीस प्रकृतिके स्थानको बताते हैं ।—ऊपरकी तीस प्रकृतियोंमेंसे यदि तीर्थंकरप्रकृति न बंधे तो तीसके स्थानमें उन्तीसका स्थान होजाता है । इस स्थानको मिश्र—तीसरे गुणस्थानवाला जीव अथवा सम्यग्दृष्टि-चौथे गुणस्थानवाला जीव बांधता है । इस उन्तीसके स्थानमें भी मनुष्यगति, पचेंद्रियजाति, पर्याप्तिनाम—इन तीन प्रकृतियोंके बंधकी अपेक्षा मुख्य मानी गई है । जो इन मनुष्यगत्यादि तीनको बांधता है वही जीव इन उन्तीसका बांधनेवाला है । ९४ ।

इस उन्तीसके जो भंग, तीन युगलोंके गुणा करनेसे आठ होते हैं उन्हें पुनरुक्त होनेसे जुदा नहीं गिना जाता है ।

॥४०५॥

संहतिसंस्थानानां षण्णामेकतरसंयुतामेताम् । आदेयसुस्वरसुभगद्वंद्वानामेकतरयुक्तां ॥ ९५ ॥
बध्नाति वामदृष्टिः षट्कद्वयद्युग्मषट्कोपेताम् । सगगनगतियुग्मैकामेकोनत्रिंशत जीवः ॥ ९६ ॥

अत्रैषां ६ । ६ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । परस्परवधे भंगाः ४६०८ ।

इस उन्तीसीमें जो दूसरा विशेष भेद है उसे बताते हैं और इसके भंगोंको भी बताते हैं ।—

इस उन्तीसीमें छहो संस्थान और छहो संहनन क्रमसे एक एक करके बंध होनेके योग्य माने गये हैं । आदेय, सुस्वर तथा सुभग–इन तीन प्रकृतियोंके युगलोंमेंसे एक एक किसी प्रकृतिका एक समयमें बंध होता है । पहिले जो तीस प्रकृतिका बंधस्थान बताया था उसमें ये तीन युगल नहीं लिये गये थे । इन तीनो युगलोंके आदिकी तीन प्रकृति ही ली गई थी । यहांपर इन तीनोंके युगल लिये जाते हैं । एवं, ऊपर विहायोगति केवल प्रशस्तरूप एक ही ली गई थी, किंतु यहांपर प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगतिके युगलमेंसे कोई भी एक ले ली जाती है । इस प्रकार ऊपरके तीन युगल, तथा यहाके ये चार युगल लेनेसे सात युगल इस उन्तीसीमें हो जाते हैं । इस प्रकार दो वार छह छह सख्यासे और सात वार दो दो सख्यासे इसमें परस्पर गुणा करके इसके भंग निकालने चाहिये । इस प्रकार इस दूसरी उन्तीसीकी प्रकृति समझनी चाहिये । श्लोकके गगनगति शब्दका अर्थ विहायोगति है । ९५–९६ ।

इसमें ६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८ परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छहसौ आठ भंग होते हैं ।

---

१ गगनगतिः—विहायोगति । तस्या युग्मं गगनगतियुग्मं, तस्य युग्मस्य मध्ये एका अन्यतरा गगनगतियुग्मैका । सह तयेति सगगनगतियुग्मैकाम् । इति समासो ज्ञेय ।

॥४०६॥

तृतीयामपि बध्नाति द्वितीशामिव शासनः । व्यन्त्यसंहतिसंस्थानां शेषैकतरसंयुताम् ॥ ९७ ॥

५।५।२।२।२।२।२।२।२। परस्पराभ्यासे भंगाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टत्वान्न गृह्यन्ते ।

पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा कार्मण मानुषद्वयम् । तेजो हुडमसंप्राप्त पञ्चाक्षौदारिकद्वये ॥ ९८ ॥

अपूर्णागुरुलघ्वाढ्ये स्थूल प्रत्येकदुर्भगे । उपघातमनादेयं निर्माणमयशोऽशुभम् ॥ ९९ ॥

त्रसमस्थिरकं वर्णचतुष्टयमिमामसौ । गृह्णात्यपूर्णपंचाक्षमनुष्यगतिसंयुताम् ॥ १०० ॥

तीसरे प्रकारकी भी एक उन्तीसी बंधको प्राप्त होती है उसे आगे बताते हैं ।—

तीसरी उन्तीसीको सासादन सम्यग्दृष्टि–दूसरे गुणस्थानवाला बांधता है । यह भी दूसरी उन्तीसीके समान ही है । केवल अंतर इस बातका है कि इसमें अंतके संस्थानका और अंतके संहननका बंध नहीं होता । इसलिये आदिके पांच संस्थानोंमेंसे और आदिके ही पांच संहननोंमेंसे किसी एक एकका बंध एक समयमें होता है । और शेष जो आदेयादिकी सात युगल प्रकृति हैं उनमेंसे किसी एक एकका एक समयमें बंध है–यह बात पूर्वकी दूसरी उन्तीसीके ही समान है । ९७ ।

५×५×२×२×२×२×२×२×२=इनका परस्पर गुणा करनेपर सर्व भंग ३२०० होते हैं । परंतु ये पूर्वके भंगोंमें गर्भित हैं इसलिये जुदे गिने नहीं जाते हैं ।

अब मनुष्य गतिमें जो पच्चीस नामकर्म प्रकृतिका बंधस्थान संभव है उसे आगे दिखाते हैं ।—

कार्मण, मनुष्यगतिद्वय, तैजस, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, पंचेंद्रियजाति, औदारिक शरीर द्वय, अपर्याप्त, अगुरुलघु, बादर, प्रत्येक, दुर्भग, उपघात, अनादेय, निर्माण, अयशःकीर्ति, अशुभ, त्रस, अस्थिर, वर्णादि चार–इन पच्चीस प्रकृतियोंको वह जीव ही बांधता है जिसके अपर्याप्त, पंचेंद्रियजाति, मनुष्यगति–इन तीन प्रकृतियोंका बंध होरहा हो । अर्थात् ऊपरकी पच्चीस प्रकृतियोंमें ये अपर्याप्तादि तीन प्रकृति मुख्य हैं । इन तीन प्रकृतियोंकी अविनाभाविनी शेष बाईस प्रकृति हैं । ९८–१०० ।

अत्र संक्लेशतो वध्यमानेनापर्याप्तेन सह स्थिरादीनां विशुद्धिप्रकृतीनां बंधाभावादेको भंगः १ । नृगतौ सर्वे भंगाः ४६१७ ।

इति नृगतिगताः सर्वे भंगाः समाप्ताः ।

एकद्वित्रिचतुस्त्यागे क्रमात् द्वात्रिंशतः स्फुट । चत्वारि देवगत्यां स्युरेकं निर्गति पंचकं ॥ १०१ ॥
३१ । ३० । २९ । २८ । १ ।
एकत्रिंशदिय तत्र कार्मणं त्रिदशद्वयं । पंचाक्षमाद्यसंस्थानं तेजो वैक्रियिकद्वयं ॥ १०२ ॥

यहांपर यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि अपर्याप्तताके साथ स्थिरादि विशुद्धिमूलक प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है। अपर्याप्ति कर्मका बंध होनेमें कारण संक्लेश परिणाम है। इसलिये इसके साथमें, विशुद्धिसे बंधको प्राप्त होनेवाली स्थिरादि प्रकृति बांधी नहीं जाती हैं। अत एव भंग यहां एक ही है। मनुष्यगतिमें नामके सर्व भंग ४६१७ होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यगतिके सर्व भंग समाप्त हुए।

अब देवगतिमें नाम प्रकृतियोंके बंधस्थान बताते हैं। बत्तीसकी संख्यामें क्रमसे एक, दो, तीन, चार संख्याको घटानेपर ३१, ३०, २९, २८—ये संख्याएं होती हैं। अर्थात् देवगतिमें स्थान चार हैं—३१ का, ३० का, २९ का और २८ का। और आगे एक यश कीर्ति नाम प्रकृतिका जो एक स्थान है वह गतिरहित ऊपरके जीवका है। [३१।३०।२९।२८।१] इस प्रकार ये सर्व स्थान 'पंचकं' अर्थात् पांच हुए। १०१।

अब सबसे प्रथम इकतीसके बंधस्थानको बताते हैं।—

कार्मण, देवगति द्वय, पंचेंद्रियजाति, सबसे पहिला समचतुरस्र संस्थान, तैजस, वैक्रियिक शरीर द्वय, वर्णादि चार

वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् । सुस्वरं सत्रभोरीतिः शुभमाहारकद्वयम् ॥ १०३ ॥
सुभग यश आदेय निर्मित्तीर्थकरस्थिरे । बध्यते सप्तमापूर्वैः पूर्णपचेन्द्रियान्विता ॥ १०४ ॥
देवेत्याहारकद्वन्द्वतीर्थकारित्वसयुता । सहतिर्बध्यते नात्र तस्या देवेष्वभावतः ॥ १०५ ॥
एकत्रिंशदिय त्रिंशदुक्ता तीर्थकरोनिता । बध्यते निःप्रमादेन साऽपूर्वकरणेन च ॥ १०६ ॥

अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, शुभ, आहारक शरीर द्वय अर्थात् आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, सुभग, यशःकीर्ति, आदेय, निर्माण, तीर्थकरत्व प्रकृति, स्थिर—ये इकतीस ऐसी प्रकृति हैं जिन्हे पर्याप्ति तथा पचेंद्रिय जातिके साथ, सातवें तथा आठवें ये दो गुणस्थानवर्ती जीव ही बांधते हैं। १०२—१०४।

देवगतिके साथमें आहारकद्वय तथा तीर्थंकर प्रकृति—ये तीन प्रकृति इस इकतीसीमें अविनाभाविनी हैं। किंतु इन तीनमेंसे कुछ छूट भी जाती हैं। उस समय मात्र बंध इकतीसका न रहकर कमका होजाता है उसे आगे बतानेवाले हैं। संहनन नामकर्मका बंध देवगतिकर्मके साथ नहीं होता। इसका कारण यह है कि देवोंमें संहतिका उदय नहीं है। भावार्थ, आहारक द्वय तथा तीर्थंकर प्रकृति—इन तीनका भी उदय देवगतिमें नहीं है, तो भी ये तीन प्रकृति देवगतिके साथमें भी बंधको प्राप्त होती हैं। इसका कारण यह है कि सातवें तथा आठवें गुणस्थानमें इन आहारकादि तीन प्रकृतियोंका बंध होनेकी योग्यता है किंतु इन दो गुणस्थानोंमें, गति चारमेंसे केवल देवगतिका ही बंध होता है। इसलिये इन तीन प्रकृतियोंके बंधका होना देवगतिके उदयकी सहसंभवतापर निर्भर नहीं है। किंतु इन गुणस्थानोंमें दोनो प्रकारकी प्रकृतियोंका बंध होना समयप्राप्त मात्र है। इन तीन प्रकृतियोंका उदय सदा मनुष्य गतिमें ही होता है। १०५।

इस इकतीसीका भंग एक ही है।

तीसका भेद बताते हैं।—

ऊपरकी इकतीस प्रकृतियोंमें यदि तीर्थंकर प्रकृतिका बंध न हो तो शेष सर्व उन तीसका बंध होना समझना चाहिये। इस तीसीका बंध भी अप्रमत्त अर्थात् सातवें और आठवें गुणस्थानवाले जीवद्वारा ही होता है। क्योंकि इसमें आहारकद्वय सामिल हैं इसलिये इस तीसीके बंधाधिकारी सातवें आठवें गुणस्थानवर्ती जीव ही होते हैं॥ १०६ ॥

अपूर्वाख्यानिवृत्त्याख्यसूक्ष्मलोभाह्वयास्त्रयः । एकं यशो निबध्नन्ति न परं नामकर्मणि ॥ ११० ॥
मिलितानामशेषाणां पचपंचाशता विना । चतुर्दशसहस्राणि विकल्पाः सति नामनि ॥ १११ ॥
(१३९४५) ।

गुणस्थान पर्यंत बन्धको प्राप्त होती है और इसमें स्थिर शुभ यशःकीर्ति—इन तीनके तीन युगल लेने चाहिये । अतएव इसमें भंग तीन युगलके परस्पर गुणनसे ८ हो जाते हैं । इस प्रकार देवोंमें सर्व भग १९ हो जाते हैं ।

इसके आगे अब एक नामकर्मके एक स्थानको बताते हैं ।—

अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, और सूक्ष्मलोभ—इन तीन गुणस्थानोंमें एक यशःकीर्तिका ही बन्ध होता है दूसरी नामप्रकृतिका नहीं होता । इसके आगे फिर नामकर्मका बन्ध है ही नहीं ॥ ११० ॥

अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यंत देवायुके बन्धकी समाप्ति होती है और छट्ठे भागमें नामकर्मकी प्रकृतियोंका बन्धच्छेद हो जाता है । यहांसे केवल यशःकीर्ति ही बन्धव्युच्छित्ति होनेसे बच जाती है । इस यशःकीर्तिका बन्धविच्छेद दशवें गुणस्थानके अन्तमें होता है । इसीलिये दशवें गुणस्थान पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें नामकर्मकी एक यशःकीर्तिका बंधस्थान बताया है । आठवेंमें जो यह एक प्रकृतिका बंधस्थान बताया गया है वह आठवेंके प्रारंभसे न मानकर आठवें गुणस्थानके सातवें भागसे मानना चाहिये—यह विशेष बात है । द्वितीय परिच्छेदमें २१ वें श्लोकसे बंधविच्छेदका वर्णन है उसके देखनेसे नामकर्मके इतर बंधस्थानोंकी तथा एक बन्धस्थानकी अवस्थाका ज्ञान स्पष्टतासे हो सकता है ।

नामकर्ममें सर्व बन्धस्थानोंके जो भग होते हैं वे सर्व तेरह हजार नौ सौ पैंतालीस १३९४५ हैं ॥ १११ ॥

इस प्रकार नाम कर्मके बन्धस्थान और उनके भंग समाप्त हुए ।

॥४१२॥

इससे आगे अब नामकर्मके बंधके स्थान गोमटसारके अनुसार कहेंगे। उसमें पहले नामकर्मस्थानोंके आधारभूत ४१ जीवपदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं,—

णिरया पुण्णा पणहं बादरसुहुमा तहेव पत्तेया। वियलाऽसण्णी सण्णी मणुवा पुण्णा अपुण्णा य ॥ ५१९ ॥
सामण्णतित्थकेवलि उहय समुग्घादगा य आहारा। देवावि य पज्जत्ता इदि जीवपदा हु इगिदाला ॥५२०॥जुम्मम्।
निरयाः पूर्णाः पञ्च बादरसूक्ष्माः तथैव प्रत्येकाः। विकला असंज्ञिनः संज्ञिनो मनुष्याः पूर्णा अपूर्णाश्च ॥ ५१९ ॥
सामान्यतीर्थकेवलिनौ उभयौ समुद्घातगौ च आहाराः। देवा अपि च पर्याप्ता इति जीवपदा हि एकचत्वारिंशत् ॥५२०॥युग्मम्।

अर्थः—नारकी सब पर्याप्त हैं इस कारण १ भेद, पृथिवीकाय १ जलकाय २ तेजकाय ३ वायुकाय ४ साधारणवनस्पतिकाय ५ ये पांच बादर और सूक्ष्म हैं इससे १० भेद हुए, इसी तरह प्रत्येकवनस्पतिकाय, दोइंद्री आदि ३ विकलत्रय, असज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी मनुष्य ये १७ पर्याप्त तथा अपर्याप्त हैं इस प्रकार ३४ भेद हुए। तथा सामान्यकेवली, तीर्थंकरकेवली, और दोनों ही समुद्घात करनेवाले, आहारकशरीरवाले, और देव—ये ६ पर्याप्त ही होते हैं। इसतरह १+३४+६=सब ४१ भेद जीवोंके हैं। इस कारण इनको जीवपद अर्थात् जीवस्थान कहते हैं। और ये नाम कर्मके बंधस्थानोंके निमित्तसे होते हैं, इसलिये इनको कर्मपद भी कहते हैं ॥ ५१९–५२० ॥ यहांपर कर्मके निमित्तसे ३६ ही स्थान होते हैं इस कारण कर्मपद ३६ ही हैं।

तेवीस पणवीस छव्वीस अट्ठवीसमुगतीसं। तीसेकतीसमेव एक्को बंधो दुसेढिम्हि ॥ ५२१ ॥
त्रयोविंशति पञ्चविंशति षड्विंशतिरष्टाविंशमेकोनत्रिंशत्। त्रिंशदेकत्रिंशदेवमेको बन्धो द्विश्रेण्याम् ॥ ५२१ ॥

अर्थ—नामकर्मके बंधस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, प्रकृतिरूप सात तो अपूर्व करणके छठे भागतक पाये जाते हैं और एक प्रकृतिरूप आठवां बंधस्थान दोनों श्रेणियोंमें बंधता है ॥ ५२१ ॥

आगे वे बंधस्थान किस कर्मपदसहित बंधते हैं यह बात दो गाथाओंसे कहते हैं,—

ठाणमपुण्णेण जुदं पुण्णेण य उवरि पुण्णगेणेव। तावदुगाणण्णदरेणण्णदरेणमरणिरयाणं ॥ ५२२ ॥
णिरयेण विणा तिण्हं एक्कदरेणेवमेव सुरगइणा। बंधंति विणा गइणा जीवा तज्जोगपरिणामा ॥ ५२३ ॥ जुम्मं।

स्थानमपूर्णेन युतं पूर्णेन चोपरि पूर्णकेनैव । आतापद्विकयोरन्यतरेणान्यतरेणामरनिरययो ॥ ५२२ ॥
निरयेण विना त्रयाणामेकतरेणैवमेव सुरगतिना । बध्नन्ति विना गत्या जीवा तद्योग्यपरिणामाः ॥ ५२३ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए आठ स्थानोंमें क्रमसे पहला २३ प्रकृतिरूप स्थान अपर्याप्तप्रकृतिसहित बंधता है, दूसरा स्थान पर्याप्तप्रकृति सहित 'च' शब्दसे अपर्याप्तसहित भी बंधता है। इससे आगे पर्याप्तप्रकृतिसहित ही बंधते हैं। उनमें भी २६ प्रकृतिरूप स्थान आतप—उद्योत इन दोनोंमेंसे कोई एक प्रकृतिसहित बंधता है। २८ प्रकृतिरूप स्थान देवगति और नरकगति इन दोनोंमेंसे कोई एक गति सहित बंधता है। २९ प्रकृतिरूप और ३० प्रकृतिरूप ये दो स्थान नरक गतिके विना तिर्यंच आदि ३ गतियोंमेंसे कोई एक गति सहित बंधते हैं। ३१ प्रकृतिरूप स्थान देवगतिके साथ बंधता है। और एक प्रकृतिरूप स्थान किसी गति कर्मके साथ नहीं बंधता। इस प्रकार इन स्थानोंके योग्य परिणामोंवाले जीव इन स्थानोंको बांधते हैं ॥ ५२२–५२३ ॥

पूर्वोक्त आताप और उद्योत ये दो प्रकृतियां प्रशस्त (पुण्यरूप) हैं वे किस पदके साथ बंधती हैं यह कहते हैं—

भूबादरपज्जत्तेणादावं बंधजोग्गमुज्जोवं । तेउतिगूणतिरिक्खपसत्थाण एयदरगेण ॥ ५२४ ॥
भूबादरपर्याप्तेनातापो बंधयोग्य उद्योतः । तेजस्त्रिकोनतिर्यक्प्रशस्तानामेकतमेन ॥ ५२४ ॥

अर्थ—पृथिवीकायबादरपर्याप्त सहित ही आतप प्रकृति बंधयोग्य है, और उद्योत प्रकृति तेजःकायादि तीन के विना शेष तिर्यंचसंबंधी पुण्यप्रकृतियोंमेंसे किसी एक प्रकृतिके सत्य बंधयोग्य कही है ॥ ५२४ ॥

णरगइणामरगइणा तित्थं देवेण हारमुभयं च संजदबंधट्ठाण इदरादि गईहिं णत्थित्ति ॥ ५२५ ॥
नरगत्यामरगत्या तीर्थं देवेनाहारमुभयं च । संयतबन्धस्थानमितराभिर्गतिभिः नास्तीति ॥ ५२५ ॥

अर्थ—तीर्थंकरप्रकृतिको देव और नारक असंयत तो मनुष्यगति सहित बांधते हैं, और असंयतादि चार गुणस्थानवाले मनुष्य देवगतिसहित ही बांधते हैं, क्योंकि संयतके योग्य बंधस्थान देवगतिके विना अन्यगतियों सहित बंधता ही नहीं है ५२५।

आगे २३ आदि स्थानोंमें प्रकृतियोंके जाननेकेलिये पाठका क्रम तीन गाथाओंसे कहते हैं,—

॥४१४॥

णामस्स णव धुवाणि य सरूणतसजुम्मगाणमेक्कदरं । गइजाइदेहसंठाणाणूणेक्कं च सामण्णा ॥ ५२६ ॥
तसबंधेण हि संहदिअंगोवंगाणमेक्कदरगं तु । तप्पुण्णेण य सरगमणाणं पुण एगदरगं तु ॥ ५२७ ॥
पुण्णेण समं सव्वेणुस्सासो णियमदो दु परघादो । जोगट्ठाणे तावं उज्जोवं तित्थमाहारं ॥ ५२८ ॥ विसेसयं ।

नाम्नो नव ध्रुवाश्च स्वरोनत्रसयुग्मकानामेकतरकं तु । गतिजातिदेहसंस्थानानूनामेका च सामान्या ॥ ५२६ ॥
त्रसबन्धे हि संहत्याङ्गोपाङ्गानामेकतरकं तु । तत्पूर्णेन च स्वरगमनाना पुन एकतरकं तु । ५२७ ॥
पूर्णेन समं सर्वेणोच्छ्वासो नियमतस्तु परघातः । योगस्थाने आतप उद्योतं तीर्थमाहारम् ॥ ५२८ ॥ विशेषकम् ।

अर्थ—नामकर्मकी तैजस आदि ९ ध्रुवबंधी प्रकृतियां, स्वरके विना त्रसादि नौ युगल इनमेंसे एक एक इस प्रकार ९, गति ४, जाति ५, शरीर ३, संस्थान ६, आनुपूर्वी ४ इनमेंसे एक एक इसप्रकार ५, सब मिलकर २३ प्रकृतियां सामान्य बंधरूप हैं। त्रसप्रकृतिके साथ ही ६ संहनन, ३ अंगोपांगोंमें किसी एक एकका बंध होता है। त्रसपर्याप्त प्रकृति सहित स्वरयुगल तथा विहायोगति युगलमेंसे एक एकका बंध होता है। पर्याप्त प्रकृति सहित जो सब त्रस स्थावर हैं उनके साथ उच्छ्वास और परघात नियमसे बंधयोग्य हैं। तथा आतप, उद्योत, तीर्थंकर, आहारकयुगल—ये प्रकृतियां पहले कहे हुए योग्य नामपदोंमें बंध-योग्य हैं ॥ ५२६ । ५२७ । ५२८ ॥

तित्थेणाहारदुगं एक्कसराहेण बंधमेदीदि । पक्खित्ते ठाणाणं पयडीणं होदि परिसंखा ॥ ५२९ ॥
तीर्थेनाहारद्विकमेकसंग्रहेण बन्धमेतीति । प्रक्षिप्ते स्थानानां प्रकृतीनां भवति परिसंख्या ॥ ५२९ ॥

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृति सहित आहारकयुगल एक काल ही बंधको प्राप्त होता है, इसकारण पूर्वोक्त २३ के बंधमें यथासंभव प्रकृतियोंके मिलानेसे स्थानों और प्रकृतियोंकी संख्या हो जाती है ॥ ५२९ ॥

इसी बातको दो गाथाओंसे कहते हैं;—

एयक्खअपज्जत्तं इगिपज्जत्तं बितिचपणरापज्जत्तं । एइंदियपज्जत्तं सुरणरयगईहिं संजुत्तं ॥ ५३० ॥
पज्जत्तगबितिचप मणुसदेवगदिसंजुदाणि दोण्णि पुणो । सुरगइजुदमगइजुदं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३१॥ जुम्मं ।

एकाक्षापर्याप्तमेकपर्याप्तं द्वित्रिचपनरापर्याप्तम् । एकेन्द्रियपर्याप्तं सुरनिरयगतिभ्यां संयुक्तम् ॥ ५३० ॥
पर्याप्तकद्वित्रिचपं मानुषदेवगतिसंयुते द्वे पुन. । सुगतियुतमगतियुतं बन्धस्थानानि नाम्नः ॥ ५३१ ॥ युग्मम् ।

अर्थ—एकेंद्री अपर्याप्त सहित २३ का १ स्थान है। एकेंद्री पर्याप्त–दोइन्द्री–तेइन्द्री–चौइन्द्री–पंचेन्द्री तथा मनुष्य अपर्याप्त सहित २५ के ६ स्थान हैं। एकेंद्री पर्याप्त आतप तथा एकेंद्री पर्याप्त उद्योत सहित २६ के २ स्थान हैं। देवगति तथा नरकगति सहित २८ के २ स्थान हैं, दोइन्द्री–तेइन्द्री–चौइन्द्री पंचेंद्री पर्याप्त और मनुष्यगति तथा देवगति पर्याप्त इन दोनोंकर सहित दो स्थान—इसप्रकार २९ के ६ स्थान हैं। दोइन्द्री पर्याप्त उद्योतादि सहित ६ स्थान ३० के हैं। देवगति सहित १ स्थान ३१ का है। और यशस्कीर्तिप्रकृति सहित १ स्थान १ का है। इसप्रकार नामकर्मके बंधस्थानोंका कथन जानना ॥ ५३०–५३१ ॥

आगे इन बंधस्थानोंके भंग कहते हैं,—

संठाणे सहडणे विहायजुम्मे य चरिमछ्ज्जुम्मे । अविरुद्धेकदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा दु ॥ ५३२ ॥
संस्थाने सहनने विहायोयुग्मे च चरमषड्युग्मे । अविरुद्धे एकतमात् बंधस्थानेषु भङ्गा हि ॥ ५३२ ॥

अर्थ—६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगतिका जोडा और अतके स्थिर आदि ६ युगल इनमें अविरुद्ध एक एकका ग्रहण करनेसे और आपसमें गुणाकार करनेपर बंधस्थानोंमें ४६०८ भङ्ग होते हैं ऐसा नियमसे जानना ॥ ५३२ ॥

तत्थासत्थो णारयसव्वापुण्णेण होदि बंधो दु । एक्कदराभावादो तत्थेको चेव भंगो दु ॥ ५३३ ॥
तत्राशस्तो नारकसर्वापूर्णेन भवति बन्धस्तु । एकतमाभावात् तत्रैकश्चैव भङ्गस्तु ॥ ५३३ ॥

अर्थ—उन प्रशस्त तथा अप्रशस्त बंधरूप प्रकृतियोंमें नरकति सहित तथा त्रसस्थावर युक्त सब अपर्याप्त सहित दुर्भगादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही बंध होता है, क्योंकि इनमें बंधयोग्य प्रकृतियोंकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका बंध नहीं होता। इसलिये उन स्थानोंमें अप्रशस्त एक एक प्रकृतिका ही बंध होनेसे एक एक ही भंग है ॥ ५३३ ॥

तत्थासत्थं एदि हु साहारणथूलसव्वसुहुमाण । पज्जत्तेण य थिरसुहजुम्मेक्कदर तु चदुभंगा ॥ ५३४ ॥

तत्राशस्ता एवि हि साधारणस्थूलसर्वसूक्ष्मानाम् । पर्याप्तेन च स्थिरशुभयुग्मैकतर तु चतुर्भङ्गा ॥ ५३४ ॥

अर्थ—उन एकेंद्रियके ग्यारह भेदोंमें साधारणवनस्पति और बादरपर्याप्त तथा सूक्ष्मपर्याप्त सहित, २५ के बंधस्थानमें एक एक अप्रशस्त प्रकृति ही बंधको प्राप्त होती है । विशेषता यह है कि स्थिर–शुभके युगलोंमेंसे किसी एकका बंध होनेसे २५ के ५ स्थानोंमें चार चार भग होते हैं ॥ ५४० ॥

पुढवीआऊतेऊवाऊपत्तेयवियलसण्णीण । सत्थेण असत्थं थिरसुहजसजुम्मट्ठभगा हु ॥ ५३५ ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकविकलासंज्ञिनाम् । शस्तेनाशस्त स्थिरशुभयशोयुग्ममष्टभङ्गा हि ॥ ५३५ ॥

अर्थ—पृथिवीकाय–जलकाय–तेजकाय–वायुकाय–प्रत्येक वनस्पति–द्विइन्द्रियादि विकल ३–असंज्ञी पंचेंद्री इनके अविरोधी त्रस बादरादिसे हुए जो २५ प्रकृतिरूप आदि स्थान हैं उनमें त्रस बादर आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके साथ यथासंभव दुर्भगादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका बंध होता है, इस कारण स्थिर–शुभ–यश कीर्ति इन तीन युगलोंकी अपेक्षा आठ २ भग होते हैं ॥ ५३५

आगे शेष तिर्यंच पचेंद्री पर्याप्तसहित कर्मपदोंमें और मनुष्यकर्मपदमें २९ तथा ३० के स्थानोंमें भग कहनेकेलिये गुणस्थानोंमें विभाग करते हैं,—

सण्णिस्स मणुस्सस्स य ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु । छादालसय अट्ठ य विदिये बत्तीससयभंगा ॥ ५३६ ॥

संज्ञिनो मनुष्यस्य च ओघैकतरं तु मिथ्याभङ्गा हि । षट्चत्वारिंशच्छतमष्ट च द्वितीये द्वात्रिंशच्छतभङ्गा ॥ ५३६ ॥

अर्थ—तिर्यंचगतिपर्याप्तसहित सैनीका २९ का स्थान और उद्योतसहित ३० के स्थानमें, तथा मनुष्यगति पर्याप्तसहित २९ के स्थानमें सामान्य छह संस्थानादि प्रकृतियोंमेंसे एक एकका क्रमसे बंध होनेसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ४६०८ भग होते हैं । और दूसरे गुणस्थानमें ३२०० भंग होते हैं ॥ ५३६ ॥

मिस्साविरदमणुस्सट्ठाणे मिच्छादिदेवजुदठाण । सत्थ तु पमत्तंते थिरसुहजसजुम्मगट्ठभगा हु ॥ ५३७ ॥

मिश्राविरतमनुष्यस्थाने मिथ्यादिदेवयुतस्थाने । शस्त तु प्रमत्तान्ते स्थिरशुभयशोयुग्मकाष्टभङ्गा हि ॥ ५३७ ॥

अर्थ—मिश्र और अविरत गुणस्थानवाले मनुष्यगति सहित स्थानमें, मिथ्यात्वादि गुणस्थानवाले देवगतिसहित स्थानमें तथा प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत जीवोंके प्रशस्त प्रकृतिका बंध अप्रशस्त प्रकृतिके साथ होता है, इससे, स्थिर–शुभ–यशःकीर्ति इन तीन युगलोंकी अपेक्षा आठ आठ भंग कहे हैं ॥ ५३७ ॥

आगे एक पर्यायको छोडना तथा दूसरी पर्यायमें उत्पन्न होना यथासभव दिखाते हैं, ।—

णेरयियाणं गमण सण्णीपज्जत्तकम्मतिरियणरे । चरिमचऊतित्थूणे तेरिच्छे चेव सत्तमिया ॥ ५३८ ॥

नैरयिकाना गमनं संज्ञिपर्याप्तकर्मतिर्यग्नरे । चरमचतुष्कतीर्थोन तिरश्चि चैव सप्तमिका ॥ ५३८ ॥

अर्थ—घर्मादि तीन पृथिवीवाले नारकी जीवोंकी मरणकर उत्पत्ति गर्भज पर्याप्त सैनी पचेन्द्री कर्मभूमिया तिर्यंच अथवा मनुष्यपर्यायमें होती है । अन्तके चार नरकोंवाले जीव तीर्थंकरादिके सिवाय पूर्वोक्त तिर्यंच अथवा मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न होते हैं । परंतु इतनी विशेषता है कि सातवें नरकवाले पूर्वोक्त तिर्यंच पर्यायमें ही उत्पन्न होते है ॥ ५३८ ॥

तत्थतणऽविरदसम्भो मिस्सो मणुवदुगमुच्चय णियमा । बंधदि गुणपडिवण्णा मरंति मिच्छेव तत्थभवा ॥ ५३९ ॥

तत्रतनोऽविरतसम्यक् मिश्रो मानवद्विकमुच्चकं नियमात् । बध्नाति गुणप्रतिपन्ना म्रियन्ते मिथ्ये एव तत्रभवाः ॥५३९॥

अर्थ—उस सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ असंयतसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्ती अपने २ गुणस्थानोंमें मनुष्यगति युगल तथा ऊंच गोत्र इनको नियमसे बांधता है । तथा वहांपर उत्पन्न हुए सासादन–मिश्र–असंयत गुणस्थानवाले जिस समय मरण करें उस समय मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होकर ही मरण करते हैं ॥ ५३९ ॥

तेउदुग तेरिच्छे सेसेग अपुण्णवियलगा य तहा । तित्थूणणरेवि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे ॥ ५४० ॥

तेजोद्विक तिरश्चि शेषैकापूर्णविकलकाश्च तथा । तीर्थोननरेपि तथा असंज्ञी घर्मे च देवद्विके ॥ ५४० ॥

अर्थ—तिर्यंच गतिमें, तेजकायिक–वायुकायिक ये दोनों मरण करके तिर्यंच गतिमें ही उत्पन्न होते हैं । शेष एकेन्द्री अर्थात् पृथिवीकाय–जलकाय और वनस्पतिकाय ये बादर सूक्ष्म पर्याप्त, अपर्याप्त इन सब अवस्थाओंवाले, इसीप्रकार दो इन्द्री

आदि विकलत्रय-ये सब जीव तिर्यंच गतिमें उत्पन्न होते हैं; और तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका (पदवी धारक) पुरुषोंके विना शेष मनुष्यपर्यायमें भी उत्पन्न होते हैं। असञ्ज्ञी पचेन्द्री मरण करके पूर्वोक्त तिर्यंच-मनुष्यगतिमें तथा घर्मानामवाले पहले नरकमें और देवयुगलमें अर्थात् भवनवासीव्यंतरदेवोंमें उत्पन्न होता है ॥ ५४० ॥

सण्णीवि तहा सेसे णिरये भोगेवि अच्चुदतेवि। मणुवा जंति चउग्गदिपरियंत सिद्धिठाणं च ॥ ५४१ ॥

संज्ञी अपि तथा शेषे निरये भोगेपि अच्युतान्तेपि। मानवा यान्ति चतुर्गतिपर्यन्त सिद्धिस्थानं च ॥ ५४१ ॥

अर्थ—इसीप्रकार सञ्ज्ञी पचेंद्री तिर्यंच भी शेष अर्थात् असञ्ज्ञी पचेन्द्रीकी तरह पूर्वोक्त गतियोंमें, सब नारकी पर्यायोंमें, सब भोगभूमियापर्यायोंमें और अच्युतस्वर्गपर्यंत सब देवोंमें उत्पन्न होता है। और मनुष्य मरण करके चारों ही गतियोंमें तथा सिद्धिस्थान (मोक्ष) को भी प्राप्त होते हैं ॥ ५४१ ॥

आहारगा दु देवे देवाण सण्णिकम्मतिरियणरे। पत्तेयपुढविआऊबादरपज्जत्तगे गमण ॥ ५४२ ॥

भवणतियाण एवं तित्थूणणरेसु चेव उप्पत्ती। ईसाणंताणेगे सदरदुगंताण सण्णीसु ॥ ५४३ ॥ जुम्म।

आहारकास्तु देवे देवाना संज्ञिकर्मतिर्यङ्नरे। प्रत्येकपृथिव्यब्बादरपर्याप्तके गमनम् ॥ ५४२ ॥

भवनत्रिकानामेव तीर्थोननरेषु चैवोत्पत्ति। ईशानान्तयोरेकस्मिन् शतारद्विकान्ताना संज्ञिषु ॥ ५४३ ॥ युग्मम्।

अर्थ-आहारकशरीरसहित प्रमत्तगुणस्थानवाले मरण करके कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न होते हैं। सब देवोंकी उत्पत्ति सामान्यसे सञ्ज्ञी पचेन्द्री कर्मभूमिया तिर्यंच तथा मनुष्यपर्यायमें, और प्रत्येक वनस्पतिकाय-पृथिवीकाय-जलकाय बादरपर्याप्तजीवोंमें होती है। विशेष यह है कि भवनवासी आदि ३ प्रकारके देवोंकी उत्पत्ति तीर्थंकरादिकोंमें नहीं होती, अन्य मनुष्योंमें ही होती है। ईशानस्वर्गपर्यंत देवोंकी उत्पत्ति पूर्वोक्त मनुष्य तिर्यंचोंमें तथा एकेन्द्रिय पर्यायमें होती है। और शतार-सहस्रार पर्यन्त स्वर्गोंवाले देवोंकी उत्पत्ति भी पूर्वोक्त मनुष्य तिर्यंचोंमें संज्ञीपचेंद्रीमें होती है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥ इस प्रकार चारों गतिके जीवोंकी सक्षेपसे मरण और उत्पत्ति कही है।

नाम्न उदयस्थानानि कथ्यते—

अत्रैकविंशतिः पाके चतुर्विंशतिरिष्यते। सैकद्वित्रिचतुःपचपट्सप्ताग्रा नवाष्ट च ॥ ११२ ॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

तत्रैकपचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात्। पाकस्थानानि जायंते पच श्वाभ्रगताविति ॥ ११३ ॥

२१।२५।२७।२८।२९।

अब नामकर्मके उदयस्थानोंको दिखाते हैं।—

नामकर्मके पाक अर्थात् उदयमें एक स्थान इक्कीस प्रकृतिरूप है और दूसरा एक स्थान चौवीस प्रकृतिरूप है। और इस चौवीस सख्यामें एक, दो, तीन, चार, पाच, छह तथा सात—ये सख्याएं जोडनेसे जो क्रमसे २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सख्याए प्राप्त होती हैं सो ये भी नामकर्मके इतने उदयस्थान हैं। इनके शिवाय एक नौ प्रकृतिरूप और एक आठ प्रकृतिरूप ये दो उदयस्थान और भी हैं।-इस प्रकार नामकर्मके सर्व उदयस्थान ग्यारह हैं—२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का और ८ का। अर्थात् इतनी उन उन स्थानोंमें प्रकृति हैं।११२।

अब इन उदयस्थानोंमेंसे छांटकर किस गतिमें अथवा किस गतिके साथ कौन कौनसे उदयस्थान सभव हैं—इस बातको दिखाते हैं। चार गतियोंमेंसे नरकगतिके स्थानोंको प्रथम दिखाते हैं। फिर तिर्यंच गतिके स्थानोंको दिखावेंगे। और फिर मनुष्यगतिके स्थानोंको दिखावेंगे। अतमें देवगतिके स्थानोंको दिखावेंगे। भावार्थ, किस गतिकर्मका उदय होनेपर शेष कितने कितने नामकर्म उदयमें प्राप्त होते हैं—यह क्रमवार दिखाते हैं।—

नरक गतिमें पाकस्थान अर्थात् उदयविकल्प ऊपरके सर्व ग्यारह उदयस्थानोंमेंसे पाच हैं। वे कौन कौनसे हैं? एक वीससे एक अधिकका अर्थात् २१ प्रकृतिका है। दूसरा एक पांच अधिक वीसका अर्थात् २५ प्रकृतिरूप है। तीसरा वीससे सात अधिकका है अर्थात् २७ प्रकृतिरूप है। चौथा एक स्थान आठ अधिक वीस प्रकृतिरूप है अर्थात् २८ प्रकृतिका स्थान है। पांचवां एक स्थान नौ अधिक वीस प्रकृतिका अर्थात् २९ प्रकृतिरूप है। ये पांच स्थान नरकगतिके उदयके साथ उदयरूप होते हैं।

एकविंशतमत्रेदं कार्मणं नारकद्वयम् । पर्याप्तागुरुलघ्वाह्वये तेजो वर्णचतुष्टयम् ॥ ११४ ॥
पंचेंद्रियमनादेयमयशो दुर्भगं त्रसम् । स्थूलं शुभस्थिरद्वन्द्वे निर्माणमिति भाषितम् ॥ ११५ ॥
विग्रहत्तिमुपेतस्य नारकस्योदयोस्य च । एको जघन्यतो ज्ञेयः समयौ द्वौ प्रकर्षतः ॥ ११६ ॥
२ । भगः १ ।

त्यक्तश्वभ्रानुपूर्वीक तद्युक्त पांचविंशतम् । प्रत्येकांगोपघाताख्यहुडवैक्रियिकद्वयैः ॥ ११७ ॥

इक्कीसका उदयस्थान इस प्रकार है ।—कार्मण शरीर, नरकगतिद्वय, पर्याप्ति, अगुरुलघु, तैजस शरीर, वर्णादि चार, पंचेंद्रिय जाति, अनादेय, अयश कीर्ति, दुर्भग, त्रस, बादर, शुभ तथा स्थिर–इन दो प्रकृतियोंके प्रतिपक्षी अशुभ तथा अस्थिर को साथ लेकर दो युगल की चार प्रकृति, एक निर्माण–इस प्रकार इक्कीस प्रकृति होती हैं । ११४–११५ ।

ये इक्कीस प्रकृति विग्रह गतिमें प्राप्त हुए नारकी जीवके उदयमें आती हैं । इस नारकी जीवकी विग्रहगतिका काल जघन्य एक समय मात्र है और उत्कृष्ट दो समय प्रमाण है । भावार्थ, इतने समय पर्यंत ही इस इक्कीसीका उदय रहता है । इसका भंग एक ही है, अधिक नहीं होते ॥ ११६ ॥

इस इक्कीसीमें शुभयुगल और स्थिरयुगलको जोड़ा गया है तब इक्कीसकी संख्या पूरी होती है । शुभयुगल अर्थात् शुभ अशुभ ये दो प्रकृति । स्थिरयुगल अर्थात् स्थिर अस्थिर ये दो प्रकृति । इस प्रकार चारों इन प्रकृतियोंका उदय साथमें मानकर उदयकी इक्कीस प्रकृति पूरी की गई हैं । कर्मकांड गोमटसारकी ५८८ वीं गाथामें भी उदययोग्य इक्कीसकी जो गिनती दिखाई है उसमें नाम कर्मकी ध्रुवबंधवाली बारह प्रकृति ली हैं । और वे बारह प्रकृति 'तेजदुग वण्ण चऊ थिरसुहजुगलगुरु- णिमिण धुव उदया' इस ४०३ की गाथामें गिनाई हैं वहां स्थिर तथा शुभके युगल गिनाकर ही पूरी बारह संख्या की है ।

अब नारकगतिमें पचीस नाम प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं ।—

जिसने नरकानुपूर्वी प्रकृतिको भोगकर समाप्त कर दिया है उसके बादमें पचीस प्रकृतियोंका उदय संभव है । आनुपूर्वीका उदय विग्रह गतिमें होता है । विग्रह गतिके समाप्त होते ही आनुपूर्वी भी छूट जाती है । और जीव शरीरको धारण करनेका प्रारंभ

इदमात्तशरीरस्य ज्ञेयं श्वाभ्रस्य पूर्णताम् । यावच्छरीरपर्याप्तिर्गच्छत्यन्तर्मुहूर्त्तिकी ॥ ११८ ॥
२५ । भंगः १ ।
नास्त्यत्र संहतेः पाको देवनारकयोर्यतः । न तस्यां जायते बंधः कदाचन निसर्गतः ॥ ११९ ॥
असद्गत्यन्यघाताभ्यां तद्युक्तं सप्तविंशतम् । पूर्णानस्थानपर्याप्तिं यावत्कालोऽस्य जायते ॥ १२० ॥
२७ । भंगः १ ।

कर देता है उस समय नारकी जीवके प्रत्येक शरीर, उपघात, हुडक संस्थान, वैक्रियिकद्वय—ये पाच प्रकृति उदयमें अधिक बढ जाती हैं और आनुपूर्वी एक घट जाती है इसलिये ऊपर बताई हुई इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे वीस रह जाती हैं और पाच ये नवीन उदयको प्राप्त होती हैं। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतियोंका उदयस्थान सिद्ध होता है। यह स्थान आहारवर्गणाके प्रारंभ से लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होती है तबतक समझना चाहिये। शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेमें अतर्मुहूर्त मात्र समय लगता है। इसका भंग एक ही है। ११७–११८।

नरकगतिमें संहननका उदय नहीं होता है इसलिये यहांके उदयप्रकृतिस्थानोंमें संहनन प्रकृतिको नहीं गिनाया है। देव तथा नारक गतिके साथ जो बंधस्थान पूर्वमें बताये हैं उनमें यहांपर संहननका बंध होना स्वभावसे ही निषिद्ध बताया है। इसी कारण यहांपर किसी भी संहननका उदय नहीं होता है ऐसा समझना। ११९।

अब सत्ताईस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद एक अतर्मुहूर्तकाल श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेमें लगता है। इस शरीर पर्याप्तिसे पूर्ण हुए नारकी जीवके अप्रशस्त विहायोगति तथा परघात इन दो प्रकृतियोंका उदय होना और भी बढ जाता है। इसलिये पच्चीस ऊपर की प्रकृति तथा दो ये मिलकर सत्ताईस प्रकृतिका उदयस्थान हो जाता है। यह स्थान श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत समझा जाता है। इसका भी भंग एक ही है। और इसका काल भी अंतर्मुहूर्त है। आनका अर्थ प्राण है। प्राणका ही अर्थ श्वासोच्छ्वास है। १२०।

तदाष्टाविंशतं युक्तं स्यादुच्छ्वासेन पूर्णताम् । यावद्वचनपर्याप्तिः कालोऽस्यांतर्मुहूर्त्तकम् ॥ १२१ ॥

२८ । भगः १ ।

ऐकान्नत्रिंशत युक्तं दुःस्वरेण तदिष्यते । एकैको जायते भगः स्थानानामिति पचके ॥ १२२ ॥

२९ । भगाः १ । सर्वभगाः ५ ।

दशवर्षसहस्राणि कालस्तस्य जघन्यकः । प्रकृष्टस्तु त्रयस्त्रिंशत्सागरा विनिवेदिताः ॥ १२३ ॥

अन्तर्मुहूर्तोन कालद्वय ज्ञेयम् । इतिश्वभ्रगति समाप्ता ।

अब अट्ठाईस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं ।—श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर श्वासोच्छ्वासरूप कार्य शुरू हो जाता है । और इसीलिये इस श्वासोच्छ्वासका कारण जो उच्छ्वास नाम कर्म है उसका भी उदय होना शुरू हो जाता है । और इसलिये इस श्वासोच्छ्वासका कारण जो उच्छ्वास नाम कर्म है उसका भी उदय होना शुरू हो जाता है । इस उच्छ्वास प्रकृतिके जोडदेनेसे सत्ताईसके स्थानमें अट्ठाईसका उदयस्थान हो जाता है । इस अट्ठाईसीके उदयका समय वचन पर्याप्ति पूर्ण होती है तबतकके बीचका समझना चाहिये । वचन पर्याप्तिके पूर्ण होनेतक इसका काल भी अतर्मुहूर्तमात्र है । १२१ ।

अब उन्तीस प्रकृतियोंके उदयस्थानको गिनाते हैं ।—

वचन पर्याप्तिके पूर्ण होते ही वचनप्रयोग करनेकी शक्ति प्रगट होती है, उसी समयसे स्वरनाम कर्मके भेदरूप दुःस्वर नाम कर्मका उदय होने लगता है । ऊपरकी अट्ठाईस बताई हुई प्रकृतियोंमें इस दुःस्वर प्रकृतिके मिलजानेसे यह उन्तीस प्रकृतिका उदयस्थान हो जाता है । यहा तक सर्व स्थान उदयप्रकृतियोंके पाच हुए । इन पाचों ही स्थानोंमें भग एक एक ही है ।१२२।

इस स्थानका काल जघन्य दश हजार वर्ष प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर वर्षका माना गया है । यह जो जघन्य तथा उत्कृष्ट कालमर्यादा बताई है वह अंतर्मुहूर्त कम समझनी चाहिये ऐसा टिप्पणीकार कहते हैं । इसका कारण यह है कि उन्तीस प्रकृतिके उदयस्थानकी यह जघन्योत्कृष्ट मर्यादा बताई है । नारकोंकी जघन्योत्कृष्ट आयुर्मर्यादा दश हजार वर्ष तथा तेतीस सागर-प्रमाण ही है । किंतु इन उन्तीस नाम प्रकृतियोंका उदय, अंतर्मुहूर्तके बाद वचन पर्याप्ति पूर्ण होजाने पर होता है इसलिये जघन्योत्कृष्ट आयुमेंसे यह शुरूका अतर्मुहूर्त काल घटाकर प्रमाण देखनेसे अतर्मुहूर्तहीनता सिद्ध हो जाती है । १२३ ।

इस प्रकार नरकगतिमें उदययोग्य नामप्रकृतियोंके स्थान समाप्त हुए ।

एकविंशतिरुक्ता च चतुरादियुता च सा । एकत्रिंशत्पर्यन्तास्तिर्यग्गत्यां नवोदयाः ॥ १२४ ॥

२१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

उद्योतस्योदयस्त्यक्त्वा तेजःपवनकायिकौ । स्थूलेष्वन्येषु सर्वेषु पूर्णेष्वस्ति त्रसेषु च ॥ १२५ ॥

आतपस्योदयः पूर्णे बादरे क्षितिकायिके । सामान्यैकेन्द्रियस्योक्तं प्रथमं स्थानपञ्चकम् ॥ १२६ ॥

२१ । २४ । २५ । २६ । २७ ।

आतपोद्योतपाकेन सप्तविंशतिवर्जितम् । सामान्यैकेंद्रिये ज्ञेयमाद्यं पाकचतुष्टयम् ॥ १२७ ॥

२१ । २४ । २५ । २६ ।

इति पाकचतुष्टयम् ।

अब तिर्यंच गतिमें नामप्रकृतिके उदयस्थानोंको बताते हैं ।—

तिर्यंच गतिमें प्रथम उदयस्थान २१ प्रकृतिका है । दूसरा चौवीसका स्थान है । इसी प्रकार आगे पच्चीस आदि इकतीस प्रकृति पर्यंतके भी उदयस्थान है । सर्व ये उदयस्थान नौ हैं । २१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का और ३१ का–इस प्रकार नौ स्थान हैं । १२४ ।

ऊपरके नौ स्थानोंमेंसे आदिके पांच स्थानोंका विशेष खुलासा करते हैं ।

उद्योत प्रकृतिका उदय तैजस कायमें तथा वायु कायमें नहीं होता, शेष सर्व बादर पर्याप्तक कायोंमें इसका उदय संभव है और तिर्यंच त्रसोंमें भी इसका उदय होना संभव है । यह उद्योतका उदय पर्याप्त जीवके ही होता है । १२५ ।

आतपकर्मका उदय बादर पर्याप्तकरूप पृथ्वीकायिकोंमें होता है । और नौ स्थानोंमेंसे पहिले पांच उदयस्थान सामान्य एकेंद्रिय जीव मात्रके होते हैं । १२६ ।

आतप अथवा उद्योत प्रकृतिके साथ होनेवाले सत्ताईसके एक स्थानको छोडकर शेष आदिके २१ से २६ पर्यंतके चार उदयस्थान सामान्य एकेंद्रिय जीवके होते हैं । १२७ ।

॥४२४॥

अस्त्यैकविंशत स्थान निरुद्योतातपोदयम् । कार्मणागुरुलध्वाह्वे तिर्यग्द्वितयतैजसे ॥ १२८ ॥
वर्णगन्धरसस्पर्शा निर्मित् स्थिरशुभद्वये । स्थूलपूर्णयशोयुग्मत्रितयैकतरत्रयम् ॥ १२९ ॥
एकेन्द्रियमनादेय स्थावर दुर्भग परम् । विग्रहर्त्ताविदं स्थानमेकद्वित्रिक्षणस्थिति । २१ ॥ १३० ॥
सूक्ष्मसाधारणापूर्णैः साधं नोदेति यद्यशः । एकोऽतोऽस्ति यशःपाके भगोऽन्यत्र चतुष्टयम् ॥ १३१ ॥
अत्रायशःपाके बादरपर्याप्तयुग्मयोरन्योन्याभ्यासे भगाः ४ । यशःपाके भंग १ । मीलिता भंगाः ५ ।
अतिर्यगानुपूर्वीक चातुर्विंशतमस्त्यदः । स्थानमौदारिके हुडे प्रत्येकयुगलैकके ॥ १३२ ॥

इक्कीस प्रकृतिके उदयस्थानमें कौनसी वे प्रकृति हैं इस बातको आगे दिखाते हैं ।—

आतप और उद्योतको छोडकर इक्कीस प्रकृतिका एक उदयस्थान है उसमें प्रकृति इक्कीस इस प्रकार हैं ।—कार्मण, अगुरुलघु, तिर्यग्गतिद्वय, तैजस, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, निर्माण, स्थिर अस्थिर दोनो, शुभ अशुभमेंसे दोनो, बादर–पर्याप्त–यश.कीर्ति—इन तीन युगलोंमेंसे एक एक तीन प्रकृति, एकेंद्रियजाति, अनादेय, स्थावर, दुर्भग । यह एक, दो अथवा तीन समय पर्यंत टिकनेवाला इक्कीसका उदयस्थान विग्रहगतिमें ही होता है । १२८—१३० ।

सूक्ष्म साधारण अपर्याप्त—इन प्रकृतियोंके साथ यश कीर्तिका उदय नहीं होता है इसलिये यशःकीर्तिके उदयमें एक ही भंग होता है । और अयश कीर्तिके साथवाली दूसरी इकीसीमें भग चार हो जाते हैं । भावार्थ, अयश कीर्तिके उदयमें बादर–सूक्ष्म तथा पर्याप्त–अपर्याप्त इन दो युगलोंके रहनेसे परस्पर दो युगलोंके गुणाकारसे चार भंग होजाते हैं । यश कीर्तिके उदयका एक भग और अयश कीर्तिक साथमें इकीसीके चार भग मिलकर सर्व पांच भंग होजाते हैं । १३१ ।

इसके आगे चौवीस प्रकृतिके उदयस्थानको बताते हैं ।—

ऊपर जो इक्कीसका स्थान है वह विग्रहगतिका है । विग्रहगतिमें आनुपूर्वी प्रकृति उदीयमान रहती है । विग्रहगतिके समाप्त होजानेपर जब तिर्यंच शरीरको जीव ग्रहण करता है उस समयसे शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होने तक चौवीस प्रकृतिका

उपघाते च निक्षिप्ते गृहीतांगस्य पूर्णता । यावच्छरीरपर्याप्तिरत्र भंगा नवेरिताः ॥ २४ । १३३ ॥

अत्रायशःपाके स्थूलपर्याप्तप्रत्येकयुग्मानामन्योन्याभ्यासे भंगाः ८ । यशःपाके भंगः १ । यतो यशःपाकेन सार्धं सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानामुदयो नास्ति । सर्वे भंगाः ९ ।

सान्यघातमपूर्णोनमस्तीद पांचविंशतम् । यावदुच्छ्वासपर्याप्तिस्तावत्कालोऽस्य भाषितः ॥ २५ । १३४ ॥

उदयस्थान होता है । ऊपरकी इक्कीसीमेंसे तिर्यगानुपूर्वी घट जाती है और औदारिक शरीर, हुडकसंस्थान, प्रत्येकके युगलमेंकी एक प्रकृति, उपघात—ये चार प्रकृति बढ जाती हैं—इस प्रकार चौवीसी होजाती है । इसके भंग नौ हैं । और समय इसका शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेतक अंतर्मुहूर्त है । १३२—१३३ ।

इस स्थानमें अयश कीर्तिका उदय रहनेपर वादर तथा सूक्ष्मका युगल सभव है, पर्याप्त तथा अपर्याप्त—यह युगल सभव है, और प्रत्येक तथा साधारण— यह तीसरा युगल भी सभव है । इस प्रकार अयश कीर्तिके उदयके साथ तीन युगल संभव हैं । तीनों युगलोंमेंसे कोई एक एक—ऐसे तीन प्रकृतिका एक समयमें उदय होना सभव है । इसलिये इन तीन युगलसंख्याओंका परस्पर गुणाकार करनेसे इसके भंग आठ हो जाते हैं । यशःकीर्तिका उदय रहते कोई युगल संभव नहीं है इसलिये यशःकीर्तिके साथमें भंग एक ही है । यशःकीर्तिके साथमें सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये तीन प्रकृति उदयको प्राप्त नहीं होती किंतु वादर पर्याप्त प्रत्येक—ये तीन ही प्रकृति उदयमें आती हैं । इस प्रकार चौवीसीके उदयस्थानमें सर्व भग नौ हो जाते हैं ।

अब पच्चीस प्रकृतिके उदयस्थानको बताते हैं ।—

ऊपर चौवीसका उदयस्थान बताया है उसमें परघात नाम एक प्रकृतिके उदयको बढादेनेसे पच्चीस प्रकृतिका उदयस्थान हो जाता है । परंतु परघातका उदय शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेतक नहीं होता; शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जानेके बाद परघातका उदय होता है । इसलिये इस पच्चीसीके उदयस्थानका काल शरीरपर्याप्तिके आगे उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होने तक माना गया है । श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होने ही उच्छ्वास कर्मका उदय बढ जाता है इसलिये श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिके आगे पच्चीस प्रकृति

भंगाः परस्पराभ्यासे स्थूलप्रत्येकयुग्मयोः । चत्वारोऽत्रायशःपाके परत्रैकोऽभिधीयते ॥ १३५ ॥

अयशःपाके ४ यश पाके १ । मीलिताः ५ ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्ताविद षाड्विंशत मतम् । अस्य वर्षसहस्राणि स्थितिर्द्वाविंशतिः परा (२६) ॥ १३६ ॥

भंगा ५ स्थितिः २२००० । सर्वे भगा २४ ॥

न रहकर उदयस्थानकी प्रकृतियोंकी संख्या बढजाती है–इस बातको आगे दिखानेवाले हैं । इसलिये पच्चीसीका समय श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पर्यंत ही माना गया है । दूसरी बात यहांपर यह समझनेकी है कि अपर्याप्ति कर्मके उदयवाला जीव शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम ही मरजाता है–इसलिये शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद जो पच्चीसीका उदयस्थान है उसमें अपर्याप्तिका उदय घट जाता है इसलिये यहां युगल दो ही रहते हैं । ऊपरकी चौवीसीमें युगल तीन बताये हैं उनमेंसे पर्याप्तिका एक युगल घटकर यहां केवल पर्याप्ति नाम एक प्रकृति उदय योग्य रहती है ॥ १३४ ॥

इस पच्चीसीमें अयश कीर्तिके साथमें बादर तथा प्रत्येकके दो युगल संभव हैं । इसलिये दोनों युगलोंका परस्पर गुणाकार से अयश कीर्तिके उदयमें भग चार हो जाते हैं। यश कीर्तिके उदयमें एक ही भंग है । इसका कारण ऊपर बताया है कि यश कीर्तिके सूक्ष्म तथा साधारणका उदय नहीं होता इसलिये भंग अधिक होनेका कारणीभूत युगल एक भी यहां संभव नहीं है ॥१३५॥

यश कीर्तिका एक भग और अयशःकीर्तिके चार भग—इस प्रकार सर्व पांच भग इस स्थानमें हैं ।

अब छव्वीस प्रकृतिके उदयस्थानको बताते हैं ।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेपर श्वासोच्छ्वासरूप कार्य शुरू होता है इसलिये उसके कारणभूत उच्छ्वास कर्मका भी होने लगता है। इस प्रकार ऊपरकी पच्चीसीमें उच्छ्वास प्रकृति बढजानेसे छव्वीसका यह उदयस्थान हो जाता है । इसका आयु समाप्ति पर्यंत है । इसकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्षकी है ॥ १३६ ॥

उपरके समान इस स्थानमें भी भग अयश कीर्तिके साथ चार और यश कीर्तिके साथ एक ऐसे सर्व पांच हैं । इक्कीसीके उदयस्थानमें भंग पांच बताये हैं और चौबीसके उदयस्थानमें भी पांच भंग ही हैं । पच्चीसीके उदयस्थानमें नौ भंग हैं । इस प्रकार सर्व भंग इस एकेन्द्रियरूप तिर्यग्गतिके आतप–उद्योतरहित चारो स्थानोंके मिलकर २४ होते हैं ।

पांचविंशतमत्यस्य शेषं स्थानचतुष्टयम् । पंचकैकेंद्रियोक्तं यत्तदुद्योतातपोदये ॥ १३७ ॥

२१ । २४ । २६ । २७ ।

एकाग्रचतुरग्रे द्वे विंशती पूर्विके विना । सूक्ष्मसाधारणापूर्णैः सत्युद्योतातपोदये ॥ १३८ ॥

२१ । २४ । तत्र सूक्ष्मापर्याप्तोनैकविंशतिः २१ । साधारणोना चतुर्विंशतिः २४ । अत्रातपोद्योतोदयभागिनां सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरोदयाभावाद्यशोयुगमस्यैकतरभगौ द्वौ द्वौ पुनरुक्तौ २ । २ ।

अब पच्चीसके एक स्थानको छोडकर शेष चार—२१ का, २४ का, २६ का, तथा २७ का—इन स्थानोंको जो पृथिव्यादि पांच एकेंद्रियोंमें बताया है उन्हे उद्योत तथा आतप प्रकृतियोंके उदयमें समझना चाहिये । १३७ ।

एक अधिक वीसका और चार अधिक वीसका ऐसे इक्कीस, चौवीसके दो स्थान पूर्वमें बताये हैं वे यदि आतप तथा उद्योतके उदय सहित हों तो उनमें सूक्ष्म साधारण अपर्याप्त इन तीन कर्मोंका उदय नहीं होता हैं । १३८ ।

इन स्थानोंमें सूक्ष्म तथा अपर्याप्ति—ये प्रकृति उदययोग्य नहीं मानी जानेसे इक्कीसका स्थान इन दोको छोडकर होता है । और चौवीसीका स्थान साधारणको भी छोडकर केवल प्रत्येकके साथ होता है । और यहा आतप तथा उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवालोंमें सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण शरीर—इन तीन कर्मोंका उदय नहीं रहता इसलिये भंग अधिक होनेका कारण केवल यश कीर्तिका एक युगल है । इसके द्वारा इक्कीसके स्थानमें भी दो भग होजाते हैं और चौवीसके स्थानमें भी दो भंग हो जाते हैं । किंतु ये दोनो स्थानोंके भग ऊपर गिना दिये हैं वे ही हैं इसलिये ये पुनरुक्त भंग हैं।

पहिले चौवीसीके स्थानके आगे पच्चीसीका स्थान बताया गया है परंतु आतप उद्योतवालेकें पच्चीसीका स्थान न होकर छव्वीसीका स्थान होता है । और पूर्वमें जहा छव्वीसीका स्थान बताया है वहांपर आतप उद्योतवालेकें सत्ताईसीका स्थान होता है । इसी बातको आगे बताते हैं ।—

परघातातपोद्योतद्वितयैकतरान्वितम् । इद षाड्विंशत स्थानं पर्याप्तांगस्य जायते ॥ २६ । १३९ ॥

अस्योत्कृष्टा जघन्या च स्थितिरन्तर्मुहूर्तकम् । भगाः ४ ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तावस्तीद साप्तविंशतं । ज्ञेयं जीवितपर्यन्तं सविकल्पचतुष्टयम् ॥ १४० ॥

अस्य स्थितिः परा द्वाविंशतिर्वर्षमहस्राणि २२००० । भंगाः ४ । एकेंद्रियस्य सर्वे भगाः ३२ ।

पहिले चौवीसीके आगे शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जानेवाले जीवके परघात कर्मका उदय बढ जाना बताया था और इसलिये उसके पच्चीसीका उदय होता था । किंतु यहा परघातका और आतप—उद्योतमेंसे किसी एक प्रकृतिका ऐसे दो प्रकृतिका उदय बढ जाता है इसलिये उदयस्थान छव्वीस प्रकृतिका हो जाता है । यह स्थान भी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके वाद श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तक समझना चाहिए । इसलिये इस स्थानकी टिप्पणीकारने जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र बताई है । इसके भग चार होते हैं । क्योंकि यश कीर्तियुगलके द्वारा दो भग होते ही थे और आतप—उद्योतवाले युगलके द्वारा दोको दो गुणित कर देनेसे चार भंग हो जाते हैं ॥ १३९ ॥

श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिके पूर्ण होजानेपर उच्छ्वास प्रकृतिका उदय बढ जाता है तब सत्ताईसका स्थान होजाता है । इसकी स्थिति आगे जीवित पर्यंत रहती है । इसके भग चार हैं । १४० ।

इसकी उत्कृष्ट स्थिति वाईस हजार वर्षकी २२००० है । भंग इसमें भी ऊपरके अनुसार चार हैं । इस प्रकार एकेंद्रियके पहिले भंग २४ वताये थे । और आतप उद्योतवालेके अपुनरुक्त भंग छव्वीसके उदयस्थानमें चार तथा सत्ताईसके उदयस्थानमें चार—ऐसे आठ भंग वढ जानेसे सर्व एकेंद्रियके भंग ३२ होजाते हैं ।

यशःपाके भंगः १ । प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात् । अयशःपाकेप्येको भंगः १ । मीलितौ २ ।

पूर्णोच्छ्वासस्य सोच्छ्वासमेकोनत्रिंशत स्मृतम् । भाषापर्याप्तिपर्यन्तमिदं भंगद्वयान्वितम् ॥ १४९ ॥

२९ । भंगौ २ ।

इदं वचनपर्याप्तौ त्रिंशतं जीविताविधि । स्थानं भंगद्वयोपेतं सदुःस्वरमुदाहृतम् (३०) ॥ १५० ॥

स्थितिरस्य परा द्वादश वर्षाणि, अपरान्तर्मुहूर्त्तं । भंगौ २ ।

यश कीर्तिके उदयका एक भंग है । और अयश कीर्तिके भी उदयका एक ही भंग इसलिये है कि इनमें दूसरी कोई प्रतिपक्षकी प्रकृति नहीं रहती हैं । पर्याप्ति तथा अपर्याप्ति ये दो प्रतिपक्षरूप प्रकृति ऊपर थीं परंतु अट्ठाईसके उदयमें अपर्याप्ति प्रकृतिका संभव नहीं रहता है । दोनोंके मिलकर दो भंग हुए ।

अब उन्तीसका स्थान बताते हैं ।—

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर श्वासोच्छ्वासका कार्य सुरू होता है उस समयसे उच्छ्वास कर्मका उदय होना भी सुरू हो जाता है । इसलिये ऊपरकी अट्ठाईसीमें एक उच्छ्वास प्रकृति बढ जानेसे उन्तीसीका यह उदयस्थान हो जाता है । ये विकलके स्थान होनेसे विकलोंमें एक भाषा पर्याप्ति पूर्ण होनेपर वचनप्रवृत्ति भी सुरू होती है इसलिये इस उन्तीसीका उदयस्थान श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादसे भाषा पर्याप्ति पूर्ण हुए तक अंतर्मुहूर्त कालके बीचमें समझना चाहिये । इसके भंग यश कीर्ति द्वयके द्वारा पूर्ववत् दो हैं । १४९ ।

अब तीसका उदयस्थान बताते हैं । —

वचन पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर बोलनेकी शक्ति प्रगट होती है इसलिये वचनपर्याप्तिके पूर्ण हो जानेपर दुःस्वर नाम प्रकृतिका उदय भी सुरू होता है । इस एक दुःस्वर प्रकृतिको ऊपरकी उन्तीसीमें जोड देनेपर तीसका उदयस्थान हो जाता है । यह जीवन पर्यंत उदयस्थान रहता है । इसके भंग ऊपरके अनुसार दो हैं । इस स्थानकी उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष है और जघन्य अंतर्मुहूर्तमात्र है । क्योंकि, द्वीन्द्रियकी उत्कृष्ट जघन्य आयु इतनी ही बताई है । १५० ।

एकाग्रा च षडग्रा च विंशती द्वीन्द्रिये मते । अपूर्णरहिते पूर्वे प्राप्तोद्योतोदये सति ॥ १५१ ॥

२१ । २६ । अत्र भगा पुनरुक्ताः २ । २ ।

सोद्योतासन्नभोरीती परघातं द्विभगकम् । स्यात्पाड्विंशतमेकान्नत्रिंशत पूर्णविग्रहे ॥ १५२ ॥

२९ । भगौ २ ।

अथ उद्योतसहित द्वीन्द्रिय जीवके स्थानोंको बताते हैं ।—

उद्योत प्रकृतिका जिस द्वीन्द्रिय जीवके उदय होनेवाला है उसका पहिला उदयस्थान एक अधिक वीसका अर्थात् इक्कीस प्रकृतिका है । और आगे जहा दूसरा स्थान है वह छह अधिक वीसका अर्थात् छब्बीस प्रकृतिरूप है । उद्योतका जिसके उदय होनेवाला है वह अपर्याप्तक नहीं होता इसलिये अपर्याप्ति प्रकृतिको छोडकर पर्याप्तिके साथ ही सर्व स्थान समझने चाहिये ।१५१।

इक्कीस और छब्बीसके ये स्थान दो दो भगोंको रखते हैं । ये दो भग यश कीर्तिके युगलमेंसे किसी एक एक प्रकृतिका उदय रहनेके कारण होते हैं । किंतु ये भग पुनरुक्त हैं । अपूर्ण नाम प्रकृतिका इस उद्योतवालेके अभाव होनेसे पूर्णापूर्ण के सम्बन्धसे भग बढ नहीं पाते हैं । इक्कीसका और छब्बीसका स्थान ऊपर १४६ के श्लोकतक वचनोंमें बताया है वही यहांपर है ।

अब आगे इनमें उन्तीसके उदयस्थानको दिखाते हैं ।—

छब्बीसके स्थानमें उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, परघात—ये तीन प्रकृति शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जानेवाले द्वीन्द्रियके अधिक उदयमें बढ जाती हैं इसलिये यह उन्तीसका स्थान हो जाता है ॥ १५२ ॥

यहांपर भी यश कीर्ति युगलके द्वारा भग दो ही होते हैं । आतप प्रकृतिका उदय केवल पृथ्वी, काय—एकेन्द्रियमें सभव था इसलिये यहा द्वीन्द्रियादिमें केवल उद्योतका ही उदय होना सभव है । इस कारण अधिक भग यहा नहीं होपाते हैं । इसका काल श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेसे, प्रथम पर्यंत , अंतर्मुहूर्तका है ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तौ त्रैशतं तद्द्विभेदकम् । भाषापर्याप्तिपर्यन्तः कालोऽस्यान्तर्मुहूर्त्तकः ॥ १५३ ॥

३० । भंगौ २ ।

एकत्रिंशतमुद्दिष्टं वाक्पर्याप्तौ सदुःस्वरम् । द्विभेदं स्थितिरस्योक्ता परा द्वादशवार्षिकी ॥ १५४ ॥

३१ । भंगौ २ । सर्वे भंगाः १८ ।

अब तीसका उदयस्थान द्वींद्रियमें बताते हैं ।—

श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर उच्छ्वास प्रकृतिका उदय होने लगता है, क्योंकि श्वासोच्छ्वास प्राणरूप कार्य यहासे सुरू हो जाता है इसलिये श्वासोच्छ्वासका कारण जो उच्छ्वास नामकर्म है वह उदयमें आना ही चाहिये । इस प्रकार उपरकी उन्तीसीमें एक यह उच्छ्वास प्रकृति मिल जानेसे यह उदयस्थान तीसका होजाता है । इसका समय श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादसे वचन पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिलेतक अंतर्मुहूर्तमात्र है । इसके भंग पूर्ववत् दो हैं । १५३ ।

अब इकतीसके उदयस्थानको बताते हैं ।—

वचनपर्याप्ति पूर्ण होनेपर दुःस्वर नाम कर्मका उदय होने लगता है क्योंकि, वचन पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर जीवमें बोलनेकी शक्ति प्रगट होजाती है इसलिये तभीसे उसके दुःस्वर प्रकृतिका उदय होने लगता है। इस दुःस्वरको तीस प्रकृतिमें मिलादेनेसे इकतीसका उदय होना सुरू हुआ बताया है । इसके भग पूर्ववत् दो हैं । इस इकतीसीके उदयस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति जीवन पर्यंत अर्थात् बारह वर्षकी है । १५४ ।

इस इकतीसीके भंग दो, तीसीके दो, उन्तीसीके दो, छव्वीसीके दो, इकीसीके दो—इस प्रकार उद्योत प्रकृतिके उदय होनेवालोंमें पांच उदयस्थानोंके दश भग हैं । परंतु इसमें इक्कीसके तथा छव्वीसके दो दो भग पुनरुक्त अर्थात् उद्योतरहितके बताये हुए भगोंके समान हैं इसलिये इन चार भगोंको जोडना न चाहिए । तब उद्योत सहितके अपुनरुक्त भंग ६ शेष रह जाते हैं । और उद्योतरहितके सर्व पांच स्थानोंके भंग १२ ऊपर बताये हैं। इन दोनो सख्याओंके जोडसे सर्व द्वीन्द्रियोंके उदयस्थानोंके भंग १८ हो जाते हैं । जैसे द्वींद्रियोंके ये स्थान तथा उत्तर भग बताये उसी प्रकार त्रींद्रिय और चतुरिंद्रियके भी स्थान तथा भंग उतने उतने ही समझलेने चाहिये । इसी ऊपरके विवेचनको आगे मूलकार कहते हैं ।—

अष्टादश मता भगा द्वीन्द्रियस्येति पिंडिता । तस्यैव स्थानभंगादि ज्ञेयं त्रिचतुरक्षयो ॥ १५५ ॥
त्रीन्द्रिये त्रिंशतः कालस्तथैकत्रिंशतः परः । दिनान्येकोनपचाशत्षण्मासाश्चतुरिन्द्रिये ॥ १५६ ॥

तत्र त्रीन्द्रियस्य निरुद्योतसोद्योतपाकयोः ३० । ३१ । स्थितिर्दिवसाः ४९ । सर्वे भंगाः १८ ॥ चतुरिंद्रिये पूर्वस्थानयोः ३० । ३१ । स्थितिर्मासाः ६ । सर्वे भगाः १८ । एवं विकलेन्द्रिये सर्वे भगाः ५४ ।

पाकास्तिरश्चि पचाक्षे षडोघादेकविंशतिः । क्रमात्षड्विंशतिर्द्वित्रिचतुःपचयुता च सा ॥ १५७ ॥

२१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

द्वींद्रियके सर्व जोडनेसे भंग अठारह होते हैं । त्रींद्रियके और चतुरिंद्रियके भी स्थान तथा भंग उतने ही जुदे जुदे जानलेने चाहिये । १५५ ।

त्रींद्रियमें उद्योतरहित तीसका अथवा उद्योतसहित इकतीसका जो अंतिम स्थान है उसका काल जीवन पर्यंत अर्थात् उनंचास दिनका है । एवं चतुरिंद्रियकी तीसी अथवा इकतीसीके उदयस्थानका काल छह महीना है । चतुरिंद्रियकी छह महीना की आयु उत्कृष्ट है । १५६ ।

त्रींद्रियका उद्योत रहित अंतिम स्थान ३० प्रकृतिरूप है और उद्योत सहित ३१ प्रकृतिरूप है । स्थिति उत्कृष्ट ४९ दिनकी है । इसके भंग भी सर्व १८ हैं । इसी प्रकार चतुरिंद्रियमें उद्योत रहित ३० का और उद्योत सहित ३१ का उदयस्थान है उसकी स्थिति उत्कृष्ट ६ महीनेकी है । भंग सर्व १८ हैं । इस प्रकार विकलेंद्रिय तीनोंके मिलकर भग ५४ होते हैं ।

अब पंचेंद्रिय तिर्यंचके उदयस्थानोंको बताते हैं ।—

पचेंद्रिय तिर्यंचमें नामकर्मके सर्व उदयस्थान छह हैं । ओघ अर्थात् सामान्य रूपसे पहिला स्थान ऊपरके समान इक्कीस प्रकृतिका है । फिर क्रमसे छव्वीसका, अठ्ठाईसका उन्तीसका, तीसका तथा इकतीसका स्थान है । १५७ ।

॥४२५॥

तान्यनुद्योतपाकस्य सत्येकत्रिंशत विना । उद्योतपाकयुक्तस्य सत्याष्टाविंशत विना ॥ १५८ ॥

उद्योतोदयरहिते पचेंद्रिये २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । उद्योतोदयसहिते २१ । २६ । २९ । ३० । ३१ ।

अनुद्योतोदयस्येद पचाक्षस्यैकविंशतम् । तिर्यग्द्वितयपंचाक्षे तेजोगुरुलघु त्रसम् ॥ १५९ ॥

पर्याप्तसुभगादेययशःकीर्तिद्विकैककम् । निर्माणं कार्मण स्थूलं वर्णानां च चतुष्टयम् ॥ १६० ॥

शुभस्थिरद्वये भगा एकद्वित्रिक्षणस्थितौ । वक्रतौ पूर्णपाकेऽष्टावेकोन्यत्रोभये नव ॥ १६१ ॥

ये ऊपर बताये जो २१ का, २६ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का ऐसे छह स्थान है इनमेंसे उद्योत-रहित जीवके इकतीसका अंतिम स्थान नहीं होता इसलिये उद्योतरहितके सर्व स्थान पाच ही हैं । इसी प्रकार उद्योतसहित जीवके २८ का उदयस्थान नहीं होता इसलिये उद्योतसहितमें भी सर्व उदयस्थान पाच ही हैं । १५८ ।

उद्योतरहितके स्थान पाच २१, २६, २८, २९, ३०—ये हैं । उद्योतका जिसके उदय होनेवाला है उसके स्थान पांच २१, २६, २९, ३०, ३१ ये हैं ।

अब उद्योत रहित पचेंद्रियके क्रमसे पांचो स्थानोंको गिनाते हैं । सबसे प्रथम इकीसका स्थान दिखाते हैं ।—

तिर्यग्द्वय, पचेंद्रियजाति, तैजसशरीर, अगुरुलघु, त्रस, और पर्याप्ति—सुभग—आदेय—यश.कीर्ति—इन चार कर्मोंके चार युगलोंमेंसे कोई एक एक चार प्रकृति, निर्माण, कार्मण, वादर, वर्णादि चार, शुभद्वय, स्थिरद्वय—ये उद्योतरहितकी इकीस प्रकृति हैं जो पंचेंद्रियके प्रथम विग्रह वक्रगतिमें उदयको प्राप्त होती हैं ।

वक्र विग्रह गतिके समय एक, दो अथवा तीन होते हैं इसलिये इस एक दो तीन समय पर्यंतकी वक्रगतिकी स्थितिमें यह इक्कीसीका उदयस्थान होनेसे इतना ही इस इक्कीसीके उदयस्थानका काल है । इस इक्कीसीका उदय यदि पर्याप्ति प्रकृतिके उदय होते हुए हो तो भंग इसमें आठ होते हैं । और अन्यत्र अर्थात् अपर्याप्तिके उदयमें भंग एक ही है । इसका कारण आगे बताते हैं । पर्याप्ति अपर्याप्ति—इन दोनोंके भंग सर्व ९ हुए । १५९—१६१ ।

अत्र पूर्णोदये भंगाः ८ । सुभगादेययशःकीर्तिभिः सहापूर्णोदयाभावादपूर्णोदये भंगः १ । सर्वे ९ ।

इदं त्यक्त्वाऽऽनुपूर्वीकं स्थानं षाड्विंशतं स्मृतम् । क्षिप्ते संस्थानसंहत्योरेकत्रौदारिकद्विके ॥ १६२ ॥

प्रत्येके उपघाते च स्वीकृतांगस्य देहिनः । आनपर्याप्तिपर्यन्ता स्थितिरन्तर्मुहूर्तिकी ॥ १६३ ॥

अस्य पूर्णोदये भंगा द्वादशोन शतत्रयम् । एकोऽपूर्णोदये ज्ञेयो भंगमार्गविचक्षणैः ॥ २६ । १६४ ॥

पर्याप्तिका जिसके उदय है उसके सुभग, आदेय, यशःकीर्ति—इन तीनोंके युगल संभव हैं । इसलिये तीन युगलोंके परस्पर गुणनसे आठ भंग होजाते हैं । परंतु अपर्याप्ति प्रकृतिके उदयवाले जीवमें सुभग, आदेय, यशःकीर्ति—ये तीन प्रकृति उदयको प्राप्त नहीं होती हैं । केवल अशुभ, अनादेय, अयशःकीर्ति—ये ही तीन अपर्याप्तकके साथ उदययोग्य हैं । इसलिये इसका भंग एक ही रहता है । मिलानेसे सर्व भंग नौ हुए ।

पंचेंद्रियमें इकीसके उदयस्थानको बताकर अब छव्वीसके उदयस्थानको बताते हैं ।—

छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, छह संहननोंमेंसे कोई एक, औदारिकद्वय, प्रत्येक, उपघात—ये छह प्रकृति हैं । इन छहोंको ऊपरकी इक्कीसीमें मिला देनेसे और तिर्यगानुपूर्वीके घट जानेसे छव्वीसका स्थान होजाता है । क्योंकि, विग्रह गतिके बाद नवीन शरीरको ग्रहण करते समय इस छव्वीसीका उदय होता है । आन अर्थात् प्राण अथवा श्वासोच्छ्वास नामकी पर्याप्ति पूर्ण होनेतक इस छव्वीसीका अंतर्मुहूर्तमात्र काल है । श्वासोच्छ्वासके पूर्ण होजानेपर छव्वीससे आगेका जो स्थान शुरू हो जाता है उसे आगे दिखाने वाले हैं । १६२–१६३ ।

इस स्थानमें छह संस्थान प्रकृति, और छह संहनन प्रकृति, तथा शुभयुगल, आदेययुगल, यश कीर्ति युगल—ये तीन युगल प्रकृति ऐसी हैं कि इनमेंसे किसी एक एकका ही एक समयमें उदय होता है । इसलिये ६×६×२×२×२=का परस्पर गुणा कर लेना चाहिये तो भंग २८८ निकल आते है । ये भंग पर्याप्तिके उदयके साथ ही होते हैं । पर्याप्ति कर्मको ही यहां ' पूर्ण ' कहा है । अपर्याप्तिके उदयमें आचार्योंने एक ही भंग रहना बताया है । १६४ ।

अत्र पूर्णोदये संस्थानषट्कसंहतिषट्कयुग्मत्रयाणां ६ । ६ । २ । २ । २ । परस्पराभ्यासे भंगाः २८८ । शुभैः सहापूर्णोदयस्याभावादपूर्णोदये भंगः १ ।

उद्योतरहित पंचेंद्रियका यह प्रकरण है । इसमें पर्याप्त अपर्याप्त—दोनो प्रकारके जीव रहते हैं । शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जानेके बादमें पर्याप्ति प्रकृतिके उदयका वास्तविक कार्य समझा जाता है । शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर ही जीवको पूर्ण अथवा पर्याप्त मानना सुरू होता है । इसलिये शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम पर्याप्तिके उदयवाले और अपर्याप्ति प्रकतिके उदयवाले—ये दोनो जीव अपूर्णताकी दृष्टिसे समान ही रहते हैं । परंतु पर्याप्ति अपर्याप्ति—इन दो प्रकृतियोंमेंसे उदय किसी एकका ही एक जीवमें जो सुरू होता है वह विग्रहगतिके सुरूसे ही हो जाता है । इसका फल यह आगे चलकर निकलता है कि अपर्याप्तिके उदयवाला जीव शरीरको पूर्ण करनेसे प्रथम ही मरण कर जाता है, किंतु पर्याप्ति प्रकृतिके उदयवाला जीव शरीर अपूर्ण रहेतक कदापि तथा अपघातादि पर निमित्त मिलनेपर भी मरण नहीं कर सकता । पर्याप्तिवालेका यदि बहुत जल्दी भी मरण हो तो भी शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेपर ही वह मरण होगा ।

इस दीर्घ जीवनकी विशेषताके कारण पर्याप्तिकर्मको पुण्य कर्म अथवा शुभ प्रकृति कहा जाता है। इसीलिये अपर्याप्तिके साथ यश कीर्ति आदि शुभ इतर प्रकृतियोंका भी उदय नहीं होता । अत एव अपर्याप्तिके उदयमें भंग एक ही बताया गया है । और पर्याप्तिके साथमें शुभ अशुभ दोनो प्रकारकी प्रकृतियोंका उदय होना संभव बताया है । इसलिये पर्याप्तिके उदयवाले जीवके सस्थान छह, सहनन छह, तीन यश.कीर्ति आदिके युगल तीन—ये सभी प्रकृति उदययोग्य मानी गई हैं । अत एव पर्याप्तियुक्त जीवके इन उक्त प्रकृतियोंकी बदलनके कारण २८८ भंग होना बताया है ।

छह संस्थान, छह संहनन, यशःकीर्तिका युगल, आदेयका युगल, सुभगका युगल—इन पांच प्रकृतिपिंडोंमेंसे कौन कौनसी हैं, और अशुभ कौन कौनसी हैं इस बातका ज्ञान आगेके उक्तं च पद्यसे मालुम हो जाता है। उग

परि०
॥४१८॥

उक्तं च—

अंसंप्राप्तमनादेयमयशो हुंडदुर्भगे । अपूर्णेन सहोदयंति पूर्णेन तु सहेतराः ॥ सर्वे २८९ ।

पूर्णाङ्गस्य गतापूर्णमाष्टाविंशतमीरितम् । परघातनभोरीतियुगलैकतरान्वितम् ॥ १६५ ॥

भगाना षट्शती स्याच्च चतुर्विंशति विना । जघन्या च प्रकृष्टा च स्थितिरान्तर्मुहूर्त्तिकी (२८)॥ १६६ ॥

एते पूर्वोक्ता २८८ । नभोरीतियुगहता भंगाः ५७६ ।

संहननोंमेंसे अंतका असंप्राप्त असृपाटिका संहनन, संस्थानोंमेंसे अंतका हुंडक संस्थान, युगलोंमेंसे अनादेय, अयश.कीर्ति, दुर्भग—ये तीन प्रकृति—इस प्रकार पांच प्रकृति पिंडोंमेंसे ये पांच प्रकृति अशुभरूप इस प्रकरणमें समझनी चाहिये। अपर्याप्तकके साथ इन्हीं पांचका उदय रहता है। अर्थात् इसीलिये अपर्याप्तकके भंग अधिक नहीं हो पाते हैं। और पर्याप्तक अथवा पूर्ण होनेवालेके पर्याप्ति—उदयके साथ इन पांचका भी उदय होता है तथा इनके शिवा बाकी बची हुई यश.कीर्ति आदि शुभ प्रकृतियोंका भी उदय होता है। अर्थात् इसी कारण पर्याप्तकके सर्व भंग संभव हैं। यह उक्तं च वचन है। पूर्णापूर्णके सर्व मिलकर २८९ भंग हो जाते हैं।

अब अट्ठाईसके उदयस्थानको बताते हैं।—

शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर, ऊपरके छव्वीसका तो उदय है ही परंतु परघात और विहायोगति युगलमेंसे कोई एक प्रकृति—इस प्रकार दोका उदय बढ जाता है इसलिये अट्ठाईसका उदयस्थान हो जाता है। इसके भंग चौवीस घाट छहसौ अर्थात् ५७६ हैं। स्थिति इसकी जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही है। १६५–१६६।

छव्वीसके स्थानमें भंग २८८ बताये थे। यहांपर विहायोगतिका युगल बढ जानेसे दो सौ अठासीको इस युगलसे दो गुणा कर दिया जाता है। इसलिये ५७६ भंग इस अट्ठाईसीके हो जाते हैं। श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत इस उदयकी अवधि है इसलिये इसका काल अंतर्मुहूर्त प्रमाण बताया है।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तावेकान्नत्रिंशत मतम् । अत्र दक्षैर्विज्ञोद्ध्व्या स्थितिभगा पुरातना ॥ १६७ ॥

२९ । भंगाः ५७६ ।

त्रिंशत पूर्णभापस्य स्वर्गैकतरसयुतम् । अत्र द्विगुणिता भंगा परा पल्यत्रय स्थिति (३०) ॥ १६८ ॥

भंगाः पूर्वोक्ताः ५७६ । स्वरयुगलाहता ११५२ । इत्थमुद्योतोदयरहिते पचाक्षे भगाः सर्वे, एवं २६०२ ।

इसके आगे उन्तीसका उदयस्थान है उसको अब बताते हैं ।—

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर उच्छ्वास प्रकृतिका उदय बढ जाता है इसलिये अट्ठाईसके स्थानमें उन्तीसका यह उदय स्थान होजाता है । इसके भंग ऊपरके अट्ठाईसीके स्थानके ही समान ५७६ समझने चाहिये ।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादसे लेकर भाषापर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत इस उन्तीसीका काल है । इसकी मर्यादा भी अंतर्मुहूर्तमात्र ही है । १६७ ।

अब आगे तीसके उदयस्थानको बताते हैं ।—

भाषापर्याप्ति पूर्ण होते ही बोलनेकी शक्ति प्रगट होती है इसलिये इसी समयसे दो स्वर प्रकृतियोंमेंसे किसी एकका उदय सुरू हो जाता है । इस एक स्वर प्रकृतिको ऊपरकी उन्तीसीमें जोड देनेसे तीसका उदयस्थान हो जाता है । स्वर युगलके कारण इस तीसीके भग ऊपरकी उन्तीसीके भगोंसे दुने होजाते हैं । भाषापर्याप्तिके बादसे इस तीसीका उदय सुरू होकर जीवन पर्यंत यही स्थान रहता है । पचेंद्रियके जीवनका उत्कृष्ट प्रमाण तीन पल्य है इसलिये इस तीसीके उदयस्थानका भी उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त घाट तीन पल्य समझना चाहिये । १६८ ।

यहांपर उद्योत रहितके ये स्थान बनाये । स्वरउदयके पहिले भग ५७६ बताये थे । अब स्वरयुगलके द्वारा द्विगुणित होकर तीसीके भंग ११५२ होते हैं और ऊपरके इक्कीसीके ९ भग, छव्वीसके २८९, अट्ठाईसीके ५७६, उन्तीसीके भी ५७६—इन सबको मिला देनेसे २६०२ सर्व उद्योत रहित पचेंद्रियोंके भग होजाते हैं ।

प्राप्तोद्योतोदये एकषडग्रे विंशती बुधै । पंचेंद्रिये मते पूर्वे त्यक्तापूर्णोदये परम् ॥ १६९ ॥

२१ । २६ । अत्र भगा पुनरुक्ताः ८ । २८८ ।

स्थान षाड्विंशत ज्ञेयमेकान्नत्रिंशत बुधैः । पूर्णांगस्य खरीत्यन्यतरोद्योतान्यघातयुक् ॥ १७० ॥

शतानि पच भगानां पट्सप्तत्या सम स्फुटम् । प्रकृष्टोऽस्य जघन्यश्च कालोंतर्मुहूर्त्तकः ॥ १७१ ॥

२९ । भगा ५७६ ।

अब जिनके उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवाला है उनकी अपेक्षाको लेकर पचेंद्रिय तिर्यचके उदयस्थानोंको बताते हैं ।—

जिनके उद्योतका उदय है वे अपर्याप्त नहीं होते, पर्याप्त ही सर्व होते हैं—इस बात को शुरूमें भी बता दिया है । इसलिये उनके स्थानोंमें अपर्याप्ति प्रकृतिसबधी भंगोंको छोड देना चाहिये । इसलिये उद्योतसहित तिर्यंच पचेंद्रियमें केवल पर्याप्तक का ही विचार किया गया है । इसमें पहिले दो स्थान—एक इकीसका, दूसरा छब्बीसीका—पूर्ववत् ही हैं । १६९ ।

इसमें इकीसीके भग ८ हैं और छब्बीसीके २८८ हैं । अपर्याप्तिसबधी एक एक भग पुनरुक्त होनेसे जुदे गिने नहीं जाते हैं ।

इसके आगेके उन्तीसीके स्थानको अब दिखाते हैं ।—

शरीर पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर विहायोगतियुगलमेंसे एक प्रकृति, उद्योत, परघात—ये तीन प्रकृति बढ जानेसे छब्बीसके स्थानमें उन्तीसका उदयस्थान होजाता है । १७० ।

इस छब्बीसीके सर्व भग पाचसौ छिहत्तरि होते हैं । काल इसका जघन्य तथा उत्कृष्ट अतर्मुहुत मात्र है । १७१ ।

१— ' कालोऽस्याद्यन्तर्मुहूर्तक ' ऐसा मूलमें पाठ पड गया है परन्तु ऊपरका पाठ ठीक है ।

आनपर्याप्तिपर्याप्ते सोच्छ्वास त्रैंशतं स्मृतम् । कालभंगा विबोद्धव्या सूरिभिः पूर्वभाषिताः ॥ १७२ ॥

३० । भगाः ५७६ ।

तत्स्वरैकतराश्लिष्टमेकत्रिंशतमीरितम् । द्विघ्ना भंगा वच पूर्णे पल्यानां त्रितयं स्थितिः ॥ १७३ ॥

३१ । भंगा ११५२ ।

इत्थं सोद्योतोदये पंचाक्षे भगा सर्वे २३०४ । उद्योतरहितपंचाक्षे २६०२ । एव पचेन्द्रिये सर्वे भंगाः ४९०६ ।

सहस्रा' पच भगानामष्टहीना निवेदिता । तिर्यग्गतौ समस्तानां पिंडितानां पुरातनै ॥ १७४ ॥

सर्वे तिर्यग्गतौ भगाः ४९९२ ।

एवं तिर्यग्गतिः समाप्ता ।

प्राणपर्याप्ति पूर्ण होजानेपर उच्छ्वासका उदय सुरू होजाता है इसलिये यह एक प्रकृति ऊपरकी उन्तीसीमें मिल जानेसे यह तीसका स्थान होजाता है । पूर्वके अनुसार काल इसका अंतर्मुहूर्त है और भंग पाचसौ छिहत्तरि हैं । १७२ ।

अब इकतीसका उदयस्थान बताते हैं ।—

ऊपर तीसका स्थान बताया है । उसमें एक कोई स्वर प्रकृति मिलजानेसे इकतीसका स्थान हो जाता है । यह स्थान वचन पर्याप्ति पूर्ण हो जानेवालेके प्राप्त होता है । स्वर युगलमेंसे किसी एक एकका ही उदय संभव होनेसे ऊपरके सर्व ५७६ भंगोंको स्वर युगलकी दो संख्यासे ' घ्न ' अर्थात् गुणित कर देना चाहिये तो इस स्थानके भंग ११५२ हो जाते हैं । इस स्थानकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी बताई है परंतु वचन पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तकका अंतर्मुहूर्त काल घाट समझलेना चाहिये । १७३

इस प्रकार उद्योतोदयके साथ पचेंद्रियके सर्व भग २३०४ होते हैं । और उद्योतोदयरहित पचेंद्रियके २६०२ भग बताये हैं । उद्योतरहित तथा सहितके मिलकर पचेंद्रिय तिर्यंचके सर्व ४९०६ भग होते हैं ।

सपूर्ण तिर्यंच गतिमें मिलाकर नाम कर्मके उदयस्थानोंके आठ कम पाच हजार भग होते हैं (४९९२) ॥ १७४ ॥

इस प्रकार तिर्यंच गतिके भग समाप्त हुए ।

॥४४२॥

पाका मनुष्यगत्याऽमा समस्ता मर्त्यजन्मनाम् । चतुर्विंशतिपाकोनदशशेषाः पुरोदिताः ॥ १७५ ॥

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

यानि स्थानानि तिर्यक्षु निरुद्योतेषु पच वै । पंचेंद्रियेषु मर्त्याना तानि सामान्यभागिनाम् ॥ १७६ ॥

२१।२६।२८।२९।३०।

अत्र तिर्यग्द्वयस्थाने भणनीयं नरद्वयम् । भगास्तद्वन्मता द्व्यग्रषड्विंशतिशतप्रमाः ॥ ६० । १७७ ॥

यद्यपि पूर्वमुक्तास्ते तथापि सुखार्थमुच्यन्ते—

अब मनुष्यगतिमें नामके उदयस्थानोंकी सख्या प्रथम बताते हैं । बादमें प्रत्येक स्थानकी प्रकृतियोंको बतावेंगे ।

जिनके मनुष्य गतिका उदय होनेसे मनुष्य पर्याय प्राप्त हुआ है उन जीवोंके चौवीसका एक स्थान नहीं है, शेष दश उदयस्थान सभव हैं । २१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का, ८ का—ये दश स्थान हैं । उदयके सर्व स्थान प्रारभमें २४ के स्थान सहित ग्यारह बताये हैं ।। १७५ ।।

इन दश स्थानोंमेंसे पांच स्थानोंका खुलासा सक्षेपमें आगे करते हैं ।—

तिर्यंचोंमें उद्योत रहित पांच स्थान २१ का, २६ का, २८ का, २९ का तथा ३० का– ये पाच स्थान प्रथम बताये हैं, ये ही पांच स्थान सामान्य मनुष्य मात्रके भी समझलेने चाहिये ।। स्थानोंकी प्रकृतियोंको गिनाते समय केवल इतना फरक करना चाहिये कि तिर्यंचगतिके स्थानोंमें तिर्यंगति तथा तिर्यंगत्यानुपूर्वी ये प्रकृति गिनाई गई हैं । यहां उसके स्थानमें मनुष्यगति द्वय लेना चाहिये । इन सब स्थानोंके भग तिर्यंच गतिके समान ही छव्वीस सौ दो (२६०२) हैं ॥ १७६–१७७ ॥

पूर्वमें ये सर्व भेद तिर्यंच गतिके प्रकरणमें बता दिये हैं परतु सुखबोधार्थ यहां भी बताते हैं । उन पाच स्थानोंमेंसे पहिला स्थान इक्कीसका है उसे प्रथम बताते हैं ।—

तत्रैकविंशत तीर्थकृत्वाहारकोज्झिते । पचेन्द्रिय नरद्वन्द्व तेजोऽगुरुलघुत्रसम् ॥ १७८ ॥
निर्माण सुभगादेययशःपर्याप्तनामसु । युगेष्वेकतर वर्णचतुष्कं स्थूलकार्मणे ॥ १७९ ॥
शुभस्थिरद्वये भगा एकद्वित्रिक्षणस्थितौ । वक्रत्तौ पूर्णपाकेऽष्टावेकोऽन्यत्रोभये नव ॥ १८० ॥
२१ । पूर्णपाके भगाः ८ । अपूर्णपाके १ । उभये ९ ।
प्रत्येकौदारिकद्वन्द्वोपघातसहित स्मृतम् । षट्मस्थानस्य सहत्याः षट्कस्यैकतरेण च ॥ १८१ ॥
स्थान षाड्विंशतं दक्षैगत्तदेहस्य देहिनः । निराकृतानुपूर्वीक यावद्देहस्य पूर्णताम् ॥ १८२ ॥

पचेंद्रिय जातिकर्म, मनुष्यगतिद्वय, तैजस शरीर, अगुरुलघु, त्रस, निर्माण, सुभग–आदेय–यश कीर्ति–पर्याप्ति–इन चार प्रकृतियोंके युगलोंमेंसे एक एक चार, वर्णादि चार प्रकृति, वादर, कार्मण, शुभद्वय, स्थिरद्वय–यह इक्कीस प्रकृतिका स्थान है। यह स्थान वक्र विग्रहगतिमें उदयको प्राप्त होता है इसलिये इसकी स्थिति एक समय, दो समय, अथवा तीन समय पर्यंत रहती है। पर्याप्तिके उदय सहित यह स्थान हो तो इसके भंग आठ होते हैं। यदि अपर्याप्तिके उदय सहित हो तो भग एक ही है। इसका कारण यही है कि पर्याप्तिके साथ सुभग आदेय यश कीर्तिके युगलोंमेंसे चाहे जिस एक एकका उदय होता है। किंतु अपर्याप्तिके उदयमें केवल दुर्भग, अनादेय तथा अयश कीर्ति इन्ही तीनका उदय होता है। इसलिये अपर्याप्तिके साथमें अधिक भग नहीं होपाते हैं। यह इकीसीका स्थान और आगेके भी चार स्थान उनके ही समझने चाहिये जिनकें तीर्थंकर प्रकृतिका तथा आहारक प्रकृतिका उदय नहीं है। क्योंकि, आहारक अथवा तीर्थंकर प्रकृति सहितके स्थानोंको आगे जुदे गिनावेंगे ॥१७८।१८०॥

प्रत्येक शरीर, औदारिक द्वय, उपघात, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक सस्थान, छह संहननोंमेंसे कोई एक सहनन–ये छह प्रकृति ऊपरकी इकीसीमें जोड देनेसे तथा मनुष्यगत्यानुपूर्वीके घट जानेसे छब्वीसीका स्थान वन जाता है। यह स्थान विग्रह गतिके वादमें शरीर धारण करनेके समयसे सुरू होता है और शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तक यह स्थान रहता है।

१–मूलमें पाठ ‘ तत्सस्थानस्य ’ ऐसा है।

पर्याप्तस्योदये भगा द्वादशोन शतत्रयम् । एकोऽन्यस्योदये कालः कथितोऽन्तर्मुहूर्त्तकः ॥ १८३ ॥

पर्याप्तोदये भंगाः २८८ । अपर्याप्तोदये १ । सर्वे २८९ ।

तदाष्टाविंशतं प्रोक्तमपर्याप्तविवर्जितम् । परघातखगत्येकतरयुक्त शरीरिणः ॥ १८४ ॥

शतानि पच भगानां षट्सप्तत्या सह स्फुटम् । पर्याप्तांगस्य निर्दिष्टः कालोऽत्रान्तर्मुहूर्तकः ॥ १८५ ॥

२८ । भगाः ५७६ ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तावेकोनत्रिंशत मतम् । बुधैरत्रावबोद्धव्याः स्थितिभगा पुरातनाः ॥ १८६ ॥

२९ । भगः ५७६ ।

इसलिये इस स्थानका काल अतर्मुहूर्त मात्र है । पर्याप्तिके साथ छव्वीसीके भंग बारह घाट तीनसौ अर्थात २८८ होते हैं और अपर्याप्तकका भंग एक ही रहता है ॥ १८१–१८३ ॥

अब अट्ठाईसका स्थान बताते हैं ।—

इस छव्वीसीका उदय शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिलेतक है इसलिये यहांतक पर्याप्ति तथा अपर्याप्ति–इन दोनो प्रकृतियोंका उदय होना सभव है । परतु आगे जो स्थान बतावेंगे उनमें अपर्याप्तिका उदय नहीं रहता है क्योंकि वे स्थान शरीरपर्याप्ति पूर्ण होजानेके बाद सुरू होते हैं ।

इस अट्ठाईसके स्थानमें परघात तथा दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक विहायोगति–ऐसे दो प्रकृति बढ जाती हैं और छव्वीस पूर्वमें बताई वे हैं । इमका काल प्राणपर्याप्ति पूर्ण होनेतक अतर्मुहूर्त है । और इसके भंग पांचसौ छिहत्तरि (५७६) हैं ॥ १८४–१८५ ॥

इसके आगे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादमें उच्छ्वास प्रकृति बढ जाती है इसलिये अट्ठाईसके स्थानमें उन्तीसका स्थान होजाता है । इसका काल पूर्वके समान अतर्मुहूर्त, और भंग ५७६ हैं । इसका उदयकाल भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तक माना जाता है । १८६ ।

स्वरैकतरसंयुक्तं वाक्पूर्णे त्रिंशतं मतम् । अत्र द्विताडिता भगाः परा पल्यत्रय स्थितिः ॥ १८७ ॥

३० । मंगाः ११५२ । सर्वे मीलिताः २६०२ ।

आहारकोदयालीढे विशिष्टे नरनामनि । उदये पचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिर्मता ॥ १८८ ॥

२५ । २७ २८ । २९ ।

पांचविंशतमत्रेद नृगत्याहारकद्विके । कार्मण सुभगादेये तेजो वर्णचतुष्टयम् ॥ १८९ ॥

चतुरस्रोपघाताख्ये निर्मित्त्रसचतुष्टयम् । पंचाक्षागुरुलघ्वाहे शुभस्थिरयुगे यशः ॥ १९० ॥

आहारकोदयेस्तीदं यावत्तदेहपूर्णताम् । ससद्गत्यन्यघात तत्पूर्णांगे साप्तविंशतं ॥ १९१ ॥

२५ । भंगः १ । २७ । भगः १ ।

भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद दो स्वर प्रकृतियोंमेंसे एक कोई भी स्वर प्रकृति उदयमें आने लगती है इसलिये यह स्थान तीसीका होजाता है । इसका काल उत्कृष्ट तीन पल्य पर्यंत है । अर्थात् जीवनपर्यंत इसका उदय रहता है । स्वरयुगलके कारण ऊपरके ५७६ भगोंको दोसे गुणित करलेना चाहिये । इससे भंग इस तीसीके ११५२ हो जाते हैं । १८७ ।

इस तीसीके भंग ११५२ हैं और सर्व यहां तकके भंग मिलकर २६०२ होते हैं ।

अब पच्चीसके तथा सत्ताईसके और अट्ठाईस–उन्तीसके इन चार स्थानोंको दूसरी तरहसे दिखाते हैं । अर्थात् ये चार स्थान आहारक शरीर प्रगट होनेवाले विशिष्ट मनुष्यमें ही होते हैं । १८८ ।

उन चार स्थानोंमेंसे पच्चीसका तथा सत्ताईसका स्थान बताते हैं ।—

मनुष्यगति, आहारकद्वय, कार्मण, सुभग, आदेय, तैजस, वर्णादि चार, समचतुरस्र सस्थान, उपघात, निर्माण, त्रसादि चार, पचेंद्रिय जाति, अगुरुलघु, शुभ अशुभ–ये दोनो, स्थिर अस्थिर–ये दोनो, यश कीर्ति–ये पच्चीस प्रकृति आहारक शरीरके उदयके साथमें उदीयमान होती हैं । आहारक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता होनेसे पहिले तक यह पच्चीसीका स्थान रहता है ।

इसके आगे अर्थात् आहारक शरीर पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर सत्ताईसका स्थान शुरू होता है । यहा पर ऊपरकी पच्चीसी

॥४४६॥

पूर्णोच्छ्वासस्य सोच्छ्वासमाष्टाविंशतमस्त्यदः। एको भगोऽत्र कालस्तु विज्ञेयोऽन्तर्मुहूर्त्तकः ॥ १९२ ॥

२८ भगः १ ।

ऐकान्नत्रिंशत स्थानं पूर्णवाचिससुस्वरम्। कालभंगो मतौ पूर्वात्रैक्ये भंगचतुष्टयम् ॥ १९३ ॥

२९ भगः १ । विशेषमनुष्ये भगाश्चत्वारः ४ ।

में प्रशस्त विहायोगति और परघात इन दो प्रकृतियोंका उदय बढ जाता है । इसलिये सत्ताईसका स्थान हो जाता है । इन दोनो स्थानोंमें भंग एक एक ही है । १८९–१९१ ।

अब आहारक शरीर सुरू होनेवालेमें अट्ठाईसका स्थान बताते हैं।—

प्राण पर्याप्ति अथवा श्वास पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर एक उच्छ्वास प्रकृतिका उदय बढ जाता है इसलिये ऊपरके सत्ताईसके स्थानमें यह अट्ठाईसका स्थान होजाता है । इसमें भग एक ही है और काल वचनपर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत अंतर्मुहूर्त है। १९२ ।

अब उन्तीसका स्थान बताते हैं ।—

ऊपरकी अट्ठाईसीमें सुस्वर प्रकृतिका उदय बढजानेपर उन्तीसीका स्थान हो जाता है । यह स्थान वचन पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादमें सुरू होता है और आहारक शरीरकी स्थिति रहेतक इसका अंतर्मुहूर्त काल है । भंग भी पूर्वके समान इसमें एक ही है । किंतु आहारक मनुष्यमें चारो स्थानोंके भंग चार बताये हैं सो समझलेने चाहिये । १९३ ।

ये चार भंग उस विशेष मनुष्यके हैं जो आहारक शरीरको उत्पन्न कर आहारक शरीर सहित रहता है । चारो स्थानोंके एक एक करके ये सर्व चार भंग होते हैं ।

तत्रैकत्रिंशतं ज्ञेय योगिनस्तीर्थकारिणः । आद्ये सहतिसंस्थाने नृगत्यौदारिकद्वये ॥ १९४ ॥
पंचाक्षं कार्मणादेये तीर्थकृत्सुभग यशः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ १९५ ॥
निर्मिच्छुभस्थिरद्वन्द्वे तेजः सद्गतिसुस्वरे । पूर्वकोटी परा वर्षपृथक्त्वं त्वपरा स्थितिः ॥ १९६ ॥

३१ । भग १ । अत्रोत्कृष्टा स्थितिरन्तर्मुहूर्ताधिका गर्भाद्यष्टवर्षहीना पूर्वकोटी, जघन्या वर्षपृथक्त्वम् ।

नृगति पूर्णमादेय पचाक्ष सुभग यश । त्रसस्थूलमयोगेऽष्टौ पाके तीर्थकृतो नव ॥ १९७ ॥

अब तीर्थंकर प्रकृतिके उदयवाले योगीके इकतीसके स्थानको बताते हैं ।—

जो तीर्थका कर्ता अर्थात तीर्थकर है उस योगीके इकतीसका स्थान होता है वह इस प्रकार है)—प्रथम सहनन, प्रथम सस्थान, मनुष्यगति, औदारिकद्वय, पचेंद्रिय जाति, कार्मण, आदेय, तीर्थंकरत्व, सुभग, यश कीर्ति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, निर्माण, शुभद्वय, स्थिरद्वय, तैजस, प्रशस्त विहायोगति, सुस्वर—ये इकतीस प्रकृति हैं। इस इकतीसीके स्थानका उदय अधिकसे अधिक पूर्वकोटि वर्ष पर्यंत रहता है और जघन्य वर्षपृथक्त्व प्रमाण स्थिति है। विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका उदय तेरहवें गुणस्थानसे होता है इसलिये यह स्थान भी वहींपर उदययोग्य है। अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास—ये चार अगुरुलघ्वादि चार प्रकृति है। त्रस बादर पर्याप्ति प्रत्येक-ये चार त्रसादि चार प्रकृति समझनी ॥ १९४–१९६ ॥

इस इकतीसीकी जो उदयस्थिति उत्कृष्ट पूर्वकोटी वर्ष प्रमाण वताई है वह अतर्मुहूर्त अधिक और गर्भसे लेकर आठ वर्षतक घाट समझनी चाहिये। क्योंकि केवलज्ञान होने योग्य कर्मभूमिया मनुष्यकी उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटी वर्ष प्रमाण है। उसमेंसे गर्भसे लेकर आठ वर्षकी अवस्था हुए पर्यंत केवलज्ञान नहीं हो सकता है इसलिये ये आठ वर्ष घटाकर इकतीसीके स्थानका काल लेना चाहिये। इसमें भग एक ही है।

अब आठ और नौ प्रकृतिके दो स्थानोंको बताते हैं ।—

मनुष्यगति, पर्याप्ति, आदेय, पंचेंद्रियजाति, सुभग, यशःकीर्ति, त्रस, बादर—ये आठ प्रकृति है। इन आठका उदयस्थान अयोग केवल चौदहवें गुणस्थानमें होता है। यदि वह केवली तीर्थंकर हो तो तीर्थंकर एक प्रकृतिका उदय और भी अधिक रहता है इसलिये वह नौका स्थान हो जाता है ॥ १९७ ॥

पाके ८ । भंगः १ । तीर्थकृता युता ९ । भगः १ । सर्वे केवलिनो भंगाः ३ ।

षड्विंशतिशतान्युक्त्वा नवाग्राणि नृणां गतौ । भगानतः पर वक्ष्ये सयोगे पाकसप्तकम् (२६०९) ॥ १९८ ॥

उदये विंशतिः सैकषट्सप्ताष्टनवाधिका । दशाग्रा चेति विज्ञेय सयोगे स्थानसप्तकम् ॥ १९९ ॥

२० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ ॥ ३० ।

नृगतिः कार्मणं पूर्णं तेजो वर्णचतुष्टयम् । पचाक्षागुरुलघ्वाद्ये शुभस्थिरयुगे यशः ॥ २०० ॥

सुभग बादरादेये निर्मित् त्रसमिति स्फुटम् । उदय विंशतिर्याति प्रतरे लोकपूरणे ॥ २०१ ॥

२० । भगः १ ।

आठके उदयस्थानका एक भंग, नौके उदयस्थानका एक भंग, और पूर्वमें इक्तीसका एक भग बताया है। इस प्रकार इस केवलीके सर्व भग ३ हो जाते हैं।

यहां पर्यंत सर्व मनुष्यगतिमें नौ अधिक छब्बीस सौ भगोंको बताया है। आहारकके सर्व चार भंग बताये उससे ऊपर साधारण मनुष्यमानके गर्भ तथा समूर्छन जन्मोंको लेकर २६०२ भंग बताये। इसके आगे ये केवलीके तीन भग बताये हैं। ये सर्व मिलानेसे २६०९ भग होजाते हैं। अब सयोग केवलीके सात उदयस्थानोंको आगे बताते हैं। ये सात उदयस्थान तीर्थंकर प्रकृति जिनके उदयमें नहीं है उन केवलीके समझने चाहिये ॥ १९८ ॥

वे सात उदयस्थान—२०का, २१ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का–इस प्रकार हैं ॥ १९९

सबसे प्रथम वीसका स्थान बताते हैं।—मनुष्यगति, कार्मण, तैजस, पर्याप्ति, वर्णादि चार, पचेंद्रियजाति, अगुरुलघु आदि चार, शुभद्वय, स्थिरद्वय, यशःकीर्ति, सुभग, बादर, आदेय, निर्माण, त्रस–ये वीस प्रकृति हैं। इनका उदय प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातके समयमें होता है ॥ २००–२०१ ॥

तत्र प्रतरे समयः १ । लोकपूरणे १ । पुनः प्रतरे १ । इत्थं त्रयः समयाः ३ ।

आद्ये संहनने क्षिप्ते प्रत्येकौदारिकद्वये । उपघाताख्यसंस्थानषट्कैकतरयोरपि ॥ २०२ ॥

षाड्विंशतमिदं स्थानं कपाटस्थस्य योगिनः । संस्थानैकतरैः षड्भिर्भंगषट्कमिहोदितम् ॥ २०३ ॥

२६ । भंगाः ६ ।

परघातखगत्यन्यतराभ्यां सहितं मतम् । तदाष्टाविंशतं स्थानं योगिनो दंडयायिनः ॥ २०४ ॥

२८ । अत्र द्वादश भंगाः १२ ।

समुद्घातमें बढते समयके प्रतरका समय १, फिर लोकपूरणका समय १, फिर घटते समय प्रतरका समय १—ऐसे तीन समय पर्यंत यह वीसीका उदयस्थान रहता है ।

अब छव्वीसका स्थान बताते हैं ।

आदिका संहनन एक वज्रर्षभनाराच, प्रत्येक, औदारिकद्वय, उपघात, तथा छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान—ऐसे इन छह प्रकृतियोंको ऊपरकी वीसमें जोडदेनेसे छव्वीसका यह स्थान हो जाता है । छह संस्थानोंमेंसे किसी भी एकका उदय सामान्य केवलीके हो सकता है इसलिये संस्थानकी छह संख्यासे इस छव्वीसीके स्थानमें भंग छह हो जाते हैं । इसका समय योगीके कपाट समुद्घात समयमें होता है । २०२–२०३ ।

अब सयोग केवलीके अट्ठाईसका उदयस्थान बताते हैं ।—

ऊपरकी छव्वीस प्रकृतियोंमें एक परघात और दूसरी प्रकृति विहायोगतिद्वयमेंसे कोई भी एक मिल जानेसे अट्ठाईस होजाती है । यह अट्ठाईसका स्थान दंड समुद्घातके पहिले तथा उतरते समय अंतके समयमें रहता है । विहायोगतिद्वयका यहां क्रमसे संभव है इसलिये ऊपरके जो छह भंग छह संस्थानके कारण होते थे उनको इस विहायोगति युगलसे गुणा कर देनेपर यहां बारह (१२) भंग हो जाते हैं । २०४ ।

तदुच्छ्वाससयुत स्थानमेकोनत्रिंशतं स्मृतम् । आनपर्याप्तपर्याप्ते भगाः पूर्वनिवेदिताः ॥ २०५ ॥

२९ । भगाः १२ ।

त्रैंशत पूर्णभापस्य स्वरैकतरसयुतम् । चतुर्विंशतिरत्रोक्ता भगा भंगविशारदैः ॥ २०६ ॥

३० । भगाः २४ ।

पृथक्तीर्थकृता योगे स्थानानां पचक परम् । प्रथमं तत्र सस्थान प्रशस्तौ च गतिस्वरौ ॥ २०७ ॥

अब सयोगीमें उन्तीसके स्थानको बताते हैं ।—

दड समुद्घातपर्यंत लौटकर आजानेके बाद जब प्रदेश शरीरप्रमाण होते हैं उस समय प्राण अथवा श्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर उछ्वास प्रकृतिका फिर उदय सुरू होता है इसलिये यहां स्थान उन्तीसका होजाता है ।—ऊपरकी २८ में १ उच्छ्वास प्रकृति यहा बढ जाती है। भंग पूर्वके समान १२ ही इस उन्तीसके स्थानमें हैं ॥ २०५ ॥

अब तीसके स्थानको सयोग केवलीमें दिखाते हैं ।—

भाषापर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर वचनकी शक्ति प्रगट होती है इसलिये दो स्वरमेंसे कोई एक स्वर प्रकृति उदयमें आजाती है । इसलिये ऊपरके स्थानमें एक स्वर बढ जानेसे यहा तीस प्रकृतिका स्थान हो जाता है। इसमें भग २४ हो जाते हैं । पूर्वमें १२ भग बताये हैं किंतु यहा स्वरद्वयकी सख्यासे गुणा होनेपर २४ भगसंख्या हो जाती है ॥ २०६ ॥

अब तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसहित जो स्थान होते हैं उनको बताते हैं ।—

इन ऊपरके सयोगकेवलीके स्थानोंमें एक जुदी तीर्थंकर प्रकृति जिसके उदयमें होती है उसके पाच स्थान क्रमसे एक एक संख्या अधिकके हो जाते हैं । और इस तीर्थंकर प्रकृतिवालेके सस्थान, आदिका समचतुरस्र ही होता है, एव विहायोगति तथा स्वर ये दोनो प्रकृति भी उसके प्रशस्त ही रहती हैं, अप्रशस्त नहीं रहती । इसी कारण उसके भग प्रत्येक स्थानमें एक एक ही होते हैं ॥ २०७ ॥

इति तीर्थकृति सयोगे स्थानानि । २१ । २८ । २९ । ३० । ३१ । एकैकेन पञ्चसु भंगाः ५ । एव सयोगभंगा. ६० ॥

अत्रैकत्रिंशतं स्थान पंचम पूर्वभाषितम् । भंगो न पुनरुक्तत्वात्तदीयः परिगृह्यते ॥ २०८ ॥

भावार्थ—सयोगकेवलीके जो पाच स्थान पूर्वमें बताये है उनमें पहिला स्थान २० प्रकृतिका है । उसमें तीर्थंकर प्रकृतिके मिल जानेसे तीर्थंकर केवलीका यह प्रथम स्थान २१ प्रकृतिरूप होता है । यह स्थान पूर्वके समान प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातमें होता है । इसी प्रकार सामान्य केवलीका दूसरा स्थान २६ का है । परतु तीर्थंकरके तीर्थंकरत्व प्रकृतिका उदय बढ जानेसे २७ का स्थान होजाता है । सामान्य केवलीका तीसरा स्थान परघात तथा विहायोगति बढ जानेसे २८ का बताया है किंतु तीर्थंकरके तीर्थंकर प्रकृति बढजानेसे २९ का स्थान होजाता है । इसी प्रकार सामान्य केवलीके जहां २९ का स्थान उच्छ्वास बढ जानेसे बताया है, वहा तीर्थंकरके ३० का स्थान होजाता है । एवं सामान्य केवलीके जहां स्वर बढ जानेसे ३० का स्थान बताया है, वहा तीर्थंकरके तीर्थंकर प्रकृति बढ जानेके कारण ३१ का स्थान होजाता है। ऐसे ऊपरके पाच स्थानोंमें एक एक सख्या बढकर पाच स्थान तीर्थंकर केवलीके २१ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का–ये हो जाते हैं ।

इन पांचो स्थानोंमें एक एक ही भग है । क्योंकि, अधिक भंग होनेके कारण—छह संस्थानोंमेंसे किसी एकका उदय, विहायोगतिद्वयमेंसे किसी एकका उदय, स्वरयुगलमेंसे किसी एकका उदय–ये थे, किंतु तीर्थंकर केवलीके संस्थान आदिका एक समचतुरस्र ही है, विहायोगति प्रशस्त एक ही है, और स्वर भी एक प्रशस्त अथवा सुस्वर ही उदयमें आता है । इस कारण अधिक भग नहीं हो पाते हैं । इस प्रकार तीर्थंकर केवलीके पाच स्थानोंके पांच भग, और ऊपर सामान्य केवलीके ५५ भंग बताये हैं । दोनों सयोग केवलियोंके मिलकर ६० भंग होते हैं । परतु,—

इकतीसका स्थान जो पाचवां है वह पहिले भी बतादिया है । उसका एक भंग पूर्वके भगोंमें एकवार जोडागया है इसलिये पुनरुक्त भयसे यहां न जोडकर भगोंकी सर्व संख्या ६० न मानकर ५९ माननी चाहिये ॥ २०८ ॥

॥४५२॥

शेषाः ५९। सहैतैस्ते पूर्वोदिताः २६०९—एतावतः २६६८। इति सर्वे नृगतिभंगाः।

एवं मनुष्यगतिः समाप्ता।

अस्त्येकपंचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात्। नाम्नो दिवौकसां रीत्यावुदये स्थानपंचकम्॥ २०९॥

२१। २५। २७। २८। २९।

तत्रैकविंशत पूर्णं देवद्वितयकार्मणे। स्थूलं शुभस्थिरद्वन्द्वे यशो वर्णचतुष्टयम्॥ २१०॥

ये ५९ भंग, और पूर्वमें शेष मनुष्योंके शेष सर्व गुणस्थानसंबधी २६०९ भंग बताये थे—इन दोनों संख्याओंको जो डनेसे सर्व मनुष्योंमें नामके उदयस्थान संबधी भंग २६६८ होते हैं।

यह इकतीसका एक भंग पुनरुक्त होनेसे घट गया तो ये भंग ५९ रहे। और पूर्वमें २६०९ भंग बताये हैं। दोनों को जोडनेसे सर्व २६६८ भंग मनुष्यगतिके होते हैं।

इस प्रकार नामकर्मके मनुष्यगतिमें उदयस्थान वर्णन करनेवाला प्रकरण समाप्त हुआ।

अब देवगतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंको आगे बताते हैं।—

देवगतिमे नामके उदयस्थान पांच हैं। एक, एक अधिक वीसका अर्थात् २१ का है। दूसरा पांच अधिक वीसका अर्थात् २५ का है। तीसरा २७ का, चौथा २८ का, पांचवां २९ का है॥ २०९॥

२१ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का—ये सर्व पांच स्थान हैं।

इक्कीसका प्रथम स्थान है उसे प्रथम बताते हैं।—

पूर्ण अर्थात् पर्याप्ति, देवगतिद्वय, कार्मण, बादर, शुभद्वय, स्थिरद्वय, यश कीर्ति, वर्णादि चार, पंचेंद्रिय जाति, सुभग,

१—मूलमें पाठ 'पूर्व' ऐसा है। परतु पर्याप्ति कर्मका उदय गिनानेसे ही इक्कीसकी संख्या पूरी होती है, तथा पर्याप्ति कर्मका उदय देवोंमें मानना ही पडता है इसलिये पर्याप्ति अर्थ करनेके लिये 'पूर्ण' ऐसा पाठ ही ठीक ठहरता है। पूर्णका अर्थ पर्याप्ति है।

पचाक्षं सुभगादेये तेजोऽगुरुलघु त्रसम्। निर्माणमिति वक्रत्तावेकद्वित्रिक्षणस्थितिः ॥ २११ ॥
२१। भंग १।
तदपास्तानुपूर्वीकं पांचविंशतमन्वितम् । प्रत्येकचतुरस्रोपघातवैक्रियिकद्विकै ॥ २१२ ॥

आदेय, तैजस, अगुरुलघु, त्रस, निर्माण— यह इक्कीसका स्थान है। विग्रह गतिमें इसका उदय होता है। एक, दो अथवा तीन समय इसकी स्थिति है। इसका भंग एक है ॥ २१०–२११ ॥

अब पचीसका स्थान बताते हैं।—

आनुपूर्वीका उदय विग्रहगतिके बाद छूट जाता है। विग्रहगतिके बाद अभीष्ट स्थानमें पहुंचकर जीव नवीन शरीरको रचने योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करना आरंभ करता है, वहासे लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत पचीसका उदय हो जाता है। इस पचीसी में ऊपरकी इक्कीस प्रकृति लेना। उनमेंसे आनुपूर्वी घटकर वीस रह जाती है, और प्रत्येक, समचतुरस्र संस्थान, उपघात,

---

१ तच्छिगिवीसं ठाणं देवदुग तेज कम्म वण्णचदुं। अगुरुयलहु पंचिंदिय तस वारय पज्जत्त ॥
थिरमथिरं सुभमसुभं सुहय आदेज्जय च सणिमिणं। विग्गहगईइएए एक वा दोव समयाणि ॥

मा० ग्रंथमालाकी मुद्रित पुस्तकमें नामके इक्कीसका उदय स्थान बतानेवाली यह प्राकृत पचसंग्रहकी गाथाएं उद्धृत की हैं। उनमें कोई विशेष वात नहीं है। किंतु एक यशःकीर्ति प्रकृतिका पाठ इनके पाठमेंसे छूट गया है और इसी कारण प्रथम गाथाका चौथा चरण अपूरा है। यदि उस चरणको 'तस बादर जस्स पज्जत्तं' ऐसा लिखें तो संभवत शुद्ध हो जाय। इस टिप्पणीसे यहापर कोई लाभ न होकर देखनेवालेका भ्रममें पडजाना मात्र संभव है। और 'बादर' शब्द चाहिये वहां 'वारय' अशुद्ध होगया है। इस गाथामें इकीसीकी स्थिति दो समय पर्यंत ही बताई है।

इद गृहीतदेहस्य यावद्देहस्य पूर्णताम् । एको भगोऽस्य कालस्तु भवेदन्तर्मुहूर्त्तक ॥ २१३ ॥

२५ । भगः १ ।

सत्रागन्यन्यघाताभ्यां तद्युक्त साप्तविंशतम् । कालोऽप्यस्यांगपर्याप्तौ विज्ञेयोऽन्तर्मुहूर्त्तकः ॥ २१४ ॥

२७ । भगः १ ।

पर्याप्तानस्य स च्छ्वास तदाष्टाविंशत स्मृतम् । यावद्वचनपर्याप्तिस्तावत्कालोऽस्य भाषितः ॥ २१५ ॥

२८ । भगः १ ।

एकोनत्रिंशत भाषापर्याप्तौ तन्ससुस्वरम् । जीवितव्यावधिः कालो भगानामेषु पचकम् ॥ २१६ ॥

२९ । भगः १ । एकत्र ५ ।

वैक्रियिक शरीर वैक्रियिक शरीरागोपांग–ये दो–इस प्रकार पाच नवीन प्रकृति उदयमें अधिक आने लगती हैं। इस लिये पच्चीसका यह स्थान हो जाता है। इसका भी भंग एक और काल अंतर्मुहूर्त है ॥ २१२—२१३ ॥

अब सत्ताईसका स्थान बतते हैं।–

शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेतक २५ का स्थान था। शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद सत्ताईसका स्थान सुरू होता है। प्रशस्त विहायोगति, परघात—ये दो प्रकृति बढ जानेसे यह सत्ताईसका स्थान हो जाता है। प्राणपर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम पर्यंत इसका काल अंतर्मुहूर्त हे। भंग भी इसमे एक ही समझो ॥ २१४ ॥

अब अट्ठाईसका स्थान बताते हैं।–

प्राणपर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर अट्ठाईसका स्थान सुरू होता है और भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम क्षण पर्यंत यह स्थान रहता है। इसलिए इसका भी काल अंतर्मुहूर्त है। ऊपरकी सत्ताईसीसे इसमें एक उच्छ्वास प्रकृति वढ जाती है। भंग इसका भी एक ही समझो ॥ २१५ ॥

अब उनतीसका स्थान बताते हैं।—

भाषा पर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद सुस्वर नाम प्रकृतिका उदय सुरू होता है, और ऊपरकी अट्ठाईस–इस प्रकार उन्तीसका

भाषापर्याप्तिपर्याप्ते प्रथमात्क्षणतः स्थिति । जीवितव्यावधिः प्रोक्ता कृतजीवितनिश्चयैः ॥ २१७ ॥
दशवर्षसहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्पयोधयः । अतर्मुहूर्तहीने स्तस्ते जघन्याजघन्यके ॥ २१८ ॥
सकलान्तर्मुहूर्त्तोना पूर्णमापे स्थितिर्जिनैः । प्रोक्तौपपादिकेऽन्यत्र जघन्यांतर्मुहूर्त्तिकी ॥ २१९ ॥

इति देवगति समाप्ता ।

सैकादशाः स्मृताः पाकाः षड्सप्ततिशतप्रमाः । एकोनषष्टिरन्यास्ति समुद्घातगते जिने ॥ २२० ॥
७६११ । समुद्घातगते नाम्नः पाकाः ५९ ।

यह स्थान हो जाता है । इसका काल जीवन पर्यंत है । इसका भग भी एक ही है । परंतु पाचो स्थानोंके सर्व भंग पांच होजाते हैं ॥ २१६ ॥

अब इस उन्तीसीके उदयका जघन्य उत्कृष्ट काल दिखाते हुए समर्थन करते हैं ।—

भाषा पर्याप्ति पूर्ण होते ही उसके प्रथम समयसे लेकर इस ऊपर बताई हुई उन्तीसीका उदय सुरू होता है और वह जीवन काल पर्यंत उदयमें रहता है ऐसा आयुका निश्चय करनेवाले सर्वज्ञ भगवानने कहा है । इसलिये भाषापर्याप्ति पूर्ण हुए तकके अतर्मुहूर्तसे घाट दश हजार वर्ष इस स्थानकी जघन्य स्थिति है, और अतर्मुहूर्तसे ही घाट तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥ २१७–२१८ ॥

इसी प्रकार औपपादिकोंमें भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेके बादमें जो स्थान होता है उसकी जघन्य उत्कृष्ट सर्व स्थिति, भाषापर्याप्तिसे पहिले तकका अंतर्मुहूर्त समय कम जीवन पर्यंत जिनेंद्रने बताई है । और अन्यत्र अर्थात् भाषापर्याप्तिसे पहिले जो उदयस्थान हैं उनकी स्थिति जघन्य अतर्मुहूर्त मात्र ही सर्वत्र है । २१८ । इस प्रकार देवगतिके नामकर्म संबन्धी उदयस्थान समाप्त हुए ।

अब उदयस्थानोंके सर्व भग मिलकर कितने हुए वह बताते हैं—

छिहत्तरि सौ ग्यारह उदयभग पूर्वमें कहे हैं, और समुद्घातवाले केवलीके उनसठि भंग हैं । इस प्रकार नाम कर्मके उदयस्थानगत सर्व ७६७० भग होते हैं । २२० । इति नाम प्रकृतियोंके उदयस्थान ।

अब नामकर्मके उदयस्थान गोमटसारमें जो बताये हैं उसको बताते हैं।

आगे नामकर्मके उदयस्थानोंको २२ गाथाओंसे कहते हैं,—

विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते । आणावचिपज्जत्ते कमेण पचोदये काला ॥ ५८३ ॥

विग्रहकर्मशरीरे शरीरमिश्रे शरीरपर्याप्ते । आनवच पर्याप्ते क्रमेण पञ्च उदये कालाः ॥ ५८३ ॥

अर्थः—नामकर्मके उदयस्थान विग्रहगति अथवा कार्माण शरीरमें, मिश्र (अपर्याप्त) शरीरमें, शरीर पर्याप्तिमें, आन-पर्याप्ति अर्थात् श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिमें, वचनपर्याप्तिमें नियतकाल है अर्थात् जिस कालमें उदय योग्य हैं उसी कालमें उदय होते है। इसतरह इनके पांच काल हुए ॥ ५८३ ॥

अब इन कालोंका प्रमाण कहते हैं,—

एक्क य दो य तिण्णि य समया अंतोमुहुत्तय तिसुवि । हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥ ५८४ ॥

एको वा द्वौ वा त्रयो वा समया अन्तर्मुहूर्तक त्रिष्वपि । अधस्तनकालोन चरमस्य च उदयकालस्तु ॥ ५८४ ॥

अर्थ—उन उदय कालोंका प्रमाण क्रमसे १ समय वा २ समय अथवा ३ समय विग्रहगतिमें, और शरीरमिश्रादि ३ में अंतर्मुहूर्त २ प्रमाण है, और अंतकी भाषापर्याप्तिमें पूर्वकथित चारोंका काल घटानेसे शेष भुज्यमान आयुप्रमाण काल जानना ॥ ५८४ ॥

आगे उन पांच कालोंको जीवसमासमें दिखलाते हैं;—

सव्वापज्जत्ताण दोण्णिवि काला चउक्कमेयक्खे । पंचवि होंति तसाण आहारस्सुवरिमचउक्कं ॥ ५८५ ॥

सर्वापर्याप्तानां द्वावपि कालौ चतुष्कमेकाक्षे । पञ्चापि भवन्ति त्रसानामाहारस्योपरिमचतुष्कम् ॥ ५८५ ॥

अर्थ—सब लब्ध्यपर्याप्तकोंमें पहलेके २ काल, एकेंद्रीमें ४ काल, त्रसोंमें ५ काल हैं और आहारक शरीरमें पहलेके विना आगेके ४ काल हैं ॥ ५८५ ॥

कम्मोरालियमिस्सं ओरालुस्सास भास इदि कमसो । काला हु समुग्घादे उवसहरमाणगे पंच ॥ ५८६ ॥
कर्मौरालिकमिश्रमौरालोच्छ्वासभाषेति क्रमश । काला हि समुद्घाते उपसंहरमाणके पञ्च ॥ ५८६ ॥

अर्थ—समुद्घातकेवलीके कार्माण १ औदारिकमिश्र २ औदारिकशरीरपर्याप्ति ३ उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्ति ४ भाषापर्याप्ति काल ५–इस प्रकार पाच काल क्रमसे अपने प्रदेशोंके सकोच करने (समेटने) के समय ही होते हैं। विस्तार (फैलाने) के समय ३ ही काल हैं ॥ ५८६ ॥

अब यही कहते हैं;—

ओराल दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु । पदरे य लोगपूरे कम्मे व य होदि णायव्वो ॥ ५८७ ॥
औरालं दण्डद्विके कपाटयुगले च तस्य मिश्रं तु । प्रतरे च लोकपूरे कर्म्मणि वा च भवति ज्ञातव्य ॥ ५८७ ॥

अर्थ—दंडसमुद्घातके करने वा समेटनेरूप युगलमें औदारिक शरीर पर्याप्ति काल है, कपाट समुद्घातके करने और समेटनेरूप युगलमें औदारिकमिश्रशरीर काल है, प्रतरसमुद्घातमें और लोकपूरण समुद्घातमें कार्माण काल है । इस प्रकार प्रदेशोंके विस्तार करनेपर ३ ही काल हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ५८७ ॥

आगे नामकर्मके उदयस्थानोंकी उत्पत्तिका क्रम ४ गाथाओंसे कहते हैं —

णामधुवोदयबारस गइजाईणं च तसतिजुम्माण । सुभगादेज्जजसाण जुम्मेक विग्गहे वाणू ॥ ५८८ ॥
नामध्रुवोदयद्वादश गतिजातीना च त्रसत्रियुग्मानाम् । सुभगादेययशसां युग्मैकं विग्रहे वानु ॥ ५८८ ॥

अर्थ—“तेजदुगं वण्णचऊ” इस गाथासे कही हुई नामकर्मकी १२ ध्रुवप्रकृतियां, ४ गति, ५ जाति, त्रसादि त्रस वादर पर्याप्ति ये तीनका जोडा, सुभग–आदेय–यशस्कीर्ति, इन तीनका जोडा—इनमेंसे एक एक प्रकृतिका और ४ आनुपूर्वी प्रकृतियोंमें कोई एकका उदय होनेसे २१ प्रकृतिरूपस्थानका उदय विग्रहगतिमें होता है । ५८८ ।

मिस्सम्हि तिअगाण सठाणाणं च एगदरग तु । पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो ॥ ५८९ ॥
मिश्रे त्र्यङ्गाना सस्थानाना च एकतरक तु । प्रत्येकद्विकयोरेक उपघातो भवति उदयगत ॥ ५८९ ॥

अर्थ—उस २१ प्रकृतिरूप उदयस्थानमेंसे आनुपूर्वी घटाके और औदारिकादि तीन शरीरोंमेंसे एक, छह संस्थानोंमेंसे १, प्रत्येक-साधारण इन दोनोंमेंसे एक, और उपघात-ये चार मिलानेसे २४ का स्थान होता है यह स्थान मिश्रशरीरके कालमें उदय होता है ॥ ५८९ ॥

तसमिस्से ताणि पुणो अंगोवगाणमेगदरगं तु । छण्हं सहडणाणं एगदरो उदयगो होदि ॥ ५९० ॥
परघादअगपुण्णे आदावदुगं विहायमविरुद्धे । सासवची तप्पुण्णे कमेण तित्थं च केवलिणि ॥ ५९१ ॥ जुम्मं ॥
त्रसमिश्रे तानि पुनः अङ्गोपाङ्गानामेकतरक तु । षण्णां सहननानामेकतरमुदयक भवति ॥ ५९० ॥
परघातमङ्गपूर्णे आतापद्विक विहायोऽविरुद्धे । श्वासवचसी तत्पूर्णे क्रमेण तीर्थं च केवलिनि ॥ ५९१ ॥ युग्मम् ।

अर्थ—पहले कही हुई ४ प्रकृतियां, तीन अंगोपागोंमेंसे १, छह सहननोंमेंसे १, ये सब ६ प्रकृतियां मिश्रशरीरवाले त्रसजीवके उदययोग्य हैं। और शरीरपर्याप्तिकालमें परघात प्रकृति उदय होती है। आताप—उद्योत ये दोनों तथा विहायोगति दोनों—ये योग्य त्रसस्थावरके पर्याप्तिकालमें उदय होती हैं। उच्छ्वास और स्वरयुगल-अपने अपने पर्याप्तिकालमें उदय होते हैं। और क्रमसे केवलीमें ही तीर्थंकर प्रकृतिका उदय होता है ॥ ५९० । ५९१ ॥

आगे एक जीवकी अपेक्षा वा नाना जीवोंकी अपेक्षासे जो नामकर्मके उदयस्थान कहे गये हैं उन्हीको दिखलाते हैं—

वीसं इगिचउवीसं तत्तो इगितीसओत्ति एयधियं । उदयट्ठाणा एवं णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥ ५९२ ॥
विंशमेकचतुर्विंश तत एकत्रिंशदिति एकाधिकम् । उदयस्थानान्येव नवाष्ट च भवन्ति नाम्न. ॥ ५९२

अर्थ—नामकर्मके उदयस्थान, २०, २१, २४ का, इससे एक एक अधिक ३१ के स्थान पर्यंत, ९, ८ का इस प्रकार १२ हैं। ५९२

अब उन स्थानोंके स्वामियोंको कहते हैं,—

चदुगदिया एइंदी विसेसमणुदेवणिरयएइंदी । इगिवितिचपसामण्णा विसेसमसुरणारगेइंदी ॥ ५९३ ॥
सामण्णसयलवियलविसेसमणुस्ससुरणारया दोण्ह । सयलवियलसामण्णा सजोगपचक्खवियलया सामी ॥५९४॥ जुम्म

॥४५९॥

चतुर्गतिका एकेन्द्रिया विशेषमनुदेवनिर्यकेन्द्रिया । एकद्वित्रिचपसामान्या विशेषसुरनारकैकेन्द्रिया ॥ ५९३ ॥
सामान्यसकलविकलविशेषमनुष्यसुरनारका द्वयो· । सकलविकलसामान्या सयोगश्चाक्षविकलका स्वामिन ॥५९४॥ युगमम्.

अर्थ——२१ के स्थानके चारोंगतिके जीव स्वामी हैं, २४ के एकेंद्री, २५ के विशेषमनुष्य–देव–नारकी–एकेंद्रिय स्वामी हैं, २६ के एकेंद्री–तेंइंद्री–चौइंद्री–पंचेंद्री–सामान्यजीव स्वामी हैं, २७ के विशेषपुरुष–देव–नारकी एकेंद्री स्वामी हैं, २८ और २९ के स्थानके सामान्यपुरुष पचेंद्री–विकलेंद्री–विशेषपुरुष–देव–नारकी स्वामी हैं, ३० के पचेंद्री–विकलेंद्री—सामान्यपुरुष स्वामी हैं, ३१ के सयोगकेवली-पचेंद्री-दोइंद्री आदि-विकलेंद्री जीव स्वामी हैं॥ ५९३ । ५९४ ॥ ९ और ८ के स्थानके अयोगकेवली स्वामी हैं।

एगे इगिवीसपण इगिछव्वीसट्ठवीसतिण्णि णरे । सयले वियलेवि तहा इगितीस चावि चचिठाणे ॥ ५९५ ॥
सुरणिरयविसेसणरे इगिपणसगवीसतिण्णि समुघादे । मणुस वा इगिवीसे वीस रूवाहिय तित्थ ॥ ५९६ ॥
वीसदु चउवीसचऊ पणछव्वीसादिपचयं दोसु । उगुतीसति पणकाले गयजोगे होंति णव अट्ठं ॥ ५९७ ॥ विसेसयं
एकस्मिन्नेकविंशतिपञ्च एकषड्विंशाष्टविंशत्रीणि नरे । सकले विकलेपि तथा एकत्रिंशत् चापि वच स्थाने ॥ ५९५ ॥
सुरनिरयविशेषनरे एकपञ्चसप्तविंशत्रीणि समुद्घाते । मनुष्यं वा एकविंशे विंश रूपाधिक तीर्थम् ॥ ५९६ ॥
विंशद्विकं चतुर्विंशचतुष्कं पञ्चषड्विंशादिपञ्चक द्वयो । एकोनत्रिंशत्रिकं पञ्चकालेषु गतयोगे भवन्ति नवाष्ट ॥५९७॥ विशेषकम् ।

अर्थ—पहले कहे हुए पांच कालोंमें यथासंभव क्रमसे एकेंद्रीके उदय योग्य २१ आदि पाच स्थान हैं, मनुष्यके उदययोग्य २१–२६ और २८ आदि तीन स्थान, इस तरह ५ स्थान हैं। सकलेन्द्री अर्थात् पचेंद्री और दोइन्द्री आदि विकलेंद्री तिर्यंचोंके उदययोग्य २१ आदि ५ स्थान और भाषापर्याप्तिमें ३१ का स्थान–इस प्रकार ६ स्थान हैं। देव नारकी, आहारक और केवल सहित विशेष मनुष्य इनके २१–२५–२७ आदि ३, इसप्रकार ५ स्थान उदय योग्य हैं। समुद्घातकेवलीके मनुष्यकी तरह २१ मेंसे २० का ही स्थान होता है क्योंकि आनुपूर्वी कम हो जाती है। तीर्थंकर समुद्घातकेवलीके तोर्थंकर प्रकृति बढनेसे

२१ का स्थान होता है। इस प्रकार केवलीके २० और २१ के दो स्थान उदय योग्य हैं। मिश्रशरीरकालमें २४ आदि ४ चार स्थान, शरीर पर्याप्तिकालमें २५ आदि ५ स्थान, आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) पर्याप्तिकालमें २६ आदि पांच स्थान, भाषापर्याप्ति कालमें २९ आदि ३ स्थान उदय योग्य हैं। और अयोगी केवलीके ९ और ८ का ये दो स्थान उदय योग्य हैं ॥५९५-९६-९७॥

अब अयोगी गुणस्थानके दो स्थानोंका स्वरूप कहते हैं—

गयजोगस्स य बारे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु। णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु ॥ ५९८ ॥

गतयोगस्य च द्वादश तृतीयायुष्कगोत्रमिति विहीनेषु। नाम्नश्च नव उदया अष्टैव च तीर्थहीनेषु ॥ ५९८ ॥

अर्थ—अयोगकेवलीकी १२ उदय प्रकृतियोंमेंसे वेदनीय–आयु–गोत्र इनकी ३ प्रकृतियां कम करनेपर नाम कर्मकी ९ उदय योग्य हैं। और जो तीर्थंकर प्रकृति नहीं हो तो ८ ही उदय योग्य हैं ॥ ५९८ ॥

आगे नामकर्मके उदय स्थानोंमें भंगोंको कहते हैं—

सठाणे सहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे। अविरुद्धेक्कदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा हु ॥ ५९९ ॥

संस्थाने संहनने विहायोयुग्मे च चरमचतुर्युग्मे। अविरुद्धैकतरस्मात् उदयस्थाने भङ्गा हि ॥ ५९९ ॥

अर्थ—६ संस्थानोंमेंसे, ६ संहननोंमेंसे, विहायोगतियुगलमेंसे, और अंतके सुभग आदि ४ युगलोंमेंसे अविरोधी एक एक प्रकृतिका ग्रहण करनेपर नामकर्मके भंग होते हैं। इन सबको आपसमें गुणा करनेसे ११५२ भंग हो जाते हैं ॥ ५९९ ॥

आगे उन भंगोंमेंसे नारक आदि ४१ जीवपदोंमें संभव होनेवाले भंगोंको ३ गाथाओंसे कहते हैं—

तत्थासत्था णारयसाहारणसुहुमगे अपुण्णे य। सेसेगविगलऽसण्णीजुदठाणे जसजुगे भंगा ॥ ६०० ॥

तत्राशस्ता नारकसाधारणसूक्ष्मके अपूर्णे च। शेषैकविकलासंज्ञियुतस्थाने यशोयुग्मे भंगा ॥ ६०० ॥

अर्थ—उन उदय प्रकृतियोंमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका उदय नारकी–साधारणवनस्पती सब सूक्ष्म–लब्ध्यपर्याप्तक इन सबमें है इस कारण एक एक भंग है। शेष एकेन्द्री-विकलेन्द्री-असंज्ञीपंचेंद्री इनमें पूर्व कथित अप्रशस्तका उदय तो है ही परंतु यशस्कीर्ति

अयशस्कीर्ति इन दोनोंमेसे किसी एकका उदय होनेसे उदयस्थानोंमें दो दो भंग हो जाते हैं अर्थात् एक यशस्कीर्ति उदयस्थान १ दूसरा अयशस्कीर्ति उदयस्थान २–इस तरह दो भेद होजाते हैं ॥ ६०० ॥

सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य ओघेक्कदर तु केवले वज्जं । सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि ॥ ६०१ ॥

संज्ञिनि मनुष्ये च ओघैकतर तु केवले वज्रम् । सुभगादेययशांसि च तीर्थयुते शस्तमेतीति ॥ ६०१ ॥

अर्थ—सञ्ज्ञी पचेन्द्रीके और मनुष्यके सामान्यकथनवत् एक एकका उदय होनेसे ११५२ भंग होते हैं । केवलज्ञान-अवस्थामें वज्रर्षभनाराचसंहनन १ सुभग २ आदेय ३ यशस्कीर्ति ४ इनका उदय होता है । तीर्थंकरप्रकृति सहित केवलीके अर्थात् तीर्थंकर केवलीके सब प्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय होनेसे उनके उदयस्थानोंमें एक एक ही भंग है ॥ ६०१ ॥

देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो । वोच्छिण्ण जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु ॥ ६०२ ॥

देवाहारे शस्त कालविकल्पेषु भङ्ग आनेय । व्युच्छिन्न ज्ञात्वा गुणप्रतिपन्नेषु सर्वेषु ॥ ६०२ ॥

अर्थ—चार प्रकारके देवोंमें और आहारकशरीरसहित प्रमत्तमें प्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय है, इसकारण उनके सब कालके उदयस्थानोंमें एक एक ही भंग है । और सासादनादि गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंमें अथवा विग्रहगतिकार्माणादिकके कालमें व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको जानकर शेष प्रकृतियोंके भंग यथासंभव समझलेना ॥ ६०२ ॥

वीसादीणं भंगा इगिदालपदेसु संभवा कमसो । एक्क सट्ठी चेव य सत्तावीस च उगुवीसं ॥ ६०३ ॥
वीसुत्तरछच्चसया बारस पण्णत्तरीहि संजुत्ता । एक्कारससयसंखा सत्तरससयाहिया सट्ठी ॥ ६०४ ॥
ऊणत्तीससयाहियएक्कावीसा तदोवि एकट्ठी । एक्कारससयसहिया एक्केक्क विसरिसगा भंगा ॥ ६०५ ॥ विसेसयं ॥

विंशादीनां भङ्गा एकचत्वारिंशत्पदेषु संभवा क्रमशः । एकः षष्टि चैव च सप्तविंशं च एकोनविंशम् ॥ ६०३ ॥
विंशोत्तरषट् च शतानि द्वादश पञ्चसप्ततिभि संयुक्ता । एकादशशतसंख्या सप्तदशशताधिका षष्टि ॥ ६०४ ॥
एकोनत्रिंशच्छताधिकैकविंशं ततोपि एकषष्टि । एकादशशतसहिता एकैकं विसदृशगा भङ्गा ॥ ६०५ ॥ विशेषकम् ।

अर्थ—२० के स्थानको आदिलेकर स्थानोंके भंग ४१ जीवपदोंकी अपेक्षा यथासंभव क्रमसे १, ६०, २७, १९, ६२०, १२, ११७५, १७६०, २९२१, ११६१, तीर्थसमुद्घातकेवलीका १ पुनरुक्तभंग, अयोगकेवलीके तीर्थंकर प्रकृति सहितका १ और तीर्थंकर रहितका १ भंग—इस कारण ७७५८ भग होते हैं ॥ ६०३–६०४–६०५ ॥

आगे उन पुनरुक्तभगोंको कहते हैं,—

सामण्णकेवलिस्स समुग्घादगदस्स तस्स वचि भंगा । तित्थस्सवि सगभगा समेदि तत्थेक्कमवणिज्जो ॥ ६०६ ॥

सामान्यकेवलिन समुद्घातगतस्य तस्य वचसि भङ्गा । तीर्थस्यापि स्वकभङ्गा समा इति तत्रैकोपनेय ॥ ६०६ ॥

अर्थ —भाषापर्याप्तिकालमें सामान्यकेवलीके तथा समुद्घातसहित सामान्यकेवलीके २४ भग समान हैं । और तीर्थंकर केवली व तीर्थंकर समुद्घातकेवलीके ३१ स्थानमें एक एक भंग है वह समान है इस कारण २५ भंग पुनरुक्त होनेसे ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ ६०६ ॥

आगे गुणस्थानोंमें उन भंगोंको कहते हैं,-

णारयसण्णिमणुस्ससुराण उवरिमगुणाण भंगा जे । पुणरुत्ता इदि अवणिय भणिया मिच्छस्स भगेसु ॥ ६०७ ॥

नारकसंज्ञिमनुष्यसुराणामुपरितनगुणानां भङ्गा ये । पुनरुक्ता इति अपनीय भणिता मिथ्यस्य भङ्गेषु ॥ ६०७ ॥

अर्थ—नारकी–संज्ञीतिर्यंच–मनुष्य–देव इनके ऊपरके अर्थात् सासादनादिगुणस्थानोंमें जो भग हैं वे मिथ्यादृष्टिके भंगोंके समान होनेसे पुनरुक्त हैं, इसलिये वे घटाकर केवल मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें कहे गये हैं ॥ ६०७ ॥

अब उन भंगोंका सब जोड कहते हैं;—

अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा य होंति पिंडेण । उदयट्ठाणे भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥ ६०८ ॥

अष्टपञ्चाशत् सप्तशतानि सप्तसहस्राणि च भवन्ति पिण्डेन । उदयस्थाने भगा असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥ ६०८ ॥

अर्थ—सहायता रहित पराक्रमवाले श्री महावीर स्वामीने सब मिलाकर ७७५८ भग उदयस्थानोंमें कहे हैं ॥ ६०८ ॥

त्रिद्व्येकसहिता सत्वे नवतिर्नवतिः परा । क्रमादष्टचतुर्द्व्यग्राऽशीतिः सा च निवेदिता ॥ २२१ ॥
निरेकद्वित्रिकाशीतिर्नाम्नो दश नवापराः । सत्त्वस्थानानि विज्ञाय योज्यानीति त्रयोदश ॥ २२२ ॥
९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।
तत्र त्रिनवतिः सर्वास्तीर्थेशाहारकद्विकैः । हीना स्थानत्रये कार्याः क्रमादेकद्विकत्रिभिः ॥ २२३ ॥
आद्ये स्थाने ९३ । त्रिष्वतः स्थानेषु ९२ । ९१ । ९० ।

अब नामकर्म सत्त्वस्थान प्रकरण.

नाम कर्मकी सर्व प्रकृति, पिंड प्रकृतियोंके उत्तर भेद लेनेपर ९३ है। उनमेंसे तीन अधिक नब्बे अर्थात् ९३ का एक सत्त्वस्थान है। दूसरा दो अधिक नब्मे अर्थात् ९२ का स्थान है। तीसरा एक अधिक नब्मे अर्थात् ९१ का स्थान है। चौथा 'नवति' अर्थात् केवल नब्मे (९०) का स्थान है। फिर पांचवा स्थान क्रमसे आठ अधिक अस्सीका अर्थात् ८८ का है। छट्ठा स्थान चार अधिक अस्सीका अर्थात् ८४ का है। सातवा दो अधिक अस्सीका अर्थात् ८२ का है। आठवा 'सा च' अर्थात् केवल अस्सी [८०] का है। फिर नौवा स्थान अस्सीमें निरेक अर्थात् एक घाटका अर्थात् उनासी [७९] का है। दशवां स्थान दो घाट अस्सीका अर्थात् अठत्तरि (७८) का है। ग्यारहवां स्थान तीन घाट अस्सीका अर्थात् सतत्तरि (७७) का है। बारहवें स्थानमें नामकी दश सत्त्वप्रकृति हैं। और तेरहवें स्थानमें नौ [९] प्रकृति हैं।

इस प्रकार इन-९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९—के तेरह सत्त्व स्थानोंको समझकर यथायोग्य लगालेना चाहिये ॥ २२१-२२२ ॥

अब आगे यह दिखाते हैं कि ऊपर बताये हुए तेरह स्थान किन किन प्रकृतियोंसे बनते हैं। उन तेरह स्थानोंमेंसे आदिके चार स्थानोंको प्रथम दिखाते हैं।—

सबसे प्रथम जो ९३ का स्थान बताया है उसमें नामकर्मकी सर्व प्रकृति हैं। फिर ९२ का ९१ का तथा ९० का—ये तीन स्थान, तीर्थंकर तथा आहारकद्वय-इन तीनके यथायोग्य घटानेसे बनते हैं। केवल एक तीर्थंकरके घटानेसे ९२ का

त्यक्ते देवद्वये श्वभ्रचतुष्के नृद्वये क्रमात् । नवतेर्नरतिर्यक्षु स्थानानां त्रितयं स्मृतम् ॥ २२४ ॥
नरतिर्यक्षु ८८ । ८४ । तिर्यक्षु ८२ ।
तिर्यङ्नारकयोर्युग्मे एकाक्षं स्थावरातपौ । विकलत्रिकमुद्योत सूक्ष्म साधारणाह्वयम् ॥ २२५ ॥

स्थान बनता है । आहारकद्वयको केवल घटानेसे ९२ का स्थान बनता है । और उक्त तीनो प्रकृतियोंके घटानेपर ९० का स्थान बनता है । इस प्रकार ये ऊपरके चार स्थान बन जाते हैं ॥ २२३ ॥

अब ८८, ८४, ८२ के तीन स्थानोंको बताते हैं ।—

देवगति तथा देवगत्यानुपूर्वी—इस देवद्वयके छोड देनेपर अठासीका स्थान मनुष्योंमें और तिर्यचोंमें बनता है । नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नारकसबधी वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग–इन चार प्रकृतियोंको श्वभ्रचतुष्क अथवा नरकचतुष्टय कहते हैं । जिन मनुष्य-तिर्यचोंमें ऊपरके देवद्वयकी भी तथा इस नरकचतुष्टयकी भी सत्ता न हो उन मनुष्योंमें और उन तिर्यचोंमें चौरासीका सत्त्व स्थान होता है । जिनके उक्त छह प्रकृतियोंकी भी सत्ता न हो तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी--इस मनुष्यद्वय की भी सत्ता न हो उनमें ब्यासीका सत्त्व स्थान समझना । क्योंकि नब्बेमेंमें आठ घट जानेपर ब्यासी शेष रहते हैं । तीर्थकरत्व तथा आहारकद्वय इन तीनका अभाव ऊपर ही बता दिया है । इसलिये यहा जो आठ प्रकृतियोंको घटाया है वह नब्बेमेंसे ही घटाया है । देव द्वय, नरक चतुष्टय तथा मनुष्य द्वय—इन तीनों गति संबंधी कर्म घट जानेसे यह ब्यासीका स्थान तिर्यंचोंमें ही मिलता है ॥ २२४ ॥

अब ८०, ७९, ७८, ७७—के चार स्थानोंकी सत्त्व प्रकृतियोंको बताते हैं ।—

तिर्यग्गतिद्वय, नरकगतिद्वय, एकेंद्रिय जाति, स्थावर, आतप, उद्योत, द्वीन्द्रिय–त्रींद्रिय–चतुरिंद्रिय–ये तीन विकलेंद्रिय की तीन जाति, सूक्ष्म, साधारण—ये सर्व तेरह प्रकृति होती हैं । आदिके–सबसे ऊपरके जो चार स्थान–९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का—ये बताये गये हैं इनमेंसे ऊपर बताई हुई तेरह प्रकृतियोंकी सत्ता घटा देनेसे क्रमसे ८० का, ७९ का, ७८ का,

५९

आद्याच्चतुष्कतस्त्यक्त्वा क्रमादेतास्त्रयोदश । अनिवृत्त्यादिषु ज्ञेयमशीत्यादिचतुष्टयम् ॥ २२६ ॥

अनिवृत्त्यादिषु पचसु ८० । ७९ । ७८ । ७७ ।

पूर्णं सुभगमादेयं पंचेंद्रियनरद्वये । त्रसं स्थूलं यशस्तीर्थकृन्नियोगे दश स्मृताः ॥ २२७ ॥

अयोगे तीर्थकरे १० । तीर्थकरोनाः परत्र ९ ।

चत्वार्यसंयताद्येषु प्रथमान्यष्टसु स्फुटम् । सत्त्वे मिथ्यादृशः षट्कं द्विनवत्यादिकं विदुः ॥ २२८ ॥

७७ का-ये चार सत्तास्थान सिद्ध होजाते हैं । अर्थात् ९३ में से १३ घटानेपर ८० का स्थान होजाता है । ९२ मेंसे १३ घटानेपर ७९ का स्थान होजाता है । ९१ मेंसे १३ घटादेनेपर ७८ का स्थान हो जाता है । एवं ९० मेंसे १३ घटादेनेपर ७७ का स्थान बन जाता है । ये अस्सी आदिके चार स्थान अनिवृत्ति आदि-नौवें गुणस्थानसे लेकर सयोगकेवली तेरहवें गुण-स्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें संभव हैं ॥ २२५—२२६ ॥

अब १० के तथा ९ के दो सत्त्वस्थानोंको बताते हैं ।—

पर्याप्त, सुभग, आदेय, पचेंद्रियजाति, मनुष्यद्वय, त्रस, बादर, यश कीर्ति—इन नौ नाम प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान सामान्य अयोग केवलीके अर्थात् चौदहवें गुणस्थानवाले सामान्य केवलीके मिलता है । यदि वह अयोगकेवली तीर्थकर हो तो उसके इन नौ प्रकृतियोंके शिवाय एक तीर्थकर प्रकृतिका भी सत्त्व अधिक रहता है इसलिये तीर्थकर अयोग केवलीके दशका सत्त्वस्थान होता है ॥ २२७ ॥

अब विशेष कर गुणस्थानक्रमसे उक्त तेरह सत्त्वस्थानोंका विभाग करके दिखाते हैं ।—

असंयत—चौथे गुणस्थानसे लेकर उपशांतकषाय ग्यारहवें पर्यंत आठ गुणस्थानोंमें प्रथमके चार—९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का—ये चार स्थान मिलते हैं । और मिथ्यात्वयुक्त प्रथम गुणस्थानवालेके व्यानवेंके स्थानसे लेकर व्यासी तकके—९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—ये छह स्थान मिलते हैं ॥ २२८ ॥

अत्रासंयताद्युपशांतान्तेष्वष्टसु ९३ । ९२ । ९१ । ९० । मिथ्यादृशः ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।
नवतिः शासने ज्ञेया मिश्रे द्विनवतिः पुनः । तिर्यक्षु द्विनवत्यामा नवत्यादिचतुष्टयम् ॥ २२९ ॥
शासने ९० । मिश्रे ९२ । तिर्यक्षु ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।
आद्यं चतुष्टयं देवे श्वाभ्रे त्रिनवतिं विना । निर्द्व्यशीतीनि सर्वाणि स्थानानि नरजन्मसु ॥ २३० ॥
श्वाभ्रेषु ९२ । ९१ । ९० । देवेषु ९३ । ९२ । ९१ । ९० । नरेषु सर्वाणि द्व्यशीतिं विना १२ ।

नाम्न सत्त्वप्ररूपणा समाप्ता ।

भावार्थ, यहाँ असंयतादि उपशांत पर्यंतके आठ गुणस्थानोंमें ९३, ९२, ९१, ९०—ये चार स्थान मिलते हैं । मिथ्यादृष्टिमें ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२—ये छह स्थान मिलते हैं ।

सासादन गुणस्थानमें नव्वेका स्थान मिलता है । मिश्र—तीसरे गुणस्थानमें बानवे (९२) का स्थान रहता है ।

अब चारों गतियोंमें स्थानोंको विभाग करते हैं ।—

तिर्यंचोंमें एक बानवे (९२) का, और नव्वे आदिके–९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—ये चार स्थान, इस प्रकार पांच स्थान मिलते हैं ॥ २२९ ॥

आदिके चार स्थान देवगतिमें मिलते हैं । नरक गतिमें सबसे पहिला ९३ का स्थान नहीं है, शेष तीन ऊपरके स्थान रहते हैं । मनुष्य जीवोंमें व्यासीके स्थानको छोड कर शेष बारह ही स्थान मिलते हैं ।

भावार्थ, व्यासीका स्थान तिर्यंचोंमें ही होता है ऐसा ऊपर २२४ वें श्लोकमें भी ग्रंथकारने बताया है ॥ २३० ॥

। इस प्रकार नामकर्मकी सत्ता प्ररूपणा समाप्त हुई ।

आगे नामकर्मके सत्त्वस्थानका प्रकरण १९ गाथाओंसे गोमटसारमें जो कहा है उसको कहते हैं,—

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य। ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥ ६०९ ॥

त्रिद्वयेकनवति नवति अष्टचतुर्द्व्यधिकाशीतिरशीतिश्च। एकोनाशीत्यष्टसप्तती सप्तति दश च नव सत्त्वानि ॥६०९॥

अर्थ—९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिरूप—नामकर्मके १३ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६०९ ॥

अब उनकी विधी बतलाते हैं,—

सव्व तित्थाहारुभऊण सुरणिरयणरदुचारिदुगे। उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दस णवयं ॥ ६१० ॥

सर्वं तीर्थाहारोभयोन सुरनिरयनरद्विचतुर्द्विके। उद्वेलिते हते चतुष्कं त्रयोदश योगिन दश नवकम् ॥ ६१० ॥

अर्थ—नामकर्मकी सब प्रकृतिरूप ९३ का स्थान है, उनमेंसे तीर्थंकर घटानेसे ९२ का स्थान, आहारयुगल घटानेसे ९१ का, तीनों घटानेसे ९० का स्थान होता है, उस ९० के स्थानमें देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८८ का स्थान होता है, इसमें भी नरकगति आदि ४ प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेपर ८४ का स्थान होता है, इसमें भी मनुष्यगति–मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८२ का स्थान होता है, तथा ९३ आदि चार (९३-९२-९१-९०) स्थानोंमें अनिवृत्तिकरणमें क्षय होनेवाली १३ प्रकृतियोंके घटानेसे ८०-७९-७८-७७ के स्थान होते हैं। और अयोगकेवलीके १० का और ९ का स्थान होता है ॥ ६१० ॥

आगे उन १० के तथा ९ के स्थानमें प्रकृतियोंको कहते हैं—

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु। दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु ॥ ६११ ॥

गतयोगस्य तु त्रयोदशसु तृतीयायुष्कगोत्रेति विहीनेषु। दश नाम्नश्च सत्ता नव चैव च तीर्थहीनेषु ॥ ६११ ॥

अर्थ—अयोगकेवलीके १३ प्रकृतियोंमेंसे वेदनीय–आयु–गोत्र, ये तीन प्रकृतियां कम करनेसे नामकर्मकी १० प्रकृतियोंका सत्त्व है। यदि तीर्थंकर प्रकृति भी घटादी जावे तो ९ प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान होता है ॥ ६११ ॥

आगे उद्वेलनास्थानोंमें विशेपता कहते हैं,—

गुणसजादप्पयडिं मिच्छे बंधुदयगंधहीणम्मि । सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लिदे जीवो ॥ ६१२ ॥

गुणसंजातप्रकृतिं मिथ्ये बन्धोदयगन्धहीने । शेषोद्वेलनप्रकृतिं नियमेनोद्वेलयति जीवः ॥ ६१२ ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें जिनप्रकृतियोंके बंधकी अथवा उदयकी वासना भी नहीं ऐसी सम्यक्त्वगुणसे उत्पन्न हुई सम्यक्त्वमोहनीय–मिश्रमोहनीय–आहारकयुगल, इन चार प्रकृतियोंकी तथा शेप उद्वेलनप्रकृतियोंकी उद्वेलना यह जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें करता है ॥ ६१२ ॥

अब उसका क्रम कहते हैं,—

सत्थत्तादाहारं पुव्व उव्वेल्लदे तदो सम्मं । सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सगलो य ॥ ६१३ ॥

शस्तत्वादाहारं पूर्वमुद्वेलयति ततः सम्यक् । सम्यग्मिथ्यं तु ततः एको विकलश्च सकलश्च ॥ ६१३ ॥

अर्थ—आहारकयुगल प्रशस्तप्रकृतियां हैं इसलिये चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव पहले इन दोनोंकी उद्वेलना करते हैं। पीछे सम्यक्त्वप्रकृतिकी, उसके बाद सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकी उद्वेलना करते हैं। उसके बाद एकेन्द्री–विकलेंद्री और सकलेंद्रिय जीव शेप देवद्विकादिकोंकी उद्वेलना करते हैं।

आगे उस उद्वेलनाके अवसरका काल कहते हैं—

वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्त । सम्मामिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्कं तु ॥ ६१४ ॥

वेदकयोग्ये काले आहारमुपशमस्य सम्यक्त्वम् । सम्यग्मिथ्यं चैकस्मिन् विकले वैगूर्वषट्कं तु ॥ ६१४ ॥

अर्थ–वेदकसम्यक्त्वयोग्यकालमें आहारककी उद्वेलना, उपशमकालमें सम्यक्त्वप्रकृति वा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है। और एकेंद्रिय तथा दोइंद्रिय पर्यायमें वैक्रियिकषट्ककी उद्वेलना करता है ॥ ६१४ ॥

आगे उन दोनों कालोंका लक्षण कहते हैं,–

उदधिपुधत्तं तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे । जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥ ६१५ ॥

उदधिपृथक्त्व तु त्रसे पल्यासंख्योनमेकमेकाक्षे । यावच्च सम्यं मिश्रं वेदकयोग्यश्च उपशमस्य ततः ॥६१५॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीयकी और मिश्रमोहनीयकी स्थितिमेंसे पृथक्त्वसागर काल त्रसके शेष रहै और पल्यके असंख्यातवें भाग कम एक सागर काल एकेन्द्रीके शेष रह जावे वह "वेदकयोग्य काल" है। और उससे भी सत्तारूप स्थिति कम हो तो वह उपशमकाल कहा जाता है ॥

आगे तेजकाय और वायुकायके उद्वेलन प्रकृतियोंको दिखाते है—

तेउदुगे मणुवदुग उच्चं उव्वेलदे जहण्णिदरं । पल्लासखेज्जदिमं उव्वेल्लणकालपरिमाणं ॥ ६१६ ॥

तेजोद्विके मनुष्यद्विकमुच्चमुद्वेल्यते जघन्येतरत् । पल्यासंख्येयिममुद्वेलनकालपरिमाणम् ॥ ६१६ ।

अर्थ—तेजकाय और वायुकायकें मनुष्यगतियुगल और उच्चगोत्र-इन तीनकी उद्वेलना होती है । और उस उद्वेलनाके कालका प्रमाण जघन्य अथवा उत्कृष्ट द्रव्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । ६१६ ।

अब उसीको कहते हैं,—

पल्लासंखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण । संखेज्जसायरठिदिं पल्लासखेज्जकालेण ॥ ६१७ ॥

पल्यासख्येयिमां स्थितिमुद्वेलयति मुहूर्तान्तरेण । संख्येयसागरस्थितिं पल्यासख्येयकालेन ॥ ६१७ ॥

अर्थ—पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकी अंतर्मुहूर्तकालमें उद्वेलना करता है तो संख्यातसागर प्रमाण मनुष्य-द्विकादिकी सत्तारूप स्थितिकी उद्वेलना त्रैराशिकसे पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण कालमें ही कर सकता है ऐसा सिद्ध हुआ ।

आगे सम्यक्त्वादिककी विराधना (छोडदेना) कितनी वार होती हैं यह कहते हैं—

सम्मत्तं देसजम अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं । पल्लासंखेज्जदिम वारं पडिवज्जदे जीवो ॥ ६१८ ॥

सम्यक्त्वं देशयममनसयोजनविधिं च उत्कृष्टम् । पल्यासख्येय वार प्रतिपद्यते जीव. ॥ ६१८ ॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व, देशसयम और अनंतानुवधी कषायके विसयोजनकी विधि—

इन चारोंको यह जीव उत्कृष्टपने अर्थात् अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग समयोंके प्रमाण वार छोड २ के ग्रहण करता है। पीछे नियमसे सिद्धपदको ही पाता है ॥ ६१८ ॥

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो। बत्तीसं वाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि ॥ ६१९ ॥

चतुरो वारानुपशमश्रेणिं समारोहति क्षपितकर्मांशः। द्वात्रिंशद्वारान् संयममुपलभ्य निर्वाति ॥ ६१९ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीपर अधिकसे अधिक चार दफै चढता है पीछे कर्मोंके अंशोंको क्षय करता हुआ क्षपकश्रेणी चढ मोक्षको ही जाता है। और सकलसंयमको उत्कृष्टपनेसे ३२ वार ही धारण करके पीछे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ६१९ ॥

आगे चारोंगतियोंकी अपेक्षासे गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी योजना कहते हैं,—

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि वाणउदी। सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी ॥ ६२० ॥

सुरनरसम्ये प्रथमं सासनहीनेषु भवति द्वानवति। सुरसम्ये नरनारकसम्ये मिथ्ये च एकनवति ॥

अर्थ—पहला ९३ का सत्त्वस्थान असंयतसम्यग्दृष्टि देवके तथा मनुष्यके होता है, सासादन रहित चारोंगतिके जीवोंके ९२ का स्थान होता है और ९१ का स्थान देव सम्यग्दृष्टी तथा मनुष्य और नारकी सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टिके होता है ॥६२०॥

णउदी चदुग्गदिम्हि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे। अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्हि वासीदी ॥६२१॥

नवतिः चतुर्गतौ च त्रयोदशक्षपक इति तिर्यग्नरमिथ्ये। अष्टचतुरशीति सत्ता तिर्यङ्मिथ्ये द्व्यशीति ॥

अर्थ—९० का सत्त्वस्थान १३ प्रकृतियोंके क्षयवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानपर्यंत चारों गतियोंके जीवोंके होता है, ८८--८४के दोनों स्थानोंकी सत्ता मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यके है, और ८२ का सत्त्वस्थान तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके होता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६२१ ॥

सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु। गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं ॥६२२॥

अशीत्यादिचतु स्थानानि त्रयोदशक्षपकादनुपशामकेषु। गतयोगस्य द्विचरम यावच्च चरमे दशनवकम् ॥ ६२२ ॥

अर्थ—८० को आदि लेकर चार स्थान अर्थात् ८०—७९—७८—७७-के स्थान तेरह प्रकृतिके क्षय करनेवाले

क्षपक अनिवृत्ति करण गुणस्थानसे लेकर अयोगीके द्विचरमसमय तक पाये जाते हैं। और १० का तथा ९ का सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके अंतसमयमें होता है ॥ ६२२ ॥

आगे ४१ जीवपदोंमें उन सत्त्वस्थानोंको कहते हैं,—

णिरये वा इगिणउदी णउदी सुआदिमव्वतिरियेसु। बाणउदी णउदी अडचउरासीदी य होंति सत्ताणि ॥६२३॥

निरये द्व्येकनवति नवति भ्वादिसर्वतिर्यक्षु। द्वानवति नवति अष्टचतुर्द्व्यशीतिश्च भवन्ति सत्वानि ॥ ६२३ ॥

अर्थ—नामकर्मके सत्त्वस्थान नारकी जीवोंमें ९२–९१–९० के इस तरह ३ हैं। और पृथिवीकायादि सब तिर्यंचोंमें ९२–९०–८८–८४–८२ के इस तरह पांच पांच हैं ॥ ६२३ ॥

चासीदिं वज्जित्ता वारसठाणाणि होंति मणुवेसु। सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु ॥ ६२४ ॥

द्व्यशीतिं वर्जयित्वा द्वादश स्थानानि भवन्ति मानवेषु। अशीत्यादिचतुःस्थानानि षट्स्थानानि केवलिद्विकयो ॥ ६२४ ॥

अर्थ—मनुष्योंमें ८२ के स्थानको छोडकर शेष १२ स्थान होते हैं; परंतु सयोगकेवलीके ८० को आदिलेकर चार सत्त्वस्थान हैं, अयोगकेवलीके ८० को आदिलेकर ६ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६२४ ॥

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थियरकेवलीसु हवे। तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्क तु ॥ ६२५ ॥

समविषमस्थानानि च क्रमेण तीर्थंतरकेवलिनो. भवेयु। त्रिद्विनवति आहारे देवे आदिमचतुष्कं तु ॥ ६२५ ॥

अर्थ—केवलीके जो स्थान कहे थे वे समसंख्यावाले तीर्थंकर केवलीके और विषमसंख्यावाले स्थान तीर्थंकरप्रकृति रहित सामान्य केवलीके होते हैं। आहारकमें ९३–९२ के दो स्थान हैं। और विमानवासी देवोंमें आदिके ४ सत्त्वस्थान होते हैं ॥६२५॥

बाणउदिणउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीण। हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाण च य सासणे णउदी ॥ ६२६ ॥

द्वानवतिनवतिसत्ता भवनत्रिकाणां च भोगभूमीनाम्। अधस्तनपृथिवीचतुष्कभवाना च च सासने नवति ॥ ६२६ ॥

अर्थ—भवनत्रिक देवोंके, भोगभूमियाओंके और नीचेकी अंजनादि चार नरकपृथिवियोंमें ९२–९० इन दो स्थानोंकी सत्ता है। तथा सासादन गुणस्थानमें सब जीवोंके ९० का ही सत्त्वस्थान है ॥६२६॥ इस प्रकार बंधोदयसत्त्वकी अपेक्षा भंग कहे।

॥४७२॥

त्रिपंचषडुपेताया विंशतेर्बंधने विदुः । उदये नव सत्तायां क्रमतः पंच सूरयः ॥ २३१ ॥

बंध	२३	२५	२६
उदय	९	९	९
सत्ता	५	५	५

बंधेऽष्टाविंशतेरष्टौ पाके सत्त्वे चतुष्टयम् । एकोनत्रिंशतो बंधे नव सप्तान्ययोः क्रमात् ॥ २३२॥

बं. २८ । उ. ८ । स. ४ । एकोनत्रिंशतो बंधे–बं २९ । उ ९ । स ७ ॥

बंधने त्रिंशतः पाके नव सत्त्वे तु सप्तकम् । बंधादित्रितये नामस्थानानीति विदुर्बुधाः ॥ २३३ ॥

अब नामकर्मकी प्रकृतियोंमें बंधोदयसत्वको एकत्र मिलाकर दिखाते हैं। उसमेंसे प्रथम बंधको मुख्य रखकर उदय तथा सत्वके स्थानोंको जोडकर बताते हैं। बंधके सर्व स्थान आठ हैं। उनमेंसे तेईसवाले पच्चीसवाले तथा छब्बीस प्रकृतिवाले—इन तीन बंधस्थानोंमें उदयके तथा सत्ताके स्थानोंका संभव आगे बताते हैं।—

तीन अधिक वीसके तथा पच्चीसके, छब्बीसके–इन तीन बंधस्थानोंमें उदय नौ प्रकृतियोंका रहता है और सत्ता पांच प्रकृतियोंकी होती है। इसका यंत्र ऊपर दिया है ॥ २३१ ॥

अट्ठाईसके बंधस्थानमें उदय आठ प्रकृतियोंका और सत्ता चार प्रकृतियोंकी होती है। इसी प्रकार उन्तीसके बंधस्थानमें उदय नौका और सत्ता सातकी रहती है। २३२।

बंध २८ में उदय ८ का, सत्ता ४ की। बंध २९ में उदय ९ का, सत्ता ७ की।

तीसके बंधस्थानमें उदय प्रकृतियोंका स्थान नौका रहता है और सत्तास्थान सात प्रकृतियोंका होता है। इस प्रकार बंध उदय सत्ता—इन तीनोंके नामस्थान विद्वानोंको समझने चाहिये। २३३।

१—अन्ययो. =उदयसत्त्वयोः।

बंध ३० । उदय ९ । सत्ता ७ ।

त्रिपंचषट्कयुक्ताया विंशतेर्बंधने सति । अंतिमं द्वितयं हित्वा ज्ञेयाः पाका नवादिमाः ॥ २३४ ॥

स्थानानां पचकं द्व्यग्रा नवतिः सा च केवला । अशीतिरपि सत्तायां सहिताष्टचतुर्द्विभिः ॥ २३५ ॥

बंधस्थानेषु २३।२५।२६ । प्रत्येक नव पाकस्थानानि २१ ।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्तास्थानानि ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

बंधमें ३०, उदयमें ९, सत्तामें ७ ।

अब २३ के २५ के २६ के–इन तीन बंध स्थानोंके साथ उदय तथा सत्ताके स्थानोंकी मर्यादाको बताते हैं।—

तेईसके बंधमें, पच्चीसके बंधमें तथा छव्वीसके बंधमें उदय अंतके दोको छोडकर शेष आदिके नौ उदयस्थान संबव हैं। सत्ताके यहांपर पांच स्थान हैं। उन पांच स्थानोंमेंसे एक स्थान दो अधिक नव्वेका अर्थात् ब्यानवेंका (९२) है। दूसरा 'साच' अर्थात् केवल नव्बेका है । तीसरा आठ अधिक अस्सीका अर्थात् ८८ का है । चौथा चार अधिक अस्सी–चौरासीका है । पांचवां दो अधिक अस्सी–ब्यासीका सत्त्व है । २३४–२३५ ।

भावार्थ——२३ के २५ के २६ के——इन तीन बंध स्थानोंमेंसे प्रत्येक बंध स्थानके साथ, उदयस्थान जो ग्यारह हैं उनमेंसे अंतके दो स्थान–एक ९ का दूसरा ८ का–ये दो स्थान इन बंध स्थानोंके साथ संभव नहीं हैं। क्योंकि १९७ वे के श्लोकानुसार अयोग केवलीके ही नौ का तथा आठका उदय रहता है, किंतु वहांपर तेईस पच्चीस छव्वीसका बंध नहीं होता है। इसलिये शेष नौ उदयस्थान–२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का–ये नौ उदयस्थान इन तीन बंधस्थानोंके साथ संभव हैं। और इन तीनों बंधस्थानोंमेंसे प्रत्येक बंधस्थानके समय सत्ता ९२ की, ९० की, ८८ की, ८४ की तथा ८२ की–ऐसे पांच प्रकार की संभव रहती है।

पूर्वबन्धत्रये ज्ञेयमुदये सप्तविंशतेः । द्व्यशीतिवर्जितं सत्त्वे पूर्वं स्थानचतुष्टयम् ॥ २३६ ॥

बंधे २३।२५।२६ । उदये २७ । सत्तायां ९२।९०।८८।८४।

इति बंधत्रय समाप्तम् ।

चतुर्विंशतिमत्यस्यं तथा द्वितयमन्तिमम् । अस्त्यष्टाविंशतेर्बंधे पाकानामष्टकं परम् ॥ २३७ ॥

क्रमात् त्रिनवतिं तत्र निरेकद्वित्रिपंचकम् । सत्त्वस्थानानि चत्वारि सामान्येन विदुर्बुधाः ॥ २३८ ॥

ऊपरके तेईसके पच्चीसके छब्बीसके–इन्हीं तीन बंध स्थानोंमें उदय सत्ताईस प्रकृतिका हो तो वहां, सत्ताके स्थान जो ऊपर पांच बताये हैं उनमेंसे एक ब्यासीका स्थान नहीं होता, शेष चार स्थान होते हैं । २३६ ।

भावार्थ–२३, २५, २६–इन तीन ऊपर बताये हुए बंध स्थानोंमेंसे प्रत्येक बंधस्थानके समय उदय यदि एक २७ का हो तो सत्ताके स्थान वहांपर ९२ का, ९० का, ८८ का तथा ८४ का—ये चार संभव हैं । ब्यासीका सत्ता स्थान, इस बंधत्रयके साथमें २७ वाले उदयस्थानके रहते नहीं होता— इतना विशेष है ।

इस प्रकार बंधत्रयके साथ उदय तथा सत्ताके स्थानोंका संभव बताया ।

अब अट्ठाईसीके बंधस्थानमें उदयस्थान तथा सत्त्वस्थान जितने संभव हैं उनको समुच्चित करके सामान्य रूपसे दिखाते हैं ।–

अट्ठाईसके बंधस्थानके साथमें एक चौबीसके उदयस्थानको छोड कर तथा अंतके दो उदयस्थानोंको छोडकर शेष आठ उदयस्थान संभव रहते हैं । और सत्ताके स्थान वहांपर चार रहते हैं । वे सत्ताके स्थान इस प्रकार हैं ।–९३ वेंमेंसे एक घाटका अर्थात् ९२ का एक स्थान, दूसरा दो घाट तिरानवेका अर्थात् ९१ का, तीसरा तीन घाट तिरानवेका ही अर्थात् ९० का, चौथा पांच घाट तिरानवेका अर्थात् ८८ का । इस अट्ठाईसीके बंधस्थानमें ये आठ उदयस्थान और चार सत्त्वस्थान सामान्य रूपसे बताये हैं । इनमें जो विशेष नियम हैं उन्हें आगे बताने वाले हैं । २३७–२३८ ।

१ — त्यक्त्वा ।

बंधे २८ । पाके २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ९२।९१।९०।८८।

विंशती स्तः षडेकाग्रे पाके बंधेऽष्टविंशते । नवतिर्द्वानवत्यामा सत्त्वे स्थानद्वयं पुनः ॥ २३९ ॥
एषा क्षायिकसद्दृष्टौ मानवे कुरुत्रयजे । विशेषेणावबोद्धव्या स्थानत्रितयवेदिभिः ॥ २४० ॥

बंधे २८ । उदये २६ । २१ । सत्त्वे ९२ । ९० ।

पंचसप्ताग्रविंशत्यो प्रमत्तस्योदये सति । अष्टाविंशतिबंधोऽस्ति सत्ती द्वानवतिः पुनः ॥ २४१ ॥

आहारकारम्भकेऽप्रमत्ते बंधे २८ । उदये २५ ।२७ । सत्त्वे ९२ ।

बंधमें २८ । उदयमें २१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का—ये आठ स्थान । सत्तामें ९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का-ये चार स्थान ।

अब इस अट्ठाईसीके बंधस्थानमें उदयके तथा सत्ताके जो विशिष्ट दशामें स्थानविशेष हैं उनको दिखाते हैं ।—

अट्ठाईसीके बंधस्थानमें छह अधिक वीसका और एक अधिक वीसका अर्थात् २६ का तथा २१ का—ये दो स्थान उदय संबंधी, एवं सत्तासंबंधी दो स्थान—एक ९० का, दूसरा ९२ का । इन उदय तथा सत्तास्थानोंकी विशिष्टता यह है कि यह त्रयी उत्तर—देवकुरु क्षेत्रमें जन्मे हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्यमें मिलती है, ऐसा स्थानत्रयके जाननेवालोंको समझना चाहिये । २३९-२४० ।

इस अट्ठाईसीके साथमें उदय तथा सत्ताकी दूसरी विशिष्टताको आगे दिखाते हैं ।—

प्रमत्त—छट्ठे गुणस्थानवर्तीके पांच अधिक और सात अधिक वीसके अर्थात् २५ का और २७ का—ये दो उदय-स्थान रहने पर अट्ठाईसीका बंधस्थान होता है और सत्ता ९२ वें के एक स्थानकी होती है । २४१ ।

बंधमें २८, उदयमें २५—२७, सत्तामें ९२—यह त्रयी उस प्रमत्तके होती है जो अप्रमत्तमें रहकर आहारकका आरंभ करनेवाला है ।

१—उत्तरकुरुक्षेत्रे देवकुरौच । २—सती सत्तेत्यर्थः ।

विंशती स्तो नवाष्टाग्रे पाके बंधेऽष्टविंशतेः । सत्तायां नवतिर्द्व्यग्रा नवतिः केवला परा ॥ २४२ ॥
असंयतस्य सद्दृष्टेर्बंधेऽसावष्टविंशतेः । अप्रमत्ते च विज्ञेयः सदाहारककर्मणि ॥ २४३ ॥
बंधे २८ । उदये २९।२८ । सत्त्वे ९२।९० ।
उदये त्रिंशतः सत्त्वे नवतिर्द्व्युत्तरा च सा । स्यादष्टाविंशतेर्बंधो मिथ्यादृष्ट्यादिपंचके ॥ २४४ ॥
बंधे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ९२।९० ।
बंधोऽष्टाविंशतेः पाकस्त्रिंशतो नवतिः सती । एकाग्रा तीर्थंकर्तृत्वसत्त्वे द्वित्रिक्षितिश्रिताम् ॥ २४५ ॥
बंधे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ९१ ।

अब अट्ठाईसीके बंधस्थानमें उदय तथा सत्तासंबंधी तीसरी विशिष्ट दशाको बताते हैं।—

अट्ठाईसके बंधस्थानमें नौ अधिक वीसका अर्थात् २९ का और आठ अधिक वीसका अर्थात् २८ का—ये दो उदयस्थान हैं। एवं दो अधिक नब्बे अर्थात् ९२ का एक स्थान, दूसरा केवल नब्बेका (९०) एक स्थान—ये दो सत्तासंबंधी स्थान हैं। ये विशिष्ट त्रिकूट उस अट्ठाईसीके बंधवालेमें होते हैं जो असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला हो अथवा आहारक कर्मवाला अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती हो। २४२–२४३।

अब इसी अट्ठाईसीके बंधमें चौथे प्रकारकी त्रयीको बताते हैं।—

उदय तीसका और सत्ता दो अधिक नब्बेकी अथवा केवल नब्बेकी रहकर जो अट्ठाईसका बंधस्थान होता है वह मिथ्यादृष्टि—प्रथम गुणस्थानसे लेकर पांचवें गुणस्थानपर्यंत पांच गुणस्थानोंमें पाया जाता है। २४४।

अब अट्ठाईसके बंधयुक्त पांचवें प्रकारकी त्रयीको दिखाते हैं।—

अट्ठाईसका बंध, तीसका उदय और एक अधिक नब्बेकी अर्थात् ९१ की सत्ता—यह बंधत्रयी उन दूसरी तीसरी नरकभूमिवालोंमें होती है जिनके तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता हो। २४५।

उदयस्त्रिंशतः सत्त्वमष्टाशीतेः प्रजायते । नरतिर्यक्षु बंधेऽष्टाविंशतेर्वामदृष्टिषु ॥ २४६ ॥

बंधे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ८८ ।

एकाग्रत्रिंशतः पाके नवतिद्व्युत्तरा च सा । सत्त्वेऽष्टाविंशतेर्बन्धो मिथ्यादृष्ट्यादिपंचके ॥ २४७ ॥

बंधे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे ९२ । ९० ।

अष्टाशीतिः सती पाकः सैकायास्त्रिंशतः पुनः । मिथ्यादृष्टिषु तिर्यक्षु बंधेऽष्टाविंशतेः सति ॥ २४८ ॥

बंधे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे ८८ ।

इत्यष्टाविंशतेर्बन्धः समाप्तः ।

अब अट्ठाईसके बंध सहित छट्ठे प्रकारकी बंधत्रयीको बताते हैं ।—

उदय तीसका, सत्ता अठासीकी, और बंध अट्ठाईसका——यह बंधत्रयी मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यंचोंमें मिलती है ॥ २४६ ॥

अब अट्ठाईसके बंधसहित सातवें प्रकारकी बंधत्रयीको बताते हैं ।—

उदयमें इकतीस, सत्तामें नब्बे अथवा ब्यानवे [९०–९२] प्रकृति, और अट्ठाईसका बंध—यह बंधत्रयी मिथ्यादृष्टि-आदिके गुणस्थानसे लेकर पांचवें गुणस्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें होती है ॥ २४७ ॥

अट्ठाईसका बंध रहते हुए अठासीकी सत्ता और इकतीसका उदय होना— यह बंधत्रयी मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंमें मिलती है ॥ २४८ ॥

इस प्रकार अट्ठाईसीके बंधसहित बंधत्रयीके विशेष भेद समाप्त हुए ।

एकोनत्रिंशतो बंधे त्रिंशतश्च नवोदया । अन्तिमं द्वितयं हित्वा सामान्येन निवेदिताः ॥ २४९ ॥

सत्तायामादितः सप्त द्व्यशीत्यतानि संति वै । अत्र स्थानानि सामान्यादतो वक्ष्ये विशेषतः ॥ २५० ॥

बंधे २९ । ३० । पाकाः प्रत्येकं नव–२१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्तास्थानानि सप्त–९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

एकोनत्रिंशतो बंध उदयोऽस्त्येकविंशतेः । त्र्येकाग्रे नवती सत्यौ बद्धतीर्थकरे नरि ॥ २५१ ॥

अब उन्तीसके बंधस्थानमें उदयस्थानोंको तथा सत्तास्थानोंको क्रमसे सामान्य विशेषरूपसे दिखाते हैं। और सबसे प्रथम सामान्य रूपसे इस उन्तीसीके साथकी बंधत्रयीको दिखाते हैं। साथमें तीसके बंधस्थानको भी उन्तीसीके समान होनेके कारण बताते हैं।—

उन्तीसके बंधसमयमें तथा तीसके भी बंधसमयमें अंतके दो उदयस्थानोंको छोडकर शेष नौ उदयस्थान समुच्चयकी अपेक्षासे बताये गये हैं॥ एवं समुच्चयकी ही अपेक्षासे पहिले तिरानवेके स्थानसे लेकर ब्यासीके स्थान पर्यंत सात स्थान, सत्तास्थानोंमेंसे रहते हैं। यह सामान्य बंधत्रयी है। इसकी विशेष बंधत्रयीको आगे बताते हैं। २४९–२५०।

बंधमें २९ अथवा ३०। इस प्रत्येक बंधके साथ उदयस्थान नौ नौ संभव हैं। वे इस प्रकार–२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का। इस प्रकार नौ उदयस्थान दोनो बंधस्थानोंके साथ संभव होनेसे भंग अठारह हो जाते हैं। उनमेंसे उन्तीसीके नौ स्थानोंमेंसे तथा तीसीके नौ स्थानोंमेंसे प्रत्येक द्वयीके साथ सत्ताके सात सात सत्ता स्थान संभव हैं। वे स्थान–९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का–ये सात हैं। इन सात स्थानोंसे द्वयीके उन्तीस संबंधी नौ भेदोंको तथा तीसीके नौ भेदोंको गुणनेपर त्रेसठि त्रेसठि दोनो बंधस्थानोंके उत्तर भंग होजाते हैं।

अब उन्तीसीके विशेष बंधादित्रयको बताते हैं।—

उन्तीसका बंध, इक्कीसका उदय और सत्ता तिरानवेकी अथवा इक्यानवेकी–यह दो प्रकारकी त्रयी तीर्थंकर प्रकृतिको जिसने बांध रक्खा है उस मनुष्यमें पाई जाती है। २५१।

॥४७१॥

विग्रहगतिगते बंधे २९। उदये २१। सत्त्वे ९३। ९१।

पूर्वौ बंधोदयौ सत्त्वे नवतिर्द्व्युत्तरा च सा। चातुर्गतिकजीवानां विग्रहविव्यतिक्रमे ॥ २५२ ॥

बंधे २९। उदये २१। सत्त्वे ९२। ९०।

चतुरष्ट्युताऽशीतिः सत्त्वे बंधोदयौ च तौ। नरतिर्यक्षु तिर्यक्षु द्व्यशीतिः श्रितविग्रहे ॥ २५३ ॥

नरतिर्यक्षु बंधे २९। उदये २१। सत्त्वे ८४। ८८। तिर्यक्षु बंधे २९। उदये २१। सत्त्वे ८२।

यह उन्तीसीका बंध विग्रहगतिप्राप्त जीवमें होता है, उसके बंधमें २९, उदयमें २१, सत्ता ९३ अथवा ९१ की।

अब उन्तीसीके साथमें दूसरे प्रकारकी बंधत्रयीको बताते हैं।—

बंधके २९, तथा उदयके २१ वाले ऊपर बताये हुए स्थानमें सत्तागत ९० अथवा ९२ प्रकृति हों ऐसी बंधत्रयी चारों गतिके जीवोंमें मिलती है परंतु किसी भी विग्रहगतिमें यह त्रयी नहीं मिलती। २५२।

अब तीसरे प्रकारसे इस उन्तीसीके साथवाली बंधत्रयीको दिखाते हैं।—

चौरासी अथवा अठासीका सत्त्व रखते हुए बंध २९ का तथा उदय २१ का पूर्ववत् ही हो तो ये दो स्थान मनुष्योंमें मिलते हैं और तिर्यंचोंमें भी मिलते हैं। किंतु विग्रह अर्थात् शरीरको धारण करलेने वालोंमें ही मिलते हैं। भावार्थ, विग्रह गतिमें ये स्थान नहीं मिलते। इसी प्रकार व्यासी [८२] के सत्त्वस्थान सहित उदय २१ का, बंध २९ का—यह बंधत्रयी शरीर धारण करलेनेवाले तिर्यंचोंमें होती है ॥ २५३ ॥

मनुष्य तिर्यंचोंमें बंधमें २९, उदमें २१, सत्तामें ८४ अथवा ८८। केवल तिर्यंचोंमें बंध २९, उदय २१, सत्ता ८२ की।

चतुर्विंशतिरेकाक्षे पाके बंधः पुरातनः । सप्तादिमानि सत्तायां तृतीयप्रथमे विना ॥ २५४ ॥

अपूर्णैकाक्षे बंधे २९ । उदये २४ । सत्त्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

अब उन्तीसके बंधमें पांचवीं तरहका उदय सत्व बताते हैं ।—

एकेंद्रिय जीवके बंधमें पुरातन अर्थात् पूर्वमें बताई हुई उन्तीस प्रकृति ही हों, किंतु उदयमें चौबीसका स्थान हो तो सत्ताके सर्व स्थानोंमेंसे आदिके सात स्थान पर्यंत पाये जाते है, किंतु उन सातमें प्रथम तथा तृतीय इन दो स्थानोंको छोड देना चाहिये । भावार्थ—पहिला स्थान तिरानवे प्रकृतिका है और तीसरा स्थान इक्यानवे प्रकृतिका है । इन दोनो स्थानोंमें तीर्थंकर प्रकृति सामिल है । इन दो स्थानोंको छोडनेका यह तात्पर्य है कि तिर्यंचमात्रमें तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता नहीं रहती । परतु ९२ का स्थान इसमें रहता है और ब्यानवेका स्थान आहारकद्वयके जोडनेसे ही बनता है । इसलिये आहारकद्वयको जिसने कभी पूर्वमें बाध लिया है वह जीव आहारकद्वयको सत्तामें रखते हुए भी एकेंद्रिय हो जाता है । आहारक शरीरका बंध सातवें गुणस्थानमें होता है और उदय सातवेंसे छट्ठे गुणस्थानमें होता है । नीचेके गुणस्थानोंमें न बंध होता है, न उदय होता । ऐसी शरीर प्रकृतिको सत्तामें रखनेवाला जीव भी एकेंद्रिय पर्यायको प्राप्त होजाता है ॥ २५४ ॥

यहांपर वह एकेंद्रिय जीव अपर्याप्तकही लेना चाहिये । इस अपर्याप्तक एकेंद्रियके बंधमें २९, उदयमें २४, और सत्तामें पांच स्थान–९२ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का । भावार्थ, श्लोकमें आदिके सात स्थान लेकर उनमेंसे प्रथम और तृतीय स्थानको छोड देना बताया है । इसलिये यहां सत्ताके पांच स्थान ही शेष रह जाते हैं । और इसीलिये दो स्थानोंको छोड देनेपर सातका अर्थ पांच ऐसा करना चाहिये ।

पंचाग्रा विंशतिः पाके बंधः पूर्णे पुरातनः । आद्यानि सप्त सत्तायां चतुर्गतिगतेऽगिनि ॥ २५५ ॥
परं भवति तिर्यक्षु त्र्येकाग्रे नवती विना । प्रजायंते न तिर्यंच. सत्त्वे तीर्थकृतो यतः ॥ २५६ ॥

बंधे २९ । उदये २५ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

एकोनत्रिंशतो बंधः सदाद्य स्थानसप्तकम् । त्रिंशत् पाके तथा त्रिंशदेकद्वित्रिचतुरन्युताः ॥ २५७ ॥

बंधे २९ । यथासंभवमुदये ३० । २९ । २८ । २७ । २६ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ।

अब छट्ठे प्रकारका बंधत्रय उन्तीसीके बंधमें दिखाते हैं ।—

बंधमें पुरातन अर्थात् वही उन्तीसका स्थान हो, किंतु उदय पच्चीसका हो तो सत्तामें आदिके सात स्थान रहना संभव है । यह बंधत्रय सामान्य चतुर्गतिके पर्याप्तक जीवोंमें बताया है ॥ इसमें विशेष इतना और समझ लेना चाहिये कि तिरानवे का और इक्यानवेका—ये दो सत्ताके स्थान तिर्यंचोंमें नहीं मिलते । क्योंकि तिर्यंचोंमें वह जीव नहीं उत्पन्न होता है जिसकी सत्तामें तीर्थंकर प्रकृति रह रही हो । और तिरानवेका तथा इक्यानवेका—ये दोनो स्थान तीर्थंकर प्रकृतिके जोडनेपर ही बनते हैं ॥ २५५–२५६ ॥

बंधमें २९ । उदयमें २५ । सत्तामें–९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ । भावार्थ, इस बंध त्रयके साथ सत्ताके सातो आदिके स्थान तीन गतिमें ही समझने चाहिये । किंतु तिर्यचोंमें पांच ही स्थान मानना चाहिये ।

अब उन्तीसीके बंधमें सातवें प्रकारका बंधत्रय दिखाते हैं ।—

बंध जहा उन्तीसका है वहा सत्ताके स्थान आदिके सात हैं और उदयस्थान एक तीस प्रकृतिका है, तथा चार उदय-स्थान एक, दो, तीन, चार घाट तीसके अर्थात् २९ का, २८ का, २७ का, २६ का-ये चार भी हैं । इस प्रकार यहां उदयस्थान सर्व पांच संभव हैं ॥ २५७ ॥

बंधमें २९ । उदयमें यथासंभव ३०, २९, २८, २७, २६ । सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ ।

परि० ॥४८२॥

अस्त्येकत्रिंशत पाके बन्ध पूर्वनिवेदित । तृतीयप्रथमापोढ सदाद्यं स्थानसप्तकम् ॥ २५८ ॥
बधे २९ । उदये ३१ । सत्त्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

इत्येकोनत्रिंशतो बंध समास ।

एकोनत्रिंशतो बधे पाकस्थानादि यन्मतम् । तत्त्रिंशतोऽपि निःशेष बधस्थाने निबुद्ध्यताम् ॥ २५९ ॥
विशेष त्रिंशतो बधे स्यात्पाक पञ्चविंशतेः । सप्तादिमानि सत्तायां स्थानानीति विदुर्बुधाः ॥ २६० ॥

अब आठवें प्रकारसे उन्तीसीके बंधमें बधत्रयको बताते हैं ।—

बध पूर्वनिवेदित अर्थात् २९ का होते हुए, उदय इकतीसका हो तो सत्तामें आदिके सात स्थानोंमेंसे प्रथम तृतीय (९३ वेके ९१ के) इन दो स्थानोंको छोडकर शेष पाच स्थान सभव हैं ॥ २५८ ॥

बंधमें २९ । उदयमें ३१ । सत्तामें ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ ।

इस प्रकार उन्तीसके बंधस्थानको आधार मानकर बधत्रयका वर्णन हुआ ।

अब तीसके बधमें बधत्रय कौन कौनसे होते हैं उनको आगे दिखाते हैं ।—

उनतीसके बंधमें जैसे उदयस्थानादि बताये हैं वैसे ही तीसके बंधस्थानमें भी उदय तथा सत्ताके स्थान सर्व समझने चाहिये । २५९ ।

विशेष जो है उसे क्रमसे आगे बताते हैं ।—

तीसके बंधसमयमें विशेष इतना है कि उदय पच्चीस प्रकृतिका होता है; और सत्तामें आदिके सातो स्थान विद्वानों को समझने चाहिये । २६० ।

त्र्येकाग्रे नवती सत्त्वे देवनारकयोर्मते । द्व्यशीतिरथ तिर्यक्षु पूर्वौ बंधोदयौ स्मृतौ ॥ २६१ ॥
चातुर्गतिकजीवानां नवतिर्द्व्युत्तरा च सा । अशीतिश्चतुरष्टाग्रा सत्त्वे तिर्यक्षु नृष्वपि ॥ २६२ ॥

सामान्येन त्रिंशद्बंधे ३० । उदये २५ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । एषां सत्त्वस्थानानां विभागः देवनारकयोः ९३।९१। तिर्यक्षु ९२ । चातुर्गतिकजीवेषु ९२ । ९० । नरतिर्यक्षु ८८ । ८४ ।

पाके षड्विंशतिः सत्त्वेऽशीतिस्तिर्यक्षु सद्विका । नवत्यादित्रयं तिर्यङ्नृषु द्वानवतिः परा ॥ २६३ ॥

तीसके बंधके साथ दूसरा विशेष —

पूर्वके बंध तथा उदयमें अर्थात् बंध तीसका और उदय पच्चीसका रहनेपर, तीन अधिक नब्बेका तथा एक अधिक नब्बेका—ये ९३, ९१ के दो सत्त्वस्थान देव अथवा नारकोंमें ही होते हैं । और ब्यासीका सत्त्वस्थान इन्हीं बंधोदयके रहते (३० के बंधमें, २५के उदयमें) तिर्यंचोंमें पाया जाता है । इस बंधोदयके साथ नब्बेका सत्त्वस्थान और दो अधिक नब्बेका अर्थात् ब्यानवेका सत्त्वस्थान—ये सत्त्वस्थान चारो गतियोंके जीवोंमें मिलते हैं । और चौरासीका तथा अठासीका—ये दो सत्त्वस्थान तिर्यंचोंमें पाये जाते हैं और मनुष्योंमें पाये जाते हैं । २६१—२६२ ॥

सामान्यसे तीसके (३०) बंध समय उदयमें २५, और सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२—ये सात स्थान हैं । इन सत्ताके सात स्थानोंमें विभाग इस प्रकार है कि—देव तथा नारकोंमें ९३ का, ९१ का । तिर्यंचोंमें ९२ का । चारो गतिके जीवोंमें ९२ का, ९० का । मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें ८८ का, ८४ का ।

आगे तीसके ही बंधस्थानमें तीसरे प्रकारका वक्तव्य दिखाते हैं ।—

बंध तीसका यहांपर ऊपरके प्रकरणसे समझना चाहिये । इस बंधमें उदय छब्बीसका और इसके साथ तिर्यंचोंमें सत्ता द्विकसहित अस्सीकी अर्थात् ब्यासीकी है । और नब्बे आदि तीन सत्ताके स्थान अर्थात् ९० का, ८८ का, ८४ का, तथा एक सत्त्वस्थान ९२ का—ऐसे चार सत्त्वस्थान मनुष्य—तिर्यंच दोनों गतिके जीवोंमें पाये जाते हैं । २६३ ।

॥४८४॥

त्रिंशद्बंधे ३० । तिर्यक्षूदये २६ । सत्त्वे ८२ । तिर्यङ्नृषु बंधे ३० । उदये २६ । सत्त्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ ।

संत्येकपंचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात् । उदयास्त्रिंशतो बंधे सदाद्यं स्थानसप्तकम् ॥ २६४ ॥

बंधे ३० । उदये २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

त्रिंशत्सैका च सा पाके विंशति षट्चतुर्युता । सत्तास्थानानि तान्यत्र त्र्येकाग्रे नवती विना ६५५ ॥

बंधे ३० । उदये ३१ । ३० । २६ । २४ । सत्त्वे पंच ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

त्रिंशतो बंधः समाप्त ।

तीसके बंधसमय बंधमें ३०, तिर्यंचोंमें उदय २६ । सत्तामें ८२ । एवं तिर्यंच मनुष्य–इन दोनोंमें बंधके ३०, उदयके २६, सत्ताके ९२, ९०, ८८, ८४ हैं ।

तीसके बंधमें और भी चौथी विशेषताको दिखाते हैं । —

तीसका बंध रहनेपर उदय इकीसका, पच्चीसका, सत्ताईसका, अट्ठाईसका, उन्तीसका–ऐसे पांच उदयस्थान होते हैं और सत्ताके स्थान आद्य अर्थात् आदिमें कहे हुए तिरानवे आदिके सात होते हैं ॥ २६४ ॥

बंधमें ३० । उदयमें २१, २५, २७, २८, २९-ये पांच । सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२-ये सात स्थान हैं ।

आगे तीसके बंधमें और भी बंधत्रयकी पांचवीं विशेषताको दिखाते हैं ।—

बंध तीसका हो और उदयमें यदि इकतीसका, तीसका, छह अधिक वीसका अर्थात् छव्वीसका, चार अधिक वीसका अर्थात् चौबीसका–ये चार उदयस्थान हों तो सत्ताके ऊपर बताये हुए स्थान, तिरानवे तथा इक्यानवेका–इन दो स्थानोंको छोड कर शेष ८२ के स्थान पर्यंत पांच स्थान होते हैं ॥ २६५ ॥

बंधमें ३० । उदयमें ३१, ३०, २६, २४–ये चार स्थान । सत्तामें ९२, ९०, ८८, ८४, ८२–ये पांच स्थान ।

इस प्रकार तीसके बंध स्थानका आश्रय लेकर बंधत्रयका विशेष कथन समाप्त हुआ ।

एकाग्रत्रिंशतो बंधे त्रिंशत्पाकेऽस्ति नामनि । सप्तमाष्टमयोः सत्त्वे त्र्युत्तरा नवतिर्मता ॥ २६६ ॥

बंधे ३१ । उदये ३० । सत्त्वे ९३ ।

भाषितो बध्नतश्चैकमुदयस्त्रिंशतः स्फुटम् । सत्तायां शमके प्राज्ञैराद्यं स्थानचतुष्टयम् ॥ २६७ ॥

क्षपकेऽत्र सत्तायां विमुच्योपरिमद्वयम् । अग्रस्थानानि चत्वारि चत्वारि प्रथमानि च ॥ २६८ ॥

अब इकतीसके बंधस्थानके साथ कौनसी बंधत्रयी संभव है सो दिखाते हैं ।—

नामकर्मकी इकतीस प्रकृतिवाले बंधस्थानमें एक ऐसा प्रकार है जिसमें उदयगत तीस प्रकृति होती हैं और सत्तामें तीन अधिक नब्भे अर्थात् तिरानवे प्रकृति होती हैं । यह बंधत्रयी सातवें और आठवें गुणस्थानमें होती है । २६६ ।

बंधमें ३१ । उदयमें ३० । सत्तामें ९३ ।

अब एक प्रकृतिके बंध होते समय उदय तथा सत्ता कहांपर कितनी कितनी है सो बताते हैं ।—

एकको बांधनेवालेकें उदय तीसका बताया है और सत्तामें आदिके चार स्थान बताये हैं । सत्ता संबंधी आदिके चार स्थान—९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का—ये हैं । यह बंधत्रयी उपशम श्रेणीवालेकें होती है । २६७ ।

उपशमक श्रेणीमें बंधत्रयीके अंक–बंधमें १, उदयमें ३० । सत्तामें—९३, ९२, ९१, ९० ।

उपशमश्रेणीसे क्षपक श्रेणीमें सत्तासंबंधी विशेष है उसे अब आगे दिखाते हैं ।—

सत्ताके स्थान २२२ वें श्लोकमें तेरह गिनाये हैं वहांसे क्रम समझलेना चाहिए । उन तेरह स्थानोंमेसे, क्षपक श्रेणीवालेकें यदि पूर्ववत् बंध एकका और उदय तीस प्रकृतिका हो तो, चार स्थान तो ऊपरके अर्थात् तिरानवे, ब्यानवे, इक्यानवे, नब्भे प्रकृतियोंके यथासभव होंगे और चार स्थान, अंतके दोको छोडकर उससे पहिलेके होंगे । भावार्थ—अंतके दो स्थान–एक दशका दूसरा नौका–ये हैं । इन दोको छोडकर इनसे पहिले चार स्थान–८० का, ७९ का, ७८ का, ७७ का—ये हैं । तिरानवे आदि चार स्थान प्रथम स्थान कहावेंगे, और अस्सी आदि चार स्थान अग्रस्थान अथवा अंतिम स्थान कहावेंगे । २६८ ।

उपशमकेषु बंधे १ । उदये ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । क्षपकेषु सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ।

त्रिंशत्सैका च सा पाके नष्टबंधे नवाष्ट च । चत्वार्याद्यानि सत्तायां षडग्राणि[1] यथागमम् ॥ २६९ ॥

नष्टबंधे पाकाः ३१ । ३० । ९ । ८ सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

क्षपकोंमें बंधगत प्रकृति १ । उदयमें ३० । सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ ।

अब जिनका नामकर्मका बंध तो नष्ट हो गया है किंतु उदय तथा सत्ता मौजूद है उनका स्पष्टीकरण करते हैं।—

जिनके नामकर्मका बंध होना नष्ट होगया है उनके उदयमें एक अधिक तीस प्रकृति अर्थात् इकतीस प्रकृति रहती हैं, तीस रहती हैं, नौ भी रहती हैं, आठ भी रहती हैं—इस प्रकार उदयमें चार स्थान संभव हैं। सत्तामें आदिके तिरानवे आदि चार स्थान, और अंतके छह स्थान—इस प्रकार दश सत्त्वस्थान यथाशास्त्र समझने चाहिये। यहांपर आगेके छह कौनसे स्थान हैं—इस संशयको दूर करनेकेलिये ' यथाशास्त्र ' ऐसा लिखा है।

नामकर्मकी प्रकृतियोंमें एक यशःकीर्ति प्रकृति है। उसका बंध दशवें गुणस्थान पर्यंत होता है। दशवेंके अंतमें यशःकीर्ति की बंधसे व्युच्छित्ति होती है इसलिये ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर यशःकीर्तिका बंध नहीं होता है। नामकर्मकी शेष प्रकृतियोंका बंध इससे पूर्व ही रुक जाता है। इस प्रकार ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर नामकर्मकी अपेक्षा बंधाभाव हो जाता है इसलिये यहांपर ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंको नष्टबंध कहा गया है ॥ २६९ ॥

नष्टबंधमें उदय ३१, ३०, ९, ८—यह चार स्थानका है। सत्ता—९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९—इस प्रकार दश स्थानोंकी है।

---

[1] ' षट्चाग्राणि ' इति पाठेन भवितव्यम्।

अस्य विशेषो व्याख्यायते —

क्षणेन्त्ये सप्तमेऽपूर्वोऽनिवृत्तिर्दशमो यशः । एकं बध्नंति चत्वारः परे संति न बंधकाः ॥ २७० ॥

यशोबंधकास्त्रयः १ । १ । १ । अबंधकाश्चत्वारः ० । ० । ० । ० ।

पाके त्रिंशदपूर्वादिपंचके योगिनः पुनः । त्रिंशत्सैका च सा पाके गतयोगे नवाष्ट च ॥ २७१ ॥

अपूर्वादिषु पाके ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । योगिनि ३० । ३१ । नियोगे ९ । ८ ।

शमकेषु चतुर्ष्विष्टमाद्य स्थानचतुष्टयम् । षोडशप्रकृतिध्वंसमकुर्वत्यनिवृत्तिके ॥ २७२ ॥

अब उपरके कथनको ही मूलकार विशेष स्पष्टीकरण करते हैं ।—

सातवें गुणस्थानमें अंतके समयमें नामकर्ममेंसे एक यशःकीर्तिका ही बंध होता है । एवं आठवां अपूर्वकरण, नौवां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मलोभ ये तीन गुणस्थान भी नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे एक यशःकीर्तिका ही बंध करनेवाले हैं । इस प्रकार ये तीन गुणस्थान तो एक नामप्रकृतिका बंध करनेवाले अथवा एकबंधक कहे जाते हैं, और दशवेंसे आगेके चार गुणस्थान नामकर्मके अबंधक समझे गये हैं । २७० ।

उदयमें केवल तीस प्रकृतियोंका उदय आठवेंसे बारहवें गुणस्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें होता है । और सयोग केवलीके, यदि वे सामान्य केवली हों तो, तीसका उदय होता है । यदि वे केवली तीर्थंकर हों तो उनके सयोग केवल अवस्थामें तीर्थंकर प्रकृतिसहित इकतीसका उदय होता है । इसी प्रकार योग जिनके नष्ट होगये हैं ऐसे चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवलीके नौका अथवा आठ नामप्रकृतियोंका उदयस्थान रहता है । २७१ ।

उपशम श्रेणीके गुणस्थान आठवेंसे ग्यारहवें पर्यंत चार हैं । इनमें सत्तास्थान आदिके चार माने गये हैं । ९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का—ये वे चार स्थान हैं । और क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करनेवालेके नौवें गुणस्थानमें जो नौ भाग होते हैं उनमेंसे पहिले भागमें भी ये ही ऊपरके चार तिरानवे आदि सत्तास्थान हैं । इस प्रथम भागके आगे सोलह कषाय प्रकृतियोंका नाश होता है इसलिये प्रथम भागको 'सोलह प्रकृतियोंका ध्वंस जिसमें नहीं हो पाता' ऐसा विशेषण देकर सूचित किया है ॥२७२॥

सत्त्वं क्षपिते तस्मिन्नशीत्यादि चतुष्टयम् । तत्सूक्ष्मादित्रये सत्त्वे निर्योगोपांतिमे क्षणे ॥२७३ ॥
प्रोक्ता दश नव प्राज्ञैर्निर्योगस्यांतिमे क्षणे । शमकचतुष्कापूर्वानिवृत्त्याद्यनवांशेषु ॥ २७४ ॥
९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अनिवृत्तिशेषनवांशाष्टकसूक्ष्मक्षीणसयोगनिर्योगोपांतिमक्षणेषु सत्त्वे ८० । ७९ । ७८ । ७७ । निर्योगांत्यक्षणे १० । ९ ।

एवं नामप्ररूपणा समाप्ता ।

'तस्मिन्' अर्थात् अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें ही प्रथम भागके आगे जहां उन सोलह प्रकृतियोंका क्षय किया जाता है वहांपर अस्सी आदि चार सत्त्वस्थान रहते हैं । और यहांतक बंधस्थान एकका है तथा उदय तीसका है-यह बात ऊपरके प्रकरणसे समझ लेनी चाहिये । इसके आगे सूक्ष्मसांपराय-दशवें गुणस्थानसे लेकर तेरहवें पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें भी सत्त्व अस्सी आदि चार प्रकारका है । यहांपर दशवें गुणस्थानको एकबंधक और आगेके सर्व गुणस्थानोंको अबंधक समझना चाहिये ।

इसके आगे निर्योग अर्थात् चौदहवा अयोगकेवली गुणस्थान लगता है । इस चौदहवें गुणस्थानके उपांत्य समयमें भी सत्त्वस्थान ये ही हैं । और अयोगकेवलीके अंत्य समयमें दशकी सत्ता अथवा तीर्थंकर प्रकृतिके विना नौकी सत्ता रहती है ॥ २७३-२७४ ॥

उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें तथा क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमेंसे आद्य भागमें सत्ताके स्थान-९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का-ये चार हैं । अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके नौ भागोंमेंसे पहिले भागके शिवाय शेष आठ भागोंमें, तथा सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानमें, सयोग केवली तेरहवें गुणस्थानमें, निर्योग-चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समय पर्यंत-इतने स्थानोंमें सत्ताके-८०, ७९, ७८, ७७,-ये चार स्थान हैं । अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानके अंतिम समयमें सत्ताके स्थान दो-१०, ९-ये दो हैं ।

इस प्रकार नामकर्मकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

आगे नामकर्मके सत्त्वस्थानका प्रकरण १९ गाथाओंसे क० गोमटसारमें कहा है उसे यहां दिखाते हैं;—

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य । ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥ ६०९ ॥
त्रिद्व्येकनवति नवति अष्टचतुर्द्व्यधिकाशीतिरशीतिश्च । एकोनाशीत्यष्टसप्तती सप्तति दश च नव सत्त्वानि ॥ ६०९ ॥

अर्थ—९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिरूप—नामकर्मके १३ सत्त्व स्थान हैं ॥ ६०९ ॥

अब उनकी विधि बतलाते हैं,—

सव्वं तित्थाहारुभऊण सुरणिरयणरदुचारिदुगे । उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दस णवयं ॥ ६१० ॥
सर्वं तीर्थाहारोभयोन सुरनिरयनरद्विचतुर्द्विके । उद्वेल्लिते हते चतुष्कं त्रयोदश योगिन दश नवकम् ॥ ६१० ॥

अर्थ—नामकर्मकी प्रकृतिरूप सब ९३ का स्थान है, उनमेंसे तीर्थंकर घटानेसे ९२ का स्थान, आहारकयुगल घटानेसे ९१ का, तीनों घटानेसे ९० का स्थान होता है, उस ९० के स्थानमें देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८८ का स्थान होता है, इसमें भी नरकगति आदि चार प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेपर ८४ का स्थान होता है, इसमें भी मनुष्यगति–मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८२ का स्थान होता है, तथा ९३ आदि चार (९३-९२-९१-९०) स्थानोंमें अनिवृत्तिकरणमें क्षय होनेवाली १३ प्रकृतियोंके घटानेसे ८०-७९-७८ ७७ के स्थान होते हैं । और अयोगकेवलीके १० का और ९ का स्थान होता है ॥ ६१० ॥

आगे उन १० के तथा ९ के स्थानमें प्रकृतियोंको कहते हैं,—

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु । दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु ॥ ६११ ॥
गतयोगस्य तु त्रयोदशसु तृतीयायुष्कगोत्रेति विहीनेषु । दश नाम्नश्च सत्ता नव चैव च तीर्थहीनेषु ॥ ६११ ॥

॥४९०॥

अर्थ— अयोगकेवलीके १३ प्रकृतियोंमेंसे वेदनीय–आयु–गोत्र, ये तीन प्रकृतियां कम करनेसे नामकर्मकी १० प्रकृतियोंका सत्त्व है। यदि तीर्थंकर प्रकृति भी घटादी जावे तो ९ प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान होता है॥ ६११॥

आगे उद्वेलनास्थानोंमें विशेषता कहते है,—

गुणसजादप्पयडि मिच्छे बधुदयगधहीणम्हि। सेसुव्वेल्लणपयडि णियमेणुव्वेल्लिदे जीवो॥ ६१२॥

गुणसजातप्रकृति मिथ्ये बन्धोदयगन्धहीने। शेषोद्वेलनप्रकृति नियमेनोद्वेलयति जीव॥ ६१२॥

अर्थ— मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें जिन प्रकृतियोंके बंधकी अथवा उदयकी वासना भी नहीं ऐसी सम्यक्त्वगुणसे उत्पन्न हुई सम्यक्त्वमोहनीय–मिश्रमोहनीय–आहारकयुगल, इन चार प्रकृतियोंकी तथा शेष उद्वेलनप्रकृतियोंकी उद्वेलना यह जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें करता है॥

अब उसका क्रम कहते हैं —

सत्थत्तादाहार पुव्व उव्वेल्लदे तदो सम्म। सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सगलो य॥ ६१३॥

शस्तत्वादाहारं पूर्वं उद्वेलयति ततः सम्यक्। सम्यग्मिथ्य तु तत एको विकलश्च सकलश्च॥ ६१३॥

अर्थ— आहारकयुगल प्रशस्त प्रकृतियां हैं इसलिये चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव पहले इन दोनोंकी उद्वेलना करते हैं। पीछे सम्यक्त्वप्रकृतिकी, उसके बाद सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकी उद्वेलना करते हैं। उसके बाद एकेन्द्री— विकलेंद्री और सकलेन्द्रिय जीव शेष देवद्विकादिकोंकी उद्वेलना करते हैं॥ ६१३॥

आगे उस उद्वेलनाके अवसरका काल कहते हैं—

वेदगजोग्गे काले आहार उवसमस्स सम्मत्त। सम्मामिच्छ चेगे वियले वेगुव्वछक्क तु॥ ६१४॥

वेदकयोग्ये काले आहारमुपशमस्य सम्यक्त्वम्। सम्यग्मिथ्यं चैकस्मिन् विकले वैगूर्वषट्कं तु॥ ६१४॥

अर्थ— वेदकसम्यक्त्वयोग्यकालमें आहारककी उद्वेलना, उपशमकालमें सम्यक्त्वप्रकृति वा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है। और एकेन्द्रिय तथा दोइंद्रिय पर्यायमें वैक्रियिकषट्ककी उद्वेलना करता है॥ ६१४॥

आगे उन दोनों कालोंका लक्षण कहते हैं,—

उदधिपुधत्त तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे । जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥ ६१५ ॥

उदधिपृथक्त्वं तु त्रसे पल्यासख्योनमेकमेकाक्षे । यावच्च सम्यं मिश्रं वेदकयोग्यश्च उपशमस्य ततः ॥ ६१५ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीयकी और मिश्रमोहनीयकी स्थितिमेंसे पृथक्त्वसागर काल त्रसके शेष रहै और पल्यके असंख्यातवें भाग कम एक सागर काल एकेन्द्रीके शेष रह जावे वह "वेदकयोग्य काल" है । और उससे भी सत्तारूप स्थिति कम हो तो वह उपशमकाल कहा जाता है ॥ ६१५ ॥

आगे तेजकाय और वायुकायके उद्वेलन प्रकृतियोंको दिखाते हैं—

तेउदुगे मणुवदुग उच्च उव्वेल्लदे जहण्णिदर । पल्लासखेज्जदिम उव्वेल्लणकालपरिमाण ॥ ६१६ ॥

तेजोद्विके मनुष्यद्विकमुच्चमुद्वेल्यते जघन्येतरत् । पल्यासंख्येयिमुद्वेलनकालपरिमाणम् ॥

अर्थ—तेजकाय और वायुकायकें मनुष्यगतियुगल और उच्चगोत्र—इन तीनकी उद्वेलना होती है । और उस उद्वेलनाके कालका प्रमाण जघन्य अथवा उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ६१६ ॥

अब उसीको कहते हैं,—

पल्लासखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण । संखेज्जसायरठिदिं पल्लासखेज्जकालेण ॥ ६१७ ॥

पल्यासख्येयिमां स्थितिमुद्वेल्यति मुहूर्तान्तरेण । संख्येयसागरस्थितिं पल्यासख्येयकालेन ॥ ६१७ ॥

अर्थ—पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकी अतर्मुहूर्तकालमें उद्वेलना करता है तो सख्यातसागर प्रमाण मनुष्यद्विकादिकी सत्तारूपस्थितिकी उद्वेलना त्रैराशिकसे पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण कालमें ही करसकता है ऐसा सिद्ध हुआ ॥ ६१७

आगे सम्यक्त्वादिककी विराधना [छोडदेना] कितनी वार होती है यह कहते हैं—

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं । पल्लासंखेज्जदिम वारं पडिवज्जदे जीवो ॥ ६१८ ॥

सम्यक्त्वं देशयममनसयोजनविधिं च उत्कृष्टम् । पल्यासख्येय वारं प्रतिपद्यते जीव ॥ ६१८ ॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदक [क्षायोपशमिक] सम्यक्त्व, देशसंयम और अनतानुबंधीकषायके विसयोजनकी विधि इन चारोंको यह जीव उत्कृष्टपने अर्थात् अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग समयोंके प्रमाण वार छोड २ के ग्रहण करता है । पीछे नियमसे सिद्धपदको ही पाता है ॥ ६१८ ॥

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो । बत्तीसं वाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि ॥ ६१९ ॥

चतुरो वारानुपशमश्रेणिं समारोहति क्षपितकर्मांश । द्वात्रिंशद्वारान् संयममुपलभ्य निर्वाति ॥ ६१९ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीपर अधिकसे अधिक चार दफै चढता है पीछे कर्मोंके अंशोंको क्षय करता हुआ क्षपकश्रेणी चढ मोक्षको ही पाता है । और सकलसंयमको उत्कृष्टपनेसे ३२ वार धारण करके पीछे मोक्षको ही प्राप्त होता है ॥ ६२९ ॥

आगे चारों गतियोंकी अपेक्षासे गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी योजना करते हैं,—

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि वाणउदी सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी ॥ ६२० ॥

सुरनरसम्ये प्रथमं, सासनहीनेषु भवति द्वानवतिः । सुरसम्ये नरनारकसम्ये मिथ्ये च एकनवति. ॥

अर्थ—पहला ९३ का सत्त्वस्थान असयतसम्यग्दृष्टि देवके तथा मनुष्यके होता है, सासादन रहित चारों गतिके जीवोंके ९२ का स्थान होता है और ९१ का स्थान देव सम्यग्दृष्टीके तथा मनुष्य और नारकी सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टीके होता है ॥

णउदी चदुग्गदिम्हि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे । अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्हि वासीदी ।६२१।

नवति चतुर्गतौ च त्रयोदशक्षपक इति तिर्यग्नरमिथ्ये । अष्टचतुरशीति. सत्ता तिर्यग्मिथ्ये द्व्यशीति ॥

अर्थ–९० का सत्त्वस्थान १३ प्रकृतियोंके क्षयवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानपर्यंत चारों गतियोंके जीवोंके होता है, ८८-८४के दोनों स्थानोंकी सत्ता मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यके हैं, और ८२ का सत्त्वस्थान तिर्यंचमिथ्यादृष्टिके होता है ऐसा जानना चाहिए॥

सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु । गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं ॥ ६२२ ॥

अशीत्यादिचतु स्थानानि त्रयोदशक्षपकादनुपशामकेषु । गतयोगस्य द्विचरमं यावच्च चरमे दश नवकम् ॥

अर्थ–८०को आदि लेकर चार स्थान अर्थात् ८०-७९-७८ ७७के स्थान तेरह प्रकृतिके क्षय करनेवाले क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे लेकर अयोगीके द्विचरमसमय तक पाये जाते हैं। और १० का तथा ९ का सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके अंतसमयमें होता है ।

आगे ४१ जीवपदोंमें उन सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

णिरये वा इगिणउदी णउदी भूआदिसव्वतिरियेसु । वाणउदी णउदी अडचउवासीदी य होंति सत्ताणि ॥६२३॥

निरये द्व्येकनवतिः नवतिः भ्वादिसर्वतिर्यक्षु । द्वानवति नवतिः अष्टचतुर्द्व्यशीतिश्च भवन्ति सत्त्वानि ॥

अर्थ—नामकर्मके सत्त्वस्थान नारकी जीवोंमें ९२–९१–९० के इस तरह ३ हैं । और पृथिवीकायादि सब तिर्यंचोंमें ९२–९०—८८–८४–८२ के इस तरह पांच पाच हैं ।

वासीदिं वज्जित्ता वारस ठाणाणि होंति मणुवेसु । सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु ॥ ६२४ ॥

द्व्यशीतिं वर्जयित्वा द्वादशस्थानानि भवन्ति मानवेसु । अशीत्यादिचतुःस्थानानि षट्स्थानानि केवलिद्विकयोः ॥ ६२४ ॥

अर्थ—मनुष्योंमें ८२ के स्थानको छोडकर शेष १२ स्थान होते हैं, परतु सयोगकेवलीके ८० को आदि लेकर चार सत्त्वस्थान हैं, अयोगकेवलीके ८० को आदिलेकर ६ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६२४ ॥

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे । तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्कं तु ॥ ६२५ ॥

समविषमस्थानानि च क्रमेण तीर्थेतरकेवलिनो भवेयु । त्रिद्विनवतिः आहारे देवे आदिमचतुष्क तु ॥ ६२५ ॥

अर्थ—केवलीके जो स्थान कहे थे वे समसंख्यावाले तीर्थंकर केवलीके और विषमसंख्यावाले स्थान तीर्थंकरप्रकृति रहित सामान्यकेवलीके होते हैं । आहारकमें ९३–९२ के दो स्थान हैं । और विमानवासी देवोंमें आदिके ४ सत्त्वस्थान होते हैं ।

वाणउदिणउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीणं । हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाणं च य सासणे णउदी ॥ ६२६ ॥

द्वानवतिनवतिसत्ता भवनत्रिकाणा च भोगभूमीनाम । अधस्तनपृथिवीचतुष्कभवाना च च सासने नवति. ॥ ६२६ ॥

अर्थः—भवनत्रिक देवोंके, भोगभूमियाओंके और नीचेकी अजनादि चार नरकपृथिवियोंमें ९२–९० इन दो स्थानोंकी सत्ता है । तथा सासादन गुणस्थानमें सब जीवोंके ९० का ही सत्त्वस्थान है ॥ ६२६ ॥

इस प्रकार बंधोदयसत्त्वकी अपेक्षा गोमटसारके अनुसार भंग कहे ।

॥४१४॥

स्थानानां त्रिविकल्पानां कर्तव्या विनियोजना । अतो जीवगुणस्थाने क्रमतः सर्वकर्मणाम् ॥ २७५ ॥
बंधनोदयसत्त्वेषु ज्ञानावृत्त्यंतराययोः । पंच जीवसमासेषु निर्बंधे पाकसत्त्वयोः ॥ २७६ ॥

अब यहांसे आगे सर्व कर्मोंको मिलाकर बंधोदय सत्तारूप तीन प्रकारके स्थानोंकी संयुक्त योजना, जीवसमासोंके तथा गुणस्थानोंके अनुसार करते हैं । २७५ ।

सबसे प्रथम जीवसमासोंमें ज्ञानावरण तथा अंतरायकी बंधोदयसत्ताको दिखाते हैं।—

ज्ञानावरण, अंतराय–इन दो कर्मोंकी सर्व उत्तर प्रकृति पांच पांच हैं । जीवसमास सर्व चौदह हैं । इनमेंसे संज्ञी पर्याप्तक नाम चौदहवें भेदमें जुदा स्पष्टीकरण करते हैं, क्योंकि, उस चौदहवेंकी गति ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंमें भी है और वहां पर बंध होना रुक जाता है । इसलिये चौदहवें समासका केवल सामान्य बंधोदयसत्त्व नहीं कहा जा सकता है । इसलिये प्रथम तेरह जीवसमासोंमें बंधोदयसत्त्वको बताते हैं । इन तेरह जीवसमासोंमें ज्ञानावरण तथा अंतरायकी पांचो पांचों ही प्रकृतियोंका बंध है, पांच पांचका ही उदय है, सत्ता भी पांच पांचकी है । चौदहवें जीवसमासमें भी जहां पर्यंत बंधादि त्रय हैं वहां पर्यंत पांच पांच ही बंधरूप, उदयरूप तथा सत्तारूप हैं । परंतु संज्ञी पर्याप्तक नाम चौदहवें जीव समासमें जहांसे बंधरूप योग्यता नहीं है ऐसे ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थानमें बंधको छोडकर केवल उदय तथा सत्त्व ही पांच पांच प्रकृतियोंका है । इस चौदहवें जीवसमासमें बंध उदय सत्त्व ये तीनों मिथ्यात्वसे लेकर सूक्ष्म लोभ–दशवें गुणस्थान पर्यंत पूर्वके तेरह जीवसमासोंमें जैसे बताये हैं वैसे ही पांच पांच प्रकृतियोंके हैं ।

भावार्थ, तेरहवे गुणस्थानसे लेकर उदय तथा सत्त्वका भी अभाव है । उपशांत कषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें पहुंचनेवालेके ज्ञानावरण अंतरायका बंध नहीं होता परंतु नीचे गिरनेपर बंध होने लगता है । इसलिये ग्यारहवां गुणस्थान बंधरहित तो है परंतु उसे उपरतबंध नहीं कहते हैं । और बारहवें गुणस्थानमें बंधका अभाव होता है वह सदाकेलिये हो जाता है इसलिये बारहवें गुणस्थानको उपरतबंध कहते हैं । इसी अभिप्रायसे मूलके विवरणमें ग्यारहवेंको निर्बन्ध और बारहवें गुणस्थानको उपरतबंध लिखा है ॥ २७६ ॥

जीवसमासेषु त्रयोदशसु-बंधे ५ । उदये ५ । सत्त्वे ५ । चतुर्दशे संज्ञिनि पर्याप्ते मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्ते बंध-त्रये-बंधे ५ । उदये ५ । सत्त्वे ५ । निर्बन्धोपरतबंधयोरुपशांतक्षीणयोः पाके सत्त्वे च ५ । ५ ।

त्रयोदशसु दृग्रोधे नव बंधनसत्त्वयोः । चतस्रः पंच वा पाके पूर्णे संज्ञिनि भाषिताः ॥ २७७ ॥
गुणस्थानोदिता भंगा जीवस्थाने चतुर्दशे ।

अब दर्शनावरणकी उत्तर प्रकृतियोंके बंधोदय सत्त्वकी यथायोग्य स्थितिको जीवसमासोंमें दिखाते हैं ।—

संज्ञी पर्याप्तक—चौदहवें जीवसमासके अतिरिक्त शेष तेरह जीवसमासोंमें दर्शनावरणकी सर्व नौ प्रकृतियोंका बंध, नौकी ही सत्ता है । उदय इन्हीं तेरह जीवसमासोंमें दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंका अथवा पांचका रहता है । और चौदहवें जीवसमास संज्ञी पर्याप्तक संबंधी बंधोदयसत्त्वके भेद गुणस्थानोंमें जैसे वर्णन किए हुए हैं वैसे ही बताये हैं । चक्षुर्दर्शनावरणादि चारका उदय जाग्रत अवस्थामें माना जाता है । इन चारके साथ किसी एक निद्राका भी उदय हो तो पांच दर्शनावरणोंका उदय संभव होता है ।

भावार्थ, दर्शनावरणकी उत्तर प्रकृति नौ हैं । सो चौदह जीवसमासोंमेंसे संज्ञी पर्याप्तक चौदहवें जीवसमासको छोड़कर शेष तेरह जीवसमासोंमें देखें तो दर्शनावरणकी सत्ता प्रत्येक समासमें नौकी ही है, बंध भी प्रत्येक समासमें नौका ही है । उदय-मात्र चारका है और पांचका भी है । और पर्याप्तक संज्ञी नामके चौदहवें समासमें बंधत्रयके भंग गुणस्थानोंमें जैसे बताये हैं वैसे ही समझने चाहिये । उनका खुलासा नीचे यंत्रों द्वारा करते हैं ।

	बंध—	९	९
तेरह समासोंमें—	उदय—	४	५
	सत्त्व—	९	९

	बं. ९	९
त्रयोदशसु—	उ. ४	५
	स. ९	९

	९	९
संज्ञिनि पूर्णे मिथ्यादृष्टिशासनयोः—	४	५
	९	९

	६	६
मिश्राद्यपूर्वकरणद्वयप्रथमसप्तमभागं यावत्,—	४	५
	९	९

	४	४
शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मोपशमकेषु क्षपकेष्वपूर्वशेषसप्तमभागेषु षट्स्वनिवृत्तेरसंख्यातभागं यावत्—	४	५
	९	९

	बंध—	९	९
सज्ञी पर्याप्तक चौदहवें समासमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थान और सासादन गुणस्थानके रहते—	उ०—	४	५
	स०—	९	९

	बंध	६	६
मिश्र तीसरे गुणस्थानसे लेकर, तथा अपूर्वकरण (क्षपकोपशमक दो दो प्रकारके) आठवें गुणस्थानके सात भागोंमेंसे आदिके एक भाग पर्यंत—	उ.	४	५
	स.	९	९

	बं	४	४
उपशमक अपूर्वकरणके शेष छह भागोंमें, तथा उपशमक अनिवृत्तिकरणमें, उपशमक सूक्ष्मकषायमें, एवं क्षपक श्रेणीसंबंधी अपूर्वकरणके अंतिम शेष छह भागोंमें, क्षपक अनिवृत्तिकरणके असंख्यातवें भाग पर्यंत—	उ	४	५
	स	९	९

ततः परमनिवृत्तेः शेषसंख्यातभागे सूक्ष्मक्षपके च—

४	४
४	५
६	६

शान्ते—

०	०
४	५
९	९

क्षीणद्विचरमक्षणे—

०	०
४	४
६	६

क्षीणचरमक्षणे—

०
४
६

एवं सर्वे पिंडिताः १३ ।

इसके आगे क्षपक अनिवृत्तिकरणके शेष संख्यात भागमें, तथा क्षपक सूक्ष्मकषायमें—

बं.	४	४
उ.	४	५
स	६	६

उपशांतकषायमें—

ब	०	०
उ.	४	५
स.	९	९

क्षीणकषायके उपांत्य समयमें—

बं.	०	०
उ.	४	५
स.	६	६

क्षीणकषायके अंतिम क्षणमें—

ब.	०
उ.	४
स	४

इस प्रकार इन सबोंको मिलानेसे १३ भेद हुए। वे इस प्रकार—

चौदहवें जीवसमासमें सर्व भग तेरह होते हैं। वे इस प्रकार हैं।—प्रथम मिथ्यात्वमें तथा सासादनमें उदयके दो भेद होनेसे दो भंग है। आगे मिश्रादि अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यंत उदयके ही दो भेद होनेसे दो भंग हैं। फिर

वेद्यायुर्गोत्रकर्माणि भाषित्वा वच्मि मोहनम् ॥ २७८ ॥
वेद्यस्य द्वाषष्टिस्त्रियुतं शतमायुषो विकल्पानाम् । चत्वारिंशद्गोत्रे सप्ताग्राऽन्यापि जीवेषु ॥ २७९ ॥
जीवसमासेषु भंगाः ६२ । १०३ । ४७ ।
प्रत्येकं चत्वारो भंगाः सत्यादिमाश्चतुर्दशसु । षट् केवलियुग्मे द्वाषष्टिर्जायते वेद्ये ॥ २८० ॥

उपशमक अपूर्वकरणके शेष भागोंसे लेकर सूक्ष्मसांपराय उपशमक पर्यंतमें उदयके दो भेद होनेसे दो भंग हैं। फिर क्षपक अपूर्वकरणसे क्षपक अनिवृत्तिकरणके असंख्यातवें भाग पर्यंतमें उदयके दो भेद होनेके कारण दो भंग हैं। फिर शेष अनिवृत्तिकरण क्षपक तथा सूक्ष्मसांपराय क्षपकके उदयमें दो भेद होनेके कारण दो भंग हैं। फिर उपशांतमें भी उदयके दो भेदके रहनेसे दो भंग हैं। फिर क्षीण कषायके उपांत्य समयमें भी उदय दो प्रकारका होनेसे दो भंग हैं। फिर क्षीणकषायके अंत्य समयमें उदय एक ही प्रकारका है इसलिये भंग एक ही है। ये संज्ञी पर्याप्तकके तेरह भंग हैं। तेरह समासोंके दो भंग चौदहवें समासके मिथ्यादृष्टिके दो भंगोंके समान ही हैं इसलिये जुदे नहीं गिने जाते हैं।

इसके आगे वेदनीय, आयु, गोत्र इन तीन कर्मोंके बंधोदयसत्त्वसंबंधी भंगोंको क्रमसे बताकर फिर मोहका वर्णन करेंगे। २७७–२७८।

वेदनीय कर्मके बंधोदयसत्त्वमें बासठि भेद होते हैं। आयुके बंधोदयसत्त्वमें एकसौ तीन भेद होते हैं। गोत्रमें बंधोदयसत्त्वके भेद सात अधिक चालीस अर्थात् सैंतालीस होते हैं। इस प्रकार क्रमसे ६२, १०३, ४७—इतने भंग जीवसमासों द्वारा देखनेसे तीनों कर्मोंके होते हैं। २७९ ॥

अब वेदनीयकर्मके बासठि भेदोंको त्रिसंयोगमें बताते हैं।—

चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येक जीवसमासमें वेदनीय त्रिसंयोगके चार चार भंग होते हैं। ये भंग बारहवें गुणस्थानपर्यंत समझने चाहिये। केवलीके दोनों गुणस्थानोंमें छह भंग होते हैं। इस प्रकार सर्व बासठि भंग चौदह जीवसमासोंके गुणस्थान-लेकर हो जाते हैं। २८०।

चतुर्दशसु प्रत्येकमादिमाश्चत्वारः—

ब.	१	१	०	०
उ.	१	०	१	०
स.	१ ०	१ ०	१ ०	१ ०

इति

इस वेदनीयके बंधोदयसत्त्वके भेदोंको समासोंमें दिखानेवाले यंत्र आगे देते हैं ।—

चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येक समासमें बंधोदयसत्त्वके आदिम चार चार भेद इस प्रकार हैं ।—

बंध—	१	१	०	०
उ०—	१	०	१	०
स०—	१-०	१-०	१-०	१-०

इस यंत्रका खुलासा इस प्रकार है ।--यंत्रमें जहां एकका अंक है वहांपर वेदनीयमेंसे सातावेदनीय अर्थ लेना । जहां शून्य दिया है वहां असाता वेदनीय अर्थ लेना । इस यंत्रसे प्रत्येक समासमें चार चार प्रकार बंधोदयसत्वके मिलाकर, हो जाते हैं । पहिले कोष्टकमें पहिला भेद बताया है । उसमें बंध एक अर्थात् साताका, नीचे उदय एक अर्थात् साताका, सत्ता एककी भी और शून्यकी भी अर्थात् साता असाता दोनोकी सत्ता । इसी प्रकार दूसरे कोष्टकमें बंध साताका, उदय असाताका, सत्ता साता असाता दोनोंकी ऐसा अर्थ निकलता है । तीसरे कोष्टकमें बंध असाताका, उदय साताका, सत्तामें साता असाता दोनो ऐसा तीसरा भेद बनजाता है । चौथे कोष्टकसे चौथा भेद बनता है। वह इस प्रकार कि, बंध असाताका, उदय असाताका, सत्ता साता असाता दोनोंकी । ऐसे यत्रमें चार भेद दिखाये हैं । चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकमें ये चार भेद संभव हैं इसलिये चौदहके चौगुने ५६ विकल्प होजाते हैं। छह विकल्प दोनो केवलियोंमें होते हैं ऐसा आगे बताया है इसलिये ये छप्पन विकल्प बारहवें गुणस्थान पर्यंत समझना चाहिये ।

योगिनि द्वावाद्यौ—

ब	१	ब	१
उ.	१	उ.	०
स	१-०	स	१-०

अयोगेऽपि द्वौ बंधेन विनाद्यावुपांतिमे समये—

उ०—	१	०
स०—	१-०	१-०

द्वावयोगस्यांत्ये समये—

उ०—	०	१
स०—	०	१

इत्थं सर्वे ६२।

सयोगकेवलीमें आदिके दो भेद हैं।—

बंध—	१	१
उ०—	१	०
स०—	१-०	१-०

अयोग केवलीके उपांत्य समयमें बंध नहीं होता इसलिये बंधको छोडकर उदय तथा सत्ताके भेद—

उदय—	१	०
सत्ता—	१-०	१-०

अयोग केवलीके अंत्य समयमें दो भेद इस प्रकार हैं—

उ०	०	१
स०	०	१

इस प्रकार केवलीद्वयके छह विकल्प और ऊपर बारहवें गुणस्थान पर्यंत होनेवाले छप्पन विकल्प मिलकर चौदह समासोंके सर्व भेद ६२ हुए।

इसका खुलासा क० गोमटसारमें जो दिया है वह इस प्रकार है।—

सादासादेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे। दोसत्त जोगित्ति य चरिमे उदयागद सत्त ॥ ६३३ ॥
छट्ठोत्ति चारि भगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे। चउभगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स ॥६३४॥ जुम्मं।

सातासातैकतरं बंधोदयौ भवत संभवस्थाने। द्विसत्व योग्यन्तं च चरमे उदयागत सत्त्वं ॥ ६३३ ॥
षष्ठ इति चत्वारो भंगा द्वौ भगौ भवतो यावद्योगिजिनं। चतुर्भगा अयोगिजिने स्थानं प्रति वेदनीयस्य ॥ ६३४ ॥ युग्मम्।

जी० प्र०—सातासातैकतरमेव योग्यस्थाने बंध उदयो वा स्यात्। सत्व सयोगांत द्वे द्वे। अयोगे ते उदयागते, तेन वेदनीयस्य गुणस्थान प्रति भंगाः। षष्ठांत सातबंधोदयोभयसत्त्व सातबंधासातोदयोभयसत्त्व असातबंधसातोदयोभयसत्त्व असातबंधोदयोभयसत्त्वमिति चत्वारः। उपरि सयोगांत केवल सातस्यैव बंधात् तद्बंधतदुदयोभयसत्व तद्बंधासातोदयोभयसत्वमिति द्वौ[२]। अयोगे सातोदयोभयसत्वं, असातोदयोभयसत्वं सातोदयसत्त्वमसातोदयसत्वमिति चत्वारः ॥ ६३३ । ६३४ ॥

स० चं०—साता वा असाताविषैं एकहीका बंध वा उदय, योग्य स्थानविषैं हो है। बहुरि सत्व है सो सयोगी पर्यंत दोय दोयहीका है। अयोगी का अंत समयविषैं उदय जाका होइ तिसहीका सत्व है तातैं वेदनीयके गुणस्थान प्रति भंग छठा प्रमत्तपर्यंत-तो साताका बंध वा उदय सत्व दोऊनिका, अथवा साताका बंध असाताका उदय सत्व दोऊनिका, अथवा असाताका बंध साताका उदय सत्व दोऊनिका, अथवा असाताहीका बंध वा उदय अर सत्व दोऊनिका ऐसैं च्यारि भंग हैं। बहुरि ऊपरि

१—	सा	सा	अ	अ	२—	सा	सा	३—	०	०	०	०
	सा	अ	सा	अ		सा	अ		सा	अ	सा	अ
	२	२	२	२		२	२		२	२	सा	अ

गुणस्थानसंदृष्टिः

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४

देवायुर्नरकायुर्बध्नीतः संज्ञ्यसञ्ज्ञिनौ पूर्णौ । द्वादश नैकाक्षाद्या जीवसमासाः परे जातु ॥ २८१ ॥
पञ्चैकादशसूक्ताः प्रत्येकमसञ्ज्ञिनि नव पर्याप्ते । सञ्ज्ञिनि दशकापूर्णे विंशतिरष्टाधिकाऽपूर्णे ॥ २८२ ॥
केवलिभंगेन युत त्रियुतमायुषो विकल्पानाम् । विज्ञातव्यं सद्भिर्जीवसमासेषु सर्वेषु ॥ १०३ ॥

सयोगी पर्यंत केवल साताहीका बंध है तातैं साताहीका बंध वा उदय अर सत्व दोऊनिका, अथवा साताका बंध असाताका उदय सत्व दोऊनिका ऐसैं दोय ही भग हैं । बहुरि अयोगीविषैं बंधका तौ अभाव है तातैं साताका उदय, सत्व दोऊनिका अथवा असाताका उदय, सत्व दोऊनिका अथवा साताहीका उदय साताहीका सत्व, अथवा असाताहीका उदय असाताहीका सत्व ऐसैं च्यारि भंग हैं । ६३३–६३४ ॥ (टोडर. कृत गोम वचनिका)

अब आयुकर्मके त्रिसयोगी भंगोंको जीवसमासोंमें बताते हैं ।—

सर्व जीवसमास चौदह हैं । उन चौदहमेंसे संज्ञी पर्याप्तक तथा असज्ञी पर्याप्तक–ये दो समासके जीव देवायुको तथा नरकायुको बाधते हैं, शेष एकेंद्रियादि बारह समासके जीव देव–नरकायुको कभी नहीं बांधते ॥ २८१ ॥

आयुके सर्व भग एकसौ तीन होना ऊपर बताया है । उनमेंसे कहांपर कितने होते हैं इस बातको आगे दिखाते हैं ।—

ग्यारह समासोंमेंसे प्रत्येकमें आयुके त्रिसंयोगसबंधी पाच पांच भंग होते हैं। इसलिये ग्यारह समासोंके पचपन भंग हो जाते हैं । असंज्ञी पर्याप्तक–इस एक जीवसमासमें नौ भंग होते हैं । ऊपरके ग्यारह और यह असंज्ञी पर्याप्तक एक–ऐसे बारह ही ये समास तथा इनमें होनेवाले आयुके त्रिसयोगजन्य भग तिर्यंचगतिमें ही पाये जाते हैं । संज्ञी अपर्याप्तक–इस तेरहवें समासमें दश भेद पाये जाते हैं । ये भेद मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें होते हैं । सज्ञी पर्याप्तक–इस चौदहवें समासमें अट्ठाईस भेद पाये जाते हैं । यह समास चारो गतियोंमें मिलता है । केवलियोंके एक भग रहता है । इस प्रकार चौदह गुणस्थान पर्यंत चौदह ही समासोंमें आयुके त्रिसयोग द्वारा उत्पन्न हुए सर्व भग तीन अधिक सौ अर्थात् एकसौ तीन होते हैं ऐसा विद्वानोंको समझना चाहिये ॥ २८२–२८३ ॥

आसामर्थः—यस्मादेकादश जीवसमासाः श्वभ्रदेवायुषी न बध्नंति, ततस्तेषु तिरश्चामायुर्बंधभंगेभ्यो नवभ्यः श्वभ्रायुर्बंधभंगौ द्वौ, देवायुर्बंधभंगौ द्वौ, अपाकृत्य शेषा जीवसमासेष्वेकादशसु पंचपंचेति पंचपंचाशद्भवंति ।

	•	२	•	३	०
तत्र पंचानां संदृष्टिः—	२	२	२	२	२
	२	२-२	२-२	२-३	२-३

इन मूल कारिकाओंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है ।—कारिकामें दो समासके जीव नरक तथा देवायुको बांधते है ऐसा कहा है और एकेंद्रियादि बारह समास नरक-देवायुको न बांधनेवाले बताये हैं । परंतु एकेंद्रियादि ग्यारह समासके जीव नरकायुको और देवायुको कभी नहीं बांधते हैं । इसलिये उन ग्यारह समासोंमें तिर्यंचोंके नौ आयुर्बंधसंबंधी भंगोंमेंसे पांच पांच ही भंग होते हैं, दो नरकायुर्बंधके भंग और दो देवायुर्बंधके भंग ऐसे चार भंग यहां संभव नहीं हैं । इसलिये नौमेंसे चार भंग घट जानेसे प्रत्येक समासमें पांच पांच भंग होनेसे ग्यारह ही समासोंके पचपन भंग होते हैं ।

पांच भंगोंका स्वरूप यंत्रद्वारा आगे देते हैं ।—

बंध—	•	२	०	३	•
उ०—	२	२	२	२	२
स०—	२	२-२	२-२	२-३	२-३

इस प्रकरणमें भंग १—के अंकसे नरकायुका बोध करना चाहिये, २-से तिर्यंच आयुका, ३-से मनुष्य आयुका, ४-से देवायुका । एवं, ० शून्यसे अबंधका बोध करना चाहिये ।

ततः परमसञ्ज्ञिनि पर्याप्ते नव तिर्यग्भगाः—

बं.—	०	२	०	१	०	३	०	४	०
उ.—	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स.—	२	२-२	२-२	२-१	२-१	२-३	२-३	२-४	२-४

सञ्ज्ञिनि दशापूर्णे यस्मादपूर्णसंज्ञी तिर्यग्मनुष्यश्च श्वभ्रदेवायुषी न बध्नीतस्तस्मात्तिरश्चां मनुष्याणां चायुर्बंधभंगेभ्यो नवभ्यः श्वभ्रायुर्बंधभगौ देवायुर्बंधभगौ च हित्वा शेषाः पच पंचायुर्बंधभंगाः ५ । ५ ।

ग्यारह समासोंके आगे बारहवा समास असंज्ञी पर्याप्तक है। इसमें आयुके त्रिसंयोगी नौ भंग बताये हैं। इस असञ्ज्ञी पर्याप्तक नामके बारहवें समासके जीव केवल तिर्यच ही होवे हैं। उदय इनके तिर्यच आयुका ही रहता है किंतु ये बध चारो आयुका करते हैं। उसका यंत्र इस प्रकार है।—

बं०—	०	२	०	१	०	३	०	४	०
उ०—	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स०—	२	२-२	२-२	२-१	२-१	२ ३	२-३	२-४	२-४

इसके बाद तेरहवा समास सञ्ज्ञी अपर्याप्तक है। इसमें दश भग बताये हैं। इसका कारण यह है कि संज्ञी अपर्याप्तक जीव मनुष्य अथवा तिर्यच होता है, वह नरकायु तथा देवायुको नहीं बाधता है। इसलिये देवायुके दो और नरकायुके दो ऐसे चार भगोंको छोडकर नौ भगोंमेंसे पाच भग तिर्यचोंके होते हैं और पाच ही मनुष्योंके होते हैं। इन तिर्यचसबधी पाचको तथा मनुष्यसबंधी पांचको मिलानेसे सर्व सञ्ज्ञी अपर्याप्तकके दश भग होजाते हैं। दोनोंके यंत्र आगे देते हैं।—

॥५०५॥

०	२	०	३	०		०	३	०	२	०
२	२	२	२	२		३	३	३	३	३
२	२ २	२-२	२ ३	२-३		३	३ ३	३-३	३-२	३-२

इत्थमपूर्णे सज्ञिनि भगाः १० ।

पंच श्वभ्र भगा नव नव तिर्यङ्मनुष्ययोर्ज्ञेयाः । क्रमतो वध्नन् स्वायुर्बंधेऽपि च पच देवेषु ॥ २८४ ॥

५ । ९ । ९ । ५ ।

तिर्यंच आयुके उदयमें पांच भंग -

बं –	०	२	०	३	०
उ –	२	२	२	२	२
स.–	२	२-२	२-२	२-३	२-३

मनुष्यायुके उदयमें होनेवाले पांच भंग —

ब० —	०	३	०	२	०
उ० —	३	३	३	३	३
स० —	३	३–३	३–३	३–२	३–२

इस प्रकार तेरहवें सज्ञी अपर्याप्तक समासमें १० भंग हुए । अब चौदहवें सज्ञी पर्याप्तक समासमें चौदह भग आयुर्बंध-त्रयीके होते हैं उन्हे दिखाते हैं ।

सज्ञी पर्याप्तकके भग नरकगतिके उदयमें पाच हैं, तिर्यंच तथा मनुष्योंमें अपनी अपनी आयुका भी बंध होता है इसलिये भग नौ नौ है । और देवोंमें नारकीके समान पांच हैं ॥ २८४ ॥

भावार्थ, एक भग अवधके समय होता है और चार आयुओंके क्रमसे बधोंमें दो दो भग समझने । ऐसे सर्व नौ भंग हो जाना संभव है ! इन नौमेंसे नारकीके अपनी आयुके बधका अभाव होनेसे तथा देवायुके बधका अभाव होनेसे चार भग घट जाते हैं । किंतु मनुष्य तिर्यंचोंमें ये चार भी घटते नहीं है । इसलिये नौ नौ हैं ।

व.	०	२	०	३	०
उ	१	१	१	१	१
स	१	१-२	१-२	१-३	१-३

व.	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ.	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स.	२	२-१	२-१	२-२	२-२	२-३	२-३	२-४	२ ४

व.—	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ.—	३	३	३	३	३	३	३	३	३
स.—	३	३-१	३ १	३ २	३-२	३-३	३-३	३ ४	३ ४

वं.	०	२	०	३	०
उ.	४	४	४	४	४
स.	४	४-२	४-२	४-३	४-३

नारकगतिमें सञ्ज्ञी पर्याप्तकके पांच भा इस प्रकार हैं—

व० —	०	२	०	३	०
उ० —	१	१	१	१	१
स० —	१	१-२	१-२	१-३	१-३

तिर्यंच गतिमें नौ भग इस प्रकार हैं —

व० —	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ० —	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स० —	२	२-१	२-१	२-२	२-२	२-३	२-३	२-४	२-४

मनुष्यगतिमें नौ भग इस प्रकार हैं —

व —	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ. —	३	३	३	३	३	३	३	३	३
स —	३	३-१	३-१	३-२	३-२	३-३	३-३	३ ४	३ ४

देवगतिमें पांच भग हैं वे इस प्रकार हैं—

वं.	०	२	०	३	०
उ	४	४	४	४	४
स.	४	४-२	४-२	४-३	४-३

पूर्णे सज्ञिनि श्वभ्रतिर्यङ्मनुष्यदेवायुर्बंधभंगा भवन्त्येते ५ । ९ । ९ । ५ । पिंडिताः २८ ।

बं.— ०
एकः केवलिनि—उ.— २
स.— २ इत्थं सर्वे १०३ ।

गोत्रभंगाः कथ्यते—

उच्चं बंधे नीच पाके सत्त्वे द्वयं द्वयोर्नीचम् । उभयं सत्त्वे सर्वं नीचं भंगास्त्रयो ज्ञेयाः ॥ २८५ ॥

इस प्रकार संज्ञी पर्याप्तक समासमें नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवायुसबंधी बंधत्रयके भंग क्रमसे ५ - ९ - ९ - ५ होते हैं। इसके जोड देनेसे सर्व २८ भग हुए।

बं ०
केवलीके— उ. २
स २ इस प्रकार सर्व १०३ भंग आयुके बंधत्रयमें होगए।

अब गोत्रके बंधत्रयसबंधसे होनेवाले भंगोंको बताते हैं।—

बंधमें उच्चगोत्र, उदयमें नीचगोत्र, सत्तामें दोनो—यह एक भग हुआ। दोनोंमें नीच अर्थात् बंधमें भी नीचगोत्र, उदयमें भी नीचगोत्र, और सत्तामें दोनो अर्थात् उच्चगोत्र भी, नीचगोत्र भी—यह दूसरा भग हुआ। सर्वत्र अर्थात् तीनो स्थानोंमें नीच ही गोत्र—यह तीसरा भग हुआ। गोत्रके इस प्रकार सामान्य तीन भंग हैं॥ २८५ ॥

१	०	●
०	०	●
१-०	१-०	०-०

चत्वारिंशदितैका जीवसमासेषु ते त्रयोदशसु । सञ्ज्ञिनि षट् पर्याप्ते प्रथमा द्वौ केवलिद्वन्द्वे ॥ २८६ ॥

प्रत्येकं त्रयस्त्रयस्त्रयोदशस्विति ३९ ।

सञ्ज्ञिनि पर्याप्ते समानां भगानां षट् प्रथमाः—

१	१	०	०	०	
१	०	१	०	●	१
१-●	१-०	१-●	१-●	०-●	१-०

तेरह समासोंमेंसे प्रत्येकमें ये ही ऊपर बताये हुए तीन तीन भंग संभव हैं इसलिये तेरह समासोंके तीन गुणे करनेसे एक घाट चालीस अर्थात् उन्तालीस भग होते हैं । चौदहवें संज्ञी पर्याप्तक नामके समासमें छह भग होते हैं । केवली दोनोंमें आदिके दो भंग हैं ॥ २८६ ॥

तेरह समासोंमेंसे प्रत्येकमें जो तीन तीन भग होना बताया है वे तीन भग ऊपर बताये हैं उनका यत्र इस प्रकार है·—

बं.	१	०	●
उ.	●	०	०
स	१-●	१-०	०-०

केवलीके दो गुणस्थानोंको छोडकर शेष गुणस्थानोंमें जो सञ्ज्ञी पर्याप्तक चौदहवें समासके छह भंग होना बताया उसका यंत्र इस प्रकार है·—

बं —	१	१	●	०	०	
उ —	१	०	१	०	●	१
स —	१-०	१-०	१--०	१--०	०--०	१--०

॥५०९॥

केवलिनोरंतिमौ द्वौ—१   १
                     १०   १

एते ३९। ६। २। पिंडिताः ४७।

गोत्रे भगाः सर्वे चत्वारिंशन्नवति समाग्राः। वक्ष्याम्यधुना मोहे भंगविकल्पान् समासेन ॥ २८७ ॥
सूक्ष्मस्यापूर्णानां सप्तानामष्टजन्मिनामित्थम्। द्वाविंशतिरथ बंधे पाके सत्त्वे त्रितयमाद्यम् ॥ २८८ ॥

अष्टानां, बंधे २२। पाके १०। ९। ८। सत्त्वे २८। २७। २६।

दोनो केवलीके दो भतके भग हैं वे इस प्रकार हैं —

बं०—
उ०— १   १
स०—१–०   १

तेरह समासोंके ३९ ×, संज्ञी पर्याप्तकके ६ ×, केवली द्वयके २ = मिलकर ४७ हुए।

गोत्रकी इस बधत्रयीमें १ का अर्थ उच्च गोत्र है। ० का अर्थ नीच गोत्र है। ऐसा समझना। इस प्रकार गोत्रके सर्व भंग ४७ होते हैं। सत्तामें जहा १ तथा ० है वहां उच्च और नीच समझना, दशकी सख्या नहीं समझना।

अब संक्षेपसे मोहके भंगोंको कहते हैं। २८७।

चौदह समासोंमेंसे सात अपर्याप्त सबधी समास हैं। और पर्याप्तके सात भेदोंमेंसे एक सूक्ष्म भेद लेना चाहिये। इस प्रकार आठ समासवाले जीवोंमें बध बाईस का है। उदयमें और सत्तामें आदिके तीन तीन स्थान हैं। २८८।

बंधमें—२२।
आठ समासोंमें— उदयमें—१०। ९। ८।
सत्तामें—२८। २७। २६।

सञ्ज्ञिनमेकं हित्वा पचानामादिमानि पूर्णानाम्। द्वे चत्वारि त्रीणि क्रमतः स्युर्बंधपाकसत्त्वेषु ॥ २८९ ॥

पचाना पूर्णाना, बंधे २२ । २१ । उदये १० । ९ । ८ । ७ । सत्त्वे २८ । २७ । २६ ।

संज्ञिनि पूर्णे बंधे दश पाके नव मतानि सत्तायाम्। पचदश स्थानानि प्रमथितमोहारिभिर्मोहे ॥ २९० ॥

सञ्ज्ञिनि पूर्णे, सर्वाणि बंधे २२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१ । पाके १०।९।८।७।६।५।४।२।१। सत्तायां २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

संज्ञी पर्याप्तकको छोड़कर शेष पर्याप्तक पांच समासोंमें बंधमें आदिके दो स्थान हैं, उदयमें आदिके चार स्थान हैं, सत्तामें आदिके तीन स्थान हैं ऐसा क्रमसे समझना चाहिये। २८९ ।

पांच पर्याप्तकोंमें बंधमें—२२ । २१ ।

उदयमें—१० । ९ । ८ । ७ ।

सत्तामें—२८ । २७ । २६ ।

इस प्रकार तेरह समासोंमें बंधोदयसत्त्वको बताकर अब चौदहवें संज्ञीपर्याप्तकमें बंधोदयसत्त्वको बताते हैं।—

संज्ञी पर्याप्तक समासमें बंधमें दश स्थान, उदयमें नौ स्थान, सत्तामें पंद्रह स्थान, मोहशत्रुका नाश करनेवालोंने माने हैं। २९० ॥

संज्ञी पर्याप्तकमें—बंधमें—२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ ।

उदयमें— १०, ९ ८, ७, ६, ५, ४, २, १ ।

सत्तामें— २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १ ।

इस प्रकार मोहके त्रिसंयोगी भंग समाप्त हुए।

इतो नामकर्म कथ्यते—

बंधे पाके सत्त्वे पंच द्वे पच पच चत्वारि । पंच त्रितये पंच क्रमतः पचाथ षट् पंच च ॥ २९१ ॥
षट् षट् पचाष्टाष्टावेकादश नामकर्मणः संति । स्थानानि स्थानज्ञैर्जीवसमासेषु योज्यानि ॥ २९२ ॥

५	५	५	५	६	८
२	४	५	६	६	८
५	५	५	५	५	११

अत्र नामकर्मके त्रिसंयोगी भंगोंको दिखाते हुए चौदह समासोंमें छह प्रकारके बंधोदयसत्त्वको दो कारिकाओंसे गिनाते हैं।

नामकर्ममें त्रिसंयोगी भंग सर्व छह प्रकार हैं। उन छह प्रकारोंमेंसे एक प्रकार ऐसा है जिसमें बंधके पाच स्थान संभव हैं, उदयके दो स्थान संभव हैं, और सत्ताके पांच स्थान संभव हैं। दूसरा प्रकार ऐसा है कि उसके बंधमें पांच स्थान हैं, उदयमें चार स्थान हैं, सत्तामें पांच स्थान हैं। फिर तीसरा प्रकार ऐसा है कि उसके बंधमें भी पाच ही स्थान हैं, उदयमें भी पांच ही स्थान हैं, सत्तामें भी पांच ही स्थान हैं। फिर एक चौथा प्रकार ऐसा है जिसके बंधमें पांच स्थान हैं, उदयमें छह स्थान हैं, सत्तामें पांच स्थान हैं। फिर पांचवां प्रकार ऐसा है कि उसके बंधमें छह स्थान हैं, उदयमें भी छह स्थान हैं, सत्तामें पांच स्थान हैं। फिर एक छट्ठा ऐसा प्रकार है कि उसके बंधमें आठ स्थान हैं, उदयमें भी आठ स्थान हैं, सत्तामें ग्यारह स्थान हैं। स्थान जाननेवालोंको चाहिये कि इन स्थानोंको जीवसमासोंमें यथासंभव लगावें। २९१—२९२।

छह प्रकारके स्थानोंको त्रिसंयोगमें दिखानेवाला यंत्र—

बं०	५	५	५	५	६	८
उ०	२	४	५	६	६	८
स०	५	५	५	५	५	११

सप्तापर्याप्तकाः सूक्ष्मो बादरो विकलत्रयम् । असंज्ञी क्रमतः संज्ञी स्वामिनः स्युश्चतुर्दश ॥ २९३ ॥

क्रमादेषां स्वामिसंख्या ७ । १ । १ । ३ । १ । १

विंशतिरपूर्णकानां त्रिपंचषट्नवदशाधिका बंधे । स्थानानि पंच दक्षैः सप्तानामिह निगद्यन्ते ॥ २९४ ॥

२३ । २५ । २६ । २९ । ३० ।

ऊपर छह प्रकारके त्रिसंयोग जो बताये उनमेंसे कौनसा प्रकार किस समासमें संभव है-इस बातको आगेकी कारिकासे दिखाते हैं ।—

पहिले प्रकारके त्रिसंयोगी भंगके स्वामी सात अपर्याप्तक समास हैं। दूसरे प्रकारका त्रिसंयोगी भंग पर्याप्तक सातमेंसे एक सूक्ष्म पर्याप्तकमें होता है । तीसरे प्रकारका त्रिसंयोग बादर पर्याप्तकमें होता है । चौथे प्रकारका त्रिसयोग पर्याप्तक तीन विकलेंद्रियोंमें होता है । पांचवें प्रकारका त्रिसंयोग असज्ञी पर्याप्तकमें होता है । छठे प्रकारके त्रिसंयोगका स्वामी संज्ञी पर्याप्तक है । ऐसे क्रमसे समझना । २९३ ।

इन छहो त्रिसयोगी प्रकारोंके स्वामी, चौदह समासोंमेंसे क्रमसे—७, १, १, ३, १, १—इस प्रकार हैं ।

अब इन त्रिसंयोगी प्रकारोंके बंधादिसंबंधी जो स्थान रुंधगाम लसे बताए हैं वे कौन कौनसे स्थान हैं इस बातको आगे स्पष्ट करते हैं ।—

सात अपर्याप्तकोंमें बंध संबंधी पांच स्थान बताये हैं उनमेंसे एक तीन अधिक वीसका, दूसरा पांच अधिक वीसका, तीसरा छह अधिक वीसका, चौथा नौ अधिक वीसका, पांचवां दश अधिक वीसका है। इस प्रकार—२३ का, २५, का, २६, २९ का, ३० का-ये पांच स्थान बंधके प्रथम प्रकारमें समझने चाहिये । २९४ ।

एकविंशतिपाकोऽस्ति सूक्ष्मापर्याप्तकेंगिनि । चतुर्विंशतिपाकोऽस्ति स्थूलापर्याप्तके पुनः ॥ २९५ ॥

२१ । २४ ।

पाकेऽन्येषामपूर्णानां पचानां विंशती स्मृते । एकषट्सहिते प्राग्वितः सत्त्व निगद्यते ॥ २९६ ॥

२१ । २६ ।

द्व्युत्तरा नवतिः सा च रहिता द्विषडष्टभिः । नवतिः क्रमतस्तेषां सत्त्वस्थानानि पंच वै ॥ २९७ ॥

९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । सप्तस्वपूर्णेष्विति गतम् ।

इस प्रथम भंगमें उदयस्थान दो हैं उन्हे आगे बताते हैं ।—

यहां इक्कीसका तथा चौवीसका ये दो उदयस्थान हैं । उनमेंसे सूक्ष्म अपर्याप्तक नामके समासमें उदय इक्कीसका है, और दूसरा उदयस्थान चौवीसका है वह बादर अपर्याप्तक नामके समासमें रहता है । इक्कीसके स्थानमें अथवा चौवीसके स्थानमें प्रकृति कौन कौनसी रहती हैं—इस प्रकरणका वर्णन पूर्वमें इसी पांचवें परिच्छेदकी ११२ वीं कारिकासे लेकर आ चुका है ॥२९५॥

सर्व अपर्याप्तक समास सात हैं । उनमेंसे दो अपर्याप्तकोंमें संभव होनेवाले दो उदयस्थानोंको ऊपर बताया । अब शेष रहे पांच अपर्याप्तकोंमें दो उदयस्थान कौनसे हैं—इस बातको आगे बताते हैं ।—

अन्य अर्थात् अवशिष्ट रहे पांच अपर्याप्तकोंके दो उदयस्थान—एक इक्कीसका, दूसरा छव्वीसका – ये हैं । श्लोकमें एक सहित वीसका अर्थ इक्कीस है और छह सहित वीसका अर्थ छव्वीस है । ये भी स्थान किन प्रकृतियोंसे बनते हैं—सो पूर्वमें बताया है । प्रथम भंगके बंध तथा उदयसम्बन्धी स्थानोंको बताकर सत्ताके स्थान इसके आगे बतानेवाले हैं । २९६ ॥

सत्त्वस्थान प्रथम भंगमें पांच बताये हैं । उनमेंसे दो अधिक नब्बेका अर्थात् बानवेंका एक स्थान है। दूसरा स्थान 'सा च' अर्थात् केवल नब्बेका है । इसके आगे नब्बेमें क्रमसे दो संख्या घटानेसे, छह संख्या घटानेसे, आठ संख्या घटाने से—तीसरा स्थान अठासीका, चौथा स्थान चौरासीका, पांचवां स्थान ब्यासीका होजाता है । इस प्रकार—९२का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—ये पांच स्थान हुए । २९७ ॥

सात अपर्याप्तक समासोंमें यह त्रिसंयोगी प्रथम भंग बताया है उसके बंधोदयसत्त्व सम्बन्धी स्थानोंका यह स्पष्टीकरण हुआ ।

सूक्ष्मे स्थानानि पूर्वाणि पर्याप्ते बंधसत्त्वयोः । पाकेऽस्त्येकचतुःपंचषडग्रा विंशतिः पुनः ॥ २९८ ॥

सूक्ष्मे पूर्णे बंधा—२३ । २५ । २६ । २९ । ३० । उदयाः-२१ । २४ । २५ । २६ । सत्त्वानि-९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

पूर्णे स्थानानि पूर्वाणि बादरे बंधसत्त्वयोः । सप्तविंशतिपर्यन्ताः पाकाः सत्येकविंशतेः ॥ २९९ ॥

पूर्णे बंधाः— २३।२५।२६।२९।३० । उदयाः—२१।२४।२५।२६।२७ । सत्त्व- ९२।९०।८८।८४।८२ ।

अब जो सात पर्याप्तक समासोंमें त्रिसंयोगी नामके पाच भंग बताये हैं उनका खुलासा आगे करते हैं।— सूक्ष्म पर्याप्तक नामके एक समासमें नामका दूसरा भंग है। उसमें बंधके स्थान पांच हैं, उदयके चार हैं, और सत्ताके पांच हैं। उनमेंसे बंध तथा सत्ताके पांच पांच स्थान प्रथम भंगके बंधसत्त्वके समान जो ऊपर बताये हैं वे ही हैं। उदयस्थान इक्कीसका, चौवीसका, पच्चीसका, छब्वीसका—ये चार हैं ॥ २९८ ॥

सूक्ष्म पर्याप्तक समासमें बंधके स्थान— २३, २५, २६, २९, ३० ये पांच। उदयस्थान-२१, २४, २५, २६ ये चार। सत्तास्थान—९२, ९०, ८८, ८४, ८२ ये पांच।

सात पर्याप्त समासोंमेंसे दूसरा एक समास बादर पर्याप्त नामका है। इस समासमें तीसरा बंधत्रयीका भंग बताया है। उस तीसरे भंगमें पांच ही बंधस्थान हैं, पांच ही उदयस्थान हैं और पांच ही सत्त्वस्थान हैं। इनमेंसे बंध तथा सत्त्वसंबधी पांच पांच स्थान जो ऊपरके भंगमें बताये हैं वे ही हैं। किंतु उदयके पांच स्थान इकीसके स्थानसे लेकर सत्ताईसके स्थान पर्यंत हैं वे समझने चाहिये। इन स्थानोंमें भी एक सत्ताईसका स्थान नवीन है। शेष चार स्थान पूर्वके समान ही हैं। २९९।

पर्याप्तक बादर समासमें बंधस्थान पांच—२३ का, २५ का, २६ का, २९ का, ३० का। उदयस्थान पांच—२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का। सत्तारूप पांच स्थान—९२ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का।

विकलत्रितये वधसत्वस्थानानि पूर्णके। प्रत्येकं संति पूर्वाणि पंचसंख्यानि निश्चितम् ॥ ३०० ॥
एकद्वित्रिचतुर्न्यूना द्वात्रिंशद्विंशतिः पुनः। षडेकाग्रात्क्रमात्षट्कं पाकस्थानगतं स्मृतम् ॥ ३०१ ॥

वंधे- २३।२५।२६।२९।३०। उदये- २१।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे—९२।९०।८८।८४।८२।

अब चौथा भंग जो विकलत्रयमें बताया है उसके बंधोदयसत्त्वसंबंधी पाच छह तथा पांच स्थान कौन कौनसे हैं इस बातको आगे बताते हैं।—

पर्याप्तसंबंधी विकल तीनोंमें बंध तथा सत्त्वके स्थान पांच पांच बताये हैं वे पूर्वमें जो बताये हैं वे ही निश्चित हैं॥ और उदयके स्थान यहां प्रत्येक तीनोंमें छह छह हैं वे इस प्रकार है।—

एक अंतिम स्थान, एक घट बत्तीसका है। दूसरा अंतके पूर्वका स्थान दो घट बत्तीसका अर्थात् तीसका है। तीसरा तीन घाट बत्तीसका अर्थात् उन्तीसका है। चौथा चार घाट बत्तीसका अर्थात् अट्ठाईसका है। ये चार स्थान अंतकी तर्फसे पूर्व पूर्वके क्रमसे समझने चाहिये। और फिर उससे पूर्वका छह अधिक बीसका एक पांचवां स्थान अर्थात् छब्बीसका है। उससे भी पूर्वका छट्ठा स्थान एक अधिक बीसका अर्थात् इक्कीसका है॥३००-३०१

बंधमें...	२३, २५, २६, २९, ३० — ये पांच स्थान।
उदयमें...	२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ — ये छह स्थान।
सत्तामें..	९२, ९०, ८८, ८४, ८२, — ये पांच स्थान।

त्रिंशदंता मता बंधास्त्रयोविंशतिपूर्वकाः। विकलावगताः सत्त्वपाकाः पूर्णे त्वसञ्जिनि ॥ ३०२ ॥

बंधाः-२३। २५। २६ २८। २९। ३०। उदयाः- २१ ।२६। २८। २९। ३०। ३१ सन्ति-९२। ९०। ८८। ८४। ८२।

बंधे सर्वाणि पाकेऽष्ट पर्याप्ते सति सञ्ज्ञिनि। नवाष्टक परित्यज्य चतुरग्रां च विंशतिम् ॥ ३०३ ॥

संति स्थानानि सत्तायां परिमुच्याग्रिम द्वयम्। आद्यान्येकादशान्यानि क्रमेणात्र विसश्चयन् ॥ ३०४ ॥

अब असंज्ञी पर्याप्तक नामके समासमें जो ऊपर पांचवां भंग नामकी बंधत्रयीका बताया है उसका आगे खुलासा करते हैं।—

असंज्ञी पर्याप्तक समासमें बंधके छह स्थान, उदयके छह स्थान, तथा सत्ताके पांच स्थान बताकर पांचवां भंग बताया है उनमेंसे बंधके छह स्थान तो तेईसके स्थानसे लेकर तीसके स्थान पर्यंत हैं; और सत्तासंबंधी तथा उदयसंबंधी स्थान वे ही समझने चाहिये जो विकलत्रयमें सत्त्वोदयके स्थान बताये गये हैं। ३०२।

बंधके स्थान—२३, २५, २६, २८, २९, ३०-ये छह हैं। उदयस्थान—२१, २६, २८, २९. ३०, ३१। ये छह हैं। सत्तास्थान-९२, ९०, ८८, ८४, ८२—ये पांच हैं।

नामका छट्ठा बंधत्रयस्थान आठ-आठ-ग्यारहका ऊपर बताया है। वह संज्ञी पर्याप्तक समासमें होता है। उसका आगे खुलासा करते हैं।—

पाचवें परिच्छेदकी ६० वीं ६१ वीं इन दो कारिकाओंमें नामकर्मके बंधस्थान सर्व आठ ही बताये हैं। वे सभी आठ स्थान संज्ञी पर्याप्तक नामके समासमें संभव हैं। उदयके नामस्थान इसी परिच्छेदकी ११२ वीं कारिकामें सर्व ग्यारह बताये हैं। उनमेंसे नौका एक स्थान, आठका एक स्थान, तथा चार अधिक बीसका—चौबीस का एक स्थान-ये तीन सञ्ज्ञी पर्याप्तक समासमें नहीं मिलते। इसलिये सञ्ज्ञी पर्याप्तकमें इन तीनको छोडकर शेष आठ उदयस्थान रहते हैं। इसी पाचवें परिच्छेदकी २२२ वीं कारिकामें नामके सत्तास्थान सर्व तेरह बताये हैं। उनमेंसे अंतिम दो स्थान एक दशका, दूसरा नौ का—ये दो

बंधाः-२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । उदयाः-२१ । २५ । २६। २७। २८। २९ । ३० । ३१ । संति—९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ।

उदये क्रमतस्त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्ट च । षडग्रिमाणि सत्तायां संति केवलिनोर्द्वये ॥ ३०५ ॥

उदये—३० । ३१ । ९ । ८ । सत्तायां—८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

इति जीवसमासप्ररूपणा समाप्ता ।

संज्ञी पर्याप्तकमें नहीं रहते हैं । इसलिये इन अग्रिम दो स्थानोंको छोडकर शेष आदिके ग्यारह स्थान संज्ञी पर्याप्तकमें रहते हैं। ऐसा निःसंशय क्रमसे समझो । ३०३—३०४ ।

बंधके आठ स्थान-२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १।

उदयके आठ स्थान-२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१।

सत्तास्थान ग्यारह—९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ ।

केवलीके नामका बंध नहीं होता है इसलिये उदय तथा सत्ताके स्थानोंको आगे केवलीमें दिखाते हैं ।—

तेरहवें तथा चौदहवें—इन दो गुणस्थानवर्ती केवलियोंके उदयमें क्रमसे तीसका अथवा इकतीसका स्थान प्रथम होता है। और आगे नौका अथवा आठका स्थान होता है । ये विकल्प तीर्थंकर अथवा सामान्य केवलीपनेके निमित्तसे होते हैं। तीर्थंकर केवलीके प्रथम अवस्थामें इकतीसका उदय है और सामान्य केवलीके तीसका उदय है । फिर अंतमें तीर्थंकरके नौका उदय है और सामान्यके आठका है। इस प्रकार केवलीके उदयस्थान सर्व चार हुए । दोनो ही गुणस्थानवर्ती केवलियोंके सत्ताके स्थान अंतके छह हैं । ३०५ ।

केवलियोंके उदयमें चार स्थान-३०, ३१, ९, ८ । सत्तामें अंतके छह स्थान—८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ ।

इस प्रकार जीवसमासके आधारपर नामकर्मकी बंधत्रय प्ररूपणा समाप्त हुई ।

बंधनोदयसत्त्वेषु ज्ञानरोधान्तरायर्योः । गुणानां दशके पंच द्वितये पाकसत्त्वयोः ॥ २०६ ॥

गुणस्थानद-के—५ ५ । ५ ५ । ५,५ । शां-क्ष णयाः—०,० । ५,५ । ५,५ ।

दृग्रोधे नवक षट्क चतुष्टयमिति त्रयम् । बंधे सत्त्वे द्वय पाके चतुष्क पंचकं च वै ॥ २०७ ॥

अब आगे ज्ञानावरण तथा अंतरायकी बंधउदयसत्त्वरूप प्रकृतियोंकी संख्याको गुणस्थानोंमें दिखाते हैं ।—

ज्ञानावरणकी तथा अंतरायकी पांच पांच प्रकृति ही पहिलेसे दशवें गुणस्थान पर्यंत दश गुणस्थानोंमें बंधोदयसत्तामें रहती हैं । अर्थात् बंधमें भी पांच ही पांच हैं, सत्तामें भी पांच ही पांच हैं, और उदयमें भी पांच ही पांच हैं । दशवेंके आगे दो गुणस्थानोंमें— ग्यारहवेंमें तथा बारहवेंमें भी उदय तथा सत्तामें पांच पांच ही ज्ञानावरण तथा अंतरायकी प्रकृति हैं । इन दो गुणस्थानोंमें ज्ञानावरणका तथा अंतरायका बंध नहीं है इसलिये बंधकी प्रकृतिसंख्या नहीं दिखाई है । २०६ ॥

	बं० —	५	बं० —	५
पहिले दश गुणस्थानोंमें	ज्ञानावरण—उ० —	५	अंतराय—उ० —	५
	स० —	५	स० —	५
	बंध —	०	बं० —	०
उपशान्त तथा क्षीणकषायमें	ज्ञानावरण—उ० —	५	अंतराय—उ० —	५
	स —	५	स० —	५

अब आगे दर्शनावरणकी प्रकृतिसंख्याको बंधोदयसत्त्वमें बताते हैं ।—

दर्शनावरणकी सर्व नौ प्रकृति हैं । उनमेंसे बंधमें नौ भी रहती हैं, छह भी रहती हैं और चार भी रहती हैं—ऐसे बंध तीन प्रकारसे होता है । सत्तामें भी तीन प्रकार है—एक नौका, दूसरा छहका, तीसरा चारकी संख्याका । उदयमें चार प्रकृति अथवा पांच प्रकृति ऐसे दो प्रकार रहते हैं । २०७ ।

आद्यद्वितीययोः संति बंधे सत्त्वे नव स्फुटम् । चतस्रः पंच वा सति सर्वत्राप्युदये पुनः ॥ ३०८ ॥

	बं.	९,	९ ।
मिथ्यादृष्टिसासादनयोः—	उ.	४,	५ ।
	स.	९,	९ ।

षड्बंधकेषु सत्तायां सति प्रकृतयो नव । मिश्राद्यंत्यादिमापूर्वसप्तभागावसानिकाः ॥ ३०९ ॥

इस ऊपरके कथनका आगे खुलासा करते हैं ।—

आदिके दो गुणस्थानोंमें बंधमें दर्शनावरणकी नौं प्रकृति रहती हैं और सत्तामें भी नौं ही रहती हैं । और उदय तो केवल यहीं नहीं किंतु जहांतक संभव है वहांतक सवत्र चार प्रकृतिका अथवा पांच प्रकृतिका—ऐसे दो दो प्रकारका ही रहता है। इस उदयमें भी इतना विशेष है कि क्षीणकषायके अंतिम समयमें उदय केवल चारका ही है । क्योंकि, उपांत्य समयमें शेष रही निद्राओंका विच्छेद होजाता है । ३०८ ।

	बं—	९	९ ।
मिथ्या दृष्टि तथा सासादनमें	उ—	४	५ ।
	स—	९	९ ।

सासादन गुणस्थानमें दर्शनावरणकी तीन प्रकृतियोंका बंधविच्छेद होता है इसलिये तीसरे मिश्र गुणस्थानसे लेकर छह दर्शनावरणोंका बंध होता है । यह छहका बंध—दो प्रकारके अपूर्वकरणके सात उत्तर भेदोंमेंसे प्रथम भेदपर्यंत, तीसरे गुणस्थानसे लेकर होता है । इन गुणस्थानोंमें सत्त्वकी प्रकृति नौं नौं रहती हैं । और ऊपर उदयका नियम ऐसा बताया है कि उदय सर्वत्र ही चारका अथवा पांचका रहता है । ३०९ ।

मिश्राद्येष्वपूर्वकरणद्वयप्रथमभाग यावत्— ६, ६ । ४, ५ । ९, ९ ।

चतुर्धो मतो द्वेधा शमकेतरभेदत । शमके नव सत्तायां क्षपके षट् प्रकीर्त्तिताः ॥ २१० ॥
अष्टमे नवमे सूक्ष्मोपशमके नव भाषिताः । क्षपके नवमे सूक्ष्मे सत्तायां षड् निरूपिताः ॥ २११ ॥

शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मशमकेषु— ४, ४ । ४, ५ । ९, ९ ।

मिश्रसे लेकर दोनों प्रकारके अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यंत— बं. ६ ६ उ. ४ ५ स ९ ९

अपूर्वकरणके प्रथम भागमें दो दर्शनावरणोंकी बंधसे व्युच्छित्ति होती है इसलिये आगे चाहे उपशमक हो अथवा क्षपक हो-दोनो प्रकारके ऊपरके स्थानोंमें बंध चार प्रकृतिका रह जाता है । और उपशमवालेके आठवें गुणस्थानमें, नौवेंमें, तथा दशमें उपशमवाले सूक्ष्मलोभमें भी सत्तामें नौ दर्शनावरण रहते हैं । एवं क्षपक श्रेणीवाले नौवें गुणस्थानमें तथा — क्षपक सूक्ष्मलोभ नामके दशवें गुणस्थानमें सत्तामें छह छह प्रकृति बताई हैं । भावार्थ, क्षपक श्रेणीवालेके दर्शनावरणकी तीन प्रकृतियोंका नौवें गुणस्थानसे प्रथम ही सत्ताविच्छेद होजाता है । और उदय सर्वत्र ही चारका किंवा पांचका है । २१०–२११ ।

दोनो अपूर्वकरणमें प्रथम भागके आगे शेष सर्व भागोंमें, और उपशमक अनिवृत्तिकरणमें, तथा उपशमक ही सूक्ष्मलोभमें— बं. ४ ४ उ. . ४ ५ स ... ९ ९

अनिवृत्तिसूक्ष्मक्षपकेषु— ४, ४ । ४, ५ । ६, ६ ।

निवृत्तवधने शान्ते सत्तायां नव भाषिताः । षडादिमे क्षणे ज्ञेयाश्चतस्रश्चरमे क्षणे ॥ ३१२ ॥

शान्ते— ० ० । ४ ५ । ९ ९ ।   क्षीणे— ० ० । ४ ५ । ६ ६ ।   क्षीणान्त्यक्षणे— ० ४ ४   इति सर्वे दर्शनावरणीयस्य १३ ।

क्षपक श्रेणिके अनिवृत्तिकरणमें और क्षपक ही सूक्ष्मलोभमें— बं ४ ४ । उ ४ ५ । स . ६ ६

उपशान्तकषायसे लेकर दर्शनावरणके बंधका अभाव होजाता है। उपशांतकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें सत्तामें नौ ही प्रकृति रहती हैं। क्षीणकषायके आदि समयसे सत्तामें प्रकृति छह रहती हैं और अन्त्य समयमें चार प्रकृति सत्तामें रहती हैं। भावार्थ, अंत्य समयमें सत्ता ही चारकी है इसलिये उदय भी केवल चारका ही रहताहै। और इससे पहिले उपांत्य समय पर्यंत उदय चारका भी रहता है, पांचका भी रहता है। ३१२।

उपशातमें... बं . ० ० । उ .. ४ ५ । स . . ९ ९   क्षीणके उपांत्य समयमें बं ० ० । उ ४ ५ । स ६ ६   क्षीणके अंत्य समयमें... बं... ० । उ... ४ । स... ४

इस प्रकार दर्शनावरणके सर्व भंग बताये।

द्वाचत्वारिंशतं वेद्ये त्रयोदशयुत शतम् । आयुष्याहुर्जिना भंगान् गोत्रे पंचाग्रविंशतिम् ॥ ३१३ ॥
४२ । ११३ । २५ ।
चत्वारः प्रथमाः षट्के द्वावाद्यौ सप्तके परे । अत्या वेद्यस्य चत्वारो भंगा योगविवर्जिते ॥ ३१४ ॥

तत्र मिथ्यादृष्टीनां प्रमत्तान्तानां षण्णां प्रत्येकं प्रथमाश्चत्वारो वेद्यस्य भंगाः—

१	१	०	०
१	०	१	०
१०	१-०	१-०	१-०

वेदनीयकर्ममें जिनेंद्रने व्यालीस भंग बताये हैं। आयुमें एकसौ तेरह भंग बताये हैं। गोत्र कर्ममें पच्चीस भंग बताये हैं (-४२ । ११३ । २५ ।) ॥ ११३ ॥

अब आगे वेदनीयके व्यालीस भगोंको गुणस्थानोंमें विभक्त करके दिखाते हैं।—

' षट्के ' अर्थात् प्रथमके छह गुणस्थानोंमें वेदनीयमें आदिके चार चार भंग होते हैं। सातवेंसे तेरहवें पर्यंत सात गुणस्थानोंमें आदिके दो दो भग होते हैं। और योगरहित अयोग केवली नामके एक चौदहवें गुणस्थानमें अंतके चार भग होते हैं। ३१४।

भावार्थ, वेदनीयके सर्व मूल भंग आठ होना बताया है। उनमेंसे चार आदिके भगोंका यंत्र यहा आगे देते है और चार अंतके भंगोंका यत्र इसके आगे देंगे। यहांपर जो चार भगका यत्र है वह आदिके छह गुणस्थानोंमें सभव भगोंकी अपेक्षासे दिखाया है। अथवा गुणस्थानोंकी अपेक्षाको न लेकर भी ससारी जीवोंमें देखें तो भी ये चार भग समवते हैं।

पहिले चार भगोंका यत्र—				
बध—	१	१	०	०
उदय—	१	०	१	०
सत्ता—	१-०	१-०	१-०	१-०

इस यंत्रके चार भगोंमेंसे प्रथम भंगका अर्थ यह है कि बंधमें भी १-अर्थात् सातावेदनीय, उदयमें भी १-अर्थात् साता-

इत्थं पट्के मीलिताः २४ । परत्र मतके प्रथमौ द्वौ द्वौ—

१,	१
१,	०
१-०	१-०

इत्थ १४ ।

योगवर्जितेन्त्याश्चत्वारः—

१	०	०	१
१-०	१-०	०	१

इत्थ सर्वे ४२ ।

वदनीय, और सत्तामें १ तथा ०-अर्थात् साता भी और असाता भी । दूसरे आदि भगोंका भी अर्थ इसी प्रकारसे समझलेना चाहिये । वेदनीयके ये चार भग पहिले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर छट्ठे प्रमत्तसयत गुणस्थान पर्यंत छह गुणस्थानोंमें मिलते हैं । इसलिये छहो गुणस्थानोंके चार चारको छह वार रखकर परस्परमें गुणा करनेसे चौवीस भंग होजाते हैं । छट्ठे गुणस्थानसे ऊपरके सात गुणस्थानोंमें इस ऊपर बताये यत्रमेंसे पहिला और दूसरा जो भंग है वह सभव है । इसलिये ऊपरके तेरहवें पर्यंत सात गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येकके दो दो भंग माननेसे सातके दूने चौदह भग इन सात गुणस्थानोंमें हो जाते हैं ।

अंतके अयोग केवली चौदहवें गुणस्थानमें भी चार भग हैं परन्तु वे अतके चार हैं ।

इन चारमें बधकी प्रकृतिका समावेश नहीं है । इसका कारण यह है कि अयोग केवलीके वेदनीयके बधका अभाव हो जाता है । इसलिये इस आगेके यत्रमें केवल उदय तथा सत्ताकी ही प्रकृति दिखाई हैं । यंत्र इस प्रकार है ।—

उ०—	१	०	०	१
स०—	१-०	१-०	०	१

प्रथमके छह गुणस्थान संबधी २४ भग, फिर आगेके सात गुणस्थान सबधी १४ भंग, और अयोगकेवलीके ४ भंग = ये सर्व मिलानेसे ४२ भंग वेदनीयके हो जाते हैं । इस प्रकरणके यंत्रोंमें शून्यका अर्थ असाता है ।

इस प्रकार वेदनीयके भंग कहे ।

॥५२४॥

अष्टाविंशतिराद्ये षड्विंशतिः स्वस्तदर्शने । मिश्रे षोडश सद्दृष्टौ विंशतिः षडतः परे ॥ ३१५ ॥
त्रयस्त्रयो द्वयोर्द्वौ द्वौ चतुर्ष्वेकैककस्त्रिषु । शतं त्रयोदशालीढं भंगानामायुषो मतम् ॥ ३१६ ॥
मिथ्यादृष्ट्यादिषु भगाः—२८ । २६ । १६ । २० । ६ । ३ । ३ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । मीलिताः ११३ ।
भगाः पञ्च नव प्रोक्ता नव पंच यथाक्रमम् । श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवानामष्टाविंशतिरैक्यतः ॥ ३१७ ॥
५ । ९ । ९ । ५ । मीलिताः २८ ।

अब आयुके ११३ भगोंको गुणस्थानोंके भेदद्वारा दिखाते हैं।—

आयुके एकसौ तेरह भेदोंमेंसे आदिके गुणस्थानमें सर्वत्रके मिलाकर अट्ठाईस भेद संभव हैं। स्वस्तदर्शन—दूसरे गुणस्थानमें छव्वीस भंग रहते है। मिश्र—तीसरे गुणस्थानमें सोलह भंग रहते हैं। असयत सम्यग्दृष्टि—चौथे गुणस्थानमें वीस भंग रहते है। चौथेसे आगेके पांचवें गुणस्थानमें छह भग रहते हैं। इसके आगे फिर छट्ठे सातवें—इन दो गुणस्थानोंमें तीन तीन भग रहते हैं। फिर आगेके आठवेंसे ग्यारहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें दो दो भग रहते हैं। इसके आगे बारहवें तेरहवें चौदहवें—इन तीन गुणस्थानोंमें एक एक भग रहता है। इस प्रकार आयुकी बधत्रयीमें गुणस्थानोंके भेदसे जुदे जुदे भग गिनें तो एकसौ तेरह सर्व होते हैं। ३१५—३१६।

मिथ्यादृष्ट्यादि चौदह गुणस्थानोंमें क्रमसे भंगसंख्या— २८ । २६ । १६ । २० । ६ । ३ । ३ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । = मिलानेसे ११३ हुए।

मिथ्यादृष्टिके अट्ठाईस भग बताये वे इस प्रकार हैं कि—

नारकोंमें पांच, तिर्यंचोंमें नौ, मनुष्योंमें नौ, देवोंमें पाच यथाक्रमसे समझने चाहिये। इकट्ठे करनेसे ये सर्व अट्ठाईस होजाते हैं। ३१७।

उदितं विद्यमानं च देहिन्यायुरवघ्नति । वध्यमानोदिते ज्ञेये विद्यमाने प्रवघ्नति ॥ ३१८ ॥
तत्र बद्धोदिते बद्धे विद्यमाने निवेदिते । ज्ञेया भगाः क्रमादक्षैरित्थं गतिचतुष्टये ॥ ३१९ ॥

एषां सदृष्टिर्नारकेषु--	बं.	०	२	०	३	०
	उ.	१	१	१	१	१
	स	१	१-२	१-२	१-३	१-३

आगे ग्रंथकार भंगोंकी रचना करते हैं ।—

नवीन आयुको नहीं बांधा उस जीवमें एक उदयागत आयुको और एक विद्यमान अर्थात् सत्ताकी आयुको लेकर एक पहिला भंग होता है । नवीन आयुको बांधनेवालेमें एक कोई भी बध्यमान आयु, एक उदयप्राप्त आयु, और दो विद्यमान अर्थात् सत्ताकी आयु— इस प्रकारके यथासंभव भंग होते हैं । एवं, जिसने नवीन आयुको कभी बांध लिया है परंतु वर्तमानमें बांध नहीं रहा है उस जीवमें बंधस्थानमें शून्य है किंतु उदयमें एक आयु है और सत्तामें एक नवीन बांधी हुई आयु तथा दूसरी पूर्वबद्ध अर्थात् भुज्यमान आयु—ऐसें दो आयु हों ऐसे कुछ भंग होते हैं । इसी क्रमसे बुद्धिमानोंको जहां जितनी आयुओंका नवीन बंध संभव है उसे समझकर चारों गतियोंमें भंगभेद जानलेने चाहिये ।

भावार्थ, मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें चारों ही नवीन आयु बांधी जाने योग्य हैं इसलिये इन दो गतियोंमें भंग नौ नौ हैं। नारक तथा देवोंमें दो आयु ही बांधी जाती हैं इसलिये इन दो गतियोंमें भंग पांच पांच होते हैं । ३१८-३१९ ।

इन भंगोंको यंत्रोंद्वारा यथाक्रमसे चारो गतियोंमें आगे दिखाते हैं। यंत्रोंके १ का अर्थ नरकायु, २ का अर्थ तिर्यंच आयु, ३ का अर्थ मनुष्यायु, ४ का अर्थ देवायु, और ० शून्यका अर्थ अभाव है ।—

	बंध—	०	२	०	३	०
नारकोंमें—	उदय—	१	१	१	१	१
	सत्ता—	१	१-२	१-२	१-३	१-३

तिर्यक्षु —								
०	१	०	२	०	३	●	४	०
२	२	२	२	२	२	२	२	२
२	२-१	२-१	२-२	२-२	२-३	२-३	२-४	२ ४

देवेषु—				
०	२	०	३	०
४	४	४	४	४
४	४-२	४-२	४-३	४-३

मनुष्येषु—								
०	१	०	२	●	३	०	४	०
३	३	३	३	३	३	३	३	३
३	३-१	३-१	३-२	३-२	३-३	३-३	३-४	३-४

तिर्यञ्चोंमें—									
बं०—	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ०—	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स०—	२	२-१	२ १	२-२	२-२	२-३	२-३	२ ४	२-४

देवोंमें—					
बं०—	०	२	●	३	०
उ०—	४	४	४	४	४
स०—	४	४-२	४-२	४-३	४-३

मनुष्योंमें—									
बं०—	०	१	●	२	●	३	०	४	●
उ०—	३	३	३	३	३	३	३	३	३
स०—	३	३-१	३-१	३-२	३-२	३-३	३—३	३-४	३-४

मिथ्यादृष्टौ सर्वे २८। सासनः श्वभ्रं न गच्छतीति श्वभ्रायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयो: सत्त्वे १। श्वभ्रायुर्बंधे मनुष्यायुरुदये द्वयो सत्त्वे १। इति द्वौ भंगौ त्यक्त्वा सासने शेषा २६। एकमप्यायुर्न बध्नाति यतो मिश्रस्ततस्तस्यो-परतभंगाः १६।

यतो बध्नाति सद्दृष्टिर्नरतिर्यग्गतिं गतः। देवायुरेव नान्यानि श्वभ्रदेवगतिं गतः ॥ ३२० ॥
मर्त्यायुरेव नान्यानि भंगानामष्टक ततः। विहाय विंशति प्रोक्ता भंगास्तस्य मनीषिभि ॥ ३२१ ॥

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारो गतियोंके मिलकर सर्व भंग अट्ठाईस होते हैं।

सासादनमें २६ भंग बताये हैं वे सर्व ऊपरके भंगोंके ही समान है, केवल दो भंग घाट हैं उन्हे आगे बताते हैं। सासादनयुक्त जीव नरकको नहीं जाता है इसलिये नरकायुके बंधमें, तिर्यंच आयुके उदयमें, तथा सत्ता उक्त दोनोंकी रहनेपर जो एक भंग मिथ्यात्वमें होता है वह सासादनमे नहीं है। एवं, नरकायुके बंधमें, मनुष्यायुके उदयमें, तथा इन्ही दोनोंकी सत्ता रहनेपर जो एक भंग मिथ्यात्वमें होना बताया है वह यहां सासादनमें नहीं है। ऐसे दो भंग घट जाते हैं।

मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव एक भी आयुको नहीं बांधता इसलिए मिश्रमें बंधवाले बारह भंग कम होजानेसे अट्ठाईसमेंसे शेष रहे सोलह भंग संभव हैं। उपरतका अर्थ बचे हुए अथवा ' शेष ' ऐसा है।

अब असयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवालेके जो वीस भंग बताये उनका स्पष्टीकरण मूलकार करते है। —

सम्यग्दृष्टि जीव यदि मनुष्यगतिमें अथवा तिर्यंचगतिमें हो तो वह देवायुको ही बांधता है अन्य तीन गतिमेंसे किसीको भी नहीं बांधता है। एव, जो सम्यग्दृष्टि नरक अथवा देवगतिमें रह रहा है वह एक मनुष्यायुको ही बांधता है, अन्य तीन गतियोंको नहीं बांधता है। ऐसा नियम है इसलिए अट्ठाईसमेंसे आठ भंग नवीन आयुर्बंधसबंधी घट जाते हैं और शेष वीस भंग चौथे गुणस्थानमें होते हैं ऐसा विद्वानोंने बताया है। अट्ठाईस भेदोंको दिखानेवाले ऊपरके चार यन्त्रोंपरसे ही ये वीस भेद समझलेने चाहिए ॥ ३२० - ३२१ ॥

॥५२८॥

तिर्यगायुर्बंधे श्वभ्रायुरुदये द्वयोः सत्त्वे १ । श्वभ्रायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ । तिर्यगायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयो सत्त्वे ३ । नरायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ४ । श्वभ्रायुर्बंधे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ५ । तिर्यगायुर्बंधे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ६ । नरायुर्बंधे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ७ । तिर्यगायुर्बंधे देवायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ८ ।

२	१	२	३	१	२	३	२
१	२	२	२	३	३	३	४
१-२	२-१	२-२	२-३	३-१	३ २	३-३	४-२

आठ भग कौनसे घट जाते हैं उनको आगे वृत्तिकार बताते हैं ।—

नरकायुके उदयवाले जीवमें जो पाच भगका एक यत्र है उसमें दूसरा एक भेद तिर्यंच आयुके बंधवाला, नरकायुके उदयवाला, तथा नरक तिर्यंच–इन दो आयुकर्मोंकी सत्ता रखनेवाला ऐसा भग है (१)। नरकायुके बंधसहित, तिर्यंच आयुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला एक दूसरा भग, तिर्यंचोंके नौ भगवाले यत्रमें है (२)। इसी यत्रमें तिर्यंच आयुके बंध सहित, तिर्यंच आयुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला एक चौथा भग है (३)। इसी यत्रमें मनुष्यायुके बंधवाला, तिर्यगायुके उदयसहित, दोकी सत्ता रखनेवाला एक छठ्ठा भंग है (४) । मनुष्योंके नौ भंगवाले तीसरे यत्रमें नरकायुके बंध सहित, मनुष्यायुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला दूसरा एक भंग है(५)। इसी यत्रमें चौथा एक भंग तिर्यगायुके बंध सहित, मनुष्यायुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला (६) है । इसी यत्रमें मनुष्यायुके बंधवाला, मनुष्यायुके उदयसहित, दोकी सत्ता रखनेवाला एक भंग (७) है । देवोंके चौथे यंत्रमें दूसरा एक भंग तिर्यंच आयुके बंध सहित, देवायुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला [८] है । अट्ठाईसमेंसे ये ही आठ भग असयतमें सभव नहीं हैं ।

असंयतमें न रहनेवाले आठ भगोंका यत्र इस प्रकार है .

बं	२	१	२	३	१	२	३	२
उ .	१	२	२	२	३	३	३	४
स ..	१-२	२-१	२-२	२-३	३-१	३-२	३-३	४-२

इत्थमसंयतस्याष्टौ त्यक्त्वा शेषाः २० ।

तिर्यगायुरुदयसत्त्वयोः १ । देवायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ । तिर्यगायुरुदये तिर्यगायुर्देवायुषोः सत्त्वे ३ । नरायुरुदयसत्त्वयोः ४ । देवायुर्बन्धे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ५ । नरायुरुदये नरदेवायुषोः सत्त्वे ६ । इत्थं देशसंयतस्य सर्वे ६ ।

नरायुरुदयसत्त्वयोः १ । देवायुर्बन्धे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ । नरायुरुदये नरदेवायुषोः सत्त्वे ३ । इत्थं प्रमत्ते सर्वे ३ । त एवाप्रमत्तेऽपि ।

इस प्रकारसे इन आठ भंगोंको छोडकर असंयतमें आयुत्रयीके शेष वीस भंग हैं ।

पाचवें गुणस्थानमें छह भग बताये हैं वे इस प्रकार हैं ।—तिर्यंच आयुके उदयको और तिर्यंच आयुकी ही सत्ताको रखनेवाला नवीन बंधरहित एक भग है। देवायुके बंधमें तिर्यगायुका उदय रखनेवाला, दोकी सत्ता सहित दूसरा भंग है। तिर्यंच आयुके उदयमें, तिर्यंच तथा देवायु इन दोकी सत्ता रखनेवाला नव नबंधरहित एक तीसरा भंग है। मनुष्यायुके ही उदय सहित और मनुष्यायुकी ही सत्ता रखनेवाला, नवीनबंधरहित एक चौथा भग है । देवायुके बंध वाला, मनुष्यायुके उदय सहित, दोनोंकी सत्तावाला एक पाचवा भग है । मनुष्यायुके उदय सहित, मनुष्यायु तथा देवायुकी सत्ता रखनेवाला, नवीनबंधरहित एक छट्ठा भग है। ऐसे ये छह भग पाचवें गुणस्थानमें रहते हैं ।

छट्ठे गुणस्थानमें तीन भग आयुके बताये हैं वे इस प्रकार हैं ।—

मनुष्य आयुके ही उदयवाला और मनुष्य एक आयुकी सत्तावाला तथा नवीन बंध रहित एक भग, देवायुके बंधमें, मनुष्यायुके उदयसहित, तथा दोकी सत्तावाला दूसरा एक भंग, एवं तीसरा एक भग मनुष्यायुके उदयमें, मनुष्यायु तथा देवायु —इन दोकी सत्ता रखनेवाला— ऐसे ये तीन भग छट्ठे गुणस्थानमें संभव हैं ॥ ये ही तीन भग अप्रमत्त संयत सातवें गुणस्थानमें भी होते हैं ।

अपूर्वकरणादारभ्य यावदुपशान्तांत चतुर्णां शमकानां क्षपकाणां च नरायुरुदयसत्त्वयोः १ । उपशमकानाश्रित्य नरायुरुदये नरदेवायुषोः सत्त्वे २ । इत्थ द्वाभ्यां द्वाभ्यां भगाभ्यां चतुर्ष्वष्टौ ८ । क्षीणसयोगायोगेषु नरायुरुदयसत्त्वयोः १ । इत्थ त्रिपु त्रयः ३ । सर्वेऽप्यायुषि भगाः ११३ ।

प्रथमे पच चत्वारो द्वितीये त्रितये द्वयम् । एकैकोऽष्टसु गोत्रे द्वावतेन्त्यौ पचविंशतिः ॥ ३२२ ॥

गुणेपु गोत्रभंगाः ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । २ ।

अपूर्वकरण—आठवें गुणस्थानसे लेकर उपशातकषाय नामके ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत चार उपशम श्रेणीवाले गुणस्थानोंमें तथा क्षपकश्रेणीवाले भी इन गुणस्थानोंमें आयुका एक भग ऐसा है जो मनुष्यायुके ही उदय सहित तथा मनुष्यायुकी ही सत्ता रखनेवाला, नवीन बंध रहित है । दूसरा भंग उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें मिलता है । वह मनुष्यायुके उदयमें, मनुष्य तथा देवायु—इन दोकी सत्ता रखनेवाला, तथा नवीन बध रहित—ऐसा है । इस प्रकार इन चार गुणस्थानोंमें दो दो भग रहनेके कारण सर्व आठ भग होजाते हैं ।

इसके आगे क्षीणकषाय बारहवा गुणस्थान, सयोगकेवली तेरहवा गुणस्थान, अयोगकेवली चौदहवां गुणस्थान—इन तीन गुणस्थानोंमें एक एक ही भग है । वह मनुष्य युका उदय रखनेवाला मनुष्य युकी ही एककी सत्ता रखनेवाला, नवीन बधरहित एक भग है । तीन गुणस्थानोंके आश्रयसे इसके तीन उत्तर भेद होते हैं । इस प्रकार सर्व आयुके भग ११३ हैं ।

आयुके त्रिसयोगी भग समाप्त ।

अब गोत्रके बधत्रयसबधी भगोंको दिखाते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानमें पाच भग हैं । दूसरे गुणस्थानमें चार भग हैं । फिर तीसरेमे पाचवें पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें दो दो भग हैं । इसके आगे छट्ठसे तेरहवें गुणस्थान पर्यंत आठ गुणस्थानोंमें एक एक भग है । अंतके चौदहवें गुणस्थानमें अतिम दो भग हैं । इस प्रकार मिलकर—५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । २ । इस प्रकार सर्व गुणस्थानोंमें गोत्रके भग पच्चीस होते हैं । ३२२ ।

उच्चोच्चमुच्चनीचं नीचोच्चं नीचनीचमिति ज्ञेयम् । बंधे पाके सत्त्वे द्वंद्वं सर्वं क्रमान्नीचम् ॥ ३२३ ॥

बं.	१	१	०	०	●
उ	१	०	१	०	०
स.	१-०	१-०	१-०	१-०	०-●

गुणस्थानोंमें पाच चार आदि गोत्रभंग वताये वे कैसे वनते हैं सो आगे दिखाते हैं ।—

प्रथमके चार भंगोंको दिखाते समय बधमें और उदयमें कौन कौनसे गोत्र हैं सो प्रथम बताकर फिर सत्ताके गोत्र एकसाथ इस कारिकामें बताये हैं । और पाचवें भंगको अतमें वताया है । वह इस प्रकार कि—बधमें तथा उदयमें उच्च उच्च हैं । अर्थात् पहिले भगके बधमें भी उच्चगोत्र है तथा उदयमें भी उच्च गोत्र है । दूसरे भंगके बंधमें तथा उदयमें क्रमसे उच्च नीच हैं । अर्थात् बंधमें उच्च गोत्र है, उदयमें नीच गोत्र है । तीसरा भग बधमें तथा उदयमें क्रमसे नीच ऊचके रहनेसे होता है । अर्थात् बंधमें नीच गोत्र और उदयमें ऊच गोत्र—यह तीसरे भंगकी रचना है । चौथे भगमें दोनो स्थानोंमें नीच नीच ही है । अर्थात् बंधमें भी नीच गोत्र ही रहता है और उदयमें भी नीच गोत्र ही रहता है—यह चौथे भगका स्वरूप है । इन चारो भंगोंके सत्तास्थानोंमें वताते हैं कि, सत्त्वमें सर्वत्र दो दो प्रकृति हैं—उच्च गोत्र भी सत्तामें रहता है नीचगोत्र भी सत्तामें रहता है । क्रमप्राप्त पाचवें भंगका स्वरूप ऐसा समझो कि उसके सर्व अर्थात् तीनो स्थानोंमें नीच गोत्र ही है । ३२३ ।

पांचो भगोंका यंत्र—

बं०—	१	१	●	०	०
उ०—	१	●	१	०	०
स०—	१-०	१-०	१-०	१ ०	●-०

यहापर १ का अर्थ उच्च गोत्र है । ० शून्यका अर्थ नीचगोत्र है । सत्तामें जहा एक और शून्य की रचना है वहा उच्च तथा नीच अर्थ दोनो संकेतोंका समझना । दशसंख्या अर्थ नहीं करना ।

प्रथमे प्रथमाः पंच चत्वारः शासने मताः । द्वौ द्वौ त्रिष्वादिमौ भगौ पंचस्वेकैक आदिमः ॥ ३२४ ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिषु सूक्ष्मांतेषु भगाः ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ ।

उच्चं पाके सत्त्वे द्वितय शान्तादिकेषु विज्ञेयम् । निर्बन्धकेष्वयोगे पाके सत्त्वे च पुनरुच्चम् ॥ ३२५ ॥

शान्तक्षीणस (योगा) योगेषु चतुर्षु चत्वारः— १/१-० १/१-० १/१-० १/१-०

प्रथम गुणस्थानमें ये ही ऊपर बताये हुये पांच भग रहते हैं । सासादनमें अंतके एक भंगको छोडकर आदिके चार
भंग रहते हैं । आगेके पाचवें पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें जो दो दो भग बताये हैं वे भी आदिके ही दो दो हैं । फिर छट्टेसे सूक्ष्म-
कषाय दशवें गुणस्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें एक एक ही भंग है । वह भी इस यंत्रके आदिका ही भग समझना । अर्थात् छट्ठे
गुणस्थानसे लेकर सत्तामें तो दोनो गोत्र कर्म रहते हैं परतु बध तथा उदय उच्चगोत्रका ही होता है ऐसा नियम है । ३२४ ।

अब आगे उपशांतकषायादि गुणस्थानोंमें गोत्रका बंध न होनेके कारण केवल उदय तथा सत्ताको लेकर होनेवाले एक
एक भगको बताते हैं ।—

उदयमें उच्चगोत्र और सत्तामें उच्च नीच—दोनो—इस प्रकारका एक एक भग ही बधरहित उपशांतादि गुणस्थानोंमें होता है । और
अयोग—चौदहवें गुणस्थानमें एक भग ऐसा है जिसके उदयमें भी उच्च गोत्र ही है और सत्तामें भी एक उच्च गोत्र ही है ॥३२५॥

उपशांतकषाय ग्यारहवां गुणस्थान, क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान, सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थान—ये तीन गुणस्थान
पूर्ण तथा चौदहवां गुणस्थान उपांत्य समय पर्यंत—इन चार स्थानोंमें गोत्रके एक एक भंग रहनेसे भंग चार होते हैं । और अयोग-
केवली चौदहवें गुणस्थानके अंतिम समयमें अंतका एक भग है । इसलिये कारिकामें जो अंतमें दो भंग बताये हैं वे उपांत्य तथा
अंत्य समयके भेदसे दो सिद्ध होजाते हैं ।

चार गुणस्थानोंके चार भंग—

उ ..	१	१	१	१
स...	१-०	१-०	१-०	१-०

अयोगस्यांत्यक्षणे एकः— १ ।
१ ।

एवं गोत्रे सर्वे भगाः २५ ।

मोहनीयस्य बंधाः कथ्यन्ते—

द्वाविंशतिः समिथ्यात्वे शासनेऽस्त्येकविंशतिः । द्वयोः सप्तदशैकत्र त्रयोदश नव त्रिषु ॥ ३२६ ॥
एकद्वित्रिचतुःपंचहीनाः षडनिवृत्तिके । क्रमतो मोहनीयस्य बंधस्थानानि संति वै ॥ ३२७ ॥

२२ । २१ । १७ । १७ । १३ । ९ । ९ । ९ । अनिवृत्तौ ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

अयोगके अंतका एक भंग— उ. . १
स . १

इन ऊपर बताये हुए पाच भंगोंमें बंधका अभाव है इसलिये प्रत्येक भंगमें केवल उदय और सत्त्व ही दिखाई गई है। इस प्रकार गोत्रके सर्व भंग २५ होते हैं वे बताये।

अब मोहका प्रकरण शुरू करते हुए सबसे प्रथम मोहके बंधस्थानोंको गुणस्थानोंमें विभक्त करके बताते हैं।—

मिथ्यात्व गुणस्थानमें बाईसका बंधस्थान है। सासादनमें इक्कीसका बंधस्थान है। तीसरे चौथे-इन दो गुणस्थानोंमें सत्रह सत्रहका बंधस्थान है। फिर आगे एक पांचवें गुणस्थानमें तेरहका बंधस्थान है। इसके आगे छट्ठे सातवें आठवें-इन तीन गुणस्थानोंमें नौ नौ प्रकृतियोंका बंधस्थान है॥ फिर आठवें गुणस्थानके आगे नौवें गुणस्थानमें क्रमसे बंधके पाच स्थान है। वे इस प्रकार — एक घाट छहका अर्थात् पाच प्रकृतिका पहिला बंधस्थान है। फिर दूसरा बंधस्थान दो घाट छह प्रकृतिका अर्थात् चारका है। इसके आगे तीसरा एक बंधस्थान तीन घाट छहका अर्थात् तीनका है। फिर आगे चार घाट छहका अर्थात् दो प्रकृतिका एक चौथा बंधस्थान है। सबके अंतमें पाच घाट छहका अर्थात् एक प्रकृतिका एक पांचवा बंधस्थान है। इस प्रकार मोहनीयके ये गुणस्थान-क्रमसे बंधस्थान होते हैं। ३२६—३२७।

भंगाः कथ्यते —

पडाद्ये सति चत्वार एकविंशतिबंधके । परे चतुष्टये द्वौ द्वावेकैकोऽन्येषु पंचसु ॥ ३२८ ॥

६ । ४ । २ । २ । २ । २ । शेषेष्वेकः १ ।

सत्येकद्विचतुःपंच षट् सप्ताष्ट नव क्रमात् । दश च मोहनीयस्स कर्मणोऽस्य नवोदयाः ॥ ३२९ ॥

१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।

मिथ्यात्व सति चत्वारः कोपाद्या वेद एककः । हास्यादियुग्मयोरेक भीर्जुगुप्सा दशोदयाः ॥ ३३० ॥

अब आगे भंगोंको दिखाते हैं—

पहिले गुणस्थानमें छह भंग हैं । इकीसके बंधवाले दूसरे गुणस्थानमें चार भंग हैं । इसके आगे तीसरेसे छट्ठे गुणस्थान पर्यंत चार गुणस्थानोंमें दो दो भंग हैं । इसके आगे सातवें गुणस्थानसे लेकर पांच स्थानोंमें भंग एक एक है । [६ । ४ । २ । २ । २ । २ । आगे शेष भागोंमें १] ॥ ३२८ ॥

इस मोहकर्मके उदयस्थान सबे नौ हैं ।—अंतका एक उदयस्थान एक प्रकृतिका है । फिर पहिले पहिले स्थान क्रमसे दो प्रकृतिका, चारका, पांचका, छहका, सातका, आठका, नौका, और सबसे पहिला स्थान दश प्रकृतिरूप है । ये ही नौ उदय स्थान इस पांचवें परिच्छेदकी ३८ वीं कारिकामें भी बताये हैं । ३२९ ।

१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।

इन सर्व उदयस्थानोंका गुणस्थानोंमें विभाग करते हैं । उनमेंसे प्रथम दशके उदयस्थानको आगे दिखाते हैं ।—

एक मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि चार क्रोधादि कषाय, एक कोई भी वेद, हास्यादिके दो युगलोंमेंसे एक एक, भय तथा जुगुप्सा—ये दश प्रकृति जहां उदयमें युगपत् आती हैं वह दशका उदयस्थान है । ३३० ॥

भावार्थ, यह उदयस्थान मिथ्यात्वमें ही संभव है । यहांपर अनंतानुबंधी आदि चारो ही प्रकारके

कषाय उदयमें आते हैं। परन्तु अनंतानुबंधीके उदयमें रहते हुए, शेष अप्रत्याख्यानावरणादि तीन कषायोंकी परिणति भी अनंतानुबंधीरूप ही हो जाती है। कषायोंके अनंतानुबंधी आदि चार भेद हैं। वे तर तम भावकी अपेक्षासे भिन्न हैं। किंतु क्रोध मान माया लोभ ये चार जातिभेद जैसे अनंतानुबंधीमें है वैसे ही अप्रत्याख्यानावरणादिकोंमें भी है। इसलिये जिस समय क्रोधके निमित्त अथवा नोकर्म प्राप्त होते हैं उस समय अनंतानुबंधी क्रोधका उदय होता है और अप्रत्याख्यानावरणादिके भी क्रोधका ही उदय होता है। मानके निमित्तमें चारो ही प्रकारके मानका ही उदय होता है। मायाके निमित्तमें चार प्रकारकी मायाका ही उदय होता है। लोभके निमित्त मिलनेपर चार प्रकारके लोभका ही उदय समझना चाहिये। इस दशके स्थानमें जो कषाय चार बताये हैं वे अनंतानुबंधी आदि तर तम भावकी अपेक्षासे ही समझने चाहिये। क्रोधके समयमें मानका अथवा मायाका, लोभका उदय नहीं होता है। ऐसा ही मानादिके उदयमें क्रोधादिका उदयाभाव समझना।

हास्यादि दो युगलोंमेंसे एक एकका उदय दशके उदयस्थानमें बताया है उसका आशय यह है कि नौ नोकषायोंमेंसे तीन संख्या वेदोंकी हैं। शेष नोकषाय छह रह जाते हैं। उनमेंसे भी भय तथा जुगुप्साको जुदा स्वतंत्र जोडकर दिखाया है। इसलिये शेष नोकषाय चार ही रह जाते हैं। उन चारमेंसे हास्य तथा शोकका एक युगल है, दूसरा युगल रति अरति—इन दोका है। इनमेंसे प्रत्येक युगलकी कोई एक एक प्रकृति ही उदयमें आती है। शेष दो प्रकृति उस समय उदययोग्य नहीं रहती। क्योंकि, हास्य तथा शोकमेंसे किसी एकका ही नोकर्म निमित्त एक समयमें एक जीवके रहसकता है। इसी प्रकार रति, अरति इन दोमेंसे भी किसी एकका ही निमित्त एक समयमें उपस्थित माना जाता है। इसलिये हास्यादि चार कर्मोंमेंसे एक समयमें दोका ही उदय होना संभव है।

एक नौका उदय भी मिथ्यादृष्टि जीवमें संभव है, वह किस अवस्थामें है और वहां दशमेंसे कौनसी प्रकृति घट जाती है इस बातको आगे स्पष्ट करते हैं।

॥५३६॥

मिथ्यात्वं दृष्टितः प्राप्ते नास्ति सयोजनोदयः । यावदावलिकां यस्मात्तस्मादन्यो नवोदयः ॥ ३३१ ॥

इति मिथ्यादृष्टौ द्वावुदयौ १० । ९ ।

मिथ्यात्व शासने मिश्रद्वये चाद्याः क्रुदादयः । द्वितीयाः पंचमे हेयास्त्रिष्वन्येषु तृतीयकाः ॥ ३३२ ॥

शासनादिषु ९ । ८ । ८ । ७ । ६ । ६ । ६ ।

'दृष्टित' अर्थात् सासादनादि गुणस्थानसे जो जीव मिथ्यात्वके उदय हो आनेसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें गिर पडता है उसके एक आवलि प्रमाण समयके बाद अनतानुबधीका उदय सुरू हो सकता है। अर्थात् उस प्रथम आवली प्रमाण समय पर्यंत अनंतानुबधी प्रकृतिका उदय न होनेसे चार कषायके बदले तीन ही कषायोंका उदय माना जाता है इसलिये यहांतक नौका उदयस्थान भी मिथ्यात्वमें रहता है। सयोजनका अर्थ अनतानुबधी है। ३३१ ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिके उदय दो हुए एक १० का, दूसरा ९ का ।

अब दूसरे गुणस्थानसे लेकर आठवें गुणस्थान पर्यंतके सात गुणस्थानोंमें उदयके स्थानोंको घटित करते हैं ।—

मिथ्यात्वमें जो दश अथवा नौ प्रकृतिका उदयस्थान बताया है उसमें मिथ्यात्वका उदय था । किंतु सासादनमें मिथ्यात्व छूट जाता है । मिश्र तथा अविरतसम्यग्दृष्टि-इन तीसरे चौथे दो गुणस्थानोंमें आदिके अनंतानुबधी क्रोधादिक कषाय भी उदयमेंसे छोडदेने चाहिये । पांचवें गुणस्थानमें दूसरे अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण नामके कषाय भी छोड देने चाहिये । इस पंचम गुणस्थानके आगे अन्य तीन गुणस्थानोंमें अर्थात् छट्ठे सातवें आठवें गुणस्थानोंमें तृतीय कषाय—प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिकोंको भी छोड कर शेष रहे यथासंभव मोह प्रकृतियोंका उदय होता है। ३३२ ।

सासादनादिकोंमें पूर्वकी प्रकृतियोंमेंसे क्रमसे—९ । ८ । ८ । ७ । ६ । ६ । ६ । का उदय रहना संभव सामान्य दृष्टिसे है क्योंकि ऊपरकी प्रकृतियोंमेंसे यथासंभव प्रकृति घट जाती हैं ।

॥५३७॥

सम्यङ्मिथ्यात्वपाकेन मिश्रके मोहनोदयः । सम्यक्त्वस्योदयोऽन्योऽस्ति क्षयोपशमदर्शने ॥ ३३३ ॥

सम्यङ्मिथ्यात्वयोगे मिश्रे ९ ।

शामिकक्षायिके न स्तः सम्यक्त्वे द्वे यदा तदा । चतुर्थे पचमे षष्ठे सप्तमेऽप्युदयः परः ॥ ३३४ ॥

सम्यक्त्वोदये यतश्चतुष्टयेऽन्योऽप्युदयो द्वितीयस्ततो द्वौ द्वावुदयौ, तत्र ९, ८ । ८, ७ । ७, ६ । ७, ६ ।

मिश्र तीसरे गुणस्थानमें सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय बढ जाता है । इसलिये मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी के घट जानेपर भी मिश्रमोहनीयको लेकर मोहप्रकृतियोंका उदय मानना चाहिये । भावार्थ, इस मिश्रमोहके बढजानेसे मिश्र गुणस्थानमें नौ प्रकृतिका एक उदयस्थान है । एवं, चौथे गुणस्थानमें यदि क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन हो तो यहां सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय अधिक बढजाता है इसलिये क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनवाले चौथे गुणस्थानमें भी उदयस्थान नौ प्रकृतिका समझो । इसी प्रकार आगेके पाचवें, छठे, सातवें—इन तीनो गुणस्थानोंमें भी क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन रहनेपर उदयमें एक सम्यक्त्व प्रकृति अधिक समझनी चाहिये । ३३३ ।

यदि शामिक अर्थात् औपशमिक सम्यक्त्व हो अथवा क्षायिक सम्यक्त्व हो तो सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय नहीं रहता । इसलिये इन दो सम्यक्त्वोंके साथमें चौथे, पाचवें, छठे, सातवें–इन चार गुणस्थानोंमें केवल ऊपर बताया हुआ (७।६।६।६। प्रकृतिरूप) मोहका उदय समझना चाहिये । ३३४ ।

इसी आशयको आगे वृत्तिकार लेकर खुलासा करते हैं ।—

सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रखनेवाले चौथेसे सातवें पर्यतके चार गुणस्थानोंमें यह एक (सम्यक्त्व मोहनीयका) अधिक उदय भी आजाता है इसलिये दो दो उदयस्थान होजाते हैं । भावार्थ, चौथेसे सातवें पर्यंत चार गुणस्थानोंमें तीन तीन प्रकारका सम्यक्त्व रहना संभव है । उन तीनोंमेंसे जिसके क्षायिक अथवा औपशमिक सम्यक्त्व है उसके तो ऊपर मिथ्यात्वमें बताई हुई दश उदय प्रकृतियोंमेंसे यहा एक मिथ्यात्व तथा एक अनतानुबंधी–ये दो प्रकृति घट जाती हैं इसलिये आठका ही उदय रहता है ।

सम्यक्त्वस्योदयाभावे षण्णामेवोदये यतः । एक एव सदाऽपूर्वे ततः षट्कोदयो मतः ॥ ३३५ ॥
भिया जुगुप्सया द्वाभ्यां सर्वे हीनाः क्रमाद्यतः । ततोऽन्येऽप्युदयास्तेषामेकैकस्योपरि त्रयः ॥ ३३६ ॥

किंतु क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जिसकें है उसकें सम्यक्त्व प्रकृतिका एक अधिक उदय रहता है इसलिये नौका उदयस्थान वहां मानना पडता है।

इसी प्रकार पाचवें गुणस्थानमें दो उदयस्थान हैं, एक ८ का, दूसरा ७ का। यहा दूसरे अप्रत्याख्यानावरणकी एक सख्या उदयमेंसे दोनो ही भेदोंमें घट जाती है। इसलिये क्षायोमशमिक सम्यक्त्व वालेकें उदय ८ का है, और क्षायिक अथवा औपशमिक सम्यक्त्ववालेकें उदय स्थान सातका है।

छट्ठे गुणस्थानमें एक तीसरे प्रत्याख्यानावरणका भी उदयाभाव होजानेसे एक संख्या दोनो उदय स्थानोंमेंसे घट जाती है। इसलिये क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीवकें उदय सातका, और क्षायिक अथवा औपशमिक सम्यग्दृष्टिकें उदय छहका रहता है। इस प्रकार छट्ठे गुणस्थानमें भी दो उदय स्थान रहते हैं। सातवें गुणस्थानकी प्राप्ति प्रमादकी मदता होजानेपर होती है वहां किसी विशेष मोह प्रकृतिका उदय घटता नहीं है। इसलिये सातवें गुणस्थानमें छट्ठेके समान ही ७ का तथा ६ का–ये दो उदयस्थान हैं।

अब आगे अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें उदयस्थानको दिखाते हैं।—

आठवें गुणस्थानसे लेकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय नहीं रहता है केवल छह प्रकृतिका ही उदय रहता है। इसलिये अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें सदा छहका ही एक उदयस्थान है, सातका उदयस्थान नहीं है ॥ ३३५ ॥

गुणस्थानक्रमसे जो ऊपर उदयस्थान बताये उनमें और भी अधिक भेद होते हैं इस बातको आगे बताते हैं।—

सबसे प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमें दशका जब उदय बताया है वहां भय जुगुप्सा इन दोनोंके उदयको लेकर दशका स्थान पूरा किया है। उसके आगे भी आठवें गुणस्थान पर्यंत भय जुगुप्सा इन दोनोका उदय सर्व ही स्थानोमें

तत्र मिथ्यादृष्टौ-८, ९, ९, १० । ७, ८, ८, ९ । शासने-७, ८, ८, ९ । मिश्रे-७ । ८, ८ । ९ ।

शामिल किया गया है। परतु ये सभी स्थान ऐसे भी होते हैं कि जिनमें भय तथा जुगुप्सा—इनमेंसे किसी एकका ही उदय रहता है, तथा दोनोंका ही उदय नहीं रहता है। इसलिये ऊपर बताये हुए सभी स्थान एक और दो उदय संख्यासे घाटके भी हो जाते हैं। इस प्रकार सर्व उदयस्थानोंके तीन तीन भेद होजाते हैं ॥ ३३६ ॥

इनमेंसे मिथ्यादृष्टिमें प्रथम खुलासा करते हैं।—मिथ्यादृष्टिकें दो उदयस्थान ऊपर बताये हैं, एक ९ प्रकृतिका, दूसरा १० प्रकृतिका। नौ प्रकृतिवाले स्थानमें भी भय तथा जुगुप्सामेंसे दोनोंका उदय शामिल है, किंतु अनतानुबंधी एक प्रकृतिका उदय नहीं माना है। उसीमें यदि भयजुगुप्सामेंसे एकका उदय घट जाय तो नौके बदलें आठका उदयस्थान हो जाता है। इस नौ प्रकृतिरूप एक स्थानके बदलें दो स्थान हो गये, एक नौका दूसरा आठ प्रकृतिका। दूसरे दश प्रकृतिरूप स्थानमें भी यदि भय जुगुप्सामेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय घट जाय तो दशके बदलें दूसरा भेद नौ प्रकृतिरूप हो जाता है। इस प्रकार दशके एक उदयस्थानमें भी दो भेद हो गये, एक नौ प्रकृतिरूप दूसरा दश प्रकृतिरूप। इस प्रकार मिथ्यादृष्टिके दो स्थानोंके बदलें चार स्थान होगये ८, ९ । ९, १० । यहापर नौका स्थान दो वार आया है अर्थात् इन दो भगोंमें आया है और आगे भी तीसरे वार आया है परन्तु मूल जो नौ प्रकृतिरूप स्थान है उसमें दशके स्थानमेंसे अनतानुबधीकी एक सख्या घट जाती है इसलिये वह नौ प्रकृतिरूप होता है। किंतु दूसरा जो नौ प्रकृतिरूप स्थान है उसमें अनतानुबधी तो है परंतु भय जुगुप्सामेंसे एक प्रकृति घट जाती है इसलिये वह नौ प्रकृतिरूप होता है। नौ प्रकृतिरूप तथा दश प्रकृतिरूप मूल स्थानोंमेंसे यदि भय जुगुप्सा इन दोनोका उदय घट जाय तो क्रमसे आठ तथा सातके उदस्थान हो जाते हैं। इसी प्रकार आगे भी जहापर एक एक गुणस्थानमें एक समान एकसे अधिक उदयस्थान बताये हैं वहांपर ऐसा ही भेद समझ लेना चाहिये। इसके आगे तीसरा नौ प्रकृतिरूप स्थान मिथ्यात्वमें दिखाया है वह भी अनंतानुबधीके न रहनेसे है। उसके उत्तर भेद चार होजाते हैं—७, ८ । ८, ९ । मिलाकर मिथ्यादृष्टिमें सर्व आठ भेद मोहोदयके हैं।

सासादनमें—७, ८, ८, ९ ।—ये चार भेद हैं। मिश्रमें— ७, ८, ८, ९ ।—ये चार भेद हैं।

	क्षायो.	औप.			वेद.	क्षायि
असयते—	७	६		देशे—	६	५
	८,८	७,७			७,७	६,६
	९	८			८	७

प्रमत्ते–५,६,६,७।४,५,५,६। अप्रमत्ते–५,६,६,७।४,५,५,६।

सम्यक्त्व विद्यतेऽपूर्वे यतो जातु न वेदकम् । मुनिमिर्गदित तत्र पाकस्थानत्रय ततः ४।५,५।६ ॥ ३३७ ॥

	क्षायो	औप		वेदक	क्षायिक
असंयतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानमें—	७	६	देशसंयत पांचवें गुणस्थानमें—	६	५
	८,८	७,७		७,७	६,६
	९	८		८	७

प्रमत्त छट्ठेमें— ५, ६, ६, ७ । और ४, ५, ५, ६ ।

अप्रमत्त सातवें गुणस्थानमें— ५, ६, ६, ७ । ४, ५, ५, ६ ।

अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व किसी भी अवस्थामें नहीं रहता इसलिये मुनियोंने वहा उदयस्थान तीन बताये हैं । (४ । ५, ५ । ६) ॥ ३३७ ॥

भावार्थ, प्रथम अवस्थामें अपूर्वकरणमें छह प्रकृतिका उदयस्थान रहता है । वह इस प्रकार ।–संज्वलन एक कषाय, एक वेद, हास्यादि दो युगलमेंके एक एक करके दो नोकषाय (हास्य शोकमेंसे एक और रति अरतिमेंसे एक), भय तथा जुगुप्सा–ये छह प्रकृति हुई । यदि भय जुगुप्सा इन दोमेंसे एकका उदय न हो तो पाच प्रकृतिका उदयस्थान समझना । इसके दो भेद हो जाते है, एक भय घटाकर जुगुप्साको कायम रखकर पाच, दूसरा जुगुप्साको घटाकर भयको उदयमें रखलेसे पाच। ऐसे पांचके स्थानमें दो भेद हैं । यदि भय तथा जुगुप्सा ये दोनो उदयमें न रहें तो यह चारका उदयस्थान हो जाता है ।

॥५४१॥

अब मोहनीयके उदयस्थान गोमटसारमें जैसे कहे हैं वैसे कहते हैं।

दस णव अट्ट य सत्ता छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च। उदयट्ठाणा मोहे णव चेव य होंति णियमेण ॥ ४७५ ॥
दश नवाष्ट च सप्त च षट् पञ्च चत्वारि द्वे एकं च। उदयस्थानानि मोहे नव चैव च भवन्ति नियमेन ॥ ४७५ ॥

अर्थ——मोहनीयके उदयस्थान १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, २, १ प्रकृतिरूप ९ हैं ऐसा नियमसे जानना ॥ ४७५ ॥

मिच्छं मिस्सं सगुणे वेदगसम्मेव होदि सम्मत्त। एक्का कसायजादी वेददुजुगलाणमेक्कंच ॥ ४७६ ॥
मिथ्यं मिश्रं स्वगुणे वेदकसम्ये एव भवति सम्यक्त्वम्। एका कषायजाति वेदद्वियुगलयोरेक च ॥ ४७६ ॥

अर्थ— मोहनीयकी उदय प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीयका उदय अपने २ पहले और तीसरे गुणस्थानमें है। तथा सम्यक्त्वमोहनीयका उदय वेदकसम्यक्त्वी जीवके चौथेसे लेकर चार गुणस्थानतक है। इसप्रकार गुणस्थानोंमें उदयका नियम दिखाकर उदयके कूटोंको कहते हैं। अनतानुबधी आदि चार कषायोंमेंसे एक कषायजाति, तीन वेदोंमेंसे एक वेदका उदय, हास्य—शोकका युगल और रति—अरतिका जोडा इन दो युगलोंमेंसे एक २ प्रकृतिका उदय पाया जाता है ॥ ४७६ ॥

भयसहियं च जुगुच्छासहियं दोहिंवि जुदं च ठाणाणि। मिच्छादिअपुव्वंते चत्तारि हवंति णियमेण ॥ ४७७ ॥
भयसहितं च जुगुप्सासहित द्वाभ्यामपि युत च स्थानानि। मिथ्याद्यपूर्वान्ते चत्वारि भवन्ति नियमेन ॥ ४७७ ॥

अर्थ— एककालमें एक जीवके भयसहित ही प्रकृतियोंका उदय होनेसे, अथवा केवल जुगुप्सासहित ही उदय होनेसे, अथवा भय— जुगुप्सा दोनोंसहितही उदय होनेसे अथवा 'च' शब्दसे दोनोंही करके रहित उदय होनेसे कूटके आकार चार २ स्थान मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानपर्यंत निश्चयकर होते हैं, इस कारण यहांपर चार २ कूट कहे गये हैं ॥ ४७७ ॥ इनकी रचना बडी टीकामें विस्तारसे कही है।

आगे मिथ्यादृष्टिमें वा असंयतादि चार गुणस्थानोंमें विशेष बात कहते हैं,—

अणसंजोजिदसम्मे मिच्छं पत्ते ण आवलित्ति अणं । उवसमखइये सम्मं ण हि तत्थवि चारि ठाणाणि ॥४७८॥

अनसंयोजितसम्ये मिथ्यं प्राप्ते न आवलीति अनम् । उपशमक्षायिके सम्यं न हि तत्रापि चत्वारि स्थानानि ॥४७८॥

अर्थ—अनंतानुबंधीकषायके विसंयोजन (अन्यप्रकृतिरूप) करनेवाले क्षायोपशमसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वकर्मोदयसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्राप्त होनेपर आवलिमात्र कालतक अनंतानुबंधीकषायका उदय नहीं होता, क्योंकि विसंयोजन करनेके पीछे आवलिकालतक अपकर्षणद्वारा उदयावलीमें लानेकी सामर्थ्य नहीं है । इस अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनंतानुबंधीरहित चार कूट और भी जानने । तथा उपशमसम्यक्त्वमें और क्षायिकसम्यक्त्वमें सम्यक्त्वमोहनीयका उदय नहीं है वहांपर भी उपशम और क्षायिककी अपेक्षा असंयतादि चार गुणस्थानोंमें चार चार कूट दूसरे होते हैं ॥ ४७८ ॥

पुव्विल्लेसुवि मिलिदे णड चउ चत्तारि चदुसु अट्ठेव । चत्तारि दोण्णि एक्कं ठाणा मिच्छादिसुहुमंते ॥ ४७९ ॥

पूर्वेष्वपि मिलितेषु अष्ट चत्वारि चतुर्षु अष्टैव । चत्वारि द्वे स्थानानि मिथ्यादिसूक्ष्मान्ते ॥ ४७९ ॥

अर्थ—इन कूटोंमें पहले कहे हुए कूट मिलानेसे मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्यंत क्रमसे ८, ४, ४, असंयतादि चारमें आठ आठ, ४, २, १ कूट जानना चाहिये ॥ ४७९ ॥

आगे इनमें अपुनरुक्त स्थानोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ । ठाणा छादि तियं च य चदुवीसगदा अपुव्वोत्ति ॥४८०॥

दशनवनवादि चतुस्त्रिकत्रिस्थान नवाष्टसप्तसप्तादि चतुष्कम् । स्थानानि षडादि त्रिकं च च चतुर्विंशगता अपूर्व इति ॥

अर्थ–मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें क्रमसे दशआदिके चार उदयस्थान, नवके आदिके तीन गुणस्थान नवके आदिके तीन गुणस्थान हैं। असंयतादि चार गुणस्थानोंमें नव आदिके चार, आठ आदिके चार, सातके आदिके चार, सातके आदिके चार उदयस्थान हैं। तथा अपूर्वकरण गुणस्थानमें छह आदिके तीन स्थान हैं। ये ६, ५, ४ प्रकृतिरूप हैं। इस प्रकार अपूर्वकरणपर्यंत सब स्थान प्रत्येक चौवीस चौवीस भङ्गों (भेदों) कर सहित हैं ॥ ४८० ॥ यहांपर किसी २ स्थानकी संख्या एकसी होनेसे भी प्रकृतियोंके बदलनेसे अपुनरुक्तपना है।

एक्क य छक्केयारं एयारेयारसेव णव तिण्णि। एदे चउवीसगदा चदुवीसेयार दुगठाणे ॥ ४८१ ॥

एकं च षट्कमेकादश एकादशैकादशैव नव त्रीणि। एतानि चतुर्विंशतिगतानि चतुर्विंशेकादश द्विकस्थाने ॥ ४८१ ॥

अर्थ–मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें मिलकर दस प्रकृतिरूप १ स्थान है, नव प्रकृतिरूप ६ स्थान हैं, ८ प्रकृतिरूप ७ प्रकृतिरूप तथा ६ प्रकृतिरूप ११ ग्यारह स्थान हैं, पांच प्रकृतिरूप ९ स्थान हैं, चार प्रकृतिरूप ३ स्थान हैं। ये सब स्थान चौवीस चौवीस भङ्गोंकर सहित हैं, तथा दो प्रकृतिरूप १ स्थानके २४ भंग और एक प्रकृतिरूप एक स्थानके ११ भंग हैं ॥४८१॥

आगे इन दो एक प्रकृतिरूप दो स्थानोंके भंगोंका विधान कहते हैं,—

उदयट्ठाणं दोण्हं पणबंधे होदि दोण्हमेकस्स। चदुविहबंधट्ठाणे सेसेसेयं हवे ठाणं ॥ ४८२ ॥

उदयस्थानं द्वयोः पञ्चबन्धे भवति द्वयोरेकस्य। चतुर्विधबन्धस्थाने शेषेष्वेकं भवेत् स्थानम् ॥ ४८२ ॥

अर्थः—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पांच प्रकृतिके बंधस्वरूप तथा चार प्रकृतिके बंधस्वरूप–इस प्रकार दो भागोंमें तीन वेद और चार संज्वलनकषाय—इनमेंसे एकका उदय होनेपर दो प्रकृतिरूप एकस्थान पाया जाता है अर्थात् वहांपर चार चार कषाय एकएक वेदमें होनेसे एक भागके १२ भंग, दोनोंके २४ भंग होते हैं। तथा 'कनकनन्दि' आचार्यकी पक्षमें जिस जगह ४ प्रकृतियोंका बंध पायाजाता है उसके अंतसमयमें वेदोंके उदयका अभाव होनेसे शेष कषायादिकोंके ४ ३, २, १, १, भंग होते हैं। इसप्रकार एकप्रकृतिरूप बंधस्थानमें ११ ही भंग सिद्ध हुए ॥ ४८२ ॥

अणियट्टिकरणपढमा संढित्थीण च सरिस उदयद्धा । तत्तो मुहुत्तअंते कमसो पुरिसादिउदयद्धा ॥ ४८३ ॥

अनिवृत्तिकरणप्रथमात् षण्ढस्त्रियोः च सदृश उदयाद्धा । ततो मुहूर्तान्त क्रमशः पुरुषाद्युदयाद्धा ॥ ४८३ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागके पहले समयसे लेकर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका काल समान है, परंतु थोडा है । इससे अधिक अधिक अंतर्मुहूर्त क्रमसे पुरुषवेद व संज्वलनक्रोधादिका काल जानना ॥ ४८३ ॥

पुरिसोदएण चडिदे बंधुदयाणं च जुगवदुच्छित्ती । सेसोदयेण चडिदे उदयदुचरिमम्हि पुरिसबंधछिदी ॥४८४ ॥

पुरुषोदयेन चटिते बन्धोदययोश्च युगपदुच्छित्तिः । शेषोदयेन चटिते उदयद्विचरमे पुरुषबन्धच्छित्तिः ॥ ४८४ ॥

अर्थ—पुरुषवेदके उदय होनेसे श्रेणी चढनेपर पुरुषवेदकी बंधव्युच्छित्ति और उदयव्युच्छित्ति एक कालमें होती हैं । अथवा 'च' शब्दसे बंधकी व्युच्छित्ति उदयके द्विचरमसमयमें होती है । और शेष स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदके उदयसहित श्रेणी चढनेवाले जीवके पुरुषवेदकी बंधव्युच्छित्ति उदयके द्विचरमसमयमें अर्थात् अंतसमयके समीपके समयमें होती है ॥ ४८४ ॥

पणबंधगम्हि बारस भंगा दो चेव उदयपयडीओ । दोउदये चदुबंधे बारेव हवंति भंगा हु ॥ ४८५ ॥

पञ्चबन्धके द्वादश भङ्गा द्वे चैव उदयप्रकृती । द्व्युदये चतुर्बन्धे द्वादशैव भवन्ति भङ्गा हि ॥ ४८५ ॥

अर्थ—जहांपर पांच प्रकृतियोंका बंध है ऐसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें कषाय और वेद इन दो प्रकृतियोंका ही उदय है, इस कारण चार कषाय और ३ वेदको गुणाकार करनेसे १२ भंग होते हैं । इसी प्रकार चार प्रकृतियोंके बंध होनेपर भी दोके उदयरूप स्थानमें १२ ही भंग होते हैं ॥ ४८५ ॥

कोहस्स य माणस्स य मायालोहाणियट्टिभागम्हि । चदुतिदुगेक्कं भंगा सुहुमे एक्को हवे भंगो ॥ ४८६ ॥

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभानिवृत्तिभागे । चतुस्त्रिद्व्येकभङ्गाः सूक्ष्मे एको भवेत् भङ्गः ॥ ४८६ ॥

अर्थ—क्रोध मान माया और लोभके उदयरूप अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके चार भागोंमें ४, ३, २, १ बंध हैं उनमें क्रमसे कषाय बदलनेकी अपेक्षा ही ४, ३, २, १ भंग हैं। और सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें सूक्ष्मलोभके उदयरूप स्थानमें १ ही भंग है। इस प्रकार ११ भग होते हैं ॥ ४८६ ॥

आगे सब उदयस्थानोंकी तथा उनकी प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं,—

बारससयतेसीदीठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा। पणसीदिसदसगेहिं पयडिवियप्पेहिं ओघम्हि ॥ ४८७ ॥
द्वादशशतत्र्यशीतिस्थानविकल्पैर्मोहिता जीवा। पञ्चाशीतिशतसप्तभि प्रकृतिविकल्पैरोघे ॥ ४८७ ॥

अर्थ—गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मके सब १२८३ उयदस्थानोंमें तथा ८५०७ प्रकृतिभेदोंमें जगतके चराचर जीव मोहित होरहे हैं ॥ ४८७ ॥

अब अपुनरुक्त स्थानोंकी तथा उनकी प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं,—

एक्क य छक्केयारं दससगचदुरेक्कय अपुणरुत्ता। एदे चदुवीसगदा बार दुगे पंच एक्कम्हि ॥ ४८८ ॥
एक च षट्चैकादश दशसप्तचतुरेकमपुनरुक्तानि। एतानि चतुर्विंशगतानि द्वादशद्विके पञ्च एकस्मिन् ॥ ४८८ ॥

दशप्रकृतिरूप १ स्थान, नवादि प्रकृतिरूप क्रमसे ६, ११, १०, ७, ४, १ स्थान अपुनरुक्त हैं। इन ४० स्थानोंके २४ चौबीस भंग (भेद) हैं। दोप्रकृतिरूप स्थानके १२ भग और एक प्रकृतिरूप स्थानके ५ भंग हैं ॥ ४८८ ॥

णवसयसत्तत्तरिहिं ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा। इगिदालूणत्तरिसयपयडिवियप्पेहिं णायव्वा ॥ ४८९ ॥
नवशतसप्तसप्ततिभि स्थानविकल्पै मोहिता जीवा। एकचत्वारिंशदेकोनसप्ततिशतप्रकृतिविकल्पै ज्ञातव्या ॥ ४८९ ॥

अर्थ—इस प्रकार ९७७ स्थानोंके भेदसे तीन लोकके चराचर जीव मोहित होरहे हैं। इसी कारण संसारमें भटकते हैं ऐसा जानना ॥ ४८९ ॥ इस प्रकार गोमटसारका स्पष्टीकरण है।

प्रथमे दश सप्ताद्याः सासने मिश्रके नव । षडाद्या नव निर्वृत्ते पचाद्याः पचमेऽष्ट वै ॥ ३३८ ॥
चतुराद्या द्वयोः सप्त चतुराद्याः षडष्टमे । द्वावेको नवमे सूक्ष्मे सदैकस्योदयो मतः ॥ ३३९ ॥
कोपाद्यन्यतमो वेदो द्वावित्थ प्रथमे क्षणे । गतवेदस्य तस्यैकः कोपाद्यन्यतमः परे ॥ ३४० ॥

आगे हीनाधिक उदयस्थानोंको दिखाते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानमें दश प्रकृति उदयस्थानमें हैं और सात आदिक भी हैं । सासादनमें नौ प्रकृतिका उदयस्थान है और सात आदिक भी हैं । मिश्र गुणस्थानमें भी नौ उदयस्थानमें प्रकृति हैं और सात आदिक भी हैं । निर्वृत्त अर्थात् व्रतरहित असयत सम्यक्त्व चौथा गुणस्थान है । इस चौथे गुणस्थानमें नौका उदय है और छह आदिकका भी उदय है । पाचवें गुणस्थानमें आठका उदयस्थान है और पाच प्रकृति आदिके भी उदय है । ३३८ ।

आगेके छठे और सातवें—इन दो गुणस्थानोंमें सात प्रकृतिका उदय है और चार आदिके भी उदय हैं । आठवें गुणस्थानमें उत्कृष्ट उदय छह प्रकृतिका है और शेष चार आदिके भी उदय हैं । नौवें गुणस्थानमें दोका और एकका ऐसे दो उदयस्थान हैं । सूक्ष्मलोभ—दशवें गुणस्थानमें एक मोह प्रकृतिका ही उदय है । ३३९ ।

नवम गुणस्थानमें दो प्रकारके उदयस्थान किस प्रकार हैं सो आगे स्पष्ट करते हैं ।—

क्रोधादिक चार कषायोंमेंसे कोई एक प्रकृति, और एक वेद—ऐसे दो प्रकृतिका उदयस्थान नौवेंके प्रथम क्षणमें रहता है । आगे जहांसे वेद नष्ट हो जाता है वहापर क्रोधादि चारमेंसे एक कोई प्रकृति ही उदयमें रहती है—यह एकका उदयस्थान है । ३४० ।

१—अविरतसम्यक्त्वे चतुर्थगुणस्थाने इत्यर्थः ।

तत्र चतुर्णां कषायाणामन्यतमो, वेदश्चेति द्वावुदयस्थान सवेदेऽनिवृत्तौ प्रथमे क्षणे, परेषु चतुर्षु भागेषु यथासंभवमवेदकषायाणामेकतमः १। इत्यनिवृत्तौ २। सूक्ष्मे १।

सप्तोदया दशाद्या यांति चतुर्विंशतिं स्फुटं भेदान्। कोपादिवेदयुग्मैः क्रमाच्चतुस्त्रिद्विभिर्घाते ॥ ३४१ ॥

इति दशाद्युदया सप्त १०।९।८।७।६।५।४। एते कषायादिभिर्गुणिताः प्रत्येकं चतुर्विंशतिभेदास्तेषां संख्यामाह—

दो स्थानोंमेसे दोप्रकृतिरूप एक उदयस्थान इस प्रकार है कि चार कषायोंमेंसे कोई एक कषाय, और एक वेद। यह उदयस्थान अनिवृत्ति करणमें वेदसहित—पहिले क्षणवर्ती है। वेदरहित आगेके चार भागोंमें वेद नहीं है, केवल चार कषायोंमेंसे कोई एक प्रकृति है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें उदयस्थान २ हैं। सूक्ष्मलोभ दशवें गुणस्थानमें १ भेद ही है।

अब आगे दशादिके उदयस्थानोंमें भंगोंको दिखाते हैं।—

दश प्रकृतियों आदिके उदयस्थान सात हैं वे सर्व चौवीस चौवीस भंगोंको धारण करते हैं। वह इस प्रकार कि—क्रोधादि चार प्रकृतियोंकी वदलन समत्र होनेसे चार संख्यासे गुणित करनेपर सातमेंसे प्रत्येक उदयस्थानके चार भेद होजाते हैं। फिर इन चार भेदोंको तीन वेदसख्यासे गुणा करनेपर वारह भग होजाते हैं। फिर वारहको हास्यादि दो युगलसे गुणनेपर बारहके चौवीस भेद हो जाते हैं ॥ ३४१ ॥

इस प्रकार दश आदि प्रकृतियोंके सात उदयस्थान— १० का, ९ का, ८ का, ७ का, ६ का, ५ का, ४ का। इनको कषायादिसे अर्थात् कषायवेदयुगलकी चार तीन दो संख्याओंसे क्रमसे गुणनेपर २४ भेद होजाते हैं।

दुर्दृष्टावष्ट चत्वारि द्वयोरष्ट चतुष्टये । अपूर्वे सति चत्वारि पाकस्थानानि मोहने ॥ ३४२ ॥

८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । अपूर्वे ४ ।

अ.र्वान्ता अमी पाकाश्चतुर्विंशतिताडिताः । योगोपयोगलेश्याभिर्गुणनीया यथायथम् ॥ ३४३ ॥

सासने मिश्रकेऽपूर्वे पाका षण्णवतिर्बुधैः । पचस्वन्येपु ते प्रोक्ताः सकला द्विगुणाः पुनः ॥ ३४४ ॥

इति मिथ्यादृष्ट्यादिपु पाकविकल्पाः १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । सवेदेऽनिवृत्तौ १२ । अवेदे ४ । सूक्ष्मे १ । मीलिताः १७ ।

अब उनकी संख्याओंको दिखाते हैं ।—

मिथ्यादृष्टिमें मोहके आठ उदयस्थान हैं। दूसरे तीसरे—इन दो गुणस्थानोंमें चार चार उदयस्थान हैं। तीसरेसे आगेके चतुर्थ गुणस्थानादि चार गुणस्थानोंमें आठ आठ उदयस्थान हैं । अपूर्वकरणमें चार उदयस्थान हैं ॥ ३४२ ॥

८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । अपूर्वमें ४ ।

अब इन भेदोंके उत्तर भेद चौवीस संख्याद्वारा करके दिखाते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानसे लेकर अपूर्व—आठवें गुणस्थान पर्यंतके ये उदयस्थान चौवीस संख्यासे गुणित कर लेने चाहिये। और फिर योग उपयोग लेश्याओंके द्वारा भी यथायोग्य गुणित होसकते हैं ।

सासादनमें, मिश्रमें तथा अपूर्वकरणमें चार चार उदयस्थान हैं उन्हे चौवीस संख्यासे गुणित करनेपर छ्यानवें भेद होजाते हैं । शेष पांच स्थानोंमेंसे प्रत्येक स्थानके उत्तर भेद छ्यानवेंसे दूने दूने होते हैं । क्योंकि शेष स्थानोंमें आठ आठ प्रकारके उदय हैं उन्हे चौवीससे गुणनेपर १९२ भेद होना वास्तविक ही है । ३४४ ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्ट्यादि अपूर्वकरण पर्यंतके उदयभेद क्रमसे—१९२, ९६, ९६, १९२, १९२, १९२, १९२, ९६ हुए ।

इनके आगे अनिवृत्तिके सवेद भागमें १२, अवेद भागमें ४, दशवें गुणस्थानमें १ =ये सर्व मिलकर १७ भेद हुए ।

॥५४१॥

या पाकस्थानसख्या सा पाकभेदा निरूपिता । पचषष्टियुत तेषां शतद्वादशक मतम् (१२६५) ॥ ३४५ ॥
अष्टषष्टिः समिथ्यात्वे द्वात्रिंशद् द्वितये ततः । सा षष्टिरष्टहीना सा चतुर्थे पचमे क्रमात् ॥ ३४६ ॥
चत्वारिंशच्चतुर्युक्ताः प्रमत्तेतरयोर्द्वयोः । अपूर्वे विंशतिर्ज्ञेया पाकप्रकृतय स्फुटम् ॥ ३४७ ॥
दशकाद्युदयानां ताश्चतुर्विंशतिसगुणा । पूर्वत्र कथिता मोहे ज्ञेया सख्याविशारदै. ॥ ३४८ ॥
पूर्वोदितदशकाद्युदयानां प्रकृतयो मिथ्यादृष्ट्यादिपु—६८ । ३२ । ३२ । ६० । ५२ । ४४ । ४४ ।

इन सर्व सख्याओंका जोड आगे बताते हैं ।—

यह जो उदयस्थानोंकी संख्या है वह उदयके भेदोंके द्वारा बारहसौ पैंसठि (१२६५) बताई है । ३४५ ।

अब आगे प्रत्येक गुणस्थानके उदयभेदोंकी प्रकृतियोंकी जोडकर संख्या बताते हैं ।--

मिथ्यात्वमें अडसठि सर्व भेदोंकी प्रकृति हैं । दूसरे तीसरे—इन दो गुणस्थानोंमें बत्तीस बत्तीस हैं । चौथेमें साठि संख्या है । पाचवें गुणस्थानमें आठ घाटि साठि अर्थात् बावन सख्या है ॥ प्रमत्त तथा इतर अप्रमत्त—इन छट्ठे सातवें दो गुणस्थानोंमें चवालीस चवालीस है । अपूर्वकरण आठवेंमें वीस संख्या है । इस प्रकार उदयप्रकृति समझना । ३४६ —३४७ ॥

दशक आदिक उदयोंकी जो पूर्वमें संख्या बताई हैं उन्हे गणितविशारदोंको चाहिये कि, चौवीस संख्यासे गुणित करके समझलेवें । ३४८ ॥

पूर्वमें (३३६ वें श्लोककी व्याख्यामें) दशकादिकोंके उदय बताये हैं । उन उदयोंकी सर्व प्रकृति मिथ्यादृष्ट्यादि सात स्थानोंमें क्रमसे—६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ हैं और अपूर्वकरणमें २० हैं । और अनिवृत्तिकरणमें २१

१—' पाकभेदान्निरूपिता ' इति पाठ सम्यग्भाति ।

अपूर्वे २० । अनिवृत्तौ २१ । सूक्ष्मे[1] १ । एताश्चतुर्विंशतिगुणा यावदपूर्वे, मिथ्यादृष्टौ ८६४ । ७६८ । उभयोर्मीलिताः १६३२ । सासनादिषु ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० । एता मीलिताः ८४४८ ।

एतदुक्तम्—

चतु पष्ट्या शतान्यष्टावष्टषष्ट्यात्र सप्त च । मिथ्यादृष्टौ शतान्यैक्ये द्वात्रिंशानीति षोडश ॥ ३४९ ॥

मिश्रशासनयोः सप्त साष्टा षष्टीन्यसंयते । चत्वारिंशानि विद्वांसः शतान्याहुश्चतुर्दश ॥ ३५० ॥

७६८ । ७६८ । १४४० ।

विना पचाशतं द्व्यग्रां तानि देशे त्रयोदश । षष्ठसप्तमयोर्ज्ञेय षट्पचाश सहस्रकम् ॥ ३५१ ॥

१२४८ । १०५६ । १०५६ ।

अपूर्वेऽशीतिसंयुक्तं ज्ञेय शतचतुष्टयम् । पचाशीतिशतान्यैक्ये स्युर्द्वापंचाशतं विना ॥ ३५२ ॥

अपूर्वे ४८० । सर्वाः पदवधाख्याः प्रकृतयः ८४४८ ।

हैं । सूक्ष्मलोभमें १ ही है । इन सर्व प्रकृतिसख्याओंको पृथक् पृथक् चौवीससे गुणनेपर अपूर्व गुणस्थानपर्यंत कितनी कितनी उत्तर सख्या आती है वह इस प्रकार है ।—मिथ्यादृष्टिमें पहिले ३६ के भेदको २४ से गुणनेपर ८६४ आये । दूसरे भेदके ३२ को २४ से गुणनेसे ७६८ आये । दोनोंका जोड १६३२ हुआ । सासादनादिकोंमें क्रमसे—७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० । ये सर्व मिलानेसे ८४४८ संख्या होती है । सो ही आगे मूलकार दिखाते हैं ।—

चौसठि अधिक आठसौ और अडसठि अधिक सातसौ—इन मिथ्यादृष्टिकी दोनो संख्याओंको एकत्र करनेपर मिथ्यादृष्टिमें सोलहसौ बत्तीस संख्या होती है ॥ ३४९ ॥

मिश्र और सासादनमें सातसौ अडसठि, सातसौ अडसठि हैं । असंयतमें चौदहसौ चालीस हैं । (७६८ । ७६८ । १४४० ।) । बावन घाट तेरहसौ देशमें अर्थात देशसंयतमें हैं । एक हजार छप्पन छठे गुणस्थानमें हैं और सातवेंमें भी एक हजार

१—' अनिवृत्तौ २१ । सूक्ष्मे १ । ' यह पाठ यहां अनावश्यक है क्योंकि आगे फिरसे बताया है । और अशुद्ध भी है ।

अनिवृत्तभंगाः कथ्यन्ते—

वेदसंज्वलनाभ्यासे द्वादश स्युर्द्विकोदयाः । एकोदयास्तु चत्वारः सञ्ज्वालान्यतमोदये ॥ ३५३ ॥

एकः सूक्ष्मे भवत्येवं द्वये सप्तदशोदयाः । एकान्नत्रिंशदैक्ये ते द्वाभ्यामभ्यसने सति ॥ ३५४ ॥

सवेदेऽनिवृत्तौ द्विकोदयाः १२ । अवेदे त्वेकोदयाः ४ । सूक्ष्मलोभे एकः १ । सर्वे मीलिताः १७ । द्वाभ्यामभ्यसने द्विकोदयेषु प्रकृतयः २४ । एकोदये ४ । सूक्ष्मे १ । पिंडिताः २९ । पदबंधाख्याः प्रकृतयः —

पाकप्रकृतिसंख्यायाः पदबंधा भवति ते । पचाशीतिशतान्याहुस्तांस्त्रयोविंशतिं विना (८४७७) ॥ ३५५ ॥

छप्पन हैं ॥ (१२४८ । १०५६ । १०५६) । अपूर्वकरणमें चारसौ अस्सी हैं । एकत्र करनेपर बावन घाट पचासी सौ अर्थात ८४४८ होती हैं । ये सर्व पदबंधकी अर्थात् भंगोंकी संख्या हुई । ३५०–३५२ ।

अथ अनिवृत्तिकरणके भंगोंको दिखाते हैं ।—

अनिवृत्तकरणमें जहांतक दो मोहप्रकृतिका उदय है वहांपर्यंत वेद तीनको सज्वलन चारसे गुणनेपर बारह भेद होते हैं । और आगे जहाँ केवल एकका ही उदय है वहांपर सज्वलन किसी एक एकके उदयसे चार भेद होते हैं ॥ सूक्ष्मलोभमें एक ही भेद है । दोनो इन गुणस्थानमेंसे पहिले बारह भेद दो दो प्रकृतिरूप हैं इसलिये १२ को २ से गुणित करनेपर २४ प्रकृति होगई । आगेकी चार भेदवाली इकहरी चार प्रकृतियोंको और सूक्ष्मलोभकी एक प्रकृतिको जोडनेसे उन्तीस प्रकृति दोनो गुणस्थानोंकी हुई । ३५३—३५४ ।

सवेद भाग अनिवृत्तकरणके दो उदयवाले भेद १२ । अवेद भागके उदय ४ । सूक्ष्मलोभका उदय १ । ये सर्व १७ हुए ॥ इनमेंसे बारहको दो संख्यासे गुणनेपर दो उदय वाले स्थानोंकी प्रकृति २४ हुई । एकोदयकी ४ और सूक्ष्म लोभकी १ ये सर्व मिलानेसे २९ हुई । ये सर्व पदबंध प्रकृति कहाती हैं ।

इस प्रकार उदयप्रकृतियोंके ये पदबंध हैं । ये सर्व तेईस घाट पचासी सौ अर्थात ८४७७ हैं । ३५५ ।

ये भवति गुणे यत्र पाकाः प्रकृतयश्च याः। योगोपयोगलेश्याभिस्ते गुण्यास्ताश्च यत्नतः ॥ ३५६ ॥
त्रयोदश द्वयोर्योगा दशान्यत्र त्रयोदश। नवैकादश ते षट्के नव सप्त च योगिनि ॥ ३५७ ॥

गुणेषु योगाः १३। १३। १०। १३। ९। ११। ९। ९। ९। ९। ९। ९। ७। ०। गुणेषु पाकभेदाः पूर्वोदिता मिथ्यादृष्टौ ९६। ९६। सासनादिषु ९६। ९६। १९२। १९२। १९२। १९२। ९६। अनिवृत्तौ १२। ४। सूक्ष्मे १। इति द्वयोः १७।

अब आगे मोहके उदयभंगोंको योग उपयोग तथा लेश्या द्वारा गुणित करके संख्याओंको बताते हैं।—

जिन गुणस्थानोंमें जो उदय तथा जो प्रकृति हैं उन उदयोंको तथा उन प्रकृतियोंको योग उपयोग लेश्या द्वारा गुणित करना चाहिये। ३५६।

योगों द्वारा गुणित करनेकेलिये सर्व गुणस्थानोंमें योगोंके भेद जितने जितने संभव हैं उन्हे प्रथम दिखाते हैं।—

पहिले दो गुणस्थानोंमें तेरह तेरह योग हैं। अन्यत्र अर्थात् तीसरे गुणस्थानमें दश योग हैं। चौथे गुणस्थानमें तेरह हैं।

पांचवेंमें नौ हैं। छट्ठे गुणस्थानमें क्रमसे ग्यारह योग हैं। इससे आगे सातवेंसे बारहवें पर्यंतके छह गुणस्थानोंमें नौ नौ हैं। सयोग केवली तेरहवें गुणस्थानमें योग सात हैं। ३५७।

गुणस्थानोंमें योगोंकी क्रमवार संख्या—१३। १३। १०। १३। ९। ११। ९। ९। ९। ९। ९। ९। ७। ०। गुणस्थानोंमें उदयभेद पूर्वमें बताये हैं वे ये हैं—मिथ्यादृष्टिमें ९६। ९६, सासादनादि अपूर्वकरण पर्यंतमें क्रमसे—९६। ९६। १९२। १९२। १९२। १९२। ९६।, अनिवृत्तिकरणमें १२ और ४।, सूक्ष्मलोभमें १।—इस प्रकार दो गुणस्थानोंमें १७।

मिथ्यादृष्टौ योगाः १३ । १० । सासनादिषु १२।१०।१०।९।११।९।९। योगैः पण्णवत्यादयः पाकविकल्पाः पूर्वोदिता गुणिता मिथ्यादृष्टौ १२४८ । ९६० पिंडिताः २२०८ । सासनादिषु ११५२ । ९६० । १९२० । १७२८ । २११२।१७२८।८६४ । पिंडिताः १२६७२ ।

न श्वभ्रं सासनो याति मिश्रवैक्रियिके यतः । षढवेदो न तस्यास्ति ततस्तत्र कदाचन ॥ ३६१

वेदकोपादियुग्मोत्थैर्भंगैः षोडशभिस्ततः । चतुःषष्टिर्मताः पाकाश्चत्वारो गुणिताः परे ॥३६२ ॥

षढो वैक्रियिके मिश्रे नरके त्रिदिवे पुमान् । पुमानौदारिके मिश्रे जायते नृष्वसंयतः ॥ ३६३ ॥

भंगैः षोडशभिर्गुण्या वेदकोपादियुग्मकैः । कर्मवैक्रियमिश्राभ्यां निर्मताष्टोदयस्तथा ॥ ३६४ ॥

मिथ्यादृष्टिमें योग १३ अथवा १० हैं । सासादनादिकोंमें क्रमसे १२ । १० । १० । ९ । ११ । ९ । ९ इस प्रकार बताये हैं । इन योगोंद्वारा, छयानवें आदि तत्तत् गुणस्थानोंके उदयभेद जो ऊपर बताये हैं उन्हे गुणा तो मिथ्यादृष्टिमें १२४८ । ९६० हुए । एकत्र करनेपर २२०८ हुए । सासादनादिकोंमें ११५२ । ९६० । १९२० । १७२८ । २११२ । १७२८ । ८६४ ।—इतने हुए । जोड देनेसे सर्व १२६७२ हुए ।

सासादनके तेरहवें योगका खुलासा ।—

सासादन नरकको नहीं जाता इसलिये वैक्रियिक मिश्रयोगके समय उसके वहां नपुंसक वेद किसी प्रकार भी नहीं हो सकता है । इसलिये दो वेद, क्रोधादि चार कषाय तथा हास्यादि दो युगलके परस्पर गुणा करनेसे उत्पन्न हुए सोलह भंगोंसे चार उदयोंको गुणित करनेपर चौसठि (६४) उदयभंग निकलते हैं । ३६१—३६२ ।

अब चौथे गुणस्थानके शेष तीन योगोंका खुलासा आगे करते हैं ।—

असंयत सम्यग्दृष्टि जीवके वैक्रियिकमिश्रयोगके साथमें नपुंसक वेद नरकमें ही रह सकता है । देवोंमें भी वैक्रियिक मिश्र होता है परन्तु वहां असंयत सम्यग्दृष्टिके पुरुषवेद ही होता है । और असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यगतिमें औदारिक मिश्रको जब धारण करता है तो भी पुरुष ही होता है । अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टिको कार्माण योगके साथमें तथा वैक्रियिक मिश्रयोगके

पुनपुंसकवेदद्वयकषायचतुष्कहास्यादियुग्मानामन्योन्याभ्यासे भगाः १६ । एतैरष्टोदया हताः १२८ । वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगाभ्यां हताः २५६ ।

युग्मैकवेदकोपादिभंगैरष्टभिराहताः । अष्टावौदारिके मिश्रे चतुःषष्टिरुदाहृताः ॥ ३६५ ॥

युग्मैकवेदकोपादीनामन्योन्यवधे भगा ८ । एतेऽष्टोदयहताः ६४ । औदारिकमिश्रहताः ६४ ।

एवमसंयते पूर्वैः सहोदयविकल्पाः परे ३२० ।

नवमे दशमे पाकाः पूर्वं सप्तदशोदिताः । योगैर्नवभिरभ्यस्तास्त्रिपचाशं शतं मतम् ॥ ३६६ ॥

सार्थमें स्त्रीवेद कभी नहीं रह सकता है । इसलिये क्रोधादि चारको वेद दोसे ही गुणा करना चाहिये । फिर दो युगल (हास्यादि) से गुणा होता है । इस प्रकार इन सोलहसे और कार्मण तथा वैक्रियिक मिश्र—इन दो योगोंसे क्रमसे असंयत सम्यग्दृष्टि संबंधी अष्टोदयको अर्थात् आठ उदयस्थानोंको गुणना चाहिये ॥ ३६३–३६४ ॥

भावार्थ, पुरुष नपुंसक इन दो वेदोंका, कषाय चारका और हास्यादि युगल दोका परस्परमें गुणा होनेसे भंग १६ होते हैं। इन सोलहसे आठ उदयस्थानोंको गुणनेपर १२८ भेद हुए । फिर वैक्रियिक मिश्र तथा कार्मण इन दोसे गुणनेपर २५६ भेद होते हैं।

युगल दोका, वेद एकका, क्रोधादि चारका परस्पर गुणन होनेसे आठ भेद हुए । इस आठ संख्यासे औदारिकमिश्रके संबंधी आठ उदयस्थानोंको गुणनेपर चौसठि भेद होना बताया है। ३६५ ।

हास्यादि युगल दो, वेद एक, क्रोधादि चार — इनका परस्पर गुणन होनेपर भंग आठ हुए । आठसे आठ उदयस्थान गुणे जांय तो ६४ भंग होजाते हैं। ये ६४ औदारिकमिश्र संबंधी हैं। औदारिकमिश्र एक योगसे गुणनेपर भी चौसठि ही रहते हैं। इस प्रकार असंयत सम्यक्त्वमें उदयभेद ऊपर वैक्रियिकमिश्र संबंधी २५६ बताये हैं उन्हे ६४ में जोडनेसे ३२० भेद होजाते हैं।

इस प्रकार आठ गुणस्थान पर्यंतके उदयभंगोंको योगद्वारा गुणित करके बताया । अब आगे नौवें दशवें दो गुणस्थानोंके १७ उदयस्थानोंको योगों द्वारा गुणित करके बताते हैं।—

नौवेंके १६ और दशवें गुणस्थानका १ ऐसे १७ उदयभेद पहिले बताये हैं । और यहां योग नौ नौ संभव हैं । इस लिये नौको सत्रहसे गुणित करनेपर एकसौ त्रेपन भंग यहांके उदयोंके हो जाते हैं। ३६६ ।

सवेदेऽनिवृत्तौ वेदाः ३ । सज्वलनाः ४ । परस्परवधे द्विकोदयाः १२ । नवयोगहताः १०८ । निर्वेदे शेषेषु पचमभागेषु चतुर्षु संज्वालान्यतमोदयाः ४ । योगनवकगुणिताः ३६ । द्वयेऽप्यनिवृत्तौ मीलिताः १४४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभसंज्वालस्यैकस्योदयः १ । नवभिर्योगैर्गुणिताः ९ । इत्थं सर्वे पिंडिताः १५३ ।

मोहनोदयभमा ये योगानाश्रित्य मेलिताः । नवोत्तरशते वे द्वे सहस्राणि त्रयोदश ॥ (१३२०९) । ३६७ ॥

साम्प्रतं पदबंधा योगानाश्रित्य कथ्यन्ते—

तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु पूर्वोदितैर्योगैरेतैः १३ । १० । सासनादिषु १२ । १० । ९ । ९ । ११ । ९ । ९ ।

अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें तीन वेद हैं, कषाय संज्वलन चार हैं । इनका परस्पर गुणा करनेपर दो उदयवाले स्थानोंमें बारह भेद हुए । इन १२ को नौ योगोंसे गुणनेपर १०८ भेद हुए । वेदरहित अनिवृत्तिकरणमें जो शेष पांचवें चार भाग हैं उनमें संज्वलन एक एक किसी प्रकृतिका उदय रहता है इसलिये ४ उदयस्थान हुए । इन ४ को नौ योगोंसे गुणनेपर ३६ भेद हुए । इन अनिवृत्तिकी दोनो सख्याओंका जोड १४४ हुआ । दशवें गुणस्थानमें एक सूक्ष्म लोभका उदय है । उसे नौं योगोंसे गुणनेपर ९ भेद हुए । इस प्रकार दोनों गुणस्थानोंके सर्व मिलकर १५३ भंग हुए ।

मोहोदयके भंग योगोंका संबंध लगाकर जो रक्खे गये हैं वे सर्व मिलकर तेरह हजार दो सौ नौं [१३२०९] होते हैं । ३६७ ॥

भावार्थ, मिथ्यादृष्टिसे अपूर्वकरण पर्यंतके उदयस्थान भग १२६७२ । सासादनके मिश्र वैक्रियिक संबंधी ६४ । असंयत सम्यग्दृष्टिके कार्मण, वैक्रियिक-मिश्र, औदारिक मिश्र—इन तीन योगसंबंधी ३२० । और नौवें दशवें-दो गुणस्थान संबंधी १५३ –इन सबको जोडनेसे १३२०९ उदयस्थानोंके भंग हो जाते हैं ।

अब आगे योगोंके आश्रयसे पदबंध प्रकृतियोंको गुणित करके दिखाते हैं ।—

वह इस प्रकार कि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पूर्वकथित १३ । १० तथा सासादनादिकोंमें—१२ । १० ।

क्रमादेताः प्रकृतयः पूर्वोदिता मिथ्यादृष्टौ ८६४ । ७६८ । सासनादिषु ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० । गुणिता जाता मिथ्यादृष्टौ ११२३२ । ७६८० । सासनादिषु ९२१६ । ७६८० । १४४० । ११२३२ । ११६१६ । ९५०४ । ४३२० ।

पाकप्रकृतय सति चतुर्विंशतिभगजाः । षडशीतिसहस्राणि साशीति च शताष्टकम् ॥ ३६८ ॥

८६८८० ।

द्वात्रिंशत्षोडशाभ्यस्ताः पाकप्रकृतय स्फुटम् । सह द्वादशभिर्ज्ञेयं सासने शतपचकम् ॥ ३६९ ॥

शासने चत्वारः पाका ७, ८, ८, ९ । एव प्रकृतय ३२ । पूर्वोदितैः षोडशभिर्भंगैर्गुणयित्वा वैक्रियिकमिश्रयोगबंधेऽन्येपि पदबंधाः ५१२ ।

---

९ । ९ । ११ । ९ । ९ । —इन योगों द्वारा, पूर्वकथित प्रकृति—मिथ्यादृष्टिमें ८६४ । ७६८ । तथा सासादनादिकोंमें क्रमसे ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० ।—गुणित करनी चाहिये । गुणित करनेपर लब्ध संख्या मिथ्यादृष्टिमें ११२३२–७६८० होती है । एवं सासादनादिकोंकी क्रमसे ९२१६ । ७६८० । १४४० । ११२३२ । ११६१६ । ९५०४ । ४३२० संख्या होती है ।

इस प्रकार चौवीसके भगजन्य सर्व उदयप्रकृति छ्यासी हजार आठसौ अस्सी (८६८८०) होती हैं ॥ ३६८ ॥

अब सासादनके वैक्रियिकमिश्र योगके बंधमें होनेवाली प्रकृतिसंख्याको बताते हैं ।—

सासादनमें सर्व प्रकृति बत्तीस गिनाई हैं उन्हे सोलहसे गुणें तो बारह अधिक पांचसौ और भी अधिक उदय-प्रकृति हो जाती हैं । ३६९ ।

सासादनमें चार उदय—७, ८, ८, ९-इस प्रकार बताये हैं । इनका जोड देनेसे ३२ प्रकृति हुई । इन्हे पूर्वकथित सोलह भगोंसे गुणें तो वैक्रियिकमिश्र काययोगके बंध समयमें ५१२ और भी पदबंध नामकी प्रकृति हो जाती हैं ।

पाकाष्टकगता षष्टिः प्रकृतीनामसंयते । हता षोडशभिर्भंगैर्वेदकोपादियुग्मजैः ॥ ३७० ॥

कर्मवैक्रियमिश्राभ्यां योगाभ्यां ताडिता सती । सहस्रं नव विंशानि शतानि च भवति ताः ॥ ३७१ ॥

असंयतेऽष्टोदया ७, ८, ८, ९ । ६, ७, ७, ८ । एषां प्रकृतय ६० । षोडशभंगगुणिता ९६० । वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगाभ्यां हता १९२० ।

पाकप्रकृतयो भंगैरष्ट षष्टिभिराहताः । हतौदारिकमिश्रेण सहाशीत्या चतु शती ॥ ३७२ ॥

असंयतेऽन्येप्यौदारिकमिश्रयोगे भंगाः ४८० । एवं त्रिवृते योगत्रये अन्येपि मीलिता पदबंधा २४०० ।

एकोनत्रिंशदभ्यस्ता नवमे दशमे च ताः । योगैर्नवभिरादिष्टं सैकषष्टिशतद्वयम् ॥ ३७३ ॥

अब चौथे गुणस्थानमें कार्मणादि तीन योगोंके होते जो उदयप्रकृति होती हैं उन्हे आगे गिनाते हैं।—

असंयत चौथे गुणस्थानमें आठ मोहस्थान हैं। उनमें सर्व प्रकृति मिलकर साठि होती हैं उन्हे २ वेद, ४ कषाय हास्यादि २ युगल गुणित सोलह संख्यासे गुणनेपर और कार्माण वैक्रियिकमिश्र—इन दोसे गुणित करनेपर एक हजार नौ सौ वीस (१९२०) पदबंध प्रकृति आती हैं। ३७०—३७१ ।

असयतमें आठ प्रकारके ७, ८, ८, ९ । ६, ७, ७, ८ ।—ये उदय हैं। इनकी सर्व प्रकृति साठि हैं। इन ६० को वेद दो कषाय चार युगल दोके परस्पर गुणित सोलह प्रमाणसे गुणनेपर ९६० संख्या होती है। इस नौसौ साठिको वैक्रियिकमिश्र तथा कार्मणकी दो योगसंख्यासे गुणनेपर १९२० उदयप्रकृतियोंकी संख्या सिद्ध होती है।

साठि भंगोंसे आठको गुणित करनेपर और फिर औदारिक मिश्रसे गुणनेपर चारसौ अस्सी उदयप्रकृति सिद्ध होती हैं॥ ३७२

असयतमें औदारिकमिश्रयोगके रहनेपर भंग ४८० होते हैं। इस प्रकार असंयत चौथे गुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रादि तीन योगोंके द्वारा विशेषरूपसे और २४०० पदबंध प्रकृति समझकर ऊपरकी १४४० में मिलालेनी चाहिये।

अब नौवें दशवें गुणस्थानके पदबंधोंको दिखाते हैं।—

नौवें दशवेंकी उन्तीस प्रकृतियोंको नौ योगोंसे गुणित करनेपर दोसौ इकसठि पदबंध प्रकृति सिद्ध होती हैं। ३७३ ।

नवमे उदये २। द्वादशभिर्द्विकोदयैर्घाते २४। चतुर्भिरेकोदयैः १।४। सर्वाः २८। सूक्ष्मे एकोदयः १। मीलिताः २९। एता नवभिर्योगैरभ्यस्ताः २६१।

पदबंधा मताः सर्वे मीलिता मोहकर्मणि। नवतिः स्युः सहस्राणि त्रिपंचाशानि निश्चितम् ॥ ३७४ ॥

इति मोहे योगानाश्रित्य गुणेषु पदबंधाः ९००५३।

गुणस्थानेषु ये पाका पदबंधाश्च संति ये। उपयोगैर्हता ज्ञेयास्ते निःशेषा विचक्षणैः ॥ ३७५ ॥

द्वयोः पंच क्रमेणैते त्रिषु षट् सप्त सप्तसु। द्वयोर्द्वाववबोद्धव्या गुणस्थानेषु कोविदैः ॥ ३७६ ॥

नौवें गुणस्थानमें सवेद भागमें उदय दोका है। उसे द्विक बारहसे गुणित करनेपर २४ संख्या होती है। नौवेंके ही अवेदभागमें चार एकके उदय हैं १।४। मिलानेसे २८ संख्या होती है। सूक्ष्मलोभ दशवेंका उदय १ है। ये सर्व २९ हुए। इनको नौ योगोंसे गुणनेपर २६१ पदबंध प्रकृति होजाती है।

मोहकर्ममें इस प्रकार सर्व पदबंध मिलानेसे नव्वे हजार त्रेपन प्रकृति होती हैं। ३७४।

इस प्रकार मोहोदयोंमें योगोंको लगानेसे गुणस्थानोंमें सर्व पदबंध प्रकृति ९००५३ हुई।

अब आगे उपयोगके निमित्तसे उदय तथा उदयप्रकृतियोंको गिनाते हैं।

गुणस्थानोंमें जो उदय तथा पदबंध हैं उन्हे उपयोगोंके द्वारा गुणित करके समझ लेना चाहिये ॥ ३७५ ॥

आठ ज्ञानोपयोग और चार दर्शनोपयोग ऐसे सर्व उपयोग बारह हैं। उनमेंसे पांच पांच उपयोग पहिले दो गुणस्थानोंमें हैं। फिर तीसरे चौथे पांचवें इन तीन गुणस्थानोंमें छह छह उपयोग हैं। फिर क्रमसे सात गुणस्थानोंमें सात सात उपयोग हैं फिर अंतके दो गुणस्थानोंमें दो दो उपयोग हैं। इस प्रकार सर्व गुणस्थानोंमें विद्वानोंको उपयोगसंख्या जाननी चाहिये ॥३७६॥

गुणेषूपयोगाः ५ । ५ । ६ । ६ । ६ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । २ । २ । गुणेष्वष्टसु पाकविकल्पाः १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । नवमे १२ । ४ । दशमे १ । द्वयोः १७ ।

उपयोगगुणा एते एतावन्तो निवेदिताः । उपयोगं प्रति प्राज्ञैः पाकभेदा यथागमम् ॥ ३७७ ॥

९६० । ४८० । ५७६ । ११५२ । ११५२ । १३४४ । १३४४ । ६७२ । मीलिता ७६८० ।

नवमे दशमे पाका पूर्वं सप्तदशोदिताः । उपयोगगुणा सन्ति शतं सैकोनविंशति ॥ ३७८

११९ । मीलिताः ७७९९ ।

भेदा मोहनपाकानामुपयोगहता मताः । ऐक्ये नवनवत्याग्रा शतानां सप्तसप्तति ॥ ३७९ ॥

गुणस्थानोंमें उपयोग क्रमसे— ५ । ५ । ६ । ६ । ६ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । २ । २ — इस प्रकार है । आदिके आठ गुणस्थानोंमें उदयविकल्प क्रमसे— १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ — है । नौवें गुणस्थानमें १२ । ४ है । दशवेंमें १ है । दोनोंमें मिलकर १७ होते हैं ।

उपयोगकी अपेक्षासे उपयोगोंद्वारा गुणित किए हुए उदयभेद सर्व जितने जितने प्रत्येक गुणस्थानमें बताये हैं वे विद्वानोंको आगमानुसार इस प्रकार समझलेने चाहिये । ९६० । ४८० । ५७६ । ११५२ । ११५२ । १३४४ । १३४४ । ६७२ । इनका जोड ७६८० होता है । ये पहिले आठ गुणस्थानोंके भेद हुए । ३७७ ।

नौवें और दशवें गुणस्थानके मिलाकर सत्रह उदयभेद ऊपर बताये हैं । इन्हे उपयोगके संभव सात भेदोंसे गुण देनेपर सर्व भेद एकसौ उन्नीस (११९) होते हैं । ऊपरके आठ गुणस्थान संबधी ७६८० भेदोंमें इन भेदोंको जोड देनेपर ७७९९ जोड होता है । ३७८ ।

इस प्रकार मोहके उदयभेदोंको उपयोगोंसे गुणित करदेने पर सबका जोड निन्यानवे अधिक सततरि सौ अर्थात्— ७७९९ होता है । ३७९ ।

गुणस्थानाष्टके संति पाकप्रकृतयो यका । उपयोगैः क्रमादेताः पदबंधा हता मता ॥ ३८० ॥

गुणेष्वष्टसु पाकप्रकृतय १६३२। ७६८। ७३८। १४४० ।१२४८। १०५६। १०५६। ४८० । एता यथा-स्वमुपयोगगुणा पदबंधा ८१६० । ३८४० । ४६०८ । ८६४० । ७४८८ । ७३९२ । ७३९२ । ३३६० । मीलिता. ५०८८० ।

सूक्ष्मानिवृत्तिकस्थानपाकप्रकृतयो हता । सप्तकेनोपयोगानां त्र्युत्तरे द्वे शते मते ॥ ३८१ ॥

द्वयोः पाकप्रकृतयः २९ । उपयोगसप्तकहताः २०३ ।

अब आगे सर्व पदबंधोंको दिखाते हैं। —

आदिके आठ गुणस्थानोंमें जो उदयप्रकृति हैं उन्हे ऊपर बताये हुए उपयोगोंकी भेदसख्यासे गुणनेपर पदबंधोंकी संख्या होजाती है ऐसा माना है । ३८० ।

वह इस प्रकार है कि आदिके आठ गुणस्थानोंमे क्रमसे उदयप्रकृति— १६३२ । ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० — इतनी इतनी हैं। इनको यथाक्रम उपयोगोंद्वारा गुण लिया जाय तो वे पदबंध कहाते है और वे इस प्रकार है— ८१६० । ३८४० । ४६०८ । ८६४० । ७४८८ । ७३९२ । ७३९२ । ३३६० । इन सबका जोड ५०८८० होता है।

अनिवृत्तिकरण तथा सूक्ष्मसांपराय इन नौवें दशवें दो गुणस्थानोंकी उदयप्रकृति उपयोगकी सात सख्यासे गुणित करदी जाय तो दोसौ तीन पदबंध सिद्ध हो जाते है । ३८१ ।

नौवें दशवेंकी सर्व उदयप्रकृति उन्तीस (२९) हैं। उपयोगकी सात सख्यासे गुणने पर २०३ पदबंध हुए।

उपयोगगताः सर्वे पदबंधा निरूपिताः । सहस्राण्येकपचाशत्त्र्यशीतीनि सूरिभिः ॥ ३८२ ॥ (५१०८३ ।)

लेश्याश्चतुष्टये षट् षट् तिस्रस्तिस्रस्त्रये शुभा । एकैकास्ति गुणानां सा षट्के निर्लेश्यमंतिमम् ॥ ३८३ ॥

६ । ६ । ६ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ० । अष्टसु गुणस्थानेषु पाकविकल्पाः १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । एत यथाक्रमं लेश्यागुणा लेश्यासु पाकभेदा – ११५२ । ५७६ । ५७६ । ११५२ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । ९६ । अनिवृत्तिसूक्ष्मयोरुदयाः १७ । शुक्ललेश्यागुणाः १७ । सर्वे पिंडिता ५२९७ ।

इस प्रकार पहिले आठ गुणस्थानोंके पदबंध और ये नौवें दशवें दो गुणस्थानोंके पदबंध–सर्व जोडदेने पर इक्यावन हजार और तिरासी (५१०८३) इतने हो जाते है ऐसा आचार्योंने बताया है । ३८२ ।

अब आगे लेश्याओंके भेदोंसे मोहकी उदयप्रकृतियोंको गुणित करके दिखाते है । —

आदिके चार गुणस्थानोंमे लेश्याएं छह छह है । फिर पाचवे छट्टे सातवें इन तीन गुणस्थानोंमे अंतकी शुभ तीन तीन लेश्याए हे । फिर आठवेंसे तेरहवें पर्यंतके छह गुणस्थानोंमे अतकी एक शुक्ल शुक्ल ही लेश्या है । मनसे अंतके चौदहवें गुणस्थानमे लेश्याका अभाव होनेसे उस अंतिम गुणस्थानको निर्लेश्य अथवा अलेश्य कहते हे । ३८३ ।

६ । ६ । ६ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ० । यह गुणस्थानक्रमसे लेश्याओंकी भेदसख्याका यत्र है ।

सर्व गुणस्थानोंमे उदयभेद ऊपर बताये जा चुके है । वे इस प्रकार है । — आदिके आठ गुणस्थानोंमे क्रमसे १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । इन उदयभेदोंको उन उन लेश्याभेदोंसे गुणनेपर क्रमसे लेश्याओंमे उदयभेद जो होत हे वे इस प्रकार है ।– ११५२ । ५७६ । ५७६ । ११५२ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । ९६ । आठवें गुणस्थानसे लेश्या एक ही है इसलिये सामान्य उदयसख्याको लेश्यासख्यासे गुणने पर भी अधिक भेद नहीं होते हैं । इसीलिये आठवें गुणस्थानको सख्या जैसी ऊपर ९६ थी वैसी ही लेश्यासे गुणनेपर भी ९६ ही रही है ।

त्रिहीनानि त्रिपचाशच्छतान्येव गुणेपु वै। लेश्यापाकविकल्पानां भवन्त्येकत्र मोहने ॥ ३८४ ॥

गुणाष्टके पदवधे पाकप्रकृतयः १६३२ । ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६। ४८० । यथाक्रम लेश्याहताः पदवधा आगता ९७९२ । ४६०८ । ४६०८। ८६४० । ३७४४ । ३१६८ । ३१६८ । ३१६८। ४८० । मीलिताः ३८२०८ । नवमदशमयोः पाकप्रकृतयः २९ । शुक्ललेश्याहताः २९ । सर्वे मीलिताः ३८२३७ ।

सति लेश्याहताः सर्वे पदवधा विसश्चयम । अष्टत्रिंशत्सहस्राणि सप्तत्रिंश शतद्वयम् ॥ ३८५ ॥

६ । ६ । ६ ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ० ।

अनिवृत्तिकरण नौवें और सूक्ष्मलोभ दशवे इन दो गुणस्थानोंके मिलकर उदयविकल्प १७ है। यहा लेश्या एक शुक्ल ही है इसलिये लेश्यासख्या एकसे गुणनेपर भी उदयविकल्प १७ ही रहते हैं। सर्वोका जोड पाच हजार दो सौ सत्तानवे (५२९७) होता है।

इसी फलितको ग्रथकार आगे वताते हैं।—

इन गुणस्थानोंमे ऊपर वताये अनुसार मोहनीयमें एकत्र किये हुए लेश्यासवधी उदयविकल्प सर्व तीन घाट तिरेपनसे (५२९७) होते हैं ॥ ३८४ ॥

आठ गुणस्थानोंमे पदवधकी उदयप्रकृति क्रमसे १६३२ । ७६८। ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६। ४८० – है। इनको लेश्याभेदोंसे गुणनेपर पदवध क्रमसे–९७९२ । ४६०८ । ४६०८ । ८६४० । ३७४४ । ३१६८ । ३१६८ । ३१६८ । ४८० – इतने हैं। इन सवका जोड ३८२०८ होता है। नौवें दशवें गुणस्थानकी उदयप्रकृति २९ है। शुक्ल-लेश्याकी एकसख्यासे गुणनेपर भी २९ ही रहते हैं। ऊपरकी सख्यामें इन भेदोंको भी मिलादेनेसे सर्व भेद ३८२३७ हो जाते है।

इसी सिद्ध हुई सख्याको ग्रथकार स्वय आगे वताते हैं।—

लेश्याओंसे गुणित किये हुए सर्व पदवध अडतीस हजार और सैंतीस अधिक दो सौ (३८२३७) होते है ॥३८५॥

मोहनीयोदया ह्येताः समस्ता वेदताडिताः । गुणस्थानाष्टकैर्याश्च चतुर्विंशतिसगुणाः ॥ ३८६ ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिष्वष्टसूदयाः ८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । ४ । एते त्रिवेदताडिताः २४ । १२ । १२ । २४ । २४ । २४ । २४ । १२ । चतुर्विंशतिसगुणाः ५७६ । २८८ । २८८ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । २८८ । सर्वैक्ये ३७४४ । अनिवृत्तौ सज्वाला वेदत्रयगुणाः १२ ।

वेदैस्तु त्रिभिरभ्यस्ताः सज्वाला अनिवृत्तिके । सप्तत्रिंशच्छतान्याहुः षट्पञ्चाशीनि मीलिते ॥ ३८७ ॥

पाकस्थानानि एवं ३७५६ ।

अब आगे मोहकी उदयप्रकृतियोंको स्त्री आदि यथासभव वेदोंसे गुणित करके दिखाते है । —

मोहनीयकी सर्व उदयप्रकृति वेदोंसे गुणित करनी चाहिये और आठो गुणस्थानोंसे जितनी प्रकृति ठहरती हैं वे चौवीस सख्यासे गुणित करलेनी चाहिये । ३८६ ।

पहिले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर आठवें पर्यत आठ गुणस्थानोंमें उदय क्रमसे— ८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । ४ — है । इन्हे तीन वेदसख्यासे गुणित करनेपर २४ । १२ । १२ । २४ । २४ । २४ । २४ । १२ । — इतनी सख्या होती है । इन्हे फिर चौवीससे गुणित करनेपर क्रमसे— ५७६।२८८।२८८।५७६।५७६।५७६।५७६।२८८।— होते हैं । सबका जोड ३७४४ होता है । अनिवृत्तिकरणमे चार सज्वलनको वेद तीनसे गुणनेपर १२ सख्या होती है ।

इसी वातको मूलकार आगे कहते है और सबके जोडको वताते हे । —

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे सज्वलन चार है । इनको वेद तीनसे गुणलेना चाहिये । भावार्थ, यह गुणित सख्या १२ होती है । उपर वताए आठ गुणस्थानसवधी भेद और अनिवृत्ति करणके वारह भेद—ये सर्व मिलादेनेसे छप्पन अधिक सैंतीससौ (३७५६) भेद होजाते हैं ॥ ३८७ ॥

इस प्रकार उदयस्थान सर्व ३७५६ है ।

पाकप्रकृतयः सर्वा वेदत्रयहता मताः। गुणस्थानाष्टके मोहे चतुर्विंशतिताडिताः ॥ ३८८ ॥

६८। ३२। ३२। ६०। ५२। ४४। ४४। २०। त्रिवेदे गुणा २०४। ९६। ९६। १८०। १५६। १३२। १३२। ६०। चतुर्विंशतिताडिता ४८९६। २३०४। २३०४। ४३२०। ३७४४। ३१६८। ३१६८। १४४०। मीलिताः २५३४४। अनिवृत्तौ संज्वालाः ४। प्रकृतिद्वयगुणाः ८। त्रिवेदगुणा २४।

अनिवृत्तिस्थसज्वालाः प्रकृतिद्वयसगुणाः। वेदैस्त्रिभिरभ्यस्ता मीलनीया विचक्षणैः ॥ ३८९ ॥

शतत्रयाष्टषष्टिश्च सहस्रा पञ्चविंशति। पदसख्या विबोद्धव्या त्रिवेदी प्रति मोहने ॥ ३९० ॥

२५३६८।

अब यहापर उदयप्रकृतियोंको दिखाते है।—

आठो गुणस्थानवाली मोहकी सर्व उदयप्रकृतियोंको वेद तीनसे गुणित करलेना चाहिये ॥ ३८८ ॥

उदयप्रकृति क्रमसे— ६८। ३२। ३२। ६०। ५२। ४४। ४४। २०। — है। वेदकी तीन सख्यासे प्रत्येक राशिको गुणनेपर क्रमसे— २०४। ९६। ९६। १८०। १५६। १३२। १३२। ६०। — होती है। इन राशियोंको चौवीससे गुणनेपर—४८९६। २३०४। २३०४। ४३२०। ३७४४। ३१६८। ३१६८। १४४०। — इतनी सख्या हुई। इन सब राशियोंका जोड २५३४४ होता है। अनिवृत्तिकरणमे सज्वलन मोह ४ है। प्रकृतिद्वयसे गुणनेपर ८ होते है। वेदत्रयासे गुणनेपर २४ होते है।

इसी बातको मूलकार आगे बताते है।—

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके चार सज्वलन है। इन्हे प्रकृतिद्वयसे गुणित करना चाहिये और ऊपर बताई आठ गुणस्थानोंकी सर्व पिंडित सख्यासे जोड देना चाहिये ॥ ३८९ ॥

वह जोड कितना होता है सो बताते है।—

पच्चीस हजार और तीन सौ अडसठि (२५३६८) इतनी पदबंधोंकी सर्व सख्या त्रिवेदके सबधसे मोहमे होती है ॥३९०॥

त्रिसयमगुणा पाका षष्ठसप्तमयोर्मता । अपूर्वे गुणिता द्वाभ्या सर्वे तीर्थकरैर्हता ॥ ३९१ ॥

षष्ठसप्तमयोरुदया· ८ । ८। सयमत्रयहता २४ । २४। अपूर्वे पाकाः ४। द्विसयमगुणा ८। चतुर्विंशतिगुणाः सर्वे ५७६ । ५७६ । १९२ । सर्वैक्ये १३४४ ।

षोडशैकस्तथा पाका सयमे गुणिताः क्रमात । अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे द्वाभ्यामेकेन कोविदै ॥ ३९२ ॥

अनिवृत्तावुदया १६ । सयमद्वयगुणा ३२ । सूक्ष्मे पाक १ । एकसंयमगुण । मीलिताः—

अव आगे मोहकी उदयप्रकृतियोंको सयमोंसे गुणित करके वताते है—

छट्ठे और सातवें गुणस्थानोंकी उदयसख्याको तीन सयमोंसे गुणना चाहिये क्योंकि छट्ठे सातवें गुणस्थानोंमें मामायिक छेदोपस्थापन तथा परिहारविशुद्धि-ये तीन ही सयम सभव है । अपूर्वकरण आठवे गुणस्थानमें दो सयम रहते है इसलिये दो से गुणना चाहिये । और फिर इन सभीको तीर्थकर-अर्थात् चौवीस सख्यासे गुणना चाहिये । तीर्थकर शब्दसे यहापर चौवीसकी सख्या ली जाती है । ३९१ ।

छट्ठे सातवेंमे उदय ८।८ है । सयमसे गुणनेपर २४।२४ होते हैं । अपूर्वकरणमे उदय ४ है । दो सयमसे इसे गुणनेपर ८ होते है । चौवीससे गुणनेपर सव ५७६ । ५७६ । १९२ हो जाते है । सबका जोड १३४४ है ।

अनिवृत्ति करण नौवें गुणस्थानमे सोलहका उदय है और सयम वहा दो है । इसलिये दोसे सोलहको गुणना चाहिये । सूक्ष्मसापराय दशवें गुणस्थानमें उदय एकको सयम एकसे गुणना चाहिये । भावार्थ, एकसे एकको गुणनेपर भी एक सख्या ही रहती है और सोलहको दोसे गुणनेपर वत्तीस सख्या हो जाती है । ३९२ ।

अनिवृत्तिमे उदय १६, सयम दोसे गुणनेपर हुए ३२ । सूक्ष्ममें उदय १. सयम एकसे गुणनेपर १ ही रहा ।

सप्तसप्ततियुक्तानि त्रयोदश शतानि ते। विकल्पाः सति पाकानां संयमं प्रति मोहने ॥ ३९३ ॥
पष्ठसप्तमयो पाकास्त्रिभिर्द्वाभ्यां च संयमै । हत्वा प्रकृतिसंघातांस्ताडयेत्तीर्थकारिभि ॥ ३९४ ॥

प्रमत्ताप्रमत्तयो पदबंधा ४४ । ४४ । संयमत्रयाभ्यस्ता १३२ । १३२ । अपूर्वे पदबंधा २० । द्विसंयमगुणाः ४० । चतुर्विंशतिगुणा ३१६८ । ३१६८ । ९६० । सर्वेकत्रे ७२९६ ।

द्वय द्वादशभिर्हत्वा चतुर्भिरेकक पुन । संयमद्वितयाभ्यस्ता विधेयमनिवृत्तिके ॥ ३९५ ॥

इन पाचो गुणस्थानोंका सर्व जोड आगे बताते है ।—

संयमसे गुणने पर मोहके उदयोंके भग तेरहसौ सततरि [१३७७] सर्व होते है । ३९३ ।

अब पदबंधोंके भेदोंको छट्ठे आदि गुणस्थानोंमे दिखाते है ।—

छट्ठे और सातवे गुणस्थानोंके जो उदय है उन्हे तीनसे तथा अपूर्वकरणके उदयोंको दो सयमसख्यासे गुणना चाहिये और फिर प्रकृतिसमूहोंको चौवीससे गुणित कर देना चाहिये । ३९४ ।

प्रमत्त अप्रमत्तके पदबंध ४४ । ४४ है । इन्हे संयमकी तीन सख्यासे गुणनेपर १३२ । १३२ होते है । अपूर्वकरणमे पदबंध २० है । इन्हे सयम दोसे गुणनेपर ४० होते है । इन सबोंको चौवीससे गुणनेपर क्रमसे ३१६८ । ३१६८ । ९६० हुए । सबका जोड ७२९६ हुआ ।

इसीका खुलासा आगे करते है ।—

दोको बारहसे गुणना चाहिये । एकको चारसे गुणना चाहिये फिर संयमकी दो संख्यामे गुणन करना चाहिये । इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें करना चाहिये । ३९५ ।

अनिवृत्तौ द्वौ द्वादशगुणौ २४ । एकश्चतुर्गुणः ४ । द्वावपि द्विसंयमगुणौ ५६ । एकः सूक्ष्मे १ । एकसंयम-गुणः १ ।

चतुर्थे संयमेनैको हन्यात्सूक्ष्मकषायके । त्रिसप्ततिशतान्याहुस्त्रिपंचाशानि मीलिता ॥ ३९६ ॥
७३५३ ।
चतुर्थादिगुणे पाकाः सम्यक्त्वैस्त्रिभिराहताः । द्वाभ्यां पुनरपूर्वाख्ये हतव्याः पाकवेदिभिः ॥ ३९७ ॥
चतुर्विंशतिघ्नाः सर्वे कार्याः प्रकृतिवेदिभिः । अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे सम्यक्त्वद्वयताडिताः ॥ ३९८ ॥

अनिवृत्तिकरणमें दोको बारहसे गुणे तो २४ होते हैं। एकको चारसे गुणनेपर ४ होते हैं । २४ को दो संयमसे गुणनेपर ४८ हुए और ४ को दो संयमसे गुणनेपर ८ हुए। दोनोंका जोड ५६ हुआ। सूक्ष्मसांपरायमें एक मोह है, संयम भी एक ही है । इसलिये एकसे एकको गुणनेपर भी एक ही रहता है।

इस दशवें गुणस्थानका भेद और सबका जोड आगे मूलकार बताते हैं। —

सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानमें सूक्ष्मसांपराय नामके एक संयमसे गुणाकार कर देना चाहिये। और प्रमत्तसे लेकर दशवें पर्यंतके सर्व गुणस्थानोंमें इन पदोंकी मिलानेपर संख्या तिहत्तरसौ त्रेपन (७३५३) होती है। ३९६ ।

अब आगे सम्यक्त्वके द्वारा इन मोहोदयोंको गुणस्थानोंमें गुणित करके दिखाते हैं। —

चौथेसे सातवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें औपशमिकादि तीनों ही सम्यक्त्व रहते हैं। इसलिये चौथे आदिके भेदोंको तीन सम्यक्त्वसे गुणित करना चाहिये। अपूर्वकरणसे लेकर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व नहीं रहता, इसलिये वहा दो सम्यक्त्वसे ही गुणना चाहिये। ३९७ ।

अनिवृत्तिकरणमें तथा सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें भी दो दो सम्यक्त्वभेदोंसे गुणित करके फिर सभी भेदोंको चौबीससे गुणित करना चाहिये । ३९८ ।

असंयतादिगुणचतुष्टये उदये ८।८।८।८। त्रिसम्यक्त्वाभ्यस्ताः २४।२४।२४।२४। अपूर्वे पाकाः ४। सम्यक्त्वद्वयाभ्यस्ताः ८। सर्वे चतुर्विंशतिगुणाः ५७६।५७६।५७६।५७६।१९२। एते मीलिताः २४९६। अनिवृत्तिसूक्ष्मयोः पाका १७। द्विदर्शनगुणाः ३४। सर्वे मीलिता –

त्रिंशदभ्यधिका ज्ञेयाः शतानां पञ्चविंशतिः। पाकभंगा विबोद्धव्याः सम्यक्त्व प्रति मोहने। २५३० ॥ ३९९ ॥

सद्दृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्के ताडितास्त्रिभि। चतुर्विंशतिविध्वस्ता कर्त्तव्या सकला बुधै ॥ ४०० ॥

गुणस्थानचतुष्टये पाकप्रकृतय ६०।५२।४४।४४। सम्यक्त्वत्रयगुणा १८०।१५६।१३२।१३२। अपूर्वे उदयप्रकृतय २०। दर्शनद्वयाभ्यस्ता ४०। सर्वाश्चतुर्विंशतिभगघ्नाः ४३२०।३७४४।३१६८।३१६८। ९६०। सर्वैक्ये १५३६०।

असयतसम्यक्त्व चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवें पर्यंत चार गुणस्थानोंमे उदयगत ८।८।८।८ हैं। ये तीन सम्यक्त्वभेदोंसे गुणित होनेपर २४।२४।२४।२४ होते है। अपूर्वमे उदय ४ सम्यक्त्व दोसे गुणित हो जानेपर ८ हो जाते है। ये सर्व चौवीससे गुण जानेपर क्रमसे ५७६।५७६।५७६।५७६ तथा १९२ हो जाते है। सबका जोड २४९६ हुआ। अनिवृत्तिकरणके तथा सूक्ष्मकषायके उदय १७ है। इन्हे दो सम्यक्त्वसे गुणनेपर ३४ होते है। सबका जोड आगे बताते हैं।— सम्यक्त्वसे गुणनेपर मोहमें सर्व भेद ये २५३० होते हैं। ३९९।

सम्यग्दृष्टि चौथेसे लेकर सातवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमे तीन सख्यासे गुणित करने पर और फिर चौवीससे चाहिये ॥ ४०० ॥

ने क्रमसे–६०।५२।४४।४४ है। इन्हे तीन सम्यक्त्वोंसे गुणनेपर क्रमसे—१८०। रणमें उदयप्रकृति २० है। दो सम्यक्त्वोंसे गुणने पर ४० होते है। समीको ४।३१६८।३१६८।९६० होते है। इन सर्वोका जोड १५३६० होता है।

अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे पाकप्रकृतयो बुधैः । सम्यक्त्वद्वितयाभ्यस्ताः कर्तव्या बुद्धिशालिभिः ॥ ४०१ ॥
अनिवृत्तिसूक्ष्मयोः पाकप्रकृतयः २९ । दर्शनद्वयगुणाः ५८ ।
अष्टादशाधिक ज्ञेय नुधैः शतचतुष्टयम् । तथा पचदश ज्ञेयाः सहस्रा मीलिते सति ॥ ४०२ ॥
१५४१८ ।
ये मोहनीय पदचभपाकत्रयोपयोगैः क्रमतः सलेश्यैः । निघ्नति निर्मूलितमोहनधास्ते यांति सद्योऽमितगत्यभीष्टम् ॥४०३॥

मोहपाकस्थानप्ररूपणा समाप्ता ।

गुणेषु मोहसत्त्वस्थानान्याह—

त्रीण्येक द्व क्रमात्पच सत्त्वे गुणचतुष्टये । त्रीणि स्युर्दश चत्वारि त्रीणि स्थानानि मोहने ॥४०४॥

अनिवृत्तिकरणम तथा सूक्ष्मकषायमे उदयप्रकृतियोंको दो सम्यक्त्वोंसे गुणित कर लेना चाहिये ॥ ४०१ ॥
अनिवृत्तिकरण तथा सूक्ष्मकषायकी उदयप्रकृति २९ है । सम्यक्त्व दोसे गुणित होने पर ५८ होजाते हैं ।
इन सबका जोड देनेपर सर्व सख्या पद्रह हजार चारसौ अठारह (१५४१८) होती है । ४०२ ।
इस प्रकार जो मोहनीयमे पदबध, उदयादि तीन, उपयोग तथा लेश्याओंके योगसे भेद होते हे उन्हे जो क्रमसे नष्ट करते हैं अथवा गुणित करके देखा करते हैं वे मोहके वधका नाश करके शीघ्रही अमितगति-अनुपमगति जो इष्ट मोक्षस्थान उसको प्राप्त होते हैं । ४०३ ।

इस प्रकार मोहकी उदयस्थानप्ररूपणा हुई ।

अब आगे मोहके सत्तास्थानोंको गुणस्थानोंमे लगाकर दिखाते हैं ।—
पहिले गुणस्थानमें मोहके सत्त्वस्थान तीन है । दूसरेमें एक है । तीसरे गुणस्थानमें दो स्थान हैं । फिर चौथेसे सातवे

१—मुद्रित पुस्तकमे ऐसा पाठ हे " इत्यमितगत्याचार्यवर्यप्रणीते पंचसग्रहे मोहपाकस्थानप्ररूपणा समाप्ता "

क्रमादेकादशगुणेषु—३ । २ । ५ । ५ । ५ । ५ । ३ । १० । ४ । ३ ।

अष्टसप्तषडग्रास्ति विंशतिः प्रथमे ततः । परे विंशतिरष्टाग्रा मिश्रे साष्टचतुर्युता ॥ ४०५ ॥

मिथ्यादृष्टौ २८ । २७ । २६ । सासने २८ । मिश्रे २८ । २४ ।

क्रमतोऽष्टचतुस्त्रिद्वियुक्ता सैका च विंशतिः । पंच स्थानानि जायते सत्त्वे गुणचतुष्टये ॥ ४०६ ॥

पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान पाच पाच है । इसके आगे आठवें एक गुणस्थानमें तीन सत्त्वस्थान है । फिर नौवें गुणस्थानमें दश सत्त्वस्थान है । आगेके दशवें गुणस्थानमें सत्त्वस्थान चार है । ग्यारहवें गुणस्थानमें तीन है । ४०४ ।

इस प्रकार पहिले ग्यारह गुणस्थानोंमें मोहके सत्त्वस्थान क्रमसे—३ । १ । २ । ५ । ५ । ५ । ५ । ३ । १० । ४ । ३ । है ।

प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उन उन सत्त्वस्थानोंकी प्रकृति कितनी कितनी है इस बातको आगे बताते है ।—

प्रथम गुणस्थानमें जो तीन स्थान बताये हैं वे आठ, सात तथा छह अधिक वीसके हैं । अर्थात् एक स्थान २८ प्रकृतिका है । दूसरा स्थान २७ का है । तीसरा स्थान २६ का है । इसके आगे जो दूसरा सासादन गुणस्थान है उसमें सत्त्वस्थान एक है और वह आठ अधिक वीस प्रकृतियोंका है । फिर आगे मिश्र अर्थात् तीसरे गुणस्थानमें दो सत्त्वस्थान हैं—एक आठ अधिक वीस प्रकृतिका अर्थात् २८ का है, दूसरा चार अधिक वीसका अर्थात् २४ का है । इस प्रकार पहिले तीन गुणस्थानवर्ती सत्त्वस्थानोंको दिखाया । ४०५ ।

मिथ्यादृष्टिमें—२८ । २७ । २६ । सासादनमें २८ । मिश्रमें— २८ । २४ ।

इसके आगे चौथे गुणस्थानसे सातवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें मोहके सत्त्वस्थान पाच पाच जो पूर्वमें बताये है उनकी प्रकृतिसंख्याको आगे दिखाते हैं ।—

पाच स्थानोंमेंसे एक स्थान आठ अधिक वीसका है अर्थात् २८ का है । दूसरा चार अधिक वीसका अर्थात् २४

चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमेषु चतुर्षु पञ्च २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ।
सैवाष्टचतुरेकाग्रा स्थानानां शमके त्रयम् । अपूर्वक्षपके सैका विंशतिः कथिता परम् ॥ ४०७ ॥
अपूर्वस्य शमके २८ । २४ । २१ । क्षपके २१ ।
सैवाष्टचतुरेकाग्रा सैकाग्रा नवमे दश । सत्रिद्व्येका क्रमात्पञ्च चत्वारस्त्रिद्वयो मता ॥ ४०८ ॥

का है। तीसरा स्थान तीन अधिक वीसका अर्थात् २३ का है। चौथा स्थान दो अधिक वीसका अर्थात् २२ का है। पाचवा सत्वस्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ का है। ४०६ ।

चौथे पाचवें छठे सातवें इन चार गुणस्थानोंमे जो मोहके पाच पाच सत्त्वस्थान बताये हैं उन पाचोंकी प्रकृतिसंख्या क्रमसे इस प्रकार है—२८ । २४ । २३ । २२ । २१ ।

अब आगे यह बताते हैं कि अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें तीन प्रकारके जो मोहके सत्वस्थान बताये थे उनमें प्रकृतिसंख्या कितनी कितनी है?

अपूर्वकरणसे लेकर उपशमक तथा क्षपक ऐसी दो श्रेणी मानी गई है। उनमेंसे शमक अथवा उपशमक श्रेणीके रहते सत्वस्थान तीन हैं। वे इस प्रकार हैं—एक आठ अधिक वीसका, दूसरा चार अधिक वीसका, तीसरा एक अधिक वीसका। यहापर 'सा एव' मे साका अर्थ पूर्वानुवृत्त वीस है। इसमें जो क्षपक श्रेणी दूसरी है उसके रहते एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृतिका एक ही सत्त्वस्थान बताया है। यह स्थान उपशमक श्रेणीके तीन स्थानोंमे गर्भित होजाता है। इसलिये अपूर्वकरण गुणस्थानके सर्व सत्त्वस्थान भी तीन ही बताये जाते हैं ॥ ४०७ ॥

अपूर्वकरणकी उपशम श्रेणीमे २८ का, २४ का, २१ का ये तीन स्थान हैं। क्षपक श्रेणीमें एक २१ का ही स्थान है।

अब नौवें गुणस्थानमें जो मोहसत्ताके दश स्थान बताये हैं उन्हे आगे दिखाते हैं।—

इस नौवें गुणस्थानमे भी दो श्रेणी हैं एक उपशम श्रेणी, दूसरी क्षपक श्रेणी। उपशम श्रेणीमे पहिलेसे जो तीन स्थान

चले आते है वे ही यहाकी उपशम श्रेणीमे भी समझने चाहिये और आगे ग्यारहवे गुणस्थान पर्यंत उपशमक श्रेणी है सो वहापर्यंत
भी ये तीनो स्थान रहते है। अर्थात् एक स्थान यहापर आठ अधिक वीस प्रकृतियोंका है। दूसरा स्थान चार अधिक वीस प्रकृ-
तियोंका है। और तीसरा स्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृतियोंका है। ये तीन स्थान उपशमक श्रेणी सवधी हुए।
अब क्षपक सवधी स्थानोंको जुदे गिनाते है। ये स्थान सर्व आठ हैं। उनमेंसे प्रथम स्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृति-
योंका है। यह स्थान उपशम श्रेणी सवधी स्थानके समान रहनेसे पुनरुक्त है इसलिये इसे जुदा स्थान न गिनाकर आगेके सात
स्थानोंको ही जुदा गिनाते है। अत एव इस गुणस्थानके सर्व स्थान दश ही होते हैं। वे इस प्रकार है।—

एक स्थान तीन सहित दशका अर्थात् १३ का है। दूसरा एक स्थान दो अधिक दशका अर्थात् १२ का है। तीसरा
एक स्थान एक अधिक दशका अर्थात् ग्यारहका है। चौथे एक स्थानमें पाच प्रकृति मानी गई है। पाचवा एक स्थान ऐसा है,
जिसमें चार प्रकृति रह जाती है। फिर आगेका छट्ठा स्थान तीन प्रकृतिवाला है। और अतका सातवा अपुनरुक्त एक स्थान दो
प्रकृतिवाला है। इसका तात्पर्य ऐसा है कि चारित्रमोहकी पच्चीस प्रकृतियोंमेंसे अनतानुवधी चार प्रकृतियोंका चौथेसे सातवें
गुणस्थानके वीच ही कहींपर क्षय हो जाता है और सम्यग्दर्शन क्षायिक बन जाता है। वही जीव क्षपक श्रेणीपर चढ सकता है।
और आठवें गुणस्थानमें किसी नवीन चारित्रमोहका नाश होता नहीं है इसलिये अनिवृत्तिकरणके आरभमे वे इक्कीस प्रकृति ही पाई
जाती है। फिर आगे चलकर नौवें गुणस्थानवाला जीव अप्रत्याख्यानावरणकी चार तथा प्रत्याख्यानावरणकी चार इन आठ
प्रकृतियोंका एकदम नाश कर देता है उस अवस्थामें १३ प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान रह जाता है।

ये तेरह प्रकृति इस प्रकार समझनी चाहिये कि नौ नोकषाय तथा चार सज्वलन। फिर वही जीव कुछ आगे चलकर
इसी नौवें गुणस्थानमें नपुसकवेदका नाश करता है तब उसके बारह प्रकृतिका एक सत्त्वस्थान बन जाता है। इसके आगे जब
स्त्रीवेद प्रकृतिका भी वह नाश कर देता है तब सत्त्वस्थान ग्यारह प्रकृतिका हो जाता है। इसके आगे चलकर छह नोकषाय
प्रकृतियोंका नाश करके जीव पाच प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानवाला बन जाता है। इस समय इस जीवमें पाच प्रकृति इस प्रकार रहीं

अनिवृत्ते शमके २८ । २४ । २१ । अनिवृत्ते क्षपके २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ ।
सूक्ष्मेऽष्टचतुरेकाग्रा विंशतिं क्रमतो विदुः । एकं च क्षपके तस्य त्रयं शान्ते पुरातनम् ॥ ४०९ ॥

कि एक पुरुषवेद और चार सज्वलन कषाय । आगे चलकर उस एक पुरुषवेदका नाश होकर चार सज्वलनकी सत्तावाला एक स्थान वन जाता है । फिर क्रमसे क्रोधका, मानका, नाश होकर तीन प्रकृतियोंका एक सत्त्वस्थान तथा दो प्रकृतियोका एक सत्त्वस्थान रह जाता है । ये नौवें गुणस्थानवर्तीके सात अपुनरक्त स्थान है ।

यहापर पहिला ' सैव ' शब्द है उसका अर्थ वीस है, उसका सबंध उपशम श्रेणीके स्थान गिनाते समय रहता है । फिर दूसरा सा एकाग्रा ' ऐसा जो शब्द है उसमें भी ' सा ' शब्दका अर्थ वीस ही है । यह शब्द क्षपकश्रेणीके सत्त्वस्थान गिनाते समय प्रथम स्थानकेलिये आया है ॥ ४०८ ॥

अनिवृत्तिकरणकी उपशमक अवस्थामे सत्त्वस्थान तीन—२८ । २४ । २१ का । अनिवृत्तिकरणकी क्षपक अवस्थामें सत्त्वस्थान क्रमसे—२१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ ।

अव आगे दशवे गुणस्थानकी दोनो श्रेणियोंमें सत्त्वस्थानोंको और ग्यारहवें गुणस्थानके सत्त्वस्थानोंको वताते है । —

सूक्ष्मकषाय दशवे गुणस्थानमें उपशम श्रेणी होनेपर सत्त्वस्थान पूर्वके समान तीन होते हैं, एक आठ अधिक वीसका अर्थात् २४ का, दूसरा चार अधिक वीसका अर्थात् २८ का, तीसरा एक अधिक वीसका अर्थात् इक्कीसका ॥ यदि इस सूक्ष्म-कषायमे क्षपक श्रेणी हो तो एक प्रकृतिका सत्त्वरूप एक सत्त्वस्थान होता है । एव उपशान्तकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें श्रेणी एक उपशमक ही रहती है इसलिये ग्यारहवें गुणस्थानमें पहिलेकेसे तीन ही सत्त्वस्थान हैं— एक अट्ठाईसका, दूसरा चौवीसका, तीसरा इक्कीसका ।

सूक्ष्मस्य शमके २८ । २४ । २१ । क्षपके १ । शांते २८ । २४ । २१ ।

इत्थ मोहसत्ताप्ररूपणा समाप्ता ।

भावार्थ—दशवें गुणस्थानसे पहिले नौवें गुणस्थानमें अंतमें क्षपक श्रेणीवालेके दोका सत्वस्थान बताया था, उस समय सज्वलन माया लोभ ये दो प्रकृति शेष रही थी । उनमेंसे एक माया प्रकृतिका नौवें गुणस्थानके अंतमे नाश हो जाता है इसलिये दशवेंके आरंभसे ही सत्त्वस्थान एकका रह जाता है । नौवें गुणस्थानके अंतमें जब कि मायाका नाश हो जाता है वह समय दशवें गुणस्थानका आदि समय माना जाता है । इसीलिये नौवें गुणस्थानमें दोका ही सत्त्वस्थान माना गया है । और इस बची हुई एक प्रकृतिका सत्त्वाभाव जब हो जाता है वह बारहवा गुणस्थान माना गया है इसलिये एकके सत्त्वस्थानकी गिनती दशवें गुणस्थानमें ही की जाती है । ग्यारहवा गुणस्थान दशवेंके ऊपर माना गया है और बादमें बारहवा गुणस्थान लगता है। परतु उपशमक जीव मोहके उदयका उपशम करता हुआ जब पूर्ण उपशम कर देता है तब दशवेंसे ऊपर कोई एक स्थान होना चाहिये और जो मोहका क्षय करता हुआ पूर्ण क्षय कर देता है तब उसका भी दशवेंसे ऊपर कोई एक स्थान होना चाहिये । इस प्रकार दोनोंके स्थान दशवेंके ही ऊपर है तो भी उपशमक तथा क्षपकमें हीनाधिकता दिखानेकेलिये उपशमक को ग्यारहवां तथा क्षपकको बारहवा स्थान माना गया है ॥ ४०९ ॥

सूक्ष्मलोभकी उपशमक अवस्थामें सत्त्वस्थानकी प्रकृति—२८ । २४ । २१ । क्षपकमें सत्त्वस्थानकी प्रकृति १ स्थान भी १ ।

इस प्रकार मोहकर्मकी सत्ताप्ररूपणा समाप्त हुई ।

इस प्रकार मोह कर्मका बंधोदयसत्त्व प्रकरण समाप्त हुआ ।

बंधादित्रितय नाम्नो गुणानां दशके क्रमात् । पाकसत्त्वद्वय योज्यं परे तस्माच्चतुष्टये ॥ ४१०॥

अव आगे नामकर्मके वधोदयसत्त्व प्रकरणको कहते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानसे लेकर दशवें गुणस्थानपर्यंत दश गुणस्थानोंमें नामकर्मके वध उदय सत्त्व ये तीनो संभव हैं परतु दशवेंके आगे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमे उदय तथा सत्त्व ही है, वध नहीं है। भावार्थ, दशवेंके अतमें नामकर्मकी वधव्युच्छि त्त हो जाती है इसलिये ऊपरके गुणस्थानोंमें नवीन वध नहीं पाया जाता है। इसीलिये ऊपरके चारो गुणस्थानोंमे उदय तथा सत्त्वकी ही योजना वताई जायगी । ४१० ।

नामकर्मके वधोदयसत्त्वका प्रकरण इसी पाचवें परिच्छेदके साठिवें श्लोकसे लेकर विस्तारसे वताया गया है। वहापर ६१ वें श्लोकमे नामके वधस्थान सर्व आठ गिनाये हैं।-एक २३ प्रकृतिका, दूसरा २५ प्रकृतिका, तीसरा २६ प्रकृतिका, चौथा २८ प्रकृतिका, पांचवां २९ प्रकृतिका, छट्ठा ३० प्रकृतिका, सातवा ३१ प्रकृतिका, और आठवा एक प्रकृतिरूप। इस प्रकार व आठ वधस्थान हैं।

फिर इसी पाचवें परिच्छेदमें एकसौ वारहवें श्लोकमें नामके उदयस्थान गिनाये हैं। वे सर्वस्थान ग्यारह हैं। एक २१ प्रकृतिरूप है। दूसरा २४ प्रकृतिरूप हे । तीसरा २५ प्रकृतिरूप है । चौथा २६ प्रकृतिरूप है। पाचवां २७ प्रकृतिरूप है। छट्ठा स्थान २८ प्रकृतिरूप हे। सातवा स्थान २९ प्रकृतिरूप है। आठवां स्थान ३० प्रकृतिरूप है। नौवां स्थान ३१ प्रकृतिरूप है। दशवा स्थान ९ प्रकृतिरूप है। एव ग्यारहवा एक उदयस्थान ८ प्रकृतिरूप हे। इसके आगे फिर उदय स्थानोंका विशेप वर्णन समाप्त होजाने पर नामके सत्तास्थानोंका वर्णन २२१ वें श्लोकसे लेकर किया गया हे। २२१ वें श्लोकसे सत्ताके स्थान सर्व १३ वताये हैं। उनमेंसे पहिला ९३ प्रकृतिका, दूसरा ९२ प्रकृतिका, तीसरा ९१ प्रकृतिका, चौथा ९० का, पाचवा ८८ का, छट्ठा ८४ का, सातवा ८२ का, आठवा ८० का, नौवा ७९ का, दशवा ७८ का, ग्यारहवा ७७ का,

॥५७७

वधे पाके क्रमात्सत्त्वे स्युः पड् नव पडादिमे । शासने त्रीणि सप्तैकं द्वे त्रीणि द्वे च मिश्रके ॥ ४११ ॥
निर्व्रते त्र्यष्टचत्वारि द्विद्विचत्वारि पचमे । पष्ठे द्विपचचत्वारि चत्वार्येक चतुष्टयम् ॥ ४१२ ॥
सप्तमेऽपूर्वके पच ज्ञेयमेक चतुष्टयम् । एकमेक क्रमादष्ट गुणस्थानद्वये ततः ॥ ४१३ ॥

वारहवा १० का, और तेरहवा सत्त्वस्थान ९ प्रकृतिका है। इन सर्वोका भिन्न भिन्न गतियोंका आश्रय लेकर जो विशेष वर्णन तथा प्रकृतियोंका उल्लेख विस्तारसे किया है वह वहींपरसे देखलेना चहिये ।

अव गुणस्थानक्रमसे वधादि तीनोंकी स्थानसख्याको आगे दिखाते है । सबसे प्रथम आदिके तीन गुणस्थानोंकी वधादि त्रय सवधी स्थानसख्याओंको दिखाते है ।—

आदिम अर्थात् प्रथम गुणस्थानमें वधमें छह स्थान है, उदयमें नौ स्थान है और सत्तामें छह स्थान है ऐसा क्रमसे समझना । फिर इसी क्रमसे सासादनमें वधमें तीन स्थान, उदयमें सात स्थान और सत्तामे एक स्थान है । इसके आगे मिश्र गुणस्थानमें वधसवधी दो स्थान है, उदयसवधी तीन स्थान है और सत्तासवधी दो स्थान है । ४११ ।

अव आगेके दो श्लोकोंमें चौथेसे दशवें पर्यतके सात गुणस्थानोंमे वधादिकी स्थानसख्याओंको गिनाते है ।—

निर्व्रत अर्थात् असयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानमें वधके तीन स्थान, उदयके आठ स्थान तथा सत्ताके चार स्थान रहते है । पाचवें गुणस्थानमें वधके दो स्थान, उदयके दो स्थान और सत्ताके चार स्थान सभव है । छट्ठे गुणस्थानमे वधके दो स्थान, उदयके पाच स्थान तथा सत्ताके चार स्थान है। फिर सातवें गुणस्थानमें वधके चार स्थान हैं, उदयका एक स्थान है , सत्ताके चार स्थान हे । फिर अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमे वधके पाच स्थान, उदयका एक स्थान तथा सत्ताके चार स्थान होते है । इसके आगे नौवें तथा दशवें गुणस्थानमे वधका स्थान एक एक है, उदयका भी एक एक ही स्थान संभव है, और सत्त्वस्थान आठ आठ होते है । ४१२–४१३ ।

एक चत्वारि शांताख्ये क्षीणे चोदयसत्त्वयोः । त्रयोदशे द्विचत्वारि द्वे षट्कं च चतुर्दशे ॥ ४१४ ॥

बंध— ६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उ— ९	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
स— ६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

ग्यारहवेंसे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें बंध तो नामकर्मका है ही नहीं किंतु उदय तथा सत्ता रहती है सो उनकी स्थानसंख्याको आगे दिखाते हैं ।—

शांत अर्थात् उपशांतकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें एवं क्षीण अर्थात् क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानमें उदयसंबंधी स्थान एक एक ही है और सत्त्वस्थान चार चार संभव रहते हैं । फिर तेरहवें गुणस्थानमें उदयगत दो स्थान हैं तथा सत्तामें चार स्थान हैं । अंतके चौदहवें गुणस्थानमें उदयके दो स्थान हैं, सत्ताके छह स्थान हैं ऐसा क्रमसे समझना । ४१४ ।

नामके बंधादि त्रयका जो ऊपर वर्णन किया है । उसका यह आगे यंत्र देते हैं ।—

	मिथ्या	सासा.	मिश्र	अस	देश	प्रम	अप्र	अपू	अनि	सूक्ष्म.	उप	क्षीण	सयोग	अयोग
बंध	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उदय	९	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
सत्ता	६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

इस यंत्रमें पहिली पंक्तिमें चौदह ही गुणस्थानोंमें होनेवाले बंधस्थान क्रमसे गिनाये हैं । दूसरी पंक्तिमें चौदह गुणस्थान-गत क्रमसे उदयस्थान दिखाये हैं । नीचेकी तीसरी पंक्तिमें सत्त्वस्थानोंकी संख्या चौदह ही गुणस्थानवाली क्रमसे बता दीगई है ।

॥५७९॥

षडादितः समिथ्यात्वे बंधे पाके नवादितः । षट् स्थानान्यादितः सत्त्वे संति त्रिनवतिं विना ॥ ४१५ ॥

बंधे २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । पाके २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्त्वे ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

चतुस्त्रिद्विच्युता बंधे द्वात्रिंशत्सप्त शासने । सप्ताष्टाग्रे विना पाके विंशती नवति सति ॥ ४१६ ॥

उन स्थानोंको कैसे गिनें सो आगे बताते हैं ।—

मिथ्यात्ववाले पहिले गुणस्थानमें छह जो बंधमें स्थान बताये हैं वे आरंभसे छह लेने चाहिये । इसी प्रकार उदयमें जो मिथ्यात्वसंबंधी नौ स्थान बताये हैं वे भी आरंभसे ही नौ लेने चाहिये । इसी प्रकार जो मिथ्यात्ववालेकें सत्तामें छह स्थान बताये हैं वे भी आदिके ही लिये जाते हैं, परंतु सत्त्वस्थानोंमें आदिम स्थान तिरानवे प्रकृतिका है उसे इन छह स्थानोंमें नहीं लेना चाहिये । भावार्थ—तिरानवेको लेकर जो आरंभमें सात स्थान है वहां पर्यंत, तिरानवेके स्थानको छोड देनेसे छह स्थान होंगे । नामके बंधस्थान सर्व आठ हैं, उदयस्थान ग्यारह है और सत्त्वस्थान तेरह है । उन सबोंकी प्रकृतिसंख्या आदिका वर्णन आरंभमें यहींपर ऊपर करदिया है । उसपरसे आदिके स्थानोंको देख लेना चाहिये । बंधके आदिम छह स्थान—२३ प्रकृतिरूप, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिरूप क्रमसे है । उदयके नौ आदिम स्थान क्रमसे २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिरूप समझना । इसी प्रकार सत्ताके आद्य छह स्थान क्रमसे ९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—इस प्रकार हैं । सबसे पहिला ९३ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान यहां नहीं लिया गया है ॥ ४१५ ॥

अब आगे सासादन गुणस्थानके बंधोदयसत्त्वस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको गिनाते हैं ।—

सासादन गुणस्थानमें बंधसंबंधी तीन स्थान बताये हैं, उदयसंबंधी सात स्थान है, और सत्तासंबंधी एक स्थान है । वे इस प्रकार हैं । बत्तीस संख्यामेंसे चार तीन दो ये संख्याएं क्रमसे घटानेपर २८, २९, ३० ये तीन संख्याए निकल आती है । इतनी इतनी प्रकृतिरूप ही तीन बंधस्थान सासादनमें समझना । फिर आगे पाक अर्थात् उदयके स्थान यहां सात माने हैं

बंधे २८ । २९ । ३० । पाके । २१ । २४ । २५ । २६ । २९ । ३० । ३१ । सासनस्तीर्थकराहारकद्वय-सत्कर्मा न भवतीति ९० ।

मिश्रे साष्टनवा बंधे सैकादशदशोदये । सनवा विंशतिर्द्व्यग्रा नवतिः सा तथा सति ॥ ४१७ ॥

बंधे २८ । २९ । पाके २९ । ३० । ३१ । सत्त्वे ९२ । ९० ।

वे इस प्रकार कि, सात तथा आठ अधिक वीसके अर्थात् २७ और २८ प्रकृतिवाले दो स्थानोंको छोडकर शेप आदिके सात स्थान समझना । मिथ्यात्वमें उदयके नौ स्थान ऊपर वताये है । उन्हींमेंसे २७ का और २८ का—ऐसे दो स्थानोंको घटादेने पर शेप सात उदयस्थान निकल आते है । यहापर सत्तास्थान एक वताया है वह नवति अर्थात् नब्भे प्रकृतिवाला लेना चाहिये । ' सति ' अर्थात् सत्तामें नवतिका एक स्थान है । ४१६ ।

सासादनके बधमें २८ । २९ । ३०– तीन स्थान । उदयमें–२१ । २४ । २५ । २६ । २९ । ३० । ३१– ये सात स्थान । सत्तामें–९०- यह एक स्थान । क्योंकि सासादन जीव तीर्थंकरत्व और आहारक द्वय इन तीन प्रकृतियोंको सत्तामें नहीं रखता है । भावार्थ, जो जीव उक्त तीन प्रकृतियोंमेंसे किसीकी सत्ता रखता है वह सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है। और सर्व नामकर्मकी प्रकृति ९३ है, उनमेंसे ये आहारकादि तीन कम हो जानेसे ९० प्रकृतिका यहापर सत्त्वस्थान रह जाता है ।

अब मिश्र गुणस्थानमें बधोदयसत्त्वके जितने जितने स्थान वताये हैं उनकी प्रकृतिसख्याओंको आगे दिखाते है ।—

मिश्र गुणस्थानमें बधके स्थान दो है उनमेंसे एक स्थान आठ सहित वीसका अर्थात् २८ का है, दूसरा नव अधिक वीसका अर्थात् २९ का है । उदयमें तीन स्थान वताये है । उनमेंसे एक स्थान एकादशसहित वीसका अर्थात् ३१ का है, दूसरा दशसहित वीसका अर्थात् ३०का स्थान है, तीसरा स्थान नवसहित वीसका अर्थात् २९ का है । ये तीन स्थान हुए । यहा सत्त्वस्थान दो है । एक तो दो अधिक नब्भेका अर्थात् ९२ का है, दूसरा केवल ९० नब्भेका है । ४१७ ।

बंधमें स्थान दो—२८ । २९ । उदयमें तीन स्थान—२९ । ३० । ३१ । सत्त्वस्थान दो—९२ । ९० ।

चतुस्त्रिद्विच्युता बधे द्वात्रिंशदादितोऽव्रते । द्वितीयोनानि पाकेऽष्ट सत्त्वेऽस्त्याद्यं चतुष्टयम् ॥ ४१८ ॥

बधे २८ । २९ । ३० । पाके २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

नवाष्टसहिते बंधे विंशती पंचमे मते । त्रिंशत्सैका च सा पाके सचतुष्टयमादिमम् ॥ ४१९ ॥

अव चौथे अव्रत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें वधोदयसत्ताके स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको आगे दिखाते हैं ।–

अव्रत अर्थात् असयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानमें वंधगत स्थान तीन गिनाये हैं । उनमेंसे एक स्थान वत्तीसमेंसे चार घाटका अर्थात् २८ प्रकृतिका है, दूसरा स्थान तीन घाट वत्तीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है । तीसरा दो घाट वत्तीसका अर्थात् ३० प्रकृतिका है । नामके उदयस्थान सर्व ग्यारह हैं । उनमेसे असयत चौथे गुणस्थानमें आठ माने हैं । वे आठ आरभसे लेने चाहिये । उनमें आरभसे जो दूसरा स्थान २४ प्रकृतिका है उसे यहा छोड देना चाहिये । दूसरा स्थान छोड दिया जाय और अतके दो स्थान अपने आप छूट जाते हैं । इस प्रकार ग्यारह स्थानोंमेसे आठ स्थान शेप रह जाते हैं । इस प्रकार आदिके द्वितीयोन आठ स्थान उदयमें समझने चाहिये । सत्त्वस्थान चार वताये हैं वे आदिके चार लेने चाहिये । आदिके चार सत्त्वस्थान--९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का– ये हैं ॥ ४१८ ॥

वधमें यहापर तीन स्थान—२८ । २९ । ३० । उदयमें स्थान आठ–२१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्तामें स्थान चार–९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अव आगे पचम गुणस्थानमें वधोदयसत्त्वकी जुदी जुदी स्थानसख्या जो ऊपर गिनाई है उस प्रत्येक स्थानमें प्रकृति कितनी हैं सो वताते हैं ।—

पाचवें गुणस्थानमें वधस्थान दो है, उदयस्थान भी दो हैं और सत्वस्थान चार हैं । उनमेंसे वधस्थान दो इसप्रकार हैं– नौ सहित वीस प्रकृतियोंका एक और आठ सहित वीस प्रकृतियोंका दूसरा अर्थात् एक २९ प्रकृतिका, दूसरा २८ प्रकृतिका है । उदयस्थान दो इस प्रकार हैं कि--एक तीस प्रकृतिका है, दूसरा एक अधिक तीसका अर्थात् इकतीस (३१) का है ।

वधे २८ । २९ । पाके ३० । ३१ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

वधे साष्टनवा षष्ठे प्रथम सच्चतुष्टयम् । पचत्रिद्वयेकनिर्मुक्ता त्रिंशत्सा च मतोदये ॥ ४२० ॥

वधे २८ । २९ । पाके २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

सत्त्वस्थान चार है वे आदिके चार-पहिला ९३ का, दूसरा ९२ का, तीसरा ९१ का, चौथा ९० प्रकृतिका-इस प्रकार है ।४१९।

वधमें दो स्थान--२८ का । २९ का । उदयमें दो स्थान-३० प्रकृतिका, ३१ प्रकृतिका ऐसे दो । सत्त्वस्थान चार --९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अब आगे छट्ठे गुणस्थानके वधोदयसत्त्वकी स्थानसख्याओंमें प्रकृतिसख्याओंको गिनाते हैं ।——

छट्ठे गुणस्थानमें वधस्थानमें वधस्थान दो कहे हैं, उदयस्थान पाच वताये हैं । उनमेंसे वधस्थानोंकी प्रकृति इस प्रकार है-एक स्थान आठ सहित वीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका है । दूसरा एक स्थान नौ अधिक वीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है । यहापर वीसका वाचक शब्द उपरसे आता है । उदयमें स्थान पाच हैं उनकी जुदी जुदी प्रकृतिसंख्या इस प्रकार है-पाच घाट तीसका अर्थात् २५ प्रकृतिका एक स्थान है । दूसरा एक स्थान तीन घाट तीसका अर्थात् २७ प्रकृतिका है । तीसरा स्थान दो घाट तीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका है । चौथा एक स्थान एक घाट तीसका अर्थात २९ प्रकृतिका है । पाचवा एक स्थान केवल तीस प्रकृतिरूप है । इस प्रकार ये पाच स्थान उदयसवधी हुए । सत्त्व-स्थान चार वताये हैं वे प्रथमके ही चार लेलेने चाहिये । अर्थात ९३ प्रकृतिका, ९२ प्रकृतिका, ९१ प्रकृतिका और ९० प्रकृतिका ऐसे चार सत्स्थान है । ४२० ।

वधमें दो--२८ । २९ । उदयमें पाच--२५ । २७ । २८ । २९ । ३० । सत्तामें चार स्थान--९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

॥५८३॥

चतुस्त्रिद्व्येकसत्यक्ता बंधे द्वात्रिंशदीरिता । उदये सप्तमे त्रिंशदादिमं सच्चतुष्टयम् ॥ ४२१ ॥

बंधे २८ । २९ । ३० । ३१ । पाके ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

शमके क्षपकेऽपूर्वे बंधेऽन्त्यस्थानपञ्चकम् । उदये जायते त्रिंशत्पूर्वं सत्त्वे चतुष्टयम् ॥ ४२२ ॥

बंधे २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । पाके ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अब सातवें गुणस्थानके बंधउदयसत्त्वस्थानसंख्याओंकी प्रकृतिसंख्याको जुदी जुदी दिखाते हैं —

सातवें गुणस्थानमें बंधस्थान चार बताये हैं, उदयस्थान एक, और सत्तास्थान चार हैं । उनमेंसे बंधस्थान जो चार हैं वे इस प्रकार हैं ।—चार घाट बत्तीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका एक स्थान है । दूसरा एक स्थान तीन घाट बत्तीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है । तीसरा एक स्थान दो घाट बत्तीसका अर्थात् ३० प्रकृतिका है । चौथा एक बंधस्थान एक घाट बत्तीसका अर्थात् ३१ प्रकृतिका है । उदयस्थान एक है, वह ३० प्रकृतिका है । सत्त्वस्थान चार हैं वे छट्ठे गुणस्थानके सत्त्वस्थानोंके समान ही आदिके चार हैं । ९३ का, ९२ का, ९१ का और ९० प्रकृतिका । ४२१ ॥

सातवें गुणस्थनमें बंधस्थान चार २८।२९।३०।३१। उदयस्थान एक ३०। सत्त्वस्थान चार ९३ प्रकृतिका ९२ का ९१ का, ९० का ।

अब अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानके बंधोदयसत्त्वस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको आगे दिखाते हैं ।—

अपूर्वकरण गुणस्थानसे लेकर दो श्रेणी संभव हैं, एक उपशमक श्रेणी, दूसरी क्षपक श्रेणी । इन दोनो ही श्रेणियोंकी अपेक्षासे अपूर्वकरणमें बंधोदयसत्त्वस्थान एकसे बताये हैं । अर्थात् दोनो ही श्रेणियोंमें बंधस्थान अंतके पांच बताये हैं । उदयस्थान एक है । सत्त्वस्थान चार हैं । उदयस्थान एक है वह ३० प्रकृतिका है । सत्त्वस्थान आदिके चार हैं । ४२२ ।

बंधस्थान अंतिम पाच । उनकी प्रकृतिसंख्या क्रमसे २८।२९।३०।३१।१। उदयस्थानमें ३० प्रकृतिका एक स्थान । सत्तामें स्थान पूर्वकी भाति आदिके चार ९३ प्रकृतिका । ९२ का । ९१ का । ९० का ।

सप्तमेऽन्त्यक्षणेऽपूर्वो नवमो दशमस्त्रय । बध्नंत्येकं यश शेषाश्चत्वार सत्यबंधका ॥ ४२३ ॥
१ । १ । १ । ० । ० । ० । ० ।

अब आगे शेष गुणस्थानोंमें प्रथम केवल बंधस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याको तथा बंधकी योग्यता अयोग्यताको दिखाते हैं।

आठवें गुणस्थानके सात भाग कल्पित किये हैं उनमेंसे छट्ठे भागपर्यंत नामकर्मकी छट्ठे गुणस्थानकी बंधच्छिन्न प्रकृतियोंके सिवाय कोई अधिक प्रकृति बंधमें घटती नहीं है। किंतु छट्ठे भागके अंतमें नामकी तीस प्रकृति बंधव्युच्छिन्न होती हैं इसलिये आठवें गुणस्थानके अंतिमक्षण--सातवें भागमें और नौवें दशवेंमें इन तीन गुणस्थानवर्ती जीव नामकर्मकी प्रकृतियोंमें केवल एक यशःकीर्ति प्रकृतिको बांधते हैं और ग्यारहवेंसे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानवाले नामकर्मकी किसी भी प्रकृतिको नहीं बांधते- वे चारों अबंधक स्थान हैं। ४२३।

भावार्थ— बंधव्युच्छित्ति आदि विशेष विशेष कार्य आठवें गुणस्थानके बीच बीचमें होते हैं इसलिये उन कार्योंमें एकसे दूसरा अमुक कार्य कितना अधिक आगे है—यह बात समझमें आनेकेलिये आठवें गुणस्थानके सात अन्तर्भाग करदिये हैं। उन सात भागोंमेसे अंतिम जो सातवा भाग है उसके अंतिम समयसे नामकर्मकी केवल एक यशःकीर्ति प्रकृतिका बंध होना चालू रहजाता है। नामकर्मकी शेष सर्व प्रकृति यहां सातवें भागके अंतसे लेकर बंध होनेसे रुक जाती है। कर्मप्रकृति बंधस्तव नामके तीसरे अधिकारके ३० वें श्लोकमें बताया है कि अपूर्वकरणके छट्ठे भागमें नामकी तीस प्रकृतियोंकी बंधसे व्युच्छित्ति होती है। उसका अर्थ यह है कि सातवें भागमें उन तीसका बंध होना रुक जाता है। छट्ठे भाग तक नामकर्मकी यशःकीर्ति सहित ३१ प्रकृतियोंका बंध चालू था। इसीलिये आठवें गुणस्थानके अंतमें केवल एक यशःकीर्तिका बंध ही चालू रह जाता है।

अप्रमादित्रये शाते क्षीणे त्रिंशन्मतोदये । त्रिंशत्सैका च सा योगयुक्ते योगे नवाष्ट च ॥ ४२४ ॥

अपूर्वादिषु पंचसु पाके ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । सयोगे उदये ३० । ३१ । अयोगे उदये ९ । ८ ।

अब आगे अपूर्वकरणादि ऊपरके गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको दिखाते हैं ।—

आठवेंसे दशवें पर्यंतके तीन गुणस्थानोंमें तथा उपशातकषाय ग्यारहवेंमें, क्षीणकषाय बारहवेंमें उदयस्थान एक ही प्रकारका है । उसकी प्रकृतिसंख्या तीस है । आगे योगयुक्त अर्थात् तेरहवें गुणस्थानमें उदयस्थान दो हैं, उनमेंसे एक तीस प्रकृतिका है, दूसरा एक अधिक तीसका अर्थात् ३१ प्रकृतिरूप स्थान है । इसके आगे अयोग चौदहवें गुणस्थानमें एक उदयस्थान ९ का है, दूसरा स्थान ८ प्रकृतिका है ॥ ४२४ ॥

अपूर्वकरणादि पाच गुणस्थानोंमे उदयस्थानोंमें एक–३० का, ३० का, ३० का, ३० का, ३० का । सयोग केवलीमें उदयस्थान दो–३० का, ३१ का । अयोगकेवलीमें उदयस्थान दो–९ का, ८ का ।

अब आठवें गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सर्व गुणस्थानोंमे सत्त्वस्थान जितने जितने संभव है उनमें सत्ताकी प्रकृतिसंख्याओंको क्रमसे बताते हैं ।—

उपशम श्रेणी वालोंमे जो मोहका उपशम करनेकेलिये प्रयत्न कर रहे हैं किंतु जिनके मोहका पूर्ण उपशम नहीं होपाया है ऐसोंको उपशमक कहा है । ये उपशमक तीन गुणस्थानवाले माने गये हैं, एक अपूर्वकरण आठवें गुणस्थान वाले उपशमक, दूसरे अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थान वाले उपशमक, तीसरे सूक्ष्मकषाय नामके दशम गुणस्थान वाले उपशमक । शमक भी उपशमकोंको कहते हैं । जो दशवें गुणस्थान पर्यंत उपशमक होकर ऊपर चढने लगते हैं वे मोहका दशवें गुणस्थानके अंतमें पूर्ण उपशम कर चुकते हैं । उस अवस्थाको उपशात अथवा शात अथवा शातमोह अथवा शातकषाय कहते हैं । यह ग्यारहवा गुणस्थान है । इस प्रकार उपशम श्रेणीमें अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानसे लेकर दशवें पर्यंत तीन गुणस्थान उपशमक और एक ग्यारहवा गुणस्थान उपशातकषाय —इन उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमे, और क्षपकश्रेणीयुक्त जो चार गुणस्थान हैं उनमेंसे संपूर्ण अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें,

शमकत्रितये शाते क्षपकाणामपूर्वके । पोडशप्रकृतिध्वंसमकुर्वत्यनिवृत्तिके ॥ ४२५ ॥
चतुष्क प्रथमं सत्त्वे परतोऽतः क्षणाष्टके । नवमे दशमे क्षीणे सयोगे योगवर्जित ॥ ४२६ ॥

तथा सोलह प्रकृतियोंका जवतक ध्वस अथवा व्युच्छेद नहीं हुआ ऐसे प्रथमभागरूप अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें—इन छह स्थानोंमें मोहके सत्त्वस्थान आदिके चार होते हे । मनसे पहिला एक सत्त्वस्थान ९३ प्रकृतिका, दूसरा ९२ प्रकृतिका, तीसरा ९१ प्रकृतिका, चौथा ९० प्रकृतिका ।

भावार्थः—नौवें गुणस्थानमें प्रकृतिध्वसरूप कार्य नौ वार जुदी जुदी प्रकृतियोंका होता है इसलिये इस नौवें गुणस्थानके नौ भाग ही माने गये हैं । उन नौ भागोंमेसे प्रत्येक भागमें क्रमसे कौन कौनसी प्रकृतियोंका विच्छेद होता है इस वातको इसी ग्रथके 'कर्म प्रकृति वधस्तव' नामके तीसरे परिच्छेदके ६२ वें श्लोकसे लेकर किया है वहापर नौवेंके सर्व भागोंमे मिलकर ३६ प्रकृतियोंका विच्छेद होना बताया है । वहींपर प्रथम भागके अतमें सोलह प्रकृतियोंका विच्छेद होता है । वे सोलह प्रकृति गोमटसारमे इस प्रकार गिनाई हे ।—

णिरयतिरिक्खदु वियल थीणतिगुज्जोव ताव एइंदी । साहरणसुहुमथावर सोलह मज्झिमकसायट्ठ ॥ ३३८ ॥

निरयतिर्यग्द्वि विकलस्त्यानत्रिकमुद्योतातपैकेन्द्रियम् । साधारणसूक्ष्मस्थावरं पोडश मध्यमकषायाष्टौ ॥

अर्थात् अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागके अतमे नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी ये दो प्रकृति, तिर्यचगति तिर्यच गत्यानुपूर्वी ये दो प्रकृति, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा प्रकृति, उद्योत, आतप, एकेंद्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर— इन सोलह प्रकृतियोंका सत्तामेंसे विच्छेद होते ही अनिवृत्तिकरणका दूसरा भाग लग जाता है । इसलिये इन सोलह प्रकृतियोंका ध्वंस जबतक नहीं हुआ है तबतकके भागको प्रथम भाग माना जाता है ।

इस प्रथम भागके आगे फिर भी आठ क्षणभाग अथवा समयविभाग अनिवृत्तिकरणमें और हैं । उस क्षणाष्टकरूप आगेके अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानागमें, तथा दशवें गुणस्थानमें, क्षीणकषाय वारहवें गुणस्थानमें, सयोग केवली तरहवें

चतुष्टयमशीत्यादि निर्योगांत्यक्षणे परम् । ज्ञेया नव दश प्राज्ञैरिति नाम प्ररूपितम् ॥ ४२७ ॥

तत्रोपशमश्रेण्यामपूर्वादीनां चतुर्णां क्षपकाणामपूर्वेऽनिवृत्तिप्रथमनवांशे च सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । अनिवृत्तिक्षपकशेषनवांशेष्वष्टसु सूक्ष्मक्षीणसयोगनिर्योगोपातिमक्षणेषु च सत्त्वे ८० । ७९ । ७८ । ७७ । निर्योगांत्यक्षणे १० । ९

एवं नामप्ररूपणा समाप्ता ।

मार्गणां प्रति बंधादित्रयं कथ्यते—

गुणस्थानमें, एवं अत्य क्षणको छोडकर शेष सर्वांश योगवर्जित चौदहवें गुणस्थानमें अस्सी आदि प्रकृतियोंके चार सत्त्वस्थान मिलते है । ८० का, ७९ का, ७८ का, ७७ का— ये वे चार स्थान हैं । फिर निर्योग अर्थात् चौदहवा गुणस्थान उसके अत्य समयमे नौ तथा दश प्रकृतिवाले दो सत्त्वस्थान रहते है ।

इस प्रकार नामप्रकृतियोंका गुणस्थानोंमें निरूपण किया । ४२५-४२७ ।

उपशम श्रेणीके चारो गुणस्थानोंमे, क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण गुणस्थानमें तथा अनिवृत्तिकरणके पहिले एक नवमाशमें सत्त्वस्थान चार-९३ । ९२ । ९१ । ९० । फिर आगे क्षपक अनिवृत्तिकरणके शेष आठ नवाशोंमें, तथा क्षपक सूक्ष्मकषाय दशवेंमें, क्षीणकषाय बारहवेंमे, सयोगमें, निर्योगके उपातिम क्षणपर्यंतमें सत्त्वस्थान चार—८० । ७९ । ७८ । ७७ । इसके आगे निर्योग अर्थात् अयोगकेवलीके अत्य क्षणमें सत्त्वस्थान दो—१० । ९ ।

इस प्रकार गुणस्थानोंमे नामप्ररूपणा हुई ।

अब गुणस्थानोंमे नामकर्मके बंधादित्रयके स्थानोंको तथा प्रकृतिसख्याओंको बता कर मार्गणाओंमे बंधोदयसत्त्वके स्थानोंको तथा उन स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको क्रमसे बतानेवाले है । सबसे प्रथम मार्गणाओंमें प्रथम मार्गणा गति मार्गणा है । उसके उत्तर भेदोंमें बंधादित्रयके स्थानोंको दिखाते है ।—

॥५८८॥

बंधे पाके सत्त्वे द्वे पच त्रीणि सति नरकेषु । षट् नव पच त्रितये सति स्थानानि तिर्यक्षु ॥ ४२८ ॥
अष्ट दश द्वादश च त्रितये स्थानानि सति मानुष्ये । चत्वारि पच चत्वारि त्रिदिवे तत्र जायते ॥ ४२९ ॥

बं.	२	६	८	४
उ.	५	९	१०	५
स	३	५	१२	४

नवदशसहिता बधे नरके विंशतिरुदाहृता पाके । एपैकपचसप्ताष्टनवागा जायते तत्र ॥ ४३० ॥

नरकोंमें बधके स्थान दो है, उदयके स्थान पाच है, और सत्त्वके स्थान तीन है । तिर्यचोंमे क्रमसे बधादि त्रयमेंसे बधके छह स्थान है, उदयके नौ स्थान है, सत्ताके पाच स्थान है । इसी प्रकार क्रमप्राप्त मनुष्योंमे बंधादित्रयसंबधी स्थानोंको इस प्रकार समझो कि, बधमें आठ स्थान, उदयमे दश स्थान तथा सत्तामें बारह स्थान है । एव देव गतिमें बंधादित्रयमेंसे बंधके चार स्थान है, उदयके पाच स्थान हैं, और सत्ताके चार स्थान रहते हैं । ४२८-४२९ ।

चारो गतियोंमें बधादित्रयके स्थानोंकी सख्या दिखानेवाला यत्र इस प्रकार है ।—

	नरकमें	तिर्यचमें	मनुष्यमें	देवमें
बध—	२	६	८	४
उ०—	५	९	१०	५
सत्ता—	३	५	१२	४

अब आगे ऊपर बताये हुए स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको जुदी जुदी गिनाते है । उनमेंसे प्रथम नरकगतिके सर्व स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको दिखाते है ।—

नरकमें बधसबंधी स्थान दो बताये हैं सो एक तो स्थान नौ सहित वीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है, दूसरा दश

एकद्वित्रिपरित्यक्ता तत्र त्रिनवतिः मति । उक्त्वा बंधादिकं श्वभ्रे तिर्यक्षु कथयाम्यत. ॥ ४३१ ॥

श्वभ्रे बंधे २९ । ३० । उदये २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्त्वे ९२ । ९१ । ९० ।

आद्यानि तत्र षड् बंधे नवाद्यान्युदये विदुः । त्र्येकाग्रे नवती सत्त्वे सप्ताद्यानि विना क्रमात् ॥ ४३२ ॥

सहित बीसका अर्थात ३० प्रकृतिकों स्थान है । नरकमे उदयस्थान पाच हैं । वे इस प्रकार हैं — एक उदयस्थान एक अधिक बीसका अर्थात् २१ प्रकृतिका है । दूसरा पाच अधिक बीसका अर्थात् २५ प्रकृतिका स्थान है । तीसरा सात अधिक बीसका अर्थात २७ प्रकृतिका स्थान है । चौथा आठ अधिक बीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका स्थान है । पाचवा नौ अधिक बीसका 'अर्थात् २९ प्रकृतिका स्थान है । ये पाच स्थान उदयमे हैं । सत्तामे यहा तीन स्थान बताये है । वे इस प्रकार है तिरानवेमेसे क्रमसे एक दो तीन सख्याको घटा दिया जाय तो ९२, ९१, ९० रहते हैं । सत्ताकी तीन स्थानोकी प्रकृति भी इतनी इतनी ही हैं ।

नरकमें बधकी प्रकृति २९ । ३० । उदयकी प्रकृति–२१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्ताकी प्रकृति–९२ । ९१ । ९० ।

इस प्रकार नरकमे बधादित्रयके स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको बताकर अब आगे तिर्यचोंमे बतानेवाले है । ४३१ ।

' तत्र ' अर्थात् तिर्यच गतिमे बधादित्रयके स्थानोंकी प्रकृति इस प्रकार है ।— बधमें आदिके छह स्थान हैं । उदयमें आदिके नौ स्थान है । सत्तास्थान आदिके जो सात है उनमेंसे, यहापर एक तीन अधिक नब्बेका अर्थात् ९३ का, और एक एक अधिक नब्बेका अर्थात् ९१ प्रकृतिका–ये दो स्थान नहीं है । इसलिये इन दो स्थानोंको छोड देना चाहिये । तब आदिसे सातवें सत्तास्थान पर्यंत पाच स्थान शेष रह जाते है । ये ही पाच स्थान तिर्यच गतिमे सत्त्वस्थान है । ४३२ ।

तिर्यक्षु बन्धे २३। २५। २६। २८। २९। ३०। पाके २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। तीर्थकृत्सत्कर्मा तिर्यक्षु न यातीति तेन विना सत्वे ९२। ९०। ८८। ८४। ८२।

सर्वे बधे नृत्वे क्रमाच्चतुर्विंशतिं विना पाकाः। सत्वे द्व्यशीत्यूनस्थानान्यखिलानि जायते॥ ४३३॥

तिर्यचोंमें बंधस्थान—२३। २५। २६। २८। २९। ३०। उदयस्थान—२१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। सत्तास्थान—९२। ९०। ८८। ८४। ८२।—ये पाच हैं। तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता रखनेवाला जीव तिर्यचोंमें नहीं जनमता है इसलिये ९३ का और ९१ का ये दो स्थान तिर्यचोंमें नहीं हैं। ९३ में का और ९१ ने का ये दोनों स्थान तीर्थंकर प्रकृतिके रहनेसे ही होते हैं।

अब मनुष्यगतिके जुदे जुदे स्थानोंकी प्रकृतियोंको आगे दिखाते हैं।—

'नृत्व' अर्थात मनुष्यावस्था। इस मनुष्यावस्थामें, बंधके स्थान सर्व आठ हैं, वे आठ ही बताये हैं। उदयस्थान सर्व ग्यारह हैं उनमेंसे मनुष्यगतिमें दश उदयस्थान बताये हैं। यहापर एक चौवीस प्रकृतिवाला उदयस्थान नहीं रहता इसलिये नौमेंसे इस चौवीसवें स्थानको घटा देना चाहिये। शेष आठ स्थान यहा उदयमें रहते हैं। भावार्थ— २४ प्रकृतिका जो उदयस्थान है वह केवल तिर्यच गतिमें ही मिलता है, अन्य तीनो गतियोंमें नहीं मिलता।

मनुष्यगतिमें सत्त्वस्थान १२ हैं। सर्व सत्त्वस्थान १३ हैं। उनमेंसे ८२ प्रकृतिवाला एक सातवा सत्त्वस्थान मनुष्य गतिमें नहीं रहता है इसलिये तेरह स्थानोंमेंसे एक स्थान घट जाता है, शेष बारह स्थान रहजाते हैं। इसके सत्त्वके प्रकरणमें भी नामका व्यासी प्रकृतिवाला सत्त्वस्थान तिर्यचोंमें ही रहना बताया है मनुष्योंमें यह स्थान नहीं रहता है। पहिले २३० वे श्लोकमें बताया है कि "निद्व्यशीतीनि सर्वाणि स्थानानि नरजन्मसु" अर्थात् मनुष्यगतिवालोंमे व्यासीके स्थानको छोडकर शेष सर्व सत्त्वस्थान है। २२३ वें श्लोकके स्पष्टीकरणमें भी व्यासीका स्थान तिर्यचोंमें ही बताया है। ४३३।

॥५९१॥

नृत्वे वधा २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । पाकाः २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । सन्ति ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

वधे पचपडशा नवदशयुक्ता च विंशतिः स्वर्गे । सा सैकपचमप्ताष्टनवा पाके विनिर्दिष्टा ॥ ४३४ ॥

सत्त्वे प्रथमचतुष्क वधादित्रितयमुक्तमिति नाके । इदमिन्द्रियेष्विदानीं कथयामि यथागम ज्ञात्वा ॥ ४३५ ॥

मनुष्यगतिमें वधस्थान आठ, उनमे क्रमसे प्रकृति २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । उदयस्थान दश, उनमें क्रमसे प्रकृति २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । सत्तामें स्थान सर्व यहा वारह, उनमे क्रमसे प्रकृति ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

अव देवगतिके वधादिस्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको क्रमसे वताते है ।—

देवगतिमें वधस्थान सर्व चार है । उनमेसे पाच अधिक वीस अर्थात् २५ प्रकृति एक स्थानमे हैं । दूसरे स्थानमें छह अधिक वीस अर्थात् २६ प्रकृति है। तीसरा एक स्थान ऐसा है जिसमे नौ अधिक वीस अर्थात् २९ प्रकृति पाई जाती है। चौथा एक स्थान दश अधिक वीसको अर्थात् ३० प्रकृतिको वाधता है । ये चार प्रकारके यहा स्थान वधसवधी हुए । अव उदयस्थानोंको देखो । यहा पर उदयस्थान पाच वताये है । उनमेंसे एक स्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृतिका है । दूसरा पाच अधिक वीसका अर्थात् २५ का है । तीसरा सात अधिक वीसका अर्थात् २७ का है । चौथा स्थान आठ अधिक वीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका है। पाचवा नौ अधिक वीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है। ऐसे ये पाच उदयस्थान हुए। सत्तास्थान चार है वे आदिके चार है। अर्थात् एक ९३ का है, दूसरा ९२ का है, तीसरा स्थान ९१ प्रकृतिका है, चौथा स्थान ९० प्रकृतिवाला है । इस प्रकार देवगतिके वधादि तीनो स्थानोंको वताया ।

देवोंमें वधसवधी सत्त्वस्थान चार—२५ । २६ । २९ । ३० । उदयस्थान पाच—२१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्तास्थान चार—९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

स्वर्गे वधे २५ । २६ । २९ । ३० । पाके २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्तायां ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।
एकाक्षे त्रितये पच विकलत्रितये मताः । पच षट् पच पचाक्षे त्वष्टौ दश त्रयोदश ॥ ४३६ ॥

	ए.	वि.	पं
वं.	५	५	८
उ	५	६	१०
स	५	५	१३

अव आगे इद्रिय मार्गणाको लेकर इद्रियोंमें इस वंधादित्रयके स्थानप्रकरणको आगमानुसार जान कर वताते हैं । ४३४–४३५ ।

एकेंद्रियोंमें वधके भी पाच स्थान है, उदयके भी पाच ही हैं, और सत्ताके भी पाच ही स्थान हैं । इस प्रकार तीनोंके पाच ही पाच स्थान है । विकलत्रयमें क्रमसे पाच छह पाच हैं । वधमें पाच हैं । उदयमें छह हैं । सत्तामें पाच हैं । पचेंद्रियोंमें क्रमसे आठ, दश, तेरह हैं । वधमें वहा आठ स्थान हैं । उदयमें दश हैं । सत्तामें तेरह–मवके सव स्थान हैं । ४३६ ।

इद्रियोंमें वधादि स्थानसख्याको वतानेवाला यत्र.—

	एकेंद्रियमें	विकलत्रयमें	पचेंद्रियमें
वध–	५	५	८
उदय –	५	६	१०
सत्ता—	५	५	१३

बंधे त्रिपंचषड्नवदशयुक्ता विंशतिर्मितैकाक्षे। पाकाः पंच प्रथमाः प्रथमतृतीये विना संति ॥ ४३७ ॥

स्थानानीति शेषः। बंधे २३। २५। २६। २९। ३०। पाकाः २१। २४। २५। २६। २७। सति ९२। ९०। ८८। ८४। ८२।

एकेन्द्रियवद्बंधे सत्त्वे विकलत्रये प्रजायंते। एकषडष्टनवदशैकादशयुग् विंशतिः पाके ॥ ४३८ ॥

अब एकेंद्रियके ऊपर दिखाये हुए बंधादि स्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको आगे दिखाते हैं।—

एकेंद्रियमें बंधस्थान पाच हैं। उनमें क्रमसे प्रकृतिसंख्या इस प्रकार है।— एक स्थान तीन अधिक वीसका अर्थात् २३ प्रकृतिवाला है। दूसरा स्थान पाच अधिक वीसका अर्थात् २५ प्रकृतिवाला है। तीसरा स्थान छह अधिक वीसका अर्थात् २६ प्रकृतिवाला है। चौथा स्थान नौ अधिक वीसका अर्थात् २९ प्रकृतिवाला है। पाचवा स्थान दश अधिक वीसका अर्थात् ३० प्रकृतिवाला है। एकेंद्रियमें उदयस्थान भी पाच ही बताये हैं वे आदिके पाच स्थान लेने चाहिये। सत्तास्थान भी एकेंद्रियमें पाच ही हैं। वे प्रथम सत्तास्थानको और तीसरे सत्तास्थानको छोडकर शेष आदिसे लेकर पाच स्थान समझने चाहिये। इस श्लोकमें 'स्थान' शब्द नहीं आसका है परंतु वह प्रकरणवश ऊपरसे जोड लेना चाहिये। बंधस्थान पाच—२३। २५। २६। २९। ३०। उदयस्थान पाच—२१। २४। २५। २६। २७। सत्त्वस्थान पाच—९२। ९०। ८८। ८४। ८२। यह तिर्यंचगतिका प्रकरण है क्योंकि, तिर्यंचोंमें ही एक इंद्रिय संभव है, इसलिये यहा तीर्थंकर प्रकृतिके संबंधसे होनेवाले ९३—९१ के दो सत्त्वस्थान घटा दिये हैं। तिर्यंचोंमें तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता नहीं रहती है। ४३७।

बंधमें—२३। २५। २६। २९। ३०—ये पाच स्थान। उदयगत—२१। २४। २५। २६। २७। — ये प्रथमके पाच। सत्तास्थान भी पाच-९२। ९०। ८८। ८४। ८२।

अब विकलत्रयके स्थानोंको तथा स्थानोंकी प्रकृतियोंको बताते हैं।—

बंधमें और सत्तामें एकेंद्रियके ही समान विकलत्रयमें भी स्थान समझने चाहिये। किंतु उदयमें जो स्थान है वे इस प्रकार हैं।—एक अधिक वीसका एक स्थान, छह अधिक वीसका एक दूसरा स्थान, आठ अधिक वीसका एक तीसरा स्थान,

बंधे २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । पाकाः २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।
सत्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

नौ अधिक वीसका एक चौथा स्थान, दश अधिक वीसका अर्थात् तीसका एक पाचवा स्थान, ग्यारह अधिक वीसका अर्थात् इकतीसका एक छट्ठा स्थान–इस प्रकार छह स्थान है। भावार्थ, एकेंद्रियमें जहा एकेंद्रिय नामका जातिकर्म है वहां विकलत्रयमें द्वींद्रिय जातिकर्म होगा अथवा त्रींद्रिय अथवा चतुरिंद्रिय होगा।

परतु प्रकृतियोंकी सख्यामें वध तथा उदयमें कोई अतर नहीं पडता है इसलिये विकलत्रयके वधस्थान और उदयस्थानोंको एकेंद्रियके स्थानवत् वताया है। उदयस्थानोंमें एकेंद्रियकी अपेक्षा विकलत्रयमें अंतर है। इसका कारण इस प्रकार है। विग्रहगतिमें एकेंद्रियके भी २१ का ही स्थान वताया है और विकलोंमें भी २१ का ही वताया है। परंतु विग्रहगतिके वाद एकेंद्रियमें जहा, दूसरा स्थान २४ प्रकृतिका वताया है वहा विकलोंमें २६ का वह दूसरा स्थान है। यहापर एक अगोपाग और दूसरी प्रकृति एक असप्राप्त असृपाटिका सहनन –ये दो प्रकृति वढ जाती है। इसलिये विकलोंमें दूसरा स्थान चौवीस प्रकृतिरूप न होकर छव्वीस प्रकृतिरूप हो जाता है। इन दो प्रकृतियोंके वढ जानेसे दूसरे स्थानमें दोकी सख्या वढजानेसे आगेके स्थानोंमें भी दो दो सख्याका अतर पड जाता है। ये दो प्रकृति एकेंद्रियके उदययोग्य नहीं है इसलिये सामान्य प्रकृतिसमूहसे ये दो प्रकृति अधिक विशेषस्थानकी मानी गई है। इसका स्पष्टीकरण इसी पाचवें परिच्छेदके ११२ वें श्लोकसे लेकर किया है वहापर १३५ वें श्लोकसे एकेंद्रियके २४ के स्थानका वर्णन है और १४६ वें श्लोकसे विकलोंके २६ प्रकृतिरूप दूसरे स्थानका वर्णन किया है। विशेष वहासे समझना चाहिये। ४३८।

वधमें–२३ । २५ । २६ । २९ । ३० ।
उदयमें–२१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।
सत्तामें–९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

॥५९५॥

बंधे मत्त्वे जीवे सर्वस्थानानि सति पचाक्षे। तानि चतुर्विंशत्या पाके हीनानि जायते ॥ ४३९ ॥

बंधे २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । पाके २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ९ । ८ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

विकलेंद्रियके साथ संस्थान एक हुडक ही होता है । 'संस्थान विकलाक्षाणां हुंड भवति सर्वदा' ऐसा इसी परिच्छेदके ७५ वें श्लोकमें कहा है । साधारण बंध तथा उदय संबंधी नियम ऐसा है कि जितनी प्रकृति उदयमें आसकती है उतनी ही प्रकृति उस गतिकर्मके साथ बंधको प्राप्त होती है । परंतु नाम प्रकृतिका यहापर बंध २३ का जघन्य बताया है, किंतु उदय प्रथम विग्रहगतिकी अवस्थामें २१ प्रकृतिका है । यहापर दो प्रकृति बंधकी अपेक्षा उदयमें घाट हैं । इसका वास्तव कारण ऐसा है कि बंधकी कुछ प्रकृतियोंकी, उदयके प्रथम समयमें उदयरूप योगता नहीं है । जैसे उपघातादि प्रकृति तबतक उदयमें नहीं आती है जबतक शरीरकी रचनाका आरंभ न हो जाय, इसलिये विग्रहगतिमें बंधप्रकृतिसंख्याका और उदयप्रकृतिसंख्याका परस्परमें अंतर पडजाना संभव है । इत्यादि बातोंको बंधोदयसत्त्वकी जुदी जुदी प्रकृतियोंको देखकर समझलेना चाहिये ।

अब आगे पंचेंद्रियके बंधोदयसत्त्वस्थानोंको दिखाते हैं ।–

पंचेंद्रियमें बंधसंबंधी और सत्तासंबंधी तो सर्व सर्व स्थान रहते हैं, किंतु उदयस्थानोंमेंसे एक चौबीस प्रकृतिका स्थान नहीं है । इसलिये सर्व उदयस्थान जो ग्यारह बताये है उनमेंसे पंचेंद्रियमें दश स्थान होते है ऐसा समझना चाहिये । इसका कारण यह है कि चौबीस प्रकृतिका जो उदयस्थान है वह एकेंद्रियमें ही उदययोग्य होता है । विकलसे लेकर वही स्थान छब्बीस प्रकृतिरूप हो जाता है । एक संहनन, दूसरा अंगोपांग–ये दो बढ जाते हैं । ४३९ ।

बंधस्थान–२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ।–ये आठो हैं । उदयस्थान–२१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ ।–ये दश है । सत्ताके स्थान–९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।— ये सर्व हैं ।

सर्वासु मार्गणास्वेवं सत्संख्याद्यष्टकेऽपि च । बधादित्रितयं नाम्नो योजनीयं यथागमम् ॥ ४४० ॥

न चत्वारिंशत सैकं परित्यज्यान्यकर्मणाम् । पाकोदीरणयोरस्ति विशेष स्वाम्यतः स्फुटम् ॥ ४४१ ॥

अव आगे समुच्चित शेप सर्व मार्गणाओंमें तथा सत् सख्या क्षेत्रादि आठ अनुयोगोंमें भी नामके वधोदयसत्त्वको ऊपरसे समझकर वैठाल लेनेका उपदेश करते हैं ।—

जिस प्रकार गतिमार्गणामें तथा इद्रिय मार्गणामें नामके वधोदयसत्त्व तीनोंके स्थानोंको यथासमव दिखाया है उसी प्रकार शेप मार्गणाओंमें भी लगा लेना चाहिये, और सत् सख्या आदि आठ अनुयोगोंमें भी पूर्वागमोंको देखकर लगा लेना चाहिये ॥ ४४० ॥

इस प्रकार नामके वधोदयसत्त्वका वर्णन समाप्त हुआ ।

अव कर्मोंकी उदय तथा उदीरणाको लेकर विशेप वर्णन करते हैं ।—

आगे जिन्हे बतानेवाले हैं उन इकतालीस प्रकृतियोंको छोडकर शेप सर्व प्रकृतियोंमें उदय तथा उदीरणा समान ही है । उन शेप कर्मोंकी उदीरणाके जो स्वामी है वे ही उन प्रकृतियोंके उदयके भी स्वामी हैं । स्वामीपनेसे कोई भेद नहीं है । कर्मकी स्थिति पूर्ण होनेपर जो कर्मोंका फल भोगा जाता है उसे उदय कहते है । स्थिति पूर्ण होनेसे प्रथम ही स्थितिका ह्रास होनेपर जो फल प्राप्त होता है उसे उदीरणा कहते हैं । उदय तथा उदीरणामें यही एक भेद है । उन शेप प्रकृतियोंकी उदीरणा जिन गुणस्थानोंमें होती है उन्ही गुणस्थानोंमें उदय होता है । स्वामीकी अपेक्षासे यही अभेद है । गुणस्थानगत जो जीव है वे ही यहा उदय उदीरणाके स्वामी कहे गये हैं । इकतालीस प्रकृतियोंके स्वामी उदयकी अपेक्षा तथा उदीरणाकी अपेक्षासे जुदे जुदे हैं । यह इसका तात्पर्य है ॥ ४४१ ॥

आगे इकतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणाको तथा उदयको लेकर स्वामिभेद क्या है उसे वताने वाले हैं । अव सवसे प्रथम यह वात वताते है कि अमुक गुणस्थानोंमें उदीरणा होती ही नहीं है और शेप गुणस्थानोंमें होती है ।—

मिश्रसासादनापूर्वशांतायोगान् विमुच्य सा। योजनीया गुणस्थानं विभागेन विचक्षणैः ॥ ४४२ ॥

एकचत्वारिंशत्प्रकृतयो गुणस्थानं प्रति दीयन्ते—

मिथ्यात्वं तत्र दुर्दृष्टौ तुर्ये श्वभ्रसुरायुषी। तैरश्चं जीवितं देशे षडेताः सप्रमादके ॥ ४४३ ॥

सातासातमनुष्यायुस्त्यानगृद्धित्रयाभिधाः। सम्यक्त्वं सप्तमे वेदत्रितयं त्वनिवृत्तिके ॥ ४४४ ॥

मिश्र गुणस्थान तीसरा, सासादन गुणस्थान दूसरा, अपूर्वकरण आठवा गुणस्थान, शात अर्थात् उपशातकषाय ग्यारहवा गुणस्थान, अयोग अर्थात् अयोग केवली चौदहवा गुणस्थान–इन पाच गुणस्थानोंमे उदीरणा नहीं होती है। इसलिये इन पाच गुणस्थानोंको छोडकर उदीरणाको इतर गुणस्थानोंमें यथासभव लगालेना चाहिये। भावार्थ, जहापर किसी प्रकृतिका उदय भी सभव है और उदीरणा भी सभव है उन गुणस्थानोंमें यह उदीरणाकी योजना नहीं बताना है। किंतु किसी कर्मका उदय तो एक दूसरे विवक्षित गुणस्थानमे होता है परतु उदीरणा उसी कर्मकी हो तो उस गुणस्थानमे नहीं होती किंतु दूसरे ही किसी गुणस्थान पर्यंत होती है। इसका नाम स्वामिभेद है। इस कारिकामें केवल इतना ही बताया है कि उदीरणा उक्त गुणस्थानोंको छोडकर होती है और उदय यथासभव होता है। ४४२।

अब उन इकतालीस प्रकृतियोंको गुणस्थानोंमें विभाजित करके जोडते हैं। इसका प्रयोजन ऐसा समझना कि वह अमुक अमुक प्रकृति यदि उदीरणाको प्राप्त हो तो उस उस गुणस्थामें हो सकती है।—

मिथ्यात्व अर्थात् मिथ्यादर्शन प्रकृति दुर्दृष्टिमें अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमे उदीरणाके योग्य समझना। श्वभ्र अर्थात् नरकायु और सुरायु अर्थात् देवायु चौथे गुणस्थानमें उदीरणाके योग्य समझना। तिर्यंच जीवित अर्थात् तिर्यंच आयुकर्म देशव्रत पाचवें गुणस्थानमे उदीरणायोग्य समझना। और आगे जिन्हे गिनाते है वे छह प्रकृति प्रमादसहित गुणस्थानमें अर्थात् छट्ठे गुणस्थानमें उदीरणायोग्य समझना। वे छह प्रकृति सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु ये तीन प्रकृति और तीन स्त्यानगृद्धि आदि निद्रा प्रकृति इस प्रकार छह प्रकृति हैं। सम्यक्त्ववेदनीय प्रकृति सातवें गुणस्थानमें उदीरणाके योग्य है। पुरुष स्त्री नपुसक

लोभः सज्वलनः सूक्ष्मे क्षीणाख्ये दक्चतुष्टयम् । दश ज्ञानांतरायस्था निद्राप्रचलयोर्द्वयम् ॥ ४४५ ॥
त्रस१चाक्षपर्याप्तबादरोच्चनृरीतय. । तीर्थकृत्सुभगादेययशांसि दश योगिनि ॥ ४४६ ॥
१ । ० । ० । २ । १ । ६ । १ । ० । ३ । १ । ० । १६ । १० । ० । मीलिताः ४१ ।

ये तीन वेद प्रकृति अनिवृत्तिकरण नाम नौवें गुणस्थानमें उदीरणाके योग्य समझना । ४४३—४४४ ।

सज्वलन लोभ कपाय दशवें सूक्ष्मकपाय गुणस्थानमें उदीरणा होने योग्य है। क्षीणकपाय नामके वारहवें गुणस्थानमें चार दर्शनावरण प्रकृति उदीरणाके योग्य मानी गई हैं। और ज्ञानावरणकी पाच प्रकृति अतरायकी पाच प्रकृति—ये मिलकर दश प्रकृति हुई । ये दशो प्रकृति भी इस क्षीणकपायमें ही उदीरणायोग्य है । निद्रा तथा प्रचला— ये दो प्रकृति भी इसी क्षीणकपाय गुणस्थानमें उदीरणायोग्य हैं । इस प्रकार बारहवें गुणस्थानमें सर्व सोलह प्रकृति उदीरणाके योग्य मानी गई है । इन सोलहमेंसे जो ऊपर दर्शनावरणकी चार प्रकृति वताई है वे चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षु-दर्शनावरण अवधिदर्शनावरण तथा केवल दर्शनावरण ये चार है । क्योंकि स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंकी उदीरणा होना छट्टे गुणस्थानमें वता दिया है। और दो निद्राओंके नाम यहींपर आगे लिये हैं। इसलिये शेप चार ही दर्शनावरण रह जाते है, जो ऊपर वताये है । ४४५ ।

आगे सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थानमें उदीरणायोग्य प्रकृति कितनी है उन्हे दिखाते है।—

त्रसनाम, पचेंद्रिय जातिनाम, पर्याप्तनाम, बादरनाम, उच्च गोत्र, नृरीति अर्थात् मनुष्यगतिनाम, तीर्थकरत्वनाम, सुभग नाम, आदेयनाम, यश.कीर्तिनाम— इन दश प्रकृतियोंकी उदीरणायोग्यता सयोग केवली तेरहवें गुणस्थानमें मानी गई है । ४४६ ।

१ । ० । ० । २ । १ । ६ । १ । ० । ३ । १ । ० । १६ । १० । ० । यह यत्र उदीरणाकी प्रकृतियोंकी संख्याको गुणस्थानोंमें क्रमसे दिखाता है । ये सर्व मिला देनेसे उदीरणायोग्य प्रकृति ४१ होजाती है ।

आगे इन उदयप्रकृतियोंकी उदीरणामें कुछ विशेपता गोमटसारको लेकर कहते हैं,—

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो। मोत्तूण तिण्णि ठाण पमत्त जोगी अजोगी य ॥ २७८ ॥

उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वात् न विद्यते विशेष । मुक्त्वा त्रयस्थानं प्रमत्त योग्ययोगि च ॥ २७८ ॥

अर्थ—उदय और उदीरणाके स्वामीपनेसे कुछ विशेपता नहीं है। परंतु प्रमत्तनामा छठा गुणस्थान, तेरह्वा योगी, चौदहवां अयोगी इन तीनो गुणस्थानोंको छोडदेना, अर्थात् इन तीन गुणस्थानमें ही विशेपता है और सब जगह समानपना है ॥ २७८ ॥

अव उसी विशेपताको दो गाथाओंसे दिखाते हैं,—

तीस बारस उदयुच्छेद केवलिणमेकद किच्चा। सादमसाद च तहिं मणुआउगमवणिद किच्चा ॥ २७९ ॥

त्रिंशत् द्वादश उदयोच्छेद केवलिनोरेकत्र कृत्वा। सातमसात च तत्र मानवायुष्कमपनीत कृत्वा ॥ २७९ ॥

अर्थ—सयोगी और अयोगी केवलीकी ३० और १२ उदयव्युच्छित्ति प्रकृतियोंको घटाना चाहिये ॥ २७९ ॥

अवणिदतिप्पयडीण पमत्तविरदे उदीरणा होदि। णत्थित्ति अजोगिजिणे उदीरणा उदयपयडीण ॥२८०॥

अपनीतत्रिप्रकृतीनां प्रमत्तविरते उदीरणा भवति। नास्तीति अयोगिजिने उदीरणा उदयप्रकृतीनाम् ॥ २८० ॥

अर्थ—घटाई हुई साता आदि तीन प्रकृतियोंकी उदीरणा प्रमत्तविरत नामा छठे गुणस्थानमें ही होती है। बाकी ३९ प्रकृतियोंकी उदीरणा सयोगकेवलीके होती है। वहा ही व्युच्छित्ति होती है। और अयोगकेवलीके तो उदीरणा होती ही नहीं है, यही विशेपता है ॥ २८० ॥

अव उदीरणाकी व्युच्छित्ति गुणस्थानोंमें क्रमसे कहते हैं—

पण णव इगि सत्तरस अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव। इगि दुग सोलुगदालं उदीरणा होंति जोगता ॥ २८१ ॥

पच नवैकं सप्तदश अष्टाष्ट च चत्वारि पट्क पट् चैव। एक द्विकं पोडशैकोनचत्वारिंशत् उदीरणा भवंति योग्यता ॥२८१॥

त्रिभिर्निरहितं तीर्थकर्तृत्वाहारकद्विकै । स्वीकरोति समिथ्यात्व शतं सप्तदशोत्तरम् ॥ ४४७ ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीपर्यंत क्रमसे ५, ९, १, १७, ८, ८, ४, ६,६, १, २, १६, ३९, प्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छित्ति होती है ॥

अब पहले कही हुई उदीरणा और अनुदीरणारूप प्रकृतियोंकी सख्या दो गाथाओंसे कहते हैं —

सत्तरसेकारखचदुसहियसय सगिगिमादि तिवसदरी । णवतिण्णिसहि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदाल ॥

पचेक्कारसबावीसट्ठारस पचतीस इगिणवदालं । तेवण्णेक्कुणसट्ठी पणछक्कडसहि तेसीदी ॥ जुम्म ॥

सप्तदशैक दशखचतु सहितशत ससैकाशीति त्रिसप्तति: । नवत्रिषष्टि सप्तषट्पचाशत् चतु पचाशत् एकोनचत्वारिंशत् ॥

पचैकादशद्वाविंशत्यष्टादश पचत्रिंशत् एकनवचत्वारिंशत् । त्रिपचाशदेकोनषष्टि पचषट्काष्टषष्टि त्र्यशीति ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७३, ६९, ६३, ५७ ५६, ५४, ३९, प्रकृतिया उदीरणारूप है । और ५, ११, २२, १८, ३५, ४१, ४९, ५३, ५९, ६५, ६६, ६८, ८३, अनुदीरणारूप प्रकृतिया जानना अर्थात् इनकी उदीरणा नहीं होती ॥ इसप्रकार गुणस्थानोमे उदय-उदीरणाकी त्रिभगी (तीन भेद) कही ॥

इस प्रकार गोमटसारके अनुसार उदीरणा बताई ।

अथ बधाबंध प्रकरण

अब आगे इस बातको दिखाते हैं कि किस गुणस्थानमें कितनी प्रकृति बधयोग्य हैं और कितनी बधके अयोग्य है ।—

सर्व बधयोग्य प्रकृति एकसौ वीस मानी है । एकसौ अडतालीस प्रकृतियोंमेसे अट्ठाईस प्रकृति जो घाट मानी हैं वे इस प्रकार हैं ।—पाच बधन नाम और पाच सघातनाम प्रकृति ये दश नामकर्म प्रकृति पाच शरीर नाम प्रकृतियोंमे अतर्भूत करली जाती है । एव स्पर्श आदि चार प्रकृतियोंके जो वीस उतर भेद है उन्हे बंध प्रकरणमें जुदे न मान कर चार ही मूल भेद

स्वतंत्र माने हैं। इसलिये सोलह संख्या स्पर्श रस गंध वर्णमेंसे घट जाती है। इस प्रकार छब्बीस संख्या नामप्रकृतियोंमेंसे घटाई गई है। इसके सिवाय दो दर्शनमोहनीय बंधमेंसे घटाई गई हैं। वे दो इस प्रकार हैं कि एक सम्यक्त्व प्रकृति, दूसरी सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति। ये दो और नामकर्मकी छब्बीस मिल कर अट्ठाईस प्रकृति बंध प्रकरणमें नहीं गिनाई हैं। भावार्थ, बंध एकसौ वीस प्रकृतिका ही होता है।

इन एकसौ वीस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्वी प्रथम गुणस्थानवाला जीव एक सौ सत्रह प्रकृतियोंको बांधता है। तीन प्रकृतियोंको नहीं बांधता। वे तीन प्रकृति—एक तीर्थंकरत्व और दो आहारक शरीर—ऐसे तीन हैं। भावार्थ, ये तीन प्रकृति पहिलेसे तीसरे गुणस्थानपर्यंत तीनो गुणस्थानवाले जीवोंमें बंधके योग्य नहीं मानी गई हैं। इसका कारण यह है कि ये विशुद्ध प्रकृति है। इनका बंध सम्यक्त्वके अथवा चारित्रके रहते ही होता है। इसीलिये तीर्थंकर प्रकृतिका बंध चौथे गुणस्थानसे लेकर आगेके गुणस्थानोंमें बतावेंगे और आहारक शरीरद्वयका बंध सातवें गुणस्थानसे बतावेंगे। ४४७।

अब नामकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंमें अभेद विवक्षासे जो प्रकृतियां जिनमें शामिल होसक्ती हैं उनको गोमटसारके आधारपर दिखाते हैं,—

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया। वण्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥

देहे अविनाभाविनौ बंधनसंघातौ इति अबन्धोदयौ। वर्णचतुष्केऽभिन्ने गृहीते चतस्रः बन्धोदये ॥

अर्थ—शरीर नामकर्ममें अपना अपना बंधन और संघात ये दोनों अविनाभावी हैं अर्थात् शरीरके विना ये दोनों नहीं हो सकते; इसकारण पांच बंधन और पांच संघात ये दश प्रकृतियां बंध तथा उदयस्वरूप नहीं हैं अर्थात् कर्मकी बंध और उदय अवस्थामें ये दश प्रकृतियां जुदी नहीं गिनी जातीं, शरीर-नाम प्रकृतिमें ही शामिल हो जाती हैं। तथा वर्ण १ गंध २ रस ३ स्पर्श ४ इन चारमें ही अभेदकी विवक्षासे इनके वीस भेद शामिल होजाते हैं इस कारण बंध और उदय अवस्थामें चार ही भेद माने हैं ॥

ऐसा होनेपर बंध, उदय तथा सत्तारूप प्रकृतियां कितनी हुईं ? इसका उत्तर आचार्य चार गाथाओंसे कहते हुए प्रथम बंधरूप प्रकृतियां गिनाते हैं,—

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी। दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ बंधपयडीओ ॥

पञ्च नव द्वौ षड्विंशतिरपि च चतस्र क्रमेण सप्तषष्टि । द्वौ च पञ्च च भणिता एता बंधप्रकृतय ॥

अर्थ—ज्ञानावरणकी पांच, दर्शनावरणकी ९ वेदनीयकी २ मोहनीयकी २६ हैं क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति बन्धमें नहीं है यह पहिले भी कहचुके हैं, तथा आयुकर्मकी ४ और नामकर्मकी ६७ हैं क्योंकि पहले गाथामें १०+१६= २६ प्रकृतियां अभेद विवक्षासे बंध अवस्थामें नहीं हैं ऐसा कह आये हैं। सो ९३ में २६ कम करनेसे ९३−२६ =६७ ही बाकी रह जाती हैं। गोत्रकर्मकी २ अंतरायकर्मकी ५ ये सब बंध होने योग्य प्रकृतियां हैं ॥

अब उदय प्रकृतियोंको कहते हैं,—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी। दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ उदयपयडीओ ॥ ३

पञ्च नव द्वौ अष्टाविंशति चतस्र क्रमेण सप्तषष्टि । द्वौ च पञ्च च भणिता एता उदयप्रकृतय ॥

अर्थ— पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, सडसठ, दो और पांच ये सब उदय प्रकृतियां हैं, मोहनीयकी पहली छब्बीस प्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व १ और सम्यक्त्व प्रकृति ये दो भी उदय अवस्थामें शामिल करनेसे अट्ठाईस प्रकृतियां हो जाती हैं ॥

आगे बंधरूप तथा उदयरूप प्रकृतियोंकी भेदविवक्षा और अभेदविवक्षासे संख्या कहते हैं—

भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवंति वीससयं। भेदे सव्वे उदये वावीससयं अभेदम्हि ॥ ३७ ॥

भेदे षट्चत्वारिंशच्छतमितरे बन्धे भवन्ति विंशशतम्। भेदे सर्वे उदये द्वाविंशशतमभेदे ॥ ३७ ॥

अर्थ—बन्ध अवस्थामें, भेदविवक्षासे (भेदसे कहनेकी इच्छासे) १४६ प्रकृतियां हैं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति ये दोनों इस बन्ध अवस्थामें नहीं गिनी जाती। और अभेदकी विवक्षासे १२० प्रकृतियां कहीं हैं क्योंकि २६

शासन शतमेकाग्रं चतुर्भि सप्तभिर्युताम् । सप्तति मिश्रनिर्वृतौ सप्तभिस्त्रिभिरन्विताम् ॥ ४४८ ॥

प्रकृतिया दूसरे भेदोंमे शामिल करदी गई है । उदय अवस्थामें, भेदविवक्षासे सब १४८ प्रकृतिया है क्योंकि पूर्वकी दो प्रकृतिया भी यहा शामिल कीगई है । तथा अभेद विवक्षासे १२२ प्रकृतिया कहीं है क्योकि २६ भेद दूसरे भेदोंमें गर्भित हो जाते हैं वह पहलेही कहचुके है ॥

आगे सत्तारूप प्रकृतियोंकी सख्या कहते है —

पच णव दोण्णि अट्ठावीस चउरा कमेण तेणउदी । दोण्णि य पच य भणिया एदाओ सत्तपयडीओ ॥

पच नव द्वौ अष्टाविंशति चत्वार क्रमेण त्रिनवति । द्वौ च पच च भणिता एता सत्त्वप्रकृतय ॥

अर्थ—पाच, नौ, दो, अट्ठाईस, तिरानवै, दो और पाच इसतरह सब १४८ सत्तारूप (मौजूद रहने योग्य) प्रकृतिया कही है ॥

अब आगे सासादनादि तीन गुणस्थानोंमें बधयोग्य प्रकृतियोंकी सख्याको बताते है ।–

एकसौ एक प्रकृतियोंको सासादन दूसरे गुणस्थानवाला जीव बाधता है । क्योंकि मिथ्यात्वमें नरक गति आदि सोलह प्रकृतियोंकी बधव्युच्छित्ति होजाना बताया है । इसलिये ये सोलह प्रकृति इस दूसरे गुणस्थानमे बधसे छूट जाती हैं । इनके सिवाय तीन प्रकृति– तीर्थकरत्व तथा आहारकद्वय- ये जैसे प्रथम गुणस्थानमें बधके योग्य नहीं है वैसे यहां भी बधके योग्य नहीं हैं । इस प्रकार एकसौ वीसमेंसे उन्नीस प्रकृति घट जानेसे बधयोग्य एकसौ एक (१०१) प्रकृति रह जाती हैं ।

यहापर एक यह बात भी ध्यानमे रखने योग्य है कि यह कथन नाना जीवोंकी अपेक्षाके किया हुआ है । अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षासे ही दूसरे गुणस्थानमें एकसौ एक प्रकृतिका बध होना समव है । किसी एक जीवमें एकसौ एक प्रकृतिका बध एक समयमें होना सभव नहीं है । वह इस प्रकार,–

जैसे, यहा एकसो एक प्रकृतियोंमें मनुष्यगति मनुष्यायु आदि सामिल हैं वैसे ही देवगति देवायु भी सामिल है । जो

देशषष्ठी क्रमात् षष्टिं तां निरेकां तु सप्तम । पञ्चाशतमपूर्वाख्य क्रमादष्टषडन्विताम् ॥ ४४९ ॥

जीव एक समयमें मनुष्यगति तथा मनुष्यायुका बध करेगा वह जीव उस समयमें देवगति तथा देवायुका बध नहीं करेगा । आगे पीछे देवायुका वध कर सकता है और मनुष्यायुका भी कर सकता है । परतु इस प्रकारसे जो आगे पीछे वध होगा उससे एकसौ एक प्रकृतिकी पूर्ति तो हो जायगी किंतु वह सत्तामें पूर्ति हुई समझी जायगी । वध, जो नवीन कर्म वाधनेमें आते हैं उसीको कहते हैं । यह एक जीवका नाना समयोंकी अपेक्षासे वध है । इस प्रकार एक जीवमें क्रमसे १०१ प्रकृतिका वध भी हो सकता है और नाना जीवोंमें एक समयवर्ती भी १०१ प्रकृतिका वध होना सभव है । इसी प्रकार आगे पीछेके गुणस्थानोंमें भी यहा जो वधयोग्य प्रकृतियोंकी सख्या गिनाई है उसका ऐसा ही तात्पर्य लेना चाहिये ।

मिश्र तीसरे गुणस्थानके जीवमें चार अधिक सत्तरि अर्थात् ७४ प्रकृति बधयोग्य हे । दूसरे गुणस्थानमें एकसौ एक वध योग्य प्रकृति वताई थीं और वहा पच्चीस प्रकृति वधसे और भी अधिक व्युच्छिन्न होती हैं वे प्रकृति पच्चीस यहा तीसरे गुणस्थानमें वधयोग्योंमेंसे घटादेनी चाहिये । तव छिहत्तरि प्रकृति रह जाती हैं । परतु इसके शिवाय इस तीसरे गुणस्थानमें मनुष्यायु तथा देवायु इन दो प्रकृतियोंकी वधसे व्युच्छित्ति तो नहीं हुई है तो भी ये दो प्रकृति यहा वधयोग्य नहीं है इसलिये छिहत्तरि-मेंसे मनुष्यायु देवायु इन दो प्रकृतियोंको और भी घटा देना चाहिये तव चौहत्तरि रह जाती हे। असलमें तीसरे गुणस्थानमें किसी भी आयुका वध नही होता है । परतु नरक तिर्यच इन दो आयुकी पहिले ही व्युच्छित्ति हो चुकी है । इस प्रकार चौहत्तरि प्रकृति तीसरे गुणस्थानमें वधयोग्य मानी गई है । शेष प्रकृतियोंमेंसे कुछ यहातक वधव्युच्छिन्न हो चुकी हैं और कुछ वधके यहा अयोग्य हैं ।

अव क्रमसे पांचवे आदि गुणस्थानोंमे वधयोग्य प्रकृतियोंको देखिये । — देश अर्थात् पाचवे गुणस्थानवाला जीव सात अधिक साठि अर्थात् ६७ प्रकृतिको वाध सकता है । चौथे गुणस्थानमें वधव्युच्छिन्न प्रकृति दश वताई हे । चार अप्रमत्याख्यानावरण कपाय, वज्रर्पभनाराचसहनन, औदारिक द्वय, मुनुष्यगतिद्वय, मनुष्यायु—ये वे दश प्रकृति हे । ये पाचवे

षड्विंशतिं च गृह्णाति ततो द्वाविंशतिं परः। एकद्वित्रिचतुर्यूनामेतां संयमपञ्चके ॥ ४५० ॥

गुणस्थानमें बंध होनेसे रुक जाती है। इसलिये इन दशको सतत्तरिमेंसे घटादेनेसे सरसठि प्रकृति देशव्रतमें बंधयोग्य रह जाती है। छट्ठे गुणस्थानमें बंधयोग्य तीन अधिक साठि अर्थात् तिरेसठि प्रकृति है। पांचवें गुणस्थानमें तीसरे चार कषाय बंधच्छिन्न माने गये हैं। वे चार प्रकृति छट्ठे गुणस्थानमें बंधप्रकृतियोंसे घट जाती हैं इसलिये यहां तिरेसठि बंधयोग्य रह जाती है। सातवें गुणस्थानमें एक घाटि साठि अर्थात् ५९ प्रकृति बंधयोग्य है।

छट्ठे गुणस्थानमें छह प्रकृतियोंका बन्धच्छेद बताया है। अस्थिरनाम, अशुभनाम, असातावेदनीय, अयश कीर्ति अरति नोकषाय, शोक नोकषाय ये वे छह हैं। तिरेसठिमेंसे सातवेंमें ये छह प्रकृति घट जाती है किंतु आहारकद्वय प्रकृति सातवेंसे ही बंधको प्राप्त होती है। इसलिये ये दो प्रकृति यहां बन्धयोग्योंमें बढ जाती है। इस प्रकार ५९ प्रकृति यहांपर बंधयोग्य है। आहारकद्वयका प्रथमसे छट्ठे गुणस्थान पर्यंत बंध नहीं होता था इसलिये प्रारंभमें छट्ठेतक ये दो प्रकृति बंधयोग्य प्रकृतियोंमेंसे घटा रक्खी थी, वे यहांपर बढादी गई है।

अपूर्वकरणमें आठ अधिक पचास अर्थात् ५८ प्रकृतिका बंध होता है। सातवें गुणस्थानमें एक देवायुका बंधच्छेद बताया है वह एक प्रकृति आठवेंमें घट जाती है। इसलिये अट्ठावन प्रकृति यहां बंधयोग्य रह जाती है।

अपूर्व करणमें जो अट्ठावन प्रकृति बंधयोग्य बताई है वे प्रथम भागमें समझनी चाहिये। अपूर्वकरणमें सर्व उत्तर भाग सात माने गये हैं उनमेंसे प्रथमसे आगेवाले पांच भागोंमें छप्पन प्रकृति ही बंधयोग्य रह जाती है। इसके आगे आठवें गुणस्थान के अंतिम सातवें भागमें षड्विंशति अर्थात् २६ प्रकृति बंधके योग्य मानी जाती है। इसका कारण बताते हैं। वह इस प्रकार कि आठवें गुणस्थानके प्रथम अंतरभागमें दो प्रकृति बंधसे व्युच्छिन्न होती हैं। उनमें एक निद्रा और एक प्रचला ये वे दो प्रकृति है। ये दो प्रकृति फिर आगे दूसरे भागसे लेकर बंधयोग्य नहीं रहती है। ये दोनों घट जानेपर दूसरेसे छट्ठे भाग पर्यंत छप्पन प्रकृति बंधयोग्य रहजाती हैं। फिर छट्ठे भागके अंतमें तीस प्रकृतिकी बंधविच्छित्ति हो जाती है इसलिये

सातवें भागमे छव्वीस वधयोग्य रहजाती हैं। फिर सातवें भागमें और भी चार प्रकृतियोंका ववच्छेद होता है इसलिये नौवें गुणस्थानके आरभमे वाईस प्रकृति ही वधयोग्य मानी गई है। आठवें गुणस्थानके सर्व भागोंम मिलकर छत्तीस प्रकृति ववच्छिन्न हैं उनके नाम गोमटसारमे इस प्रकार हैं।—

मरणूणम्हि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य। छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिंदी ॥
तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवय। चरमे हस्सं च रदी भय जुगुंछा य वधवोच्छिण्णा ॥
मरणोने निवृत्तिप्रथमे निद्रा तथैव प्रचला च। षष्ठे भागे तीर्थं निर्माणं सद्गमनपंचेंद्रियम् ॥
तेजोद्विकोहारद्विसमचतुरस्रसुरवर्णागुरुकचतुष्कत्रसनवम्। चरमे हास्य च रति भय जुगुप्सा च वधव्युच्छिन्ना ॥

अर्थ—निवृत्ति अर्थात् आठवें अपूर्वकरणके मरणअवस्थारहित प्रथमभागमें निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। और छठे भागके अतसमयमें तीर्थकर प्रकृति निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पचेंद्रीजाति, तैजस १ कार्माण २ ये दो, आहारकशरीर १, आहारक आगोपाग २, समचतुरस्रसस्थान, देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी २ वैक्रियिकशरीर ३ वैक्रियिक आगोपाग ४ ये चार, वर्णादि चार, अगुरुलघु १ उपघात २ परघात ३ उच्छ्वास ४ ये चार और त्रसादि नौ, इन तीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। और अतके सातवें भागमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा ये चार प्रकृतिया वधसे विछुडती हैं ॥

इस प्रकार नौवें गुणस्थानके आरभमें जो वधयोग्य प्रकृति वाईस रही उनमेंसे फिर आगे नौवेंके दूसरे भागमें एक और भी घट जाती है इसलिये इक्कीस प्रकृति दूसरे भागमें रह जाती है। तीसरे भागमे वाईसमेंसे दो घट कर बीस प्रकृति वधयोग्य रहजाती है। चौथे भागमें वाईसमेंसे तीन घट कर उन्नीस प्रकृति वधयोग्य रहजाती है। फिर पाचवें भागमें वाईसमेंसे चार प्रकृति घट जाती हैं इसलिये यहा वधयोग्य अठारह रह जाती हैं। नौवें गुणस्थानमें सर्व भाग पाच हैं और वे एक एक कषायके घटनेसे अधिक विशुद्धिको लिये हुए हैं इसलिये इन पाच भागोंको स्वतत्र सयमपचक भी कहा है। वाईस प्रकृतियोंमेंसे यहा क्रमसे चार प्रकृति घटी हैं वे इस प्रकार हैं।— प्रथम पुरुपवेद और फिर सज्वलन क्रोध मान माया। ४४८।४५०।

सूक्ष्म सप्तदशैकस्य शान्तक्षीणाख्ययोगिनाम् । सातस्य कर्मणो बन्धो नियोगो बन्धवर्जितः ॥ ४५१ ॥

	१६		२५
	११७		१०१
तीर्थकराहारकद्वयहीना मिथ्यादृष्टौ—	३	शासने–	१९
	३१		४७

सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानवाला जीव सत्रह प्रकृतियोंको बांधता है। नौवें गुणस्थानके अंतमें संज्वलन लोभ कषायकी बंधव्युच्छित्ति होजाती है इसलिये दशवें गुणस्थानमें वह बंध होनेसे रुकजाता है। नौवेंके अंतमें १८ प्रकृति बंधरूप बताई हैं। उनमेंसे एक लोभ प्रकृति घट जानेसे यहां सत्रह प्रकृति बंधरूप रही हैं। आगे उपशांतकषाय ग्यारहवेंके क्षीणकषाय बारहवेंके और सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थानकें एक सातावेदनीय कर्मका ही बंध रह जाता है। दशवें गुणस्थानके अंतमें पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, चार दर्शनावरण यशःकीर्ति, उच्चगोत्र ये सोलह प्रकृति बंधसे विच्छिन्न होती हैं। इसलिये ग्यारहवें गुणस्थानमें इन सोलहका बंध होना रुकजाता है। केवल एक प्रकृति सातावेदनीय बंधमें शेष रह जाती है। आगे चौदहवां अयोग गुणस्थान बंधरहित है। क्योंकि अयोगकेवलीके सातावेदनीयके भी बंधका अभाव हो जाता है॥

अब यंत्रोद्वारा चार चार कोष्टक करके यह बताते हैं कि प्रत्येक गुणस्थानमें बंधव्युच्छिन्न प्रकृति है तो कितनी हैं, बंधयोग्य है तो कितनी हैं, बंधके अयोग्य है तो अभेदसे कितनी हैं, और एक सो अडतालीसमेंसे कम कितनी हुई?

	बंधव्युच्छिन्न	१६		२५
	तीर्थकर तथा आहारकद्वयको छोडकर बंधयोग्य	११७		१०१
मिथ्यादृष्टिमें–	बंधके अयोग्य	३	सासादनमें–	१९
	एकसौ अडतालीसमें घटी कितनी?	३१		४७

मर्त्यदेवायुषी विना मिश्रे– ० ७४ ४६ ७४ तीर्थकरमर्त्यदेवायुर्भिः सहासयते– १० ७७ ४३ ७१

देशे– ४ ६७ ५३ ८१ प्रमत्ते– ६ ६३ ५७ ८५

मिश्रमें (मनुष्यायु देवायुके न रहनेसे)– ० ७४ ४६ ७४

असयतसम्यग्दृष्टिमें (तीर्थकरत्व और मनुष्यायु देवायुके बढ जानेसे)– १० ७७ ४३ ७१

देशव्रत पाचवें गुणस्थानमें– ४ ६७ ५३ ८१ प्रमत्त छट्ठे गुणस्थानमें– ६ ६३ ५७ ८५

आहारकद्विकेन महाप्रमने—

१
५९
६१
८९

अपूर्वे सप्तसु भागेषु—

२	०	०	०	०	३०	४
५८	५६	५६	५६	५६	५९	२६
६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
९०	९२	९२	९२	९२	९२	११२

अप्रमत्त सातवेंमें (आहारकद्वयके बढ जानेसे)—

१
५०
६१
८९

अपूर्वकरणके-सात भागोंमें—

२	०	०	०	०	३०	४
५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
९०	९२	९२	९२	९२	९२	११२

अनिवृत्तौ पंचसु भागेषु	१	१	१	१	१
	२२	२१	२०	१९	१८
	९८	९९	१००	१०१	१०२
	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

सूक्ष्मे–		शांते–	
	१६		०
	१७		१
	१०३		११९
	१३१		१४७

अनिवृत्तिकरण पाच भागोंमे–	१	१	१	१	१
	२२	२१	२०	१९	१८
	९८	९९	१००	१०१	१०२
	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

सूक्ष्मकषायमें–		उपशात कषायमें–	
	१६		०
	१७		१
	१०३		११९
	१३१		१४७

॥६११॥

क्षीणे–	० १ ११९ १४७	सयोगे–	१ १ ११९ १४७	नियोगे–	० ० १२० १४८

प्रकृतीनामतो योज्यं स्वाम्य गतिचतुष्टये। सामान्येन पटीयोभि पर्यालोच्य यथागमम् ॥ ४५२ ॥
तीर्थकृच्छ्वभ्रदेवायुस्त्रय रीतित्रये स्मृतम्। पराः प्रकृतयः सति सर्वा रीतिचतुष्टये ॥ ४५३ ॥

क्षीण कषायमें–	० १ ११९ १४७	सयोग केवलीमें–	१ १ ११९ १४७	अयोग केवलीमें–	० ० १२० १४८

इसके आगे चारो गतियोंमें प्रकृतियोंके स्वामी विद्वानोंको संक्षेपमें आगमानुसार देखकर जोड लेने चाहिये ॥ ४५२ ॥

अथ सत्त्वासत्त्व तथा उपशम प्रकरण।

अब गतियोंमें जो प्रकृतियोंकी सत्ताका नियम है उसे दिखाते हैं।–

तीर्थकरत्व प्रकृति और नरकायु, देवायु-ये तीन प्रकृति तीन तीन गतियोंमें ही रहती है। शेष सर्व प्रकृति चारो गतियोंमें रहती है। ४५३।

तीन प्रकृति कौन कौनसी एक एक गतिमें नहीं होतीं सो आगे बताते हैं। —

 ॥६१२॥

तीर्थकृत्व न तिर्यक्षु श्वभ्रायुस्त्रिदशेषु नो । नारकेषु न देवायुः सन्त्यन्याः मर्वरीतिषु ॥ ४५४ ॥
चतुष्टय कपायाणामादिम दर्शनत्रयम् । शांता निर्वृतमारभ्य यावत्मप्तानिवृत्तिकम् ॥ ४५५ ॥
शातः षढ. स्त्री नोकपायषट्कं क्रमेण पुवेद । कोपाद्येषु द्वौ द्वावेकैकोऽतोऽथ सज्वाल ॥ ४५६ ॥

उक्तं च—
पार्यते नादयो दातु यत्तत् शांत निगद्यते । सक्रमोदययोर्यन्न तन्निभत्त मनीषिभि ॥ ४५७ ॥

तीर्थकरत्व प्रकृति तिर्यंच गतिमें नहीं रहती । नरकायु देवगतिमें नहीं रहती । और देवायु नरकगतिमें नहीं रहती । अन्य सर्व प्रकृति सर्व गतियोंमें रहती है । इस प्रकार गतियोंमें प्रकृतियोंका सत्व असत्व समझना चाहिये । ४५४ ।

अब गुणस्थानोंमें कहा कहापर कौन कौनसी प्रकृति उपशमको प्राप्त होजाती है इस बातको आगे दिखाते हैं । —

आदिके चार कपाय अर्थात् अनतानुबधी क्रोध मान माया लोभ, और तीनो दर्शन अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व नामकी तीन दर्शनमोह प्रकृति—ये सात कर्म, निर्वृत्त चौथे गुणस्थानसे लेकर नौवें अनिवृत्ति करण पर्यंत शात अर्थात् उपशमको प्राप्त होकर रहते हैं । और फिर अनिवृत्ति करण नौवें गुणस्थानमें क्रमसे नपुसक वेद उपशमको प्राप्त हो जाता है । इसके बाद पुरुपवेद भी उपशान्त हो जाता है । फिर आगे अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण ऐसे दो दो जातिके क्रोधादिक भी क्रमसे उपशमको प्राप्त होते हैं । इसके आगे फिर सज्वलन क्रोध मान एक एक कर्म भी उपशात होते हैं । यह सर्व नौवें गुणस्थानमें उपशमका प्रकार है । फिर आगे दशवें गुणस्थानमें एक माया सज्वलन उपशात हो जाता है । और फिर ग्यारहवें गुणस्थानमें सज्वलन सूक्ष्म लोभ भी उपशात हो जाता है । भावार्थ, ग्यारहवेंमें मोहकर्मकी सर्व २८ प्रकृति उपशात होकर रहती है । ४५५ । ४५६ ।

उपशम किसको कहते है सो ‘ उक्तच ’ श्लोकसे आगे दिखाते हैं ।—

जो फल देनेको समर्थ न हो सके उसको उस समयमें **उपशांत** कहते हैं । और जो सक्रमको भी प्राप्त न हो

शक्यते संक्रमे पाके यदुत्कर्षापकर्षयोः । चतुर्षु कर्म नो दातु शक्यते तन्निकांचितम् ॥ ४५८

अनिवृत्तौ ७ । १ । १ । ६ । १ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । सूक्ष्मे १ । शांते १ । पिंडिताः सप्तभिः सह २८ ।

ताः समुदिताः प्राह—

शांताः क्रमेण सप्ताष्ट नव पंचदश क्रमात् । षोडशाष्टादश ज्ञेया विंशतिर्द्व्युत्तरा च सा ॥ ४५९ ॥

सके उसे निधत्त कहते हैं । ४५७ ।

इसी प्रकार जो संक्रममें भी दिया न जा सके, उदयमें भी लगाया न जा सके, और उत्कर्ष तथा अपकर्षमें भी जोडा न जा सके उसे निकांचित कहते हैं ।

भावार्थ—उपशमके प्रकरणवश निधत्त और निकाचित इन दो अवस्थाओंका भी यहां वर्णन 'उक्तच' वचनसे कर दिया है । निधत्त भी एक प्रकारका उपशम ही है और निकांचित भी एक विशेष प्रकारका उपशम ही है । क्योंकि उपशमका सामान्य लक्षण—कर्मका उदयमें प्राप्त न होना—ऐसा है वह निधत्त तथा निकाचितमें भी पाया जाता है । किंतु उपशमकी प्रकृतिका संक्रम होना निषिद्ध नहीं है वह निधत्तमें निषिद्ध कर दिया है । इसी प्रकार निकांचितमें संक्रम उत्कर्ष अपकर्ष इन तीनोंका भी उदयके निषेधके साथ निषेध कर दिया है । इतना ही उपशमसे निधत्तमें तथा निकाचितमें विशेष है । ४५८ ।

इस प्रकार जो ऊपर ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंतकी उपशांत प्रकृति बताई है उनका यंत्र नीचे देते हैं । —

अनिवृत्तिकरणमें— ७ । १ । १ । ६ । १ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । सूक्ष्ममें— १ । उपशांत ग्यारहवेंमें— १ । सबको जोड लेनेसे ऊपरकी सात प्रकृतियोंके साथ सर्व २८ प्रकृति हो जाती हैं ।

इसी बातको मूलकार आगे दिखाते हैं । —

नौवें गुणस्थानमें प्रथम तो सात प्रकृति उपशांत रहती है, फिर क्रमसे आठ, नौ, पंद्रह, सोलह, अठारह, वीस, और दो अधिक वीस अर्थात् बाईस, फिर चार अधिक वीस अर्थात् चौवीस, फिर पांच अधिक वीस अर्थात् पच्चीस, फिर छह अधिक

|६१४|

चतुर्भिः पचभि षड्भिः सहिता साऽनिवृत्तिके । मप्तभिः सहिता सूक्ष्मे शांते साष्टभिरन्विता ॥ ४६० ॥

७ । ८ । ९ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २५ । २६ । सूक्ष्मे २७ । शांते २८ ।

वीस अर्थात् छव्वीस प्रकृति उपशात होकर रहती हैं। आगे सूक्ष्मलोभ दशवें गुणस्थानमें सात अधिक वीस अर्थात् सत्ताईस प्रकृति उपशात हो जाती है। फिर शांत अर्थात् उपशातकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें आठ अधिक वीस अर्थात् अट्ठाईस प्रकृति उपशात होकर रहती है। यह मोहनीयके उपशमका क्रम है। ४५९। ४६०।

७ । ८ । ९ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २५ । २६ । सूक्ष्ममे– २७ । उपशातमें–२८ ।

उपशमादि सर्व दश अवस्थाए कर्मोंकी कही है। उनको ग्रथकार भी कह रहे हैं किंतु उपशम निधत्त निकाचित आदिका स्वरूप गोमटसारमें कैसा बताया है उसे अत्र यहा देते हैं। —

वधुक्कट्टणकरण सकममोकट्टुदीरणा सत्त । उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी ॥ ४३७ ॥

वधोत्कर्षणकरण सक्रममपकर्षणोदीरणा सत्त्वम् । उदयोपशान्तनिधत्तय· नि काचना भवति प्रतिप्रकृति ॥ ४३७ ॥

अर्थ—वध १ उत्कर्षण २ सक्रमण ३ अपकर्षण ४ उदीरणा ५ सत्त्व ६ उदय ७ उपशान्त ८ निधत्ति ९ निकाचना १० ये दश करण (अवस्था) हरएक प्रकृतिमें होते हैं ॥ ४३७ ॥

आगे इन करणोंका स्वरूप तीन गाथाओंसे कहते हैं,–

कम्माण सबधो वधो उक्कट्टण हवे वड्ढी । सकमणमणत्थगदी हाणी ओकट्टण णाम । ४३८ ।

कर्मणां सम्बन्धो वन्ध उत्कर्षण वृद्धिर्भवेत् । सक्रमणमन्यत्र गति हानिरपकर्षण नाम ॥ ४३८ ॥

अर्थ—कर्मोंका सवध होना अर्थात् मिथ्यात्वादि परिणामोंसे जो पुद्गलद्रव्यका ज्ञानावरणादिरूप होकर परिणमन करनेसे ज्ञानादिको आवरण करना वह वध है जो कर्मोकी स्थिति तथा अनुभागका वढना वह उत्कर्षण हे। जो वधरूप प्रकृतिका दूसरी प्रकृतिरूप परिणमन होजाना वह सक्रमण है। जो स्थिति तथा अनुभागका कम होजाना वह अपकर्षण है।४३८।

अण्णत्थ ठियस्सुदये संथुहणमुदीरणा हु अत्थित्त । सत्त सकालपत्तं उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥ ४३९ ॥
अन्यत्र स्थितस्योदये संस्थापनमुदीरणा हि अस्तित्वम् । सत्त्वं स्वकालप्राप्तमुदयो भवतीति निर्दिष्ट ॥ ४३९ ॥

अर्थ—उदयकालके वाहिर स्थित अर्थात् जिसके उदयका अभी समय नहीं आया ऐसा जो कर्मद्रव्य उसको अपकर्षणके वलसे उदयावली कालमें प्राप्त करना (लाना) उसको उदीरणा कहते हैं। जो पुद्गलका कर्मरूप रहना वह सत्त्व है । और जो कर्मका अपनी स्थितिको प्राप्त होना अर्थात् फल देनेका समय प्राप्त होजाना वह उदय है । ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ४३९ ॥

उदये संकममुदये चउसुवि दादुं कमेण णो सक्क । उवसन्त च णिधत्ति णिकाचिदं होदि ज कम्म ॥ ४४० ॥
उदये सक्रमोदययो चतुर्ष्वपि दातु क्रमेण नो शक्यम् । उपशान्त च निधत्ति निकाचित भवति यत् कर्म ॥ ४४० ॥

अर्थ - जो कर्म उदयावलीमें प्राप्त न किया जाय अर्थात् उदीरणा अवस्थाको प्राप्त न हो सके वह उपशान्त करण है । जो कर्म उदयावलीमें भी प्राप्त न होसके और सक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त न होसके उसे निधत्ति करण कहते हैं । तथा जिस कर्मकी उदीरणा सक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारोंही अवस्थाएं न होसकें उसे निकाचित करण (अवस्थावाला) कहते हैं ॥ ४४० ॥

इस प्रकार दश करणोंका स्वरूप कहकर प्रकृतियोंमें तथा गुणस्थानोंमें करणोंके संभव होनेका प्रकार दो गाथासूत्रोंमें दिखाते हैं —

संकमणाकरणूणा णवकरणा होंति सव्वआऊणं । सेसाण दसकरणा अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा ॥ ४४१ ॥
संक्रमणकरणोनानि नवकरणानि भवति सर्वायुषाम् । शेषाणा दशकरणान्यपूर्वकरण इति दशकरणानि ॥ ४४१ ॥

अर्थ— नरकादि चारों आयुकर्मोंके सक्रमणके विना ९ करण होते हैं । और शेष वचीं सब प्रकृतियोंके १० करण होते हैं तथा मिथ्यादृष्टिसे लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानपर्यंत ये १० करण होते हैं ॥ ४४१ ॥

आदिमसत्तेव तदो सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा । छच्च सजोगित्ति तदो सत्तं उदयं अजोगित्ति ॥ ४४२ ॥

आदिमसप्तैव ततः सूक्ष्मकषाय इति संक्रमेण विना । षट् च सयोगीति ततः सत्त्वमुदय अयोगीति ॥ ४४२ ॥

अर्थ—उस अपूर्वकरणगुणस्थानके ऊपर १० वें सूक्ष्मकषाय गुणस्थानपर्यंत आदिके ७ ही करण होते हैं । उससे आगे सयोगकेवली तक संक्रमणकरणके विना ६ ही करण होते हैं । उसके बाद अयोगकेवलीके सत्व और उदय—ये दो ही करण पाये जाते है ॥ ४४२ ॥

अब ११ वें उपशांतकषायमें कुछ विशेषता कहते है —

णवरि विसेसं जाणे संकममवि होदि संतमोहम्मि । मिच्छस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं ॥ ४४३ ॥

नवरि विशेष जानीहि संक्रममपि भवति शांतमोहे । मिथ्यस्य च मिश्रस्य च शेषाणां नास्ति संक्रमणम् ॥ ४४३ ॥

अर्थ—विशेष बात यह है कि उपशांतकषाय गुणस्थानमें मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीयका संक्रमणकरण भी होता है अर्थात् इन दोनोंके कर्मपरमाणू सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणम जाते हैं ॥ तथा शेष प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता, ६ ही करण होते है ॥ ४४३ ॥

बंधुक्कट्टणकरणं सगसगबंधोत्ति होदि णियमेण । संकमणं करणं पुण सगसगजादीण बंधोत्ति ॥ ४४४ ॥

बन्धोत्कर्षणकरणं स्वकस्वकबन्ध इति भवति नियमेन । संक्रमणं करणं पुनः स्वकस्वकजातीनां बन्ध इति ॥ ४४४ ॥

अर्थ—बंधकरण और उत्कर्षणकरण ये दोनों, प्रकृतिकी अपनी २ बन्धव्युच्छित्तिके ठिकाने होते है । और प्रकृतियोंकी अपनी २ जातिकी जहा बंधसे व्युच्छित्ति है वहापर संक्रमण करण होता है ॥ ४४४ ॥

ओकट्टणकरणं पुण अजोगिसत्ताण जोगिचरमोत्ति । खीण सुहुमंताण खयदेसं सावलीय समयोत्ति ॥ ४४५ ॥

अपकर्षणकरणं पुनरयोगिसत्त्वानां योगिचरम इति । क्षीण सूक्ष्मान्तानां क्षयदेशं सावलिकसमय इति ॥ ४४५ ॥

अर्थ—अयोगीकी ८५ सत्वप्रकृतियोंका सयोगीके अंतसमयतक अपकर्षण करण होता हे । तथा क्षीणकषाय

गुणस्थानमें सत्वसे व्युच्छिन्न हुई १६ तथा सूक्ष्मसापरायमें सत्वसे व्युच्छित्तिरूप हुआ जो सूक्ष्मलोभ–इसप्रकार १७ प्रकृतियोंका क्षयदेशपर्यंत अपकर्षण करण जानना। उस क्षयदेशका काल कहांपर एक समय अधिक आवलिमात्र है। क्योंकि ये १७ प्रकृतियाँ स्वमुखोदयी है। साराश यह है कि प्रकृतिया दो प्रकारकी है—एक स्वमुखोदयी दूसरी परमुखोदयी, उनमेंसे जो अपने ही रूप उदयफल देकर नाश हो जाय वे **स्वमुखोदयी** हैं, उनका काल एकसमय अधिक आवलि प्रमाण है वही क्षय-देश (क्षय होनेका ठिकाना) है। जो प्रकृति अन्यप्रकृतिरूप उदयफल देकर विनष्ट होजाती है वे **परमुखोदयी** हैं, उनके अंतकांडककी अतफालि, क्षयदेश है ऐसा जानना ॥ ४४५ ॥

उवसंत्तोति सुराऊ मिच्छत्तिय खवगसोलसाण च। खयदेसोत्तिय खवगे अट्ठकसायादि वीसाण ॥४४७॥

उपशान्त इति सुरायु मिथ्यत्रयं क्षपकपोडशाना च। क्षयदेश इति च क्षपके अष्टकषायादिविंशानाम् ॥ ४४६ ॥

अर्थ—देवायुका अपकर्षणकरण उपशातकषाय पर्यंत है। मिथ्यात्वादि तीन और ' णिरयतिरिक्खे , इत्यादि सूत्रसे कथित अनिवृत्तिकरणमें क्षय हुई १६ प्रकृतिया इनके क्षयदेश पर्यंत अर्थात् अन्तकाडकके अतफालिपर्यंत अपकर्षण करण है, और क्षपक अवस्थामें अनिवृत्तिकरणमें क्षय हुई जो आठकषायको लेकर २० प्रकृतिया है उनकाभी अपने २ क्षयदेश पर्यंत अपकर्षण करण है। जिस स्थानमें क्षय हुआ हो उसको **क्षयदेश** कहते हैं ॥ ४४६ ॥

मिच्छतियसोलसाण उवसमसेढिम्हि सतमोहोत्ति। अट्ठकसायादीणं उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे ॥ ४४७ ॥

मिथ्यत्रयपोडशानामुपशमश्रेण्या शातमोह इति। अष्टकषायादीनामुपशमिकस्थानक इति भवेत् ॥ ४४७ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीमें उपशातकषायगुणस्थान पर्यंत मिथ्यात्वादि तीन दर्शनमोहनीय और नरक द्विकादिक १६ इन प्रकृतियोंका अपकर्षण करण है। तथा आठ कषायादिकोंका अपने २ उपशम करनेके ठिकाने तक अपकर्षण करण है ॥ ४४७ ॥

पडमकसायाण च विसंजोजक वोत्ति अयददेसोत्ति। णिरयतिरियाउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा ॥ ४४८ ॥

प्रथमकषायाणा च विसयोजक वा इति अयतदेश इति। निरयतिर्यगायुषोरुदीरणसत्त्वोदया सिद्धा ॥ ४४८ ॥

मिथ्यात्वमथ सम्यक्त्व मिश्रमाद्याः क्रुदादयः । चतुर्ष्वसंयताद्येषु क्षीयते सप्त कुत्रचित् ॥ ४६१ ॥
स्त्यानगृद्धित्रय तिर्यग्द्वितय नारकद्वयम् । आतपस्थावरद्वन्द्वमाद्य जातिचतुष्टयम् ॥ ४६२ ॥
सूक्ष्मसाधारणोद्योताः षोडशेता निवृत्तिके । सख्यातव्यतमे भागे यांति प्रकृतयः क्षयम् ॥ ४६३ ॥

अर्थ—अनतानुवधी चारकपायके असयतादि चार गुणस्थानमें यथासभव जहा विसयोजन (अन्यरूप परिणमन) होवे वहातक ही अपकर्षणकरण है। तथा नरकायुके असयतगुणस्थानतक और तिर्यचायुके देशसयतगुणस्थान तक उदीरणा, सत्व उदयकरण ये तीन करण प्रसिद्ध ही हैं, क्योंकि पूर्व इनका कथन होचुका है ॥ ४४८ ॥

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य उदीरणा उवसमाहिमुहियस्स । समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स ॥ ४४९ ॥
मिथ्यस्य च मिथ्येति च उदीरणा उपशमाभिमुखस्य । समयाधिकावलीति च सूक्ष्मे सूक्ष्मस्य लोभस्य ॥ ४४९ ॥

अर्थ—उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके मिथ्यात्वगुणस्थानके अतमें एक समय अधिक आवलि कालतक मिथ्यात्वप्रकृतिका उदीरणाकरण होता है, उतने ही कालतक उसका उदय है। और सूक्ष्मलोभका सूक्ष्मसापरायगुणस्थानमे ही उदीरणा करण है, इससे आगे उदय नहीं है ॥ ४४९ ॥

इसप्रकार उपशमका प्रकरण समाप्त हुआ।

अब क्षयका प्रकरण सुरू करते हैं।

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व ये तीन प्रकृति तथा आदिके अनतानुवधी कोधादि चार कपाय ये सर्व सात प्रकृति हुईं। ये सात प्रकृति असयत चौथे गुणस्थानसे लेकर चार गुणस्थानोंमेंसे अर्थात् सातवें पर्यंत कहींपर भी एक गुणस्थानमें क्षयको प्राप्त होती हैं। ४६१।

स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा प्रकृति, तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी ये दो, आतप स्थावर ये दो, पचेंद्रियको छोडकर शेष एकेंद्रियादि चार जाति प्रकृति, सूक्ष्म, साधारण, उद्योत—ये सर्व सोलह प्रकृति हुईं। ये सोलह निवृत्तिक अर्थात्

तिर्यग्द्वयादयः सद्भिस्तिर्यग्गतिगता मताः । श्वभ्रद्वयादयो जैनैः श्वभ्रीतिगताः पुनः ॥ ४६४ ॥
अष्टौ कोपादयो मध्याः क्षिप्यंतेऽतो नपुंसकम् । स्त्रीवेदः क्रमतः षट्कं ततो हास्यादिगोचरम् ॥ ४६५ ॥
पौंस्नं पौंस्ने विनिक्षिप्य क्रोधः क्रोधे परे परः । माया ततोऽथ मायायां सूक्ष्मे लोभो निकृत्यते ॥ ४६६ ॥
८ । १ । १ । ६ । २ । १ । १ । १ । १ ।
द्वे निद्राप्रचले क्षीणे प्रथमेऽन्त्ये चतुर्दश । क्षणे ज्ञानान्तरायस्था दश दृष्टिचतुष्टयम् । २ । १४ ॥ ४६७ ॥

आठवें गुणस्थानमें सख्यात भागोंमेंसे किसी भागमें क्षयको प्राप्त होती है। ४६३ ।

तिर्यग्गति द्वय आदि तिर्यंच गतिके साथ होनेवाली सर्व प्रकृति यहा तिर्यंच गतिके साथमें समझनी चाहिये। इसी प्रकार नरकगतिद्वय आदि नरकगतिके साथ समझनी चाहिये । ४६४ ।

इसके आगे क्रोधादिक आठ मध्यम कषायोंका क्षय होता है । यह नौवें गुणस्थानका कार्य है । आगे भी नौवें गुणस्थानका ही क्षपण बताते हैं । कषायाष्टकके पीछे नपुसक वेदका क्षय होता है। फिर स्त्री वेदका क्षय होता है । फिर हास्यादि छह नोकषायोंका क्षय होता है । फिर पुरुषवेदका बादरसे सूक्ष्म अवस्थामें जाकर क्षय होता है । फिर शेष रहे संज्वलन चार कषायोंका क्रम इस प्रकार है कि, स्थूल क्रोधका सूक्ष्म क्रोधमें परिणमन होता है फिर सूक्ष्म अवस्थाका भी नाश हो जाता है । इसी प्रकार पर—दूसरा अर्थात् मान कषाय वह भी स्थूलसे सूक्ष्म मान अवस्थामे कृश होकर परिणत होता है, फिर सूक्ष्म मानका नाश होता है । फिर स्थूल मायाकषायका सूक्ष्म मायामें परिवर्तन होकर वह क्षयको प्राप्त होती है । फिर नौवें गुणस्थानके अंतमें स्थूल लोभका सूक्ष्म लोभ रह जाता है और दशवें गुणस्थानके आगे निश्शेष लोभका नाश हो जाता है । ४६५-४६६ ।

यत्र—८ । १ । १ । ६ । २ । १ । १ । १ । १ ।

आगे क्षीणकषायमें क्षय होनेवाली प्रकृतियोंको दिखाते हैं । —

निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृति क्षीणकषायके उपान्त्य समयमें क्षयको प्राप्त होती हैं। फिर अन्त्य समयमे ज्ञानावरण अंत-

॥६२०॥

जीवेतरविपाकानां द्वासप्ततिमयोगकः । उपांतिमे क्षणे हंति चरमे तु त्रयोदश ॥ ४६८ ॥
स्वरद्वयमनादेयमयशोऽपूर्णदुर्भगौ । नभोगतिद्वय वेद्यमेकमुच्छ्वासनीचके ॥ ४६९ ॥

रायकी दश प्रकृति और दर्शनावरणकी चक्षुर्दर्शनावरणादि चार – ऐसे चौदह प्रकृति क्षयको प्राप्त हो जाती है। ४६७।

आगे चल कर पचासी प्रकृतियोंका क्षय चौदहवें गुणस्थानमें होता है उसका क्रम दिखाते है ।—

जीवपर जिनका विपाक हो ऐसी जीवविपाकी । जीवसे इतर अर्थात् उलटा कौन ? पुद्गल । इस पुद्गलपर ही जिनका फल होता है वे इतरविपाकी अथवा पुद्गलविपाकी प्रकृति कहाती है। इनके शिवाय यहापर क्षेत्रविपाकी प्रकृतियोंको भी इतरविपाकी ही प्रकृति बताया है, क्योंकि क्षेत्र भी जीवसे भिन्न ही है । इस प्रकार जीवविपाकी, क्षेत्रविपाकी तथा पुद्गलविपाकी मिलाकर ७२ प्रकृतियोंका क्षय अयोगकेवलीके अत्य समयसे ठीक पूर्व समयमे होता है। और अतिम समयमे तेरह प्रकृतियोंका क्षय होता हे।

भावार्थ, सर्व एकसौ अडतालीम जो प्रकृतियोंके भेद है उनको सामान्यत चार विभागोंमें फलकी अपेक्षासे विभक्त किया है। कुछ जीवविपाकी हे, कुछ भवविपाकी हैं, कुछ क्षेत्रविपाकी है, और कुछ पुद्गलविपाकी हैं । आयु चारोंको भवविपाकी कहा है । भव अर्थात् नरकादि पर्यायरूप वनाये रखनेमें आयु कारण है इसलिये आयु कर्म भवविपाकी है। आनुपूर्वी चारो क्षेत्रविपाकी है । क्षेत्र अर्थात् विग्रहगतिके क्षेत्रमे इन आनुपूर्वियोंका पूर्वाकार जीवको रखनेरूप फल अथवा विपाक होता है इसलिये इन चारो आनुपूर्वियोंको क्षेत्रविपाकी कहते है। घाती सर्व प्रकृति और कुछ नामकर्म आदिकी प्रकृतियोंको मिलाकर ७८ प्रकृतियोंको जीवविपाकी कहा है। जीवपर सीधा जिनका उदय हो वे जीवविपाकी हे । इनके सिवाय जो बची प्रकृति वे सर्व पुद्गलविपाकी कहाती हैं। शरीरादि कर्म पुद्गलविपाकी हैं। ४६८।

अब आगे क्रमसे ऊपरकी ७२ और तेरह प्रकृतियोंको गिनाते हैं।—

सुस्वर दु स्वर दो, अनादेय, अयश कीर्ति, अपर्याप्त, दुर्भग, विहायोगति प्रशस्त अप्रशस्त दोनो, दोनोंमेंसे एक कोई भी

जीवपाकाः सुरेत्यामा नाम्नोऽन्या पुद्गलोदयाः। एकोनषष्टिसंख्याना दक्षैः प्रकृतयः स्मृताः। १२।५९ ॥४७०॥
कायबंधनसघाताः प्रत्येक पचकप्रमाः। अगोपांगत्रय षट्कं सस्थानानां शुभद्वयम् ॥ ४७१ ॥
अष्टौ स्पर्शा रसाः पच वर्णाः पच स्थिरद्वयम्। निर्माण गंधयोर्युग्म षट्क सहतिगोत्वरम् ॥४७२॥
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्वे परघातोपघातके। एकोनषष्टिरेषात्र विज्ञेया पुद्गलोदया ॥ ४७३ ॥
सह देवानुपूर्व्येता मीलिताः क्षेत्रपाकया। ज्ञेया द्विर्मसप्तिः सति सर्वाः प्रकृतयः स्फुटम् ॥ ४७४ ॥
मीलिताः ७२।

वेदनीय, उच्छ्वास, नीचगोत्र ये ग्यारह यहापर जीवविपाकी प्रकृति ली गई है। और देवगति भी जीवविपाकी इन्हीके साथ ली है। ये सर्व १२ प्रकृति हुई। और इनके साथ नामकर्ममेंकी दूसरी पुद्गलविपाकी उनसठि प्रकृति समझलेनी चाहिये। ते उनसठि इस प्रकार है।— शरीर बधन सघात ये प्रत्येक पाच पाच अर्थात् पन्द्रह, तीन अगोपाग, छह सस्थान, शुभ अशुभ दोनो, आठ स्पर्श पाच रस, पाच वर्ण, स्थिर अस्थिर दोनो, निर्माण, दो गध, छह सहनन, प्रत्येक, अगुरुलघु, परघात, उपघात, ये उनसठि (५९) प्रकृति पुद्गलविपाकी यहापर लीजाती है। इनमे एक देवानुपूर्वी क्षेत्रविपाकी प्रकृति और भी मिल जाती है। ये मिलानेपर सर्व ७२ प्रकृति होती हैं। ४६९-४७४।

---

१ ' सुरेति ' यह शब्द मूलमें आया है उसका अर्थ सुरगति अथवा देवगति है। यहा और कहीं भी देवगति गिनाई नहीं है किंतु देवगतिके जोडनेसे ही बहत्तरि सख्या पूरी होती है। गोमटसारमे भी और प्रकृतियोंके शिवाय देवगति भी गिनाई है। इसलिये यहा ' सुरेति ' का अर्थ देवगति प्रकृति ही है। मुद्रित मूल पुस्तकमे ' स्युरेति ' ऐसा अशुद्ध पाठ पड गया है। उससे बहत्तरिकी सख्या ही पूरी नहीं होपाती है। इसलिये ऊपर बताया हुआ ही पाठ शुद्ध है। हस्तलिखित मुंबई सरस्वती भवनकी प्रतिमें यही पाठ शुद्ध है। ' सुरेत्या अमा ' ऐसा पदच्छेद है।

२ मूलमें पाठ ' ससति ' ऐसा है वह अशुद्ध है।

वेद्यमेकतरं स्थूलं नरायुर्नृद्वय त्रसम् । यशः पर्याप्तमादेयं उच्चं पचाक्षसुभगे ॥ ४७५ ॥
हत्वा तीर्थकृता सार्द्धं तीर्थकारी त्रयोदश । इतरः केवली याति द्वादशैव शिवास्पदम् ॥ ४७६ ॥

उपान्त्य समयमें एक वेदनीयका नाश हो जाता है। उससे बची हुई दूसरी एक वेदनीय इन अन्त्य समयमें नाश पानेवाली तेरह प्रकृतियोंमें लीजाती है। इसके शिवाय स्थूल अर्थात् बादर प्रकृति, मनुष्यायु, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये दो, त्रस, यशकीर्ति, पर्याप्त, आदेय, उच्चगोत्र, पचेंद्रिय जाति, सुभग ये सर्व बारह प्रकृति हुई । यदि यह अयोग केवली तीर्थकर्ता अर्थात् तीर्थकर हो तो तीर्थकरत्व प्रकृतिको लेकर ऊपरकी बारहको नष्ट करता है। अर्थात् तीर्थकर केवली, तीर्थकरत्व प्रकृतिको लेकर सर्व तेरह प्रकृतियोंका नाश करके मुक्तस्थानको पहुचता है। और वह केवली यदि तीर्थकर न होकर इतर अर्थात् सामान्य हो तो उसके तीर्थकर प्रकृति नहीं रहती इसलिये वह ऊपर कही हुई १२ प्रकृतियोंका नाश करके शिवस्थानको पहुचता है।

भावार्थ, यहा मनुष्यगत्यानुपूर्वीके शिवाय शेष सभी प्रकृति उदयगत मानी गई। अन्त्य समयमें उदयगत प्रकृतियोंका विच्छेद होता है। और उपान्त्य समयमें जो ७२ प्रकृति विच्छिन्न होनेवाली गिनाई हैं उनमें बहुतसी अनुदयगत हैं। अर्थात् उदयगत नहीं हैं, केवल सत्तारूप हैं। दोनो वेदनीयोंमेंसे भी एक वेदनीय प्रकृति बहत्तरिमें गिनाई है और बची हुई दूसरी वेदनीय प्रकृति अंतकी तेरह प्रकृतियोंमें गिनाई है। इसका भी कारण यहीं है कि उपान्त्य समयमें जो उदयगत वेदनीय प्रकृति रहती है उसका तो नाश आगे चलकर अन्त्य समयमें होता है और जो दोनोंमेंसे अनुदयगत उपान्त्य समयमें होती है उस वेदनीयका नाश उसी उपान्त्य समयमें हो जाता है। केवलीके भी दोनो ही वेदनीय आगे पीछे उदयमें आती रहती है। हा, यह बात अवश्य है कि असातावेदनीयका भी उदय वहापर सातारूप होजाता है। क्योंकि, कोई भी परिस्थिति वहांपर आत्माके प्रतिकूल नहीं रहती । सर्व निमित्त अनुकूल ही रहते हैं। ४७५–४७६ ।

।६२३।

पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंकी संख्या गोमटसारके आधारपर यहा उद्धृत करके कहते है—

देहादी फासंता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च । थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतिय पोग्गलविवाई ॥ ४७ ॥

देहादय स्पर्शांता पचाशत् निर्माणातापयुगल च । स्थिरशुभप्रत्येकद्विकमगुरुत्रय पुद्गलविपाकिन्य ॥ ४७ ॥

अर्थ—पाच शरीरोंसे लेकर स्पर्शनामतक ५० तथा निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, शुभ और प्रत्येकका जोडा अर्थात् स्थिर, अस्थिर वगैर छ तथा अगुरुलघु आदिक तीन ये सब ६२ प्रकृतिया पुद्गलविपाकी हे अर्थात् इनका फलरूप उदय पुद्गलमेंही होता है ॥ ४७ ॥

अब भव-क्षेत्र-जीवविपाकी प्रकृतियोंको कहते है —

आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ । अट्ठत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा ॥ ४८ ॥

आयूंषि भवविपाकीनि क्षेत्रविपाकीनि च आनुपूर्व्याणि । अष्टसप्ततिरवशिष्टा जीवविपाकिन्य मतव्या ॥ ४८ ॥

अर्थ—नरकादिक चार आयु भवविपाकी हे अर्थात् मनुष्यादिपर्यायोंमेंही इन प्रकृतियोंका फल होता है । चार आनुपूर्वी प्रकृतिया क्षेत्रविपाकी है क्योंकि परलोकको गमन करते हुए जीवके मार्गमें इनका उदय होता है । और जो बाकी अठत्तरि प्रकृतिया हैं वे सब जीवविपाकी जानना अर्थात् नारक आदि जीवकी पर्यायमेंही इनका उदय (फल) होता है ॥ ४८ ॥

अब उन्हीं अठत्तरि प्रकृतियोंको गिनाते है —

वेदणियगोदघादीणेकावण्णं तु णामपयडीणं । सत्तावीसं चेदे अट्ठत्तरि जीववाईओ ॥ ४९ ॥

वेदनीयगोत्रघातिनामेकपचाशत् नामप्रकृतीनाम् । सप्तविंशतिश्चैता अष्टसप्तति जीवविपाकिन्य ॥ ४९ ॥

अर्थ—वेदनीयकी २ गोत्रकी २ घातियाकर्मोंकी ४७ इसप्रकार ५१ और सत्ताईस नामकर्मकी इसतरह ५१+२७=७८ प्रकृतिया जीवविपाकी है ॥ ४९ ॥

कर्मक्षयक्रममाह—

आगे नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियोंकी सख्या गोमटसारसे दिखाते हैं,—

तित्थयर उस्सास बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं । जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीस ॥ ५० ॥

तीर्थंकरमुच्छ्वास बादरपर्याप्तसुस्वरादेयम् । यशस्त्रसविहायस्सुभगद्वयं चतुर्गतय पञ्चजातय. सप्तविंशति. ॥ ५० ॥

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्वास, बादर-पर्याप्त-सुस्वर-आदेय-यश कीर्ति-त्रस-विहायोगति सुभग इन आठके जोडा अर्थात् बादर-सूक्ष्म आदिक सोलह, नरकादि चार गति, एकेन्द्रियादि पाच जाति इसप्रकार सत्ताईस नामकर्मकी प्रकृतिया जीवविपाकी जानना ॥५०॥

अब उन्हीं सत्ताईस प्रकृतियोंको क्रमसे दिखाते हैं,—

गदि जादी उस्सास विहायगदि तसतियाण जुगल च । सुभगादिचउज्जुगल तित्थयर चेदि सगवीस ॥ ५१ ॥

गति जाति. उच्छ्वास विहायोगति त्रसत्रयाणा युगलं च। सुभगादिचतुर्युगल तीर्थंकर चेति सप्तविंशति ॥ ५१ ॥

अर्थ—चार गति, पाच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्त इन तीनके जोडा (त्रस स्थावर वगैरः) और सुभग-सुस्वर-आदेय-यश कीर्ति इन चारके जोडा (सुभग दुर्भग आदि) और तीर्थंकर प्रकृति इस प्रकार क्रमसे सत्ताईसकी गिनती कही ॥ ५१ ॥

अब सत्तामें रहनेवाली प्रकृतियोंका क्षय गुणस्थानोंमें कैसे होता है इस बातको आगे टिप्पणकार बताते हैं ।—

प्रत्येक गुणस्थानकी क्षीण प्रकृतियोंको तथा शेष रही सत् प्रकृतियोंको यंत्रों द्वारा बताया है । प्रत्येक यत्रमें सबसे ऊपरका जो आकडा हो वह क्षीण हुई प्रकृतियोंका आकडा समझना । उसके नीचे जो आकडा दिया है उसे उस गुणस्थानमें सत्त्व प्रकृतियोंका आकडा समझना । उसके भी नीचे तीसरा एक आकडा रहेगा उसे असत्त्व प्रकृतिका समझना । इस तीसरे आकडामें जो असत्त्व प्रकृति बताई जायगी उनमें कुछ तो ऐसी है जिनका सुरूसे यहातक क्षय हो चुका हो, और कुछ कहीं कहीं पर ऐसी

श्वभ्रदेवतिर्यगायुर्भिर्विना मिथ्यादृष्टौ— 0/१४५/३ तीर्थकराहारकद्वयहीनाः शासने— 0/१४२/६

भी हैं जिनकी उस गुणस्थानमें सत्ता रहनेकी योग्यता नहीं है किंतु आगे फिर भी सत्ता रह सक्ती है। इनको क्षीण हुई प्रकृति नहीं समझलेना चाहिये। यह सर्व खुलासा नीचेके यंत्रोंको देखनेसे होसकता है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें— 0/१४५/३

यहापर नरकायु देवायु तथा तिर्यंच आयु ये तीन प्रकृति नहीं हैं इसलिये शेष बची १४५ की सत्ता बताई है। इसका कारण यह है कि जो जीव कर्मोंका क्षय करनेमें तत्पर हुआ है उसीमें सत्ताका क्षय होना सभव है। ऐसा वह जीव अंतमें सर्व कर्मोंकी सत्ताका क्षय करके मुक्त हो जाता है। इसलिये यहा मिथ्यात्वमें भी उसी जीवकी अपेक्षा ली गई है जो आगे क्षपक श्रेणी चढेगा। और जो क्षपक श्रेणी चढेगा उसके नरकायु देवायु मनुष्यायु इन तीन आयुओंमेंसे किसीकी सत्ता नही रह सकती है। इसलिये तीन आयुओंकी असत्ता बताई गई है। यहा प्रथम गुणस्थानमें क्षय किसीका भी नहीं है इसलिये प्रथम कोष्टकमें शून्य दिया है। दूसरे बीचके कोष्टकमें १४५ का आकडा है उसका अर्थ १४५ प्रकृतितक सत्तामें समझना। नीचेके तीसरे कोष्टकमें ३ का आकडा है। उसका अर्थ नरकायु आदि तीन प्रकृतियोंकी यहा सत्ता नहीं है। ऐसे ही आगे भी समझना।

सासादनमें— 0/१४२/६

आहारकद्विकेन सह मिश्रे— $\frac{0}{144}$ / ४ तीर्थकरेण सहाविरते— ७ / १४५ / ३

देशे ७ / १४५ / ३ प्रमत्ते— ७ / १४५ / ३

इस दूसरे गुणस्थानमें नरकायु आदि तीन तो प्रकृति नहीं ही हैं किंतु तीर्थंकर तथा आहारकद्वय ये तीन और भी घट जाती हैं इसलिये १४२ की सत्ता, ६ की असत्ता बताई है। तथा क्षपणस्थानमें शून्य है अर्थात् यहा क्षय किसी प्रकृतिका नहीं है।

मिश्रमें आहारकद्वयके बढ जानेसे— ० / १४४ / ४ अविरत सम्यग्दृष्टिमें तीर्थकरत्व बढ जानेसे— ७ / १४५ / ३

चौथेसे सातवें गुणस्थान पर्यंतके बीचमें किसी भी एक गुणस्थानमें अनंतानुबंधी आदि सात प्रकृतियोंका क्षय होता है। इसलिये चौथेसे सातवें पर्यंत यही ७ का क्षय चारो गुणस्थानोंमें दिखाया है और सत्ता भी चारोंमें १४५ की दिखाई है। क्योंकि जो सातवेंमें ही इन सातोंका क्षय करेगा उसके सातवें गुणस्थान पर्यंत १४५ की सत्ता रह सकती है। यहा भी नरकायु आदि ३ की सत्ताका अभाव है। इसी प्रकार —

देशव्रतमें— ७ / १४५ / ३ प्रमत्तमें ७ / १४५ / ३

अप्रमत्ते–	७ १४५ ३
अपूर्वे–	० १३८ १०

अनिवृत्तिनवभागेषु—	१६	८	१	१	६	१	१	१	१
	१३२	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५

सूक्ष्मे, शांते–	१ १०२ ४६
क्षीणे क्षणद्वये–	१४ ९९ ४९

अप्रमत्तमें–	७ १४५ ३
अपूर्व करणमें–	० १३८ १०

सातवेंमें मात प्रकृतियोंका क्षय अवश्य होजाता है और नरकायु आदि तीन आयु सत्तामें है ही नहीं; इसलिये आठवेंमें सत्ता १३८ प्रकृतिकी और असत्ता १० की है। यहा सत्त्वक्षय किसीका भी नहीं है इसलिये ऊपरके कोष्टकमें शून्य है।

अनिवृत्तिके नौ भागोंमें–	१६	८	१	१	६	१	१	१	१
	१३२	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५

सूक्ष्ममें तथा उपशातमें -	१ १०२ ४६	
क्षीणकपायके समयद्वयमें–	२ १०० ४८	१४ ९९ ४९

मूलमें तथा व्याख्यामें सूक्ष्मकषायके तथा क्षीणकषायके यंत्रोंको हमने सुधारा है।

	०		७२	१३		०
सयोगे–	८५	अयोगे समयद्वये–	८५	१३	सिद्धे–	०
	६३		६३	१३५		१४८

	०		७२	१३		०
सयोगकेवलीमें–	८५	अयोगकेवली दोनों समयोंमें–	८५	१३	सिद्धोंमें–	०
	६३		६३	१३५		१४८

सयोग केवलीकें सत्ताका नवीन क्षय नहीं है इसलिये कोष्टकमें ऊपर शून्य है। सिद्धोंमें सत्ता है ही नहीं इसलिये सत्ताके क्षयस्थानमें भी शून्य है और सत्तास्थानमें भी शून्य है।

सत्त्वक्षय करनेवालोंमे निर्जरा किस क्रमसे होती हे उसे यहा विशेपतासे वताते हैं।—

सातिशय मिथ्यादृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुनन्धी कर्मका विसयोजन करनेवाला, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाला, कषायोंका उपशम करनेवाले ८–९–१० गुणस्थानवर्ती जीव, उपशातकषाय, कषायोंका क्षपण करनेवाले ८–९–१० गुणस्थानवर्ती जीव, क्षीणमोह, सयोगी अयोगी दोनों प्रकारके जिन, इन ग्यारह स्थानोंमें द्रव्यकी अपेक्षा कर्मकी निर्जरा क्रमसे असख्यातगुणी २ अधिक होती है। और उसका काल इससे विपरीत है–क्रमसे उत्तरोत्तर सख्यातगुणा २ हीन है। भावार्थ– सादि अथवा अनादि दोनोंही प्रकारका मिथ्यादृष्टि जब करणलब्धिको प्राप्त कर उसके अधःकरणपरिणामोंको भी विताकर अपूर्वकरण परिणामोंको ग्रहण करता है, उस समयसे गुणश्रेणिनिर्जराका प्रारम्भ होता है। इस सातिशय मिथ्यादृष्टिके जो कर्मोंकी निर्जरा होती है उससे सम्यग्दृष्टिकी निर्जरा असख्यातगुणी अधिक है। श्रावक अवस्था प्राप्त होनेपर जो कर्मकी निर्जरा होती है वह सम्यग्दृष्टिकी निर्जरासे असख्यातगुणी अधिक है। इसी प्रकार विरतादि स्थानोंमे भी उत्तरोत्तर क्रमसे असंख्यातगुणी २ कर्मकी निर्जरा होती है। तथा इस निर्जराका काल उत्तरोत्तर सख्यातगुणा २ हीन है। अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टिकी निर्जरामे जितना काल लगता है, श्रावककी निर्जरामें उससे सख्यातगुणा कम काल लगता है। इसी प्रकार विरतादिमें भी

रत्नत्रयफलं प्राप्ता निर्बाधं कर्मवर्जिताः । निर्विशंति सुखं सिद्धास्त्रिलोकशिखरस्थिताः ॥ ४७८ ॥
अष्टचत्वारिंशतं कर्मभेदानित्थं हत्वा ध्यानतो निर्वृता ये ।
स्वस्थानंतामेयसौख्याब्धिमग्नास्ते नः सद्यः सिद्धये सन्तु सिद्धाः ॥ ४७९ ॥

समझना चाहिये । और निर्जरामें असख्यात गुणी अधिकता उत्तरोत्तर बताई है वह दश स्थानोंमें सम्यग्दृष्टिसे लेकर समझनी चाहिये । सम्यग्दृष्टिमें जो वह निर्जरा असंख्यात गुणी वताई है वह सातिशय मिथ्यादृष्टिकी निर्जरासे असख्यात गुणी है ऐसा समझना । इस प्रकार असख्यात गुणित निर्जराके तो सम्यग्दृष्टिसे लेकर दश स्थान हैं किंतु निर्जरा सुरू होनेसे गिने जाय तो सातिशय मिथ्यादृष्टिका भी एक प्रथम स्थान गिन लिया जाता है इसलिये सर्व स्थान ग्यरह हो जाते हैं ।'

सर्व कर्मोंका नाश होकर जो सिद्धावस्था प्राप्त होती है उसका आगे विशेष वर्णन करते है । —

रत्नत्रयके फलको जो प्राप्त हो चुके हैं क्योंकि कर्मोंसे सर्वथा छूट चुके है ऐसे वे सिद्ध भगवान् वाधारहित सुखमें प्रवेश करते हैं और त्रैलोक्यके ऊपरी भागमें जाकर विराजमान होते हैं ॥ ४७८ ॥

कर्म सर्व एक सौ अडतालीस हैं । उनका क्रमसे कैसे नाश होता है यत वात ऊपर विशदतासे बतादी है । सर्व कर्मोंका इस प्रकार ध्यानद्वारा नाश करके जो संसारसे निवृत्त होगये है, और इसीलिये जो अपने स्वरूपमें रहने वाले अनत अपार सुखसमुद्रमें मग्न हो चुके हैं ऐसे वे सिद्ध परमात्मा हमको शीघ्र ही सिद्धिकेलिये होवो ।

यहापर कर्मोंका नाश बताना उपलक्षण है । कर्मोंके नाशके साथ नोकर्मोंका भी नाश हो जाता है । शरीर इंद्रिय मन संस्कार रागद्वेषादि— ये सर्व नोकर्म कहाते हैं । इन सर्व संसारी अवस्थाओंका कर्म कारण है । कारणका नाश बतादेनेसे कार्यका नाश स्वयमेव सिद्ध होजाता है । इसलिये शरीरादिका तथा रागद्वेषादिका नाश करनेकेलिये जुदा प्रयत्न नहीं करना पडता है ।

जब इस प्रकार कार्यकारण भेदसे अनेक प्रकारकी उपाधिका नाश हो जाता है तव आत्मा मूल स्वरूपमें प्रगट होता अथवा आत्माका मूल स्वरूप शेप रह जाता है । उस मूल स्वरूपका तीसरे चरणमें दिग्दर्शन कराया है । ससारी जीव जिस

यस्मात्सर्वं कृत्रिमं नाशि दृष्टं सत्यज्यैक पावनं सिद्धिलाभम् ।
तस्मादन्यत्सद्भिरस्त्यस्य कार्यं कार्यो यत्नः सर्वदा सिद्धिलब्ध्यै ॥ ४८० ॥

निर्वाध, अखड, अनत, स्वाधीन अथवा स्वोत्थ सुखको न पाकर भटकते हैं और दु खी होते हैं वह सुख विकारके हट जानेसे अपनेमें ही रहा हुवा, अत एव स्वाधीन निर्वाध अविनाशी अपार ऐसा सुख प्रगट हुआ दीखने लगता है । इस सुखको स्वाधीन अपार अविनश्वर समझकर समुद्रकी उपमा ग्रथकारने दी है ।

विकारका नाश होने पर भी मूल स्वरूप शेप रह जाता है ऐसा तात्पर्य है । इसलिये जो वहिरात्मताको ही जीव माननेका मिथ्याज्ञान है उसका भी खडन होता है, और विकारका नाश होनेपर कुछ भी शेप नही रहता है ऐसे मतका भी खडन हो जाता है । कुछ लोग कहते हैं—तेल खतम होते ही जैसे दीपक बुझ जाता है वैसे ही कर्मोका और रागद्वेपादिका नाश होने पर जीवका स्वरूप अस्त हो जाता है । इस मतका जैनाचार्योने खंडन किया है । क्योंकि, केवल-विकार ही जीव नहीं है । कोई मूल स्वभाव भी जीवतत्वका होना चाहिये । उन स्वभाव—शक्तियोंमेंसे ही सर्वानुभवगोचर सुख गुण भी एक प्रधान स्वरूप है । सिद्ध अवस्थामें सर्व विकारका नाश करके जीव उस शुद्ध सुखको भोगनेवाला वन जाता है । सुख है वह अनुभवरूप है इसलिये ज्ञानका भी निर्विकार अस्तित्व सुखके निर्विकार अस्तित्वसे सिद्ध हो जाता है । यही परमात्माका स्वरूप है ।

चौथे चरणमें ऐसे सिद्ध परमात्माओंके प्रसादसे अथवा ध्यानसे-भक्तिसे अपनेको भी वैसा ही निराकुल सिद्ध पद प्राप्त होनेकी ग्रन्थकारने अभिलापा तथा प्रार्थना की है ॥ ४७९ ॥

इस सिद्ध पदको पानेकेलिये कौनसा प्रयत्न किया जाता है उसको आगे दिखाते है —

जो सिद्ध पदकी इच्छा रखता है अथवा ससारके परिभ्रमणसे त्रस्त हो चुका है वह देखता है कि जो सर्व आजपर्यंत भोगा हुआ दु ख अर्थात् पुद्गलसबध है वह कृत्रिम है — सयोगसे उत्पन्न होता है अथवा राग द्वेपके द्वारा जो कर्मबध होता है उसके उदयसे यह सर्व दृश्य पसारा अनुकूल प्रतिकूल इकट्ठा होता है । इसीलिये यह नाशवत भी अवश्य है । **सयुक्तानां वियोगस्तु**

कल्मषाष्टकमपास्य सर्वथा । ये गुणाष्टकमवापुरूर्जितम् ।
जातिमृत्युभवदुःखवर्जितास्ते वसतु मम निर्वृता हृदि ॥ ४८१॥
दृष्टिवादमकराकरादिद । प्राभृतंकलवरत्नमुद्धृतम् ।
ज्ञानदर्शनचरित्रबृहक । गृह्यता शिवनिवासकांक्षिभिः ॥ ४८२ ॥

भविता हि नियोगतः । ऐसा नियम है कि जो सयोगसे जन्य होगा वह अवश्य नाश पावेगा । इसलिये ऐसे कृत्रिम पराश्रित नश्वर अन्य सर्व परसबधको छोडकर पवित्र सिद्धपदको एक अद्वितीय तथा अनुपम समझकर साधना चाहिये । इसीकेलिये सदा सिद्धिका लाभ हो ऐसा यत्न करना चाहिये । पर वस्तुओंको–सर्व संसारकी अवस्थाओंको अपना घातक विरुद्ध समझकर उनसे उपेक्षाबुद्धि उत्पन्न करना ही यहापर यत्न है । वह उपेक्षारूप यत्न तभी हो सकता है जब कि आगे इस दृष्टसे अधिक शाश्वतिक सुखके स्वरूपका लाभ होना संभव हो । इसीलिये सिद्धपद जो अनुपम तथा स्वाधीन सुखमय अवस्था है उसका भी ध्यान करते रहना चाहिये । यही इस वचनका तात्पर्य है ॥ ४८० ॥

सिद्धोंका ही विशेष स्वरूप ध्यान करनेके लिये आगे और भी बताते है । —

आठ प्रकारके कर्मरूप मलको सर्वथा नष्ट करके जो उन्नत आठ गुणोंको प्राप्त कर चुके है और ससारसबधी जन्म मरणादि दुःखोंसे छूट गये है ऐसे सिद्ध परमात्मा मेरे हृदयमे आकर बसो । अर्थात् उनका मै सर्वदा ध्यान करता रहू । आठ गुणोंको आगे दिखाते है और जन्म मरण आदि अठारह दोष ग्रथोंमें बताये है वे सिद्ध परमात्मामे नहीं रहते है ऐसा तात्पर्य है । सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व – ये आठ गुण है जो आठ कर्मोंके नाशसे सिद्धावस्थामे प्रगट होते है । ४८१ ।

दृष्टिवादरूपी समुद्रसे यह कर्मप्राभृतरूप एक रत्नके समान अश उद्धृत किया है । यह ग्रथ ज्ञान दर्शन चारित्र इन तीनो गुणोंका वर्धक है । इसे जो मोक्षस्थानमे निवास करनेकी इच्छा करते हैं वे ग्रहण करें ॥ ४८२ ॥

बंध पाक कर्मणां सत्त्वमेतद्वक्तुं शक्त दृष्टिवादप्रणीतम् ।
शास्त्रं ज्ञात्वाऽभ्यस्यते येन नित्य सम्यक् तेन ज्ञायते कर्मतत्त्वम् ॥ ४८३ ॥
कर्मबंधगुणजीवमार्गणास्थानयोजनपरायणोऽस्ति यः ।
सत्तपोदलितकर्मसंहतिः सोऽस्तु तेऽमितगतिः शिवास्पदम् ॥ ४८४ ॥

इति सप्तति समाप्ता ।

इस ग्रंथका पूर्वसंबंध, विषय और पढनेका फल—

यह ग्रंथ दृष्टिवादसे लेकर बनाया है, इसमें कर्मोंका बंध उदय सत्त्व बताया गया है। बंधउदयसत्ताके स्वरूपको प्रतिपादन करनेमें यह ग्रंथ समर्थ है। इस शास्त्रको समझकर जो अभ्यास करते हैं वे अच्छी तरहसे कर्मतत्वको समझने लगते हैं। यही इस ग्रंथके पढनेका साक्षात् फल है। ग्रंथके अध्ययनका परंपरा फल मोक्षप्राप्ति होना भी माना जाता है। क्योंकि कर्मबन्ध ही संसारका कारण है इस बातको जो जानलेगा वह कर्मबंधनसे छूटनेका अवश्य प्रयत्न करेगा। धवलटीकाकारने आरंभमें कहा है कि,

'शब्दात्पदप्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति। अर्थात् तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः ॥'

कर्मोंका बंध, गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा, इन सर्व स्थानोंको परस्परमें जोडकर समझनेकेलिये जो तत्पर रहता है वह समीचीन मोक्ष प्रयोजनके लिये तप करके कर्मोंके समूहका नाश करता हुआ 'अमितगति' अर्थात् अनंत ज्ञानको धारण करनेवाला होकर मोक्षस्थानको पाता है। ४८३–४८४।

इस प्रकार श्री अमितगति आचार्यप्रणीत इस पंचसंग्रहमें सप्तति नामका पांचवा अधिकार पूर्ण हुआ।

हस्तलिखित मूल ग्रंथमें 'इति सप्तति समाप्ता' ऐसा ही पाठ है।

८०

नत्वा जिनेश्वरं वीरं बंधस्वामित्त्वसूदनम् । वक्ष्याम्योघविशेषाभ्यां बंधस्वामित्वसंभवम् ॥ १ ॥
गुणस्थानं प्रति बंधः कथ्यते- -
सप्तदशैकाधिके शते ततः सप्तति चतुर्युक्ताम् । सप्ततिमथ सप्तयुतां सप्तत्यग्रे क्रमात्षष्टी ॥ २ ॥
एकविहीना षष्टि प्रकृतीः सप्तादिमा निबध्नंति । षष्टि द्विचतुर्न्यूनां षड्विंशतिमष्टमस्तस्मात् ॥ ३ ॥
विंशती द्व्येकसयुक्ते तां ते चैकद्विवर्जिते । नवम पचकेंशानां सूक्ष्म सप्तदशैव ताः ॥ ४ ॥

अथ बन्धस्वामित्व नामका छट्ठा अधिकार.

श्री वीर जिनेश्वर, जिन्होंने बंधके अधिकारी जो गुणस्थान तथा मार्गणास्थान, उनका नाश करदिया, उनको नमस्कार करके मैं बंधस्वामित्वको सामान्य विशेषके द्वारा कहूगा । गुणस्थानोंमें सामान्य वर्णन ही हो सकता है इसलिये गुणस्थानाधिकारको सामान्य कहते है । मार्गणाओंमें बंधकी विचित्रता विस्तारसे वर्णन करनेमें आती है इसलिये मार्गणास्थानोंको विशेष कहते है ।१।

अब आगे गुणस्थानोंमें सबसे प्रथम बंधकी योजना करते हैं ।—

सत्रह अधिक सौ, एक अधिक सौ, फिर चार अधिक सत्तरि, फिर सात अधिक सत्तरि, फिर क्रमसे ऊपर सात अधिक साठि, तीन अधिक साठि, एक घाटि साठि-इतनी इतनी प्रकृतियोंको क्रमसे आदिके सात गुणस्थानवाले बांधते है । फिर अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानवाला तीन प्रकारकी प्रकृतिसंख्याको क्रमसे बांधता है । प्रथम दो घाटि साठिको, फिर आगे चार घाटि साठिको, फिर अंतमें छब्बीसको बांधता है । २–३ ।

नौवें गुणस्थानमें पांच भाग हैं । उन पांचों भागोंमें-प्रथमसे अंत पर्यंत क्रमसे प्रत्येक भागमें-कम कम करके प्रकृतियोंको बांधता है । उनकी क्रमसे प्रकृतिसंख्या इस प्रकार है ।-प्रथम भागमें दो अधिक वीस प्रकृतियोंको बांधता है, फिर दूसरे भागमें एक अधिक वीसको बांधता है । तीसरे भागमें केवल वीसको बांधता है । ' तां ' शब्दसे केवल वीस अर्थ लिया

तस्मादेक त्रय सातमयोगो वधवर्जित । विंशत शतमोवेन वधप्रकृतयो मता ॥ ५ ॥

सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वैकगधस्पर्शसप्तकरसचतुष्कवर्णचतु ष्टयबधनपचकसघातपचकलक्षणामष्टविंशति वर्जयित्वा शेषा वधप्रकृतयः १२० । अवधा २८ ।

तीर्थकराहारकद्वये सम्यक्त्वसयमाभ्या बध्येते यस्मात्तस्मात्ताभ्यां विना मिथ्यादृष्टौ–१६,११७। शासने–२५,१०१ ।

गया है। फिर चौथे भागवाला एक घाटि वीसको बाधता है। फिर पाचवें भागवाला दो घाटि वीसको बाधता है। आगे दशवें सूक्ष्मकपाय गुणस्थानमें जो पहुच जाता है वह सत्रह प्रकृतियोंको बाधता है। ४।

आगे ग्यारहवें बारहवें तेरहवें इन तीन गुणस्थानवाले योगी एक सातवेदनीयको ही बाधते है। अतिम अयोग केवली चौदहवें गुणस्थानवाला बधसे सर्वथा ही छूट जाता है। इस प्रकार एकसौ वीस प्रकृति गुणस्थानोंके अनुसार बधप्रकृति मानी गई हैं। ५।

सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति, एक गध, सात स्पर्श, चार रस, वर्ण प्रकृति चार, बधन पाच, सघात पाच, इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृति बधमे शामिल नहीं की जाती इसलिये सर्व एकसौ अडतालीसमेंसे अट्ठाईसको घटानेसे शेष १२० प्रकृति बधयोग्य हैं। २८ अबध प्रकृति हैं।

तीर्थकरत्व प्रकृति सम्यक्त्वके निमित्तसे बधको प्राप्त होती है और आहारकद्वय सयमके साथ बधयोग्य हैं इसलिये मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ऊपरकी तीनो घट जानेसे बधयोग्य एकसौ सत्रह हैं तथा १६ बधसे व्युच्छिन्न होनेवाली है। अर्थात् सोलह प्रकृति ऐसी हैं जिनका बध आगे चलते ही रुक जायगा। इसलिये जहा वे बध होनेसे रुकेंगी उसके प्रथम उनकी बधव्युच्छिन्नोंमें नियुक्ति हो जाती है। इसी प्रकार आगेके गुणस्थानोंमें भी ऐसा ही समझना चाहिये कि जहा जितनी प्रकृति बधव्युच्छिन्न कहकर बताई हों उनका बध होना रुकता उसके आगे है।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिमें बधव्यु० १६। बध ११७। सासादनमें बंधव्यु २५, बंधयोग्य १०१।

नरसुरायुर्भ्यां विना मिश्रे–०,७४ । नरसुरायु-तीर्थकरैः सहासयते–१०,७७ । पंचमे-४,६७ । प्रमत्ते–६,६३ । आहारकद्विकेन सहाप्रमत्ते–१,५९ । अपूर्वे सप्तसु भागेषु-२,५८।०,५६।०,५६।०,५६।०,५६।३०,५६।४,२६ । नवमे पंचसु भागेषु–१,२२।१,२१।१,२०।१,१९।१,१८। सूक्ष्मादिषु- १६,१७ । ०,१ । ०,१ । १ १ । ०,० ।

बंधविच्छेद कथ्यते—

आद्ये षोडश बंधा द्वितीयके पंचविंशतिस्तुर्ये । दश पचमे चतस्र षट् षष्ठे सप्तमे चैका ॥ ६ ॥

मिश्रमें बन्धव्युच्छिन्न नहीं है और मनुष्यायु तथा देवायु इन दो का बध भी नहीं है इसलिये व्युच्छित्तिमें ० है, बंधमें ७४ हैं । असयतमें व्यु. १०, बंधमें ७७ हैं । मनुष्यायु देवायु और तीर्थकरत्व ये तीन प्रकृति यहा बढ जाती है । पाचवें गुण-स्थानमें बधव्यु. ४, बधमें ६७ । प्रमत्तमें व्यु ६, बधयोग्य ६३ । आहारक द्वयके बढजानेसे अप्रमत्त सातवें गुणस्थानमें व्यु १, बधयोग्य ५९ ।

अपूर्वके सात भागोंमें क्रमसे व्युच्छिन्न तथा बधयोग्य इस प्रकार हैं—२, ५८ । ०, ५६ । ०, ५६ । ०, ५६ । ०, ५६ । ३०, ५६ । ४, २६ । यह अपूर्वके सात भागोंमें व्यु और बधयोग्योंकी सख्या हुई । जहा केवल शून्य है वहा व्यु नहीं है ऐसा समझना । नौवें गुणस्थानके भागोंमें इसी प्रकार आगे व्यु तथा बधयोग्य प्रकृति दिखाते हैं–१, २२ । १, २१ । १, २० । १, १९ । १, १८ । सूक्ष्ममें–१६, १७ । उपशातमें–०, १ । क्षीणकषायमें ०, १ । सयोगकेवलीमें १, १ । अयोगकेवलीमें ०, ० । अर्थात् न यहा व्युच्छिन्न होनेयोग्य कोई प्रकृति है और न बंधयोग्य ही कोइ भी प्रकृति है । इसलिये दोनों स्थानोंमें शून्य है ।

अब ऊपर जो बधविच्छेद बताया है उसे मूलकार आगे दिखाते हैं । —

आद्य अर्थात् पहिले गुणस्थानमे सोलह बधप्रकृति व्युच्छित्तिको प्राप्त होती है । दूसरे गुणस्थानमें पच्चीस व्युच्छिन्न होती हैं । चौथेमे दश व्युच्छिन्न होनेवाली हैं । पाचवें गुणस्थानमे चार बधच्छिन्न होनेवाली हैं । छट्ठे गुणस्थानमें छह प्रकृति

॥६३६॥

द्वे त्रिंशच्च चतस्रोऽपूर्वे नवमे क्षणेषु चैकैकाः । पंचसु विच्छिद्यते षोडश सूक्ष्मे जिने सातम् ॥ ७ ॥
आद्य जातिचतुष्क श्वभ्रत्रिदशायुषी सुरद्वन्द्वम् । सूक्ष्मस्थावरसाधारणातपापूर्णनारकयुगानि ॥ ८ ॥
वैक्रियिकाहारकयोर्युग्मे चैकोनविंशति हित्वा । शतमेकोत्तरमन्या प्रकृती स्वीकुर्वते श्वाभ्रा ॥ ९ ॥
आद्यस्तीर्थकृताना हूंडासप्राप्तषढमिथ्यात्वै । सासादनो विहीनः सप्ततिमथ मिश्रक श्वाभ्रः ॥ १० ॥

वधव्युच्छिन्न होती है । सातवेंमें एक वधच्छिन्न होनेवाली है । अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें क्रमसे प्रथम दो प्रकृति बधविच्छिन्न होती है, फिर आगे तीस वंधच्छिन्न होनेवाली मानी है, फिर उसके भी आगे चार वधव्युच्छिन्न होती हैं । नौवें गुणस्थानके पाच भाग है उनमेंसे प्रत्येकमें एक एक प्रकृति वधव्युच्छिन्न होती जाती है । सूक्ष्मलोभ दशवें गुणस्थानमें सोलह प्रकृति वधसे व्युच्छिन्न होती है । जिन अर्थात् सयोग केवलीमें एक साता वेदनीय वधसे व्युच्छिन्न होजाती है । ६–७ ।

इस प्रकार गुणस्थानोंमें वधकी व्युच्छित्ति बताई ।

अव आगे मार्गणाओंमें वधव्युच्छित्तिको दिखाते हैं । सवसे प्रथम गतिमार्गणा है । उसमें चार गति है उनमेंसे प्रथम नरकगतिमें बधच्छेदको पहिले दिखाते है ।—

पहिली चार जाति एकेंद्रियादि चतुरिंद्रिय पर्यंत, नरकायु, देवायु, देवगतिद्वय, सूक्ष्म, स्थावर, साधारण, आतप, अपर्याप्ति, नारकगति नारकगत्यानुपूर्वी ये दो, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिकागोपाग द्वय, आहारक द्वय–इन उन्नीस प्रकृतियोंका नारकी जीव वंध नहीं करते हैं । शेष बची एकसौ एक प्रकृतियोंको नारकी बांधते हैं । ८–९ ।

प्रथम गुणस्थानमें रहनेवाला नारकी जीव तीर्थंकर प्रकृतिको नहीं ही बाधता है । सासादन गुणस्थानवर्ती नारकी जीव हुडकसंस्थान असप्राप्तासृपाटिका संहनन, नपुसकवेद, मिथ्यादर्शन–इन चार प्रकृतियोंको नहीं बाधता है । क्योंकि इन चार प्रकृतियोंकी प्रथम गुणस्थानमें बधविच्छित्ति हो जाती है ।

मिश्रवाला सत्तरि प्रकृतियोंको बाधता है । इसके मनुष्यायुका वध नहीं है । और सासादन गुणस्थानमें कही हुई

त्यक्त्वा मर्त्यायुषा युक्तामोघोक्तां पंचविंशतिम्। मिश्रे षण्णवतेर्ज्ञेया सप्ततिः शासने स्थिते ॥ ११ ॥
निर्व्रतसम्यग्दृष्टिर्मर्त्यायुस्तीर्थकृत्त्वयुक्ता ताम्। सप्तमनरके हीन नरायुषा शतमुपादत्ते ॥ १२ ॥
मर्त्यद्वितयोच्चोन मिथ्यादृष्टिस्तदत्र बध्नाति। मिथ्यात्वतिर्यगायुर्हुंडासम्प्राप्तषंढोनम् ॥ १३ ॥
बध्नाति शासनाख्य सासादनपञ्चविंशतिं त्यक्त्वा। तिर्यग्जीवितहीना मर्त्यद्वयगोत्रसंयुक्ताम् ॥ १४ ॥
मिश्राव्रतसद्दृष्टी वध्नीतः सप्तमे स्फुटं श्वभ्रे। श्वभ्रगतिर्निर्णीता विज्ञातव्या परान्येवम् ॥ १५ ।

ओघेन नरके बंधप्रकृतयः—१०१,१९। मिथ्यादृष्टौ—१००,२०। शासने—९६,२४। मिश्रे ७०। निर्व्रते ७२। चतुर्थपंचमषष्ठश्वभ्रेषु चतुर्थगुणे तीर्थकृता विना ७१। पृथिवीषट्के बंधप्रकृतिशत। नरायुषा हीनमोघेन सप्तमे नरके ९९। मिथ्यादृष्टौ ९६। शासने ९१। मिश्रे ७०। निर्व्रते ७०।

एवं नरकगतिः समाप्ता।

सासादनकी पचीस प्रकृतियोंका भी मिश्रमें अभाव हो जाता है। इस प्रकार सासादनकी ९६ प्रकृतियोंमेंसे मिश्रवाला ७० का ही बंध करता है। अव्रतसम्यग्दृष्टि मनुष्यायुका तथा तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करता है। परंतु सातवें नरकमें जीव मनुष्यायुको छोडकर सौ प्रकृति (९९) का ही बन्ध कर सकता है। भावार्थ, ऊपर मिथ्यादृष्टि नारकीके बंधयोग्य सौ प्रकृति बताई हैं परंतु सातवें नरकमें केवल निन्यानवे (९९) ही प्रकृति ओघ समझना। १०—११—१२।

मनुष्यगतिद्वय तथा उच्चगोत्र इन तीन प्रकृतियोंको सप्तम नरकका मिथ्यादृष्टी जीव नहीं बांधता है। अर्थात् निन्यानवेमेंसे तीनको घटाकर ९६ को बांधता है। फिर सासादन सातवें नरकका जीव मिथ्यात्व, तिर्यगायु, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्त संहनन, नपुंसक वेद—इन पांचको छोडकर ९१ को बांधता है। फिर मिश्रवाला जीव ७० को बांधता है। सासादनकी पच्चीस यहां घटनी चाहिये परंतु तिर्यगायु नहीं घटती और मनुष्यद्वय तथा गोत्र एक उच्च ये तीन बढ जाती हैं। इसलिये ७० रह जाती हैं। इसी प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि भी ७० को बांधता है। दूसरी गति भी ऐसे ही समझलेनेकी है। १३—१४—१५

नरकमें सामान्यरूपसे बंध और अबंध प्रकृति—१०१, १९। मिथ्यादृष्टिमें—१०० २०। सासादनमें—९६, २४—।

प्रकृती रहितास्तीर्थकर्तृत्वाहारकद्विकैः । तिर्यंचो गृह्णते सर्वाः सामान्येन विसंशयम् ॥ १६ ॥
तिर्यञ्चस्तास्तिरश्च्योपि पर्याप्ता वामदृष्टय । बध्नति प्रकृतीः सर्वाः शासनाः षोडशोज्झिताः ॥ १७ ॥
मिथ्यादृशः ११७,३ । शासनः १०१ ।
मर्त्यदेवायुषी मर्त्यद्वयमौदारिकद्वयम् । पचविंशतिमाद्योक्तां विमुच्याद्यां च संहतिम् ॥ १८ ॥
एकोनसप्तति मिश्रा शेषाः स्वीकुर्वते ततः । सप्तति गृह्णते युक्ता निर्व्रतास्ताः सुरायुषा ॥ १९ ॥

मिश्रमें–७० । असयत सम्यग्दृष्टिमें–७२ । चौथे पाचवें छट्ठे–इन नरकोंमें चतुर्थगुणस्थानमें (तीर्थंकर प्रकृतिके न होनेसे)–७१ । इसी प्रकार छह पृथिवीपर्यंत बधप्रकृति सौ हैं उनमेंसे सातवें नरकमें मनुष्यायु नहीं इसलिये सामान्यरूपसे ९९ प्रकृति है । मिथ्यादृष्टिमें ९६ है । सासादनमें ९१ है । मिश्रमें ७० है । असयत सम्यग्दृष्टिमें भी ७० है ।

इस प्रकार नरकगतिका निर्णय किया ।

अब आगे तिर्यंचगतिमें बंध अबंध प्रकृतियोंको दिखाते है ।—

तीर्थकरत्व और आहारक द्वय – इन तीन प्रकृतियोंको छोडकर शेष सर्व (११७) प्रकृतियोंको तिर्यंच जीव सामन्य रूपसे ग्रहण करते हैं । १६ ।

जितनी प्रकृतियोंको पर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यंच बाधते है उतनी ही प्रकृतियोंको पर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिरश्ची (स्त्री) भी बाधती हैं । सासादन गुणस्थानवाले सोलहको छोडकर बाधते है । १७ ।

मिथ्यादृष्टिके–११७, ३ । सासादनके १०१ ।

मनुष्यायु, देवायु, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक शरीरद्वय, और गुणस्थानवर्णनमें जो सासादनकी पच्चीस प्रकृति कही है वे, आदिका सहनन–इन बत्तीस प्रकृतियोंको छोडकर शेष उनहत्तरि (६९) प्रकृतियोंको मिश्र गुणस्थानवाले ग्रहण करते है । देवायुको बढाकर सत्तरि प्रकृति हुई । इन सत्तरिको असयत सम्यग्दृष्टि बाधते है । १८ – १९ ।

मिश्राः ६९,३२ । निर्व्रताः ७० ।
तिर्यंचो गृह्णते हीना द्वितीयैस्ताः क्रुदादिभिः । एवं स्त्रीपुरुषाः पूर्णा पचाक्षा देशसयताः ॥ २० ॥
मुक्त्वा वैक्रियिक षट्कं नारकात्रिदशायुषी । स्त्रीकुवन्त्योऽयतोऽपूर्णाः शत शेष नवोत्तरम् । १०९ ॥ २१ ॥

इति तिर्यग्गति समाप्ता ।

प्रथमाः पच बध्नति तिर्यग्वत्प्रकृतीर्नराः । चतुर्थाः पचमास्तत्र पर तीर्थकराधिकाः ॥ २२ ॥
शत नवोत्तरं मर्त्यास्तास्तिर्यग्वदपूर्णकाः । समर्जन्ति प्रमत्ताद्याः प्रकृतीरोघिकीः स्फुटाः ॥ २३ ॥

मिश्रके वध ६९, घाट ३२ । असंयतमें–७० ।

देशसयत वाले पचेंद्रिय पर्याप्तक तिर्यंच स्त्री अथवा पुरुष दूसरे क्रोधादि चार कषायोंको छोडकर ऊपरकी शेष प्रकृतियोंको ग्रहण करते है । २० ।

अपर्याप्त तिर्यंच छह वैक्रियिक प्रकृतियोंको और देवायुनरकायु द्वयको छोडकर शेष एक सौ नौ [१०९] प्रकृतियोंको सामान्य रूपसे बाधते हे । २१ ।

इस प्रकार तिर्यचगति हुई ।

अव आगे मनुष्यगतिमें वंध प्रकृतियोंको बताते हैं ।–

पहिले पाच गुणस्थानवाले मनुष्य, तिर्यचोंके ही समान प्रकृतियोंको बाधते है । विशेष इतना है कि चौथे पाचवें गुणस्थान वाले मनुष्य एक तीर्थकर प्रकृतिको अधिक बाधते है । २२ ।

अपर्याप्तक मनुष्य अपर्याप्तक तिर्यचोंके ही समान एकसौ नौ प्रकृतियोंको बाधते है । आगे छट्ठे आदि गुणस्थानवाले मनुष्य ही होते है इनलिये जो उन उन गुणस्थानोंमे प्रकृति बताई है उतनी उतनी ही वे बाधते है । २३ ।

प्रथमा मिथ्यादृष्टयादयः पंच ११७ । १०१ । ६९ । ७१ । ६७ । प्रमत्ताद्याः सर्वे ६३ । ५९ । ५८ । ५६ । २६ । २२ । २१ । २० । १९ । १८ । १७ । उ० १ । १ । १ । ० । अपूर्णा मनुष्याः १०९ ।

इति मनुष्यगतिः समाप्ता ।

सूक्ष्मं वैक्रियिक पट्क साधारणमपूर्णकं । आहारकद्वय द्वन्द्व नारकत्रिदशायुषोः ॥ २४ ॥
विकलत्रितय मुक्त्वा षोडश प्रकृतीरिमाः । अपरा गृह्णते देवाश्चतुर्भिः सहितं शतम् ॥ २५ ॥
ओघेन देवाः १०४ ।
विना तीर्थकृता शेष मिथ्यादृक् त्र्युत्तरं शतं । एकेंद्रियमसंप्राप्तं मिथ्यात्वं हुडमातपम् ॥ २६ ॥
षंढक स्थावर सप्त त्यक्त्वा षण्णवतिः पराः । प्रकृतीः शासनः सर्वा. स्वीकरोति विसंशयम् ॥ २७ ॥

पहिले मिथ्यादृष्टि आदि पांचमें-११७ । १०१ । ६९ । ७१ । ६७ । प्रमत्तादि आगेके सर्वमें ६३ । ५९ । ५८ ५६ । २६ । २२ । १८ । १७ । १ । १ । १ । ० । अपर्याप्त मनुष्यमें १०९ ।

इस प्रकार मनुष्यगति हुई ।

अब देवोंमें प्रकृतिबंधकी संख्याको आगे दिखाते हैं ।—

सूक्ष्म, वैक्रियिक छह, साधारण, अपर्याप्त, आहारकशरीरद्वय, नरकायु देवायु ये दो, विकलेंद्रिय तीन जाति – इन सोलह प्रकृतियोंको देव नहीं बांधते, शेष बची सर्व एकसौ चारको बाधते हैं । २४ । २५ ।

देवोंमें ये १०४ प्रकृति सामान्यरूपसे हैं ।

मिथ्यादृष्टि देव तीर्थकर प्रकृतिको छोडकर शेष एकसौ तीनको बाधता है । और सासादन देव एकेंद्रियजातिको तथा असंप्राप्त असृपाटिका सहनन, मिथ्यात्व, हुडकसस्थान, आतप, नपुसकवेद, स्थावर—इन सातको छोडकर शेष ९६ प्रकृतिको बांधता है । २६ २७ ।

मिथ्यादृष्टिः १०३ । सासनः ९६ ।

हित्वा मर्त्यायुषा युक्तामोघोक्तां पञ्चविंशतिम् । एताभ्यो गृह्णते मिश्रा सप्तति प्रकृती पराः ॥ २८ ॥
मर्त्यायुस्तीर्थकृत्त्वयुक्तां द्वासप्तति ततः । प्रकृतीः परिगृह्णाति सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥ २९ ॥
प्रथमे गृह्णते सर्वे निकायत्रितये सुराः । चतुर्निकायजा देवाः स्थिता गुणचतुष्टये ॥ ३० ॥
प्रकृतीस्त्रिदशोघोक्तास्तीर्थकृत्त्ववर्जिताः । त्रिदशौघोदिताः सर्वाः सौधर्मेशानकल्पगाः ॥ ३१ ॥

भावनादिष्वोघेन १०३ । मिथ्यात्वादिषु चतुर्षु १०३ । ९६ । ७० । ७० । सौधर्मेशानकल्पयोरोघेन १०४ । मिथ्यादृष्ट्यादिषु १०३ । ९६ । ७० । ७२ ।

आतपस्थावरैकाक्षैरेकीकृतैर्गृह्णते विना । पराः सनत्कुमाराद्याः सहस्रारावसानगाः १०१ ॥ ३२ ॥

मिश्रगुणस्थानवाले देव सामान्यकी व्युच्छित्त २५ प्रकृतियोंको तथा मनुष्यायुको छोड़कर सत्तरको बांधते हैं । २८ ।
असंयत सम्यग्दृष्टि देव उपरि कहीं तथा मनुष्यायु तीर्थङ्कर– इन बहत्तरको बांधता है । २९ ।

प्रथम तीन निकायके सर्व अर्थात् चारों गुणस्थानवर्ती देव और चारों गुणस्थानवर्ती चारों निकायोंके देवों ये तीर्थङ्करत्वको छोड़कर शेष सर्व देवसामान्यसंबंधी प्रकृतियोंका ग्रहण करते हैं । और सौधर्म ऐशान कल्पवासी देव देवसामान्योक्त सर्व प्रकृतियोंको बांधते हैं । ३०—३१ ।

भवन आदि तीन निकायोंमें सामान्य रूपसे १०३ । मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें— १०३ । ९६ । ७० । ७० । सौधर्म ऐशान कल्पवासियोंमें सामान्यरूपसे १०४ । मिथ्यादृष्टि आदिकोंमें —१०३ । ९६ । ७० । ७२ ।

सनत्कुमार तीसरे स्वर्गसे सहस्रार बारहवें स्वर्ग पर्यंतके देव, आतप स्थावर एकेंद्रिय– इन तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष देवसामान्यवाली सर्व [१०१] प्रकृतियोंको बांधते हैं । ३२ ।

एतास्तीर्थकृता हीनाः स्वीकुर्वंति कुदृष्टयः । हुंडासंप्राप्तमिथ्यात्वषढोना भ्रष्टदृष्टयः (१०० । ९६) ॥ ३३ ॥
ता मर्त्यायुर्युता हित्वा मिश्रकाः पंचविंशतिम् । बध्नंति समनुष्यायुस्तीर्थकृत्त्वामसंयता ७२ । ७० ॥ ३४ ॥
तिर्यग्द्वितयमेकाक्ष तिर्यग्जीवितमातप । उद्योतः स्थावरं चेति मुक्त्वा प्रकृतिसप्तकम् ॥ ३५ ॥
अपरा प्रकृतोर्देवाः स्वीकुर्वंत्यानतादिषु । अत्यग्रैवेयकांतेषु देवौघप्रतिपादिता ॥ ३६ ॥
आनतादिष्वोघेन ९७ ।
हीनास्तीर्थकृता मिथ्यादृष्टयः शासनाः पुनः । अंत्यग्रैवेयकांतेषु देवौघप्रतिपादिताः ॥ ३७ ॥
आनतादिष्वोघेन ९७ ।
हीनास्तीर्थकृता मिथ्यादृष्टयः शासनाः पुन । रहिताः षढमिथ्यात्वहुंडासंप्राप्तकैरिमाः (९६ । ९२) ॥ ३८ ॥

इनमेंसे जो मिथ्यादृष्टि देव है वे तीर्थंकरत्वको छोडकर शेष ऊपर बताई हुई सर्व [१००] प्रकृतियोंको बांधते हैं । और जो भ्रष्टदर्शन अर्थात् सासादनवाले है वे हुंडक संस्थान, असंप्राप्त असृपाटिका, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद— इन चारको छोड कर शेष [९६] को बांधते है । ३३ ।

मनुष्यायु तथा सासादनकी पच्चीस—ऐसे सर्व छव्वीस प्रकृतियोंको छयानवेमेंसे घटाकर शेष ७० प्रकृतियोंको मिश्र गुणस्थानवर्ती देव बांधते हैं । और असंयत देव मनुष्यायु तथा तीर्थंकरत्व—इन दोको जोडकर ७२ प्रकृतियोंको बांधते है । ३४ ।

आनत तेरहवें स्वर्गसे लेकर अंतिम ग्रैवेयक पर्यंतके देव देवसामान्योक्त १०४ मेंसे तिर्यग्गति द्वय, एकेंद्रिय जाति, तिर्यगायु, आतप, उद्योत, स्थावर इन सातको छोडकर शेष सतानवें (९७) प्रकृतियोंको सामान्यरूपसे बांधते है । ३५–३६

अंतिम ग्रैवेयक पर्यंतके देव मिथ्यादृष्टि हों तो तीर्थंकरत्वको छोडकर ९६ प्रकृतियोंको बांधते हैं । और सासादन देव नपुंसकवेद मिथ्यात्व हुंडकसंस्थान असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन चारको छोडकर शेष ९२ प्रकृतियोंको बांधते है ॥ ३८ ॥

१–३७ वें नंबरका श्लोक उलटा सुलटा लेखककी गफलतसे अधिक पडगया है । उसका कोई उपयोगी अर्थ जुदा नहीं है ।

त्यक्त्वा मर्त्यायुषा युक्तामोघोक्तां पचविंशतिं । मिश्रास्तिर्यग्द्वयोद्योततिर्यगायुरपाकृताम् । ७० ॥ ३९ ॥
सतीर्थकृन्नरायुष्कास्ता स्वीकुर्वन्ति निर्व्रताः । सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तास्ता एवोर्द्ध्व व्यवस्थिताः ॥ ४० ॥
निर्व्रता ७२ । उपरिष्टात्सर्वार्थसिद्धिपर्यन्ता नवानुत्तराद्या ७२ ।

इति देवगति. समाप्ता ।

षट्कं वैक्रियिकं तीर्थकृत्त्व श्वभ्रसुरायुषी । आहारकद्वय चेति विमुच्यैकादश स्फुटम् ॥ ४१ ॥
शत नवोत्तरं शेषा एकाक्षविकलेन्द्रिया । सामान्येन निबध्नंति घोराज्ञानतमोवृताः । १०९ ॥ ४२ ॥
श्वभ्रायुःश्वभ्रयुग्मोनास्तत संत्यज्य षोडश । बध्नंति सासनाः शेषा पंचाक्षास्त्वौघिकीः पुन ॥ ४३ ॥

मनुष्यायु तथा सासादनकी व्यु पच्चीस ऐसे छव्वीसको घटाकर शेष ७० सत्तरि प्रकृतियोंको मिश्रगुणस्थानवर्ती ये देव बाधते हैं । उन पच्चीसमेंसे तिर्यगतिद्वय उद्योत तिर्यगायु ये चार प्रकृति यहा फिरसे कम नहीं करनी चाहिये क्योंकि, ऊपर ओघ प्रकृतियोंमें ही इन चार को घटा दिया है ।

तीर्थकरत्व और मनुष्यायुको वढाकर वहत्तरि प्रकृतियोंको असंयत देव बाधते है । सर्वार्थसिद्धि पर्यतके भी देव असंयत होते हैं इसलिये उनमे भी ऊपरकी ७२ ही प्रकृति बाधी जाती हैं ॥ ४० ॥

इस प्रकार देवगति हुई । और गतिमार्गणा भी पूरी हुई ।

अव इंद्रिय मार्गणाके आश्रयसे वंधप्रकृतियोंको आगे दिखाते हैं ।—

एकेंद्रिय और विकलेंद्रिय तीन—ये घोर अज्ञानरूप अंधकारमें रहनेवाले हैं इसलिये वे एकसौ वीसमेंसे ग्यारहको छोडकर एक सौ नौ प्रकृतियोंको बाधते है । वे ग्यारह छूटी हुई प्रकृति इस प्रकार है — छह वैक्रियिक संवधी, तीर्थकरत्व, नरकायु, देवायु, आहारकद्वय । ४१—४२ ।

नरकायु तथा नरकगतिद्वय-इन तीनको छोडकर जो सोलहमेसे तेरह शेष रहती है उन प्रकृतियोंको एकसौ नौ प्रकृतियोंमेंसे घटानेपर ९६ प्रकृतियोंको सासादन जीव बाधता है । पचेंद्रिय तिर्यच जीव सामान्य सर्व प्रकृतियोंको बाधता है । ४३ ।

मिथ्यादृशः १०९ । १३ । शासनाः ९६ । १२० ।

यावच्छरीरपर्याप्तिमेकाक्षविकलोद्भवाः । शासना न प्रपद्यन्ते तावत्तिर्यङ्नरायुषी ॥ ४४ ॥
न बध्नन्ति यतस्ताभ्यां ततस्तेषु विना मताः । चतुर्नवतिरन्येषामभिप्रायेण बन्धने । ९४ । युग्मम् ॥ ४५ ॥

इतीन्द्रियमार्गणा समाप्ता ।

बध्नन्त्येकाक्षवज्जीवा धरांभस्तरुकायिकाः ।
नृद्वयोच्चनरायूंषि तेजःपवनकायिकाः । हित्वैकाक्षगताः शेषा गृह्णन्त्योघगतास्त्रसाः ॥ ४६ ॥

पचेंद्रियोंमेंसे मिथ्यादृष्टि १०९ को बाधते हैं । सासादन १३ को घटाकर ९६ को बाधते हैं । पचेंद्रिय १२० को बाधते हैं। एकेंद्रिय तथा विकलेंद्रियोंमें उत्पन्न हुए सासादन जीव जबतक शरीरपर्याप्तिको पूर्ण नहीं कर पाते तबतक तिर्यगायु और मनुष्यायुको नहीं बांधते हैं । ४४ ।

इन दो प्रकृतियोंको वे सासादन नहीं बाधते इसलिये उन सासादनोंमें उक्त दो प्रकृतियोंको घटाकर शेष चौरानवें प्रकृति बंधको प्राप्त होनेवाली रहती हैं । यह दूसरोंके अभिप्रायसे बधका कथन है । ४५ ।

इस प्रकार इंद्रिय मार्गणामें बंधप्रकृति हुई ।

अब आगे काय मार्गणामें बधको बताते हैं ।—

पृथिवी, जल और वनस्पतिकाय, एकेंद्रियके समान १०९ प्रकृतियोंको बाधते हैं । तेज कायिक और वायुकायिक—मनुष्य गतिद्वय, और उच्चगोत्र मनुष्यायु—इन चार प्रकृतियोंको छोडकर शेष १०४ एकेंद्रियप्रकृतियोंको बांधते हैं । त्रस जीव सामान्य बताई हुई सर्व प्रकृतियोंको बाधते हैं । ४६ ।

१—यह श्लोक मूलमें ठीक नहीं मिला ।

तेजोवातकायिका मिथ्यादृशः १०५ । ओघगतास्त्रसकायिका १२० ।

कायमार्गणा समाप्ता ।

योगेष्वोघगतो भगो वाङ्मानसचतुष्कयोः । भवत्यौदारिके योगे भभो मर्त्यौघसमवः ॥ ४७ ॥

औदारिके ११७ । १०१ । ६९ । ७१ । उपर्योघः ।

सुरश्वभ्रायुषी श्वभ्रद्विकमाहारकद्विकम् । विहायौदारिके मिश्रे स्वीकुर्वन्त्योघत पराः ॥ ४८ ॥

ओघेनौदारिके मिश्रे ११४ ।

देववैक्रियिकद्वन्द्वे हित्वा तीर्थकृता समम् । शत नवाधिक ताभ्यो गृह्णते वामदृष्टयः । १०९ ॥ ४९ ॥

तेज और वायुकायिक मिथ्यादृष्टिमे १०५ । त्रसकायिकमें सामान्यगत १२० है ।

इस प्रकार काय मार्गणा हुई ।

अब योगोंमें बंधप्रकृतियोंको बताते है ।—

योगोंमेंसे चार वचनयोगमें तथा चार मनोयोगमे सामान्य सर्व १२० प्रकृति है । औदारिक योगमे मनुष्यगतिके सामान्य भगको समझो । अर्थात् मिथ्यात्वसे चौथे गुणस्थान पर्यंत औदारिक योगमें—११७ । १०१ । ६९ । ७१ । ऊपर भी सामान्य बंधप्रकृतिका नियम लगता है । ४७ ।

औदारिक मिश्रमें देवायु नरकायु नरकगतिद्वय आहारकद्वय— ये ६ प्रकृति बंधसे छूटी रहती हैं शेष ओघरूप सर्व प्रकृतियोंका बंध होता है । औदारिकमिश्रमे ओघ प्रकृति ११४ है ॥ ४८ ॥

औदारिक मिश्रमें मिथ्यादृष्टिके ऊपरकी एकसौ चौदहमेसे देवगतिद्वय वैक्रियिकशरीरद्वय और तीर्थंकर प्रकृति ऐसे पाचको घटाकर शेष १०९ का बंध होता है ॥ ४९ ॥

श्वभ्रायुश्वभ्रयुग्माभ्यामूनाः सत्यज्य षोडश । तिर्यङ्मर्त्यायुषी ताभ्यः शासना गृह्णते पराः । ९४ ॥ ५० ॥
मुक्त्वा निस्तिर्यगायुष्कामेताभ्य पचविंशतिम् । देववैक्रियिकद्वन्द्वतीर्थकृत्त्वसहिताः पराः ॥ ५१ ॥
पचसप्ततिसंख्याना परिगृह्णत्यसयताः । सयोग सातमेवैक मिश्रकौदारिके स्थितः ॥ ५२ ॥
क्रमेण ७५ । १ ।
योगवैक्रियिके भंगः सामान्यस्त्रिदशोदितः । तिर्यङ्मर्त्यायुषी हित्वा तदीये मिश्रके परा ॥ ५३ ॥
आघेन वैक्रियिके १०४ । मिथ्यादृष्ट्यादिषु १०३ । ९६ । ७० । ७२ । ओघेन वैक्रियिकमिश्रे १०२ ।

जो सोलह प्रकृति प्रथम गुणस्थानकी वधव्युच्छिन्न नरकायु नरकगतिद्वय इन तीनके सिवाय हैं उन्हें छोडकर तथा तिर्यगायु मनुष्यायु इन दोको छोडकर शेष ९४ प्रकृतियोंको सासादनवाले औदारिकमिश्र वाघते हैं। मिथ्यादृष्टि औदारिकमिश्रमें एकसौ नौ प्रकृति थी सो सासादनमे पद्रह घट गई इसलिये ९४ रही ॥ ५० ॥

तिर्यगायुके शिवाय सासादनकी व्युच्छिन्न २५ प्रकृति अर्थात् २४ प्रकृतिको ऊपरकी सासादनकी चौरानवें प्रकृतियोंमेंसे घटाना और देवगतिद्वय वैक्रियिकशरीरद्वय तथा तीर्थकरत्व इन पांचको वढाना तो ७५ संख्या होती है। असयत औदारिकमिश्र इन पचहत्तरिको वाघते हैं। औदारिक मिश्रयोग सयोगकेवलीकें भी कपाट समुद्घातके समय रहता है। वह एक साताका ही वध करता है। ५१–५२।

देवोंमें जो सामान्य प्रकृति वताई है उतनी ही वैक्रियिक योगमें हैं। वैक्रियिक मिश्रमे तिर्यगायु मनुष्यायुको छोडकर शेष सर्व १०२ ओघ प्रकृति वधयोग्य है। ५३।

वैक्रियिक योगमें सामान्यसे १०४। मिथ्यादृष्ट्यादि चारमें क्रमसे–१०३ । ९६ । ७० । ७२ । वैक्रियिक मिश्रमें सामान्यसे १०२ हैं।

हीनास्तीथकरेणाद्ये स्थावरैकेन्द्रियातपैः । हुंडासंप्राप्तमिथ्यात्वपंढैरपि च शासने ॥ ५४ ॥
मिथ्यादृष्टौ १०१ । शासने ९४ ।
पचविंशतिमत्यस्य तिर्यगायुर्विवर्जिताः । युक्तास्तीर्थकरेणान्या निर्व्रताः परिगृह्णते ॥ ५५ ॥
आहारकद्वये योगे षष्ठवद् गृह्णते विना । आहारकद्वयश्वभ्रद्वितयायुश्चतुष्टयैः ॥ ५६ ॥
कार्मणे गृह्णते योगे शेषा मिथ्यादृशस्त्विमाः । देववैक्रियिकद्वन्द्वतीर्थकर्तृत्ववर्जिताः ॥ ५७ ॥
आहारकाहारकमिश्रद्वये ६३ । ओघेन कार्मणे योगे ११२ । मिथ्यादृशः १०७ ।
श्वभ्रायुर्नारकद्वन्द्वत्यक्ताः सत्यज्य षोडश । एताभ्य शासना योगे गृह्णते कार्मणे पराः । ९४ ॥ ५८ ॥

वैक्रियिकमिश्रमें आद्य अर्थात् मिथ्यादृष्टिके तीर्थंकरत्व घट जाती है इसलिये १०१ बंध है । सासादनके स्थावर एकेंद्रिय आतप तथा हुडकसंस्थान असप्राप्त सहनन मिथ्यात्व नपुसक वेद—ये सात प्रकृति घटकर शेष ९४ बंध है । ५४ ।

सासादनकी पचीसको और तिर्यगायुको घटाकर तथा तीर्थंकरत्वको बढाकर ऊपरकी सर्व प्रकृतियोंको असंयत सम्यग्दृष्टि वैक्रियिक मिश्रमें बाधते है । ५५ ।

दोनो आहारक काययोगोंके रहते, गुणस्थान छट्ठेमें जो प्रकृति बंधयोग्य हैं वे ही है किंतु आहारक द्वय, नरकगति द्वय, आयु चारों—ये प्रकृति बंधके योग्य नहीं होती । ५६ ।

कार्माण काययोगमें सामान्यसे ११२ प्रकृति बधयोग्य है । मिथ्यादृष्टीके साथ कार्मणयोगमे १०७ बंधयोग्य है। देवगतिद्वय, वैक्रियिक द्वय तथा तीर्थंकरत्व–ये पाच प्रकृति एकसौ बारहमेंसे घट जाती हैं इसलिये १०७ रह जाती है । ५७ ।

आहारक योगमें और आहरक मिश्रयोगमे ६३ । सामान्यसे कार्माणयोगमें ११२ । मिथ्यादृष्टि कार्माण योगमें १०७ ।

सोलह प्रकृति मिथ्यात्वमें बधच्छिन्न बताई हैं उनमेंसे नरकायु तथा नरकगतिद्वय इन तीनके शिवाय तेरहको सासादनमे घटानेसे शेष ९४ प्रकृति सासादनमे बधयोग्य रह जाती हैं ॥ ५८ ॥

नृतिर्यगायुषी हित्वा पचविंशतिमव्रते । सुरवैक्रियिकद्वन्द्वतीर्थकर्तृत्वसयुता. । ७५ ॥ ५९ ॥
सयोगा गृह्णते सात प्रतरे लोकपूरणे । यौगिकी मार्गणाख्याता वैदी सा कथ्यतेऽधुना ॥ ६० ॥

इति योगमार्गणा समाप्ता ।

एकाग्रविंशतिर्यावद्बधकोऽस्त्यनिवृत्तिक । ओघो वेदत्रये तावत्सत्यवेदास्तत परे ॥ ६१ ।

इति वेदमार्गणा समाप्ता ।

ओघोदितः कपायेषु वंधो मिथ्यादृगादिषु । नवम दशम यावन्नि कपायेषु चेरित ॥ ६२ ॥

ओघेन कपायचतुष्काणा १२० । विशेषतो मिथ्यादृष्ट्यादीनामेकविंशति विंशत्येकोनविंशतिबंधकानिवृत्तिपर्यन्ताना सकपायचतुष्काणामोघभग, ततः सलोभकपायाणा सूक्ष्मसापरायाणामोघः, ततोऽकपायाणां शांतक्षीणसयोगानामोघः ।

इति कपायमार्गणा ।

कार्मण योगमें अव्रतसम्यग्दृष्टिके जितनी प्रकृति बधयोग्य हैं उन्हे दिखाते हैं — सासादनमें ९४ वध और २५ वंधविच्छिन्न है । परतु चौथेमें मनुष्यायु तिर्यगायु इन दोके सिवाय २५ को घटाना वताया है और देवगतिद्वय वैक्रियिकद्वय तथा तीर्थकरत्व ये पाच प्रकृति यहा वढ जाती हैं इस प्रकार ७५ प्रकृति असयत सम्यग्दृष्टिमें वधयोग्य हैं ॥ ५९ ॥

सयोगकेवली कार्मणयोगमें एक सातावेदनीयको वाधते हैं । सयोगमें कार्मणयोग प्रतरके तथा लोकपूरणके समय होता है । इस प्रकार योगमार्गणा वताई । अव आगे वेदमार्गणामें कहते हैं ॥ ६० ॥

इक्कीस प्रकृतिका जहातक वंध है वहातक अनिवृत्तिकरणमें वेदत्रयसवधी वंध गुणस्थानके अनुसार समझना । इसके आगेके गुणस्थान वेदरहित हैं ॥ ६१ ॥

इति वेद मार्गणा ।

सामान्य मिथ्यात्वादि नौवें तथा दशवें पर्यंतके गुणस्थानोंमें जो वंधप्रकृति वताई हैं वे कपायोंके साथ वंध होने वाली हैं । आगे कपायरहितोंमें जो वंध है वह ईर्यापथ है । ६२ ।

सामान्य चारो कपायोंमें वंधप्रकृति १२० हैं । फिर विशेषरूपसे मिथ्यात्वादि इक्कीसके वंधक, वीसके, उन्नीसके वंधक,

अज्ञानं ज्ञानमप्यस्ति गुणे यद्यत्र तत्तत । तत्तत्र विदुषा बुद्ध्वा बंधस्यौघो नियोज्यताम् ॥ ६३ ॥

तत्रौघेनाऽज्ञानत्रये ११७ । मिथ्यादृष्टौ ११७ । शासने १०१ । ततोऽसंयतादीनां मत्यादिज्ञानत्रये नवाना-मोघभंगः । ततो मनःपर्यये प्रमत्तादीनां सप्तानामोघः । ततः केवले सयोगायोगयोरोघः ।

इति ज्ञानमार्गणा ।

ओघः सामायिके वृत्ते छेदोपस्थापनेऽपि च । प्रमत्तादिचतुष्केऽस्ति परिहारेपि चाद्ययोः ॥ ६४ ॥

अनिवृत्ति गुणस्थानके भागों पर्यंत चारो कषाय सहितके बंध है और वे गुणस्थानोंके ही अनुसार है । इसके आगे लोभ कषाय सहितके जो बंधप्रकृति हैं वे सूक्ष्मसापराय दशवें गुणस्थान पर्यंत है और गुणस्थानोंमें जितनी बताई हैं सर्व उतनी ही है । इसके आगे कषायरहित उपशात क्षीण तथा सयोगकेवलीकें बंध है वह भी गुणस्थानके अनुसार ही है ।

इति कषायमार्गणा ।

जिस गुणस्थानमें वास्तवमें जो अज्ञान अथवा ज्ञान हो उसको समझकर बंधप्रकृतियोंको गुणस्थानानुसार जोड लेना चाहिये ॥ ६३ ॥

उनमेंसे सामान्य रूपसे अज्ञान तीनके रहते ११७ बंधयोग्य है । मिथ्यादृष्टिमें ११७ है । सासादनमें १०१ है । फिर आगे चौथेसे बारहवें पर्यंतके नौ गुणस्थानोंकी जो गुणस्थानानुसार बंधप्रकृति है वे ही मतिज्ञानादि तीन ज्ञानोंमें समझनी चाहिये । इसी प्रकार, मन पर्यय छट्ठे गुणस्थानसे बारहवें पर्यंतके सात गुणस्थानोंमें होता है उसमें भी बंधप्रकृति गुणस्थानानुसार हैं । फिर आगे केवलज्ञानमें बंधप्रकृति जैसी तेरहवें चौदहवें दो गुणस्थानोंकी है वैसी ही सामान्य समझनी चाहिये ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणामें बंधप्रकृति हुई ।

अब संयममार्गणामें बंधप्रकृतियोंको बताते हैं ।—

सामायिक और छेदोपस्थापनमे प्रमत्तादि चार नौवें पर्यंत गुणस्थान हैं । इनमे ओघ अर्थात् अपने अपने गुणस्थानवत् बंधप्रकृति रहती है । परिहारविशुद्धि तीसरे संयमको धारण करनेवाले स्वामी इन चार गुणस्थानोंमेंसे आदिके दो छट्ठे और

सूक्ष्मे सूक्ष्मकषायेऽसौ यथाख्याते चतुर्ष्वतः । देशे देशचरित्रेऽसौ चतुष्केप्यस्त्यसंयमे ॥ ६५ ॥

इनि सयममार्गणा ।

चक्षुषोऽचक्षुषो दृष्टावोघो द्वादशके मत । गुणानामव्रतादीनां नवकेऽवधिदर्शने ॥ ६६ ॥

सयोगायोगयोरोघो ज्ञेय केवलदर्शने । मार्गणा दर्शनस्योक्ता लेश्यानां तां वदाम्यतः ॥ ६७ ॥

आद्यलेश्यात्रयालीढा विमुच्याहारकद्वयम् । एतास्तीर्थकरेणोनाः स्वीकुर्वन्ति कुदृष्टयः ॥ ६८ ॥

सातवेंवाले है । यहा भी सामान्य गुणस्थानवत् ही वध जानना । ६४ ।

सूक्ष्मसापराय संयममें सूक्ष्मसापराय नामका दशवा गुणस्थान है । यथाख्यात नामके पाचवें सयममें ग्यारहवेंसे चारो गुणस्थान है । देशचारित्रमें देशसंयम नामका पाचवा गुणस्थान है । असयतमे पहिले चार गुणस्थान हैं । इसलिये इन भेदोंमें गुणस्थानोंके अनुसार ही वधप्रकृति समझना । ६५ । इस प्रकार सयममार्गणा हुई ।

अव दर्शनमार्गणामें वधस्वामित्वको दिखाते हैं ।—

चक्षुदर्शनमें अचक्षुर्दर्शनमें आदिके वारह गुणस्थान हैं । इन गुणस्थानोंकी जो वधप्रकृति वे ही इन दोनो दर्शनोंमें समझना । अवधिदर्शन असयत चौथे गुणस्थानसे लेकर वारहवें पर्यतके नौ गुणस्थानोंमें रहता है । इसलिये जिस गुणस्थानका अवधिदर्शन हो उसमें वधप्रकृति भी उसी गुणस्थानोक्त समझना । ६६ ।

केवल दर्शन सयोग केवली अयोग केवली इन दो गुणस्थानोंमे होता है इसलिये इन दोनो गुणस्थानोंकी ही वधप्रकृति इस दर्शनमें वधप्रकृति हैं ।

इस प्रकार दर्शन सवधी मार्गणाको स्वामी रखकर वधप्रकृति बताई । अव आगे लेश्यासवधी मार्गणाको लेकर वताते हैं ।६७।

आदिकी तीन लेश्याओंको धारण करनेवाले, आहारकद्वयको छोडकर शेप सर्व वधप्रकृतियोंको वाधते हैं । यदि ये आदिकी तीन लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि हों तो वे तीर्थकर प्रकृतिको भी घटाकर शेष प्रकृतियोंको वाघते है । अर्थात् कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले सामान्यसे ११८ के वधक हैं । मिथ्यादृष्टि ११७ के वंधक हैं । ६८ ।

कृष्णनीलकापोतलेश्याः सामान्येन ११८ । कुदृष्टय· ११७ ।

शासनाः पोडश त्यक्त्वा मिश्रकाः पचविंशतिम् । देवमर्त्त्यायुषी चान्याः सप्तर्ति चतुरन्विताम् ॥ ६९ ॥

शासनाः १०१ । मिश्राः ७४ ।

तीर्थकृन्नृसुरायुर्भिर्युक्ता अव्रतसयताः । तेजोलेश्या विमुच्यैताः श्वभ्रायुर्विकलत्रयम् ॥ ७० ॥

श्वभ्रद्वयमपर्याप्त सूक्ष्म साधारण पराः । हित्वा वामदृशस्तीर्थकर्त्तृत्वाहारकद्विके ॥ ७१ ॥

असंयताः ७७ । ओघेन तेजोलेश्याः १११ । वामदृशः १०८ ।

एकेन्द्रियमसंप्राप्त स्थावर पंढहुडके । मिथ्यात्वमातप हित्वा परा बध्नंति शासना १०१ ॥ ७२ ॥

औघिकीः परिगृह्णंति प्रकृतीः सकलाः स्फुटम् । तेजोलेश्यास्थिताः पंच सम्यङ्मिथ्यादृगादय ॥ ७३ ॥

७४ । ७७ । ६७ । ६३ । ५९ ।

सासादन जीव ११७ मेंसे सोलहको छोडकर वाघते हे । मिश्र गुणस्थानवर्ती पचीसको छोडकर और देवायु मनुप्यायु इन दोको छोडकर चार अधिक सत्तरि [७४] वाधते-है । ६९ ।

असयत सम्यग्दृष्टि चौहत्तरिमे तीर्थकरत्व मनुष्यायु देवायु इन तीनको बढाकर सतत्तरि (७७) को वाघते है ।

अब आगे तेजोलेश्यामें बधको बताते है ।— तेजोलेश्यावाले नरकायुको तथा विकलेंद्रिय तीन जातियोंको, एव नरक-गतिद्वय, अपर्याप्त, सूक्ष्म, साधारण–इन पाचको छोडकर सामान्य सर्व प्रकृतियोंको वाघनेवाले होते हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टि तीर्थकरत्व और आहारकद्वयको भी छोडकर वाधते है । अर्थात् सामान्यसे तेजोलेश्यावालोंमें १११ । मिथ्यादृष्टिमें १०८ है । ७०–७१ ।

एकेंद्रिय जाति, असप्राप्त सहनन, स्थावर, नपुसकवेद, हुंडकसस्थान, मिथ्यात्व, आतप–इन सात प्रकृतियोंको एकसौ आठमेंसे घटाकर शेष १०१ को सासादन वाघते है । ७२ ।

सासादनके ऊपर सम्यङ्मिथ्यादृष्टिसे लेकर सातवें गुणस्थान पर्यतके पाच गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्यायुक्त जीव गुणस्थाना-नुसार सामान्य सर्व प्रकृतियोंको वाघते हैं । ७४ । ७७ । ६७ । ६३ । ५९ । इस प्रकार वे क्रमसे बंधप्रकृति है ।७३।

॥६५२

श्वभ्रायुर्नारकद्वंद्वसूक्ष्मसाधारणातपान् । एकेन्द्रियमपर्याप्तं स्थावरं विकलत्रयम् ॥ ७४ ॥
पद्मलेश्या निरस्यैता द्वादश प्रकृतीः पराः । आत्मसात्कुर्वते सर्वा अष्टोत्तरशतप्रमाः ॥ ७५ ॥
ओघेन पद्मलेश्याः १०८ ।
विहायाहारकद्वन्द्वतीर्थकृत्त्व कुदृष्टयः । शासनाः पंढमिथ्यात्वहुंडासंप्राप्तकैर्विना ॥ ७६ ॥
कुदृष्टयः १०५ । शासनाः १०१ ।
स्वीकुर्वन्त्यौधिकीः पच मिश्रदृष्टिपुरोगमाः । शुक्लेश्याः प्रवध्नंति स्थावरं नारकद्वयम् ॥ ७७ ॥
तिर्यग्द्वयातपैकाक्षाण्युद्योतं विकलत्रिकम् । तिर्यक्श्वभ्रायुषी सूक्ष्मं साधारणमपूर्णकम् ॥ ७८ ॥

पद्मलेश्यावाले जीव सामान्यसे एकसौ आठ प्रकृतियोंको बांधते हैं । सर्व बंधप्रकृति एकसौ वीस हैं । उनमेंसे—नरकायु नरकगतिद्विक सूक्ष्म साधारण आतप एकेंद्रियजाति अपर्याप्त स्थावर विकलत्रय जाति—इन बारहको घटा देनेसे एकसौ आठ रह जाती हैं । ७४–७५ ।

मिथ्यादृष्टि पद्मलेश्यावाले आहारकद्वयको तथा तीर्थंकरत्वको और भी एकसौ आठमेंसे घटाकर १०५ को बांधते हैं । सासादनवाले नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, असंप्राप्त संहनन—इन चारको घटा कर १०१ को बांधते हैं । ७६ ।

आगे मिश्र गुणस्थानसे लेकर सातवें पर्यंतके पांच गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले ओघ अर्थात् गुणस्थानवत् प्रकृतियोंको बांधते हैं । इन पांच गुणस्थानोंकी बंधप्रकृति ७२ वें श्लोकमें भी ऊपर बतादी है ।

अब आगे शुक्लेश्याके साथमें कितनी कितनी प्रकृतियोंका बंध होता है वह दिखाते हैं ।—

शुक्लेश्यावाले सामान्यसे १०४ को बांधते हैं । एकसौ वीसमेंसे सोलह प्रकृति छूट जाती हैं । वे सोलह ये हैं—स्थावर नरकगतिद्विक तिर्यग्गतिद्विक आतप एकेंद्रिय जाति उद्योत विकलेंद्रिय तीन जाति तिर्यगायु नरकायु सूक्ष्म साधारण अपर्याप्ति ।

अब गुणस्थानोंमें शुक्लेश्यावालोंकी बंधप्रकृतियोंको दिखाते हैं । —१०४ ओघ प्रकृतियोंमेंसे तीर्थंकरत्व तथा आहा-

पोडशेति परित्यज्य प्रकृतीर्गृह्णते पुनः । हित्वा मिथ्यादृशस्तीर्थकारित्वाहारकद्वये ॥ ७९ ॥
असंप्राप्तकमिथ्यात्वपंढहुंडविवर्जिताः । शासना गृह्णते शेषाः शुक्ललेश्याव्यवस्थिताः ॥ ८० ॥
ओघेन शुक्ललेश्या १०४ । मिथ्यादृशः १०१ । शासनाः ९७ ।
मिश्रास्तिर्यग्द्वयोद्योततिर्यगायुरपाकृताम् । हित्वामरनरायुर्भ्यां सहितां पंचविंशतिम् ॥ ८१ ॥
अपरा गृह्णते शेषाः प्रकृतीरव्रता पुन । तीर्थकृन्नृसुरायुर्भिरोघोक्ता निखिला युतः ॥ ८२ ॥
७४ । अव्रताः ७७ ।

इति लेश्यामार्गणा ।

औधिकीर्गृह्णते भव्यास्ता अभव्याः कुदृष्टिगाः । ओघो वेदकदृष्टीनां निर्व्रतादिचतुष्टये ॥ ८३ ॥

रकद्वय इन तीनको छोडकर १०१ को मिथ्यादृष्टि वाधते है । सासादनवाले असंप्राप्त संहनन मिथ्यात्व नपुंसकवेद हुंडक संस्थान इन चारको छोडकर ९७ को वाधते हे ॥ ७९–८० ॥

अव मिश्रगुणस्थानमें वताते हैं–सासादनमें २५ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति वताई है परतु शुक्ललेश्यामें उन २५ मेंकी तिर्यगतिद्वय उद्योत तिर्यगायु इन चार प्रकृतियोंकी वधयोग्यता सामान्य वधयोग्योंमें भी नहीं वताई है इसलिये ये चार प्रकृति सामान्य वधयोग्योंकी गिनतीमें ही घट जाती है तो यहा फिरसे-दूसरी वार क्यों घटाई जा सकती है ? अत एव यहा नहीं घटाना । तव २५ मेंसे २१ को ही यहा घटाया गया है । और मनुष्यायु तथा देवायुका भी मिश्रमें वध नहीं है इसलिये ये दो भी घटा देनी चाहिये । इस प्रकार सासादन शुक्ललेश्यावालेमें जो ९७ वधयोग्य वताई थी सो उनमेंसे २३ के घट जानेपर मिश्रमें ७४ वधयोग्य है । असंयत सम्यग्दृष्टिकें तीर्थकरत्व तथा मनुष्यायु देवायु इन तीनको वढाकर सामान्योक्त सर्व ७७ वंधयोग्य है ॥ ८१–८२ ॥

इति लेश्यामार्गणा ।

भव्यत्व ग्यारहवीं मार्गणा है । इसमें भव्य अभव्य ऐसे दो भेद है । भव्य और अभव्य दोनो ही यथायोग्य ओघ प्रकृतियोंको वाधते है । यह भव्यत्व मार्गणाकी अपेक्षासे वर्णन है ।

ओघः क्षायिकदृष्टीनामेकादशगुणश्रिताम् । वि...सयतादीना योजनीयो यथागमम् ॥ ८४ ॥
ओघो मनु...रायुर्भ्यां हीनः शामिकदर्शने । बध्नति नैकमप्यायुर्यतस्तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८५ ॥
मुक्त्वा द्वितीयकोपादिचतुष्कादिमसहती । नृद्वयौदारिकद्वन्द्वे शेपा गृह्णत्यणुव्रताः ॥ ८६ ॥

असंयताः ७५ । अणुव्रताः ६६ ।

अब सम्यक्त्व मार्गणाको स्वामी रखकर वध प्रकृतियोंको दिखाते हैं ।—

सम्यक्त्वके भेदोंमें एक वेदक सम्यक्त्व वताया है, वह चौथेसे सातवें पर्यंत चार गुणस्थानोंमें रह सकता है । सो वेदकदृष्टिके असयतादि चार गुणस्थानोंमें, जो गुणस्थानोक्त बधप्रकृति हैं वे ही यहा वंधयोग्य समझना । ८३ ।

इसी प्रकार क्षायिक सम्यग्दृष्टि चौथेसे तेरहवें पर्यंत ग्यारह गुणस्थानोंमें होता है, वह गुणस्थानोंके अनुसार ही वध प्रकृतियोंको ग्रहण करनेवाला होता है सो यथाशास्त्र समझकर लगाओ । ८४ ।

औपशमिक सम्यग्दर्शनमें जो विशेपता है उसे आगे दिखाते हैं ।—

औपशमिक सम्यग्दर्शनमे मनुष्यायु और देवायुको छोडकर शेप गुणस्थानके अनुसार प्रकृति वाधी जाती है । क्योंकि, उपशम सम्यग्दर्शनके रहते एक भी आयु वधको प्राप्त नहीं होती । चार आयुओंमेंसे नरक तिर्यंच दो आयुकी तो क्रमसे, पहिले दूसरे गुणस्थानमें वधव्युच्छित्ति हो जाती है । इसलिये मनुष्यायु देवायु ये दो ही दर्शनके साथ शेप रह जाती हैं । सो इन दोकी उपशम सम्यक्त्वके रहते वधयोग्यताका निपेध कर दिया है । इस प्रकार उपशमवाले यदि चौथेमे हों तो ७५ को बांधते हैं ।

आगे अणुव्रतके धारी पचम गुणस्थानवर्ती होते हैं वे नौ प्रकृति— दूसरे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार कपाय, एक आदिम सहनन, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक द्वय—ये हैं इनको छोडकर वाघते है । ८६ ।

असावकषायत्वमनुदीरणेति वचनादुदयावलिकायां प्रविष्टायाः कर्मस्थितेर्नोदीरणा। इति मरणावलिकायामायुषः, सूक्ष्मे मोहस्य, क्षीणे घातित्रयस्योदीरणा नास्ति, मरणावलिकाशेषे चायुषि मिश्रं न संभवति।

बंधोदयोदीरणाः कथ्यन्ते।—

घातिकल्मषनिर्ध्वंसी भुङ्क्ते कर्मचतुष्टयम्। कर्मबन्धव्यतिक्रान्तो निर्योगोऽष्टानुदीरकः॥ ९२॥

द्वितयोदीरको योगी वेद्यस्यैकस्य बंधकः। भुङ्क्ते चत्वार्यघातीनि घातिकर्मनिसूदकः॥ ९३॥

बंधकौ वेदनीयस्य शांतक्षीणकषायकौ । भुंजते सप्त कर्माणि पंचकोदीरणापरौ ॥ ९४ ॥
षट्क बध्नाति भुंक्तेऽष्टौ दशमः षडुदीरकः । द्वयोः कषाय पचानां क्षीणसूक्ष्मावुदीरकौ ॥ ९५ ॥
षट्कस्योदीरकाः सप्तबंधका क्रमतस्त्रय । अनिवृत्त्यादयः शश्वदष्टकर्माणि भुंजते ॥ ९६ ॥

उपशांतकषाय तथा क्षीणकषाय ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानवाले, बंध एक वेदनीयका ही करते हैं और वे भोगते मोहके विना सात कर्मोंको हैं, और उदीरणा पांच कर्मोंकी करते हैं। उदीरणाके पांच कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र तथा अंतराय—ये हैं।९४।

दशम गुणस्थानवर्ती मोह तथा आयुके सिवाय छह कर्मोंको बांधता है, भोगता आठो कर्मोंको है, और उदीरणा छह कर्मोंकी करता है। वे उदीरणाके छह कर्म, वेदनीय तथा आयुको छोडकर, शेष हैं। और यदि मरणावली प्राप्त हुई हो तो दशम गुणस्थानवाला पांच कर्मोंकी ही उदीरणा करता है। वह मोहनीयकी उदीरणा नहीं करता और वेदनीय तथा आयुकी उदीरणा भी नहीं करता। एवं, क्षीणकषायवाला नाम गोत्र—इन दो कर्मोंकी उदीरणा करता है। इस प्रकार क्रमसे समझना। भावार्थ, यदि मरणावली प्राप्त न हुई होती तो नाम गोत्रकी उदीरणा तेरहवें गुणस्थानमें होती है। ९५।

अनिवृत्ति (नौवें) आदि तीन गुणस्थानवाले—नौवें, दशवें, ग्यारहवें—ये, छह छह कर्मोंकी उदीरणा करते हैं, सात सात कर्मोंको बांधते हैं; और आठ आठ कर्मोंके उदयको भोगते हैं। ९६।

१—यह क्रमसे उस अवस्थाका वर्णन है जब कि जीव उपशम श्रेणीसे नीचे गिरता है। ग्यारहवें गुणस्थानमें मोहका उपशम रहता है इसलिये उदय सात कर्मोंका नहं ाना गया है। वहां मोहका उदय नहीं रहता है। और जब वह मोहके उदय-वश होता है तो नीचेके गुणस्थानोंकी तर्फ गिरता है इस प्रकार मोहके उदयकी अवस्था गिरते हुए जीवकी दशवें गुणस्थानकी माननी चाहिये। परंतु वह गिरता है मोहके उदयसे ही, इसलिये यहां मोहका उदय कारण और गिरना कार्य है। कारणका अस्तित्व प्रथम मानलें तो मोहके उदयका अस्तित्व ग्यारहवेंमें मानना कथंचित् सयुक्तिक हो सकता है। संभवत इसी आशयसे ग्रंथकारने अनिवृत्त्यादि तीन गुणस्थानोंको आठ कर्मोंका भोक्ता लिखा है।

३२

॥२४९॥

चत्वारः कर्मणां षण्णा साद्यनादिध्रुवाध्रुवाः । वेद्यस्येति विना सादिं त्रयोऽनादिध्रुवाध्रुवाः ॥ १०६ ॥
साद्यध्रुवौ मतो द्वावायुषो द्वावनन्तकैः । चत्वारोऽपीति ते ज्ञेया उत्तरप्रकृतिष्वपि ॥ १०७ ॥
कषायाः षोडश ज्ञानरोधान्तराययोर्दश । उपघातो जुगुप्सा भीर्दर्शनावरणे नव ॥ १०८ ॥
मिथ्यात्वागुरुलघ्वाह्व निर्मिद्वर्णचतुष्टयम् । तैजस कार्मण सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवा मताः ॥ १०९ ॥
आसां भवंति चत्वार साद्यनादिध्रुवाध्रुवाः । साद्यध्रुवा मताः शेषास्तथा सपरिवृत्तयः ॥ ११० ॥
आहारकद्वय तीर्थकृत्वमायुश्चतुष्टयम् । परघातातपोद्योतोच्छ्वासा· शेषा इमा मताः ॥ १११ ॥
इति निष्प्रतिपक्षाः ११ ।

आठमेंसे आयु और वेदनीयके शिवाय शेष छह कर्मोंमें सादि अनादि ध्रुव अध्रुव-ये चार चार भेद समव हैं । वेदनीयमें एक सादि भेदको छोडकर शेष-अनादि ध्रुव अध्रुव-ये तीन भेद रहते हैं । कर्मका नाश करनेवाले सर्वज्ञने आयु कर्ममें सादि और अध्रुव ये दो भेद बताये हैं । इसी प्रकारके कथनानुसार उत्तर प्रकृतियोंमें भी इन सादि आदि चार भेदोंकी व्यवस्था है । उसको आगे बताते हैं । १०६-१०७ ॥

सोलह कषाय, ज्ञानावरण अंतरायकी पाच पाच करके दश प्रकृति, उपघात, जुगुप्सा, भय, दर्शनावरणकी नौ, मिथ्यात्व, अगुरुलघु, निर्माण, वर्णादि चार, तैजस शरीर, कार्मणशरीर-ये सैंतालीस प्रकृति ध्रुव हैं । १०८—१०९ ।

इन ऊपरकी सैंतालीस ध्रुव प्रकृतियोंमें सादि अनादि ध्रुव अध्रुव-ये चारो भेद मिलते हैं । और शेष प्रकृति सादि और अध्रुव होती हैं तथा परिवर्तनवाली भी शेष प्रकृति कहाती हैं । शेष कौनसी, सो आगे बताते हैं । ११० ।

आहारक दो, तीर्थंकरत्व, चार आयु, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास-ये ग्यारह शेष प्रकृति समझनी चाहिये । ये ही प्रकृति परिवर्तनरहित अथवा प्रतिपक्षरहित निष्प्रतिपक्ष समझनी चाहिए । १११ ।

॥२५२॥

गोत्रे संस्थानसंहत्योः षट्के हास्यचतुष्टयम् । वैक्रियिकद्वय वेद्ये गतयो द्वे नभोगती ॥ ११२ ॥

चतुष्कमानुपूर्वीणा दश युग्मानि जातयः । औदारिकद्वय वेदा ज्ञेयाः सपरिवृत्तयः ॥ ११३ ॥

सप्रतिपक्षा इत्यर्थः । ६२ ।

जिनैः स्थानानि चत्वारि भुजाकारास्त्रयस्त्रयः । बधे चाल्पतराः प्रोक्ताश्चत्वारोऽष्टस्ववस्थिताः ॥ ११४ ॥

व घस्थानानि ८ । ७ । ६ । १ । भुजाकारा १,६ । ६,७ । ७,८ । अल्पतरा ६,१ । ७,६ । ८,७ । अवस्थिता ८,८ । ७,७ । ६,६ । १ १ ।

दर्शनावरणे त्रीणि स्थानानि दश मोहने । नाम्नोऽष्टेपु भुजाकारा शेपेपु स्थानमेककम्[1] ॥ ११५ ॥

स्थानानि नवक षट्कं चतुष्क त्रीणि दृग्रुधि । भुजाकारोऽत्र वाच्योऽल्पतरोऽवस्थितको बुधैः ॥ ११६ ॥

दो गोत्र, छह सस्थान, छह सहनन, हास्य रति अरति शोक–ये हास्यादि चार, वैक्रियिक दो, वेदनीय दो, चार गति, प्रशस्त अप्रशस्त दो विहायोगति, चार आनुपूर्वी, त्रसस्थावरादि दश युगल अर्थात् बीस, पाच जाति, औदारिक दो, तीन वेद–इतनी (६२) प्रकृति परिवर्तनशील अथवा सप्रतिपक्ष हैं । ११२––११३ ।

आठ ही कर्मोमें स्थान चार है, भुजाकार तीन हैं, अल्पतर बध तीन हैं और अवस्थित बंध चार हैं ।११४।

बधस्थान–(८।७।६।१) ये चार हैं । भुजाकार तीन–(१,६।६,७।७,८)–ये हैं । अल्पतर–(६,१।७,६।८,७)–ये तीन हैं । अवस्थित–(८,८।७,७।६,६।१,१)–ये चार है ।

दर्शनावरणमें तीन स्थान हैं, मोहमें दश स्थान हैं, नाममें आठ भुजाकार हैं, शेपमें एक स्थान है ।११५।

दर्शनावरणमें तीन स्थान–एक नौका, दूसरा छहका, तीसरा चारका–इस प्रकार है । इसमें भुजाकार, अल्पतर तथा अवस्थित ये तीन भेद भी कहलेने चाहिये । ११६ ।

---

१ ' शेषेपु पच कर्मसु ' ऐसा हस्तलिखित प्रतिमें पाठ है ।

बंधस्थानानि ९ । ६ । ४ । भुजाकारालपतरौ ४, ६। ६, ९। ६, ४। ९, ६ । अवस्थिता ९, ९। ६, ६। ४, ४ ।
नवक सकलाः पट्कं स्त्यानगृद्धित्रय विना । चतुष्क प्रचलानिद्राहीनाः स्थानेष्विति त्रिषु ॥ ११७ ॥
९ । ६ । ४ ॥

द्वावाद्यौ नव, मिश्राद्या षट् षड् बध्नति दृग्रुधि । अपूर्वान्ताश्चतस्रोऽत्रापूर्वाद्याः सूक्ष्मपश्चिमाः ॥ ११८ ॥
९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । अपूर्वप्रथमसप्तमभागे ६ । अपूर्वद्वितीयसप्तमभागादारभ्य यावत्सूक्ष्मं ४ ।

द्व्येकाग्रे विंशती सप्तदश बधे त्रयोदश । नव पच चतुष्कत्रिद्व्येकस्थानानि मोहने ॥ ११९ ॥
२२ । २१ । १७ । १३ । ९ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

बधस्थान—९।६।४। भुजाकार तथा अल्पतर—४,६।६,९।६,४।९,६।—ये हैं । अवस्थित इस प्रकार हैं—९,९।६,६।४,४। तीन स्थानोंमेंसे नौका स्थान, संपूर्ण दर्शनावरणका है । छहका स्थान स्त्यानगृद्धि, प्रचलाप्रचला, निद्रानिद्रा—इन तीनको छोड़कर है । चारका स्थान, प्रचला तथा निद्राको भी छोड़नेपर होता है । ११७ ।

आदिके दो गुणस्थानोंमें नौ नौ दर्शनावरणका बध होता है । मिश्र तीसरेसे आठवेंके प्रथम सप्तमभाग पर्यंत छह गुणस्थान छह छह दर्शनावरणोंको बांधते हैं । अपूर्वके द्वितीय सप्तमभागसे लेकर दसवें गुणस्थानके अत पर्यंत तीन गुणस्थान, चार चार दर्शनावरणोंको बांधते हैं । अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें इसके भाग सात माने हैं ॥ ११८ ॥

९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । अपूर्वके प्रथम सप्तमभागमें ६ । अपूर्वके द्वितीय सप्तमभागसे अततक तथा नौवें, दशवें—इन तीनमें ४ । ४ । ४ ॥

मोहके दश बधस्थान— एक बाईस प्रकृतिका, दूसरा इक्कीसका, तीसरा सत्रहका, चौथा तेरहका, पाचवा नौका, छठा पांचका, सातवां चारका, आठवां तीनका, नौवां दोका, दशवा एकका—इस प्रकार क्रमसे है । ॥ ११९ ॥

द्वाविंशतिः समिथ्यात्वा· कपाया पोडशैकक: । वेदो हास्यादिकेष्वेक युग्मं भयजुगुप्सने ॥ १२० ॥
१ । १६ । १ । २ । १ । १ । मीलिता २२ ।
एपादिमे द्वितीये सा निर्मिथ्यात्वनपुसका । न्यूनाऽनतानुवधिस्त्रीवेदैर्मिश्रेऽव्रते तथा ॥ १२१ ॥
हीना द्वितीयकोपाद्यैर्देशे पष्ठे तृतीयकैः । सप्तमाष्टमयोर्ज्ञेया शोकारतिविनाकृता ॥ १२२ ॥
मिथ्यादृष्टौ २२ । प्रस्तार । २ । भगा ६ । शासने २१ । भगा ४ । मिश्रासयतयो १७ । भगा २ ।

मिथ्यादृष्टौ	शासने	मिश्रे	असयते	देशे १३ ।	प्रमत्ते ९ ।	अप्रमत्तापूर्वयो ९ ।
				२ (भगौ)	२ (भंगौ)	२ (भग) १
२	२	२	२	२।२ २	२।२ २	२
२।२	२।२	२।२	२।२	१	१	१
१।१।१	१।१	१	१	८	४	४
१६	१६	१२	१२			
१						

एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, वेद एक, हास्यादि दो युगलोंमेंसे एक युगल अर्थात् दो, भय एक, जुगुप्सा एक—इस प्रकार मिलकर बाईस मोहका एक स्थान है । १२० ॥

यह बाईसकी सख्या आदिके मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती है । दूसरे सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्व नहीं रहता इसलिये इक्कीसकी सख्या है । और सासादनमें नपुंसक वेद भी नहीं होता है—इस कारण सासादनके भंग कम हो जाते हैं । मिश्र तथा अव्रतमें अनतानुबधीकी चार सख्या और भी घट जाती है इसलिये तीसरे, चौथे गुणस्थानोंमें सत्रहकी संख्या रहती है । और यहा स्त्री वेद कम हो जाता है । इस कारण तीसरे चौथे गुणस्थानमें हास्यादि युगलके कारण भग दो दो ही रह जाते हैं । १२१ ।

देशसंयत पान्चवें गुणस्थानमें दूसरे अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय कम हो जाते हैं इसलिये मोह प्रकृति तेरह रह जाती हैं । छठे गुणस्थानमें तीसरे प्रत्याख्यानावरण चार कषाय भी घट जाते हैं इसलिये मोहप्रकृति नौ रह जाती हैं । सातवें आठवेंमें भी मोहप्रकृति नौ नौ ही रहती हैं । परतु यहा शोक अरति ये दो नहीं रहती इसलिये भग अधिक नहीं होते हैं । १२२ ।

मिथ्यादृष्टिमें २२ मोहप्रकृति हैं, प्रस्तार २ होते हैं, और भग छह होते हैं । सासादनमें इक्कीस मोहप्रकृति हैं, भग

सन्ति पुवेदसंज्वालाः सज्वाला नवमे क्रमात् । विनैकद्वित्रिभिर्बन्धे पंच स्थानानि मोहने ॥ १२३ ॥

५ । ४ । ३ । २ । १ ।

षट् स्युर्द्वाविंशतेर्भङ्गाश्चत्वारस्त्वेकविंशतेः । स्थानत्रये ततो द्वौ द्वावेकोऽतो मोहबन्धने ॥ १२४ ॥

६ । ४ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ ।

एषामानयनमाह,—

अभ्यस्ते युग्मयुग्मेन वेदानां त्रितये सति । भगा द्वाविंशतेर्बन्धे मिथ्यादृष्टे षडीरिता । ६ ॥ १२५ ॥

चार हैं। मिश्र तथा असयतमें प्रकृति सत्रह सत्रह हैं, भंग दो दो हैं। देश सयतमें प्रकृति १३, भग दो हैं। छट्ठे गुणस्थानमें प्रकृति ९, भग दो हैं। सातवें आठवें गुणस्थानोंमें भी प्रकृति नौ हैं, परतु भग एक ही है। ऊपरके यत्रपरसे देखेसे खुलासा होता है।

नौवें गुणस्थानमें मोहके पाच स्थान हैं। प्रथम स्थान पुरुषवेद तथा चार सज्वलनका। दूसरा स्थान केवल चार सज्वलनका। तीसरा स्थान एक सज्वलन कम होजानेसे तीन संज्वलनका। चौथा स्थान दो सज्वलन कम हो जानेसे दो सज्वलनका। पांचवां स्थान तीन सज्वलन कम हो जानेसे एक सज्वलन मोहका। ५ । ४ । ३ । २ । १ ॥ १२३ ॥

बाईस मोहप्रकृतिस्थानके भंग छह होते हैं। इक्कीस मोहप्रकृतिवाले स्थानके भग चार होते हैं। इसके आगेके मोहप्रकृतिके तीन स्थानोंमें भंग दो दो होते हैं। उसके आगे एक एक भग है (६।४।२।२।२।२।१।१।१।१)। १२४।

उन भंगोंको सिद्ध करनेकेलिये आगे गणित करके दिखाते हैं। हास्यादि चारके दो युगल इसमें क्रमसे होते हैं। अर्थात् कभी एक युगल होता है, कभी दूसरा युगल होता है। और वेद तीनमेंसे कभी कोई, कभी कोई एक एक वेद होता है। इसलिये दो वारके युगलको वेदत्रयसे गुणित करें तो छह लब्ध सख्या आती है। इस प्रकार बाईसके बधमें छह भग हो जाते है। कषाय सोलह प्रत्येक भगमें एकसे रहते हैं इसलिये कषायसख्यासे कोई अधिक भग नहीं होता। १२५।

विना पण्ढ हवे द्वाभ्यां वेदाभ्या युगलद्वये । सन्त्येकविंशतेर्बन्धे चत्वारः शामने तु ते । ४ ॥ १२६ ॥
मिश्रासयतयो सप्तदशबधविधायिनोः । सयतासयतस्थस्य त्रयोदशकबंधिनः ॥ १२७ ॥
प्रमत्तस्य च विज्ञेय नवबधविधायिनः । युगभगद्वयं प्राज्ञैर्बंधस्थानत्रये स्फुटम् । २ ॥ १२८ ॥
अप्रमत्तो यतोऽपूर्वः शोकारत्योरबधको । एकैकोऽतस्तयोर्भङ्गो विज्ञेयो नवबधिनो ॥ १२९ ॥
एकद्वित्रिचतु पचबधके चानिवृत्तिके । एकैक कथितो भंगो बधस्थानेषु पचसु ॥ १३० ॥
५।४।३।२।१। एकैको भगः १।१।१।१।१।
मोहनीयभुजाकारा विंशतिर्गदिता बुधै । बधा एकादशैतस्मिन् क्रमादल्पतराः पुनः ॥ १३१ ॥
द्वावव्यक्तौ मतौ बधौ त्रयस्त्रिंशदवस्थिता । चतुर्विधेति विज्ञेया मोहे बधप्ररूपणा ॥ १३२ ॥

सासादनमे नपुंसक वेद नहीं रहता—दो ही वेद रहते हैं । इसलिये हास्यादिके युगलको वेद दोसे गुणित करनेपर सासादनमें इक्कीस प्रकृतिके बधमें चार भंग हो जाते हैं । १२६ ।

सत्रह प्रकृतिके बध वाला मिश्रमें तथा असंयतमें एक स्थान है । सयतासंयत अथवा देशसंयतमें तेरहका एक बंधस्थान है । प्रमत्त-छट्ठेमें नौ प्रकृतिके बंधका एक स्थान है । इन तीनो स्थानोंमें हास्यादि दो युगलके जुदे जुदे रहनेसे दो दो भग हो जाते हैं । १२७–१२८ ।

अप्रमत्त सातवें और अपूर्व आठवें–इन दो गुणस्थानोंमें शोक तथा अरतिका बध नहीं होता, इसलिये यद्यपि हास्य रति रहनेसे इन दोनोंमें बंध नौ मोहप्रकृतिका ही होता है परतु भग एक एक ही दोनोंमें रहता है । अधिक भग होनेके कारण परस्पर बंधविरुद्ध कोई अधिक प्रकृति यहां शेष नहीं रही है । १२९ ।

एक, दो, तीन, चार तथा पांच प्रकृतिवाले अनिवृत्तिके पांच बंधस्थानोंमें प्रत्येकका एक एक ही भंग होता है।१३०।

मोहनीयके भुजाकार वीस बताये गये हैं और क्रमसे अल्पतर इस मोहमें ग्यारह होते हैं । दो अव्यक्त बध हैं और तेतीस अवस्थित बंध हैं । इस प्रकार मोहमें चार प्रकारसे बंधकी प्ररूपणा है । यंत्र आगे दिया है ।१३१-१३२।

२०।१।१।२।३३। भुजाकाराः—

१	२	३	४	५	९	१३	१७	२१	२१	२२
२	३	४	५	९	१३	१७	२१	२२	२२	
१७	१७	१७	१७	१७	१७	२१	२२			

अल्पतरा —

२२	१७	१३	९	५	४	३	२
१७	१३	९	५	४	३	२	१
१३	९	५					

एक बध्नन्नधो गत्वा बध्नाति प्रकृतिद्वयम् । तत्र मृत्वाऽपरो भूत्वा जोत्र सप्तदशार्जति ॥ १३३ ॥
सर्वत्रेत्युच्चारणा कार्या ।
अव्यक्त' कथ्यते—
सूक्ष्मोपशमकोऽधस्तादवतीर्यानिवृत्तिक । भूत्वा स्वीकुरुते कश्चिदेकां प्रकृतिमग्रवान् ॥ १३४ ॥

उपशम श्रेणीसे उतरने वाला जीव यदि मरण करे तो देवगतिको जाता है ऐसा नियम है। उसको लक्ष्यमें लाकर भुजाकारका उदाहरण देते हैं कि—दशवेंमें अथवा नौवें गुणस्थानके अंतिम भागमें मोहकी एक प्रकृतिको बाधता हुआ जीव नीचे आवे तो फिर मोहकी दो प्रकृतियोंको बाधता है। और वहांपर मर कर देव होकर, जीव फिर सत्रह मोह प्रकृतियोंको बांधता है। यह एक भुजाकार हुआ। पहिले कमती प्रकृतियोंको बांधे फिर अधिक प्रकृतियोंको बांधे इसका नाम भुजाकार है। इसी प्रकार यत्रके दूसरे भुजाकारोंको समझना। १३३।

अव्यक्तको खुलासा करते हैं।—सूक्ष्म-सांपरायका उपशम श्रेणी वाला जीव नीचे गिरकर अनिवृत्ति—नौवा गुणस्थान पाकर किसी एक प्रकृतिको स्वीकार करता है। अथवा कोई सूक्ष्म उपशमक जीव मरकर देव होकर सत्रह प्रकृतियोंको बाधने

॥२५८॥

सूक्ष्मोपशमको मृत्वा देवभूय गतोऽथवा । बध्नाति प्रकृतीर्जीव कश्चित्सप्तदश स्फुटम् ॥ १३५ ॥
अव्यक्तभुजाकारौ शून्यत॰ ०।१–१७ इति द्वौ ।
क्रमतोऽत्र भुजाकाराऽल्पतराव्यक्ताख्यबन्धसक्षेपे । सद्भिरत्रस्थितमंज्ञा बन्धविशेषा विबोद्धव्या ॥ १३६ ॥
भुजाकारा २० । अल्पतरा. ११ । अव्यक्तौ द्वौ २ । संक्षेप. ३३ ।
स्यात्त्रिभिर्विंशति पचपडष्टनवभि क्रमात् । दशैकादशभिर्युक्ता स्थानमेक च नामनि ॥ १३७ ॥
२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ।
क्रमेण गतियुक्तानि श्वभ्रतिर्यङ्नृनाकिनाम् । एकपचत्रिपचाहुर्बन्धस्थानानि नामनि ॥ १३८ ॥
१ । ५ । ३ । ५ ।

लगता है । ये अव्यक्त, भुजाकार दो हैं । यहां शू यसे अथवा एक प्रकृतिसे सत्रह प्रकृतियोंको बाधा जाता है (० ।१– १७) । १३४–१३५ ।

यहापर क्रमसे भुजाकार, अल्पतर, अव्यक्त दो इन सबके भेद तेतीस होते हैं । इनमें अवस्थित नामभेदको भी देख लेना चाहिये । १३६ ।

भुजाकार २०, अल्पतर ११, अव्यक्त २–मिलकर सर्व ३३ हुए ।

अब नामकर्मके स्थानादिको दिखाते हैं । नाम कर्ममें तीन अधिक वीसका अर्थात् तेईसका एक स्थान है । दूसरा पांच अधिक वीस–पच्चीसका स्थान है । तीसरा छह अधिक वीस–छब्बीसका स्थान है । चौथा आठ अधिक वीस–अट्ठाईसका एक स्थान है । पांचवा नौ अधिक वीस–उन्तीसका एक स्थान है । छट्ठा दश अधिक वीस–तीसका एक स्थान है । सातवा ग्यारह अधिक वीस अर्थात् इकतीसका स्थान है आठवा एक प्रकृतिका स्थान है । १३७ ।

नरकगति, तिर्यंचगति मनुष्यगति, देवगति–इन कर्मोंको बांधनेवालोंके क्रमसे एक स्थान, पांच स्थान, तीन स्थान तथा पांच स्थान नाम कर्मके होते हैं । १३८ ।

॥२५९

तत्र श्वभ्रद्वय हुडं निर्माणं दुर्भगास्थिरे । पचेन्द्रियमनादेयमयशो दु स्वराशुभे ॥ १३९ ॥
तेजो वैक्रियिकद्वन्द्वं कार्मणासन्नभोगती । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ १४० ॥
इत्यष्टाविंशतिस्थानमेक मिथ्यात्वग्राहिनः । युक्तं श्वभ्रतिंपचाक्षपूर्णैर्बध्नति जन्तवः ॥ १४१ ॥ भगः । १
एकाक्षविकलाक्षाणा बध्यन्ते नात्र जातय । श्वभ्रगत्या सम तासा सर्वदा वृत्यभावतः ॥ १४२ ॥
दशभिर्नवभिः षड्भिः पंचभिर्विंशतिस्त्रिभिः । युक्तस्थानानि पंचेति तिर्यग्गतियुतानि वै ॥ १४३ ॥
३० । २९ । २६ । २५ । २३ ।
तत्र सहतिसस्थानषट्कस्यैकतरद्वयम् । नभोगतियुगस्यैकतरमौदारिकद्वयम् ॥ १४४ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् । स्थिरादिषड्युगेष्वेकतर पचाक्षनिर्मिती ॥ १४५ ॥

प्रथम नरकगतिके स्थानका खुलासा करते हैं ।— नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी—ये दो कर्मप्रकृति, हुडक सस्थान, निर्माण, दुर्भग, अस्थिर, पचेंद्रिय जाति, अनादेय, अयशःकीर्ति, दु स्वर, अशुभ, तैजस काय, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिकागोपांग–युगल, कार्मण काय, अप्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार—इन अठ्ठाईस नामकर्मकी प्रकृतियोंको मिथ्यादृष्टि जीव वे बांधते है जो पचेंद्रिय, पर्याप्तक तथा नरकगतिको बांधनेवाले हैं । इसमें भग एक ही है । १३९–१४१ ।

एकेंद्रिय तथा विकलेंद्रिय—ये चार जाति कर्म यहां बाधे नहीं जाते । क्योंकि नरक गति कर्मके साथ इन चार जाति कर्मोंका उदय कभी नहीं होता है ॥ १४२ ॥

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका, उन्तीस प्रकृतियोंका, छब्बीस प्रकृतियोंका, पच्चीस प्रकृतियोंका, तेईस प्रकृतियोंका—ये पाच स्थान तिर्यंच गतिके साथ होते हैं ॥ १४३ ॥

इनमेंसे तीस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं ।—छह सस्थानमेंसे एक कोई, छह सहननमेंसे एक कोई—ये दो हुए । दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, औदारिकद्वय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, स्थिरादि छह युगलोंमेंसे एक एक ऐसे छह, पचेंद्रिय जाति, निर्माण, तैजस, कार्मण, तिर्यंगति—तिर्यंगत्यानुपूर्वी ये दो, उद्योत—ये सर्व तीस प्रकृति होती हैं । इनको

तैजस कार्मणं तिर्यग्द्वयमुद्योतमादिमम् । पचाक्षोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥ १४६ ॥
मिथ्यादृष्टि प्रबध्नाति त्रिंशत शासनोऽपि च । एतां द्वितीयकां हुडासम्प्राप्तापाकृतां पराम् ॥ १४७ ॥

तत्र प्रथमत्रिंशति षट्संस्थानषट्संहनननभोगतियुगलस्थिरादिषड्युगलानि । ६ । ६ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः । ४६०८ ।

द्वितीयत्रिंशति शासनेऽतिमसंस्थानसंहनने बंधं न गच्छतस्तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् । अतः—५ । ५ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टाः पुनरुक्ता इति न गृह्यन्ते ।

परा त्रिंशत् तृतीयेयं तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तैजसौदारिकद्वन्द्वे हुडासंप्राप्तदुर्भगम् ॥ १४८ ॥

वह मिथ्यादृष्टि बाधता है जो पचेंद्रिय, उद्योत, पर्याप्ति तथा तिर्यंच गति—इन चार प्रकृतियोंको बाधनेवाला है। सासादन गुणस्थानवर्ती भी इन तीस प्रकृतियोंको बाधता है परंतु वह हुंडक सस्थानको तथा असंप्राप्तासृपाटिका संहननको नहीं बाधता इसलिये यह दूसरा तीसका भग है और मिथ्यादृष्टिका तीस प्रकृतिवाला प्रथम भंग है । १४४—१४७ ।

पहिली तीस प्रकृतियोंमें छह सस्थान, छह सहनन, विहायोगतिका एक युगल और स्थिरादि छहके छह युगल ६×६×२×२×२×२×२×२×२= ४६०८ ये सर्व परस्परमें गुणित होनेपर ४६०८ भग हो जाते हैं ।

सासादनमें जो तीस प्रकृतियोंका बंध होता है उस समय अतिम संस्थानका तथा अतिम सहननका बध नहीं होता, क्योंकि, इन दो कर्मोंको बाधने योग्य तीव्र संक्लेश परिणाम सासादन गुणस्थानमें नहीं हो पाते हैं। इसलिये—५—५—२—२—२—२—२—२—२ इन संख्याओंको परस्पर गुणनेसे ३२०० भग होजाते हैं। परतु इन ३२०० का पूर्वके भंगोंमें समावेश होजाता है इसलिये ये जुदे नहीं गिनाये हैं ।

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका तीसरा एक स्थान इस प्रकार है—तिर्यगति दो, कार्मण, तैजस, औदारिक दो, हुडक सस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका सहनन, दुर्भग, त्रसादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, विकल तीन जातियोंमेंसे एक,

तत्र श्वभ्रद्वय हुंडं निर्माणं दुर्भगास्थिरे। पचेन्द्रियमनादेयमयशो दुःस्वराशुभे ॥ १३९ ॥
तेजो वैक्रियिकद्वन्द्वं कार्मणासन्नभोगती। वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ १४० ॥
इत्यष्टाविंशतिस्थानमेक मिथ्यात्ववाहिनः। युक्तं श्वभ्रगतिं पचाक्षपूर्णं बध्नति जन्तवः ॥ १४१ ॥ भगः। १
एकाक्षविकलाक्षाणा वध्यन्ते नात्र जातय। श्वभ्रगत्या सम तासां सर्वदा नुदयभावत ॥ १४२ ॥
दशभिर्नवभिः षड्भिः पंचभिर्विंशतिस्त्रिभिः। युक्तस्थानानि पचेति तिर्यग्गतियुतानि वै ॥ १४३ ॥
३० । २९ । २६ । २५ । २३ ।
तत्र सहतिसस्थानषट्कस्यैकतरद्वयम्। नभोगतियुगस्यैकतरमौदारिकद्वयम् ॥ १४४ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम्। स्थिरादिषड्युग्मेष्वेकतर पंचाक्षनिर्मितौ ॥ १४५ ॥

प्रथम नरकगतिके स्थानका खुलासा करते हैं।— नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी—ये दो कर्मप्रकृति, हुडक सस्थान, निर्माण, दुर्भग, अस्थिर, पचेंद्रिय जाति, अनादेय, अयशःकीर्ति, दुःस्वर, अशुभ, तैजस काय, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिकांगोपाग—युगल, कार्मण काय, अप्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार—इन अट्ठाईस नामकर्मकी प्रकृतियोंको मिथ्यादृष्टि जीव वे बाधते है जो पचेंद्रिय, पर्याप्तक तथा नरकगतिको बाधनेवाले हैं। इसमें भग एक ही है। १३९-१४१।

एकेंद्रिय तथा विकलेंद्रिय—ये चार जाति कर्म यहा बाधे नहीं जाते। क्योंकि नरक गति कर्मके साथ इन चार जाति कर्मोंका उदय कभी नहीं होता है ॥ १४२ ॥

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका, उन्तीस प्रकृतियोंका, छब्बीस प्रकृतियोंका, पचीस प्रकृतियोंका, तेईस प्रकृतियोंका—ये पाच स्थान तिर्यंच गतिके साथ होते हैं ॥ १४३ ॥

इनमेंसे तीस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं।—छह सस्थानमेंसे एक कोई, छह सहननमेंसे एक कोई—ये दो हुए। दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, औदारिकद्वय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, स्थिरादि छह युगलोंमेंसे एक एक ऐसे छह, पचेंद्रिय जाति, निर्माण, तैजस, कार्मण, तिर्यग्गति—तिर्यगत्यानुपूर्वी ये दो, उद्योत—ये सर्व तीस प्रकृति होती हैं। इनको

परि०
॥२६०॥

तैजसं कार्मणं तिर्यग्द्वयमुद्योतमादिमम् । पचाक्षोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥ १४६ ॥

मिथ्यादृष्टि प्रबध्नाति त्रिंशत शासनोऽपि च । एतां द्वितीयकां हुडासप्राप्तापाकृता पराम् ॥ १४७ ॥

तत्र प्रथमत्रिंशति षट्संस्थानषट्संहनननभोगतियुगलस्थिरादिषड्युगलानि । ६ । ६ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः । ४६०८ ।

द्वितीयत्रिंशति शासनेंऽतिमसस्थानसंहनने बंधं न गच्छतस्तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् । अतः—५ । ५ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टाः पुनरुक्ता इति न गृह्यन्ते ।

परा त्रिंशत् तृतीयेय तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तैजसौदारिकद्वन्द्वे हुडासंप्राप्तदुर्भगम् ॥ १४८ ॥

वह मिथ्यादृष्टि बाधता है जो पचेंद्रिय, उद्योत, पर्याप्ति तथा तिर्यंच गति—इन चार प्रकृतियोंको बाधनेवाला है । सासादन गुणस्थानवर्ती भी इन तीस प्रकृतियोंको बाधता है परंतु वह हुडक सस्थानको तथा असप्राप्तासृपाटिका संहननको नहीं बाधता इसलिये यह दूसरा तीसका भग है और मिथ्यादृष्टिका तीस प्रकृतिवाला प्रथम भग है । १४४—१४७ ।

पहिली तीस प्रकृतियोंमें छह सस्थान, छह संहनन, विहायोगतिका एक युगल और स्थिरादि छहके छह युगल ६×६×२×२×२×२×२×२×२= ४६०८ ये सर्व परस्परमें गुणित होनेपर ४६०८ भग हो जाते हैं ।

सासादनमें जो तीस प्रकृतियोंका बंध होता है उस समय अतिम संस्थानका तथा अतिम संहननका बध नहीं होता, क्योंकि, इन दो कर्मोंको बांधने योग्य तीव्र सक्लेश परिणाम सासादन गुणस्थानमें नहीं हो पाते हैं । इसलिये—५—५—२—२—२—२—२—२—२ इन संख्याओंको परस्पर गुणनेसे ३२०० भग होजाते हैं । परतु इन ३२०० का पूर्वके भंगोंमें समावेश होजाता है इसलिये ये जुदे नहीं गिनाये हैं ।

नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका तीसरा एक स्थान इस प्रकार है—तिर्यंगति दो, कार्मण, तैजस, औदारिक दो, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका सहनन, दुर्भग, त्रसादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, विकल तीन जातियोंमेंसे एक,

त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् । विकलेन्द्रियजात्येकतरं दु स्वरनिर्मिती ॥ १४९ ॥
यश स्थिरशुभद्वन्द्वत्रितयैकतरत्रयम् । उद्योतासन्नभोरीती अनादेय तृतीयकम् ॥ १५० ॥
विकलोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् । मिथ्यात्वकलितस्वान्तो जीवो बध्नाति दुर्मना ॥ १५१ ॥

अत्र विकलेन्द्रियाणा हुडसस्थानमेवैक, तथैतेषां बंधोदययोर्दुःस्वरमेव । इति तिस्रो जातयस्त्रीणि युगलानि ।३। २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि, भगाः । २४ ।

यथैतास्त्रिंशतस्तिस्र एकोनत्रिंशतस्तथा । विशेषोऽय पर तासु यदुद्योतो न बध्यते ॥ १५२ ॥
एतासु पूर्वोक्ता भगाः ४६०८ । २४ ।

दु.स्वर, निर्माण, यश कीर्ति—स्थिर-शुभ- इन तीन युगलोंमेंसे एक एक करके तीन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, अनादेय- इन तीसरी तीस प्रकृतियोंको मिथ्यात्वसे दूषित मनवाला वह जीव बाधता है जिसकें विकलेंद्रिय जाति, उद्योत, पर्याप्ति तथा तिर्यंगति- ये चार प्रकृति बधको प्राप्त होरही हैं । अर्थात इन विकलादि चारकी अविनाभावी होकर ऊपर बताई तीस प्रकृति बधको प्राप्त होती है । १४८–१५१ ।

यहा विकलेंद्रियके साथ सस्थान हुडक ही एक रहता है और इनके साथ बध तथा उदय दु.स्वर कर्मका ही होता है । इसलिये जातिकर्म तीन तथा यश आदि तीन युगलका–३×२×२×२=परस्पर गुणन करनेसे भग २४ हो जाते हैं ।

जिस प्रकार ये तीस प्रकृतिके प्रकार तीन हैं उसी प्रकार उन्तीसका भी तिर्यंगतिका एक पाच स्थानोंमेंसे स्थान है उसके भी तीन ही प्रकार हैं, परन्तु इस उन्तीसके तीनों स्थानोंमें उद्योत नहीं रहता–यही विशेष है अथवा इसीलिये तीसके स्थानमें उन्तीस प्रकृतिसख्या है ॥ १५२ ॥

इनमें भी भग पूर्वके समान ४६०८ तथा २४ हैं ।

॥२६२

षड्विंशतिरियं तेजस्तिर्यग्द्वितयकार्मणे । बादरौदारिकैकाक्षहुडपर्याप्तदुर्भगाः ॥ १५३ ॥
उद्योतातपयोरेक प्रत्येक स्थावरं परम् । शुभद्वन्द्वयशोद्वन्द्वस्थिरद्वन्द्वत्रयैककम् ॥ १५४ ॥
निर्मित्यागुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् । अनादेयमितीयां च स्वीकरोति कुदर्शनः ॥ १५५ ॥
बादरैकाक्षपर्याप्ततिर्यग्गतिभिरन्विताम् । तथैकतरसयुक्तामातपोद्योतयोरपि ॥ १५६ ॥
अत्राष्टागाभावादेकेन्द्रियस्यागोपाग नास्ति । सस्थानमप्येक हुडमेव, यस्मात्तस्मादातपोद्योतास्थिरस्थिरशुभाशुभय-
शोऽयशोयुगानि । २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः १६ ।
षड्विंशतिरियं तस्य जायते पञ्चविंशति । निरुद्योतातपा सूक्ष्मप्रत्येकद्वित यैकयुक् ॥ १५७ ॥

नामकर्मका एक छब्बीस प्रकृतिका स्थान है, उसे गिनाकर दिखाते हैं।— तैजस, कार्मण, तिर्यगतिद्वय, बादर, औदारिक, एकेंद्रिय, हुडक, पर्याप्त, दुर्भग, उद्योत तथा आतप—इन दोमेंसे कोई एक, प्रत्येक, स्थावर, शुभयुगलमेंका एक, यशःकीर्ति युगलमेंका एक, स्थिर युगलमेंका एक, निर्माण, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, अनादेय—इन छब्बीस प्रकृतियोंको मिथ्यादृष्टि बांधता है । बादर, एकेंद्रिय, पर्याप्त, तिर्यग्गति—ये चार तथा आतप उद्योतमेंसे एक—इन पांच प्रकृतियोंके साथ ही ऊपरकी छब्बीस प्रकृतिका बंध होता है ऐसा नियम है । १५३—१५६ ।

यहांपर औदारिक शरीरकी अगोपांग प्रकृति नहीं गिनाई है । इसका कारण यह है कि एकेंद्रियके आठ अगरूप रचना नहीं होती इसलिये वहां अगोपाग कर्मका समव नहीं है । सस्थान भी एकेंद्रियके एक हुडक ही है । इस लिये यहा आतप उद्योतके युगलको, अस्थिर—स्थिरके युगलको, शुभाशुभके युगलको, और यशःकीर्ति—अयशःकीर्तिके युगलको—इन चार युगलोंको परस्पर गुणित करनेसे छब्बीसके भग १६ हो जाते हैं २×२×२×२=१६ ।

आतप—उद्योतमेंसे एकका भी बंध न हो तो छब्बीसके स्थानमें पच्चीस प्रकृतिका स्थान बन जाता है । परतु पच्चीस प्रकृतिवाला सूक्ष्म बादर—इस युगलमेंसे किसी भी एकको बांधता है, एव प्रत्येक साधारण—इस युगलमेंसे भी किसी भी एकको

त्रयोविंशतिरपात्र तेजस्तिर्यग्द्वयाशुभे । कार्मणौदारिके हुडमयशो वर्णचतुष्टयम् ॥ १६१ ॥
एकाक्षागुरुलघ्वाह्वे दुर्भग स्थावरास्थिरे । उपघातमनादेयमपर्याप्तकनिर्मिती ॥ १६२ ॥
सूक्ष्मप्रत्येकयुग्मैकतरे मिथ्यात्वदूषितः । वध्नात्यपूर्णकैकाक्षतिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥ १६३ ॥

अत्र संहननबन्धो नास्ति, एकाक्षेषु संहननोदयाभावात् । ततः सूक्ष्मबादरयोः प्रत्येकसाधारणाभ्यामभ्यासे चत्वारो भंगाः ४ । इत्थ तिर्यग्गतियुक्ताः सर्वे भंगाः ९३०८ ।

त्रिंशतिर्दशभिर्युक्ता नवभिः पचभिः क्रमात् । नृगत्यां त्रीणि जायते बंधस्थानानि नामनि ॥ १६४ ॥
३० । २९ । २५ ।

होता, क्योंकि, ये परस्पर विरुद्ध हैं और अपर्याप्त अवस्थावाले जीवके अपर्याप्त कालमें इनका उदय भी नहीं होता । इसलिये यहां चार जातिकर्मोंके द्वारा चार ही भंग होते हैं (४)।

अब तेईस प्रकृतिके स्थानको दिखाते हैं ।—तैजस, तिर्यग्गति दो, अशुभ, कार्मण, औदारिक, हुडक, अयश कीर्ति, वर्णादि चार, एकेंद्रिय, अगुरुलघु, दुर्भग, स्थावर, अस्थिर, उपघात, अनादेय, अपर्याप्त, निर्माण, सूक्ष्मयुगलका एक, प्रत्येक युगलका एक—इन तेईसको अपर्याप्तक, एकेंद्रिय, तिर्यगति—इन तीन कर्मोंको बांधनेवाला ही मिथ्यादृष्टि बांधता है ॥ १६१ । १६३ ॥

यहां संहननका बंध नहीं है, क्योंकि, एकेंद्रियमें संहननका उदय नहीं होता । इसलिये यहां सूक्ष्म बादरके युगलका प्रत्येक- साधारणके युगलसे गुणन करनेपर चार भंग होते हैं । इस प्रकार तिर्यंच गतिके सर्व भंग ९३०८ हैं ।

मनुष्यगतिमें नाम कर्मके तीस, उनतीस, पच्चीस--३०।२९।२५ ।--प्रकृतिवाले तीन स्थान हैं । १६४।

त्रिंशदेषाऽत्र पचाक्ष नृद्वयौदारिकद्वये । सुस्वर सुभगादेयमाद्ये सस्थानसहती ॥ १६५ ॥
शुभस्थिरयशोयुग्मेकैक शस्तनभोगतिः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीना चतुष्टयम् ॥ १६६ ॥
तीर्थकृत् कार्मण तेजो निर्मिद्वध्नात्यसयतः । इमा नृगतिपचाक्षपूर्णतीर्थकरैर्युता ॥ १६७ ॥
न दुर्भगमनादेय दुस्वरं याति बधता । सम्यक्त्वतीर्थकृत्त्वाभ्या सह बंधविरोधतः ॥ १६८ ॥
सुभगसुस्वरादेयानामेव यतोऽत्र बंधस्ततस्त्रीणि युगानि— २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यस्तानि भंगाः ८ ।
विना तीर्थकृता त्रिंशदेकोनत्रिंशदस्त्यमूम् । युक्ता मनुष्यगत्याद्यैर्बध्नीतो मिश्रनिव्रती ॥ १६९ ॥
२९ । अत्राष्टौ भगा. पुनरुक्ता. ८ ।

इन तीनोंमेंसे तीस प्रकृतिके स्थानको बताते हैं ।—पचेंद्रिय जाति, मनुष्यगति द्वय, औदारिक द्वय, सुस्वर, सुभग, आदेय, प्रथम सस्थान, प्रथम सहनन, शुभद्वय–स्थिरद्वय–यश कीर्तिद्वय–इन तीन युगलोंमेंसे एक एक तीन, प्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, त्रसादि चार, तीर्थकरत्व, कार्मण, तैजस, निर्माण–इन तीसका बध असयत सम्यग्दृष्टि करता है । किंतु मनुष्यगति, पचेंद्रिय जाति, पर्याप्ति तथा तीर्थकरत्व–इन चार प्रकृतियोंको नियमसे साथ बाधनेवाला ही बाधता है । १६५–१६७ ।

सम्यक्त्व तथा तीर्थकर प्रकृतिके साथ दुर्भग अनादेय दु स्वर–इन तीन प्रकृतियोंके बंधका विरोध है, इसलिये यहा ये तीन प्रकृति बाधी नहीं जाती हैं । १६८ ।

सुभग सुस्वर आदेय–इन तीनका यहा अकेला बध होता है इसलिये शेष रहे तीन युगलोंको परस्पर गुणनेसे सर्व भग ८ होते हैं ।

तीसमेंसे तीर्थकर प्रकृतिका बध जब नहीं होता तब उन्तीस प्रकृतिका स्थान हो जाता है । इस स्थानको मनुष्यगति पचेंद्रिय जाति तथा पर्याप्त इन तीन प्रकृतियोंको बाधनेवाला असयत सम्यग्दृष्टि तथा 'मिश्र गुणस्थानवाला बाधता है ।१६९।

इस उन्तीसके स्थानमें भी भग तीसके समान आठ ही हैं परतु तीसके समान होनेसे ये भग पुनरुक्त हैं ।

एकोनत्रिंशदन्येव द्वितीयैकतरैर्युता । युग्मानां सुस्वरादेयसुभगाना त्रिभिः स्फुटम् ॥ १७० ॥
एता संहतिसंस्थानषट्कैकतरसयुताम् । सनभोगतियुग्मैकतरां बध्नाति वामदृक् ॥ १७१ ॥
२ । २ । २ । २ । २ । २ । ६ । ६ । २ । एषामन्योन्याभ्यासे भगा.– ४६०८ ।
तृतीयापि द्वितीयेव बध्यते सास्तदर्शिना । हुडासप्राप्तके त्यक्त्वा तच्छेषैकतरान्विता ॥ १७२ ॥
२ । २ । २ । २ । २ । २ । ५ । ५ । २ । एषामन्योन्यवधे भगा ३२०० । एते पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते ।
पचविंशतिरेषात्र मनुष्यद्वयकार्मणे । हुडासप्राप्ततेजाभि–पचाक्षौदारिकद्वये ॥ १७३ ॥
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्वस्थूलापर्याप्तदुर्भगम् । उपघातमनादेय त्रस वर्णचतुष्टयम् ॥ १७४ ॥

दूसरी तरहसे भी उन्तीस प्रकृति बांधी जाती हैं उनको आगे दिखाते हैं ।—सुस्वर आदेय सुभग–इन तीन युगलोंके प्रत्येक युगलमेंसे कोई एक एक (तीन) प्रकृतिको लेकर और छह सस्थान–छह संहननमेंसे किसी एक एकको लेकर और विहायोगतिके युगलमेंसे किसी भी एकको लेकर जो उन्तीस प्रकृतिको बांधता है वह मिथ्यादृष्टि ही बांधता है । १७०—१७१ ।
उसके भंग २।२।२।२।२।२।६।६।२।=४६०८ ।

तीसरे प्रकारसे उन्तीस प्रकृति बांधी जाती हैं उनको दिखाते हैं ।—तीसरी उन्तीसी दूसरीके समान ही बांधी जाती है । केवल अन्त, हुडक संस्थान तथा असंप्राप्तासृपाटिका संहननको न बांधकर शेष पांच पांच संस्थान संहननोंमेंसे एक एकको बांधे, यह है । इसको सासादन गुणस्थानवाला बांधता है । इसके भंग (२।२।२।२।२।२।५।५।२=३२०० होते हैं । परंतु ये भंग पुनरुक्त होनेसे जुदे सम्हारे नहीं जाते, ऊपरके भंगोंमें गर्भित हो जाते हैं । १७२ ।

अब पचीस प्रकृतिको मनुष्यगतिमें बांधनेका स्थान दिखाते हैं ।– मनुष्यगति द्वय, कार्मण, हुडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, तैजस शरीर, पचेंद्रिय जाति, औदारिक काय द्वय, प्रत्येक, अगुरुलघु, बादर, अपर्याप्त, दुर्भग, उपघात, अनादेय,

अयशोऽस्थिरनिर्माणमशुभ स्वीकरोत्ययम् । नृगत्यपर्याप्तपंचाक्षयुक्तां मिथ्यात्ववासित ॥ १७५ ॥ (२५) ।
सक्लेशाद्ध्यमानेन नापूर्णेन सह स्फुटम् । शुद्धाना कर्मणा बन्धः स्थिरादीनां प्रजायते ॥ १७६ ॥
अतस्ततो भगः २ । एव मनुष्यगतः सर्वे भगा ४६१७ ।
एकद्वित्रिचतुर्न्यूना द्वात्रिंशद्गदिता क्रमात् । चत्वारि देवगत्याशा निर्गन्येक तु पचनाम् ॥ १७७ ॥
३१ । ३० । २९ । २८ । १ ।
तत्रैकत्रिंशदाधेय कार्मण त्रिदशद्वयम् । पञ्चेन्द्रियाद्यसस्थाने तेजो वैक्रियिकद्वयम् ॥ १७८ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् । सुभग सुस्वरं शस्तव्योमरीतिर्यश शुभम् ॥ १७९ ॥
स्थिरमाहारकद्वन्द्व निर्माणादेयतीर्थकृत् । अजयत्यप्रमत्तोऽमूमपूर्वकरणोऽपि च ॥ १८० ॥

त्रस, वर्णादि चार, अयश कीर्ति, अस्थिर, निर्माण, अशुभ–इन पचीस प्रकृतियोंको वह मिथ्यादृष्टि बांधता है जिसके मनुष्यगति, अपर्याप्त, पचेंद्रिय जाति–ये प्रकृति बांधी जा चुकी हैं ।१७३–१७५।

संक्लेश परिणामोंके द्वारा अपर्याप्तक प्रकृतिके साथ जब बंध होता है तब स्थिरादि शुद्ध कर्मप्रकृतियोंका बंध नहीं होता । १७६ । इसलिये भग यहां दो ही हैं । और सर्व भंग मनुष्यगतिके ४६१७ हैं ।

अब देवगतिके नामकर्म सबधी स्थानोंको बताते हैं–३१, ३०, २९, २८, १–इनमेंसे पहिले चार देवगतिके साथ नामकर्मके स्थान होते हैं । और एक बंधवाला गतिरहित है । १७७ ।

इन पांचो भेदोंमेंसे इकतीसका प्रथम स्थान बताते हैं।–कार्मण, देवगति द्वय, पचेंद्रिय, आदिका संस्थान तैजस, वैक्रियिक द्वय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, सुभग, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, यश कीर्ति, शुभ, स्थिर, आहारक द्वय, निर्माण, आदेय, तीर्थकरत्व–इन इकतीस प्रकृतिको सातवें गुणस्थानका तथा अपूर्व करण–आठवें गुणस्थानका जीव बांधता है । १७८–१८० ।

तीर्थकर्तृत्वपर्याप्तपचाक्षाहारकद्वयैः । एकत्रिंशदिय युक्ता स्थान देवगतौ मतम् ॥ १८१ ॥
देवगत्या सम वधः संहतेर्नात्र जायते । उदयाभावतस्तस्या यतो देवेषु सर्वदा ॥ १८२ ॥ ततो भंगः १ ।
एकत्रिंशदिय त्रिंशत्त्यक्ता तीर्थकृता भवेत् । जायेते सयतौ तस्या वंधकौ सप्तमाष्टमौ ॥ १८३ ॥
न वंधोऽत्रास्थिरादीनां यतः सक्लेशभाविनाम् । विशुद्धया सममेतेषा सदा वंधविरोधतः ॥ १८४ ॥ ततो भंगः २ ।
एकत्रिंशद्भवत्यत्र निरस्ताहारकद्वया । एकोनत्रिंशदाद्यैषा वध्यते सप्तमाष्टमैः ॥ १८५ ॥ भगः १ ।
एकोनत्रिंशदन्यैव वध्यतेऽस्या पर त्रिभिः । यशःशुभस्थिरद्वन्द्वेष्वेकैकं निव्रतादिभिः ॥ १८६ ॥

तीर्थकरत्व, पर्याप्तता, पचेंद्रिय, तथा आहारकद्वय-इन पांच प्रकृतियोंके साथ इस इकतीसीको बांधनेका देवगतिमें एक स्थान है । देवगति प्रकृतिके साथ संहननोंका बध नहीं होता, क्योंकि, सहननोंका देवोंमें कभी उदय ही नहीं होता । इसका भंग एक ही है । १८१-१८२ ।

तीर्थकर प्रकृति यदि न बांधी जाय तो इकतीसके स्थानमें तीसकी संख्या हो जाती है । इसके भी बांधनेवाले सातवें आठवें गुणस्थानवर्ती दोनो सयमी ही होते हैं । विशुद्ध परिणामोंसे बाधी जानेवाली इन प्रकृतियोंके साथ सक्लिष्ट परिणामोंसे बॅधने योग्य अस्थिरादि प्रकृतियोंका बध नहीं होता है । क्योंकि, इनका परस्परमें विरोध है । अतएव भग यहापर दोनो गुणस्थानका एक एक ही है । १८३-१८४ ।

इकतीसमेंसे यदि आहारक द्वयका बध न हो तो वह उन्तीस प्रकृतिका स्थान हो जाता है । यह उन्तीसका प्रथम स्थान है । इसको भी सातवें आठवें गुणस्थानवाले ही बाधते है । इसका भग एक ही है ॥ १८५ ॥

उन्तीसका दूसरा एक स्थान है । इसमें यश कीर्ति-शुभ-स्थिर-इन तीनके युगलोंमेंसे किसी भी एक एकका बंध होता है । इसको बाधनेवाले असयत देशसयत प्रमत्त ये तीन हैं ॥ १८६ ॥

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न वध्यते तत्र तस्योदयाभावात् । तिर्यग्गतिमपाकृत्य तस्यान्यया गत्या सह वधविरोधात् । देहदीप्तिर्देवानां तर्हि कुतः ? वर्णनामकर्मोदयात् । अत्र त्रीणि युगानि २।२।२। अन्योन्याभ्यस्तानि भगाः ८

एकत्रिंशद्विना तीर्थकृत्त्वमाहारकद्वयं । अष्टाविंशतिराद्येमां गृहीतः सप्तमाष्टमौ ॥ १८७ ॥

अत्र भग १ पुनरुक्तः ।

अष्टाविंशतिरेकान्नत्रिंशदस्ति द्वितीयका । अन्या तीर्थकरेणोना त बध्नति षडादिमाः ॥ १८८ ॥

अप्रमत्तादीनामुपरिजानामस्थिराशुभायशसां वधाभावाद्भगाः ८ । एव देवेषु भगाः १९ ॥

अपूर्वादित्रयेऽत्रैक यशो भगास्तु नामनि । चतुर्दशसहस्राणि पचपचाशत विना ॥ १८९ ॥

१३९४५ ।

यहांपर देवगतिके साथ उद्योतका बंध नहीं होता क्योंकि, देवगतिमें उद्योतका उदय नहीं है । तिर्यग्गतिके शिवाय उद्योतका दूसरी गतिके साथ वध नहीं है । देवोंमें देहदीप्ति फिर कहासे आती है ? वर्णनाम कर्मोदयसे आती है । यहांपर तीन युगल हैं— इनका परस्परमें गुणा करनेसे भंग ८ हो जाते हैं ।

इकतीसमेंसे आहारक द्वय और तीर्थकरत्व ये तीन प्रकृति न बंधे तो अट्ठाईस बंधती है । यह अट्ठाईसका पहिला स्थान है । इसको सप्तम तथा अष्टम दो गुणस्थानवर्ती बांधते हैं । यहा भग एक ही है, वह भी पुनरुक्त है । १८७ ।

उन्तीसके भेदमेंसे तीर्थंकर प्रकृतिको कम करके जो अट्ठाईस प्रकृति रहती है उन्हें छट्ठेसे आदि लेकर बांधते हैं । १८८ ।

अप्रमत्तादिक ऊपरके स्थानोंमें अस्थिर, अशुभ, अयश कीर्ति-इन तीन प्रकृतिका वध नहीं होता इसलिये भग आठ हैं । इस प्रकार देवगतिमें भग १९ हैं ।

अपूर्वादि तीन गुणस्थानोंमें यहां एक यश कीर्ति ही है । और नामकर्ममें भग सर्व पचपन कम चौदह हजार हैं अर्थात् १३९४५ हैं । १८९ ।

द्वाविंशतिर्भुजाकारा नाम्न्यल्पतराः पुनः । एकविंशतिरव्यक्तास्त्रयः सर्वेऽप्यवस्थिताः ॥ १९० ॥

२२ । २१ । ३ । ४६ ।

नामनि भुजाकाराः—

१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
२९	२६	२८	२९	३०	३१	
३०	२८	२९	३०	३१		
३१	२९	३०				
	३०					
४	५	४	३	३	२	१

अल्पतराः—

३१	३०	२९	२८	३१	३०	२९	२८	२६	२५
				३०	२९	२८	२६	२५	२३
				२९	२८	२६	२५	२३	
					२६	२५	२३		
					२५	२३			
					२३				
१	१	१	१	२	५	४	३	२	१

भुजाकार नाममें बाईस हैं और अल्पतर इक्कीस हैं, अव्यक्त तीन हैं । ये सभी अवस्थित रूप हैं । १९० । (२२ । २१ । ३ । ४६) । भावार्थ, यन्त्रोंमें जो नीचे नीचे संख्या बताई है वह भुजाकारकी सर्व मिलकर २२ और अल्पतरोंकी २१ है ।

॥२७१॥

अवतीर्योपशान्तो भूत्वा सूक्ष्मसाम्परायः । यशःकीर्ति बध्नाति एकमवक्तव्यमिह ॥ १९१ ॥
मृत उपशान्तो देवगत्यपर्याप्तकां गतः । त्रिंशतं नृगतिसहितमेकत्रिंशतमप्यन्यो ॥ १९२ ॥

अवक्तव्या भुजाकारा: शून्यत: ०।१-३०-३१ ये सन्ति भुजाकाराल्पतराव्यक्तका: समासतो ज्ञेया:, चत्वारिंशद्युक्ता षट् सर्वेऽवस्थितबन्धका: ४६ । भुजाकारा: २२ । अल्पतरा २१ । अव्यक्ता: ३ । सर्वे मीलिता अवस्थितका: ४६ ।

इति स्थानबंध: समाप्त ।

अवतारक अर्थात् नीचे उतरता हुआ उपशांत कषाय- ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव नीचे उतरकर दशवें सूक्ष्मकषाय गुणस्थानवाला होकर यश:कीर्ति नामकर्मको स्वीकार करता है अर्थात् बांधता है। वहांपर यदि वह मरण करे अथवा उपशांतकषायवाला ही यदि मरण करे तो देवपर्यायको पाता है। वह वहां ऊपर बताई हुई तीसको ग्रहण करता है, और मनुष्यगति कर्मको मिलाकर इकतीसको भी ग्रहण करता है। भावार्थ, उपशांतमें शून्य था, फिर दशवेंमें आकर एक प्रकृति बांधी और फिर तीस तथा इकतीसको देवगतिमें बांधा। इस प्रकार उतरनेवालेके बंधमें प्रकृतिसंख्या बढती हुई है। १९१—१९२।

अवक्तव्य भुजाकार शून्यसे -०।१।३०।३१- ये हैं। इस प्रकार भुजाकार अल्पतर अव्यक्त ये सर्व संक्षेपमें समझना। छह और चालीस अर्थात् छयालीस ही अवस्थित बंध हैं। भुजाकार सर्व २२, अल्पतर २१, अव्यक्त ३-ये सर्व मिलादेनेपर ४६ अवस्थित बंध होते हैं।

इस प्रकार स्थानबंधोंका प्रकरण समाप्त हुआ।

समिथ्यात्वेन वध्यन्ते सर्वाः प्रकृतयोऽगिना । विनैवाहारकद्वन्द्वतीर्थकर्तृत्वनामभि ॥ १९३ ॥
सम्यक्त्व तीर्थकर्तृत्वे वृत्तमाहारकद्वये । बंधस्य हेतुरन्यासु मिथ्यात्वासंयमादयः ॥ १९४ ॥

गुणस्थानेषु प्रकृतीनां स्वामित्व कथ्यते–

हीनास्तीर्थकराहारद्वन्द्वाभ्यां प्रथमे मताः । विना नरसुरायुर्भ्यां मिश्रके पूर्विकाः पुनः ॥ १९५ ॥
तीर्थकृन्नृसुरायुर्मिश्रतुर्थे सहिता मताः । आहारकद्वयेनामा प्रमादपरिवर्जिता ॥ १९६ ॥

मिथ्यात्वादिषु सप्तसु,—							अपूर्वे सप्तसु भागेषु—						
११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
१६	२५	०	१०	४	६	१	२	०	०	०	०	३०	४

अनिवृत्तौ पंचसु भागेषु—					सूक्ष्मादिषु—				
२२	२१	२०	१९	१८	१७	१	१	१	०
१	१	१	१	१	१६	०	०	१	०

आहारक दो और तीर्थंकरत्व–इन तीन कर्मोंको छोडकर शेष सर्व कर्म, जीवोंको मिथ्यात्व भावके रहते, बंधको प्राप्त होते हैं । १९३ ।

तीर्थंकरत्व तथा आहारक द्वय-इन तीन के बंधका कारण सम्यक्त्व माना गया है । अन्य प्रकृतियोंमें बंधके कारण मिथ्यात्व तथा असयम अर्थात् अविरति आदि माने गये हैं । आदि शब्दसे कषाय तथा योग लेने चाहिये । १९४ ।

अब गुणस्थानोंके अनुसार प्रकृतियोंका स्वामी कहते हैं।--तीर्थंकरत्व और आहारक दो को छोडकर शेष सर्व प्रकृति पहिले गुणस्थानमें बंधती हैं । मिश्र गुणस्थानमें मनुष्यायु तथा देवायुको छोडकर तथा पूर्वकी तीन को छोडकर शेष प्रकृति बंधती हैं । आहारकद्वयको छोडकर तीर्थंकर, मनुष्यायु, देवायु का और शेषका बंध चतुर्थ गुणस्थानमें होता है । प्रमाद रहित अप्रमत्त अवस्थाके–सातवें गुणस्थानमें आहारकद्वयको लेकर बंध होता है । १९५–१९६ ।

यंत्रमें मिथ्यात्वसे सातवें पर्यंतका बंध तथा बंधविच्छेद प्रथम बताया है । फिर आठवेंके सात भागोंका जुदा जुदा

तत्र मिथ्यात्वनपुंसकवेदनरकायुर्नरकद्वयप्रथमजातिचतुष्कसूक्ष्मसाधारणातपापर्याप्तासंप्राप्तहुंडस्थावराणां षोडशानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ बंधविच्छेदः १६ । स्त्यानगृद्धित्रयतिर्यगायुस्तिर्यग्द्वयप्रथमकषायचतुष्कानादेयस्त्रीवेदनीचोद्योतदुःस्वरसंहननसंस्थानमध्यचतुष्कद्वयदुर्भगाप्रशस्तनभोगतीनां पंचविंशतीनां सासादने २५ । मिश्रं व्यतिक्रम्य, द्वितीयकषायचतुष्काद्यसंहनननरायुर्नरद्वयौदारिकद्वयानां दशानामसंयते १० । चतुर्णां तृतीयकषायाणां संयतासंयते ४ । शोकारत्यसातास्थिरासुभायशसां षण्णां प्रमत्ते ६ । एकस्य देवायुषोऽप्रमत्ते १ । अपूर्वस्य प्रथमे सप्तमभागे द्वयोर्निद्राप्रचलयोः २ ।

बंध बंधविच्छेद बताया है । फिर नौवें गुणस्थानके पांच भाग करके उनमें बंध बंधविच्छेद बताया है । फिर दशवेंसे चौदहवें गुणस्थान पर्यंतका बंध बंधविच्छेद बताया है । ऊपरकी पंक्तियोंमें बंधकी संख्या है और नीचे विच्छिन्नकी संख्या है ।

बंधविच्छेदकी प्रकृति कहांपर कौनसी हैं यह बात यहां गद्यद्वारा नाम देकर स्पष्ट करते हैं । प्रथम इसका वर्णन ' कर्म प्रकृति बंध स्तव ' के इकीसवें श्लोकसे लेकर मूलमें भी किया है ।

मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानमें–मिथ्यात्व, नपुंसक वेद, नरकायु, नरकगतिद्वय, एकेंद्रियादि जातिकर्म चार, सूक्ष्म, साधारण, आतप, अपर्याप्त, असंप्राप्तासृपाटिका, हुंडक संस्थान, स्थावर–ये सोलह प्रकृति बंधसे विच्छिन्न होती हैं । ये प्रकृति मिथ्यात्वके रहते बंधती हैं, अंतमें विच्छिन्न होती हैं । स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, तिर्यगायु, तिर्यग्गतिद्वय, अनंतानुबंधी कषाय चार, अनादेय, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, उद्योत, दुःस्वर, बीचके चार संस्थान, बीचके चार ही संहनन, दुर्भग, अप्रशस्त विहायोगति–इन पच्चीस प्रकृतियोंका बंधच्छेद सासादनमें होता है ।

मिश्रमें नवीन बंधच्छेद नहीं है । अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय, आदिका संहनन, मनुष्यायु, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक शरीरद्वय–इन दशका असंयत–चौथे गुणस्थानमें बंधच्छेद है । पांचवें गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरण चार कषायका बंधच्छेद है । शोक, अरति, असाता, अस्थिर, अशुभ, अयश कीर्ति—इन छहका बंधच्छेद छट्ठे गुणस्थानमें है। देवायु एकका बंधच्छेद सातवेंमें है । अपूर्वके सर्व सात भाग प्रयोजनवश माने गये हैं । उन भागोंमेंसे प्रथम भागमें निद्रा प्रचला—इन दोका बंधच्छेद है ।

तैजसकार्मणपचाक्षस्थिरदेवद्वयवैक्रियिकद्वयप्रथमसंस्थानशुभत्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादिचतुष्टयत्रयसुभगसुस्वरादेयनिर्माणाप्र-स्तनभोगत्याहारकद्वयतीर्थकृतां त्रिंशतः षष्ठे ३० । हास्यरतिजुगुप्साभियां चतसृणां सप्तमे ४ । पुंवेदसज्वालक्रोधमान-मायालोभानां पचानां क्रमादनिवृत्तिपचभागेषु ५ । उच्चगोत्रयशोदर्शनावृतिचतुष्कज्ञानावृतिपचकान्तरायपचकानां षोडशकानां सूक्ष्मसांपराये १६ । शांतक्षीणकषायौ व्यतीत्यैकस्य सातस्य सयोगे बंधविच्छेदो द्रष्टव्यः ।

इति स्वामित्व समाप्तम् ॥

गत्यादाविति योग्यानां प्रकृतीनां यथागमम् । स्वामित्वमवबोद्धव्य सिद्धानामोघरूपतः ॥ १९७ ॥

इति प्रकृतिबंध समाप्त ।

तैजस, कार्मण, पचेंद्रिय, अस्थिर, देवगतिद्वय, वैक्रियिकद्वय, प्रथम सस्थान, शुभ, त्रसादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, वर्णादि चार, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति, आहारकद्वय, तीर्थंकरत्व—इन तीसका छट्ठे भागमे बंधच्छेद है । हास्य, रति, जुगुप्सा, भय—इन चारका अतके सातवें भागमें बंधच्छेद है। अनिवृत्ति नौवें गुणस्थानके पांच भागोंमें क्रमसे पुरुषवेद, संज्वलनके क्रोध, मान, माया, लोभ—इन पांचका बंधविच्छेद है । उच्चगोत्र, यशःकीर्ति, दर्शनावरण चार, ज्ञानावरण पांच, अंतराय पाच—इन सोलहका सूक्ष्मसापरायके अंतमें बंधच्छेद है । ग्यारहवें बारहवेंमें बंधच्छेद नवीन नहीं है। तेरहवें सयोग केवलीमें साता एक प्रकृतिका बंधच्छेद है । चौदहवेंमें बंध होना शेष ही नहीं रहता है ।

इस प्रकार स्वामित्वका वर्णन हुआ ।

गत्यादि मार्गणाओंमें भी यथाशास्त्र गुणस्थानक्रमसे सिद्ध होनेवाली संभव प्रकृतियोंका स्वामित्व समझलेना चाहिये । १९७ ॥

इति प्रकृति बंधः ।

॥२७५॥

त्रयाणामन्तरायाणां प्रकर्षेणाद्यकर्मणाम् । कोटीकोट्यः स्थितिस्त्रिंशत्सागराणामुदाहृताः ॥ १९८ ॥
सप्ततिर्मोहनीयस्य विंशतिर्नामगोत्रयोः । आयुषोऽस्ति त्रयस्त्रिंशत्समुद्राणां स्थितिः परा ॥ १९९ ॥
सप्तस्वब्दशतं ज्ञेयं कोटीकोटीस्थितेर्बुधैः । आबाधायुषि विज्ञेया पूर्वकोटित्रिभागता ॥ २०० ॥
प्रकृतीनां परा ऽऽबाधा सर्वासामनुरूपतः । सान्तर्मुहूर्त्तमुद्दिष्टा जघन्याखिलकर्मणाम् ॥ २०१ ॥
सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियः पूर्णो घोरमिथ्यात्वभावितः । कर्मणामिह सप्तानामुत्कृष्टां कुरुते स्थितिम् ॥ २०२ ॥
सम्यग्दृष्टिरसद्दृष्टिः पर्याप्तौ कुरुतः स्थितिम् । प्रकृष्टमायुषो जीवौ शुद्धिसंक्लेशभाजिनौ ॥ २०३ ॥

अथ स्थितिबंध ।

आदिकी ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय—इन तीनका और अंतरायका इस प्रकार चार प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध तीस सागर कोटीकोटी प्रमाण बताया है । १९८ ॥

सत्तर कोटीकोटी सागरोपम मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबंध है । बीस कोटीकोटी सागरोपम उत्कृष्ट स्थितिबंध नामकर्म तथा गोत्रकर्मका है । आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबंध केवल तेतीस सागरोपम है ॥ १९९ ॥

एक कोटीकोटी सागरोपम स्थितिबंधकी आबाधा सौ वर्ष प्रमाण है ऐसा सात कर्मोंमें नियम है । आयुकर्मकी आबाधा पूर्वकोटीके त्रिभागमात्र समझनी चाहिये ॥ २०० ॥

सर्व प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबाधा स्थितिके अनुसार है । और सर्व ही कर्मोंकी जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्तमात्र है । बन्ध होनेके बाद जबतक उदय होना शुरू ही न हो उस कालावधिको आबाधा कहते हैं ॥ २०१॥

सात कर्मोंमें उत्कृष्ट स्थितिको वह जीव बांधता है जो सञ्ज्ञी पंचेंद्रिय, पर्याप्त तथा घोर मिथ्यात्वसे ग्रसा हुआ होता है ।२०२।

आयुकर्ममें जो शुभ आयु है उसकी उत्कृष्ट स्थितिको सम्यग्दृष्टि परिणाम–विशुद्धिके कारण बांधता है । जो आयु अशुभ है उसकी उत्कृष्ट स्थितिको मिथ्यादृष्टि जीव परिणाम–संक्लेशके कारण बांधता है । २०३ ।

सम्यग्दृष्टिरसंक्लिष्टो जघन्यां कुरुते स्थितिम् । सप्तानां जीवितव्यस्य मिथ्यादृष्टिः कुमानुषः ॥ २०४ ॥

तत्रोत्कृष्टाऽऽबाधा—

आद्यानां सांतरायाणां त्रयाणां कर्मणां त्रयः । सहस्राः सप्त मोहस्य द्वौ ज्ञेयौ नामगोत्रयोः ॥ २०५ ॥

३००० । ३००० । ३००० । ३००० । ७००० । २००० । २००० ।

त्रयस्त्रिंशज्जिनैर्लक्षाः सत्रिभागा निवेदिताः । आबाधा जीवितव्यस्य पूर्वकोटीस्थितेः स्फुटम् ॥ २०६ ॥

पूर्वाणां त्रयस्त्रिंशल्लक्षा इति शेषः । ३३ $\frac{1}{3}$

कर्मणामिह सप्तानां सा त्रैराशिकतः क्रमात् । आनेतव्याऽऽयुषो भाग हृत्वा दक्षैस्त्रिभिः पुनः ॥ २०७ ॥

सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिको विशुद्ध परिणाम वाला सम्यग्दृष्टि जीव बांधता है । जीवितव्य अर्थात् आयुकी जघन्य स्थितिको दुष्ट स्वभाववाला मिथ्यादृष्टि कुभोगभूमिज बांधता है । २०४ ।

इन कर्मोंकी उत्कृष्ट आबाधाको आगे बताते हैं।–आदिकी ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय, तथा अंतराय–इन प्रकृतियोंकी आबाधा तीन हजार वर्षकी उत्कृष्ट है । मोहकी उत्कृष्ट आबाधा सात हजार वर्षकी है । नाम गोत्र–इन दो की उत्कृष्ट आबाधा दो हजार वर्षकी है । २०५ ।

पूर्वकोटीवाले आयुकर्मकी उत्कृष्ट आबाधा एकके तृतीय भाग सहित तेतीस लाख $33\frac{1}{3}$ वर्षकी होती है । २०६ ।

इसमें जो तेतीस लक्ष और एक तृतीयांश–इतने वर्षकी आबाधा बताई वह तेतीस लक्ष पूर्व समझने चाहिये ।

सात कर्मोंकी आबाधा त्रैराशिक गणित द्वारा और आयुकी आबाधा भुज्यमान आयुके त्रिभाग करके एक भाग प्रमाण लानी चाहिये । सो विद्वानोंको सर्वत्र देखलेना चाहिये । भावार्थ, आयु कर्मको जीव त्रिभागमें बांध सकता है । त्रिभागका अर्थ भुज्यमान आयुके तीन भाग करके दो भागके अनंतर तीसरे भागके आरभमें किसी भी आयुका बंध होता है। ऐसे त्रिभाग कई बार होसकते हैं । प्रथम त्रिभागमें आयुबंधकी योग्यता न मिली हो तो फिर दूसरे वारके त्रिभागमें पहुचनेपर आयुबंध होगा । दूसरेमें भी न हुआ तो तीसरे आदि किसी भी त्रिभागमें ही आयुबंध होगा । यदि किसी भी बीचमें आयुबंध नहीं होता ।

यावत्कालमुदीयन्ते न कर्मपरमाणवः । उदीरणां विनाऽऽबाधा तावत्कालेऽभिधीयते ॥ २०८ ॥
आबाधोनास्ति सप्तानां स्थितिः कर्मनिषेचनम् । कर्मणामायुषोऽबाधि स्थितिरेव निजा पुनः ॥ २०९ ॥
पचसंग्रहाभिप्रायेणेद; सिद्धान्ताभिप्रायेण पुनरायुषोऽप्याबाधोनास्ति स्थितिः कर्मनिषेचनम् ।

त्रिभागमें न हुआ हो तो मरणके समय अवश्य आयुर्बंध होगा । और आयुर्बंध होनेपर शेष त्रिभागके कालपर्यंत उस आयुकी आबाधा समझनी चाहिये । मरण होजानेपर नवीन शरीर धारण करनेवालेके उस पूर्वबद्ध आयुका उदय सुरू होता है इसलिये फिर आबाधा रहना संभव ही नहीं है ।२०७।

आबाधाका अर्थ–बांधे हुए किसी एक एक समयप्रबद्ध कर्मके परमाणुओंका जबतक उदय नहीं सुरू होता तबतककी कालमर्यादाको आबाधा कहते हैं । उस आबाधाके कालमें उदीरणा भी उस कर्मकी नहीं होती है । २०८ ।

सात कर्मोमें आबाधाको छोडकर शेष स्थिति जो बचती है उसमें कर्मांशोंका निषेचन अर्थात् उदय होना सुरू होजाता है । और आयुकी आबाधा भुज्यमान आयुका अवशिष्ट काल मात्र ही है अथवा त्रिभाग रूप शेषसमयप्रमाण है ऐसा कहा है । भावार्थ, आबाधा रहे पर्यंत बद्धकर्मोके अंश उदयको प्राप्त नहीं होते और आबाधाको छोडकर जो शेष स्थिति रहती है उसका अथे कर्मनिषेचन है । अर्थात् उस शेष स्थितिमें प्रारंभसे अंत पर्यंत कर्मांशोंका निषेचन अर्थात् उदय होता रहता है । और आयुकर्ममें भुज्यमान आयुका तीसरा आदि भाग आबाधा कही जा सकती है परतु वह उपचारसे आबाधा माननी चाहिये । क्योंकि आयुकी स्थिति जितनी बचती है वह उदय सुरू होनेसे सुमारी जाती है । आबाधाका काल उस स्थितिमेंसे घटाया नहीं जाता ॥ २०९ ॥

१— इस उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है । सिद्धांतके मतमें और पंचसंग्रहके मतमें कोई विरोध या भेद नहीं है ।

आबाधोर्ध्वस्थितावस्यां समयं समय प्रति । कर्माणुस्कन्धनिक्षेपो निषेकः सर्वकर्मणाम् ॥ २१० ॥
परतः परतः स्तोकः पूर्वतः पूर्वतो बहुः । समये समये ज्ञेयो यावत्स्थितिसमापनम् ॥ २११ ॥

स्वां स्वामाबाधां मुक्त्वा सर्वकर्मणां निषेका वक्तव्यास्तेषां च गोपुच्छाकारेणापस्थिति ॥

उत्तरप्रकृतीनां स्थितिः कथ्यते—

ज्ञानदृग्रोधविघ्नानामसातस्य च विंशतेः । कोटीकोट्यः स्थितिस्त्रिंशद्विज्ञातव्याः सरस्वताम् ॥ २१२ ॥

२० कर्मणाम् ३० कोटीकोट्य ।

यही बात आगे बताते हैं ।—आबाधाके बाद ऊपरकी जो बची हुई स्थिति है उसमें समय समय प्रति कर्माणुस्कंधोंका निक्षेपण दिया जाता है । इसी प्रकार सर्व कर्मोंका निषेक समझना । यहांपर भी यह वर्णन सात कर्मोंमें लग सकता है । आयुकी आबाधा जुदी न काटकर शुरूसे संपूर्ण स्थितिके समयों में कर्माणुस्कंधोंका निक्षेपण होता है ॥ २१० ॥

किसी कर्मकी स्थिति जो बांधी जाती है उसकी आबाधाको छोडकर शेष रही स्थितिके जितने समय हैं उतने ही उस एक समयप्रबद्ध पिंडके भाग होते हैं । उन भागोंमेंसे एक एक भाग क्रमसे एक एक समयमें उदयको प्राप्त होता रहता है । इस प्रकार स्थितिके अंतिम समयमें अंतिम निषेकभाग उदयको प्राप्त होकर वह समयप्रबद्ध पूरा निर्जीर्ण होजाता है । ये निषेक भाग पूर्व पूर्वके बडे अर्थात् अधिक द्रव्यवाले होते हैं और उत्तरोत्तर स्तोक-छोटे-कम द्रव्यको रखनेवाले होते हैं । २११ ।

अपनी अपनी आबाधाको छोडकर सर्व कर्मोंके निषेक कहने चाहिये । उनकी रचना गोपुच्छाकार यंत्रद्वारा बताई है अर्थात् वे सर्व निषेक गोपुच्छाकारसे निर्जीर्ण होते हैं । यह यंत्र गोम्मटसारमेंसे देखना ।

अब उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितिमें जो विशेष है उसको बताते हैं-ज्ञानावरण दर्शनावरण विघ्न—इनके उत्तर भेद १९ और वेदनीयमेंसे १ असातावेदनीय-इन वीस उत्तर प्रकृतियोंकी तीस कोटीकोटी सागरोपम स्थिति है । जो इनकी मूल प्रकृतियोंके समय उत्कृष्ट स्थिति बताई है उतनी ही इन उत्तर प्रकृतियोंकी है । २१२ ।

॥२७९॥

मिथ्यात्वे सप्तति कोटीकोट्य पञ्चदशोदिता । सातस्त्रीनरयुग्मेषु चत्वारिंशत्क्रुधादिषु ॥ २१३ ॥

मिथ्यात्वे कर्म १, ७० को. । सातादिषु कर्म ४, १५ को. । षोडशसु कषायेषु १६, ४० को. ।

श्वभ्रदेवायुषोरब्धित्रयस्त्रिंशत्परा स्थितिः । २ । ३३ सा. ।

तिर्यङ्नरायुषोरुक्ता त्रिपल्योपमसम्मिता । २१४ ॥ २ । ३ प. ।

नीचैर्गोत्रारती शोको जुगुप्सा भीर्नपुंसकम् । श्वभ्रतिर्यग्द्वये हुंडं पञ्चाक्षं कर्मतेजसी ॥ २१५ ॥

उद्योतौदारिकद्वन्द्वे निर्मिद्वैक्रियिकद्वयम् । वर्णागुरुत्रसादीनि चतुष्कान्यस्थिराशुभे ॥ २१६ ॥

एकाक्षासन्नमोरीती दुर्भग स्थावरातपो । असम्प्राप्तमनादेयं दुःस्वरायशसी मता ॥ २१७ ॥

कोटीकोट्योंबुराशीनामेतासां विंशतिः स्थितिः । त्रिचत्वारिंशतोऽत्राचि प्रकृतीना परा बुधैः ॥ २१८ ॥

कर्म ४३ । आसां स्थितिः २० को ।

मिथ्यात्वकी सत्तर कोटीकोटी सागरोपम स्थिति है । सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति द्वय–इन चार उत्तर प्रकृतियोंकी पन्द्रह कोटीकोटी सागरोपम बताई है । क्रोधादि अर्थात् कषायवेदनीय-मोह १६ में चालीस कोटीकोटी सागरोपम स्थिति है।२१३।

मिथ्यात्वमें कर्म १, ७० को० । सातादिमें कर्म ४, १५ को० । क्रोधादि कषाय १६, ४० कोटि ।

नरकायु तथा देवायुकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है । २ । ३३ सा० । तिर्यंच आयुकी और मनुष्यायुकी तीन पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है । २ । ३ प० ॥ २१४ ॥

नीचगोत्र, अरति, शोक, जुगुप्सा, भय, नपुंसकवेद, नरकगतिद्वय, तिर्यग्द्वय, हुंड, पचेंद्रिय, कार्मण, तैजस, उद्योत, औदारिकद्वय, निर्माण, वैक्रियिकद्वय, वर्ण चार, अगुरुलघु चार त्रस चार, अस्थिर, अशुभ, एकेंद्रिय, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, स्थावर, आतप, असंप्राप्तासृपाटिका, अनादेय, दुःस्वर, अयशःकीर्ति- इन तेतालीस प्रकृतियोंकी बीस कोटीकोटी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है । २१५–२१८ ।

कर्म ४३ । इनकी स्थिति २० को. ।

नरवेदो रतिर्हास्य सुस्वरं सन्नभोगतिः। सुरद्वन्द्व स्थिरादेये शुभोच्चे सुभग यशः ॥ २१९ ॥
संस्थानसंहती चाद्ये कोटीकोट्यो दश स्थितिः। समुद्राणा परैतासां प्रकृतीनां निवेदिताः ॥ २२० ॥
कर्म १५। आसां स्थितिः १० को.।
द्वित्र्यक्षचतुरक्षेषु सूक्ष्मापर्याप्तयोः स्थितिः। साधारणे जिनैः कोटीकोट्योऽष्टादश भाषिताः ॥ २२१ ॥
कर्म ६। स्थितिरासां १८ को.।
स्थिति संस्थानसंहत्योः कोटीकोट्यो द्वितीययो । अब्धीनां द्वादश प्राज्ञैश्चतुर्दश तृतीययोः ॥ २२२ ॥
कर्म २। १२ को.। कर्म २। १४ को.।
तुर्ययो षोडशाब्धीनां तयोः पंचमयोरिमाः। कोटीकोट्यः पटीयोभिरष्टादश निवेदिताः ॥ २२३ ॥
कर्म २। १६ को.। कर्म २। १८ को ।

पुरुषवेद, रति, हास्य, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, देवगतिद्विक, स्थिर, आदेय, शुभ, उच्चगोत्र, सुभग, यशःकीर्ति, प्रथम संस्थान, प्रथम संहनन—इन पंद्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति दश कोटीकोटी सागरोपम प्रमाण बताई है। २१९।२२०।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण—इन छह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम बताई है। २२१।

दूसरे संहनन, दूसरे संस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति बारह कोटीकोटी सागरोपम है। तीसरे संस्थान-संहननकी चौदह कोटी कोटी सागरोपम है। २२२।

चौथे संस्थान-संहननकी उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम है। पांचवें संस्थान-संहननकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम बताई है। २२३।

॥२८१॥

जघन्याऽऽबाधा कथ्यते—

सुदृश्याहारकद्वन्द्वतीर्थकृत्कर्मसु त्रिषु । अन्तर्मुहूर्तमात्राबाधाऽन्तःकोटीकोट्यथ स्थितिः ॥ २२४ ॥ कर्म ३ ।
मुहूर्ता द्वादश प्रोक्ता वेद्येऽष्टौ नामगोत्रयोः । स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तोऽस्ति जघन्यान्येषु कर्मसु ॥ २२५ ॥
ज्ञानरोधान्तरायाणां दशानां दृक्चतुष्टये । अन्त्ये संज्वलने लोभे स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तका ॥ २२६ ॥
अष्टोच्चयशसोः साते मुहूर्ता द्वादशोदिताः । क्रोधे मासद्वयं माने मासोऽर्द्धं निकृतौ मतम् ॥ २२७ ॥
अत्र संज्वलने क्रोधे मासौ २ । माने मासः १ । निकृतौ (मायायाम्) पक्ष ।
नृतिर्यगायुषोरन्तर्मुहूर्त्ता शेषयोः स्थिति । दश वर्षसहस्राणि पुंवेदे वत्सराष्टकम् ॥ २२८ ॥

अब जघन्य स्थिति और जघन्य आबाधाको बताते हैं ।—सम्यग्दृष्टिके आहारकद्वय तथा तीर्थकरत्व–इन तीन कर्मोंमें जघन्य आबाधा अंतर्मुहुर्त है और अंत कोटीकोटी सागर जघन्य स्थिति है । एक कोटीकोटीसे कम स्थितिको अंत कोटीकोटी कहा है । और कोटीको कोटीसे ही गुणनेपर जो संख्या सिद्ध हो उसे कोटीकोटी कहते हैं । २२४ ।

वेदनीयकी बारह मुहूर्त जघन्य स्थिति है । नामकी तथा गोत्रकी आठ मुहूर्त है । शेष कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है । मुहूर्तके भीतरकी एक आवलीसे ऊपरतक अंतर्मुहूर्त कहाता है । २२५ ।

उत्तर प्रकृतियोंमें–ज्ञानावरण अंतरायकी दश प्रकृतियोंकी और दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंकी तथा अंतके सज्वलन लोभकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र है । २२६ ।

उच्चगोत्रकी तथा यश कीर्तिकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त हैं । सातावेदनीयकी बारह मुहूर्त है । सज्वलन क्रोधकी दो महीना है । मानकी एक महीना है । मायाकी स्थिति आधा महीना है । अनंतानुबंधी आदि बारह कषायोंकी स्थिति आगे बताई है इसलिये यहांके कषाय संज्वलन ही लेने चाहिये । २२७ ।

मनुष्यायु, तिर्यगायुकी अंतर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है । देवायु तथा नरकायुकी दश हजार वर्षकी जघन्य स्थिति है । पुरुष वेद की आठ वर्ष जघन्य स्थिति है । २२८ ।

असातसहितेऽपूर्वे दर्शनावृतिपचके । मिथ्यात्वेऽस्ति कपायाणामाद्ये द्वादशके स्थिति ॥ २२९ ॥
नोकपायाष्टकेंऽभोधेस्त्रिकसप्तचतुर्द्वया । सप्त भागा क्रमात्पल्याऽसख्यभागविवर्जिता ॥ २३० ॥ युग्मम्

३/७	७/७	४/७	२/७
क. ६	१	१२	८
अ १ निद्रा ५	मि. १	क १२	नो ८

मर्त्यतिर्यग्गतिद्वन्द्वे आतपो जातिपचकम् । षट्के सस्थानसहत्योरुद्योतो द्वे वियद्गती ॥ २३१ ॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादिचतुष्के कर्मतेजसी । नव त्रसादियुग्मानि नीचमौदारिकद्वयम् ॥ २३२ ॥

असाता वेदनीय तथा आगेके पांच दर्शनावरण —पांच निद्रा–इन छह प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासख्यातभाग कम, तीन भाग प्रमाण है । मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासख्यातभागहीन, सात भाग प्रमाण है । अर्थात्, कुछ कम एक सागर प्रमाण है । सोलह कषायोंमेंसे आदिके बारह कषायोंकी स्थिति सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासख्यातभागहीन, चार भाग प्रमाण है । और क्रमसे नोकषाय आठकी सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासंख्यात-भागहीन, दो भाग प्रमाण है । इसका यंत्र ऊपर दिया है ॥ २२९—२३० ॥

मनुष्यगतिद्वय, तिर्यग्गतिद्वय, आतप, एकेंद्रियादि पांच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, उद्योत, दोनो विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, कार्मण, तैजस, त्रसादि नौ युगल, नीचगोत्र, औदारिकद्वय, निर्माण, अयश कीर्ति—इन ५८

निर्माणमयश कीर्सिजघन्याऽऽसां स्थितिर्मता । द्वौ पल्यासख्यभागोनौ सप्तमागौ पयोनिधेः ॥ २३३ ॥
कर्म ५८ स्थितिः २ - $\frac{२}{७}$

पयोनिधिसहस्रस्य सप्तभागौ स्थितिः स्मृता । द्वौ वैक्रियिकषट्कस्य पल्यासख्याशवर्जितौ ॥ २३४ ॥

$\frac{२०००}{७}$

अपूर्वक्षपक तीर्थकरत्वाहारयुग्मयोः । जघन्यस्थितिबंधोऽतःकोटीकोटी संरस्वताम् ॥ २३५ ॥
सर्वत्रान्तर्मुहूर्त्तवर्त्तिनी जघन्याबाधा ॥

प्रकृतियोंकी सागरके सात भागोंमेंसे पल्यासख्यातभागहीन दो भाग (२ $\frac{२}{७}$) प्रमाण जघन्य स्थिति है । पल्यकी निशानी सातकी सख्या है । असख्यातवें भागकी सहनानी दोकी सख्या है । दो बटे सात जो दोके आगे दिये हैं उसका अर्थ पल्यासख्यातवा भाग कम ऐसा करना । पहिली दो सख्या सागरके सातवें दो भागकी वाचक है । २३१ - २३३ ।

वैक्रियिक षट्कका अर्थ—वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिकांगोपाग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी—ये छह प्रकृति ऐसा है। इस वैक्रियिकषट्ककी जघन्य स्थिति—सागरके सप्तम भाग दो हजार प्रमाण—पल्यासख्यातभाग कम—इतनी है। पयोनिधि सहस्रके सप्तभाग दो अर्थात् सागरके दो हजार सप्तम भाग। इस दो हजारकी सख्याको सातसे भाग देनेपर २८५$\frac{५}{७}$ आते हैं। ये दो सौ पचासी पूर्ण सागर हुए और सप्तम भाग अपूर्ण पाच हुए। इसमें पल्यासख्यातवा भाग कम करना चाहिये। इसको (२०००$\frac{२}{७}$) ऐसा लिखना चाहिये । २३४ ।

क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण—आठवें गुणस्थानमें तीर्थकरत्व तथा आहारकद्वय—इन तीन कर्मोंका जघन्य स्थितिबंध अंत -कोटीकोटि सागर प्रमाण है । और इन सर्वोंमें जघन्य आबाधा अंतर्मुहूर्त मात्र है । २३५ ।

१ – श्लोकोंमें ' सरस्वतां ' पद आया है उस सरस्वत् शब्दका अर्थ ~~कर्म है~~ । सागर है।

उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यसाद्यनादिध्रुवाध्रुवस्वामित्वलक्षणा नव वधाः । तत्र—

स्थितिवधश्चतुर्भेदः सप्तानामजघन्यकः । साद्यध्रुवास्त्रयोऽन्ये स्युश्चत्वारोऽप्यायुषो द्विधा ॥ २३६ ॥

इति मूलप्रकृतिषु वधमुक्त्वोत्तरास्वाह—

दृक्चतुष्टयसञ्ज्वालज्ञानरोधान्तरायका । अष्टादश चतुर्द्धासा प्रकृतीनामजघन्यक ॥ २३७ ॥

आसामष्टादशानां ते शेषाः साद्यध्रुवास्त्रय । १५ । सत्युत्कृष्टादयोऽन्यासा चत्वार सादयो ध्रुवा । १०२ ॥२३८॥

शुभाशुभेषु सर्वेषु समस्ताः स्थितयोऽशुभाः । तिर्यङ्नरसुरायूषि सति सन्त्यष्टकर्मसु ॥ २३९ ॥

स्थितिमें जघन्य अजघन्य उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट सादि अनादि ध्रुव अध्रुव स्वामित्व ये नौ बध समझनेके हैं । इन नौमेंसे—

सात कर्मोंका अजघन्य स्थितिवध, सादि आदि चार प्रकारका है । तथा अन्य-जघन्य उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट-ये तीन भेद सादि तथा अध्रुव ऐसे दो भेदरूप हैं । आयुके जघन्यादि चारो ही भेदोंमें सादि अध्रुव—ये दो दो प्रकार हैं ॥ २३६ ॥

इस प्रकार मूल प्रकृतियोंमें भेद दिखाकर अब उत्तर प्रकृतियोंमें दिखाते हैं । —

चार दर्शनावरण, सज्वलन चार कषाय, ज्ञानावरण पाच, अतराय पाच-इन अठारह प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबध साद्यादि चारो प्रकारका होता है । २३७ ।

इन्हीं ऊपरकी अठारह प्रकृतियोंके शेष जो जघन्यादि तीन भेद हैं उनमें सादि और अध्रुव ये दो दो प्रकार होते हैं । अन्य प्रकृतियोंमें जो उत्कृष्टादि भेद चार हैं वे सादि तथा ध्रुव ऐसे दो दो प्रकारके होते हैं ॥ २३८ ॥

शुभ तथा अशुभ-अर्थात् पुण्य और पाप-सभी प्रकृतियोंमें स्थितिबध जो होता है वह अशुभ ही माना जाता है । और आठ कर्मोंमेंसे तिर्यंच आयु मनुष्यायु देवायु-ये शुभ अथवा पुण्य प्रकृति मानी जाती है । २३९ ।

१-दो वार 'सति' पद है। उनमेंसे एक क्रियापद है । दूसरा प्रशस्तवाचक सत् शब्दका नपुसकलिंगी प्रथमाका बहुवचन प्रयोग है ।

वध्यन्ते स्थितय सर्वा. कषायवशतो यत । तिर्यङ्मर्त्यामरायूषि तत्प्रायोग्यविशुद्धित ॥ २४० ॥
अप्रशस्तास्तत सर्वा कर्मणा स्थितयो मता· । आयुषां त्रितय मुक्त्वा तिर्यगादिभुवां बुधैः ॥ २४१ ॥
उत्कृष्टा स्थितिरुत्कर्षे सक्लेशस्य जघन्यका । विशुद्धेरन्यथा ज्ञेया तिर्यङ्नरसुरायुषाम् ॥ २४२ ॥
विशुद्धि सातवधस्य योग्या परिणतिर्मता । सक्लेशोऽसातबधस्य योग्या साऽत्र मनीषिभि ॥ २४३ ॥
संक्लेशवृद्धितो यस्माद् वर्धन्ते स्थितयोऽखिला । विशुद्धिवृद्धितस्तस्माद्धीयते ता निसर्गतः ॥ २४४ ॥

तत्रोत्कृष्टस्थितौ विशुद्धय स्तोका भूत्वा तावद्वर्धन्ते यावज्जघन्यस्थितिहेतव· । जघन्यस्थितौ सक्लेशा· स्तोका भूत्वा तावत्क्रमेण वर्धन्ते यावदुत्कृष्टस्थितिहेतवः ॥

सर्व कर्मोंमें स्थितिबंध कषाय द्वारा होते हैं और तिर्यगायु मनुष्यायु देवायु–ये तीन शुभ प्रकृति बताई हैं, इसलिये ये तीन प्रकृति, कषायकी तद्योग्य विशुद्धिसे बंधको प्राप्त होती हैं ऐसा समझना । २४० ।

इसलिये तीन इन तिर्यगायु आदि आयुओंको छोडकर शेष सभी कर्मोंकी स्थितिए अशुभ मानी गई है । २४१ ।

इसीलिये सक्लेशकी वृद्धिमें सर्व स्थितिबंध उत्कृष्ट होते हैं और कषायकी मदतासे प्रगट हुई वीतरागतारूप विशुद्धिसे सर्व स्थितिबंध जघन्य होते हैं । किंतु तिर्यचादि तीन आयुओंकी स्थितिमें उलटी रीति है । अर्थात सक्लेशवृद्धिसे तीन आयुकी स्थिति जघन्य होती है और विशुद्धिसे उत्कृष्ट होती है । २४२ ।

सातावेदनीयके बधके लिये परिणामोंकी योग्य विशुद्धि परिणति कारण है । असाता वेदनीयके बधमें योग्य परिणाम संक्लेश हैं । २४३ ।

जिस कारण सक्लेशकी वृद्धिसे संपूर्ण स्थिति बढती हैं अतएव विशुद्धिकी वृद्धिसे वे स्थिति अपने आप घटती हैं ।२४४।

इनमेंसे उत्कृष्ट स्थितिमें विशुद्धिंए अत्यंत कम रहती हैं । और वे विशुद्धियें जघन्य स्थिति बध पर्यंत जैसी जैसी स्थितिंए घटती जाती हैं वैसी विशुद्धिए बढती जाती हैं । इसी प्रकार जघन्य स्थितिमें सक्लेशकी मात्रा बहुत थोडी होती है । आगे अंतिम उत्कृष्ट स्थितिबंध पर्यंत उत्तरोत्तर वे संक्लेश बढते जाते हैं ।

॥२८६॥

समिथ्यात्वेन वध्यन्ते प्रकृष्टा स्थितयोऽखिला । मुक्त्वाऽऽहारकदेवायुस्तोर्थकर्तृत्वकर्मणाम् ॥ २४५ ॥
निर्व्रतस्तीर्थकर्तृत्वे प्रमत्तस्त्रिदशायुषि । करोत्याहारके वधमप्रमत्त परस्थिते ॥ २४६ ॥
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूपि षट्कं वैक्रियिकाह्वयम् । विकलत्रितय सूक्ष्मं साधारणमपूर्णकम् ॥ २४७ ॥
नृतिर्यंच स्थिर्ति पंचदशाना कुर्वते पराम् । १५ । आतपस्थावरैकाक्षेष्वीशानाता सुरास्त्रिपु । ३ ॥ २४८ ॥
तिर्यग्द्वयमसप्रासमुद्योतौदारिकद्वये । नारकत्रिदशाः षण्णामुत्कृष्टा कुर्वते स्थितिम् ॥ ६ । २४९ ॥
चतुर्गतिगता जीवाः शेषाणां कर्मणां स्थितिम् । मध्यमोत्कृष्टसक्लेशाः प्रकृष्टां कुर्वते स्फुटम् ॥ ९२ । २५० ॥

जघन्यस्थितिस्वामित्वं कथ्यते—

आहारक, देवायु, तीर्थंकरत्व–इन कर्मोंको छोडकर उत्कृष्ट सर्व स्थितिबंध मिथ्यात्वके सहारेसे बंधको प्राप्त होते है । २४५ ।

अव्रत सम्यग्दृष्टि, तीर्थंकर कर्ममें उत्कृष्ट स्थितिबंधको करता है । देवायुमें उत्कृष्ट स्थितिबंधको प्रमत–छट्ठे गुणस्थानवाला करता है । इसी प्रकार आहारकमें उत्कृष्ट बंधको अप्रमत्त सातवें गुणस्थानवाला करता है । २४६ ।

नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तथा वैक्रियिकषट्क, विकल तीन जाति, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्ति–इन पंद्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको मनुष्य तथा तिर्यंच बांधते हैं । और आतप, स्थावर, एकेंद्रियजाति–इन तीन कर्मोंमें उत्कृष्ट स्थितिको भवनत्रिक तथा ईशान पर्यंतके देव करते हैं । २४८ ।

तिर्यंचगति–तिर्यंच गत्यानुपूर्वी–ये दो, असंप्राप्तासृपाटिका, उद्योत, औदारिकद्वय–इन छह प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिको नारकी तथा देव करते हैं । २४९ ।

शेष ९२ कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको चतुर्गतिके जीव मध्यम तथा उत्कृष्ट सक्लेशके द्वारा करते है । २५० ।

जघन्य स्थितिके स्वामित्वको बताते हैं ।–

आहारकद्वयेऽपूर्वस्तीर्थकृत्त्वे च सयतः । ३ । अनिवृत्तिस्तु पुंवेदे सञ्ज्वालानां चतुष्टये ॥ ५ । २५१ ॥
दशके ज्ञानविघ्नस्थे प्रथमे दृक्चतुष्टये । जघन्यां कुरुते सूक्ष्मस्तां सातोच्चयशःस्वपि ॥ १७ । २५२ ॥
असंज्ञी विक्रियाषट्के जघन्यां कुरुते स्थितिं । चतुर्णामायुषामेनां यथास्वं संज्ञ्यसंज्ञिनौ ॥ २५३ ॥

दशानामासां पुनर्विशेषमाह—

पूर्णः पंचेन्द्रियोऽसंज्ञी श्वभ्रीतिद्वये स्थितिं । तद्योग्यप्राप्तसंक्लेशो विदधाति जघन्यिकाम् ॥ २५४ ॥
सुरीतिद्वयेऽप्येष जघन्यां कुरुते स्थितिं । वहमानः परां शुद्धिं योग्यां वैक्रियिकद्वये ॥ २५५ ॥

आहारकद्वयमें जघन्य स्थितिको अपूर्व—आठवें गुणस्थानवाला करता है। तीर्थंकर प्रकृतिमें जघन्य स्थितिको सयत अर्थात छट्ठे गुणस्थानवाला करता है। पुरुषवेदमें और सज्वलन कषायोंमें जघन्य स्थितिको अनिवृति—नौवें गुणस्थानवाला करता है। ज्ञानावरण—अतरायकी दश प्रकृतियोंमें तथा पहिले चक्षुर्दर्शनावरणादि चार दर्शनावरणोंमें, ये चौदह, एव सातावेदनीय, उच्च गोत्र, यश कीर्ति—इन सत्रहमें जघन्य स्थितिको सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानवाला करता है। २५१ - २५२ ।

वैक्रियिक षट्कमें जघन्य स्थितिको असज्ञी जीव करता है। चार आयुओंमें जघन्य स्थितिको यथायोग्य सज्ञी असज्ञी करते हैं। संज्ञी पर्याप्तक जीव विशुद्धिके द्वारा नरकायुमें जघन्य स्थितिको करता है। असज्ञी पचेंद्रिय पर्याप्तक जीव सक्लेशके द्वारा देवायुमें जघन्य स्थितिको करता है। इसी प्रकार मनुष्यायु—तिर्यगायुके विषयमें समझना। २५३ ।

इन वैक्रियिकषट्कादि दश स्थितियोंमें और भी विशेष दिखाते हैं।—

पंचेंद्रिय पर्याप्तक असज्ञी जीव नरकगति द्वय में, जघन्य स्थितिके योग्य सक्लेशको पाकर जघन्य स्थितिको करता है।२५४।

यही—पचेंद्रिय पर्याप्तक असज्ञी जीव उत्कृष्ट विशुद्धिको जब धारण करता है तब देवगति द्वयमें जघन्य स्थितिको बाधता है, और वैक्रियिक द्वयमें भी यथायोग्य स्थितिको बाधता है। भावार्थ, देवगतिके साथ वैक्रियिक द्वयको बांधता है उस समय वह विशुद्धिके द्वारा उस वैक्रियिकद्वयमें जघन्य स्थितिको करता है। यदि नरक गतिके साथ वैक्रियिक द्वयको बाधता है तो वह वैक्रियिक द्वयमें सक्लेशके द्वारा जघन्य स्थितिको बाधता है। २५५ ।

सम्प्राप्तशुद्धिसक्लेशौ पचाक्षौ संज्ञ्यसंज्ञिनौ । जघन्यां कुरुते पूर्णौ श्वभ्रदेवायुषोः स्थितिम् ॥ २५६ ॥
कुर्वते नरतिर्यञ्चा योग्यसक्लेशभागिनः । नृतिर्यगायुषोरेनामभोगावनिजा स्थितिं ॥ २५७ ॥
एकाक्षो बादर पूर्ण प्राप्तसर्वविशुद्धिक । प्रकृतीना परासान्तु जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥ २५८ ॥
नारका विबुधा जीवा भोगविश्वम्भराभवाः । भोगभूप्रतिबद्धा ये ते षण्मासायुषि स्थितिं ॥ २५९ ॥
यथास्व कुर्वते योग्यशुद्धिसक्लेशभागिन । त्रिभागे स्वायुषः शेषे स्थिते सति परे पुन ॥ २६० ॥
भोगभूप्रतिभागोऽसौ यदतरमुदाहृतम् । मानुषोत्तरशैलस्य स्वयप्रभनगस्य च ॥ २६१ ॥

इति स्थितिबन्ध. समाप्त. ।

पचेंद्रिय पर्याप्तक, सज्ञी तथा असज्ञी जीव विशुद्धिको प्राप्त होकर नरकायुमें जघन्य स्थितिको बाधते हैं और संक्लेशको प्राप्त होकर देवायुमें जघन्य स्थितिको बांधते हैं । २५६ ।

अभोगावनिमें पैदा हुए—अर्थात् कर्मभूमिज मनुष्य—तिर्यंच योग्य संक्लेशको धारण करते हुए मनुष्यायुमें तथा तिर्यगायुमें जघन्य स्थितिको बाधते हैं । २५७ ।

बादर पर्याप्तक एकेंद्रिय जीव स्वयोग्य विशुद्धिको धारण करता हुआ शेष पचासी प्रकृतियोंमें सदा जघन्य स्थितिको बाधता है । २५८ ।

नारकी, देव तथा भोगभूमिके नियोगसे भोगभूमिमें जन्मे हुए जो जीव हैं वे अपनी आयुके छह महिना शेष रह जानेपर यथायोग्य विशुद्धि अथवा संक्लेशको धारण करते हुए आयुकर्मकी यथायोग्य स्थितिको बाधते हैं । बाकी सर्व जीव अपनी भुज्यमान आयुका त्रिभाग शेष रहजानेपर यथायोग्य आयुकी स्थितिको बांधते हैं ।२५९—२६०।

भोगभूमिका जो छह महीना शेष रहनेपर स्थिति बाधनेका प्रतिभाग है यह अंतर मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके बीचकेलिये ही समझना चाहिये । २६१ ।

इति स्थितिबंध. ।

३७

कर्मणां रसविशेषोऽनुभागस्तस्य भेदानाह—

अष्टभिरुत्कृष्टाद्यै सहानुभागे चतुर्दश ज्ञेया । शस्ताशस्तौ सञ्ज्ञा स्वामित्वप्रत्ययविपाका ॥ २६२ ॥
घातीनामजघन्यो वेद्ये नामनि भवत्यनुत्कृष्टः । अजघन्यानुत्कृष्टौ गोत्रे सर्वे चतुर्द्धा ते ॥ २६३ ॥
चतुर्भेदा भवन्त्येते साद्यनादिध्रुवाध्रुवा । परे साद्यध्रुवा बंधा जायन्ते पूर्वकर्मणां ॥ २६४ ॥

कर्मोंके रसविशेषको अनुभाग कहते हैं । इस अनुभागका आगे वर्णन करते हैं ।—

अनुभागमें चौदह विषय वर्णनीय हैं ।—१ उत्कृष्ट अनुभाग, २ अनुत्कृष्ट अनुभाग, ३ जघन्य अनुभाग, ४ अजघन्य अनुभाग, ५ सादि अनुभाग, ६ अनादि अनुभाग, ७ ध्रुव अनुभाग, ८ अध्रुव अनुभाग—ये आठ भेद हुए । ९ प्रशस्त अनुभाग, १० अप्रशस्त अनुभाग, ११ संज्ञा—उत्तर अनुभागभेदोंके नाम, १२ स्वामित्व—किस अनुभागको कौनसा जीव बाधता है—यह वर्णन, १३ प्रत्यय—मिथ्यात्वादिक बंधके कारण, १४ विपाक—किस कर्मका क्या और कहापर तथा किस रूपसे उदय होता है—इसका स्पष्टीकरण, अथवा जीवविपाक, पुद्गलविपाक, भवविपाक, क्षेत्रविपाक—ऐसे विपाकके चार भेद करके सर्व प्रकृतियोंको उन चार भेदोंमें बांटना । ये चौदह विषय अनुभागके प्रकरणमें वर्णन करनेके हैं । अनुभागको अनुभव भी कहते हैं । २६२ ।

इन चौदह विभागोंका क्रमसे वर्णन करते हैं ।—

घाती चार कर्मोंमें अजघन्य अनुभाग होता है । ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अन्तराय—इन चार कर्मोंको घाती कहते हैं सो सज्ञाप्रकरणमें आगे बतावेंगे । वेदनीय तथा नामकर्ममें अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है । गोत्र कर्ममें अजघन्य तथा अनुत्कृष्ट—दो प्रकारका अनुभाग होता है । ये ऊपर बताये सर्व भेद साद्यादि चार चार उत्तर भेदोंको रखते हैं । २६३ ।

ऊपर जो चार प्रकार बताये हैं वे सादि अनादि ध्रुव अध्रुव ये चार उत्तर भेद रूप होते हैं । और इन पूर्व कर्मोंके दूसरे वा अर्थात् जघन्य उत्कृष्ट ये सादि तथा अध्रुवरूप होते है । २६४ ।

चत्वारोऽप्यायुषो द्वेधा बुधैः साद्यध्रुवा मता । अनुभागो भवत्येव मूलप्रकृतिगोचर ॥ २६५ ॥
कार्मणागुरुलघ्वाढ्यं शस्त वर्णचतुष्टय । तैजस निर्मिदष्टानामनुत्कृष्टश्चतुर्विधः ॥ २६६ ॥
शेषाः साद्यध्रुवास्तासामनुत्कृष्टोज्झितास्त्रयः । वधघ्वसिभिरष्टानामनुभागा निवेदिताः ॥ २६७ ॥
दश ज्ञानांतरायस्था दृग्रोधे नव षोडश । कोपादयो जुगुप्सा भीर्निन्द्य वर्णचतुष्टयम् ॥ २६८ ॥
मिथ्यात्वमुपघातश्च त्रिचत्वारिंशत स्मृताः । अजघन्यश्चतुर्भेदः परे साद्यध्रुवास्त्रय ॥ २६९ ॥ युग्मम् ॥

आयुकर्मके चारो ही भेद सादि और अध्रुव ये दो भेदरूप रहते हैं । इस प्रकार मूल प्रकृतियोंमें अनुभागके आठ भेदोंका संभवासभव समझना । २६५ ।

अब उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्टादि तथा उसके साथ सादि आदि भगोंको जोडकर आठ भेदोंको बताते हैं ।— कार्मण, अगुरुलघु, प्रशस्त वर्ण रस गध स्पर्श–ये चार, तैजस, निर्माण–इन आठ प्रकृतियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभाग सादि आदि चारो प्रकारका है । वर्ण गध रस स्पर्श–ये नामकर्ममें चार नामकर्म हैं । इनमेंसे गंधके दो भेद–सुगंध दुर्गंध ये हैं । रसके पाच भेद, वर्णके पाच भेद तथा स्पर्शके आठ उत्तर भेद हैं । यह वर्णन पूर्वमें प्रकृतियोंके भेद दिखाते समय आचुका है । परन्तु इनके अनुभागमें प्रशस्त तथा अप्रशस्तपना रहता है इसलिये ये वीसो भेद अथवा मूल चार भेद प्रशस्त अनुभागवाले भी माने जाते हैं और अप्रशस्त अनुभागवाले भी माने जाते हैं । प्रशस्तको पुण्यानुभाग और अप्रशस्तको पापानुभाग कहते हैं । २६६ ।

इन्ही ऊपरकी आठ प्रकृतियोंमें अनुत्कृष्टको छोडकर शेष जो उत्कृष्ट जघन्य अजघन्य ये तीन भेद होते हैं वे सादि तथा ध्रुव ऐसे दो उत्तर भेदोंको लिए हुए होते हैं । ऐसा सर्वज्ञ देवने बताया है । २६७ ।

ज्ञानावरण और अंतरायके उत्तर भेद दश, दर्शनावरण नौ, क्रोधादि कषाय सोलह, जुगुप्सा, भय, अप्रशस्त वर्णादि चार, मिथ्यात्व, उपघात–इन तेतालीस प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभाग सादि आदि चार ही प्रकारका है । और इन्हो तेतालीसके जघन्यादि शेष तीन अनुभाग सादि तथा अध्रुव ऐसे दो भेदको लिए हुए होते हैं । २६८–२६९ ।

उत्कृष्टाद्या. समस्तानां प्रकृतीनामुदाहृताः । चत्वारोऽपि द्विधान्यासां साद्यध्रुवविकल्पतः ॥ २७० ॥
स्वमुखेनैव पच्यन्ते मूलप्रकृतयोऽखिला. । उत्तरास्तुल्यजातीया पुनरन्यमुखेन च ॥ २७१ ॥
आयुर्दर्शनचारित्रमोहप्रकृतयः पर । स्वमुखेनैव पच्यते सर्वदैवोत्तरास्वपि ॥ २७२ ॥
उदीयते मनुष्यायुर्नरकायुर्मुखेन नो । चारित्रमोहन जातु दृष्टिमोहमुखेन नो ॥ २७३ ॥
अनुभाग प्रकृष्टोऽस्ति प्रशस्तानां विशुद्धित । सक्लेशतोऽप्रशस्तानां जघन्य. पुनरन्यथा ॥ २७४ ॥

इन ऊपरकी तेतालीस प्रकृतियोंके शिवाय शेष रही सर्व उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्टादिक चारो ही भेदोंमें सादि और अध्रुव ये दो दो भेद मिलते है ॥ २७० ॥

आठ मूल प्रकृति अपने अपने मुखसे ही विपाकको प्राप्त होती हैं। और उत्तर प्रकृतियोंमें जो समान समान जातिकी प्रकृति है वे पर मुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं और स्वमुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं। जिस प्रकृतिका जो नाम है और उसका जो अर्थ होता है उसीके अनुसार फल देना वह स्वमुखसे विपाक कहाता है। अपने नामके अनुसार फल न देकर जो प्रकृतिका फल उसकी सजाति दूसरी किसी प्रकृतिके अनुसार देना उसे परमुख विपाक कहते हैं। जैसे अनंतानुबंधी कर्म विसयोजनादि क्रियाद्वारा अप्रत्याख्यानावरणादि रूप होकर भी फल देते हैं। इस विपाकको परमुखसे हुआ विपाक कहते हैं। और जो बाधते समय अनतानुबधी रूप है वह फल भी अनतानुबधीका ही दे तो उसको स्वमुखसे हुआ विपाक कहते हैं। २७१।

आयु चारो, दर्शन मोह, चारित्र मोह—ये प्रकृति उत्तर प्रकृति होकर भी सदा स्वमुखसे ही विपाकको प्राप्त होती हैं। तात्पर्य-मनुष्यायु कभी भी नरकायुके रूपसे परिणत नहीं होती। चारित्र मोह कर्म कभी दर्शनमोहरूप नहीं होता।२७२-२७३।

सक्लेशकी घटती रहकर विशुद्धिकी बढवारी रहनेसे प्रशस्त प्रकृतियोंमें अनुभाग प्रकृष्ट अर्थात् उत्कृष्ट पडता है। और यदि सक्लेशकी वृद्धि हो तो अप्रशस्त—अशुभ प्रकृतियोंमें अनुभाग उत्कृष्ट पडता है। और जघन्य अनुभागके कारण इससे उलटे हैं। अर्थात्, विशुद्धिकी हीनतासे शुभ प्रकृतियोंमें अनुभाग जघन्य पडता है। संक्लेशकी हीनतासे अशुभ प्रकृतियोंमें अनुभाग जघन्य पडता है। २७४।

द्राचत्वारिंशतस्तीव्रः प्रशस्तानां विशुद्धितः । सङ्क्लेशतोऽप्रशस्तानां द्वाशीतेर्वामदृष्टिषु ॥ २७५ ॥
त्रीण्यायूंषि शरीराणि पञ्च त्रसचतुष्टयम् । अगोपांगत्रय निर्मिदाद्ये संस्थानसंहती ॥ २७६ ॥
परघातागुरुलघ्वाह्वे सुरद्वयनरद्वये । सुभगोच्चस्थिरोच्छ्वासाः सद्गमोरीतिसुस्वरे ॥ २७७ ॥
पचेन्द्रियं शुभादेये शस्तं दर्णचतुष्टयं । तीर्थकृत्त्वातपोद्योता यश साते शुभाः स्मृताः ॥ २७८ ॥ विशेषकम् ॥
प्रशस्तास्त्वातपोद्योततैरश्चमनुजायुषाम् । तीव्रो मिथ्यादृशि ज्ञेयः शेषाणां शुद्धदर्शने ॥ २७९ ॥
मानुषौदारिकद्वन्द्वे जीवौ सहतिमादिमाम् । प्रकृष्टीकुरुत पंच सद्दृष्टी सुरनारकौ ॥ २८० ॥

आगे व्यालीस प्रकृतियोंका वर्णन करते हैं । उन शुभ व्यालीस प्रकृतियोंमें तीव्र अनुभाग परिणाम-विशुद्धिके द्वारा होता है । और व्यासी अशुभ प्रकृतियोंमें तीव्र अनुभाग संक्लेशकी वृद्धिसे मिथ्यादृष्टियोंके पडता है । २७५ ।

अब शुभ व्यालीस प्रकृतियोंको गिनाते हैं ।—नरकायुको छोडकर शेष तीन आयु, पांच औदारिकादि शरीर नाम कर्म, त्रसादि चार—त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, अंगोपांग नामकर्म तीन—औदारिक शरीरांगोपाग, वैक्रियिक शरीरागोपाग, आहारक शरीरागोपाग, निर्माण, प्रथम संस्थान, प्रथम संहनन, परघात, अगुरुलघु, देवगतिद्वय, मनुष्यगतिद्वय, सुभग, उच्चगोत्र, स्थिर, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, सुस्वर, पचेंद्रिय, शुभ, आदेय, शुभ दर्णादि चार, तीर्थकरत्व, आतप, उद्योत, यश कीर्ति, सातावेदनीय—ये व्यालीस शुभ प्रकृति हैं । २७६-२७८ ।

इन शुभ प्रकृतियोंमें जो आतप, उद्योत, तिर्यग्गति, मनुष्यगति—ये चार प्रकृति हैं इनका तीव्र अनुभाग बंध मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है, शेष अडतीसका तीव्र अनुभाग बंध शुद्ध सम्यग्दृष्टिके होता है । २७९ ।

वे सम्यदृष्टि कौनसे हैं जो अडतीसका तीव्र अनुभागबंध करते हैं ? इस बातको आगे दिखाते हैं ।—

मनुष्यद्वय, औदारिकद्वय, आदिका एक संहनन—इन पाच प्रकृतियोंमें तीव्र अनुभागबंधको सम्यग्दृष्टि देव तथा सम्यग्दृष्टि नारकी करते हैं । २८० ।

द्वाचत्वारिंशतस्तस्य देवायुरप्रमत्तकः । तीव्रां द्वात्रिंशतं शेषां कुर्वते क्षपकाः परं ॥ २८१ ॥
४×५×१+३२=मिश्रिता· ४२ ॥
दश ज्ञानांतरायस्था दर्शनावरणे नव । नीच षड्विंशतिं मोहे निन्द्यं वर्णचतुष्टयं ॥ २८२ ॥
श्वभ्रतिर्यग्द्वये पच सस्थानान्ययशोऽशुभं । नारकायुरनादेयमसातं विकलत्रिकम् ॥ २८३ ॥
पंचसहतयः सूक्ष्मं दुःस्वरासन्नभोगती । साधारणमपर्याप्तं दुर्भगं स्थावरास्थिरे ॥ २८४ ॥
एकाक्षमुपघात च द्व्यशीतिर्वामदृष्टिना । प्रकृतीनामप्रशस्तानां प्रकृष्टीक्रियतेऽगिना ॥ २८५ ॥ कालापकम् ।
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूंषि श्वभ्रद्वयमपूर्णकम् । विकलत्रितयं सूक्ष्मं साधारणकमित्यमूः ॥ २८६ ॥
एकादश नृतिर्यञ्चः प्रकृतीरप्रशस्तकाः । मिथ्यात्ववासितस्वांतास्तीव्रीकुर्वंति जन्तवः ॥ २८७ ॥ युग्मम् ॥

ब्यालीसमेंसे एक देवायु है उसमें तीव्र अनुभागबंधको अप्रमत्त–सातवें गुणस्थानवाला जीव करता है। प बची वत्तीस प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट अनुभाग बधको क्षपक श्रेणीवाले आठवें गुणस्थानसे लेकर करते हैं। २८१। (४+५+१+३२=४२)

ज्ञानावरण तथा अंतरायकी दश प्रकृति, दर्शनावरणकी नौ, नीचगोत्र, मोहकी सर्व छब्बीस प्रकृति, अप्रशस्त वर्णादि चार, नरकगति द्वय, तिर्यचगतिद्वय, आदिके संस्थानको छोडकर शेष पाच सस्थान, अयश कीर्ति, अशुभ, नरकायु, अनादेय, असातावेदनीय, विकलेंद्रिय तीन, आदिके एक संहननको छोडकर शेष पाच संहनन, सूक्ष्मत्व, दु:स्वर, अशुभ विहायोगति, साधारण, अपर्याप्त, दुर्भग, स्थावर अस्थिर, एकेंद्रिय, उपघात–इन व्यासी अप्रशस्त प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट अनुभागवधको मिथ्यादृष्टि जीव करता है। २८२–२८५।

इन व्यासी प्रकृतियोंमेंसे कौन कौनसी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागको कौन कौनसा मिथ्यादृष्टि बाधता है इसका विशेष वर्णन आगे करते हैं।–

नरकायु, तिर्यच आयु, मनुष्यायु–ये तीन आयु, नरकगतिद्वय, अपर्याप्त, विकलेंद्रियके तीन जाति नामकर्म, सूक्ष्म, साधारण–इन ग्यारह अशुभ प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागको मिथ्यादर्शनसे दूषित अत करणवाले मनुष्य तथा तिर्यंच जीव बांधते हैं।२८६–२८७।

देवो वामदृगुत्कृष्टानेकाक्षस्थावरातपान् । उद्योत कुरुते श्वाभ्रः सप्तमीभूमिमाश्रितः ॥ २८८ ॥
तिर्यग्द्वयमनादेय प्रकृतीनामिद त्रय । प्रकृष्टीकुरुतो देवौ कुदृष्टी देवनारकौ ॥ २८९ ॥
प्रकृतीनामष्टषष्टिं चतुर्गतिगताः पर । उत्कृष्टीकुर्वते तीव्रकषाया वामदृष्टयः ॥ २९० ॥
तिर्यगायुर्मनुष्यायुरातपोद्योतलक्षणम् । प्रशस्तासु पुरा दत्त प्रकृतीनां चतुष्टयम् ॥ २९१ ॥

एकेंद्रिय, स्थावर, आतप–इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग बंधको मिथ्यादृष्टि देव करते हैं । एक उद्योत प्रकृतिके तीव्र अनुभागबंधको सातवीं नरकभूमिमें रहनेवाले मिथ्यादृष्टि नारकी जीव करते हैं। २८८ ।

तिर्यगतिद्वय, अनादेय–इन तीन प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट अनुभाग बधको मिथ्यादृष्टि देव–नारकी करते हैं । २८९ ।

अशुभ व्यासी प्रकृतियोंमेंसे शेष रही अडसठि (६८) प्रकृति–इन अडसठिमें तीव्र अनुभाग बधको चारो गतिके तीव्रकषायी मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं । २९० ।

प्रथम ऊपर प्रशस्त प्रकृति व्यालीस और अपशस्त प्रकृति व्यासी गिनाई हैं । उनमेंसे आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यगायु–इन चार प्रकृतियोंका व्यालीस प्रशस्त प्रकृतियोंमें संग्रह किया है । व्यासी अप्रशस्त प्रकृतियोंको, गिनाते समय, उन अप्रशस्तोंमें इन चारका संग्रह नहीं किया है । परतु उन व्यासी प्रकृतियोंको गिनाकर उनमेंसे नीचे जो जुदी जुदी प्रकृतियोंका विशेष स्पष्टीकरण किया है उस समय उक्त चार प्रकृति (आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यगायु-) का फिरसे ग्रहण किया है । इस लिये व्यासीके स्थानमें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी संख्या छयासी हो जाती है । अब यहां शंका यह होती है कि अप्रशस्त प्रकृति व्यासी मानी जाय किंवा छयासी मानी जाय ? यदि वास्तवमें ये चार प्रकृति अप्रशस्त भी हैं तो अप्रशस्त प्रकृति व्यासी न बता कर छयासी बतानी चाहिये थी ? और यदि अप्रशस्त प्रकृति व्यासी ही मानी गई हैं । और वह मानना ठीक है तो अप्रशस्त प्रकृतियोंके विशेष स्पष्टीकरण वाले प्रकरणके बीचमें इन आतपादि चार प्रकृतियोंका समावेश करना ठीक नहीं था ? इस प्रश्नमालाको ध्यानमें लेकर ग्रथकार उसका खुलासा आगे करते हैं ।–

तिर्यगायु, मनुष्यायु, आतप, उद्योत–ये चार प्रकृति, प्रशस्त व्यालीस प्रकृतियोंमें प्रथम ऊपर गिनाई हैं । वे वास्तवमें

तीव्रानुभागबंधासु मध्ये यद्यपि तत्त्वतः । संभवापेक्षया भूयो मिथ्यादृष्टेः प्रदीयते ॥ २९२ ॥
अप्रशस्तं तथाप्येतत्केवल व्यपनीय ते । षडशीतेरपनीते द्व्यशीतिर्जायते पुनः ॥ २९३ ॥
८६ अपनयने ८२ ॥

प्रशस्त ही हैं। और यहां तीव्रानुभाग बंधवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंके बीचमें भी मिथ्यादृष्टिके संभव होनेसे वे फिरसे बताई हैं। परंतु यहांपर जो उनका संग्रह किया है वह उनका अप्रशस्तपना दिखानेके लिये नहीं है किंतु उस देव मिथ्यादृष्टिकी और सप्तम नरकके मिथ्यादृष्टिकी तथा मनुष्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंकी उत्कृष्ट अनुभागबंधवाली प्रकृतियोंको मात्र दिखानेके बीचमें आ जानेसे वे चार प्रकृति भी यहींपर संग्रह करके बतानेमें आई हैं। इसलिये यहांपर गिनानेसे जो उन चारोंमें भी औरोंके संसर्गसे अप्रशस्तपना आना संभव है वह अप्रशस्त विशेषण उनका केवल हटादेना चाहिये और तीव्रानुभाग बंधके स्वामी आदिका प्रयोजनभूत ज्ञान लेना चाहिये। इस प्रकार छ्यासीमेंसे अप्रशस्तकी संख्याको देखनेके समय उक्त चारको घटाकर व्यासी ही अप्रशस्त प्रकृति समझनी चाहिये। २९१—२९३।

विशेष— व्यासी अप्रशस्त और व्यालीस प्रशस्त प्रकृतियोंको मिलानेसे सर्व एकसौ चौवीस संख्या होती है। और बंधकी प्रकृति सर्व १२० ही बताई हैं। सत्ताकी १४८ प्रकृतियोंमेंसे पांच बंधन, पांच संघात तथा वर्णादि चारके उत्तरभेद २० मेंसे बंध किसी एक एकका ही होनेसे बंधकी चार संख्या रखकर शेष १६ वर्णादि—इस प्रकार सर्व २६ प्रकृति बंधमें नहीं जोडी जाती। इस लिये बंधप्रकृति १२० है। और इन्हीके शुभ अशुभ अथवा प्रशस्त अप्रशस्त ऐसे दो सामान्य विभाग है। परंतु यहांपर व्यालीस प्रशस्त और व्यासी अप्रशस्तको जोडनेसे जो १२४ सर्व संख्या होती है वह कैसे? चार संख्या कैसे वढ जाती है? इसका उत्तर यह है कि वर्णादि चार प्रकृतियोंको व्यालीस प्रशस्तमें भी गिनाया है और अप्रशस्त व्यासीमें भी गिनाया है। इसलिये चार संख्या वढी हुई जान पडती है।

दश ज्ञानांतरायस्था दृगावृतिचतुष्टयम् । मदत्वं नयते सूक्ष्मः समयेन्त्ये चतुर्दश ॥ २९४ ॥
पच पुंवेदसंज्वालाः प्रकृतीरनिवृत्तिक । रतिं हास्य जुगुप्सा भीर्निन्ध वर्णचतुष्टयम् ॥ २९५ ॥
नयते प्रचलितानिद्रे उपघातमपूर्वक । मदानुभागबंधत्वमेकादश विशुद्धधीः ॥ २९६ ॥
आहारकद्वय शश्वदप्रमत्तेन साधुना । शोकारती प्रमत्तेन मदत्व नीयते पुनः ॥ २९७ ॥
मिथ्यात्वमादिकोपादिचतुष्क स्त्यानगृद्धय । तिस्रश्चाष्टेति नीयन्ते मदत्व वामदृष्टिना ॥ २९८ ॥
असयतो द्वितीयाना कपायाणां चतुष्टय । देशव्रतस्तृतीयानां मदत्व नयते पुन ॥ २९९ ॥

अब उत्कृष्ट अनुभागको दिखाकर जघन्य अनुभागको दिखाते हैं ।—

ज्ञानावरण—अतरायकी मिलाकर दश प्रकृति, और दर्शनावरणकी चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृति–इन चौदह प्रकृतियोंमें सूक्ष्मकपाय–दशवें गुणस्थानका जीव अत समयमें मद अर्थात् अनुभाग बधको जघन्य करता है । २९४ ।

पुरुषवेद तथा सज्वलन चार क्रोधादि कषाय— इन पाच प्रकृतियोंके जघन्य अनुभाग बधको अनिवृत्ति-करण नौवें गुणस्थानवाला करता है ।

रति, हास्य, जुगुप्सा, भय, अप्रशस्त वर्णादि चार, प्रचला, निद्रा, उपघात—इन ग्यारह प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको अपूर्वकरण—आठवें गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि जीव करता है । २९५-२९६ ।

आहारक शरीर तथा आहारक शरीरांगोपाग—इन दो प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको अप्रमत्त—सातवें गुणस्थानवाला ही साधु बाधता हैं । और शोक, अरति–इन दो प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबधको प्रमत्त–छट्ठे गुणस्थानवाला करता है ।२९७।

मिथ्यादर्शन, आदिके—अनंतानुबधी चार क्रोधादि कषाय, स्त्यानगृद्धि–प्रचलाप्रचला–निद्रानिद्रा–ये तीन दर्शनावरण–इन आठ प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागबधको मिथ्यादृष्टि करता है । २९८ ॥

असयत सम्यग्दृष्टि–चौथे गुणस्थानवाला दूसरे–अप्रत्याख्यानावरण कषाय चारमें जघन्य अनुभागको करता है । तीसरे—प्रत्याख्यानावरण कषाय चारमें देशव्रत–पाचवें गुणस्थानवाला जघन्य अनुभागबंधको करता है ॥ २९९ ॥

इत्येताः प्रकृतीरेते सयमाभिमुखास्त्रय । मन्दानुभागवन्धत्वं नयन्ते पोडश क्रमात् ॥ ३०० ॥
आयुश्चतुष्टय सूक्ष्म पट्क वैक्रियिकाह्वयं । साधारणमपर्याप्त त्रय विकलगोचरम् ॥ ३०१ ॥
मिथ्यादृशो नृतिर्यञ्चो मदीकुर्वन्ति पोडश । उद्योतौदारिकद्वन्द्वे तिस्त्रस्त्रिदशनारका ॥ ३०२ ॥
तिर्यग्द्वितयनीचानां तिसृणां कुर्वतेऽगिन । मन्दानुभागवन्धत्वं सप्तमीमवनीङ्गताः ॥ ३०३ ॥
मंदत्वं स्थावरैकाक्षे द्वे तिर्यग्देवमानवा । कुर्वते मध्यमे भावे वर्तमानाः शरीरिण ॥ ३०४ ॥

इस प्रकार मिथ्यात्व, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा, और अनतानुबंधी आदि बारह कपाय–इन सोलह प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागबधको करनेवाले क्रमसे मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि तथा देशसयत–ये तीन गुणस्थानवाले बताये हैं, परतु ये तीनों सयमके सम्मुख जब होते हैं तभी इन सोलह प्रकृतियोंमें जघन्यानुभागको बाधते हैं।

भावार्थ, यदि ये तीनो गुणस्थानवाले अपने अपने स्थानमें रह कर सकल सयमकी तरफ वर्धमान विशुद्धिवाले न हों तो उक्त सोलह प्रकृतियोंमें मंद अनुभागको नहीं बांध सकते। ३००।

चार आयु, सूक्ष्म, वैक्रियिक पट्क (छह), साधारण, अपर्याप्त, विकलेंद्रियकी तीन जाति–इन सोलह प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको मिथ्यादृष्टि मनुष्य–तिर्यच बाधते हैं। और उद्योत, औदारिकद्वय–इन तीन प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको मिथ्यादृष्टि देव अथवा नारकी बांधते हैं। ३०१–३०२।

तिर्यग्गतिद्वय तथा नीचगोत्र–इन तीन प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको सातवीं नरकभूमिके नारकी जीव करते हैं। ३०३।

स्थावर, एकेंद्रिय जाति–इन दो प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको वे तिर्यंच, देव, मनुष्य बाधते हैं जो मध्यम परिणामोंको धारण करनेवाले होते हैं। ३०४।

एकं सौधर्मदेवान्ता आतप वामदृष्टय । मनुष्यास्तीर्थकर्तृत्वं मदीकुर्वन्त्यसंयता ॥ ३०५ ॥
उच्छ्वासागुरुलघ्वाह्वे निर्मित त्रसचतुष्टय । पचाक्ष कार्मण तेजश्चारु वर्णचतुष्टयम् ॥ ३०६ ॥
परघात च सक्लिष्टाश्चतुर्गतिनिवासिनः । मदाः पचदशाप्येताः कुर्वते वामदृष्टयः ॥ ३०७ ॥
मिथ्यात्वाकुलितास्तीव्रविशुद्धिगतमानसा । आरोपयन्ति मदत्व स्त्रीनपुसकवेदयो ॥ ३०८ ॥
वेद्यद्वय स्थिरद्वंद्व शुभद्वन्द्व यशोद्वयम् । अष्टैताः कुरुते मन्दाः सद्दृष्टिरितरोपि च । ३०९
षट्के सस्थानसहत्योरुच्चैर्गोत्र सुरद्वयम् । मनुष्यद्वयमादेयद्वय हि सुभगद्वय ॥ ३१० ॥
विहायोगमनद्वंद्वं विंशति त्रिभिरन्विताम् । प्रपन्ना मध्यम भावं मन्दीकुर्वन्ति दुर्दृश ॥ ३११ ॥

एक आतप प्रकृतिमें जघन्य अनुभागको सौधर्म पर्यंतके मिथ्यादृष्टि देव बाधते हैं । और तीर्थकर प्रकृतिमें जघन्य अनुभागको असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य बाधते हैं । ३०५ ।

उच्छ्वास, अगुरुलघु, निर्माण, त्रसादि चार, पचेंद्रिय जाति, कार्मण, तैजस, वर्णादि प्रशस्त चार, परघात–इन पंद्रह प्रकृतियोंमें चारो गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीव जघन्य अनुभागको बाधते हैं ।३०६–३०७।

मिथ्यादृष्टि जीव, परंतु जिनकी मानसिक विशुद्धि उत्कृष्ट है, वे स्त्री वेद, नपुसक वेद–इन दो प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको करते हैं ।३०८।

वेदनीय दो, स्थिर दो, शुभ दो, यश कीर्ति दो–इन आठ प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभागको सम्यग्दृष्टि भी बाधता है और मिथ्यादृष्टि भी बांधता है ।३०९।

छह सस्थान, छह सहनन, उच्चगोत्र, देवगतिद्विय, मनुष्यगतिद्विय, आदेय द्वय, सुभग द्वय, विहायोगति द्वय,–इन तेईस प्रकृतियोंमें जघन्य अनुभाग बधको वे मिथ्यादृष्टि बाधते हैं जो मध्यम परिणामोंके धारक हैं ।३१०–३११।

संज्ञा कथ्यन्ते—

भवन्ति सर्वघातिन्य कषाया द्वादशादिमा । आद्या दृग्रोधने पच प्रान्ते ज्ञानेक्षणावृती ॥ ३१२ ॥
मिथ्यात्व विंशतिर्बंधे सम्यग्मिथ्यात्वसयुता । उदये ता पुनर्दक्षैरेकविंशतिरीरिताः ॥ ३१३ ॥
बधे २० । उदये २१ ॥

अब अनुभागोंकी विशेष सज्ञाएं कहते हैं ।—

सोलह कषायोंमेंसे अनतानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण–ये बारह कषाय, दर्शनावरणके आदिके पाच निद्रारूप दर्शनावरण, और प्रात अर्थात अतका एक दर्शनावरण–केवल दर्शनावरण, पव एक केवल ज्ञानावरण, मिथ्यात्व–ये वीस प्रकृति बधके प्रकरणमें सर्वघाती कहाती हैं । उदयके प्रसगमें ये वीस और सम्यड्मिथ्यात्व–ऐसे इक्कीस प्रकृति सर्वघाती मानी गई हैं । बधमें २० । उदयमें २१ ।

किसी आत्मगुणको जो प्रकृति सर्वांशमें घात करे उसे सर्वघाती कहते हैं । सर्वघातीके उदयमें जीवका वह घाता जानेवाला गुण नाममात्र भी प्रकाशित नहीं रहता है । मोहके सर्व २८ भेद हैं । उनमेंसे दर्शनमोहके ३ भेद हैं और चारित्रमोहके २५ भेद हैं । दर्शनमोहके तीन भेदोंमेंसे पहिला मिथ्यात्व है वह सर्वघाती है। मिथ्यात्वकर्मका हुआ जो बंध वह सम्यग्दर्शन गुणके सर्वांशको घातनेवाला है । उस अवस्थामें सम्यग्दर्शनका अशमात्र भी ऐसा शेष नहीं रहता जो कर्म बधनसे छूटा हुआ हो । यद्यपि बंधके समय कर्मका फलरूप कोई कार्य प्रगट नहीं होता है। और इसलिये उस कर्मकी घातुकताका भी कोई परिचय अथवा अनुभव नहीं हो पाता है । परतु बधमें आजानेवाले कर्मके जोरसे अथवा ससर्गसे भी अनेक अनिष्ट परिणाम होते हैं । उदाहरणार्थ, मिथ्यात्वके बध मात्रसे जीवके इतर बहुतसे कर्मोंके अनुभाग मद नहीं पडपाते हैं । इतर बहुतसे कर्म जो कि मिथ्यात्वके ही साथ रह सकते हैं उनका बध भी मिथ्यात्वके बंध होनेसे होता है । अर्थात् मिथ्यात्वकर्म बधके समयसे ही अपना इतर कर्मोंका मंडल ऐसा संग्रहमें तयार करता है कि मिथ्यात्वरूप परिणाम होनेमें वह मडल सहायता करे । जैसे अनंतानुबधीका बध मिथ्यात्वके

क

बधवालेकें रहता ही है। इसलिये बधकी प्रकृति भी जीवके पारतन्त्र्यको वैसी ही बनाये रखनेमें सहायक होती हैं जैसा कि उन अनुभागबध सर्वघाती अथवा देशघाती उत्पन्न हुआ हो। और वास्तवमें वे सर्वघातरूप फलको उदयमें आकर देते है।

चारित्रमोहके सर्व पच्चीस भेद हैं उनमेंसे अनतानुबधी आदि बारह आदिके कषाय सर्वघाती माने हैं। अनंतानुबंधीसे अप्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरणसे प्रत्याख्यानावरण—ये उतरती हुई घातक शक्तिको रखते हैं तो भी सर्वघाती बारह ही कषाय माने गए हैं। इसपरसे शका यह होती है कि जो सर्वोत्कृष्ट घातक शक्तिको रखता है वह कर्म सर्वघाती माना जाना ठीक है, परन्तु जो उससे उतरती शक्तिको रखता है वह कर्म जीवशक्तिका सर्वांशघातक कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि घातिके अर्थ दो हैं, एक तो ऐसा कि जीवकी पूरी शक्तिको घातना, दूसरा अर्थ ऐसा कि उस जीवशक्ति अधूरी चाहे तो भले ही प्रगट हो जाय परतु उसको पूर्ण प्रगट न होने देना। पहिला अर्थ लेनेसे जीवकी शक्तिका प्रादुर्भाव ही होने नहीं पाता है। जैसे, मिथ्यात्वके उदयसे जीवका सम्यग्दर्शन गुण प्रगट ही नहीं होता है। चारित्रमोहके प्रथम चार अनंतानुबधी कषाय भी ऐसे ही हैं कि जीवके चारित्र गुणको प्रगट ही नहीं होने देते। अनतानुबंधीके उदयमें जीवका चारित्र गुण सर्वथा मलिन अथवा विकृत बना रहता है। इसलिए अनंतानुबंधीके उदयमें जीव अपने हिताहितकी प्रवृत्तिनिवृत्तीको कर ही नहीं सकता है। यद्यपि इसका कारण मिथ्यात्वका भी उदय है। जबतक मिथ्यात्वका उदय है तबतक जीवकी हिताहित पहिचाननेकी शक्ति नष्ट रहती है, परन्तु हिताहितको न पहिचानना मिथ्यात्वका कार्य मानलें तो भी न पहिचाननेसे जो प्रवृत्तिका भी अनुकूल न होना—यह कार्य है वह दूसरे कर्मका कार्य है। अनुकूल प्रवृत्ति न होने देनेका कारण चारित्रमोह कर्मका उदय ही मानना पडता है। इसीलिये मिथ्यात्वके हट जानेसे जहा केवल सम्यग्दर्शन होता है वहा सयमका अश जागृत न होते हुए भी स्वरूपाचरण चारित्ररूप अनुकूल परिणाम प्रगट होते ही हैं और उन परिणामोंके प्रगट होनेका कारण अनंतानुबंधीका अभाव हो जाना है। इसीलिये सम्यग्दर्शन जब प्रगट होता है उस समय अनतानुबधीका भी उपशम होना माना गया है।

एवं मिथ्यात्वका उदय न रहनेपर केवल अनतानुबधीका उदय होजानेसे स्वरूपाचरणका अभाव भी हो जाता है ऐसी अवस्था सासादन नामके दूसरे गुणस्थानमें होती है। वहापर चाहे सम्यग्दर्शनका अस्तित्व व्यवहारमें न माना जाय परन्तु 'सासादन—

सम्यक्त्व ' इस नामसे दूसरे गुणस्थानमें केवल स्वरूपाचरण चारित्रका ही अभाव होता है, सम्यक्त्वका नहीं, ऐसा अर्थ ध्वनित होता है। स्वरूपाचरण चारित्र सम्यक्त्वके विना नहीं रहता है और सम्यक्त्व स्वरूपाचरणके विना नहीं रहता है—ऐसा नियमसा हो रहा है। ऐसा माननेका प्रयोजन इतना ही है कि एकके विना दूसरा प्रगटमें कार्यकारी न हो। इसीलिये दोनों जहा प्रगट होते हैं ऐसे चतुर्थ गुणस्थानमें दोनो स्वभावोंकी सार्थकता होती है और मुख्यताकी अपेक्षासे सम्यग्दर्शनका अस्तित्व भी वहींपर माना जाता है। इस सार्थक वृत्तिके न रहनेसे दूसरे गुणस्थानमें सम्यक्त्वका नाश मानलिया जाता है। परन्तु जहांतक मिथ्यात्वका उदय नहीं हुआ वहातक सम्यक्त्वका पूरा नाश कैसा ?

सम्यक्त्वका पूरा नाश जहांपर नहीं हुआ ऐसी एक अवस्था, और सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व जहांपर प्रगट होगया ऐसी एक अवस्था—ये दो ही अवस्था सम्यक्त्वके बाद नीचेकी हो सकती हैं। दूसरे गुणस्थानमें सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व प्रगट नहीं होता इसलिये सम्यक्त्वका पूरा नाश नहीं हुआ, ऐसा मानना पडता है। यहापर केवल अनतानुबधीके उदय होजानेसे स्वरूपाचरण चारित्रगुण नहीं रहता, यह चारित्र अथवा संयमके पूर्ण अभावका उदाहरण है। यहापर अनंतानुबधीने जो सयम गुणका घात किया है वह सर्वांश रूपसे किया है। दूसरा सर्वघातीका अर्थ यह है कि उस गुणको पूर्ण प्रगट न होने दे। यह अर्थ प्रत्याख्यानावरणके उदय समय दीख पडता है।

प्रत्याख्यानावरणका अर्थ ऐसा है कि प्रत्याख्यान अर्थात् त्याग, उस त्यागको रोके वह प्रत्याख्यानावरण है। यहांपर प्रत्याख्यानका अर्थ सर्वथा त्याग है। उपाधिका सर्वथा त्याग करके सयमकी विशुद्धताको प्राप्त करनेवाले जो होते हैं वे संन्यासी, मुनि, छट्ठे गुणस्थानवर्ती साधु कहाते हैं। उनकें सयम गुणकी प्राप्ति सर्वघातीके अभावसे ही होती है। इससे प्रथम जो देशसयमकी प्राप्ति पांचवें गुणस्थानमें हुई है वह भी सर्वघाती—अप्रत्याख्यानावरणके अभाव होजानेसे ही हुई है। अप्रत्याख्यानावरणमें 'अ' का अर्थ ईषत्, थोडासा—ऐसा है। थोडेसे प्रत्याख्यान—अर्थात् त्यागको भी जो न होने दे उस अप्रत्याख्यानके आवरण करनेवाले कर्मको अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं। इसका उदय जबतक होता है तबतक संयममें प्रवेश ही नहीं होता। यह भी सर्वघाती ही कर्म है।

इस प्रकार सर्वघाती चारित्रमोहके तीन भेद हैं। ये तीनो ही जुदा जुदा कार्य करते हैं। परंतु इनमेंसे एकका भी उदय जबतक होता रहता है तबतक जीव सयमको प्राप्त नहीं होता है। देशसयम–श्रावकके संयमको सयम नहीं कहते हैं। देशसंयमका अर्थ संयमकी तरफ उन्मुख होना है। देशसयमवाला जीव सयम अर्थात् त्यागकी केवल तयारी करता है। तयारीका अर्थ ऐसा, कि पापारभमें जो निरर्गल प्रवृत्ति आजतक होरही थी उसकी वह सीमा बाधता है। अत्यंत दुष्कृत्योंको विचार कर छोड देता है। परतु यह त्यागका अथवा सयमका साक्षात् स्वरूप नहीं है, किंतु असंयमका परिशोधन, संस्कार अथवा संयमकी तरफ सम्मुख होना है। इस तयारीके होते हुए भी सयमका लाभ जो नहीं होने देता वह प्रत्याख्यानावरण कषाय है। इसको एक इस प्रकारसे भी कह सकते हैं कि—अनतानुबधी सयमके संरभको ही नहीं होने देता, अप्रत्याख्यानावरण समारभको नहीं होने देता, और प्रत्याख्यानावरण सयमके आरभको नहीं होने देता।

इस प्रकारसे देखते हैं तो चारित्रमोहके अनंतानुबंधी आदि तीनो ही भेद संयमके सर्वघाती कर्म है। ये तीनो ही कर्म संयमका घात केवल तरतम भावसे ही नहीं करते हैं किंतु इनके घातनेकी तरह ही जुदी जुदी है। इसलिये इन तीनोंमें सयमघातके तरतम सामर्थ्यद्वारा ही परस्परके भेद प्राप्त नहीं हुए हैं किंतु तीनोंकी जातिमें भी भेद है। इसीलिये ये तीनो ही सर्वघाती कहाये हैं। यदि केवल तरतमका ही भेद होता तो केवल अनतानुबंधी ही सर्वघाती कहाता, शेष अप्रत्याख्यानावरणादि सर्व मोह देशघाती कहाने चाहिये थे। क्योंकि, जो जीवके संयमको पूरा न घात सके वह देशघाती होता है। और प्रत्याख्यानावरणके उदय रहते भी देशसंयम होता है किंतु प्रत्याख्यानावरण, संयमका सर्वघाती कर्म है। इस प्रकार देखते हैं तो सर्वघातीके उदयमें संयमका अभाव रहना भी मानना पडता है। इसीलिये देशसयमको संयम न कहकर सयमकी तरफ सम्मुख होना मात्र कहना चाहिये।

आदिमें जो पांच निद्रा बताई हैं वे, और अंतका एक दर्शनावरण—केवल दर्शनावरण–ये छह प्रकृति दर्शनावरणकी सर्वघाती हैं। ज्ञानावरणमेंसे अंतकी एक केवलज्ञानावरण प्रकृति सर्वघाती है। इन प्रकृतियोंके रहते शुद्ध ज्ञान तथा शुद्ध दर्शन

॥३०३

गुण प्रगट नहीं होते। केवलज्ञानावरणके रहनेपर जितना ज्ञान प्रगट होता है वह निर्विकार अथवा ऐसा प्रगट नहीं होता जिसमें केवल—अर्थात् असहायपना रहता हो। इसीलिये केवलज्ञानके शिवाय शेष मतिज्ञानादि ज्ञान हैं उन्हे ज्ञान कहना उपचरित कथन ठहरता है। वास्तवमे उन्हे उपयोग कहा जाता है। क्योंकि ज्ञानका शुद्ध यदि अश भी प्रगट होजाय तो उसमें ऐसा कोई पदार्थ शेष न रहना चाहिये जो प्रतिभासित न हो। ज्ञान है तो, किसी भी पदार्थका अज्ञान क्यों रहे ? परन्तु मतिज्ञानादिक शेष चारो ही ज्ञान ऐसे है कि युगपत् सर्व वस्तुओंका सीधा ज्ञान ही उनमें नहीं होता है। अत एव शेष ज्ञान क्षायोपशमिक ही होते हैं और करणक्रमव्यवधानको लिए हुए होते हैं।

यह करणक्रमव्यवधान दोष है। इसी दोषको केवलज्ञानावरण कर्म उत्पन्न करता है। ज्ञानका केवलपना नष्ट करना इसका अर्थ दुसरे शब्दोंसे यही है कि करणक्रमव्यवधान उत्पन्न करना। और इसीको एकशब्दद्वारा कहना हो तो क्षायोपशमिकता होती है ऐसा कहना चाहिये। क्षायोपशमिक भी ज्ञानका एक ऐसा असाधारण दोष है कि वह ससारके सभी जीवोंके सर्वसमयवर्ती ज्ञानपर्यायोंमें रहता ही है। सर्वघाती ज्ञानावरणका ज्ञानगुणमें यही कार्य होता है कि जो ज्ञानको मूल स्वरूपमें न रहने देना।

घातक कर्मका ऐसा अर्थ लोग करते हैं कि वह अपने गुणको नष्ट करदे। परंतु ज्ञानावरणमें ज्ञानका घातना—इसका अर्थ नष्ट करना नहीं है। यदि सर्वघातीके उदयसे ज्ञानका नष्ट होना समव हो तो जीवका यह असाधारण गुण ही नष्ट हो जायगा। और इस असाधारण गुणके नाशसे जीवका लक्षण ही मिट जायगा। परतु यह बात वस्तुस्वभावके विरुद्ध है। इसलिये जुदे जुदे घातियोंका घातना भी जुदे जुदे प्रकारका मानना चाहिये।

अर्थात् जैसा घात जिस गुणमें समव हो वैसा ही घातका अर्थ जुदे जुदे गुणोंमें करना चाहिये। घातक कर्मोंके नाम भी इसीलिये तत्क्रियानुरूप जुदे जुदे माने गये हैं। चारित्रको घातनेवाले कर्मका नाम मोह है, ज्ञानके घातकका नाम ज्ञानावरण है। इसी प्रकार दानलाभादिका अर्थ बाह्य वस्तुके संबधसे अथवा अपेक्षासे सिद्ध होता है इसलिये इन गुणोंमें विघ्न करनेवाले कर्मका नाम अतराय है। दर्शन तथा ज्ञानकी परिस्थिति और कार्य एकसे हैं, इसलिये उन गुणोंके घातकोंके नाम आवरण— इस समान शब्द द्वारा बताये हैं।

दर्शनावरणे तिस्रश्चतस्रो ज्ञानरोधने । सज्वाला नोकषायाश्च मोहने विघ्नपचक ॥ ३१४ ॥
जायन्ते देशघातिन्यो बंधने पचविंशति । षड्विंशतिर्भवन्त्येता सम्यक्त्वेन सहोदये ॥ ३१५ ॥
बंधे २५ । उदये २६ । पिंडिता ४७ ॥

दर्शनावरणके नौ भेदोंमेंसे पाच निद्रा तथा एक केवलदर्शनावरण—ये छह प्रकृति सर्वघाती गिनाई है । केवलज्ञानावरणके समान केवलदर्शनावरणको समझना । निद्राए जो पाच हैं वे दर्शनावरणके ही भेद क्यो हैं और वे सर्वघाती क्यों हैं इसका खुलासा करते हैं । निद्राओंके समय सामान्य अवलोकनका कार्य बंद हो जाता है इसलिये वे दर्शनावरणमें गर्भित होती हैं और इसीलिये वे सर्वघातक मानी गई हैं ।

वधकी अपेक्षासे ये बीस सर्वघाती हैं । और उदयकी अपेक्षासे भी वीस ये प्रकृति तो सर्वघाती हैं ही परतु एक सम्यङ्मिथ्यात्व नामकी और भी प्रकृति सर्वघाती मानी जाती है । सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति वंधमें जुदी नहीं मानी है और वह सम्यङ्मिथ्यात्व नामके तीसरे गुणस्थानके परिणामोंको पैदा करती है । वे परिणाम अपेक्षाभेदसे सम्यक् भी कहे जाते हैं और मिथ्यात्वरूप भी कहे जाते हैं। इसलिये इस सम्यङ्मिथ्यात्व नामकी प्रकृतिको अपेक्षाभेदसे ही उदयमें सर्वघाती कहते हैं ।३१३।

दर्शनावरणकी सर्व प्रकृति नौ हैं उनमेंसे छह प्रकृति सर्वघाती ऊपर बताई हैं । शेष रही तीन प्रकृति–चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण ये तीन, ज्ञानावरणकी शेष रही चार प्रकृति–मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण–ये चार, मोहनीयमेंसे सज्वलन चार कषाय, नौ हास्यादि नोकषाय, अतराय पांच–ये पच्चीस प्रकृति बंधप्रकरणमें देशघाती कहाती हैं । उदयके प्रकरणमें ऊपरकी पच्चीस तथा एक सम्यक्त्व प्रकृति–ये छब्बीस देशघाती मानी जाती हैं । बधमें २५ । उदयमें २६ । देश और सर्वघाती दोनो मिलकर ४७ हुई । ३१४–३१५ ।

॥२०५॥

विशेष— सम्यक्त्व प्रकृतिको देशघाती बताया है परंतु उदयमें ही उसकी गिनती की है, बंधमें नहीं की। इसी प्रकार सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिको ऊपर सर्वघाती गिनाया है, वह भी बंधमें गिनाई नहीं गई है। और अनादि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व प्रकृतिकी तथा सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिकी सत्ता भी नहीं बताई है। केवल प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेपर सत्तामेंकी मिथ्यात्व एक प्रकृतिमेंसे ही दो अधिक टूटकर टुकडे हो जाते है, इन दो टुकडोंमेंसे एकका नाम सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति है, दूसरे एक टुकडेका नाम सम्यक्त्व प्रकृति है। ये टुकडे जब हो जाते हैं उस समय सत्तामें एक मिथ्यात्वके बदले, छोटे बडे तीन कर्म हो जाते हैं। उनमेंसे दो तो ये प्रकृति हैं जो कि मिथ्यात्वमेंसे झडकर नवीन तयार हुई हैं; और एक पूर्वकी मिथ्यात्व प्रकृति ही है। इनमेंसे झडकर जो दो नवीन प्रकृति बनी हैं वे समय पाकर जब खिर जाती हैं तो फिर भी जीवकी सत्तामें मिथ्यात्व नामकी एक ही मूलकी प्रकृति शेष रह जाती है। इन दोनोंका स्वतंत्र बंध कभी नहीं होता इसीलिये बंधमें इनकी गिनती नहीं की है।

सर्वघाती प्रकृतियोंको गिनाते समय अंतरायकी प्रकृति एक भी नहीं गिनाई है। इसका कारण यह है कि अंतराय कर्म अपने सर्वांश गुणका कभी घात करता ही नहीं है। अंतरायके द्वारा घाते जानेवाले गुणका सर्व घात होना वस्तुस्वभावके विरुद्ध भी है। अंतरायके द्वारा दानादि गुणोंका भी घात होता है, परंतु मुख्य घात अव्याबाध गुणका होना बताया है। संसारके नष्ट होनेपर जो अव्याबाध गुण, शुद्ध परमात्म दशामें प्रगट होता है उसका नामशेष संसारदशाके रहते हुए भी नहीं होता। अव्याबाधका अर्थ है सर्व बाजूकी व्याबाधा हट जाना। और व्याबाधाको उत्पन्न करना अंतरायका काम है। यह अव्याबाध गुण अथवा व्याबाधा दोष ऐसा चीज नहीं है कि किसी गुणमें मलिनता थी वह हट गई हो। किंतु ज्ञानदर्शनावरण मोहनीय —इनकर्मोंके द्वारा ज्ञानादि गुण विकारी होजानेसे निराकुलता अथवा स्वस्थावस्था जीवमें नहीं रहती थी। और इस दोषको इतर घाति कर्मोंके रहते, अंतराय कर्म पैदा करता था। इसलिये ज्ञानावरणादिके हटते ही अंतरायका हटना अथवा नष्ट होना अनायास प्राप्त हो जाता है। और संसारदशामें जो व्याबाधा है वह भी जीवको पूरा बाधित नहीं करती, नहीं तो जीवका अस्तित्व ही मिट जानेका प्रसंग आ जाय। इसीलिये उस अव्याबाधको सदा शेष रहनेकी आवश्यकता है और इसीलिये अंतरायका सर्वघाती भाग कभी आवश्यक नहीं पडता।

वेद्यायुर्नामगोत्राणां प्रोक्ताः प्रकृतयोऽखिला । अघातिन्य पुन प्राज्ञैरेकोत्तरशतप्रमाः ॥ ३१६ ॥
अघातिन्य १०१ ॥ विंडिताः १४८ ॥
घातिकाभिरिमा युक्ता घातिकाः सन्त्यघातिकाः । घातिकास्तत्र पापाख्या पुण्यपापाभिधा पराः ॥ ३१७ ॥
सज्वाला ज्ञानरुध्याद्याश्चतस्रो विघ्नपञ्चक । तिस्रो दृग्रुधि पुवेदः सति सप्तदशेति याः ॥ ३१८ ॥
चतुर्विधेन भावेन सदा परिणमति ताः । त्रिविधेन पुनः शेषाः सप्तोत्तरशतप्रमाः ॥ ३१९ ॥

वेदनीयकी, आयुकी, नामकी, गोत्रकी, सपूर्ण ही उत्तर प्रकृति अघाती कहाती हैं । और ये सर्व अघाती प्रकृति एकसौ एक हैं । अघाती १०१ । घाति ४७ के साथ मिलानेसे १४८ होती हैं ।३१६।

अघाती प्रकृति १०१ ऊपर वताई हैं । वे अघाती होकर भी घाती प्रकृतियोंके साथमें घाती समान हो जाती है। अर्थात्, घातियोंके साथमें वे अघाती भी घाति प्रकृतियोंकासा फल देती हैं । अथवा अघाती प्रकृति तभीतक फल देनेमें समर्थ रहती हैं जबतक घाती कर्मोंकी सत्ता शेष रहती है । घाती प्रकृति सर्व पापप्रकृति ही हैं, किंतु अघातियोंमें कुछ पापरूप हैं और कुछ पुण्यरूप भी हैं । ४२ पुण्य प्रकृति ऊपर गिनाई हैं और ८२ पापरूप गिनाई हैं । ३१७ ।

क्रोधादि चार सज्वलन कषाय, ज्ञानावरणमें आदिके चार–मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्यय-ज्ञानावरण–ये चार, अंतराय पांचो ही, दर्शनावरणमें आदिके तीन–चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण अवधिदर्शनावरण–ये तीन, एक पुरुषवेद–ये सर्व सत्रह प्रकृति हुई । इन सत्रहकी परिणति चार चार प्रकारसे सदा होती है । अर्थात् प्रत्येक समयमें जो इन प्रकृतियोंमें अनुभागशक्ति पडती है वह चार चार प्रकारकी होती है । और उक्त सत्रह प्रकृतियोंके शिवाय जो शेष एकसौ सात प्रकृति हैं उनका परिणमन तीन तीन प्रकारसे ही होता है । उन चार अथवा तीन प्रकारके परिणमनोंको आगे बताते हैं । ३१८–३१९ ।

लतादार्वस्थिपाषाणतुल्यास्ता भावतो मता । अन्या दार्वस्थिपाषाणतुल्याः सप्तोत्तरं शतम् ॥ ३२० ॥
प्रशस्तानां समा भावा गुडखंडसितामृतैः । अन्यासां निंबकंजीरविषहालाहलैर्मताः ॥ ३२१ ॥

लता दारु अस्थि पाषाण—ये चार चीजें प्रकृतियोंके अनुभागकी तुलना दिखानेके लिये ली गई हैं । इन चार चीजोंके समान सत्रह प्रकृतियोंका अनुभाग तारतम्यको लिये हुए होता है । और जिन शेष प्रकृतियोंमें तीन प्रकारका ही परिणमन होना बताया है वह लताको छोडकर आगेके दारु अस्थि पाषाण—इन तीनके समान समझना । शेष प्रकृति १०७ हैं ।

लताका अर्थ बेलि है । बेलि बहुत नरम होती है । इसी प्रकार कुछ कर्मपरमाणुओंमें फलदान शक्ति अत्यंत नरम या कोमल होती है—उस शक्तिको लता अथवा बेलिके समान कहा है । दारु लकडीको कहते हैं । लतासे लकडी अधिक कठोर होती है । इसी प्रकार लकडीके समान जो अजघन्य फलदान शक्ति होती है वह दारुसमान कहाती है । तीसरी शक्ति अस्थिके समान बताई है । अस्थिका अर्थ हड्डी है । अस्थि लकडीसे भी अधिक कठोर होती है । जो कर्मशक्ति अस्थिके समान अनुत्कृष्टरूप हो उस अस्थिसमान तीसरे दर्जेका अनुभाग समझना चाहिये । -अस्थिसे भी बढकर कठोर पाषाण होता है । यह सबसे बढकर कठोर है । इसके समान जो कर्मकी फलदान शक्ति होती है उसे पाषाणसमान बताया है । यह चौथे दर्जेकी कठोरता है । इससे बढकर कोई कर्कशता नहीं होती इसलिये इस कर्मस्वभावकी कर्कशताको उत्कृष्ट अनुभाग शक्ति कहा जाता है। पहिली सत्रह प्रकृतियोंमें ये चारो दर्जे पाये जाते हैं । शेष १०७ में लताके समान सबसे जघन्य परिणमन कभी नहीं होता ।३२०।

ये चार उदाहरण केवल कठोरता दिखानेकेलिये बताये हैं । परतु प्रकृतियोंमेंसे कुछ पुण्यरूप पूर्वमें बताई हैं और कुछ पापरूप बताई हैं । इसलिये पुण्य तथा पाप स्वरूपमें तारतम्य दिखानेके लिये आगे चार चार भेद और भी करते हैं । वे भेद भी क्रमसे लता आदि चार भेदोंको लिये हुए ही समझने चाहिये । वे इस प्रकार हैं —

प्रशस्त—पुण्य प्रकृति जो ४२ गिनाई हैं उनके फल, जघन्य अजघन्य अनुत्कृष्ट उत्कृष्ट क्रमसे गुड खांड शर्करा अमृतके समान समझने चाहिये । पापप्रकृति ८२ गिनाई हैं उनके फल, नींब कंजीर विष हालाहलके समान चार प्रकारके तरतमरूप बताये गये हैं । ३२१ ॥

इस प्रकार संज्ञाप्रकरण समाप्त हुआ ।

॥३०८॥

योगेन बध्यते सातं मिथ्यात्वेनात्र षोडश । असयमेन पचाग्रास्त्रिशदन्याः कषायतः ॥ ३२२ ॥

अब आस्त्रवोंको प्रकृतियोंके साथ जोडकर यह बताते हैं कि किन किन प्रकृतियोंके कौन कौनसे मुख्य आस्त्रव हैं ।—

मिथ्यादर्शन अविरति कषाय योग—ये मुख्य चार आस्त्रव होते हैं । जो आस्त्रव होते हैं वे ही बंधके कारण माने गये हैं । उनमेंसे योगसे सातावेदनीय प्रकृति बधती है । मिथ्यात्वसे सोलह प्रकृति, अविरतिसे पैंतीस प्रकृति, और शेप सर्व प्रकृति कषायसे बधती हैं । असयम अविरतिको ही कहते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानके अतमें जिनका बधविच्छेद होना बताया है वे मिथ्यात्व, हुडक संस्थान, नपुंसक वेद इत्यादि सोलह प्रकृति मिथ्यात्वसे बधनेवाली हैं । अविरतिसे बधनेवाले कर्म पैंतीस बताये हैं । वे कौनसे पैंतीस हैं इस बातको बताते हैं ।— मिथ्यात्व गुणस्थानके ऊपर दूसरा सासादन गुणस्थान है । इस गुणस्थानमे मिथ्यात्व नहीं रहता है किंतु अविरति आदि तीन कारण रहते हैं । उन तीनमेंसे अविरति कारण चौथे गुणस्थान पर्यंत मुख्य है इसलिये चौथे पर्यंत जो कर्म बांधे जाते हैं वे अविरतिकी मुख्यतासे बांधे जाते हैं । दूसरे गुणस्थानमें पूर्ण अविरति है । उस अविरतिके द्वारा पच्चीस प्रकृतियोंका बंध होता है । वे प्रकृति पूर्वमें इस प्रकार गिनाई हैं ।— अनतानुबधी चार कषाय, स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला—ये तीन निद्राप्रकृति, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमंडल आदि बीचके चार संस्थान, वज्रनराचभनाराच आदि बीचके चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यगतिद्विय, उद्योत, तिर्यंच आयु- ये पच्चीस प्रकृति हैं ।

चौथे गुणस्थानके अंतमें दश प्रकृतियोंकी बधव्युच्छित्ति होती है । वे दश प्रकृति इस प्रकार हैं ।—अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय, वज्रर्षभनाराच सहनन, औदारिकद्विय, मनुष्यगतिद्विय, मनुष्यायु । चौथे गुणस्थानसे आगे जो बंध होता है उसमें अविरतिकी मुख्यता न रहकर कषायकी मुख्यता रह जाती है । इसलिये आगेकी सर्व प्रकृति कषायसे बधको प्राप्त होनेवाली बताई हैं । ३२२ ।

वृत्त आहारकद्वद्वे सम्यक्त्व तीर्थकारिणि । प्रधानप्रत्ययास्तासामिति बन्धो न तैर्विना ॥ २२३ ॥

इति प्रधानप्रत्ययनिर्देशः ।

अपरेप्येवमाहुः —

" मिथ्यात्वस्योदये यांति षोडश प्रथमे गुणे । संयोजनोदये बंधं शामने पचविंशतिः ॥
कषायाणा द्वितीयानामुदये निर्वृते दश । स्वीक्रियन्ते तृतीयानां चतस्रो देशसयते ॥

आहारक द्वयका बंधकारण वृत अथवा सयम माना गया है । सम्यक्त्व तीर्थंकर प्रकृतिके बधका कारण है । इस प्रकार इन तीन प्रकृतियोंके बधमें वृत अथवा सम्यक्त्वको जो कारण बताया है वह भी प्रधानताकी अपेक्षासे है । इसलिये इसका तात्पर्य ऐसा समझना चाहिये कि बधका कारण तो यहा सर्वत्र कषाय ही है परन्तु इन तीनमेंसे जो आहारक द्वय है उनका बंध वृत अर्थात् महाव्रतके विना नहीं होता । एव, तीर्थंकर प्रकृतिका बंध सम्यक्त्वके रहने पर ही होता है, विना सम्यक्त्वके नहीं होता। ऊपर जो अविरति, मिथ्यात्व तथा कषायके द्वारा प्रकृतियोंका बध होना जुदा जुदा बताया है वहांपर भी मिथ्यात्वादि एक एक की प्रधानताका ही तात्पर्य है । इस प्रकार यहा बधके प्रधान कारणोंको दिखाया है । २२३ ।

मिथ्यात्वकी प्रकृति १६, अविरतिकी ३५, योगकी १, संयमकी २, सम्यक्त्वकी १, और शेष रही कषायकी ६५ प्रकृति—इस प्रकार सर्व १२० बधप्रकृति हैं ।

औरोंने भी इसका खुलासा इस प्रकार दिया है ।—

" प्रथम गुणस्थानमें मिथ्यात्वके उदयसे सोलह प्रकृति बंधको प्राप्त होती हैं । सयोजन अर्थात् अनतानुबधीके उदयमें बंधको प्राप्त होनेवाली सासादन दूसरे गुणस्थानकी पचीस प्रकृति हैं ।

द्वितीय कषायोंके उदयसे, असंयत सम्यक्त्व—चौथे गुणस्थानमें दश प्रकृति बंधको प्राप्त होती हैं । देशसंयत–पाचवें गुणस्थानमें तीसरे—प्रत्याख्यानावरण कषायोंके उदयसे चार प्रकृतियोंका बध होता है ।

॥२१०

सयोगे योगतः सातं शेषाः स्वे स्वे गुणे पुनः ।
विमुच्याहारकद्वंद्वतीर्थकृत्वे कषायतः । षष्ठिः पंचाधिका बंधं प्रकृतीनां प्रपद्यते ॥
आहारकद्वयस्योक्तं संयमस्तीर्थकारिणः । सम्यक्त्वं कारणं पूर्वैं बंधने बंधवेदिभिः ॥ ”

मिथ्यात्वं षोडशानामिह प्रधानं कारणमन्येषामप्रधानं इत्यादि ज्ञेयं ॥
प्रधाना हेतवः प्रोक्ता ये येषामिह कर्मणाम् । तेभ्योन्यत्राप्रधानास्ते निश्चीयन्ते मनीषिभिः ॥ ३२४ ॥

सयोग—तेरहवें गुणस्थानमें योगद्वारा एक सातावेदनीयका बंध होता है । शेष प्रकृतियोंका बंध अपने अपने गुणस्थानोंमें यथासंभव समझना ।

आहारक द्वय और तीर्थकर प्रकृति—इन तीन प्रकृतियोंको छोडकर शेष बची ६५ प्रकृति—इन पैंसठिका बंध कषायसे होता है ।

आहारक द्वयके बंधका मुख्य कारण संयमरूप परिणाम है । और तीर्थकर प्रकृतिके बंधका कारण मुख्य सम्यक्त्वरूप परिणाम है । ऐसा बंधके ज्ञाताओंने बताया है । ”

ऊपर सभी प्रकृतियोंके कारण बताये हैं उसका अर्थ प्रधान कारण ऐसा करना । जैसे मिथ्यात्वको जहां कारण सोलह प्रकृतियोंका बताया है वह उन प्रकृतियोंका प्रधान कारण है । पहिले गुणस्थानमें सोलहके शिवाय और भी बहुतसी प्रकृति बंधको प्राप्त होती हैं । परन्तु उन शिवाय प्रकृतियोंका मिथ्यात्व अप्रधान कारण है । ऐसा ही सर्वत्र जानना ।

जो जिन प्रकृतियोंके बंधके कारण यहांपर जुदे जुदे बताये हैं वे उन उन प्रकृतियोंके बंधमें प्रधान कारण हैं ऐसा समझना । उन प्रकृतियोंके शिवाय अन्य प्रकृतियोंके बंधमें भी वे कारण होते हैं परंतु उन अन्य प्रकृतियोंके बंधमें वे अप्रधान कारण हैं ऐसा विद्वानोंने निश्चय किया है । ३२४ ।

शरीरपंचकं वर्णपंचक रसपचकं । षट्के संस्थानसंहत्योरष्टकं स्पर्शगोचर ॥ ३२५ ॥
अंगोपांगत्रयं गधद्वय प्रत्येकयुग्मक । निर्माणागुरुलघ्वाद्वे स्थिरद्वद्व शुभद्वयम् ॥ ३२६ ॥
परघातोपघाताद्वे देहबधनपचक । आतपोद्योतसघातपचकानीति भाषिताः ॥ ३२७ ॥
द्वाभ्या पुद्गलपाकिन्यः षष्टिः प्रकृतयो युता । एतदीयेन पाकेन शरीराद्युपलभ्यत ॥ ३२८ ॥
ज्ञानदृग्रोधविघ्नस्था वेद्यमोहनगोत्रजा । गतयो जातयस्तीर्थकृदुच्छ्वासो नभोगती ॥ ३२९ ॥

किन किन प्रकृतियोंके फल कहा कहापर होते हैं ? इस प्रश्नके उत्तरमें यावत् प्रकृतियोंके चार भाग करके एक भागको पुद्गलविपाकी, दूसरे भागको जीवविपाकी, तीसरे भागको क्षेत्रविपाकी और चौथे भागको भवविपाकी मानना—ऐसा आगे वर्णन करते हैं।—

शरीरकर्म पाच, वर्णकर्म पाच, रसकर्म पाच, छह सस्थान, छह सहनन, स्पर्शकर्म आठ, अंगोपांग कर्म तीन, गंधकर्म दो, प्रत्येक साधारण—यह एक युगल, निर्माण, अगुरुलघु, स्थिर अस्थिर—यह एक युगल, शुभ अशुभ—यह एक युगल, परघात, उपघात, शरीरके बधन कर्म पाच, आतप, उद्योत, शरीरके सघात नाम कर्म पाच—ये बासठि प्रकृति पुद्गलविपाकी हैं। शरीर इद्रियादिरूप पुद्गलोंकी रचना इन्हीके उदयका फल है। शरीरको और शरीरसबधी सर्व जड रचनाको यहांपर पुद्गल कहा है। शरीर, अंगोपागादि जितने ऊपर कर्म बताये हैं वे शरीरसबधी ही सर्व रचनाको करनेवाले हैं इसलिये इतने कर्मोंको पुद्गलविपाकी कहा है। पुद्गल अर्थात् शरीरपर जिनका विपाक हो उन्हे शरीरविपाकी कहना सयुक्तिक भी है। ३२५–३२८।

ज्ञानावरणकी सर्व प्रकृति पाच, दर्शनावरणकी सर्व प्रकृति नौ, अतरायकी सर्व प्रकृति पांच, मोहकी सर्व प्रकृति अट्ठाईस दोनो वेदनीय, दोनो गोत्र, नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे सत्ताईस—चार गति, पांच जाति, तीर्थंकरत्व, उच्छ्वास, दोनो विहायोगति, त्रस

॥३१२॥

त्रससुस्वरपर्याप्तस्थूलादेययश शुभा । सेतरा जीवपाकाः स्युरष्टाग्राः सप्तति पुनः ॥ ३३० ॥
ज्ञानरोधादयः सर्वा यतो जीव विकुर्वते । जीवपाकास्ततो ज्ञेयास्तत्र तत्पाकदर्शित ॥ ३३१ ॥
अत्रात्मनि निबद्धा सप्तविंशतिनामप्रकृतय तासां तत्र विपाकोपलब्धे ।
आनुपूर्व्यश्चतस्रोऽपि क्षेत्रपाका निवेदिताः । जिनैरायूंषि चत्वारि भवपाकानि सर्वदा ॥ ३३२ ॥

इत्युनुभागबंध. समाप्त ॥

स्थावर दो, सुस्वर दुःस्वर दो, पर्याप्त अपर्याप्त दो, बादर सूक्ष्म दो, आदेय अनादेय दो, यश कीर्ति अयश कीर्ति दो, शुभ अशुभ दो—इस प्रकार त्रसादि सात और उनके उल्टे स्थावरादि सात—ये चौदह प्रकृति—ये सर्व मिलकर ७८ प्रकृति होती हैं—ये सर्व जीवविपाकी हैं। जीवविपाकी प्रकृतियोंमें आयुकर्म नहीं है। और नामकर्मकी २७ प्रकृति हैं। शेष रहे छह कर्मोंकी सर्व उत्तर प्रकृति ५१ होती हैं, वे सभी जीवविपाकी हैं। ३२९–३३०।

ज्ञानावरणादि जो ७८ प्रकृति ऊपर जीवविपाकी बताई हैं वे जीवको विकृत करती हैं इसलिये जीवमें इनका विकार दीखनेसे इन्हें जीवविपाकी माना गया है। ३३१।

चार आनुपूर्वी प्रकृति क्षेत्रविपाकी है। आयु प्रकृति चारों सदा भवविपाकी हैं। ऐसा जिन भगवानने प्ररूपण किया है। विग्रहगतिके क्षेत्रमें आत्माकी आकृति पूर्वशरीराकार आनुपूर्वी कर्मके उदयसे रहती है। आत्माकी आकृतिका नाम यहांपर क्षेत्र है। इस क्षेत्रकी स्थिरताका कार्य अथवा उस क्षेत्रको ज्योंका त्यों सम्हाले रखनेका कार्य आनुपूर्वी प्रकृति करती हैं इसलिये आनुपूर्वियोंको क्षेत्रविपाकी कहते हैं। शरीर धारण करनेका कार्य आयु करता है। शरीर धारणका ही नाम भव है। इसलिये आयुकर्म भवविपाकी बताया है वह भी ठीक ही है। ३३२।

बासठि (६२) पुद्गलविपाकी, अठत्तरि (७८) जीवविपाकी, चार (४) भवविपाकी, चार (४) क्षेत्रविपाकी -इस प्रकार १४८ प्रकृतियोंका चार भागोंमें बटवारा हो जाता है। इस प्रकार सज्ञाएं समझना।

इति अनुभागबंध प्रकरण समाप्त।

स्वामित्वभागभागाभ्यामष्टोत्कृष्टादयः सह । दश प्रदेशबन्धस्य प्रकारा कथिता जिनै ॥ ३३३ ॥
पुद्गला ये प्रगृह्यन्ते जीवेन परिणामत । रसादित्वमिवाहारा कर्मत्व याति तेऽखिला ॥ ३३४ ॥
एकक्षेत्रावगाढास्ते योग्याः सर्वप्रदेशगाः । गृह्यन्ते हेतुतो जीवैः सादयोऽनादय सदा ॥ ३३५ ॥

अब प्रदेशबन्धको कहते हैं ।—

स्वामित्व, भाग प्रतिभाग रचना, और उत्कृष्टादि आठ प्रकार—ये दश प्रकार प्रदेशबन्धमें जिनेंद्रने बताये हैं । उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अजघन्य जघन्य—ये चार तथा सादि अनादि ध्रुव अध्रुव—ये चार इस प्रकार आठ बातें पूर्वमें स्थितिके प्रकरणमें तथा अनुभागके प्रकरणमें भी दिखाई हैं । इन आठके साथ स्वामित्व और भाग प्रतिभागकी रचना—ये दो विषय जोडदेनेसे दश भेद हो जाते है । अर्थात् प्रदेशबंधको दश प्रकारसे समझना चाहिये । ३३३ ।

बांधे हुए पुद्गलपिंड अनेक प्रकार कर्मके परिणमनको कैसे प्राप्त होते हैं । इस प्रश्नके उत्तरमें आगे एक दृष्टांत दिखाकर बन्धकी विचित्रताको सुदृढ करते हैं और स्वामित्वका वर्णन भी इसीके साथ करते हैं ।—

जीव जो आहारको ग्रहण करता है उसकी रस रुधिर मज्जा वीर्य अस्थि आदि अनेक प्रकारकी परिणति हो जाती है । इसी प्रकार राग द्वेषादि अथवा योग कषायादि परिणामोंके द्वारा जीव जो पुद्गलोंको ग्रहण करता है उन सर्व पुद्गलोंकी विविध कर्मरूप परिणति हो जाती है । ३३४ ।

जो पुद्गल ग्रहण किये जाकर कर्मरूप परिणामको प्राप्त होते हैं वे जीवके सर्व प्रदेशोंमें पहुचते है और एक क्षेत्रावगाढ होकर ठहरते हैं । वे पुद्गल, ऐसा नहीं है कि चाहे जिस जातिके आकार बंधको प्राप्त हो जाते हों, किंतु कर्मरूप पर्यायको परिणत होनेके योग्य हों वे ही बंधको प्राप्त होते हैं । वे पुद्गल अपने आप—जीवका प्रयत्न न रहते हुए भी बंधको प्राप्त होजाते हैं —ऐसा भी नहीं है. किंतु कषायादि अथवा योगादि कारण मिलनेपर ही वे पुद्गल बंधको प्राप्त होते हैं । बंधके कारणोंको कौन कर सकता है ? तो जीव ही कर सकता है । भावार्थ, जीवके शिवाय पुद्गलमात्रमें बंधकी विचित्रता प्राप्त होकर चैतन्यादि

विकारोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। बंधके योग्य प्रकृति एकसौ अडतालीस हैं। उनमेंसे कुछ अनादि बंधरूप हैं—उनका बंध होना अनादिसे चला आरहा है। और कुछ प्रकृति ऐसी भी हैं जो बीचमेंसे बंधको प्राप्त होने लगती हैं—उन्हे सादिबंधरूप कहते हैं। रागद्वेषादि कारण मिलनेपर ही बंध होता है तो जब वे हेतु मिलेंगे तभी बंध होगा, नहीं तो नहीं—ऐसी किसीकी समझ होगी। उसे दूर करनेकेलिये कहते हैं कि, बंध सदा ही होता है। एक क्षण मात्र भी कभी बंध थमता नहीं है।

इस श्लोकमें बंधकेलिये जितने विशेषण अथवा क्रियाविशेषणादि दिये गये हैं वे सर्व सार्थक हैं। उन सर्व पदोंका विचार करनेपर बंधकी अवस्थाका ठीक ज्ञान हो सकता है। अनादि बंध होना बताया है। इसपरसे यह शंका हो सकती है कि जब अनादिसे बंध हो रहा है तो उसका छूटना युक्तिविरुद्ध है। क्योंकि, जो अनादिकी वस्तु होती है वह सदा कायम रहती है। अर्थात् बन्धनबद्ध संसारी कभी मुक्त भी नहीं हो सकता है और वारवार नवीन बंध होनेकी बात भी असमंजस है। इत्यादि विपर्यासको दूर करनेकेलिये बंधको स्यात् अनादि मानना चाहिये। बीजवृक्षकी संततिके समान अनादि कालसे सदा बंधका संतान हो रहा है। अर्थात् पूर्व बंधका विपाक होनेपर जो रागद्वेषादि भाव उत्पन्न होते हैं वे नवीन बंधको करते हैं और वह बंध अपने आयुष्यके अंतमें उदित होते हुए फिर रागद्वेषको उत्पन्न करदेता है, उससे फिर भी नवीन बंध हो जाता है। इस संतानका कोई आदि समय नहीं है केवल इसलिये बंधको अनादि माना गया है।

बंधका विशेषण जैसे अनादि दिया है वैसे सादि भी एक विशेषण दिया है। परंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि स्यात् बंध अनादि है और स्यात् सादि है। उसका अर्थ ऐसा है कि कुछ प्रकृति अनादि कालसे सदा ही बंधको प्राप्त होती रहती हैं और कुछ प्रकृति सदा बंधको प्राप्त होनेवाली नहीं हैं किंतु वे किसी विशेष अवस्थामें ही बंधको प्राप्त होती हैं। वह अवस्था न रहनेपर वे सादि कहानेवाली प्रकृति नहीं भी बंधती हैं। सादि अनादि प्रकृतियोंका विभाग इसी चौथे परिच्छेदमें गौने श्लोकके आगे स्पष्ट किया है वहांपरसे देखना। २३५।

गंधवर्णरसै सर्वै स्पर्शैश्चतुर्भिरन्वितै । विमुक्तानतभागोस्ति कर्मानतप्रदेशकं ॥ ३३६ ॥
एकैकत्र क्षणे येऽत्र बंधमायान्ति पुद्गला । अष्टधा बध्नत कर्म तेषां भागप्रकल्पना ॥ ३३७ ॥
शीतोष्णस्निग्धरूक्षत्वकलिता परमाणव । योग्यत्व प्रतिपद्यन्ते कर्मबंधस्य नापरे ॥ ३३८ ॥
एकेन परिणामेन गृहीता परमाणव । अष्टकर्मत्वमायांति शुद्धिसंक्लेशवृद्धित ॥ ३३९ ॥

और भी प्रदेशबधका विशेष खुलासा करते हैं ।—जो प्रदेश बधको प्राप्त होते है उनमें दोनो प्रकारका गध रहता है, वर्ण और रस भी सर्व प्रकारके रहत हैं, किंतु स्पर्शके आठ भेदोंमेंसे चार ही स्पर्श कर्मबन्धमें मिल सकते हैं। शेष चार स्पर्श कर्मके पिंडोंमें नहीं रहते है। जिनमें शेप चार प्रकारके स्पर्श मिलते है वे स्कन्ध कर्मबधके योग्य नहीं माने गये हैं। ऐसे कर्म-पिंड प्रतिसमय अनंतरूप बधको प्राप्त होते हैं परंतु वे सिद्ध जीवराशिके अनतवें भाग ही मात्र रहते हैं। ३३६ ।

प्रत्येक समयमें आत्मप्रदेशोंमें एक एक समयके जितने प्रदेश सचित अथवा बद्ध होते हैं वे उसी समयमें जुदे जुदे कर्मरूप कितने कितने और कैसे बट जाते है इस बातको आगे बताते है ।—कर्मके मूल भेद आठ हैं इसलिये जीव जो प्रतिसमय कर्मको बांधता है उसके प्रदेशोंके आठ भाग तो मूलमें हो जाते है । और अर्थात् मूलमें प्रत्येक कर्मके बांटमें जितने प्रदेश आते हैं उतनोंका अपने अपने उत्तर भेदोंमें भी उसी समय बटवारा हो जाता है । कितना हीनाधिक भाग किस कर्ममें पहुचता है इस बातको आगे खुलासा करेंगे । ३३७ ।

ऊपर जो बताया है कि कार्मण पुद्गलोंमें चार ही स्पर्श होते हैं उसका खुलासा यहापर करते हैं ।—शीत स्पर्श, उष्ण स्पर्श, स्निग्ध स्पर्श, रूक्ष स्पर्श-इन चार स्पर्शवाले प्रदेश ही कर्मके बधनके योग्य होते हैं, दूसरे प्रदेश कर्मबधके योग्य नहीं होते । इन चारोंमेंसे भी एक एक प्रदेशमें दो दो ही स्पर्श रह सकते हैं । परमाणुको द्विस्पर्शवान् इसी कारण माना है । ३३८ ।

रागद्वेषादि किसी एक परिणामद्वारा ग्रहण किये हुए कर्मपरमाणु परिणामोंकी शुद्धिकी वृद्धिसे अथवा सक्लेशकी वृद्धिसे आठ कर्मरूपको प्राप्त हो जाते हैं । विशुद्धि है वह भी कषायकी एक अवस्था है, परतु वह कषायकी मंदतासे वीतरागताकी वृद्धिरूप होती है । और सक्लेश है वह भी कषायकी एक अवस्था है । यह अवस्था कषायकी उत्कट प्रवृत्तिसे वीतरागताके विरुद्ध

वृद्धिर्यथायथाक्षाणा विवर्द्धेते तथातथा । जतोर्विशुद्धिसक्लेशौ हीयेतेपरथा पुन ॥ ३४० ॥
स्वल्पस्तत्रायुपस्तुल्यो गोत्रनाम्नोस्ततोऽधिक । विघ्नदृग्ज्ञानरोधेपु समो भागस्ततोऽधिक ॥ ३४१ ॥
समस्तोपरिमो भागो मोहनीये निवेदित । वेदनीयेऽधिकस्तस्मादितीत्थ भागकल्पना ॥ ३४२ ॥

स्वभावको रखती है । सक्लेशकी जैसी वृद्धि होती है वैसी शुद्धि घट जाती है । और शुद्धि बढती है तो सक्लेश घटता है। परतु दोनो ही अवस्थाए कपायके रहते होती हैं इसलिये ये दोनो ही पर्याय बधके कारण है । विशुद्धिसे पुण्य प्रकृतियोंमें अनुभाग अधिक पडता है और पाप प्रकृतियोंमें कम पडता है । सक्लेशसे पापप्रकृतियोंमें अनुभाग अधिक पडता है और पुण्यप्रकृतियोंमें कम पडता है । परतु प्रदेशोंका आठ अथवा सात कर्मोंमें जो बटवारा होता है उसका कारण संक्लेश और विशुद्धि है । यदि ये कपायके पर्याय न रहे हों तो आगे बटवारा न होकर एक साताकर्मरूप सर्व प्रदेशबंध होने लगता है। ३३९ ।

इंद्रियोंकी जैसी जैसी वृद्धि होती है वैसे वैसे विशुद्धि तथा सक्लेश भी बढते हैं । नहीं तो–यदि इद्रियोंकी वृद्धि न हो तो–विशुद्धि तथा सक्लेश घटते है । ३४० ।

यह स्वामित्वका विवेचन हुआ ।

जितना कुछ एक समयमें प्रदेशबध होता है उसके आठ कर्मोंमें बटवारे कैसे होते हैं वह आगे बताते हैं।—

एक समयमें प्रदेशबध जो होता है उसके अनेक छोटे बडे प्रमाण रहते हैं । अर्थात् प्रत्येक समयकी प्रदेशसख्या सदा एकसी नहीं रहती है । योगोंकी हीनाधिकतासे प्रदेशसंख्या कभी कुछ कम सगृहीत होती है और कभी कुछ अधिक भी होती है। परतु सामान्य दृष्टिसे वह अनतानत प्रमाण बताई है । उसके आठ भाग करने चाहिये । वे सर्व भाग भी एकसे नहीं रहते, हीनाधिक होते हैं, वही आगे बताते हैं ।–

आयुकर्ममें सबसे थोडा भाग रहता है। उससे कुछ अधिक परतु परस्परमें समान ऐसे दो भाग नामकर्मके तथा गोत्र कर्मके होते हैं । इससे कुछ अधिक प्रमाणवाले परस्परमें समान ऐसे तीन भाग होते हैं वे अंतरायके, दर्शनावरणके तथा ज्ञानावरण के लिये पहुचते हैं । इससे और भी अधिक प्रमाणका एक भाग मोहकर्मके लिये विभक्त होता है । और वेदनीयके लिये जो भाग होता है वह सबसे अधिक बडा होता है । इस प्रकार आठ भागोंकी कल्पना है । ३४१–३४२ ।

सुखदु खे यतोऽनल्पे दत्तो भागस्ततोऽधिक । वेदनीये परेषां तु भूयंवस्थाव्यपेक्षया ॥ ३४३ ॥
आवल्यसंख्यभागेन खडिते कर्मसचये । आधिक्यमेकखंडेन कर्तव्य सर्वकर्मसु ॥ ३४४ ॥

सुख तथा दु ख अपरिमित रहते है इसलिये सुख दु खके कारणभूत वेदनीय कर्ममें सबसे अधिक भाग पहुंचना माना गया है । शेष कर्मोका ऐसा नियम है कि उनमेंसे जिन प्रकृतियोंकी स्थिति अधिक होती है उनको अधिक भाग पहुंचते है । ३४३ ।

आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाणसे एक समयबद्ध परमाणुओंमें भाग देकर एक भागको जुदा रखले और शेष बहु भागोंके समान आठ भाग होकर आठ कर्मोंके लिये नियत हो जाते हैं । फिर जुदा रक्खा हुआ एक भाग है उसको आवल्यसख्यातवें भागसे भाजित कर एक भागको उसमेंसे भी जुदा रखले, शेष सर्व भागोंको वेदनीयके प्रथम वडे भागमें जोड देना चाहिये । इसके बाद फिर भी जुदे रक्खे हुए एक भागको आवल्यसख्य भागसे भाजित कर एक भागको जुदा रखकर बहुभागको मोहनीयके मुख्य भागमें जोड देना चाहिये । फिर भी जुदे रक्खे हुए एक भागको आवल्यसख्य भागका भाग देकर एक भागको जुदा रखकर बहुभागके समान तीन भाग करके अतराय, दर्शनावरण तथा ज्ञानावरणके तीन मुख्य भागोंमें उस एक एक भागको मिलादे । और जुदे रक्खे हुए एक भागका आधा आधा द्रव्य नाम तथा गोत्रके मुख्य भागोंमें मिला दे । इस प्रकार एक जुदे रक्खे हुए आवल्यसख्यातवें भागसे जो उत्तरोत्तर कर्मोंमें अधिकाधिकता है उसे सिद्ध करे ॥ ३४४ ॥

इस विषयको स्पष्ट करनेकेलिये नीचे गोमट सारको सार्थ उद्धृत करदेते हैं।—

" आगे वेदनीयकर्मका अधिक भाग होनेमें गोमटसारके कर्ता कारण बतलाते हैं,—

सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स । सव्वेहिंतो बहुगं दव्व होदित्ति णिदिट्ठ ॥१९३॥ गो० कर्म० ।
सुखदु खनिमित्तात बहुनिर्जरक इति वेदनीयस्य । सर्वेभ्य बहुकं द्रव्यं भवतीति निर्दिष्टम् ॥ १९३ ॥

अर्थ—वेदनीयकर्म सुखदु खका कारण है इसीलिये इसकी निर्जरा बहुत होती है । इसवास्ते सब कर्मोंसे बहुत द्रव्य इस वेदनीयका जिनेन्द्र भगवानने कहा है ॥ १९३ ॥

आगे अन्य कर्मोंका द्रव्यविभाग स्थितिके अनुसार दिखाते हैं,—

सेसाण पयडीण ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु । आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ॥ १९४ ॥

शेषाणां प्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन भवति द्रव्य तु । आवल्यसंख्यभाग प्रतिभागो भवति नियमेन ॥ १९४ ॥

अर्थ–वेदनीयके सिवाय बाकी सब मूलप्रकृतियोंके द्रव्यका स्थितिके अनुसार बटवारा होता है । जिसकी स्थिति अधिक है उसका अधिक द्रव्य हिस्सामें होता है । कमको कम तथा समानस्थितिवालेको समान जानना । इनके बाट करनेमें प्रतिभागहार आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण नियमसे समझना ॥ १९४ ॥

अब उत्तर प्रकृतियोंमें बटवारा (हिस्सा) होनेका क्रम दिखाते हैं,–

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि । उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥ १९५ ॥

बहुभागे समभाग अष्टानां भवति एकभागे । उक्तक्रम तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥ १९५ ॥

अर्थ—इन आठ प्रकृतियोंको प्रतिभाग करके बहुभाग तो समान भाग करके देना, और बचेहुए एक भागमें पहले कहेहुए क्रमसे आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देते जाना । जो बहुत द्रव्य हो उसको बहुभाग देना ऐसा अंत तक प्रतिभाग (भागमेंसे भाग) करते जाना ॥ १९५ ॥

अब विभाग (हिस्सा) होनेका क्रम दिखाते हैं,—

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा । अहियकमा पुण णामा विग्घा य ण भंजणं सेसे ॥ १९६ ॥

उत्तरप्रकृतिषु पुन. मोहावरणा भवन्ति हीनक्रमा· । अधिकक्रमा पुन नाम विघ्नाश्च न भञ्जनं शेषे ॥ १९६ ॥

अर्थ—उत्तर प्रकृतियोंमें तो मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरणके भेदोंमें क्रमसे हीन २ द्रव्य है, और नामकर्म–अंतराय कर्मके भेदोंमें क्रमसे अधिक २ है, तथा बाकी बचे वेदनीय–गोत्र--आयुकर्म इन तीनोंके भेदोंमें बटवारा नहीं होता क्योंकि इनकी एक एकही प्रकृति एक कालमें बंधती है । जैसे वेदनीयमें साताका बंध होवै या असाताका बंध होवै परंतु दोनोंका एक साथ बंध नहीं होता । इसकारण मूलप्रकृतिके द्रव्यके प्रमाण इन तीनोंमें द्रव्य जानना ॥ १९६ ॥

॥३२१॥

आगे घातिया कर्मोंमें सर्वघाति तथा देशघाती बटवारा कहते हैं,—

सव्वावरण दव्व अणंतभागो दु मूलपयडीणं । सेसा अणतभागा देसावरण हवे दव्वं ॥ १९७ ॥

सर्वावरण द्रव्यमनन्तभागस्तु मूलप्रकृतीनाम् । शेषा अनन्तभागा देशावरणं भवेत् द्रव्यम् ॥ १९७ ॥

अर्थ—ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय इन तीन मूल प्रकृतियोंके अपने २ द्रव्यमें यथायोग्य अनंतका भाग देनेसे एक भाग सर्वघातीका द्रव्य होता है । और बाकी अनत बहुभागप्रमाण द्रव्य देशघाती प्रकृतियोंका कहा है ॥ १९७ ॥

अब सर्वघाती द्रव्यके प्रमाण निकालनेकेलिये प्रतिभागका प्रमाण कहते हैं,—

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणतसखमेत्त खु । सव्वावरणधणट्ठ पडिभागो होदि घादीण ॥ १९८ ॥

देशावरणान्योन्याभ्यस्त तु अनन्तसख्यामात्र खलु । सर्वावरणधनार्थं प्रतिभागो भवति घातिनाम् ॥ १९८ ॥

अर्थ—चार ज्ञानावरणादि देशघाती प्रकृतियोंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिभी अनतसख्या प्रमाण है । वह राशि सर्वघाती प्रकृतियोंके द्रव्य प्रमाण लानेकेलिए घातिया कर्मोंका प्रतिभाग जानना ॥ १९८ ॥

आगे सर्वघाती, देशघाति द्रव्यका विशेष विभाग (हिस्सा) दिखाते है,—

सव्वावरण दव्व विभजणिज्ज तु उभयपयडीसु । देसावरण दव्व देसावरणेसु णेविदरे ॥ १९९ ॥

सर्वावरण द्रव्य विभजनीय तु उभयप्रकृतिषु । देशावरण द्रव्य देशावरणेषु नैवेतरस्मिन् ॥ १९९ ॥

अर्थ—सर्वघाती द्रव्यका सर्वघाती देशघाती दोनों प्रकृतियोंमें विभाग करदेना । देशघाती द्रव्यका विभाग देशघातीमें देना । केवलज्ञानावरणादि सर्वघातिया प्रकृतियोंमें नहीं देना ॥ १९९ ॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें विभाग दिखाते हैं;—

बहुभागे समभागो बधाण होदि एक्कभागह्मि । उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥ २०० ॥

बहुभागे समभागो बन्धानां भवति एकभागे । उक्तक्रम तत्रापि बहुभाग बहुकस्य देयस्तु ॥ २०० ॥

अर्थ—जिनका एक समयही बंध हो उन प्रकृतियोंमें अपने २ पिंड द्रव्यको आवलीका असंख्यातवें भागका भाग देनेसे बहुमागका तो बराबर बांटकर अपनी उत्तर प्रकृतियोंमें समान द्रव्य देना। और शेष एक भागमें पूर्व कहे क्रमसे भाग करके बहुमाग बहुत द्रव्यवालेको देना ॥ २०० ॥

यही बात दिखाते हैं,—

घादितियाण सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्व तु। उत्तकमेण य देय विवरीय णामविग्घाण ॥ २०१ ॥

घातित्रयाणा स्वकस्वकसर्वावरणीयसर्वद्रव्यं तु। उक्तक्रमेण च देय विपरीत नामविघ्नानाम् ॥ २०१ ॥

अर्थ—ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय इन घातिया कर्मोंका अपना २ सर्वघाती द्रव्य प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता देना। और नाम तथा अंतराय इनकी प्रकृतियोंका द्रव्य विपरीत अर्थात् वढता वढता अतसे लेकर आदि प्रकृति पर्यन्त देना ॥ २०१ ॥

आगे मोहनीय कर्ममें विशेषता दिखाते हैं;—

मोहे मिच्छत्तादीसत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीण। संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ॥ २०२ ॥

मोहे मिथ्यात्वादिसप्तदशाना तु दीयते हीनम्। सज्वलनाना भाग इव भवति पञ्चनोकपायाणाम् ॥ २०२ ॥

अर्थ—मोहनीय कर्ममें मिथ्यात्वादिक सत्रह प्रकृतियोंको क्रमसे हीन (कम) २ द्रव्य देना, और पांच नोकषायका भाग सज्वलन कषायके भागके समान जानना ॥ २०२ ॥

यहा पाच नोकषायका युगपत [एक कालमें] बंध होता है इस कारण नोकपाय पाचही लिये गये हैं।

अब इनके विभाग होनेके क्रमको दिखाते हैं।

संजलणभागबहुभागद्ध अकसायसगय दव्व। इगिभागसहियबहुभागद्ध सजलणपडिबद्धं ॥ २०३ ॥

सज्वलनभागबहुभागार्द्धमकषायसगत द्रव्यम्। एकभागसहितबहुभागार्द्ध सज्वलनप्रतिबद्धम् ॥ २०३ ॥

अर्थ—सज्वलन कपायका हिस्सा जो बहुभाग उसका आधा [illegible]यका द्रव्य जानना। और एक भाग सहित आधा बहुभाग सज्वलन कपायका देशघाती सम्बन्धी द्रव्य है ॥ २०३ ॥

अनुत्कृष्टो यतः षण्णां चतुर्भेदस्त्रयः परे । बधाः साद्यध्रुवाः सर्वे मोहनीयायुषोर्द्विधा ॥ ३४५ ॥
दर्शनावरणे षट्कं स्त्यानगृद्धित्रिकं विना । दश ज्ञानान्तरायस्थाः कषाया द्वादशान्तिमाः ॥ ३४६ ॥
जुगुप्सा भयमित्यासां प्रकृतीनां चतुर्विधः । अनुत्कृष्टस्त्रयः शेषा बन्धाः साद्यध्रुवा द्विधा ॥ ३४७ ॥

आगे नोकषायरूप प्रकृतियोंमें विशेषता दिखाते हैं;-

तण्णोकसायभागो सबधपणणोकसायपयडीसु । हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं ॥ २०४ ॥
तन्नोकषायभाग सबन्धपञ्चनोकषायप्रकृतिषु । हीनक्रमो भवति तथा देशे देशावरणद्रव्यम् ॥ २०४ ॥

अर्थ —वह नोकषायके हिस्सामें आया हुआ द्रव्य एकसाथ बधनेवाली पांच नोकषाय प्रकृतियोंमें क्रमसे हीन २ देना । और देशघाति संज्वलनकषायका देशघातिसम्बन्धी द्रव्य है वह युगपत् जितनी प्रकृति बँधें उनको हीनक्रमसे देना ॥२०४॥"

इस प्रकार ऊपर भाग प्रतिभागोंका वर्णन हुआ ।

अब जघन्यादि भेद प्रकृतियोंमें कैसे संभव होते हैं सो बताते हैं ।- छह प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबध सादि आदि चार चार प्रकारका होता है । और उन्ही छह कर्मोंके शेष जो जघन्यादि तीन भेद हैं वे सादि तथा अध्रुव ऐसे दो दो प्रकारके हैं । मोहनीय तथा आयु कर्मके प्रदेशबधमें जघन्यादि चारो ही भेद सादि अध्रुव-ऐसे दो दो प्रकारके होते हैं । मोहनीय तथा आयुके जुदे भेद बतानेसे ऊपर जो छह कर्मोंके प्रकार बताये हैं वे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र, अतराय- ये छह समझने चाहिये । ३४५ ।

अब उत्तर प्रकृतियोंमें जघन्यादि तथा सादि आदि भेदोंको दिखाते हैं ।—दर्शनावरणके-स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंको छोडकर शेष—छह उत्तर भेद लेने चाहिये, और ज्ञानावरण दर्शनावरणके दश उत्तर भेद, अनतानुबधीको छोडकर कषायोंके अतिम बारह भेद, तथा जुगुप्सा, भय—इन तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट बध सादि आदि चार चार प्रकारका है । और इन्ही कर्मोंके शेष जो जघन्यादि तीन भेद हैं उनमें सादि तथा अध्रुव ये दो दो प्रकार मिलते हैं । ३४६—३४७ ।

॥३२२॥

उत्कृष्टाद्या द्विधा बंधाश्चत्वारः सादयोऽध्रुवाः । प्रकृतीनां प्रदेशाख्याः शेषाणां नवतेः पुनः ॥ ३४८ ॥
जघन्यो नाधरो यस्मादजघन्योऽस्ति साधरः । उत्कृष्टो नोत्तरो यस्मादनुत्कृष्टोस्ति सोत्तरः ॥ ३४९ ॥
उत्कृष्टो जायते बंधः षट्सु मिश्रं विनायुषः । प्रदेशाख्यो गुणस्थाननवके मोहकर्मणः ॥ ३५० ॥
अनायुर्मोहनीयानां षण्णां भवति कर्मणाम् । अमायुत्कृष्टयोगेन गुणे सूक्ष्मकषायके ॥ ३५१ ॥
बन्धो जघन्ययोगस्य जघन्योस्त्यष्टकर्मणाम् । अपर्याप्तस्य सूक्ष्मस्य निगोतस्य शरीरिणः ॥ ३५२ ॥
क्षुद्रभवग्रहस्योक्तं त्रिभागे परमायुषः । बधन कर्मणां प्राज्ञैरन्येषां प्रथमे क्षणे ॥ ३५३ ॥

इनके शिवाय शेष सर्व नब्बे (९०) उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्टादिक चारो ही प्रकारके प्रदेशबंध सादि तथा अध्रुव-ऐसे दो दो प्रकारके रहते हैं । ३४८ ।

क्योंकि, जघन्यवालेके अधर नहीं है, अजघन्य है वह अधर सहित है । एव, उत्कृष्टमें उत्तरका नहीं है, अनुत्कृष्ट उत्तरसहित है ।३४९।

अब गुणस्थानोंमें जघन्यादिका विभाग करके बताते हैं ।-आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबंध, मिश्र गुणस्थानके शिवाय शेष छह गुणस्थानोंमें होता है । मोह कर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबंध मिश्रके शिवाय शेष नौ गुणस्थानोंमें होता है । आयु और मोहकर्मके शिवाय शेष छह मूल प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबंध, सूक्ष्मकषाय-दशवें गुणस्थानमें उत्कृष्ट योगके द्वारा होता है ।३५०-३५१।

आठो कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध जघन्य योगवाले सूक्ष्म अपर्याप्त निगोद जीवके होता है ।३५२।

इन आठ कर्मोंमेंसे विशेष नियम आगे बताते हैं ।-आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबंध जो सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक क्षुद्रभव ग्रहण करनेवाले जीवके बताया है वह अपने आयुके त्रिभागमें ही होता है किंतु शेष सात कर्मोंका उसके जघन्य प्रदेशबंध उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होता है, आगे नहीं होता । सूक्ष्म अपर्याप्तक निगोद जीवकी आयु अवांतर छोटी बडी असंख्यात प्रकारकी होती है । उन सबमें जो जघन्य आयुवाला पर्याय होता है उसे क्षुद्रभव कहते हैं । ३५३ ।

दृग्ज्ञानरोधविघ्नानां चतस्रः पंच पञ्च च । सातमुच्चं यशः सप्तदशानां विदधाति वै ॥ ३५४ ॥
प्रदेशबंधमुत्कृष्टं सूक्ष्मलोभगुणस्थितः । सञ्ज्वालनरवेदानां पंचानामनिवृत्तिकः ॥ ३५५ ॥
तीर्थकृत्प्रचला निद्रा षट्कं हास्यादिगोचरं । नवानां कुरुते बंधमुत्कृष्टं शुभदर्शनः ॥ ३५६ ॥
चतुष्कस्य द्वितीयस्य कषायाणामसंयत । विदधाति तृतीयस्य प्रकृष्टं देशसंयत ॥ ३५७ ॥
सुरद्वितयमादेयं सुभगं नृसुरायुषी । आद्ये संहतिसंस्थाने सुस्वरः सन्नभोगतिः ॥ ३५८ ॥
असातं विक्रियाद्वंद्वमित्येता यास्त्रयोदश । तासां सद्दृष्टिदुर्दृष्टी बंधोत्कृष्टत्वकारिणौ ॥ ३५९ ॥

दर्शनावरणके चार, ज्ञानावरणके पांच, अंतरायके पांच, सातावेदनीय, उच्चगोत्र, यशःकीर्ति—इन सत्रह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको सूक्ष्मलोभ—दशवें गुणस्थानवर्ती करता है। और चार संज्वलन कषाय, एक पुरुषवेद—इन पांच कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेश-बंधको अनिवृत्तिकरण—नौवें गुणस्थानका जीव करता है ।३५४—३५५।

तीर्थकरत्व, प्रचला, निद्रा—ये तीन तथा हास्यादि छह नोकषाय—इन नौ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको सम्यग्दृष्टि-चौथे गुणस्थानवाला जीव करता है। तीर्थंकर प्रकृतिके नवीन बंधका आरंभ भी चौथे गुणस्थानमें ही होता है—यह विशेष ३२४ के श्लोकसे ऊपर जो इसी परिच्छेदमें उक्तच—श्लोकमें 'सम्यक्त्व कारण पूर्वबन्धने बन्धनेदिभि' ऐसा वचन कहा है उससे सिद्ध होता है। ३५६।

दूसरे—अप्रत्याख्यानावरण कषाय चारके उत्कृष्ट प्रदेशबंधको असंयत—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती करता है। तीसरे—प्रत्या-ख्यानावरण कषाय चारके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको देशसंयत—पांचवें गुणस्थानवर्ती करता है। ३५७।

देवगति देवगत्यानुपूर्वी ये दो, आदेय, सुभग, मनुष्यायु, देवायु, प्रथम—वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रथम—समचतुरस्र संस्थान, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, असातावेदनीय, वैक्रियिकद्वय—वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग—ये दो—सर्व मिलकर ये तेरह प्रकृति होती हैं। इन तेरहके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों करते हैं। ३५८—३५९।

आहारकद्वयस्योक्तः प्रदेशोत्कर्पणक्षमः । अप्रमत्तः परासा तु जीवो मिथ्यात्वदूपितः ॥ ३६० ॥
उत्कृष्टयोगवान् सज्ञी पूर्णांगी स्तोकवधकः । प्रकृप्ट कुरुते वध जघन्यं विपरीतक ॥ ३६१ ॥
चतस्र श्वभ्रदेवायुःश्वभ्रद्वितयलक्षणाः । असज्ञी कुरुते स्वल्पा मध्ययोगव्यवस्थितः ॥ ३६२ ॥
आहारकद्वय साधुः प्रमादरहिताशयः । पच निःसयमः तीर्थकृदेवस्य चतुष्टय ॥ ३६३ ॥
शेपाः सूक्ष्मनिगोतोऽगी स्वल्पत्व नयते पुनः । मध्ययोगस्थितः सर्वा नवाधिकशतप्रमाः ॥ ३६४ ॥

आहारकशरीर तथा आहारकशरीरागोपाग–इन दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवंधको अप्रमत्त–सातवें गुणस्थानवाला जीव करता है । और शेष रही सर्व प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशवंधको मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है । ३६० ।

उत्कृष्ट प्रदेशवंधको वह जीव करता है जो सज्ञी, पर्याप्त तथा उत्कृष्ट योगोंको धारण करनेवाला है और थोडे कर्मको बांधता है । इससे उलटा जीव जघन्य प्रदेशवधको करता है वह जीव कौनसा है इसका स्पष्टीकरण आगे करते हैं । ३६१ ।

नरकायु, देवायु, नरक गति द्वय–अर्थात् नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी–इन चार प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशवंधको मध्यम योगोंको धारण करनेवाला असज्ञो जीव करता है । ३६२ ।

आहारकद्वयके जघन्य प्रदेशवन्धको प्रमादरहित- सातवें गुणस्थानका साधु करता है । और तीर्थंकर प्रकृति, देवचतुष्टय –देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरागोपांग-ये चार प्रकृति–इन पाच प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशवंध, असंयत सम्यग्दृष्टि- चौथे गुणस्थानवाला जीव करता है । ३६३ ।

शेष बची हुई सर्व प्रकृति एकसौ नौ हैं। इन एकसौ नौ प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबंधको मध्यम योगोंको धारण करनेवाला सूक्ष्मनिगोद जीव करता है । ऊपरके दो श्लोकोमें ग्यारह प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धको करनेवाले जुदे बताये हैं । इसलिये यहां शेष प्रकृति एकसौ नौ बचती हैं । ३६४ ।

प्रदेशप्रकृती बन्धो योगतः स्तः कषायतः । जन्तो स्थित्यनुभागौ स्तः तद्द्वयपाये व्यपायतः ॥ ३६५ ॥

बन्धमें सर्व भेद चार हैं, (१) प्रकृति, (२) स्थिति, (३) अनुभाग (४) प्रदेशबन्ध । इन चारमेंसे जीवके प्रकृतिबंधका तथा प्रदेशबधका होना योगसे है । और स्थितिबन्ध तथा अनुभागबंध कषायसे होते हैं । योग तथा कषाय–इन दोनो कारणोंके अभाव हो जानेसे चारो प्रकारके बधका अभाव हो जाता है ।३६५।

शंका–केवल योगके निमित्तसे एक साता वेदनीयका बध होता है । और शेष सर्व प्रकृति कषायके रहनेसे बधती हैं । ऐसी भी वस्तुस्थिति है । मिथ्यादर्शनादि चार बधके कारण पूर्वमें बताये हैं । उन चारोंके निमित्तसे जुदी जुदी प्रकृतियोंका बंध होना भी बताया है । किंतु यहांपर सर्व ही प्रकृतियोंके प्रकृति तथा प्रदेशबधका कारण योगको बताते हैं और सर्व ही प्रकृतियोंके स्थिति अनुभागका कारण कषायको बताते हैं । यह परस्परका विरोध जान पडता है उसका निराकरण कैसे होगा ?

इसका उत्तर इस प्रकारसे होता है ।—

मिथ्यादर्शन तथा अविरति–ये दोनो कषायके ही विशेष प्रकार हैं । मिथ्यादर्शनसे युक्त कषाय ही एक ऐसी विशिष्ट शक्तिको धारण करता है जिससे नरकायु आदिका बध हो सके । यहांपर कषायमें जो विशिष्ट शक्ति उत्पन्न होती है वह मिथ्यादर्शनके निमित्तसे होती है । इसलिये नरकायु आदि कुछ प्रकृतियोंका कारण कषायको न बताकर विशिष्टताधायक मिथ्यादर्शनको बताया गया है । इससे कषायकी कारणता यहांपर नष्ट नहीं होजाती है । इसी प्रकार अविरतिको जहा कारण बताया है वहां भी यही तात्पर्य है कि मिथ्यात्वसे कमती, परंतु एक प्रकारकी अधिकता ही कषायमें अविरतिके द्वारा प्राप्त होती है । ऐसी विशिष्टताको धारण करनेवाले कषायका वर्ग जुदा दिखानेके लिये विशिष्टताधायक अविरतिको ही कारण बतादिया गया है । ऐसी दोनों विशिष्टताएं जहांपर नहीं रहती हैं ऐसे ऊपरके स्थानोंके कषायका कषाय शब्दसे वर्णन किया गया है । इसीलिये जहां बधके चार कारण बताये हैं वहांपर कषायके विशिष्टताधायकोंकी मुख्यता मानलेनेसे भेद होगये हैं । वे विशिष्टताएं मुख्य न मानी जांय तो कषाय तथा योग–ये दो ही बधके कारण शेष रह जाते हैं ।

दूसरा प्रश्न ऐसा है कि योग, आठ कर्मोंके प्रकृति प्रदेशबधका कारण है अथवा एक सातावेदनीयका ही कारण है? इसका उत्तर इस प्रकारसे करना चाहिये।— योग कर्मपरमाणुओंके लानेमें अथवा समह करनेमें कारण है। योगका अर्थ चचलता है। चचलतासे कर्मपरमाणु आत्माके साथ बंधनेको तत्पर होजाते हैं। उस तत्परताकी उत्पत्ति अथवा बधकी निश्चितता कुछ नियत कर्मपरमाणुओंमें ही होना सभव है। सो जितने परमाणुओंमें वह बधावस्था नियुक्त होजाती है उस निश्चित प्रदेशसख्याको प्रदेशबध कहते हैं। उस प्रदेशसमूहमें अथवा प्रदेशबधमें आत्माके साथ बद्ध होकर टिकनेकी कोई एक मर्यादा जिसे स्थिति कहते हैं वह, और पारतत्र्यकी विविधताको रखनेवाले फलानुभवको करानेका सामर्थ्यविशेष–ये दो कार्य कषायाधीन हैं। इन्ही दो सामर्थ्योंको स्थिति तथा अनुभागबन्धके नामसे कहा है। पारतत्र्यकी विविधता आठ प्रकारकी है। आठसे अधिक दोष होना संभव नहीं है। जो फलोत्पादन तथा स्थितिको करता है वही फलोत्पादनकी विविधताको भी उत्पन्न करेगा। इसलिये स्थिति अनुभागके कारणभूत कषायद्वारा ही कर्मोंमें आठ भेद भी होजाते हैं।

इस प्रकार कर्मपरमाणुओंमें स्थिति तथा अनुभागको और आठ विभागोंको तथा उत्तर विभागोंको करनेका कारण कषाय परिणाम ठहरा। वह कषाय जहापर नहीं रहा, केवल योग शेष रहा हो वहापर योगका कार्य जो प्रदेशबध वह तो होगा किंतु कषायकृत ऊपर बताये हुए स्थितिनियमन, फलदान सामर्थ्य निर्माण, तथा अष्ट प्रकारका विभागीकरण–ये कार्य नहीं होते। इसीलिये ऐसे योगियोंके जो कर्मबध होता है उसे ईर्यापथ नाम दिया गया है। ईर्यापथ शब्दका अर्थ है कि जैसा आवे वैसा ही उसी समयमें चला जाय। अर्थात् वह कर्म जो कर्मत्व रूपसे प्रदेशसख्यामें अवधारित होता है वह ठहरता एक क्षण भी नहीं है। हटता हुआ ही आता है। यह क्यों? यह इसीलिये कि स्थितिका कारण कषाय है, वह वहापर न रहनेसे उस कर्मको रोके कौन? जैसे उस योगीके बधमें स्थिति नहीं पडती वैसे अनुभाग तथा आठ विभाग भी नहीं हो पाते हैं। इसीलिये वह कर्म पूर्व कर्मोंके समान बाधक भी नहीं होता इसलिये केवल शब्दव्यवहारार्थ उसे साता वेदनीय माना गया है। साताके स्वभावकी और इस कर्मकी समानता है।

इस प्रकार जो केवल योगके रहते कर्मबध होता है उसे अनुभागकी अपेक्षासे सातावेदनीयरूप न मानकर प्रकृतिकी

स्वभाव प्रकृतिर्ज्ञेया स्वभावादच्युतिः स्थितिः । अनुभागो रसातासां प्रदेशोंऽशावधारणम् ॥ ३६६ ॥
प्रकृतिस्तिक्तता निंबे स्थितिरच्यवन पुनः । रसस्तस्यानुभाग' स्यादित्येव कर्मणामपि ॥ ३६७ ॥
काल क्षेत्र भवं द्रव्यमुदयः प्राप्य कर्मणाम् । जायमानो मतो द्वेधा विपाकेतरभेदतः ॥ ३६८ ॥

अपेक्षासे उसका साता वेदनीय नाम पडता है । प्रकृति सामान्य स्वभाव है । वह योगका ही कार्य बताया गया है । इसलिये योगके कारण जो बंध होता है वह इतर रूप परिणत न होनेसे केवल सात स्वरूपसे परिणत हुआ माना जाता है । इस प्रकारसे देखें तो प्रकृति प्रदेशबंधका कारण जो योगको बताया है वह भी कहना ठीक हो जाता है और योगकृत एक साता वेदनीयका ही बंध होना बताया है वह भी सयुक्तिक हो जाता है ।३६५।

सामान्य स्वभावका होना वह प्रकृति कहाती है । कर्म अथवा ज्ञानावरणादि अथवा मतिज्ञानावरणादि मूलोत्तर भेदोंके स्वभावसे न हटनेकी जो कालमर्यादाका नियोगधारण वह स्थिति है । उन प्रकृतियोंके फल देनेकी जो नियत अवस्था अथवा रसविशेष वह अनुभाग कहाता है ! कर्मोंकी परमाणुसख्याका जो निश्चित प्रमाण ठहरना वह प्रदेशबन्ध है । चारो बंधभेदोंका यह जुदा जुदा अर्थ है ।३६६।

नींबका उदाहरण सामने रखकर चार बंधको दिखाते हैं।—

नींबवृक्षमें जो जातिद्वारा तिक्तता मानी जाती है वह नींबकी प्रकृति है । नींब पर्याय रहने तक जो उस तिक्तस्वभावसे न हटना वह तिक्तताकी कालावधिरूप स्थिति है । उस तिक्तताका जो अनुभवरूप विशेष स्वरूप है वह अनुभाग है । अर्थात् नींबकी पिंडरचनाको प्रदेश कहना चाहिये । इसी प्रकार कर्मोंके भी प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश—ये चार भेद समझलेने चाहिये ।३६७।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव—इन चार साधनोंकी अनुकूलता प्रतिकूलताको पाकर जो कर्मोंका उदय होता है उसके दो भेद है, एक विपाकरूप, दूसरा अविपाकरूप । उदयका अर्थ यहापर ऐसा है कि बन्धमेंसे बाहिर पडना । वह उदय एक तो ऐसा रहता है जो द्रव्य क्षेत्रादिकी अनुकुलता रहनेसे अपना फल देकर निर्जीर्ण होता है। दूसरा ऐसा होता है कि द्रव्य क्षेत्रादिकी प्रतिकूलता रहनेसे वह फलको न देकर ही निर्जीर्ण होजाता है । स्थितिके पूर्ण होनेपर कर्मका उदय होता ही है। इसलिये द्रव्यक्षेत्रादिकी अनुकूलता उस समय न रहनेसे फल न देसकनेपर भी उदयागत कर्मोंकी निर्जरा अवश्य होती है । ३६८ ।

॥३२८॥

भागोऽसंख्यातिमः श्रेणेर्योगस्थानानि देहिनः । ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेय सर्वप्रकृतिसंग्रह ॥ ३६९ ॥
ततोऽसख्यगुणानि स्युः स्थितिस्थानान्यतः स्थितेः । स्थानान्यध्यवसायानामसख्यातगुणानि वै ॥ ३७० ॥
असख्यातगुणान्यस्माद्रसस्थानानि कर्मणाम् । ततोऽनंतगुणाः संति प्रदेशाः कर्मगोचराः ॥ ३७१ ॥
अविभागपरिच्छेदाः सर्वेषामपि कर्मणाम् । एकैकत्र रसस्थाने ततोऽनंतगुणा मताः ॥ ३७२ ॥

जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंत योगोंके स्थान, प्रकृतिस्थान, स्थितिस्थान, अध्यवसाय स्थान, रसस्थान, प्रदेशस्थान, अविभाग प्रतिच्छेदस्थान—इन सात विषयोंका इस बंधमें संबंध रहता है । इनमेंसे कुछ कार्यरूप हैं, कुछ कारणरूप हैं । उत्तरोत्तर एकसे दूसरेका प्रमाण अधिक अधिक है ।

[१] जीवोंके प्रदेशबंधके लिये कारणीभूत योगोंके स्थान जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंत सर्व, श्रेणीप्रमाणके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । यह एक मध्यम असख्यातकी सख्या है ।

(२) इस जुदे जुदे योगस्थानसे जो प्रकृतियोंका बंध होता है वे प्रकृतिएं योगस्थानोंकी सर्व सख्यासे असंख्यातगुणी हैं । प्रकृतियोंमें जो प्रदेश होते हैं उनका यह प्रमाण नहीं है किंतु प्रकृति इतने असख्यात प्रकारकी हैं ऐसा समझना चाहिये । प्रकृतियोंके मूल भेद आठ हैं, उत्तर भेद एक सौ अडतालीस हैं । इसी प्रकार इनके उत्तरोत्तर भेद जो होते हैं वे भेद योगस्थानोंकी संख्यासे असख्यात गुणे हैं । उन भेदोंके नामोंका उल्लेख ग्रंथोंमें नहीं किया गया है क्योंकि, सर्व भेद लिखना असभव है । परतु किसी किसी उदाहरणमें ऐसे उत्तरोत्तर एकाध भेदका नाम कहीं कहींपर आजाता है । जैसे जिनसेन स्वामीने ' मनुष्यजातिरेकैव ' इस वचनसे मनुष्यजातिका उल्लेख किया है ।

[३] तीसरा स्थान स्थितियोंका है । एक एक कर्मकी जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंतकी स्थिति असख्यात प्रकारकी होती हैं । सर्व कर्मोंकी जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंतकी सर्व मिलाकर देखी जांय तो प्रकृतियोंकी असख्यात सर्व सख्यासे असंख्यात गुणे स्थितिबंध हैं । भावार्थ, एक एक प्रकृतिमें स्थिति असंख्यात प्रकारकी होती है । किसीके, और कर्मोंकी एक किसी प्रकृतिमें जो स्थिति उत्पन्न हुई हो उससे दूसरेकी दूसरे समयवर्ती वैसी ही प्रकृतिमें स्थिति दूसरी तरहकी भी होसकती है । इस प्रकार प्रकृति सर्व जब कि असख्यात प्रकारकी हैं तो स्थितिस्थान उस प्रकृतिसख्यासे और भी असख्यात गुणे होने चाहिये, वही यहांपर बताया है ।

[४] अध्यवसायका अर्थ कषाय है । जो स्थितिबंध-अनुभागबंधके कारणीभूत कषाय होते हैं उनके जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यंतके स्थान स्थितिस्थानोंसे असख्यात गुणे हैं ।

कर्मप्रवादांबुधिविन्दुकल्प श्चतुर्विधो वधविधिः स्वशक्त्या ।
सक्षेपतो य कथितो मयाऽसौ । विस्तारणीयो महनीयबोधैः ॥ ३७३ ॥
वधविचार बहुतमभेद यो हृदि धत्ते निगलितखेदम् । याति स भव्यो व्यपगतकष्टा सिद्धिमबधोऽमितगतिरिष्टाम् ॥
गुणस्थानविशेषेपु प्रकृतीना नियोजने । स्वामित्वमिह सर्वत्र स्वयमेव विबुध्यताम् ॥ ३७५ ॥

इति शतक समाप्तम् ।

---

(५) अध्यवमाय स्थानोंसे असख्यातगुणे कर्मोके रसस्थान अथवा अनुभागस्थान हैं । अनुभागशक्तिको रस कहा है । एक अध्यवमायस्थानके द्वारा असंख्यात प्रकारके अनुभाग, द्रव्य क्षेत्रादिके निमित्तसे बाधे जाते हैं । जो एक एक अध्यवसाय द्वारा कर्मोके अनुभाग बाधे जाते हैं वे भिन्न कर्मोके और अनेक प्रकारके होत है । इसलिये अध्यवसायोंके भेदोंसे अनुभागके स्थान असंख्यात गुणे सिद्ध हो जाते हैं ।

(६ , एकैक प्रकारके अनुभागको रखनेवाळे कर्मप्रदेश अनंतानत होते हैं । इसलिये सर्व अनुभागस्थानोंसे कर्मप्रदेश अनतगुणे माने गये हैं ।

[७] एक एक अनुभागस्थानमें जो अविभागी प्रतिच्छेद अर्थात रसाश रहते हैं वे सपूर्ण सपूर्ण कर्मप्रदेशोंसे अनत गुणे होते हैं । जिनके द्वारा शक्ति अथवा किसी गुणका अदाज किया जाता हे वे गुणके अत्यत सूक्ष्म अश कहे जाते है । उनके फिर छोटे अश नहीं हो सकते हैं इसलिये उन अशोंको अविभाग प्रतिच्छेद भी कहते हैं । विभाग न होनेसे वह अविभाग अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म । ऐसा जो प्रतिच्छेद अर्थात् गुणाश उसका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है । अविभाग परिच्छेद भी कहते हैं।३६९-३७२

कर्मप्रवादनामके अगाध समुद्रमेंसे विन्दुके समान यह जो चार प्रकारका बधविधान मैंने अपनी शक्तिके अनुसार संक्षेपसे कहा है, उसे विशाल आर्य बोधके धारक विस्तृत करें । ३७३ ।

बन्धके विचारमें बहुत बहुत सूक्ष्म भेद हैं । उसको जो खेद रहित हृदयमें समझता है—धारण करता है वह भव्य कर्मबंधनसे छूटकर अपरिमित ज्ञानका धारी होकर, कष्ट बाधाओंसे रहित और इष्ट ऐसे सिद्धपदको प्राप्त हो जाता है ।३७४।

जुदे जुदे गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके सभवासभवको लगानेमें स्वामित्वका ज्ञान भी अनायास ही होजाता है ।३७५।

अब गोमटसारके अनुसार मूलोत्तर प्रकृतियोंको सार्थ दिखाते हैं ।—

पच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी । तेउत्तर सय वा दुग पणग उत्तरा होंति ॥ २२ ॥

पञ्च नव द्वौ अष्टाविंशति चत्वार क्रमेण त्रिनवति । त्र्युत्तर शतं वा द्विक पञ्चकमुत्तरा भवन्ति ॥ २२ ॥

अर्थ —ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंके प्रत्यक भेद क्रमसे पाच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवैं अथवा एकसौ तीन, दो, पाच होते हैं ऐसा जानना । भावार्थ–ज्ञानावरणके मतिज्ञानावरण १ श्रुतज्ञानावरण २ अवधिज्ञानावरण ३ मन पर्ययज्ञानावरण ४ केवलज्ञानावरण य ५ भेद । दर्शनावरणके चक्षुर्दर्शनावरण १ अचक्षुर्दर्शनावरण २ अवधिदर्शनावरण ३ केवलदर्शनावरण ४ और स्त्यानगृद्धि ५ निद्रानिद्रा ६ प्रचलाप्रचला ७ निद्रा ८ प्रचला ९ ये पाच निद्रा इस प्रकार नौ भेद हैं ॥ २२ ॥

अब दर्शनावरणीयके भेदमें पाच निद्राका कार्य तीन गाथाओंसे कहते हैं ,—

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्म करेदि जप्पदि य । णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घादिदु सक्को ॥ २३ ॥

स्त्यानगृद्ध्युदयेन उत्थापिते स्वपिति कर्म करोति जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन च न दृष्टिमुद्घाटयितु शक्य ॥ २३ ॥

अर्थ —स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणी कर्मके उदय कर उठाया हुआ भी सोता रहै, उस नींदमें ही अनेक कार्य करै तथा कुछ बोले भी परन्तु सावधानी न होय ॥ और निद्रानिद्राकर्मके उदयसे अनेक तरहसे सावधान किया हुआ भी आखोंको नहीं उघाड सकता है ॥ २३ ॥

पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलति अगाइं । णिद्दुदये गच्छतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ ॥ २४ ॥

प्रचलाप्रचलोदयेन च वहति लाला चलन्ति अङ्गानि । निद्रोदये गच्छन् तिष्ठति पुन विशति पतति ॥ २४ ॥

अर्थ —प्रचलाप्रचलाकर्मके उदयसे मुखसे लार वहती है और हाथ वगैर अग चलते हैं, स्थिर नहीं रहते । तथा निद्रा कर्मके उदय होनेसे गमन करता हुआ खडा होजावै बैठजावै गिर पडै इत्यादि क्रिया करता है ॥ २४ ॥

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि । ईसं ईसं जाणदि मुहु मुहु सोवदे मद ॥ २५ ॥

प्रचलोदयेन च जीव ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोपि । ईषदीषज्जानाति मुहुर्मुहु स्वपिति मन्दम् ॥ २५ ॥

अर्थ—प्रचलाकर्मके उदयसे यह जीव कुछ एक आखोंको उघाडकर सोता है, और सोता हुआ भी थोडा थोडा जानता है, बार बार मन्द (थोडा) शयन करता है। यह निद्रा श्वानके समान है, सब निद्राओंसे उत्तम है ॥ इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके कुछ भेदोंका कार्य कहा ॥ २५ ॥

वेदनीयकर्म सातावेदनीय १ असातावेदनीय २ दो भेदस्वरूप है। मोहनीयकर्म भी साधारण रीतिसे दो प्रकारका है—दर्शनमोहनीय १ चारित्रमोहनीय २, इनमें दर्शनमोहनीय बंधकी अपेक्षा मिथ्यारूप एक ही है और उदय तथा सत्ताकी अपेक्षा मिथ्यात्व १ सम्यग्मिथ्यात्व २ सम्यक्त्वप्रकृति ३ इन तीन स्वरूप है ॥

आगे ये तीन भेद किस तरह हो जाते हैं? इसका उत्तर कहते हैं,—

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण। मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥ २६ ॥

यंत्रेण कोद्रवं वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रेण। मिथ्यात्वं द्रव्यं तु त्रिधा असंख्यगुणहीनद्रव्यक्रमात् ॥ २६ ॥

अर्थ—यंत्र अर्थात् घरटीकरि दले हुए कोदोंकी तरह प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामरूप यंत्रसे मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य क्रमसे असंख्यात गुणा कम होता हुआ तीन प्रकार हो जाता है। भावार्थ—जैसे कोदों-धान्यविशेष दलनेपर भुसी, तंडुल और कण ऐसे तीन रूप होजाता है उसीतरह मिथ्यात्वरूप कर्मद्रव्य भी उपशमसम्यक्त्वरूपी यंत्रके द्वारा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीन स्वरूप परिणमन करता है। इस कारण एक मिथ्यात्वरूप दर्शनमोहनीयकर्मके तीन भेद कहे हैं ॥ २६ ॥

चारित्रमोहनीयके दो भेद हैं एक कषायवेदनीय दूसरा नोकषायवेदनीय, उनमें कषायवेदनीय १६ प्रकार है, उसको क्षय होनेके क्रमसे कहते हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध ५ मान ६ माया ७ लोभ ८, प्रत्याख्यानावरण क्रोध ९ मान १० माया ११ लोभ १२, संज्वलन क्रोध १३ मान १४ माया १५ लोभ १६। और नोकषायवेदनीयके नव भेद हैं—पुरुषवेद १ स्त्रीवेद २ नपुंसकवेद ३ रति ४ अरति ५ हास्य ६ शोक ७ भय ८ जुगुप्सा ९। आयुकर्म चार तरहका है—नरकायु १ तिर्यंच आयु २ मनुष्यायु ३ देव आयु ४। तथा नामकर्म पिंड

[भेदवाली] और अपिंड [भेद रहित] प्रकृतियोंसे व्यालीस प्रकार हैं, उन दोनों प्रकृतियोंमें पिंड [भेदवाली] प्रकृति १४ हैं—गति १ (नरक १ तिर्यंच २ मनुष्य ३ देवगति ४) जाति २ (एकेन्द्री १ दोइन्द्री २ तेइन्द्री ३ चौइन्द्री ४ पचेंद्रीजाति ५) शरीरनाम ३ (औदारिक १ वैक्रियिक २ आहारक ३ तैजस ४ कार्मणशरीर ५) ॥

अब इन पांच शरीरोंके भी सयोगी (मिले हुए) भेद कहते हैं;—

तेजाकम्मेहिं तिए तेजा कम्मेण कम्मणा कम्म । कयसंजोगे चदुचदुचदुदुग एक्क च पयडीओ ॥ २७ ॥

तैजसकार्मणाभ्यां त्रये तैजस कार्म्मणेन कार्म्मणेण कार्म्मण । कृतसंयोगे चतुश्चतुश्चतुर्द्विकमेक च प्रकृतय. ॥ २७ ॥

अर्थ—तैजसशरीर और कार्मण शरीरके साथ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरका आपसमें संबंध करनेसे चार, चार और चार—इस तरह मिलकर १२ भेद होते हैं । तथा कार्मणशरीरके साथ तैजसशरीरके मिलनेसे दो भेद और कार्मणशरीरके साथ कार्मणका संबंध होनेसे एक भेद—इस तरह सब मिलकर १५ भेद होते हैं । इनका खुलासा यह है—औदारिकऔदारिक १ औदारिकतैजस २ औदारिककार्मण ३ औदारिकतैजसकार्मण ४ वैक्रियिकवैक्रियिक ५ वैक्रियिकतैजस ६ वैक्रियिककार्मण ७ वैक्रियिकतैजसकार्मण ८ आहारकआहारक ९ आहारकतैजस १० आहारककार्मण ११ आहारकतैजसकार्मण १२ तैजसतैजस १३ तैजसकार्मण १४ कार्मणकार्मण १५—इस प्रकार पंद्रह भेद हुए । इनमेंसे पांच जो " औदारिकऔदारिक, वैक्रियिक-वैक्रियिक, आहारकआहारक, तैजसतैजस, कार्मणकार्मण " हैं वह पहले कहे हुए पांच शरीरोंमें शामिल हो जाते हैं । इस कारण मुख्य यहां १० भेद हुए । जैसे चक्रवर्ती जब विक्रिया करके १ कम ९६००० छ्यानवै हजार शरीर बनाता है तब औदारिकसे औदारिकशरीर बनाता है उसको औदारिकऔदारिक कहते हैं । इसीतरह देवके वैक्रियिकसे वैक्रियिक होता है उसे वैक्रियिक-वैक्रियिक कहते हैं । इस प्रकार और भेद भी समझलेना ॥ २७ ॥

बन्धन नामकर्म ४ (औदारिकशरीरबंधन १ वैक्रियिकबंधन २ आहारकबंधन ३ तैजसबंधन ४ कार्मणशरीरबंधन ५) । संघातनामकर्म ५ (औदारिकशरीरसंघात १ वैक्रियिकसंघात २ आहारकसंघात ३ तैजससंघात ४ कार्मणशरीरसंघात ५)

शरीरसंस्थाननामकर्म ६ (समचतुरस्रसंस्थान १ न्यग्रोधपरिमण्डल २ स्वाति ३ कुब्ज ४ वामन ५ हुंडसंस्थान ६) शरीरआंगोपांग नामकर्म ७ (औदारिकशरीर आंगोपांग १ वैक्रियिक आंगोपांग २ आहारकशरीर आंगोपांग ३) तैजस तथा कार्माणके आंगोपांग नहीं हैं ।

अब आंगोपांग कौन २ हैं यह कहते हैं,—

णलया बाहू य तहा णियंब पुट्ठी उरो य सीसो य । अट्ठेव दु अंगाइं देहे सेसा उवंगाइं ॥ २८ ॥

नलकौ बाहू च तथा नितम्ब पृष्ठ उरश्च शीर्षं च । अष्टैव तु अङ्गानि देहे शेषाणि उपाङ्गानि ॥ २८ ॥

अर्थ—दो पग, दो हाथ, कमरके पीछेका भाग (चूतड), पीठ, हृदय, और मस्तक ये शरीरमें आठ अंग हैं और दूसरे नेत्र कान वगैरः सब उपांग कहेजाते हैं ॥ २८ ॥

सहननननामकर्म ८ (वज्रवृषभनाराच १ वज्रनाराच २ नाराच ३ अर्द्धनाराच ४ कीलित ५ असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन ६)॥

आगे ये छहसंहननवाले जीव किस २ संहननसे कौन २ गतिमें उत्पन्न होते हैं यह कहते हैं,—

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति । तत्तो दुजुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति ॥ २९ ॥

असृपाटेन च गम्यते आदितः चतुर्षु कल्पयुगल इति । ततः द्वियुगलयुगले कीलितनाराचार्द्ध इति ॥ २९ ॥

अर्थ—असृपाटिकासंहननवाले जीव स्वर्गगतिमें जो उत्पन्न होवें तो पहले–सौधर्मयुगल (सौधर्म, ऐशानस्वर्ग २) से चौथे लांतवयुगल (लांतव १ कापिष्टस्वर्ग २) तक चार युगलोंमें उत्पन्न होते हैं । फिर चौथे युगलके बाद दो दो युगलोंमें क्रमसे कीलित संहननवाले और अर्द्धनाराच संहननवाले तकके चार संहननवाले जीव जन्म धारते हैं। अर्थात् पांचवें तथा छट्ठे स्वर्गयुगलमें कीलित संहननवाले तक पांच संहननवाले और सातवें तथा आठवें स्वर्गयुगलमें अर्द्धनाराच संहननवाले चार संहनन तक के जन्म लेते हैं ॥ २९ ॥

णवगेविज्जाणुदिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा । तिदुगेगे संघडणे णारायणमादिगे कमसो ॥ ३० ॥

नवग्रैवेयिकानुदिशानुत्तरवासिषु यान्ति ते नियमात् । त्रिद्विकैकेन संहननेन नाराचादिकेन क्रमशः ॥ ३० ॥

अर्थ—नाराच आदि तीन सहननसे अर्थात् नाराच, वज्रनाराच, वज्रवृषभनाराच इन तीन सहननोंवाले ये जीव नवग्रैवेयिकमें, वज्रनाराच, वज्रवृषभनाराच दो संहननवाले नव अनुदिश विमानोंमें तथा वज्रवृषभनाराच सहननवाले पाच अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार स्वर्गमें जन्मनेकी मर्यादा कही ॥ ३० ॥

सण्णी छस्सहणणे वज्जदि मेघ तदो पर चापि । सेवट्टादीरहिदो पणचदुरेगसहणणो ॥ ३१ ॥

सञ्ज्ञी षट्सहननो व्रजति मेघां तत परं चापि । असृपाटादिरहित पञ्चमीं पञ्चचतुरेकसहनन. ॥ ३१ ॥

अर्थ—छह सहननवाले सैंनी (मनसहित) जीव यदि नरकमें जन्म लेवें तो मेघानाम तीसरे नरकपर्यंत जाते हैं, और *सृपाटिकासहननरहित पाच सहननवाले अरिष्टा नाम पाचवीं नरककी पृथ्वीतक उपजते हैं, चार सहननवाले अर्थात् अर्द्धनाराचपर्यंत-वाले पाचवींके बाद जो मघवी नाम छट्ठी पृथिवी है वहातक, और आदिके वज्रवृषभनाराच सहननवाले सातवीं माघवी नाम पृथिवीतक उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥

अंतिमतियसहणणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाण । आदिमतिगसहणण णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठ ॥ ३२ ॥

अन्तिमत्रयसहननस्योदय पुन कर्मभूमिमहिलानाम् । आदिमत्रिकसहनन नास्तीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अन्तके तीन अर्द्धनाराचादि सहननोंका उदय कर्मभूमिकी स्त्रियोंके होता है और आदिके तीन वज्रवृषभनाराचादि सहनन कर्मभूमिकी स्त्रियोंके होते ही नहीं ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है ॥ ३२ ॥

वर्ण नामकर्म ९ (काला १ हरा २ लाल ३ पीला ४ सफेद ५) । गध नामकर्म १० (सुगंध १ दुर्गंध २) रस नामकर्म ११ (तीखा अथवा चरपरा १ कडुआ २ कसैला ३ खट्टा ४ मीठा ५) स्पर्श नामकर्म १२ (कठोर १ कोमल २ भारी ३ हलका ४ रूखा ५ चिकना ६ ठंडा ७ गर्म ८) । आनुपूर्वी नामकर्म १३ (नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी १ तिर्यंचगति-प्रायोग्यानुपूर्वी २ मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी ३ देवगतिप्रायोग्य आनुपूर्वी ४) इस प्रकार तेरह ये और उद्योतके पीछे विहायोगति नाम-कर्म १४ (प्रशस्तविहायोगति १ अप्रशस्तविहायोगति २) ये सब १४ पिंडप्रकृतिया हैं। और २८ अपिंड प्रकृतिया हैं। वे इस प्रकार हैं—

॥३३५॥

अगुरुलघुक १ उपघात २ परघात ३ उच्छ्वास ४ आतप ५ उद्योत ६ ।

यहा पर कोई भ्रम करै कि, आतपप्रकृतिका उदय अग्निकायमें भी होना चाहिये, क्योंकि जो संताप करै अर्थात् उष्णपनेसे जलावे वह आताप है । इस भ्रमके दूर करनेके लिए आगसे भिन्न आतपका लक्षण गाथामें कहते हैं,–

मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा । आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥ ३३ ॥

मूलोष्णप्रभा अग्नि आतापो भवति उष्णसहितप्रभा । आदित्ये तिरश्चि उष्णोनप्रमा हि उद्योत ॥ ३३ ॥

अर्थ–आग है वह मूलसे ही उष्णप्रभासहित है इस कारण उसके स्पर्शनामकर्मका भेद उष्णस्पर्शनामकर्मका उदय जानना । और जिसकी प्रभा (किरणोंका फैलाव) ही उष्ण होवे उसको आतप कहते हैं । इस आतपनामकर्मका उदय सूर्यके बिंब [विमान] में उत्पन्न हुए बादरपर्याप्त पृथ्वीकायके तिर्यंच जीवोंके समझना । तथा जो उष्णरहित प्रभा है उसको उद्योत नियमसे जानना ॥ ३३ ॥

" विहायोगति नामकर्म " जोकि पिंड प्रकृतियोंमें गिनाया है । त्रस नामकर्म ७ बादर नामकर्म ८ पर्याप्त नामकर्म ९ प्रत्येकशरीर नामकर्म १० स्थिर नामकर्म ११ शुभ नामकर्म १२ सुभग नामकर्म १३ सुस्वर नामकर्म १४ आदेय नामकर्म १५ यश कीर्ति नामकर्म १६ निर्माण नामकर्म १७ तीर्थंकर नामकर्म १८ स्थावर नामकर्म १९ सूक्ष्म नामकर्म २० अपर्याप्त नामकर्म २१ साधारणशरीर नामकर्म २२ अस्थिर नामकर्म २३ अशुभ नामकर्म २४ दुर्भग नामकर्म २५ दुःस्वर नामकर्म २६ अनादेय नामकर्म २७ अयश कीर्ति नामकर्म २८ इस रीतिसे पिंड प्रकृति १४ तथा अपिंड (जुदी जुदी) प्रकृतिया २८=सब मिलकर नामकर्मकी ४२ प्रकृतियां हैं । यदि सब भेद अलग २ बोले जावें तो ९३ अथवा शरीर नामकर्मके मिले हुए दश भेद जोडनेसे १०३ प्रकृतिया हैं । इसी अपेक्षासे कोई आचार्य सब संयोगी कर्मोंकी १५८ प्रकृतियां कहते हैं । जो इन भेदोंको पांच शरीरमें ही गर्भित करलें तो १४८ ही प्रकृतियां हैं ॥ गोत्रकर्म है उसके दो भेद हैं–ऊंच गोत्र तथा नीच गोत्र । अन्तराय कर्मके पांच भेद हैं–दानान्तराय १ लाभांतराय २ भोगांतराय ३ उपभोगांतराय ४ वीर्यांतराय ५ । इस तरह कर्मोंके आठ मूल भेदोंके १४८ उत्तर भेद कहे ॥

इति शतक नाम चतुर्थ परिच्छेद समाप्त.

॥२३६॥

अथ सप्ततिर्नाम पञ्चमः परिच्छेदः ।

नत्वाहमर्हतो भक्त्या घातिकल्मषघातिनः । स्वशक्त्या सप्ततिं वक्ष्ये बंधभेदावबुद्धये ॥ १ ॥
बधोदयसत्त्वानां सिद्धपदैर्दृष्टिवादपाथोधेः । स्थानानि प्रकृतीनामुद्धृत्य समासतो वक्ष्ये ॥ २ ॥

अथ पंचम परिच्छेदः ।

इस परिच्छेदमें बन्धके भेदोंका वर्णन है ।

घाती कर्मरूप पातकोंका नाश करडालनेवाले अर्हत देवको भक्तिपूर्वक मैं नमस्कार करता हू और बंधोंके भेद समझनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार सप्तति नाम अधिकारको कहता हू । यह पांचवां अधिकार है । विषय भी इस ग्रंथके वर्णनीय पाच थे उनमेंसे यह बन्धभेदका विषय पांचवा ही इस परिच्छेदमें कहा जानेवाला है । १ ।

दृष्टिवादरूपी समुद्रसे उद्धार करके सिद्धपदों द्वारा प्रकृतियोंके बन्ध–उदय–सत्तासंबन्धी स्थानोंको संक्षेपसे कहता हू ।

बन्ध–उदय–सत्वका सविस्तर वर्णन दृष्टिवादमें है । दृष्टिवाद द्वादशांगोंमेंसे बारहवा अंग है । सपूर्ण श्रुतज्ञानके विषयोंका वर्णन जो सर्वज्ञ देवसे सुनकर गणधरोंने किया है उसके सर्व बारह अग हैं। उन्हीमेंसे यह बारहवें अगका नाम दृष्टिवाद है। दृष्टि-वादके पाच भेद किये हैं, उनमेंसे चौथा भेद पूर्वगत है । पूर्वगतके उत्तर भेद चौदह हैं उन्हीको चौदह पूर्व कहते हैं। उनमेंसे एक पूर्व कर्मप्रवाद नामका है । उसका लक्षण राजवार्तिकालकारमें बताया है कि– " बन्धोदयोपशमनिर्जरापर्याया अनुभवप्रदेशा-धिकरणानि स्थितिश्च जघन्यमध्यमोत्कृष्टा यत्र निर्दिश्यते तत्कर्मप्रवादम् " ।

अर्थात्—उस कर्मप्रवादमें बन्ध उदय उपशम निर्जरारूप परिणमन होनेका वर्णन है, अनुभाग तथा प्रदेशबन्धके कारण कषायादि कैसे होते हैं–यह वर्णन है, और जघन्य मध्यम उत्कृष्ट स्थितिके भेदोंका वर्णन है ।

इस कर्मप्रवादका आधार लेकर ग्रथकार इस परिच्छेदमें कर्मप्रकृतियोंके बन्धका, उदयका, सत्ताका वर्णन करेंगे । ऊपरके

बंधे कत्युदये सत्वे सति स्थानानि वा कति । मूलोत्तरगताः सन्ति कियन्त्यो भंगकल्पनाः ॥ ३ ॥
अष्टकं सप्तकं षट्कं[1] बंधेऽष्टोदयसत्वयोः । एकबंधे त्रयो भेदा एको बंधविवर्जिते ॥ ४ ॥

बंध	८	७	६
उदय	८	८	८
सत्ता	८	८	८

एकबंधे-

बंध	१	१	१
उदय	७	७	४
सत्ता	८	७	४

अबंधे-

ब.	०
उ.	४
स.	४

चौथे परिच्छेदके अंतमें भी ग्रंथकारने कर्मप्रवादके आधारसे उस वर्णनको किया बताया है। वह कर्मप्रवाद भी यही है। इस प्रकरणके मूल श्लोकमें ग्रंथकारने दृष्टिवाद शब्द लिखा है। परंतु कर्मप्रवादका ही यह विषय होनेसे दृष्टिवादका सामान्य अर्थ न लेकर यहांपर 'कर्मप्रवाद' ही अर्थ लेना ठीक है ।२।

बन्धमें कितने स्थान हैं, उदयमें कितने स्थान हैं, और सत्तामें कितने स्थान हैं, और मूल तथा उत्तर प्रकृतियोंमें भंग कितने कितने होते हैं? इस प्रश्नको लेकर क्रमसे आगे उत्तर दिये गये हैं। ३।

बंधमें जहांपर आठका, सातका, छहका-ऐसे तीन स्थान हैं वहांपर उदय तथा सत्तामें आठ आठ ही कर्म हैं। एकके बंधमें तीन भंग हैं। और बंधरहितका एक ही भेद है। यंत्र आगे दिये हैं। ४।

बंध	८	७	६
उदय	८	८	८
सत्ता	८	८	८

एकबंधमें-

बंध	१	१	१
उदय	७	७	४
सत्ता	८	७	४

अबंधमें---

बंध	०
उदय	४
सत्ता	४

१—मूलमें पाठ 'षष्ठं' ऐसा है परंतु 'षट्कं' यह पाठ ठीक मालूम होता है।

इस संबधमें ये तीन यंत्र दिये हैं उनका खुलासा इस प्रकार है।—

पहिले यत्रमें बध ८, ७, ६ प्रकृतियोंका बताया है। उसमेंसे पहिले सात गुणस्थान पर्यंत तीसरे गुणस्थानको छोडकर सर्वत्र आठ प्रकृति पर्यंत का बंध होता है।

और इसके आगे अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरणमें तथा मिश्र—तीसरे गुणस्थानमें—इन तीन गुणस्थानोंमें आयुका बंध होता ही नहीं है इसलिये सर्व सात प्रकृतियोंका ही बंध होता है। अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके आगे दशवें गुणस्थानमें आयुका भी बंध नहीं होता तथा मोहका भी बध नहीं होता इसलिये दशवेंमें छह प्रकृतियोंका बंध होता है। इन सर्व गुणस्थानोंमें उदय तथा सत्त्व आठो आठो ही कर्मोंका है। यह प्रथम यंत्रकी रचनाका अर्थ है।

आगे चलकर दशवें गुणस्थानसे ऊपर तेरहवें पर्यंत बंध एक वेदनीय कर्मका ही रह जाता है। उनमेंसे ग्यारहवें बारहवें इन दो गुणस्थानोंमें मोहके शिवाय उदय सात सात कर्मोंका रहता है। फिर तेरहवें गुणस्थानमें घाती चार कर्म न रहनेसे अघाती मात्र चार कर्मोंका उदय रह जाता है। सत्ता ग्यारहवेंमें आठो कर्मोंकी है। बारहवेंमें सात कर्मोंकी है। तेरहवेंमें चार कर्मोंकी है। यह दूसरे यत्रका अर्थ हुआ।

तीसरे यत्रमें जहांपर बध होना सर्वथा रुक जाता है ऐसे अबधरूप चौदहवें गुणस्थानका खुलासा है। वहापर बधका शून्य है, उदय—स्थानमें अघाती चार कर्म हैं, सत्तामें भी चार वे ही अघाती कर्म है।

गोम्टसारमें इसका खुलासा इस प्रकार है।—

छसु सगविहमट्ठविहं कम्मं बंधंति तिसु य सत्तविहं। छव्विहमेक्कट्ठाणे तिसु एक्कमबंधगो एक्को ॥ ४५२ ॥

षट्सु सप्तविधमष्टविधं कर्म बध्नन्ति त्रिषु च सप्तविधम्। षड्विधमेकस्थाने त्रिषु एकमबन्धकमेकम् ॥ ४५२ ॥

अर्थ—मिश्रगुणस्थानके विना अप्रमत्त पर्यंत ६ गुणस्थानोंमें आयुके विना सातप्रकार अथवा आयुसहित आठप्रकार कर्मको बाधते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण-इन तीन गुणस्थानोंमें आयुविना सात प्रकार ही कर्म बंधरूप होते हैं। एक

त्रयोदशसु सप्ताष्टौ बंधेऽष्टोदयसत्तयोः । भेदा. संज्ञिनि पर्याप्ते पंच द्वौ केवलिद्वये ॥ ५ ॥

त्रयोदशसु जीवसमासेषु–	बं. ७ ८	एकस्मिन् संज्ञिनि पूर्णे–	८ ७ ६ १ १	केवलिद्वये–	१ ०
	उ. ८ ८		८ ८ ८ ७ ७		४ ४
	स. ८ ८		८ ८ ८ ८ ७		४ ४

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें आयु–मोहके विना ६ प्रकार ही कर्मोंका बंध होता है । उपशातकषायादि तीन गुणस्थानोंमें एक वेदनीय-कर्मका ही बंध है । और अयोगीगुणस्थान बंधरहित है अर्थात् उसमें किसी प्रकृतिका भी बंध नहीं होता ॥ ४५२ ॥ गो. क

अट्ठुदओ सुहुमोत्ति य मोहेण विणा हु संतखीणेसु । घादिदराण चउक्कस्सुदओ केवलिदुगे णियमा ॥ ४५४ ॥

अष्टोदय सूक्ष्म इति च मोहेन विना हि शान्तक्षीणयो । घातीतराणां चतुष्कस्योदयः केवलिद्विके नियमात् ॥ ४५४ ॥

अर्थ–सूक्ष्मसापरायगुणस्थान तक आठ मूलप्रकृतियोंका उदय है, उपशातकषाय और क्षीणकषाय इन दो गुणस्थानोंमें मोहनीयके विना सात का उदय है तथा सयोगी और अयोगी इन दोनोंके चार अघातिया कर्मोंका उदय नियमसे जानना ॥ ४५४॥

संतोत्ति अट्ठ सत्ता खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि । जोगिम्मि अजोगिम्मि य चत्तारि हवंति सत्ताणि ॥ ४५७॥

शान्त इति अष्ट सत्ता क्षीणे सप्तैव भवन्ति सत्त्वानि । योगिनि अयोगिनि च चत्वारि भवन्ति सत्त्वानि ॥ ४५७ ॥

अर्थ—उपशान्तकषाय गुणस्थानपर्यंत आठो प्रकृतियोंकी सत्ता है । क्षीणकषाय गुणस्थानमें मोहनीयके विना सात कर्मोंकी ही सत्ता है, और सयोगकेवली तथा अयोगकेवली इन दोनोंमें चार अघातिया कर्मोंहीकी सत्ता है ॥ ४५७ ॥

अब चौदह जीवसमासोंमें बंधोदयसत्ताके स्थानभंगोंको दिखाते हैं ।—

पूर्वमें जीवसमास सर्व चौदह बताये हैं उनमेंसे संज्ञी पर्याप्तकके एक समासको छोडकर शेष तेरह समासोंमें बंधमें सात तथा आठके ऐसे दो भेद हैं, वहां उदयमें तथा सत्तामें आठ आठके ही स्थान हैं । ऐसे समझना । संज्ञी पर्याप्तकके भंग पांच हैं । दोनो गुणस्थानवर्ती केवलियोंके दो दो भंग हैं। यंत्र आगे दिया है ।

तेरह जीवसमासोंमें–	बंध ७ ८	संज्ञी पर्याप्तक एक जीवसमासमें—	बंध–८ ७ ६ १ १	दोनो केवलियोंमें–	बंध–१ ०
	उदय ८ ८		उदय–८ ८ ८ ७ ७		उदय–४ ४
	सत्ता ८ ८		सत्ता–८ ८ ८ ८ ७		सत्ता–४ ४

द्वौ विकल्पौ गुणस्थानषट्के मिश्र विनाष्टसु । एकैकः कर्मणां बधपाकसत्वेषु जायते ॥ ६ ॥

	८ ७
मिथ्यादृष्ट्यादीनां षण्णां	८ ८
मिश्रवर्जितानां द्वौ विकल्पौ–	८ ८

	मिश्र	अपू.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
	७	७	७	६	१	१	१	०
एकैकोऽष्टानां–	८	८	८	८	७	७	४	४
	८	८	८	८	८	७	४	४

भावार्थ, संज्ञी पर्यातकके सर्व गुणस्थान हो सकते हैं इसलिये, भग पांच हैं–एक आठ बधका है, दूसरा सातका है, तीसरा छहका है, चौथा एकका है, और पाचवेंमें बधका शुन्य है । और सज्ञीके शिवाय शेष तेरह ही समासोंमं क्षपकादि कोई ऊपरके गुणस्थान नहीं होते इसलिये वहापर या तो आयुसहित आठका ही बंध होता है, नहीं तो यदि आयुर्बंधका समय न हो तो सर्व सातका ही बंध होता है । ऐसे यहां भेद दो हैं । ५ ।

जीवसमासोंमें तेरह जीवसमास आयुसहित आठ अथवा आयुरहित सातके बंधवाले और सत्ता तथा उदयमें आठ आठ कर्मोकी संख्या रखनेवाले हैं । किंतु सज्ञी पर्यातक समासमें सर्व तेरह गुणस्थान संभव हैं इसलिये गुणस्थानक्रमके अनुसार ही इस समासमें बधोदयसत्ताको समझना । यह जीवसमासोंके यत्रोंका स्पष्टीकरण है ।

अब गुणस्थानोंमें विकल्पोंको दिखाते हैं ।–

मिथ्यादृष्ट्यादि प्रथमसे लेकर, और मिश्रको छोडकर, सात गुणस्थान पर्यंत छह गुणस्थानोंमें आयु सहित बंध होता है तो आठ आठ प्रकृतियोंका होता है । यदि आयुका बंध नहीं हो तो सात सातका बंध होता है । इसलिये इन छह गुणस्थानोंमें दो दो विकल्प हैं । और सातवेंसे आगेके तेरहवें पर्यंत सात गुणस्थानोंमें तथा मिश्र तीसरे गुणस्थानमें–इन आठ गुणस्थानोंमें विकल्प एक एक ही है । क्योंकि बध इन गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानमें है तो किसी एक एक प्रकारका ही है, सत्ता भी एक एक प्रकारकी ही है, और उदय भी किसी एक एक प्रकारका ही है । और बंध चौदहवें गुणस्थानमें है ही नहीं । इसको स्पष्ट करनेके लिये ऊपर यत्र दिये हैं । ६ ।

॥३४१॥

बधोदयास्तिता मूलप्रकृतीनां निवेदिताः । उत्तरप्रकृतीनां ता कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
बंधादित्रितये पच विघ्ने ज्ञानावरोधने । शांते क्षीणे च निर्बन्धे पंचानामुदयास्तिते ॥ ८ ॥
दशसु—ब ५, ५ । उ. ५, ५ । स. ५, ५ । शान्तक्षीणयोः—०, ० । ५, ५ । ५, ५ ।
नव स्युः पट् चतस्रश्च दृग्रोधे बधसत्वयोः । स्थानानि त्रीणि पाके द्वे चतस्रः संति पंच वा ॥ ९ ॥

इस प्रकार तीनो जोडकर मूल प्रकृतियोंकी बंध उदय सत्ता बताई । अब उत्तर प्रकृतियोंके अनुसार बंध–उदय––सत्ता इन तीनोंको बताते हैं । ७ ।

प्रथम अंतराय तथा ज्ञानावरणके उत्तर भेदोंमें बधोदयसत्त्वको गुणस्थानक्रमसे दिखाते हैं ।—

दश गुणस्थान पर्यंत अंतराय तथा ज्ञानावरणकी पाच पाच प्रकृतियोंका उदय है, पाच पाचकी ही सत्ता है, और पाच पाचका ही बध है । इस प्रकार बंधादि तीनो अवस्थाएं पाच पाचकी ही हैं। शांतकषाय–ग्यारहवेंमें, क्षीणकषाय--बारहवें गुणस्थानमें उदय पाच पाच का है और सत्ता भी पांच पाचकी है । बध इनमेंसे एकका भी नहीं है, इसलिये इन दोनो गुणस्थानोंका विशेषण ‘ निर्बंध ’ ऐसा दिया है । ८ ।

आदिसे दशवें गुणस्थान पर्यंत–बंधमें ५ अंतराय, ५ ज्ञानावरण । इसी प्रकार उदयमें ५ अतराय, ५ ज्ञानावरण । सत्तामें भी ५ अतराय, ५ ज्ञानावरण । इसके आगे उपशात तथा क्षीणकषायमें बधके स्थानमें अतरायका भी शून्य है, ज्ञानावरणका भी शून्य है । और उदयके तथा सत्ताके स्थानोंमें ५–५ सख्या है । यह यंत्रोंका अर्थ हुआ ।

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणके नौ भेदोंमेंसे यथासभव प्रकृतियोंके बंध–उदय–सत्वको जोडकर दिखाते हैं ।–

दर्शनावरणकी सर्व नौ प्रकृतियोंमेंसे कुछ स्थानोंमें नौका ही बध तथा नौकी ही सत्ता रहती है। कुछ गुणस्थानोंमें छह छह प्रकृतियोंका बध तथा कुछ गुणस्थानोंमें छहकी सत्ता रहती है । कुछ गुणस्थानोंमें चारका बध और चारकी कुछ गुणस्थानोंमें सत्ता रहती है। इस प्रकार बंध तथा सत्ताके तीन स्थान हैं। उदयके स्थान दो हैं, एक चार प्रकृतियोंका है, दूसरा पांच प्रकृतियोंका है ।९।

भवंति नव सर्वाः षट् स्त्यानगृद्धित्रयं विना। चतस्रः प्रचलानिद्रारहिता बंधसत्वयोः ॥ १० ॥

९ । ६ । ४ ।

चतस्रोऽत्रोदये चक्षुर्दर्शनावरणादयः। जायते पच वा निद्रादीनामेकतरोदये ॥ ११ ॥ ४ । ५ ।

बंधत्रये सति नवात्र सत्त्वे षट्क चतुर्बन्धिनि बंधहीने। नवाथ षड् द्वौ सकलेषु पाकौ सत्वे च पाके च चतुष्कमंतये ।१२।

नौके जो स्थान हैं वहांपर दर्शनावरणकी सर्व प्रकृति समझनी चाहिये। जहा छह प्रकृतियोंके स्थान हैं वहांपर स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राकर्म छूट जाते हैं। और चार प्रकृतिके स्थानमें निद्रा तथा प्रचला ये दो भी छूट जाती हैं और स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा भी छूट जाती हैं। यह बंध तथा सत्ताके विषयमें समझना। १०।

उदयमें जहांपर दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंका उदय है वहांपर चक्षुर्दर्शनावरण आदि चार लेनी चाहिये। इनमें निद्रा पाचो ही छूट जाती हैं। और यदि पाच प्रकृतियोंके उदयका स्थान मानें तो चार चक्षुर्दर्शनावरणादिके साथ निद्रादि पांच निद्राओंमेंसे एक किसी भी निद्रा प्रकृतिको जोड देना चाहिए। जागृत अवस्थामें चार दर्शनावरणोंका उदय होता है। और एक निद्रासहित पाचका उदय सोनेकी अवस्थामें होता है। ११।

बध उदय सत्ता—इन तीनोंका एक यंत्र करना। उस यत्रमें यह बताया है कि सत्ता उदय तथा बंध—ये तीनों साथमें कितने कितने रहते हैं। अर्थात् जहां सत्ता दर्शनावरणकी एक अमुक प्रकृतियोंकी है वहांपर बंध कितनी दर्शनावरण प्रकृतियोंका है और उदय कितनी दर्शनावरण प्रकृतियोंका है ' इत्यादि स्पष्टीकरण उस यत्रसे होता है। वह यत्र नीचे दिया है। उसीके ऊपरसे आगेके दो श्लोकोंका अर्थ जल्दी समझमें आजायगा।

क्षीणकषाय—बारहवें गुणस्थान पर्यंत दर्शनावरणोंका उदय दो प्रकारसे होता है, चक्षुर्दर्शनावरणादि चार चार प्रकृतियोंका, अथवा एक किसी निद्राके उदय रहनेपर पाच पांच प्रकृतियोंका। इसलिये उदयके छह स्थानोंमें दो दो कोष्टक होते हैं। इसीलिये फिर बध तथा सत्ताकी प्रकृतियोंको भी दो दो बार दिखाना पडता है। इस प्रकार छह स्थानोंके बारह

द्वयोर्नव द्वयोः षट्कं चतुर्षु च चतुष्टयम् । पंच पंचसु शून्यानि भंगाः संति त्रयोदश ॥ १३ ॥

बंध	९	९	६	६	४	४	४	४	०	०	०	०	०
उदय	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
सत्ता	९	९	९	९	९	९	६	६	९	९	६	६	४

कोष्ठक होगये हैं । इसके आगे बारहवें गुणस्थानके अंतमें जहांपर निद्राओंका अभाव होगया है वहांपर चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृतियोंका ही केवल उदय है । वहांपर कोष्ठक भी एक ही है । इस प्रकार सर्व कोष्ठक तेरह करने पडते हैं ।

अब उन सात स्थानोंके तेरह कोष्ठकोंमें देखते हुए श्लोकोंका अर्थ करना चाहिये । वह इस प्रकार है—

बंधादित्रयके तीन पहिले स्थानोंमें सत्तामें दर्शनावरणकी प्रकृति नौ नौ हैं । फिर चार प्रकृतियोंके बंधवाले चौथे एक स्थानमें सत्तामें प्रकृति छह छह हैं । फिर बंधरहित एक पांचवें स्थानमें सत्तामें प्रकृति नौ नौ हैं। और फिर आगे छट्ठे स्थानमें सत्तामें प्रकृति छह छह हैं। और अंतमें [सातवें स्थानमें] सत्तामें भी प्रकृति चार ही हैं तथा उदयमें भी प्रकृति चार ही हैं । उदयके शेष छह स्थानोंमें पाक अर्थात् उदय दो दो प्रकारके हैं, एक चारका, दूसरा पांच प्रकृतियोंका ।

इन तेरह स्थानोंमेंसे आदिके दो स्थानोंमें बंध नौ नौ प्रकृतियोंका है । फिर तीसरे चौथे दो स्थानोंमें बंधमें छह छह प्रकृति हैं । फिर पांचवेंसे आठवें स्थान पर्यंत चार स्थानोंमें बंधप्रकृति चार चार हैं । फिर नौवेंसे तेरहवें पर्यंतके पांच स्थानोंमें पांच शून्य हैं । इस प्रकार सर्व भंग तेरह होजाते हैं। उसका यह नीचे यंत्र है । १२—१३ ।

बंध—	९	९	६	६	४	४	४	४	०	०	०	०	०
उदय—	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
सत्ता—	९	९	९	९	९	९	६	६	९	९	६	६	४

॥३४४॥

बंधत्रये ९ । ६ । ४–सर्वे मूलभंगाः १३ ।

सत्तायां नवकं षट्कं द्वये षट्कं नव द्वये । द्वितये षट्कमेकत्र गतबंधे चतुष्टयम् ॥ १४ ॥

इति मूलभंगेषु सत्त्वभंगाः । उदयभंगाश्चत्वार पंच वा सर्वत्र ।

द्वितये नवक षट्कं ततोऽपूर्वस्य पूर्वकम् । यावद्भाग ततः सूक्ष्मं बंधे यावच्चतुष्टयम् ॥ १५ ॥

इसी ऊपरके विवेचनको आगे खुलासा करते हैं ।—

सत्तामेंकी प्रकृतियोंको बताते हैं ।–छह स्थानोंमें नौ नौ दर्शनावरण हैं। फिर सातवें आठवें इन दो स्थानोंमें छह छह दर्शनावरण हैं । फिर नौवें दशवें–इन दो स्थानोंमें नौ नौ प्रकृति हैं । फिर दो स्थानोंमें छह छह प्रकृति हैं । फिर अंतके बंधरहित स्थानमें चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृति हैं । १४ ।

इस प्रकार मूल भंगोंमें सत्ताके भंग समझना । उदयके भंग सर्वत्र चार अथवा पांच प्रकृतिके संभवसे दो दो हैं ।

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणके बंधको बताते हैं ।—

पहिले दूसरे इन दो गुणस्थानोंमें नौ नौ दर्शनावरण प्रकृतियोंका बंध होता है । फिर अपूर्वकरण–आठवें गुणस्थानके पहिले भाग पर्यंत छह प्रकृतियोंका बंध होता है। फिर सूक्ष्म–दशवें गुणस्थान पर्यंत–नौवें दशवें–इन दो गुण-स्थानोंमें चार चार प्रकृतियोंका बंध होता है। अर्थात फिर ऊपर उपशांत कषायसे लेकर दर्शनावरणका बंध नहीं है ।

भावार्थ, नौ प्रकृतियोंमेंसे स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंका बंध होना तीसरे गुण स्थानसे लेकर रुक जाता है । दूसरे गुणस्थानमें इन तीन निद्राओंकी बंधव्युच्छित्ति होना बताया है । इसलिये तीसरे गुणस्थानसे अपूर्वकरणके सात भाग पर्यंत दर्शनावरणकी छह प्रकृतियोंका बंध है । आगे दो बची हुई निद्राओंका भी बंध होना रुक जाता है इसलिये आगे बंधमें चार ही दर्शनावरणकी प्रकृति रहती हैं । फिर आगे उपशांतादि गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी शेष चार प्रकृतियोंका भी बंध होना रुक जाता है । इसलिये आगे बंधस्थानोंमें शून्य हैं । १५ ।

४४

॥३४५॥

गुणस्थानेषु बंधः—९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ४ । ४ । ० । ० । ० । ० ।

सत्वे नवोपशांतांता क्षीणे षट् प्रथमे क्षणे । चतस्रोऽत्रांतिमे ज्ञेयाः सत्त्व नास्ति तत परम् ॥ १६ ॥
क्षपके सत्यपूर्वस्य नव प्रकृतय स्फुटम् । अनिवृत्तेरसख्येयभागेषु षडत. परम् ॥ १७ ॥

९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ६ ४ ० ०
९ ९।६ ६ क्षी प्र. क्षी अ
क्ष. (क्षपक श्रेणी)

गुणस्थानोंमें क्रमसे बंध [९ । ९ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ४ । ४ । ० । ० । ० । ० ।] इस प्रकार है ।

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी सत्ताको बताते हैं ।—प्रथम गुणस्थानसे उपशात-ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्तामें दर्शनावरणकी नौ प्रकृति रहती हैं । क्षीण—बारहवें गुणस्थानके प्रथम क्षणमें अर्थात् उपात्य समय पर्यंत आदिकी छह प्रकृति रहती हैं । और बारहवें गुणस्थानके अतिम समयमें चक्षुर्दर्शनावरणादि आदिकी चार प्रकृति रहती हैं। इसके आगे अर्थात् तेरहवें चौदहवें गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी सत्ता नहीं है । १६ ।

क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण गुणस्थानमें नौ प्रकृति हैं। और अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यंत नौ प्रकृति हैं, फिर आगे छह प्रकृति रहती हैं । भावार्थ, दशवेंमें क्षपक हो तो छह प्रकृति रहती है; यदि उपशम श्रेणीवाला हो तो नौ प्रकृति रहती हैं। क्षीणकषायके प्रथम क्षणमें अर्थात् उपात्य समयमें छह प्रकृति रहती हैं, अतिम समयमें चार प्रकृति सत्तामें रहती है । आगे तरहवें चौदहवें गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकी सत्ताका अभाव है । ऊपर इसका यत्र दिया । १७ ।

गोमटसारमें इसका वर्णन इस प्रकार है ।—

णव सासणोत्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति । चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरिमोत्ति ॥ ४६० ॥

नव सासन इति बन्धः षट् चैव अपूर्वप्रथमभाग इति । चतस्रो भवन्ति ततः सूक्ष्मकषायस्य चरम इति ॥ ४६० ॥

अर्थ—दर्शनावरणको ९ प्रकृतिरूप—सासादनगुणस्थानपर्यंत बांधता है, इसके ऊपर अपूर्वकरण गुणस्थानके पहले भागतक दर्शनावरणकी ६ प्रकृतियोंका ही बंध होता है, इसके बाद सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानके अंतसमयतक उसीकी ४ प्रकृतियोंका बंध होता है ॥ ४६० ॥

खीणोत्ति चारि उदया पचसु णिद्दासु दोसु णिद्दासु । एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पचुदया ॥ ४६१ ॥

क्षीण इति चतस्र उदयाः पञ्चसु निद्रासु द्वयोर्निद्रयोः । एकस्यामुदयं प्राप्तायां क्षीणद्विचरम इति पञ्चोदयाः ॥ ४६१ ॥

अर्थ–दर्शनावरणकी चक्षुर्दर्शनावरणादि चार प्रकृतियोंका उदयरूप स्थान जागृतावस्थावाले जीवके क्षीणकषायगुणस्थान-पर्यंत है, और निद्रावान् जीवके क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यंत पांच निद्राओंमेंसे एकका उदय होनेपर पांच प्रकृतिरूप स्थान तथा क्षीणकषायके अंतके समीपके समयतक निद्रा और प्रचला—इन दो निद्राओंमेंसे एकका उदय होनेपर दर्शनावरणकी पांच प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना ॥ ४६१ ॥

मिच्छादुवसंतोत्ति य अणियट्टीखवगपढमभागोत्ति । णव सत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदुचरिमे ॥ ४६२ ॥

मिथ्यात्वादुपशान्त इति च अनिवृत्तिक्षपकप्रथमभाग इति । नव सत्ता क्षीणस्य द्विचरम इति च षट् चतुरुपरिमे ॥ ४६२ ॥

अर्थ —मिथ्यात्वगुणस्थानसे उपशांतकषाय गुणस्थानतक और क्षपक श्रेणीमें अनिवृत्तिकरणके पहले भागतक दर्शनावरणकी ९ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है । इनके ऊपर क्षीणकषायगुणस्थानके अंतके पहले समयतक दर्शनावरणकी ६ प्रकृतिरूप तथा उसके बाद अंतके समयमें ४ प्रकृतिरूप स्थान है ॥ ४६२ ॥

॥३४७॥

सर्वत्र चत्वारः पच चोदये परं क्षीणस्यांत्यक्षणे चतुष्टयमिति ।

४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४

५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५ ५

मिथ्यादृष्टिशासनयो –बधः ९, ९ । उदय ४, ५ । सत्ता ९, ९, । सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिपु द्विविधापूर्वकरणप्रथमसप्तमभाग यावत्-व ६, ६ । उ. ४, ५ । स ९, ९ । शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मोपशमकेपु, क्षपकेपु चापूर्वकरणस्य सप्तभागेपु पट्स्वनिवृत्यसख्यातान् बहून भागान् यावत्-बं ४, ४ । उ. ४, ५ । स. ९, ९ । तत पर क्षपितपोडशप्रकृतेरनिवृत्तेः शेषसख्याभागे सूक्ष्मक्षपके च–

ब ४, ४ । उ. ५ । स. ६, ६ । उपशांते–ब ०, ० । उ ४, ५ । स. ९, ९ । क्षीणे प्रथमे क्षणे–ब ०, ० उ ४, ५ । स ६, ६ । क्षीणांत्यक्षणे–ब ० । उ ४ । स. ४ ।

सर्वत्र उदय चारका अथवा पाचका–ऐसे दो दो प्रकारका रहता है । किंतु क्षीणकपाय–वारहवें गुणस्थानके अतमें पाचका उदय नहीं रहता, केवल चारका ही उदय रहता है । यत्र ऊपर दिया है ।

अब बंध उदय सत्ता–इन तीनोंको सर्व गुणस्थानोंमें क्रमसे एकत्र करके बताते हैं । – मिथ्यादृष्टि–प्रथम गुणस्थान, सासादन–द्वितीय गुणस्थान । इन दोनोंमें बध ९, ९ । उदय ४, ५ । सत्ता ९, ९ की । सम्यङ्मिथ्यादृष्टि तीसरे आदि गुणस्थानोंसे लेकर, दो प्रकारके अपूर्वकरणमेंसे अपूर्वकरणके पहिले सातवें भाग पर्यंत छह गुणस्थानोंमें बंध ६, ६ । उदय ४, ५ । सत्ता ९, ९ । शेषके अपूर्वकरण भागमें तथा अनिवृत्तिकरण–नौवें, सूक्ष्मसांपराय—दशवें, इन तीन गुणस्थानोंमें तथा क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरणमें सातवें अतिम छह भाग पर्यंत, एव अनिवृत्तिकरणके असख्यात बहुभाग पर्यंत—इस प्रकार इन छह स्थानोंमें बध ४, ४ । उदय ४, ५ । सत्ता ९, ९ । इस अनिवृत्ति करणके असख्यात बहुभागके आगे असख्यातवें सख्यातभागमें और सूक्ष्मकपाय-दशवें गुणस्थानमें–बध ४, ४ । उदय ४, ५ । सत्ता ६, ६ । फिर उपशात कषाय–ग्यारहवें गुणस्थानमें बध नहीं है ०, ० । उदय ४, ५ । सत्ता ९, ९ । क्षीणकषायके प्रथम अर्थात् उपात्य क्षणमें बंध ०, ० । उदय ४, ५ । सत्ता ६, ६ । क्षीणकषायके अंतिम समयमें बध ० । उदय ४ । सत्ता ४ ।

सप्त गोत्रेऽष्ट वेद्ये स्युर्भगाः पच नवोदिताः । नव पंच क्रमाच्छ्‌वभ्रतिर्यङ्नरसुरायुषाम् ॥ १८ ॥

गोत्रे ७ । वेद्ये ८ । आयुषि—५ । ९ । ९ । ५ ।

अब दूसरी प्रकृतियोंके भग बताते हैं ।—गोत्र कर्ममें भंग सात हैं । वेदनीयमें भंग आठ हैं । और क्रमसे नरक आयुके भग पाच हैं, तिर्यंच आयुके भग नौ हैं, मनुष्य आयुके भी नौ हैं, देव आयुके भग पांच हैं । १८ ।

गोत्रमें ७ । वेदनीयमें ८ । आयुमें क्रमसे ५ । ९ । ९ । ५ ।

वेदनीयके तथा गोत्रके बंधादि त्रयको गोमटसारमें किस प्रकारसे बताया है उसको आगे दिखाते हैं ।—

पहले वेदनीयके भगोंको कहते हैं,—

सादासादेक्कदर बधुदया होंति समवट्ठाणे । दोसत्त जोगित्ति य चरिमे उदयागद सत्तं ॥ ६३३ ॥ गो० क० ।
छट्ठोत्ति चारि भगा दो भगा होंति जाव जोगिजिणे । चउभगाऽजोगिजिणे ठाण पडि वेयणीयस्स ॥६३४॥ जुम्म ।

सातासातैकतरं वन्धोदयौ भवत समवस्थाने । द्विसत्त्व योगीति च चरमे उदयागतं सत्त्वम् ॥ ६३३ ॥
षष्ठ इति चत्वारो भङ्गा द्वौ भङ्गौ भवतो यावत् योगिजिनम् । चतुर्भङ्गा अयोगिजिने स्थान प्रति वेदनीयस्य ॥६४४॥ युग्मम्

अर्थ—साता और असाता इन दोनोंमें एक ही का बध तथा उदय योग्यस्थानमें होता है और सत्त्व दो दो का ही सयोगीपर्यंत है । अयोगीके जिसका उदय उसीका सत्त्व होता है । इसलिये वेदमीयकर्मके गुणस्थानों प्रति भंग इस प्रकार कहे हैं कि-प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत चार भंग हैं, सयोगीजिनपर्यंत दो भंग होते हैं, और अयोगी गुणस्थानमें ४ भग कहे हैं ॥६३३—६३४॥

आगे गोत्रकर्मके भंग कहते हैं,—

णीचुच्चाणेकदर बंधुदया होंति समवट्ठाणे । दोसत्ताजोगित्ति य चरिमे उच्च हवे सत्त ॥ ६३५ ॥
नीचोच्चयोरेकतरं बंधोदयौ भवत. समवस्थाने । द्विसत्त्वमयोगीति च चरमे उच्चं भवेत् सत्त्वम् ॥ ६३५ ॥

अर्थ– नीचगोत्र और ऊंचगोत्र इन दोनोंमेंसे एक ही का बंध तथा उदय यथायोग्य स्थानोंमें होता है। और सत्त्व तो अयोगीके अंतके दूसरे समयपर्यंत दोनोंका ही पाया जाता है। तथा अयोगीके अंतके समयमें उच्चगोत्रका ही सत्त्व होता है।६३५।

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्त तु । सेसिगिवियले सयले णीचं च दुग च सत्त तु ॥ ६३६ ॥
उच्चोद्वेलिततेजसि वायौ च नीचमेव सत्त्व तु । शेषैकविकले सकले नीचं च द्विक च सत्त्व तु ॥ ६३६ ॥

जिसके ऊंचगोत्रकी उद्वेलना हुई ऐसे तेजःकायिक और वायुकायिक जीवोंके नीचगोत्रका ही सत्त्व है। और शेष एकेंद्री—विकलेंद्री तथा पंचेंद्री, इनके नीचगोत्रका अथवा दोनोंका सत्त्व है। ६३६ ।

यही दिखलाते हैं,—

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु । उप्पण्णपढमकाले णीच एयं हवे सत्त ॥ ६३७ ॥
उच्चोद्वेलिततेजसि वायौ शेषे च विकलसकलेपु । उत्पन्नप्रथमकाले नीचमेक भवेत् सत्त्वम् ॥ ६३७ ॥

अर्थ —उच्चगोत्र उद्वेलना सहित तेज.कायिक और वायुकायिक जीवोंके एक नीचगोत्रका ही सत्त्व है। और इन दोनोंका मरण होकर शेष एकेन्द्री–विकलेन्द्री और पंचेन्द्रीमें उत्पन्न होनेके अतर्मुहूर्तकाल पहले एक नीच गोत्रका ही सत्त्व है, पीछे उच्चगोत्रको बाधनेसे दोनोंका सत्त्व होता है। ६३७ ।

मिच्छादिगोदभंगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठाणेसु । एक्केका जोगिजिणे दो भंगा होंति णियमेण ॥ ६३८ ॥
मिथ्यादौ गोत्रभङ्गा पञ्च चत्वार त्रिपु द्वौ अष्टस्थानेपु । एकैक· अयोगिजिने द्वौ भङ्गौ भवतो नियमेन ॥ ६३८ ॥

अर्थ —गोत्रके भंग नियमसे मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानोंमें क्रमसे ५ और ४ होते हैं, मिश्रादि तीन गुण–स्थानोंमें दो दो भंग हैं, प्रमत्तादि आठ गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मका एक एक ही भग है, और अयोगकेवलीके दो भग होते हैं।५३८।

आगे आयुके भंग १३ गथाओंसे कहते हैं,–

सुरणिरया णरतिरिय छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स । णरतिरिया सव्वाउ तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥ ६३९ ॥
भोगभुमा देवाउ छम्मासवसिट्ठगे य बंधति । इगिविगला णरतिरिय तेउदुगा सत्तगा तिरिय ॥ ६४० ॥

सुरनिरया नरतिर्यञ्चं षण्मासावशिष्टके स्वकायुष. । नरतिर्यञ्च सर्वायूषि त्रिभागशेषे उत्कृष्टम् ॥ ६३९ ॥
भोगभूमा देवायु षण्मासावशिष्टके च बध्नन्ति । एकविकला नरतिर्यञ्च तेजोद्विकौ सप्तक· तिर्यञ्चम् ॥ ६४० ॥ युग्मम्

अर्थ—भुज्यमान अपनी आयुके अधिकसे अधिक ६ महीने शेष रहनेपर, देव और नारकी मनुष्यायु–तिर्यंचायुका बंध करते है। मनुष्य और तिर्यंच, अपनी आयुके तीसरे भागके शेष रहनेपर चारों आयुओंको बांधते हैं। भोगभूमिया जीव अपनी आयुके ६ महीने बाकी रहनेपर देवायुका बंध करते हैं। एकेन्द्री और विकलत्रय जीव, मनुष्यायु वा तिर्यंचायुको बांधते हैं, परंतु तेज कायिक–वायुकायिक जीव और सातवीं पृथिवीके नारकी तिर्यंचआयुका ही बंध करते हैं ॥ ६३९–६४० ॥ इस प्रकार आयुके बंधको कहा।

अब आयुके उदयसत्त्वको कहते हैं,–

सगसगगदीणमाऊ उदेदि बंधे उदिण्णगेण समं। दो सत्ता हु अबंधे एक्कं उदयागदं सत्तं ॥ ६४१ ॥
स्वकस्वकगतीनामायुरुदेति बन्धे उदीर्णकेन समम्। द्वे सत्त्वे हि अबंधे एकमुदयागत सत्त्वम् ॥ ६४१ ॥

अर्थ— नारकी आदि जीवोंके अपनी अपनी गतिकी एक आयु ही उदय होती है। और परभवकी आयुका भी बंध हो जावे तो उदयरूप आयुसहित दो आयुकी सत्ता है, और जो परभवकी आयुका बंध न हो तो एक ही उदयागत आयुकी सत्ता है, ऐसा नियमसे जानना ॥ ६४१ ॥

एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे। अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसे व सव्वत्थ ॥ ६४२ ॥
एकस्मिन्नेकमायुरेकभवे बन्धमेति योग्यपदे। अष्टवारं वा तत्रापि त्रिभागशेषे एव सर्वत्र ॥ ६४२ ॥

अर्थ— एक जीवके एक भवमें जो एक ही आयु बंधरूप होती है वह योग्यकालमें आठ वार बंधती है, वहांपर सब जगह आयुका तीसरा २ भाग शेष रहनेपर ही बंधती है ॥ ६४२ ॥

इगिवारं वज्जित्ता वड्ढी हाणी अवट्ठिदी होदि। ओवट्टणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं ॥ ६४३ ॥
एकवारं वर्जयित्वा वृद्धि· हानि· अवस्थिति भवति। अपवर्तनघात. पुन. परिणामवशेन जीवानाम् ॥ ६४३ ॥

अर्थ— पूर्वकथित आठ अपकर्षों (त्रिभागों) में पहलीवारके विना द्वितीयादि वारमें जो पहले आयु बांधी थी उसकी स्थितिकी वृद्धि–हानि अथवा अवस्थिति होती है। और आयुके बंध करनेपर जीवके परिणामोंके निमित्तसे उदयप्राप्त आयुका अपवर्तनघात (कदलीघात–घटजाना) भी हो जाता है ॥ ६४३ ॥

एवमबंधे बंधे उवरदबंधेवि होंति भंगा हु। एक्कस्सेक्कम्मि भवे एक्काउं पडि तये णियमा ॥ ६४४ ॥
एवमबन्धे बन्धे उपरतबन्धेपि भवन्ति भङ्गा हि। एकस्यैकस्मिन् भवे एकायु प्रति त्रयो नियमात् ॥ ६४४ ॥

अर्थ —इस प्रकार बंध होनेपर अथवा बंध नहीं होनेपर व आगामी बंध अवस्थामें एक जीवके एकपर्यायमें एक एक आयुके प्रति तीन तीन भंग नियमसे होते हैं। ६४४।

एक्काउस्स तिभंगा संभवआऊहिं ताडिदे णाणा। जीवे इगिभवभंगा रूऊणगुणूणमसरित्थे ॥ ६४५ ॥
एकायुषः त्रिभङ्गाः संभवायुर्भिस्ताडिते नाना। जीवेषु एकभवभङ्गा रूपोनगुणोनमसदृशे ॥ ६४५ ॥

अर्थ—उन एक एक आयुके तीन तीन भंगोंको गतिमें संभव होनेवाली आयुकी संख्यासे गुणा करनेपर नाना जीवोंकी अपेक्षा एक एक भवके भंग होते हैं। और अपुनरुक्त भंगोंकी अपेक्षा वध्यमान आयुकी संख्यारूप गुणाकारमें एक घटाके जो प्रमाण हो उसे पूर्वकथित भंगोंमें घटानेसे अपुनरुक्त भंग होते हैं ॥ ६४५ ॥

अब गुणस्थानोंमें आयुके अपुनरुक्त भंगोंको दिखाते हैं;—

पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु होंति मिच्छम्मि। णिरयाउबंधभंगेणूणा ते चेव विदियगुणे ॥ ६४६ ॥
पञ्च नव नव पञ्च भङ्गा आयुश्चतुष्केषु भवन्ति मिथ्यात्वे। निरयायुर्बन्धभङ्गेनोनास्ते चैव द्वितीयगुणे ॥ ६४६ ॥

अर्थ—वे अपुनरुक्त भंग मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें नरकादिगतिकी चार आयुओंमें क्रमसे ५, ९, ९, ५, जानना चाहिये। और दूसरे गुणस्थानमें नरकायुके बंधरूप भंगके विना शेष भंग होते हैं। अर्थात् वहांपर ५, ८, ८, ५ भंग जानना ॥ ६३६ ॥

सव्वाउबंधभंगेणूणा मिस्सम्मि अयदसुरणिरये। णरतिरिये तिरियाऊ तिण्णाउगबंधभंगूणा ॥ ६४७ ॥
सर्वायुर्बन्धभङ्गेनोना मिश्रे अयतसुरनिरये। नरतिरश्चि तिर्यगायु त्रिकायुष्कबन्धभङ्गोना ॥ ६४७ ॥

अर्थ —जोकि पहले आयुबन्धकी अपेक्षा भंग कहे गये थे वे सब कम करनेसे मिश्रगुणस्थानमें नरकादि गतियोंमें क्रमसे ३, ५, ५, ३ भंग होते हैं, और असंयतगुणस्थानमें देव-नरकगतिमें तो तिर्यंचआयुका बन्धरूप भंग न होनेसे चार-चार भंग हैं, तथा मनुष्य-तिर्यंचगतिमें आयुबन्धकी अपेक्षा नरकतिर्यंचमनुष्यायुबन्धरूप तीन भंग न होनेसे छह छह भंग हैं, क्योंकि इनके बन्धका सासादनगुणस्थानमें ही व्युच्छेद (बंधका अभाव) हो जाता है ॥ ६४७ ॥

देस णरे तिरिये तियतियभंगा होंति छट्ठसत्तमगे । तियभंगा उवसमगे दो दो खवगेसु एक्केको ॥ ६४८ ॥

देशे नरे तिरश्चि त्रिकत्रिकभङ्गा भवन्ति षष्ठसप्तमके । त्रयभङ्गा उपशमके द्वौ द्वौ क्षपकेषु एकैक ॥ ६४८ ॥

अर्थ —देशसंयतगुणस्थानमें तिर्यंच और मनुष्योंमें बन्ध—अबंध—उपरतबन्धकी अपेक्षा तीन तीन भंग होते हैं। छट्ठे सातवें गुणस्थानमें मनुष्यके ही देवायुके बन्ध आदिकी अपेक्षा तीन तीन भंग होते हैं । उपशमश्रेणीमें देवायुका भी बन्ध न होनेसे देवायुके अबन्ध—उपरतबन्धकी अपेक्षा दो दो भंग हैं। और क्षपकश्रेणीमें उपरतबन्धके भी न होनेसे अबन्धकी अपेक्षा एक एक ही भंग है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६४८ ॥

आगे गुणस्थानोंमें जो सब गतियों सम्बन्धी आयुके भंग कहे गये हैं उनका सब जोड कहते हैं ।

अडछव्वीस सोलस वीस छत्तिगतिगं च चदुसु दुगं । असरिसभंगा तत्तो अजोगिअंतेसु एक्केक्को ॥ ६४९ ॥

अष्ट षड्विंशति षोडश विंशति षड् त्रिकत्रिकं च चतुर्षु द्विकम् । असदृशभंगा तत अयोग्यन्तेषु एकैक ॥ ६४९ ॥

अर्थ —सब मिलकर अपुनरुक्तभंग मिथ्यादृष्टि आदि ७ गुणस्थानोंमे क्रमसे २८, २६, १६, २०, ६, ३, ३ हैं। उपशमश्रेणीवाले चार गुणस्थानोंमें दो दो भंग जानना । उसके बाद क्षपकश्रेणीसे लेकर अयोगिगुणस्थानतक एक एक भंग कहा गया है ॥ ६४९ ॥

॥३५३॥

उच्चं द्वयोर्द्वयोर्नीचं बधे पाके चतुष्टये । उच्चनीचोच्चनीचानि द्वयं सत्त्वे चतुष्टये ॥ १९ ॥
पंचमे सकलं नीचमित्थं वेद्येऽपि बुध्यताम् । एकोऽङ्कः प्रथमेऽन्यत्र शून्यस्तत्र निवेश्यते ॥ २० ॥

आगे वेदनीय–गोत्र–आयु इन तीनोंके मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या कहते हैं –

बादालं पणुवीसं सोलसअहियं सयं च वेयणिये । गोदे आउम्मि हवे मिच्छादिअजोगिणो भंगा ॥ ६५० ॥

द्वाचत्वारिंशत् पञ्चविंशति षोडशाधिक शत च वेदनीये । गोत्रे आयुषि भवेयुः मिथ्याद्ययोगिनो-भङ्गाः ॥ ६५० ॥

अर्थ—पहले जो मिथ्यादृष्टि आदि अयोगीपर्यंत गुणस्थानोंमें भंग कहे थे वे सब मिलकर वेदनीयके ४२, गोत्रके २५ और आयुके ११६ होते हैं ॥ ६५० ॥

आगे पूर्वोक्त वेदनीय - गोत्र - आयु इनके सामान्य रीतिसे मूल भंगोंकी संख्या कहते हैं,—

वेयणिये अडभंगा गोदे सत्तेव होंति भंगा हु । पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु विसरित्था ॥ ६५१ ॥

वेदनीये अष्ट भङ्गा गोत्रे सप्तैव भवन्ति भङ्गा हि । पञ्च नव नव पञ्च भङ्गा आयुश्चतुष्केषु विसदृशा ॥ ६५१ ॥

अर्थ—अपुनरुक्त भंग वेदनीयके ८, गोत्रके ७ होते हैं तथा चारों आयुओंके क्रमसे ५, ९, ९, ५ होते हैं ॥६५१॥

गोत्रके सात भंगोंमें परस्पर भेद क्या है । उसे आगे मूल ग्रथकार बताते हैं ।—

बधमें देखें तो दो भंगोंमें उच्च गोत्र बधको प्राप्त होता है, दोमें नीच गोत्र बधको प्राप्त होता है । उदयमें भी दोमें उच्च गोत्रका उदय है, दोमें नीच गोत्रका उदय है । और इन चार भंगोंमें सत्तामें उच्च नीच, उच्च नीच–ऐसे दोनो दोनोंकी सत्ता है । आगे पांचवें भंगमें सपूर्ण नीच ही है अर्थात् बध भी नीचका ही है, उदय भी नीचका ही है और सत्ता भी नीचकी ही है । ऐसे ही भंगरचना वेदनीय प्रकृतिमें भी समझनी चाहिये । यंत्र बनाते समय प्रथम प्रकृतिको दिखानेकेलिये अर्थात् प्रथम भेदके स्थानमें एकका आकडा लिखना चाहिये और दूसरे प्रकृतिभेदको दिखानेमें शून्य रखना चाहिये । गोत्रमें प्रथम प्रकृति उच्च गोत्र है । इसलिये उच्च गोत्रको दिखानेकेलिए एकका अक लिखना । द्वितीय प्रकृति नीच गोत्र है । उसको दिखानेकेलिए शून्यका संकेत

बंध	१	१	०	०	०
उदय	१	०	१	०	०
सत्ता	१।०	१।०	१।०	१।०	०।०

अत्रांकसदृष्टेरुच्चे एको नीचे शून्यः १।० । एकः साते शून्योऽसाते १।० ।

आद्ये पञ्चादिमा भंगाश्चत्वारः स्वस्तदर्शने । द्वावाद्यौ त्रितयेऽन्यत्र पञ्चकेस्त्येक आदिमः ॥ २१ ॥

लिखना चाहिए। वेदनीयमें भी सातावेदनीय प्रथम है। उसका एक अंक लगाना। असातावेदनीय द्वितीय है। उसका शून्य रखना। यह संकेतकी संख्या है। यंत्र आगे दिया है। १९-२०।

भावार्थ, यंत्रपरसे देखनेसे मालूम होता है कि एक भंगमें बंध उच्च गोत्रका, उदय उच्च गोत्रका, सत्ता उच्चनीच-दोनो प्रकृतियोंकी है। दूसरा भंग ऐसा है जिसमें बंध उच्चगोत्रका, उदय नीचगोत्रका, सत्ता दोनोंकी है। तीसरा एक भंग ऐसा है जिसमें बंध नीच गोत्रका, उदय उच्चगोत्रका, सत्ता दोनों की है। चौथा भंग ऐसा है जिसमें बंध नीच गोत्रका, उदय नीच गोत्रका, सत्ता दोनोंकी है। पांचवा भंग ऐसा है जिसमें बंध भी नीचगोत्रका, उदय भी नीचगोत्रका, और सत्ता भी नीचगोत्रकी ही है। देखो यंत्रपरसे—

बंध—	१	१	०	०	०
उदय—	१	०	१	०	०
सत्ता—	१।०	१।०	१।०	१।०	०

किस गुणस्थानमें गोत्रके कितने भंग हैं वह आगे दिखाते हैं।—

आदिके प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आदिके पांच भंग होते हैं। स्वस्तदर्शन अर्थात् सासादन दूसरे गुणस्थानमें आदिके चार भंग होते हैं। उसके आगे तीन गुणस्थान—तीसरा, चौथा, पांचवा—इन तीन गुणस्थानोंमें आदिके दो भंग होते हैं। इससे आगेके पांच—छट्ठेसे दशवें पर्यंतके—इन पांच गुणस्थानोंमें आदिका एक एक भंग है। २१।

मिथ्यादृष्ट्यादिषु दशसु पंचानां विभागः ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ ।
उच्च पाके द्वय सत्त्वे चतुष्के बंधवर्जिते । अयोगस्योच्चमत्येऽस्ति समये पाकसत्त्वयोः ॥ २२ ॥
चतुर्षु उ. १ । स. १।० । अयोगांत्यक्षणे उ १ । स. १ । एवं सप्त ७ ।
चत्वारो गोत्रवद्भङ्गा वेद्यस्य प्रथमा मताः । आद्येषु षट्सु ते संति प्रथमौ द्वौ च सप्तसु ॥ २३ ॥
आद्यौ बंधपरित्यक्तावयोगे द्वावुपान्तिमे । द्वावसाते तथा साते तस्यान्ते पाकसत्त्वयो ॥ २४ ॥

मिथ्यादृष्टि आदि दश गुणस्थानोंमें पांच भंगोंका विभाग— ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ इस प्रकार है ।

अब दश गुणस्थानके ऊपर बताते हैं — ग्यारहवेंसे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें गोत्रके बंधका अभाव है । उदयमें उच्च गोत्र है । सत्तामें दोनों गोत्र हैं । परंतु अयोग–चौदहवें गुणस्थानके अंत समयमें उदयमें भी एक उच्चगोत्र है और सत्तामें भी एक उच्च गोत्र ही रह जाता है । चारमें–उ०–१ । स १ । ० । तथा अयोगके अंतमें उ० १ । स. १ । इस प्रकार भंग ७ हुए ॥ २२ ॥

अर्थात् प्रथमसे दशवें गुणस्थान पर्यंत दश गुणस्थानोंमें पांच पर्यंतके भंग होना ऊपर बताया है, और ग्यारहवेंसे चौदहवेंके उपांत्य समय पर्यंत एक भंग, और फिर अंत्य समयमें एक दूसरा भंग–ऐसे मिलकर सात भंग हो जाते हैं ।

गोत्रकी भांति वेदनीयके भी आदिके छह गुणस्थानोंमें पहिले चार भंग हैं । और फिर तेरहवें पर्यंत आगेके सात गुणस्थानोंमें आदिके दो भंग हैं । अयोग–चौदहवें गुणस्थानमें उपांत्य समय पर्यंत आदिके दो भंग हैं । अयोगके उपांत्य समयवाले इन दोनों भंगोंमें वेदनीयका बंध नहीं है । और अंत्य समयमें बंधरहित केवल उदयके तथा सत्ताके ही संबंधसे दो भंग होते हैं वे–एक तो सातावेदनीयमें समझना और दूसरा असातामें समझना–ऐसे दो हैं । मिलकर ये सर्व आठ भंग हुए । २३–२४ ।

श्वभ्रायुरुदितं सत्त्व तिर्यगायुरबध्नतः । बध्नतस्तत्र जायेते बध्यमानोदिते सती ॥ २५ ॥
सती बद्धोदिते बद्धे मर्त्यायुष्यप्यय क्रमः । एकद्वित्रिचतुर्भिश्च संज्ञांकैरायुषां क्रमात् ॥ २६ ॥

इस वेदनीयका यंत्र इस प्रकार है ।—

बंध—	१	१	०	०				
उदय—	१	०	१	०	१	०	०	१
सत्ता—	१।०	१।०	१।०	१।०	१।०	१।०	०	१

यहांपर भी शून्यका अर्थ असाता है और एक अंकका अर्थ सातावेदनीय है ।

अब आयुप्रकृतिके भंगोंको समझाते हैं ।

प्रथम नरकायुको लेकर उसमें पांच भंग बताये हैं उनका स्पष्टीकरण करते हैं ।— एक जीव नरकगतिमें है, उसके नरकायुका उदित अर्थात् उदय है, सत्ता भी नरकायुकी है । उसने किसी आयुको नवीन बांधा नहीं है । ऐसा एक भंग हुआ । दूसरा भंग ऐसा कि एक नारकी तिर्यंच आयुको बांधता है उसके सत्ता दो आयुओंकी होजाती है, एक बध्यमान तिर्यंच आयुकी और दूसरी उदय पाई हुई नरकायुकी । यही क्रम मनुष्यायुको बांधनेवाले नारकी जीवमें समझना । एक बध्यमान मनुष्यायु और दूसरी उदीयमान नरकायु—इन दोकी सत्ता वहांपर समझना । इन आयुओंमें यंत्र बनाते समय नरकायुके स्थानमें एकका अंक लिखना चाहिये, तिर्यंच आयुके लिये दो का अंक, मनुष्यायुके लिये तीन का अंक, और देवायुकेलिये चारका अंक लगाना चाहिये । भावार्थ, क्रमसे चार अंकोंका अर्थ चार आयु करना चाहिये ॥ २५ - २६ ॥

मानवभवायुरुदयेऽबन्धे बन्धे पुनश्चतुष्कस्य । मानुषजीवितसत्त्वे सत्त्वे वा परचतुष्कस्य ॥ २९ ॥

मनुष्यायुर्भंगाः९—									
	०	१	०	२	०	३	०	४	०
	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

पाके देवायुषोऽबन्धे बन्धे तिर्यङ्नरायुषोः । सत्त्वे देवायुषो भङ्गास्तदाद्यो. परयोरपि ॥ ३० ॥

देवायुर्भंगाः५—					
	०	२	०	३	०
	४	४	४	४	४
	४	४।२	४।२	४।३	४।३

मनुष्यायुके उदय होनेसे जो मनुष्य भवको धारण कर रहा है उस जीवके तिर्यंचके ही समान नौ भंग होते हैं । उसका अर्थ इस प्रकार है ।– मनुष्यभवायुका उदय है, बंध नहीं है, सत्तामें मनुष्यायु है–ऐसा एक भंग है । उदय एक मनुष्यायुका लेकर, बंधमें क्रमसे चारों आयुओंका दिखाकर तथा सत्तामें नवीन चारों आयुओंमेंसे एक एक और भुज्यमान मनुष्यायु एक–इस प्रकार दो दो की सत्ता रखकर चार भंग होते हैं । और बंध नवीन आयुका होकर रुक जानेपर बंधमें शून्य, और सत्तामें दो दो आयु–इस प्रकारके चार भंग होते हैं । सत्ताकी दो दो आयुओंमेंसे एक तो नवीन बंधी हुई आयु और एक भुज्यमान आयु–मनुष्यायु–ये दो समझनी चाहिये । इस प्रकार मनुष्यभवायुकी सत्तामें और मनुष्यायुके उदयमें जो मनुष्य पर्यायको धारण कर रहा है उसके आयुकर्मके नौ भंग हैं । यंत्र ऊपर दिया है । यंत्रका अर्थ तिर्यंचके नौ भंगवाले यंत्रके समान समझना । २९ ।

देवायुके भंगोंको बताते हैं । नरकगतिके समान देवायुमें भंग सर्व पांच हैं और उनकी यंत्ररचना भी नरकगतिके समान ही होती है । वह इस प्रकार है ।–

देवायुका उदय होनेपर देव पर्यायको पालेनेवाले जीवके देवायुका सदा उदय भी है और सत्तामें भी सदा देवायु है ही । देवायुको जतानेके लिये यंत्रमें चार संख्याका संकेत है । प्रथम भंग ऐसा है जिसके बंधमें नवीन कोई आयु नहीं है इसलिये

द्वयेकाग्रे विंशती ते त्रिसप्तन्यूने मनीषिणः । नव पंच च चत्वारि त्रीणि द्वे विदुरेककम् ॥ ३१ ॥
यानीति मोहनीयस्य स्थानानि दश कर्मणः । बन्धं सन्ति गुणस्थाने तेषामस्तीति योजना ॥ ३२ ॥

बंधस्थानमें शून्य है । उदय एक देवायुका अर्थात् चार संख्याका है । सत्तामें भी एक देवायु है । दूसरे भंगमें बंध तिर्यंच आयुका है । उसकी अकसंख्या दो है । उदयमें देवायु ही है । सत्तामें दो आयु हैं—एक भुज्यमान देवायु, दूसरी बध्यमान तिर्यंच आयु । इसलिये सत्त के दूसरे कोष्ठकमें ४—२ अक हैं । तिर्यंच आयुका बंध होजानेपर जब बंध थम गया हो तबकी अपेक्षासे तीसरा स्थान है, इसलिये बंधमें शून्य है, परंतु सत्तामें ४—२ अंककी सत्ता है । चौथे भगमें मनुष्यायुका बंध बताया है । यहां बंधमें एक मनुष्यायु जिसका अक ३ है वह है, उदयमें देवायु है, सत्तामें देवायु तथा मनुष्यायु ये दो हैं । इसके अंक ४—३ हैं । पांचवें भंगमें मनुष्यायुका बंध होकर थम गया है इसलिये बंधस्थानमें शून्य है, उदय तथा सत्ता चौथे भंगके ही समान है ।

श्लोकार्थ —देवायुके उदयमें नवीन बंधका अभाव रहनेपर; एवं तिर्यगायु तथा देवायु—इन दोका क्रमसे बंध होनेपर अथवा बंध होकर थम जानेपर, एवं सत्तामें केवल देवायुके रहनेपर, तथा देवायुके साथ दूसरी दो आयु—तिर्यंच आयु मनुष्यायु —इन दोके रहनेपर भंग होते हैं । अर्थात् वे भग पाच हैं ॥ ३० ॥

देवायुके भंग ५—

बंध —	०	२	०	३	०
उदय —	४	४	४	४	४
सत्ता —	४	४।२	४।२	४।३	४।३

मोहनीय कर्मके दश स्थान बंधमें बताये हैं । एक तो दो अधिक बीस अर्थात् बाईस मोह प्रकृतियोंका स्थान है । दूसरा एक अधिक बीसका अर्थात् इक्कीसका स्थान है । तीसरा स्थान तीन कम बीसका अर्थात् सत्रह प्रकृतियोंका है । चौथा स्थान सात कम बीसका अर्थात तरह प्रकृतियोंका है । पांचवां स्थान नौ प्रकृतियोंका है । छठा स्थान पांच प्रकृतियोंका, सातवां स्थान चार प्रकृतियोंका, आठवां स्थान तीन प्रकृतियोंका, नौवां स्थान दो प्रकृतियोंका, और दशवा स्थान एक प्रकृतिका है । ये जो मोहनीय कर्मके बंध सम्बन्धी दश स्थान हैं उनको गुणस्थानोंमें आगे जोडकर दिखाते हैं ॥ ३१—३२ ॥

२२ । २१ । १७ । १३ । ९ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

मिथ्यात्वयुजि मिथ्याव कषाया षोडशैककः । वेदो हास्यादिकेष्वेकं युग्म भयजुगुप्सने ॥ ३३ ॥
द्वाविंशति।मिथ्यात्विषढका स्वस्तदर्शने । न्यूनानन्तानुबन्धिस्त्रीवेदैर्मिश्रचतुर्थयो. ॥ ३४ ॥

१ । १६ । १ । २ । १ । १ । मीळिता २२ । इति ।

---

२२ । २१ । १७ । १३ । ९-+-५ । ४ । ३ । २ । १ ।

बाईस मोहप्रकृतियोंका स्थान मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है उसको आगे दिखाते हैं ।—

मिथ्यात्वयुक्त जीवके एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदोंमेंसे एक कोई भी वेद, हास्यादि दो युगलोंमेंसे एक युगलकी दो प्रकृति, भय, जुगुप्सा–ये बाईस मोह प्रकृति हैं जो मिथ्यात्व गुणस्थानमें बधको प्राप्त होती हैं । स्वस्तदर्शनमें अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्व छूट जाता है इसलिये प्रकृति यहा इक्कीस रहती हैं । और नपुसक वेदका भी बंध नहीं होता, इसलिये यहा दो वेदोंमेंसे ही एक किसी वेदका बध समझना ।

एव, मिश्र–तीसरे गुणस्थानमें और चौथे असयत गुणस्थानमें सत्रह सत्रह प्रकृतियोंका बधस्थान रहता है । यहांपर अनतानुबंधीकषाय चारका बध नहीं होता है इसलिये इक्कीसमेंसे चारकी सख्या घट जानेम सत्रह सख्या रह जाती है । इसके शिवाय यहांपर स्त्रीवेद भी बधको प्राप्त नहीं होता है और नपुसक वेदका बंध होना द्वितीय गुणस्थानसे रुक जाता है । इसलिये यहापर वेद केवल पुरुष वेद ही बधको प्राप्त होनेवाला है ऐसा समझना । इस प्रकार वेदकी एक एक प्रकृति तो यहापर उत्तरोतर बंधमेंसे कम हो जाती है । परंतु पुरुषवेदके शेष रहनेसे स्थानकी सख्यामें कोई अंतर नहीं पडता है । हा, जहांपर स्थानोंके भग बतायेंगे वहां र वेदके द्वारा भगसंख्या घट जायगी । ३३—३४ ।

मिथ्यादृष्टौ प्रस्तार —२ । २, २ । १,-१, १ । १६ । १ । शासने २१ । प्रस्तारः—२ । २, २ । १, १ । १६ । मिश्राव्रतयो १७ । प्रस्तारः—२ । २, २ । १ । १२ ।

अप्रत्याख्यानकैरूना देशे षष्ठ तृतीयकैः । सप्तमाष्टमयोरेते शोकारतिं विना कृताः ॥ ३५ ॥

देशे १३ । प्रस्तारः—२ । २,२ । १ । ८ । षष्ठे ९ । प्रस्तारः—२ । २,२ । १ । ४ । सप्तमाष्टमयो ९ । प्रस्तारः—२ । २ । १ । ४ ।

बंधे पुंवेदसंज्वालाः सज्वाला नवमे क्रमात । एकद्वित्रिभिरूनास्ते मोहने क्रमतो बुधैः ॥ ३६ ॥

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जो बाईस मोहप्रकृति बताई है उसका प्रस्तार इस प्रकार है ।— २ । २, २ । १, १, १ । १६ । १ । सासादनमें प्रकृति २१ हैं उनका प्रस्तार—२ । २, २ । १, १ । १६ । मिश्र गुणस्थानमें और अव्रत—चौथे गुणस्थानमें प्रकृति १७, उनका प्रस्तार इस प्रकार—२ । २, २ । १ । १२ ।

देशविरत—पांचवें गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण नामके दूसरे चार कषायोंका बंधाभाव होजानेसे तेरह प्रकृतियोंका स्थान रह जाता है । छट्ठे गुणस्थानमें तीसरे कषाय प्रत्याख्यानावरण चारका बंधाभाव होजानेसे मोहकी नौ प्रकृतिका स्थान रह जाता है । और सातवें आठवें—इन दो गुणस्थानोंमें शोक तथा अरति—इन दो प्रकृतियोंका बंध होना रुक जाता है इसलिये सातवें आठवें गुणस्थानोंके प्रस्तारमें अन्तर पड़ जाता है । किंतु प्रकृतिसंख्या छट्ठे गुणस्थानके समान नौ ही रहती है ॥ ३५ ॥

देशसंयतमें मोहकी बंधप्रकृति १३ और प्रस्तार इस प्रकार है।—२।२—२।१।८। छट्ठे गुणस्थानमें प्रकृति नौ और प्रस्तार इस प्रकार है । — २।२—२।१।४। सातवें आठवें गुणस्थानोंमें प्रकृति नौ और प्रस्तार इस प्रकार है ।—२।२।१।४।

नौवें गुणस्थानमें प्रारंभमें पुरुषवेद तथा चार सज्वलन कषाय—इन पांचका बंध होता है । फिर पुरुषवेद भी छूट जाता है, केवल चार सज्वलन कषायोंका बंध होता रहता है । फिर आगे चलकर सज्वलन चार कषायोंमेंसे एक क्रोधका बंध होना रुक जाता है तब तीन सज्वलन प्रकृतिके बंधका स्थान प्राप्त होजाता है । उसके आगे संज्वलन मान इस एक प्रकृतिका भी बंधाभाव हो जाता है, तब दो मोह प्रकृतिका बंधस्थान रह जाता है । इसके आगे चल कर फिर एक माया सज्वलन प्रकृतिका भी बंधाभाव होजाता

नवमे ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

भंगाः षडादिमे बंधे चत्वारस्ते द्वितीयके । द्वौ द्वौ त्रिषु परेषु स्यादेकैको मोहकर्मणः ॥ ३७ ॥

६ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ ।

उदयस्थानानि कथ्यन्ते—

नव स्थानानि मोहस्य क्रमाद्दश दशोदये । एकद्वित्रिचतुःपंचषडष्टनववर्जिताः ॥ ३८ ॥

१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।

है, तब केवल एक सज्वलन लोभ प्रकृतिका बधस्थान रह जाता है । इस प्रकार चार सज्वलनमेंसे क्रमसे एक दो तीन प्रकृतियोंका घट जाना समझना चाहिये । ३६ ।

नौवें गुणस्थानमें ५।४।३।२।१। इस प्रकार पाच बधस्थान हैं ।

इन दश स्थानोंमें भग कितने कितने किस किस स्थानमें होते हैं वह आगे बताते हैं ।—

आदिम—बन्धके प्रथम बाईस प्रकृतिवाले एक स्थानमें भंग छह होते हैं । दूसरे स्थानमें भंग चार हैं । तीसरे, चौथे, पांचवें-इन आगेके तीन स्थानोंमें दो दो भंग होते हैं । फिर क्रमसे आगेके पाच स्थानोंमें एक एक ही भंग है । (६।४।२।२।२ १।१।१।१।१) । तीन वेदोंके बदलनेसे और हास्यादि दो युगलोंके बदलेसे प्रथम स्थानमें छह भंग हो जाते हैं । ३७ ।

अब मोहके उदय स्थानोंको दिखाते हैं ।—

मोहके उदयस्थान नौ हैं । पहिला स्थान मोहकी दश प्रकृतिका है । फिर क्रमसे दशके प्रथम स्थानमेंसे एक, दो तीन, चार, पाच, छह, आठ, तथा नौ प्रकृति कम होकर दूसरा स्थान ९ प्रकृतिका होता है, तीसरा ८ प्रकृतिका, चौथा ७ प्रकृतिका, पाचवा ६ प्रकृतिका, छट्ठा ५ प्रकृतिका, सातवा स्थान ४ प्रकृतिका, आठवा स्थान २ प्रकृतिका, और नौवां स्थान १ प्रकृतिका रह जाता है । (१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।) । ३८ ।

मिथ्यात्वमेकमेकं च कषायाणां चतुष्टयम् । वेद एकतमो युग्म हास्यादिष्वेकक भयम् ॥ ३९ ॥

जुगुप्सेत्युदये सन्ति दश प्रकृतयः स्फुटम् । मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने द्वाविंशतिनिबंधने ॥ ४० ॥

तत्र मिथ्यात्व १ । अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनेषु चत्वारः क्रोधमानमायालोभाः ४ । त्रिषु वेदेष्वेकतमो वेदः १ । हास्यरत्यरतिशोकयोरेकतरं युग्म २ । भय १ । जुगुप्सा १ । दशोदयस्थानमिदं द्वाविंशतिबंधस्थानिनि[1] मिथ्यादृष्टौ १० ।

दश मोहकी प्रकृतियोंके उदयस्थानको प्रथम बताते हैं फिर क्रमसे दूसरे तीसरे आदि स्थानोंको बतावेंगे ।—

मिथ्यात्व एक प्रकृति, अनंतानुबंधी आदि चार कषायोंमेंसे प्रत्येकके जो क्रोधादि चार चार भेद होते हैं उनमेंसे कोई एक एक क्रोधादि चार कषाय अर्थात् अनंतानुबंधी आदि चार क्रोध अथवा चार मान, अथवा चार माया, अथवा चार लोभ—इस प्रकार चार कषाय, तीन वेदोंमेंसे एक वेद, हास्य रति, अथवा अरति शोक—इन दो युगलमेंसे एक युगलका एक समयमें उदय होगा इसलिए एक युगलकी दो संख्या, एक भय, एक जुगुप्सा—ये दश प्रकृति एक समयमें उदययोग्य हैं । इस प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें बंध ऊपर बाईस मोहप्रकृतिका बताया था किंतु उदयमें ये १० ही प्रकृति एक समयमें संभव होती हैं । भावार्थ, प्रथम जो उक्त बाईसका बंध होजाता है उन्हींमेंसे उदययोग्य एक समयमें दश प्रकृति फिर उदयको प्राप्त होती हैं । ३९-४० ।

दश उदयप्रकृतियोंमें मिथ्यात्व एक है । अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण सज्वलन—इन चारमेंके चार चार क्रोध मान माया लोभ—कोई एक ये चार, तीन वेदोंमेंसे कोई एक-वेद, हास्य रति, अरति शोक—इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगलकी दो प्रकृति, एक भय, एक जुगुप्सा—यह दशका उदयस्थान, बंधस्थानकी बाईस प्रकृतियोंको लिये मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें होता है ।

---

१ 'बन्धस्थानानि' इति मूले पाठः ।

॥३६

मिथ्यात्वमाद्याः क्रमतो द्वितीयास्त्याज्यास्तृतीया भयजुगुप्सनैकम् ।
तद्युग्महास्यादियुगे सवेदे स्थाने परत्रोदययोजनाय ॥ ४१ ॥

अस्यार्थः—दशोदयस्थानतो मिथ्यात्वत्यागे नवोदयस्थानमेकविंशतिबंधके शासने । ततः कषायाणामादिचतुष्कत्यागे परचतुष्कत्रयैकतरत्रयग्रहे एकतरवेदादिपचकग्रहे चाष्टोदयस्थान सप्तदशबंधकस्य सम्यग्मिथ्यादृष्टेरसंयतस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च ८ । ततो द्वितीयचतुष्कत्यागे परचतुष्कद्वयान्यतरद्वयग्रहे एकतरवेदादिपचकग्रहे च सप्तोदयस्थान त्रयोदशबन्धकस्य संयतासंयतस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च ७ । ततस्तृतीयचतुष्कत्यागे चतुर्णां

इसके आगे द्वितीयादि स्थानोंकी सिद्धि करते हैं ।—

दूसरे स्थानमें मिथ्यात्वकी एक प्रकृति कम होजाती है । फिर क्रमसे प्रथम कषाय, द्वितीय कषाय, तीसरे कषाय, फिर भय तथा जुगुप्सा-एक एकको घटाकर, हास्यादि दो युगलवाले स्थानोंमें और वेदसहित भागपर्यंत तथा उसके आगे वेदको तथा संज्वलनोंकी प्रकृतियोंको घटाकर उदयके स्थानोंको सिद्ध करना चाहिये । उसका खुलासा नीचे देते हैं । ४१ ।

ऊपरके श्लोकका भावार्थ—दश प्रकृतिवाले प्रथम उदयस्थानमेंसे मिथ्यात्व प्रकृतिका अभाव होजानेपर सासादनमें इक्कीस प्रकृतिका बंधस्थान है और नौ प्रकृतिका उदयस्थान है । इसके आगे सत्रह प्रकृतियोंके बंधवाले मिश्र तथा असंयत औपशमिक सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टिके भी आठ प्रकृतियोंका एक उदयस्थान है । वह इस प्रकार है कि दूसरे गुणस्थान पर्यंत अनंतानुबंधी आदि चारों भेदके एक एक करके चार कषाय युगपत् उदयको प्राप्त होते थे, उनमेंसे अनंतानुबंधीका तीसरे गुणस्थानसे लेकर उदय नहीं होता, इसलिये अनंतानुबंधी कषायकी एक संख्या चार उदीयमान कषायोंमेंसे घट जाती है । इस प्रकार नौ उदययोग्य कषायोंमेंसे एक कषाय घट जानेपर उदयस्थान आठ प्रकृतिका रह जाता है । यहांपर अप्रत्याख्यानावरणादि तीन कषायोंमेंसे एक एक प्रकृतिको लेकर तीन प्रकृति इकट्ठी की जाती हैं और एक वेद तथा चार हास्यादि नोकषाय—इस प्रकार आठ प्रकृति रहती हैं ।

सज्वलनानामेकतरग्रहे एकतरवेदादिपचकग्रहे च षडुदयस्थानं नवकबन्धकानामौपशमिकक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वाणां ६ । ततो भयजुगुप्सयोरेकतरत्यागे पचोदयस्थान प्रमत्तादीनामेव ५ । ततो भयजुगुप्साद्वयत्यागे चतुरुदयस्थानं प्रमत्तादीनामेव ४ । एषामुदयस्थानानां दशादीनां कषायचतुष्कवेदत्रययुग्मद्वयाना परस्पराभ्यासे चतुर्विंशतिभगाः २४ । ततो हास्यादित्यागे च चतुर्णां सज्वलनानामेकतरग्रहे त्रयाणां च वेदानामेकतरग्रहे सवेदस्यानिवृत्तेर्द्विकमुदयस्थान

आगे द्वितीय कषायका भी अभाव होजाता है । उस स्थानमें अन्तकी दो कषायचौकडी रह जाती हैं । उनमेंसे प्रत्येक चौकडीका कोई एक एक कषाय लेनेसे दो कषाय होते हैं। और नोकषायमेंसे एक कोई वेद तथा हास्यादि तथा भयादिके मिलाकर चार शेष नोकषाय—इस प्रकार पाच सर्व नोकषाय लेनेसे सात प्रकृतिका यह उदयस्थान होता है । यह पाचवें गुणस्थानमें होता है । इस पांचवें गुणस्थानका जीव तेरह मोह प्रकृतियोंको बाधनेवाला है और वह औपशमिक सम्यग्दृष्टि भी रह सकता है तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी रह सकता है । फिर आगे छट्ठे गुणस्थानसे लेकर तीसरे- प्रत्याख्यानावरण कषाय चार प्रकृतिका उदय होना बंद पडजाता है इसलिये केवल सज्वलन मात्र चार कषाय उदयमें शेष रह जाते हैं । इन सज्वलन चारमेंसे किसी एकका उदय लेना । और एक कोई वेद तथा हास्यादिमेंके चार शेष नोकषाय—इस प्रकार पाच नोकषाय लेना । यह छह मोह प्रकृतिका उदयस्थान हुआ । यह छट्ठे सातवें आठवें—इन तीन गुणस्थानोंमें उदयस्थान होता है । इन तीन गुणस्थानोंमें नवीन जो मोह प्रकृति बधको प्राप्त होती हैं वे नौ हैं इसलिये यहां बंधस्थान नौका है । इन छह प्रकृतिमेंसे यदि भय—जुगुप्सामेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय होना रुक जाता है, तो उस अवस्थामें पांच प्रकृतिका उदय माना जाता है । यदि भय जुगुप्सा ये दोनो भी रुक जांय तो इन्हीं तीन प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें चार प्रकृतिका भी उदयस्थान होजाता है । इस प्रकार दशके उदयस्थानसे चारके उदयस्थान-पर्यंत सात स्थानोंमें क्रोधादि चार कषायोंका, वेद तीनका तथा हास्यादि दो युगलोंका युगपत् सभव न होकर अन्यतरका सभव होता है । कभी किसीका, कभी किसीका । इसलिये कषायकी चार संख्यासे, फिर वेदकी तीन संख्यासे और हास्यादि युगल दो की संख्यासे क्रमसे परस्पर गुणा जाय तो दशादि उदयस्थानके भंग २४ पर्यंत हो जाते हैं ।

२। अस्य द्वादश भगाः १२। चतुर्बंधकस्यानिवृत्तेरुदयस्थाने द्वे द्वावेकश्च। तत्राद्ये द्वादश भगाः१२। द्वितीये निर्वेदस्यानिवृत्तेश्चतुर्णां सज्वलनानामेकतरेणैकमुदयस्थान १। अस्य चत्वारो भगा ४। त्रयबंधकस्य क्रोधवर्ज्यानां सज्वलनानामेकतरेण-

---

भावार्थ, कषाय चारको वेदकी तीन सख्यासे गुणा करनेपर १२ संख्या हुई। फिर १२ को हास्यादि दो युगलकी दो सख्यासे गुणनेपर २४ संख्या हो जाती है। ये अपुनरुक्त चौवीस भग हो जाते हैं। दशके उदयस्थानमें ये चौवीस ही भंग सभव हैं। नौ आदिके ऊपरी स्थानोंमें भग कम कम होंगे क्योंकि, आगे गुणनकी चार तीन, दो इन सख्याओंमें क्रमसे घटवारी होती जाती है। जैसे नौके उदयस्थानमें कषाय चार न रहकर तीन रह जाते हैं। तीन कषायको तीन वेदसे, फिर दो युगलसे गुणनेपर अठारह भग होते हैं। इसी प्रकार आगेके भी यथासभव भंग समझना। परतु ये सर्व भग ऊपरके चौवीस भंगोंमें आजाते हैं इसलिये ये पुनरुक्त भग हैं। मूल भंग चौवीस ही हैं।

आगे नौवें गुणस्थानमें जहातक वेदोंका उदय नष्ट नहीं होता वहा पर्यंत संज्वलन चार कषायोंमेंसे एक कोई कषाय और तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद–इस प्रकार दो प्रकृतिका उदयस्थान होता है। यहांपर हास्यादि दोनो युगलोंका उदय नहीं रहता–वद पड जाता है। इस दोके स्थानमें कषाय चारकी बदलन हो सकती है और वेद तीनकी बदलन हो सकती है। इसलिये चारको तीनसे गुणनेपर १२ सख्या होजाती है। ये १२ भग इस दोके उदयस्थानमें जानना। यहांपर बधस्थान चार कषायका संभव है। भावार्थ, नौवें गुणस्थानके इस चार बधवाले भागमें उदयके स्थान दो प्रकार हैं, दो प्रकृतिका, तथा एक प्रकृतिका। इस प्रकार इस नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सवेद भाग जहांतक है वहातक दोका उदयस्थान है। और आगे वेदका उदय बंद पड जाता है वह अवेद भाग कहाता है। उस अवेद भागमें केवल एक कषायका उदय रह जाता है। सवेदके दोवाले उदयस्थानमें भग वारह बताये। किंतु चार सज्वलनका वध रहते जहापर वेदके अभाव हो जानेपर उदय एक किसी संज्वलनका ही है वहांपर उस एक उदयस्थानमें चार संज्वलनके परिवर्तन हो सकनेके कारण चार भग होते हैं। यहातक वध चार प्रकृतिका है।

इसी नौवें गुणस्थानमें आगे चलकर क्रोध छूट जाता है उस समय शेप तीन संज्वलनमेंसे किसी एकका उदय होने

॥३६८॥

कमुदयस्थान १। अस्य त्रयो भंगाः ३। द्वयबंधकस्य क्रोधमानवर्ज्ययोः संज्वलनयोरेकतरेणैकमुदयस्थान १। अस्य द्वौ भंगौ २। एकबंधकस्य लोभसंज्वलनेनैकमुदयस्थानं १। अस्यैको भंग १। अबंधकस्य सूक्ष्मस्य लोभसंज्वलनेनैकमुदयस्थान १। अस्याप्येको भंगः।

पंचदश सत्तास्थानानि कथ्यन्ते—

क्रमाद् द्वित्रिचतुःषट्कसप्ताष्टनववर्जितम्। सप्तकं त्रिंशतां कृत्वा त्रिद्व्येकसहितान् दश ॥ ४२ ॥

लगता है। इस एकके उदयस्थानमें भंग तीन होते हैं। बंध यहांपर तीनका होता है इसलिये बंधस्थान तीनका है। इसके भी आगे क्रोध मान—दोका बंध छूट जाता है इसलिये वहांपर बंधस्थान शेष दोका है। और उदय जो शेष रहे माया लोभ-इन दोमेंसे एकका है। इस एक उदयस्थानके भंग दो हैं। फिर आगे चलकर माया संज्वलन कषायका भी बंध होना रुक जाता है। वहांपर बंधस्थान भी एक लोभ संज्वलनका है, और उदयस्थान भी एक लोभ संज्वलनका है। इस उदयस्थानका भंग एक ही है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके अन्तपर्यंत बन्धस्थान तथा उदयस्थानोंका साथमें सम्भव समझना। नौवें गुणस्थानके आगे दशवें सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें मोहके बन्धका अभाव है। केवल उदयस्थान एक सूक्ष्मलोभका रह जाता है। इसका भी भंग एक ही है।

अब मोहके सत्तास्थानोंको बताते हैं। सत्तामें स्थान सर्व पंद्रह हैं। उनको क्रमसे दिखाते हैं। सबसे प्रथम यह बताते हैं कि पंद्रह स्थानोंमेंके किस किस स्थानमें कितनी कितनी सत्वप्रकृति हैं।—

तीसकी संख्यामें क्रमसे दो तीन चार छह सात आठ नौ—ये संख्याएं घटाई तो २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१—ये सात संख्याएं निकल आती हैं। अर्थात् ये ही क्रमसे सत्ताके सात पहिले स्थान हैं। इसके आगे आठवें आदि सत्ता-स्थानोंकी संख्या इस प्रकार समझो कि दशकी संख्यामें क्रमसे तीन, दो, एक—ये संख्याएं जोडना। दशमें तीन जोडनेसे १३ हुए, यह सत्ताप्रकृतियोंका आठवां स्थान है। दशमें दो जोडनेसे बारह होते हैं। यह नौवां सत्तास्थान १२ मोह प्रकृतियोंका है।

एकद्वित्रिचतुःपंचहीनान् षण्मोहकर्मणः । सत्त्वे पंचदश प्राहुः स्थानानीति मनीषिणः ॥ ४३ ॥

२८ । २७ । २६ । २४ । २३ । २२ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

दशमें एकको जोडकर ग्यारहकी संख्या होती है । यह दशवां सत्वका स्थान ११ प्रकृतियोंका है । इसके आगेके ग्यारहवें बारहवें आदि स्थानोंको निकालनेके लिये छह संख्यामें क्रमसे एक, दो, तीन, चार, तथा पांच संख्याको घटाकर जो संख्या रहे उतनी उतनी सत्वप्रकृतियोंके वे एकेक स्थान समझना । ग्यारहवां स्थान एक घाट छह अर्थात् पांचका है । बारहवां स्थान चार प्रकृतिका है । तेरहवां स्थान तीन घाट छह अर्थात् तीन प्रकृतिका है । चार घाट छहका अर्थात् दो प्रकृतिका चौदहवां स्थान है । पांच घाट छहका अर्थात् एक प्रकृतिका पंद्रहवां सत्तास्थान है । इस प्रकार तीसकी संख्यामें दो तीन आदि संख्याओंको घटाकर पहिले सात स्थान दिखाये । फिर दश संख्यामें तीन, दो, एकको जोडकर आगेके तीन स्थान दिखाये । फिर छह संख्यामें एक दो तीन चार पांचकी संख्याको घटाकर ग्यारहवेंसे पंद्रहवें पर्यंतके पांच स्थान दिखाये । इस प्रकार पंद्रह स्थानोंकी सत्त्वसंख्या इन श्लोकोंसे दिखाई है । ४२ – ४३ ।

२८ । २७ । २६ । २४ । २३ । २२ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

अब आगे मोहके बंधोदयसत्त्वको गोमट्टसारके अनुसार दिखानेके लिये ६९१ वें के गाथा पर्यंतका वर्णन करते हैं ।—

आगे मोहनीयके त्रिसंयोगी भंगोंको कहते हैं,—

मोहस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु । पत्तेउत्त व हवे तियसजोगेवि सव्वत्थ ॥ ६५२ ॥

मोहस्य च बन्धोदयसत्त्वस्थानानां सर्वभङ्गा हि । प्रत्येकोक्त व भवन्ति त्रिकसंयोगेपि सर्वत्र । ६५२ ।

अर्थः—मोहनीयकर्मके बंध उदय सत्त्वस्थानोंके सब भंग जिस तरह पहले जुदे २ कहे थे उसीतरह बंधादिके संयोगरूप त्रिसंयोगमें भी सब जगह भंग होते हैं ॥ ६५२ ॥

॥३७०॥

आगे गुणस्थानोंमें मोहके स्थानोंकी संख्या कहते हैं,—

अट्ठसु एक्को बंधो उदया चदु ति दुसु चउसु चत्तारि। तिण्णि य कमसो सत्तं तिण्णेगदु चउसु पणग तियं ॥ ६५३ ।
अणियट्टीबंधतिय पणदुगएक्कारसुहुमउदयसा। इगि चत्तारि य संते सत्त तिण्णेव मोहस्स॥ ६५४ ॥ जुम्म ।
अष्टसु एको बन्ध उदया चत्वार त्रय द्वयो चतुर्षु चत्वार।त्रीणि च क्रमश सत्त्वं त्र्येकद्विक चतुर्षु पञ्चक त्रिकम् ।६५३।
अनिवृत्तिबन्धत्रिक पञ्चद्विकैकादश सूक्ष्मोदयांशा। एक चत्वारश्च शाते सत्त्व त्रीण्येव मोहस्य । ६५४ । युग्मम् ।

अर्थ'—मोहनीयके पूर्वोक्त बन्ध उदय सत्त्वस्थानोंमें यथासभव बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि आदि ८ गुणस्थानोंमें तो एक एक ही है। उदयस्थान पहले गुणस्थानमें ४, इससे आगे दो गुणस्थानोंमें तीन तीन, इसके बाद चार गुणस्थानोंमें चार चार, एकमें तीन–इस तरह क्रमसे जानना। और सत्त्वस्थान हैं वे क्रमसे मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें तो ३, १, २, जानना। इसके बाद चार गुणस्थानोंमें पाच पांच, इससे आगेके गुणस्थानोंमें ३ ही हैं। और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें बन्ध उदय सत्त्व-स्थान क्रमसे ५, २, ११, जानना चाहिये। सूक्ष्मसापरायमें उदयस्थान और सत्त्वस्थान क्रमसे एक और चार है। उपशांतकषाय नामा ग्यारहवें गुणस्थानमें बन्ध—उदयका अभाव होनेसे सत्त्वस्थान ही ३ पाये जाते हैं। ६५३–६५४ ।

आगे वे कौन २ स्थान हैं उनको दिखाते हैं,—

बावीस दसयचऊ अडवीसतिय च मिच्छबंधादी। इगिवीस णवयतिय अट्ठावीसे च विदियगुणे ॥ ६५५ ॥
द्वाविंशति दशकचतुष्कमष्टाविंशतित्रिक च मिथ्ये बन्धादि । एकविंशति नवकत्रिकमष्टाविंशतिश्च द्वितीयगुणे । ६५५ ।

अर्थ.—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें बन्ध उदय सत्त्वस्थान क्रमसे २२ का, १० वें को लेकर चार, २८ वें को लेकर तीन हैं। और सासादनगुणस्थानमें बन्धस्थान २१ का, उदयस्थान ९ वें से लेकर तीन अर्थात् ९ वां ८ वा ७ वां तथा सत्त्वस्थान २८ का जानना चाहिये। ६५५।

सत्तरसं णवयतिय अडचउवीस पुणोवि सत्तरसं। णवचउ अडचउवीस य तिवीसतियमसय चउसु ॥ ६५६ ॥
सप्तदश नवकत्रयमष्टचतुर्विंशं पुनरपि सप्तदश। नवचतुष्कमष्टचतुर्विंश च त्रयोविंशत्रयमशक चतुर्षु ॥ ६५६ ॥

अर्थ—मिश्र गुणस्थानमें बंध उदय सत्त्वस्थान ये तीनों क्रमसे १७ का, ९ को आदि लेकर तीन, २८–२४ के दो स्थान हैं। उसके बाद असंयतगुणस्थानमें बंधादि तीन क्रमसे १७ का, ९ को आदिलेकर चार स्थान, २८-२४ और २३ को आदिलेकर तीन इस तरह पांच हैं। इसी तरह ५ सत्त्वस्थान असंयतादि अप्रमत्तगुणस्थानतक चार गुणस्थानोंमें जानने चाहिये ॥ ६५६ ॥

तेरट्ठचऊ देसे पमदिदरे णव सगादिचत्तारि। तो णवग छादितिय अडचउरिगिवीसय च नवतियं ॥ ६५७ ॥

त्रयोदश अष्टचतुष्क देशे प्रमत्तेतरयो नव सप्तकादिचत्वारि। अतो नवकं षडादित्रयमष्टचतुरेकविंशक च बंधत्रयम् ॥६५७॥

अर्थ—देशसंयत गुणस्थानमें बंध उदय सत्त्व ये तीनों स्थान क्रमसे १३ का, ८ को आदि लेकर चार स्थान, तथा पूर्ववत् ५ हैं। प्रमत्तगुणस्थान और अप्रमत्तगुणस्थान इन दोनोंमें बंधादिस्थान क्रमसे ९ का, ७ को लेकर चार, तथा पहलेकी तरह ५ हैं। इसके बाद अपूर्वकरण गुणस्थानमें तीनों स्थान क्रमसे ९ का, ६ को आदि लेकर तीन, २८–२४–२१ का इस प्रकार हैं, और क्षपकके २१ का ही स्थान है ॥ ६५७ ॥

पचादिपचनधो णमगुणे दोण्णि एक्कमुदयो दु। अट्ठचदुरेक्कवीस तेरादीअट्ठय सत्त ॥ ६५८ ॥

पञ्चादिपञ्चबन्धो नवमगुणे द्वौ एक उदयस्तु। अष्टचतुरेकविंशं त्रयोदशाद्यष्टक सत्त्वम् ॥ ६५८ ॥

अर्थ—नवमे गुणस्थानमें ५ को आदि लेकर पांच बंधस्थान हैं। २ का १ का इसप्रकार दो उदयस्थान हैं। और २८–२४–२१ का इसतरह तीन सत्त्वस्थान हैं। तथा क्षपकश्रेणीवालेके १३ के को आदि लेकर ८ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६५८ ॥

लोहेक्कुदओ सुहुमे अडचउरिगिवीसमेक्कय सत्तं। अडचउरिगिवीससा संते मोहस्स गुणठाणे ॥ ६५९ ॥

लोभैकोदय सूक्ष्मे अष्टचतुरेकविंशमेक सत्त्वम्। अष्टचतुरेकविंशांशा शान्ते मोहस्य गुणस्थाने ॥ ६५९ ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमें उदयस्थान एक सूक्ष्मलोभरूप ही है। और सत्त्वस्थान २८–२४–२१ के तीन तथा क्षपकश्रेणीवालेके १ प्रकृतिरूप एक ही है। उपशांतकषाय गुणस्थानमें सत्त्वस्थान ही २८–२४–२१ के तीन हैं। "यहां पर इतना और समझना कि दशवें गुणस्थानमें बंधस्थानका अभाव होनेसे दो स्थान कहे हैं, ग्यारहवेंमें उदयका भी अभाव होनेसे एक

दो स्थान कहा है। इससे आगे मोहका मत्त्व भी नहीं रहता" इसप्रकार मोहनीयके बधादि स्थान गुणस्थानोंमें जानना चाहिये ॥ ६५९ ॥

आगे मोहनीयके बंध उदय और सत्त्वस्थानोंके त्रिसंयोगमें विशेषता दिखाते हैं —

बंधपदे उदयंसा उदयट्ठाणेवि बध सत्त च। सत्ते बधुदयपदं इगिअधिकरणे दुगाधेज्जं ॥ ६६० ॥

बन्धपदे उदयांशा उदयस्थानेपि बन्धः सत्त्व च। सत्त्वे बन्धोदयपदमेकाधिकरणे द्विकाधेयम् ॥ ६६० ॥

अर्थ—बन्धस्थानमें उदयस्थान और सत्त्वस्थान ये दो स्थान, उदयस्थानमें बधस्थान और सत्त्वस्थान, तथा सत्त्वस्थानमें भी बधस्थान और उदयस्थान होते हैं। इसप्रकार एक अधिकरणमें दो आधेय रहते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ ६६० ॥

उनमें पहले बंधस्थानमेंसे उदय सत्त्वस्थानोंको कहते है,—

बावीसयादिबंधेसुदयंसा चदुतितिगचऊपच। तिसु इगि छद्दो अट्ठ य एक्क पंचेव तिट्ठाणे ॥ ६६१ ॥

द्वाविंशकादिबन्धेषूदयांशा चतुस्त्रित्रिकैकचतुःपञ्च। त्रिष्वेक षट् द्वौ अष्ट च एक पञ्चैव त्रिस्थाने ॥ ६६१ ॥

अर्थ—बाईसके स्थानको आदिलेकर बंधस्थानोंमें क्रमसे उदयस्थान और सत्त्वस्थान" "२२ के में ४ उदयस्थान और ३ सत्वस्थान हैं, दुसरे बंधस्थानमें ३ उदयस्थान १ सत्त्वस्थान है, इससे आगेके तीन स्थानोंमें उदयस्थान चार चार और सत्वस्थान पाच पाच हैं, इसके वाद एक बधस्थानमें उदयस्थान १ सत्वस्थान ६ हैं, उससे आगेके एक बधस्थानमें उदयस्थान २ सत्त्वस्थान ८ हैं, उसके वाद तीन बधस्थानोंमें उदयस्थान १ सत्वस्थान पाच पाच हैं" इसप्रकार कहे हैं ॥ ६६१ ॥

आगे उन्हीं उदयादिस्थानोंको दिखाते हैं,—

दसयचऊ पढमतियं णवतियमट्ठवीसयं णवादिचऊ। अडचदुतिदुइगिवीस अडचदु पुव्वं व सत्तं तु ॥ ६६२ ॥

दशकचतुष्कं प्रथमत्रिक नवत्रिकमष्टाविंशक नवादिचतुष्कम्। अष्टचतुस्त्रिद्व्येकविंशमष्टचतुष्क पूर्वं व सत्त्व तु ॥ ६६२ ॥

अर्थः—उन उदयादि स्थानोंमेंसे बाईसके बधस्थानमें १० के स्थानको आदिलेकर चार उदयस्थान हैं और २८ को आदिलेकर तीन सत्त्वस्थान हैं। २१ के बधस्थानमें ९ के स्थानसे लेकर तीन उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान एक अट्ठाईसका ही

है। १७ के बधस्थानमें ९ के स्थानसे लेकर ४ उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान २८–२४–२३–२२–२१ के पांच हैं। १३ के बधस्थानमें ८ के स्थानसे लेकर ४ उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान पूर्व कहे हुए ५ हैं ॥ ६६२ ॥

सगचउ पुव्वं वसा दुगमडचउरेक्कवीस तेरतिय। दुगमेक्क च य सत्तं पुव्व वा अत्थि पणगदुगं ॥ ६६३ ॥

सप्तचतुष्क पूर्व वाशा द्विकमष्टचतुरेकविंश त्रयोदशत्रयम्। द्विकमेकं च च सत्त्व पूर्वं वा अस्ति पञ्चकद्विकम् ॥ ६६३ ॥

अर्थ—९ के बधस्थानमें ७ को आदिलेकर ४ उदयस्थान हे और सत्त्वस्थान पूर्वकथित ५ हैं। ५ के बधस्थानमें २ का ही एक उदयस्थान है और सत्त्वस्थान उपशमकके २८–२४–२१ के तीन तथा क्षपकके १३ से लेकर तीन, इसप्रकार ६ है। ४ के बधस्थानमें २ और १ प्रकृतिरूप दो उदयस्थान हैं और सत्त्वस्थान पूर्वोक्त कहे हुए ६ तथा पाचको आदिलेकर २–इसतरह ८ हैं ॥ ६६३ ॥

तिसु एक्केक्क उदओ अडचउरिगिवीससत्तसजुत्त। चदुतिदयं तिदयदुग दो एक्कं मोहणीयस्स ॥ ६६४ ॥

त्रिपु एकैक उदयः अष्टचतुरेकविंशसत्वसयुक्तम्। चतुस्तिनय त्रितयद्विक द्वे एकं मोहनीयस्य ॥ ६६४ ॥

अर्थ—३–२–१ प्रकृतिरूप तीन बंधस्थानोंमें उदयस्थान एक एक प्रकृतिरूप ही हैं और सत्त्वस्थान २८–२४–२१ के तीन स्थानोंमें तीनके बध स्थानके ४–३ के स्थानोंको मिलानेसे ५ होते हैं। २ के बंधस्थानके २–३ के स्थानोंको पूर्वोक्त तीन स्थानोंमें मिलानेसे पांच होते है, तथा १ के बंधस्थानके सत्त्वस्थान पूर्वोक्त तीन स्थानोंमें २–१ के स्थानको मिलानेसे ५ हो जाते हैं। भावार्थ—जिस जीवके जिस समयमें २२ का बध है उसके उदय १० का अथवा ९ वा ८ का अथवा ७ का भी पाया जाता है और सत्त्व २८ का, २७ का अथवा २६ का भी पाया जाता है। इसतरह आगेका कथन भी ऐसा ही समझलेना। इसप्रकार मोहनीयके बधस्थानोंको अधिकरण मानके उदय सत्त्व इन दोनोंके आधेयरूप भग गुणस्थानोंकी विवक्षासे कहे गये हैं ॥६६४॥

आगे उदयस्थानको अधिकरण बनाके बधस्थान–सत्त्वस्थानके आधेयरूप भगको कहते हैं;—

दसयादिसु बधंसा इगितिय तियछक्क चारिसत्त च। पणपण तियपण दुगपण इगितिग दुगछक्कऊणनय ॥ ६६५ ॥

दशकादिपु बन्धांशा एकत्रिकं त्रिकषट्कं चतु सप्त च। पञ्चपञ्च त्रिकपञ्च द्विकपञ्च एकत्रिकं द्विकषट्कचतुर्नवकम् ॥ ६६५ ॥

अर्थ—१० के स्थानको आदि लेकर उदयस्थानोंमें बंधस्थान और सत्त्वस्थान क्रमसे १—३, ३—६, ४—७ ५—५, ३—५, २—५, १—३, २—६ और ४–९ जानने चाहिये ॥ ६६५ ॥

पढम पढमतिचउपणमत्तरतिग चदुसु बधयं क्रमसो । पढमतिछस्सगमडचउतिदुङगिवीसमय दोसु ॥ ६६६ ॥

प्रथम प्रथमत्रिचतु पञ्चसप्तदशत्रिक चतुर्षु वन्धक क्रमश । प्रथमपपट्सप्त अष्टचतुस्त्रिद्विकैकविंशाशक द्वयो ॥ ६६२ ॥

अर्थ—पहले उदयस्थानमें बंधस्थान पहला (२२ का) है, उसके बाद चार स्थानोंमें क्रमसे २२ के को आदि लेकर ३, २२ के को लेकर ४, २२ के को आदि लेकर ५, १७ के स्थानको आदि लेकर तीन बंधस्थान हैं । और सत्त्वस्थान पहले बंधस्थानमें २८ आदि तीन हैं, दूसरेमें पहले २८ वेंको आदि लेकर ६ हैं, तीसरेमें २८ वेंको आदि लेकर ७ हैं, और चौथा तथा पाचवा इन दो उदयस्थानोंमें २८–२४–२३–२२–२१ के इसतरह पाच सत्त्वस्थान हैं ॥ ६६६ ॥

तेरदु पुव्वं वंसा णवमडचउरेक्कवीससत्तमदो । पणदुगमडचउरेक्कावीस तेरसतिय सत्त ॥ ६६७ ॥

त्रयोदशद्विक पूर्वं वाशा नवममष्टचतुरेकविंशसत्त्वमत । पञ्चद्विकमष्टचतुरेकविंश त्रयोदशत्रिक सत्त्वम् ॥ ६६७ ॥

अर्थ—पाच प्रकृतिके उदयस्थानमें १३ के स्थानको लेकर दो बंधस्थान हैं और सत्त्वस्थान पहलेकी तरह ५ हैं, चारके उदयस्थानमें ९ का बंधस्थान है और २८–२४ २१ के तीन सत्त्वस्थान हैं, उसके बाद २ के उदयस्थानमें ५ के स्थान-को लेकर दो बंधस्थान हैं और-२८–२४–२१-१३ के को आदि लेकर तीन, इसतरह ६ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६६७ ॥

चरिमे चदुतिदुगेक्क अट्ठयचदुरेक्कसंजुद वीसं । एक्कारादी सव्वं कमेण ते मोहणीयस्स ॥ ६६८ ॥

चरमे चतुस्त्रिद्विकैकमष्टकचतुरेकसयुत विंशम् । एकादशादि सर्वं क्रमेण तानि मोहनीयस्य ॥ ६६८ ॥

अर्थ—अन्तके १ प्रकृतिवाले उदयस्थानमें ४-३-२-१ के चार बन्ध हैं और २८-२४ २१-और ११ के स्थानसे लेकर सब ६ स्थान, इस प्रकार नौ सत्त्वस्थान है । इसरीतिसे ये सब मोहनीयके स्थान क्रमसे जानने चाहिये ।६६८।

आगे सत्त्वको अधिकरण मानके और बन्धउदयको आधेयरूप समझकर भङ्गोंको कहते हैं,—

सत्तपदे बधुदया दसणव इगिति दुसु अडड तिपण दुसु ।
अडसग दुगि दुसु बिगिगिगि दुगि तिसु इगिसुण्णमेक्क च ॥ ६६९ ॥

सत्त्वपदे बन्धोदया दशनव एकत्रिकम् द्वयो अष्टाष्ट त्रिपञ्च द्वयो ।
अष्टसप्त द्व्येकं द्वयो द्विद्विकमेकैक द्व्येक त्रिषु एकशून्यमेकं च ॥ ६६९ ॥

अर्थ—२८ के स्थानको आदिलेकर सत्त्वस्थानोंमें जो क्रमसे बन्धउदयस्थान कहे हैं वे पहले स्थानमें १०—९, उसके बाद दो स्थानोंमें १—३, उसके आगेके स्थानमें ८—८, उसके बाद दो स्थानोंमें ३—५, उससे आगेके स्थानमें ८—७ उसके बाद दो स्थानोंमें २—१, उसके आगे २—२, उसके बाद १-१, उसके बाद तीन स्थानोंमें २-१, और एक सत्त्वस्थानमें १ अथवा शून्य-१ स्थान हैं।

अब उन्हीं स्थानोंको दिखाते हैं;—

सव्व सयल पढमं दसतिय दुसु सत्तरादिय सव्व । णवयप्पहुदीसयल सत्तरति णवादिपण दुपदे ॥ ६७० ॥
सत्तरसादि अडादीसव्व पण चारि दोण्णि दुसु तत्तो । पचचउक दुगेक्क चदुरिगि चदुतिण्णि एक्क च ॥ ६७१ ॥
तत्तो तियदुगमेक्कं दुप्पयडीएक्कमेक्कठाणं च । इगिणभवधो चरिमे एउदओ मोहणीयस्स ॥ ६७२ ॥ विसेसय ॥

सर्वं सकलं प्रथमं दशत्रिकं द्वयो सप्तदशादिकं सर्वम् । नवकप्रभृति सकलं सप्तदशत्रिकं नवादिपञ्च द्विपदे ॥ ६७० ॥
सप्तदशादि अष्टादि सर्वं पञ्च चत्वारि द्वे द्वयो तत । पञ्चचतुष्कं द्विकैकं चतुरेकं चतुस्त्रीणि एकं च ॥ ६७१ ॥
तत त्रिकद्विकमेकं द्विप्रकृत्येकमेकस्थानं च । एकनभोबन्ध. चरमे एकोदयो मोहनीयस्य ॥ ६७२ ॥ विशेषकम् ॥

अर्थ—मोहनीयके सत्त्वस्थानोंमेंसे पहले २८ के सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान और उदयस्थान क्रमसे २२ को लेकर सब (१०)—१० को आदि लेकर सब (९), उसके बाद २७ और २६ के दो स्थानोंमें २२ का—१० को लेकर तीन, २४ के सत्त्वस्थानमें १७ को लेकर सब (८)—९ को लेकर सब स्थान, उसके बाद २३ और २२ के दो सत्त्वस्थानोंमें १७ को लेकर तीन—९ को लेकर पांच हैं। २१ के सत्त्वस्थानमें बन्ध उदयस्थान १७ को लेकर सब—८ को आदि लेकर सब, उसके

बाद १३ और १२ के दो सत्त्वस्थानोंमें पांच चार–२ का स्थान, उसके बाद ११ के स्थानमें ५ और ४ का–दो और १ का, ५ के सत्त्वस्थानमें ४ का–१ का, ४ के सत्त्वस्थानमें ४ और ३ के–१ का है। उसके बाद ३ के सत्त्वस्थानमें बन्ध उदयस्थान ३ और २ के–१ का, २ के सत्त्वस्थानमें २ और १ के–१ का और १ के सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान १ का अथवा शून्य तथा उदयस्थान १ का है॥ ६७० ॥ ६७१ ॥ ६७२ ॥

आगे मोहनीयके बन्ध उदय और सत्त्वमें दो आधार एक आधेयकर भंग कहते हैं,—

बंधुदय सत्तपदं बंधसे णेयमुदयठाण च। उदयसे बंधपद दुठाणाधारमेक्कमाधेज्जं ॥ ६७३ ॥

बन्धोदये सत्त्व बन्धांशे ज्ञेयमुदयस्थान च। उदयांशे बन्धपदं द्विस्थानाधारमेकमाधेयम्। ६७३।

अर्थ —बन्ध उदयके स्थानोंमें सत्त्वस्थान, बन्धसत्त्वस्थानोंमें उदयस्थान और उदय सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थान इस प्रकार दोस्थान आधार तथा एकस्थान आधेयको लेकर तीनप्रकार भंग जानना चाहिये॥ ६७३ ॥

अब उनमेंसे पहले प्रकारको ६ गाथाओंसे कहते हैं,—

बावीसेण णिरुद्धे दसचउरुदये दसादिठाणतिये। अट्ठावीसति सत्त सत्तुदये अट्ठवीसेव ॥ ६७४ ॥

द्वाविंशेन निरुद्धे दशचतुष्कोदये दशादिस्थानत्रये। अष्टाविंशत्रिकं सत्त्व सप्तोदये अष्टविंशमेव ॥ ६७४ ॥

अर्थ —२२ के बंधसहित जीवके १० के स्थानको आदि ले चार उदयस्थानोंमेंसे दशसे लेकर तीन स्थानोंमें तो २८ के को आदिलेकर तीन सत्त्वस्थान हैं, और ७ के उदयस्थानमें २८ के स्थानका ही सत्व है। ६७४।

इगिवीसेण णिरुद्धे णवयतिये सत्तमट्ठवीसेव। सत्तरसे णवचदुरे अडचउतिदुगेक्कवीससा ॥ ६७५ ॥

एकविंशेन निरुद्धे नवकत्रिके सत्त्वमष्टविंशमेव। सप्तदशे नवचतुष्के अष्टचतुस्त्रिद्विकैकविंशांशा। ६७५।

अर्थ —२१ के बंधसहित जीवके ९ आदि लेकर ३ के उदय होनेपर २८ का ही सत्त्वस्थान हैं, और १७ के बंधसहित जीवके ९ आदिलेकर ४ के उदय होनेपर २८–२४–२३–२२–२१ के सत्त्वस्थान हैं। ६७५।

॥३७७॥

यहांपर कुछ विशेषता कहते हैं, —

इगिवीसं ण हि पढमे चरिमे तिदुवीसयं ण तेरणवे । अडचउसगचउरुदये सत्तं सत्तरसयं व हवे ॥ ६७६ ॥

एकविंश न हि प्रथमे चरमे त्रिद्विविंशकं न त्रयोदशनवके । अष्टचतुःसप्तचतुरुदये सत्त्वं सप्तदशकं व भवेत् ॥ ६७६ ॥

अर्थ—पहले (९ के) का उदय होनेपर २१ का सत्त्व नहीं होता है और ६ के उदय होनेपर २३ तथा २२ का सत्त्व नहीं होता, और १३ के बंधसहित ८ के स्थानको आदि लेकर चार उदयस्थानोंके होनेपर अथवा ९ के बंधसहित ७ को आदि लेकर ४ चार उदयस्थानोंके होनेसे सत्त्वस्थान १७ के बंधसहित स्थानमें जैसे कहे हैं उसतरह जानने चाहिये ॥६७६॥

और भी विशेषता कहते हैं;—

णवरि य अपुव्वणवगे छादितियुदयेवि णत्थि तिदुवीसा । पणबंधे दोउदये अडचउरिगिवीसतेरसादितियं ॥६७७॥

नवरि च अपूर्वनवके षडादित्रयोदयेपि नास्ति त्रिद्विविंशम् । पञ्चबन्धे द्विकोदये अष्टचतुरेकविंशत्रयोदशादित्रयम् ॥६७७॥

अर्थ—इतनी विशेषता है कि अपूर्वकरणगुणस्थानमें ९ के बंधसहित ६ के स्थानको आदिलेकर ३ के उदय होनेपर भी २३ और २२ का सत्त्व नहीं होता है, और पांचके बंधसहित दोके उदय होते समय २८–२४–२१—और १३ को आदि लेकर तीन सत्त्वस्थान हैं ॥ ६७७ ॥

चदुबंधे दोउदये सत्तं पुव्वं व तेण एक्कुदये । अडचउरेक्कावीसा एयारतियं च सत्ताणि ॥ ६७८ ॥

चतुर्बन्धे द्विकोदये सत्त्वं पूर्वं व तेन एकोदये । अष्टचतुरेकविंशानि एकादशत्रिकं च सत्त्वानि ॥ ६७८ ॥

अर्थ–४ के बंधसहित दोके उदय होनेपर पहलेकी तरह (५ के बंधसहित) कहा हुआ सत्त्व जानना चाहिये, उसी ४ के बंधसहित १ के उदय होनेपर २८–२४–२१ और ११ के को आदि ले ३ सत्त्वस्थान जानने योग्य हैं ॥ ६७८ ॥

तिदुइगिबंधेक्कुदये चदुतिगठाणेण तिदुगठाणेण । दुगिठाणेण य सहिता अडचउरिगिवीसया सत्ता ॥ ६७९ ॥

त्रिद्व्येकबन्धे एकोदये चतुस्त्रयस्थानेन त्रिद्विकस्थानेन । द्व्येकस्थानेन च सहितानि अष्टचतुरेकविंशकानि सत्त्वानि ।६७९।

अर्थ--३--२-१ के बंधसहित एकके उदय होनेसे २८--२४--२१ के तीन सत्त्वस्थानोंमें क्रमसे ४ और ३ के दो सत्त्वस्थान मिलानेसे, ३ और २ के दो सत्त्वस्थान मिलानेसे, २ और १ के दो सत्त्वस्थान मिलानेसे सब जगह पाच पाच सत्त्वस्थान होते हैं ॥ ६७९ ॥

आगे बंध-सत्त्वको आधारका और उदयको आधेय समझकर ५ गाथाओंसे भंग कहते हैं,

बावीसे अडवीसे दसचउरुदओ अणे ण सगवीसे । छव्वीसे दसयतिय इगिअडवीसे दु णवयतिय ॥ ६८० ॥

द्वाविंशतौ अष्टविंशतौ दशचतुष्कोदय अने न सप्तविंशतौ । षड्विंशतौ दशकत्रयमेकाष्टविंशतौ तु नवकत्रयम् ॥ ६८० ॥

अर्थ---२२ के बन्धसहित चारगतिके मिथ्यादृष्टि जीवोंके २८ का सत्त्व होनेपर १० के को आदि लेकर चार उदयस्थान हैं, क्योंकि यहा अनन्तानुबन्धी रहित भी उदयस्थानोंका सम्भव है, २७---२६ का सत्त्व होनेपर १० को आदि ले तीन उदयस्थान होते हैं, २१ के बन्धसहित सासादन गुणस्थानवालोंके २८ का सत्त्व होनेपर ९ को आदि लेकर तीन स्थानोंका उदय होता है । ६८० ।

सत्तरसे अडचदुवीसे णवयचदुरुदयमिगिवीसे । णो पढमुदओ एव तिदुवीसे णंतिमस्सुदओ ॥ ६८१ ॥

सप्तदश अष्टचतुर्विंशे नवकचतुष्कोदय एकविंशे । नो प्रथमोदय एव त्रिद्विविंशे नांतिमस्योदय ॥ ६८१ ॥

अर्थ---१७ के बंधसहित चारों गतिके जीवोंके २८--२४ का सत्त्व होनेसे ९ को आदि लेकर ४ उदयस्थान हैं, २१ का सत्त्व होनेपर पहला (९ का) उदयस्थान नहीं शेष ८ को आदि लेकर ३ ही उदयस्थान हैं, इसीप्रकार २३--२२ का सत्त्वस्थान होनेपर अतका (६ का) स्थान नहीं है इसलिये यहापर ९ को आदि लेकर ३ ही उदयस्थान हैं । ६८१ ।

तेरणवे पुव्वसे अडादिचउ सगचउण्हमुदयाण । सत्तरस व विआरो पणगुनसते सगेसु दो उदया ॥ ६८२ ॥

त्रयोदशनवमे पूर्वांशे अष्टादिचतुष्क सप्तचतुष्कमुदयानाम् । सप्तदशं व विचार पञ्चकोपशान्ते स्वकेषु द्वौ उदयौ ॥६८२॥

अर्थ— १३ के बंधसहित तिर्यचमनुष्यदेशसंयतके और ९ के बंधसहित प्रमत्त दोनों श्रेणियोंवाले अपूर्वकरणके पूर्ववत् १७ के बधकी तरह सत्त्व होनेपर क्रमसे ८ के को आदि लेकर ४ उदयस्थान और ७ के को आदि लेकर चार उदयस्थान होते हैं। इसमें विशेष बातका विचार १७ के बधकी तरह समझलेना। तथा उपशातकषाय गुणस्थानमें २८ आदिके सत्त्व होनेपर ५ के बंधसहित २ का उदय है और ५–४ के बंधसहित भी २ का उदय है ॥ ६८२ ॥

यही कहते हैं,—

तेणेव तेरतिये चदुबंधे पुव्वसत्तगेसु तहा। तेणुवसतसेयारतिए एक्को हवे उदओ ॥ ६८३ ॥

तेनैवं त्रयोदशत्रये चतुर्बन्धे पूर्वसत्त्वकेषु तथा। तेनोपशाताशे एकादशत्रये एको भवेत् उदय. ॥ ६८३ ॥

अर्थ—उन ५ के बंधसहित क्षपक अनिवृत्तिकरणमें पूर्ववत् १३ आदिक तीनके सत्त्व होनेपर तथा ४ के बंधसहित २८ के को आदिलेकर ३ का अथवा १३ को आदि लेकर ३ का सत्त्व होनेपर २ का उदय होता है। और ४ के बंधसहित उपशात कषायमें पूर्वोक्त २८ को आदि लेकर ३ का सत्त्व होनेपर तथा ११ को आदिलेकर तीनका सत्त्व होनेपर १ का ही उदय है ॥ ६८३ ॥

तिदुइगिबंधे अडचउरिगिवीसे चदुतिएण ति दुगेण। दुगिसत्तेण य सहिदे कमेण एक्को हवे उदयो ॥ ६८४ ॥

त्रिद्विकैबन्धे अष्टचतुरेकविंशे चतुस्त्रिकेण त्रिद्विकेन। द्व्येकसत्वेन च सहिते क्रमेण एको भवेत् उदय ॥ ६८४ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणमें ३–२–१ के बंधसहित क्रमसे २८–२४–२१ के सत्त्व होनेपर अथवा ४–३ का सत्त्व होनेसे वा ३–२ का सत्त्व होनेसे वा २–१ सत्त्व होनेसे एक एकका ही उदय होता है ॥ ६८४ ॥ यहा नवक समयप्रबद्धकी विवक्षा और अविवक्षासे दो प्रकारके सत्त्व कहेगये हैं।

आगे उदय–सत्त्व आधार और बधको आधेय करके ७ गाथाओंसे कहते हैं,—

दसगुदये अडवीसतिमत्ते बावीसबंध णवअट्ठे। अडवीसे बावीसतिचउबधो सत्तवीसदुगे ॥ ६८५ ॥

बावीसबंध चदुतिदुवीससे सत्तरसयददुगबंधो। अट्ठुदये इगिवीसे सत्तरबंध विसेस तु ॥ ६८६ ॥ जुम्म ॥

॥३८०॥

दशकोदये अष्टविंशत्रिसत्त्वे द्वाविंशबन्ध' नवाष्टके । अष्टविंशतौ द्वाविंशतित्रिचतुर्बन्ध. सप्तविंशद्विके ॥ ६८५ ॥
द्वाविंशबन्ध' चतुस्त्रिद्विविंशांशे सप्तदशायतद्विकबन्ध. । अष्टोदये एकविंशे सप्तदशबन्धा विशेषस्तु ॥ ६८६ ॥ युग्मम्।

अर्थ —१० के उदयसहित २८ को आदिलेकर ३ का सत्त्व होनेपर २२ का ही बंध होता है, ९ के उदयसहित असंयतपर्यंत वा ८ के उदयसहित देशसयतगुणस्थानतक २८ का सत्त्व होनेपर क्रमसे २२ को आदिलेकर ३ और ४ का बंधस्थान है तथा उन्हींमें २७ का वा २६ का उदय होनेपर २२ का बंध होता है । और पूर्वोक्त उदयसहित मिश्रगुणस्थानमें २४ का सत्त्व होनेपर तथा असयतगुणस्थानमें २४–२३–२१ इन तीन सत्त्वोंके होनेपर १७ का बंध है । देशसंयतगुणस्थानमें ८ के उदयसहित २४ को आदिलेकर तीन सत्त्व होनेपर १३ का बंध है । इतना विशेष है कि २१ के सत्त्व होनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टि असयतके १७ का बंध होता है ॥ ६८५–६८६ ॥

सत्तुदये अडवीसे बन्धो बावीसपञ्चय तेण । चउवीसतिगे अयदतिबंधो इगिवीसगयददुगबंधो ॥ ६८७ ॥
सप्तोदये अष्टविंशे बन्धो द्वाविंशपञ्चक तेन । चतुर्विंशत्रिके अयतत्रिबन्ध एकविंशके अयतद्विकबन्ध । ६८७ ।

अर्थ—७ के उदयसहित २८ का सत्त्व होनेपर २२ को आदिलेकर ५ बंधस्थान हैं । पूर्वोक्त उदयसहित २४ को आदि लेकर ३ सत्त्व होनेपर असयतगुणस्थानमें १७ को आदिलेकर ३ बंध होते हैं और पूर्वोक्त उदयसहित २१ का सत्त्व होनेपर असंयतयुगलमें कथित १७–१३ इन दो का बंध होता है ॥ ६८७ ॥

छप्पणउदये उवसंतसे अयदतिगदेसदुगबंधो । तेण तिदोवीससे देसदुणवबंधय होदि ॥ ६८८ ॥
षट्पञ्चोदये उपशांतांशे अयतत्रिकदेशद्विकबंध । तेन त्रिद्विविंशांशे देशद्विनवबंधकं भवति ॥ ६८८ ॥

अर्थ.—६ और ५ के उदयसहित उपशांतकषायमें कहे हुए तीन सत्त्वस्थान होनेपर क्रमसे असंयतयुगलकथित १७

को आदिलेकर ३ तथा तेशसंयतयुगलकथित १३ को आदिलेकर दो बंधस्थान हैं। और पूर्वोक्त ६-५ के उदयसहित २३-२२ के सत्त्व होनेपर देशसयतयुगलकथित १३ का बधस्थान तथा ९ का बधस्थान होता है ॥ ६८८ ॥

चउरुदयुवसतसे णवबधो दोण्णिउदयपुव्वसे । तेरसतियसत्तेवि य पण चउ ठाणाणि बधस्स ॥ ६८९ ॥

चतुरुदयोपशातांशे नवबन्धो द्विकोदयपूर्वांशे । त्रयोदशनयसत्त्वेपि च पञ्चचतु स्थानानि बन्धस्य ॥ ६८९ ॥

अर्थ—४ के उदयसहित उपशातकषायोक्त २८–२४–२१ के सत्त्व होनेपर ९ का बध पाया जाता है। २ के उदयसहित पूर्ववत् ३ सत्त्व होनेपर तथा १३ को आदि लेकर तीन सत्त्व होनेपर भी ५ का अथवा ४ का बधस्थान है।६८९।

एक्कुदयुवसतसे बधो चदुरादिचारि तेणेव । एयारदु चदुबधो चदुरसे चदुतियं बंधो ॥ ६९० ॥

एकोदयोपशान्तांशे बन्ध चतुरादिचत्वार तेनेव । एकादशद्विके चतुर्बन्ध चतुरंशे चतुस्त्रिको बन्ध· ॥ ६९० ॥

अर्थ—एकके उदयसहित उपशातकषायोक्त २८-२४-२१ के सत्त्व होनेपर ४ के को आदिलेकर चार बधस्थान हैं। एकके ही उदयसहित ११-५ ये दो सत्त्व होनेपर ४ का बंधस्थान है। और ४ के सत्त्व होनेपर ४ वा ३ का बधस्थान है ॥ ६९० ॥

तेण तिये तिदुबधो दुगसत्ते दोण्णि एक्कय बधो । एक्कंसे इगिबधो गयण वा मोहणीयस्स ॥ ६९१ ॥

तेन त्रये त्रिद्विबन्धो द्विकसत्त्वे द्वौ एको बन्धः । एकांशे एकबन्धो गगन वा मोहनीयस्य ॥ ६९१ ॥

अर्थ—उसी एकके उदयसहित अनिवृत्तिकरणोक्त ३ का सत्त्व होनेपर ३ का वा २ का बध होता है। २ का सत्त्व होनेपर २ का वा १ का बध होता है। और मोहनीयके १ के स्थानका सत्त्व होनेपर १ ही का बधस्थान होता है अथवा गगन अर्थात् बधाभाव होता है ॥ ६९१ ॥ इसप्रकार मोहनीयके त्रिसयोगी भग कहे।

॥३८२॥

मोहेऽष्टाविंशतिः सर्वाः सम्यक्त्वे सप्तविंशतिः। क्रमात्षड्विंशतिर्मिश्रे भवत्युद्वेलिते सति ॥ ४४ ॥

२८ । २७ । २६ ।

अष्टाविंशतित क्षीणे कषायाणां चतुष्टये । प्रथमेऽसति मिथ्यात्वे मिश्रसम्यक्त्वयोः क्रमात् ॥ ४५॥

कोपादिकाष्टके पढे स्त्रियां हास्यादिगोचरे । पट्के पुंसि क्रमान्नष्टे सञ्ज्वालाना त्रये सति ॥ ४६ ॥

२४ । २३ । २२ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

अब मूलकार यह बताते हैं कि अट्ठाईस आदि कितनी प्रकृतियोंकी सत्ता किस गुणस्थानमें होती है ?—

मोहमें अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवके सबसे अधिक मोहकी सत्ता पूरी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी है । यदि सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना होजाय तो सत्ताईसकी सत्ता है । इसी प्रकार क्रमसे यदि सम्यङ्मिथ्यात्वनामक मिश्रमोहकी भी उद्वेलना होजाय तो छब्बीस प्रकृतियोंकी मिथ्यात्वमें सत्ता रह जाती है । (२८ । २७ । २६) ॥ ४४ ॥

चौवीस प्रकृतियोंकी सत्ता किस प्रकार और कहांपर हो सकती है वह आगे बताते हैं ।—

अनंतानुबंधी चार कषायोंका अट्ठाईस प्रकृतियोंमेंसे जिसके क्षय हो जाता है ऐसे जीवोंके चौवीस मोह प्रकृतिकी सत्ता रह जाती है । यह सत्ताका स्थान आगे सत्रह प्रकृतिके बंधवालेके तथा १३ और ९ प्रकृतिके बंधवालेके होता है ऐसा आगे बताया है । सत्रहका बंध तीसरे चौथेमें है । १३ का पांचवेंमें है । ९ का छट्ठेमें है ।

ऐसे जीवके यदि मिथ्यात्व कर्मका भी अभाव हो जाय तो उसके २३ का सत्तास्थान रहता है । और यदि सम्यक्त्व प्रकृति न रही हो तो २२ का सत्त्व स्थान रह जाता है । और यदि मिश्रमोहनीय प्रकृति भी न रही हो तो २१ प्रकृतिका सत्त्व स्थान रहजाता है ।

फिर आगे क्रोधादि आठ कषाय के नष्ट होनेपर, नपुंसक वेद के नष्ट होनेपर, स्त्रीवेदके नष्ट होनेपर, हास्यादि छह नोकषायोंके क्रमसे यथासंभव नष्ट होने पर, पुरुषवेदके नष्ट होनेपर, और फिर सज्वलन तीनका क्रमसे नाश होने पर क्रमसे सत्ताके स्थान २४ का, २३ का, २२ का, २१ का, १३ का, १२ का, ११ का, ५ का, ४ का, ३ का, २ का, १ का--ऐसे ये मोहके सत्तास्थान ऊपर ऊपर क्षपण करनेवालेके घटती प्रकृतियोंके रहते हैं । ४५ । ४६ ।

सत्त्वस्थानानि शेषाणि ज्ञेयानीति यथागमम् । उदस्थानयोगोऽतो बंधस्थानेषु कथ्यते ॥ ४७ ॥
पंचस्वाद्येषु बंधेषु पच पाका दशादिकाः । द्वौ परे द्विकमेको वा परेऽन्येष्वेकको मतः ॥ ४८ ॥

ब	२२	२१	१७	१३	९	अनिवृत्तौ—	बं	५	४	३	२	१	सूक्ष्मे— ०
उ	१०	९	८	७	६		उ	२	२	१	१	१	१

इस प्रकार सत्ताके सर्व स्थान समझना । अब आगे बंधस्थानोंके साथ उदयस्थानोंको जोडकर क्रमसे बताते हैं । ४७ ।

सर्व बंधस्थान दश हैं । उनमेंसे आदिके बंधस्थान पांच २२ प्रकृतिका, २१ का, १७ का, १३ का, ९ का—ये पाच हैं । और उदयके सर्व नौ स्थान हैं उनमेंसे आदिके पाच उदयस्थान—१० प्रकृतिका पहिला, ९ का दूसरा, ८ का तीसरा, ७ का चौथा तथा ६ का पांचवा—ये हैं ।

ये यथाक्रमसे साथमें होते हैं । भावार्थ, २२ प्रकृतिवाले प्रथम बंधस्थानके साथ उदयस्थान दश प्रकृतिका होता है । इसी प्रकार शेप चार बंधस्थानोंमें भी क्रमसे दूसरे तीसरे आदि आदि उदयस्थान होते हैं । इससे आगेके ५ प्रकृतिवाले बंधस्थानमें उदय दो प्रकृतिका है । उससे आगेके सातवें ४ प्रकृतिवाले बंधस्थानमें भी उदय २ प्रकृतिका है । इसके आगेके ३ प्रकृतिके, २ प्रकृतिके तथा १ प्रकृतिके बंधवाले आठवें नौवें दशवें स्थानमें उदयस्थान एक एक प्रकृतिका रहता है । बंध जहां नहीं है वहां भी सूक्ष्मलोभ दशवें गुणस्थानमें उदय १ प्रकृतिका है । यंत्र नीचे दिये हैं । ४८ ।

बंध—	२२	२१	१७	१३	९	अनिवृत्तिकरणमें—	बंध—	५	४	३	२	१	सूक्ष्ममें बंध—	०
उदय—	१०	९	८	७	६		उदय—	२	२	१	१	१	उदय—	१

आद्ये संयोजनोनोऽन्यो द्वौ (च) सप्तदशे परौ । पाकौ समिश्रसम्यक्त्वौ मसम्यक्त्वौ द्वयोः परौ ॥ ४९ ॥

२२	२१	१७	१३	९
१०।९	९	९।८	८।७	७।६

आद्य अर्थात् बंधका प्रथम स्थान २२ प्रकृतिरूप है, इसमें उदय एक तो अनतानुबंधीके विसयोजन होजानेसे अनंतानुबधी रहित ९ प्रकृतिरूप है और अन्य अर्थात् दूसरा—अनंतानुबन्धी सहित १० प्रकृतिरूप है। संयोजनका अर्थ अनंतानुबंधी है। सत्रहके बंधवाले स्थानमें भी आगेके दो उदयस्थान हैं। एक तो केवल मिथ्यात्वरहित ९ प्रकृतिवाला है। इसमें अनंतानुबन्धीका उदय कम हो जाता है परतु मिश्रमोहनीयका उदय बदलेमें बढ जाता है। इसलिये ९ का उदय होजाता है। दूसरा ऐसा नौका भेद है कि अनतानुबन्धी कम होजाता है परतु सम्यक्त्व मोहका उदय हो जाता है। इस प्रकार सम्यक्त्व और मिश्र मोहके साथ ये दो प्रकारसे उदय समझने चाहिये। इस सत्रहके बन्धस्थानमें यदि उपशम सम्यग्दृष्टि हो अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो उदयस्थान आठ प्रकृतिका ही रहता है। ऐसे सत्रहके बंधमें उदय ९ का तथा ८ का ऐसे दो रहते हैं।

इसके आगे १३ प्रकृतिका बंध करनेवाला पांचवां गुणस्थान है। इसमें उदय ८ प्रकृति का तथा ७ प्रकृतिका ऐसे दो प्रकार होता है। प्रत्याख्यान एक, संज्वलन एक, एक वेद, सम्यक्त्व-मोहनीय एक, हास्यादि चार—यह आठ प्रकृतिका उदय समझना। यदि सम्यक्त्व मोहनीयकी सत्ता न रही हो तो सात प्रकृतिका उदय समझना। ऐसे दो प्रकारका उदयस्थान इस तेरह प्रकृतिके बंधस्थानमें हुआ। आगे नौ प्रकृतिके बंधवाले छट्ठे सातवें आठवें—ये तीन गुणस्थान हैं। इनमेंसे, सम्यक्त्व मोहनीयका उदय आठवें गुणस्थानमें नहीं होता इसलिये वहांपर उदयस्थान छह प्रकृतिका ही है। ऊपर जो सात प्रकृति उदयस्थानमें बताई हैं उनमेंसे प्रत्याख्यानावरण तीसरे कषाय की एक प्रकृति यहां घट जाती है। छट्ठे और सातवें गुणस्थानमें सम्यक्त्व मोहके उदयसे यदि वेदक सम्यग्दृष्टि जीव है तो उसके सम्यक्त्वमोहके साथ सात प्रकृतिवाला उदय है। और क्षायिक सम्यग्दृष्टि तथा उपशम सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वमोहका उदय न रहनेसे छह प्रकृतिरूप ही उदयस्थान होता है। यंत्र आगे दिया है ॥ ४९ ॥

बंधके स्थान—	२२	२१	१७	१३	९
उदयके स्थान—	१०।९	९	९।८	८।७	७।६

भिया जुगुप्सया हीना द्वितयेन दशाप्यमी । उपर्युपरि त्रयो भंगा एकैकत्र ततो मताः ॥ ५० ॥

	२२		२१	१७		१३		९	
बंध—	८	७	७	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.
उदय—	९|९	८	८|८	७	६	६	५	५	४
	१०	९|९	९	८|८	७|७	७|७	६|४	६|६	५|५
		१०		९	८	८	७	७	६

भय तथा जुगुप्सा—इन दो नोकषायोंका उदय अपूर्वकरण–आठवें गुणस्थानपर्यंत होता है । परंतु कभी कभी दोनोंका उदय रहता है, कभी दोनोंमेंसे किसी एकका ही उदय रहता है, और कभी एकका भी उदय नहीं रहता है । इसलिये नीचे यत्रमें दिखाये हुए क्रमके अनुसार आदिसे ऊपर ऊपरके पाच बंधस्थानोंमें अर्थात् अपूर्वकरण गुणस्थानपर्यतके प्रत्येक बंधस्थानमें तीन तीन भग होना बताया है। बधके सर्व दश स्थान हैं । ५० ।

	२२		२१	१७		१३		९	
बंध—	८	७	७	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.	वे.	उ. क्षा.
उदय—	९|९	८	८|८	७	६	६	५	५	४
	१०	९|९	९	८|८	७|७	७|७	६|६	६|६	५|५
		१०		९	८	८	७	७	६

अब यंत्रपरसे अर्थका विचार करते हैं।—

भय तथा जुगुप्सा—इन दोनोंका उदय रहे तो उदयस्थान दशका भी होता है । और अनंतानुबंधीके विसंयोजनमें नौ प्रकृतिका उदयस्थान रहता है । भयका अथवा जुगुप्साका उदय न हो तो आठका उदय रहता है । यदि भय तथा जुगुप्सा इन दोनोंका उदय न हो तो सातका उदयस्थान हो जाता है । यह बाईस प्रकृतिके बंधस्थानमें उदयके भेद समझना । इक्कीस प्रकृतिका बंधस्थान दूसरे गुणस्थानमें होता है वहांपर उदय अनंतानुबंधीका रहता है परंतु मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता इसलिये नौ का उदय है । भयजुगुप्साके न रहनेसे आठ तथा सातका भी उदय है ।

सत्रह प्रकृतिके बंधवाले स्थानसे लेकर तेरहके और नौके बंधवाले स्थान पर्यंत तीन स्थानोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रहता भी है, और नहीं भी रहता है । इसलिये सत्रह प्रकृतिके बंधस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न रहनेपर आठका उदयस्थान है । और भय अथवा जुगुप्सामेंसे एकके न रहनेसे सातका उदयस्थान है । दोनोंके न रहनेपर छहका उदयस्थान है ।

तेरह प्रकृतिके बंधस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिके रहनेपर आठका उदयस्थान है, सम्यक्त्व प्रकृतिके न रहनेपर सातका उदयस्थान है । भय तथा जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदय न रहनेसे छहका उदयस्थान है । भय–जुगुप्सा–दोनोंके उदय न रहनेपर पांचका उदयस्थान है ।

नौ प्रकृतिके बंधस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रहनेपर सातका उदयस्थान है । सम्यक्त्वप्रकृतिके न रहनेपर छहका उदयस्थान है । भय जुगुप्सामेंसे एकके न रहनेपर पांचका उदयस्थान है । भय जुगुप्सा–दोनोंके उदय न रहनेपर चारका उदयस्थान है । यह यंत्रका तात्पर्य है ।

अत्रैको दशानामुदय, षड् नवानामेकादशाष्टानां, दश सप्तानां, सप्त षण्णां, चत्वारः पचानामेकश्चतुर्णा द्वावनिवृत्तौ द्वयोः पचानामेकैकभेदा पाका ज्ञेया । तत्र पंचसु स्थानेषु १।६।११।१०।७।४।१। पिंडिताः ४०। अनिवृत्तौ २।४। सूक्ष्मे १।

तत्र द्वाविंशतेर्बंधे सप्ताद्या दशैकविंशतेर्नव सप्ताद्याः, सप्तदशानां नव षडाद्यास्त्रयोदशानामष्ट पंचाद्या नवानां सप्त चतुराद्याः पाका द्रष्टव्याः १४०।

अब उदयके कितने प्रकार होते हैं उन्हे बताते हैं ।—

यहांपर दशका उदय एक है । नौके उदय छह हैं । आठके उदय ग्यारह हैं । सातके उदय दश हैं । छहके उदय सात हैं । पांचके उदय चार हैं । चारका उदय एक है । फिर अनिवृत्तिकरणमें दोके दो हैं । और पांच स्थानोंका एकेक भेदरूप उदय है । उनमेंसे पांच पहिले बंधस्थान १ । ६ । ११ । १० । ७ । ४ । १ ।—ये हैं । इनके जोडसे ४० उदयके भेद हो जाते हैं । अनिवृत्तिकरणमें २ । ४ । हैं । सूक्ष्ममें १ है ।

प्रत्येक बंधस्थानमें जघन्य तथा उत्कृष्ट कितनी कितनी प्रकृतियोंके उदयस्थान संभव हैं उन्हे बताते हैं ।—

पहिले बाईस प्रकृतिवाले बंधस्थानमें जघन्य सातका उदय है, उत्कृष्ट दशका उदय है । इक्कीसके बंधस्थानमें जघन्य सातका उदय है, उत्कृष्ट नौका उदय है । सत्रहके बंधस्थानमें जघन्य उदय छहका है, उत्कृष्ट नौका उदय है । तेरहके बंधस्थानमें जघन्य उदय पांचका है, उत्कृष्ट उदय आठका है । नौके बंधस्थानमें जघन्य उदय चारका है; उत्कृष्ट उदय सातका है । ऐसे सर्व भेद १४० हो जाते हैं ।

इन प्रत्येक बंधस्थानोंमें जघन्य उदय कितनी प्रकृतियोंका तथा उत्कृष्ट कितनी प्रकृतियोंका होता है—यह बात उच्चारण करके बताई । इनके बीचके जो उदयस्थान यंत्रमें बताये हैं वे भी मध्यम भेदोंमें समझलेने चाहिये ।

कषायवेदयुग्मानां भगाघाते परस्परम् । चतुर्विंशतिरादिष्टा बंधस्थानेषु पचसु ॥ २४ । ५१ ॥
चतुर्विंशत्या चत्वारिंशतस्ताडने सत्युदयमेदाः ९६० ।
भगा वै द्वादश प्रोक्ता वेदैः कोपादिताडने । आद्ययोर्बंधयोर्दक्षैर्द्वितयस्योदये सति ॥ ५२ ॥
एकपाके चतुर्बंधे ज्ञेय भगचतुष्टयम् । त्रिद्व्येकबधने भंगास्त्रिद्व्येकेऽन्यत्र चैककः ॥ ५३ ॥

चार कषायके तीन वेदोंके और हास्यादि दो युगलोंके जो भंग होते हैं उन्हे परस्परमें गुणनेपर पांच बंधस्थानोंमें सर्व चौवीस भेद होते हैं । आदिके बाईस आदि प्रकृतियोंके पांच बधस्थानोंमें जुदे जुदे कषाय चार हैं और वेद तीन हैं । इन्हे परस्परमें गुणनेसे १२ भेद हो जाते हैं । फिर हास्यादि दो युगलोंकी दो सख्यासे १२ को गुणनेपर चौवीस सख्या हो जाती है । जिन प्रकृतियोंका बदल बदल कर बध होता है उनका परस्परमें गुणा करके भेद निकालने चाहिये । अर्थात आदिके पांच बधस्थानोंमें अवान्तर भेद चौवीस पर्यंत होते हैं । जहापर वेद अथवा कषाय कम हो जाते हैं । ऐसे बधस्थानोंके भेद कम होते हैं । परन्तु वे सभी चौवीसके अतर्गत ही रहते हैं । ५१ ।

इन पाच बधस्थानोंके चौवीस भेदोंसे, ऊपर बताये हुए उदयके चालीस भेदोंको परस्पर गुणनेसे ९६० भेद हो जाते हैं । ये बधस्थानोंमें जो उदयस्थान जोडकर ऊपर दिखाये हैं उनके उत्तर भेद ९६० हैं ।

क्रोधादि चार कषायोंका वेद तीनसे गुणन करनेपर बारह भग होते हैं । ये बारह भंग हुए । ये बारह भग आदिके दो– ५ बधवाले तथा ४ बंधवाले–दो स्थानोंके होते हैं । परन्तु वहा इन दोके ही उदय होने चाहिये । यह सर्व विद्वानोंको समझना आवश्यक है । ५२ ।

जहापर उदय एकका है और बध चार प्रकृतिका है वहापर भग चार होजाते हैं । तीनके बधमें उदय एकका रहनेपर तीन भग होते हैं । एकके ही उदयमें दोके बधसे भग दो होजाते हैं । एकका ही उदय और एकका ही बंध जहापर है वहांपर भंग एक ही है । आगे भी अर्थात् बधके अभावमें फिर भंग एक है और उदय भी एक ही है । ५३ ।

५	४	४	३	२	१		०
२	२	१	१	१	१	सूक्ष्मे—	१
१२	१२	४	३	२	१		१

सर्वे भगा मीलिता ३५। पूर्वैः सहिताः ९९५।

पाकप्रकृतिभिर्हत्वा पाकस्थानानि ताडयेत्। चतुर्विंशतिभंगाद्यैः पदबंधोपलब्धये ॥ ५४ ॥

दशादीनि चतुरतानि पाकस्थानानि	१०	९	८	७	६	५	४
	१	६	११	१०	७	४	१

दशादिपाकप्रकृतिताडितानि—१०।५४।८८।७०।४२।२०।४ पिंडितानि २८८। चतुर्विंशतिभंगताडितानि

बंध—	५	४	४	३	२	१		बंध	०
उदय—	२	२	१	१	१	१	आगे सूक्ष्मलोभमें	उदय	१
भंग—	१२	१२	४	३	२	१		भग	१

ये सर्व भग मिलकर ३५ होते हैं। पहिले ९६० को और इन ३५ को मिलानेसे ९९५ भग होजाते हैं।

उदयकी प्रकृतियोंसे उदयके स्थानोंको गुणित करे फिर चौवीस आदि भंगसख्याओंसे गुणित करे तो सर्व पदबंध निकल आते हैं। ५४।

ऊपरके श्लोकका स्पष्टीकरण–दशका प्रथम उदयस्थान है। उसमें स्थान एक ही है इसलिये उस एकके साथ प्रकृतिसंख्या दशको गुणनेपर दश सख्या ही रहती है। दूसरा उदयस्थान नौका है। उसके स्थान ६ को ९ से गुणने पर ५४ भेद होते हैं। तीसरे उदय स्थानकी प्रकृति ८ हैं। उसके स्थान ११ हैं। दोनोंके गुणनेपर ८८ संख्या होती है। चौथे उदयस्थानमें प्रकृतिसख्या ७ है। उसके स्थान १० हैं। परस्पर इन दोनोंको गुणनेपर ७० संख्या होती है। पाचवें उदयस्थानकी प्रकृति ६ हैं और उसके स्थान ७ हैं। परस्पर गुणनेसे ४२ होते हैं। छठे उदयस्थानमें प्रकृति ५ हैं और स्थान उसके चार हैं। परस्परमें गुणनेसे २० होते हैं। सातवें उदयस्थानकी प्रकृति ४ हैं, स्थान एक ही है। इसलिये परस्परमें गुणनेपर भी ४ ही रहते हैं। ये सर्व मिलकर २८८

६९१२ । अनिवृत्तौ पूर्वोक्ता द्विकादिपाकप्रकृतयः २ । २ । १ । १ । १ । १ । सूक्ष्मे १ । एभिर्भंगैरेताः १२ । १२ । ४ । ३ । २ । १ । १ । गुणिता एतावतः— २४ । २४ । ४ । ३ । २ । १ । १ ।=पिंडिताः ५९ । पूर्वैः सह पदबधा एतावतः ६९७१ ।

मोहप्रकृतिसख्यायाः पदबधा भवंत्यमी । एकोनत्रिंशता हीनाः सहस्राः सप्त निश्चितम् ॥ ५५ ॥

पदबंध होते हैं। उदयस्थानोंके ये भेद ऊपर बताये हैं। चौवीस भंगसंख्यासे इस २८८ को गुणनेपर सर्व भग ६९१२ हो जाते है।

इसका यंत्र इस प्रकार है।—

उदय प्रकृति —	१०	९	८	७	६	५	४
स्थान—	१	६	११	१०	७	४	१

गुणनसे प्राप्त हुए भेद— १० ५४ ८८ ७० ४२ २० ४=मिलानेपर २८८ भेद होगये।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें दो आदि उदयप्रकृति पूर्वमें क्रमसे बताई हैं—२।२।१।१।१।१। और सूक्ष्मसांपराय-दशवें गुणस्थानमें १ बताई है। इन भंगोंको इन-१२।१२।४।३।२।१।१—भंगोंसे क्रमसे गुणित करनेपर—२४।२४।४।३।२।१।१ इतने हुए। इनका जोड ५९ होता है। पूर्वमें ६९१२ पदबंध बताये हैं उनमें इन ५९ को जोडदेनेसे ६९७१ सर्व पदबन्ध हुए।

इसी संख्याको ग्रंथकार बताते हैं।

मोहनीय प्रकृतिकी सख्याके पदबंध उन्तीस कम सात हजार सर्व होते हैं वह ऊपर बताया है ॥ ५५ ॥

बंधस्थानं प्रति सत्तास्थानानि दीयंते—

आद्ये त्रीण्येकमन्यत्र त्रिषु पच षडेककः । सप्तापरत्र चत्वारि सत्तास्थानान्यतः परे ॥ ५६ ॥

मोहस्य सत्तास्थानानि बंधस्थानेषु सामान्येनाह—

बं	२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१	०
स.	३	२	५	५	५	६	७	४	४	४	४

तानि विशेषेणाह—

आद्यमाद्ये त्रय बंधे द्वितीये चाष्टा विंशतिः । त्रिषु विंशतिरुक्ताष्टचतुस्त्रिद्व्येकसंयुता ॥ ५७ ॥

अब बंधस्थानके साथ सत्तास्थानोंको दिखाते हैं ।—

आदिके प्रथम बंधस्थानमें तीन प्रकारके सत्तास्थान होते हैं । दूसरे बंधस्थानमें एक सत्तास्थान है । फिर आगेके तीन बंधस्थानोंमें पांच पांच सत्तास्थान हैं । फिर आगे पांच बंधवाले छट्ठे एक बंधस्थानमें छह सत्तास्थान हैं । इसके आगेके चार बंधवाले सातवें एक बंधस्थानमें सात सत्तास्थान हैं । इससे आगेके आठवें आदि बंधस्थानोंमें सत्तास्थान चार चार है ॥ ५६ ॥

ये मोहके बंधस्थानोंमें सामान्य रूपसे सत्ताके स्थान बताये हैं उसका यंत्र नीचे दिया है ।

बंध स्थान—	२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१	०
सत्ताके प्रकार—	३	१	५	५	५	६	७	४	४	४	४

इन स्थानोंका अब खुलासा करते हैं ।—

आदिके अर्थात् बाईस प्रकृतिवाले प्रथम बंधस्थानमें आदिके तीन सत्तास्थान हैं—२८, २७, २६ । इसका खुलासा ४४ वें श्लोकमें पूर्वमें किया है । दूसरे २१ वाले द्वितीय बंधस्थानमें सत्तास्थान एक अट्ठाईस प्रकृतिका है । इससे आगेके तीन बंधस्थान १७ का, १३ का, ९ का—ये तीन हैं । इन तीनोंमें पाच पाच सत्तास्थान रहते हैं । वे इस प्रकार कि एक तो सर्वो प्रकृतिका, दूसरा चार अधिक बीस—२४ का, तीसरा तीन अधिक बीस—२३ का, चौथा दो अधिक बीस—२२ का, अधिक बीस—२१ का—ये पाच सत्तास्थान हैं । ५७ ।

सत्रह प्रकृतिका बंधस्थान तीसरे चौथे गुणस्थानमें होता है । १३ प्रकृतिका बंधस्थान पांचवें गुणस्थानमें होता है और

एषाष्टचतुरेकाग्रा त्रिद्व्येकाग्रा मता दश । पंचाग्राणि परे तानि चत्वार्येव ततः परम् ॥ ५८ ॥

---

९ प्रकृतिका बंधस्थान छठे सातवें आठवें–इन तीन गुणस्थानोंमें पाया जाता है । और ९ प्रकृति वाले बंधस्थानमें सत्ताके स्थान २८, २४, २३, २२, २१–ये पाच बताये हैं । अर्थात् आठवें गुणस्थानमें भी अट्ठाईस प्रकृति पर्यंत मोहप्रकृतियोंकी सत्ता रहती है । और आगे मोहके बंधरहित गुणस्थानमें भी २८ की सत्ता आगे बताते हैं । मोहका बंध ग्यारहवें गुणस्थानमें नहीं होता इसलिये औपशमिक, सम्यग्दर्शनको लेकर जो उपशम श्रेणीपर चढता है वह ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत चढ कर भी मोहकी सत्ताको अंशमात्र भी कम नहीं कर पाता है–क्योंकि इस ग्यारहवें गुणस्थानमें अथवा बंधशून्य स्थानमें चार प्रकारके सत्तास्थान जो बताये हैं उन चार सत्तास्थानोंमेंसे पहिला स्थान २८ मोह प्रकृतिका है । ऐसा तात्पर्य निकलता है । ५७ ।

पांच प्रकृतियोंका जहां बंध होता है वह नौवां गुणस्थान है। उसमें सत्ताके स्थान कौनसे होते हैं वह आगे बताते हैं ।–

इसमें सत्ताके सर्व छह स्थान हैं । 'एषा' अर्थात् वीस सख्या । इस वीसमें आठ, चार, एक इन तीन सख्याओंको क्रमसे जोडें तो २८, २४, २१–ये तीन स्थान निकल आते हैं । फिर आगे दश सख्यामें क्रमसे ३, २, १, सख्याको जोडनेसे १३, १२, ११—ये तीन स्थान निकल आते हैं । ये ही छह सत्त्वस्थान पाचके बंधवाले एक बंधस्थानमें समझना । फिर आगेके चार बंधवाले एक बन्धस्थानमें सर्व सत्तास्थान सात हैं । उनमेंसे छह तो २८, २४, २१, १३, १२, ११ के ऊपर बताये हुए ही छह हैं । और एक पाच प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान अधिक है । इस प्रकार यहा सर्व सात स्थान सत्ताके होजाते हैं ।

इसके आगे फिर बन्धस्थान चार रह जाते हैं । ३ का, २ का, १ का, तथा बंधशून्य अंतका चौथा । इन चारो ही बंधस्थानोंमें प्रत्येकमें सत्तास्थान चार चार हैं । वे किस प्रकार चार चार है सो आगेके श्लोकमें बताते हैं ॥ ५८ ॥

॥३९३॥

प्रत्येक विंशतिर्युक्ता तत्राष्टचतुरेककैः । बंधकाबंधकेऽग्रे चतुस्त्रिद्व्येककाः परे ॥ ५९ ॥

द्वाविंशतिबंधके सत्तास्थानानि २८ । २७ । २६ । एकविंशतिबंधके २८ । सप्तदशत्रयोदशनवबंधकेषु २८ । २४ । २३ । २२ । २१ । पचबंधके २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ । चतुर्बंधके २८ । २४ । २१ । १३ । १२।११।५। त्रिबंधके २८।२४।२१।४। द्विबंधके २८।२४।२१।३। एकबंधके २८।२४।२१।२। अबंधके २८।२४।२१।१।

इन अतके चारो बंधस्थानोंमें जो चार चार सत्तास्थान हैं वे इस प्रकार हैं कि आठ अधिक वीसका (२८ का) प्रथम स्थान, चार अधिक वीसका (२४ का) दूसरा स्थान, और एक अधिक वीसका (२१ का) तीसरा स्थान ये तीन स्थान चारो बंधस्थानोंमें समान हैं । और चौथा सत्त्वस्थान चारो बंधस्थानोंके साथमें जुदा जुदा है । तीन बंधवाले स्थानमें चौथा सत्त्वस्थान चार प्रकृतिका है । दो बंधवाले बंधस्थानमें चौथा सत्त्वस्थान तीनका है । एक बंधवाले बंधस्थानमें दोका सत्त्वस्थान चौथा सत्त्वस्थान है । बंधरहित जो बंधस्थान अर्थात्-अबंध स्थान है उसके साथमें चौथा सत्त्वस्थान एक प्रकृतिका है । यह सर्व क्षपक श्रेणीवालेके संभव होता है । एकका बंधस्थान क्षपक श्रेणीवाले नौवें गुणस्थानके अतमें होता है वहांपर सत्ता दो संज्वलन मोहकी रहती है । वहांपर अतमें माया तथा लोभ संज्वलनकी सत्ता रहकर माया संज्वलनकी सत्ता व्युच्छिन्न होती है । इसलिये दशवेंमें केवल एक लोभ संज्वलनकी सत्ता रह जाती है, और बंध रुक जाता है । ५९ ।

बाईसके एक बंधस्थानमें सत्ताके स्थान २८ । २७ । २६ । इक्कीसके बंधस्थानमें सत्तास्थान २८ का एक । सत्रहके, तेरहके, नौके बंधस्थान तीनमें २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ये पाच सत्तास्थान हैं । पाचके बंधस्थानमें २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ ये छह सत्तास्थान हैं । चारके बंधस्थानमें २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ ये सात सत्तास्थान हैं । तीनके बंधस्थान एकमें २८ । २४ । २१ । ४ ।— ये चार सत्तास्थान हैं । दो के बंधस्थान एकमें २८।२४।२१।३।—ये चार सत्त्वस्थान हैं । एकके बंधस्थानमें २८।२४।२१।२।—ये चार सत्तास्थान हैं । बंधरहित स्थानमें २८।२४।२१।१।—ये चार सत्ता स्थान हैं ।

चौवीस आदि प्रकृतियोंके स्थान कैसे बनते हैं वह विशेष आगे दिखाते हैं।

प्रथमका सत्तास्थान २८ प्रकृतिका है। उस प्रथम स्थानमेंसे अनतानुबंधीको कम करदेनेसे चार संख्या कम हो जाती है इसलिये २४ प्रकृतिका स्थान चौथा बन जाता है। इनमेंसे मिथ्यात्वके हटनेसे २३ का सत्त्वस्थान होजाता है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी सत्ता न रहे तो २२ प्रकृतिका सत्वस्थान हो जाता है। मिश्रमोहनीयके भी न रहनेपर २१ प्रकृतिका सत्वस्थान हो जाता है। यह सत्ताका स्थान क्षपकश्रेणीमें नौवें गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यंत समव है। क्षपकश्रेणीवाले अनिवृत्तिकरणके दूसरे भागमें अप्रत्याख्यानावरणकी चार प्रकृति तथा प्रत्याख्यानावरणकी चार प्रकृति—ये आठ क्रोधादि कषाय प्रकृति सत्तासे विच्छिन्न होती हैं इसलिये २१ प्रकृतिमें आठकी सत्ता कम होजानेपर १३ मोह प्रकृतिकी सत्ताका स्थान क्षपक अनिवृत्तिकरणके तीसरे भागमें मिलता है। अनिवृत्तिकरणके तीसरे भागमें नपुसक वेदकी सत्ताका अभाव होजाता है इसलिये चौथे भागमें १२ प्रकृतिका सत्तास्थान है। अनिवृत्तिकरणके चौथे भागमें स्त्री वेदकी विच्छित्ति होती है इसलिये पाचवें भागमें ११ प्रकृतिकी सत्ताका स्थान रहता है। फिर पाचवें भागमें हास्यादि छह नोकषायोंका एक साथ विच्छेद हो जाता है, तब छट्ठे भागमें ग्यारहमेंसे छह प्रकृति घट जानेसे ५ प्रकृतिका सत्तास्थान होजाता है। अनिवृत्तिकरणके छट्ठे भागमें पुरुषवेदकी सत्ताका विच्छेद होता है, तब सातवें भागमें ४ प्रकृतिका सत्त्वस्थान रहजाता है। फिर सातवें भागमें संज्वलन क्रोधकी सत्तामेंसे विच्छित्ति होती है, तब आठवें भागमें ३ प्रकृतिकी सत्ताका स्थान रहता है। आठवें भागमें मान सज्वलनकी सत्ताका विच्छेद हो जाता है; तब नौवें भागमें २ प्रकृतिका सत्त्वस्थान रह जाता है। फिर अनिवृत्तिके नौवें—अंतिम भागमें सज्वलन माया कषायका भी सत्तामेंसे विच्छेद हो जाता है इसलिये दशवें गुणस्थानमें मोहकी १ प्रकृतिका सत्त्वस्थान रह जाता है। दशवें गुणस्थानके आगे मोहकी सत्ता क्षपक श्रेणीवालेके सर्वथा ही नहीं रहती है। और उपशमश्रेणीवाले जीवके इकीसके स्थानसे कम सत्ताके स्थान नहीं पाये जाते हैं। क्योंकि आगे आठ कषायादिके नाश होजानेपर जो तेरह आदि प्रकृतिरूप सत्तास्थान हैं वे क्षपक श्रेणीवालेके ही संभव होते हैं।

इस प्रकार मोहके बधोदयसत्ताके स्थान तथा भग समाप्त हुए।

नामकर्म कथ्यते—

दश स्थानानि वधेऽत्र मोहनीये नवोदये । सत्त्वे पचदशाख्याय कथ्यन्ते नामकर्मणि ॥ ६० ॥
त्रिकपचषडष्टाग्रा नवकाग्रा दशाधिका । एकादशाधिका ज्ञेया विंशतिर्नाम्नि चैककम् ॥ ६१ ॥

नामनि वधस्थानान्याह—२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ।

एक पच त्रयं पच श्वभ्रतिर्यङ्नृनाकिनाम् । क्रमतो गतियुक्तानि वधस्थानानि नामनि ॥ ६२ ॥
१ ५ ३ ५

अब नाम कर्मके बंध–उदय–सत्त्वको क्रमसे कहते हैं ।—

मोहनीयमें बधके दश स्थान बताये और उदयमें नौ स्थान बताये हैं । एव सत्ताके पंद्रह स्थान बताये हैं । तथा परस्परमें सबध जोडकर सयोगी भग भी बताये हैं । अब नामकर्ममें बधादि भेदोंको बताते हैं । ६० ।

नामकर्मके बधस्थान सर्व आठ बताये हैं । एक तीन अधिक वीस (२३) का स्थान है । दूसरा पांच अधिक वीस अर्थात् पच्चीसका स्थान है । तीसरा एक स्थान छह अधिक वीस अर्थात छव्वीसका है । चौथा एक स्थान आठ अधिक वीस (अट्ठाईस) का है । पांचवा एक स्थान नौ अधिक वीस (२९) का है । छट्ठा एक स्थान दश अधिक वीस (३०) का है । सातवां एक स्थान ग्यारह अधिक वीस (३१) का है । और एक आठवा नामकर्मका बंधस्थान एक प्रकृतिका है । इस प्रकार–२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।—ये आठ नामके बंधस्थान हैं । ६१ ।

क्रमसे इन स्थानोंमेंसे नरकगतिके साथ एक स्थान है, तिर्यंच गतिके साथ पाच स्थान हैं । मनुष्यगति कर्मके साथ तीन स्थान हैं । देवगति नामकर्म बध होनेके साथमें पाच स्थान हैं । इस प्रकार जुदी जुदी गतियोंमें नामके ये संभव स्थान हैं । ६२ ।

हुंडं श्वभ्रद्वय निर्मितकार्मण सुभगास्थिरे । अयशोऽसन्नभोरीतिस्तैजस दुःस्वराशुभे ॥ ६३ ॥
त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् । पचेन्द्रियमनादेय द्वय वैक्रियिकाद्वयम् ॥ ६४ ॥
इत्यष्टाविंशतिस्थानमेक मिथ्यात्ववासिताः । सश्वभ्रगतिपचाक्षपूर्णं बध्नति जन्तवः ॥ ६५ ।

२८। स्थान १। भंगः १। नरकगत्या सह वृत्तिविरोधादेकाक्षविकलाक्षजातिसहननानि नात्र वध्यन्ते ।
एकत्रिंशद्वियुक्तैकद्विकपंचषडष्टकैः । पंच स्थानानि जायते तिर्यग्गत्यामिति स्फुटम् ॥ ६६ ॥

३० । २९ । २६ । २५ । २३ ।

नरक गतिके साथमें जो एक बंधस्थान है वह २८ प्रकृतिका है । उसमें कौनसी प्रकृति हैं यह बताते हैं ।—

हुडक संस्थान, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी—ये दो, निर्माण, कार्मण, सुभग, अस्थिर, अयश.कीर्ति, अप्रशस्त विहायोगति, तैजस शरीर, दु स्वर, अशुभ, त्रस बादर पर्याप्ति प्रत्येकशरीर—ये चार प्रकृति, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास—ये अगुरुलघ्वादि चार प्रकृति, वर्ण गध रस स्पर्श—ये वर्णादि चार प्रकृति, पंचेंद्रियत्वजाति, अनादेय, वैक्रियिकशरीर वैक्रियिक शरीरागोपांग—ये वैक्रियिकद्वय—यह अट्ठाईस प्रकृतियोंका जो एक बंधस्थान है उसको पर्याप्तक, पचेंद्रिय तथा नरगति—इन तीन प्रकृतियोंके बंधके साथमें अविनाभावी बनाकर मिथ्यादृष्टि जीव बाधते हैं । ६३–६५ ।

यह २८ का एक स्थान है । इसका भंग १ है । नरकगति-कर्मके साथ एकेंद्रिय, विकल तीन—ये चार जाति, और सर्व संहनन—ये प्रकृति नहीं बधती हैं । नरकगतिके साथमें इनका रहना नहीं होता यही इनके न बधनेका हेतु है ।

तिर्यंच गतिके बंधवालेके पांच स्थान बताये हैं उन्हें दिखाते हैं ।—

एक, दो, पांच, छह, आठ-इन पाच प्रकारकी सख्याओंसे हीन इकतीस सख्या अर्थात् ३०, २९, २६, २५, २३—ये क्रमसे संख्या होती हैं । ये ही पांच स्थान नामकर्मके बधके तिर्यंच गतिमें होते है । ६६ ।

एकं संस्थानषट्कस्य षट्कस्यैकं च संहतेः । षण्णां स्थिरादियुग्मानामेकैकं कर्म तैजसम् ॥ ६७ ॥
नभोगतियुगस्यैकं निर्मिदौदारिकद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ ६८ ॥
तिर्यग्द्वितयमुद्योत पचाक्षं त्रिंशदादिमा । पर्याप्तोद्योतपचाक्ष–तिर्यग्गतिसमन्विता ॥ ६९ ॥
मिथ्यादृष्टिभिरेषात्र बध्यते शासनैरपि । द्वितीया त्रिंशदेषैव व्यन्त्यसंस्थानसंहतिः ॥ ७० ॥

तत्र प्रथमत्रिंशति संस्थानषट्कसंहननषट्कनभोगतियुग्मस्थिरादियुग्मषट्कानां–६।६।२।२।२।२।२।२।२।– परस्पराभ्यासे भंगाः ४६०८ । द्वितीयत्रिंशतो भंगाः ३२०० तेत्र पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते ।

इन पांच स्थानोंमेंसे पहिला स्थान ३० प्रकृतिका है। वे तीस प्रकृति इस प्रकार हैं। छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान नाम कर्म, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, स्थिरादि छह युगलरूप नामकर्म हैं उनमेंसे एक एक करके छह प्रकृति, तैजस, कार्मण, प्रशस्त अप्रशस्त–दो विहायोगति हैं उनमेंसे एक कोई विहायोगति कर्म, निर्माण, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग–ये दो प्रकृति, वर्णादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, त्रसादि चार, तिर्यंगति तिर्यंगत्यानुपूर्वी–ये दो, उद्योत, पंचेंद्रिय जाति नाम कर्म–ये तीस प्रकृति हुई। इन तीस नाम प्रकृतियोंको पर्याप्त, उद्योत, पंचेंद्रिय जाति तथा तिर्यगतिको बांधनेवाला मिथ्यादृष्टि बांधता है। सासादनवाला भी इन तीसको ही बांधता है परंतु अंतके संस्थानको तथा अंतके संहननको सासादनवाला नहीं बांधता इसलिये यह दूसरी तीसी है। ६७–७०।

स्थिरादि छह युगल इस प्रकार हैं– १ स्थिर अस्थिर, २ शुभ अशुभ, ३ सुभग दुर्भग, ४ सुस्वर दुःस्वर, ५ आदेय अनादेय, ६ यशःकीर्ति अयशःकीर्ति। इन छह युगलोंमेंसे एक एक कर्मको बांधते हुए दूसरे छह कर्म बंधसे छूट जाते हैं। और विहायोगतिके युगलमेंसे भी किसी एक एकका एक जीवके एक समयमें बंध होता है, दूसरोंका बंध नहीं होता है। इस प्रकार इन सात युगलोंके परस्परमें गुणा होकर तीसके उत्तर भंग निकलते हैं। इसी प्रकार छह संहनन और छह संस्थानोंमेंसे भी एक समयमें एक जीवके किसी एक एक प्रकृतिका बंध होता है, उस समय शेष पांच पांच प्रकृति छूट जाती हैं। और बदल बदल कर बंधको गिनें तो संस्थान छहके कारण तथा संहनन छहके कारण छह छहको परस्परमें गुणा करनेसे छत्तीस उत्तर भंग तीसके हो जाते हैं। इस प्रकार $6 \times 6 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 4608$ भंग परस्पर गुणित करनेसे

हुडमौदारिकद्वन्द्वं तेजोऽसंप्राप्तदुर्भगे । त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादीनां चतुष्टयम् ॥ ७१ ॥
यशःस्थिरशुभद्वन्द्वत्रितयैकतरत्रयम् । निर्मिद्विकलजात्येकमुद्योतासन्नमोगती ॥ ७२ ॥
तिर्यग्द्वयमनादेय कार्मण दु स्वर त्विमाम् । तृतीयां त्रिंशत मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति दुष्टधी ॥ ७३ ॥
विकलेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्गतिभिरन्विताम् । अत्रान्योन्याहतैर्भंगा जातित्रययुगत्रये ॥ ७४ ॥
संस्थान विकलाक्षाणां हुडे भवति सर्वदा । जातिस्वभावतस्तेषा दु स्वर बधपाकयोः ॥ ७५ ॥

३ । २ । २ । २ । भगा २४ ।

उसमें सस्थान संहनन पांच पांच ही हैं । इसलिये भग ३२००

सिद्ध होते हैं । दूसरी तीसीको जो सासादनवाला बांधता है जुदे नहीं गिने जाते हैं ।
हैं । ये ऊपरके भगोंमें अंतर्भूत हैं इसलिये पुनरुक्त होनेके कारण स्वरूप बताते हैं ।—

तीसरे प्रकारकी तीस नामकर्मप्रकृतियोंको बांधनेका अगुरुलघ्वादि चार, यश कीर्ति
हुडक सस्थान, औदारिक द्वय, तैजस, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, दुर्भग, त्रसादि चार, विकल तीन जातियोंमेंसे कोई एक जाति,
अथवा अयश कीर्ति एक, स्थिर अथवा अस्थिर एक, शुभ अथवा अशुभ एक, निर्माण, इन तीसरी प्रकारकी तीस प्रकृतियोंको वह दुष्ट
उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, तिर्यगद्विद्वय, अनादेय, कार्मणशरीर, दु स्वर—बांधनेवाला है ।
बुद्धिका मिथ्यादृष्टि बांधता है जो विकल त्रय तथा पर्याप्ति, तिर्यगति—इन कर्मोंको एकका ही बंध

इस भेदमें तीन विकल जातिकर्म ऐसे हैं जो उनमेंसे किसीके प्रथम, किसीके दूसरा, किसीके तीसरा—ऐसे एक ही होती है । इसलिये इन तीन
होता है । एक साथ तीनोंका बध नहीं होता । और तीसकी संख्या भी एक एक जातिके जोडनेसे एक एकका बध होता है इसलिये
जातिकर्मोंके द्वारा तीसके तीन भग हो जाते हैं । एव तीन युगलकर्म भी ऐसे हैं कि उनमेंसे
फिर तीनको तीन बार दो दोसे गुणा करनेपर २४ भग हो जाते हैं । (३×२×२×२=२४) । ७१–७४ ।

विकलेंद्रिय तीनो जातियोंके साथ संस्थान एक हुडक ही रहता है यह इन पर्यायोंका जन्मजात स्वभाव है । और बध भी
उनके दु स्वर कर्मका ही होता है तथा उदय भी दु स्वर कर्मका ही है । यह भी उनका जन्मस्वभाव है । इसलिये भग चौबीस ही
होते हैं । सस्थान प्रकृतियोंकी दु स्वरकी युगल प्रकृतिसे गुणा होकर अधिक भग नहीं होते हैं । ७५ ।

यथेति त्रिंशतस्तिस्र एकोनत्रिंशतस्तथा । पर भेदोऽयमेतासु यदुद्योतो न वध्यते ॥ ७६ ॥

४६८८ । २४ एते भगा राशौ गृह्यन्ते । शासनस्य ३२०० एते पूर्वोक्ता न गृह्यन्ते ।

प्रत्येकानादेये वर्णागुरुलघुचतुष्टयद्वितयम् । तिर्यग्द्वयमेकाक्षां तैजसमौदारिकं पूर्णम् ॥ ७७ ॥

स्थिरशुभयशोयुगानामेकैकं दुर्भगाद्वय स्थूलम् । स्थावरमुद्योतातपयोरेक कार्मण हुडम् ॥ ७८ ॥

निर्माण षड्विंशतिरेतां बन्धाति वृद्धमिथ्यात्व । पूर्णैकेन्द्रियतिर्यग्गतिबादरसंयुतां जीव ॥ ७९ ॥

अब उन्तीसका स्थान बताते हैं ।—

जैसे तीस प्रकृतियोंका स्थान है वैसे ही एक घाट कर देनेसे उन्तीस प्रकृतिका स्थान बनता है । तीसके तीन स्थानोंमें जो प्रकृति हैं वे ही उन्तीसके स्थानोंमें हैं, केवल एक उद्योत प्रकृति घट जाती है । तीसमें स्थान तीन हैं वैसे ही उन्तीसमें भी तीन हैं । ७६ ।

इस उन्तीसके भेदमें भी उत्तर भंग ४६८८ होते हैं । विकलेंद्रिय वाले ऊपर २४ भग बताये हैं । सासादनकी तीसके भग ३२०० होते हैं वे ऊपर बताये हैं । वे यहा ग्रहण नहीं किये जाते, क्योंकि वे पुनरुक्त हैं—४६८८ भगोंमें गर्भित हो जाते हैं ।

अब तिर्यंच गतिकी अविनाभाविनी छब्बीस प्रकृतिके स्थानको दिखाते हैं ।—

प्रत्येक, अनादेय, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, तिर्यगतिद्वय, एकेंद्रिय, तैजस, औदारिक शरीर एक, पर्याप्ति, स्थिर अस्थिरमेंसे एक, शुभ अशुभमेंसे एक, यश कीर्ति अयश कीर्ति—इन दोमेंसे एक, दुर्भग, बादर, स्थावर, उद्योत तथा आतपमेंसे कोई एक, कार्मण, हुडक संस्थान, निर्माण—ये छब्बीस प्रकृति हैं । इन्हे मिथ्यात्व भावोंकी प्रचुरता रखनेवाला वह बांधता है जो पर्याप्ति, एकेंद्रिय, तिर्यगति, बादर—इन चार प्रकृतियोंको बांधनेवाला है । अर्थात् जो इन बादरादि चार प्रकृतियोंका बांधनेवाला है वही इनके साथमें बाईस और भी प्रकृतियोंको बाधता है जो ऊपर बताई हैं । ७७—७९ ।

एकेंद्रियजीवानामष्टांगाभावतो यतो नास्ति। अंगोपांग हुंडं संस्थानं जायते चैकम् ॥ ८० ॥

तस्मादातपोद्योतस्थिरास्थिरशुभाशुभयशोऽयशोयुगानां २। २। २। २। परस्पराभ्यासे भंगाः १६। १ उद्योतातपहीनां षड्विंशतिमेकतरयुता पूर्वाम्। प्रत्येकसूक्ष्मयुगयोः स्वीकुरुते पंचविंशति पूर्वः ॥ ८१ ॥

मिथ्यादृष्टिः।

एकेंद्रिय जीवोंके शरीरमें आठ अगोपाग नहीं होते इसलिये एकेंद्रिय जाति कर्मके साथ औदारिकद्वयका बंध न बताकर केवल औदारिकका बध बताया है। इन एकेंद्रिय जीवोंके सस्थान भी विकल्के समान एक हुडक ही रहता है ॥८०॥

इस छब्बीसके भेदमें एक आतप उद्योतका, दूसरा स्थिर—अस्थिरका, तीसरा शुभ—अशुभका, चौथा यशःकीर्ति—अयश-कीर्तिका—ये चार युगल ऐसे हैं जिनमेंसे एक समयमें एक एकका ही वदल बदलकर बंध होता है इस कारण चार युगलोंको परस्पर गुणनेसे सोलह भग हो जाते हैं।

अब तिर्यंच गतिके पच्चीस नामकर्मके बंधभेदको बताते हैं।—

ऊपर छब्बीस प्रकृतियोंका बधस्थान बताया है उसमें उद्योत—आतपमेंसे एकका अवश्य बध होना बताया है। परतु पच्चीसके भेदमें वह उद्योत—आतपमेंकी कोई भी प्रकृति बधको प्राप्त नहीं होती है। इसलिये पच्चीसका यह स्थान होजाता है। और दूसरी विशेष बात यहापर यह है कि ऊपरकी छब्बीसमें प्रत्येक एक प्रकृति और बादर एक प्रकृति—ऐसे दो प्रकृति गिनाई हैं, परंतु पच्चीसमें इन दोनोंके युगलोंमेंसे कोई भी एक एक बंधको प्राप्त होती है। अर्थात् प्रत्येक अथवा साधारणका, और सूक्ष्म अथवा बादरका—इस प्रकार बंध होता है। यहांपर एक उद्योतातपका युगल कम हुआ, परतु दो युगल बढगये इसलिये भग अधिक हो जाते हैं। और 'पूर्व' अर्थात् मिथ्यादृष्टि ही इस भेदको भी बांधता है। ८१।

भावनादीशानांताः सूक्ष्मं साधारणं न बध्नन्ति । अवरुध्यायशस्तस्मात्स्थिरयुग्मं ताड्यते शुभयुगेन ॥ ८२ ॥

भंगाः ४ ।

स्थूलप्रत्येकस्थिरशुभयुग्मानां परस्पराभ्यासे । अयशःकीर्त्तिं श्रित्वा षोडश भंगाः प्रजायंते ॥ ८३ ॥

चतुर्णां युगानां २ । २ । २ । २ । अन्योन्याभ्यासे भंगाः १६ । द्वये २० ।

अयशःकीर्त्युपघाते तेजोऽगुरुलघु हुंडास्थिरे त्रसापूर्णे । वर्णचतुष्क स्थूल निर्मित्तिर्यग्द्वयमनादेयम् ॥ ८४ ॥

भवनवासीसे लेकर ईशान स्वर्गपर्यंतके देव सूक्ष्म तथा साधारण इन दो प्रकृतियोंको नहीं बांधते हैं । अयशःकीर्तिका भी बंध नहीं होता है इसलिये केवल स्थिरयुग्मको शुभयुग्मके साथ गुणित करदेना चाहिये । इससे भंग चार होजाते हैं ॥ ८२ ॥

बादरयुगल, प्रत्येकयुगल, स्थिरयुगल, शुभयुगल–इन चार युगलोंकी दो दो सख्याको चार बार रखकर परस्पर गुणित कर दिया जाय तो उक्त पच्चीस प्रकृतिवाले स्थानके सोलह भंग हो जाते हैं । ऊपर जो चार भंग बताये हैं उनमें अयश·कीर्ति प्रकृतिको छोडकर केवल यश कीर्ति जोडी गई थी । और ये सोलह भंग अयशःकीर्तिको साथमें लेकर होते हैं ।

भावार्थ, भवनादि ईशान पर्यंतके देव पच्चीस प्रकृतियोंको बांधते हैं वे सूक्ष्म तथा साधारण–इन दो को नहीं बांधते और अयशःकीर्तिको भी नहीं बांधते । इसलिये यहां स्थिर और शुभके युगलमेंसे ही एकतर दो दो प्रकृति बांधी जाती हैं और इसीलिये भंग भी दो युगलोंको गुणित करके चार बताये हैं । और जहां स्थिरादि चार युगलोंमेंसे एक एकतर चारका बंध होता है वहांपर यश कीर्ति नहीं बांधी जाती । इसलिये वहांपर चार युगलके परस्पर गुणित करनेसे १६ भंग बताये हैं । इस सोलहके साथ दो युगलके ऊपरवाले चार भंगोंको भी जोडदें तो २० भंग हो जाते हैं । ८३ ।

अब पच्चीस प्रकृतियोंके एक जुदे प्रकारको बताते हैं ।—

अयश कीर्ति, उपघात, तैजस, अगुरुलघु, हुंडक संस्थान अस्थिर, त्रस, अपर्याप्त, वर्णादि चार, बादर, निर्माण, तिर्यंगति द्वय, अनादेय, प्रत्येक, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, दुर्भग, औदारिकद्वय, और कर्म अर्थात् कार्मण प्रकृति (कार्मण शरीर), विक-

प्रत्येकमसंप्राप्तं दुर्भगमौदारिकद्वयं परं कर्म । विकलेन्द्रियपंचेन्द्रियजात्येकतरमशुभं ज्ञेयम् ॥ ८५ ॥
साऽपूर्णत्रसतिर्यग्गतिमेता पंचविंशति जीवः । बध्नाति वामदृष्टिर्भंगचतुष्टययुतामन्याम् ॥ ८६ ॥

यतोऽत्र परघातोच्छ्वासद्विस्वरविहायोगतीनामपर्याप्तेन सह बन्धो नास्ति विरोधादपर्याप्तकाले तेषामुदयाभावाच्च । ततश्चत्वारो जातिभंगाः ४ ।

त्रयोविंशतिरेकाक्ष तिर्यग्द्वितयनिर्मिती । दुर्भगागुरुलघ्वाह्वे तेजऔदारिकेऽशुभं ॥ ८७ ॥
अयश कीर्तिरेकैक स्थूलप्रत्येकयुग्मयोः । उपघातमनादेयमपर्याप्तकदुर्भगे ॥ ८८ ॥

...लेंद्रिय तीन और पंचेंद्रिय एक–इन चार जातिकर्मोंमेंसे कोई एक जाति, अशुभ–ये पच्चीस प्रकृति हैं। इस दूसरे प्रकारकी पच्चीसीको वह मिथ्यादृष्टि जीव बांधता है जो अपर्याप्त, त्रस, तिर्यग्गति–इन तीन कर्मोंको बांध रहा है। इसमें भंग, चार जाति कर्मोंके क्रमसे एक एक बंध होनेके कारण चार होते हैं। वामदृष्टिका अर्थ मिथ्यादृष्टि होता है। इसमें अपर्याप्त, त्रस तथा तिर्यग्गतिका अविनाभाव बताया है, यही इस भेदमें विशेष है। ८४–८६।

यहांपर परघातका, उच्छ्वासका, दोनो स्वरका, दोनो विहायोगतिका–इन कर्मोंका बंध अपर्याप्तकर्मबंधके साथ नहीं होता। ये इस अपर्याप्तयुक्त पच्चीसीके साथ विरुद्ध प्रकृति हैं और उदय भी इनका अपर्याप्तक अवस्थामें नहीं होता है। विहायोगति युगल तथा स्वरयुगलमेंसे किसी एक एकका भी बंध त्रस तथा पर्याप्ति कर्मबंधके साथ ही होता है। यहांपर अपर्याप्तिका बंध गिनाया है इसलिये स्वर दोनो तथा दोनो विहायोगतियोंका बंध नहीं होता। उच्छ्वास और परघातका बंध स्थावरमें भी होता है परंतु वह भी पर्याप्तिबंधके साथ ही नियत है। यहांपर अपर्याप्तिका बंध बताया है इसलिये इस स्थानमें उच्छ्वास तथा परघातका भी बंध नहीं होता है। इसलिये चार जातिके कारण भंग केवल चार ही इस भेदमें हैं।

अब तेईस नाम प्रकृतियोंके स्थानको तिर्यंच गतिमें बताते हैं।–

एकेंद्रियजाति, तिर्यग्गतिद्वय, निर्माण, दुर्भग, अगुरुलघु, तैजस, औदारिक एक, अशुभ, अयश कीर्ति, बादर तथा प्रत्येक–इन दोके दो युगलोंमेंसे एक एक, उपघात, अनादेय, अपर्याप्तक, दुर्भग, वर्णादि चार, हुंडक संस्थान, स्थावर, कार्मण—

वर्णचतुष्कं हुंडं स्थावरमथ कार्मणं समिथ्यात्वैः । तिर्यग्गत्येकाक्षाऽपूर्णयुता बध्यते दीनैः ॥ ८९ ॥

अत्र संहननबंधो नास्ति एकेन्द्रियेषु संहननोदयाभावात् । अत्र बादरप्रत्येकयुग्मयोरन्योन्याभ्यासे चत्वारो भंगाः ४ ।

इति तिर्यग्गतिगताः सर्वे भंगाः । ९३०८ ।

विंशतिर्दशभिर्युक्ता नवभिः पंचभिः क्रमात् । बंधस्थानानि जायते नृगत्यां त्रीणि नामनि ॥ ९० ॥

३० । २९ । २५ ।

त्रिंशदेयात्र पंचाक्ष नृद्वयौदारिकद्वये । सुस्वरं सुभगादेये पूर्वे संस्थानसंहती ॥ ९१ ॥

इन तेईस प्रकृतियोंको दीन मिथ्यादृष्टि वे जीव बांधते हैं जिनके तिर्यगति, एकेंद्रिय, अपर्याप्त–इन तीन कर्मोंका बंध हो रहा हो । अर्थात् इस तेईसके बंधमें तिर्यगति तथा एकेंद्रिय और अपर्याप्त–ये तीन प्रकृति मुख्य हैं । इन तीनको ही साथ लेकर यह तेईसी बांधी जाती है । ८७–८९ ।

यहांपर संहननका बंध नहीं है । एकेंद्रियोंमें संहननका उदय होता नहीं है, यही संहननका बंध न होनेका कारण है । औदारिकांगोपांग कर्मका भी यहां बंध नहीं होता है । एकेंद्रियके अंगोपांग भी नहीं होते हैं । बादर तथा प्रत्येकके युगलोंमेंसे एक एकका बंध होता है इसलिये दो युगलोंके परस्पर गुणनसे भंग चार यहांपर होते हैं ।

इस प्रकार तिर्यगतिमें नामकर्मके बंधके सर्व भंग ९३०८ हैं ।

अब मनुष्यगतिमें नामकर्मके बंधस्थानोंको दिखाते हैं ।—

मनुष्यगतिमें अर्थात् जिस जीवके जब मनुष्यगतिका बंध होता है उस समय उस जीवके, दश अधिक वीस–अर्थात् ३० प्रकृतिका एक बंधस्थान संभव है । दूसरा नौ अधिक वीस अर्थात् उन्तीस प्रकृतिका बंधस्थान संभव है। तीसरा पांच अधिक वीस अर्थात् पच्चीस प्रकृतिका बंधस्थान संभव है । ऐसे मनुष्यगतिमें सर्व तीन बंधस्थान हो सकते हैं । (३०।२९।२५) ।९०।

तीस प्रकृतिका बंधस्थान आगे दिखाते हैं ।— पंचेंद्रिय जाति, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक शरीर द्वय, सुस्वर, सुभग, आदेय, प्रथम संस्थान–समचतुरस्र संस्थान, प्रथम संहनन–वज्रर्षभनाराच संहनन, शुभ–स्थिर–यश कीर्ति–इन तीनके युगलोंमेंसे

शुभस्थिरयशोयुग्मेष्वेकैकं सन्नभोगतिः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ ९२ ॥
तीर्थकृत्कार्मणं तेजो निर्मिद्बध्नात्यसंयतः । एतां नृगतिपचाक्षपूर्णतीर्थकरैर्युताम् ॥ ९३ ॥ (३०) ।

अत्र दुर्भगदुःस्वरानादेयानां तीर्थकरसम्यक्त्वाभ्यां सह विरोधाच्च बंधः सुभगसुस्वरादेयानामेव बंधो यतः, ततस्त्रयाणां युगानां २ । २ । २ । परस्पराभ्यासे भंगाः ८ ।

मानवगत्यादियुतामेकोनत्रिंशत निबध्नीतः । हीनां त्रिंशतमेतां तीर्थकृता मिश्रसद्दृष्टी ॥ ९४ ॥ (२९) ।

अत्राष्टौ भंगाः पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते ८ ।

कोई एक एक—ऐसे तीन प्रकृति, प्रशस्त विहायोगति, वर्णादि चार, अगुरुलघ्वादि चार, त्रसादि चार, तीर्थंकरप्रकृति, तैजस, कार्मण, निर्माण—ये तीस प्रकृति हैं । इनका बंध असंयत—चौथे गुणस्थानवाला जीव करता है । ये तीस प्रकृति मनुष्यगति, पंचेंद्रियजाति, पर्याप्ति और तीर्थंकर प्रकृति—इन चार प्रकृतियोंके साथ अविनाभाविनी हैं । अर्थात् इन तीस प्रकृतियोंमें मनुष्यगति आदि चार प्रकृति अवश्य बंधको प्राप्त होती हैं । ९१—९३ ।

दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय—इन तीन प्रकृतियोंका तीर्थंकर तथा सम्यक्त्वके साथ विरोध है इसलिये इस तीसीमें दुर्भगादि तीन प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है। केवल सुभग सुस्वर आदेय—इन तीन प्रकृतियोंका ही बंध होता है। इसलिये युगल तीन ही ऐसे शेष रहते हैं कि जिनमेंसे एक समयमें किसी एक एक-तीनका ही बंध होता है; इतर तीनका नहीं होता। वे तीन युगल—१ शुभद्वय, २ स्थिरद्वय, ३ यशःकीर्तिद्वय—ये हैं । इन तीन युगल संख्याका परस्परमें गुणा करनेसे सर्व भंग इस तीसीमें आठ हो जाते हैं ।

उन्तीस प्रकृतिके स्थानको बताते हैं ।—ऊपरकी तीस प्रकृतियोंमेंसे यदि तीर्थंकरप्रकृति न बंधे तो तीसके स्थानमें उन्तीसका स्थान होजाता है । इस स्थानको मिश्र—तीसरे गुणस्थानवाला जीव अथवा सम्यग्दृष्टि-चौथे गुणस्थानवाला जीव बांधता है । इस उन्तीसके स्थानमें भी मनुष्यगति, पंचेंद्रियजाति, पर्याप्तिनाम—इन तीन प्रकृतियोंके बंधकी अपेक्षा मुख्य मानी गई है। जो इन मनुष्यगत्यादि तीनको बांधता है वही जीव इन उन्तीसका बांधनेवाला है । ९४ ।

इस उन्तीसके जो भंग, तीन युगलोंके गुणा करनेसे आठ होते हैं उन्हें पुनरुक्त होनेसे जुदा नहीं गिना जाता है ।

संहतिसंस्थानानां षण्णामेकतरसंयुतामेताम् । आदेयसुस्वरसुभगद्वंद्वानामेकतरयुक्तां ॥ ९५ ॥
बध्नाति वामदृष्टिः षट्कद्वययुग्मषट्कोपेताम् । सगगनगतियुग्मैकामेकोनत्रिंशत जीवः ॥ ९६ ॥
अत्रैषां ६ । ६ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । परस्परवधे भंगाः ४६०८ ।

इस उन्तीसीमें जो दूसरा विशेष भेद है उसे बताते हैं और इसके भंगोंको भी बताते हैं ।—

इस उन्तीसीमें छहो संस्थान और छहो संहनन क्रमसे एक एक करके बंध होनेके योग्य माने गये हैं । आदेय, सुस्वर तथा सुभग—इन तीन प्रकृतियोंके युगलोंमेंसे एक एक किसी प्रकृतिका एक समयमें बंध होता है । पहिले जो तीस प्रकृतिका बंधस्थान बताया था उसमें ये तीन युगल नहीं लिये गये थे । इन तीनो युगलोंके आदिकी तीन प्रकृति ही ली गई थी । यहांपर इन तीनोंके युगल लिये जाते हैं । एवं, ऊपर विहायोगति केवल प्रशस्तरूप एक ही ली गई थी, किंतु यहांपर प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगतिके युगलमेंसे कोई भी एक ले ली जाती है । इस प्रकार ऊपरके तीन युगल, तथा यहाके ये चार युगल लेनेसे सात युगल इस उन्तीसीमें हो जाते हैं । इस प्रकार दो बार छह छह संख्यासे और सात बार दो दो संख्यासे इसमें परस्पर गुणा करके इसके भंग निकालने चाहिये । इस प्रकार इस दूसरी उन्तीसीकी प्रकृति समझनी चाहिये । श्लोकके गगनगति शब्दका अर्थ विहायोगति है । ९५–९६ ।

इसमें ६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८ परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छहसौ आठ भंग होते हैं ।

---

१ गगनगतिः—विहायोगति । तस्या युग्मं गगनगतियुग्मं, तस्य युग्मस्य मध्ये एका अन्यतरा गगनगतियुग्मैका । सह तयेति ता सगगनगतियुग्मैकाम् । इति समासो ज्ञेय ।

परि० ५
॥४०६॥

तृतीयामपि बध्नाति द्वितीशामिव शासनः । न्यन्त्यसंहतिसंस्थानां शेषैकतरसंयुताम् ॥ ९७ ॥

५।५।२।२।२।२।२।२।२। परस्पराभ्यासे भंगाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टत्वान्न गृह्यन्ते ।

पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा कार्मण मानुषद्वयम् । तेजो हुंडमसंप्राप्त पचाक्षौदारिकद्वये ॥ ९८ ॥

अपूर्णागुरुलघ्वाढ्ये स्थूल प्रत्येकदुर्भगे । उपघातमनादेयं निर्माणमयशोऽशुभम् ॥ ९९ ॥

त्रसमस्थिरकं वर्णचतुष्टयमिमामसौ । गृह्णात्यपूर्णपंचाक्षमनुष्यगतिसंयुताम् ॥ १०० ॥

तीसरे प्रकारकी भी एक उन्तीसी बंधको प्राप्त होती है उसे आगे बताते हैं ।—

तीसरी उन्तीसीको सासादन सम्यग्दृष्टि—दूसरे गुणस्थानवाला बांधता है । यह भी दूसरी उन्तीसीके समान ही है । केवल अंतर इस बातका है कि इसमें अंतके संस्थानका और अंतके संहननका बंध नहीं होता । इसलिये आदिके पांच संस्थानोंमेंसे और आदिके ही पांच संहननोंमेंसे किसी एक एकका बंध एक समयमें होता है । और शेष जो आदेयादिकी सात युगल प्रकृति हैं उनमेंसे किसी एक एकका एक समयमें बंध है—यह बात पूर्वकी दूसरी उन्तीसीके ही समान है । ९७ ।

५×५×२×२×२×२×२×२×२=इनका परस्पर गुणा करनेपर सर्व भंग ३२०० होते हैं । परंतु ये पूर्वके भंगोंमें गर्भित हैं इसलिये जुदे गिने नहीं जाते हैं ।

अब मनुष्य गतिमें जो पच्चीस नामकर्म प्रकृतिका बंधस्थान संभव है उसे आगे दिखाते हैं ।—

कार्मण, मनुष्यगतिद्वय, तैजस, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, पंचेंद्रियजाति, औदारिक शरीर द्वय, अपर्याप्त, अगुरुलघु, बादर, प्रत्येक, दुर्भग, उपघात, अनादेय, निर्माण, अयशःकीर्ति, अशुभ, त्रस, अस्थिर, वर्णादि चार—इन पच्चीस प्रकृतियोंको वह जीव ही बांधता है जिसके अपर्याप्त, पंचेंद्रियजाति, मनुष्यगति—इन तीन प्रकृतियोंका बंध होरहा हो । अर्थात् ऊपरकी पच्चीस प्रकृतियोंमें ये अपर्याप्तादि तीन प्रकृति मुख्य हैं । इन तीन प्रकृतियोंकी अविनाभाविनी शेष बाईस प्रकृति हैं । ९८–१०० ।

॥४०७॥

अत्र संक्लेशतो बध्यमानेनापर्याप्तेन सह स्थिरादीनां विशुद्धिप्रकृतीनां बंधाभावादेको भंगः १ । नृगतौ सर्वे भंगाः ४६१७ ।

इति नृगतिगताः सर्वे भंगाः समाप्ताः ।

एकद्वित्रिचतुस्त्यागे क्रमात् द्वात्रिंशतः स्फुट । चत्वारि देवगत्यां स्युरेकं निर्गति पंचकं ॥ १०१ ॥

३१ । ३० । २९ । २८ । १ ।

एकत्रिंशदिय तत्र कार्मणं त्रिदशद्वयं । पंचाक्षमाद्यसंस्थानं तेजो वैक्रियिकद्वयं ॥ १०२ ॥

यहांपर यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि अपर्याप्तताके साथ स्थिरादि विशुद्धिमूलक प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है । अपर्याप्ति कर्मका बंध होनेमें कारण संक्लेश परिणाम है । इसलिये इसके साथमें, विशुद्धिसे बंधको प्राप्त होनेवाली स्थिरादि प्रकृति बांधी नहीं जाती हैं । अत एव भंग यहां एक ही है । मनुष्यगतिमें नामके सर्व भंग ४६१७ होते हैं ।

इस प्रकार मनुष्यगतिके सर्व भंग समाप्त हुए ।

अब देवगतिमें नाम प्रकृतियोंके बंधस्थान बताते हैं । बत्तीसकी संख्यामें क्रमसे एक, दो, तीन, चार संख्याको घटानेपर ३१, ३०, २९, २८—ये संख्याएं होती हैं । अर्थात् देवगतिमें स्थान चार हैं—३१ का, ३० का, २९ का और २८ का । और आगे एक यश कीर्ति नाम प्रकृतिका जो एक स्थान है वह गतिरहित ऊपरके जीवका है । [३१।३०।२९।२८।१] इस प्रकार ये सर्व स्थान 'पंचक' अर्थात् पांच हुए । १०१ ।

अब सबसे प्रथम इकतीसके बंधस्थानको बताते हैं ।—

कार्मण, देवगति द्वय, पंचेंद्रियजाति, सबसे पहिला समचतुरस्र संस्थान, तैजस, वैक्रियिक शरीर द्वय, वर्णादि चार

वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् । सुस्वरं सन्नभोरीतिः शुभमाहारकद्वयम् ॥ १०३ ॥
सुभग यश आदेय निर्मित्तीर्थकरस्थिरे । बध्यते सप्तमापूर्वैः पूर्णपचेन्द्रियान्विता ॥ १०४ ॥
देवेत्याहारकद्वन्द्वतीर्थकारित्वसयुता । सहतिर्बध्यते नात्र तस्या देवेष्वभावतः ॥ १०५ ॥
एकत्रिंशदिय त्रिंशदुक्ता तीर्थकरोनिता । बध्यते निःप्रमादेन साऽपूर्वकरणेन च ॥ १०६ ॥

अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, शुभ, आहारक शरीर द्वय अर्थात् आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, सुभग, यशःकीर्ति, आदेय, निर्माण, तीर्थंकरत्व प्रकृति, स्थिर—ये इकतीस ऐसी प्रकृति हैं जिन्हे पर्याप्ति तथा पचेंद्रिय जातिके साथ, सातवें तथा आठवें ये दो गुणस्थानवर्ती जीव ही बांधते हैं । १०२—१०४ ।

देवगतिके साथमें आहारकद्वय तथा तीर्थंकर प्रकृति—ये तीन प्रकृति इस इकतीसीमें अविनाभाविनी हैं । किंतु इन तीनमेंसे कुछ छूट भी जाती हैं । उस समय मात्र बंध इकतीसका न रहकर कमका होजाता है उसे आगे बतानेवाले हैं । सहनन नामकर्मका बध देवगतिकर्मके साथ नहीं होता । इसका कारण यह है कि देवोंमें संहतिका उदय नहीं है । भावार्थ, आहारक द्वय तथा तीर्थंकर प्रकृति—इन तीनका भी उदय देवगतिमें नहीं है, तो भी ये तीन प्रकृति देवगतिके साथमें भी बंधको प्राप्त होती हैं । इसका कारण यह है कि सातवें तथा आठवें गुणस्थानमें इन आहारकादि तीन प्रकृतियोंका बंध होनेकी योग्यता है किंतु इन दो गुणस्थानोंमें, गति चारमेंसे केवल देवगतिका ही बंध होता है । इसलिये इन तीन प्रकृतियोंके बंधका होना देवगतिके उदयकी सहसंभवतापर निर्भर नहीं है । किंतु इन गुणस्थानोंमें दोनो प्रकारकी प्रकृतियोंका बंध होना समयप्राप्त मात्र है । इन तीन प्रकृतियोंका उदय सदा मनुष्य गतिमें ही होता है । १०५ ।

इस इकतीसीका भंग एक ही है ।

तीसका भेद बताते हैं ।—

ऊपरकी इकतीस प्रकृतियोंमें यदि तीर्थंकर प्रकृतिका बध न हो तो शेष सर्व उन तीसका बंध होना समझना चाहिये । इस तीसीका बध भी अप्रमत्त अर्थात् सातवें और आठवें गुणस्थानवाले जीवद्वारा ही होता है । क्योंकि इसमें आहारकद्वय सामिल हैं इसलिये इस तीसीके बंधाधिकारी सातवें आठवें गुणस्थानवर्ती जीव ही होते हैं ॥ १०६ ॥

अपूर्वाख्यानिवृत्त्याख्यसूक्ष्मलोभाह्वयास्त्रयः । एकं यशो निबध्नन्ति न परं नामकर्मणि ॥ ११० ॥
मिलितानामशेषाणां पचपंचाशता विना । चतुर्दशसहस्राणि विकल्पाः सति नामनि ॥ १११ ॥
(१३९४५) ।

गुणस्थान पर्यंत बन्धको प्राप्त होती है और इसमें स्थिर शुभ यश·कीर्ति—इन तीनके तीन युगल लेने चाहिये । अतएव इसमें भंग तीन युगलके परस्पर गुणनसे ८ हो जाते हैं । इस प्रकार देवोंमें सर्व भग १९ हो जाते हैं ।

इसके आगे अब एक नामकर्मके एक स्थानको बताते हैं ।—

अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, और सूक्ष्मलोभ—इन तीन गुणस्थानोंमें एक यशःकीर्तिका ही बन्ध होता है दूसरी नाम-प्रकृतिका नहीं होता । इसके आगे फिर नामकर्मका बन्ध है ही नहीं ॥ ११० ॥

अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यंत देवायुके बन्धकी समाप्ति होती है और छट्ठे भागमें नामकर्मकी प्रकृतियोंका बन्धच्छेद हो जाता है । यहासे केवल यश कीर्ति ही बन्धव्युच्छित्ति होनेसे बच जाती है । इस यश कीर्तिका बन्धविच्छेद दशवें गुणस्थानके अन्तमें होता है । इसीलिये दशवें गुणस्थान पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें नामकर्मकी एक यश कीर्तिका बंधस्थान बताया है । आठवेंमें जो यह एक प्रकृतिका बधस्थान बताया गया है वह आठवेंके प्रारंमसे न मानकर आठवें गुणस्थानके सातवें भागसे मानना चाहिये—यह विशेष बात है । द्वितीय परिच्छेदमें २१ वें श्लोकसे बधविच्छेदका वर्णन है उसके देखनेसे नामकर्मके इतर बधस्थानोंकी तथा एक बन्धस्थानकी अवस्थाका ज्ञान स्पष्टतासे हो सकता है ।

नामकर्ममें सर्व बन्धस्थानोंके जो भग होते हैं वे सर्व तेरह हजार नौ सौ पैंतालीस १३९४५ हैं ॥ १११ ॥

इस प्रकार नाम कर्मके बन्धस्थान और उनके भंग समाप्त हुए ।

इससे आगे अब नामकर्मके बंधके स्थान गोमटसारके अनुसार कहेंगे। उसमें पहले नामकर्मस्थानोंके आधारभूत ४१ जीवपदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं,—

णिरया पुण्णा पणंह बादरसुहुमा तहेव पत्तेया। वियलाऽसण्णी सण्णी मणुआ पुण्णा अपुण्णा य ॥ ५१९ ॥
सामण्णतित्थकेवलि उहय समुग्घादगा य आहारा। देवावि य पज्जत्ता इदि जीवपदा हु इगिदाला ॥५२०॥जुम्मम्।
निरयाः पूर्णाः पञ्च बादरसूक्ष्माः तथैव प्रत्येकाः। विकला असंज्ञिनः संज्ञिनो मनुष्याः पूर्णा अपूर्णाश्च ॥ ५१९ ॥
सामान्यतीर्थकेवलिनौ उभयौ समुद्घातगौ च आहाराः। देवा अपि च पर्याप्ता इति जीवपदा हि एकचत्वारिंशत् ॥५२०॥युग्मम्।

अर्थः—नारकी सब पर्याप्त हैं इस कारण १ भेद, पृथिवीकाय १ जलकाय २ तेजकाय ३ वायुकाय ४ साधारणवनस्पतिकाय ५ ये पाँच बादर और सूक्ष्म हैं इससे १० भेद हुए, इसी तरह प्रत्येकवनस्पतिकाय, दोइंद्री आदि ३ विकलत्रय, असज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी मनुष्य ये १७ पर्याप्त तथा अपर्याप्त हैं इस प्रकार ३४ भेद हुए। तथा सामान्यकेवली, तीर्थंकरकेवली, और दोनों ही समुद्घात करनेवाले, आहारकशरीरवाले, और देव—ये ६ पर्याप्त ही होते हैं। इसतरह १+३४+६=सब ४१ भेद जीवोंके हैं। इस कारण इनको जीवपद अर्थात् जीवस्थान कहते हैं। और ये नाम कर्मके बंधस्थानोंके निमित्तसे होते हैं, इसलिये इनको कर्मपद भी कहते हैं ॥ ५१९-५२० ॥ यहांपर कर्मके निमित्तसे ३६ ही स्थान होते हैं इस कारण कर्मपद ३६ ही हैं।

तेवीस पणवीस छव्वीस अट्ठवीसमुगतीसं। तीसेकतीसमेव एक्को बंधो दुसेढिम्हि ॥ ५२१ ॥
त्रयोविंशति पञ्चविंशति षड्विंशतिरष्टाविंशमेकोनत्रिंशत्। त्रिंशदेकत्रिंशदेवमेको बन्धो द्विश्रेण्याम् ॥ ५२१ ॥

अर्थ—नामकर्मके बंधस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, प्रकृतिरूप सात तो अपूर्व करणके छट्ठे भागतक पाये जाते हैं और एक प्रकृतिरूप आठवां बंधस्थान दोनों श्रेणियोंमें बंधता है ॥ ५२१ ॥

आगे वे बंधस्थान किस कर्मपदसहित बंधते हैं यह बात दो गाथाओंसे कहते हैं,—

ठाणमपुण्णेण जुदं पुण्णेण य उवरि पुण्णगेणेव। तावदुगाणण्णदरेणण्णदरेणमरणिरयाणं ॥ ५२२ ॥
णिरयेण विणा तिण्हं एक्कदरेणेवमेव सुरगइणा। बंधंति विणा गइणा जीवा तज्जोगपरिणामा ॥ ५२३ ॥ जुम्मं।

स्थानमपूर्णेन युतं पूर्णेन चोपरि पूर्णकेनैव । आतापद्विकयोरन्यतरेणान्यतरेणामरनिरययो ॥ ५२२ ॥
निरयेण विना त्रयाणामेकतरेणैवमेव सुरगतिना । बध्नन्ति विना गत्या जीवा तद्योग्यपरिणामाः ॥ ५२३ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए आठ स्थानोंमें क्रमसे पहला २३ प्रकृतिरूप स्थान अपर्याप्तप्रकृतिसहित बंधता है, दूसरा स्थान पर्याप्तप्रकृति सहित 'च' शब्दसे अपर्याप्तसहित भी बंधता है। इससे आगे पर्याप्तप्रकृतिसहित ही बंधते हैं। उनमें भी २६ प्रकृतिरूप स्थान आतप–उद्योत इन दोनोंमेंसे कोई एक प्रकृतिसहित बंधता है। २८ प्रकृतिरूप स्थान देवगति और नरकगति इन दोनोंमेंसे कोई एक गति सहित बंधता है। २९ प्रकृतिरूप और ३० प्रकृतिरूप ये दो स्थान नरक गतिके विना तिर्यंच आदि ३ गतियोंमेंसे कोई एक गति सहित बंधते हैं। ३१ प्रकृतिरूप स्थान देवगतिके साथ बंधता है। और एक प्रकृतिरूप स्थान किसी गति कर्मके साथ नहीं बंधता। इस प्रकार इन स्थानोंके योग्य परिणामोंवाले जीव इन स्थानोंको बांधते हैं ॥ ५२२–५२३ ॥

पूर्वोक्त आताप और उद्योत ये दो प्रकृतियां प्रशस्त (पुण्यरूप) हैं वे किस पदके साथ बंधती हैं यह कहते हैं—

भूबादरपज्जत्तेणादावं बंधजोग्गमुज्जोवं । तेउतिगूणतिरिक्खपसत्थाण एयदरगेण ॥ ५२४ ॥
भूबादरपर्याप्तेनातापो बंधयोग्य उद्योतः । तेजस्त्रिकोनतिर्यक्प्रशस्तानामेकतमेन ॥ ५२४ ॥

अर्थ—पृथिवीकायबादरपर्याप्त सहित ही आतप प्रकृति बंधयोग्य है, और उद्योत प्रकृति तेजःकायादि तीन के विना शेष तिर्यंचसबंधी पुण्यप्रकृतियोंमेंसे किसी एक प्रकृतिके सत्य बंधयोग्य कही है ॥ ५२४ ॥

णरगइणामरगइणा तित्थं देवेण हारमुभयं च संजदबंधट्ठाण इदरादि गईहिं णत्थित्ति ॥ ५२५ ॥
नरगत्यामरगत्या तीर्थं देवेनाहारमुभयं च । संयतबन्धस्थानमितराभिर्गतिभिः नास्तीति ॥ ५२५ ॥

अर्थ—तीर्थंकरप्रकृतिको देव और नारक असंयत तो मनुष्यगति सहित बांधते हैं, और असंयतादि चार गुणस्थानवाले मनुष्य देवगतिसहित ही बांधते हैं, क्योंकि संयतके योग्य बंधस्थान देवगतिके विना अन्यगतियों सहित बंधता ही नहीं है ५२५।

आगे २३ आदि स्थानोंमें प्रकृतियोंके जाननेकेलिये पाठका क्रम तीन गाथाओंसे कहते हैं,–

णामस्स णव धुवाणि य सरूणतसजुम्मगाणमेक्कदरं । गइजाइदेहसंठाणाणूणेक्कं च सामण्णा ॥ ५२६ ॥
तसबंधेण हि संहदिअंगोवंगाणमेक्कदरगं तु । तप्पुण्णेण य सरगमणाणं पुण एगदरगं तु ॥ ५२७ ॥
पुण्णेण समं सव्वेणुस्सासो णियमदो दु परघादो । जोगट्ठाणे तावं उज्जोवं तित्थमाहारं ॥ ५२८ ॥ विसेसयं ।

नाम्नो नव ध्रुवाश्च स्वरोनत्रसयुग्मकानामेकतरकं तु । गतिजातिदेहसंस्थानानूनामेका च सामान्या ॥ ५२६ ॥
त्रसबन्धे हि संहत्याङ्गोपाङ्गानामेकतरकं तु । तत्पूर्णेन च स्वरगमनाना पुन एकतरकं तु । ५२७ ॥
पूर्णेन समं सर्वेणोच्छ्वासो नियमतस्तु परघात. । योगस्थाने आतप उद्योतं तीर्थमाहारम् ॥ ५२८ ॥ विशेषकम् ।

अर्थ—नामकर्मकी तैजस आदि ९ ध्रुवबंधी प्रकृतियां, स्वरके बिना त्रसादि नौ युगल इनमेंसे एक एक इस प्रकार ९, गति ४, जाति ५, शरीर ३, संस्थान ६, आनुपूर्वी ४ इनमेंसे एक एक इसप्रकार ५, सब मिलकर २३ प्रकृतियां सामान्य बंधरूप हैं। त्रसप्रकृतिके साथ ही ६ संहनन, ३ अंगोपांगोंमें किसी एक एकका बंध होता है। त्रसपर्याप्त प्रकृति सहित स्वरयुगल तथा विहायोगति युगलमेंसे एक एकका बंध होता है। पर्याप्त प्रकृति सहित जो सब त्रस स्थावर हैं उनके साथ उच्छ्वास और परघात नियमसे बंधयोग्य हैं। तथा आतप, उद्योत, तीर्थंकर, आहारकयुगल—ये प्रकृतियां पहले कहे हुए योग्य नामपदोंमें बंध-योग्य हैं ॥ ५२६ । ५२७ । ५२८ ॥

तित्थेणाहारदुगं एक्कसराहेण बंधमेदीदि । पक्खित्ते ठाणाणं पयडीणं होदि परिसंखा ॥ ५२९ ॥
तीर्थेनाहारद्विकमेकसंग्राहेण बन्धमेतीति । प्रक्षिप्ते स्थानानां प्रकृतीनां भवति परिसंख्या ॥ ५२९ ॥

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृति सहित आहारकयुगल एक काल ही बंधको प्राप्त होता है, इसकारण पूर्वोक्त २३ के बंधमें यथासंभव प्रकृतियोंके मिलानेसे स्थानों और प्रकृतियोंकी संख्या हो जाती है ॥ ५२९ ॥

इसी बातको दो गाथाओंसे कहते हैं;—

एयक्खअपज्जत्तं इगिपज्जत्तं बितिचपणरापज्जत्तं । एइंदियपज्जत्तं सुरणरयगईहिं संजुत्तं ॥ ५३० ॥
पज्जत्तगबितिचपमणुसदेवगदिसंजुदाणि दोण्णि पुणो । सुरगइजुदमगइजुदं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३१॥ जुम्मं ।

एकाक्षापर्याप्तमेकपर्याप्तं द्वित्रिचपनरापर्याप्तम् । एकेन्द्रियपर्याप्तं सुरनिरयगतिभ्यां संयुक्तम् ॥ ५३० ॥
पर्याप्तकद्वित्रिचपं मानुषदेवगतिसंयुते द्वे पुन. । सुगतियुतमगतियुतं बन्धस्थानानि नाम्नः ॥ ५३१ ॥ युग्मम् ।

अर्थ—एकेंद्री अपर्याप्त सहित २३ का १ स्थान है। एकेंद्री पर्याप्त–दोइन्द्री–तेइन्द्री–चौइन्द्री–पंचेन्द्री तथा मनुष्य अपर्याप्त सहित २५ के ६ स्थान हैं। एकेंद्री पर्याप्त आतप तथा एकेंद्री पर्याप्त उद्योत सहित २६ के २ स्थान हैं। देवगति तथा नरकगति सहित २८ के २ स्थान हैं, दोइन्द्री–तेइन्द्री–चौइन्द्री पंचेंद्री पर्याप्त और मनुष्यगति तथा देवगति पर्याप्त इन दोनोंकर सहित दो स्थान—इसप्रकार २९ के ६ स्थान हैं। दोइन्द्री पर्याप्त उद्योतादि सहित ६ स्थान ३० के हैं। देवगति सहित १ स्थान ३१ का है। और यशस्कीर्तिप्रकृति सहित १ स्थान १ का है। इसप्रकार नामकर्मके बंधस्थानोंका कथन जानना ॥ ५३०–५३१ ॥

आगे इन बंधस्थानोंके भंग कहते हैं,—

संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे । अविरुद्धेक्कदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा दु ॥ ५३२ ॥
संस्थाने संहनने विहायोयुग्मे च चरमषड्युग्मे । अविरुद्धे एकतमात् बंधस्थानेषु भङ्गा हि ॥ ५३२ ॥

अर्थ—६ संस्थान, ६ संहनन, विहायोगतिका जोडा और अतके स्थिर आदि ६ युगल इनमें अविरुद्ध एक एकका ग्रहण करनेसे और आपसमें गुणाकार करनेपर बंधस्थानोंमें ४६०८ भङ्ग होते हैं ऐसा नियमसे जानना ॥ ५३२ ॥

तत्थासत्थो णारयसव्वापुण्णेण होदि बंधो दु । एक्कदराभावादो तत्थेको चेव भंगो दु ॥ ५३३ ॥
तत्राशस्तो नारकसर्वापूर्णेन भवति बन्धस्तु । एकतमाभावात् तत्रैकश्चैव भङ्गस्तु ॥ ५३३ ॥

अर्थ—उन प्रशस्त तथा अप्रशस्त बंधरूप प्रकृतियोंमें नरकगति सहित तथा त्रसस्थावर युक्त सब अपर्याप्त सहित दुर्भगादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही बंध होता है, क्योंकि इनमें बंधयोग्य प्रकृतियोंकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका बंध नहीं होता। इसलिये उन स्थानोंमें अप्रशस्त एक एक प्रकृतिका ही बंध होनेसे एक एक ही भंग है ॥ ५३३ ॥

तत्थासत्थं एदि हु साहारणथूलसव्वसुहुमाण । पज्जत्तेण य थिरसुहजुम्मेक्कदर तु चदुभंगा ॥ ५३४ ॥
तत्राशस्ता एवि हि साधारणस्थूलसर्वसूक्ष्मानाम् । पर्याप्तेन च स्थिरशुभयुग्मैकतर तु चतुर्भङ्गा ॥ ५३४ ॥

अर्थ—उन एकेंद्रियके ग्यारह भेदोंमें साधारणवनस्पति और बादरपर्याप्त तथा सूक्ष्मपर्याप्त सहित, २५ के बंधस्थानमें एक एक अप्रशस्त प्रकृति ही बंधको प्राप्त होती है। विशेषता यह है कि स्थिर–शुभके युगलोंमेंसे किसी एकका बंध होनेसे २५ के ५ स्थानोंमें चार चार भग होते हैं ॥ ५४० ॥

पुढवीआऊतेऊवाऊपत्तेयवियलसण्णीण । सत्थेण असत्थं थिरसुहजसजुम्मट्ठभगा हु ॥ ५३५ ॥
पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकविकलासंज्ञिनाम् । शस्तेनाशस्त स्थिरशुभयशोयुग्ममष्टभङ्गा हि ॥ ५३५ ॥

अर्थ—पृथिवीकाय–जलकाय–तेजकाय–वायुकाय–प्रत्येक वनस्पति–द्विइन्द्रियादि विकल ३–असंज्ञी पंचेंद्री इनके अविरोधी त्रस बादरादिसे हुए जो २५ प्रकृतिरूप आदि स्थान हैं उनमें त्रस बादर आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके साथ यथासंभव दुर्भगादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका बंध होता है, इस कारण स्थिर–शुभ–यश कीर्ति इन तीन युगलोंकी अपेक्षा आठ २ भग होते हैं। ५३५

आगे शेष तिर्यंच पचेंद्री पर्याप्तसहित कर्मपदोंमें और मनुष्यकर्मपदमें २९ तथा ३० के स्थानोंमें भग कहनेकेलिये गुणस्थानोंमें विभाग करते हैं,—

सण्णिस्स मणुस्सस्स य ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु । छादालसय अट्ठ य बिदिये बत्तीससयभंगा ॥ ५३६ ॥
संज्ञिनो मनुष्यस्य च ओघैकतरं तु मिथ्याभङ्गा हि । षट्चत्वारिंशच्छतमष्ट च द्वितीये द्वात्रिंशच्छतभङ्गा ॥ ५३६ ॥

अर्थ—तिर्यंचगतिपर्याप्तसहित सैनीका २९ का स्थान और उद्योतसहित ३० के स्थानमें, तथा मनुष्यगति पर्याप्तसहित २९ के स्थानमें सामान्य छह संस्थानादि प्रकृतियोंमेंसे एक एकका क्रमसे बंध होनेसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ४६०८ भग होते हैं। और दूसरे गुणस्थानमें ३२०० भंग होते हैं ॥ ५३६ ॥

मिस्साविरदमणुस्सट्ठाणे मिच्छादिदेवजुदठाण । सत्थ तु पमत्तंते थिरसुहजसजुम्मगट्ठभगा हु ॥ ५३७ ॥
मिश्राविरतमनुष्यस्थाने मिथ्यादिदेवयुतस्थाने । शस्त तु प्रमत्तान्ते स्थिरशुभयशोयुग्मकाष्टभङ्गा हि ॥ ५३७ ॥

॥४१७॥

अर्थ—मिश्र और अविरत गुणस्थानवाले मनुष्यगति सहित स्थानमें, मिथ्यात्वादि गुणस्थानवाले देवगतिसहित स्थानमें तथा प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत जीवोंके प्रशस्त प्रकृतिका बंध अप्रशस्त प्रकृतिके साथ होता है, इससे, स्थिर—शुभ—यशःकीर्ति इन तीन युगलोंकी अपेक्षा आठ आठ भंग कहे हैं ॥ ५३७ ॥

आगे एक पर्यायको छोडना तथा दूसरी पर्यायमें उत्पन्न होना यथासभव दिखाते हैं, ।—

णेरयियाणं गमणं सण्णीपज्जत्तकम्मतिरियणरे । चरिमचऊतित्थूणे तेरिच्छे चेव सत्तमिया ॥ ५३८ ॥

नैरयिकाना गमनं संज्ञिपर्याप्तकर्मतिर्यग्नरे । चरमचतुष्कतीर्थोने तिरश्चि चैव सप्तमिका ॥ ५३८ ॥

अर्थ—घर्मादि तीन पृथिवीवाले नारकी जीवोंकी मरणकर उत्पत्ति गर्भज पर्याप्त सैनी पचेन्द्री कर्मभूमिया तिर्यंच अथवा मनुष्यपर्यायमें होती है । अन्तके चार नरकोंवाले जीव तीर्थंकरादिके सिवाय पूर्वोक्त तिर्यंच अथवा मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न होते हैं । परंतु इतनी विशेषता है कि सातवें नरकवाले पूर्वोक्त तिर्यंच पर्यायमें ही उत्पन्न होते हैं ॥ ५३८ ॥

तत्थतणऽविरदसम्मो मिस्सो मणुवदुगमुच्चय णियमा । बंधदि गुणपडिवण्णा मरंति मिच्छेव तत्थभवा ॥ ५३९ ॥

तत्रतनोऽविरतसम्यक् मिश्रो मानवद्विकमुच्चकं नियमात् । बध्नाति गुणप्रतिपन्ना म्रियन्ते मिथ्ये एव तत्रभवाः ॥५३९॥

अर्थ—उस सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ असयतसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्ती अपने २ गुणस्थानोंमें मनुष्यगति युगल तथा ऊंच गोत्र इनको नियमसे बांधता है । तथा वहांपर उत्पन्न हुए सासादन—मिश्र—असयत गुणस्थानवाले जिस समय मरण करें उस समय मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होकर ही मरण करते हैं ॥ ५३९ ॥

तेउदुग तेरिच्छे सेसेग अपुण्णवियलगा य तहा । तित्थूणणरेवि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे ॥ ५४० ॥

तेजोद्विकं तिरश्चि शेषैकापूर्णविकलकाश्च तथा । तीर्थोननरेपि तथा असंज्ञी घर्मे च देवद्विके ॥ ५४० ॥

अर्थ—तिर्यंच गतिमें, तेज कायिक—वायुकायिक ये दोनों मरण करके तिर्यंच गतिमें ही उत्पन्न होते हैं । शेष एकेन्द्री अर्थात् पृथिवीकाय—जलकाय और वनस्पतिकाय ये बादर सूक्ष्म पर्याप्त, अपर्याप्त इन सब अवस्थाओंवाले, इसीप्रकार दो इन्द्री

आदि विकलत्रय-ये सब जीव तिर्यंच गतिमें उत्पन्न होते हैं; और तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाका (पदवी धारक) पुरुषोंके विना शेष मनुष्यपर्यायमें भी उत्पन्न होते हैं। असज्ञी पचेन्द्री मरण करके पूर्वोक्त तिर्यंच-मनुष्यगतिमें तथा घर्मानामवाले पहले नरकमें और देवयुगलमें अर्थात् भवनवासीव्यंतरदेवोंमें उत्पन्न होता है ॥ ५४० ॥

सण्णीवि तहा सेसे णिरये भोगेवि अच्चुदतेवि । मणुवा जति चउगदिपरियत सिद्धिठाणं च ॥ ५४१ ॥

संज्ञी अपि तथा शेषे निरये भोगेपि अच्युतान्तेपि । मानवा यान्ति चतुर्गतिपर्यन्त सिद्धिस्थानं च ॥ ५४१ ॥

अर्थ—इसीप्रकार सज्ञी पचेंद्री तिर्यंच भी शेष अर्थात् असज्ञी पचेन्द्रीकी तरह पूर्वोक्त गतियोंमें, सब नारकी पर्यायोंमें, सब भोगभूमियापर्यायोंमें और अच्युतस्वर्गपर्यंत सब देवोंमें उत्पन्न होता है। और मनुष्य मरण करके चारों ही गतियोंमें तथा सिद्धिस्थान (मोक्ष) को भी प्राप्त होते हैं ॥ ५४१ ॥

आहारगा दु देवे देवाण सण्णिकम्मतिरियणरे । पत्तेयपुढविआऊबादरपज्जत्तगे गमण ॥ ५४२ ॥
भवणतियाण एवं तित्थूणणरेसु चेव उप्पत्ती । ईसाणंताणेगे सदरदुगंताण सण्णीसु ॥ ५४३ ॥ जुम्म ।

आहारकास्तु देवे देवाना संज्ञिकर्मतिर्यग्नरे । प्रत्येकपृथिव्यप्बादरपर्याप्तके गमनम् ॥ ५४२ ॥
भवनत्रिकानामेव तीर्थोननरेषु चैवोत्पत्ति । ईशानान्तयोरेकस्मिन् शतारद्विकान्ताना संज्ञिषु ॥ ५४३ ॥ युग्मम् ।

अर्थ-आहारकशरीरसहित प्रमत्तगुणस्थानवाले मरण करके कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न होते हैं। सब देवोंकी उत्पत्ति सामान्यसे सज्ञी पचेन्द्री कर्मभूमिया तिर्यंच तथा मनुष्यपर्यायमें, और प्रत्येक वनस्पतिकाय-पृथिवीकाय-जलकाय बादरपर्याप्तजीवोंमें होती है। विशेष यह है कि भवनवासी आदि ३ प्रकारके देवोंकी उत्पत्ति तीर्थंकरादिकोंमें नहीं होती, अन्य मनुष्योंमें ही होती है। ईशानस्वर्गपर्यंत देवोंकी उत्पत्ति पूर्वोक्त मनुष्य तिर्यंचोंमें तथा एकेन्द्रिय पर्यायमें होती है। और शतार-सहस्रार पर्यन्त स्वर्गोंवाले देवोंकी उत्पत्ति भी पूर्वोक्त मनुष्य तिर्यंचोंमें संज्ञीपचेंद्रीमें होती है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥ इस प्रकार चारों गतिके जीवोंकी सक्षेपसे मरण और उत्पत्ति कही है।

||४१९||

नाम्न उदयस्थानानि कथ्यते—

अत्रैकविंशतिः पाके चतुर्विंशतिरिष्यते । सैकद्वित्रिचतुःपंचषट्सप्ताग्रा नवाष्ट च ॥ ११२ ॥

२१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ ।

तत्रैकपंचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात् । पाकस्थानानि जायंते पंच श्वाभ्रगताविति ॥ ११३ ॥

२१ । २५ । २७ । २८ । २९ ।

अब नामकर्मके उदयस्थानोंको दिखाते हैं ।—

नामकर्मके पाक अर्थात् उदयमें एक स्थान इक्कीस प्रकृतिरूप है और दूसरा एक स्थान चौवीस प्रकृतिरूप है । और इस चौवीस सख्यामें एक, दो, तीन, चार, पांच, छह तथा सात—ये सख्याएं जोडनेसे जो क्रमसे २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सख्याएं प्राप्त होती हैं सो ये भी नामकर्मके इतने उदयस्थान हैं । इनके शिवाय एक नौ प्रकृतिरूप और एक आठ प्रकृतिरूप ये दो उदयस्थान और भी हैं ।-इस प्रकार नामकर्मके सर्व उदयस्थान ग्यारह हैं—२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का और ८ का । अर्थात् इतनी उन उन स्थानोंमें प्रकृति हैं ।११२।

अब इन उदयस्थानोंमेंसे छांटकर किस गतिमें अथवा किस गतिके साथ कौन कौनसे उदयस्थान संभव हैं—इस बातको दिखाते हैं । चार गतियोंमेंसे नरकगतिके स्थानोंको प्रथम दिखाते हैं । फिर तिर्यंच गतिके स्थानोंको दिखावेंगे । और फिर मनुष्यगतिके स्थानोंको दिखावेंगे । अंतमें देवगतिके स्थानोंको दिखावेंगे । भावार्थ, किस गतिकर्मका उदय होनेपर शेष कितने कितने नामकर्म उदयमें प्राप्त होते हैं—यह क्रमवार दिखाते हैं ।—

नरक गतिमें पाकस्थान अर्थात् उदयविकल्प ऊपरके सर्व ग्यारह उदयस्थानोंमेंसे पांच हैं । वे कौन कौनसे हैं ? एक वीससे एक अधिकका अर्थात् २१ प्रकृतिका है । दूसरा एक पांच अधिक वीसका अर्थात् २५ प्रकृतिरूप है । तीसरा वीससे सात अधिकका है अर्थात् २७ प्रकृतिरूप है । चौथा एक स्थान आठ अधिक वीस प्रकृतिरूप है अर्थात् २८ प्रकृतिका स्थान है। पांचवां एक स्थान नौ अधिक वीस प्रकृतिका अर्थात् २९ प्रकृतिरूप है । ये पांच स्थान नरकगतिके उदयके साथ उदयरूप होते हैं।

ऐकविंशतमत्रेदं कार्मणं नारकद्वयम् । पर्याप्तागुरुलघ्वाह्वये तेजो वर्णचतुष्टयम् ॥ ११४ ॥
पंचेंद्रियमनादेयमयशो दुर्भगं त्रसम् । स्थूलं शुभस्थिरद्वन्द्वे निर्माणमिति भाषितम् ॥ ११५ ॥
विग्रहवृत्तिमुपेतस्य नारकस्योदयोऽस्य च । एको जघन्यतो ज्ञेयः समयौ द्वौ प्रकर्षतः ॥ ११६ ॥
२ । भगः १ ।
त्यक्तश्वभ्रानुपूर्वीकं तद्युक्तं पांचविंशतम् । प्रत्येकांगोपघाताख्यहुडवैक्रियिकद्वयैः ॥ ११७ ॥

इक्कीसका उदयस्थान इस प्रकार है ।—कार्मण शरीर, नरकगतिद्विक, पर्याप्ति, अगुरुलघु, तैजस शरीर, वर्णादि चार, पंचेंद्रिय जाति, अनादेय, अयशःकीर्ति, दुर्भग, त्रस, बादर, शुभ तथा स्थिर—इन दो प्रकृतियोंके प्रतिपक्षी अशुभ तथा अस्थिर को साथ लेकर दो युगल की चार प्रकृति, एक निर्माण—इस प्रकार इक्कीस प्रकृति होती हैं । ११४–११५ ।

ये इक्कीस प्रकृति विग्रह गतिमें प्राप्त हुए नारकी जीवके उदयमें आती हैं । इस नारकी जीवकी विग्रहगतिका काल जघन्य एक समय मात्र है और उत्कृष्ट दो समय प्रमाण है । तात्पर्य, इतने समय पर्यंत ही इस इक्कीसीका उदय रहता है । इसका भंग एक ही है, अधिक नहीं होते ॥ ११६ ॥

इस इक्कीसीमें शुभयुगल और स्थिरयुगलको जोड़ा गया है तब इक्कीसकी संख्या पूरी होती है । शुभयुगल अर्थात् शुभ अशुभ ये दो प्रकृति । स्थिरयुगल अर्थात् स्थिर अस्थिर ये दो प्रकृति । इस प्रकार चारों इन प्रकृतियोंका उदय साथमें मानकर उदयकी इक्कीस प्रकृति पूरी की गई हैं । कर्मकांड गोमटसारकी ५८८ वीं गाथामें भी उदययोग्य इक्कीसकी जो गिनती दिखाई है उसमें नाम कर्मकी ध्रुवबंधवाली बारह प्रकृति ली हैं । और वे बारह प्रकृति 'तेजदुग वण्ण चऊ थिरसुहजुगलगुरुणिमिण धुव उदया' इस ४०३ की गाथामें गिनाई हैं वहां स्थिर तथा शुभके युगल गिनाकर ही पूरी बारह संख्या की है ।

अब नारकगतिमें पचीस नाम प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं ।—

जिसने नरकानुपूर्वी प्रकृतिको भोगकर समाप्त कर दिया है उसके बादमें पचीस प्रकृतियोंका उदय संभव है । आनुपूर्वीका उदय विग्रह गतिमें होता है । विग्रह गतिके समाप्त होते ही आनुपूर्वी भी छूट जाती है । और जीव शरीरको धारण करनेका प्रारंभ

इदमात्तशरीरस्य ज्ञेयं श्वाभ्रस्य पूर्णताम् । यावच्छरीरपर्याप्तिर्गच्छत्यन्तर्मुहूर्त्तिकी ॥ ११८ ॥
२५ । भंगः १ ।

नास्त्यत्र संहतेः पाको देवनारकयोर्यतः । न तस्यां जायते बंधः कदाचन निसर्गतः ॥ ११९ ॥

असद्गत्यन्यघाताभ्यां तद्युक्तं सप्तविंशतम् । पूर्णांगस्यानपर्याप्तिं यावत्कालोऽस्य जायते ॥ १२० ॥
२७ । भंगः १ ।

कर देता है उस समय नारकी जीवके प्रत्येक शरीर, उपघात, हुडक संस्थान, वैक्रियिकद्वय—ये पाच प्रकृति उदयमें अधिक वढ जाती हैं और आनुपूर्वी एक घट जाती है इसलिये ऊपर बताई हुई इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे वीस रह जाती हैं और पाच ये नवीन उदयको प्राप्त होती हैं। इस प्रकार पचीस प्रकृतियोंका उदयस्थान सिद्ध होता है। यह स्थान आहारवर्गणाके प्रारंभ से लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होती है तबतक समझना चाहिये। शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेमें अतर्मुहूर्त मात्र समय लगता है। इसका भंग एक ही है। ११७—११८।

नरकगतिमें संहननका उदय नहीं होता है इसलिये यहांके उदयप्रकृतिस्थानोंमें संहनन प्रकृतिको नहीं गिनाया है। देव तथा नारक गतिके साथ जो बंधस्थान पूर्वमें बताये हैं उनमें यहांपर संहननका बंध होना स्वभावसे ही निषिद्ध बताया है। इसी कारण यहांपर किसी भी संहननका उदय नहीं होता है ऐसा समझना। ११९।

अब सत्ताईस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं।

शरीरपर्याप्त पूर्ण होनेके बाद एक अतर्मुहूर्तकाल श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेमें लगता है। इस शरीर पर्याप्तिसे पूर्ण हुए नारकी जीवके अप्रशस्त विहायोगति तथा परघात इन दो प्रकृतियोंका उदय होना और भी बढ जाता है। इसलिये पचीस ऊपर की प्रकृति तथा दो ये मिलकर सत्ताईस प्रकृतिका उदयस्थान हो जाता है। यह स्थान श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत समझा जाता है। इसका भी भंग एक ही है। और इसका काल भी अंतर्मुहूर्त है। आनका अर्थ प्राण है। प्राणका ही अर्थ श्वासोच्छ्वास है। १२०।

॥४२२॥

तदाष्टाविंशतं युक्त स्यादुच्छ्वासेन पूर्णताम् । यावद्वचनपर्याप्तेः कालोऽस्यांतर्मुहूर्त्तकम् ॥ १२१ ॥

२८ । भगः १ ।

ऐकान्नत्रिंशत युक्तं दुःस्वरेण तदिष्यते । एकको जायते भगः स्थानानामिति पचके ॥ १२२ ॥

२९ । भगाः १ । सर्वभगाः ५ ।

दशवर्षसहस्राणि कालस्तस्य जघन्यकः । प्रकृष्टस्तु त्रयस्त्रिंशत्सागरा विनिवेदिताः ॥ १२३ ॥

अन्तर्मुहूर्तोन कालद्वय ज्ञेयम् ।   इतिश्वभ्रगति समाप्ता ।

अब अट्ठाईस प्रकृतियोंके स्थानको बताते हैं ।—श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर श्वासोच्छ्वासरूप कार्य शुरू हो जाता है । और इसीलिये इस श्वासोच्छ्वासका कारण जो उच्छ्वास नाम कर्म है उसका भी उदय होना शुरू हो जाता है । और इसलिये इस श्वासोच्छ्वासका कारण जो उच्छ्वास नाम कर्म है उसका भी उदय होना शुरू हो जाता है । इस उच्छ्वास प्रकृतिके जोडदेनेसे सत्ताईसके स्थानमें अट्ठाईसका उदयस्थान हो जाता है । इस अट्ठाईसीके उदयका समय वचन पर्याप्ति पूर्ण होती है तबतकके बीचका समझना चाहिये । वचन पर्याप्तिके पूर्ण होनेतक इसका काल भी अतर्मुहूर्तमात्र है । १२१ ।

अब उन्तीस प्रकृतियोंके उदयस्थानको गिनाते हैं ।—

वचन पर्याप्तिके पूर्ण होते ही वचनप्रयोग करनेकी शक्ति प्रगट होती है, उसी समयसे स्वरनाम कर्मके भेदरूप दुःस्वर नाम कर्मका उदय होने लगता है । ऊपरकी अट्ठाईस बताई हुई प्रकृतियोंमें इस दुःस्वर प्रकृतिके मिलजानेसे यह उन्तीस प्रकृतिका उदयस्थान हो जाता है । यहा तक सर्व स्थान उदयप्रकृतियोंके पाच हुए । इन पाचों ही स्थानोंमें भग एक एक ही है ।१२२।

इस स्थानका काल जघन्य दश हजार वर्ष प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर वर्षका माना गया है । यह जो जघन्य तथा उत्कृष्ट कालमर्यादा बताई है वह अंतर्मुहूर्त कम समझनी चाहिये ऐसा टिप्पणीकार कहते हैं । इसका कारण यह है कि उन्तीस प्रकृतिके उदयस्थानकी यह जघन्योत्कृष्ट मर्यादा बताई है । नारकोंकी जघन्योत्कृष्ट आयुर्मर्यादा दश हजार वर्ष तथा तेतीस सागरप्रमाण ही है । किंतु इन उन्तीस नाम प्रकृतियोंका उदय, अंतर्मुहूर्तके बाद वचन पर्याप्ति पूर्ण होजाने पर होता है इसलिये जघन्योत्कृष्ट आयुमेंसे यह शुरूका अतर्मुहूर्त काल घटाकर प्रमाण देखनेसे अतर्मुहूर्तहीनता सिद्ध हो जाती है । १२३ ।

इस प्रकार नरकगतिमें उदययोग्य नामप्रकृतियोंके स्थान समाप्त हुए ।

एकविंशतिरुक्ता च चतुरादियुता च सा। एकत्रिंशत्पर्यन्तास्तिर्यग्गत्यां नवोदयाः ॥ १२४ ॥

२१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१।

उद्योतस्योदयस्त्यक्त्वा तेजःपवनकायिकौ। स्थूलेष्वन्येषु सर्वेषु पूर्णेष्वस्ति त्रसेषु च ॥ १२५ ॥

आतपस्योदयः पूर्णे बादरे क्षितिकायिके। सामान्यैकेन्द्रियस्योक्तं प्रथमं स्थानपंचकम् ॥ १२६ ॥

२१। २४। २५। २६। २७।

आतपोद्योतपाकेन सप्तविंशतिवर्जितम्। सामान्यैकेंद्रिये ज्ञेयमाद्यं पाकचतुष्टयम् ॥ १२७ ॥

२१। २४। २५। २६।

इति पाकचतुष्टयम्।

अब तिर्यंच गतिमें नामप्रकृतिके उदयस्थानोंको बताते हैं।—

तिर्यंच गतिमें प्रथम उदयस्थान २१ प्रकृतिका है। दूसरा चौवीसका स्थान है। इसी प्रकार आगे पच्चीस आदि इकतीस प्रकृति पर्यंतके भी उदयस्थान हैं। सर्व ये उदयस्थान नौ हैं। २१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का और ३१ का–इस प्रकार नौ स्थान हैं। १२४।

ऊपरके नौ स्थानोंमेंसे आदिके पांच स्थानोंका विशेष खुलासा करते हैं।

उद्योत प्रकृतिका उदय तैजस कायमें तथा वायु कायमें नहीं होता, शेष सर्व बादर पर्याप्तक कायोंमें इसका उदय संभव है और तिर्यंच त्रसोंमें भी इसका उदय होना संभव है। यह उद्योतका उदय पर्याप्त जीवके ही होता है। १२५।

आतपकर्मका उदय बादर पर्याप्तकरूप पृथ्वीकायिकोंमें होता है। और नौ स्थानोंमेंसे पहिले पांच उदयस्थान सामान्य एकेंद्रिय जीव मात्रके होते हैं। १२६।

आतप अथवा उद्योत प्रकृतिके साथ होनेवाले सत्ताईसके एक स्थानको छोडकर शेष आदिके २१ से २६ पर्यंतके चार उदयस्थान सामान्य एकेंद्रिय जीवके होते हैं। १२७।

अस्त्यैकविंशत स्थान निरुद्योतातपोदयम् । कार्मणागुरुलघ्वाह्वे तिर्यग्द्वितयतैजसे ॥ १२८ ॥
वर्णगन्धरसस्पर्शा निर्मित् स्थिरशुभद्वये । स्थूलपूर्णयशोयुग्मत्रितयैकतरत्रयम् ॥ १२९ ॥
एकेन्द्रियमनादेय स्थावर दुर्भग परम् । विग्रहर्त्तावदिं स्थानमेकद्वित्रिक्षणस्थिति । २१ ॥ १३० ॥
सूक्ष्मसाधारणापूर्णैः सार्धं नोदेति यद्यशः । एकोऽतोऽस्ति यशःपाके भगोऽन्यत्र चतुष्टयम् ॥ १३१ ॥
अत्रायशःपाके बादरपर्याप्तयुग्मयोरन्योन्याभ्यासे भगाः ४ । यशःपाके भंग १ । मीलिता भंगाः ५ ।
अतिर्यगानुपूर्वीक चातुर्विंशतमस्त्यदः । स्थानमौदारिके हुडे प्रत्येकयुगलकके ॥ १३२ ॥

इक्कीस प्रकृतिके उदयस्थानमें कौनसी वे प्रकृति हैं इस बातको आगे दिखाते हैं।—

आतप और उद्योतको छोड़कर इक्कीस प्रकृतिका एक उदयस्थान है उसमें प्रकृति इक्कीस इस प्रकार हैं।— कार्मण, अगुरुलघु, तिर्यग्गतिद्वय, तैजस, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, निर्माण, स्थिर अस्थिर दोनो, शुभ अशुभमेंसे दोनो, बादर–पर्याप्त–यश.कीर्ति—इन तीन युगलोंमेंसे एक एक तीन प्रकृति, एकेंद्रियजाति, अनादेय, स्थावर, दुर्भग। यह एक, दो अथवा तीन समय पर्यंत टिकनेवाला इक्कीसका उदयस्थान विग्रहगतिमें ही होता है। १२८—१३०।

सूक्ष्म साधारण अपर्याप्त—इन प्रकृतियोंके साथ यश कीर्तिका उदय नहीं होता है इसलिये यशःकीर्तिके उदयमें एक ही भंग होता है। और अयश कीर्तिके साथवाली दूसरी इक्कीसीमें भग चार हो जाते हैं। भावार्थ, अयश कीर्तिके उदयमें बादर–सूक्ष्म तथा पर्याप्त–अपर्याप्त इन दो युगलोंके रहनेसे परस्पर दो युगलोंके गुणाकारसे चार भंग होजाते हैं। यश कीर्तिके उदयका एक भग और अयश कीर्तिक साथमें इक्कीसीके चार भग मिलकर सर्व पांच भंग होजाते हैं। १३१।

इसके आगे चौवीस प्रकृतिके उदयस्थानको बताते हैं।—

ऊपर जो इक्कीसका स्थान है वह विग्रहगतिका है। विग्रहगतिमें आनुपूर्वी प्रकृति उदीयमान रहती है। विग्रह गतिके समाप्त होजानेपर जब तिर्यंच शरीरको जीव ग्रहण करता है उस समयसे शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होने तक चौवीस प्रकृतिका

उपघाते च निक्षिप्ते गृहीतांगस्य पूर्णता। यावच्छरीरपर्याप्तिरत्र भंगा नवेरिताः ॥ २४ । १३३ ॥

अत्रायशःपाके स्थूलपर्याप्तप्रत्येकयुग्मानामन्योन्याभ्यासे भंगाः ८। यशःपाके भंगः १। यतो यशःपाकेन सार्धं सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानामुदयो नास्ति। सर्वे भंगाः ९।

सान्यघातमपूर्णोनमस्तीदं पांचविंशतम्। यावदुच्छ्वासपर्याप्तिस्तावत्कालोऽस्य भाषितः ॥ २५ । १३४ ॥

उदयस्थान होता है। ऊपरकी इक्कीसीमेंसे तिर्यगानुपूर्वी घट जाती है और औदारिक शरीर, हुंडकसंस्थान, प्रत्येकके युगलमेंकी एक प्रकृति, उपघात—ये चार प्रकृति बढ जाती हैं—इस प्रकार चौवीसी होजाती है। इसके भंग नौ हैं। और समय इसका शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेतक अंतर्मुहूर्त है। १३२–१३३।

इस स्थानमें अयश कीर्तिका उदय रहनेपर बादर तथा सूक्ष्मका युगल संभव है, पर्याप्त तथा अपर्याप्त—यह युगल संभव है, और प्रत्येक तथा साधारण—यह तीसरा युगल भी संभव है। इस प्रकार अयश कीर्तिके उदयके साथ तीन युगल संभव हैं। तीनों युगलोंमेंसे कोई एक एक—ऐसे तीन प्रकृतिका एक समयमें उदय होना संभव है। इसलिये इन तीन युगलसंख्याओंका परस्पर गुणाकार करनेसे इसके भंग आठ हो जाते हैं। यशःकीर्तिका उदय रहते कोई युगल संभव नहीं है इसलिये यशःकीर्तिके साथमें भंग एक ही है। यश कीर्तिके साथमें सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये तीन प्रकृति उदयको प्राप्त नहीं होती किंतु बादर पर्याप्त प्रत्येक—ये तीन ही प्रकृति उदयमें आती हैं। इस प्रकार चौवीसीके उदयस्थानमें सर्व भंग नौ हो जाते हैं।

अब पच्चीस प्रकृतिके उदयस्थानको बताते हैं।—

ऊपर चौवीसका उदयस्थान बताया है उसमें परघात नाम एक प्रकृतिके उदयको बढादेनेसे पच्चीस प्रकृतिका उदयस्थान हो जाता है। परंतु परघातका उदय शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेतक नहीं होता; शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जानेके बाद परघातका उदय होता है। इसलिये इस पच्चीसीके उदयस्थानका काल शरीरपर्याप्तिके आगे उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होने तक माना गया है। श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होते ही उच्छ्वास कर्मका उदय बढ जाता है इसलिये श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिके आगे पच्चीस प्रकृति

भंगाः परस्पराभ्यासे स्थूलप्रत्येकयुग्मयोः । चत्वारोऽत्रायशःपाके परत्रैकोऽभिधीयते ॥ १३५ ॥

अयशःपाके ४ यश पाके १ । मीलिताः ५ ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्ताविद षाड्विंशत मतम् । अस्य वर्षसहस्राणि स्थितिर्द्वाविंशतिः परा (२६) ॥ १३६ ॥

भंगा ५ स्थितिः २२००० । सर्वे भगा २४ ॥

न रहकर उदयस्थानकी प्रकृतियोंकी संख्या बढजाती है–इस बातको आगे दिखानेवाले हैं । इसलिये पच्चीसीका समय श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पर्यंत ही माना गया है । दूसरी बात यहांपर यह समझनेकी है कि अपर्याप्ति कर्मके उदयवाला जीव शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम ही मरजाता है–इसलिये शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद जो पच्चीसीका उदयस्थान है उसमें अपर्याप्तिका उदय घट जाता है इसलिये यहां युगल दो ही रहते हैं । ऊपरकी चौवीसीमें युगल तीन बताये हैं उनमेंसे पर्याप्तिका एक युगल घटकर यहां केवल पर्याप्ति नाम एक प्रकृति उदय योग्य रहती है ॥ १३४ ॥

इस पच्चीसीमें अयश कीर्तिके साथमें बादर तथा प्रत्येकके दो युगल संभव हैं । इसलिये दोनों युगलोंका परस्पर गुणाकार से अयश कीर्तिके उदयमें भग चार हो जाते हैं। यश कीर्तिके उदयमें एक ही भंग है । इसका कारण ऊपर बताया है कि यश कीर्तिके सूक्ष्म तथा साधारणका उदय नहीं होता इसलिये भंग अधिक होनेका कारणीभूत युगल एक भी यहां संभव नहीं है ॥१३५॥

यश कीर्तिका एक भग और अयशःकीर्तिके चार भग—इस प्रकार सर्व पांच भग इस स्थानमें हैं ।

अब छव्वीस प्रकृतिके उदयस्थानको बताते हैं ।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेपर श्वासोच्छ्वासरूप कार्य शुरू होता है इसलिये उसके कारणभूत उच्छ्वास कर्मका भी होने लगता है। इस प्रकार ऊपरकी पच्चीसीमें उच्छ्वास प्रकृति बढजानेसे छव्वीसका यह उदयस्थान हो जाता है । इसका आयु.समाप्ति पर्यंत है । इसकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्षकी है ॥ १३६ ॥

ऊपरके समान इस स्थानमें भी भग अयश कीर्तिके साथ चार और यश कीर्तिके साथ एक ऐसे सर्व पांच हैं । इक्कीसीके उदयस्थानमें भंग पांच बताये हैं और चौबीसके उदयस्थानमें भी पांच भंग ही हैं । पच्चीसीके उदयस्थानमें नौ भंग हैं । इस प्रकार सर्व भंग इस एकेन्द्रियरूप तिर्यग्गतिके आतप–उद्योतरहित चारो स्थानोंके मिलकर २४ होते हैं ।

पांचविंशतमत्यस्य शेषं स्थानचतुष्टयम् । पंचकैकेंद्रियोक्तं यत्तदुद्योतातपोदये ॥ १३७ ॥

२१ । २४ । २६ । २७ ।

एकाग्रचतुरग्रे द्वे विंशती पूर्विके विना । सूक्ष्मसाधारणापूर्णैः सत्युद्योतातपोदये ॥ १३८ ॥

२१ । २४ । तत्र सूक्ष्मापर्याप्तोनैकविंशतिः २१ । साधारणोना चतुर्विंशतिः २४ । अत्रातपोद्योतोदयभागिनां सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरोदयाभावाद्यशोयुग्मस्यैकतरभंगौ द्वौ द्वौ पुनरुक्तौ २ । २ ।

अब पच्चीसके एक स्थानको छोडकर शेष चार—२१ का, २४ का, २६ का, तथा २७ का—इन स्थानोंको जो पृथिव्यादि पांच एकेंद्रियोंमें बताया है उन्हे उद्योत तथा आतप प्रकृतियोंके उदयमें समझना चाहिये । १३७ ।

एक अधिक वीसका और चार अधिक वीसका ऐसे इक्कीस, चौवीसके दो स्थान पूर्वमें बनाये हैं वे यदि आतप तथा उद्योतके उदय सहित हों तो उनमें सूक्ष्म साधारण अपर्याप्त इन तीन कर्मोंका उदय नहीं होता है । १३८ ।

इन स्थानोंमें सूक्ष्म तथा अपर्याप्ति—ये प्रकृति उदययोग्य नहीं मानी जानेसे इक्कीसका स्थान इन दोको छोडकर होता है । और चौवीसीका स्थान साधारणको भी छोडकर केवल प्रत्येकके साथ होता है । और यहा आतप तथा उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवालोंमें सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण शरीर—इन तीन कर्मोंका उदय नहीं रहता इसलिये भंग अधिक होनेका कारण केवल यश कीर्तिका एक युगल है । इसके द्वारा इक्कीसके स्थानमें भी दो भग होजाते हैं और चौवीसके स्थानमें भी दो भंग हो जाते हैं। किंतु ये दोनो स्थानोंके भग ऊपर गिना दिये हैं वे ही हैं इसलिये ये पुनरुक्त भंग हैं।

पहिले चौवीसीके स्थानके आगे पच्चीसीका स्थान बताया गया है परंतु आतप उद्योतवालेकें पच्चीसीका स्थान न होकर छब्बीसीका स्थान होता है । और पूर्वमें जहा छब्बीसीका स्थान बताया है वहांपर आतप उद्योतवालेकें सत्ताईसीका स्थान होता है । इसी बातको आगे बताते हैं ।—

परघातातपोद्योतद्वितयैकतरान्वितम् । इद षाड्विंशत स्थानं पर्याप्तांगस्य जायते ॥ २६ । १३९ ॥

अस्योत्कृष्टा जघन्या च स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तकम् । भगाः ४ ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तावस्तीद साप्तविंशतं । ज्ञेयं जीवितपर्यन्तं सविकल्पचतुष्टयम् ॥ १४० ॥

अस्य स्थितिः परा द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि २२००० । भंगाः ४ । एकेंद्रियस्य सर्वे भगाः ३२ ।

पहिले चौवीसीके आगे शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जानेवाले जीवके परघात कर्मका उदय बढ जाना बताया था और इसलिये उसके पच्चीसीका उदय होता था । किंतु यहा परघातका और आतप—उद्योतमेंसे किसी एक प्रकृतिका ऐसे दो प्रकृतिका उदय बढ जाता है इसलिये उदयस्थान छव्वीस प्रकृतिका हो जाता है । यह स्थान भी शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तक समझना चाहिए । इसलिये इस स्थानकी टिप्पणीकारने जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अतर्मुहूर्त मात्र बताई है । इसके भग चार होते हैं । क्योंकि यश कीर्तियुगलके द्वारा दो भग होते ही थे और आतप—उद्योतवाले युगलके द्वारा दोको दो गुणित कर देनेसे चार भंग हो जाते हैं ॥ १३९ ॥

श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिके पूर्ण होजानेपर उच्छ्वास प्रकृतिका उदय बढ जाता है तब सत्ताईसका स्थान होजाता है । इसकी स्थिति आगे जीवित पर्यंत रहती है । इसके भग चार हैं । १४० ॥

इसकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्षकी २२००० है । भंग इसमें भी ऊपरके अनुसार चार हैं । इस प्रकार एकेंद्रियके पहिले भंग २४ बताये थे । और आतप उद्योतवालेके अपुनरुक्त भंग छव्वीसके उदयस्थानमें चार तथा सत्ताईसके उदयस्थानमें चार—ऐसे आठ भंग बढ जानेसे सर्व एकेंद्रियके भंग ३२ होजाते हैं ।

यशःपाके भगः १ । प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात् । अयशःपाकेप्येको भंगः १ । मीलितौ २ ।
पूर्णोच्छ्वासस्य सोच्छ्वासमेकोनत्रिंशत स्मृतम् । भाषापर्याप्तिपर्यन्तमिदं भंगद्वयान्वितम् ॥ १४९ ॥
२९ । भगौ २ ।
इदं वचनपर्याप्तौ त्रिशतं जीवितावधि । स्थान भंगद्वयोपेतं सदुःस्वरमुदाहृतम् (३०) ॥ १५० ॥
स्थितिरस्य परा द्वादश वर्षाणि, अपरान्तर्मुहूर्त्तं । भंगौ २ ।

यश कीर्तिके उदयका एक भंग है । और अयश कीर्तिके भी उदयका एक ही भग इसलिये है कि इनमें दूसरी कोई प्रतिपक्षकी प्रकृति नहीं रहती हैं । पर्याप्ति तथा अपर्याप्ति ये दो प्रतिपक्षरूप प्रकृति ऊपर थीं परंतु अट्ठाईसके उदयमें अपर्याप्ति प्रकृतिका सभव नहीं रहता है । दोनोंके मिलकर दो भग हुए ।

अब उन्तीसका स्थान बताते हैं ।—

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर श्वासोच्छ्वासका कार्य सुरू होता है उस समयसे उच्छ्वास कर्मका उदय होना भी सुरू हो जाता है । इसलिये ऊपरकी अट्ठाईसीमें एक उच्छ्वास प्रकृति वढ जानेसे उन्तीसीका यह उदयस्थान हो जाता है । ये विकलके स्थान होनेसे विकलोंमें एक भाषा पर्याप्ति पूर्ण होनेपर वचनप्रवृत्ति भी सुरू होती है इसलिये इस उन्तीसीका उदयस्थान श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादसे भाषा पर्याप्ति पूर्ण हुए तक अंतर्मुहूर्त कालके बीचमें समझना चाहिये । इसके भंग यश कीर्ति द्वयके द्वारा पूर्ववत् दो हैं । १४९ ।

अव तीसका उदयस्थान बताते हैं । —

वचन पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर बोलनेकी शक्ति प्रगट होती है इसलिये वचनपर्याप्तिके पूर्ण हो जानेपर दुःस्वर नाम प्रकृतिका उदय भी सुरू होता है । इस एक दुःस्वर प्रकृतिको ऊपरकी उन्तीसीमें जोड देनेपर तीसका उदयस्थान हो जाता है । यह जीवन पर्यंत उदयस्थान रहता है । इसके भंग ऊपरके अनुसार दो हैं । इस स्थानकी उत्कृष्ट स्थिति वारह वर्ष है और जघन्य अंतर्मुहूर्तमात्र है । क्योंकि, द्वीन्द्रियकी उत्कृष्ट जघन्य आयु इतनी ही बताई है । १५० ।

एकाग्रा च षडग्रा च विंशती द्वीन्द्रिये मते । अपूर्णरहिते पूर्वे प्राप्तोद्योतोदये सति ॥ १५१ ॥

२१ । २६ । अत्र भगाः पुनरुक्ताः २ । २ ।

सोद्योतासन्नभोरीती परघातं द्विभगकम् । स्यात्षाड्विंशतमेकान्नत्रिंशत पूर्णविग्रहे ॥ १५२ ॥

२९ । भगौ २ ।

अब उद्योतसहित द्वीन्द्रिय जीवके स्थानोंको बताते हैं ।—

उद्योत प्रकृतिका जिस द्वीन्द्रिय जीवके उदय होनेवाला है उसका पहिला उदयस्थान एक अधिक वीसका अर्थात् इक्कीस प्रकृतिका है । और आगे जहा दूसरा स्थान है वह छह अधिक वीसका अर्थात् छब्बीस प्रकृतिरूप है । उद्योतका जिसके उदय होनेवाला है वह अपर्याप्तक नहीं होता इसलिये अपर्याप्ति प्रकृतिको छोडकर पर्याप्तिके साथ ही सर्व स्थान समझने चाहिये ।१५१।

इक्कीस और छब्बीसके ये स्थान दो दो भगोंको रखते हैं । ये दो भग यश कीर्तिके युगलमेंसे किसी एक एक प्रकृतिका उदय रहनेके कारण होते हैं । किंतु ये भग पुनरुक्त हैं । अपूर्ण नाम प्रकृतिका इस उद्योतवालेके अभाव होनेसे पूर्णापूर्ण के सम्बन्धसे भग बढ नहीं पाते हैं । इक्कीसका और छब्बीसका स्थान ऊपर १४६ के श्लोकतक वचनोंमें बताया है वही यहापर है ।

अब आगे इनमें उनतीसके उदयस्थानको दिखाते हैं ।—

छब्बीसके स्थानमें उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, परघात—ये तीन प्रकृति शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जानेवाले द्वीन्द्रियके अधिक उदयमें बढ जाती हैं इसलिये यह उनतीसका स्थान हो जाता है ॥ १५२ ॥

यहांपर भी यश कीर्ति युगलके द्वारा भग दो ही होते हैं । आतप प्रकृतिका उदय केवल पृथ्वी, काय–एकेन्द्रियमें सभव था इसलिये यहा द्वीन्द्रियादिमें केवल उद्योतका ही उदय होना सभव है । इस कारण अधिक भग यहा नहीं होपाते हैं । इसका काल श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेसे, प्रथम पर्यंत, अंतर्मुहूर्तका है ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तौ त्रैंशतं तद्द्विभेदकम्। भाषापर्याप्तिपर्यन्तः कालोऽस्यान्तर्मुहूर्त्तकः ॥ १५३ ॥

३०। भंगौ २।

एकत्रिंशतमुद्दिष्टं वाक्पर्याप्तौ सदुःस्वरम् । द्विभेदं स्थितिरस्योक्ता परा द्वादशवार्षिकी ॥ १५४ ॥

३१। भंगौ २। सर्वे भंगाः १८।

अब तीसका उदयस्थान द्वींद्रियमें बताते हैं।—

श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर उच्छ्वास प्रकृतिका उदय होने लगता है, क्योंकि श्वासोच्छ्वास प्राणरूप कार्य यहासे सुरू हो जाता है इसलिये श्वासोच्छ्वासका कारण जो उच्छ्वास नामकर्म है वह उदयमें आना ही चाहिये। इस प्रकार उपरकी उन्तीसीमें एक यह उच्छ्वास प्रकृति मिल जानेसे यह उदयस्थान तीसका होजाता है। इसका समय श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादसे वचन पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिलेतक अंतर्मुहूर्तमात्र है। इसके भंग पूर्ववत् दो हैं। १५३।

अब इकतीसके उदयस्थानको बताते हैं।——

वचनपर्याप्ति पूर्ण होनेपर दुःस्वर नाम कर्मका उदय होने लगता है क्योंकि, वचन पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर जीवमें बोलनेकी शक्ति प्रगट होजाती है इसलिये तभीसे उसके दुःस्वर प्रकृतिका उदय होने लगता है। इस दुःस्वरको तीस प्रकृतिमें मिलादेनेसे इकतीसका उदय होना सुरू हुआ बताया है। इसके भग पूर्ववत् दो हैं। इस इकतीसीके उदयस्थानकी उत्कृष्ट स्थिति जीवन पर्यंत अर्थात् बारह वर्षकी है। १५४।

इस इकतीसीके भंग दो, तीसीके दो, उन्तीसीके दो, छव्वीसीके दो, इकीसीके दो—इस प्रकार उद्योत प्रकृतिके उदय होनेवालोंमें पांच उदयस्थानोंके दश भग हैं। परंतु इसमें इक्कीसके तथा छव्वीसके दो दो भग पुनरुक्त अर्थात् उद्योतरहितके बताये हुए भगोंके समान हैं इसलिये इन चार भगोंको जोडना न चाहिए। तब उद्योत सहितके अपुनरुक्त भंग ६ शेष रह जाते हैं। और उद्योतरहितके सर्व पांच स्थानोंके भंग १२ ऊपर बताये हैं। इन दोनो सख्याओंके जोडसे सर्व द्वीन्द्रियोंके उदयस्थानोंके भंग १८ हो जाते हैं। जैसे द्वींद्रियोंके ये स्थान तथा उत्तर भग बताये उसी प्रकार त्रींद्रिय और चतुरिंद्रियके भी स्थान तथा भंग उतने उतने ही समझलेने चाहिये। इसी ऊपरके विवेचनको आगे मूलकार कहते हैं।—

अष्टादश मता भगा द्वीन्द्रियस्येति पिंडिता । तस्यैव स्थानभंगादि ज्ञेयं त्रिचतुरक्षयो ॥ १५५ ॥
त्रीन्द्रिये त्रिंशतः कालस्तथैकत्रिंशतः परः । दिनान्येकोनपचाशत्षण्मासाश्चतुरिन्द्रिये ॥ १५६ ॥

तत्र त्रीन्द्रियस्य निरुद्योतसोद्योतपाकयोः ३० । ३१ । स्थितिर्दिवसाः ४९ । सर्वे भंगाः १८ ॥ चतुरिंद्रिये पूर्वस्थानयोः ३० । ३१ । स्थितिर्मासाः ६ । सर्वे भगाः १८ । एवं विकलेन्द्रिये सर्वे भगाः ५४ ।

पाकास्तिरश्चि पचाक्षे पडोघादेकविंशतिः । क्रमात्षड्विंशतिर्द्वित्रिचतुःपचयुता च सा ॥ १५७ ॥

२१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

द्वींद्रियके सर्व जोडनेसे भंग अठारह होते हैं । त्रींद्रियके और चतुरिंद्रियके भी स्थान तथा भंग उतने ही जुदे जुदे जानलेने चाहिये । १५५ ।

त्रींद्रियमें उद्योतरहित तीसका अथवा उद्योतसहित इकतीसका जो अंतिम स्थान है उसका काल जीवन पर्यंत अर्थात् उनंचास दिनका है । एवं चतुरिंद्रियकी तीसी अथवा इकतीसीके उदयस्थानका काल छह महीना है । चतुरिंद्रियकी छह महीना की आयु उत्कृष्ट है । १५६ ।

त्रींद्रियका उद्योत रहित अंतिम स्थान ३० प्रकृतिरूप है और उद्योत सहित ३१ प्रकृतिरूप है । स्थिति उत्कृष्ट ४९ दिनकी है । इसके भंग भी सर्व १८ हैं । इसी प्रकार चतुरिंद्रियमें उद्योत रहित ३० का और उद्योत सहित ३१ का उदयस्थान है उसकी स्थिति उत्कृष्ट ६ महीनेकी है । भंग सर्व १८ हैं । इस प्रकार विकलेंद्रिय तीनोंके मिलकर भंग ५४ होते हैं ।

अब पंचेंद्रिय तिर्यंचके उदयस्थानोंको बताते हैं ।—

पचेंद्रिय तिर्यंचमें नामकर्मके सर्व उदयस्थान छह हैं । ओघ अर्थात् सामान्य रूपसे पहिला स्थान ऊपरके समान इक्कीस प्रकृतिका है । फिर क्रमसे छव्वीसका, अठ्ठाईसका उन्तीसका, तीसका तथा इकतीसका स्थान है । १५७ ।

॥४३५॥

तान्यनुद्योतपाकस्य सत्येकत्रिंशत विना । उद्योतपाकयुक्तस्य सत्याष्टाविंशत विना ॥ १५८ ॥

उद्योतोदयरहिते पचेंद्रिये २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । उद्योतोदयसहिते २१ । २६ । २९ । ३० । ३१ ।

अनुद्योतोदयस्येद पचाक्षस्यैकविंशतम् । तिर्यग्द्वितयपंचाक्षे तेजोगुरुलघु त्रसम् ॥ १५९ ॥

पर्याप्तसुभगादेययशःकीर्तिद्विकैककम् । निर्माणं कार्मण स्थूलं वर्णानां च चतुष्टयम् ॥ १६० ॥

शुभस्थिरद्वये भगा एकद्वित्रिक्षणस्थितो । वक्रतौ पूर्णपाकेऽष्टावेकोन्यत्रोभये नव ॥ १६१ ॥

ये ऊपर बताये जो २१ का, २६ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का ऐसे छह स्थान है इनमेंसे उद्योत-रहित जीवके इकतीसका अंतिम स्थान नहीं होता इसलिये उद्योतरहितके सर्व स्थान पाच ही हैं। इसी प्रकार उद्योतसहित जीवके २८ का उदयस्थान नहीं होता इसलिये उद्योतसहितमें भी सर्व उदयस्थान पाच ही हैं। १५८।

उद्योतरहितके स्थान पाच २१, २६, २८, २९, ३०—ये हैं। उद्योतका जिसके उदय होनेवाला है उसके स्थान पांच २१, २६, २९, ३०, ३१ ये हैं।

अब उद्योत रहित पचेंद्रियके क्रमसे पांचो स्थानोंको गिनाते हैं। सबसे प्रथम इकीसका स्थान दिखाते हैं।—

तिर्यग्द्वय, पचेंद्रियजाति, तैजसशरीर, अगुरुलघु, त्रस, और पर्याप्ति—सुभग—आदेय—यश.कीर्ति—इन चार कर्मोके चार युगलोंमेंसे कोई एक एक चार प्रकृति, निर्माण, कार्मण, वादर, वर्णादि चार, शुभद्वय, स्थिरद्वय—ये उद्योतरहितकी इकीस प्रकृति हैं जो पंचेंद्रियके प्रथम विग्रह वक्रगतिमें उदयको प्राप्त होती हैं।

वक्र विग्रह गतिके समय एक, दो अथवा तीन होते हैं इसलिये इस एक दो तीन समय पर्यंतकी वक्रगतिकी स्थितिमें यह इक्कीसीका उदयस्थान होनेसे इतना ही इस इक्कीसीके उदयस्थानका काल है। इस इक्कीसीका उदय यदि पर्याप्ति प्रकृतिके उदय होते हुए हो तो भंग इसमें आठ होते हैं। और अन्यत्र अर्थात् अपर्याप्तिके उदयमें भंग एक ही है। इसका कारण आगे बताते हैं। पर्याप्ति अपर्याप्ति—इन दोनोंके भंग सर्व ९ हुए। १५९—१६१।

अत्र पूर्णोदये भगाः ८। सुभगादेययशःकीर्तिभिः सहापूर्णोदयाभावादपूर्णोदये भंगः १। सर्वे ९।

इदं त्यक्त्वाऽऽनुपूर्वीकं स्थानं षाड्विंशतं स्मृतम्। क्षिप्ते संस्थानसंहत्योरेकत्रौदारिकद्विके ॥ १६२ ॥

प्रत्येके उपघाते च स्वीकृतांगस्य देहिनः। आनपर्याप्तिपर्यन्ता स्थितिरन्तर्मुहूर्तिकी ॥ १६३ ॥

अस्य पूर्णोदये भगा द्वादशोन शतत्रयम्। एकोऽपूर्णोदये ज्ञेयो भगमार्गविचक्षणैः ॥ २६ । १६४ ॥

पर्याप्तिका जिसके उदय है उसके सुभग, आदेय, यशःकीर्ति—इन तीनोंके युगल संभव हैं। इसलिये तीन युगलोंके परस्पर गुणनसे आठ भंग होजाते हैं। परंतु अपर्याप्ति प्रकृतिके उदयवाले जीवमें सुभग, आदेय, यशःकीर्ति—ये तीन प्रकृति उदयको प्राप्त नहीं होती हैं। केवल अशुभ, अनादेय, अयशःकीर्ति—ये ही तीन अपर्याप्तकके साथ उदययोग्य हैं। इसलिये इसका भग एक ही रहता है। मिलानेसे सर्व भग नौ हुए।

पंचेंद्रियमें इकीसके उदयस्थानको बताकर अब छब्बीसके उदयस्थानको बताते हैं।—

छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, छह संहननोंमेंसे कोई एक, औदारिकद्वय, प्रत्येक, उपघात—ये छह प्रकृति हैं। इन छहोंको ऊपरकी इक्कीसीमें मिला देनेसे और तिर्यगानुपूर्वीके घट जानेसे छब्बीसका स्थान होजाता है। क्योंकि, विग्रह गतिके बाद नवीन शरीरको ग्रहण करते समय इस छब्बीसीका उदय होता है। आन अर्थात् प्राण अथवा श्वासोच्छ्वास नामकी पर्याप्ति पूर्ण होनेतक इस छब्बीसीका अंतर्मुहूर्तमात्र काल है। श्वासोच्छ्वासके पूर्ण होजानेपर छब्बीससे आगेका जो स्थान शुरू हो जाता है उसे आगे दिखाने वाले हैं। १६२-१६३।

इस स्थानमें छह संस्थान प्रकृति, और छह संहनन प्रकृति, तथा शुभयुगल, आदेययुगल, यश कीर्ति युगल—ये तीन युगल प्रकृति ऐसी हैं कि इनमेंसे किसी एक एकका ही एक समयमें उदय होता है। इसलिये ६×६×२×२×२=का परस्पर गुणा कर लेना चाहिये तो भंग २८८ निकल आते है। ये भग पर्याप्तिके उदयके साथ ही होते हैं। पर्याप्ति कर्मको ही यहां 'पूर्ण' कहा है। अपर्याप्तिके उदयमें आचार्योंने एक ही भंग रहना बताया है। १६४।

अत्र पूर्णोदये संस्थानषट्कसंहतिषट्कयुग्मत्रयाणां ६ । ६ । २ । २ । २ । परस्पराभ्यासे भंगाः २८८ । शुभैः सहापूर्णोदयस्याभावादपूर्णोदये भंगः १ ।

उद्योतरहित पंचेंद्रियका यह प्रकरण है। इसमें पर्याप्त अपर्याप्त—दोनो प्रकारके जीव रहते हैं। शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जानेके बादमें पर्याप्ति प्रकृतिके उदयका वास्तविक कार्य समझा जाता है। शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर ही जीवको पूर्ण अथवा पर्याप्त मानना सुरू होता है। इसलिये शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम पर्याप्तिके उदयवाले और अपर्याप्ति प्रकतिके उदयवाले—ये दोनो जीव अपूर्णताकी दृष्टिसे समान ही रहते हैं। परंतु पर्याप्ति अपर्याप्ति—इन दो प्रकृतियोंमेंसे उदय किसी एकका ही एक जीवमें जो सुरू होता है वह विग्रहगतिके सुरूसे ही हो जाता है। इसका फल यह आगे चलकर निकलता है कि अपर्याप्तिके उदयवाला जीव शरीरको पूर्ण करनेसे प्रथम ही मरण कर जाता है, किंतु पर्याप्ति प्रकृतिके उदयवाला जीव शरीर अपूर्ण रहेतक कदापि तथा अपघातादि पर निमित्त मिलनेपर भी मरण नहीं कर सकता। पर्याप्तिवालेका यदि बहुत जल्दी भी मरण हो तो भी शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेपर ही वह मरण होगा।

इस दीर्घ जीवनकी विशेषताके कारण पर्याप्तिकर्मको पुण्य कर्म अथवा शुभ प्रकृति कहा जाता है। इसीलिये अपर्याप्तिके साथ यश कीर्ति आदि शुभ इतर प्रकृतियोंका भी उदय नहीं होता। अत एव अपर्याप्तिके उदयमें भंग एक ही बताया गया है। और पर्याप्तिके साथमें शुभ अशुभ दोनो प्रकारकी प्रकृतियोंका उदय होना संभव बताया है। इसलिये पर्याप्तिके उदयवाले जीवके सस्थान छह, सहनन छह, तीन यश.कीर्ति आदिके युगल तीन—ये सभी प्रकृति उदययोग्य मानी गई हैं। अत एव पर्याप्तियुक्त जीवके इन उक्त प्रकृतियोंकी बदलनके कारण २८८ भंग होना बताया है।

छह संस्थान, छह संहनन, यशःकीर्तिका युगल, आदेयका युगल, सुभगका युगल—इन पांच प्रकृतिपिंडोंमेंसे कौन कौनसी हैं, और अशुभ कौन कौनसी हैं इस बातका ज्ञान आगेके उक्तं च पद्यसे मालुम हो जाता है। उ

॥४३८

उक्तं च—

अंसंप्राप्तमनादेयमयशो हुंडदुर्भगे । अपूर्णेन सहोदयंति पूर्णेन तु सहेतराः ॥ सर्वे २८९ ।

पूर्णाङ्गस्य गतापूर्णमाष्टाविंशतमीरितम् । परघातनभोरीतियुगलैकतरान्वितम् ॥ १६५ ॥

भगाना षट्शती स्याच्च चतुर्विंशति विना । जघन्या च प्रकृष्टा च स्थितिरान्तर्मुहूर्त्तिकी (२८) ॥ १६६ ॥

एते पूर्वोक्ता २८८ । नभोरीतियुगहता भंगाः ५७६ ।

संहननोंमेंसे अंतका असंप्राप्त असृपाटिका संहनन, संस्थानोंमेंसे अंतका हुंडक संस्थान, युगलोंमेंसे अनादेय, अयश.कीर्ति, दुर्भग—ये तीन प्रकृति—इस प्रकार पांच प्रकृति पिंडोंमेंसे ये पांच प्रकृति अशुभरूप इस प्रकरणमें समझनी चाहिये । अपर्याप्तकके साथ इन्हीं पांचका उदय रहता है । अर्थात् इसीलिये अपर्याप्तकके भंग अधिक नहीं हो पाते हैं । और पर्याप्तक अथवा पूर्ण होनेवालेके पर्याप्ति—उदयके साथ इन पांचका भी उदय होता है तथा इनके शिवा बाकी बची हुई यश.कीर्ति आदि शुभ प्रकृतियोंका भी उदय होता है । अर्थात् इसी कारण पर्याप्तकके सर्व भंग संभव हैं । यह उक्तं च वचन है । पूर्णापूर्णके सर्व मिलकर २८९ भंग हो जाते हैं ।

अब अट्ठाईसके उदयस्थानको बताते हैं ।—

शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर, ऊपरके छब्बीसका तो उदय है ही परंतु परघात और विहायोगति युगलमेंसे कोई एक प्रकृति—इस प्रकार दोका उदय बढ जाता है इसलिये अट्ठाईसका उदयस्थान हो जाता है । इसके भंग चौवीस घाट छहसौ अर्थात् ५७६ हैं । स्थिति इसकी जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही है । १६५–१६६ ।

छब्बीसके स्थानमें भंग २८८ बताये थे । यहांपर विहायोगतिका युगल बढ जानेसे दो सौ अठासीको इस युगलसे दो गुणा कर दिया जाता है । इसलिये ५७६ भंग इस अट्ठाईसीके हो जाते हैं । श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत इस उदयकी अवधि है इसलिये इसका काल अंतर्मुहूर्त प्रमाण बताया है ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तावेकान्नत्रिंशत मतम् । अत्र दक्षैर्विनोद्व्या स्थितिभगा पुरातना ॥ १६७ ॥

२९ । भंगाः ५७६ ।

त्रिंशत पूर्णभापस्य स्वरैकतरसयुतम् । अत्र द्विगुणिता भंगा परा पल्यत्रय स्थिति (३०) ॥ १६८ ॥

भंगाः पूर्वोक्ताः ५७६ । स्वरयुगलाहता ११५२ । इत्थमुद्योतोदयरहिते पचाक्षे भगाः सर्वे, एवं २६०२ ।

इसके आगे उन्तीसका उदयस्थान है उसको अब बताते हैं ।—

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर उच्छ्वास प्रकृतिका उदय बढ जाता है इसलिये अट्ठाईसके स्थानमें उन्तीसका यह उदय स्थान होजाता है । इसके भंग ऊपरके अट्ठाईसीके स्थानके ही समान ५७६ समझने चाहिये ।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादसे लेकर भाषापर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत इस उन्तीसीका काल है । इसकी मर्यादा भी अंतर्मुहूर्तमात्र ही है । १६७ ।

अब आगे तीसके उदयस्थानको बताते हैं ।—

भाषापर्याप्ति पूर्ण होते ही बोलनेकी शक्ति प्रगट होती है इसलिये इसी समयसे दो स्वर प्रकृतियोंमेंसे किसी एकका उदय सुरू हो जाता है । इस एक स्वर प्रकृतिको ऊपरकी उन्तीसीमें जोड देनेसे तीसका उदयस्थान हो जाता है । स्वर युगलके कारण इस तीसीके भग ऊपरकी उन्तीसीके भगोंसे दुने होजाते हैं । भाषापर्याप्तिके बादसे इस तीसीका उदय सुरू होकर जीवन पर्यंत यही स्थान रहता है । पचेंद्रियके जीवनका उत्कृष्ट प्रमाण तीन पल्य है इसलिये इस तीसीके उदयस्थानका भी उत्कृष्ट काल अतर्मुहूर्त घाट तीन पल्य समझना चाहिये । १६८ ।

यहांपर उद्योत रहितके ये स्थान बनाये । स्वरउदयके पहिले भग ५७६ बताये थे । अब स्वरयुगलके द्वारा द्विगुणित होकर तीसीके भंग ११५२ होते हैं और ऊपरके इक्कीसीके ९ भग, छव्वीसके २८९, अट्ठाईसीके ५७६, उन्तीसीके भी ५७६—इन सवको मिला देनेसे २६०२ सर्व उद्योत रहित पचेंद्रियोंके भग होजाते हैं ।

प्राप्तोद्योतोदये एकषडग्रे विंशती बुधैः । पंचेंद्रिये मते पूर्वे त्यक्तापूर्णोदये परम् ॥ १६९ ॥

२१ । २६ । अत्र भंगाः पुनरुक्ताः ८ । २८८ ।

स्थानं षाड्विंशतं ज्ञेयमेकान्नत्रिंशतं बुधैः । पूर्णांगस्य खरीत्यन्यतरोद्योतान्यघातयुक् ॥ १७० ॥

शतानि पंच भंगानां षट्सप्तत्या समं स्फुटम् । प्रकृष्टोऽस्य जघन्यश्च कालोंतर्मुहूर्त्तकः ॥ १७१ ॥

२९ । भंगा ५७६ ।

अब जिनके उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवाला है उनकी अपेक्षाको लेकर पंचेंद्रिय तिर्यंचके उदयस्थानोंको बताते हैं ।—

जिनके उद्योतका उदय है वे अपर्याप्त नहीं होते, पर्याप्त ही सर्व होते हैं—इस बात को शुरूमें भी बता दिया है । इसलिये उनके स्थानोंमें अपर्याप्ति प्रकृतिसंबंधी भंगोंको छोड देना चाहिये । इसलिये उद्योतसहित तिर्यंच पंचेंद्रियमें केवल पर्याप्तक का ही विचार किया गया है । इसमें पहिले दो स्थान—एक इक्कीसका, दूसरा छब्बीसीका—पूर्ववत् ही हैं । १६९ ।

इसमें इक्कीसीके भंग ८ हैं और छब्बीसीके २८८ हैं । अपर्याप्तिसंबंधी एक एक भंग पुनरुक्त होनेसे जुदे गिने नहीं जाते हैं ।

इसके आगेके उन्तीसीके स्थानको अब दिखाते हैं ।—

शरीर पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर विहायोगतियुगलमेंसे एक प्रकृति, उद्योत, परघात—ये तीन प्रकृति बढ जानेसे छब्बीसके स्थानमें उन्तीसका उदयस्थान होजाता है । १७० ।

इस छब्बीसीके सर्व भंग पांचसौ छिहत्तरि होते हैं । काल इसका जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त मात्र है । १७१ ।

१— ' कालोऽत्राप्यन्तर्मुहूर्तक ' ऐसा मूलमें पाठ पड गया है परन्तु ऊपरका पाठ ठीक है ।

॥४४१॥

आनपर्याप्तिपर्याप्ते सोच्छ्वास त्रैंशतं स्मृतम् । कालभंगा विबोद्धव्या सूरिभिः पूर्वभाषिताः ॥ १७२ ॥

३० । भगाः ५७६ ।

तत्स्वरैकतराश्लिष्टमेकत्रिंशतमीरितम् । द्विघ्ना भंगा वच पूर्णे पल्यानां त्रितयं स्थितिः ॥ १७३ ॥

३१ । भंगा ११५२ ।

इत्थं सोद्योतोदये पंचाक्षे भगा सर्वे २३०४ । उद्योतरहितपंचाक्षे २६०२ । एव पचेन्द्रिये सर्वे भंगाः ४९०६ ।

सहस्रा पच भगानामष्टहीना निवेदिता । तिर्यग्गतौ समस्तानां पिंडितानां पुरातनै ॥ १७४ ॥

सर्वे तिर्यग्गतौ भगाः ४९९२ ।

एवं तिर्यग्गतिः समाप्ता ।

प्राणपर्याप्ति पूर्ण होजानेपर उच्छ्वासका उदय सुरू होजाता है इसलिये यह एक प्रकृति ऊपरकी उन्तीसीमें मिल जानेसे यह तीसका स्थान होजाता है । पूर्वके अनुसार काल इसका अतर्मुहूर्त है और भंग पाचसौ छिहत्तरि हैं । १७२ ।

अब इकतीसका उदयस्थान बताते हैं ।—

ऊपर तीसका स्थान बताया है । उसमें एक कोई स्वर प्रकृति मिलजानेसे इकतीसका स्थान हो जाता है । यह स्थान वचन पर्याप्ति पूर्ण हो जानेवालेकें प्राप्त होता है । स्वर युगलमेंसे किसी एक एकका ही उदय संभव होनेसे ऊपरके सर्व ५७६ भंगोंको स्वर युगलकी दो संख्यासे ' घ्न ' अर्थात् गुणित कर देना चाहिये तो इस स्थानके भंग ११५२ हो जाते हैं । इस स्थानकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी बताई है परंतु वचन पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तकका अतर्मुहूर्त काल घाट समझलेना चाहिये । १७३

इस प्रकार उद्योतोदयके साथ पचेंद्रियके सर्व भग २३०४ होते हैं । और उद्योतोदयरहित पचेंद्रियके २६०२ भग बताये हैं । उद्योतरहित तथा सहितके मिलकर पचेंद्रिय तिर्यंचके सर्व ४९०६ भग होते हैं ।

सपूर्ण तिर्यंच गतिमें मिलाकर नाम कर्मके उदयस्थानोंके आठ कम पाच हजार भग होते हैं (४९९२) ॥ १७४ ॥

इस प्रकार तिर्यंच गतिके भग समाप्त हुए ।

॥४४२॥

पाका मनुष्यगत्याऽमा समस्ता मर्त्यजन्मनाम् । चतुर्विंशतिपाकोनदशशेषाः पुरोदिताः ॥ १७५ ॥

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

यानि स्थानानि तिर्यक्षु निरुद्योतेषु पच वै । पंचेंद्रियेषु मर्त्याना तानि सामान्यभागिनाम् ॥ १७६ ॥

२१।२६।२८।२९।३०।

अत्र तिर्यग्द्वयस्थाने भणनीयं नरद्वयम् । भगास्तद्वन्मता द्व्यग्रषड्विंशतिशतप्रमाः ॥ ६० । १७७ ॥

यद्यपि पूर्वमुक्तास्ते तथापि सुखार्थमुच्यन्ते—

अब मनुष्यगतिमें नामके उदयस्थानोंकी सख्या प्रथम बताते हैं । बादमें प्रत्येक स्थानकी प्रकृतियोंको बतावेंगे ।

जिनके मनुष्य गतिका उदय होनेसे मनुष्य पर्याय प्राप्त हुआ है उन जीवोंके चौवीसका एक स्थान नहीं है, शेष दश उदयस्थान सभव हैं । २१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का, ९ का, ८ का—ये दश स्थान हैं । उदयके सर्व स्थान प्रारभमें २४ के स्थान सहित ग्यारह बताये हैं ॥ १७५ ॥

इन दश स्थानोंमेंसे पांच स्थानोंका खुलासा सक्षेपमें आगे करते हैं ।—

तिर्यंचोंमें उद्योत रहित पांच स्थान २१ का, २६ का, २८ का, २९ का तथा ३० का– ये पाच स्थान प्रथम बताये हैं, ये ही पांच स्थान सामान्य मनुष्य मात्रके भी समझलेने चाहिये ॥ स्थानोंकी प्रकृतियोंको गिनाते समय केवल इतना फरक करना चाहिये कि तिर्यंचगतिके स्थानोंमें तिर्यंगति तथा तिर्यंगत्यानुपूर्वी ये प्रकृति गिनाई गई हैं । यहां उसके स्थानमें मनुष्यगति द्वय लेना चाहिये । इन सब स्थानोंके भग तिर्यंच गतिके समान ही छव्वीस सौ दो (२६०२) हैं ॥ १७६–१७७ ॥

पूर्वमें ये सर्व भेद तिर्यंच गतिके प्रकरणमें बता दिये हैं परतु सुखबोधार्थ यहां भी बताते हैं । उन पाच स्थानोंमेंसे पहिला स्थान इक्कीसका है उसे प्रथम बताते हैं ।—

तत्रैकविंशत तीर्थकृत्त्वाहारकोज्झिते । पचेन्द्रिय नरद्वन्द्व तेजोऽगुरुलघुत्रसम् ॥ १७८ ॥
निर्माण सुभगादेययशःपर्याप्तनामसु । युगेष्वेकतर वर्णचतुष्कं स्थूलकार्मणे ॥ १७९ ॥
शुभस्थिरद्वये भगा एकद्वित्रिक्षणस्थितौ । वक्रत्तौ पूर्णपाकेऽष्टावेकोऽन्यत्रोभये नव ॥ १८० ॥
२१ । पूर्णपाके भगाः ८ । अपूर्णपाके १ । उभये ९ ।
प्रत्येकौदारिकद्वन्द्वोपघातसहित स्मृतम् । पट्संस्थानस्य सहत्याः पट्कस्यैकतरेण च ॥ १८१ ॥
स्थान षाड्विंशतं दक्षैगत्तदेहस्य देहिनः । निराकृतानुपूर्वीकं यावद्देहस्य पूर्णताम् ॥ १८२ ॥

पचेंद्रिय जातिकर्म, मनुष्यगतिद्वय, तैजस शरीर, अगुरुलघु, त्रस, निर्माण, सुभग–आदेय–यश कीर्ति–पर्याप्ति–इन चार प्रकृतियोंके युगलोंमेंसे एक एक चार, वर्णादि चार प्रकृति, वादर, कार्मण, शुभद्वय, स्थिरद्वय–यह इक्कीस प्रकृतिका स्थान है। यह स्थान वक्र विग्रहगतिमें उदयको प्राप्त होता है इसलिये इसकी स्थिति एक समय, दो समय, अथवा तीन समय पर्यंत रहती है। पर्याप्तिके उदय सहित यह स्थान हो तो इसके भंग आठ होते हैं। यदि अपर्याप्तिके उदय सहित हो तो भग एक ही है। इसका कारण यही है कि पर्याप्तिके साथ सुभग आदेय यश कीर्तिके युगलोंमेंसे चाहे जिस एक एकका उदय होता है। किंतु अपर्याप्तिके उदयमें केवल दुर्भग, अनादेय तथा अयश कीर्ति इन्ही तीनका उदय होता है। इसलिये अपर्याप्तिके साथमें अधिक भग नहीं होपाते हैं। यह इक्कीसीका स्थान और आगेके भी चार स्थान उनके ही समझने चाहिये जिनकें तीर्थंकर प्रकृतिका तथा आहारक प्रकृतिका उदय नहीं है। क्योंकि, आहारक अथवा तीर्थंकर प्रकृति सहितके स्थानोंको आगे जुदे गिनावेंगे ॥१७८।१८०॥

प्रत्येक शरीर, औदारिक द्वय, उपघात, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक सस्थान, छह संहननोंमेंसे कोई एक सहनन–ये छह प्रकृति ऊपरकी इक्कीसीमें जोड देनेसे तथा मनुष्यगत्यानुपूर्वीके घट जानेसे छब्बीसीका स्थान वन जाता है। यह स्थान विग्रह गतिके वादमें शरीर धारण करनेके समयसे सुरू होता है और शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तक यह स्थान रहता है।

१–मूलमें पाठ ‘ तत्सस्थानस्य ’ ऐसा है।

पर्याप्तस्योदये भगा द्वादशोन शतत्रयम् । एकोऽन्यस्योदये कालः कथितोऽन्तर्मुहूर्त्तकः ॥ १८३ ॥

पर्याप्तोदये भंगाः २८८ । अपर्याप्तोदये १ । सर्वे २८९ ।

तदाष्टाविंशतं प्रोक्तमपर्याप्तविवर्जितम् । परघातखगत्येकतरयुक्त शरीरिणः ॥ १८४ ॥

शतानि पंच भगानां पट्सप्तत्या सह स्फुटम् । पर्याप्तांगस्य निर्दिष्टः कालोऽत्रान्तर्मुहूर्तकः ॥ १८५ ॥

२८ । भगाः ५७६ ।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तावेकोनत्रिंशत मतम् । बुधैरत्रावबोद्धव्याः स्थितिभगा पुरातनाः ॥ १८६ ॥

२९ । भगः ५७६ ।

इसलिये इस स्थानका काल अंतर्मुहूर्त मात्र है। पर्याप्तिके साथ छव्वीसीके भंग बारह घाट तीनसौ अर्थात २८८ होते हैं और अपर्याप्तकका भंग एक ही रहता है ॥ १८१–१८३ ॥

अब अट्ठाईसका स्थान बताते हैं।—

इस छव्वीसीका उदय शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिलेतक है इसलिये यहांतक पर्याप्ति तथा अपर्याप्ति–इन दोनो प्रकृतियोंका उदय होना संभव है। परंतु आगे जो स्थान बतावेंगे उनमें अपर्याप्तिका उदय नहीं रहता है क्योंकि वे स्थान शरीरपर्याप्ति पूर्ण होजानेके बाद सुरू होते हैं।

इस अट्ठाईसके स्थानमें परघात तथा दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक विहायोगति–ऐसे दो प्रकृति बढ जाती हैं और छव्वीस पूर्वमें बताई वे हैं। इसका काल प्राणपर्याप्ति पूर्ण होनेतक अंतर्मुहूर्त है। और इसके भंग पांचसौ छिहत्तरि (५७६) हैं ॥ १८४–१८५ ॥

इसके आगे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादमें उच्छ्वास प्रकृति बढ जाती है इसलिये अट्ठाईसके स्थानमें उन्तीसका स्थान होजाता है। इसका काल पूर्वके समान अंतर्मुहूर्त, और भंग ५७६ हैं। इसका उदयकाल भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले तक माना जाता है। १८६।

॥४४५॥

स्वरैकतरसंयुक्तं वाक्पूर्णे त्रिंशतं मतम् । अत्र द्विताडिता भगाः परा पल्यत्रय स्थितिः ॥ १८७ ॥

३० । भंगाः ११५२ । सर्वे मीलिताः २६०२ ।

आहारकोदयालीढे विशिष्टे नरनामनि । उदये पचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिर्मता ॥ १८८ ॥

२५ । २७ २८ । २९ ।

पांचविंशतमत्रेद नृगत्याहारकद्विके । कार्मण सुभगादेये तेजो वर्णचतुष्टयम् ॥ १८९ ॥

चतुरस्रोपघाताख्ये निर्मित्त्रसचतुष्टयम् । पंचाक्षागुरुलध्वाह्वे शुभस्थिरयुगे यशः ॥ १९० ॥

आहारकोदयेस्तीदं यावत्तद्देहपूर्णताम् । ससद्गत्यन्यघात तत्पूर्णांगे साप्तविंशतं ॥ १९१ ॥

२५ । भंगः १ । २७ । भगः १ ।

भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद दो स्वर प्रकृतियोंमेंसे एक कोई भी स्वर प्रकृति उदयमें आने लगती है इसलिये यह स्थान तीसीका होजाता है । इसका काल उत्कृष्ट तीन पल्य पर्यंत है । अर्थात् जीवनपर्यंत इसका उदय रहता है । स्वरयुगलके कारण ऊपरके ५७६ भगोंको दोसे गुणित करलेना चाहिये । इससे भंग इस तीसीके ११५२ हो जाते हैं । १८७ ।

इस तीसीके भंग ११५२ हैं और सर्व यहां तकके भंग मिलकर २६०२ होते हैं ।

अब पच्चीसके तथा सत्ताईसके और अट्ठाईस–उन्तीसके इन चार स्थानोंको दूसरी तरहसे दिखाते हैं । अर्थात् ये चार स्थान आहारक शरीर प्रगट होनेवाले विशिष्ट मनुष्यमें ही होते हैं । १८८ ।

उन चार स्थानोंमेंसे पच्चीसका तथा सत्ताईसका स्थान बताते हैं ।—

मनुष्यगति, आहारकद्वय, कार्मण, सुभग, आदेय, तैजस, वर्णादि चार, समचतुरस्र संस्थान, उपघात, निर्माण, त्रसादि चार, पचेंद्रिय जाति, अगुरुलघु, शुभ अशुभ–ये दोनो, स्थिर अस्थिर–ये दोनो, यश कीर्ति–ये पच्चीस प्रकृति आहारक शरीरके उदयके साथमें उदीयमान होती हैं । आहारक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता होनेसे पहिले तक यह पच्चीसीका स्थान रहता है ।

इसके आगे अर्थात् आहारक शरीर पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर सत्ताईसका स्थान शुरू होता है । यहा पर ऊपरकी पच्चीसी

पूर्णोच्छ्वासस्य सोच्छ्वासमाष्टाविंशतमस्त्यदः। एको भगोऽत्र कालस्तु विज्ञेयोऽन्तर्मुहूर्त्तकः ॥ १९२ ॥

२८ भगः १ ।

ऐकान्नत्रिंशत स्थानं पूर्णवाचि ससुस्वरम्। कालभंगो मतौ पूर्वावैक्ये भंगचतुष्टयम् ॥ १९३ ॥

२९ भगः १ । विशेषमनुष्ये भगाश्चत्वारः ४ ।

में प्रशस्त विहायोगति और परघात इन दो प्रकृतियोंका उदय बढ जाता है । इसलिये सत्ताईसका स्थान हो जाता है । इन दोनो स्थानोंमें भंग एक एक ही है । १८९–१९१ ।

अब आहारक शरीर सुरू होनेवालेमें अट्ठाईसका स्थान बताते हैं।—

प्राण पर्याप्ति अथवा श्वास पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर एक उच्छ्वास प्रकृतिका उदय बढ जाता है इसलिये ऊपरके सत्ताईसके स्थानमें यह अट्ठाईसका स्थान होजाता है । इसमें भग एक ही है और काल वचनपर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत अतर्मुहूर्त है। १९२ ।

अब उन्तीसका स्थान बताते हैं ।—

ऊपरकी अट्ठाईसीमें सुस्वर प्रकृतिका उदय बढजानेपर उन्तीसीका स्थान हो जाता है । यह स्थान वचन पर्याप्ति पूर्ण होनेके बादमें सुरू होता है और आहारक शरीरकी स्थिति रहेतक इसका अंतर्मुहूर्त काल है । भंग भी पूर्वके समान इसमें एक ही है । किंतु आहारक मनुष्यमें चारो स्थानोंके भंग चार बताये हैं सो समझलेने चाहिये । १९३ ।

ये चार भंग उस विशेष मनुष्यके हैं जो आहारक शरीरको उत्पन्न कर आहारक शरीर सहित रहता है । चारो स्थानोंके एक एक करके ये सर्व चार भंग होते हैं ।

तत्रैकत्रिंशतं ज्ञेय योगिनस्तीर्थकारिणः । आद्ये सहतिसंस्थाने नृगत्यौदारिकद्वये ॥ १९४ ॥
पंचाक्षं कार्मणादेये तीर्थकृत्सुभग यशः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादीनां चतुष्टयम् ॥ १९५ ॥
निर्मिच्छुभस्थिरद्वन्द्वे तेजः सद्गतिसुस्वरे । पूर्वकोटी परा वर्षपृथक्त्वं त्वपरा स्थितिः ॥ १९६ ॥

३१ । भग १ । अत्रोत्कृष्टा स्थितिरन्तर्मुहूर्त्ताधिका गर्भाद्यष्टवर्षहीना पूर्वकोटी, जघन्या वर्षपृथक्त्वम् ।

नृगति पूर्णमादेय पचाक्ष सुभग यश । त्रसस्थूलमयोगेऽष्टौ पाके तीर्थकृतो नव ॥ १९७ ॥

अब तीर्थंकर प्रकृतिके उदयवाले योगीकें इकतीसके स्थानको बताते हैं ।—

जो तीर्थका कर्ता अर्थात तीर्थंकर है उस योगीकें इकतीसका स्थान होता है वह इस प्रकार है)—प्रथम सहनन, प्रथम सस्थान, मनुष्यगति, औदारिकद्वय, पचेंद्रिय जाति, कार्मण, आदेय, तीर्थंकरत्व, सुभग, यश कीर्ति, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, त्रसादि चार, निर्माण, शुभद्वय, स्थिरद्वय, तैजस, प्रशस्त विहायोगति, सुस्वर—ये इकतीस प्रकृति हैं । इस इकतीसी के स्थानका उदय अधिकसे अधिक पूर्वकोट वर्ष पर्यंत रहता है और जघन्य वर्षपृथक्त्व प्रमाण स्थिति है । विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका उदय तेरहवें गुणस्थानसे होता है इसलिये यह स्थान भी वहींपर उदययोग्य है । अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास— ये चार अगुरुलघ्वादि चार प्रकृति है । त्रस बादर पर्याप्ति प्रत्येक-ये चार त्रसादि चार प्रकृति समझनी ॥ १९४–१९६ ॥

इस इकतीसीकी जो उदयस्थिति उत्कृष्ट पूर्वकोटी वर्ष प्रमाण वताई है वह अतर्मुहूर्त अधिक और गर्भसे लेकर आठ वर्षतक घाट समझनी चाहिये । क्योंकि केवलज्ञान होने योग्य कर्मभूमिया मनुष्यकी उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटी वर्ष प्रमाण है । उसमेंसे गर्भसे लेकर आठ वर्षकी अवस्था हुए पर्यंत केवलज्ञान नहीं हो सकता है इसलिये ये आठ वर्ष घटाकर इकतीसीके स्थानका काल लेना चाहिये । इसमें भग एक ही है ।

अब आठ और नौ प्रकृतिके दो स्थानोंको बताते हैं ।—

मनुष्यगति, पर्याप्ति, आदेय, पंचेंद्रियजाति, सुभग, यशःकीर्ति, त्रस, बादर—ये आठ प्रकृति है । इन आठका उदयस्थान अयोग केवल चौदहवें गुणस्थानमें होता है । यदि वह केवली तीर्थंकर हो तो तीर्थंकर एक प्रकृतिका उदय और भी अधिक रहता है इसलिये वह नौका स्थान हो जाता है ॥ १९७ ॥

पाके ८ । भंगः १ । तीर्थकृता युता ९ । भगः १ । सर्वे केवलिनो भंगाः ३ ।
षड्विंशतिशतान्युक्त्वा नवाग्राणि नृणां गतौ । भगानतः पर वक्ष्ये सयोगे पाकसप्तकम् (२६०९) ॥ १९८ ॥
उदये विंशतिः सैकषट्सप्ताष्टनवाधिका । दशाग्रा चेति विज्ञेय सयोगे स्थानसप्तकम् ॥ १९९ ॥
२० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ ।।३० ।
नृगतिः कार्मणं पूर्णं तेजो वर्णचतुष्टयम् । पचाक्षागुरुलघ्वाद्ये शुभस्थिरयुगे यशः ॥ २०० ॥
सुभग बादरादेये निर्मित् त्रसमिति स्फुटम् । उदय विंशतिर्याति प्रतरे लोकपूरणे ॥ २०१ ॥
२० । भगः १ ।

आठके उदयस्थानका एक भंग, नौके उदयस्थानका एक भंग, और पूर्वमें इक्तीसका एक भग बताया है । इस प्रकार इस केवलीके सर्व भग ३ हो जाते हैं ।

यहां पर्यंत मर्व मनुष्यगतिमें नौ अधिक छव्वीस सौ भगोंको बताया है । आहारकके सर्व चार भंग बताये उससे ऊपर साधारण मनुष्यमानके गर्भ तथा समूर्छन जन्मोंको लेकर २६०२ भंग बताये । इसके आगे ये केवलीके तीन भग वताये हैं । ये सर्व मिलानेसे २६०९ भग होजाते हैं । अब सयोग केवलीके सात उदयस्थानोंको आगे बताते हैं । ये सात उदयस्थान तीर्थंकर प्रकृति जिसके उदयमें नहीं है उस केवलीके समझने चाहिये ॥ १९८ ॥

वे सात उदयस्थान—२०का, २१ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का—इस प्रकार हैं ॥१९९

सबसे प्रथम वीसका स्थान बताते हैं ।—मनुष्यगति, कार्मण, तैजस, पर्याप्ति, वर्णादि चार, पचेंद्रियजाति, अगुरुलघु आदि चार, शुभद्वय, स्थिरद्वय, यशःकीर्ति, सुभग, बादर, आदेय, निर्माण, त्रस- ये वीस प्रकृति हैं । इनका उदय प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातके समयमें होता है ॥ २००-२०१ ॥

तत्र प्रतरे समयः १ । लोकपूरणे १ । पुनः प्रतरे १ । इत्थं त्रयः समयाः ३ ।

आद्ये संहनने क्षिप्ते प्रत्येकौदारिकद्वये । उपघाताख्यसंस्थानषट्कैकतरयोरपि ॥ २०२ ॥
षाड्विंशतमिदं स्थानं कपाटस्थस्य योगिनः । संस्थानैकतरैः षड्भिर्भंगषट्कमिहोदितम् ॥ २०३ ॥

२६ । भंगाः ६ ।

परघातखगत्यन्यतराभ्यां सहितं मतम् । तदाष्टाविंशतं स्थानं योगिनो दंडयायिनः ॥ २०४ ॥

२८ । अत्र द्वादश भंगाः १२ ।

समुद्घातमें बढते समयके प्रतरका समय १, फिर लोकपूरणका समय १, फिर घटते समय प्रतरका समय १—ऐसे तीन समय पर्यंत यह बीसीका उदयस्थान रहता है ।

अब छव्वीसका स्थान बताते हैं ।

आदिका संहनन एक वज्रर्षभनाराच, प्रत्येक, औदारिकद्वय, उपघात, तथा छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान—ऐसे इन छह प्रकृतियोंको ऊपरकी वीसमें जोडदेनेसे छव्वीसका यह स्थान हो जाता है । छह संस्थानोंमेंसे किसी भी एकका उदय सामान्य केवलीके हो सकता है इसलिये संस्थानकी छह संख्यासे इस छव्वीसीके स्थानमें भंग छह हो जाते हैं । इसका समय योगीके कपाट समुद्घात समयमें होता है । २०२–२०३ ।

अब सयोग केवलीके अट्ठाईसका उदयस्थान बताते हैं ।—

ऊपरकी छव्वीस प्रकृतियोंमें एक परघात और दूसरी प्रकृति विहायोगतिद्वयमेंसे कोई भी एक मिल जानेसे अट्ठाईस होजाती है । यह अट्ठाईसका स्थान दंड समुद्घातके पहिले तथा उतरते समय अंतके समयमें रहता है । विहायोगतिद्वयका यहां क्रमसे संभव है इसलिये ऊपरके जो छह भंग छह संस्थानके कारण होते थे उनको इस विहायोगति युगलसे गुणा कर देनेपर यहां बारह (१२) भंग हो जाते हैं । २०४ ।

तदुच्छ्वाससयुत स्थानमेकोनत्रिंशत स्मृतम् । आनपर्याप्तपर्याप्तै भगाः पूर्वनिवेदिताः ॥ २०५ ॥

२९ । भगाः १२ ।

त्रैंशत पूर्णभाषस्य स्वरैकतरसयुतम् । चतुर्विंशतिरत्रोक्ता भगा भंगविशारदैः ॥ २०६ ॥

३० । भगाः २४ ।

पृथक्तीर्थकृता योगे स्थानानां पचक परम् । प्रथमं तत्र सस्थान प्रशस्तौ च गतिस्वरौ ॥ २०७ ॥

अब सयोगीमें उन्तीसके स्थानको बताते हैं ।—

दड समुद्घातपर्यंत लौटकर आजानेके वाद जब प्रदेश शरीरप्रमाण होते हैं उस समय प्राण अथवा श्वासपर्याप्ति पूर्ण होनेपर उछ्वास प्रकृतिका फिर उदय सुरू होता है इसलिये यहां स्थान उन्तीसका होजाता है ।—ऊपरकी २८ में १ उच्छ्वास प्रकृति यहा बढ जाती है। भंग पूर्वके समान १२ ही इस उन्तीसके स्थानमें हैं ॥ २०५ ॥

अब तीसके स्थानको सयोग केवलीमें दिखाते हैं ।—

भाषापर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर वचनकी शक्ति प्रगट होती है इसलिये दो स्वरमेंसे कोई एक स्वर प्रकृति उदयमें आजाती है । इसलिये ऊपरके स्थानमें एक स्वर बढ जानेसे यहा तीस प्रकृतिका स्थान हो जाता है। इसमें भग २४ हो जाते हैं । पूर्वमें १२ भग बताये हैं किंतु यहा स्वरद्वयकी सख्यासे गुणा होनेपर २४ भगसंख्या हो जाती है ॥ २०६ ॥

अब तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसहित जो स्थान होते हैं उनको बताते हैं ।—

इन ऊपरके सयोगकेवलीके स्थानोंमें एक जुदी तीर्थंकर प्रकृति जिसके उदयमें होती है उसके पाच स्थान क्रमसे एक एक संख्या अधिकके हो जाते हैं । और इस तीर्थंकर प्रकृतिवालेके सस्थान, आदिका समचतुरस्र ही होता है, एव विहायोगति तथा स्वर ये दोनो प्रकृति भी उसके प्रशस्त ही रहती हैं, अप्रशस्त नहीं रहती । इसी कारण उसके भग प्रत्येक स्थानमें एक एक ही होते हैं ॥ २०७ ॥

इति तीर्थकृति सयोगे स्थानानि । २१ । २८ । २९ । ३० । ३१ । एकैकेन पञ्चसु भंगाः ५ । एव सयोगभंगा. ६० ॥

अत्रैकत्रिंशतं स्थान पंचम पूर्वभाषितम् । भंगो न पुनरुक्तत्वात्तदीयः परिगृह्यते ॥ २०८ ॥

भावार्थ—सयोगकेवलीके जो पाच स्थान पूर्वमें बताये है उनमें पहिला स्थान २० प्रकृतिका है । उसमें तीर्थंकर प्रकृतिके मिल जानेसे तीर्थंकर केवलीका यह प्रथम स्थान २१ प्रकृतिरूप होता है । यह स्थान पूर्वके समान प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातमें होता है । इसी प्रकार सामान्य केवलीका दूसरा स्थान २६ का है । परतु तीर्थंकरके तीर्थंकरत्व प्रकृतिका उदय बढ जानेसे २७ का स्थान होजाता है । सामान्य केवलीका तीसरा स्थान परघात तथा विहायोगति बढ जानेसे २८ का बताया है किंतु तीर्थंकरकें तीर्थंकर प्रकृति बढजानेसे २९ का स्थान होजाता है । इसी प्रकार सामान्य केवलीकें जहां २९ का स्थान उच्छ्वास बढ जानेसे बताया है, वहा तीर्थंकरकें ३० का स्थान होजाता है । एवं सामान्य केवलीके जहां स्वर बढ जानेसे ३० का स्थान बताया है, वहा तीर्थंकरकें तीर्थंकर प्रकृति बढ जानेके कारण ३१ का स्थान होजाता है। ऐसे ऊपरके पाच स्थानोंमें एक एक सख्या बढकर पाच स्थान तीर्थंकर केवलीकें २१ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का—ये हो जाते हैं ।

इन पांचो स्थानोंमें एक एक ही भग है । क्योंकि, अधिक भंग होनेके कारण—छह संस्थानोंमेंसे किसी एकका उदय, विहायोगतिद्वयमेंसे किसी एकका उदय, स्वरयुगलमेंसे किसी एकका उदय—ये थे, किंतु तीर्थंकर केवलीकें संस्थान समचतुरस्र ही है, विहायोगति प्रशस्त एक ही है, और स्वर भी एक प्रशस्त अथवा सुस्वर ही उदयमें आता है । इस कारण अधिक भग नहीं हो पाते हैं । इस प्रकार तीर्थंकर केवलीके पाच स्थानोंके पांच भग, और ऊपर सामान्य केवलीके ५५ भंग बताये हैं । दोनों सयोग केवलियोंके मिलकर ६० भंग होते हैं । परतु,—

इकतीसका स्थान जो पाचवां है वह पहिले भी बतादिया है । उसका एक भंग पूर्वके भगोंमें एकवार जोडागया है इसलिये पुनरुक्त भयसे यहां न जोडकर भगोंकी सर्व संख्या ६० न मानकर ५९ माननी चाहिये ॥ २०८ ॥

॥४५२॥

शेषाः ५९ । सहैतैस्ते पूर्वोदिताः २६०९—एतावतः २६६८ । इति सर्वे नृगतिभंगाः ।

एवं मनुष्यगतिः समाप्ता ।

अस्त्येकपंचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात् । नाम्नो दिवौकसां रीतावुदये स्थानपंचकम् ॥ २०९ ॥

२१ । २५ । २७ । २८ । २९ ।

तत्रैकविंशतं पूर्णं देवद्वितयकार्मणे । स्थूलं शुभस्थिरद्वन्द्वे यशो वर्णचतुष्टयम् ॥ २१० ॥

ये ५९ भंग, और पूर्वमें शेष मनुष्योंके शेष सर्व गुणस्थानसंबंधी २६०९ भंग बताये थे–इन दोनों संख्याओंको जो डनेसे सर्व मनुष्योंमें नामके उदयस्थान संबंधी भंग २६६८ होते हैं ।

यह इकतीसका एक भंग पुनरुक्त होनेसे घट गया तो ये भंग ५९ रहे । और पूर्वमें २६०९ भंग बताये हैं । दोनों को जोडनेसे सर्व २६६८ भंग मनुष्यगतिके होते हैं ।

इस प्रकार नामकर्मके मनुष्यगतिमें उदयस्थान वर्णन करनेवाला प्रकरण समाप्त हुआ ।

अब देवगतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंको आगे बताते हैं ।–

देवगतिमे नामके उदयस्थान पांच हैं । एक, एक अधिक वीसका अर्थात् २१ का है । दूसरा पांच अधिक वीसका अर्थात् २५ का है । तीसरा २७ का, चौथा २८ का, पांचवां २९ का है ॥ २०९ ॥

२१ का, २५ का, २७ का, २८ का, २९ का—ये सर्व पांच स्थान हैं ।

इकीसका प्रथम स्थान है उसे प्रथम बताते हैं ।—

पूर्ण अर्थात् पर्याप्ति, देवगतिद्वय, कार्मण, बादर, शुभद्वय, स्थिरद्वय, यश कीर्ति, वर्णादि चार, पंचेंद्रिय जाति, सुभग,

१—मूलमें पाठ 'पूर्व' ऐसा है । परंतु पर्याप्ति कर्मका उदय गिनानेसे ही इकीसकी संख्या पूरी होती है, तथा पर्याप्ति कर्मका उदय देवोंमें मानना ही पडता है इसलिये पर्याप्ति अर्थ करनेके लिये 'पूर्ण' ऐसा पाठ ही ठीक ठहरता है । पूर्णका अर्थ पर्याप्ति है ।

पचाक्षं सुभगादेये तेजोऽगुरुलघु त्रसम् । निर्माणमिति वक्रत्तावेकद्वित्रिक्षणस्थितिः ॥ २११ ॥
२१ । भंग १ ।
तदपास्तानुपूर्वीकं पांचविंशतमन्वितम् । प्रत्येकचतुरस्रोपघातवैक्रियिकद्विकैः ॥ २१२ ॥

आदेय, तैजस, अगुरुलघु, त्रस, निर्माण— यह इक्कीसका स्थान है । विग्रह गतिमें इसका उदय होता है । एक, दो अथवा तीन समय इसकी स्थिति है । इसका भंग एक है ॥ २१०–२११ ॥

अब पचीसका स्थान बताते हैं ।—

आनुपूर्वीका उदय विग्रहगतिके बाद छूट जाता है । विग्रहगतिके बाद अभीष्ट स्थानमें पहुंचकर जीव नवीन शरीरको रचने योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करना आरंभ करता है, वहासे लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण हुए पर्यंत पचीसका उदय हो जाता है । इस पचीसी में ऊपरकी इक्कीस प्रकृति लेना । उनमेंसे आनुपूर्वी घटकर वीस रह जाती है, और प्रत्येक, समचतुरस्र संस्थान, उपघात,

---

१ तच्चिठगिवीसं ठाणं देवदुग तेज कम्म वण्णचदुं । अगुरुयलहु पंचिंदिय तस वारय पज्जत्त ॥
थिरमथिरं सुभमसुभं सुहय आदेज्जय च सणिमिणं । विग्गहगईइएए एक वा दोव समयाणि ॥

मा० ग्रंथमालाकी मुद्रित पुस्तकमें नामके इकीसका उदय स्थान बतानेवाली यह प्राकृत पचसंग्रहकी गाथाएं उद्धृत की हैं । उनमें कोई विशेष बात नहीं है । किंतु एक यशःकीर्ति प्रकृतिका पाठ इनके पाठमेंसे छूट गया है और इसी कारण प्रथम गाथाका चौथा चरण अपूरा है । यदि उस चरणको ' तस बादर जस्स पज्जत्तं ' ऐसा लिखें तो संभवत शुद्ध हो जाय । इस टिप्पणीसे यहापर कोई लाभ न होकर देखनेवालेका भ्रममें पडजाना मात्र संभव है । और ' बादर ' शब्द चाहिये वहां 'वारय ' अशुद्ध होगया है । इस गाथामें इकीसीकी स्थिति दो समय पर्यंत ही बताई है ।

इद गृहीतदेहस्य यावद्देहस्य पूर्णताम् । एको भगोऽस्य कालस्तु भवेदन्तर्मुहूर्तक ॥ २१३ ॥
२५ । भगः १ ।
सत्रागायन्यघाताभ्या तद्युक्त सार्धनिशतम् । कालोऽयस्यांगपर्याप्तौ विज्ञेयोऽन्तर्मुहूर्तकः ॥ २१४ ॥
२७ । भगः १ ।
पर्याप्तानस्य स च्छ्वास तदाष्टाविंशत स्मृतम् । यावद्वचनपर्याप्तिस्तावत्कालोऽस्य भाषितः ॥ २१५ ॥
२८ । भगः १ ।
एकोनत्रिंशत भाषापर्याप्तौ तत्ससुस्वरम् । जीवितव्यावधिः कालो भगानामेषु पचकम् ॥ २१६ ॥
२९ । भगः १ । एकत्र ५ ।

वैक्रियिक शरीर वैक्रयिक शरोरागोपांग–ये दो–इस प्रकार पाच नवीन प्रकृति उदयमें अधिक आने लगती हैं। इस लिये पच्चीसका यह स्थान हो जाता है । इसका भी भंग एक और काल अतर्मुहूर्त है ॥ २१२—२१३ ॥

अब सत्ताईसका स्थान बताते हैं ।–

शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेतक २५ का स्थान था । शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद सत्ताईसका स्थान सुरू होता है। प्रशस्त विहायोगति, परघात—ये दो प्रकृति बढ जानेसे यह सत्ताईसका स्थान हो जाता है। प्राणपर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम पर्यंत इसका काल अंतर्मुहूर्त है । भंग भी इसमे एक ही समझो ॥ २१४ ॥

अब अट्ठाईसका स्थान बताते हैं ।–

प्राणपर्याप्ति पूर्ण हो जानेपर अट्ठाईसका स्थान सुरू होता है और भाषापर्याप्ति पूर्ण होनेसे प्रथम क्षण पर्यंत यह स्थान रहता है। इसलिए इसका भी काल अंतर्मुहूर्त है । ऊपरकी सत्ताईसीसे इसमें एक उच्छ्वास प्रकृति बढ जाती है । भंग इसका भी एक ही समझो ॥ २१५ ॥

अब उनतीसका स्थान बताते हैं ।—

भाषा पर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद सुस्वर नाम प्रकृतिका उदय सुरू होता है, और ऊपरकी अट्ठाईस–इस प्रकार उन्तीसका

भापापर्याप्तिपर्याप्ते प्रथमात्क्षणतः स्थिति । जीवितव्यावधिः प्रोक्ता कृतजीनितनिश्चयैः ॥ २१७ ॥
दशवर्षसहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्पयोधयः । अंतर्मुहूर्तहीने स्तस्ते जघन्याजघन्यके ॥ २१८ ॥
सकलान्तर्मुहूर्त्तोना पूर्णमापे स्थितिर्जिनैः । प्रोक्तौपपादिकेऽन्यत्र जघन्यांतर्मुहूर्त्तिकी ॥ २१९ ॥

इति देवगति समाप्ता ।

सैकादशाः स्मृताः पाकाः षड्सप्ततिशतप्रमाः । एकोनषष्टिरन्यास्ति समुद्घातगते जिने ॥ २२० ॥
७६११ । समुद्घातगते नाम्नः पाकाः ५९ ।

यह स्थान हो जाता है। इसका काल जीवन पर्यंत है। इसका भंग भी एक ही है। परंतु पांचो स्थानोंके सर्व भंग पांच होजाते हैं ॥ २१६ ॥

अब इस उन्तीसीके उदयका जघन्य उत्कृष्ट काल दिखाते हुए समर्थन करते हैं।—

भाषा पर्याप्ति पूर्ण होते ही उसके प्रथम समयसे लेकर इस ऊपर बताई हुई उन्तीसीका उदय सुरू होता है और वह जीवन काल पर्यंत उदयमें रहता है ऐसा आयुका निश्चय करनेवाले सर्वज्ञ भगवानने कहा है। इसलिये भापापर्याप्ति पूर्ण हुए तकके अंतर्मुहूर्तसे घाट दश हजार वर्ष इस स्थानकी जघन्य स्थिति है, और अंतर्मुहूर्तसे ही घाट तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥ २१७–२१८ ॥

इसी प्रकार औपपादिकोंमें भापापर्याप्ति पूर्ण होनेके बादमें जो स्थान होता है उसकी जघन्य उत्कृष्ट सर्व स्थिति, भापापर्याप्तिसे पहिले तकका अंतर्मुहूर्त समय कम जीवन पर्यंत जिनेंद्रने बताई है। और अन्यत्र अर्थात् भापापर्याप्तिसे पहिले जो उदयस्थान हैं उनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त मात्र ही सर्वत्र है। २१८। इस प्रकार देवगतिके नामकर्म संबन्धी उदयस्थान समाप्त हुए।

अब उदयस्थानोंके सर्व भंग मिलकर कितने हुए वह बताते हैं—

छिहत्तरि सौ ग्यारह उदयभंग पूर्वमें कहे हैं, और समुद्घातवाले केवलीके उनसठि भंग हैं। इस प्रकार नाम कर्मके उदयस्थानगत सर्व ७६७० भंग होते हैं। २२०। इति नाम प्रकृतियोंके उदयस्थान।

॥४५६॥

अब नामकर्मके उदयस्थान गोमटसारमें जो बताये हैं उसको बताते हैं।

आगे नामकर्मके उदयस्थानोंको २२ गाथाओंसे कहते हैं,–

विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते । आणावचिपज्जत्ते कमेण पचोदये काला ॥ ५८३ ॥

विग्रहकर्मशरीरे शरीरमिश्रे शरीरपर्याप्ते । आनवच पर्याप्ते क्रमेण पञ्च उदये काला. ॥ ५८३ ॥

अर्थः—नामकर्मके उदयस्थान विग्रहगति अथवा कार्माण शरीरमें, मिश्र (अपर्याप्त) शरीरमें, शरीर पर्याप्तिमें, आनपर्याप्ति अर्थात श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिमें, वचनपर्याप्तिमें नियतकाल है अर्थात जिस कालमें उदय योग्य हैं उसी कालमें उदय होते है। इसतरह इनके पांच काल हुए ॥ ५८३ ॥

अब इन कालोंका प्रमाण कहते हैं,—

एक्क च दो व तिण्णि व समया अतोमुहुत्तय तिसुवि । हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥ ५८४ ॥

एको वा द्वौ वा त्रयो वा समया अन्तर्मुहूर्त्तक त्रिष्वपि । अधस्तनकालोन चरमस्य च उदयकालस्तु ॥ ५८४ ॥

अर्थ—उन उदय कालोंका प्रमाण क्रमसे १ समय वा २ समय अथवा ३ समय विग्रहगतिमें, और शरीरमिश्रादि ३ में अतर्मुहूर्त २ प्रमाण है, और अतकी भाषापर्याप्तिमें पूर्वकथित चारोंका काल घटानेसे शेष भुज्यमान आयुप्रमाण काल जानना ॥ ५८४ ॥

आगे उन पाच कालोंको जीवसमासमें दिखलाते हैं;—

सव्वापज्जत्ताण दोण्णिवि काला चउक्कमेयक्खे । पचवि हाति तसाण आहारस्सुवरिमचउक्क ॥ ५८५ ॥

सर्वापर्याप्ताना द्वावपि कालौ चतुष्कमेकाक्षे । पञ्चापि भवन्ति त्रसानामाहारस्योपरिमचतुष्कम् ॥ ५८५ ॥

अर्थ—सब लब्ध्यपर्याप्तकोंमें पहलेके २ काल, एकेंद्रीमें ४ काल, त्रसोंमें ५ काल हैं और आहारक शरीरमें पहलेके विना आगेके ४ काल हैं ॥ ५८५ ॥

कम्मोरालियमिस्सं ओरालुस्सास भास इदि कमसो । काला हु समुग्घादे उवसहरमाणगे पंच ॥ ५८६ ॥
कर्मौरालिकमिश्रमौरालोच्छ्वासभाषेति क्रमश । काला हि समुद्धाते उपसंहरमाणके पञ्च ॥ ५८६ ॥

अर्थ—समुद्धातकेवलीके कार्माण १ औदारिकमिश्र २ औदारिकशरीरपर्याप्ति ३ उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्ति ४ भाषापर्याप्ति काल ५—इस प्रकार पाच काल क्रमसे अपने प्रदेशोंके सकोच करने (समेटने) के समय ही होते हैं। विस्तार (फैलाने) के समय ३ ही काल हैं ॥ ५८६ ॥

अब यही कहते हैं;—

ओराल दडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु । पदरे य लोगपूरे कम्मे व य होदि णायव्वो ॥ ५८७ ॥
औरालं दण्डद्विके कपाटयुगले च तस्य मिश्रं तु । प्रतरे च लोकपूरे कर्म्मणि वा च भवति ज्ञातव्य ॥ ५८७ ॥

अर्थ—दडसमुद्धातके करने वा समेटनेरूप युगलमें औदारिक शरीर पर्याप्ति काल है, कपाट समुद्धातके करने और समेटनेरूप युगलमें औदारिकमिश्रशरीर काल है, प्रतरसमुद्धातमें और लोकपूरण समुद्धातमें कार्माण काल है । इस प्रकार प्रदेशोंके विस्तार करनेपर ३ ही काल हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ५८७ ॥

आगे नामकर्मके उदयस्थानोंकी उत्पत्तिका क्रम ४ गाथाओंसे कहते हैं—

णामधुवोदयबारस गइजाईणं च तसतिजुम्माण । सुभगादेज्जजसाण जुम्मेक्क विग्गहे वाणू ॥ ५८८ ॥
नामध्रुवोदयद्वादश गतिजातीना च त्रसत्रियुग्मानाम् । सुभगादेययशसां युग्मैकं विग्रहे वानु ॥ ५८८ ॥

अर्थ—"तेजदुगं वण्णचऊ" इस गाथासे कही हुई नामकर्मकी १२ ध्रुवप्रकृतियां, ४ गति, ५ जाति, त्रसादि त्रस वादर पर्याप्ति ये तीनका जोडा, सुभग—आदेय—यशस्कीर्ति, इन तीनका जोडा—इनमेंसे एक एक प्रकृतिका और ४ आनुपूर्वी प्रकृतियोंमें कोई एकका उदय होनेसे २१ प्रकृतिरूपस्थानका उदय विग्रहगतिमें होता है । ५८८ ।

मिस्सम्हि तिअगाण सठाणाणं च एगदरग तु । पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो ॥ ५८९ ॥
मिश्रे त्र्यङ्गाना सस्थानाना च एकतरक तु । प्रत्येकद्विकयोरेक उपघातो भवति उदयगत ॥ ५८९ ॥

अर्थ—उस २१ प्रकृतिरूप उदयस्थानमेंसे आनुपूर्वी घटाके और औदारिकादि तीन शरीरोंमेंसे एक, छह संस्थानोंमेंसे १, प्रत्येक-साधारण इन दोनोंमेंसे एक, और उपघात-ये चार मिलानेसे २४ का स्थान होता है यह स्थान मिश्रशरीरके कालमें उदय होता है ॥ ५८९ ॥

तसमिस्से ताणि पुणो अंगोवंगाणमेगदरगं तु । छण्हं संहडणाणं एगदरो उदयगो होदि ॥ ५९० ॥

परघादमंगपुण्णे आदावदुगं विहायमविरुद्धे । सासवची तप्पुण्णे कमेण तित्थं च केवलिणि ॥ ५९१ ॥ जुम्मं ॥

त्रसमिश्रे तानि पुनः अङ्गोपाङ्गानामेकतरक तु । षण्णां संहननानामेकतरमुदयकं भवति ॥ ५९० ॥

परघातमङ्गपूर्णे आतापद्विकं विहायोऽविरुद्धे । श्वासवचसी तत्पूर्णे क्रमेण तीर्थं च केवलिनि ॥ ५९१ ॥ युग्मम् ।

अर्थ—पहले कही हुई ४ प्रकृतियां, तीन अंगोपांगोंमेंसे १, छह संहननोंमेंसे १, ये सब ६ प्रकृतियां मिश्रशरीरवाले त्रसजीवके उदययोग्य हैं। और शरीरपर्याप्तिकालमें परघात प्रकृति उदय होती है। आताप—उद्योत ये दोनों तथा विहायोगति दोनों—ये योग्य त्रसस्थावरके पर्याप्तिकालमें उदय होती हैं। उच्छ्वास और स्वरयुगल-अपने अपने पर्याप्तिकालमें उदय होते हैं। और क्रमसे केवलीमें ही तीर्थंकर प्रकृतिका उदय होता है ॥ ५९० । ५९१ ॥

आगे एक जीवकी अपेक्षा वा नाना जीवोंकी अपेक्षासे जो नामकर्मके उदयस्थान कहे गये हैं उन्हींको दिखलाते हैं—

वीसं इगिचउवीसं तत्तो इगितीसओत्ति एयधियं । उदयट्ठाणा एवं णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥ ५९२ ॥

विंशमेकचतुर्विंशं तत एकत्रिंशदिति एकाधिकम् । उदयस्थानान्येव नवाष्ट च भवन्ति नाम्नः ॥ ५९२

अर्थ—नामकर्मके उदयस्थान, २०, २१, २४ का, इससे एक एक अधिक ३१ के स्थान पर्यंत, ९, ८ का इस प्रकार १२ हैं। ५९२

अब उन स्थानोंके स्वामियोंको कहते हैं,—

चदुगदिया एइंदी विसेसमणुदेवणिरयएइंदी । इगिवितिचपसामण्णा विसेसमसुरणारगेइंदी ॥ ५९३ ॥

सामण्णसयलवियलविसेसमणुस्ससुरणारया दोण्हं । सयलवियलसामण्णा सजोगपच्चक्खवियलया सामी ॥५९४॥ जुम्म

चतुर्गतिका एकेन्द्रिया विशेषमनुदेवनिर्यकेन्द्रिया । एकद्वित्रिचपसामान्या विशेषसुरनारकैकेन्द्रिया ॥ ५९३ ॥
सामान्यसकलविकलविशेषमनुष्यसुरनारका द्वयो: । सकलविकलसामान्या सयोगश्चाक्षविकलका स्वामिन ॥५९४॥ युग्मम्.

अर्थ——२१ के स्थानके चारोंगतिके जीव-स्वामी हैं, २४ के एकेंद्री, २५ के विशेषमनुष्य-देव-नारकी-एकेंद्रिय स्वामी हैं, २६ के एकेंद्री-तेंद्री-चौइद्री-पचेंद्री-सामान्यजीव स्वामी हैं, २७ के विशेषपुरुष-देव-नारकी एकेंद्री स्वामी हैं, २८ और २९ के स्थानके सामान्यपुरुष पचेंद्री-विकलेंद्री-विशेषपुरुष-देव-नारकी स्वामी हैं, ३० के पचेंद्री-विकलेंद्री—सामान्यपुरुष स्वामी हैं, ३१ के सयोगकेवली-पचेंद्री-दोइद्री आदि-विकलेंद्री जीव स्वामी हैं॥ ५९३ । ५९४ ॥ ९ और ८ के स्थानके अयोगकेवली स्वामी हैं।

एगे इगिवीसपण इगिछव्वीसट्ठवीसतिण्णि णरे । सयले वियलेवि तहा इगितीस चावि चचिठाणे ॥ ५९५ ॥
सुरणिरयविसेसणरे इगिपणसगवीसतिण्णि समुघादे । मणुस वा इगिवीसे वीस रूवाहिय तित्थ ॥ ५९६ ॥
वीसदु चउवीसचऊ पणछव्वीसादिपचयं दोसु । उगुतीसति पणकाले गयजोगे होंति णव अट्ठ ॥ ५९७ ॥ विसेसयं
एकस्मिन्नेकविंशतिपञ्च एकषड्विंशाष्टविंशत्रीणि नरे । सकले विकलेपि तथा एकत्रिंशत् चापि वच स्थाने ॥ ५९५ ॥
सुरनिरयविशेषनरे एकपञ्चसप्तविंशत्रीणि समुद्धाते । मनुष्यं वा एकविंशे विंश रूपाधिक तीर्थम् ॥ ५९६ ॥
विंशद्विकं चतुर्विंशचतुष्कं पञ्चषड्विंशादिपञ्चकं द्वयो । एकोनत्रिंशत्रिकं पञ्चकालेषु गतयोगे भवन्ति नवाष्ट ॥५९७॥ विशेषकम् ।

अर्थ—पहले कहे हुए पांच कालोंमें यथासंभव क्रमसे एकेंद्रीके उदय योग्य २१ आदि पाच स्थान हैं, मनुष्यके उदय-योग्य २१-२६ और २८ आदि तीन स्थान, इस तरह ५ स्थान हैं। सकलेन्द्री अर्थात् पचेंद्री और दोइन्द्री आदि विकलेंद्री तिर्यंचों के उदययोग्य २१ आदि ५ स्थान और भाषापर्याप्तिमें ३१ का स्थान-इस प्रकार ६ स्थान हैं। देव नारकी, आहारक और केवल सहित विशेष मनुष्य इनके २१-२५-२७ आदि ३, इसप्रकार ५ स्थान उदय योग्य हैं। समुद्धातकेवलीके मनुष्यकी तरह २१ मेंसे २० का ही स्थान होता है क्योंकि आनुपूर्वी कम हो जाती है। तीर्थंकर समुद्धातकेवलीके तीर्थंकर प्रकृति बढनेसे

२१ का स्थान होता है। इस प्रकार केवलीके २० और २१ के दो स्थान उदय योग्य हैं। मिश्रशरीरकालमें २४ आदि ४ चार स्थान, शरीर पर्याप्तिकालमें २५ आदि ५ स्थान, आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) पर्याप्तिकालमें २६ आदि पांच स्थान, भाषापर्याप्ति कालमें २९ आदि ३ स्थान उदय योग्य हैं। और अयोगी केवलीके ९ और ८ का ये दो स्थान उदय योग्य हैं ॥५९५-९६-९७॥

अब अयोगी गुणस्थानके दो स्थानोंका स्वरूप कहते हैं—

गयजोगस्स य बारे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु। णामस्स य णव उदया अठेव य तित्थहीणेसु ॥ ५९८ ॥

गतयोगस्य च द्वादश तृतीयायुष्कगोत्रमिति विहीनेषु। नाम्नश्च नव उदया अष्टैव च तीर्थहीनेषु ॥ ५९८ ॥

अर्थ—अयोगकेवलीकी १२ उदय प्रकृतियोंमेंसे वेदनीय–आयु–गोत्र इनकी ३ प्रकृतियां कम करनेपर नाम कर्मकी ९ उदय योग्य हैं। और जो तीर्थंकर प्रकृति नहीं हो तो ८ ही उदय योग्य हैं ॥ ५९८ ॥

आगे नामकर्मके उदय स्थानोंमें भंगोंको कहते हैं—

सठाणे सहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे। अविरुद्धेक्कदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा हु ॥ ५९९ ॥

संस्थाने संहनने विहायोयुग्मे च चरमचतुर्युग्मे। अविरुद्धैकतरस्मात् उदयस्थाने भङ्गा हि ॥ ५९९ ॥

अर्थ—६ संस्थानोंमेंसे, ६ संहननोंमेंसे, विहायोगतियुगलमेंसे, और अंतके सुभग आदि ४ युगलोंमेंसे अविरोधी एक एक प्रकृतिका ग्रहण करनेपर नामकर्मके भंग होते हैं। इन सबको आपसमें गुणा करनेसे ११५२ भंग हो जाते हैं ॥ ५९९ ॥

आगे उन भंगोंमेंसे नारक आदि ४१ जीवपदोंमें संभव होनेवाले भंगोंको ३ गाथाओंसे कहते हैं—

तत्थासत्था णारयसाहारणसुहुमगे अपुण्णे य। सेसेगविगलऽसण्णीजुदठाणे जसजुगे भंगा ॥ ६०० ॥

तत्राशस्ता नारकसाधारणसूक्ष्मके अपूर्णे च। शेषैकविकलासंज्ञियुतस्थाने यशोयुग्मे भङ्गाः ॥ ६०० ॥

अर्थ—उन उदय प्रकृतियोंमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका उदय नारकी–साधारणवनस्पती सब सूक्ष्म–लब्ध्यपर्याप्तक इन सबमें है इस कारण एक एक भंग है। शेष एकेन्द्री-विकलेन्द्री-असंज्ञीपंचेंद्री इनमें पूर्व कथित अप्रशस्तका उदय तो है ही परंतु यशस्कीर्ति

अयशस्कीर्ति इन दोनोंमेंसे किसी एकका उदय होनेसे उदयस्थानोंमें दो दो भंग हो जाते हैं अर्थात् एक यशस्कीर्ति उदयस्थान १ दूसरा अयशस्कीर्ति उदयस्थान २–इस तरह दो भेद होजाते हैं ॥ ६०० ॥

सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य ओघेक्कदर तु केवले वज्जं । सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि ॥ ६०१ ॥

संज्ञिनि मनुष्ये च ओघैकतर तु केवले वज्रम् । सुभगादेययशांसि च तीर्थयुते शस्तमेतीति ॥ ६०१ ॥

अर्थ—सञ्ज्ञी पंचेन्द्रीके और मनुष्यके सामान्यकथनवत् एक एकका उदय होनेसे ११५२ भंग होते हैं। केवलज्ञान-अवस्थामें वज्रर्षभनाराचसंहनन १ सुभग २ आदेय ३ यशस्कीर्ति ४ इनका उदय होता है। तीर्थंकरप्रकृति सहित केवलीके अर्थात् तीर्थंकर केवलीके सब प्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय होनेसे उनके उदयस्थानोंमें एक एक ही भंग है ॥ ६०१ ॥

देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भगमाणेज्जो । वोच्छिण्ण जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु ॥ ६०२ ॥

देवाहारे शस्त कालविकल्पेषु भङ्ग आनेय' । व्युच्छिन्न ज्ञात्वा गुणप्रतिपन्नेषु सर्वेषु ॥ ६०२ ॥

अर्थ—चार प्रकारके देवोंमें और आहारकशरीरसहित प्रमत्तमें प्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय है, इसकारण उनके सब कालके उदयस्थानोंमें एक एक ही भंग है। और सासादनादि गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंमें अथवा विग्रहगतिकार्माणादिकके कालमें व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको जानकर शेष प्रकृतियोंके भग यथासंभव समझलेना ॥ ६०२ ॥

वीसादीणं भंगा इगिदालपदेसु सभवा कमसो । एक्क सट्ठी चेव य सत्तावीस च उगुतीसं ॥ ६०३ ॥

वीसुत्तरछच्चसया बारस पण्णत्तरीहि सजुत्ता । एक्कारससयसंखा सत्तरससयाहिया सट्ठी ॥ ६०४ ॥

ऊणत्तीससयाहियएक्कावीसा तदोवि एकट्ठी । एक्कारससयसहिया एक्कक्क विसरिसगा भंगा ॥ ६०५ ॥ विसेसयं ॥

विंशादीनां भङ्गा एकचत्वारिंशत्पदेषु सभवा क्रमशः । एकः षष्टि चैव च सप्तविंशं च एकोनविंशम् ॥ ६०३ ॥

विंशोत्तरषट् च शतानि द्वादश पञ्चसप्ततिभि सयुक्ता' । एकादशशतसंख्या सप्तदशशताधिका' षष्टि ॥ ६०४ ॥

एकोनत्रिंशच्छताधिकैकविंशं ततोपि एकषष्टि । एकादशशतसहिता एकैकं विसदृशगा भङ्गा ॥ ६०५ ॥ विशेषकम् ।

अर्थ—२० के स्थानको आदिलेकर स्थानोंके भंग ४१ जीवपदोंकी अपेक्षा यथासंभव क्रमसे १, ६०, २७, १९, ६२०, १२, ११७५, १७६०, २९२१, ११६१, तीर्थसमुद्घातकेवलीका १ पुनरुक्तभंग, अयोगकेवलीके तीर्थंकर प्रकृति सहितका १ और तीर्थंकर रहितका १ भंग—इस कारण ७७५८ भग होते हैं ॥ ६०३–६०४–६०५ ॥

आगे उन पुनरुक्तभंगोंको कहते हैं,—

सामण्णकेवलिस्स समुग्घादगदस्स तस्स वचि भंगा । तित्थस्सवि सगभगा समेदि तत्थेक्कमवणिज्जो ॥ ६०६ ॥

सामान्यकेवलिन समुद्घातगतस्य तस्य वचसि भङ्गा । तीर्थस्यापि स्वकभङ्गा समा इति तत्रैकोपनेय ॥ ६०६ ॥

अर्थ —भाषापर्याप्तिकालमें सामान्यकेवलीके तथा समुद्घातसहित सामान्यकेवलीके २४ भग समान हैं । और तीर्थंकर केवली व तीर्थंकर समुद्घातकेवलीके ३१ स्थानमें एक एक भंग है वह समान है इस कारण २५ भंग पुनरुक्त होनेसे ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ ६०६ ॥

आगे गुणस्थानोंमें उन भंगोंको कहते हैं,-

णारयसण्णिमणुस्ससुराण उवरिमगुणाण भंगा जे । पुणरुत्ता इदि अवणिय भणिया मिच्छस्स भगेसु ॥ ६०७ ॥

नारकसंज्ञिमनुष्यसुराणामुपरितनगुणानां भङ्गा ये । पुनरुक्ता इति अपनीय भणिता मिथ्यस्य भङ्गेषु ॥ ६०७ ॥

अर्थ—नारकी–संज्ञीतिर्यंच–मनुष्य–देव इनके ऊपरके अर्थात् सासादनादिगुणस्थानोंमें जो भग हैं वे मिथ्यादृष्टिके भंगोंके समान होनेसे पुनरुक्त हैं, इसलिये वे घटाकर केवल मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें कहे गये हैं ॥ ६०७ ॥

अब उन भंगोंका सब जोड कहते हैं;—

अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा य होंति पिंडेण । उदयट्ठाणे भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥ ६०८ ॥

अष्टपञ्चाशत् सप्तशतानि सप्तसहस्राणि च भवन्ति पिण्डेन । उदयस्थाने भगा असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥ ६०८ ॥

अर्थ—सहायता रहित पराक्रमवाले श्री महावीर स्वामीने सब मिलाकर ७७५८ भग उदयस्थानोंमें कहे हैं ॥ ६०८ ॥

त्रिद्व्येकसहिता सत्वे नवतिर्नवतिः परा । क्रमादष्टचतुर्द्व्यग्राऽशीतिः सा च निवेदिता ॥ २२१ ॥
निरेकद्वित्रिकाशीतिर्नाम्नो दश नवापराः । सत्त्वस्थानानि विज्ञाय योज्यानीति त्रयोदश ॥ २२२ ॥
९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।
तत्र त्रिनवतिः सत्तीर्थेशाहारकद्विकैः । हीना स्थानत्रये कार्याः क्रमादेकद्विकत्रिभिः ॥ २२३ ॥
आद्ये स्थाने ९३ । त्रिष्वतः स्थानेषु ९२ । ९१ । ९० ।

अब नामकर्म सत्त्वस्थान प्रकरण.

नाम कर्मकी सर्व प्रकृति, पिंड प्रकृतियोंके उत्तर भेद लेनेपर ९३ है । उनमेंसे तीन अधिक नब्बे अर्थात् ९३ का एक सत्त्वस्थान है । दूसरा दो अधिक नब्बे अर्थात् ९२ का स्थान है । तीसरा एक अधिक नब्बे अर्थात् ९१ का स्थान है । चौथा ' नवति ' अर्थात् केवल नब्बे (९०) का स्थान है । फिर पांचवा स्थान क्रमसे आठ अधिक अस्सीका अर्थात् ८८ का है । छट्ठा स्थान चार अधिक अस्सीका अर्थात् ८४ का है । सातवा दो अधिक अस्सीका अर्थात् ८२ का है । आठवा ' साच ' अर्थात् केवल अस्सी [८०] का है । फिर नौवा स्थान अस्सीमें निरेक अर्थात् एक घाटका अर्थात् उनासी [७९] का है । दशवां स्थान दो घाट अस्सीका अर्थात् अठत्तरि (७८) का है । ग्यारहवां स्थान तीन घाट अस्सीका अर्थात् सतत्तरि (७७) का है । बारहवें स्थानमें नामकी दश सत्त्वप्रकृति हैं । और तेरहवें स्थानमें नौ [९] प्रकृति हैं ।

इस प्रकार इन–९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९—के तेरह सत्त्व स्थानोंको समझकर यथायोग्य लगालेना चाहिये ॥ २२१–२२२ ॥

अब आगे यह दिखाते हैं कि ऊपर बताये हुए तेरह स्थान किन किन प्रकृतियोंसे बनते हैं । उन तेरह स्थानोंमेंसे आदिके चार स्थानोंको प्रथम दिखाते हैं ।—

सबसे प्रथम जो ९३ का स्थान बताया है उसमें नामकर्मकी सर्व प्रकृति हैं । फिर ९२ का ९१ का तथा ९० का–ये तीन स्थान, तीर्थंकर तथा आहारकद्वय–इन तीनके यथायोग्य घटानेसे बनते हैं । केवल एक तीर्थंकरके घटानेसे ९२ का

त्यक्ते देवद्वये श्वभ्रचतुष्के नृद्वये क्रमात् । नवतेर्नरतिर्यक्षु स्थानानां त्रितयं स्मृतम् ॥ २२४ ॥

नरतिर्यक्षु ८८ । ८४ । तिर्यक्षु ८२ ।

तिर्यङ्नारकयोर्युग्मे एकाक्षं स्थावरातपौ । विकलत्रिकमुद्योत सूक्ष्म साधारणाह्वयम् ॥ २२५ ॥

स्थान बनता है । आहारकद्वयको केवल घटानेसे ९२ का स्थान बनता है । और उक्त तीनो प्रकृतियोंके घटानेपर ९० का स्थान बनता है । इस प्रकार ये ऊपरके चार स्थान बन जाते हैं ॥ २२३ ॥

अब ८८, ८४, ८२ के तीन स्थानोंको बताते हैं ।—

देवगति तथा देवगत्यानुपूर्वी—इस देवद्वयके छोड देनेपर अठासीका स्थान मनुष्योंमें और तिर्यचोंमें बनता है । नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नारकसबधी वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग–इन चार प्रकृतियोंको श्वभ्रचतुष्क अथवा नरकचतुष्टय कहते हैं । जिन मनुष्य-तिर्यंचोंमें ऊपरके देवद्वयकी भी तथा इस नरकचतुष्टयकी भी सत्ता न हो उन मनुष्योंमें और उन तिर्यंचोंमें चौरासीका सत्त्व स्थान होता है । जिनके उक्त छह प्रकृतियोंकी भी सत्ता न हो तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी--इस मनुष्यद्वय की भी सत्ता न हो उनमें व्यासीका सत्त्व स्थान समझना । क्योंकि नब्भेमें आठ घट जानेपर व्यासी शेष रहते हैं । तीर्थंकरत्व तथा आहारकद्वय इन तीनका अभाव ऊपर ही बता दिया है । इसलिये यहा जो आठ प्रकृतियोंको घटाया है वह नब्भेमेंसे ही घटाया है । देव द्वय, नरक चतुष्टय तथा मनुष्य द्वय—इन तीनों गति संबंधी कर्म घट जानेसे यह व्यासीका स्थान तिर्यंचोंमें ही मिलता है ॥ २२४ ॥

अब ८०, ७९, ७८, ७७—के चार स्थानोंकी सत्त्व प्रकृतियोंको बताते हैं ।—

तिर्यग्गतिद्वय, नरकगतिद्वय, एकेंद्रिय जाति, स्थावर, आतप, उद्योत, द्वीन्द्रिय–त्रींद्रिय–चतुरिंद्रिय–ये तीन विकलेंद्रिय की तीन जाति, सूक्ष्म, साधारण–ये सर्व तेरह प्रकृति होती हैं । आदिके–सबसे ऊपरके जो चार स्थान–९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का–ये बताये गये हैं इनमेंसे ऊपर बताई हुई तेरह प्रकृतियोंकी सत्ता घटा देनेसे क्रमसे ८० का, ७९ का, ७८ का,

आद्याच्चतुष्कतस्त्यक्त्वा क्रमादेतास्त्रयोदश । अनिवृत्त्यादिपु ज्ञेयमशीत्यादिचतुष्टयम् ॥ २२६ ॥

अनिवृत्त्यादिपु पचसु ८० । ७९ । ७८ । ७७ ।

पूर्णं सुभगमादेयं पंचेंद्रियनरद्वये । त्रसं स्थूलं यशस्तीर्थकृन्नियोगे दश स्मृताः ॥ २२७ ॥

अयोगे तीर्थकरे १० । तीर्थकरोनाः परत्र ९ ।

चत्वार्यसयताद्येपु प्रथमान्यष्टसु स्फुटम् । सत्त्वे मिथ्यादृशः षट्कं द्विनवत्यादिकं विदुः ॥ २२८ ॥

---

७७ का-ये चार सत्तास्थान सिद्ध होजाते हैं । अर्थात् ९३ में से १३ घटानेपर ८० का स्थान होजाता है । ९२ मेंसे १३ घटानेपर ७९ का स्थान होजाता है । ९१ मेंसे १३ घटादेनेपर ७८ का स्थान हो जाता है । एव ९० मेंसे १३ घटादेनेपर ७७ का स्थान बन जाता है । ये अस्सी आदिके चार स्थान अनिवृत्ति आदि-नौवें गुणस्थानसे लेकर सयोगकेवली तेरहवें गुण-स्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें संभव हैं ॥ २२५-२२६ ॥

अब १० के तथा ९ के दो सत्त्वस्थानोंको बताते हैं ।—

पर्याप्त, सुभग, आदेय, पचेंद्रियजाति, मनुष्यद्वय, त्रस, बादर, यशःकीर्ति-इन नौ नाम प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान सामान्य अयोग केवलीके अर्थात् चौदहवें गुणस्थानवाले सामान्य केवलीके मिलता है । यदि वह अयोगकेवली तीर्थकर हो तो उसके इन नौ प्रकृतियोंके शिवाय एक तीर्थकर प्रकृतिका भी सत्त्व अधिक रहता है इसलिये तीर्थकर अयोग केवलीके दशका सत्त्वस्थान होता है ॥ २२७ ॥

अब विशेष कर गुणस्थानक्रमसे उक्त तेरह सत्त्वस्थानोंका विभाग करके दिखाते हैं ।—

असंयत-चौथे गुणस्थानसे लेकर उपशांतकपाय ग्यारहवें पर्यंत आठ गुणस्थानोंमें प्रथमके चार-९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का-ये चार स्थान मिलते हैं । और मिथ्यात्वयुक्त प्रथम गुणस्थानवालेके ब्यानवेंके स्थानसे लेकर ब्यासी तकके-९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—ये छह स्थान मिलते हैं ॥ २२८ ॥

अत्रासंयताद्युपशांतान्तेष्वष्टसु ९३ । ९२ । ९१ । ९० । मिथ्यादृशः ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।
नवतिः शासने ज्ञेया मिश्रे द्विनवतिः पुनः । तिर्यक्षु द्विनवत्याद्या नवत्यादिचतुष्टयम् ॥ २२९ ॥
शासने ९० । मिश्रे ९२ । तिर्यक्षु ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।
आद्यं चतुष्टयं देवे श्वाभ्रे त्रिनवतिं विना । निर्द्व्यशीतीनि सर्वाणि स्थानानि नरजन्मसु ॥ २३० ॥
श्वाभ्रेषु ९२ । ९१ । ९० । देवेषु ९३ । ९२ । ९१ । ९० । नरेषु सर्वाणि द्व्यशीतिं विना १२ ।

नाम्न सत्त्वरूपणा समाप्ता ।

भावार्थ, यहाँ असंयतादि उपशांत पर्यंतके आठ गुणस्थानोंमें ९३, ९२, ९१, ९० —ये चार स्थान मिलते हैं। मिथ्यादृष्टिमें ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२—ये छह स्थान मिलते हैं।

सासादन गुणस्थानमें नब्बेका स्थान मिलता है। मिश्र—तीसरे गुणस्थानमें बानवे (९२) का स्थान रहता है।

अब चारों गतियोंमें स्थानोंका विभाग करते हैं।—

तिर्यचोंमें एक बानवे (९२) का, और नब्बे आदिके–९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—ये चार स्थान, इस प्रकार पांच स्थान मिलते हैं ॥ २२९ ॥

आदिके चार स्थान देवगतिमें मिलते हैं। नरक गतिमें सबसे पहिला ९३ का स्थान नहीं है, शेष तीन ऊपरके स्थान रहते हैं। मनुष्य जीवोंमें ब्यासीके स्थानको छोड कर शेष बारह ही स्थान मिलते हैं।

भावार्थ, ब्यासीका स्थान तिर्यचोंमें ही होता है ऐसा ऊपर २२४ वें श्लोकमें भी ग्रंथकारने बताया है ॥ २३० ॥

। इस प्रकार नामकर्मकी सत्ता प्ररूपणा समाप्त हुई ।

आगे नामकर्मके सत्त्वस्थानका प्रकरण १९ गाथाओंसे गोमटसारमें जो कहा है उसको कहते हैं,—

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य । ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥ ६०९ ॥

त्रिद्व्येकनवति नवति अष्टचतुर्द्व्यधिकाशीतिरशीतिश्च । एकोनाशीत्यष्टसप्तती सप्तति दश च नव सत्त्वानि ॥६०९॥

अर्थ—९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिरूप—नामकर्मके १३ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६०९ ॥

अब उनकी विधी बतलाते हैं,—

सव्व तित्थाहारुभऊण सुरणिरयणरदुचारिदुगे । उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दस णवयं ॥ ६१० ॥

सर्वं तीर्थाहारोभयोन सुरनिरयनरद्विचतुर्द्विके । उद्वेलिते हते चतुष्क त्रयोदश योगिन दश नवकम् ॥ ६१० ॥

अर्थ—नामकर्मकी सब प्रकृतिरूप ९३ का स्थान है, उनमेंसे तीर्थंकर घटानेसे ९२ का स्थान, आहारयुगल घटानेसे ९१ का, तीनों घटानेसे ९० का स्थान होता है, उस ९० के स्थानमें देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८८ का स्थान होता है, इसमें भी नरकगति आदि ४ प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेपर ८४ का स्थान होता है, इसमें भी मनुष्यगति—मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८२ का स्थान होता है, तथा ९३ आदि चार (९३-९२-९१-९०) स्थानोंमें अनिवृत्तिकरणमें क्षय होनेवाली १३ प्रकृतियोंके घटानेसे ८०-७९-७८-७७ के स्थान होते हैं । और अयोगकेवलीके १० का और ९ का स्थान होता है ॥ ६१० ॥

आगे उन १० के तथा ९ के स्थानमें प्रकृतियोंको कहते हैं—

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु । दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु ॥ ६११ ॥

गतयोगस्य तु त्रयोदशसु तृतीयायुष्कगोत्रेति विहीनेषु । दश नाम्नश्च सत्ता नव चैव च तीर्थहीनेषु ॥ ६११ ॥

अर्थ—अयोगकेवलीके १३ प्रकृतियोंमेंसे वेदनीय—आयु—गोत्र, ये तीन प्रकृतियां कम करनेसे नामकर्मकी १० प्रकृतियोंका सत्त्व है । यदि तीर्थंकर प्रकृति भी घटादी जावे तो ९ प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान होता है ॥ ६११ ॥

॥४६८॥

आगे उद्वेलनास्थानोंमें विशेषता कहते हैं,—

गुणसजादप्पयडिं मिच्छे बधुदयगंघहीणम्मि । सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लिदे जीवो ॥ ६१२ ॥

गुणसंजातप्रकृतिं मिथ्ये बन्धोदयगन्धहीने । शेषोद्वेलनप्रकृतिं नियमेनोद्वेलयति जीवः ॥ ६१२ ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें जिनप्रकृतियोंके बंधकी अथवा उदयकी वासना भी नहीं ऐसी सम्यक्त्वगुणसे उत्पन्न हुई सम्यक्त्वमोहनीय–मिश्रमोहनीय–आहारकयुगल, इन चार प्रकृतियोंकी तथा शेष उद्वेलनप्रकृतियोंकी उद्वेलना यह जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें करता है ॥ ६१२ ॥

अब उसका क्रम कहते हैं,—

सत्थत्तादाहारं पुव्व उव्वेल्लदे तदो सम्मं । सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सगलो य ॥ ६१३ ॥

शस्तत्वादाहारं पूर्वमुद्वेलयति तत सम्यक् । सम्यग्मिथ्यं तु तत एको विकलश्च सकलश्च ॥ ६१३ ॥

अर्थ—आहारकयुगल प्रशस्तप्रकृतियां हैं इसलिये चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव पहले इन दोनोंकी उद्वेलना करते हैं। पीछे सम्यक्त्वप्रकृतिकी, उसके बाद सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकी उद्वेलना करते हैं। उसके बाद एकेन्द्री–विकलेंद्री और सकलेंद्रिय जीव शेष देवद्विकादिकोंकी उद्वेलना करते हैं।

आगे उस उद्वेलनाके अवसरका काल कहते हैं—

वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्तं । सम्मामिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्क तु ॥ ६१४ ॥

वेदकयोग्ये काले आहारमुपशमस्य सम्यक्त्वम् । सम्यग्मिथ्य चैकस्मिन् विकले वैगूर्वषट्क तु ॥ ६१४ ॥

अर्थ–वेदकसम्यक्त्वयोग्यकालमें आहारककी उद्वेलना, उपशमकालमें सम्यक्त्वप्रकृति वा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है। और एकेंद्रिय तथा दोइंद्रिय पर्यायमें वैक्रियिकषट्ककी उद्वेलना करता है ॥ ६१४ ॥

आगे उन दोनों कालोंका लक्षण कहते हैं,–

उदधिपुधत्त तु तसे पल्लासखुणमेगमेयक्खे । जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥ ६१५ ॥

उदधिपृथक्त्व तु त्रसे पल्यासंख्योनमेकमेकाक्षे । यावच्च सम्यं मिश्रं वेदकयोग्यश्च उपशमस्य ततः ॥६१५॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीयकी और मिश्रमोहनीयकी स्थितिमेंसे पृथक्त्वसागर काल त्रसके शेष रहै और पल्यके असंख्यातवें भाग कम एक सागर काल एकेन्द्रीके शेष रह जावे वह " वेदकयोग्य काल " है । और उससे भी सत्तारूप स्थिति कम हो तो वह उपशमकाल कहा जाता है ॥

आगे तेजकाय और वायुकायके उद्वेलन प्रकृतियोंको दिखाते है—

तेउदुगे मणुवदुग उच्चं उव्वेलदे जहण्णिदरं । पल्लासखेज्जदिमं उव्वेल्लणकालपरिमाणं ॥ ६१६ ॥

तेजोद्विके मनुष्यद्विकमुच्चमुद्वेल्यते जघन्येतरत् । पल्यासंख्येयिमुद्वेलनकालपरिमाणम् ॥ ६१६ ।

अर्थ—तेजकाय और वायुकायके मनुष्यगतियुगल और उच्चगोत्र–इन तीनकी उद्वेलना होती है । और उस उद्वेलनाके कालका प्रमाण जघन्य अथवा उत्कृष्ट द्रव्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । ६१६ ।

अब उसीको कहते हैं,—

पल्लासंखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण । संखेज्जसायरठिदिं पल्लासखेज्जकालेण ॥ ६१७ ॥

पल्यासख्येयिमां स्थितिमुद्वेलयति मुहूर्तान्तरेण । संख्येयसागरस्थितिं पल्यासख्येयकालेन ॥ ६१७ ॥

अर्थ—पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकी अंतर्मुहूर्तकालमें उद्वेलना करता है तो संख्यातसागर प्रमाण मनुष्यद्विकादिकी सत्तारूप स्थितिकी उद्वेलना त्रैराशिकसे पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण कालमें ही कर सकता है ऐसा सिद्ध हुआ ।

आगे सम्यक्त्वादिककी विराधना (छोडदेना) कितनी वार होती हैं यह कहते हैं—

सम्मत्तं देसजम अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं । पल्लासंखेज्जदिम वारं पडिवज्जदे जीवो ॥ ६१८ ॥

सम्यक्त्वं देशयममनसयोजनविधिं च उत्कृष्टम् । पल्यासख्येय वार प्रतिपद्यते जीव. ॥ ६१८ ॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व, देशसयम और अनंतानुबंधी कषायके विसयोजनकी विधि—

इन चारोंको यह जीव उत्कृष्टपने अर्थात् अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग समयोंके प्रमाण वार छोड २ के ग्रहण करता है। पीछे नियमसे सिद्धपदको ही पाता है ॥ ६१८ ॥

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो। बत्तीसं वाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि ॥ ६१९ ॥

चतुरो वारानुपशमश्रेणिं समारोहति क्षपितकर्मांश.। द्वात्रिंशद्वारान् संयममुपलभ्य निर्वाति ॥ ६१९ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीपर अधिकसे अधिक चार दफै चढता है पीछे कर्मोंके अंशोंको क्षय करता हुआ क्षपकश्रेणी चढ मोक्षको ही जाता है। और सकलसंयमको उत्कृष्टपनेसे ३२ वार ही धारण करके पीछे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ६१९ ॥

आगे चारोंगतियोंकी अपेक्षासे गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी योजना कहते हैं,—

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि बाणउदी। सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी ॥ ६२० ॥

सुरनरसम्ये प्रथमं सासनहीनेषु भवति द्वानवति। सुरसम्ये नरनारकसम्ये मिथ्ये च एकनवति ॥

अर्थ—पहला ९३ का सत्त्वस्थान असंयतसम्यग्दृष्टि देवके तथा मनुष्यके होता है, सासादन रहित चारोंगतिके जीवोंके ९२ का स्थान होता है और ९१ का स्थान देव सम्यग्दृष्टी तथा मनुष्य और नारकी सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टिके होता है ॥६२०॥

णउदी चदुग्गदिम्हि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे। अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्हि वासीदी ॥६२१॥

नवतिः चतुर्गतौ च त्रयोदशक्षपक इति तिर्यग्नरमिथ्ये। अष्टचतुरशीति सत्ता तिर्यङ्मिथ्ये द्व्यशीति ॥

अर्थ—९० का सत्त्वस्थान १३ प्रकृतियोंके क्षपवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानपर्यंत चारों गतियोंके जीवोंके होता है, ८८--८४के दोनों स्थानोंकी सत्ता मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यके है, और ८२ का सत्त्वस्थान तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके होता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६२१ ॥

सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु। गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं ॥६२२॥

अशीत्यादिचतु स्थानानि त्रयोदशक्षपकादनुपशामकेषु। गतयोगस्य द्विचरम यावच्च चरमे दशनवकम् ॥ ६२२ ॥

अर्थ—८० को आदि लेकर चार स्थान अर्थात् ८०–७९—७८—७७-के स्थान तेरह प्रकृतिके क्षय करनेवाले

क्षपक अनिवृत्ति करण गुणस्थानसे लेकर अयोगीके द्विचरमसमय तक पाये जाते हैं। और १० का तथा ९ का सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके अंतसमयमें होता है ॥ ६२२ ॥

आगे ४१ जीवपदोंमें उन सत्त्वस्थानोंको कहते हैं,—

णिरये वा इगिणउदी णउदी भूआदिमव्वतिरियेसु। वाणउदी णउदी अडचउरासीदी य होंति सत्ताणि ॥६२३॥

निरये द्व्येकनवति नवति भ्वादिसर्वतिर्यक्षु। द्वानवति नवति अष्टचतुर्द्व्यशीतिश्च भवन्ति सत्वानि ॥ ६२३ ॥

अर्थ—नामकर्मके सत्त्वस्थान नारकी जीवोंमें ९२–९१–९० के इस तरह ३ हैं। और पृथिवीकायादि सब तिर्यंचोंमें ९२–९०–८८–८४–८२ के इस तरह पाच पांच हैं ॥ ६२३ ॥

चासीदिं वज्जित्ता बारसठाणाणि होंति मणुवेसु। सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु ॥ ६२४ ॥

द्व्यशीतिं वर्जयित्वा द्वादश स्थानानि भवन्ति मानवेषु। अशीत्यादिचतुःस्थानानि षट्स्थानानि केवलिद्विकयो ॥ ६२४ ॥

अर्थ—मनुष्योंमें ८२ के स्थानको छोडकर शेष १२ स्थान होते हैं; परंतु सयोगकेवलीके ८० को आदिलेकर चार सत्त्वस्थान हैं, अयोगकेवलीके ८० को आदिलेकर ६ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६२४ ॥

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे। तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्क तु ॥ ६२५ ॥

समविषमस्थानानि च क्रमेण तीर्थंतरकेवलिनो. भवेयु। त्रिद्विनवति आहारे देवे आदिमचतुष्क तु ॥ ६२५ ॥

अर्थ—केवलीके जो स्थान कहे ये वे समसंख्यावाले तीर्थंकर केवलीके और विषमसंख्यावाले स्थान तीर्थंकरप्रकृति रहित सामान्य केवलीके होते हैं। आहारकमें ९३–९२ के दो स्थान हैं। और विमानवासी देवोंमें आदिके ४ सत्त्वस्थान होते हैं ॥६२५॥

बाणउदिणउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीण। हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाण च य सासणे णउदी ॥ ६२६ ॥

द्वानवतिनवतिसत्ता भवनत्रिकाणां च भोगभूमीनाम्। अधस्तनपृथिवीचतुष्कभवाना च च सासने नवति ॥ ६२६ ॥

अर्थ—भवनत्रिक देवोंके, भोगभूमियाओंके और नीचेकी अंजनादि चार नरकपृथिवियोंमें ९२–९० इन दो स्थानोंकी सत्ता है। तथा सासादन गुणस्थानमें सब जीवोंके ९० का ही सत्त्वस्थान है ॥६२६॥ इस प्रकार बंधोदयसत्त्वकी अपेक्षा भंग कहे।

त्रिपंचषडुपेताया विंशतेर्बंधने विदुः । उदये नव सत्तायां क्रमतः पंच सूरयः ॥ २३१ ॥

बंध	२३	२५	२६
उदय	९	९	९
सत्ता	५	५	५

बंधेऽष्टाविंशतेरष्टौ पाके सत्त्वे चतुष्टयम् । एकोनत्रिंशतो बंधे नव सत्तान्ययोः क्रमात् ॥ २३२॥

ब. २८ । उ. ८ । स. ४ । एकोनत्रिंशतो बंधे—ब २९ । उ ९ । स ७ ॥

बंधने त्रिंशतः पाके नव सत्त्वे तु सप्तकम् । बंधादित्रितये नामस्थानानीति विदुर्बुधाः ॥ २३३ ॥

अब नामकर्मकी प्रकृतियोंमें बंधोदयसत्वको एकत्र मिलाकर दिखाते हैं। उसमेंसे प्रथम बंधको मुख्य रखकर उदय तथा सत्वके स्थानोंको जोड़कर बताते हैं। बंधके सर्व स्थान आठ हैं। उनमेंसे तेईसवाले पच्चीसवाले तथा छब्बीस प्रकृतिवाले—इन तीन बंधस्थानोंमें उदयके तथा सत्ताके स्थानोंका संभव आगे बताते हैं।—

तीन अधिक वीसके तथा पच्चीसके, छब्बीसके-इन तीन बंधस्थानोंमें उदय नौ प्रकृतियोंका रहता है और सत्ता पांच प्रकृतियोंकी होती है। इसका यंत्र ऊपर दिया है ॥ २३१ ॥

अट्ठाईसके बंधस्थानमें उदय आठ प्रकृतियोंका और सत्ता चार प्रकृतियोंकी होती है। इसी प्रकार उन्तीसके बंधस्थानमें उदय नौका और सत्ता सातकी रहती है। २३२।

बंध २८ में उदय ८ का, सत्ता ४ की। बंध २९ में उदय ९ का, सत्ता ७ की।

तीसके बंधस्थानमें उदय प्रकृतियोंका स्थान नौका रहता है और सत्तास्थान सात प्रकृतियोंका होता है। इस प्रकार बंध उदय सत्ता—इन तीनोंके नामस्थान विद्वानोंको समझने चाहिये। २३३।

१—अन्ययो. =उदयसत्त्वयोः।

बंध ३० । उदय ९ । सत्ता ७ ।

त्रिपंचषट्कयुक्ताया विंशतेर्बंधने सति । अंतिमं द्वितयं हित्वा ज्ञेयाः पाका नवादिमाः ॥ २३४ ॥

स्थानानां पचकं द्व्यग्रा नवतिः सा च केवला । अशीतिरपि सत्तायां सहिताष्टचतुर्द्विभिः ॥ २३५ ॥

बंधस्थानेषु २३।२५।२६ । प्रत्येक नव पाकस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्तास्थानानि ९२।९०।८८।८४।८२।

बंधमें ३०, उदयमें ९, सत्तामें ७ ।

अब २३ के २५ के २६ के–इन तीन बंध स्थानोंके साथ उदय तथा सत्ताके स्थानोंकी मर्यादाको बताते हैं।—

तेईसके बंधमें, पच्चीसके बंधमें तथा छव्वीसके बंधमें उदय अंतके दोको छोडकर शेष आदिके नौ उदयस्थान संभव हैं। सत्ताके यहांपर पांच स्थान हैं। उन पांच स्थानोंमेंसे एक स्थान दो अधिक नव्वेका अर्थात् ब्यानवेंका (९२) है। दूसरा 'साच' अर्थात् केवल नव्वेका है। तीसरा आठ अधिक अस्सीका अर्थात् ८८ का है। चौथा चार अधिक अस्सी–चौरासीका है। पांचवां दो अधिक अस्सी–ब्यासीका सत्त्व है। २३४–२३५।

भावार्थ—२३ के २५ के २६ के—इन तीन बंध स्थानोंमेंसे प्रत्येक बंध स्थानके साथ, उदयस्थान जो ग्यारह हैं उनमेंसे अंतके दो स्थान–एक ९ का दूसरा ८ का–ये दो स्थान इन बंध स्थानोंके साथ संभव नहीं हैं। क्योंकि १९७ वे के श्लोकानुसार अयोग केवलीके ही नौ का तथा आठका उदय रहता है, किंतु वहांपर तेईस पच्चीस छव्वीसका बंध नहीं होता है। इसलिये शेष नौ उदयस्थान–२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का–ये नौ उदयस्थान इन तीन बंधस्थानोंके साथ संभव हैं। और इन तीनों बंधस्थानोंमेंसे प्रत्येक बंधस्थानके समय सत्ता ९२ की, ९० की, ८८ की, ८४ की तथा ८२ की—ऐसे पांच प्रकार की संभव रहती है।

पूर्वबन्धत्रये ज्ञेयमुदये सप्तविंशतेः । द्व्यशीतिवर्जितं सत्त्वे पूर्वं स्थानचतुष्टयम् ॥ २३६ ॥

बंधे २३।२५।२६ । उदये २७ । सत्तायां ९२।९०।८८।८४।

इति बंधत्रय समाप्तम् ।

चतुर्विंशतिमत्यस्यं तथा द्वितयमन्तिमम् । अस्त्यष्टाविंशतेर्बंधे पाकानामष्टकं परम् ॥ २३७ ॥

क्रमात् त्रिनवतिं तत्र निरेकद्वित्रिपंचकम् । सत्तास्थानानि चत्वारि सामान्येन विदुर्बुधाः ॥ २३८ ॥

ऊपरके तेईसके पच्चीसके छब्बीसके–इन्हीं तीन बंध स्थानोंमें उदय सत्ताईस प्रकृतिका हो तो वहां, सत्ताके स्थान जो ऊपर पांच बताये हैं उनमेंसे एक ब्यासीका स्थान नहीं होता, शेष चार स्थान होते हैं । २३६ ।

भावार्थ–२३, २५, २६–इन तीन ऊपर बताये हुए बंध स्थानोंमेंसे प्रत्येक बंधस्थानके समय उदय यदि एक २७ का हो तो सत्ताके स्थान वहांपर ९२ का, ९० का, ८८ का तथा ८४ का—ये चार संभव हैं । ब्यासीका सत्ता स्थान, इस बंधत्रयके साथमें २७ वाले उदयस्थानके रहते नहीं होता— इतना विशेष है ।

इस प्रकार बंधत्रयके साथ उदय तथा सत्ताके स्थानोंका संभव बताया ।

अब अट्ठाईसीके बंधस्थानमें उदयस्थान तथा सत्त्वस्थान जितने संभव हैं उनको समुच्चित करके सामान्य रूपसे दिखाते हैं ।–

अट्ठाईसके बंधस्थानके साथमें एक चौवीसके उदयस्थानको छोड कर तथा अंतके दो उदयस्थानोंको छोडकर शेष आठ उदयस्थान संभव रहते हैं । और सत्ताके स्थान वहांपर चार रहते हैं । वे सत्ताके स्थान इस प्रकार हैं ।–९३ वेंमेंसे एक घाटका अर्थात् ९२ का एक स्थान, दूसरा दो घाट तिरानवेका अर्थात् ९१ का, तीसरा तीन घाट तिरानवेका ही अर्थात् ९० का, चौथा पाच घाट तिरानवेका अर्थात् ८८ का । इस अट्ठाईसीके बंधस्थानमें ये आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान सामान्य रूपसे बताये हैं । इनमें जो विशेष नियम हैं उन्हे आगे बताने वाले हैं । २३७–२३८ ।

---

१ — त्यक्त्वा ।

॥४७५॥

बंधे २८ । पाके २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ९२।९१।९०।८८।

विंशती स्तः षडेकाग्रे पाके बंधेऽष्टविंशते । नवतिर्द्वानवत्यामा सत्त्वे स्थानद्वयं पुनः ॥ २३९ ॥

एषा क्षायिकसद्दृष्टौ मानवे कुरुत्रयजे । विशेषेणावबोद्धव्या स्थानत्रितयवेदिभि ॥ २४० ॥

बंधे २८ । उदये २६ । २१ । सत्त्वे ९२ । ९० ।

पंचसप्ताग्रविंशत्यो प्रमत्तस्योदये सति । अष्टाविंशतिबंधोऽस्ति सती द्वानवतिः पुनः ॥ २४१ ॥

आहारकारंभकेऽप्रमत्ते बंधे २८ । उदये २५ ।२७ । सत्त्वे ९२ ।

बंधमें २८ । उदयमें २१ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का—ये आठ स्थान । सत्तामें ९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का-ये चार स्थान ।

अब इस अट्ठाईसीके बंधस्थानमें उदयके तथा सत्ताके जो विशिष्ट दशामें स्थानविशेष हैं उनको दिखाते हैं ।—

अट्ठाईसीके बंधस्थानमें छह अधिक बीसका और एक अधिक बीसका अर्थात् २६ का तथा २१ का—ये दो स्थान उदय संबंधी, एवं सत्तासंबंधी दो स्थान—एक ९० का, दूसरा ९२ का । इन उदय तथा सत्तास्थानोंकी विशिष्टता यह है कि यह त्रयी उत्तर—देवकुरु क्षेत्रमें जन्मे हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्यमें मिलती है, ऐसा स्थानत्रयके जाननेवालोंको समझना चाहिये । २३९-२४० ।

इस अट्ठाईसीके साथमें उदय तथा सत्ताकी दूसरी विशिष्टताको आगे दिखाते हैं ।—

प्रमत्त—छट्ठे गुणस्थानवर्तीके पांच अधिक और सात अधिक बीसके अर्थात् २५ का और २७ का—ये दो उदय-स्थान रहने पर अट्ठाईसीका बंधस्थान होता है और सत्ता ९२ वें के एक स्थानकी होती है । २४१ ।

बंधमें २८, उदयमें २५—२७, सत्तामें ९२—यह त्रयी उस प्रमत्तके होती है जो अप्रमत्तमें रहकर आहारकका आरंभ करनेवाला है ।

१—उत्तरकुरुक्षेत्रे देवकुरौच । २—सती सत्तेत्यर्थ ।

विंशती स्तो नवाष्टाग्रे पाके बंधेऽष्टविंशतेः । सत्तायां नवतिर्द्व्यग्रा नवतिः केवला परा ॥ २४२ ॥
असंयतस्य सद्दृष्टेर्बंधेऽसावष्टविंशतेः । अप्रमत्ते च विज्ञेयः सदाहारककर्मणि ॥ २४३ ॥
बंधे २८ । उदये २९।२८ । सत्त्वे ९२।९० ।
उदये त्रिंशतः सत्त्वे नवतिर्द्व्युत्तरा च सा । स्यादष्टाविंशतेर्बंधो मिथ्यादृष्ट्यादिपंचके ॥ २४४ ॥
बंधे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ९२।९० ।
बंधोऽष्टाविंशतेः पाकस्त्रिंशतो नवतिः सती । एकाग्रा तीर्थकर्तृत्वसत्त्वे द्वित्रिक्षितित्रिताम् ॥ २४५ ॥
बंधे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ९१ ।

अब अट्ठाईसीके बंधस्थानमें उदय तथा सत्तासंबंधी तीसरी विशिष्ट दशाको बताते हैं ।—

अट्ठाईसके बंधस्थानमें नौ अधिक बीसका अर्थात् २९ का और आठ अधिक बीसका अर्थात् २८ का—ये दो उदयस्थान हैं । एवं दो अधिक नब्बे अर्थात् ९२ का एक स्थान, दूसरा केवल नब्बेका (९०) एक स्थान—ये दो सत्तासंबंधी स्थान हैं । ये विशिष्ट त्रिकूट उस अट्ठाईसीके बंधवालेमें होते हैं जो असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला हो अथवा आहारक कर्मवाला अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती हो । २४२–२४३ ।

अब इसी अट्ठाईसीके बंधमें चौथे प्रकारकी त्रयीको बताते हैं ।—

उदय तीसका और सत्ता दो अधिक नब्बेकी अथवा केवल नब्बेकी रहकर जो अट्ठाईसका बंधस्थान होता है वह मिथ्यादृष्टि—प्रथम गुणस्थानसे लेकर पांचवें गुणस्थानपर्यंत पांच गुणस्थानोंमें पाया जाता है । २४४ ।

अब अट्ठाईसके बंधयुक्त पांचवें प्रकारकी त्रयीको दिखाते हैं ।—

अट्ठाईसका बंध, तीसका उदय और एक अधिक नब्बेकी अर्थात् ९१ की सत्ता—यह बंधत्रयी उन दूसरी तीसरी नरकभूमिवालोंमें होती है जिनके तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता हो । २४५ ।

उदयस्त्रिंशतः सत्त्वमष्टाशीतेः प्रजायते । नरतिर्यक्षु बंधेऽष्टाविंशतेर्वामदृष्टिषु ॥ २४६ ॥
बंधे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ८८ ।
एकाग्रत्रिंशतः पाके नवतिर्द्व्युत्तरा च सा । सत्त्वेऽष्टाविंशतेर्बन्धो मिथ्यादृष्ट्यादिपंचके ॥ २४७ ॥
बंधे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे ९२ । ९० ।
अष्टाशीतिः सती पाकः सैकायास्त्रिंशतः पुनः । मिथ्यादृष्टिषु तिर्यक्षु बंधेऽष्टाविंशतेः सति ॥ २४८ ॥
बंधे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे ८८ ।

इत्यष्टाविंशतेर्बन्ध. समाप्तः ।

अब अट्ठाईसके बंध सहित छट्ठे प्रकारकी बंधत्रयीको बताते हैं ।—

उदय तीसका, सत्ता अठासीकी, और बंध अट्ठाईसका—यह बंधत्रयी मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यंचोंमें मिलती है ॥ २४६ ॥

अब अट्ठाईसके बंधसहित सातवें प्रकारकी बंधत्रयीको बताते हैं ।—

उदयमें इकतीस, सत्तामें नब्बे अथवा ब्यानवे [९०–९२] प्रकृति, और अट्ठाईसका बंध—यह बंधत्रयी मिथ्यादृष्टि-आदिके गुणस्थानसे लेकर पांचवें गुणस्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें होती है ॥ २४७ ॥

अट्ठाईसका बंध रहते हुए अठासीकी सत्ता और इकतीसका उदय होना— यह बंधत्रयी मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंमें मिलती है ॥ २४८ ॥

इस प्रकार अट्ठाईसीके बंधसहित बंधत्रयीके विशेष भेद समाप्त हुए ।

एकोनत्रिंशतो बंधे त्रिंशतश्च नवोदया । अन्तिमं द्वितयं हित्वा सामान्येन निवेदिताः ॥ २४९ ॥

सत्तायामादितः सप्त द्व्यशीत्यतानि संति वै । अत्र स्थानानि सामान्यादतो वक्ष्ये विशेषतः ॥ २५० ॥

बंधे २९ । ३० । पाकाः प्रत्येकं नव–२१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्ता-स्थानानि सप्त–९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

एकोनत्रिंशतो बंध उदयोऽस्त्येकविंशतेः । त्र्येकाग्रे नवती सत्यौ बद्धतीर्थकरे नरि ॥ २५१ ॥

अब उन्तीसके बंधस्थानमें उदयस्थानोंको तथा सत्तास्थानोंको क्रमसे सामान्य विशेषरूपसे दिखाते हैं । और सबसे प्रथम सामान्य रूपसे इस उन्तीसीके साथकी बंधत्रयीको दिखाते हैं । साथमें तीसके बंधस्थानको भी उन्तीसीके समान होनेके कारण बताते हैं ।—

उन्तीसके बंधसमयमें तथा तीसके भी बंधसमयमें अंतके दो उदयस्थानोंको छोडकर शेष नौ उदयस्थान समुच्चयकी अपेक्षासे बताये गये हैं॥ एवं समुच्चयकी ही अपेक्षासे पहिले तिरानवेके स्थानसे लेकर ब्यासीके स्थान पर्यंत सात स्थान, सत्तास्थानोंमेंसे रहते हैं । यह सामान्य बंधत्रयी है । इसकी विशेष बंधत्रयीको आगे बताते हैं । २४९–२५० ।

बंधमें २९ अथवा ३० । इस प्रत्येक बंधके साथ उदयस्थान नौ नौ संभव हैं । वे इस प्रकार–२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का, २८ का, २९ का, ३० का, ३१ का । इस प्रकार नौ उदयस्थान दोनो बंधस्थानोंके साथ संभव होनेसे भंग अठारह हो जाते हैं । उनमेंसे उन्तीसीके नौ स्थानोंमेंसे तथा तीसीके नौ स्थानोंमेंसे प्रत्येक द्वयीके साथ सत्ताके सात सात सत्ता स्थान संभव हैं । वे स्थान–९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का–ये सात हैं । इन सात स्थानोंसे द्वयीके उन्तीस संबंधी नौ भेदोंको तथा तीसीके नौ भेदोंको गुणनेपर त्रेसठि त्रेसठि दोनो बंधस्थानोंके उत्तर भंग होजाते हैं ।

अब उन्तीसीके विशेष बंधादित्रयको बताते हैं ।—

उन्तीसका बंध, इक्कीसका उदय और सत्ता तिरानवेकी अथवा इक्यानवेकी–यह दो प्रकारकी त्रयी तीर्थंकर प्रकृतिको जिसने बांध रक्खा है उस मनुष्यमें पाई जाती है । २५१ ।

विग्रहगतिगते बधे २९। उदये २१। सत्त्वे ९३। ९१।

पूर्वौ बधोदयौ सत्त्वे नवतिद्व्युत्तरा च सा। चातुर्गतिकजीवानां विग्रहर्तिव्यतिक्रमे ॥ २५२ ॥

बधे २९। उदये २१। सत्त्वे ९२। ९०।

चतुरप्ययुताऽशीतिः सत्त्वे बधोदयौ च तौ। नरतिर्यक्षु तिर्यक्षु द्व्यशीतिः श्रितविग्रहे ॥ २५३ ॥

नरतिर्यक्षु बंधे २९। उदये २१। सत्त्वे ८४। ८८। तिर्यक्षु बधे २९। उदये २१। सत्त्वे ८२।

यह उन्तीसीका बध विग्रहगतिप्राप्त जीवमें होता है, उसके बंधमें २९, उदयमें २१, सत्ता ९३ अथवा ९१ की।

अब उन्तीसीके साथमें दूसरे प्रकारकी बधत्रयीको बताते हैं।—

बंधके २९, तथा उदयके २१ वाले ऊपर बताये हुए स्थानमें सत्तागत ९० अथवा ९२ प्रकृति हों ऐसी बधत्रयी चारो गतिके जीवोंमें मिलती है परंतु किसी भी विग्रहगतिमें यह त्रयी नहीं मिलती। २५२।

अब तीसरे प्रकारसे इस उन्तीसीके साथवाली बधत्रयीको दिखाते हैं।—

चौरासी अथवा अठासीका सत्त्व रखते हुए बंध २९ का तथा उदय २१ का पूर्ववत् ही हो तो ये दो स्थान मनुष्योंमें मिलते हैं और तिर्यंचोंमें भी मिलते हैं। किंतु विग्रह अर्थात् शरीरको धारण करलेने वालोंमें ही मिलते हैं। भावार्थ, विग्रह गतिमें ये स्थान नहीं मिलते। इसी प्रकार ब्यासी [८२] के सत्त्वस्थान सहित उदय २१ का, बंध २९ का—यह बधत्रयी शरीर धारण करलेनेवाले तिर्यंचोंमें होती है ॥ २५३ ॥

मनुष्य तिर्यंचोंमें बधमें २९, उदमें २१, सत्तामें ८४ अथवा ८८। केवल तिर्यंचोंमें बंध २९, उदय २१, सत्ता ८२ की।

चतुर्विंशतिरेकाक्षे पाके बंधः पुरातनः । सप्तादिमानि सत्तायां तृतीयप्रथमे विना ॥ २५४ ॥

अपूर्णैकाक्षे बंधे २९ । उदये २४ । सत्त्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

अब उन्तीसके बंधमें पांचवीं तरहका उदय सत्व बताते हैं ।—

एकेंद्रिय जीवके बंधमें पुरातन अर्थात् पूर्वमें बताई हुई उन्तीस प्रकृति ही हों, किंतु उदयमें चौबीसका स्थान हो तो सत्ताके सर्व स्थानोंमेंसे आदिके सात स्थान पर्यंत पाये जाते हैं, किंतु उन सातमें प्रथम तथा तृतीय इन दो स्थानोंको छोड देना चाहिये । भावार्थ—पहिला स्थान तिरानवे प्रकृतिका है और तीसरा स्थान इक्यानवे प्रकृतिका है । इन दोनो स्थानोंमें तीर्थंकर प्रकृति सामिल है । इन दो स्थानोंको छोडनेका यह तात्पर्य है कि तिर्यंचमात्रमें तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता नहीं रहती । परन्तु ९२ का स्थान इसमें रहता है और व्यानवेका स्थान आहारकद्वयके जोडनेसे ही बनता है । इसलिये आहारकद्वयको जिसने कभी पूर्वमें बांध लिया है वह जीव आहारकद्वयको सत्तामें रखते हुए भी एकेंद्रिय हो जाता है । आहारक शरीरका बंध सातवें गुणस्थानमें होता है और उदय सातवेंसे छठे गुणस्थानमें होता है । नीचेके गुणस्थानोंमें न बंध होता है, न उदय होता । ऐसी शरीर प्रकृतिको सत्तामें रखनेवाला जीव भी एकेंद्रिय पर्यायको प्राप्त होजाता है ॥ २५४ ॥

यहांपर वह एकेंद्रिय जीव अपर्याप्तक ही लेना चाहिये । इस अपर्याप्तक एकेंद्रियके बंधमें २९, उदयमें २४, और सत्तामें पांच स्थान–९२ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का । भावार्थ, श्लोकमें आदिके सात स्थान लेकर उनमेंसे प्रथम और तृतीय स्थानको छोड देना बताया है । इसलिये यहां सत्ताके पांच स्थान ही शेष रह जाते हैं । और इसीलिये दो स्थानोंको छोड देनेपर सातका अर्थ पांच ऐसा करना चाहिये ।

॥४८१॥

पंचाग्रा विंशतिः पाके बंधः पूर्णे पुरातनः । आद्यानि सप्त सत्तायां चतुर्गतिगतेऽगिनि ॥ २५५ ॥
परं भवति तिर्यक्षु त्र्येकाग्रे नवती विना । प्रजायंते न तिर्यंचः सत्त्वे तीर्थकृतो यतः ॥ २५६ ॥

बंधे २९ । उदये २५ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

एकोनत्रिंशतो बंधः सदाद्य स्थानसप्तकम् । त्रिंशत् पाके तथा त्रिंशदेकद्वित्रिचतुश्च्युताः ॥ २५७ ॥

बंधे २९ । यथासंभवमुदये ३० । २९ । २८ । २७ । २६ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ।

अब छट्ठे प्रकारका बंधत्रय उन्तीसीके बंधमें दिखाते हैं ।—

बंधमें पुरातन अर्थात् वही उन्तीसका स्थान हो, किंतु उदय पच्चीसका हो तो सत्तामें आदिके सात स्थान रहना संभव है । यह बंधत्रय सामान्य चतुर्गतिके पर्याप्तक जीवोंमें बताया है ॥ इसमें विशेष इतना और समझ लेना चाहिये कि तिरानवे का और इक्यानवेका—ये दो सत्ताके स्थान तिर्यंचोंमें नहीं मिलते । क्योंकि तिर्यंचोंमें वह जीव नहीं उत्पन्न होता है जिसकी सत्तामें तीर्थंकर प्रकृति रह रही हो । और तिरानवेका तथा इक्यानवेका—ये दोनो स्थान तीर्थंकर प्रकृतिके जोडनेपर ही बनते हैं ॥ २५५–२५६ ॥

बंधमें २९ । उदयमें २५ । सत्तामें–९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ । भावार्थ, इस बंध त्रयके साथ सत्ताके सातो आदिके स्थान तीन गतिमें ही समझने चाहिये । किंतु तिर्यंचोंमें पांच ही स्थान मानना चाहिये ।

अब उन्तीसीके बंधमें सातवें प्रकारका बंधत्रय दिखाते हैं ।—

बंध जहां उन्तीसका है वहां सत्ताके स्थान आदिके सात हैं और उदयस्थान एक तीस प्रकृतिका है, तथा चार उदयस्थान एक, दो, तीन, चार घाट तीसके अर्थात् २९ का, २८ का, २७ का, २६ का-ये चार भी हैं । इस प्रकार यहां उदयस्थान सर्व पांच संभव हैं ॥ २५७ ॥

बंधमें २९ । उदयमें यथासंभव ३०, २९, २८, २७, २६ । सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ ।

अस्त्येकत्रिंशत पाके वन्ध पूर्वनिवेदित । तृतीयप्रथमापोढ सदाद्यं स्थानसप्तकम् ॥ २५८ ॥
वधे २९ । उदये ३१ । सत्त्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

इत्येकोनत्रिंशतो बंध समाप्त ।

एकोनत्रिंशतो वधे पाकस्थानादि यन्मतम् । तत्त्रिंशतोऽपि निःशेष वधस्थाने निबुद्ध्यताम् ॥ २५९ ॥
विशेष त्रिंशतो वधे स्यात्पाक पचविंशतेः । सप्तादिमानि सत्तायां स्थानानीति विदुर्बुधाः ॥ २६० ॥

अब आठवें प्रकारसे उन्तीसीके बंधमें बधत्रयको बताते हैं ।—

बध पूर्वनिवेदित अर्थात् २९ का होते हुए, उदय इकतीसका हो तो सत्तामें आदिके सात स्थानोंमेंसे प्रथम तृतीय (९३ वेके ९१ के) इन दो स्थानोंको छोडकर शेष पाच स्थान सभव हैं ॥ २५८ ॥

बंधमें २९ । उदयमें ३१ । सत्तामें ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ ।

इस प्रकार उन्तीसके बंधस्थानको आधार मानकर बधत्रयका वर्णन हुआ ।

अब तीसके बधमें बधत्रय कौन कौनसे होते हैं उनको आगे दिखाते हैं ।—

उनतीसके बंधमें जैसे उदयस्थानादि बताये हैं वैसे ही तीसके बंधस्थानमें भी उदय तथा सत्ताके स्थान सर्व समझने चाहिये । २५९ ।

विशेष जो है उसे क्रमसे आगे बताते हैं ।—

तीसके बंधसमयमें विशेष इतना है कि उदय पच्चीस प्रकृतिका होता है; और सत्तामें आदिके सातो स्थान विद्वानों को समझने चाहिये । २६० ।

॥४८३॥

त्र्येकाग्रे नवती सत्त्वे देवनारकयोर्मते । द्व्यशीतिरथ तिर्यक्षु पूर्वौ बंधोदयौ स्मृतौ ॥ २६१ ॥
चातुर्गतिकजीवानां नवतिर्द्व्युत्तरा च सा । अशीतिश्चतुरष्टाग्रा सत्त्वे तिर्यक्षु नृष्वपि ॥ २६२ ॥

सामान्येन त्रिंशद्बंधे ३० । उदये २५ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । एषां सप्तस्थानानां विभागः देवनारकयोः ९३।९१। तिर्यक्षु ९२ । चातुर्गतिकजीवेषु ९२ । ९० । नरतिर्यक्षु ८८ । ८४ ।

पाके षड्विंशतिः सत्त्वेऽशीतिस्तिर्यक्षु सद्विका । नवत्यादित्रयं तिर्यङ्नृषु द्वानवतिः परा ॥ २६३ ॥

तीसके बंधके साथ दूसरा विशेष —

पूर्वके बंध तथा उदयमें अर्थात् बंध तीसका और उदय पच्चीसका रहनेपर, तीन अधिक नब्बेका तथा एक अधिक नब्बेका—ये ९३, ९१ के दो सत्त्वस्थान देव अथवा नारकोंमें ही होते हैं । और ब्यासीका सत्त्वस्थान इन्हीं बंधोदयके रहते (३० के बंधमें, २५के उदयमें) तिर्यंचोंमें पाया जाता है । इस बंधोदयके साथ नब्बेका सत्त्वस्थान और दो अधिक नब्बेका अर्थात् ब्यानवेका सत्त्वस्थान—ये सत्त्वस्थान चारो गतियोंके जीवोंमें मिलते हैं । और चौरासीका तथा अठासीका—ये दो सत्त्वस्थान तिर्यंचोंमें पाये जाते हैं और मनुष्योंमें पाये जाते हैं । २६१—२६२ ॥

सामान्यसे तीसके (३०) बंध समय उदयमें २५, और सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२—ये सात स्थान हैं । इन सत्ताके सात स्थानोंमें विभाग इस प्रकार है कि—देव तथा नारकोंमें ९३ का, ९१ का । तिर्यंचोंमें ९२ का । चारो गतिके जीवोंमें ९२ का, ९० का । मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें ८८ का, ८४ का ।

आगे तीसके ही बंधस्थानमें तीसरे प्रकारका बक्तव्य दिखाते हैं ।—

बंध तीसका यहांपर ऊपरके प्रकरणसे समझना चाहिये । इस बंधमें उदय छब्बीसका और इसके साथ तिर्यंचोंमें सत्ता द्विकसहित अस्सीकी अर्थात् ब्यासीकी है । और नब्बे आदि तीन सत्ताके स्थान अर्थात् ९० का, ८८ का, ८४ का, तथा एक सत्त्वस्थान ९२ का—ऐसे चार सत्त्वस्थान मनुष्य—तिर्यंच दोनों गतिके जीवोंमें पाये जाते हैं । २६३ ।

त्रिंशद्बंधे ३० । तिर्यक्षूदये २६ । सत्त्वे ८२ । तिर्यङ्नृषु बंधे ३० । उदये २६ । सत्त्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ ।

संत्येकपचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात् । उदयास्त्रिंशतो बंधे सदाद्यं स्थानसप्तकम् ॥ २६४ ॥

बंधे ३० । उदये २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

त्रिंशत्सैका च सा पाके विंशति षट्चतुर्युता । सत्तास्थानानि तान्यत्र त्र्येकाग्रे नवती विना ६५५ ॥

बंधे ३० । उदये ३१ । ३० । २६ । २४ । सत्त्वे पच ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

त्रिंशतो बंधः समाप्त ।

तीसके बंधसमय बंधमें ३०, तिर्यंचोंमें उदय २६ । सत्तामें ८२ । एवं तिर्यंच मनुष्य–इन दोनोंमें बंधके ३०, उदयके २६, सत्ताके ९२, ९०, ८८, ८४ हैं ।

तीसके बंधमें और भी चौथी विशेषताको दिखाते हैं ।—

तीसका बंध रहनेपर उदय इकीसका, पच्चीसका, सत्ताईसका, अट्ठाईसका, उन्तीसका–ऐसे पांच उदयस्थान होते हैं और सत्ताके स्थान आद्य अर्थात् आदिमें कहे हुए तिरानवे आदिके सात होते हैं ॥ २६४ ॥

बंधमें ३० । उदयमें २१, २५, २७, २८, २९-ये पाच । सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२-ये सात स्थान हैं ।

आगे तीसके बंधमें और भी बंधत्रयकी पांचवीं विशेषताको दिखाते हैं ।—

बंध तीसका हो और उदयमें यदि इकतीसका, तीसका, छह अधिक वीसका अर्थात् छब्बीसका, चार अधिक वीसका अर्थात् चौबीसका–ये चार उदयस्थान हों तो सत्ताके ऊपर बताये हुए स्थान, तिरानवे तथा इक्यानवेका–इन दो स्थानोंको छोड कर शेष ८२ के स्थान पर्यंत पांच स्थान होते हैं ॥ २६५ ॥

बंधमें ३० । उदयमें ३१, ३०, २६, २४–ये चार स्थान । सत्तामें ९२, ९०, ८८, ८४, ८२–ये पांच स्थान ।

इस प्रकार तीसके बंध स्थानका आश्रय लेकर बंधत्रयका विशेष कथन समाप्त हुआ ।

एकाग्रत्रिंशतो बंधे त्रिंशत्पाकेऽस्ति नामनि । सप्तमाष्टमयोः सत्त्वे त्र्युत्तरा नवतिर्मता ॥ २६६ ॥

वंधे ३१ । उदये ३० । सत्त्वे ९३ ।

मापितो बध्नतश्चैकमुदयस्त्रिंशतः स्फुटम् । सत्तायां शमके प्राज्ञैराद्यं स्थानचतुष्टयम् ॥ २६७ ॥

क्षपकेऽत्रष्ट सत्तायां विमुच्योपरिमद्वयम् । अग्रस्थानानि चत्वारि चत्वारि प्रथमानि च ॥ २६८ ॥

अब इकतीसके बंधस्थानके साथ कौनसी बंधत्रयी संभव है सो दिखाते हैं ।—

नामकर्मकी इकतीस प्रकृतिवाले बंधस्थानमें एक ऐसा प्रकार है जिसमें उदयगत तीस प्रकृति होती हैं और सत्तामें तीन अधिक नब्भे अर्थात् तिरानवे प्रकृति होती हैं । यह बंधत्रयी सातवें और आठवें गुणस्थानमें होती है । २६६ ।

बंधमें ३१ । उदयमें ३० । सत्तामें ९३ ।

अब एक प्रकृतिके बंध होते समय उदय तथा सत्ता कहांपर कितनी कितनी है सो बताते हैं ।—

एकको बांधनेवालेकें उदय तीसका बताया है और सत्तामें आदिके चार स्थान बताये हैं । सत्ता संबंधी आदिके चार स्थान—९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का—ये हैं । यह बंधत्रयी उपशम श्रेणीवालेकें होती है । २६७ ।

उपशमक श्रेणीमें बंधत्रयीके अंक—बंधमें १, उदयमें ३० । सत्तामें—९३, ९२, ९१, ९० ।

उपशमश्रेणीसे क्षपक श्रेणीमें सत्तासंबंधी विशेष है उसे अब आगे दिखाते हैं ।—

सत्ताके स्थान २२२ वें श्लोकमें तेरह गिनाये हैं वहांसे क्रम समझलेना चाहिए । उन तेरह स्थानोंमेसे, क्षपक श्रेणीवालेकें यदि पूर्ववत् बंध एकका और उदय तीस प्रकृतिका हो तो, चार स्थान तो ऊपरके अर्थात् तिरानवे, ब्यानवे, इक्यानवे, नब्भे प्रकृतियोंके यथासंभव होंगे और चार स्थान, अंतके दोको छोडकर उससे पहिलेके होंगे । भावार्थ—अंतके दो स्थान—एक दशका दूसरा नौका—ये हैं । इन दोको छोडकर इनसे पहिले चार स्थान—८० का, ७९ का, ७८ का, ७७ का—ये हैं । तिरानवे आदि चार स्थान प्रथम स्थान कहावेंगे, और अस्सी आदि चार स्थान अग्रस्थान अथवा अंतिम स्थान कहावेंगे । २६८ ।

उपशमकेषु बंधे १ । उदये ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । क्षपकेषु सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ।

त्रिंशत्सैका च सा पाके नष्टबंधे नवाष्ट च । चत्वार्याद्यानि सत्तायां पडग्राणि[1] यथागमम् ॥ २६९ ॥

नष्टबंधे पाकाः ३१ । ३० । ९ । ८ सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

क्षपकोंमें बंधगत प्रकृति १ । उदयमें ३० । सत्तामें ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ ।

अब जिनका नामकर्मका बंध तो नष्ट हो गया है किंतु उदय तथा सत्ता मौजूद है उनका स्पष्टीकरण करते हैं ।—

जिनकें नामकर्मका बंध होना नष्ट होगया है उनके उदयमें एक अधिक तीस प्रकृति अर्थात् इकतीस प्रकृति रहती हैं, तीस रहती हैं, नौ भी रहती हैं, आठ भी रहती हैं—इस प्रकार उदयमें चार स्थान संभव हैं । सत्तामें आदिके तिरानवे आदि चार स्थान, और अंतके छह स्थान—इस प्रकार दश सत्त्वस्थान यथाशास्त्र समझने चाहिये । यहांपर आगेके छह कौनसे स्थान हैं—इस संशयको दूर करनेकेलिये ‘ यथाशास्त्र ’ ऐसा लिखा है ।

नामकर्मकी प्रकृतियोंमें एक यश कीर्ति प्रकृति है । उसका बंध दशवें गुणस्थान पर्यंत होता है । दशवेंके अंतमें यश.कीर्ति की बंधसे व्युच्छित्ति होती है इसलिये ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर यश कीर्तिका बंध नहीं होता है । नामकर्मकी शेष प्रकृतियोंका बंध इससे पूर्व ही रुक जाता है । इस प्रकार ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर नामकर्मकी अपेक्षा बंधाभाव हो जाता है इसलिये यहांपर ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंको नष्टबंध कहा गया है ॥ २६९ ॥

नष्टबंधमें उदय ३१, ३०, ९, ८—यह चार स्थानका है । सत्ता—९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९—इस प्रकार दश स्थानोंकी है ।

---

१ ‘ षट्चाग्राणि ’ इति पाठेन भवितव्यम् ।

अस्य विशेषो व्याख्यायते—

क्षपेन्त्ये सप्तमेऽपूर्वोऽनिवृत्तिर्दशमो यशः । एकं बध्नति चत्वारः परे संति न बंधकाः ॥ २७० ॥

यशोबंधकास्त्रयः १ । १ । १ । अबंधकाश्चत्वारः ० । ० । ० । ० ।

पाके त्रिंशदपूर्वादिपंचके योगिनः पुनः । त्रिंशत्सैका च सा पाके गतयोगे नवाष्ट च ॥ २७१ ॥

अपूर्वादिषु पाके ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । योगिनि ३० । ३१ । नियोगे ९ । ८ ।

शमकेषु चतुष्विष्टमाद्य स्थानचतुष्टयम् । षोडशप्रकृतिध्वंसमकुर्वत्यनिवृत्तिके ॥ २७२ ॥

अब उपरके कथनको ही मूलकार विशेष स्पष्टीकरण करते हैं।—

सातवें गुणस्थानमें अंतके समयमें नामकर्ममेंसे एक यशःकीर्तिका ही बंध होता है। एवं आठवां अपूर्वकरण, नौवां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मलोभ ये तीन गुणस्थान भी नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे एक यशःकीर्तिका ही बंध करनेवाले हैं। इस प्रकार ये तीन गुणस्थान तो एक नामप्रकृतिका बंध करनेवाले अथवा एकबंधक कहे जाते हैं, और दशवेंसे आगेके चार गुणस्थान नामकर्मके अबंधक समझे गये हैं। २७०।

उदयमें केवल तीस प्रकृतियोंका उदय आठवेंसे बारहवें गुणस्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें होता है। और सयोग केवलीके, यदि वे सामान्य केवली हों तो, तीसका उदय होता है। यदि वे केवली तीर्थंकर हों तो उनके सयोग केवल अवस्थामें तीर्थंकर प्रकृतिसहित इकतीसका उदय होता है। इसी प्रकार योग जिनके नष्ट होगये हैं ऐसे चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवलीके नौका अथवा आठ नामप्रकृतियोंका उदयस्थान रहता है। २७१।

उपशम श्रेणीके गुणस्थान आठवेंसे ग्यारहवें पर्यंत चार हैं। इनमें सत्तास्थान आदिके चार माने गये हैं। ९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का—ये वे चार स्थान हैं। और क्षपक श्रेणीमें प्रवेश करनेवालेके नौवें गुणस्थानमें जो नौ भाग होते हैं उनमेंसे पहिले भागमें भी ये ही ऊपरके चार तिरानवे आदि सत्तास्थान हैं। इस प्रथम भागके आगे सोलह कषाय प्रकृतियोंका नाश होता है इसलिये प्रथम भागको 'सोलह प्रकृतियोंका ध्वंस जिसमें नहीं हो पाता' ऐसा विशेषण देकर सूचित किया है ॥२७२॥

सत्त्वत्र क्षपिते तस्मिन्नशीत्यादि चतुष्टयम् । तत्सूक्ष्मादित्रये सत्त्वे निर्योगोपांतिमे क्षणे ॥२७३ ॥
प्रोक्ता दश नव प्राज्ञैर्निर्योगस्यांतिमे क्षणे । शमकचतुष्कापूर्वानिवृत्त्याद्यनवांशेषु ॥ २७४ ॥
९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अनिवृत्तिशेषनवांशाष्टकसूक्ष्मक्षीणसयोगनिर्योगोपांतिमक्षणेषु सत्त्वे ८० । ७९ । ७८ । ७७ । निर्योगांत्यक्षणे १० । ९ ।

एवं नामप्ररूपणा समाप्ता ।

'तस्मिन्' अर्थात् अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें ही प्रथम भागके आगे जहां उन सोलह प्रकृतियोंका क्षय किया जाता है वहांपर अस्सी आदि चार सत्त्वस्थान रहते हैं। और यहांतक बंधस्थान एकका है तथा उदय तीसका है—यह बात ऊपरके प्रकरणसे समझ लेनी चाहिये। इसके आगे सूक्ष्मसांपराय—दशवें गुणस्थानसे लेकर तेरहवें पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें भी सत्त्व अस्सी आदि चार प्रकारका है। यहांपर दशवें गुणस्थानको एकबंधक और आगेके सर्व गुणस्थानोंको अबंधक समझना चाहिये।

इसके आगे निर्योग अर्थात् चौदहवा अयोगकेवली गुणस्थान लगता है। इस चौदहवें गुणस्थानके उपांत्य समयमें भी सत्त्वस्थान ये ही हैं। और अयोगकेवलीके अंत्य समयमें दशकी सत्ता अथवा तीर्थंकर प्रकृतिके विना नौकी सत्ता रहती है ॥ २७३-२७४ ॥

उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें तथा क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमेंसे आद्य भागमें सत्ताके स्थान—९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का—ये चार हैं। अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानके नौ भागोंमेंसे पहिले भागके शिवाय शेष आठ भागोंमें, तथा सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानमें, सयोग केवली तेरहवें गुणस्थानमें, निर्योग—चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समय पर्यंत—इतने स्थानोंमें सत्ताके—८०, ७९, ७८, ७७,—ये चार स्थान हैं। अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानके अंतिम समयमें सत्ताके स्थान दो—१०, ९—ये दो हैं।

इस प्रकार नामकर्मकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

आगे नामकर्मके सत्त्वस्थानका प्रकरण १९ गाथाओंसे क० गोमटसारमें कहा है उसे यहा दिखाते हैं;—

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य । ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥ ६०९ ॥
त्रिद्व्येकनवति नवति अष्टचतुर्द्व्यधिकाशीतिरशीतिश्च । एकोनाशीत्यष्टसप्तती सप्तति दश च नव सत्त्वानि ॥ ६०९ ॥

अर्थ—९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिरूप—नामकर्मके १३ सत्त्व स्थान हैं ॥ ६०९ ॥

अब उनकी विधि बतलाते हैं,—

सव्व तित्थाहारुभऊण सुरणिरयणरदुचारिदुगे । उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरे जोगिस्स दस णवयं ॥ ६१० ॥
सर्व तीर्थाहारोभयोन सुरनिरयनरद्विचतुर्द्विके । उद्वेलिते हते चतुष्क त्रयोदश योगिन दश नवकम् ॥ ६१० ॥

अर्थ—नामकर्मकी प्रकृतिरूप सब ९३ का स्थान है, उनमेंसे तीर्थंकर घटानेसे ९२ का स्थान, आहारकयुगल घटानेसे ९१ का, तीनों घटानेसे ९० का स्थान होता है, उस ९० के स्थानमें देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८८ का स्थान होता है, इसमें भी नरकगति आदि चार प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेपर ८४ का स्थान होता है, इसमें भी मनुष्यगति–मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दोनोंकी उद्वेलना होनेसे ८२ का स्थान होता है, तथा ९३ आदि चार (९३-९२-९१-९०) स्थानोंमें अनिवृत्तिकरणमें क्षय होनेवाली १३ प्रकृतियोंके घटानेसे ८०-७९-७८ ७७ के स्थान होते हैं । और अयोगकेवलीके १० का और ९ का स्थान होता है ॥ ६१० ॥

आगे उन १० के तथा ९ के स्थानमें प्रकृतियोंको कहते हैं,—

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोदइदि विहीणेसु । दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु ॥ ६११ ॥
गतयोगस्य तु त्रयोदशसु तृतीयायुष्कगोत्रेति विहीनेषु । दश नाम्नश्च सत्ता नव चैव च तीर्थहीनेषु ॥ ६११ ॥

अर्थ— अयोगकेवलीके १३ प्रकृतियोंमेंसे वेदनीय–आयु–गोत्र, ये तीन प्रकृतियां कम करनेसे नामकर्मकी १० प्रकृतियोंका सत्त्व है। यदि तीर्थंकर प्रकृति भी घटादी जावे तो ९ प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान होता है ॥ ६११ ॥

आगे उद्वेलनास्थानोंमें विशेषता कहते हैं,—

गुणसजादप्पयडिं मिच्छे बंधुदयगंधहीणम्हि। सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लिदे जीवो ॥ ६१२ ॥

गुणसजातप्रकृतिं मिथ्ये बन्धोदयगन्धहीने। शेषोद्वेलनप्रकृतिं नियमेनोद्वेलयति जीवः ॥ ६१२ ॥

अर्थ— मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें जिन प्रकृतियोंके बंधकी अथवा उदयकी वासना भी नहीं ऐसी सम्यक्त्वगुणसे उत्पन्न हुई सम्यक्त्वमोहनीय–मिश्रमोहनीय–आहारकयुगल, इन चार प्रकृतियोंकी तथा शेष उद्वेलनप्रकृतियोंकी उद्वेलना यह जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें करता है ॥

अब उसका क्रम कहते हैं —

सत्थत्तादाहारं पुव्वं उव्वेल्लदे तदो सम्मं। सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सगलो य ॥ ६१३ ॥

शस्तत्वादाहारं पूर्वमुद्वेलयति ततः सम्यक्। सम्यग्मिथ्यं तु तत एको विकलश्च सकलश्च ॥ ६१३ ॥

अर्थ— आहारकयुगल प्रशस्त प्रकृतियां हैं इसलिये चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव पहले इन दोनोंकी उद्वेलना करते हैं। पीछे सम्यक्त्वप्रकृतिकी, उसके बाद सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकी उद्वेलना करते हैं। उसके बाद एकेन्द्री— विकलेंद्री और सकलेन्द्रिय जीव शेष देवद्विकादिकोंकी उद्वेलना करते हैं ॥ ६१३ ॥

आगे उस उद्वेलनाके अवसरका काल कहते हैं—

वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्तं। सम्मामिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्कं तु ॥ ६१४ ॥

वेदकयोग्ये काले आहारमुपशमस्य सम्यक्त्वम्। सम्यग्मिथ्यं चैकस्मिन् विकले वैगूर्वषट्कं तु ॥ ६१४ ॥

अर्थ— वेदकसम्यक्त्वयोग्यकालमें आहारककी उद्वेलना, उपशमकालमें सम्यक्त्वप्रकृति वा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता है। और एकेन्द्रिय तथा दोइंद्रिय पर्यायमें वैक्रियिकषट्ककी उद्वेलना करता है ॥ ६१४ ॥

आगे उन दोनों कालोंका लक्षण कहते हैं,—

उदधिपुधत्त तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे । जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥ ६१५ ॥

उदधिपृथक्त्वं तु त्रसे पल्यासंख्योनमेकमेकाक्षे । यावच्च सम्यं मिश्रं वेदकयोग्यश्च उपशमस्य ततः ॥ ६१५ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वमोहनीयकी और मिश्रमोहनीयकी स्थितिमेंसे पृथक्त्वसागर काल त्रसके शेष रहै और पल्यके असंख्यातवें भाग कम एक सागर काल एकेन्द्रीके शेष रह जावे वह "वेदकयोग्य काल" है । और उससे भी सत्तारूप स्थिति कम हो तो वह उपशमकाल कहा जाता है ॥ ६१५ ॥

आगे तेजकाय और वायुकायके उद्वेलन प्रकृतियोंको दिखाते हैं—

तेउदुगे मणुवदुग उच्च उव्वेल्लदे जहण्णिदरं । पल्लासखेज्जदिम उव्वेल्लणकालपरिमाण ॥ ६१६ ॥

तेजोद्विके मनुष्यद्विकमुच्चमुद्वेल्यते जघन्येतरत् । पल्यासंख्येयिमुद्वेलनकालपरिमाणम् ॥

अर्थ—तेजकाय और वायुकायके मनुष्यगतियुगल और उच्चगोत्र—इन तीनकी उद्वेलना होती है । और उस उद्वेलनाके कालका प्रमाण जघन्य अथवा उत्कृष्ट पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ ६१६ ॥

अब उसीको कहते हैं,—

पल्लासखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण । संखेज्जसायरठिदिं पल्लासखेज्जकालेण ॥ ६१७ ॥

पल्यासख्येयिमां स्थितिमुद्वेल्यति मुहूर्तान्तरेण । संख्येयसागरस्थितिं पल्यासख्येयकालेन ॥ ६१७ ॥

अर्थ—पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकी अतर्मुहूर्तकालमें उद्वेलना करता है तो सख्यातसागर प्रमाण मनुष्यद्विकादिकी सत्तारूपस्थितिकी उद्वेलना त्रैराशिकसे पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण कालमें ही करसकता है ऐसा सिद्ध हुआ ॥६१७

आगे सम्यक्त्वादिककी विराधना [छोडदेना] कितनी वार होती है यह कहते हैं—

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं । पल्लासंखेज्जदिम वारं पडिवज्जदे जीवो ॥ ६१८ ॥

सम्यक्त्वं देशयममनसयोजनविधिं च उत्कृष्टम् । पल्यासख्येय वारं प्रतिपद्यते जीव ॥ ६१८ ॥

अर्थ—प्रथमोपशमसम्यक्त्व, वेदक [क्षायोपशमिक] सम्यक्त्व, देशसंयम और अनतानुबंधीकषायके विसयोजनकी विधि इन चारोंको यह जीव उत्कृष्टपने अर्थात् अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग समयोंके प्रमाण वार छोड २ के ग्रहण करता है। पीछे नियमसे सिद्धपदको ही पाता है ॥ ६१८ ॥

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो । बत्तीसं वाराइ संजममुवलहिय णिव्वादि ॥ ६१९ ॥

चतुरो वारानुपशमश्रेणिं समारोहति क्षपितकर्मांश । द्वात्रिंशद्वारान् संयममुपलभ्य निर्वाति ॥ ६१९ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीपर अधिकसे अधिक चार दफै चढता है पीछे कर्मोंके अंशोंको क्षय करता हुआ क्षपकश्रेणी चढ मोक्षको ही पाता है। और सकलसंयमको उत्कृष्टपनेसे ३२ वार धारण करके पीछे मोक्षको ही प्राप्त होता है ॥ ६२९ ॥

आगे चारों गतियोंकी अपेक्षासे गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी योजना करते हैं,—

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि वाणउदी सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी ॥ ६२० ॥

सुरनरसम्ये प्रथमं, सासनहीनेषु भवति द्वानवतिः । सुरसम्ये नरनारकसम्ये मिथ्ये च एकनवति. ॥

अर्थ—पहला ९३ का सत्त्वस्थान असयतसम्यग्दृष्टि देवके तथा मनुष्यके होता है, सासादन रहित चारों गतिके जीवोंके ९२ का स्थान होता है और ९१ का स्थान देव सम्यग्दृष्टीके तथा मनुष्य और नारकी सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टीके होता है ॥

णउदी चदुग्गदिम्हि य तेरसखवगोत्ति तिरियणरमिच्छे । अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्हि वासीदी ।६२१।

नवति चतुर्गतौ च त्रयोदशक्षपक इति तिर्यग्नरमिथ्ये । अष्टचतुरशीति. सत्ता तिर्यग्मिथ्ये द्व्यशीति ॥

अर्थ-९० का सत्त्वस्थान १३ प्रकृतियोंके क्षयवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानपर्यंत चारों गतियोंके जीवोंके होता है, ८८-८४के दोनों स्थानोंकी सत्ता मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यके हैं, और ८२ का सत्त्वस्थान तिर्यंचमिथ्यादृष्टिके होता है ऐसा जानना चाहिए॥

सीदादिचउट्ठाणा तेरसखवगादु अणुवसमगेसु । गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्हि दसणवयं ॥ ६२२ ॥

अशीत्यादिचतु स्थानानि त्रयोदशक्षपकादनुपशामकेषु । गतयोगस्य द्विचरमं यावच्च चरमे दश नवकम् ॥

अर्थ-८०को आदि लेकर चार स्थान अर्थात् ८०-७९-७८ ७७के स्थान तेरह प्रकृतिके क्षय करनेवाले क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे लेकर अयोगीके द्विचरमसमय तक पाये जाते हैं। और १० का तथा ९ का सत्त्वस्थान अयोगकेवलीके अंतसमयमें होता है।

आगे ४१ जीवपदोंमें उन सत्त्वस्थानोंको कहते हैं—

णिरये वा इगिणउदी णउदी भूआदिसव्वतिरियेसु । वाणउदी णउदी अडचउवासीदी य होंति सत्ताणि ॥६२३॥

निरये द्व्येकनवतिः नवतिः भ्वादिसर्वतिर्यक्षु । द्वानवति नवतिः अष्टचतुर्द्व्यशीतिश्च भवन्ति सत्त्वानि ॥

अर्थ—नामकर्मके सत्त्वस्थान नारकी जीवोंमें ९२–९१–९० के इस तरह ३ हैं । और पृथिवीकायादि सब तिर्यंचोंमें ९२–९०—८८–८४–८२ के इस तरह पांच पाच हैं ।

वासीदिं वज्जित्ता वारस ठाणाणि होंति मणुवेसु । सीदादिचउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु ॥ ६२४ ॥

द्व्यशीतिं वर्जयित्वा द्वादशस्थानानि भवन्ति मानवेषु । अशीत्यादिचतुःस्थानानि षट्स्थानानि केवलिद्विकयोः ॥ ६२४ ॥

अर्थ—मनुष्योंमें ८२ के स्थानको छोडकर शेष १२ स्थान होते हैं, परंतु सयोगकेवलीके ८० को आदि लेकर चार सत्त्वस्थान हैं, अयोगकेवलीके ८० को आदिलेकर ६ सत्त्वस्थान हैं ॥ ६२४ ॥

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे । तिदुणवदी आहारे देवे आदिमचउक्कं तु ॥ ६२५ ॥

समविषमस्थानानि च क्रमेण तीर्थेतरकेवलिनो भवेयु । त्रिद्विनवतिः आहारे देवे आदिमचतुष्कं तु ॥ ६२५ ॥

अर्थ—केवलीके जो स्थान कहे थे वे समसंख्यावाले तीर्थंकर केवलीके और विषमसंख्यावाले स्थान तीर्थंकरप्रकृति रहित सामान्यकेवलीके होते हैं । आहारकमें ९३–९२ के दो स्थान हैं । और विमानवासी देवोंमें आदिके ४ सत्त्वस्थान होते हैं ।

वाणउदिणउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीणं । हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाणं च य सासणे णउदी ॥ ६२६ ॥

द्वानवतिनवतिसत्ता भवनत्रिकाणां च भोगभूमीनाम । अधस्तनपृथिवीचतुष्कभवानां च च सासने नवति. ॥ ६२६ ॥

अर्थः—भवनत्रिक देवोंके, भोगभूमियाओंके और नीचेकी अजनादि चार नरकपृथिवियोंमें ९२–९० इन दो स्थानोंकी सत्ता है । तथा सासादन गुणस्थानमें सब जीवोंके ९० का ही सत्त्वस्थान है ॥ ६२६ ॥

इस प्रकार बधोदयसत्त्वकी अपेक्षा गोमटसारके अनुसार भंग कहे ।

॥४९४॥

स्थानानां त्रिविकल्पानां कर्तव्या विनियोजना । अतो जीवगुणस्थाने क्रमतः सर्वकर्मणाम् ॥ २७५ ॥
बंधनोदयसत्त्वेषु ज्ञानविघ्नान्तराययोः । पंच जीवसमासेषु निर्बंधे पाकसत्त्वयोः ॥ २७६ ॥

अब यहांसे आगे सर्व कर्मोंको मिलाकर बंधोदय सत्तारूप तीन प्रकारके स्थानोंकी संयुक्त योजना, जीवसमासोंके तथा गुणस्थानोंके अनुसार करते हैं । २७५ ।

सबसे प्रथम जीवसमासोंमें ज्ञानावरण तथा अंतरायकी बंधोदयसत्ताको दिखाते हैं ।—

ज्ञानावरण, अंतराय–इन दो कर्मोंकी सर्व उत्तर प्रकृति पांच पांच हैं । जीवसमास सर्व चौदह हैं । इनमेंसे संज्ञी पर्याप्तक नाम चौदहवें भेदमें जुदा स्पष्टीकरण करते हैं, क्योंकि, उस चौदहवेंकी गति ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंमें भी है और वहां पर बंध होना रुक जाता है । इसलिये चौदहवें समासका केवल सामान्य बंधोदयसत्त्व नहीं कहा जा सकता है । इसलिये प्रथम तेरह जीवसमासोंमें बंधोदयसत्त्वको बताते हैं । इन तेरह जीवसमासोंमें ज्ञानावरण तथा अंतरायकी पांचो पांचों ही प्रकृतियोंका बंध है, पांच पांचका ही उदय है, सत्ता भी पांच पांचकी है । चौदहवें जीवसमासमें भी जहां पर्यंत बंधादि त्रय हैं वहां पर्यंत पांच पांच ही बंधरूप, उदयरूप तथा सत्तारूप हैं । परंतु संज्ञी पर्याप्तक नाम चौदहवें जीव समासमें जहांसे बंधरूप योग्यता नहीं है ऐसे ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थानमें बंधको छोडकर केवल उदय तथा सत्त्व ही पांच पांच प्रकृतियोंका है । इस चौदहवें जीवसमासमें बंध उदय सत्त्व ये तीनों मिथ्यात्वसे लेकर सूक्ष्म लोभ–दशवें गुणस्थान पर्यंत पूर्वके तेरह जीवसमासोंमें जैसे बताये हैं वैसे ही पांच पांच प्रकृतियोंके हैं ।

भावार्थ, तेरहवें गुणस्थानसे लेकर उदय तथा सत्त्वका भी अभाव है । उपशांत कषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें पहुंचनेवाले के ज्ञानावरण अंतरायका बंध नहीं होता परंतु नीचे गिरनेपर बंध होने लगता है । इसलिये ग्यारहवां गुणस्थान बंधरहित तो है परंतु उसे उपरतबंध नहीं कहते हैं । और बारहवें गुणस्थानमें बंधका अभाव होता है वह सदाकेलिये हो जाता है इसलिये बारहवें गुणस्थानको उपरतबंध कहते हैं । इसी अभिप्रायसे मूलके विवरणमें ग्यारहवेंको निर्बन्ध और बारहवें गुणस्थानको उपरतबंध लिखा है ॥ २७६ ॥

जीवसमासेषु त्रयोदशसु-बंधे ५ । उदये ५ । सत्त्वे ५ । चतुर्दशे सञ्ज्ञिनि पर्याप्ते मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्ते बंध-त्रये-बंधे ५ । उदये ५ । सत्त्वे ५ । निर्बन्धोपरतबंधयोरुपशांतक्षीणयोः पाके सत्त्वे च ५ । ५ ।

त्रयोदशसु दृग्रोधे नव बंधनसत्त्वयोः । चतस्रः पंच वा पाके पूर्णे सञ्ज्ञिनि भाषिताः ॥ २७७ ॥
गुणस्थानोदिता भंगा जीवस्थाने चतुर्दशे ।

अब दर्शनावरणकी उत्तर प्रकृतियोंके बंधोदय सत्त्वकी यथायोग्य स्थितिको जीवसमासोंमें दिखाते हैं ।—

सञ्ज्ञी पर्याप्तक—चौदहवें जीवसमासके अतिरिक्त शेष तेरह जीवसमासोंमें दर्शनावरणकी सर्व नौ प्रकृतियोंका बंध, नौकी ही सत्ता है । उदय इन्हीं तेरह जीवसमासोंमें, दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंका अथवा पांचका रहता है । और चौदहवें जीवसमास सञ्ज्ञी पर्याप्तक संबंधी बंधोदयसत्त्वके भेद गुणस्थानोंमें जैसे वर्णन किए हुए हैं वैसे ही बताये हैं । चक्षुर्दर्शनावरणादि चारका उदय जाग्रत अवस्थामें माना जाता है । इन चारके साथ किसी एक निद्राका भी उदय हो तो पांच दर्शनावरणोंका उदय संभव होता है ।

भावार्थ, दर्शनावरणकी उत्तर प्रकृति नौ हैं । सो चौदह जीवसमासोंमेंसे सञ्ज्ञी पर्याप्तक चौदहवें जीवसमासको छोडकर शेष तेरह जीवसमासोंमें देखें तो दर्शनावरणकी सत्ता प्रत्येक समासमें नौकी ही है, बंध भी प्रत्येक समासमें नौका ही है । उदय-मात्र चारका है और पांचका भी है । और पर्याप्तक सञ्ज्ञी नामके चौदहवें समासमें बंधत्रयके भंग गुणस्थानोंमें जैसे बताये हैं वैसे ही समझने चाहिये । उनका खुलासा नीचे यंत्रों द्वारा करते हैं ।

	बंध—	९	९
तेरह समासोंमें—	उदय—	४	५
	सत्त्व—	९	९

त्रयोदशसु—बं.	९	९
उ.	४	५
स.	९	९

संज्ञिनि पूर्णे मिथ्यादृष्टिशासनयोः—	९	९
	४	५
	९	९

मिश्राद्यपूर्वकरणद्वयप्रथमसप्तमभागं यावत्,—	६	६
	४	५
	९	९

शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मोपशमकेषु क्षपकेष्वपूर्वशेषसप्तमभागेषु षट्स्वनिवृत्तेरसंख्यातभागं यावत्—	४	४
	४	५
	९	९

सञ्ज्ञी पर्याप्तक चौदहवें समासमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थान और सासादन गुणस्थानके रहते—	बंध—	९	९
	उ॰—	४	५
	स॰—	९	९

मिश्र तीसरे गुणस्थानसे लेकर, तथा अपूर्वकरण (क्षपकोपशमक दो दो प्रकारके) आठवें गुणस्थानके सात भागोंमेंसे आदिके एक भाग पर्यंत—	बंध	६	६
	उ.	४	५
	स.	९	९

उपशमक अपूर्वकरणके शेष छह भागोंमें, तथा उपशमक अनिवृत्तिकरणमें, उपशमक सूक्ष्मकपायमें, एवं क्षपक श्रेणीसंबंधी अपूर्वकरणके अंतिम शेष छह भागोंमें, क्षपक अनिवृत्तिकरणके असंख्यातवें भाग पर्यंत—	बं	४	४
	उ	४	५
	स	९	९

ततः परमनिवृत्तेः शेषसंख्यातभागे सूक्ष्मक्षपके च—

४	४
४	५
६	६

शान्ते—

०	०
४	५
९	९

क्षीणद्विचरमक्षणे—

०	०
४	४
६	६

क्षीणचरमक्षणे—

०
४
६

एवं सर्वे पिंडिताः १३ ।

इसके आगे क्षपक अनिवृत्तिकरणके शेष संख्यात भागमें, तथा क्षपक सूक्ष्मकषायमें—

बं.	४	४
उ.	४	५
स	६	६

उपशांतकषायमें—

ब	०	०
उ.	४	५
स.	९	९

क्षीणकषायके उपांत्य समयमें—

बं.	०	०
उ.	४	५
स.	६	६

क्षीणकषायके अंतिम क्षणमें—

ब.	०
उ.	४
स	४

इस प्रकार इन सबोंको मिलानेसे १३ भेद हुए। वे इस प्रकार —

चौदहवें जीवसमासमें सर्व भंग तेरह होते हैं। वे इस प्रकार हैं।—प्रथम मिथ्यात्वमें तथा सासादनमें उदयके दो भेद होनेसे दो भंग है। आगे मिश्रादि अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यंत उदयके ही दो भेद होनेसे दो भंग हैं। फिर

वेद्यायुर्गोत्रकर्माणि भाषित्वा वच्मि मोहनम् ॥ २७८ ॥

वेद्यस्य द्वाषष्टिस्त्रियुतं शतमायुषो विकल्पानाम् । चत्वारिंशद्गोत्रे सप्ताग्रा ऽत्रापि जीवेषु ॥ २७९ ॥

जीवसमासेषु भंगाः ६२ । १०३ । ४७ ।

प्रत्येकं चत्वारो भंगाः सत्यादिमाश्चतुर्दशसु । षट्कं केवलियुग्मे द्वाषष्टिर्जायते वेद्ये ॥ २८० ॥

उपशमक अपूर्वकरणके शेष भागोंसे लेकर सूक्ष्मसांपराय उपशामक पर्यंतमें उदयके दो भेद होनेसे दो भंग हैं। फिर क्षपक अपूर्व-करणसे क्षपक अनिवृत्तिकरणके असंख्यातवें भाग पर्यंतमें उदयके दो भेद होनेके कारण दो भंग हैं। फिर शेष अनिवृत्तिकरण क्षपक तथा सूक्ष्मसांपराय क्षपकके उदयमें दो भेद होनेके कारण दो भंग हैं। फिर उपशांतमें भी उदयके दो भेदके रहनेसे दो भंग हैं। फिर क्षीण कषायके उपांत्य समयमें भी उदय दो प्रकारका होनेसे दो भंग हैं। फिर क्षीणकषायके अंत्य समयमें उदय एक ही प्रकारका है इसलिये भंग एक ही है। ये संज्ञी पर्याप्तकके तेरह भंग हैं। तेरह समासोंके दो भंग चौदहवें समासके मिथ्यादृष्टिके दो भंगोंके समान ही हैं इसलिये जुदे नहीं गिने जाते हैं।

इसके आगे वेदनीय, आयु, गोत्र इन तीन कर्मोंके बंधोदयसत्त्वसंबंधी भंगोंको क्रमसे बताकर फिर मोहका वर्णन करेंगे। २७७–२७८।

वेदनीय कर्मके बंधोदयसत्त्वमें बासठि भेद होते हैं। आयुके बंधोदयसत्त्वमें एकसौ तीन भेद होते हैं। गोत्रमें बंधोदय-सत्त्वके भेद सात अधिक चालीस अर्थात् सैंतालीस होते हैं। इस प्रकार क्रमसे ६२, १०३, ४७—इतने भंग जीवसमासों द्वारा देखनेसे तीनों कर्मोंके होते हैं। २७९ ॥

अब वेदनीयकर्मके बासठि भेदोंको त्रिसंयोगमें बताते हैं।—

चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येक जीवसमासमें वेदनीय त्रिसंयोगके चार चार भंग होते हैं। ये भंग बारहवें गुणस्थानपर्यंत समझने चाहिये। केवलीके दोनों गुणस्थानोंमें छह भंग होते हैं। इस प्रकार सब बासठि भंग चौदह जीवसमासोंके गुणस्थान-लेकर हो जाते हैं। २८०।

चतुर्दशसु प्रत्येकमादिमाश्चत्वारः—

ब.	१	१	०	०
उ.	१	०	१	०
स.	१ ०	१ ०	१ ०	१ ०

इति

इस वेदनीयके बंधोदयसत्त्वके भेदोंको समासोंमें दिखानेवाले यंत्र आगे देते हैं ।—

चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येक समासमें बंधोदयसत्त्वके आदिम चार चार भेद इस प्रकार हैं ।—

बंध—	१	१	०	०
उ०—	१	०	१	०
स०—	१-०	१-०	१-०	१-०

इस यंत्रका खुलासा इस प्रकार है ।--यंत्रमें जहां एकका अंक है वहांपर वेदनीयमेंसे सातावेदनीय अर्थ लेना । जहां शून्य दिया है वहां असाता वेदनीय अर्थ लेना । इस यंत्रसे प्रत्येक समासमें चार चार प्रकार बंधोदयसत्त्वके मिलाकर, हो जाते हैं । पहिले कोष्टकमें पहिला भेद बताया है । उसमें बंध एक अर्थात् साताका, नीचे उदय एक अर्थात् साताका, सत्ता एककी भी और शून्यकी भी अर्थात् साता असाता दोनोकी सत्ता । इसी प्रकार दूसरे कोष्टकमें बंध साताका, उदय असाताका, सत्ता साता असाता दोनोंकी ऐसा अर्थ निकलता है । तीसरे कोष्टकमें बंध असाताका, उदय साताका, सत्तामें साता असाता दोनो ऐसा तीसरा भेद बनजाता है । चौथे कोष्टकसे चौथा भेद बनता है। वह इस प्रकार कि, बंध असाताका, उदय असाताका, सत्ता साता असाता दोनोंकी । ऐसे यत्रमें चार भेद दिखाये हैं । चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकमें ये चार भेद संभव हैं इसलिये चौदहके चौगुने ५६ विकल्प होजाते हैं। छह विकल्प दोनो केवलियोंमें होते हैं ऐसा आगे बताया है इसलिये ये छप्पन विकल्प बारहवें गुणस्थान पर्यंत समझना चाहिये ।

योगिनि द्वावाद्यौ—

ब	१	ब	१
उ.	१	उ.	०
स	१-०	स	१-०

अयोगेऽपि द्वौ बंधेन विनाद्यावुपांतिमे समये—

उ०—	१	०
स०—	१-०	१-०

द्वावयोगस्यांत्ये समये—

उ०—	०	१
स०—	०	१

इत्थं सर्वे ६२ ।

सयोगकेवलीमें आदिके दो भेद हैं।—

बंध—	१	१
उ०—	१	०
स०—	१-०	१-०

अयोग केवलीके उपांत्य समयमें बंध नहीं होता इसलिये बंधको छोडकर उदय तथा सत्ताके भेद—

उदय—	१	०
सत्ता—	१-०	१-०

अयोग केवलीके अंत्य समयमें दो भेद इस प्रकार हैं—

उ०	०	१
स०	०	१

इस प्रकार केवलीद्वयके छह विकल्प और ऊपर बारहवें गुणस्थान पर्यंत होनेवाले छप्पन विकल्प मिलकर चौदह समासोंके सर्व भेद ६२ हुए।

इसका खुलासा क० गोमटसारमें जो दिया है वह इस प्रकार है।—

सादासादेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे। दोसत्त जोगित्ति य चरिमे उदयागद सत्त ॥ ६३३ ॥
छट्ठोत्ति चारि भंगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे। चउभंगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स ॥६३४॥ जुम्मं।
साताऽसातैकतरं बंधोदयौ भवत संभवस्थाने। द्विसत्व योग्यन्तं च चरमे उदयागत सत्त्वं ॥ ६३३ ॥
षष्ठ इति चत्वारो भंगा द्वौ भंगौ भवतो यावद्योगिजिनं। चतुर्भंगा अयोगिजिने स्थानं प्रति वेदनीयस्य ॥ ६३४ ॥ युग्मम्।

जी० प्र०—सातासातैकतरमेव योग्यस्थाने बंध उदयो वा स्यात्। सत्त्व सयोगात द्वे द्वे। अयोगे ते उदयागते, तेन वेदनीयस्य गुणस्थान प्रति भंगाः। षष्ठात सातबंधोदयोभयसत्त्व सातबंधासातोदयोभयसत्त्व असातबंधसातोदयोभयसत्त्व असातबंधोदयोभयसत्त्वमिति चत्वारः। उपरि सयोगात केवल सातस्यैव बंधात् तद्बंधतदुदयोभयसत्त्व तद्बंधासातोदयोभयसत्त्वमिति द्वौ [२]। अयोगे सातोदयोभयसत्त्वं, असातोदयोभयसत्त्वं सातोदयसत्त्वमसातोदयसत्त्वमिति चत्वारः ॥ ६३३ । ६३४ ॥

स० चं०—साता वा असाताविषैं एकहीका बंध वा उदय, योग्य स्थानविषैं हो है। बहुरि सत्व है सो सयोगी पर्यंत दोय दोयहीका है। अयोगी का अंत समयविषैं उदय जाका होइ तिसहीका सत्व है तातैं वेदनीयके गुणस्थान प्रति भंग छठा प्रमत्तपर्यंत-तो साताका बंध वा उदय सत्व दोऊनिका, अथवा साताका बंध असाताका उदय सत्व दोऊनिका, अथवा असाताका बंध साताका उदय सत्व दोऊनिका, अथवा असाताहीका बंध वा उदय अर सत्व दोऊनिका ऐसैं च्यारि भंग हैं। बहुरि ऊपरि

१— सा सा अ अ
सा अ सा अ
२ २ २ २

२— सा सा
सा अ
२ २

३— ० ० ० ०
सा अ सा अ
२ २ सा अ

गुणस्थानसंदृष्टिः

सि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४

देवायुर्नरकायुर्बध्नीतः संज्ञ्यसंज्ञिनौ पूर्णौ । द्वादश नैकाक्षाद्या जीवसमासाः परे जातु ॥ २८१ ॥
पञ्चैकादशसूक्ताः प्रत्येकमसंज्ञिनि नव पर्याप्ते । संज्ञिनि दशकापूर्णे विंशतिरष्टाधिकाऽपूर्णे ॥ २८२ ॥
केवलिभगेन युतं त्रियुतमायुषो विकल्पानाम् । विज्ञातव्यं सद्भिर्जीवसमासेषु सर्वेषु ॥ १०३ ॥

सयोगी पर्यंत केवल साताहीका बंध है तातैं साताहीका बंध वा उदय अर सत्व दोऊनिका, अथवा साताका बध असाताका उदय सत्व दोऊनिका ऐसैं दोय ही भग हैं । बहुरि अयोगीविषैं बधका तौ अभाव है तातैं साताका उदय, सत्व दोऊनिका अथवा असाताका उदय, सत्व दोऊनिका अथवा साताहीका उदय साताहीका सत्व, अथवा असाताहीका उदय असाताहीका सत्व ऐसैं च्यारि भंग हैं । ६३३–६३४ ॥ (टोडर. कृत गोम वचनिका)

अब आयुकर्मके त्रिसयोगी भंगोंको जीवसमासोंमें बताते हैं ।—

सर्व जीवसमास चौदह हैं । उन चौदहमेंसे संज्ञी पर्याप्तक तथा असज्ञी पर्याप्तक–ये दो समासके जीव देवायुको तथा नरकायुको बाधते हैं, शेष एकेंद्रियादि बारह समासके जीव देव–नरकायुको कभी नहीं बांधते ॥ २८१ ॥

आयुके सर्व भग एकसौ तीन होना ऊपर बताया है । उनमेंसे कहांपर कितने होते हैं इस बातको आगे दिखाते हैं ।—

ग्यारह समासोंमेंसे प्रत्येकमें आयुके त्रिसंयोगसबंधी पाच पांच भंग होते हैं। इसलिये ग्यारह समासोंके पचपन भंग हो जाते हैं । असंज्ञी पर्याप्तक–इस एक जीवसमासमें नौ भंग होते हैं । ऊपरके ग्यारह और यह असंज्ञी पर्याप्तक एक–ऐसे बारह ही ये समास तथा इनमें होनेवाले आयुके त्रिसयोगजन्य भग तिर्यंचगतिमें ही पाये जाते हैं । संज्ञी अपर्याप्तक–इस तेरहवें समासमें दश भेद पाये जाते हैं । ये भेद मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें होते हैं । सज्ञी पर्याप्तक–इस चौदहवें समासमें अट्ठाईस भेद पाये जाते हैं । यह समास चारो गतियोंमें मिलता है । केवलियोंके एक भंग रहता है । इस प्रकार चौदह गुणस्थान पर्यंत चौदह ही समासोंमें आयुके त्रिसयोग द्वारा उत्पन्न हुए सर्व भग तीन अधिक सौ अर्थात् एकसौ तीन होते हैं ऐसा विद्वानोंको समझना चाहिये ॥ २८२–२८३ ॥

आसामर्थः—यस्मादेकादश जीवसमासाः श्वभ्रदेवायुषी न बध्नंति, ततस्तेषु तिरश्चामायुर्बंधभंगेभ्यो नवभ्यः श्वभ्रायुर्बंधभंगौ द्वौ, देवायुर्बंधभंगौ द्वौ, अपाकृत्य शेषा जीवसमासेष्वेकादशसु पंचपंचेति पचपंचाशद्भवंति।

	•	२	•	३	०
तत्र पंचानां संदृष्टिः—	२	२	२	२	२
	२	२-२	२-२	२-३	२-३

इन मूल कारिकाओंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है।—कारिकामें दो समासके जीव नरक तथा देवायुको बांधते है ऐसा कहा है और एकेंद्रियादि बारह समास नरक-देवायुको न बांधनेवाले बताये हैं। परंतु एकेंद्रियादि ग्यारह समासके जीव नरकायुको और देवायुको कभी नहीं बांधते हैं। इसलिये उन ग्यारह समासोंमें तिर्यंचोंके नौ आयुर्बंधसबंधी भंगोंमेंसे पांच पांच ही भंग होते हैं, दो नरकायुर्बंधके भंग और दो देवायुर्बंधके भंग ऐसे चार भंग यहां संभव नहीं हैं। इसलिये नौमेंसे चार भंग घट जानेसे प्रत्येक समासमें पांच पांच भंग होनेसे ग्यारह ही समासोंके पचपन भंग होते हैं।

पांच भंगोंका स्वरूप यंत्रद्वारा आगे देते हैं।—

बंध—	•	२	०	३	•
उ०—	२	२	२	२	२
स०—	२	२-२	२-२	२-३	२-३

इस प्रकरणमें भंग १-के अंकसे नरकायुका बोध करना चाहिये, २-से तिर्यंच आयुका, ३-से मनुष्य आयुका, ४-से देवायुका। एवं, ० शून्यसे अबंधका बोध करना चाहिये।

बं.—	०	२	०	१	०	३	०	४	०
ततः परमसञ्ज्ञिनि पर्याप्ते नव तिर्यग्भगाः—उ—	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स.—	२	२-२	२-२	२-१	२-१	२-३	२-३	२-४	२-४

सञ्ज्ञिनि दशापूर्णे यस्मादपूर्णसंज्ञी तिर्यङ्मनुष्यश्च श्वभ्रदेवायुषी न वध्नीतस्तस्मात्तिरश्चां मनुष्याणां चायुर्बंधभंगेभ्यो नवभ्यः श्वभ्रायुर्बंधभगौ देवायुर्बंधभगौ च हित्वा शेषाः पच पंचायुर्बंधभंगाः ५ । ५ ।

ग्यारह समासोंके आगे बारहवा समास असंज्ञी पर्याप्तक है । इसमें आयुके त्रिसंयोगी नौ भंग बताये हैं । इस असञ्ज्ञी पर्याप्तक नामके बारहवें समासके जीव केवल तिर्यच ही होते हैं । उदय इनके तिर्यच आयुका ही रहता है किंतु ये बध चारो आयुका करते हैं । उसका यंत्र इस प्रकार है ।—

बं०—	०	२	०	१	०	३	०	४	०
उ०—	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स०—	२	२-२	२-२	२-१	२-१	२ ३	२-३	२-४	२-४

इसके बाद तेरहवा समास सञ्ज्ञी अपर्याप्तक है । इसमें दश भग बताये हैं । इसका कारण यह है कि संज्ञी अपर्याप्तक जीव मनुष्य अथवा तिर्यंच होता है, वह नरकायु तथा देवायुको नहीं बाधता है । इसलिये देवायुके दो और नरकायुके दो ऐसे चार भगोंको छोडकर नौ भगोंमेंसे पाच भग तिर्यचोंके होते हैं और पाच ही मनुष्योंके होते हैं । इन तिर्यंचसबधी पाचको तथा मनुष्यसबंधी पांचको मिलानेसे सर्व सञ्ज्ञी अपर्याप्तकके दश भग होजाते हैं । दोनोंके यंत्र आगे देते हैं ।—

०	२	०	३	०	०	३	०	२	०
२	२	२	२	२	३	३	३	३	३
२	२ २	२-२	२ ३	२-३	३	३ ३	३-३	३-२	३-२

इत्थमपूर्णे सञ्ज्ञिनि भगाः १० ।

पंच श्वभ्रे भगा नव नव तिर्यङ्मनुष्ययोर्ज्ञेयाः । क्रमतो बध्नन् स्वायुर्बंधेऽपि च पच देवेषु ॥ २८४ ॥

५ । ९ । ९ । ५ ।

तिर्यंच आयुके उदयमें पांच भंग -

बं –	०	२	०	३	०
उ –	२	२	२	२	२
स. –	२	२-२	२-२	२-३	२-३

मनुष्यायुके उदयमें होनेवाले पांच भंग —

बं० —	०	३	०	२	०
उ० —	३	३	३	३	३
स० —	३	३-३	३-३	३-२	३-२

इस प्रकार तेरहवें सञ्ज्ञी अपर्याप्तक समासमें १० भंग हुए । अब चौदहवें सञ्ज्ञी पर्याप्तक समासमें चौदह भग आयुर्बंधत्रयीके होते हैं उन्हे दिखाते हैं ।

सञ्ज्ञी पर्याप्तकके भग नरकगतिके उदयमें पाच हैं, तिर्यंच तथा मनुष्योंमें अपनी अपनी आयुका भी बंध होता है इसलिये भग नौ नौ है । और देवोंमें नारकीके समान पांच हैं ॥ २८४ ॥

भावार्थ, एक भग अवधके समय होता है और चार आयुओंके क्रमसे बधोंमें दो दो भग समझने । ऐसे सर्व नौं भंग हो जाना संभव है । इन नौमेंसे नारकीके अपनी आयुके बधका अभाव होनेसे तथा देवायुके बधका अभाव होनेसे चार भग घट जाते हैं । किंतु मनुष्य तिर्यंचोंमें ये चार भी घटते नहीं हैं । इसलिये नौ नौ हैं ।

व.	०	२	०	३	०
उ	१	१	१	१	१
स	१	१-२	१-२	१-३	१-३

व.	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ.	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स.	२	२-१	२-१	२-२	२-२	२-३	२-३	२-४	२ ४

व.—	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ.—	३	३	३	३	३	३	३	३	३
स.—	३	३-१	३ १	३ २	३-२	३-३	३-३	३ ४	३ ४

वं.	०	२	०	३	०
उ.	४	४	४	४	४
स.	४	४-२	४-२	४-३	४-३

नारकगतिमें सञ्ज्ञी पर्याप्तकके पांच भा इस प्रकार हैं—

व०—	०	२	०	३	०
उ०—	१	१	१	१	१
स०—	१	१—२	१—२	१—३	१—३

तिर्यंच गतिमें नौ भग इप प्रकार हैं —

व०—	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ०—	२	२	२	२	२	२	२	२	२
स०—	२	२-१	२-१	२-२	२-२	२-३	२-३	२-४	२-४

मनुष्यगतिमें नौ भग इस प्रकार हैं —

व —	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ.—	३	३	३	३	३	३	३	३	३
स —	३	३-१	३-१	३-२	३-२	३-३	३-३	३ ४	३ ४

देवगतिमें पांच भग हैं वे इस प्रकार हैं—

वं.	०	२	०	३	०
उ	४	४	४	४	४
स.	४	४-२	४-२	४-३	४-३

पूर्णे संज्ञिनि श्वभ्रतिर्यङ्मनुष्यदेवायुर्बंधभंगा भवन्त्येते ५ । ९ । ९ । ५ । पिंडिताः २८ ।

एकः केवलिनि—
बं.— ०
उ.— ३
स.— ३ इत्थं सर्वे १०३ ।

गोत्रभंगाः कथ्यते—

उच्चं बंधे नीच पाके सत्त्वे द्वयं द्वयोर्नीचम् । उभयं सत्त्वे सर्वं नीचं भंगास्त्रयो ज्ञेयाः ॥ २८५ ॥

इस प्रकार संज्ञी पर्याप्तक समासमें नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवायुसंबंधी बंधत्रयके भंग क्रमसे ५ - ९ - ९ - ५ होते हैं। इसके जोड देनेसे सर्व २८ भंग हुए।

केवलीके—
बं ०
उ. ३
स ३ इस प्रकार सर्व १०३ भंग आयुके बंधत्रयमें होगए।

अब गोत्रके बंधत्रयसंबंधसे होनेवाले भंगोंको बताते हैं।—

बंधमें उच्चगोत्र, उदयमें नीचगोत्र, सत्तामें दोनो—यह एक भंग हुआ। दोनोंमें नीच अर्थात् बंधमें भी नीचगोत्र, उदयमें भी नीचगोत्र, और सत्तामें दोनो अर्थात् उच्चगोत्र भी, नीचगोत्र भी—यह दूसरा भंग हुआ। सर्वत्र अर्थात् तीनो स्थानोंमें नीच ही गोत्र—यह तीसरा भंग हुआ। गोत्रके इस प्रकार सामान्य तीन भंग हैं॥ २८५ ॥

१	०	•
०	०	•
१-०	१-०	०-०

चत्वारिंशदितैका जीवसमासेषु ते त्रयोदशसु । सञ्ज्ञिनि षट् पर्याप्ते प्रथमा द्वौ केवलिद्वन्द्वे ॥ २८६ ॥

प्रत्येकं त्रयस्त्रयस्त्रयोदशस्विति ३९ ।

सञ्ज्ञिनि पर्याप्ते सप्तानां भगानां षट् प्रथमाः—

१	१	०	०	०	
१	०	१	०	•	१
१-•	१-०	१-•	१-•	०-•	१-०

तेरह समासोंमेंसे प्रत्येकमें ये ही ऊपर बताये हुए तीन तीन भंग संभव हैं इसलिये तेरह समासोंके तीन गुणे करनेसे एक घाट चालीस अर्थात् उन्तालीस भग होते हैं । चौदहवें संज्ञी पर्याप्तक नामके समासमें छह भग होते हैं । केवली दोनोंमें आदिके दो भंग हैं ॥ २८६ ॥

तेरह समासोंमेंसे प्रत्येकमें जो तीन तीन भग होना बताया है वे तीन भग ऊपर बताये हैं उनका यत्र इस प्रकार है·—

बं.	१	०	•
उ.	•	०	०
स	१—•	१—०	०—०

केवलीके दो गुणस्थानोंको छोड़कर शेष गुणस्थानोंमें जो सञ्ज्ञी पर्याप्तक चौदहवें समासके छह भंग होना बताया उसका यंत्र इस प्रकार है·—

बं —	१	१	•	०	०	
उ —	१	०	१	०	•	१
स —	१–०	१–०	१--०	१--०	०--०	१--०

केवलिनोरंतिमौ द्वौ—१   १
                         १०   १

एते ३९। ६। २। पिंडिताः ४७।

गोत्रे भगाः सर्वे चत्वारिंशत्सप्त समाग्राः। वक्ष्याम्यधुना मोहे भंगविकल्पान् समासेन ॥ २८७ ॥
सूक्ष्मस्यापूर्णानां सप्तानामष्टजन्मिनामित्थम्। द्वाविंशतिरथ बंधे पाके सत्त्वे त्रितयमाद्यम् ॥ २८८ ॥

अष्टानां, बंधे २२। पाके १०। ९। ८। सत्त्वे २८। २७। २६।

दोनो केवलीके दो भतके भंग हैं वे इस प्रकार हैं —

बं॰ —
उ॰ — १   १
स॰ — १–०   १

तेरह समासोंके ३९ ×, संज्ञी पर्याप्तकके ६ ×, केवली द्वयके २ = मिलकर ४७ हुए।

गोत्रकी इस बंधत्रयीमें १ का अर्थ उच्च गोत्र है। ० का अर्थ नीच गोत्र है। ऐसा समझना। इस प्रकार गोत्रके सर्व भंग ४७ होते हैं। सत्तामें जहां १ तथा ० है वहां उच्च और नीच समझना, दशकी संख्या नहीं समझना।

अब संक्षेपसे मोहके भंगोंको कहते हैं। २८७।

चौदह समासोंमेंसे सात अपर्याप्त संबंधी समास हैं। और पर्याप्तके सात भेदोंमेंसे एक सूक्ष्म भेद लेना चाहिये। इस प्रकार आठ समासवाले जीवोंमें बंध बाईस का है। उदयमें और सत्तामें आदिके तीन तीन स्थान हैं। २८८।

आठ समासोंमें— बंधमें—२२।
उदयमें—१०। ९। ८।
सत्तामें—२८। २७। २६।

सज्ञिनमेकं हित्वा पचानामादिमानि पूर्णानाम्। द्वे चत्वारि त्रीणि क्रमतः स्युर्बंधपाकसत्त्वेषु ॥ २८९ ॥

पचाना पूर्णाना, बंधे २२ । २१ । उदये १० । ९ । ८ । ७ । सत्त्वे २८ । २७ । २६ ।

संज्ञिनि पूर्णे बंधे दश पाके नव मतानि सत्तायाम्। पचदश स्थानानि प्रमथितमोहारिभिर्मोहे ॥ २९० ॥

सज्ञिनि पूर्णे, सर्वाणि बंधे २२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१ । पाके १०।९।८।७।६।५।४।२।१। सत्तायां २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

संज्ञी पर्याप्तकको छोड़कर शेष पर्याप्तक पांच समासोंमें बंधमें आदिके दो स्थान हैं, उदयमें आदिके चार स्थान हैं, सत्तामें आदिके तीन स्थान हैं ऐसा क्रमसे समझना चाहिये। २८९।

पांच पर्याप्तकोंमें बंधमें—२२ । २१ ।

उदयमें—१० । ९ । ८ । ७ ।

सत्तामें—२८ । २७ । २६ ।

इस प्रकार तेरह समासोंमें बंधोदयसत्त्वको बताकर अब चौदहवें संज्ञीपर्याप्तकमें बंधोदयसत्त्वको बताते हैं।—

संज्ञी पर्याप्तक समासमें बंधमें दश स्थान, उदयमें नौ स्थान, सत्तामें पंद्रह स्थान, मोहशत्रुका नाश करनेवालोंने माने हैं। २९० ॥

संज्ञी पर्याप्तकमें—बंधमें—२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ ।

उदयमें— १०, ९ ८, ७, ६, ५, ४, २, १ ।

सत्तामें— २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १ ।

इस प्रकार मोहके त्रिसंयोगी भंग समाप्त हुए।

इतो नामकर्म कथ्यते—

बंधे पाके सत्त्वे पंच द्वे पच पच चत्वारि । पंच त्रितये पंच क्रमतः पचाथ षट् पंच च ॥ २९१ ॥
षट् षट् पचाष्टाष्टावेकादश नामकर्मणः संति । स्थानानि स्थानज्ञैर्जीवसमासेषु योज्यानि ॥ २९२ ॥

५	५	५	५	६	८
२	४	५	६	६	८
५	५	५	५	५	११

अत्र नामकर्मके त्रिसंयोगी भंगोंको दिखाते हुए चौदह समासोंमें छह प्रकारके बंधोदयसत्त्वको दो कारिकाओंसे गिनाते हैं।

नामकर्ममें त्रिसंयोगी भंग सर्व छह प्रकार हैं। उन छह प्रकारोंमेंसे एक प्रकार ऐसा है जिसमें बंधके पाच स्थान संभव हैं, उदयके दो स्थान संभव हैं, और सत्ताके पांच स्थान संभव हैं। दूसरा प्रकार ऐसा है कि उसके बंधमें पांच स्थान हैं, उदयमें चार स्थान हैं, सत्तामें पांच स्थान हैं। फिर तीसरा प्रकार ऐसा है कि उसके बंधमें भी पाच ही स्थान हैं, उदयमें भी पांच ही स्थान हैं, सत्तामें भी पांच ही स्थान हैं। फिर एक चौथा प्रकार ऐसा है जिसके बंधमें पांच स्थान हैं, उदयमें छह स्थान हैं, सत्तामें पांच स्थान हैं। फिर पांचवां प्रकार ऐसा है कि उसके बंधमें छह स्थान हैं, उदयमें भी छह स्थान हैं, सत्तामें पांच स्थान है। फिर एक छट्ठा ऐसा प्रकार है कि उसके बंधमें आठ स्थान हैं, उदयमें भी आठ स्थान हैं, सत्तामें ग्यारह स्थान हैं। स्थान जाननेवालोंको चाहिये कि इन स्थानोंको जीवसमासोंमें यथासंभव लगावें। २९१—२९२।

छह प्रकारके स्थानोंको त्रिसंयोगमें दिखानेवाला यंत्र—

बं०	५	५	५	५	६	८
उ०	२	४	५	६	६	८
स०	५	५	५	५	५	११

सप्तापर्याप्तकाः सूक्ष्मो बादरो विकलत्रयम् । असंज्ञी क्रमतः सञ्ज्ञी स्वामिनः स्युश्चतुर्दश ॥ २९३ ॥

क्रमादेषां स्वामिसंख्या ७ । १ । १ । ३ । १ । १

विंशतिरपूर्णकानां त्रिपचषट्नवदशाधिका बंधे । स्थानानि पंच दक्षैः सप्तानामिह निगद्यन्ते ॥ २९४ ॥

२३ । २५ । २६ । २९ । ३० ।

ऊपर छह प्रकारके त्रिसंयोग जो बताये उनमेंसे कौनसा प्रकार किस समासमें संभव है-इस बातको आगेकी कारिकासे दिखाते हैं ।—

पहिले प्रकारके त्रिसंयोगी भंगके स्वामी सात अपर्याप्तक समास हैं। दूसरे प्रकारका त्रिसंयोगी भंग पर्याप्तक सातमेंसे एक सूक्ष्म पर्याप्तकमें होता है । तीसरे प्रकारका त्रिसंयोग बादर पर्याप्तकमें होता है । चौथे प्रकारका त्रिसयोग पर्याप्तक तीन विकलेंद्रियोंमें होता है । पांचवें प्रकारका त्रिसंयोग असञ्ज्ञी पर्याप्तकमें होता है । छठे प्रकारके त्रिसंयोगका स्वामी संज्ञी पर्याप्तक है । ऐसे क्रमसे समझना । २९३ ।

इन छहो त्रिसयोगी प्रकारोंके स्वामी, चौदह समासोंमेंसे क्रमसे—७, १, १, ३, १, १—इस प्रकार हैं ।

अब इन त्रिसंयोगी प्रकारोंके बंधादिसंबंधी जो स्थान हरएकमें लगते बताए हैं वे कौन कौनसे स्थान हैं इस बातको आगे स्पष्ट करते हैं ।—

सात अपर्याप्तकोंमें बंध संबंधी पांच स्थान बताये हैं उनमेंसे एक तीन अधिक वीसका, दूसरा पांच अधिक वीसका, तीसरा छह अधिक वीसका, चौथा नौ अधिक वीसका, पांचवां दश अधिक वीसका है। इस प्रकार—२३ का, २५, का, २६, २९ का, ३० का-ये पांच स्थान बंधके प्रथम प्रकारमें समझने चाहिये । २९४ ।

एकविंशतिपाकोऽस्ति सूक्ष्मापर्याप्तकेंगिनि । चतुर्विंशतिपाकोऽस्ति स्थूलापर्याप्तके पुनः ॥ २९५ ॥

२१ । २४ ।

पाकेऽन्येषामपूर्णानां पचानां विंशती स्मृते । एकषट्सहिते प्राञ्जिरतः सत्त्व निगद्यते ॥ २९६ ॥

२१ । २६ ।

द्व्युत्तरा नवतिः सा च रहिता द्विषडष्टभिः । नवतिः क्रमतस्तेषां सत्त्वस्थानानि पंच वै ॥ २९७ ॥

९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । सप्तस्वपूर्णेष्विति गतम् ।

इस प्रथम भंगमें उदयस्थान दो हैं उन्हें आगे बताते हैं ।—

यहां २ इक्कीसका तथा चौवीसका ये दो उदयस्थान हैं । उनमेंसे सूक्ष्म अपर्याप्तक नामके समासमें उदय इक्कीसका है, और दूसरा उदयस्थान चौबीसका है वह बादर अपर्याप्तक नामके समासमें रहता है । इक्कीसके स्थानमें अथवा चौबीसके स्थानमें प्रकृति कौन कौनसी रहती हैं—इस प्रकरणका वर्णन पूर्वमें इसी पांचवें परिच्छेदकी ११२ वीं कारिकासे लेकर आ चुका है ॥२९५॥

सर्व अपर्याप्तक समास सात हैं । उनमेंसे दो अपर्याप्तकोंमें संभव होनेवाले दो उदयस्थानोंको ऊपर बताया । अब शेष रहे पांच अपर्याप्तकोंमें दो उदयस्थान कौनसे हैं—इस बातको आगे बताते हैं ।—

अन्य अर्थात् अवशिष्ट रहे पाच अपर्याप्तकोंके दो उदयस्थान—एक इक्कीसका, दूसरा छब्बीसका – ये हैं । श्लोकमें एक सहित वीसका अर्थ इक्कीस है और छह सहित वीसका अर्थ छब्बीस है । ये भी स्थान किन प्रकृतियोंसे बनते हैं—सो पूर्वमें बताया है । प्रथम भंगके बंध तथा उदयसम्बन्धी स्थानोंको बताकर सत्ताके स्थान इसके आगे बतानेवाले हैं । २९६ ॥

सत्त्वस्थान प्रथम भंगमें पांच बताये हैं । उनमेंसे दो अधिक नब्बेका अर्थात् बानवेंका एक स्थान है। दूसरा स्थान 'सा च' अर्थात् केवल नब्बेका है । इसके आगे नब्बेमें क्रमसे दो संख्या घटानेसे, छह संख्या घटानेसे, आठ संख्या घटानेसे—तीसरा स्थान अठासीका, चौथा स्थान चौरासीका, पांचवां स्थान व्यासीका होजाता है । इस प्रकार—९२का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—ये पांच स्थान हुए । २९७ ॥

सात अपर्याप्तक समासोंमें यह त्रिसंयोगी प्रथम भंग बताया है उसके बंधोदयसत्त्व सम्बन्धी स्थानोंका यह स्पष्टीकरण हुआ।

॥५१४॥

सूक्ष्मे स्थानानि पूर्वाणि पर्याप्ते बंधसत्त्वयोः। पाकेऽस्त्येकचतुःपंचषडग्रा विंशतिः पुनः ॥ २९८ ॥

सूक्ष्मे पूर्णे बंधा —२३।२५।२६।२९।३०। उदयाः-२१।२४।२५।२६। सत्त्वानि-९२।
९०।८८।८४।८२।

पूर्णे स्थानानि पूर्वाणि बादरे बंधसत्त्वयोः। सप्तविंशतिपर्यन्ता पाकाः सत्यैकविंशतेः ॥ २९९ ॥

पूर्णे बंधाः- २३।२५।२६।२९।३०। उदया —२१।२४।२५।२६।२७। सत्त- ९२।९०।८८।८४।८२।

अब जो सात पर्याप्तक समासोंमें त्रिसंयोगी नामक पांच भंग बताये हैं उनका खुलासा आगे करते हैं।—

सूक्ष्म पर्याप्तक नामके एक समासमें नामका दूसरा भंग है। उसमें बंधके स्थान पांच हैं, उदयके चार हैं, और सत्ताके पांच हैं। उनमेंसे बंध तथा सत्ताके पांच पांच स्थान प्रथम भंगके बंधसत्त्वके समान जो ऊपर बताये हैं वे ही हैं। उदयस्थान इक्कीसका, चौवीसका, पच्चीसका, छव्वीसका-ये चार हैं ॥ २९८ ॥

सूक्ष्म पर्याप्तक समासमें बंधके स्थान- २३, २५, २६, २९, ३० ये पांच। उदयस्थान-२१, २४, २५, २६ ये चार। सत्तास्थान—९२, ९०, ८८, ८४, ८२ ये पांच।

सात पर्याप्त समासोंमेंसे दूसरा एक समास बादर पर्याप्त नामका है। इस समासमें तीसरा बंधत्रयीका भंग बताया है। उस तीसरे भंगमें पांच ही बंधस्थान हैं, पांच ही उदयस्थान हैं और पांच ही सत्त्वस्थान हैं। इनमेंसे बंध तथा सत्त्वसंबंधी पांच पांच स्थान जो ऊपरके भंगमें बताये हैं वे ही हैं। किंतु उदयके पांच स्थान इक्कीसके स्थानसे लेकर सत्ताईसके स्थान पर्यंत हैं वे समझने चाहिये। इन स्थानोंमें भी एक सत्ताईसका स्थान नवीन है। शेष चार स्थान पूर्वके समान ही हैं। २९९।

पर्याप्तक बादर समासमें बंधस्थान पांच—२३ का, २५ का, २६ का, २९ का, ३० का। उदयस्थान पांच—२१ का, २४ का, २५ का, २६ का, २७ का। सत्तारूप पांच स्थान—९२ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का।

विकलत्रितये बंधसत्वस्थानानि पूर्णके । प्रत्येकं संति पूर्वाणि पंचसंख्यानि निश्चितम् ॥ ३०० ॥
एकद्वित्रिचतुर्न्यूना द्वात्रिंशद्विंशतिः पुनः । षडेकाग्रात्क्रमात्षट्कं पाकस्थानगतं स्मृतम् ॥ ३०१ ॥

बंधे- २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । उदये- २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्त्वे—९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

अब चौथा भंग जो विकलत्रयमें बताया है उसके बंधोदयसत्त्वसंबंधी पाच छह तथा पांच स्थान कौन कौनसे हैं इस बातको आगे बताते हैं ।—

पर्याप्तसंबंधी विकल तीनोंमें बंध तथा सत्त्वके स्थान पांच पांच बताये हैं वे पूर्वमें जो बताये हैं वे ही निश्चित हैं ॥ और उदयके स्थान यहां प्रत्येक तीनोंमें छह छह हैं वे इस प्रकार हैं ।—

एक अंतिम स्थान, एक घट बत्तीसका है । दूसरा अंतके पूर्वका स्थान दो घट बत्तीसका अर्थात् तीसका है । तीसरा तीन घाट बत्तीसका अर्थात् उन्तीसका है । चौथा चार घाट बत्तीसका अर्थात् अट्ठाईसका है । ये चार स्थान अन्तकी तर्फसे पूर्व पूर्वके क्रमसे समझने चाहिये । और फिर उससे पूर्वका छह अधिक बीसका एक पांचवां स्थान अर्थात् छब्बीसका है । उससे भी पूर्वका छट्ठा स्थान एक अधिक बीसका अर्थात् इक्कीसका है ॥३००-३०१

बंधमें... २३, २५, २६, २९, ३० — ये पांच स्थान ।
उदयमें... २१, २६, २८, २९, ३०, ३१ — ये छह स्थान ।
सत्तामें .. ९२, ९०, ८८, ८४, ८२, — ये पांच स्थान ।

त्रिशदंता मता बंधास्त्रयोविंशतिपूर्वकाः। विकलावगताः सत्त्वपाकाः पूर्णे त्वसज्ञिनि ॥ ३०२ ॥

बंधाः-२३। २५। २६ २८। २९। ३०। उदयाः- २१ ।२६। २८। २९। ३०। ३१ सत्त्वि-९२। ९०। ८८। ८४। ८२।

बंधे सर्वाणि पाकेऽष्ट पर्याप्ते सति सज्ञिनि। नवाष्टक परित्यज्य चतुरग्रां च विंशतिम् ॥ ३०३ ॥

संति स्थानानि सत्तायां परिमुच्याग्रिम द्वयम्। आद्यान्येकादशान्यानि क्रमेणात्र विसश्यन् ॥ ३०४ ॥

अब असंज्ञी पर्याप्तक नामके समासमें जो ऊपर पांचवां भंग नामकी बंधत्रयीका बताया है उसका आगे खुलासा करते हैं।—

असंज्ञी पर्याप्तक समासमें बंधके छह स्थान, उदयके छह स्थान, तथा सत्ताके पांच स्थान बताकर पांचवां भंग बताया है उनमेंसे बंधके छह स्थान तो तेईसके स्थानसे लेकर तीसके स्थान पर्यंत हैं; और सत्तासंबंधी तथा उदयसंबंधी स्थान वे ही समझने चाहिये जो विकलत्रयमें सत्त्वोदयके स्थान बताये गये हैं। ३०२।

बंधके स्थान-२३, २५, २६, २८, २९, ३०-ये छह हैं। उदयस्थान—२१, २६, २८, २९, ३०, ३१। ये छह हैं। सत्तास्थान-९२, ९०, ८८, ८४, ८२—ये पांच हैं।

नामका छट्ठा बंधत्रयस्थान आठ-आठ-ग्यारहका ऊपर बताया है। वह संज्ञी पर्याप्तक समासमें होता है। उसका आगे खुलासा करते हैं।—

पाचवें परिच्छेदकी ६० वीं ६१ वीं इन दो कारिकाओंमें नामकर्मके बंधस्थान सर्व आठ ही बताये हैं। वे सभी आठ स्थान संज्ञी पर्याप्तक नामके समासमें संभव हैं। उदयके नामस्थान इसी परिच्छेदकी ११२ वीं कारिकामें सर्व ग्यारह बताये हैं। उनमेंसे नौका एक स्थान, आठका एक स्थान, तथा चार अधिक वीसका—चौवीस का एक स्थान-ये तीन सज्ञी पर्याप्तक समासमें नहीं मिलते। इसलिये सज्ञी पर्याप्तकमें इन तीनको छोडकर शेष आठ उदयस्थान रहते हैं। इसी पाचवें परिच्छेदकी २२२ वीं कारिकामें नामके सत्तास्थान सर्व तेरह बताये हैं। उनमेंसे अंतिम दो स्थान एक दशका, दूसरा नौ का—ये दो

बंधाः-२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । उदयाः-२१ । २५ । २६। २७। २८। २९ । ३० । ३१ । संति—९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ।

उदये क्रमतस्त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्ट च । षडग्रिमाणि सत्तायां संति केवलिनोर्द्वये ॥ ३०५ ॥

उदये—३० । ३१ । ९ । ८ । सत्तायां—८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

इति जीवसमासप्ररूपणा समाप्ता ।

सञ्ज्ञी पर्याप्तकमें नहीं रहते हैं । इसलिये इन अग्रिम दो स्थानोंको छोडकर शेष आदिके ग्यारह स्थान संज्ञी पर्याप्तकमें रहते हैं। ऐसा निःसंशय क्रमसे समझो । ३०३—३०४ ।

बंधके आठ स्थान-२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १।

उदयके आठ स्थान-२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१।

सत्तास्थान ग्यारह—९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ ।

केवलीके नामका बंध नहीं होता है इसलिये उदय तथा सत्ताके स्थानोंको आगे केवलीमें दिखाते है ।—

तेरहवें तथा चौदहवें—इन दो गुणस्थानवर्ती केवलियोंके उदयमें क्रमसे तीसका अथवा इकतीसका स्थान प्रथम होता है और आगे नौका अथवा आठका स्थान होता है । ये विकल्प तीर्थंकर अथवा सामान्य केवलीपनेके निमित्तसे होते हैं । तीर्थंकर केवलीके प्रथम अवस्थामें इकतीसका उदय है और सामान्य केवलीके तीसका उदय है । फिर अंतमें तीर्थंकरके नौका उदय है और सामान्यके आठका है। इस प्रकार केवलीके उदयस्थान सर्व चार हुए । दोनो ही गुणस्थानवर्ती केवलियोंके सत्ताके स्थान अंतके छह हैं । ३०५ ।

केवलियोंके उदयमें चार स्थान-३०, ३१, ९, ८ । सत्तामें अंतके छह स्थान—८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ ।

इस प्रकार जीवसमासके आधारपर नामकर्मकी बंधत्रय प्ररूपणा समाप्त हुई ।

बन्धनोदयसत्त्वेषु ज्ञानरोधान्तराययोः । गुणानां दशके पंच द्वितये पाकसत्त्वयोः ॥ ३०६ ॥

गुणस्थानद्शके—५ ५ । ५ ५ । ५,५ । शांक्षणयाः—०,० । ५,५ । ५,५ ।

दग्रोधे नवकं षट्कं चतुष्कमिति त्रयम् । बधे सत्त्वे द्वय पाके चतुष्कं पचकं च वै ॥ ३०७ ॥

अब आगे ज्ञानावरण तथा अंतरायकी बधउदयसत्त्वरूप प्रकृतियोंकी सख्याको गुणस्थानोंमें दिखाते हैं ।—

ज्ञानावरणकी तथा अंतरायकी पांच पांच प्रकृति ही पहिलेसे दशवें गुणस्थान पर्यंत दश गुणस्थानोंमें बंधोदयसत्तामें रहती हैं । अर्थात् बंधमें भी पांच ही पाच हैं, सत्तामें भी पांच ही पाच हैं, और उदयमें भी पांच ही पाच है । दशवेंके आगे दो गुणस्थानोंमें—ग्यारहवेंमें तथा बारहवेंमें भी उदय तथा सत्तामें पांच पांच ही ज्ञानावरण तथा अंतरायकी प्रकृति हैं । इन दो गुणस्थानोंमें ज्ञानावरणका तथा अतरायका बंध नहीं है इसलिये बधकी प्रकृतिसख्या नहीं दिखाई है । ३०६ ॥

	बं० — ५		बं० — ५	
पहिले दश गुणस्थानोंमें ज्ञानावरण—	उ० — ५		अतराय—	उ० — ५
	स० — ५			स० — ५

	बंध— ०		बं०— ०	
उपशान्त तथा क्षीणकषायमें ज्ञानावरण—	उ०— ५		अंतराय—	उ०— ५
	स— ५			स०— ५

अब आगे दर्शनावरणकी प्रकृतिसख्याको बधोदयसत्त्वमें बताते हैं ।—

दर्शनावरणकी सर्व नौ प्रकृति हैं । उनमेंसे बधमें नौ भी रहती हैं, छह भी रहती हैं और चार भी रहती हैं—ऐसे बंध तीन प्रकारसे होता है । सत्तामें भी तीन प्रकार है—एक नौका, दूसरा छहका, तीसरा चारकी सत्त्वका । उदयमें चार प्रकृति अथवा पांच प्रकृति ऐसे दो प्रकार रहते हैं । ३०७ ।

आद्यद्वितीययोः संति बन्धे सत्त्वे नव स्फुटम् । चतस्रः पंच वा संति सर्वत्राप्युदये पुनः ॥ ३०८ ॥

	बं.	९,	९ ।
मिथ्यादृष्टिसासादनयोः—	उ.	४,	५ ।
	स.	९,	९ ।

षड्बंधकेषु सत्तायां संति प्रकृतयो नव । मिश्राद्यपूर्वादिमापूर्वसप्तभागावसानिकाः ॥ ३०९ ॥

इस ऊपरके कथनका आगे खुलासा करते हैं ।—

आदिके दो गुणस्थानोंमें बंधमें दर्शनावरणकी नौं प्रकृति रहती हैं और सत्तामें भी नौं ही रहती हैं । और उदय तो केवल यहीं नहीं किंतु जहांतक संभव है वहांतक सर्वत्र चार प्रकृतिका अथवा पांच प्रकृतिका—ऐसे दो दो प्रकारका ही रहता है। इस उदयमें भी इतना विशेष है कि क्षीणकषायके अंतिम समयमें उदय केवल चारका ही है । क्योंकि, उपांत्य समयमें शेष रही निद्राओंका विच्छेद होजाता है । ३०८ ।

	बं—	९	९ ।
मिथ्या दृष्टि तथा सासादनमें	उ—	४	५ ।
	स—	९	९ ।

सासादन गुणस्थानमें दर्शनावरणकी तीन प्रकृतियोंका बंधविच्छेद होता है इसलिये तीसरे मिश्र गुणस्थानसे लेकर छह दर्शनावरणोंका बंध होता है । यह छहका बंध-दो प्रकारके अपूर्वकरणके सात उत्तर भेदोंमेंसे प्रथम भेदपर्यंत, तीसरे गुणस्थानसे लेकर होता है । इन गुणस्थानोंमें सत्त्वकी प्रकृति नौं नौं रहती हैं । और ऊपर उदयका नियम ऐसा बताया है कि उदय सर्वत्र ही चारका अथवा पांचका रहता है । ३०९ ।

	६,	६ ।
मिश्राद्येष्वपूर्वकरणद्वयप्रथमभाग यावत् —	४,	५ ।
	९,	९ ।

चतुर्धो मतो द्वेधा शमकेतरभेदत । शमके नव सत्तायां क्षपके षट् प्रकीर्त्तिताः ॥ २१० ॥
अष्टमे नवमे सूक्ष्मोपशमके नव भाषिताः । क्षपके नवमे सूक्ष्मे सत्तायां षड् निरूपिताः ॥ २११ ॥

	४,	४ ।
शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मशमकेषु —	४,	५ ।
	९,	९ ।

	बं.	६	६
मिश्रसे लेकर दोनों प्रकारके अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यंत—	उ.	४	५
	स	९	९

अपूर्वकरणके प्रथम भागमें दो दर्शनावरणोंकी बंधसे व्युच्छित्ति होती है इसलिये आगे चाहे उपशमक हो अथवा क्षपक हो-दोनो प्रकारके ऊपरके स्थानोंमें बंध चार प्रकृतिका रह जाता है । और उपशमवालेके आठवें गुणस्थानमें, नौवेंमें, तथा दशमें उपशमवाले सूक्ष्मलोभमें भी सत्तामें नौ दर्शनावरण रहते हैं । एवं क्षपक श्रेणीवाले नौवें गुणस्थानमें तथा — क्षपक सूक्ष्मलोभ नामके दशवें गुणस्थानमें सत्तामें छह छह प्रकृति बताई हैं। भावार्थ, क्षपक श्रेणीवालेके दर्शनावरणकी तीन प्रकृतियोंका नौवें गुणस्थानसे प्रथम ही सत्ताविच्छेद होजाता है। और उदय सर्वत्र ही चारका किंवा पांचका है। २१०-२११ ।

दोनो अपूर्वकरणमें प्रथम भागके आगे शेष सर्व भागोंमें, और	ब.	४	४
उपशमक अनिवृत्तिकरणमें, तथा उपशमक ही सूक्ष्मलोभमें —	उ. .	४	५
	स ...	९	९

॥५२१॥

	४,	४ ।
अनिवृत्तिसूक्ष्मक्षपकेषु—	४,	५ ।
	६,	६ ।

निवृत्तबन्धने शान्ते सत्तायां नव भाषिताः । षडादिमे क्षणे ज्ञेयाश्चतस्रश्चरमे क्षणे ॥ ३१२ ॥

	०	० ।		०	० ।		०
शान्ते—	४	५ ।	क्षीणे—	४	५ ।	क्षीणान्त्यक्षणे—	४
	९	९ ।		६	६ ।		४

इति सर्वे दर्शनावरणीयस्य १३ ।

	बं	४	४
क्षपक श्रेणिके अनिवृत्तिकरणमें और क्षपक ही सूक्ष्मलोभमें—	उ	४	५
	स .	६	६

उपशान्तकषायसे लेकर दर्शनावरणके बंधका अभाव होजाता है। उपशांतकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें सत्तामें नौ ही प्रकृति रहती हैं। क्षीणकषायके आदि समयसे सत्तामें प्रकृति छह रहती हैं और अन्त्य समयमें चार प्रकृति सत्तामें रहती हैं। भावार्थ, अंत्य समयमें सत्ता ही चारकी है इसलिये उदय भी केवल चारका ही रहताहै। और इससे पहिले उपांत्य समय पर्यंत उदय चारका भी रहता है, पांचका भी रहता है। ३१२।

	बं .	०	०		बं	०	०		बं...	०
उपशातमें...	उ ..	४	५	क्षीणके उपांत्य समयमें	उ	४	५	क्षीणके अंत्य समयमें...	उ...	४
	स. .	९	९		स	६	६		स...	४

इस प्रकार दर्शनावरणके सर्व भंग बताये ।

द्वाचत्वारिंशतं वेद्ये त्रयोदशयुत शतम् । आयुष्याहुर्जिना भंगान् गोत्रे पंचाग्रविंशतिम् ॥ ३१३ ॥
४२ । ११३ । २५ ।

चत्वारः प्रथमाः षट्के द्वावाद्यौ सप्तके परे । अत्या वेद्यस्य चत्वारो भंगा योगविवर्जिते ॥ ३१४ ॥

तत्र मिथ्यादृष्टीनां प्रमत्तान्तानां षण्णां प्रत्येकं प्रथमाश्चत्वारो वेद्यस्य भंगाः—

१	१	०	०
१	०	१	०
१ ०	१-०	१-०	१-०

वेदनीयकर्ममें जिनेंद्रने व्यालीस भंग बताये हैं। आयुमें एकसौ तेरह भंग बताये हैं। गोत्र कर्ममें पच्चीस भंग बताये हैं (-४२ । ११३ । २५ ।) ॥ ११३ ॥

अब आगे वेदनीयके व्यालीस भगोंको गुणस्थानोंमें विभक्त करके दिखाते हैं।—

' षट्के ' अर्थात् प्रथमके छह गुणस्थानोंमें वेदनीयमें आदिके चार चार भंग होते हैं। सातवेंसे तेरहवें पर्यंत सात गुणस्थानोंमें आदिके दो दो भग होते हैं। और योगरहित अयोग केवली नामके एक चौदहवें गुणस्थानमें अंतके चार भग होते हैं। ३१४।

भावार्थ, वेदनीयके सर्व मूल भंग आठ होना बताया है। उनमेंसे चार आदिके भगोंका यंत्र यहा आगे देते है और चार अंतके भंगोंका यत्र इसके आगे देंगे। यहांपर जो चार भगका यत्र है वह आदिके छह गुणस्थानोंमें सभव भगोंकी अपेक्षासे दिखाया है। अथवा गुणस्थानोंकी अपेक्षाको न लेकर भी ससारी जीवोंमें देखें तो भी ये चार भग समवते हैं।

पहिले चार भगोंका यत्र—

बध—	१	१	०	०
उदय—	१	०	१	०
सत्ता—	१-०	१-०	१-०	१-०

इस यंत्रके चार भगोंमेंसे प्रथम भंगका अर्थ यह है कि बंधमें भी १-अर्थात् सातावेदनीय, उदयमें भी १-अर्थात् साता-

इत्थं पट्के मीलिताः २४ । परत्र मतके प्रथमौ द्वौ द्वौ—

१,	१
१,	०
१-०	१-०

इत्थ १४ ।

योगवर्जितेन्त्याश्चत्वारः—

१	०	०	१
१-०	१-०	०	१

इत्थ सर्वे ४२ ।

वेदनीय, और सत्तामें १ तथा ०-अर्थात् साता भी और असाता भी । दूसरे आदि भंगोंका भी अर्थ इसी प्रकारसे समझलेना चाहिये । वेदनीयके ये चार भंग पहिले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर छट्ठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यंत छह गुणस्थानोंमें मिलते हैं । इसलिये छहो गुणस्थानोंके चार चारको छह बार रखकर परस्परमें गुणा करनेसे चौवीस भंग होजाते हैं । छट्ठे गुणस्थानसे ऊपरके सात गुणस्थानोंमें इस ऊपर बताये यंत्रमेंसे पहिला और दूसरा जो भंग है वह संभव है । इसलिये ऊपरके तेरहवें पर्यंत सात गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येकके दो दो भंग माननेसे सातके दूने चौदह भंग इन सात गुणस्थानोंमें हो जाते हैं ।

अंतके अयोग केवली चौदहवें गुणस्थानमें भी चार भंग हैं परन्तु वे अतके चार हैं ।

इन चारमें बंधकी प्रकृतिका समावेश नहीं है । इसका कारण यह है कि अयोग केवलीके वेदनीयके बंधका अभाव हो जाता है । इसलिये इस आगेके यंत्रमें केवल उदय तथा सत्ताकी ही प्रकृति दिखाई हैं । यंत्र इस प्रकार है ।—

उ०—	१	०	०	१
स०—	१—०	१—०	०	१

प्रथमके छह गुणस्थान संबंधी २४ भंग, फिर आगेके सात गुणस्थान संबंधी १४ भंग, और अयोगकेवलीके ४ भंग = ये सर्व मिलानेसे ४२ भंग वेदनीयके हो जाते हैं । इस प्रकरणके यंत्रोंमें शून्यका अर्थ असाता है ।

इस प्रकार वेदनीयके भंग कहे ।

॥५२४॥

अष्टाविंशतिराद्ये षड्विंशतिः स्रस्तदर्शने । मिश्रे षोडश सद्दृष्टौ विंशतिः षडतः परे ॥ ३१५ ॥
त्रयस्त्रयो द्वयोर्द्वौ द्वौ चतुर्ष्वेकैककस्त्रिषु । शतं त्रयोदशालीढं भंगानामायुषो मतम् ॥ ३१६ ॥
मिथ्यादृष्ट्यादिषु भंगाः—२८ । २६ । १६ । २० । ६ । ३ । ३ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । मीलिताः ११३ ।
भंगाः पंच नव प्रोक्ता नव पंच यथाक्रमम् । श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवानामष्टाविंशतिरैक्यतः ॥ ३१७ ॥
५ । ९ । ९ । ५ । मीलिताः २८ ।

अब आयुके ११३ भंगोंको गुणस्थानोंके भेदद्वारा दिखाते हैं ।—

आयुके एकसौ तेरह भेदोंमेंसे आदिके गुणस्थानमें सर्वत्रके मिलाकर अट्ठाईस भेद संभव हैं । स्रस्तदर्शन—दूसरे गुणस्थानमें छव्वीस भंग रहते हैं । मिश्र—तीसरे गुणस्थानमें सोलह भंग रहते हैं । असंयत सम्यग्दृष्टि—चौथे गुणस्थानमें वीस भंग रहते हैं । चौथेसे आगेके पांचवें गुणस्थानमें छह भंग रहते हैं । इसके आगे फिर छट्ठे सातवें—इन दो गुणस्थानोंमें तीन तीन भंग रहते हैं । फिर आगेके आठवेंसे ग्यारहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें दो दो भंग रहते हैं । इसके आगे बारहवें तेरहवें चौदहवें—इन तीन गुणस्थानोंमें एक एक भंग रहता है । इस प्रकार आयुकी बंधत्रयीमें गुणस्थानोंके भेदसे जुदे जुदे भंग गिनें तो एकसौ तेरह सर्व होते हैं । ३१५—३१६ ।

मिथ्यादृष्ट्यादि चौदह गुणस्थानोंमें क्रमसे भंगसंख्या— २८ । २६ । १६ । २० । ६ । ३ । ३ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । = मिलानेसे ११३ हुए ।

मिथ्यादृष्टिके अट्ठाईस भंग बताये वे इस प्रकार हैं कि—

नारकोंमें पांच, तिर्यंचोंमें नौ, मनुष्योंमें नौ, देवोंमें पांच यथाक्रमसे समझने चाहिये । इकट्ठे करनेसे ये सर्व अट्ठाईस होजाते हैं । ३१७ ।

उदितं विद्यमानं च देहिन्यायुरबध्नति । बध्यमानोदिते ज्ञेये विद्यमाने प्रबध्नति ॥ ३१८ ॥
तत्र बद्धोदिते बद्धे विद्यमाने निवेदिते । ज्ञेया भगाः क्रमादक्षैरित्थं गतिचतुष्टये ॥ ३१९ ॥

	बं.	०	२	०	३	०
एषां सद्दष्टिर्नारकेषु--	उ.	१	१	१	१	१
	स	१	१-२	१-२	१-३	१-३

आगे ग्रंथकार भंगोंकी रचना करते हैं ।—

नवीन आयुको नहीं बांधा उस जीवमें एक उदयागत आयुको और एक विद्यमान अर्थात् सत्ताकी आयुको लेकर एक पहिला भंग होता है । नवीन आयुको बांधनेवालेमें एक कोई भी बध्यमान आयु, एक उदयप्राप्त आयु, और दो विद्यमान अर्थात् सत्ताकी आयु— इस प्रकारके यथासंभव भंग होते हैं । एवं, जिसने नवीन आयुको कभी बांध लिया है परंतु वर्तमानमें बांध नहीं रहा है उस जीवमें बंधस्थानमें शून्य है किंतु उदयमें एक आयु है और सत्तामें एक नवीन बांधी हुई आयु तथा दूसरी पूर्वबद्ध अर्थात् भुज्यमान आयु—ऐसे दो आयु हों ऐसे कुछ भंग होते हैं । इसी क्रमसे बुद्धिमानोंको जहां जितनी आयुओंका नवीन बंध संभव है उसे समझकर चारों गतियोंमें भंगभेद जानलेने चाहिये ।

भावार्थ, मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें चारों ही नवीन आयु बांधी जाने योग्य हैं इसलिये इन दो गतियोंमें भंग नौ नौ हैं। नारक तथा देवोंमें दो आयु ही बांधी जाती हैं इसलिये इन दो गतियोंमें भंग पांच पांच होते हैं । ३१८-३१९ ।

इन भंगोंको यंत्रोंद्वारा यथाक्रमसे चारों गतियोंमें आगे दिखाते हैं। यंत्रोंके १ का अर्थ नरकायु, २ का अर्थ तिर्यंच आयु, ३ का अर्थ मनुष्यायु, ४ का अर्थ देवायु, और ० शून्यका अर्थ अभाव है ।—

	बंध—	०	२	०	३	०
नारकोंमें—	उदय—	१	१	१	१	१
	सत्ता—	१	१-२	१-२	१-३	१-३

तिर्यक्षु —	०	१	०	२	०	३	•	४	०
	२	२	२	२	२	२	२	२	२
	२	२-१	२-१	२-२	२-२	२-३	२-३	२-४	२ ४

देवेषु—	०	२	०	३	०
	४	४	४	४	४
	४	४-२	४-२	४-३	४-३

मनुष्येषु—	०	१	०	२	•	३	०	४	०
	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३	३-१	३-१	३-२	३-२	३-३	३-३	३-४	३-४

तिर्यञ्चोंमें	बं०—०	१	०	२	०	३	०	४	०
	उ०—२	२	२	२	२	२	२	२	२
	स०—२	२-१	२ १	२-२	२-२	२-३	२-३	२ ४	२-४

देवोंमें	बं०—०	२	•	३	०
	उ०—४	४	४	४	४
	स०—४	४-२	४-२	४-३	४-३

मनुष्योंमें	बं०—०	१	•	२	•	३	०	४	•
	उ०—३	३	३	३	३	३	३	३	३
	स०—३	३-१	३-१	३-२	३-२	३-३	३-३	३-४	३-४

मिथ्यादृष्टौ सर्वे २८। सासनः श्वभ्रं न गच्छतीति श्वभ्रायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे १। श्वभ्रायुर्बंधे मनुष्यायुरुदये द्वयो सत्त्वे १। इति द्वौ भंगौ त्यक्त्वा सासने शेषा २६। एकमप्यायुर्न बध्नाति यतो मिश्रस्ततस्तस्योपरतभंगाः १६।

यतो बध्नाति सद्दृष्टिर्नरतिर्यग्गतिं गतः। देवायुरेव नान्यानि श्वभ्रदेवगतिं गतः ॥ ३२० ॥
मर्त्यायुरेव नान्यानि भंगानामष्टक ततः। विहाय विंशति प्रोक्ता भंगास्तस्य मनीषिभि ॥ ३२१ ॥

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारो गतियोंके मिलकर सर्व भंग अट्ठाईस होते हैं।

सासादनमें २६ भंग बताये हैं वे सर्व ऊपरके भंगोंके ही समान हैं, केवल दो भंग घाट हैं उन्हे आगे बताते हैं। सासादनयुक्त जीव नरकको नहीं जाता है इसलिये नरकायुके बंधमें, तिर्यंच आयुके उदयमें, तथा सत्ता उक्त दोनोंकी रहनेपर जो एक भंग मिथ्यात्वमें होता है वह सासादनमे नहीं है। एवं, नरकायुके बंधमें, मनुष्यायुके उदयमें, तथा इन्ही दोनोंकी सत्ता रहनेपर जो एक भंग मिथ्यात्वमें होना बताया है वह यहां सासादनमें नहीं है। ऐसे दो भंग घट जाते हैं।

मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव एक भी आयुको नहीं बांधता इसलिए मिश्रमें बंधवाले बारह भंग कम होजानेसे अट्ठाईसमेंसे शेष रहे सोलह भंग संभव हैं। उपरतका अर्थ बचे हुए अथवा 'शेष' ऐसा है।

अत्र असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवालेके जो वीस भंग बताये उनका स्पष्टीकरण मूलकार करते है। —

सम्यग्दृष्टि जीव यदि मनुष्यगतिमें अथवा तिर्यंचगतिमें हो तो वह देवायुको ही बांधता है अन्य तीन गतिमेंसे किसीको भी नहीं बांधता है। एवं, जो सम्यग्दृष्टि नरक अथवा देवगतिमें रह रहा है वह एक मनुष्यायुको ही बांधता है, अन्य तीन गतियोंको नहीं बांधता है। ऐसा नियम है इसलिए अट्ठाईसमेंसे आठ भंग नवीन आयुर्बंधसंबंधी घट जाते हैं और शेष वीस भंग चौथे गुणस्थानमें होते हैं ऐसा विद्वानोंने बताया है। अट्ठाईस भेदोंको दिखानेवाले ऊपरके चार यंत्रोंपरसे ही ये वीस भेद समझलेने चाहिए ॥ ३२० - ३२१ ॥

तिर्यगायुर्बंधे श्वभ्रायुरुदये द्वयोः सत्त्वे १ । श्वभ्रायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ । तिर्यगायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयो सत्त्वे ३ । नरायुर्बंधे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ४ । श्वभ्रायुर्बंधे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ५ । तिर्यगायुर्बंधे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ६ । नरायुर्बंधे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ७ । तिर्यगायुर्बंधे देवायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ८ ।

२	१	२	३	१	२	३	२
१	२	२	२	३	३	३	४
१-२	२-१	२-२	२-३	३-१	३ २	३-३	४-२

आठ भग कौनसे घट जाते हैं उनको आगे वृत्तिकार बताते हैं ।—

नरकायुके उदयवाले जीवमें जो पाच भगका एक यत्र है उसमें दूसरा एक भेद तिर्यच आयुके बंधवाला, नरकायुके उदयवाला, तथा नरक तिर्यच—इन दो आयुकर्मोंकी सत्ता रखनेवाला ऐसा भग है (१)। नरकायुके बंधसहित, तिर्यच आयुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला एक दूसरा भग, तिर्यचोंके नौ भगवाले यत्रमें है (२)। इसी यत्रमें तिर्यच आयुके बंध सहित, तिर्यच आयुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला एक चौथा भग है (३)। इसी यत्रमें मनुष्यायुके बंधवाला, तिर्यगायुके उदयसहित, दोकी सत्ता रखनेवाला एक छट्ठा भंग है (४) । मनुष्योंके नौ भंगवाले तीसरे यत्रमें नरकायुके बध सहित, मनुष्यायुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला दूसरा एक भंग है(५)। इसी यत्रमें चौथा एक भंग तिर्यगायुके बंध सहित, मनुष्यायुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला (६) है । इसी यत्रमें मनुष्यायुके बधवाला, मनुष्यायुके उदयसहित, दोकी सत्ता रखनेवाला एक भंग (७) है । देवोंके चौथे यत्रमें दूसरा एक भंग तिर्यच आयुके बंध सहित, देवायुके उदयमें, दोकी सत्ता रखनेवाला [८] है । अट्ठाईसमेंसे ये ही आठ भग असयतमें सभव नहीं हैं ।

असंयतमें न रहनेवाले आठ भगोंका यत्र इस प्रकार है .

बं	२	१	२	३	१	२	३	२
उ .	१	२	२	२	३	३	३	४
स ..	१-२	२-१	२-२	२-३	३-१	३-२	३-३	४-२

इत्थमसंयतस्याष्टौ त्यक्त्वा शेषाः २० ।

तिर्यगायुरुदयसत्त्वयोः १ । देवायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ । तिर्यगायुरुदये तिर्यगायुर्देवायुषोः सत्त्वे ३ । नरायुरुदयसत्त्वयोः ४ । देवायुर्बन्धे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ५ । नरायुरुदये नरदेवायुषोः सत्त्वे ६ । इत्थं देशसंयतस्य सर्वे ६ ।

नरायुरुदयसत्त्वयोः १ । देवायुर्बन्धे नरायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ । नरायुरुदये नरदेवायुषोः सत्त्वे ३ । इत्थं प्रमत्ते सर्वे ३ । त एवाप्रमत्तेऽपि ।

इस प्रकारसे इन आठ भंगोंको छोडकर असंयतमें आयुत्रयीके शेष बीस भंग हैं ।

पाचवें गुणस्थानमें छह भग बताये हैं वे इस प्रकार हैं ।—तिर्यंच आयुके उदयको और तिर्यंच आयुकी ही सत्ताको रखनेवाला नवीन बंधरहित एक भग है। देवायुके बंधमें तिर्यगायुका उदय रखनेवाला, दोकी सत्ता सहित दूसरा भंग है। तिर्यंच आयुके उदयमें, तिर्यंच तथा देवायु इन दोकी सत्ता रखनेवाला नव नबंधरहित एक तीसरा भंग है। मनुष्यायुके ही उदय सहित और मनुष्यायुकी ही सत्ता रखनेवाला, नवीनबंधरहित एक चौथा भग है । देवायुके बंध वाला, मनुष्यायुके उदय सहित, दोनोंकी सत्तावाला एक पाचवा भग है । मनुष्यायुके उदय सहित, मनुष्यायु तथा देवायुकी सत्ता रखनेवाला, नवीनबंधरहित एक छट्ठा भग है। ऐसे ये छह भग पाचवें गुणस्थानमें रहते हैं ।

छट्ठे गुणस्थानमें तीन भग आयुके बताये हैं वे इस प्रकार हैं ।—

मनुष्य आयुके ही उदयवाला और मनुष्य एक आयुकी सत्तावाला तथा नवीन बंध रहित एक भग, देवायुके बंधमें, मनुष्यायुके उदयसहित, तथा दोकी सत्तावाला दूसरा एक भंग, एवं तीसरा एक भग मनुष्यायुके उदयमें, मनुष्यायु तथा देवायु —इन दोकी सत्ता रखनेवाला— ऐसे ये तीन भग छट्ठे गुणस्थानमें संभव हैं ॥ ये ही तीन भग अप्रमत्त संयत सातवें गुणस्थानमें भी होते हैं ।

अपूर्वकरणादारभ्य यावदुपशान्तांत चतुर्णां शमकानां क्षपकाणां च नरायुरुदयसत्त्वयोः १ । उपशमकानाश्रित्य नरायुरुदये नरदेवायुषोः सत्त्वे २ । इत्थ द्वाभ्यां द्वाभ्यां भगाभ्यां चतुर्ष्वष्टौ ८ । क्षीणसयोगायोगेषु नरायुरुदयसत्त्वयोः १ । इत्थ त्रिपु त्रयः ३ । सर्वेऽप्यायुषि भगाः ११३ ।

प्रथमे पच चत्वारो द्वितीये त्रितये द्वयम् । एकैकोऽष्टसु गोत्रे द्वावतेऽन्त्यौ पचविंशतिः ॥ ३२२ ॥

गुणेपु गोत्रभंगाः ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । २ ।

अपूर्वकरण–आठवें गुणस्थानसे लेकर उपशातकषाय नामके ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत चार उपशम श्रेणीवाले गुणस्थानोंमें तथा क्षपकश्रेणीवाले भी इन गुणस्थानोंमें आयुका एक भग ऐसा है जो मनुष्यायुके ही उदय सहित तथा मनुष्यायुकी ही सत्ता रखनेवाला, नवीन बंध रहित है । दूसरा भंग उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें मिलता है । वह मनुष्यायुके उदयमें, मनुष्य तथा देवायु—इन दोकी सत्ता रखनेवाला, तथा नवीन बध रहित—ऐसा है । इस प्रकार इन चार गुणस्थानोंमें दो दो भग रहनेके कारण सर्व आठ भग होजाते हैं ।

इसके आगे क्षीणकषाय बारहवा गुणस्थान, सयोगकेवली तेरहवा गुणस्थान, अयोगकेवली चौदहवां गुणस्थान–इन तीन गुणस्थानोंमें एक एक ही भग है । वह मनुष्य युका उदय रखनेवाला मनुष्य युकी ही एककी सत्ता रखनेवाला, नवीन बधरहित एक भग है । तीन गुणस्थानोंके आश्रयसे इसके तीन उत्तर भेद होते हैं । इस प्रकार सर्व आयुके भग ११३ हैं ।

आयुके त्रिसयोगी भग समाप्त ।

अब गोत्रके बधत्रयसबधी भगोंको दिखाते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानमें पाच भग हैं । दूसरे गुणस्थानमें चार भग हैं । फिर तीसरेसे पाचवें पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें दो दो भग हैं । इसके आगे छट्ठसे तेरहवें गुणस्थान पर्यंत आठ गुणस्थानोंमें एक एक भग है । अंतके चौदहवें गुणस्थानमें अतिम दो भग हैं । इस प्रकार मिलकर—५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । २ । इस प्रकार सर्व गुणस्थानोंमें गोत्रके भग पच्चीस होते हैं । ३२२ ।

॥५३१॥

उच्चोच्चमुच्चनीचं नीचोच्चं नीचनीचमिति ज्ञेयम् । बंधे पाके सत्त्वे द्वंद्वं सर्वं क्रमान्नीचम् ॥ ३२३ ॥

बं.	१	१	०	०	•
उ	१	०	१	०	०
स.	१-०	१-०	१-०	१-०	०-•

गुणस्थानोंमें पाच चार आदि गोत्रभंग वताये वे कैसे वनते हैं सो आगे दिखाते हैं ।—

प्रथमके चार भंगोंको दिखाते समय बधमें और उदयमें कौन कौनसे गोत्र हैं सो प्रथम बताकर फिर सत्ताके गोत्र एकसाथ इस कारिकामें बताये हैं । और पाचवें भंगको अतमें बताया है । वह इस प्रकार कि–बधमें तथा उदयमें उच्च उच्च हैं । अर्थात् पहिले भगके बधमें भी उच्चगोत्र है तथा उदयमें भी उच्च गोत्र है । दूसरे भंगके बंधमें तथा उदयमें क्रमसे उच्च नीच हैं । अर्थात् वंधमें उच्च गोत्र है, उदयमें नीच गोत्र है । तीसरा भग बधमें तथा उदयमें क्रमसे नीच ऊचके रहनेसे होता है । अर्थात् वंधमें नीच गोत्र और उदयमें ऊच गोत्र–यह तीसरे भंगकी रचना है । चौथे भगमें दोनो स्थानोंमें नीच नीच ही है । अर्थात् बंधमें भी नीच गोत्र ही रहता है और उदयमें भी नीच गोत्र ही रहता है–यह चौथे भगका स्वरूप है । इन चारो भंगोंके सत्तास्थानोंमें वताते हैं कि, सत्त्वमें सर्वत्र दो दो प्रकृति हैं––उच्च गोत्र भी सत्तामें रहता है नीचगोत्र भी सत्तामें रहता है । क्रमप्राप्त पाचवें भंगका स्वरूप ऐसा समझो कि उसके सर्व अर्थात् तीनो स्थानोंमें नीच गोत्र ही है । ३२३ ।

पांचो भगोंका यंत्र–

बं०—	१	१	•	०	०
उ०—	१	•	१	०	०
स०—	१-०	१-०	१-०	१ ०	•-०

यहांपर १ का अर्थ उच्च गोत्र है । ० शून्यका अर्थ नीचगोत्र है । सत्तामें जहा एक और शून्य की रचना है वहा उच्च तथा नीच अर्थ दोनो संकेतोंका समझना । दशसंख्या अर्थ नहीं करना ।

प्रथमे प्रथमाः पंच चत्वारः शासने मताः । द्वौ द्वौ त्रिष्वादिमौ भगौ पंचस्वेकैक आदिमः ॥ ३२४ ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिषु सूक्ष्मांतेषु भगाः ५ । ४ । २ । २ । २ । १ । १ । १ । १ । १ ।

उच्चं पाके सत्त्वे द्वितयं शान्तादिकेषु विज्ञेयम् । निर्बन्धकेष्वयोगे पाके सत्त्वे च पुनरुच्चम् ॥ ३२५ ॥

शान्तक्षीणस (योगा) योगेषु चतुर्षु चत्वारः— $\frac{१}{१-०}$ $\frac{१}{१-०}$ $\frac{१}{१-०}$ $\frac{१}{१-०}$

प्रथम गुणस्थानमें ये ही ऊपर बताये हुये पांच भग रहते हैं । सासादनमें अंतके एक भंगको छोडकर आदिके चार भंग रहते हैं । आगेके पाचवें पर्यंत तीन गुणस्थानोंमें जो दो दो भग बताये हैं वे भी आदिके ही दो दो हैं । फिर छट्ठेसे सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थान पर्यंत पांच गुणस्थानोंमें एक एक ही भंग है । वह भी इस यंत्रके आदिका ही भग समझना । अर्थात् छट्ठे गुणस्थानसे लेकर सत्तामें तो दोनो गोत्र कर्म रहते हैं परतु बध तथा उदय उच्चगोत्रका ही होता है ऐसा नियम है । ३२४ ।

अब आगे उपशांतकषायादि गुणस्थानोंमें गोत्रका बंध न होनेके कारण केवल उदय तथा सत्ताको लेकर होनेवाले एक एक भगको बताते हैं ।—

उदयमें उच्चगोत्र और सत्तामें उच्च नीच–दोनो–इस प्रकारका एक एक भग ही बधरहित उपशांतादि गुणस्थानोंमें होता है । और अयोग–चौदहवें गुणस्थानमें एक भग ऐसा है जिसके उदयमें भी उच्च गोत्र ही है और सत्तामें भी एक उच्च गोत्र ही है ॥३२५॥

उपशांतकषाय ग्यारहवां गुणस्थान, क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान, सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थान–ये तीन गुणस्थान पूर्ण तथा चौदहवां गुणस्थान उपांत्य समय पर्यंत–इन चार स्थानोंमें गोत्रके एक एक भंग रहनेसे भंग चार होते हैं । और अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानके अंतिम समयमें अंतका एक भग है । इसलिये कारिकामें जो अंतमें दो भंग बताये हैं वे उपांत्य तथा अंत्य समयके भेदसे दो सिद्ध होजाते हैं ।

चार गुणस्थानोंके चार भंग—				
उ..	१	१	१	१
स...	१-०	१-०	१-०	१-०

अयोगस्यांत्यक्षणे एकः— १ ।
१ ।

एवं गोत्रे सर्वे भगाः २५ ।

मोहनीयस्य बंधाः कथ्यन्ते—

द्वाविंशतिः समिथ्यात्वे शासनेऽस्त्येकविंशतिः । द्वयोः सप्तदशैकत्र त्रयोदश नव त्रिपु ॥ ३२६ ॥
एकद्वित्रिचतुःपचहीनाः पडनिवृत्तिके । क्रमतो मोहनीयस्य बंधस्थानानि सति वै ॥ ३२७ ॥

२२ । २१ । १७ । १७ । १३ । ९ । ९ । ९ । अनिवृत्तौ ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

अयोगके अतका एक भंग— उ. . १
स . १

इन ऊपर बताये हुए पाच भंगोंमें बधका अभाव है इसलिये प्रत्येक भगमें केवल उदय और सत्त्व ही दिखाई गई है। इस प्रकार गोत्रके सर्व भग २५ होते हैं वे बताये ।

अब मोहका प्रकरण शुरू करते हुए सबसे प्रथम मोहके बधस्थानोंको गुणस्थानोंमें विभक्त करके बताते है ।—

मिथ्यात्व गुणस्थानमें बाईसका बंधस्थान है । सासादनमें इक्कीसका बधस्थान है । तीसरे चौथे-इन दो गुणस्थानोंमें सत्रह सत्रहका बंधस्थान है । फिर आगे एक पाचवें गुणस्थानमें तेरहका बधस्थान है । इसके आगे छट्ठे सातवें आठवें-इन तीन गुणस्थानोंमें नौ नौ प्रकृतियोंका बधस्थान है ॥ फिर आठवें गुणस्थानके आगे नौवें गुणस्थानमें क्रमसे बधके पाच स्थान है । वे इस प्रकार – एक घाट छहका अर्थात् पाच प्रकृतिका पहिला बधस्थान है । फिर दूसरा बंधस्थान दो घाट छह प्रकृतिका अर्थात् चारका है । इसके आगे तीसरा एक बधस्थान तीन घाट छहका अर्थात तीनका है। फिर आगे चार घाट छहका अर्थात दो प्रकृतिका एक चौथा बधस्थान है । सबके अतमें पाच घाट छहका अर्थात् एक प्रकृतिका एक पांचवा बंधस्थान है । इस प्रकार मोहनीयके ये गुणस्थान-क्रमसे बधस्थान होते हैं । ३२६—३२७ ।

भंगाः कथ्यते –

षडाद्ये सति चत्वार एकविंशतिबंधके । परे चतुष्टये द्वौ द्वावेकैकोऽन्येषु पंचसु ॥ ३२८ ॥

६ । ४ । २ । २ । २ । २ । शेषेष्वेकः १ ।

सत्येकद्विचतुःपंच षट् सप्ताष्ट नव क्रमात् । दश च मोहनीयस्य कर्मणोऽस्य नवोदयाः ॥ ३२९ ॥

१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।

मिथ्यात्व मति चत्वारः कोपाद्या वेद एककः । हास्यादियुग्मयोरेक भीर्जुगुप्सा दशोदयाः ॥ ३३० ॥

अब आगे भंगोंको दिखाते हैं—

पहिले गुणस्थानमें छह भंग हैं । इक्कीसके बंधवाले दूसरे गुणस्थानमें चार भंग हैं । इसके आगे तीसरेसे छट्ठे गुणस्थान पर्यंत चार गुणस्थानोंमें दो दो भंग हैं । इसके आगे सातवें गुणस्थानसे लेकर पांच स्थानोंमें भंग एक एक है । [६ । ४ । २ । २ । २ । २ । आगे शेष भागोंमें १] ॥ ३२८ ॥

इस मोहकर्मके उदयस्थान सब नौ हैं ।—अंतका एक उदयस्थान एक प्रकृतिका है । फिर पहिले पहिले स्थान क्रमसे दो प्रकृतिका, चारका, पांचका, छहका, सातका, आठका, नौका, और सबसे पहिला स्थान दश प्रकृतिरूप है । ये ही नौ उदय स्थान इस पांचवें परिच्छेदकी ३८ वीं कारिकामें भी बताये हैं । ३२९ ।

१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ।

इन सर्व उदयस्थानोंका गुणस्थानोंमें विभाग करते हैं । उनमेंसे प्रथम दशके उदयस्थानको आगे दिखाते हैं ।—

एक मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि चार क्रोधादि कषाय, एक कोई भी वेद, हास्यादिके दो युगलोंमेंसे एक एक, भय तथा जुगुप्सा—ये दश प्रकृति जहां उदयमें युगपत् आती हैं वह दशका उदयस्थान है । ३३० ॥

भावार्थ, यह उदयस्थान मिथ्यात्वमें ही संभव है । यहांपर अनंतानुबंधी आदि चारो ही प्रकारके

कषाय उदयमें आते हैं। परन्तु अनंतानुबंधीके उदयमें रहते हुए, शेष अप्रत्याख्यानावरणादि तीन कषायोंकी परिणति भी अनंतानुबंधीरूप ही हो जाती है। कषायोंके अनंतानुबंधी आदि चार भेद हैं। वे तर तम भावकी अपेक्षासे भिन्न हैं। किंतु क्रोध मान माया लोभ ये चार जातिभेद जैसे अनंतानुबंधीमें है वैसे ही अप्रत्याख्यानावरणादिकोंमें भी है। इसलिये जिस समय क्रोधके निमित्त अथवा नोकर्म प्राप्त होते हैं उस समय अनंतानुबंधी क्रोधका उदय होता है और अप्रत्याख्यानावरणादिके भी क्रोधका ही उदय होता है। मानके निमित्तमें चारो ही प्रकारके मानका ही उदय होता है। मायाके निमित्तमें चार प्रकारकी मायाका ही उदय होता है। लोभके निमित्त मिलनेपर चार प्रकारके लोभका ही उदय समझना चाहिये। इस दशके स्थानमें जो कषाय चार बताये हैं वे अनंतानुबंधी आदि तर तम भावकी अपेक्षासे ही समझने चाहिये। क्रोधके समयमें मानका अथवा मायाका, लोभका उदय नहीं होता है। ऐसा ही मानादिके उदयमें क्रोधादिका उदयाभाव समझना।

हास्यादि दो युगलोंमेंसे एक एकका उदय दशके उदयस्थानमें बताया है उसका आशय यह है कि नौ नोकषायोंमेंसे तीन संख्या वेदोंकी हैं। शेष नोकषाय छह रह जाते हैं। उनमेंसे भी भय तथा जुगुप्साको जुदा स्वतंत्र जोडकर दिखाया है। इसलिये शेष नोकषाय चार ही रह जाते हैं। उन चारमेंसे हास्य तथा शोकका एक युगल है, दूसरा युगल रति अरति—इन दोका है। इनमेंसे प्रत्येक युगलकी कोई एक एक प्रकृति ही उदयमें आती है। शेष दो प्रकृति उस समय उदययोग्य नहीं रहती। क्योंकि, हास्य तथा शोकमेंसे किसी एकका ही नोकर्म निमित्त एक समयमें एक जीवके रहसकता है। इसी प्रकार रति, अरति इन दोमेंसे भी किसी एकका ही निमित्त एक समयमें उपस्थित माना जाता है। इसलिये हास्यादि चार कर्मोंमेंसे एक समयमें दोका ही उदय होना संभव है।

एक नौका उदय भी मिथ्यादृष्टि जीवमें संभव है, वह किस अवस्थामें है और वहां दशमेंसे कौनसी प्रकृति घट जाती है इस बातको आगे स्पष्ट करते हैं।

॥५३६॥

मिथ्यात्वं दृष्टितः प्राप्ते नास्ति सयोजनोदयः । यावदावलिकां यस्मात्तस्मादन्यो नवोदयः ॥ ३३१ ॥

इति मिथ्यादृष्टौ द्वावुदयौ १० । ९ ।

मिथ्यात्व शासने मिश्रद्वये चाद्याः क्रुदादयः । द्वितीयाः पंचमे हेयास्त्रिष्वन्येषु तृतीयकाः ॥ ३३२ ॥

शासनादिषु ९ । ८ । ८ । ७ । ६ । ६ । ६ ।

'दृष्टित' अर्थात् सासादनादि गुणस्थानसे जो जीव मिथ्यात्वके उदय हो आनेसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें गिर पडता है उसके एक आवलि प्रमाण समयके बाद अनतानुबधीका उदय सुरू हो सकता है । अर्थात् उस प्रथम आवली प्रमाण समय पर्यंत अनंतानुबधी प्रकृतिका उदय न होनेसे चार कपायके बदले तीन ही कषायोंका उदय माना जाता है इसलिये यहांतक नौका उदयस्थान भी मिथ्यात्वमें रहता है । सयोजनका अर्थ अनतानुबधी है । ३३१ ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिमें उदय दो हुए एक १० का, दूसरा ९ का ।

अब दूसरे गुणस्थानसे लेकर आठवें गुणस्थान पर्यंतके सात गुणस्थानोंमें उदयके स्थानोंको घटित करते हैं ।—

मिथ्यात्वमें जो दश अथवा नौ प्रकृतिका उदयस्थान बताया है उसमें मिथ्यात्वका उदय था । किंतु सासादनमें मिथ्यात्व छूट जाता है । मिश्र तथा अविरतसम्यग्दृष्टि-इन तीसरे चौथे दो गुणस्थानोंमें आदिके अनंतानुबधी क्रोधादिक कषाय भी उदयमेंसे छोडदेने चाहिये । पांचवें गुणस्थानमें दूसरे अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण नामके कषाय भी छोड देने चाहिये । इस पंचम गुणस्थानके आगे अन्य तीन गुणस्थानोंमें अर्थात् छट्ठे सातवें आठवें गुणस्थानोंमें तृतीय कषाय—प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिकोंको भी छोड कर शेष रहे यथासंभव मोह प्रकृतियोंका उदय होता है । ३३२ ।

सासादनादिकोंमें पूर्वकी प्रकृतियोंमेंसे क्रमसे—९ । ८ । ८ । ७ । ६ । ६ । ६ । का उदय रहना संभव सामान्य दृष्टिसे है क्योंकि ऊपरकी प्रकृतियोंमेंसे यथासंभव प्रकृति घट जाती हैं ।

सम्यङ्मिथ्यात्वपाकेन मिश्रके मोहनोदयः । सम्यक्त्वस्योदयोऽन्योऽस्ति क्षयोपशमदर्शने ॥ ३३३ ॥

सम्यङ्मिथ्यात्वयोगे मिश्रे ९ ।

शामिकक्षायिके न स्तः सम्यक्त्वे द्वे यदा तदा । चतुर्थे पचमे षष्ठे सप्तमेऽप्युदयः परः ॥ ३३४ ॥

सम्यक्त्वोदये यतश्चतुष्टयेऽन्योऽप्युदयो द्वितीयस्ततो द्वौ द्वावुदयौ, तत्र ९, ८ । ८, ७ । ७, ६ । ७, ६ ।

मिश्र तीसरे गुणस्थानमें सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय बढ जाता है । इसलिये मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी के घट जानेपर भी मिश्रमोहनीयको लेकर मोहप्रकृतियोंका उदय मानना चाहिये । भावार्थ, इस मिश्रमोहके बढजानेसे मिश्र गुणस्थानमें नौ प्रकृतिका एक उदयस्थान है। । एवं, चौथे गुणस्थानमें यदि क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन हो तो यहां सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय अधिक बढजाता है इसलिये क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनवाले चौथे गुणस्थानमें भी उदयस्थान नौ प्रकृतिका समझो । इसी प्रकार आगेके पाचवें, छठे, सातवें—इन तीनो गुणस्थानोंमें भी क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन रहनेपर उदयमें एक सम्यक्त्व प्रकृति अधिक समझनी चाहिये । ३३३ ।

यदि शामिक अर्थात् औपशमिक सम्यक्त्व हो अथवा क्षायिक सम्यक्त्व हो तो सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय नहीं रहता । इसलिये इन दो सम्यक्त्वोंके साथमें चौथे, पाचवें, छठे, सातवें—इन चार गुणस्थानोंमें केवल ऊपर बताया हुआ (७।६।६।६। प्रकृतिरूप) मोहका उदय समझना चाहिये । ३३४ ।

इसी आशयको आगे वृत्तिकार लेकर खुलासा करते हैं ।—

सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रखनेवाले चौथेसे सातवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें यह एक (सम्यक्त्व मोहनीयका) अधिक उदय भी आजाता है इसलिये दो दो उदयस्थान होजाते हैं । भावार्थ, चौथेसे सातवें पर्यंत चार गुणस्थानोंमें तीन तीन प्रकारका सम्यक्त्व रहना सभव है । उन तीनोंमेंसे जिसके क्षायिक अथवा औपशमिक सम्यक्त्व है उसके तो ऊपर मिथ्यात्वमें बताई हुई दश उदय प्रकृतियोंमेंसे यहा एक मिथ्यात्व तथा एक अनतानुबंधी—ये दो प्रकृति घट जाती हैं इसलिये आठका ही उदय रहता है ।

सम्यक्त्वस्योदयाभावे पण्णामेवोदये यतः । एक एव सदाऽपूर्वे ततः षट्कोदयो मतः ॥ ३३५ ॥
भिया जुगुप्सया द्वाभ्यां सर्वे हीनाः क्रमाद्यतः । ततोऽन्येऽप्युदयास्तेषामेकैकस्योपरि त्रयः ॥ ३३६ ॥

किंतु क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जिसकें है उसकें सम्यक्त्व प्रकृतिका एक अधिक उदय रहता है इसलिये नौका उदयस्थान वहां मानना पडता है।

इसी प्रकार पाचवें गुणस्थानमें दो उदयस्थान हैं, एक ८ का, दूसरा ७ का। यहां दूसरे अप्रत्याख्यानावरणकी एक संख्या उदयमेंसे दोनो ही भेदोंमें घट जाती है। इसलिये क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वालेकें उदय ८ का है, और क्षायिक अथवा औपशमिक सम्यक्त्ववालेकें उदय स्थान सातका है।

छट्ठे गुणस्थानमें एक तीसरे प्रत्याख्यानावरणका भी उदयाभाव होजानेसे एक संख्या दोनो उदय स्थानोंमेंसे घट जाती है। इसलिये क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीवकें उदय सातका, और क्षायिक अथवा औपशमिक सम्यग्दृष्टिकें उदय छहका रहता है। इस प्रकार छट्ठे गुणस्थानमें भी दो उदय स्थान रहते हैं। सातवें गुणस्थानकी प्राप्ति प्रमादकी मंदता होजानेपर होती है वहां किसी विशेष मोह प्रकृतिका उदय घटता नहीं है। इसलिये सातवें गुणस्थानमें छट्ठेके समान ही ७ का तथा ६ का—ये दो उदयस्थान हैं।

अब आगे अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें उदयस्थानको दिखाते हैं।—

आठवें गुणस्थानसे लेकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय नहीं रहता है केवल छह प्रकृतिका ही उदय रहता है। इसलिये अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें सदा छहका ही एक उदयस्थान है, सातका उदयस्थान नहीं है ॥ ३३५ ॥

गुणस्थानक्रमसे जो ऊपर उदयस्थान बताये उनमें और भी अधिक भेद होते हैं इस बातको आगे बताते हैं।—

सबसे प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमें दशका जब उदय बताया है वहां भय जुगुप्सा इन दोनोंके उदयको लेकर दशका स्थान पूरा किया है। उसके आगे भी आठवें गुणस्थान पर्यंत भय जुगुप्सा इन दोनोका उदय सर्व ही स्थानोंमें

॥५३९॥

तत्र मिथ्यादृष्टौ-८, ९, ९, १० । ७, ८, ८, ९ । शासने-७, ८, ८, ९ । मिश्रे-७ । ८, ८ । ९ ।

शामिल किया गया है। परतु ये सभी स्थान ऐसे भी होते हैं कि जिनमें भय तथा जुगुप्सा—इनमेंसे किसी एकका ही उदय रहता है, तथा दोनोंका ही उदय नहीं रहता है। इसलिये ऊपर बताये हुए सभी स्थान एक और दो उदय संख्यासे घाटके भी हो जाते हैं। इस प्रकार सर्व उदयस्थानोंके तीन तीन भेद होजाते हैं ॥ ३३६ ॥

इनमेंसे मिथ्यादृष्टिमें प्रथम खुलासा करते हैं।—मिथ्यादृष्टिकें दो उदयस्थान ऊपर बताये हैं, एक ९ प्रकृतिका, दूसरा १० प्रकृतिका। नौ प्रकृतिवाले स्थानमें भी भय तथा जुगुप्सामेंसे दोनोंका उदय शामिल है, किंतु अनतानुबंधी एक प्रकृतिका उदय नहीं माना है। उसीमें यदि भयजुगुप्सामेंसे एकका उदय घट जाय तो नौके बदलें आठका उदयस्थान हो जाता है। इस नौ प्रकृतिरूप एक स्थानके बदलें दो स्थान हो गये, एक नौका दूसरा आठ प्रकृतिका। दूसरे दश प्रकृतिरूप स्थानमें भी यदि भय जुगुप्सामेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय घट जाय तो दशके बदलें दूसरा भेद नौ प्रकृतिरूप हो जाता है। इस प्रकार दशके एक उदयस्थानमें भी दो भेद हो गये, एक नौ प्रकृतिरूप दूसरा दश प्रकृतिरूप। इस प्रकार मिथ्यादृष्टिके दो स्थानोंके बदलें चार स्थान होगये ८, ९। ९, १०। यहापर नौका स्थान दो वार आया है अर्थात् इन दो भगोंमें आया है और आगे भी तीसरे वार आया है परन्तु मूल जो नौ प्रकृतिरूप स्थान है उसमें दशके स्थानमेंसे अनतानुबधीकी एक सख्या घट जाती है इसलिये वह नौ प्रकृतिरूप होता है। किंतु दूसरा जो नौ प्रकृतिरूप स्थान है उसमें अनतानुबधी तो है परंतु भय जुगुप्सामेंसे एक प्रकृति घट जाती है इसलिये वह नौ प्रकृतिरूप होता है। नौ प्रकृतिरूप तथा दश प्रकृतिरूप मूल स्थानोंमेंसे यदि भय जुगुप्सा इन दोनोका उदय घट जाय तो क्रमसे आठ तथा सातके उदस्थान हो जाते हैं। इसी प्रकार आगे भी जहापर एक एक गुणस्थानमें एक समान एकसे अधिक उदयस्थान वताये हैं वहांपर ऐसा ही भेद समझ लेना चाहिये। इसके आगे तीसरा नौ प्रकृतिरूप स्थान मिथ्यात्वमें दिखाया है वह भी अनंतानुबधीके न रहनेसे है। उसके उत्तर भेद चार होजाते हैं—७, ८। ८, ९। मिलाकर मिथ्यादृष्टिमें सर्व आठ भेद मोहोदयके हैं।

सासादनमें—७, ८, ८, ९।—ये चार भेद हैं। मिश्रमें— ७, ८, ८, ९।—ये चार भेद हैं।

	क्षायो.	औप.
असयते—	७	६
	८,८	७,७
	९	८

	वेद.	क्षायि
देशे—	६	५
	७,७	६,६
	८	७

प्रमत्ते–५,६,६,७।४,५,५,६। अप्रमत्ते–५,६,६,७।४,५,५,६।

सम्यक्त्व विद्यतेऽपूर्वे यतो जातु न वेदकम् । मुनिभिर्गदित तत्र पाकस्थानत्रय ततः ४।५,५।६ ॥ ३३७ ॥

	क्षायो	औप
असंयतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानमें—	७	६
	८,८	७,७
	९	८

	वेदक	क्षायिक
देशसंयत पांचवें गुणस्थानमें–	६	५
	७,७	६,६
	८	७

प्रमत्त छट्ठेमें— ५, ६, ६, ७ । और ४, ५, ५, ६ ।

अप्रमत्त सातवें गुणस्थानमें— ५, ६, ६, ७ । ४, ५, ५, ६ ।

अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व किसी भी अवस्थामें नहीं रहता इसलिये मुनियोंने वहा उदयस्थान तीन बताये हैं । (४ । ५, ५ । ६) ॥ ३३७ ॥

भावार्थ, प्रथम अवस्थामें अपूर्वकरणमें छह प्रकृतिका उदयस्थान रहता है । वह इस प्रकार ।–संज्वलन एक कषाय, एक वेद, हास्यादि दो युगलमेंके एक एक करके दो नोकषाय (हास्य शोकमेंसे एक और रति अरतिमेंसे एक), भय तथा जुगुप्सा—ये छह प्रकृति हुई । यदि भय जुगुप्सा इन दोमेंसे एकका उदय न हो तो पाच प्रकृतिका उदयस्थान समझना । इसके दो भेद हो जाते है, एक भय घटाकर जुगुप्साको कायम रखकर पाच, दूसरा जुगुप्साको घटाकर भयको उदयमें रखलेसे पाच। ऐसे पांचके स्थानमें दो भेद हैं । यदि भय तथा जुगुप्सा ये दोनो उदयमें न रहें तो यह चारका उदयस्थान हो जाता है ।

॥५४१॥

अब मोहनीयके उदयस्थान गोमटसारमें जैसे कहे हैं वैसे कहते हैं।

दस णव अट्ठ य सत्ता छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च। उदयट्ठाणा मोहे णव चेव य होंति णियमेण ॥ ४७५ ॥

दश नवाष्ट च सप्त च षट् पञ्च चत्वारि द्वे एकं च। उदयस्थानानि मोहे नव चैव च भवन्ति नियमेन ॥ ४७५ ॥

अर्थ——मोहनीयके उदयस्थान १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, २, १ प्रकृतिरूप ९ हैं ऐसा नियमसे जानना ॥ ४७५ ॥

मिच्छं मिस्सं सगुणे वेदगसम्मेव होदि सम्मत्त। एक्का कसायजादी वेददुजुगलाणमेक्कंच ॥ ४७६ ॥

मिथ्यं मिश्रं स्वगुणे वेदकसम्ये एव भवति सम्यक्त्वम्। एका कषायजाति वेदद्वियुगलयोरेक च ॥ ४७६ ॥

अर्थ— मोहनीयकी उदय प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीयका उदय अपने २ पहले और तीसरे गुणस्थानमें है। तथा सम्यक्त्वमोहनीयका उदय वेदकसम्यक्त्वी जीवके चौथेसे लेकर चार गुणस्थानतक है। इसप्रकार गुणस्थानोंमें उदयका नियम दिखाकर उदयके कूटोंको कहते हैं। अनतानुबंधी आदि चार कषायोंमेंसे एक कषायजाति, तीन वेदोंमेंसे एक वेदका उदय, हास्य—शोकका युगल और रति—अरतिका जोडा इन दो युगलोंमेंसे एक २ प्रकृतिका उदय पाया जाता है ॥ ४७६ ॥

भयसहियं च जुगुच्छासहियं दोहिंवि जुदं च ठाणाणि। मिच्छादिअपुव्वंते चत्तारि हवंति णियमेण ॥ ४७७ ॥

भयसहितं च जुगुप्सासहित द्वाभ्यामपि युत च स्थानानि। मिथ्याद्यपूर्वान्ते चत्वारि भवन्ति नियमेन ॥ ४७७ ॥

अर्थ— एककालमें एक जीवके भयसहित ही प्रकृतियोंका उदय होनेसे, अथवा केवल जुगुप्सासहित ही उदय होनेसे, अथवा भय—जुगुप्सा दोनोंसहितही उदय होनेसे अथवा 'च' शब्दसे दोनोंही करके रहित उदय होनेसे कूटके आकार चार २ स्थान मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानपर्यंत निश्चयकर होते हैं, इस कारण यहांपर चार २ कूट कहे गये हैं ॥ ४७७ ॥ इनकी रचना बडी टीकामें विस्तारसे कही है।

आगे मिथ्यादृष्टिमें वा असंयतादि चार गुणस्थानोंमें विशेष बात कहते हैं,—

अणसजोजिदसम्मे मिच्छं पत्ते ण आवलित्ति अणं। उवसमखइये सम्मं ण हि तत्थवि चारि ठाणाणि ॥४७८॥
अनसंयोजितसाम्ये मिथ्यं प्राप्ते न आवलीति अनम्; उपशमक्षायिके सम्यं न हि तत्रापि चत्वारि स्थानानि ॥४७८॥

अर्थ—अनंतानुबंधीकषायके विसंयोजन (अन्यप्रकृतिरूप) करनेवाले क्षायोपशमसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वकर्मोदयमे मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्राप्त होनेपर आवलिमात्र कालतक अनंतानुबंधीकषायका उदय नहीं होता, क्योंकि विसंयोजन करनेके पीछे आवलिकालतक अपकर्षणद्वारा उदयावलीमें लानेकी सामर्थ्य नहीं है। इस अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनंतानुबंधीरहित चार कूट और भी जानने। तथा उपशमसम्यक्त्वमें और क्षायिकसम्यक्त्वमें सम्यक्त्वमोहनीयका उदय नहीं है वहांपर भी उपशम और क्षायिककी अपेक्षा असंयतादि चार गुणस्थानोंमें चार चार कूट दूसरे होते हैं ॥ ४७८ ॥

पुव्विल्लेसुवि मिलिदे णड चउ चत्तारि चदुसु अट्ठेव। चत्तारि दोण्णि एक्कं ठाणा मिच्छादिसुहुमंते ॥ ४७९ ॥
पूर्वेष्वपि मिलितेषु अष्ट चत्वारि चतुर्षु अष्टैव। चत्वारि द्वे स्थानानि मिथ्यादिसूक्ष्मान्ते ॥ ४७९ ॥

अर्थ—इन कूटोंमें पहले कहे हुए कूट मिलानेसे मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्यंत क्रमसे ८, ४, ४, असंयतादि चारमें आठ आठ, ४, २, १ कूट जानना चाहिये ॥ ४७९ ॥

आगे इनमें अपुनरुक्त स्थानोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ। ठाणा छादि तियं च य चदुवीसगदा अपुव्वोत्ति ॥४८०॥
दशनवनवादि चतुस्त्रिकत्रिस्थान नवाष्टसप्तसप्तादि चतुष्कम्। स्थानानि षडादि त्रिकं च च चतुर्विंशगता अपूर्व इति ॥

अर्थ–मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें क्रमसे दशआदिके चार उदयस्थान, नवके आदिके तीन गुणस्थान नवके आदिके तीन गुणस्थान हैं। असंयतादि चार गुणस्थानोंमें नव आदिके चार, आठ आदिके चार, सातके आदिके चार, सातके आदिके चार उदयस्थान हैं। तथा अपूर्वकरण गुणस्थानमें छह आदिके तीन स्थान हैं। ये ६, ५, ४ प्रकृतिरूप हैं। इस प्रकार अपूर्वकरणपर्यंत सब स्थान प्रत्येक चौवीस चौवीस भङ्गों (भेदों) कर सहित हैं॥ ४८०॥ यहांपर किसी २ स्थानकी संख्या एकसी होनेसे भी प्रकृतियोंके बदलनेसे अपुनरुक्तपना है।

एक्क य छक्केयारं एयारेयारसेव णव तिण्णि। एदे चउवीसगदा चदुवीसेयार दुगठाणे॥ ४८१॥

एकं च षट्कमेकादश एकादशैकादशैव नव त्रीणि। एतानि चतुर्विंशतिगतानि चतुर्विंशैकादश द्विकस्थाने॥ ४८१॥

अर्थ–मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें मिलकर दस प्रकृतिरूप १ स्थान है, नव प्रकृतिरूप ६ स्थान हैं, ८ प्रकृतिरूप ७ प्रकृतिरूप तथा ६ प्रकृतिरूप ११ ग्यारह स्थान हैं, पांच प्रकृतिरूप ९ स्थान हैं, चार प्रकृतिरूप ३ स्थान हैं। ये सब स्थान चौवीस चौवीस भङ्गोंकर सहित हैं, तथा दो प्रकृतिरूप १ स्थानके २४ भंग और एक प्रकृतिरूप एक स्थानके ११ भंग हैं॥४८१॥

आगे इन दो एक प्रकृतिरूप दो स्थानोंके भंगोंका विधान कहते हैं,—

उदयट्ठाणं दोण्हं पणबंधे होदि दोण्हमेकस्स। चदुविहबंधट्ठाणे सेसेसेयं हवे ठाणं॥ ४८२॥

उदयस्थानं द्वयोः पञ्चबन्धे भवति द्वयोरेकस्य। चतुर्विधबन्धस्थाने शेषेष्वेकं भवेत् स्थानम्॥ ४८२॥

अर्थः—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पांच प्रकृतिके बंधस्वरूप तथा चार प्रकृतिके बंधस्वरूप–इस प्रकार दो भागोंमें तीन वेद और चार संज्वलनकषाय—इनमेंसे एकका उदय होनेपर दो प्रकृतिरूप एकस्थान पाया जाता है अर्थात् वहांपर चार चार कषाय एकएक वेदमें होनेसे एक भागके १२ भंग, दोनोंके २४ भंग होते हैं। तथा 'कनकनन्दि' आचार्यके पक्षमें जिस जगह ४ प्रकृतियोंका बंध पायाजाता है उसके अंतसमयमें वेदोंके उदयका अभाव होनेसे शेष कषायादिकोंके ४ ३, २, १, १, भंग होते हैं। इसप्रकार एकप्रकृतिरूप बंधस्थानमें ११ ही भंग सिद्ध हुए॥ ४८२॥

अणियट्टिकरणपढमा संढित्थीग च सरिस उदयद्धा । तत्तो मुहुत्तअंते कमसो पुरिसादिउदयद्धा ॥ ४८३ ॥

अनिवृत्तिकरणप्रथमात् षण्ढस्त्रियोः च सदृश उदयाद्धा । ततो मुहूर्तान्त क्रमशः पुरुषाद्युदयाद्धा ॥ ४८३ ॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके प्रथमभागके पहले समयसे लेकर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका काल समान है, परंतु थोडा है । इससे अधिक अधिक अंतर्मुहूर्त क्रमसे पुरुषवेद व संज्वलनक्रोधादिका काल जानना ॥ ४८३ ॥

पुरिसोदएण चडिदे बंधुदयाणं च जुगवदुच्छित्ती । सेसोदयेण चडिदे उदयदुचरिमम्हि पुरिसबंधछिदी ॥४८४ ॥

पुरुषोदयेन चटिते बन्धोदययोश्च युगपदुच्छित्तिः । शेषोदयेन चटिते उदयद्विचरमे पुरुषबन्धच्छित्तिः ॥ ४८४ ॥

अर्थ—पुरुषवेदके उदय होनेसे श्रेणी चढनेपर पुरुषवेदकी बंधव्युच्छित्ति और उदयव्युच्छित्ति एक कालमें होती हैं । अथवा 'च' शब्दसे बंधकी व्युच्छित्ति उदयके द्विचरमसमयमें होती है । और शेष स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदके उदयसहित श्रेणी चढनेवाले जीवके पुरुषवेदकी बंधव्युच्छित्ति उदयके द्विचरमसमयमें अर्थात् अंतसमयके समीपके समयमें होती है ॥ ४८४ ॥

पणबंधगम्हि बारस भंगा दो चेव उदयपयडीओ । दोउदये चदुबंधे बारेव हवंति भंगा हु ॥ ४८५ ॥

पञ्चबन्धके द्वादश भङ्गा द्वे चैव उदयप्रकृती । द्व्युदये चतुर्बन्धे द्वादशैव भवन्ति भङ्गा हि ॥ ४८५ ॥

अर्थ—जहांपर पांच प्रकृतियोंका बंध है ऐसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें कषाय और वेद इन दो प्रकृतियोंका ही उदय है, इस कारण चार कषाय और ३ वेदको गुणाकार करनेसे १२ भंग होते हैं । इसी प्रकार चार प्रकृतियोंके बंध होनेपर भी दोके उदयरूप स्थानमें १२ ही भंग होते हैं ॥ ४८५ ॥

कोहस्स य माणस्स य मायालोहाणियट्टिभागम्हि । चदुतिदुगेक्कं भंगा सुहुमे एक्को हवे भंगो ॥ ४८६ ॥

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभानिवृत्तिभागे । चतुस्त्रिद्व्येकभङ्गाः सूक्ष्मे एको भवेत् भङ्गः ॥ ४८६ ॥

अर्थ—क्रोध मान माया और लोभके उदयरूप अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके चार भागोंमें ४, ३, २, १ बंध हैं उनमें क्रमसे कषाय बदलनेकी अपेक्षा ही ४, ३, २, १ भंग हैं। और सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें सूक्ष्मलोभके उदयरूप स्थानमें १ ही भंग है। इस प्रकार ११ भंग होते हैं॥ ४८६ ॥

आगे सब उदयस्थानोंकी तथा उनकी प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं,—

बारससयतेसीदीठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा। पणसीदिसदसगेहिं पयडिवियप्पेहिं ओघम्हि ॥ ४८७ ॥
द्वादशशतत्र्यशीतिस्थानविकल्पैर्मोहिता जीवा। पञ्चाशीतिशतसप्तभि प्रकृतिविकल्पैरोघे ॥ ४८७ ॥

अर्थ—गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मके सब १२८३ उयदस्थानोंमें तथा ८५०७ प्रकृतिभेदोंमें जगतके चराचर जीव मोहित होरहे हैं ॥ ४८७ ॥

अब अपुनरुक्त स्थानोंकी तथा उनकी प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं,—

एक्क य छक्केयारं दससगचदुरेक्कय अपुणरुत्ता। एदे चदुवीसगदा बार दुगे पंच एक्कम्हि ॥ ४८८ ॥
एक च षट्चैकादश दशसप्तचतुरेकमपुनरुक्तानि। एतानि चतुर्विंशगतानि द्वादशद्विके पञ्च एकस्मिन् ॥ ४८८ ॥

दशप्रकृतिरूप १ स्थान, नवादि प्रकृतिरूप क्रमसे ६, ११, १०, ७, ४, १ स्थान अपुनरुक्त हैं। इन ४० स्थानोंके २४ चौबीस भंग (भेद) हैं। दोप्रकृतिरूप स्थानके १२ भंग और एक प्रकृतिरूप स्थानके ५ भंग हैं॥ ४८८ ॥

णवसयसत्तत्तरिहिं ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा। इगिदालूणत्तरिसयपयडिवियप्पेहिं णायव्वा ॥ ४८९ ॥
नवशतसप्तसप्ततिभि स्थानविकल्पै मोहिता जीवा। एकचत्वारिंशदेकोनसप्ततिशतप्रकृतिविकल्पै ज्ञातव्या ॥ ४८९ ॥

अर्थ—इस प्रकार ९७७ स्थानोंके भेदसे तीन लोकके चराचर जीव मोहित होरहे हैं। इसी कारण संसारमें भटकते हैं ऐसा जानना ॥ ४८९ ॥ इस प्रकार गोमटसारका स्पष्टीकरण है।

प्रथमे दश सप्ताद्याः सासने मिश्रके नव । षडाद्या नव निर्वृत्ते पञ्चाद्याः पञ्चमेऽष्ट वै ॥ ३३८ ॥
चतुराद्या द्वयोः सप्त चतुराद्याः षडष्टमे । द्वावेको नवमे सूक्ष्मे सदैकस्योदयो मतः ॥ ३३९ ॥
कोपाद्यन्यतमो वेदो द्वावित्थ प्रथमे क्षणे । गतवेदस्य तस्यैकः कोपाद्यन्यतमः परे ॥ ३४० ॥

आगे हीनाधिक उदयस्थानोंको दिखाते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानमें दश प्रकृति उदयस्थानमें हैं और सात आदिक भी हैं । सासादनमें नौ प्रकृतिका उदयस्थान है और सात आदिक भी हैं । मिश्र गुणस्थानमें भी नौ उदयस्थानमें प्रकृति हैं और सात आदिक भी हैं । निर्वृत्त अर्थात् व्रतरहित असयत सम्यक्त्व चौथा गुणस्थान है । इस चौथे गुणस्थानमें नौका उदय है और छह आदिकका भी उदय है । पाचवें गुणस्थानमें आठका उदयस्थान है और पाच प्रकृति आदिके भी उदय है । ३३८ ।

आगेके छठे और सातवें—इन दो गुणस्थानोंमें सात प्रकृतिका उदय है और चार आदिके भी उदय हैं । आठवें गुणस्थानमें उत्कृष्ट उदय छह प्रकृतिका है और शेष चार आदिके भी उदय हैं । नौवें गुणस्थानमें दोका और एकका ऐसे दो उदयस्थान हैं । सूक्ष्मलोभ—दशवें गुणस्थानमें एक मोह प्रकृतिका ही उदय है । ३३९ ।

नवम गुणस्थानमें दो प्रकारके उदयस्थान किस प्रकार हैं सो आगे स्पष्ट करते हैं ।—

क्रोधादिक चार कषायोंमेंसे कोई एक प्रकृति, और एक वेद—ऐसे दो प्रकृतिका उदयस्थान नौवेंके प्रथम क्षणमें रहता है । आगे जहांसे वेद नष्ट हो जाता है वहांपर क्रोधादि चारमेंसे एक कोई प्रकृति ही उदयमें रहती है—यह एकका उदयस्थान है । ३४० ।

१—अविरतसम्यक्त्वे चतुर्थगुणस्थाने इत्यर्थः ।

तत्र चतुर्णां कषायाणामन्यतमो, वेदश्चेति द्वावुदयस्थान सवेदेऽनिवृत्तौ प्रथमे क्षणे, परेषु चतुर्षु भागेषु यथासंभवमवेदकषायाणामेकतमः १ । इत्यनिवृत्तौ २ । सूक्ष्मे १ ।

सप्तोदया दशाद्या यांति चतुर्विंशतिं स्फुटं भेदान् । कोपादिवेदयुग्मैः क्रमाच्चतुस्त्रिद्विभिर्घाते ॥ ३४१ ॥

इति दशाद्युदया सप्त १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । एते कषायादिभिर्गुणिताः प्रत्येकं चतुर्विंशतिभेदास्तेषां संख्यामाह—

दो स्थानोंमेसे दोप्रकृतिरूप एक उदयस्थान इस प्रकार है कि चार कषायोंमेंसे कोई एक कषाय, और एक वेद । यह उदयस्थान अनिवृत्ति करणमें वेदसहित—पहिले क्षणवर्ती है । वेदरहित आगेके चार भागोंमें वेद नहीं है, केवल चार कषायों मेंसे कोई एक प्रकृति है । इस प्रकार अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें उदयस्थान २ हैं । सूक्ष्मलोभ दशवें गुणस्थानमें १ भेद ही है ।

अब आगे दशादिके उदयस्थानोंमें भंगोंको दिखाते हैं ।—

दश प्रकृतियों आदिके उदयस्थान सात हैं वे सर्व चौवीस चौवीस भंगोंको धारण करते हैं । वह इस प्रकार कि—क्रोधादि चार प्रकृतियोंकी वदलन समत्र होनेसे चार संख्यासे गुणित करनेपर सातमेंसे प्रत्येक उदयस्थानके चार भेद होजाते हैं । फिर इन चार भेदोंको तीन वेदसख्यासे गुणा करनेपर वारह भग होजाते हैं । फिर वारहको हास्यादि दो युगलसे गुणनेपर बारहके चौवीस भेद हो जाते हैं ॥ ३४१ ॥

इस प्रकार दश आदि प्रकृतियोंके सात उदयस्थान— १० का, ९ का, ८ का, ७ का, ६ का, ५ का, ४ का । इनको कषायादिसे अर्थात् कषायवेदयुगमकी चार तीन दो संख्याओंसे क्रमसे गुणनेपर २४ भेद होजाते हैं ।

दुर्दृष्टावष्ट चत्वारि द्वयोरष्ट चतुष्टये । अपूर्वे सति चत्वारि पाकस्थानानि मोहने ॥ ३४२ ॥

८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । अपूर्वे ४ ।

अ३र्वान्ता अमी पाकाश्चतुर्विंशतिताडिताः । योगोपयोगलेश्याभिर्गुणनीया यथायथम् ॥ ३४३ ॥

सासने मिश्रेऽपूर्वे पाका षण्णवतिर्बुधैः । पचस्वन्येपु ते प्रोक्ताः सकला द्विगुणाः पुनः ॥ ३४४ ॥

इति मिथ्यादृष्ट्यादिपु पाकविकल्पाः १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । सवेदेऽनिवृत्तौ १२ । अवेदे ४ । सूक्ष्मे १ । मीलिताः १७ ।

अब उनकी संख्याओंको दिखाते हैं ।—

मिथ्यादृष्टिमें मोहके आठ उदयस्थान हैं। दूसरे तीसरे—इन दो गुणस्थानोंमें चार चार उदयस्थान हैं। तीसरेसे आगेके चतुर्थ गुणस्थानादि चार गुणस्थानोंमें आठ आठ उदयस्थान हैं । अपूर्वकरणमें चार उदयस्थान हैं ॥ ३४२ ॥

८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । अपूर्वमें ४ ।

अब इन भेदोंके उत्तर भेद चौवीस संख्याद्वारा करके दिखाते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानसे लेकर अपूर्व—आठवें गुणस्थान पर्यंतके ये उदयस्थान चौवीस संख्यासे गुणित कर लेने चाहिये। और फिर योग उपयोग लेश्याओंके द्वारा भी यथायोग्य गुणित होसकते हैं ।

सासादनमें, मिश्रमें तथा अपूर्वकरणमें चार चार उदयस्थान हैं उन्हे चौवीस संख्यासे गुणित करनेपर छ्यानवें भेद होजाते हैं । शेष पांच स्थानोंमेंसे प्रत्येक स्थानके उत्तर भेद छ्यानवेंसे दूने दूने होते हैं । क्योंकि शेष स्थानोंमें आठ आठ प्रकारके उदय हैं उन्हे चौवीससे गुणनेपर १९२ भेद होना वास्तविक ही है । ३४४ ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्ट्यादि अपूर्वकरण पर्यंतके उदयभेद क्रमसे—१९२, ९६, ९६, १९२, १९२, १९२, १९२, ९६ हुए ।

इनके आगे अनिवृत्तिके सवेद भागमें १२, अवेद भागमें ४, दशवें गुणस्थानमें १ =ये सर्व मिलकर १७ भेद हुए ।

या पाकस्थानसख्या सा पाकभेदा निरूपिता । पचषष्टियुत तेषां शतद्वादशक मतम् (१२६५) ॥ ३४५ ॥
अष्टषष्टिः समिथ्यात्वे द्वात्रिंशद् द्वितये ततः । सा षष्टिरष्टहीना सा चतुर्थे पचमे क्रमात् ॥ ३४६ ॥
चत्वारिंशच्चतुर्युक्ताः प्रमत्तेतरयोर्द्वयोः । अपूर्वे विंशतिर्ज्ञेया पाकप्रकृतय स्फुटम् ॥ ३४७ ॥
दशकाद्युदयानां ताश्चतुर्विंशतिसगुणा । पूर्वत्र कथिता मोहे ज्ञेया सख्याविशारदै. ॥ ३४८ ॥

पूर्वोदितदशकाद्युदयानां प्रकृतयो मिथ्यादृष्ट्यादिपु—६८ । ३२ । ३२ । ६० । ५२ । ४४ । ४४ ।

इन सर्व सख्याओंका जोड आगे बताते हैं ।—

यह जो उदयस्थानोंकी संख्या है वह उदयके भेदोंके द्वारा बारहसौ पैंसठि (१२६५) बताई है । ३४५ ।

अब आगे प्रत्येक गुणस्थानके उदयभेदोंकी प्रकृतियोंकी जोडकर संख्या बताते हैं ।--

मिथ्यात्वमें अडसठि सर्व भेदोंकी प्रकृति हैं । दूसरे तीसरे—इन दो गुणस्थानोंमें बत्तीस बत्तीस हैं । चौथेमें साठि संख्या है । पाचवें गुणस्थानमें आठ घाटि साठि अर्थात् बावन सख्या है ॥ प्रमत्त तथा इतर अप्रमत्त—इन छट्ठे सातवें दो गुणस्थानोंमें चवालीस चवालीस है । अपूर्वकरण आठवेंमें वीस संख्या है । इस प्रकार उदयप्रकृति समझना । ३४६ —३४७ ॥

दशक आदिक उदयोंकी जो पूर्वमें संख्या बताई हैं उन्हे गणितविशारदोंको चाहिये कि, चौवीस संख्यासे गुणित करके समझलेवें । ३४८ ॥

पूर्वमें (३३६ वें श्लोककी व्याख्यामें) दशकादिकोंके उदय बताये हैं । उन उदयोंकी सर्व प्रकृति मिथ्यादृष्ट्यादि सात स्थानोंमें क्रमसे—६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ हैं और अपूर्वकरणमें २० हैं । और अनिवृत्तिकरणमें २१

१—' पाकभेदान्निरूपिता ' इति पाठ सम्यग्भाति ।

अपूर्वे २० । अनिवृत्तौ २१ । सूक्ष्मे[1] १ । एताश्चतुर्विंशतिगुणा यावदपूर्वं, मिथ्यादृष्टौ ८६४ । ७६८ । उभयोर्मीलिताः १६३२ । आसनादिषु ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० । एता मीलिताः ८४४८ ।

एतदुक्तम्—

चतु षष्ट्या शतान्यष्टावष्टषष्ट्यात्र सप्त च । मिथ्यादृष्टौ शतान्यैक्ये द्वात्रिंशानीति षोडश ॥ ३४९ ॥

मिश्रशासनयोः सप्त साष्टा षष्टीन्यसंयते । चत्वारिंशानि विद्वांसः शतान्याहुश्चतुर्दश ॥ ३५० ॥

७६८ । ७६८ । १४४० ।

विना पचाशंत द्व्यग्रां तानि देशे त्रयोदश । षष्ठसप्तमयोर्ज्ञेय षट्पचाश सहस्रकम् ॥ ३५१ ॥

१२४८ । १०५६ । १०५६ ।

अपूर्वेऽशीतिसंयुक्तं ज्ञेय शतचतुष्टयम् । पचाशीतिशतान्यैक्ये स्युर्द्वापंचाशतं विना ॥ ३५२ ॥

अपूर्वे ४८० । सर्वाः पदवधाख्याः प्रकृतयः ८४४८ ।

हैं । सूक्ष्मलोभमें १ ही है । इन सर्व प्रकृतिसख्याओंको पृथक् पृथक् चौवीससे गुणनेपर अपूर्व गुणस्थानपर्यंत कितनी कितनी उत्तर सख्या आती है वह इस प्रकार है ।—मिथ्यादृष्टिमें पहिले ३६ के भेदको २४ से गुणनेपर ८६४ आये । दूसरे भेदके ३२ को २४ से गुणनेसे ७६८ आये । दोनोंका जोड १६३२ हुआ । सासादनादिकोंमें क्रमसे—७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० । ये सर्व मिलानेसे ८४४८ संख्या होती है । सो ही आगे मूलकार दिखाते हैं ।—

चौसठि अधिक आठसौ और अडसठि अधिक सातसौ—इन मिथ्यादृष्टिकी दोनो संख्याओंको एकत्र करनेपर मिथ्यादृष्टिमें सोरहसौ बत्तीस संख्या होती है ॥ ३४९ ॥

मिश्र और सासादनमें सातसौ अडसठि, सातसौ अडसठि हैं । असंयतमें चौदहसौ चालीस हैं । (७६८ । ७६८ । १४४० ।)। बावन घाट तेरहसौ देशमें अर्थात देशसंयतमें हैं । एक हजार छप्पन छट्ठे गुणस्थानमें हैं और सातवेंमें भी एक हजार

१—' आनवृत्तौ २१ । सूक्ष्मे १ । ' यह पाठ यहां अनावश्यक है क्योंकि आगे फिरसे बताया है । और अशुद्ध भी है ।

अनिवृत्तभंगाः कथ्यन्ते—

वेदसंज्वलनाभ्यासे द्वादश स्युर्द्विकोदयाः । एकोदयास्तु चत्वारः सञ्ज्वालान्यतमोदये ॥ ३५३ ॥

एकः सूक्ष्मे भवत्येवं द्वये सप्तदशोदयाः । एकान्नत्रिंशदैक्ये ते द्वाभ्यामभ्यसने सति ॥ ३५४ ॥

सवेदेऽनिवृत्तौ द्विकोदयाः १२ । अवेदे त्वेकोदयाः ४ । सूक्ष्मलोभे एकः १ । सर्वे मीलिताः १७ । द्वाभ्यामभ्यसने द्विकोदयेषु प्रकृतयः २४ । एकोदये ४ । सूक्ष्मे १ । पिंडिताः २९ । पदबंधाख्याः प्रकृतयः —

पाकप्रकृतिसंख्यायाः पदबंधा भवति ते । पचाशीतिशतान्याहुस्तांस्त्रयोविंशतिं विना (८४७७) ॥ ३५५ ॥

छप्पन हैं ॥ (१२४८ । १०५६ । १०५६) । अपूर्वकरणमें चारसौ अस्सी हैं । एकत्र करनेपर बावन घाट पचासी सौ अर्थात ८४४८ होती हैं । ये सर्व पदबंधकी अर्थात् भंगोंकी सख्या हुई । ३५०–३५२ ।

अब अनिवृत्तिकरणके भंगोंको दिखाते हैं ।—

अनिवृत्तिकरणमें जहांतक दो मोहप्रकृतिका उदय है वहांपर्यंत वेद तीनको सज्वलन चारसे गुणनेपर बारह भेद होते हैं । और आगे जहां केवल एकका ही उदय है वहांपर सज्वलन किसी एक एकके उदयसे चार भेद होते हैं ॥ सूक्ष्मलोभमें एक ही भेद है । दोनो इन गुणस्थानमेंसे पहिले बारह भेद दो दो प्रकृतिरूप हैं इसलिये १२ को २ से गुणित करनेपर २४ प्रकृति होगई । आगेकी चार भेदवाली इकहरी चार प्रकृतियोंको और सूक्ष्मलोभकी एक प्रकृतिको जोडनेसे उन्तीस प्रकृति दोनो गुणस्थानोंकी हुई । ३५३—३५४ ।

सवेद भाग अनिवृत्तकरणके दो उदयवाले भेद १२ । अवेद भागके उदय ४ । सूक्ष्मलोभका उदय १ । ये सर्व १७ हुए ॥ इनमेंसे बारहको दो संख्यासे गुणनेपर दो उदय वाले स्थानोंकी प्रकृति २४ हुई । एकोदयकी ४ और सूक्ष्म लोभकी १ ये सर्व मिलानेसे २९ हुई । ये सर्व पदबंध प्रकृति कहाती हैं ।

इस प्रकार उदयप्रकृतियोंके ये पदबंध हैं । ये सर्व तेईस घाट पचासी सौ अर्थात ८४७७ हैं । ३५५ ।

ये भवति गुणे यत्र पाकाः प्रकृतयश्च याः। योगोपयोगलेश्याभिस्ते गुण्यास्ताश्च यत्नतः ॥ ३५६ ॥
त्रयोदश द्वयोर्योगा दशान्यत्र त्रयोदश। नवैकादश ते षट्के नव सप्त च योगिनि ॥ ३५७ ॥

गुणेषु योगाः १३ । १३ । १० । १३ । ९ । ११ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ७ । ० । गुणेषु पाकभेदाः पूर्वोदिता मिथ्यादृष्टौ ९६ । ९६ । सासनादिषु ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । अनिवृत्तौ १२ । ४ । सूक्ष्मे १ । इति द्वयोः १७ ।

अब आगे मोहके उदयभंगोंको योग उपयोग तथा लेश्या द्वारा गुणित करके संख्याओंको बताते हैं।—

जिन गुणस्थानोंमें जो उदय तथा जो प्रकृति हैं उन उदयोंको तथा उन प्रकृतियोंको योग उपयोग लेश्या द्वारा गुणित करना चाहिये। ३५६।

योगों द्वारा गुणित करनेकेलिये सर्व गुणस्थानोंमें योगोंके भेद जितने जितने संभव हैं उन्हे प्रथम दिखाते हैं।—

पहिले दो गुणस्थानोंमें तेरह तेरह योग हैं। अन्यत्र अर्थात् तीसरे गुणस्थानमें दश योग हैं। चौथे गुणस्थानमें तेरह हैं।

पांचवेंमें नौ हैं। छठे गुणस्थानमें क्रमसे ग्यारह योग हैं। इससे आगे सातवेंसे बारहवें पर्यंतके छह गुणस्थानोंमें नौ नौ हैं। सयोग केवली तेरहवें गुणस्थानमें योग सात हैं। ३५७।

गुणस्थानोंमें योगोंकी क्रमवार संख्या—१३ । १३ । १० । १३ । ९ । ११ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ७ । ० । गुणस्थानोंमें उदयभेद पूर्वमें बताये हैं वे ये हैं—मिथ्यादृष्टिमें ९६ । ९६, सासादनादि अपूर्वकरण पर्यंतमें क्रमसे—९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ ।, अनिवृत्तिकरणमें १२ और ४ ।, सूक्ष्मलोभमें १ ।–इस प्रकार दो गुणस्थानोंमें १७ ।

मिथ्यादृष्टौ योगा' १३ । १० । सासनादिषु १२।१०।१०।९।११।९।९। योगैः पण्णवत्यादयः पाकविकल्पाः पूर्वोदिता गुणिता मिथ्यादृष्टौ १२४८ । ९६० पिंडिताः २२०८ । सासनादिषु ११५२ । ९६० । १९२० । १७२८ । २११२।१७२८।८६४ । पिंडिताः १२६७२ ।

न श्वभ्रं सासनो याति मिश्रवैक्रियिके यतः । षढवेदो न तस्यास्ति ततस्तत्र कदाचन ॥ ३६१

वेदकोपादियुग्मोत्थैर्भंगैः षोडशभिस्ततः । चतुःषष्टिर्मताः पाकाश्चत्वारो गुणिताः परे ॥३६२॥

षढो वैक्रियिके मिश्रे नरके त्रिदिवे पुमान् । पुमानौदारिके मिश्रे जायते नृष्वसंयतः ॥ ३६३ ॥

भंगैः षोडशभिर्गुण्या वेदकोपादियुग्मकैः । कर्मवैक्रियमिश्राभ्यां निमताष्टोदयस्तथा ॥ ३६४ ॥

मिथ्यादृष्टिमें योग १३ अथवा १० हैं । सासादनादिकोंमें क्रमसे १२ । १० । १० । ९ । ११ । ९ । ९ इस प्रकार बताये हैं । इन योगोंद्वारा, छयानवें आदि तत्तत् गुणस्थानोंके उदयभेद जो ऊपर बताये हैं उन्हे गुणा तो मिथ्यादृष्टिमें १२४८ । ९६० हुए । एकत्र करनेपर २२०८ हुए । सासादनादिकोंमें ११५२ । ९६० । १९२० । १७२८ । २११२ । १७२८ । ८६४ ।—इतने हुए । जोड़ देनेसे सर्व १२६७२ हुए ।

सासादनके तेरहवें योगका खुलासा ।—

सासादन नरकको नहीं जाता इसलिये वैक्रियिक मिश्रयोगके समय उसके वहां नपुंसक वेद किसी प्रकार भी नहीं हो सकता है । इसलिये दो वेद, क्रोधादि चार कषाय तथा हास्यादि दो युगलके परस्पर गुणा करनेसे उत्पन्न हुए सोलह भंगोंसे चार उदयोंको गुणित करनेपर चौसठि (६४) उदयभंग निकलते हैं । ३६१—३६२ ।

अब चौथे गुणस्थानके शेष तीन योगोंका खुलासा आगे करते हैं ।—

असंयत सम्यग्दृष्टि जीवके वैक्रियिकमिश्रयोगके साथमें नपुंसक वेद नरकमें ही रह सकता है । देवोंमें भी वैक्रियिक मिश्र होता है परन्तु वहां असंयत सम्यग्दृष्टिके पुरुषवेद ही होता है । और असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यगतिमें औदारिक मिश्रको जब धारण करता है तो भी पुरुष ही होता है । अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टिको कार्माण योगके साथमें तथा वैक्रियिक मिश्रयोगके

पुनपुंसकवेदद्वयकषायचतुष्कहास्यादियुग्मानामन्योन्याभ्यासे भगाः १६ । एतैरष्टोदया हताः १२८ । वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगाभ्यां हताः २५६ ।

युग्मैकवेदकोपादिभंगैरष्टभिराहताः । अष्टावौदारिके मिश्रे चतुःषष्टिरुदाहृताः ॥ ३६५ ॥

युग्मैकवेदकोपादीनामन्योन्यवधे भगा ८ । एतेऽष्टोदयहताः ६४ । औदारिकमिश्रहताः ६४ ।

एवमसंयते पूर्वैः सहोदयविकल्पाः परे ३२० ।

नवमे दशमे पाकाः पूर्वं सप्तदशोदिताः । योगैर्नवभिरभ्यस्तास्त्रिपचाशं शतं मतम् ॥ ३६६ ॥

सायमें स्त्रीवेद कभी नहीं रह सकता है । इसलिये क्रोधादि चारको वेद दोसे ही गुणा करना चाहिये । फिर दो युगल (हास्यादि) से गुणा होता है । इस प्रकार इन सोलहसे और कार्मण तथा वैक्रियिक मिश्र—इन दो योगोंसे क्रमसे असंयत सम्यग्दृष्टि संबंधी अष्टोदयको अर्थात् आठ उदयस्थानोंको गुणना चाहिये ॥ ३६३–३६४ ॥

भावार्थ, पुरुष नपुंसक इन दो वेदोंका, कषाय चारका और हास्यादि युगल दोका परस्परमें गुणा होनेसे भंग १६ होते हैं। इन सोलहसे आठ उदयस्थानोंको गुणनेपर १२८ भेद हुए । फिर वैक्रियिक मिश्र तथा कार्मण इन दोसे गुणनेपर २५६ भेद होते हैं।

युगल दोका, वेद एकका, क्रोधादि चारका परस्पर गुणन होनेसे आठ भेद हुए । इस आठ संख्यासे औदारिकमिश्रके संबंधी आठ उदयस्थानोंको गुणनेपर चौसठि भेद होना बताया है । ३६५ ।

हास्यादि युगल दो, वेद एक, क्रोधादि चार – इनका परस्पर गुणन होनेपर भंग आठ हुए । आठसे आठ उदयस्थान गुणे जांय तो ६४ भंग होजाते हैं। ये ६४ औदारिकमिश्र संबंधी हैं। औदारिकमिश्र एक योगसे गुणनेपर भी चौसठि ही रहते हैं। इस प्रकार असयत सम्यक्त्वमें उदयभेद ऊपर वैक्रियिकमिश्र संबंधी २५६ बताये हैं उन्हे ६४ में जोडनेसे ३२० भेद होजाते हैं ।

इस प्रकार आठ गुणस्थान पर्यंतके उदयभंगोंको योगद्वारा गुणित करके बताया । अब आगे नौवें दशवें दो गुणस्थानोंके १७ उदयस्थानोंको योगों द्वारा गुणित करके बताते हैं ।—

नौवेंके १६ और दशवें गुणस्थानका १ ऐसे १७ उदयभेद पहिले बताये हैं । और यहां योग नौ नौ संभव हैं । इस लिये नौको सत्रहसे गुणित करनेपर एकसौ त्रेपन भंग यहांके उदयोंके हो जाते हैं । ३६६ ।

सवेदेऽनिवृत्तौ वेदाः ३ । सज्वलनाः ४ । परस्परवधे द्विकोदयाः १२ । नवयोगहताः १०८ । निर्वेदे शेषेषु पचमभागेषु चतुर्षु संज्वालान्यतमोदयाः ४ । योगनवकगुणिताः ३६ । द्वयेऽप्यनिवृत्तौ मीलिताः १४४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभसंज्वालस्यैकस्योदयः १ । नवभिर्योगैर्गुणिताः ९ । इत्थं सर्वे पिंडिताः १५३ ।

मोहनोदयभमा ये योगानाश्रित्य मेलिताः । नवोत्तरशते ते द्वे सहस्राणि त्रयोदश ॥ (१३२०९) । ३६७ ॥

साम्प्रतं पदबंधा योगानाश्रित्य कथ्यन्ते—

तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु पूर्वोदितैर्योगैरेतैः १३ । १० । सासनादिषु १२ । १० । ९ । ९ । ११ । ९ । ९ ।

अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें तीन वेद हैं, कषाय संज्वलन चार हैं। इनका परस्पर गुणा करनेपर दो उदयवाले स्थानोंमें बारह भेद हुए। इन १२ को नौ योगोंसे गुणनेपर १०८ भेद हुए। वेदरहित अनिवृत्तिकरणमें जो शेष पांचवें चार भाग हैं उनमें संज्वलन एक एक किसी प्रकृतिका उदय रहता है इसलिये ४ उदयस्थान हुए। इन ४ को नौ योगोंसे गुणनेपर ३६ भेद हुए। इन अनिवृत्तिकी दोनो सख्याओंका जोड १४४ हुआ। दशवें गुणस्थानमें एक सूक्ष्म लोभका उदय है। उसे नौं योगोंसे गुणनेपर ९ भेद हुए। इस प्रकार दोनों गुणस्थानोंके सर्व मिलकर १५३ भंग हुए।

मोहोदयके भंग योगोंका संबंध लगाकर जो रक्खे गये हैं वे सर्व मिलकर तेरह हजार दो सौ नौं [१३२०९] होते हैं। ३६७॥

भावार्थ, मिथ्यादृष्टिसे अपूर्वकरण पर्यंतके उदयस्थान भग १२६७२। सासादनके मिश्र वैक्रियिक संबंधी ६४। असंयत सम्यग्दृष्टिके कार्मण, वैक्रियिक-मिश्र, औदारिक मिश्र—इन तीन योगसंबंधी ३२०। और नौवें दशवें–दो गुणस्थान संबंधी १५३ –इन सबको जोडनेसे १३२०९ उदयस्थानोंके भंग हो जाते हैं।

अब आगे योगोंके आश्रयसे पदबंध प्रकृतियोंको गुणित करके दिखाते हैं।—

वह इस प्रकार कि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पूर्वकथित १३ । १० तथा सासादनादिकोंमें—१२ । १० ।

क्रमादेताः प्रकृतयः पूर्वोदिता मिथ्यादृष्टौ ८६४ । ७६८ । सासनादिषु ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० । गुणिता जाता मिथ्यादृष्टौ ११२३२ । ७६८० । सासनादिषु ९२१६ । ७६८० । १४४० । ११२३२ । ११६१६ । ९५०४ । ४३२० ।

पाकप्रकृतयः सन्ति चतुर्विंशतिभङ्गजाः । षडशीतिसहस्राणि साशीति च शताष्टकम् ॥ ३६८ ॥

८६८८० ।

द्वात्रिंशत्षोडशाभ्यस्ताः पाकप्रकृतयः स्फुटम् । सह द्वादशभिर्ज्ञेयं सासने शतपञ्चकम् ॥ ३६९ ॥

शासने चत्वारः पाकाः ७, ८, ८, ९ । एवं प्रकृतयः ३२ । पूर्वोदितैः षोडशभिर्भङ्गैर्गुणयित्वा वैक्रियिकमिश्रयोगबन्धेऽन्येऽपि पदबंधाः ५१२ ।

---

९ । ९ । ११ । ९ । ९ । —इन योगों द्वारा, पूर्वकथित प्रकृति—मिथ्यादृष्टिमें ८६४ । ७६८ । तथा सासादनादिकोंमें क्रमसे ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० ।—गुणित करनी चाहिये । गुणित करनेपर लब्ध संख्या मिथ्यादृष्टिमें ११२३२–७६८० होती है । एवं सासादनादिकोंकी क्रमसे ९२१६ । ७६८० । १४४० । ११२३२ । ११६१६ । ९५०४ । ४३२० संख्या होती है ।

इस प्रकार चौवीसके भंगजन्य सर्व उदयप्रकृति छयासी हजार आठसौ अस्सी (८६८८०) होती हैं ॥ ३६८ ॥

अब सासादनके वैक्रियिकमिश्र योगके बंधमें होनेवाली प्रकृतिसंख्याको बताते हैं ।—

सासादनमें सर्व प्रकृति बत्तीस गिनाई हैं उन्हें सोलहसे गुणें तो बारह अधिक पांचसौ और भी अधिक उदय-प्रकृति हो जाती हैं । ३६९ ।

सासादनमें चार उदय—७, ८, ८, ९-इस प्रकार बताये हैं । इनका जोड देनेसे ३२ प्रकृति हुईं । इन्हें पूर्व-कथित सोलह भंगोंसे गुणें तो वैक्रियिकमिश्र काययोगके बंध समयमें ५१२ और भी पदबंध नामकी प्रकृति हो जाती हैं ।

पाकाष्टकगता षष्टिः प्रकृतीनामसंयते । हता षोडशभिर्भंगैर्वेदकोपादियुग्मजैः ॥ ३७० ॥

कर्मवैक्रियमिश्राभ्यां योगाभ्यां ताडिता सती । सहस्रं नव विंशानि शतानि च भवंति ताः ॥ ३७१ ॥

असंयतेऽष्टोदया ७, ८, ८, ९ । ६, ७, ७, ८ । एषां प्रकृतय ६० । षोडशभंगगुणिता ९६० । वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगाभ्यां हता १९२० ।

पाकप्रकृतयो भंगैरष्ट षष्टिभिराहताः । हतौदारिकमिश्रेण सहाशीत्या चतु शती ॥ ३७२ ॥

असंयतेऽन्येप्यौदारिकमिश्रयोगे भंगाः ४८० । एवं निव्रते योगत्रये अन्येपि मीलिता पदबंधा २४०० ।

एकोनत्रिंशदस्यस्ता नवमे दशमे च ताः । योगैर्नवभिरादिष्टं सैकषष्टिशतद्वयम् ॥ ३७३ ॥

अब चौथे गुणस्थानमें कार्मणादि तीन योगोंके होते जो उदयप्रकृति होती हैं उन्हे आगे गिनाते हैं।—

असंयत चौथे गुणस्थानमें आठ मोहस्थान हैं। उनमें सर्व प्रकृति मिलकर साठि होती हैं उन्हे २ वेद, ४ कषाय हास्यादि २ युगल गुणित सोलह संख्यासे गुणनेपर और कार्माण वैक्रियिकमिश्र—इन दोसे गुणित करनेपर एक हजार नौ सौ वीस (१९२०) पदबंध प्रकृति आती हैं। ३७०—३७१ ।

असयतमें आठ प्रकारके ७, ८, ८, ९ । ६, ७, ७, ८ ।—ये उदय हैं। इनकी सर्व प्रकृति साठि हैं। इन ६० को वेद दो कषाय चार युगल दोके परस्पर गुणित सोल्ह प्रमाणसे गुणनेपर ९६० सख्या होती है। इस नौसौ साठिको वैक्रियिकमिश्र तथा कार्मणकी दो योगसख्यासे गुणनेपर १९२० उदयप्रकृतियोंकी सख्या सिद्ध होती है।

साठि भंगोंसे आठको गुणित करनेपर और फिर औदारिक मिश्रसे गुणनेपर चारसौ अस्सी उदयप्रकृति सिद्ध होती हैं॥३७२

असयतमें औदारिकमिश्रयोगके रहनेपर भंग ४८० होते हैं। इस प्रकार असंयत चौथे गुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रादि तीन योगोंके द्वारा विशेषरूपसे और २४०० पदबंध प्रकृति समझकर ऊपरकी १४४० में मिलालेनी चाहिये।

अब नौवें दशवें गुणस्थानके पदबंधोंको दिखाते हैं।—

नौवें दशवेंकी उन्तीस प्रकृतियोंको नौ योगोंसे गुणित करनेपर दोसौ इकसठि पदबंध प्रकृति सिद्ध होती हैं। ३७३।

नवमे उदये २ । द्वादशभिर्द्विकोदयैर्घाते २४ । चतुर्भिरेकोदयैः १ । ४ । सर्वाः २८ । सूक्ष्मे एकोदयः १ । मीलिताः २९ । एता नवभिर्योगैरभ्यस्ताः २६१ ।

पदबंधा मताः सर्वे मीलिता मोहकर्मणि । नवतिः स्युः सहस्राणि त्रिपंचाशानि निश्चितम् ॥ ३७४ ॥

इति मोहे योगानाश्रित्य गुणेषु पदबंधाः ९००५३ ।

गुणस्थानेषु ये पाका पदबंधाश्च संति ये । उपयोगैर्हता ज्ञेयास्ते निःशेषा विचक्षणैः ॥ ३७५ ॥

द्वयोः पंच क्रमेणैते त्रिषु षट् सप्त सप्तसु । द्वयोर्द्वाववबोद्धव्या गुणस्थानेषु कोविदैः ॥ ३७६ ॥

नौवें गुणस्थानमें सवेद भागमें उदय दोका है । उसे द्विक बारहसे गुणित करनेपर २४ संख्या होती है । नौवेंके ही अवेदभागमें चार एकके उदय हैं १।४। मिलानेसे २८ संख्या होती है । सूक्ष्मलोम दशवेंका उदय १ है । ये सर्व २९ हुए । इनको नौ योगोंसे गुणनेपर २६१ पदबंध प्रकृति होजाती है ।

मोहकर्ममें इस प्रकार सर्व पदबंध मिलानेसे नव्वे हजार त्रेपन प्रकृति होती हैं । ३७४ ।

इस प्रकार मोहोदयोंमें योगोंको लगानेसे गुणस्थानोंमें सर्व पदबंध प्रकृति ९००५३ हुई ।

अब आगे उपयोगके निमित्तसे उदय तथा उदयप्रकृतियोंको गिनाते हैं ।

गुणस्थानोंमें जो उदय तथा पदबंध हैं उन्हे उपयोगोंके द्वारा गुणित करके समझ लेना चाहिये ॥ ३७५ ॥

आठ ज्ञानोपयोग और चार दर्शनोपयोग ऐसे सर्व उपयोग बारह हैं । उनमेंसे पांच पांच उपयोग पहिले दो गुणस्थानोंमें हैं । फिर तीसरे चौथे पांचवें इन तीन गुणस्थानोंमें छह छह उपयोग हैं । फिर क्रमसे सात गुणस्थानोंमें सात सात उपयोग हैं फिर अंतके दो गुणस्थानोंमें दो दो उपयोग हैं । इस प्रकार सर्व गुणस्थानोंमें विद्वानोंको उपयोगसंख्या जाननी चाहिये ॥३७६॥

गुणेषूपयोगाः ५ । ५ । ६ । ६ । ६ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । २ । २ । गुणेष्वष्टसु पाकविकल्पाः १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । नवमे १२ । ४ । दशमे १ । द्वयोः १७ ।

उपयोगगुणा एते एतावतो निवेदिता । उपयोग शति प्राज्ञैः पाकभेदा यथागमम् ॥ ३७७ ॥

९६० । ४८० । ५७६ । ११५२ । ११५२ । १३४४ । १३४४ । ६७२ । मीलिता ७६८० ।

नवमे दशमे पाका पूर्वं सप्तदशोदिता । उपयोगगुणा सति शत सैकोनविंशति ॥ ३७८

११९ । मीलिताः ७७९९ ।

भेदा मोहनपाकानामुपयोगहता मताः । ऐक्ये नवनवत्यामा शतानां सप्तसप्तति ॥ ३७९ ॥

गुणस्थानोंमें उपयोग क्रमसे— ५ । ५ । ६ । ६ । ६ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । २ । २ – इस प्रकार है । आदिके आठ गुणस्थानोंम उदयविकल्प क्रमसे— १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ – है । नौवें गुणस्थानमे १२ । ४ है । दशवेंम १ है । दोनोंमे मिलकर १७ होते हैं ।

उपयोगकी अपेक्षासे उपयोगोंद्वारा गुणित किए हुए उदयभेद सर्व जितने जितने प्रत्येक गुणस्थानमे वताये हैं वे विद्वानोंको आगमानुसार इस प्रकार समझलेने चाहिये । ९६० । ४८० । ५७६ । ११५२ । ११५२ । १३४४ । १३४४ । ६७२ । इनका जोड ७६८० होता है । ये पहिले आठ गुणस्थानोंके भेद हुए । ३७७ ।

नौवें और दशवें गुणस्थानके मिलाकर सत्रह उदयभेद ऊपर वताये हैं । इन्हे उपयोगके संभव सात भेदोंसे गुण देनेपरे सर्व भेद एकसौ उन्नीस (११९) होते है । ऊपरके आठ गुणस्थान संवधी ७६८० भेदोंमे इन भेदोंको जोड देनेपर ७७९९ जोड होता है । ३७८ ।

इस प्रकार मोहके उदयभेदोंको उपयोगोंसे गुणित करदेने पर सबका जोड निन्यानवे अधिक सततरि सौ अर्थात्— ७७९९ होता है । ३७९ ।

गुणस्थानाष्टके संति पाकप्रकृतयो यका । उपयोगैः क्रमादेताः पदबंधा हता मता ॥ ३८० ॥

गुणेष्वष्टसु पाकप्रकृतय १६३२। ७६८। ७६८। १४४० ।१२४८। १०५६। १०५६ । ४८० । एता यथा-स्वमुपयोगगुणा पदबंधा ८१६० । ३८४० । ४६०८ । ८६४० । ७४८८ । ७३९२ । ७३९२ । ३३६० । मीलिता. ५०८८० ।

सूक्ष्मानिवृत्तिकरस्थानपाकप्रकृतयो हता । सप्तकेनोपयोगानां त्र्युत्तरे द्वे शते मते ॥ ३८१ ॥

द्वयोः पाकप्रकृतयः २९ । उपयोगसप्तकहताः २०३ ।

अब आगे सर्व पदबंधोंको दिखाते हैं। —

आदिके आठ गुणस्थानोंमें जो उदयप्रकृति हैं उन्हे ऊपर बताये हुए उपयोगोंकी भेदसंख्यासे गुणनेपर पदबंधोंकी संख्या होजाती है ऐसा माना है । ३८० ।

वह इस प्रकार है कि आदिके आठ गुणस्थानोंमे क्रमसे उदयप्रकृति— १६३२ । ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६ । ४८० — इतनी इतनी हैं। इनको यथाक्रम उपयोगोंद्वारा गुण लिया जाय तो वे पदबंध कहाते है और वे इस प्रकार है— ८१६० । ३८४० । ४६०८ । ८६४० । ७४८८ । ७३९२ । ७३९२ । ३३६० । इन सबका जोड ५०८८० होता है।

अनिवृत्तिकरण तथा सूक्ष्मसापराय इन नौवें दशवें दो गुणस्थानोंकी उदयप्रकृति उपयोगकी सात संख्यासे गुणित करदी जाय तो दोसौ तीन पदबंध सिद्ध हो जाते है । ३८१ ।

नौवें दशवेंकी सर्व उदयप्रकृति उन्तीस (२९) हैं। उपयोगकी सात संख्यासे गुणने पर २०३ पदबंध हुए ।

उपयोगगताः सर्वे पदबंधा निरूपिताः । सहस्राण्येकपंचाशतमत्र्यशीतीनि सूरिभिः ॥ ३८२ ॥ (५१०८३ ।)

लेश्याश्चतुष्टये षट् षट् तिस्रस्तिस्रस्त्रये शुभा । एकैकास्ति गुणानां सा षट्के निर्लेश्यमतिमम् ॥ ३८३ ॥

६ । ६ । ६ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ० । अष्टसु गुणस्थानेषु पाकविकल्पाः १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । एते यथाक्रमं लेश्यागुणा लेश्यासु पाकभेदा – ११५२ । ५७६ । ५७६ । ११५२ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । ९६ । अनिवृत्तिसूक्ष्मयोरुदयाः १७ । शुक्ललेश्यागुणाः १७ । सर्वे पिंडिता ५२९७ ।

इस प्रकार पहिले आठ गुणस्थानोंके पदबंध और ये नौवें दशवें दो गुणस्थानोंके पदबंध—सर्व जोडदेने पर इक्यावन हजार और तिरासी (५१०८३) इतने हो जाते हैं ऐसा आचार्योंने बताया है । ३८२ ।

अब आगे लेश्याओंके भेदोंसे मोहकी उदयप्रकृतियोंको गुणित करके दिखाते हैं । —

आदिके चार गुणस्थानोंमे लेश्याएं छह छह हैं । फिर पांचवें छट्टे सातवें इन तीन गुणस्थानोंमे अंतकी शुभ तीन तीन लेश्याएं हैं । फिर आठवेंसे तेरहवें पर्यंतके छह गुणस्थानोंमे अंतकी एक शुक्ल शुक्ल ही लेश्या है । सबसे अंतके चौदहवें गुणस्थानमें लेश्याका अभाव होनेसे उस अंतिम गुणस्थानको निर्लेश्य अथवा अलेश्य कहते हैं । ३८३ ।

६ । ६ । ६ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ० । यह गुणस्थानक्रमसे लेश्याओंकी भेद-संख्याका यंत्र है ।

सर्व गुणस्थानोंमे उदयभेद ऊपर बताये जा चुके हैं । वे इस प्रकार हैं । — आदिके आठ गुणस्थानोंमे क्रमसे १९२ । ९६ । ९६ । १९२ । १९२ । १९२ । १९२ । ९६ । इन उदयभेदोंको उन उन लेश्याभेदोंसे गुणनेपर क्रमसे लेश्याओंमे उदयभेद जो होते हैं वे इस प्रकार हैं ।– ११५२ । ५७६ । ५७६ । ११५२ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । ९६ । आठवें गुणस्थानसे लेश्या एक ही है इसलिये सामान्य उदयसंख्याको लेश्यासंख्यासे गुणने पर भी अधिक भेद नहीं होते हैं । इसीलिये आठवें गुणस्थानकी संख्या जैसी ऊपर ९६ थी वैसी ही लेश्यासे गुणनेपर भी ९६ ही रही है ।

त्रिहीनानि त्रिपचाशच्छतान्येव गुणेषु वै। लेश्यापाकविकल्पानां भवन्त्येकत्र मोहने ॥ ३८४ ॥

गुणाष्टके पदबधे पाकप्रकृतयः १६३२ । ७६८ । ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६। ४८० । यथाक्रम लेश्याहताः पदबधा आगता ९७९२ । ४६०८ । ४६०८। ८६४० । ३७४४ । ३१६८ । ३१६८ । ३१६८ । ४८० । मीलिताः ३८२०८ । नवमदशमयोः पाकप्रकृतयः २९ । शुक्ललेश्याहताः २९ । सर्वे मीलिताः ३८२३७ ।

सति लेश्याहताः सर्वे पदबधा विसंशयम । अष्टत्रिंशत्सहस्राणि सप्तत्रिंश शतद्वयम् ॥ ३८५ ॥

६ । ६ । ६ ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ० ।

अनिवृत्तिकरण नौवें और सूक्ष्मलोभ दशवे इन दो गुणस्थानोंके मिलकर उदयविकल्प १७ है। यहा लेश्या एक शुक्ल ही है इसलिये लेश्यासख्या एकसे गुणनेपर भी उदयविकल्प १७ ही रहते हैं। सर्वोका जोड पाच हजार दो सौ सत्तानवे (५२९७) होता है।

इसी फलितको ग्रथकार आगे बताते हैं।—

इन गुणस्थानोंमें ऊपर बताये अनुसार मोहनीयमें एकत्र किये हुए लेश्यासबधी उदयविकल्प सर्व तीन घाट तिरेपनसे (५२९७) होते है ॥ ३८४ ॥

आठ गुणस्थानोंमें पदबधकी उदयप्रकृति क्रमसे १६३२ । ७६८। ७६८ । १४४० । १२४८ । १०५६ । १०५६। ४८० — है। इनको लेश्याभेदोंसे गुणनेपर पदबध क्रमसे—९७९२ । ४६०८ । ४६०८ । ८६४० । ३७४४ । ३१६८ । ३१६८ । ३१६८ । ४८० —इतने है। इन सबका जोड ३८२०८ होता है। नौवें दशवें गुणस्थानकी उदयप्रकृति २९ है। शुक्ल-लेश्याकी एकसख्यासे गुणनेपर भी २९ ही रहते हैं। ऊपरकी सख्यामें इन भेदोंको भी मिलादेनेसे सर्व भेद ३८२३७ हो जाते है।

इसी सिद्ध हुई सख्याको ग्रथकार स्वय आगे बताते हैं।—

लेश्याओंसे गुणित किये हुए सर्व पदबध अडतीस हजार और सैंतीस अधिक दो सौ (३८२३७) होते है ॥३८५॥

मोहनीयोदया ह्येताः समस्ता वेदताडिताः । गुणस्थानाष्टकैर्याश्च चतुर्विंशतिसगुणाः ॥ ३८६ ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिष्वष्टसूदयाः ८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । ४ । एते त्रिवेदताडिताः २४ । १२ । १२ । २४ । २४ । २४ । २४ । १२ । चतुर्विंशतिसगुणाः ५७६ । २८८ । २८८ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । ५७६ । २८८ । सर्वैक्ये ३७४४ । अनिवृत्तौ सज्वाला वेदत्रयगुणाः १२ ।

वेदैस्तु त्रिभिरभ्यस्ताः सज्वाला अनिवृत्तिके । सप्तत्रिंशच्छतान्याहुः षट्पचाशीनि मीलिते ॥ ३८७ ॥

पाकस्थानानि एवं ३७५६ ।

अब आगे मोहकी उदयप्रकृतियोंको स्त्री आदि यथासभव वेदोंसे गुणित करके दिखाते है । —

मोहनीयकी सर्व उदयप्रकृति वेदोंसे गुणित करनी चाहिये और आठो गुणस्थानोंसे जितनी प्रकृति ठहरती हैं वे चौवीस सख्यासे गुणित करलेनी चाहिये । ३८६ ।

पहिले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर आठवें पर्यत आठ गुणस्थानोंमें उदय क्रमसे– ८ । ४ । ४ । ८ । ८ । ८ । ८ । ४ — है । इन्हे तीन वेदसख्यासे गुणित करनेपर २४ । १२ । १२ । २४ । २४ । २४ । २४ । १२ । — इतनी सख्या होती है । इन्हे फिर चौवीससे गुणित करनेपर क्रमसे— ५७६।२८८।२८८।५७६।५७६।५७६।५७६।२८८।– होते हैं । सबका जोड ३७४४ होता है । अनिवृत्तिकरणमे चार सज्वलनको वेद तीनसे गुणनेपर १२ सख्या होती है ।

इसी वातको मूलकार आगे कहते है और सबके जोडको वताते हे । —

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे सज्वलन चार है । इनको वेद तीनसे गुणलेना चाहिये । भावार्थ, यह गुणित सख्या १२ होती हैं । उपर वताए आठ गुणस्थानसवधी भेद और अनिवृत्ति करणके वारह भेद–ये सर्व मिलादेनेसे छप्पन अधिक सेंतीससौ (३७५६) भेद होजाते हैं ॥ ३८७ ॥

इस प्रकार उदयस्थान सर्व ३७५६ है ।

पाकप्रकृतयः सर्वा वेदत्रयहता मताः । गुणस्थानाष्टके मोहे चतुर्विंशतिताडिताः ॥ ३८८ ॥

६८ । ३२ । ३२ । ६० । ५२ । ४४ । ४४ । २० । त्रिवेदे गुणा २०४ । ९६ । ९६ । १८० । १५६ । १३२ । १३२ । ६० । चतुर्विंशतिताडिता ४८९६ । २३०४ । २३०४ । ४३२० । ३७४४ । ३१६८ । ३१६८ । १४४० । मीलिताः २५३४४ । अनिवृत्तौ संज्वालाः ४ । प्रकृतिद्वयगुणाः ८ । त्रिवेदगुणा २४ ।

अनिवृत्तिस्थसज्वालाः प्रकृतिद्वयसगुणाः । वेदैस्त्रिभिरभ्यस्ता मीलनीया विचक्षणैः ॥ ३८९ ॥

शतत्रयाष्टषष्टिश्च सहस्रा पचविंशति । पदसख्या विबोद्धव्या त्रिवेदी प्रति मोहने ॥ ३९० ॥

२५३६८ ।

अब यहापर उदयप्रकृतियोको दिखाते है ।—

आठो गुणस्थानवाली मोहकी सर्व उदयप्रकृतियोको वेद तीनसे गुणित करलेना चाहिये ॥ ३८८ ॥

उदयप्रकृति क्रमसे— ६८ । ३२ । ३२ । ६० । ५२ । ४४ । ४४ । २० । — है । वेदकी तीन सख्यासे प्रत्येक राशिको गुणनेपर क्रमसे— २०४ । ९६ । ९६ । १८० । १५६ । १३२ । १३२ । ६० । — होती है । इन राशियोंको चौवीससे गुणनेपर—४८९६ । २३०४ । २३०४ । ४३२० । ३७४४ । ३१६८ । ३१६८ । १४४० । — इतनी सख्या हुई। इन सब राशियोंका जोड २५३४४ होता है। अनिवृत्तिकरणमे सज्वलन मोह ४ है । प्रकृतिद्वयसे गुणनेपर ८ होते है । वेदत्रयासे गुणनेपर २४ होते है ।

इसी वातको मूलकार आगे बताते है ।—

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके चार सज्वलन है । इन्हे प्रकृतिद्वयसे गुणित करना चाहिये और ऊपर बताई आठ गुणस्थानोंकी सर्व पिंडित सख्यासे जोड देना चाहिये ॥ ३८९ ॥

वह जोड कितना होता है सो बताते है ।—

पच्चीस हजार और तीन सौ अडसठि (२५३६८) इतनी पदबधोंकी सर्व सख्या त्रिवेदके सबधसे मोहमे होती है ॥३९०॥

त्रिसयमगुणा पाका षष्ठसप्तमयोर्मता । अपूर्वे गुणिता द्वाभ्या सर्वे तीर्थकरैर्हता ॥ ३९१ ॥

षष्ठसप्तमयोरुदया· ८ । ८। सयमत्रयहता २४ । २४। अपूर्वे पाकाः ४। द्विसयमगुणा ८। चतुर्विंशतिगुणाः सर्वे ५७६ । ५७६ । १९२ । सर्वैक्ये १३४४ ।

षोडशैकस्तथा पाका सयमे गुणिताः क्रमात । अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे द्वाभ्यामेकेन कोविदै ॥ ३९२ ॥

अनिवृत्तावुदया १६। सयमद्वयगुणा ३२ । सूक्ष्मे पाक १ । एकसंयमगुण । मीलिताः—

अव आगे मोहकी उदयप्रकृतियोंको सयमोंसे गुणित करके बताते है—

छट्ठे और सातवें गुणस्थानोंकी उदयसख्याको तीन सयमोंसे गुणना चाहिये क्योंकि छट्ठे सातवें गुणस्थानोंमें मामायिक छेदोपस्थापन तथा परिहारविशुद्धि-ये तीन ही सयम सभव है। अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें दो सयम रहते हैं इसलिये दो से गुणना चाहिये। और फिर इन सभीको तीर्थकर-अर्थात् चौवीस सख्यासे गुणना चाहिये। तीर्थकर शब्दसे यहापर चौवीसकी सख्या ली जाती है। ३९१।

छट्ठे सातवेंमे उदय ८।८ है। सयमसे गुणनेपर २४।२४ होते हैं। अपूर्वकरणमे उदय ४ है। दो सयमसे इसे गुणनेपर ८ होते है। चौवीससे गुणनेपर सव ५७६ । ५७६ । १९२ हो जाते है। सबका जोड १३४४ है।

अनिवृत्ति करण नौवें गुणस्थानमे सोलहका उदय है और सयम वहा दो है। इसलिये दोसे सोलहको गुणना चाहिये। सूक्ष्मसापराय दशवें गुणस्थानमें उदय एकको सयम एकसे गुणना चाचिये। भावार्थ, एकसे एकको गुणनेपर भी एक सख्या ही रहती है और सोलहको दोसे गुणनेपर वत्तीस सख्या हो जाती है। ३९२।

अनिवृत्तिमे उदय १६, सयम दोसे गुणनेपर हुए ३२। सूक्ष्ममें उदय १. सयम एकसे गुणनेपर १ ही रहा।

॥५६७॥

सप्तसप्ततियुक्तानि त्रयोदश शतानि ते। विकल्पाः सति पाकानां संयमं प्रति मोहने ॥ ३९३ ॥
पष्ठसप्तमयो पाकास्त्रिभिर्द्वाभ्यां च संयमै । हत्वा प्रकृतिसंघातांस्ताडयेत्तीर्थकारिभि ॥ ३९४ ॥

प्रमत्ताप्रमत्तयो पदबधा ४४ । ४४ । सयमत्रयाभ्यस्ता १३२ । १३२ । अपूर्वे पदबधा २० । द्विसंयमगुणाः ४० । चतुर्विंशतिगुणा ३१६८ । ३१६८ । ९६० । सर्वैक्ये ७२९६ ।

द्वय द्वादशभिर्हत्वा चतुर्भिरेकक पुन । सयमद्वितयाभ्यस्ता विधेयमनिवृत्तिके ॥ ३९५ ॥

इन पाचो गुणस्थानोंका सर्व जोड आगे बताते है ।—

संयमसे गुणने पर मोहके उदयोंके भग तेरहसौ सतत्तरि [१३७७] सर्व होते है। ३९३ ।

अब पदबधोंके भेदोंको छट्ठे आदि गुणस्थानोंमे दिखाते है ।—

छट्ठे और सातवे गुणस्थानोंके जो उदय है उन्हे तीनसे तथा अपूर्वकरणके उदयोंको दो सयमसख्यासे गुणना चाहिये और फिर प्रकृतिसमूहोंको चौवीससे गुणित कर देना चाहिये । ३९४ ।

प्रमत्त अप्रमत्तके पदबध ४४ । ४४ हे । इन्हे सयमकी तीन सख्यासे गुणनेपर १३२ । १३२ होते है। अपूर्वकरणमे पद-बध २० है। इन्हे सयम दोसे गुणनेपर ४० होते है। इन सवोंको चौवीससे गुणनेपर क्रमसे ३१६८ । ३१६८। ९६० हुए । सबका जोड ७२९६ हुआ।

इसीका खुलासा आगे करते है ।—

दोको बारहसे गुणना चाहिये। एकको चारसे गुणना चाहिये फिर सयमकी दो संख्यामे गुणन करना चाहिये। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें करना चाहिये। ३९५ ।

अनिवृत्तौ द्वौ द्वादशगुणौ २४ । एकश्चतुर्गुणः ४ । द्वावपि द्विसंयमगुणौ ५६ । एकः सूक्ष्मे १ । एकसंयम-गुणः १ ।

चतुर्थे संयमेनैको हन्यात्सूक्ष्मकषायके । त्रिसप्ततिशतान्याहुस्त्रिपञ्चाशानि मीलिता ॥ ३९६ ॥
७३५३ ।

चतुर्थादिगुणे पाकाः सम्यक्त्वैस्त्रिभिराहताः । द्वाभ्यां पुनरपूर्वाख्ये हतव्याः पाकवेदिभिः ॥ ३९७ ॥

चतुर्विंशतिघ्नाः सर्वे कार्याः प्रकृतिवेदिभिः । अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे सम्यक्त्वद्वयताडिताः ॥ ३९८ ॥

अनिवृत्तिकरणमें दोको बारहसे गुणे तो २४ होते हैं । एकको चारसे गुणनेपर ४ होते हैं । २४ को दो संयमसे गुणनेपर ४८ हुए और ४ को दो संयमसे गुणनेपर ८ हुए । दोनोंका जोड ५६ हुआ । सूक्ष्मसांपरायमें एक मोह है, संयम भी एक ही है । इसलिये एकसे एकको गुणनेपर भी एक ही रहता है ।

इस दशवें गुणस्थानका भेद और सबका जोड आगे मूलकार बताते हैं । —

सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानमें सूक्ष्मसांपराय नामके एक संयमसे गुणाकार कर देना चाहिये । और प्रमत्तसे लेकर दशवें पर्यंतके सर्व गुणस्थानोंमें इन पदोंकी मिलानेपर संख्या तिहत्तरसौ त्रेपन (७३५३) होती है । ३९६ ।

अब आगे सम्यक्त्वके द्वारा इन मोहोदयोंको गुणस्थानोंमें गुणित करके दिखाते हैं । —

चौथेसे सातवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें औपशमिकादि तीनों ही सम्यक्त्व रहते हैं । इसलिये चौथे आदिके भेदोंको तीन सम्यक्त्वसे गुणित करना चाहिये । अपूर्वकरणसे लेकर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व नहीं रहता, इसलिये वहां दो सम्यक्त्वसे ही गुणना चाहिये । ३९७ ।

अनिवृत्तिकरणमें तथा सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें भी दो दो सम्यक्त्वभेदोंसे गुणित करके फिर सभी भेदोंको चौवीससे गुणित करना चाहिये । ३९८ ।

असंयतादिगुणचतुष्टये उदये ८।८।८।८। त्रिसम्यक्त्वाभ्यस्ताः २४।२४।२४।२४। अपूर्वे पाकाः ४। सम्यक्त्वद्वयाभ्यस्ताः ८। सर्वे चतुर्विंशतिगुणाः ५७६।५७६।५७६।५७६।१९२। एते मीलिताः २४९६। अनिवृत्तिसूक्ष्मयोः पाका १७। द्विदर्शनगुणाः ३४। सर्वे मीलिता –

त्रिंशदभ्यधिका ज्ञेयाः शतानां पचविंशतिः। पाकभंगा विबोद्धव्याः सम्यक्त्व प्रति मोहने। २५३०॥ ३९९॥

सद्दृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्के ताडितास्त्रिभि। चतुर्विंशतिविध्वस्ता कर्त्तव्या सकला बुधै ॥ ४००॥

गुणस्थानचतुष्टये पाकप्रकृतय ६०।५२।४४।४४। सम्यक्त्वत्रयगुणा १८०।१५६।१३२।१३२। अपूर्वे उदयप्रकृतय २०। दर्शनद्वयाभ्यस्ता ४०। सर्वाश्चतुर्विंशतिभगघ्नाः ४३२०।३७४४।३१६८।३१६८। ९६०। सर्वैक्ये १५३६०।

असयतसम्यत्व चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवें पर्यत चार गुणस्थानोंमे उदयगत ८।८।८।८ हैं। ये तीन सम्यक्त्वभेदोंसे गुणित होनेपर २४।२४।२४।२४ होते है। अपूर्वमे उदय ४ सम्यक्त्व दोसे गुणत हो जानेपर ८ हो जाते है। ये सर्व चौवीससे गुण जानेपर क्रमसे ५७६।५७६।५७६।५७६ तथा १९२ हो जाते है। सबका जोड २४९६ हुआ। अनिवृत्तिकरणके तथा सूक्ष्मकषायके उदय १७ है। इन्हे दो सम्यक्त्वसे गुणनेपर ३४ होते है। सबका जोड आगे बताते हैं।— सम्यक्त्वसे गुणनेपर मोहमें सर्व भेद ये २५३० होते हैं। ३९९।

सम्यग्दृष्टि चौथेसे लेकर सातवें पर्यतके चार गुणस्थानोंमे तीन सम्यक्त्वसे गुणित करने पर और फिर चौवीससे चाहिये ॥ ४००॥

ने क्रमसे—६०।५२।४४।४४ है। इन्हे तीन सम्यक्त्वोंसे गुणनेपर क्रमसे—१८०। रणमें उदयप्रकृति २० है। दो सम्यक्त्वोंसे गुणने पर ४० होते है। समीको ४।३१६८।३१६८।९६० होते है। इन सर्वोका जोड १५३६० होता है।

अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे पाकप्रकृतयो बुधैः । सम्यक्त्वद्वितयाभ्यस्ताः कर्तव्या बुद्धिशालिभिः ॥ ४०१ ॥
अनिवृत्तिसूक्ष्मयोः पाकप्रकृतयः २९ । दर्शनद्वयगुणाः ५८ ।
अष्टादशाधिक ज्ञेय नृपैः शतचतुष्टयम् । तथा पचदश ज्ञेयाः सहस्रा मीलिते सति ॥ ४०२ ॥
१५४१८ ।
ये मोहनीय पदबन्धपाकत्रयोपयोगैः क्रमतः सलेश्यैः । निघ्नति निर्मूलितमोहबन्धास्ते यांति सद्योऽमितगत्यभीष्टम् ॥४०३॥

मोहपाकस्थानप्ररूपणा समाप्ता ।

गुणेषु मोहसत्त्वस्थानान्याह—

त्रीण्येक द्व क्रमात्पच सत्त्वे गुणचतुष्टये । त्रीणि स्युर्दश चत्वारि त्रीणि स्थानानि मोहने ॥४०४॥

अनिवृत्तिकरणम तथा सूक्ष्मकषायमे उदयप्रकृतियोंको दो सम्यक्त्वोंसे गुणित कर लेना चाहिये ॥ ४०१ ॥ अनिवृत्तिकरण तथा सूक्ष्मकषायकी उदयप्रकृति २९ है । सम्यक्त्व दोसे गुणित होने पर ५८ होजाते हैं । इन सबका जोड देनेपर सर्व सख्या पन्द्रह हजार चारसौ अठारह (१५४१८) होती है । ४०२ । इस प्रकार जो मोहनीयमे पदबन्ध, उदयादि तीन, उपयोग तथा लेश्याओंके योगसे भेद होते हे उन्हे जो क्रमसे नष्ट करते हैं अथवा गुणित करके देखा करते है वे मोहके बन्धका नाश करके शीघ्रही अमितगति-अनुपमगति जो इष्ट मोक्षस्थान उसको प्राप्त होते हैं । ४०३ ।

इस प्रकार मोहकी उदयस्थानप्ररूपणा हुई ।

अब आगे मोहके सत्तास्थानोंको गुणस्थानोंमे लगाकर दिखाते हैं ।—

पहिले गुणस्थानमें मोहके सत्त्वस्थान तीन है । दूसरेमें एक है । तीसरे गुणस्थानमें दो स्थान हैं । फिर चौथेसे सातवे

१—मुद्रित पुस्तकमे ऐसा पाठ हे " इत्यमितगत्याचार्यवर्यप्रणीते पंचसग्रहे मोहपाकस्थानप्ररूपणा समाप्ता "

क्रमादेकादशगुणेषु—३ । २ । ५ । ५ । ५ । ५ । ३ । १० । ४ । ३ ।
अष्टसप्तषडग्रास्ति विंशतिः प्रथमे ततः । परे विंशतिरष्टाग्रा मिश्रे साष्टचतुर्युता ॥ ४०५ ॥
मिथ्यादृष्टौ २८ । २७ । २६ । सासने २८ । मिश्रे २८ । २४ ।
क्रमतोऽष्टचतुस्त्रिद्वियुक्ता सैका च विंशतिः । पंच स्थानानि जायते सत्त्वे गुणचतुष्टये ॥ ४०६ ॥

पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान पाच पाच है । इसके आगे आठवें एक गुणस्थानमें तीन सत्त्वस्थान है । फिर नौवें गुणस्थानमें दश सत्त्वस्थान है । आगेके दशवें गुणस्थानमें सत्त्वस्थान चार है । ग्यारहवें गुणस्थानमें तीन है । ४०४ ।

इस प्रकार पहिले ग्यारह गुणस्थानोंमें मोहके सत्तास्थान क्रमसे–३ । १ । २ । ५ । ५ । ५ । ५ । ३ । १० । ४ । ३ । है ।

प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उन उन सत्त्वस्थानोंकी प्रकृति कितनी कितनी है इस बातको आगे बताते है ।—

प्रथम गुणस्थानमें जो तीन स्थान बताये है वे आठ, सात तथा छह अधिक वीसके हैं । अर्थात् एक स्थान २८ प्रकृतिका है । दूसरा स्थान २७ का है । तीसरा स्थान २६ का है । इसके आगे जो दूसरा सासादन गुणस्थान है उसमें सत्त्वस्थान एक है और वह आठ अधिक वीस प्रकृतियोंका है । फिर आगे मिश्र अर्थात् तीसरे गुणस्थानमे दो सत्त्वस्थान हैं–एक आठ अधिक वीस प्रकृतिका अर्थात् २८ का है, दूसरा चार अधिक वीसका अर्थात् २४ का है । इस प्रकार पहिले तीन गुणस्थानवर्ती सत्त्वस्थानोंको दिखाया । ४०५ ।

मिथ्यादृष्टिमें–२८ । २७ । २६ । सासादनमें २८ । मिश्रमें– २८ । २४ ।

इसके आगे चौथे गुणस्थानसे सातवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें मोहके सत्त्वस्थान पाच पाच जो पूर्वमें बताये है उनकी प्रकृतिसंख्याको आगे दिखाते हैं ।—

पाच स्थानोंमेंसे एक स्थान आठ अधिक वीसका है अर्थात् २८ का है । दूसरा चार अधिक वीसका अर्थात् २४

चतुर्थपंचमषष्ठसप्तमेषु चतुर्षु पंच २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ।
सैवाष्टचतुरेकाग्रा स्थानानां शमके त्रयम् । अपूर्वक्षपके सैका विंशतिः कथिता परम् ॥ ४०७ ॥
अपूर्वस्य शमके २८ । २४ । २१ । क्षपके २१ ।
सैवाष्टचतुरेकाग्रा सैकाग्रा नवमे दश । सत्रिद्व्येका क्रमात्पंच चत्वारस्त्रिद्वयो मता ॥ ४०८ ॥

का है। तीसरा स्थान तीन अधिक वीसका अर्थात् २३ का है। चौथा स्थान दो अधिक वीसका अर्थात् २२ का है। पाचवा सत्वस्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ का है। ४०६ ।

चौथे पाचवें छठ्ठे सातवें इन चार गुणस्थानोंमे जो मोहके पाच पाच सत्त्वस्थान बताये हैं उन पाचोंकी प्रकृतिसंख्या क्रमसे इस प्रकार है—२८ । २४ । २३ । २२ । २१ ।

अब आगे यह बताते हैं कि अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें तीन प्रकारके जो मोहके सत्वस्थान बताये थे उनमें प्रकृतिसंख्या कितनी कितनी है?

अपूर्वकरणसे लेकर उपशमक तथा क्षपक ऐसी दो श्रेणी मानी गई है। उनमेंसे शमक अथवा उपशमक श्रेणीके रहते सत्वस्थान तीन हैं। वे इस प्रकार हैं—एक आठ अधिक वीसका, दूसरा चार अधिक वीसका, तीसरा एक अधिक वीसका। यहांपर 'सा एव' मे साका अर्थ पूर्वानुवृत्त वीस है। इसमें जो क्षपक श्रेणी दूसरी है उसके रहते एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृतिका एक ही सत्त्वस्थान बताया है। यह स्थान उपशमक श्रेणीके तीन स्थानोंमे गर्भित होजाता है। इसलिये अपूर्वकरण गुणस्थानके सर्व सत्त्वस्थान भी तीन ही बताये जाते हैं ॥ ४०७ ॥

अपूर्वकरणकी उपशम श्रेणीमे २८ का, २४ का, २१ का ये तीन स्थान हैं। क्षपक श्रेणीमें एक २१ का ही स्थान है।

अब नौवें गुणस्थानमें जो मोहसत्ताके दश स्थान बताये हैं उन्हें आगे दिखाते हैं।—

इस नौवें गुणस्थानमे भी दो श्रेणी हैं एक उपशम श्रेणी, दूसरी क्षपक श्रेणी। उपशम श्रेणीमे पहिलेसे जो तीन स्थान

चले आते है वे ही यहाकी उपशम श्रेणीमे भी समझने चाहिये और आगे ग्यारहवे गुणस्थान पर्यंत उपशमक श्रेणी है सो वहापर्यंत भी ये तीनो स्थान रहते है। अर्थात् एक स्थान यहापर आठ अधिक वीस प्रकृतियोंका है। दूसरा स्थान चार अधिक वीस प्रकृतियोंका है। और तीसरा स्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृतियोंका है। ये तीन स्थान उपशमक श्रेणी सवधी हुए। अब क्षपक सवधी स्थानोंको जुदे गिनाते है। ये स्थान सर्व आठ हैं। उनमेंसे प्रथम स्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृतियोंका है। यह स्थान उपशम श्रेणी सवधी स्थानके समान रहनेसे पुनरुक्त है इसलिये इसे जुदा स्थान न गिनाकर आगेके सात स्थानोंको ही जुदा गिनाते है। अत एव इस गुणस्थानके सर्व स्थान दश ही होते हैं। वे इस प्रकार है।—

एक स्थान तीन सहित दशका अर्थात् १३ का है। दूसरा एक स्थान दो अधिक दशका अर्थात् १२ का है। तीसरा एक स्थान एक अधिक दशका अर्थात् ग्यारहका है। चौथे एक स्थानमें पाच प्रकृति मानी गई है। पाचवा एक स्थान ऐसा है, जिसमें चार प्रकृति रह जाती है। फिर आगेका छठ्ठा स्थान तीन प्रकृतिवाला है। और अतका सातवा अपुनरुक्त एक स्थान दो प्रकृतिवाला है। इसका तात्पर्य ऐसा है कि चारित्रमोहकी पच्चीस प्रकृतियोंमेंसे अनतानुवधी चार प्रकृतियोंका चौथेसे सातवें गुणस्थानके वीच ही कहींपर क्षय हो जाता है और सम्यग्दर्शन क्षायिक वन जाता है। वही जीव क्षपक श्रेणीपर चढ सकता है। और आठवें गुणस्थानमें किसी नवीन चारित्रमोहका नाश होता नहीं है इसलिये अनिवृत्तिकरणके आरभमे वे इक्कीस प्रकृति ही पाई जाती है। फिर आगे चलकर नौवें गुणस्थानवाला जीव अप्रत्याख्यानावरणकी चार तथा प्रत्याख्यानावरणकी चार इन आठ प्रकृतियोंका एकदम नाश कर देता है उस अवस्थामें १३ प्रकृतियोंका सत्त्वस्थान रह जाता है।

ये तेरह प्रकृति इस प्रकार समझनी चाहिये कि नौ नोकपाय तथा चार सज्वलन। फिर वही जीव कुछ आगे चलकर इसी नौवें गुणस्थानमें नपुसकवेदका नाश करता है तब उसके बारह प्रकृतिका एक सत्त्वस्थान वन जाता है। इसके आगे जब स्त्रीवेद प्रकृतिका भी वह नाश कर देता है तब सत्त्वस्थान ग्यारह प्रकृतिका हो जाता है। इसके आगे चलकर छह नोकपाय प्रकृतियोंका नाश करके जीव पाच प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानवाला वन जाता है। इस समय इस जीवमें पाच प्रकृति इस प्रकार रहीं

अनिवृत्ते शमके २८ । २४ । २१ । अनिवृत्ते. क्षपके २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ ।
सूक्ष्मेष्टचतुरेकाग्रा विंशतिं क्रमतो विदुः । एकं च क्षपके तस्य त्रयं शान्ते पुरातनम् ॥ ४०९ ॥

कि एक पुरुषवेद और चार सज्वलन कषाय । आगे चलकर उस एक पुरुषवेदका नाश होकर चार सज्वलनकी सत्तावाला एक स्थान बन जाता। है । फिर क्रमसे क्रोधका, मानका, नाश होकर तीन प्रकृतियोंका एक सत्त्वस्थान तथा दो प्रकृतियोका एक सत्त्वस्थान रह जाता है । ये नौवें गुणस्थानवर्तीके सात अपुनरुक्त स्थान है ।

यहापर पहिला ' सैव ' शब्द है उसका अर्थ वीस है, उसका सबंध उपशम श्रेणीके स्थान गिनाते समय रहता है । फिर दूसरा सा एकाग्रा ' ऐसा जो शब्द है उसमें भी ' सा ' शब्दका अर्थ वीस ही है । यह शब्द क्षपकश्रेणीके सत्त्वस्थान गिनाते समय प्रथम स्थानकेलिये आया है ॥ ४०८ ॥

अनिवृत्तिकरणकी उपशमक अवस्थामे सत्त्वस्थान तीन—२८ । २४ । २१ का । अनिवृत्तिकरणकी क्षपक अवस्थामें सत्त्वस्थान क्रमसे—२१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ ।

अव आगे दशवें गुणस्थानकी दोनो श्रेणियोंमें सत्त्वस्थानोंको और ग्यारहवें गुणस्थानके सत्त्वस्थानोंको वताते है । —

सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानमें उपशम श्रेणी होनेपर सत्त्वस्थान पूर्वके समान तीन होते हैं, एक आठ अधिक वीसका अर्थात् २४ का, दूसरा चार अधिक वीसका अर्थात् २८ का, तीसरा एक अधिक वीसका अर्थात् इक्कीसका ॥ यदि इस सूक्ष्म-कषायमें क्षपक श्रेणी हो तो एक प्रकृतिका सत्त्वरूप एक सत्त्वस्थान होता है । एव उपशान्तकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें श्रेणी एक उपशमक ही रहती है इसलिये ग्यारहवें गुणस्थानमें पहिलेकेसे तीन ही सत्त्वस्थान हैं— एक अट्ठाईसका, दूसरा चौवीसका, तीसरा इक्कीसका ।

सूक्ष्मस्य शमके २८ । २४ । २१ । क्षपके १ । शांते २८ । २४ । २१ ।

इत्थ मोहसत्ताप्ररूपणा समाप्ता ।

भावार्थ—दशवें गुणस्थानसे पहिले नौवें गुणस्थानमें अंतमें क्षपक श्रेणीवालेके दोका सत्वस्थान बताया था, उस समय सज्वलन माया लोभ ये दो प्रकृति शेष रही थी । उनमेंसे एक माया प्रकृतिका नौवें गुणस्थानके अंतमें नाश हो जाता है इसलिये दशवेंके आरमसे ही सत्त्वस्थान एकका रह जाता है । नौवें गुणस्थानके अंतमें जब कि मायाका नाश हो जाता है वह समय दशवें गुणस्थानका आदि समय माना जाता है । इसीलिये नौवें गुणस्थानमें दोका ही सत्त्वस्थान माना गया है । और इस बची हुई एक प्रकृतिका सत्त्वाभाव जब हो जाता है वह बारहवा गुणस्थान माना गया है इसलिये एकके सत्त्वस्थानकी गिनती दशवें गुणस्थानमें ही की जाती है । ग्यारहवा गुणस्थान दशवेंके ऊपर माना गया है और बादमें बारहवा गुणस्थान लगता है । परतु उपशमक जीव मोहके उदयका उपशम करता हुआ जब पूर्ण उपशम कर देता है तब दशवेंसे ऊपर कोई एक स्थान होना चाहिये और जो मोहका क्षय करता हुआ पूर्ण क्षय कर देता है तब उसका भी दशवेंसे ऊपर कोई एक स्थान होना चाहिये । इस प्रकार दोनोंके स्थान दशवेंके ही ऊपर हैं तो भी उपशमक तथा क्षपकमें हीनाधिकता दिखानेकेलिये उपशमक को ग्यारहवा तथा क्षपकको बारहवा स्थान माना गया है ॥ ४०९ ॥

सूक्ष्मलोभकी उपशमक अवस्थामें सत्त्वस्थानकी प्रकृति—२८ । २४ । २१ । क्षपकमें सत्त्वस्थानकी प्रकृति १ स्थान भी १ ।

इस प्रकार मोहकर्मकी सत्ताप्ररूपणा समाप्त हुई ।

इस प्रकार मोह कर्मका बंधोदयसत्त्व प्रकरण समाप्त हुआ ।

वंधादित्रितय नाम्नो गुणानां दशके क्रमात् । पाकसत्त्वद्वय योज्यं परे तस्माच्चतुष्टये ॥ ४१०॥

अव आगे नामकर्मके वधोदयसत्त्व प्रकरणको कहते हैं ।—

प्रथम गुणस्थानसे लेकर दशवें गुणस्थानपर्यंत दश गुणस्थानोंमें नामकर्मके वध उदय सत्त्व ये तीनो संभव हैं परतु दशवेंके आगे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमे उदय तथा सत्त्व ही है, बध नहीं है। भावार्थ, दशवेंके अतमें नामकर्मकी बधव्युच्छि च हो जाती है इसलिये ऊपरके गुणस्थानोंमें नवीन वध नहीं पाया जाता है। इसीलिये ऊपरके चारो गुणस्थानोंमे उदय तथा सत्त्वकी ही योजना बताई जायगी । ४१० ।

नामकर्मके वधोदयसत्त्वका प्रकरण इसी पाचवें परिच्छेदके साठिवें श्लोकसे लेकर विस्तारसे वताया गया है। वहापर ६१ वें श्लोकमे नामके वधस्थान सर्व आठ गिनाये हैं।-एक २३ प्रकृतिका, दूसरा २५ प्रकृतिका, तीसरा २६ प्रकृतिका, चौथा २८ प्रकृतिका, पांचवां २९ प्रकृतिका, छट्ठा ३० प्रकृतिका, सातवा ३१ प्रकृतिका, और आठवा एक प्रकृतिरूप। इस प्रकार व आठ वधस्थान हैं।

फिर इसी पाचवें परिच्छेदमें एकसौ वारहवें श्लोकमें नामके उदयस्थान गिनाये है। वे सर्वस्थान ग्यारह हैं। एक २१ प्रकृतिरूप है। दूसरा २४ प्रकृतिरूप है । तीसरा २५ प्रकृतिरूप है । चौथा २६ प्रकृतिरूप है। पाचवां २७ प्रकृतिरूप है। छट्ठा स्थान २८ प्रकृतिरूप है। सातवा स्थान २९ प्रकृतिरूप है। आठवां स्थान ३० प्रकृतिरूप है। नौवां स्थान ३१ प्रकृतिरूप है। दशवा स्थान ९ प्रकृतिरूप है। एव ग्यारहवा एक उदयस्थान ८ प्रकृतिरूप है। इसके आगे फिर उदय स्थानोंका विशेप वर्णन समाप्त होजाने पर नामके सत्तास्थानोंका वर्णन २२१ वें श्लोकसे लेकर किया गया है। २२१ वें श्लोकसे सत्ताके स्थान सर्व १३ वताये है। उनमेंसे पहिला ९३ प्रकृतिका, दूसरा ९२ प्रकृतिका, तीसरा ९१ प्रकृतिका, चौथा ९० का, पाचवा ८८ का, छट्ठा ८४ का, सातवा ८२ का, आठवा ८० का, नौवा ७९ का, दशवा ७८ का, ग्यारहवा ७७ का,

वधे पाके क्रमात्सत्त्वे स्युः षड् नव षडादिमे । शासने त्रीणि सप्तैकं द्वे त्रीणि द्वे च मिश्रके ॥ ४११ ॥
निर्व्रते त्र्यष्टचत्वारि द्विद्विचत्वारि पचमे । षष्ठे द्विपचचत्वारि चत्वार्येक चतुष्टयम् ॥ ४१२ ॥
सप्तमेऽपूर्वके पच ज्ञेयमेक चतुष्टयम् । एकमेक क्रमादष्ट गुणस्थानद्वये ततः ॥ ४१३ ॥

वारहवा १० का, और तेरहवा सत्त्वस्थान ९ प्रकृतिका है। इन मवोंका भिन्न भिन्न गतियोंका आश्रय लेकर जो विशेष वर्णन तथा प्रकृतियोंका उल्लेख विस्तारसे किया है वह वहींपरसे देखलेना चहिये।

अव गुणस्थानक्रमसे वधादि तीनोंकी स्थानसख्याको आगे दिखाते है। सबसे प्रथम आदिके तीन गुणस्थानोंकी वधादि त्रय सवधी स्थानसख्याओंको दिखाते है।—

आदिम अर्थात् प्रथम गुणस्थानमे वधमें छह स्थान है, उदयमें नौ स्थान है और सत्तामें छह स्थान है ऐसा क्रमसे समझना। फिर इसी क्रमसे सासादनमें वधमें तीन स्थान, उदयमें सात स्थान और सत्तामे एक स्थान है। इसके आगे मिश्र गुणस्थानमें वंधसवधी दो स्थान है, उदयसवधी तीन स्थान है और सत्तासवधी दो स्थान है। ४११।

अव आगेके दो श्लोकोंमें चौथेसे दशवें पर्यतके सात गुणस्थानोंमे वधादिकी स्थानसख्याओंको गिनाते है।—

निर्व्रत अर्थात् असयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानमें वधके तीन स्थान, उदयके आठ स्थान तथा सत्ताके चार स्थान रहते है। पाचवें गुणस्थानमें वधके दो स्थान, उदयके दो स्थान और सत्ताके चार स्थान सभव है। छट्ठे गुणस्थानमें वधके दो स्थान, उदयके पाच स्थान तथा सत्ताके चार स्थान है। फिर सातवें गुणस्थानमें वधके चार स्थान हैं, उदयका एक स्थान है, सत्ताके चार स्थान हे। फिर अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें वधके पाच स्थान, उदयका एक स्थान तथा सत्ताके चार स्थान होते है। इसके आगे नौवें तथा दशवें गुणस्थानमे वधका स्थान एक एक है, उदयका भी एक एक ही स्थान संभव है, और सत्त्वस्थान आठ आठ होते है। ४१२–४१३।

एक चत्वारि शांताख्ये क्षीणे चोदयसत्त्वयोः । त्रयोदशे द्विचत्वारि द्वे षट्कं च चतुर्दशे ॥ ४१४ ॥

बध—६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उ—९	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
स--६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

ग्यारहवेंसे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानोंमें बध तो नामकर्मका है ही नहीं किंतु उदय तथा सत्ता रहती है सो उनकी स्थानसख्याको आगे दिखाते हैं ।—

शात अर्थात् उपशातकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें एव क्षीण अर्थात् क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानमें उदयसबधी स्थान एक एक ही है और सत्त्वस्थान चार चार सभव रहते हैं । फिर तेरहवें गुणस्थानमें उदयगत दो स्थान हैं तथा सत्तामें चार स्थान हैं । अतके चौदहवें गुणस्थानमें उदयके दो स्थान हैं, सत्ताके छह स्थान हैं ऐसा क्रमसे समझना । ४१४ ।

नामके बधादि त्रयका जो ऊपर वर्णन किया है । उसका यह आगे यंत्र देते हैं ।—

	मिथ्या	*सासा.*	*मिश्र*	*अस*	*देश*	*प्रम*	*अप्र*	*अपू*	*अनि*	*सूक्ष्म.*	*उप*	*क्षीण*	*सयोग*	*अयोग*
बध	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उदय	९	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
सत्ता	६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

इस यत्रमें पहिली पक्तिमें चौदह ही गुणस्थानोंमें होनेवाले बधस्थान क्रमसे गिनाये हैं । दूसरी पक्तिमे चौदह गुणस्थानगत क्रमसे उदयस्थान दिखाये हैं । नीचेकी तीसरी पक्तिमें सत्त्वस्थानोंकी सख्या चौदह ही गुणस्थानवाली क्रमसे बता दीगई है ।

षडादितः समिथ्यात्वे बंधे पाके नवादितः । षट् स्थानान्यादितः सत्त्वे संति त्रिनवतिं विना ॥ ४१५ ॥

बंधे २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । पाके २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्त्वे ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

चतुस्त्रिद्विच्युता बंधे द्वात्रिंशत्सप्त शासने । सप्ताष्टाग्रे विना पाके विंशती नवति सति ॥ ४१६ ॥

उन स्थानोंको कैसे गिनें सो आगे बताते हैं ।—

मिथ्यात्ववाले पहिले गुणस्थानमें छह जो बंधमें स्थान बताये हैं वे आरंभसे छह लेने चाहिये । इसी प्रकार उदयमें जो मिथ्यात्वसंबंधी नौ स्थान बताये हैं वे भी आरंभसे ही नौ लेने चाहिये । इसी प्रकार जो मिथ्यात्ववालेकें सत्तामें छह स्थान बताये हैं वे भी आदिके ही लिये जाते हैं, परंतु सत्त्वस्थानोंमें आदिम स्थान तिरानवे प्रकृतिका है उसे इन छह स्थानोंमें नहीं लेना चाहिये । भावार्थ—तिरानवेको लेकर जो आरंभमें सात स्थान हैं वहां पर्यंत, तिरानवेके स्थानको छोड देनेसे छह स्थान होंगे । नामके बंधस्थान सर्व आठ हैं, उदयस्थान ग्यारह है और सत्त्वस्थान तेरह है । उन सबोंकी प्रकृतिसंख्या आदिका वर्णन आरंभमें यहींपर ऊपर करदिया है । उसपरसे आदिके स्थानोंको देख लेना चाहिये । बंधके आदिम छह स्थान—२३ प्रकृतिरूप, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिरूप क्रमसे हैं । उदयके नौ आदिम स्थान क्रमसे २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिरूप समझना । इसी प्रकार सत्ताके आद्य छह स्थान क्रमसे ९२ का, ९१ का, ९० का, ८८ का, ८४ का, ८२ का—इस प्रकार हैं । सबसे पहिला ९३ प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान यहां नहीं लिया गया है ॥ ४१५ ॥

अब आगे सासादन गुणस्थानके बंधोदयसत्त्वस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको गिनाते हैं ।—

सासादन गुणस्थानमें बंधसंबंधी तीन स्थान बताये हैं, उदयसंबंधी सात स्थान हैं, और सत्तासंबंधी एक स्थान है । वे इस प्रकार हैं । बत्तीस संख्यामेंसे चार तीन दो ये संख्याएं क्रमसे घटानेपर २८, २९, ३० ये तीन संख्याएं निकल आती हैं । इतनी इतनी प्रकृतिरूप ही तीन बंधस्थान सासादनमें समझना । फिर आगे पाक अर्थात् उदयके स्थान यहां सात माने हैं

बंधे २८ । २९ । ३० । पाके । २१ । २४ । २५ । २६ । २९ । ३० । ३१ । सासनस्तीर्थंकराहारकद्वय-सत्कर्मा न भवतीति ९० ।

मिश्रे साष्टनवा बंधे सैकादशदशोदये । सनवा विंशतिद्व्यग्रा नवतिः सा तथा सति ॥ ४१७ ॥

बंधे २८ । २९ । पाके २९ । ३० । ३१ । सत्त्वे ९२ । ९० ।

वे इस प्रकार कि, सात तथा आठ अधिक वीसके अर्थात् २७ और २८ प्रकृतिवाले दो स्थानोंको छोडकर शेष आदिके सात स्थान समझना । मिथ्यात्वमें उदयके नौ स्थान ऊपर बताये हैं । उन्हींमेंसे २७ का और २८ का—ऐसे दो स्थानोंको घटादेने पर शेष सात उदयस्थान निकल आते हैं । यहापर सत्तास्थान एक बताया है वह नवति अर्थात् नव्भे प्रकृतिवाला लेना चाहिये । ' सति ' अर्थात् सत्तामें नवतिका एक स्थान है । ४१६ ।

सासादनके बंधमें २८ । २९ । ३०– तीन स्थान । उदयमें–२१ । २४ । २५ । २६ । २९ । ३० । ३१– ये सात स्थान । सत्तामें–९०-यह एक स्थान । क्योंकि सासादन जीव तीर्थंकरत्व और आहारक द्वय इन तीन प्रकृतियोंको सत्तामें नहीं रखता है । भावार्थ, जो जीव उक्त तीन प्रकृतियोंमेंसे किसीकी सत्ता रखता है वह सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है। और सर्व नामकर्मकी प्रकृति ९३ है, उनमेंसे ये आहारकादि तीन कम हो जानेसे ९० प्रकृतिका यहापर सत्त्वस्थान रह जाता है ।

अब मिश्र गुणस्थानमें बंधोदयसत्त्वके जितने जितने स्थान बताये हैं उनकी प्रकृतिसंख्याओंको आगे दिखाते हैं ।—

मिश्र गुणस्थानमें बंधके स्थान दो हैं उनमेंसे एक स्थान आठ सहित वीसका अर्थात् २८ का है, दूसरा नव अधिक वीसका अर्थात् २९ का है । उदयमें तीन स्थान बताये हैं । उनमेंसे एक स्थान एकादशसहित वीसका अर्थात् ३१ का है, दूसरा दशसहित वीसका अर्थात् ३०का स्थान है, तीसरा स्थान नवसहित वीसका अर्थात् २९ का है । ये तीन स्थान हुए। यहा सत्त्वस्थान दो है । एक तो दो अधिक नव्भेका अर्थात् ९२ का है, दूसरा केवल ९० नव्भेका है । ४१७ ।

बंधमें स्थान दो—२८ । २९ । उदयमें तीन स्थान—२९ । ३० । ३१ । सत्त्वस्थान दो—९२ । ९० ।

चतुस्त्रिद्विच्युता बंधे द्वात्रिंशदादितोऽव्रते । द्वितीयोनानि पाकेऽष्ट सत्त्वेऽस्त्याद्यं चतुष्टयम् ॥ ४१८ ॥

बंधे २८ । २९ । ३० । पाके २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

नवाष्टसहिते बंधे विंशती पंचमे मते । त्रिंशत्सैका च सा पाके सच्चतुष्टयमादिमम् ॥ ४१९ ॥

अब चौथे अव्रत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें बंधोदयसत्ताके स्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको आगे दिखाते हैं ।–

अव्रत अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानमें बंधगत स्थान तीन गिनाये हैं । उनमेंसे एक स्थान बत्तीसमेंसे चार घाटका अर्थात् २८ प्रकृतिका है, दूसरा स्थान तीन घाट बत्तीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है । तीसरा दो घाट बत्तीसका अर्थात् ३० प्रकृतिका है । नामके उदयस्थान सर्व ग्यारह हैं । उनमेंसे असंयत चौथे गुणस्थानमें आठ माने हैं । वे आठ आरंभसे लेने चाहिये । उनमें आरंभसे जो दूसरा स्थान २४ प्रकृतिका है उसे यहां छोड देना चाहिये । दूसरा स्थान छोड दिया जाय और अंतके दो स्थान अपने आप छूट जाते हैं । इस प्रकार ग्यारह स्थानोंमेंसे आठ स्थान शेष रह जाते हैं । इस प्रकार आदिके द्वितीयोन आठ स्थान उदयमें समझने चाहिये । सत्त्वस्थान चार बताये हैं वे आदिके चार लेने चाहिये । आदिके चार सत्त्वस्थान--९३ का, ९२ का, ९१ का, ९० का– ये हैं ॥ ४१८ ॥

बंधमें यहांपर तीन स्थान—२८ । २९ । ३० । उदयमें स्थान आठ–२१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्तामें स्थान चार–९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अब आगे पंचम गुणस्थानमें बंधोदयसत्त्वकी जुदी जुदी स्थानसंख्या जो ऊपर गिनाई है उस प्रत्येक स्थानमें प्रकृति कितनी हैं सो बताते हैं ।—

पांचवें गुणस्थानमें बंधस्थान दो हैं, उदयस्थान भी दो हैं और सत्त्वस्थान चार हैं । उनमेंसे बंधस्थान दो इसप्रकार हैं– नौ सहित वीस प्रकृतियोंका एक और आठ सहित वीस प्रकृतियोंका दूसरा अर्थात् एक २९ प्रकृतिका, दूसरा २८ प्रकृतिका है । उदयस्थान दो इस प्रकार हैं कि--एक तीस प्रकृतिका है, दूसरा एक अधिक तीसका अर्थात् इकतीस (३१) का है ।

बधे २८ । २९ । पाके ३० । ३१ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

बधे साष्टनवा पष्ठे प्रथम सच्चतुष्टयम् । पचत्रिद्व्येकनिर्मुक्ता त्रिंशत्सा च मतोदये ॥ ४२० ॥

बधे २८ । २९ । पाके २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

सत्त्वस्थान चार है वे आदिके चार-पहिला ९३ का, दूसरा ९२ का, तीसरा ९१ का, चौथा ९० प्रकृतिका-इस प्रकार है ।४१९।

बधमे दो स्थान--२८ का । २९ का । उदयमें दो स्थान-३० प्रकृतिका, ३१ प्रकृतिका ऐसे दो। सत्त्वस्थान चार --९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अब आगे छट्ठे गुणस्थानके बधोदयसत्त्वकी स्थानसख्याओंमें प्रकृतिसख्याओंको गिनाते हैं ।——

छट्ठे गुणस्थानमे बधस्थानमें बधस्थान दो कहे हैं, उदयस्थान पाच बताये हैं । उनमेंसे बधस्थानोंकी प्रकृति इस प्रकार है-एक स्थान आठ सहित वीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका है। दूसरा एक स्थान नौ अधिक वीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है। यहापर वीसका वाचक शब्द उपरसे आता है। उदयमे स्थान पाच हैं उनकी जुदी जुदी प्रकृतिसंख्या इस प्रकार है-पाच घाट तीसका अर्थात् २५ प्रकृतिका एक स्थान है । दूसरा एक स्थान तीन घाट तीसका अर्थात् २७ प्रकृतिका है। तीसरा स्थान दो घाट तीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका है। चौथा एक स्थान एक घाट तीसका अर्थात २९ प्रकृतिका है। पाचवा एक स्थान केवल तीस प्रकृतिरूप है। इस प्रकार ये पाच स्थान उदयसबधी हुए । सत्त्व-स्थान चार बताये हैं वे प्रथमके ही चार लेलेने चाहिये। अर्थात ९३ प्रकृतिका, ९२ प्रकृतिका, ९१ प्रकृतिका और ९० प्रकृतिका ऐसे चार सत्स्थान हैं। ४२०।

बधमें दो--२८ । २९ । उदयमें पाच--२५ । २७ । २८ । २९ । ३० । सत्तामें चार स्थान--९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

चतुस्त्रिद्व्येकसत्यक्ता बंधे द्वात्रिंशदीरिता । उदये सप्तमे त्रिंशदादिमं सचतुष्टयम् ॥ ४२१ ॥
बंधे २८ । २९ । ३० । ३१ । पाके ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

शमके क्षपकेऽपूर्वे बंधेऽन्त्यस्थानपंचकम् । उदये जायते त्रिंशत्पूर्वं सत्त्वे चतुष्टयम् ॥ ४२२ ॥
बंधे २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । पाके ३० । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

अब सातवें गुणस्थानके बंधउदयसत्त्वस्थानसंख्याओंकी प्रकृतिसंख्याको जुदी जुदी दिखाते हैं —

सातवें गुणस्थानमें बंधस्थान चार बताये हैं, उदयस्थान एक, और सत्तास्थान चार हैं । उनमेंसे बंधस्थान जो चार हैं वे इस प्रकार हैं ।—चार घाट बत्तीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका एक स्थान है । दूसरा एक स्थान तीन घाट बत्तीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है । तीसरा एक स्थान दो घाट बत्तीसका अर्थात् ३० प्रकृतिका है । चौथा एक बंधस्थान एक घाट बत्तीसका अर्थात् ३१ प्रकृतिका है । उदयस्थान एक है, वह ३० प्रकृतिका है । सत्त्वस्थान चार हैं वे छट्ठे गुणस्थानके सत्त्वस्थानोंके समान ही आदिके चार हैं । ९३ का, ९२ का, ९१ का और ९० प्रकृतिका । ४२१ ॥

सातवें गुणस्थनमें बंधस्थान चार २८।२९।३०।३१। उदयस्थान एक ३०। सत्त्वस्थान चार ९३ प्रकृतिका ९२ का ९१ का, ९० का ।

अब अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानके बंधोदयसत्त्वस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको आगे दिखाते हैं ।—

अपूर्वकरण गुणस्थानसे लेकर दो श्रेणी संभव हैं, एक उपशमक श्रेणी, दूसरी क्षपक श्रेणी । इन दोनो ही श्रेणियोंकी अपेक्षासे अपूर्वकरणमें बंधोदयसत्त्वस्थान एकसे बताये हैं । अर्थात् दोनो ही श्रेणियोंमें बंधस्थान अंतके पांच बताये हैं । उदयस्थान एक है । सत्त्वस्थान चार हैं । उदयस्थान एक है वह ३० प्रकृतिका है । सत्त्वस्थान आदिके चार हैं । ४२२ ।

बंधस्थान अंतिम पाच । उनकी प्रकृतिसंख्या क्रमसे २८।२९।३०।३१।१। उदयस्थानमें ३० प्रकृतिका एक स्थान । सत्तामें स्थान पूर्वकी भांति आदिके चार ९३ प्रकृतिका । ९२ का । ९१ का । ९० का ।

सप्तमेऽन्त्यक्षणेऽपूर्वो नवमो दशमस्तथ । बध्नं येकं यश शेषाश्चत्वार सत्यबधका ॥ ४२३ ॥

१ । १ । १ । ० । ० । ० । ० ।

अब आगे शेष गुणस्थानोंमें प्रथम केवल बधस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याको तथा बधकी योग्यता अयोग्यताको दिखाते हैं ।

आठवें गुणस्थानके सात भाग कल्पित किये हैं उनमेंसे छठे भागपर्यंत नामकर्मकी छठे गुणस्थानकी बंधच्छिन्न प्रकृतियोंके सिवाय कोई अधिक प्रकृति बधमें घटती नहीं है । किंतु छठे भागके अंतमें नामकी तीस प्रकृति बधव्युच्छिन्न होती हैं इसलिये आठवें गुणस्थानके अंतिमक्षण--सातवें भागमें और नौवें दशवेंमें इन तीन गुणस्थानवर्ती जीव नामकर्मकी प्रकृतियोंमें केवल एक यशकीर्ति प्रकृतिको बांधते हैं और ग्यारहवेंसे चौदहवें पर्यंतके चार गुणस्थानवाले नामकर्मकी किसी भी प्रकृतिको नहीं बांधते- वे चारो अबधक स्थान हैं । ४२३ ।

भावार्थ— बधव्युच्छित्ति आदि विशेष विशेष कार्य आठवें गुणस्थानके बीच बीचमें होते हैं इसलिये उन कार्योंमें एकसे दूसरा अमुक कार्य कितना अधिक आगे है—यह बात समझमें आनेकेलिये आठवें गुणस्थानके सात अन्तर्भाग करदिये हैं । उन सात भागोंमेंसे अंतिम जो सातवा भाग है उसके अंतिम समयसे नामकर्मकी केवल एक यशकीर्ति प्रकृतिका बध होना चालू रहजाता है । नामकर्मकी शेष सर्व प्रकृति यहां सातवें भागके अंतसे लेकर बध होनेसे रुक जाती है । कर्मप्रकृति बधस्तव नामके तीसरे अधिकारके ३० वें श्लोकमें बताया है कि अपूर्वकरणके छठे भागमें नामकी तीस प्रकृतियोंकी बधमें व्युच्छित्ति होती है । उसका अर्थ यह है कि सातवें भागमें उन तीसका बध होना रुक जाता है । छठे भाग तक नामकर्मकी यशकीर्ति सहित ३१ प्रकृतियोंका बध चालू था । इसीलिये आठवें गुणस्थानके अंतमें केवल एक यशकीर्तिका बध ही चालू रह जाता है ।

अष्टमादित्रये शाते क्षीणे त्रिंशन्मतोदये । त्रिंशत्सैका च सा योगयुक्ते योगे नवाष्ट च ॥ ४२४ ॥

अपूर्वादिषु पञ्चसु पाके ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । सयोगे उदये ३० । ३१ । अयोगे उदये ९ । ८ ।

अब आगे अपूर्वकरणादि ऊपरके गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको दिखाते हैं ।—

आठवेंसे दशवें पर्यंतके तीन गुणस्थानोंमें तथा उपशातकषाय ग्यारहवेंमें, क्षीणकषाय बारहवेंमें उदयस्थान एक ही प्रकारका है । उसकी प्रकृतिसख्या तीस है । आगे योगयुक्त अर्थात् तेरहवें गुणस्थानमें उदयस्थान दो हैं । उनमेंसे एक तीस प्रकृतिका है, दूसरा एक अधिक तीसका अर्थात् ३१ प्रकृतिरूप स्थान है । इसके अगे अयोग चौदहवें गुणस्थानमें एक उदयस्थान ९ का है, दूसरा स्थान ८ प्रकृतिका है ॥ ४२४ ॥

अपूर्वकरणादि पाच गुणस्थानोंमे उदयस्थानोंमें एक–३० का, ३० का, ३० का, ३० का, ३० का । सयोग केवलीमें उदयस्थान दो–३० का, ३१ का । अयोगकेवलीमें उदयस्थान दो–९ का, ८ का ।

अब आठवें गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सर्व गुणस्थानोंमे सत्त्वस्थान जितने जितने संभव है उनमें सत्ताकी प्रकृतिसख्याओंको क्रमसे बताते है ।—

उपशम श्रेणी वालोंमे जो मोहका उपशम करनेकेलिये प्रयत्न कर रहे है किंतु जिनके मोहका पूर्ण उपशम नहीं होपाया है ऐसोंको उपशमक कहा है । ये उपशमक तीन गुणस्थानवाले माने गये है, एक अपूर्वकरण आठवें गुणस्थान वाले उपशमक, दूसरे अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थान वाले उपशमक, तीसरे सूक्ष्मकषाय नामके दशम गुणस्थान वाले उपशमक । शमक भी उपशमकोंको कहते है । जो दशवें गुणस्थान पर्यंत उपशमक होकर ऊपर चढने लगते है वे मोहका दशवें गुणस्थानके अतमें पूर्ण उपशम कर चुकते है । उस अवस्थाको उपशात अथवा शात अथवा शातमोह अथवा शातकषाय कहते है । यह ग्यारहवा गुणस्थान है । इस प्रकार उपशम श्रेणीमें अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानसे लेकर दशवें पर्यंत तीन गुणस्थान उपशमक और एक ग्यारहवा गुणस्थान उपशातकषाय —इन उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमे, और क्षपकश्रेणीयुक्त जो चार गुणस्थान है उनमेंसे संपूर्ण अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें,

॥५८६॥

शमकत्रितये शाते क्षपकाणामपूर्वके। पोडशप्रकृतिध्वंसमकुर्वत्यनिवृत्तिके ॥ ४२५ ॥
चतुष्क प्रथमं सत्त्वे परतोऽतः क्षणाष्टके। नवमे दशमे क्षीणे सयोगे योगवर्जिते ॥ ४२६ ॥

तथा सोलह प्रकृतियोंका जबतक ध्वस अथवा व्युच्छेद नहीं हुआ ऐसे प्रथमभागरूप अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें—इन छह स्थानोंमें मोहके सत्त्वस्थान आदिके चार होते हैं। मनसे पहिला एक सत्त्वस्थान ९३ प्रकृतिका, दूसरा ९२ प्रकृतिका, तीसरा ९१ प्रकृतिका, चौथा ९० प्रकृतिका।

भावार्थः—नौवें गुणस्थानमें प्रकृतिध्वंसरूप कार्य नौ वार जुदी जुदी प्रकृतियोंका होता है इसलिये इस नौवें गुणस्थानके नौ भाग ही माने गये हैं। उन नौ भागोंमेंसे प्रत्येक भागमें क्रमसे कौन कौनसी प्रकृतियोंका विच्छेद होता है इस वातको इसी ग्रंथके 'कर्म प्रकृति बंधस्तव' नामके तीसरे परिच्छेदके ६२ वें श्लोकसे लेकर किया है वहापर नौवेंके सर्व भागोंमें मिलकर ३६ प्रकृतियोंका विच्छेद होना बताया है। वहींपर प्रथम भागके अतमें सोलह प्रकृतियोंका विच्छेद होता है। वे सोलह प्रकृति गोमटसारमें इस प्रकार गिनाई हैं।—

णिरयतिरिक्खदु विगल थीणतिगुज्जोव ताव एइंदी। साहरणसुहुमथावर सोलह मज्झिमकसायट्ठ ॥ ३३८ ॥

निरयतिर्यग्द्वि विकलस्त्यानत्रिकमुद्योतातपैकेन्द्रियम्। साधारणसूक्ष्मस्थावरं षोडश मध्यमकषायाष्टौ ॥

अर्थात् अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागके अतमें नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी ये दो प्रकृति, तिर्यचगति तिर्यच गत्यानुपूर्वी ये दो प्रकृति, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा प्रकृति, उद्योत, आतप, एकेंद्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर— इन सोलह प्रकृतियोंका सत्तामेंसे विच्छेद होते ही अनिवृत्तिकरणका दूसरा भाग लग जाता है। इसलिये इन सोलह प्रकृतियोंका ध्वंस जबतक नहीं हुआ है तबतकके भागको प्रथम भाग माना जाता है।

इस प्रथम भागके आगे फिर भी आठ क्षणभाग अथवा समयविभाग अनिवृत्तिकरणमें और हैं। उस क्षणाष्टकरूप आगेके अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानागमें, तथा दशवें गुणस्थानमें, क्षीणकषाय वारहवें गुणस्थानमें, सयोग केवली तरहवें

चतुष्टयमशीत्यादि नियोगांत्यक्षणे परम् । ज्ञेया नव दश प्राज्ञैरिति नाम प्ररूपितम् ॥ ४२७ ॥

तत्रोपशमश्रेण्यामपूर्वादीनां चतुर्णां क्षपकाणामपूर्वेऽनिवृत्तिप्रथमनवांशे च सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । अनिवृत्तिक्षपकशेषनवांशेष्वष्टसु सूक्ष्मक्षीणसयोगनियोगोपांतिमक्षणेषु च सत्त्वे ८० । ७९ । ७८ । ७७ । नियोगांत्यक्षणे १० । ९

एवं नामप्ररूपणा समाप्ता ।

मार्गणां प्रति बंधादित्रयं कथ्यते—

गुणस्थानमें, एवं अंत्य क्षणको छोडकर शेष सर्वांश योगवर्जित चौदहवें गुणस्थानमें अस्सी आदि प्रकृतियोंके चार सत्त्वस्थान मिलते है । ८० का, ७९ का, ७८ का, ७७ का– ये वे चार स्थान हैं । फिर नियोग अर्थात् चौदहवा गुणस्थान उसके अंत्य समयमे नौ तथा दश प्रकृतिवाले दो सत्त्वस्थान रहते है ।

इस प्रकार नामप्रकृतियोंका गुणस्थानोंमें निरूपण किया । ४२५-४२७ ।

उपशम श्रेणीके चारो गुणस्थानोंमे, क्षपक श्रेणीके अपूर्वकरण गुणस्थानमें तथा अनिवृत्तिकरणके पहिले एक नवमांशमें सत्त्वस्थान चार–९३ । ९२ । ९१ । ९० । फिर आगे क्षपक अनिवृत्तिकरणके शेष आठ नवांशोंमें, तथा क्षपक सूक्ष्मकषाय दशवेंमें, क्षीणकषाय बारहवेंमे, सयोगमें, नियोगके उपांतिम क्षणपर्यंतमें सत्त्वस्थान चार–८० । ७९ । ७८ । ७७ । इसके आगे नियोग अर्थात् अयोगकेवलीके अंत्य क्षणमें सत्त्वस्थान दो—१० । ९ ।

इस प्रकार गुणस्थानोंमे नामप्ररूपणा हुई ।

अब गुणस्थानोंमे नामकर्मके बंधादित्रयके स्थानोंको तथा प्रकृतिसंख्याओंको बता कर मार्गणाओंमे बंधोदयसत्त्वके स्थानोंको तथा उन स्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको क्रमसे बतानेवाले है । सबसे प्रथम मार्गणाओंमें प्रथम मार्गणा गति मार्गणा है । उसके उत्तर भेदोंमें बंधादित्रयके स्थानोंको दिखाते है ।—

॥५८८॥

बंधे पाके सत्त्वे द्वे पच त्रीणि सति नरकेषु । षट् नव पच त्रितये सति स्थानानि तिर्यक्षु ॥ ४२८ ॥
अष्ट दश द्वादश च त्रितये स्थानानि सति मानुष्ये । चत्वारि पच चत्वारि त्रिदिवे तत्र जायते ॥ ४२९ ॥

बं.	२	६	८	४
उ.	५	९	१०	५
स	३	५	१२	४

नवदशसहिता बधे नरके विंशतिरुदाहृता पाके । एपैकपचसप्ताष्टनवागा जायते तत्र ॥ ४३० ॥

नरकोंमें बधके स्थान दो है, उदयके स्थान पाच है, और सत्त्वके स्थान तीन हे। तिर्यचोंमे क्रमसे बधादि त्रयमेंसे बधके छह स्थान है, उदयके नौ स्थान है, सत्ताके पाच स्थान हे। इसी प्रकार क्रमप्राप्त मनुष्योंमे बधादित्रयसबधी स्थानोंको इस प्रकार समझो कि, बधमें आठ स्थान, उदयमे दश स्थान तथा सत्तामें बारह स्थान ह। एव देव गतिमें बधादित्रयमेंसे बधके चार स्थान है, उदयके पाच स्थान हैं, और सत्ताके चार स्थान रहते हैं। ४२८-४२९।

चारो गतियोंमें बधादित्रयके स्थानोंकी सख्या दिखानेवाला यत्र इस प्रकार है।—

	नरकमें	तिर्यचमें	मनुष्यमें	देवमे
बध—	२	६	८	४
उ०—	५	९	१०	५
सत्ता—	३	५	१२	४

अब आगे ऊपर बताये हुए स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको जुदी जुदी गिनाते है। उनमेंसे प्रथम नरकगतिके सर्व स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको दिखाते है।—

नरकमें बधसबंधी स्थान दो बताये हैं सो एक तो स्थान नौ सहित बीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है, दूसरा दश

एकद्वित्रिपरित्यक्ता तत्र त्रिनवतिः मति । उक्त्वा बंधादिकं श्वभ्रे तिर्यक्षु कथयाम्यत. ॥ ४३१ ॥
श्वभ्रे बंधे २९ । ३० । उदये २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्त्वे ९२ । ९१ । ९० ।
आद्यानि तत्र षड् बंधे नवाद्यान्युदये विदुः । त्र्येकाग्रे नवती सत्त्वे सप्ताद्यानि विना क्रमात ॥ ४३२ ॥

सहित बीसका अर्थात ३० प्रकृतिका स्थान है । नरकमे उदयस्थान पाच हैं । वे इस प्रकार है— एक उदयस्थान एक अधिक बीसका अर्थात् २१ प्रकृतिका है । दूसरा पाच अधिक बीसका अर्थात् २५ प्रकृतिका स्थान है । तीसरा सात अधिक बीसका अर्थात २७ प्रकृतिका स्थान है । चौथा आठ अधिक बीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका स्थान है । पाचवा नौ अधिक बीसका' अर्थात् २९ प्रकृतिका स्थान है । ये पाच स्थान उदयमे हैं । सत्तामे यहा तीन स्थान बताये है । वे इस प्रकार है तिरानवेमेसे क्रमसे एक दो तीन सख्याको घटा दिया जाय तो ९२, ९१, ९० रहते हैं । सत्ताकी तीन स्थानोकी प्रकृति भी इतनी इतनी ही हैं ।

नरकमें बधकी प्रकृति २९ । ३० । उदयकी प्रकृति—२१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्ताकी प्रकृति—९२ । ९१ । ९० ।

इस प्रकार नरकमे बधादित्रयके स्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको बताकर अब आगे तिर्यचोंमे बतानेवाले है । ४३१ ।

' तत्र ' अर्थात् तिर्यच गतिमे बधादित्रयके स्थानोंकी प्रकृति इस प्रकार है ।— बधमें आदिके छह स्थान हैं । उदयमें आदिके नौ स्थान हैं । सत्तास्थान आदिके जो सात है उनमेंसे, यहापर एक तीन अधिक नब्बेका अर्थात् ९३ का, और एक एक अधिक नब्बेका अर्थात् ९१ प्रकृतिका—ये दो स्थान नहीं है । इसलिये इन दो स्थानोंको छोड देना चाहिये । तब आदिसे सातवें सत्तास्थान पर्यंत पाच स्थान शेष रह जाते है । ये ही पाच स्थान तिर्यच गतिमे सत्त्वस्थान है । ४३२ ।

तिर्यक्षु बंधे २३।२५।२६।२८।२९।३०। पाके २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। तीर्थकृत्सत्कर्मा तिर्यक्षु न यातीति तेन विना सत्वे ९२।९०।८८।८४।८२।

सर्वे बंधे नृत्त्वे क्रमाच्चतुर्विंशतिं विना पाकाः। सत्त्वे द्व्यशीत्यूनस्थानान्यखिलानि जायते॥ ४३३ ॥

तिर्यंचोंमें बंधस्थान—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयस्थान—२१।२४। २५ । २६ । २७।२८।२९।३०।३१। सत्तास्थान—९२।९०।८८।८४।८२।—ये पाच हैं। तीर्थकर प्रकृतिकी सत्ता रखनेवाला जीव तिर्यंचोंमें नहीं जनमता है इसलिये ९३ का और ९१ का ये दो स्थान तिर्यंचोंमें नहीं है। ९३ में का और ९१ में का ये दोनों स्थान तीर्थकर प्रकृतिके रहनेसे ही होते है।

अब मनुष्यगतिके जुदे जुदे स्थानोंकी प्रकृतियोंको आगे दिखाते है।—

'नृत्त्व' अर्थात मनुष्यावस्था। इस मनुष्यावस्थामें, बंधके स्थान सर्व आठ है, वे आठ ही बताये है। उदयस्थान सर्व ग्यारह है उनमेंसे मनुष्यगतिमें दश उदयस्थान बताये है। यहापर एक चौवीस प्रकृतिवाला उदयस्थान नहीं रहता इसलिये नौमेंसे इस चौवीसवें स्थानको घटा देना चाहिये। शेप आठ स्थान यहा उदयमें रहते है। भावार्थ— २४ प्रकृतिका जो उदय-स्थान है वह केवल तिर्यंच गतिमें ही मिलता है, अन्य तीनो गतियोंमें नहीं मिलता।

मनुष्यगतिमें सत्त्वस्थान १२ हैं। सर्व सत्त्वस्थान १३ हैं। उनमेंसे ८२ प्रकृतिवाला एकसातवा सत्त्वस्थान मनुष्य गतिमें नहीं रहता है इसलिये तेरह स्थानोंमेंसे एक स्थान घट जाता है, शेप वारह स्थान रहजाते है। इसके सत्त्वके प्रकरणमें भी नामका व्यासी प्रकृतिवाला सत्त्वस्थान तिर्यंचोंमें ही रहना बताया है मनुष्योंमें यह स्थान नहीं रहता है। पहिले २३० वे श्लोकमें बताया है कि "निद्व्यशीतीनि सर्वाणि स्थानानि नरजन्मसु" अर्थात् मनुष्यगतिवालोंमे व्यासीके स्थानको छोडकर शेप सर्व सत्त्वस्थान है। २२३ वें श्लोकके स्पष्टीकरणमें भी व्यासीका स्थान तिर्यंचोंमें ही बताया है। ४३३।

नृत्वे बधा २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । पाकाः २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । सन्ति ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

बधे पचषड्शा नवदशयुक्ता च विंशतिः स्वर्गे । सा सैकपचमप्ताष्टनवा पाके विनिर्दिष्टा ॥ ४३४ ॥

सत्त्वे प्रथमचतुष्क बधादित्रितयमुक्तमिति नाके । इदमिन्द्रियंष्विदानीं कथयामि यथागम ज्ञात्वा ॥ ४३५ ॥

मनुष्यगतिमें बधस्थान आठ, उनमे क्रमसे प्रकृति २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । उदयस्थान दश, उनमें क्रमसे प्रकृति २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । सत्तामें स्थान सर्व यहा बारह, उनमे क्रमसे प्रकृति ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

अब देवगतिके बधादिस्थानोंकी प्रकृतिसख्याओंको क्रमसे बताते है ।—

देवगतिमें बधस्थान सर्व चार है । उनमेसे पाच अधिक वीस अर्थात् २५ प्रकृति एक स्थानमे हैं । दूसरे स्थानमें छह अधिक वीस अर्थात् २६ प्रकृति है । तीसरा एक स्थान ऐसा है जिसमे नौ अधिक वीस अर्थात् २९ प्रकृति पाई जाती है । चौथा एक स्थान दश अधिक वीसको अर्थात् ३० प्रकृतिको बाधता है । ये चार प्रकारके यहा स्थान बधसबधी हुए । अब उदयस्थानोंको देखो । यहा पर उदयस्थान पाच बताये है । उनमेसे एक स्थान एक अधिक वीसका अर्थात् २१ प्रकृतिका है । दूसरा पाच अधिक वीसका अर्थात् २५ का है । तीसरा सात अधिक वीसका अर्थात् २७ का है । चौथा स्थान आठ अधिक वीसका अर्थात् २८ प्रकृतिका है । पाचवा नौ अधिक वीसका अर्थात् २९ प्रकृतिका है । ऐसे ये पाच उदयस्थान हुए । सत्तास्थान चार है वे आदिके चार है । अर्थात् एक ९३ का है, दूसरा ९२ का है, तीसरा स्थान ९१ प्रकृतिका है, चौथा स्थान ९० प्रकृतिवाला है । इस प्रकार देवगतिके बधादि तीनो स्थानोंको बताया ।

देवोंमें बधसबधी सत्त्वस्थान चार—२५ । २६ । २९ । ३० । उदयस्थान पाच—२१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्तास्थान चार—९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

स्वर्गे वधे २५ । २६ । २९ । ३० । पाके २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सत्तायां ९३ । ९२ । ९१ । ९० ।

एकाक्षे त्रितये पच विकलत्रितये मताः । पच षट् पच पचाक्षे त्वष्टौ दश त्रयोदश ॥ ४३६ ॥

	ए.	वि.	पं
वं.	५	५	८
उ	५	६	१०
स	५	५	१३

अव आगे इद्रिय मार्गणाको लेकर इद्रियोंमें इस वंधादित्रयके स्थानप्रकरणको आगमानुसार जान कर वताते हैं । ४३४–४३५ ।

एकेंद्रियोंमें वधके भी पाच स्थान है, उदयके भी पाच ही हैं, और सत्ताके भी पाच ही स्थान हैं । इस प्रकार तीनोंके पाच ही पाच स्थान है । विकलत्रयमें क्रमसे पाच छह पाच हैं । वधमें पाच हैं । उदयमें छह हैं । सत्तामें पाच हैं । पचेंद्रियोंमें क्रमसे आठ, दश, तेरह हैं । वधमें वहा आठ स्थान हैं । उदयमें दश हैं । सत्तामें तेरह–सवके सव स्थान हैं । ४३६ ।

इद्रियोंमें वधादि स्थानसख्याको वतानेवाला यत्र.–

	एकेंद्रियमें	विकलत्रयमें	पचेंद्रियमें
वध–	५	५	८
उदय –	५	६	१०
सत्ता–	५	५	१३

बंधे त्रिपंचषड्नवदशयुक्ता विंशतिर्मितैकाक्षे । पाकाः पंच प्रथमाः प्रथमतृतीये विना संति ॥ ४३७ ॥

स्थानानीति शेषः । बंधे २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । पाकाः २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । सति ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

एकेन्द्रियवद्बंधे सत्त्वे विकलत्रये प्रजायंते । एकषडष्टनवदशैकादशयुग् विंशतिः पाके ॥ ४३८ ॥

अब एकेंद्रियके ऊपर दिखाये हुए बंधादि स्थानोंकी प्रकृतिसंख्याओंको आगे दिखाते हैं ।—

एकेंद्रियमें बंधस्थान पाच हैं । उनमें क्रमसे प्रकृतिसंख्या इस प्रकार है ।– एक स्थान तीन अधिक वीसका अर्थात् २३ प्रकृतिवाला है । दूसरा स्थान पाच अधिक वीसका अर्थात् २५ प्रकृतिवाला है । तीसरा स्थान छह अधिक वीसका अर्थात् २६ प्रकृतिवाला है । चौथा स्थान नौ अधिक वीसका अर्थात् २९ प्रकृतिवाला है । पाचवा स्थान दश अधिक वीसका अर्थात् ३० प्रकृतिवाला है । एकेंद्रियमें उदयस्थान भी पाच ही बताये हैं वे आदिके पाच स्थान लेने चाहिये । सत्तास्थान भी एकेंद्रियमें पाच ही हैं । वे प्रथम सत्तास्थानको और तीसरे सत्तास्थानको छोडकर शेष आदिसे लेकर पाच स्थान समझने चाहिये । इस श्लोकमें ' स्थान ' शब्द नहीं आसका है परंतु वह प्रकरणवश ऊपरसे जोड लेना चाहिये । बंधस्थान पाच–२३ । २५ । २६ । २९ । ३० । उदयस्थान पाच–२१ । २४ । २५ । २६ । २७ । सत्त्वस्थान पाच–९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । यह तिर्यंचगतिका प्रकरण है क्योंकि, तिर्यंचोंमें ही एक इंद्रिय संभव है, इसलिये यहा तीर्थंकर प्रकृतिके संबंधसे होनेवाले ९३–९१ के दो सत्त्वस्थान घटा दिये हैं । तिर्यंचोंमें तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता नहीं रहती है । ४३७ ।

बंधमें–२३ । २५ । २६ । २९ । ३०–ये पाच स्थान । उदयगत–२१ । २४ । २५ । २६ । २७ । – ये प्रथमके पाच । सत्तास्थान भी पाच-९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

अब विकलत्रयके स्थानोंको तथा स्थानोंकी प्रकृतियोंको बताते हैं ।–

बंधमें और सत्तामें एकेंद्रियके ही समान विकलत्रयमें भी स्थान समझने चाहिये । किंतु उदयमें जो स्थान है वे इस प्रकार हैं ।–एक अधिक वीसका एक स्थान, छह अधिक वीसका एक दूसरा स्थान, आठ अधिक वीसका एक तीसरा स्थान,

बंधे २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । पाकाः २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।
सत्त्वे ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

नौ अधिक वीसका एक चौथा स्थान, दश अधिक वीसका अर्थात् तीसका एक पाचवा स्थान, ग्यारह अधिक वीसका अर्थात् इकतीसका एक छट्ठा स्थान–इस प्रकार छह स्थान है। भावार्थ, एकेंद्रियमें जहा एकेंद्रिय नामका जातिकर्म है वहां विकलत्रयमें द्वींद्रिय जातिकर्म होगा अथवा त्रींद्रिय अथवा चतुरिंद्रिय होगा।

परतु प्रकृतियोंकी सख्यामें वध तथा उदयमें कोई अतर नहीं पडता है इसलिये विकलत्रयके वधस्थान और उदयस्थानोंको एकेंद्रियके स्थानवत् वताया है। उदयस्थानोंमें एकेंद्रियकी अपेक्षा विकलत्रयमें अंतर है। इसका कारण इस प्रकार है। विग्रहगतिमें एकेंद्रियके भी २१ का ही स्थान वताया है और विकलोंमें भी २१ का ही वताया है। परंतु विग्रहगतिके वाद एकेंद्रियमें जहा, दूसरा स्थान २४ प्रकृतिका वताया है वहा विकलोंमें २६ का वह दूसरा स्थान है। यहापर एक अगोपाग और दूसरी प्रकृति एक असप्राप्त असृपाटिका सहनन –ये दो प्रकृति वढ जाती है। इसलिये विकलोंमें दूसरा स्थान चौवीस प्रकृतिरूप न होकर छव्वीस प्रकृतिरूप हो जाता है। इन दो प्रकृतियोंके वढ जानेसे दूसरे स्थानमें दोकी सख्या वढजानेसे आगेके स्थानोंमें भी दो दो सख्याका अतर पड जाता है। ये दो प्रकृति एकेंद्रियके उदययोग्य नहीं है इसलिये सामान्य प्रकृतिसमूहसे ये दो प्रकृति अधिक विशेषस्थानकी मानी गई है। इसका स्पष्टीकरण इसी पाचवें परिच्छेदके ११२ वें श्लोकसे लेकर किया है वहापर १३५ वें श्लोकसे एकेंद्रियके २४ के स्थानका वर्णन है और १४६ वें श्लोकसे विकलोंके २६ प्रकृतिरूप दूसरे स्थानका वर्णन किया है। विशेष वहासे समझना चाहिये। ४३८।

वधमें–२३ । २५ । २६ । २९ । ३० ।
उदयमें–२१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।
सत्तामें–९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

वधे मत्त्वे जीवे सर्वस्थानानि सति पचाक्षे। तानि चतुर्विंशत्या पाके हीनानि जायते ॥ ४३९ ॥

वधे २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । पाके २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ९ । ८ । सत्त्वे ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।

विकलेंद्रियके साथ संस्थान एक हुडक ही होता है । '**संस्थान विकलाक्षाणां हुंड भवति सर्वदा**' ऐसा इसी परिच्छेदके ७५ वें श्लोकमें कहा है । साधारण वध तथा उदय संबधी नियम ऐसा है कि जितनी प्रकृति उदयमें आसकती है उतनी ही प्रकृति उस गतिकर्मके साथ वधको प्राप्त होती है । परतु नाम प्रकृतिका यहापर वध २३ का जघन्य बताया है, किंतु उदय प्रथम विग्रहगतिकी अवस्थामें २१ प्रकृतिका है । यहापर दो प्रकृति वधकी अपेक्षा उदयमें घाट हैं । इसका वास्तव कारण ऐसा है कि वधकी कुछ प्रकृतियोंकी, उदयके प्रथम समयमें उदयरूप योगता नहीं है । जैसे उपघातादि प्रकृति तवतक उदयमें नहीं आती है जवतक शरीरकी रचनाका आरभ न हो जाय , इसलिये विग्रहगतिमें वधप्रकृतिसख्याका और उदयप्रकृतिसंख्याका परस्परमे अतर पडजाना सभव है । इत्यादि वार्तोको वधोदयसत्त्वकी जुदी जुदी प्रकृतियोंको देखकर समझलेना चाहिये ।

अव आगे पचेंद्रियके वधोदयसत्त्वस्थानोंको दिखाते हैं ।—

पचेंद्रियमें वधसवंधी और सत्तासवधी तो सर्व सर्व स्थान रहते हैं, किंतु उदयस्थानोंमेंसे एक चौवीस प्रकृतिका स्थान नहीं है। इसलिये सर्व उदयस्थान जो ग्यारह वताये है उनमेंसे पचेंद्रियमें दश स्थान होते है ऐसा समझना चाहिये। इसका कारण यह है कि चौवीस प्रकृतिका जो उदयस्थान है वह एकेंद्रियमें ही उदययोग्य होता है । विकलसे लेकर वही स्थान छव्वीस प्रकृतिरूप हो जाता है । एक सहनन, दूसरा अगोपाग–ये दो वढ जाते हैं । ४३९ ।

वधस्थान–२३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । –ये आठो हैं। उदयस्थान–२१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ ।–ये दश है। सत्ताके स्थान–९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ।— ये सर्व हैं ।

सर्वासु मार्गणास्वेवं सत्संख्याद्यष्टकेऽपि च । बधादित्रितयं नाम्नो योजनीयं यथागमम् ॥ ४४० ॥
न चत्वारिंशत संकं परित्यज्यान्यकर्मणाम् । पाकोदीरणयोरस्ति विशेष' स्वाम्यतः स्फुटम् ॥ ४४१ ॥

अव आगे समुच्चित शेष सर्व मार्गणाओंमें तथा सत् सख्या क्षेत्रादि आठ अनुयोगोंमें भी नामके वधोदयसत्त्वको ऊपरसे समझकर वैठाल लेनेका उपदेश करते हैं ।—

जिस प्रकार गतिमार्गणामें तथा इद्रिय मार्गणामें नामके वधोदयसत्त्व तीनोंके स्थानोंको यथासभव दिखाया है उसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें भी लगा लेना चाहिये, और सत् सख्या आदि आठ अनुयोगोंमें भी पूर्वागमोंको देखकर लगा लेना चाहिये ॥ ४४० ॥

इस प्रकार नामके वधोदयसत्त्वका वर्णन समाप्त हुआ ।

अव कर्मोंकी उदय तथा उदीरणाको लेकर विशेष वर्णन करते हैं ।—

आगे जिन्हे वतानेवाले हैं उन इकतालीस प्रकृतियोंको छोडकर शेष सर्व प्रकृतियोंमें उदय तथा उदीरणा समान ही है । उन शेष कर्मोंकी उदीरणाके जो स्वामी है वे ही उन प्रकृतियोंके उदयके भी स्वामी हैं । स्वामीपनेसे कोई भेद नहीं है । कर्मकी स्थिति पूर्ण होनेपर जो कर्मोंका फल भोगा जाता है उसे उदय कहते है । स्थिति पूर्ण होनेसे प्रथम ही स्थितिका न्हास होनेपर जो फल प्राप्त होता है उसे उदीरणा कहते हैं । उदय तथा उदीरणामें यही एक भेद है । उन शेष प्रकृतियोंकी उदीरणा जिन गुणस्थानोंमें होती है उन्ही गुणस्थानोंमें उदय होता है । स्वामीकी अपेक्षासे यही अभेद है । गुणस्थानगत जो जीव है वे ही यहा उदय उदीरणाके स्वामी कहे गये हैं । इकतालीस प्रकृतियोंके स्वामी उदयकी अपेक्षा तथा उदीरणाकी अपेक्षासे जुदे जुदे हैं । यह इसका तात्पर्य है ॥ ४४१ ॥

आगे इकतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणाको तथा उदयको लेकर स्वामिभेद क्या है उसे वताने वाले हैं । अव सवसे प्रथम यह वात वताते है कि अमुक गुणस्थानोंमें उदीरणा होती ही नहीं है और शेष गुणस्थानोंमें होती है ।—

मिश्रसासादनापूर्वशांतायोगान् विमुच्य सा । योजनीया गुणस्थानं विभागेन विचक्षणैः ॥ ४४२ ॥
एकचत्वारिंशत्प्रकृतयो गुणस्थान प्रति दीयन्ते—
मिथ्यात्व तत्र दुर्दृष्टौ तुर्ये श्वभ्रसुरायुषी । तैरश्च जीवित देशे षडेताः सप्रमादके ॥ ४४३ ॥
सातासातमनुष्यायुस्त्यानगृद्धित्रयाभिधा । सम्यक्त्व सप्तमे वेदत्रितय त्वनिवृत्तिके ॥ ४४४ ॥

मिश्र गुणस्थान तीसरा, सासादन गुणस्थान दूसरा, अपूर्वकरण आठवा गुणस्थान, शात अर्थात् उपशातकषाय ग्यारहवा गुणस्थान, अयोग अर्थात् अयोग केवली चौदहवा गुणस्थान–इन पाच गुणस्थानोंमे उदीरणा नहीं होती है। इसलिये इन पाच गुणस्थानोंको छोडकर उदीरणाको इतर गुणस्थानोंमें यथासभव लगालेना चाहिये। भावार्थ, जहापर किसी प्रकृतिका उदय भी सभव है और उदीरणा भी सभव है उन गुणस्थानोंमें यह उदीरणाकी योजना नहीं बताना है। किंतु किसी कर्मका उदय तो एक दूसरे विवक्षित गुणस्थानमें होता है परतु उदीरणा उसी कर्मकी हो तो उस गुणस्थानमें नहीं होती किंतु दूसरे ही किसी गुणस्थान पर्यंत होती है। इसका नाम स्वामिभेद है। इस कारिकामें केवल इतना ही बताया है कि उदीरणा उक्त गुणस्थानोंको छोडकर होती है और उदय यथासभव होता है। ४४२।

अब उन इकतालीस प्रकृतियोंको गुणस्थानोंमें विभाजित करके जोडते हैं। इसका प्रयोजन ऐसा समझना कि वह अमुक अमुक प्रकृति यदि उदीरणाको प्राप्त हो तो उस उस गुणस्थामें हो सकती है।—

मिथ्यात्व अर्थात् मिथ्यादर्शन प्रकृति दुर्दृष्टिमें अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदीरणाके योग्य समझना। श्वभ्र अर्थात् नरकायु और सुरायु अर्थात् देवायु चौथे गुणस्थानमें उदीरणाके योग्य समझना। तिर्यच जीवित अर्थात् तिर्यच आयुकर्म देशव्रत पाचवें गुणस्थानमे उदीरणायोग्य समझना। और आगे जिन्हे गिनाते है वे छह प्रकृति प्रमादसहित गुणस्थानमें अर्थात् छट्ठे गुणस्थानमें उदीरणायोग्य समझना। वे छह प्रकृति सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु ये तीन प्रकृति और तीन स्त्यानगृद्धि आदि निद्रा प्रकृति इस प्रकार छह प्रकृति हैं। सम्यक्त्ववेदनीय प्रकृति सातवें गुणस्थानमें उदीरणाके योग्य है। पुरुष स्त्री नपुसक

लोभः सज्वलनः सूक्ष्मे क्षीणाख्ये दक्चतुष्टयम् । दश ज्ञानांतरायस्था निद्राप्रचलयोर्द्वयम् ॥ ४४५ ॥
त्रस१चाक्षपर्याप्तबादरोच्चनृरीतय. । तीर्थकृत्सुभगादेययशांसि दश योगिनि ॥ ४४६ ॥

१ । ० । ० । २ । १ । ६ । १ । ० । ३ । १ । ० । १६ । १० । ० । मीलिताः ४१ ।

ये तीन वेद प्रकृति अनिवृत्तिकरण नाम नौवें गुणस्थानमें उदीरणाके योग्य समझना । ४४३—४४४ ।

सज्वलन लोभ कषाय दशवें सूक्ष्मकषाय गुणस्थानमें उदीरणा होने योग्य है । क्षीणकषाय नामके बारहवें गुणस्थानमें चार दर्शनावरण प्रकृति उदीरणाके योग्य मानी गई हैं। और ज्ञानावरणकी पाच प्रकृति अतरायकी पाच प्रकृति—ये मिलकर दश प्रकृति हुई । ये दशो प्रकृति भी इस क्षीणकषायमें ही उदीरणायोग्य हैं । निद्रा तथा प्रचला— ये दो प्रकृति भी इसी क्षीणकषाय गुणस्थानमें उदीरणायोग्य हैं । इस प्रकार बारहवें गुणस्थानमें सर्व सोलह प्रकृति उदीरणाके योग्य मानी गई है । इन सोलहमेंसे जो ऊपर दर्शनावरणकी चार प्रकृति बताई हैं वे चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण अवधिदर्शनावरण तथा केवल दर्शनावरण ये चार हैं । क्योंकि स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंकी उदीरणा होना छट्ठे गुणस्थानमें बता दिया है । और दो निद्राओंके नाम यहींपर आगे लिये हैं । इसलिये शेष चार ही दर्शनावरण रह जाते हैं, जो ऊपर बताये हैं । ४४५ ।

आगे सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थानमें उदीरणायोग्य प्रकृति कितनी हैं उन्हे दिखाते हैं ।—

त्रसनाम, पचेंद्रिय जातिनाम, पर्याप्तनाम, बादरनाम, उच्च गोत्र, नृरीति अर्थात् मनुष्यगतिनाम, तीर्थकरत्वनाम, सुभग नाम, आदेयनाम, यश.कीर्तिनाम— इन दश प्रकृतियोंकी उदीरणायोग्यता सयोग केवली तेरहवें गुणस्थानमें मानी गई है । ४४६ ।

१ । ० । ० । २ । १ । ६ । १ । ० । ३ । १ । ० । १६ । १० । ० । यह यत्र उदीरणाकी प्रकृतियोंकी संख्याको गुणस्थानोंमें क्रमसे दिखाता है । ये सर्व मिला देनेसे उदीरणायोग्य प्रकृति ४१ होजाती है ।

आगे इन उदयप्रकृतियोंकी उदीरणामें कुछ विशेषता गोमटसारको लेकर कहते हैं,—

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो। मोत्तूण तिण्णि ठाण पमत्त जोगी अजोगी य॥ २७८॥

उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वात् न विद्यते विशेष। मुक्त्वा त्रयस्थानं प्रमत्त योग्ययोगि च॥ २७८॥

अर्थ—उदय और उदीरणाके स्वामीपनेसे कुछ विशेषता नहीं है। परंतु प्रमत्तनामा छठा गुणस्थान, तेरहवा योगी, चौदहवां अयोगी इन तीनों गुणस्थानोंको छोडदेना, अर्थात् इन तीन गुणस्थानमें ही विशेपता है और सब जगह समानपना है॥ २७८॥

अब उसी विशेपताको दो गाथाओंसे दिखाते हैं,—

तीस बारस उदयुच्छेद केवलिणमेकद किच्चा। सादमसाद च तहिं मणुवाउगमवणिद किच्चा॥ २७९॥

त्रिंशत् द्वादश उदयोच्छेद केवलिनोरेकत्र कृत्वा। सातमसात च तत्र मानवायुष्कमपनीत कृत्वा॥ २७९॥

अर्थ—सयोगी और अयोगी केवलीकी ३० और १२ उदयव्युच्छित्ति प्रकृतियोंको घटाना चाहिये॥ २७९॥

अवणिदतिप्पयडीण पमत्तविरदे उदीरणा होदि। णत्थित्ति अजोगिजिणे उदीरणा उदयपयडीण॥२८०॥

अपनीतत्रिप्रकृतीनां प्रमत्तविरते उदीरणा भवति। नास्तीति अयोगिजिने उदीरणा उदयप्रकृतीनाम्॥ २८०॥

अर्थ—घटाई हुई साता आदि तीन प्रकृतियोंकी उदीरणा प्रमत्तविरत नामा छठे गुणस्थानमें ही होती है। बाकी ३९ प्रकृतियोंकी उदीरणा सयोगकेवलीके होती है। वहा ही व्युच्छित्ति होती है। और अयोगकेवलीके तो उदीरणा होती ही नहीं है, यही विशेपता है॥ २८०॥

अब उदीरणाकी व्युच्छित्ति गुणस्थानोंमें क्रमसे कहते हैं—

पण णव इगि सत्तरस अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव। इगि दुग सोलुगदालं उदीरणा होंति जोगता॥ २८१॥

पच नवैक सप्तदश अष्टाष्ट च चत्वारि षट्क षट् चैव। एक द्विकं षोडशैकोनचत्वारिंशत् उदीरणा भवंति योग्यता॥२८१॥

त्रिभिर्निरहितं तीर्थकर्तृत्वाहारकद्विके । स्वीकरोति समिथ्यात्व शतं सप्तदशोत्तरम् ॥ ४४७ ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीपर्यंत क्रमसे ५, ९, १, १७, ८, ८, ४, ६,६, १, २, १६, ३९, प्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छित्ति होती है ॥

अब पहले कही हुई उदीरणा और अनुदीरणारूप प्रकृतियोंकी सख्या दो गाथाओंसे कहते हैं —

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसय सगिगिसीदि तियसदरी । णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदाल ॥

पचेक्कारसबावीसट्ठारस पचतीस इगिणवदाल । तेवण्णेक्कुणसट्ठी पणछक्कडसट्ठि तेसीदी ॥ जुम्म ॥

सप्तदशैक दशखचतु सहितशत ससैकाशीति त्रिसप्ततिः । नवत्रिषष्टि सप्तषट्कपचाशत् चतु पचाशत् एकोनचत्वारिंशत् ॥

पचैकादशद्वाविंशत्यष्टादश पचत्रिंशत् एकनवचत्वारिंशत् । त्रिपचाशदेकोनषष्टि पचषट्काष्टषष्टि त्र्यशीति ॥ युग्मम् ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७३, ६९, ६३, ५७ ५६, ५४, ३९, प्रकृतिया उदीरणारूप है । और ५, ११, २२, १८, ३५, ४१, ४९, ५३, ५९, ६५, ६६, ६८, ८३, अनुदीरणारूप प्रकृतिया जानना अर्थात् इनकी उदीरणा नहीं होती ॥ इसप्रकार गुणस्थानोमे उदय-उदीरणाकी त्रिभगी (तीन भेद) कही ॥

इस प्रकार गोमटसारके अनुसार उदीरणा बताई ।

अथ बधाबंध प्रकरण

अब आगे इस बातको दिखाते हैं कि किस गुणस्थानमें कितनी प्रकृति बधयोग्य हैं और कितनी बधके अयोग्य है ।—

सर्व बधयोग्य प्रकृति एकसौ वीस मानी है । एकसौ अडतालीस प्रकृतियोंमेसे अट्ठाईस प्रकृति जो घाट मानी हैं वे इस प्रकार है ।—पाच बधन नाम और पाच सघातनाम प्रकृति ये दश नामकर्म प्रकृति पाच शरीर नाम प्रकृतियोंमे अतर्भूत करली जाती हे । एव स्पर्श आदि चार प्रकृतियोंके जो वीस उतर भेद है उन्हे बंध प्रकरणमें जुदे न मान कर चार ही मूल भेद

स्वतत्र माने हैं । इसलिये सोलह सख्या स्पर्श रस गंध वर्णमेंसे घट जाती है। इस प्रकार छव्वीस संख्या नामप्रकृतियोंमेंसे घटाई गई है । इसके सिवाय दो दर्शनमोहनीय बंधमेंसे घटाई गई हैं । वे दो इस प्रकार हैं कि एक सम्यक्त्व प्रकृति, दूसरी सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति । ये दो और नामकर्मकी छव्वीस मिल कर अट्ठाईस प्रकृति बंध प्रकरणमें नहीं गिनाई हैं। भावार्थ, बंध एकसौ वीस प्रकृतिका ही होता है ।

इन एकसौ वीस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्वी प्रथम गुणस्थानवाला जीव एक सौ सत्रह प्रकृतियोंको बाधता है। तीन प्रकृतियोंको नहीं बाधता । वे तीन प्रकृति—एक तीर्थकरत्व और दो आहारक शरीर —ऐसे तीन हैं । भावार्थ, ये तीन प्रकृति पहिलेसे तीसरे गुणस्थानपर्यंत तीनो गुणस्थानवाले जीवोंमे बधके योग्य नहीं मानी गई हैं । इसका कारण यह है कि ये विशुद्ध प्रकृति है । इनका बध सम्यक्त्वके अथवा चारित्रके रहते ही होता है। इसीलिये तीर्थकर प्रकृतिका बध चौथे गुणस्थानसे लेकर आगेके गुणस्थानोंमें बतावेंगे और आहारक शरीरद्वयका बध सातवें गुणस्थानसे बतावेंगे । ४४७ ।

अब नामकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंमें अभेद विवक्षासे जो प्रकृतिया जिनमें शामिल होसक्ती हैं उनको गोमटसारके आधारपर दिखाते हैं, —

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया । वण्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥
देहे अविनाभाविनौ बंधनसंघातौ इति अबन्धोदयौ । वर्णचतुष्केऽभिन्ने गृहीते चतस्रः बन्धोदये ॥

अर्थ—शरीर नामकर्ममें अपना अपना बंधन और संघात ये दोनों अविनाभावी हैं अर्थात् शरीरके विना ये दोनों नहीं हो सकते; इसकारण पाच बंधन और पाच संघात ये दश प्रकृतिया बध तथा उदयस्वरूप नहीं हैं अर्थात् कर्मकी बंध और उदय अवस्थामें ये दश प्रकृतिया जुदी नहीं गिनी जातीं, शरीर-नाम प्रकृतिमें ही शामिल हो जाती हैं। तथा वर्ण १ गंध २ रस ३ स्पर्श ४ इन चारमें ही अभेदकी विवक्षासे इनके वीस भेद शामिल होजाते हैं इस कारण बंध और उदय अवस्थामें चार ही भेद माने हैं ॥

ऐसा होनेपर बध, उदय तथा सत्तारूप प्रकृतिया कितनी हुई ? इसका उत्तर आचार्य चार गाथाओंसे कहते हुए प्रथम वधरूप प्रकृतिया गिनाते है,—

पच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तठ्ठी। दोण्णि य पच य भणिया एदाओ वधपयडीओ ॥

पञ्च नव द्वौ षड्विंशतिरपि च चतस्र क्रमेण सप्तषष्टि । द्वौ च पञ्च च भणिता एता वधप्रकृतय ॥

अर्थ—ज्ञानावरणकी पाच, दर्शनावरणकी ९ वेदनीयकी २ मोहनीयकी २६ हैं क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति वन्धमें नहीं है यह पहिले भी कहचुके है, तथा आयुकर्मकी ४ और नामकर्मकी ६७ हैं क्योंकि पहले गाथामें १०+१६= २६ प्रकृतिया अभेद विवक्षासे बध अवस्थामें नहीं हैं ऐसा कह आये है। सो ९३ में २६ कम करनेसे ९३−२६ =६७ ही बाकी रह जाती है। गोत्रकर्मकी २ अतरायकर्मकी ५ ये सब वध होने योग्य प्रकृतिया हैं ॥

अब उदय प्रकृतियोंको कहते हैं,—

पच णव दोण्णि अट्ठावीस चउरो कमेण सत्तट्ठी। दोण्णि य पच य भणिया एदाओ उदयपयडीओ ॥ ३

पञ्च नव द्वौ अष्टाविंशति चतस्र क्रमेण सप्तषष्टि । द्वौ च पञ्च च भणिता एता उदयप्रकृतय ॥

अर्थ— पाच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, सडसठ, दो और पाच ये सब उदय प्रकृतिया है, मोहनीयकी पहली छव्वीस प्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व १ और सम्यक्त्व प्रकृति ये दो भी उदय अवस्थामें शामिल करनेसे अट्ठाईस प्रकृतिया हो जाती है ॥

आगे वधरूप तथा उदयरूप प्रकृतियोंकी भेदविवक्षा और अभेदविवक्षासे सख्या कहते हैं—

भेदे छादालसय इदरे वधे हवति वीससय। भेदे सव्वे उदये वावीससय अभेदम्हि ॥ ३७ ॥

भेदे षट्चत्वारिंशच्छतमितरे बन्धे भवन्ति विंशशतम्। भेदे सर्वे उदये द्वाविंशशतमभेदे ॥ ३७ ॥

अर्थ—बन्ध अवस्थामें, भेदविवक्षासे (भेदसे कहनेकी इच्छासे) १४६ प्रकृतिया है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति ये दोनों इस बन्ध अवस्थामें नहीं गिनी जाती। और अभेदकी विवक्षासे १२० प्रकृतिया कहीं है क्योंकि २६

शासन शतमेकाग्रं चतुर्भि सप्तभिर्युताम् । सप्तति मिश्रनिर्वृतौ सप्तभिस्त्रिभिरन्वितम् ॥ ४४८ ॥

प्रकृतिया दूसरे भेदोंमे शामिल करदी गई है । उदय अवस्थामें, भेदविवक्षासे सब १४८ प्रकृतिया है क्योंकि पूर्वकी दो प्रकृतिया भी यहा शामिल कीगई हे । तथा अभेद विवक्षासे १२२ प्रकृतिया कही है क्योकि २६ भेद दूसरे भेदोंमे गर्भित हो जाते हैं वह पहलेही कहचुके है ॥

आगे सत्तारूप प्रकृतियोंकी सख्या कहते है —

पच णव दोण्णि अट्ठावीस चउरा कमेण तेणउदी । दोण्णि य पच य भणिया एदाओ सत्तपयडीओ ॥

पच नव द्वौ अष्टाविंशति चत्वार क्रमेण त्रिनवति । द्वौ च पच च भणिता एता सत्त्वप्रकृतय ॥

अर्थ—पाच, नौ, दो, अट्ठाईस, तिरानवै, दो और पाच इसतरह सब १४८ सत्तारूप (मौजूद रहने योग्य) प्रकृतिया कही है ॥

अब आगे सासादनादि तीन गुणस्थानोंमें बधयोग्य प्रकृतियोंकी सख्याको बताते है ।–

एकसौ एक प्रकृतियोंको सासादन दूसरे गुणस्थानवाला जीव बाधता है । क्योंकि मिथ्यात्वमें नरक गति आदि सोलह प्रकृतियोंकी बधव्युच्छित्ति होजाना बताया है । इसलिये ये सोलह प्रकृति इस दूसरे गुणस्थानमे बधसे छूट जाती हैं । इनके सिवाय तीन प्रकृति– तीर्थकरत्व तथा आहारकद्वय- ये जैसे प्रथम गुणस्थानमें बधके योग्य नहीं है वैसे यहां भी बधके योग्य नहीं हैं । इस प्रकार एकसौ वीसमेंसे उन्नीस प्रकृति घट जानेसे बधयोग्य एकसौ एक (१०१) प्रकृति रह जाती हैं ।

यहापर एक यह बात भी ध्यानमे रखने योग्य है कि यह कथन नाना जीवोंकी अपेक्षाके किया हुआ है । अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षासे ही दूसरे गुणस्थानमें एकसौ एक प्रकृतिका बध होना समव है । किसी एक जीवमें एकसौ एक प्रकृतिका बध एक समयमें होना सभव नहीं है । वह इस प्रकार,–

जैसे, यहा एकसो एक प्रकृतियोंमें मनुष्यगति मनुष्यायु आदि सामिल हैं वैसे ही देवगति देवायु भी सामिल है । जो

देशषष्ठी क्रमात् षष्टिं तां निरेकां तु सप्तम । पञ्चाशतमपूर्वाख्य क्रमादष्टषडन्विताम् ॥ ४४९ ॥

जीव एक समयमें मनुष्यगति तथा मनुष्यायुका बध करेगा वह जीव उस समयमें देवगति तथा देवायुका बध नहीं करेगा । आगे पीछे देवायुका बध कर सकता है और मनुष्यायुका भी कर सकता है । परतु इस प्रकारसे जो आगे पीछे बध होगा उससे एकसौ एक प्रकृतिकी पूर्ति तो हो जायगी किंतु वह सत्तामें पूर्ति हुई समझी जायगी । बध, जो नवीन कर्म बाधनेमें आते हैं उसीको कहते हैं । यह एक जीवका नाना समयोंकी अपेक्षासे बध है । इस प्रकार एक जीवमें क्रमसे १०१ प्रकृतिका बध भी हो सकता है और नाना जीवोंमें एक समयवर्ती भी १०१ प्रकृतिका बध होना सभव है । इसी प्रकार आगे पीछेके गुणस्थानोंमें भी यहा जो बधयोग्य प्रकृतियोंकी सख्या गिनाई है उसका ऐसा ही तात्पर्य लेना चाहिये ।

मिश्र तीसरे गुणस्थानके जीवमे चार अधिक सत्तरि अर्थात् ७४ प्रकृति बधयोग्य है । दूसरे गुणस्थानमें एकसौ एक बध योग्य प्रकृति बताई थीं और वहा पच्चीस प्रकृति बधसे और भी अधिक व्युच्छिन्न होती हैं वे प्रकृति पच्चीस यहा तीसरे गुणस्थानमें बधयोग्योंमेंसे घटादेनी चाहिये । तब छिहत्तरि प्रकृति रह जाती हैं । परतु इसके शिवाय इस तीसरे गुणस्थानमे मनुष्यायु तथा देवायु इन दो प्रकृतियोंकी बधसे व्युच्छित्ति तो नहीं हुई है तो भी ये दो प्रकृति यहा बधयोग्य नहीं है इसलिये छिहत्तरिमेंसे मनुष्यायु देवायु इन दो प्रकृतियोंको और भी घटा देना चाहिये तब चौहत्तरि रह जाती है। असलमे तीसरे गुणस्थानमे किसी भी आयुका बध नही होता है । परतु नरक तिर्यच इन दो आयुकी पहिले ही व्युच्छित्ति हो चुकी है । इस प्रकार चौहत्तरि प्रकृति तीसरे गुणस्थानमें बधयोग्य मानी गई है । शेष प्रकृतियोंमेंसे कुछ यहातक बधव्युच्छिन्न हो चुकी हैं और कुछ बधके यहा अयोग्य हैं ।

अब क्रमसे पांचवे आदि गुणस्थानोंमे बधयोग्य प्रकृतियोंको देखिये । — देश अर्थात् पाचवे गुणस्थानवाला जीव सात अधिक साठि अर्थात् ६७ प्रकृतिको बाध सकता है । चौथे गुणस्थानमें बधव्युच्छिन्न प्रकृति दश बताई हैं । चार अप्रमत्याख्यानावरण कषाय, वज्रर्षभनाराचसहनन, औदारिक द्वय, मुष्यगतिद्वय, मनुष्यायु—ये वे दश प्रकृति हैं । ये पाचवे

षड्विंशतिं च गृह्णाति ततो द्वाविंशतिं परः। एकद्वित्रिचतुर्न्यूनामेता संयमपचके ॥ ४५० ॥

गुणस्थानमें बंध होनेसे रुक जाती है। इसलिये इन दशको सततरिमेंसे घटादेनेसे सरसठि प्रकृति देशव्रतमें बंधयोग्य रह जाती है। छट्ठे गुणस्थानमें बंधयोग्य तीन अधिक साठि अर्थात् तिरेसठि प्रकृति है। पाचवें गुणस्थानमें तीसरे चार कषाय बंधच्छिन्न माने गये हैं। वे चार प्रकृति छट्ठे गुणस्थानमें बंधप्रकृतियोंसे घट जाती है इसलिये यहा तिरसठि बंधयोग्य रह जाती है। सातवें गुणस्थानमें एक घाटि साठि अर्थात् ५९ प्रकृति बंधयोग्य है।

छट्ठे गुणस्थानमें छह प्रकृतियोंका बन्धच्छेद बताया है। अस्थिरनाम, अशुभनाम, असातावेदनीय, अयश कीर्ति अरति नोकषाय, शोक नोकषाय ये वे छह है। तिरेसठिमेंसे सातवेंमें ये छह प्रकृति घट जाती हे किंतु आहारकद्वय प्रकृति सातवेंसे ही बंधको प्राप्त होती है। इसलिये ये दो प्रकृति यहा बन्धयोग्योंमें बढ जाती है। इस प्रकार ५९ प्रकृति यहापर बंधयोग्य है। आहारकद्वयका प्रथमसे छट्ठे गुणस्थान पर्यंत बंध नही होता था इसलिये प्रारभमे छट्ठेतक ये दो प्रकृति बंधयोग्य प्रकृतियोंमेंसे घटा रक्सी थी, वे यहापर बढादी गई है।

अपूर्वकरणमें आठ अधिक पचास अर्थात् ५८ प्रकृतिका बंध होता है। सातवें गुणस्थानमें एक देवायुका बंधच्छेद बताया है वह एक प्रकृति आठवेंमें घट जाती हे। इसलिये अट्ठावन प्रकृति यहा बंधयोग्य रह जाती है।

अपूर्व करणमें जो अट्ठावन प्रकृति बंधयोग्य बताई है वे प्रथम भागमें समझनी चाहिये। अपूर्वकरणमें सर्व उत्तर भाग सात माने गये है उनमेंसे प्रथममें आगेवाले पाच भागोंमें छप्पन प्रकृति ही बंधयोग्य रह जाती है। इसके आगे आठवें गुणस्थान के अंतिम सातवें भागमें षड्विंशति अर्थात् २६ प्रकृति बंधके योग्य मानी जाती है। इसका कारण बताते है। वह इस प्रकार कि आठवें गुणस्थानके प्रथम अंतरभागमें दो प्रकृति बंधसे व्युच्छिन्न होती है। उनमें एक निद्रा और एक प्रचला ये वे दो प्रकृति है। ये दो प्रकृति फिर आगे दूसरे भागसे लेकर बंधयोग्य नहीं रहती है। ये दोनो घट जानेपर दूसरेसे छट्ठे भाग पर्यंत छप्पन प्रकृति बंधयोग्य रहजाती हैं। फिर छट्ठे भागके अंतमें तीस प्रकृतिकी बंधविच्छित्ति हो जाती है इसलिये

॥६०८॥

सातवें भागमें छब्बीस वधयोग्य रहजाती हैं। फिर सातवें भागमें और भी चार प्रकृतियोंका बधच्छेद होता है इसलिये नौवें गुणस्थानके आरभमे वाईस प्रकृति ही वधयोग्य मानी गई है। आठवें गुणस्थानके सर्व भागोंम मिलकर छत्तीस प्रकृति वधच्छिन्न हैं उनके नाम गोमटसारमें इस प्रकार हैं।—

मरणूणह्मि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य। छट्ठे भागे तित्थ णिमिण सग्गमणपचिंदी ॥
तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवय। चरमे हस्स च रदी भय जुगुन्छा य बधवोच्छिण्णा ॥
मरणोने निवृत्तिप्रथमे निद्रा तथैव प्रचला च। षष्ठे भागे तीर्थं निर्माण सद्गमनपचेंद्रियम् ॥
तेजोद्विकाहारद्विसमचतुरस्रसुरवर्णागुरुकचतुष्कत्रसनवम्। चरमे हास्य च रति भय जुगुप्सा च बधव्युच्छिन्ना ॥

अर्थ—निवृत्ति अर्थात् आठवें अपूर्वकरणके मरणअवस्थारहित प्रथमभागमें निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। और छट्ठे भागके अतसमयमें तीर्थकर प्रकृति निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पचेंद्रीजाति, तैजस १ कार्माण २ ये दो, आहारकशरीर १, आहारक आगोपाग २, समचतुरस्रसस्थान, देवगति १ देवगत्यानुपूर्वी २ वैक्रियिकशरीर ३ वैक्रियिक आगोपाग ४ ये चार, वर्णादि चार, अगुरुलघु १ उपघात २ परघात ३ उच्छ्वास ४ ये चार और त्रसादि नौ, इन तीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती हे। और अतके सातवें भागमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा ये चार प्रकृतिया वधसे विछुडती हैं ॥

इस प्रकार नौवें गुणस्थानके आरभमें जो वधयोग्य प्रकृति वाईस रही उनमेंसे फिर आगे नौवेंके दूसरे भागमें एक और भी घट जाती है इसलिये इक्कीस प्रकृति दूसरे भागमें रह जाती है। तीसरे भागमें वाईसमेंसे दो घट कर बीस प्रकृति वधयोग्य रहजाती है। चौथे भागमें वाईसमेंसे तीन घट कर उन्नीस प्रकृति वधयोग्य रहजाती है। फिर पाचवें भागमें वाईसमेंसे चार प्रकृति घट जाती हैं इसलिये यहा वधयोग्य अठारह रह जाती हैं। नौवें गुणस्थानमें सर्व भाग पाच है और वे एक एक कषायके घटनेसे अधिक विशुद्धिको लिये हुए हैं इसलिये इन पाच भागोंको स्वतत्र सयमपचक भी कहा है। वाईस प्रकृतियोंमेंसे यहा क्रमसे चार प्रकृति घटी है वे इस प्रकार हैं।— प्रथम पुरुषवेद और फिर सज्वलन क्रोध मान माया। ४४८।४५०।

सूक्ष्म सप्तदशैकस्य शान्तक्षीणाख्ययोगिनाम् । सातस्य कर्मणो बंधो नियोगो बंधवर्जितः ॥ ४५१ ॥

	१६		२५
	११७		१०१
तीर्थकराहारकद्वयहीना मिथ्यादृष्टौ—	३	शासने—	१९
	३१		४७

सूक्ष्मकषाय दशवें गुणस्थानवाला जीव सत्रह प्रकृतियोंको बांधता है। नौवें गुणस्थानके अंतमें संज्वलन लोभ कषायकी बंधव्युच्छित्ति होजाती है इसलिये दशवें गुणस्थानमें वह बंध होनेसे रुकजाता है। नौवेंके अंतमें १८ प्रकृति बंधरूप बताई हैं। उनमेंसे एक लोभ प्रकृति घट जानेसे यहां सत्रह प्रकृति बंधरूप रही हैं। आगे उपशांतकषाय ग्यारहवेंके क्षीणकषाय बारहवेंके और सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थानकें एक सातावेदनीय कर्मका ही बंध रह जाता है। दशवें गुणस्थानके अंतमें पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, चार दर्शनावरण यश कीर्ति, उच्चगोत्र ये सोलह प्रकृति बंधसे विच्छिन्न होती हैं। इसलिये ग्यारहवें गुणस्थानमें इन सोलहका बंध होना रुकजाता है। केवल एक प्रकृति सातावेदनीय बंधमें शेष रह जाती है। आगे चौदहवां अयोग गुणस्थान बंधरहित है। क्योंकि अयोगकेवलीके सातावेदनीयके भी बंधका अभाव हो जाता है॥

अब यंत्रोंद्वारा चार चार कोष्ठक करके यह बताते हैं कि प्रत्येक गुणस्थानमें बंधव्युच्छिन्न प्रकृति हैं तो कितनी हैं, बंधयोग्य हैं तो कितनी हैं, बंधके अयोग्य हैं तो अभेदसे कितनी हैं, और एक सौ अडतालीसमेंसे कम कितनी हुईं?

	बंधव्युच्छिन्न	१६		२५
	तीर्थंकर तथा आहारकद्वयको छोडकर बंधयोग्य	११७		१०१
मिथ्यादृष्टिमें—	बंधके अयोग्य	३	सासादनमें—	१९
	एकसौ अडतालीसमें घटी कितनी?	३१		४७

मर्त्यदेवायुषी विना मिश्रे– ० / ७४ / ४६ / ७४   तीर्थकरमर्त्यदेवायुर्भिः सहासयते– १० / ७७ / ४३ / ७१

देशे– ४ / ६७ / ५३ / ८१   प्रमत्ते– ६ / ६३ / ५७ / ८५

मिश्रमें (मनुष्यायु देवायुके न रहनेसे)– ० / ७४ / ४६ / ७४

असयतसम्यग्दृष्टिमें (तीर्थकरत्व और मनुष्यायु देवायुके बढ जानेसे)– १० / ७७ / ४३ / ७१

देशव्रत पाचवें गुणस्थानमें– ४ / ६७ / ५३ / ८१   प्रमत्त छट्ठे गुणस्थानमें– ६ / ६३ / ५७ / ८५

आहारकद्विकेन महाप्रमत्ते—

१
५९
६१
८९

अपूर्वे सप्तसु भागेषु—

२	०	०	०	०	३०	४
५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
९०	९२	९२	९२	९२	९२	११२

अप्रमत्त सातवेंमें (आहारकद्वयके बढ जानेसे)—

१
५९
६१
८९

अपूर्वकरणके-सात भागोंमें—

२	०	०	०	०	३०	४
५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
९०	९२	९२	९२	९२	९२	११२

अनिवृत्तौ पंचसु भागेषु					
	१	१	१	१	१
	२२	२१	२०	१९	१८
	९८	९९	१००	१०१	१०२
	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

सूक्ष्मे–		शांते–	
	१६		०
	१७		१
	१०३		११९
	१३१		१४७

अनिवृत्तिकरण पाच भागोंमे–					
	१	१	१	१	१
	२२	२१	२०	१९	१८
	९८	९९	१००	१०१	१०२
	१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

सूक्ष्मकपायमें–		उपशात कपायमें–	
	१६		०
	१७		१
	१०३		११९
	१३१		१४७

	०		१		०
	१		१		०
क्षीणे-	११९	सयोगे-	११९	नियोगे-	१२०
	१४७		१४७		१४८

प्रकृतीनामतो योज्यं स्वाम्य गतिचतुष्टये । सामान्येन पटीयोभि पर्यालोच्य यथागमम् ॥ ४५२ ॥

तीर्थकृच्छ्वभ्रदेवायुस्त्रय रीतित्रये स्मृतम् । पराः प्रकृतयः सति सर्वा रीतिचतुष्टये ॥ ४५३ ॥

	०		१		०
	१		१		०
क्षीण कपायमे-	११९	सयोग केवलीमें-	११९	अयोग केवलीमें-	१२०
	१४७		१२७		१४८

इसके आगे चारो गतियोंमें प्रकृतियोंके स्वामी विद्वानोंको सक्षेपमे आगमानुसार देखकर जोड लेने चाहिये ॥ ४५२ ॥

अथ सत्त्वासत्त्व तथा उपशम प्रकरण ।

अव गतियोंमे जो प्रकृतियोंकी सत्ताका नियम है उसे दिखाते है ।–

तीर्थकरत्व प्रकृति और नरकायु, देवायु-ये तीन प्रकृति तीन तीन गतियोंमें ही रहती है । शेप सर्व प्रकृति चारो गतियोंम रहती है । ४५३ ।

तीन प्रकृति कौन कौनसी एक एक गतिमे नहीं होतीं सो आगे वताते हैं । —

॥६१२

तीर्थकृत्व न तिर्यक्षु श्वभ्रायुस्त्रिदशेषु नो। नारकेषु न देवायुः सन्त्यन्याः सर्वरीतिषु ॥ ४५४ ॥
चतुष्टय कषायाणामादिम दर्शनत्रयम्। शांता निर्वृतमारभ्य यावत्मप्तानिवृत्तिकम् ॥ ४५५ ॥
शातः षढ. स्त्री नोकषायषट्कं क्रमेण पुवेद । कोपाद्येषु द्वौ द्वावेकैकोऽतोऽथ सज्वाल ॥ ४५६ ॥

उक्तं च—
पार्यते नादयो दातु यत्तत् शांत निगद्यते। सक्रमोदययोर्यत्र तन्निभत्त मनीषिभि ॥ ४५७ ॥

तीर्थकरत्व प्रकृति तिर्यंच गतिमे नहीं रहती। नरकायु देवगतिमे नहीं रहती। और देवायु नरकगतिमे नहीं रहती। अन्य सर्व प्रकृति सर्व गतियोंमे रहती है। इस प्रकार गतियोमे प्रकृतियोंका सत्व असत्व समझना चाहिये। ४५४।

अब गुणस्थानोंमे कहा कहापर कौन कौनसी प्रकृति उपशमको प्राप्त होजाती है इस वातको आगे दिखाते है।—

आदिके चार कपाय अर्थात् अनतानुवधी क्रोध मान माया लोभ, और तीनो दर्शन अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व नामकी तीन दर्शनमोह प्रकृति—ये सात कर्म, निर्वृत चौथे गुणस्थानसे लेकर नौवे अनिवृत्ति करण पर्यंत शात अर्थात् उपशमको प्राप्त होकर रहते है। और फिर अनिवृत्ति करण नौवें गुणस्थानमे क्रमसे नपुसक वेद उपशमको प्राप्त हो जाता है। इसके वाद पुरुषवेद भी उपशान्त हो जाता है। फिर आगे अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण ऐसे दो दो जातिके क्रोधादिक भी क्रमसे उपशमको प्राप्त होते है। इसके आगे फिर सज्वलन क्रोध मान एक एक कर्म भी उपशात होते है। यह सर्व नौवे गुणस्थानमें उपशमका प्रकार है। फिर आगे दशवे गुणस्थानमे एक माया सज्वलन उपशात हो जाता है। और फिर ग्यारहवे गुणस्थानमें सज्वलन सूक्ष्म लोभ भी उपशात हो जाता है। भावार्थ, ग्यारहवेंमें मोहकर्मकी सर्व २८ प्रकृति उपशात होकर रहती है। ४५५। ४५६।

उपशम किसको कहते है सो 'उक्तच' श्लोकसे आगे दिखाते है।—

जो फल देनेको समर्थ न हो सके उसको उस समयमें **उपशांत** कहते है। और जो सक्रमको भी प्राप्त न हो

शक्यते संक्रमे पाके यदुत्कर्षापकर्षयोः । चतुर्षु कर्म नो दातु शक्यते तन्निकांचितम् ॥ ४५८

अनिवृत्तौ ७ । १ । १ । ६ । १ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । सूक्ष्मे १ । शांते १ । पिंडिताः सप्तभिः सह २८ ।

ताः समुदिताः प्राह—

शांताः क्रमेण सप्ताष्ट नव पंचदश क्रमात् । षोडशाष्टादश ज्ञेया विंशतिर्द्व्युत्तरा च सा ॥ ४५९ ॥

सके उसे निधत्त कहते हैं । ४५७ ।

इसी प्रकार जो संक्रममें भी दिया न जा सके, उदयमें भी लगाया न जा सके, और उत्कर्ष तथा अपकर्षमें भी जोडा न जा सके उसे निकांचित कहते हैं ।

भावार्थ—उपशमके प्रकरणवश निधत्त और निकाचित इन दो अवस्थाओंका भी यहां वर्णन 'उक्तंच' वचनसे कर दिया है । निधत्त भी एक प्रकारका उपशम ही है और निकांचित भी एक विशेष प्रकारका उपशम ही है । क्योंकि उपशमका सामान्य लक्षण—कर्मका उदयमें प्राप्त न होना—ऐसा है वह निधत्त तथा निकाचितमें भी पाया जाता है । किंतु उपशमकी प्रकृतिका संक्रम होना निषिद्ध नहीं है वह निधत्तमें निषिद्ध कर दिया है । इसी प्रकार निकांचितमें संक्रम उत्कर्ष अपकर्ष इन तीनोंका भी उदयके निषेधके साथ निषेध कर दिया है । इतना ही उपशमसे निधत्तमें तथा निकाचितमें विशेष है । ४५८ ।

इस प्रकार जो ऊपर ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंतकी उपशांत प्रकृति बताई है उनका यंत्र नीचे देते हैं । —

अनिवृत्तिकरणमें— ७ । १ । १ । ६ । १ । २ । २ । २ । २ । १ । १ । सूक्ष्ममें— १ । उपशांत ग्यारहवेंमें— १ । सबको जोड लेनेसे ऊपरकी सात प्रकृतियोंके साथ सर्व २८ प्रकृति हो जाती है ।

इसी बातको मूलकार आगे दिखाते हैं । —

नौवें गुणस्थानमें प्रथम तो सात प्रकृति उपशांत रहती है, फिर क्रमसे आठ, नौ, पंद्रह, सोलह, अठारह, वीस, और दो अधिक वीस अर्थात् बाईस, फिर चार अधिक वीस अर्थात् चौवीस, फिर पाच अधिक वीस अर्थात् पचीस, फिर छह अधिक

चतुर्भिः पंचभिः षड्भिः सहिता साऽनिवृत्तिके । सप्तभिः सहिता सूक्ष्मे शांते साष्टभिरन्विता ॥ ४६० ॥

७ । ८ । ९ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २५ । २६ । सूक्ष्मे २७ । शांते २८ ।

वीस अर्थात् छव्वीस प्रकृति उपशात होकर रहती हैं । आगे सूक्ष्मलोभ दशवें गुणस्थानमें सात अधिक वीस अर्थात् सत्ताईस प्रकृति उपशात हो जाती है । फिर शांत अर्थात् उपशातकषाय ग्यारहवें गुणस्थानमें आठ अधिक वीस अर्थात् अट्ठाईस प्रकृति उपशात होकर रहती है । यह मोहनीयके उपशमका क्रम है । ४५९ । ४६० ।

७ । ८ । ९ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २५ । २६ । सूक्ष्ममें– २७ । उपशातमें–२८ ।

उपशमादि सर्व दश अवस्थाए कर्मोंकी कही है । उनको ग्रथकार भी कह रहे है किंतु उपशम निधत्त निकाचित आदिका स्वरूप गोमटसारमें कैसा बताया है उसे अत्र यहा देते हैं । —

बंधुक्कट्टणकरणं संकममोकट्टुदीरणा सत्तं । उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी ॥ ४३७ ॥

बंधोत्कर्षणकरणं संक्रममपकर्षणोदीरणा सत्त्वम् । उदयोपशान्तनिधत्तय' निकाचना भवति प्रतिप्रकृति ॥ ४३७ ॥

अर्थ—बंध १ उत्कर्षण २ संक्रमण ३ अपकर्षण ४ उदीरणा ५ सत्त्व ६ उदय ७ उपशान्त ८ निधत्ति ९ निकाचना १० ये दश करण (अवस्था) हरएक प्रकृतिमें होते है ॥ ४३७ ॥

आगे इन करणोंका स्वरूप तीन गाथाओंसे कहते है,–

कम्माण संबंधो बंधो उक्कट्टण हवे वड्ढी । संकमणमणत्थगदी हाणी ओकट्टण णाम । ४३८ ।

कर्मणां संबन्धो बन्ध उत्कर्षणं वृद्धिर्भवेत् । संक्रमणमन्यत्र गतिः हानिरपकर्षणं नाम ॥ ४३८ ॥

अर्थ—कर्मोंका संबंध होना अर्थात् मिथ्यात्वादि परिणामोंसे जो पुद्गलद्रव्यका ज्ञानावरणादिरूप होकर परिणमन करनेसे ज्ञानादिको आवरण करना वह बंध है जो कर्मोंकी स्थिति तथा अनुभागका बढना वह उत्कर्षण है । जो बंधरूप प्रकृतिका दूसरी प्रकृतिरूप परिणमन होजाना वह संक्रमण है । जो स्थिति तथा अनुभागका कम होजाना वह अपकर्षण है ।४३८।

अण्णत्थ ठियस्सुदये संथुहणमुदीरणा हु अत्थित्त । सत्त सकालपत्तं उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥ ४३९ ॥
अन्यत्र स्थितस्योदये संस्थापनमुदीरणा हि अस्तित्वम् । सत्त्वं स्वकालप्राप्तमुदयो भवतीति निर्दिष्ट ॥ ४३९ ॥

अर्थ—उदयकालके बाहिर स्थित अर्थात् जिसके उदयका अभी समय नहीं आया ऐसा जो कर्मद्रव्य उसको अपकर्षणके बलसे उदयावली कालमें प्राप्त करना (लाना) उसको उदीरणा कहते हैं। जो पुद्गलका कर्मरूप रहना वह सत्त्व है। और जो कर्मका अपनी स्थितिको प्राप्त होना अर्थात् फल देनेका समय प्राप्त होजाना वह उदय है। ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ४३९ ॥

उदये संकममुदये चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं । उवसंतं च णिधत्तिं णिकाचिदं होदि जं कम्मं ॥ ४४० ॥
उदये संक्रमोदययो चतुर्ष्वपि दातुं क्रमेण नो शक्यम् । उपशान्तं च निधत्ति निकाचितं भवति यत् कर्म ॥ ४४० ॥

अर्थ- जो कर्म उदयावलीमें प्राप्त न किया जाय अर्थात् उदीरणा अवस्थाको प्राप्त न हो सके वह उपशान्त करण है। जो कर्म उदयावलीमें भी प्राप्त न होसके और संक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त न होसके उसे निधत्ति करण कहते हैं। तथा जिस कर्मकी उदीरणा संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारोंही अवस्थाएं न होसकें उसे निकाचित करण (अवस्थावाला) कहते हैं ॥ ४४० ॥

इस प्रकार दश करणोंका स्वरूप कहकर प्रकृतियोंमें तथा गुणस्थानोंमें करणोंके संभव होनेका प्रकार दो गाथासूत्रोंमें दिखाते हैं —

संकमणाकरणूणा णवकरणा होंति सव्वआऊणं । सेसाणं दसकरणा अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा ॥ ४४१ ॥
संक्रमणकरणोनानि नवकरणानि भवति सर्वायुषाम् । शेषाणां दशकरणान्यपूर्वकरण इति दशकरणानि ॥ ४४१ ॥

अर्थ- नरकादि चारों आयुकर्मोंके संक्रमणके विना ९ करण होते हैं। और शेष बचीं सब प्रकृतियोंके १० करण होते हैं तथा मिथ्यादृष्टिसे लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानपर्यंत ये १० करण होते हैं ॥ ४४१ ॥

आदिमसत्तेव तदो सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा । छच्च सजोगित्ति तदो सत्तं उदयं अजोगित्ति ॥ ४४२ ॥

आदिमसप्तैव तत सूक्ष्मकषाय इति सक्रमेण विना । षट् च सयोगीति तत सत्त्वमुदय अयोगीति ॥ ४४२ ॥

अर्थ—उस अपूर्वकरणगुणस्थानके ऊपर १० वें सूक्ष्मकषाय गुणस्थानपर्यंत आदिके ७ ही करण होते हैं। उससे आगे, सयोगकेवली तक सक्रमणकरणके विना ६ ही करण होते हैं। उसके वाद अयोगकेवलीके सत्व और उदय—ये दो ही करण पाये जाते है ॥ ४४२ ॥

अब ११ वें उपशातकषायमें कुछ विशेषता कहते है —

णवरि विसेसं जाणे सकममवि होदि सतमोहम्हि । मिच्छस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि सकमणं ॥ ४४३ ॥

नवरि विशेष जानीहि सक्रममपि भवति शातमोहे । मिथ्यस्य च मिश्रस्य च शेषाणा नास्ति सक्रमणम् ॥ ४४३ ॥

अर्थ—विशेष बात यह है कि उपशांतकषाय गुणस्थानमें मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीयका सक्रमणकरण भी होता है अर्थात् इन दोनोंके कर्मपरमाणू सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणम जाते हैं ॥ तथा शेष प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता, ६ ही करण होते है ॥ ४४३ ॥

वधुकट्टणकरणं सगसगवधोत्ति होदि णियमेण । सकमणं करण पुण सगसगजादीण वधोत्ति ॥ ४४४ ॥

बन्धोत्कर्षणकरण स्वकस्वकवन्ध इति भवति नियमेन । सक्रमण करण पुन स्वकस्वकजातीना वन्ध इति ॥ ४४४ ॥

अर्थ—वधकरण और उत्कर्पणकरण ये दोनों, प्रकृतिकी अपनी २ वन्धव्युच्छित्तिके ठिकाने होते है । और प्रकृतियोंकी अपनी २ जातिकी जहा वधसे व्युच्छित्ति है वहापर सक्रमण करण होता है ॥ ४४४ ॥

ओकट्टणकरण पुण अजोगिसत्ताण जोगिचरमोत्ति । खीण सुहुमताण खयदेस सावलीय समयोत्ति ॥ ४४५ ॥

अपकर्षणकरण पुनरयोगिसत्त्वाना योगिचरम इति । क्षीण सूक्ष्मान्ताना क्षयदेश सावलिकसमय इति ॥ ४४५ ॥

अर्थ—अयोगीकी ८५ सत्वप्रकृतियोंका सयोगीके अतसमयतक अपकर्षण करण होता हे । तथा क्षीणकषाय

७८

गुणस्थानमें सत्वसे व्युच्छिन्न हुई १६ तथा सूक्ष्मसापरायमें सत्वसे व्युच्छित्तिरूप हुआ जो सूक्ष्मलोभ–इसप्रकार १७ प्रकृतियोंका क्षयदेशपर्यंत अपकर्षण करण जानना। उस क्षयदेशका काल कहांपर एक समय अधिक आवलिमात्र है। क्योंकि ये १७ प्रकृतियाँ स्वमुखोदयी है। साराश यह है कि प्रकृतिया दो प्रकारकी है—एक स्वमुखोदयी दूसरी परमुखोदयी, उनमेंसे जो अपने ही रूप उदयफल देकर नाश हो जाय वे स्वमुखोदयी हैं, उनका काल एकसमय अधिक आवलि प्रमाण है वही क्षय-देश (क्षय होनेका ठिकाना) है। जो प्रकृति अन्यप्रकृतिरूप उदयफल देकर विनष्ट होजाती है वे **परमुखोदयी** हैं, उनके अंतकांडककी अतफालि, क्षयदेश है ऐसा जानना ॥ ४४५ ॥

उवसंत्तोति सुराऊ मिच्छत्तिय खवगसोलसाण च। खयदेसोत्तिय खवगे अट्ठकसायादि बीसाण ॥४४७॥

उपशान्त इति सुरायु मिथ्यत्रयं क्षपकषोडशाना च। क्षयदेश इति च क्षपके अष्टकषायादिविंशानाम् ॥ ४४६ ॥

अर्थ—देवायुका अपकर्षणकरण उपशातकषाय पर्यंत है। मिथ्यात्वादि तीन और ' णिरयतिरिक्खे , इत्यादि सूत्रसे कथित अनिवृत्तिकरणमें क्षय हुई १६ प्रकृतिया इनके क्षयदेश पर्यंत अर्थात् अन्तकाडकके अतफालिपर्यंत अपकर्षण करण है, और क्षपक अवस्थामें अनिवृत्तिकरणमें क्षय हुई जो आठकषायको लेकर २० प्रकृतिया है उनकाभी अपने २ क्षयदेश पर्यंत अपकर्षण करण है। जिस स्थानमें क्षय हुआ हो उसको **क्षयदेश** कहते हैं ॥ ४४६ ॥

मिच्छतियसोलसाण उवसमसेढिम्हि सतमोहोत्ति। अट्ठकसायादीणं उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे ॥ ४४७ ॥

मिथ्यत्रयषोडशानामुपशमश्रेण्या शातमोह इति। अष्टकषायादीनामुपशमिकस्थानक इति भवेत् ॥ ४४७ ॥

अर्थ—उपशमश्रेणीमें उपशातकषायगुणस्थान पर्यंत मिथ्यात्वादि तीन दर्शनमोहनीय और नरक द्विकादिक १६ इन प्रकृतियोंका अपकर्षण करण है। तथा आठ कषायादिकोंका अपने २ उपशम करनेके ठिकाने तक अपकर्षण करण है ॥ ४४७ ॥

पढमकसायाण च विसंजोजक वोत्ति अयददेसोत्ति। णिरयतिरियाउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा ॥ ४४८ ॥

प्रथमकषायाणा च विसयोजक वा इति अयतदेश इति। निरयतिर्यगायुषोरुदीरणसत्त्वोदया सिद्धा ॥ ४४८ ॥

मिथ्यात्वमथ सम्यक्त्व मिश्रमाद्याः क्रुदादयः । चतुर्ष्वसंयताद्येषु क्षीयते सप्त कुत्रचित् ॥ ४६१ ॥
स्त्यानगृद्धित्रय तिर्यग्द्वितय नारकद्वयम् । आतपस्थावरद्वन्द्वमाद्य जातिचतुष्टयम् ॥ ४६२ ॥
सूक्ष्मसाधारणोद्योताः पोडशैता निवृत्तिके । सख्यातव्यतमे भागे यांति प्रकृतयः क्षयम् ॥ ४६३ ॥

अर्थ—अनतानुवधी चारकपायके असयतादि चार गुणस्थानमें यथासभव जहा विसयोजन (अन्यरूप परिणमन) होवे वहातक ही अपकर्पणकरण है। तथा नरकायुके असयतगुणस्थानतक और तिर्यचायुके देशसयतगुणस्थान तक उदीरणा, सत्व उदयकरण ये तीन करण प्रसिद्ध ही हैं, क्योंकि पूर्व इनका कथन होचुका है ॥ ४४८ ॥

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य उदीरणा उवसमाहिमुहियस्स । समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स ॥ ४४९ ॥
मिथ्यस्य च मिथ्येति च उदीरणा उपशमाभिमुखस्य । समयाधिकावलीति च सूक्ष्मे सूक्ष्मस्य लोभस्य ॥ ४४९ ॥

अर्थ—उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके मिथ्यात्वगुणस्थानके अतमें एक समय अधिक आवलि कालतक मिथ्यात्वप्रकृतिका उदीरणाकरण होता है, उतने ही कालतक उसका उदय है। और सूक्ष्मलोभका सूक्ष्मसापरायगुणस्थानमे ही उदीरणा करण है, इससे आगे उदय नहीं है ॥ ४४९ ॥

इसप्रकार उपशमका प्रकरण समाप्त हुआ।

अब क्षपकका प्रकरण सुरू करते हैं।

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व ये तीन प्रकृति तथा आदिके अनतानुवधी क्रोधादि चार कपाय ये सर्व सात प्रकृति हुई। ये सात प्रकृति असयत चौथे गुणस्थानसे लेकर चार गुणस्थानोंमेंसे अर्थात् सातवें पर्यंत कहींपर भी एक गुणस्थानमें क्षयको प्राप्त होती है। ४६१।

स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रा प्रकृति, तिर्यचगति तिर्यचगत्यानुपूर्वी ये दो, आतप स्थावर ये दो, पचेंद्रियको छोडकर शेप एकेंद्रियादि चार जाति प्रकृति, सूक्ष्म, साधारण, उद्योत—ये सर्व सोलह प्रकृति हुई। ये सोलह निवृत्तिक अर्थात्

तिर्यग्द्वयादयः सद्भिस्तिर्यग्गतिगता मताः। श्वभ्रद्वयादयो जैनैः श्वभ्रीतिगताः पुनः ॥ ४६४ ॥
अष्टौ कोपादयो मध्याः क्षिप्यंतेऽतो नपुंसकम्। स्त्रीवेदः क्रमतः षट्कं ततो हास्यादिगोचरम् ॥ ४६५ ॥
पौंस्नं पौंस्ने विनिक्षिप्य क्रोधः क्रोधे परे परः। माया ततोऽथ मायायां सूक्ष्मे लोभो निकृत्यते ॥ ४६६ ॥
८ । १ । १ । ६ । २ । १ । १ । १ । १ ।
द्वे निद्राप्रचले क्षीणे प्रथमेऽन्त्ये चतुर्दश। क्षणे ज्ञानान्तरायस्था दश दृष्टिचतुष्टयम्। २ । १४ ॥ ४६७ ॥

आठवें गुणस्थानमें संख्यात भागोंमेंसे किसी भागमें क्षयको प्राप्त होती है। ४६३।

तिर्यगति द्वय आदि तिर्यंच गतिके साथ होनेवाली सर्व प्रकृति यहा तिर्यंच गतिके साथमें समझनी चाहिये। इसी प्रकार नरकगतिद्वय आदि नरकगतिके साथ समझनी चाहिये। ४६४।

इसके आगे क्रोधादिक आठ मध्यम कषायोंका क्षय होता है। यह नौवें गुणस्थानका कार्य है। आगे भी नौवें गुणस्थानका ही क्षपण बताते हैं। कषायाष्टकके पीछे नपुंसक वेदका क्षय होता है। फिर स्त्री वेदका क्षय होता है। फिर हास्यादि छह नोकषायोंका क्षय होता है। फिर पुरुषवेदका बादरसे सूक्ष्म अवस्थामें जाकर क्षय होता है। फिर शेष रहे संज्वलन चार कषायोंका क्रम इस प्रकार है कि, स्थूल क्रोधका सूक्ष्म क्रोधमें परिणमन होता है फिर सूक्ष्म अवस्थाका भी नाश हो जाता है। इसी प्रकार पर—दूसरा अर्थात् मान कषाय वह भी स्थूलसे सूक्ष्म मान अवस्थामें कृश होकर परिणत होता है, फिर सूक्ष्म मानका नाश होता है। फिर स्थूल मायाकषायका सूक्ष्म मायामें परिवर्तन होकर वह क्षयको प्राप्त होती है। फिर नौवें गुणस्थानके अंतमें स्थूल लोभका सूक्ष्म लोभ रह जाता है और दशवें गुणस्थानके आगे निश्शेष लोभका नाश हो जाता है। ४६५-४६६।

यत्र—८ । १ । १ । ६ । २ । १ । १ । १ । १ ।

आगे क्षीणकषायमें क्षय होनेवाली प्रकृतियोंको दिखाते हैं। —

निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृति क्षीणकषायके उपान्त्य समयमें क्षयको प्राप्त होती हैं। फिर अन्त्य समयमें ज्ञानावरण अंत-

जीवेतरविपाकानां द्वासप्ततिमयोगक । उपांतिमे क्षणे हंति चरमे तु त्रयोदश ॥ ४६८ ॥
स्वरद्वयमनादेयमयशोऽपूर्णदुर्भगौ । नभोगतिद्वय वेद्यमेकमुच्छ्वासनीचके ॥ ४६९ ॥

रायकी दश प्रकृति और दर्शनावरणकी चक्षुर्दर्शनावरणदि चार — ऐसे चौदह प्रकृति क्षयको प्राप्त हो जाती है। ४६७।

आगे चल कर पचासी प्रकृतियोंका क्षय चौदहवें गुणस्थानमें होता है उसका क्रम दिखाते है।—

जीवपर जिनका विपाक हो ऐसी जीवविपाकी। जीवसे इतर अर्थात् उलटा कौन ? पुद्गल। इस पुद्गलपर ही जिनका फल होता है वे इतरविपाकी अथवा पुद्गलविपाकी प्रकृति कहाती है। इनके शिवाय यहापर क्षेत्रविपाकी प्रकृतियोंको भी इतरविपाकी ही प्रकृति बताया है, क्योंकि क्षेत्र भी जीवसे भिन्न ही है। इस प्रकार जीवविपाकी, क्षेत्रविपाकी तथा पुद्गलविपाकी मिलाकर ७२ प्रकृतियोंका क्षय अयोगकेवलीके अत्य समयसे ठीक पूर्व समयमे होता है। और अतिम समयमे तेरह प्रकृतियोंका क्षय होता है।

भावार्थ, सर्व एकसौ अडतालीम जो प्रकृतियोंके भेद है उनको सामान्यत चार विभागोंमें फलकी अपेक्षासे विभक्त किया है। कुछ जीवविपाकी है, कुछ भवविपाकी हैं, कुछ क्षेत्रविपाकी है, और कुछ पुद्गलविपाकी हैं। आयु चारोंको भवविपाकी कहा है। भव अर्थात् नरकादि पर्यायरूप वनाये रखनेमें आयु कारण है इसलिये आयु कर्म भवविपाकी है। आनुपूर्वी चारो क्षेत्रविपाकी है। क्षेत्र अर्थात् विग्रहगतिके क्षेत्रमे इन आनुपूर्वियोंका पूर्वाकार जीवको रखनेरूप फल अथवा विपाक होता है इसलिये इन चारो आनुपूर्वियोंको क्षेत्रविपाकी कहते है। घाती सर्व प्रकृति और कुछ नामकर्म आदिकी प्रकृतियोंको मिलाकर ७८ प्रकृतियोंको जीवविपाकी कहा है। जीवपर सीधा जिनका उदय हो वे जीवविपाकी है। इनके सिवाय जो बची प्रकृति वे सर्व पुद्गलविपाकी कहाती हैं। शरीरादि कर्म पुद्गलविपाकी हैं। ४६८।

अब आगे क्रमसे ऊपरकी ७२ और तेरह प्रकृतियोंको गिनाते है।—

सुस्वर दु स्वर दो, अनादेय, अयश कीर्ति, अपर्याप्त, दुर्भग, विहायोगति प्रशस्त अप्रशस्त दोनो, दोनोंमेंसे एक कोई भी

जीवपाकाः सुरेत्यामा नाम्नोऽन्या पुद्गलोदयाः । एकोनषष्टिसंख्याना दक्षैः प्रकृतयः स्मृताः । १२।५९ ॥४७०॥
कायबंधनसघाताः प्रत्येक पचकप्रमाः । अगोपांगत्रय षट्कं सस्थानानां शुभद्वयम् ॥ ४७१ ॥
अष्टौ स्पर्शा रसाः पच वर्णाः पच स्थिरद्वयम् । निर्माण गंधयोर्युग्म षट्क सहतिगोवरम् ॥४७२॥
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्वे परघातोपघातके । एकोनषष्टिरेपात्र विज्ञेया पुद्गलोदया ॥ ४७३ ॥
सह देवानुपूर्व्येता मीलिताः क्षेत्रपाकया । ज्ञेया द्विसप्तिः सति सर्वाः प्रकृतयः स्फुटम् ॥ ४७४ ॥
मीलिताः ७२ ।

वेदनीय, उच्छ्वास, नीचगोत्र ये ग्यारह यहापर जीवविपाकी प्रकृति ली गई है । और देवगति भी जीवविपाकी इन्हीके साथ ली है । ये सर्व १२ प्रकृति हुई । और इनके साथ नामकर्ममेंकी दूसरी पुद्गलविपाकी उनसठि प्रकृति समझलेनी चाहिये । वे उनसठि इस प्रकार है ।— शरीर बधन सघात ये प्रत्येक पाच पाच अर्थात् पन्द्रह, तीन अगोपाग, छह सस्थान, शुभ अशुभ दोनो, आठ स्पर्श पाच रस, पाच वर्ण, स्थिर अस्थिर दोनो, निर्माण, दो गध, छह सहनन, प्रत्येक, अगुरुलघु, परघात, उपघात, ये उनसठि (५९) प्रकृति पुद्गलविपाकी यहापर लीजाती है । इनमे एक देवानुपूर्वी क्षेत्रविपाकी प्रकृति और भी मिल जाती है । ये मिलानेपर सर्व ७२ प्रकृति होती हैं । ४६९-४७४ ।

---

१ ' सुरेति ' यह शब्द मूलमें आया है उसका अर्थ सुरगति अथवा देवगति है । यहा और कहीं भी देवगति गिनाई नहीं है किंतु देवगतिके जोडनेसे ही बहत्तरि सख्या पूरी होती है । गोमटसारमे भी और प्रकृतियोंके शिवाय देवगति भी गिनाई है । इसलिये यहा ' सुरेति ' का अर्थ देवगति प्रकृति ही है । मुद्रित मूल पुस्तकमे ' स्युरेति ' ऐसा अशुद्ध पाठ पड गया है । उससे बहत्तरिकी सख्या ही पूरी नहीं होपाती है । इसलिये ऊपर बताया हुआ ही पाठ शुद्ध है । हस्तलिखित मुबई सरस्वती भवनकी प्रतिमें यही पाठ शुद्ध है । ' सुरेत्या अमा ' ऐसा पदच्छेद है ।

२ मूलमें पाठ ' ससति ' ऐसा है वह अशुद्ध है ।

॥६२२॥

वेद्यमेकतरं स्थूलं नरायुर्नृद्वय त्रसम् । यशः पर्याप्तमादेयं उच्चं पचाक्षस्त्वर्मगे ॥ ४७५ ॥
हत्वा तीर्थकृता सार्द्धं तीर्थकारी त्रयोदश । इतरः केवली याति द्वादशैव शिवास्पदम् ॥ ४७६ ॥

उपात्य समयमें एक वेदनीयका नाश हो जाता है। उससे वची हुई दूसरी एक वेदनीय इन अत्य समयमें नाश पानेवाली तेरह प्रकृतियोंमें लीजाती है। इसके शिवाय स्थूल अर्थात् बादर प्रकृति, मनुष्यायु, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये दो, त्रस, यश कीर्ति, पर्याप्त, आदेय, उच्चगोत्र, पचेंद्रिय जाति, सुभग ये सर्व बारह प्रकृति हुई । यदि यह अयोग केवली तीर्थकर्ता अर्थात् तीर्थकर हो तो तीर्थकरत्व प्रकृतिको लेकर ऊपरकी बारहको नष्ट करता है। अर्थात् तीर्थकर केवली, तीर्थकरत्व प्रकृतिको लेकर सर्व तेरह प्रकृतियोंका नाश करके मुक्तस्थानको पहुचता है। और वह केवली यदि तीर्थकर न होकर इतर अर्थात् सामान्य हो तो उसके तीर्थकर प्रकृति नहीं रहती इसलिये वह ऊपर कही हुई १२ प्रकृतियोंका नाश करके शिवस्थानको पहुचता है।

भावार्थ, यहा मनुष्यगत्यानुपूर्वीके शिवाय शेष सभी प्रकृति उदयगत मानी गई। अत्य समयमें उदयगत प्रकृतियोंका विच्छेद होता है। और उपात्य समयमें जो ७२ प्रकृति विच्छिन्न होनेवाली गिनाई हैं उनमें बहुतसी अनुदयगत हैं। अर्थात् उदयगत नहीं हैं, केवल सत्तारूप हैं। दोनो वेदनीयोंमेंसे भी एक वेदनीय प्रकृति बहत्तरिमें गिनाई है और वची हुई दूसरी वेदनीय प्रकृति अंतकी तेरह प्रकृतियोमें गिनाई है। इसका भी कारण यही है कि उपात्य समयमें जो उदयगत वेदनीय प्रकृति रहती है उसका तो नाश आगे चलकर अत्य समयमें होता है और जो दोनोंमेंसे अनुदयगत उपात्य समयमें होती है उस वेदनीयका नाश उसी उपात्य समयमें हो जाता है। केवलीके भी दोनो ही वेदनीय आगे पीछे उदयमें आती रहती है। हा, यह वात अवश्य है कि असातावेदनीयका भी उदय वहापर सातारूप होजाता है। क्योंकि, कोई भी परिस्थिति वहांपर आत्माके प्रतिकूल नहीं रहती । सर्व निमित्त अनुकूल ही रहते हैं। ४७५–४७६ ।

पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंकी सख्या गोमटसारके आधारपर यहा उद्धृत करके कहते है—

देहादी फासता पण्णासा णिमिणतावजुगल च । थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतिय पोग्गलविवाई ॥ ४७ ॥

देहादय स्पर्शाता पचाशत् निर्माणातापयुगल च । स्थिरशुभप्रत्येकद्विकमगुरुत्रय पुद्गलविपाकिन्य ॥ ४७ ॥

अर्थ—पाच शरीरोंसे लेकर स्पर्शनामतक ५० तथा निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, शुभ और प्रत्येकका जोडा अर्थात् स्थिर, अस्थिर वगैर छ तथा अगुरुलघु आदिक तीन ये सब ६२ प्रकृतिया पुद्गलविपाकी है अर्थात् इनका फलरूप उदय पुद्गलमेंही होता है ॥ ४७ ॥

अब भव-क्षेत्र-जीवविपाकी प्रकृतियोंको कहते हैं —

आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ । अट्ठत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा ॥ ४८ ॥

आयूषि भवविपाकीनि क्षेत्रविपाकीनि च आनुपूर्व्याणि । अष्टसप्ततिरवशिष्टा जीवविपाकिन्य मतव्या ॥ ४८ ॥

अर्थ—नरकादिक चार आयु भवविपाकी है अर्थात् मनुष्यादिपर्यायोंमेंही इन प्रकृतियोंका फल होता है । चार आनुपूर्वी प्रकृतिया क्षेत्रविपाकी है क्योंकि परलोकको गमन करते हुए जीवके मार्गमें इनका उदय होता है । और जो बाकी अठत्तरि प्रकृतिया हैं वे सब जीवविपाकी जानना अर्थात् नारक आदि जीवकी पर्यायमेंही इनका उदय (फल) होता है ॥ ४८ ॥

अब उन्हीं अठत्तरि प्रकृतियोंको गिनाते है —

वेदणियगोदघादीणेक्कावण्ण तु णामपयडीणं । सत्तावीसं चेदे अट्ठत्तरि जीवविवाईओ ॥ ४९ ॥

वेदनीयगोत्रघातिनामेकपचाशत् नामप्रकृतीनाम् । सप्तविंशतिश्चैता अष्टसप्तति जीवविपाकिन्य ॥ ४९ ॥

अर्थ—वेदनीयकी २ गोत्रकी २ घातियाकर्मोंकी ४७ इसप्रकार ५१ और सत्ताईस नामकर्मकी इसतरह ५१+२७=७८ प्रकृतिया जीवविपाकी है ॥ ४९ ॥

कर्मक्षयक्रममाह—

आगे नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियोंकी सख्या गोमटसारसे दिखाते हैं,—

तित्थयर उस्सास बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं । जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीस ॥ ५० ॥

तीर्थंकरमुच्छ्वास बादरपर्याप्तसुस्वरादेयम् । यशस्त्रसविहायस्सुभगद्वयं चतुर्गतय पञ्चजातय. सप्तविंशति. ॥ ५० ॥

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्वास, बादर-पर्याप्त-सुस्वर-आदेय-यश कीर्ति-त्रस-विहायोगति सुभग इन आठके जोडा अर्थात् बादर-सूक्ष्म आदिक सोलह, नरकादि चार गति, एकेन्द्रियादि पाच जाति इसप्रकार सत्ताईस नामकर्मकी प्रकृतिया जीवविपाकी जानना ॥५०॥

अब उन्हीं सत्ताईस प्रकृतियोंको क्रमसे दिखाते हैं,—

गदि जादी उस्सास विहायगदि तसतियाण जुगल च । सुभगादिचउज्जुगल तित्थयर चेदि सगवीस ॥ ५१ ॥

गति जाति. उच्छ्वास विहायोगति त्रसत्रयाणा युगलं च । सुभगादिचतुर्युगल तीर्थंकर चेति सप्तविंशति ॥ ५१ ॥

अर्थ—चार गति, पाच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्त इन तीनके जोडा (त्रस स्थावर वगैरः) और सुभग-सुस्वर-आदेय-यश कीर्ति इन चारके जोडा (सुभग दुर्भग आदि) और तीर्थंकर प्रकृति इस प्रकार क्रमसे सत्ताईसकी गिनती कही ॥ ५१ ॥

अब सत्तामें रहनेवाली प्रकृतियोंका क्षय गुणस्थानोंमें कैसे होता है इस बातको आगे टिप्पणकार बताते हैं ।—

प्रत्येक गुणस्थानकी क्षीण प्रकृतियोंको तथा शेष रही सत् प्रकृतियोंको यंत्रों द्वारा बताया है । प्रत्येक यत्रमें सबसे ऊपरका जो आकडा हो वह क्षीण हुई प्रकृतियोंका आकडा समझना । उसके नीचे जो आकडा दिया है उसे उस गुणस्थानमें सत्त्व प्रकृतियोंका आकडा समझना । उसके भी नीचे तीसरा एक आकडा रहेगा उसे असत्त्व प्रकृतिका समझना । इस तीसरे आकडामें जो असत्त्व प्रकृति बताई जायगी उनमें कुछ तो ऐसी है जिनका सुरूसे यहातक क्षय हो चुका हो, और कुछ कहीं कहीं पर ऐसी

श्वभ्रदेवतिर्यगायुर्भिर्विना मिथ्यादृष्टौ— ०/१४५/३ तीर्थकराहारकद्वयहीनाः शासने— ०/१४२/६

भी हैं जिनकी उस गुणस्थानमें सत्ता रहनेकी योग्यता नहीं है किंतु आगे फिर भी सत्ता रह सक्ती है। इनको क्षीण हुई प्रकृति नहीं समझलेना चाहिये। यह सर्व खुलासा नीचेके यंत्रोंको देखनेसे होसकता है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें— ०/१४५/३

यहापर नरकायु देवायु तथा तिर्यंच आयु ये तीन प्रकृति नहीं हैं इसलिये शेष बची १४५ की सत्ता बताई है। इसका कारण यह है कि जो जीव कर्मोंका क्षय करनेमें तत्पर हुआ है उसीमें सत्ताका क्षय होना सभव है। ऐसा वह जीव अंतमें सर्व कर्मोंकी सत्ताका क्षय करके मुक्त हो जाता है। इसलिये यहा मिथ्यात्वमें भी उसी जीवकी अपेक्षा ली गई है जो आगे क्षपक श्रेणी चढेगा। और जो क्षपक श्रेणी चढेगा उसके नरकायु देवायु मनुष्यायु इन तीन आयुओंमेंसे किसीकी सत्ता नही रह सकती है। इसलिये तीन आयुओंकी असत्ता बताई गई है। यहा प्रथम गुणस्थानमें क्षय किसीका भी नहीं है इसलिये प्रथम कोष्टकमें शून्य दिया है। दूसरे वीचके कोष्टकमें १४५ का आकडा है उसका अर्थ १४५ प्रकृतितक सत्तामें समझना। नीचेके तीसरे कोष्टकमें ३ का आकडा है। उसका अर्थ नरकायु आदि तीन प्रकृतियोंकी यहा सत्ता नहीं है। ऐसे ही आगे भी समझना।

सासादनमें— ०/१४२/६

आहारकद्विकेन सह मिश्रे— ० / १४४ / ४ तीर्थकरेण सहाविरते— ७ / १४५ / ३

देशे ७ / १४५ / ३ प्रमत्ते— ७ / १४५ / ३

इस दूसरे गुणस्थानमें नरकायु आदि तीन तो प्रकृति नहीं ही हैं किंतु तीर्थंकर तथा आहारकद्वय ये तीन और भी घट जाती हैं इसलिये १४२ की सत्ता, ६ की असत्ता बताई है। तथा क्षपणस्थानमें शून्य है अर्थात् यहा क्षय किसी प्रकृतिका नहीं है।

मिश्रमें आहारकद्वयके बढ जानेसे— ० / १४४ / ४ अविरत सम्यग्दृष्टिमें तीर्थकरत्व बढ जानेसे— ७ / १४५ / ३

चौथेसे सातवें गुणस्थान पर्यंतके बीचमें किसी भी एक गुणस्थानमें अनंतानुबंधी आदि सात प्रकृतियोंका क्षय होता है। इसलिये चौथेसे सातवें पर्यंत यही ७ का क्षय चारो गुणस्थानोंमें दिखाया है और सत्ता भी चारोंमें १४५ की दिखाई है। क्योंकि जो सातवेंमें ही इन सातोंका क्षय करेगा उसके सातवें गुणस्थान पर्यंत १४५ की सत्ता रह सकती है। यहा भी नरकायु आदि ३ की सत्ताका अभाव है। इसी प्रकार —

देशव्रतमें— ७ / १४५ / ३ प्रमत्तमें ७ / १४५ / ३

अप्रमत्ते–	७ १४५ ३	अपूर्वे–	० १३८ १०

	१६	८	१	१	६	१	१	१	१
अनिवृत्तिनवभागेषु—	१३२	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५

सूक्ष्मे, शांते–	१ १०२ ४६	क्षीणे क्षणद्वये–	१४ ९९ ४९

अप्रमत्तमें–	७ १४५ ३	अपूर्व करणमें–	० १३८ १०

सातवेंमें सात प्रकृतियोंका क्षय अवश्य होजाता है और नरकायु आदि तीन आयु सत्तामें है ही नहीं; इसलिये आठवेंमें सत्ता १३८ प्रकृतिकी और असत्ता १० की है। यहा सत्त्वक्षय किसीका भी नहीं है इसलिये ऊपरके कोष्टकमें शून्य है।

	१६	८	१	१	६	१	१	१	१
अनिवृत्तिके नौ भागोंमें–	१३२	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५

सूक्ष्ममें तथा उपशातमें –	१ १०२ ४६	क्षीणकषायके समयद्वयमें–	२ १०० ४८	१४ ९९ ४९

मूलमें तथा व्याख्यामें सूक्ष्मकषायके तथा क्षीणकषायके यंत्रोंको हमने सुधारा है।

॥६२८॥

	०		७२	१३		०	
सयोगे–	८५	अयोगे समयद्वये–	८५	१३	सिद्धे–	०	
	६३		६३	१३५			१४८

	०		७२	१३		•
सयोगकेवलीमें–	८५	अयोगकेवली दोनों समयोंमें–	८५	१३	सिद्धोंमें–	०
	६३		६३	१३५		१४८

सयोग केवलीकें सत्ताका नवीन क्षय नहीं है इसलिये कोष्टकमें ऊपर शून्य है। सिद्धोंमें सत्ता है ही नहीं इसलिये सत्ताके क्षयस्थानमें भी शून्य है और सत्तास्थानमें भी शून्य है।

सत्त्वक्षय करनेवालोंमे निर्जरा किस क्रमसे होती हे उसे यहा विशेपतासे वताते हैं।—

सातिशय मिथ्यादृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कर्मका विसयोजन करनेवाला, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाला, कपायोंका उपशम करनेवाले ८–९–१० गुणस्थानवर्ती जीव, उपशातकपाय, कपायोंका क्षपण करनेवाले ८–९–१० गुणस्थानवर्ती जीव, क्षीणमोह, सयोगी अयोगी दोनों प्रकारके जिन, इन ग्यारह स्थानोंमें द्रव्यकी अपेक्षा कर्मकी निर्जरा क्रमसे असख्यातगुणी २ अधिक होती है। और उसका काल इससे विपरीत है–क्रमसे उत्तरोत्तर सख्यातगुणा २ हीन है। भावार्थ–सादि अथवा अनादि दोनोंही प्रकारका मिथ्यादृष्टि जब करणलब्धिको प्राप्त कर उसके अध करणपरिणामोंको भी विताकर अपूर्वकरण परिणामोंको ग्रहण करता है, उस समयसे गुणश्रेणिनिर्जराका प्रारम्भ होता है। इस सातिशय मिथ्यादृष्टिके जो कर्मोंकी निर्जरा होती है उससे सम्यग्दृष्टिकी निर्जरा असख्यातगुणी अधिक हे। श्रावक अवस्था प्राप्त होनेपर जो कर्मकी निर्जरा होती है वह सम्यग्दृष्टिकी निर्जरासे असख्यातगुणी अधिक है। इसी प्रकार विरतादि स्थानोंमें भी उत्तरोत्तर क्रमसे असंख्यातगुणी २ कर्मकी निर्जरा होती है। तथा इस निर्जराका काल उत्तरोत्तर सख्यातगुणा २ हीन है। अर्थात् सातिशय मिथ्या दृष्टिकी निर्जरामे जितना काल लगता है, श्रावककी निर्जरामें उससे सख्यातगुणा कम काल लगता है। इसी प्रकार विरतादिमें भी

रत्नत्रयफलं प्राप्ता निर्बाधं कर्मवर्जिताः । निर्विशंति सुखं सिद्धास्त्रिलोकशिखरस्थिताः ॥ ४७८ ॥
अष्टचत्वारिंशतं कर्मभेदानित्थं हत्वा ध्यानतो निर्वृता ये।
स्वस्थानंतामेयसौख्याब्धिमग्नास्ते नः सद्यः सिद्धये सन्तु सिद्धाः ॥ ४७९ ॥

समझना चाहिये। और निर्जरामें असख्यात गुणी अधिकता उत्तरोत्तर बताई है वह दश स्थानोंमें सम्यग्दृष्टिसे लेकर समझनी चाहिये। सम्यग्दृष्टिमें जो वह निर्जरा असंख्यात गुणी बताई है वह सातिशय मिथ्यादृष्टिकी निर्जरासे असख्यात गुणी है ऐसा समझना। इस प्रकार असख्यात गुणित निर्जराके तो सम्यग्दृष्टिसे लेकर दश स्थान हैं किंतु निर्जरा शुरू होनेसे गिने जाय तो सातिशय मिथ्यादृष्टिका भी एक प्रथम स्थान गिन लिया जाता है इसलिये सर्व स्थान ग्यरह हो जाते हैं।'

सर्व कर्मोंका नाश होकर जो सिद्धावस्था प्राप्त होती है उसका आगे विशेष वर्णन करते है। —

रत्नत्रयके फलको जो प्राप्त हो चुके हैं क्योंकि कर्मोंसे सर्वथा छूट चुके है ऐसे वे सिद्ध भगवान् वाधारहित सुखमें प्रवेश करते हैं और त्रैलोक्यके ऊपरी भागमें जाकर विराजमान होते हैं ॥ ४७८ ॥

कर्म सर्व एक सौ अडतालीस हैं। उनका क्रमसे कैसे नाश होता है यत वात ऊपर विशदतासे बतादी है। सर्व कर्मोंका इस प्रकार ध्यानद्वारा नाश करके जो संसारसे निवृत्त होगये है, और इसीलिये जो अपने स्वरूपमें रहने वाले अनत अपार सुखसमुद्रमें मग्न हो चुके हैं ऐसे वे सिद्ध परमात्मा हमको शीघ्र ही सिद्धिकेलिये होवो।

यहापर कर्मोंका नाश बताना उपलक्षण है। कर्मोंके नाशके साथ नोकर्मोंका भी नाश हो जाता है। शरीर इंद्रिय मन सस्कार रागद्वेषादि– ये सर्व नोकर्म कहाते हैं। इन सर्व संसारी अवस्थाओंका कर्म कारण है। कारणका नाश बतादेनेसे कार्यका नाश स्वयमेव सिद्ध होजाता है। इसलिये शरीरादिका तथा रागद्वेषादिका नाश करनेकेलिये जुदा प्रयत्न नहीं करना पडता है।

जब इस प्रकार कार्यकारण भेदसे अनेक प्रकारकी उपाधिका नाश हो जाता है तब आत्मा मूल स्वरूपमें प्रगट होता अथवा आत्माका मूल स्वरूप शेप रह जाता है। उस मूल स्वरूपका तीसरे चरणमें दिग्दर्शन कराया है। ससारी जीव जिस

यस्मात्सर्वं कृत्रिमं नाशि दृष्टं सत्यज्यैक पावनं सिद्धिलाभम् ।
तस्मादन्यत्सद्भिरत्यस्य कार्यं कार्यो यत्नः सर्वदा सिद्धिलब्ध्यै ॥ ४८० ॥

निर्बाध, अखड, अनत, स्वाधीन अथवा स्वोत्थ सुखको न पाकर भटकते हैं और दु खी होते हैं वह सुख विकारके हट जानेसे अपनेमें ही रहा हुवा, अत एव स्वाधीन निर्बाध अविनाशी अपार ऐसा सुख प्रगट हुआ दीखने लगता है । इस सुखको स्वाधीन अपार अविनश्वर समझकर समुद्रकी उपमा ग्रथकारने दी है ।

विकारका नाश होने पर भी मूल स्वरूप शेष रह जाता है ऐसा तात्पर्य है । इसलिये जो बहिरात्मताको ही जीव माननेका मिथ्याज्ञान है उसका भी खडन होता है, और विकारका नाश होनेपर कुछ भी शेष नही रहता है ऐसे मतका भी खडन हो जाता है । कुछ लोग कहते है—तेल खतम होते ही जैसे दीपक बुझ जाता है वैसे ही कर्मोका और रागद्वेषादिका नाश होने पर जीवका स्वरूप अस्त हो जाता है । इस मतका जैनाचार्योने खंडन किया है । क्योंकि, केवल-विकार ही जीव नहीं है । कोई मूल स्वभाव भी जीवतत्वका होना चाहिये । उन स्वभाव–शक्तियोंमेंसे ही सर्वानुभवगोचर सुख गुण भी एक प्रधान स्वरूप है । सिद्ध अवस्थामें सर्व विकारका नाश करके जीव उस शुद्ध सुखको भोगनेवाला बन जाता है । सुख है वह अनुभवरूप है इसलिये ज्ञानका भी निर्विकार अस्तित्व सुखके निर्विकार अस्तित्वसे सिद्ध हो जाता है । यही परमात्माका स्वरूप है ।

चौथे चरणमें ऐसे सिद्ध परमात्माओंके प्रसादसे अथवा ध्यानसे-भक्तिसे अपनेको भी वैसा ही निराकुल सिद्ध पद प्राप्त होनेकी ग्रन्थकारने अभिलाषा तथा प्रार्थना की है ॥ ४७९ ॥

इस सिद्ध पदको पानेकेलिये कौनसा प्रयत्न किया जाता है उसको आगे दिखाते है —

जो सिद्ध पदकी इच्छा रखता है अथवा ससारके परिभ्रमणसे त्रस्त हो चुका है वह देखता है कि जो सर्व आजपर्यंत भोगा हुआ दु ख अर्थात् पुद्गलसबध है वह कृत्रिम है – सयोगसे उत्पन्न होता है अथवा राग द्वेषके द्वारा जो कर्मबंध होता है उसके उदयसे यह सर्व दृश्य पसारा अनुकूल प्रतिकूल इकठ्ठा होता है । इसीलिये यह नाशवत भी अवश्य है । **सयुक्तानां वियोगस्तु**

कल्मषाष्टकमपास्य सर्वथा । ये गुणाष्टकमवापुरूर्जितम् ।
जातिमृत्युभवदुःखवर्जितास्ते वसतु मम निर्वृता हृदि ॥ ४८१॥
दृष्टिवादमकराकरादिद । प्राभृतैकलवरत्नमुद्धृतम् ।
ज्ञानदर्शनचरित्रबृहक । गृह्यता शिवनिवासकांक्षिभिः ॥ ४८२ ॥

भविता हि नियोगतः । ऐसा नियम है कि जो सयोगसे जन्य होगा वह अवश्य नाश पावेगा । इसलिये ऐसे कृत्रिम पराश्रित नश्वर अन्य सर्व परसबधको छोडकर पवित्र सिद्धपदको एक अद्वितीय तथा अनुपम समझकर साधना चाहिये । इसीकेलिये सदा सिद्धिका लाभ हो ऐसा यत्न करना चाहिये । पर वस्तुओंको–सर्व संसारकी अवस्थाओंको अपना घातक विरुद्ध समझकर उनसे उपेक्षाबुद्धि उत्पन्न करना ही यहापर यत्न है । वह उपेक्षारूप यत्न तभी हो सकता है जब कि आगे इस दृष्टसे अधिक शाश्वतिक सुखके स्वरूपका लाभ होना संभव हो । इसीलिये सिद्धपद जो अनुपम तथा स्वाधीन सुखमय अवस्था है उसका भी ध्यान करते रहना चाहिये । यही इस वचनका तात्पर्य है ॥ ४८० ॥

सिद्धोंका ही विशेष स्वरूप ध्यान करनेके लिये आगे और भी बताते है । —

आठ प्रकारके कर्मरूप मलको सर्वथा नष्ट करके जो उन्नत आठ गुणोंको प्राप्त कर चुके है और ससारसबधी जन्म मरणादि दु खोंसे छूट गये है ऐसे सिद्ध परमात्मा मेरे हृदयमे आकर वसो । अर्थात् उनका मै सर्वदा ध्यान करता रहू । आठ गुणोंको आगे दिखाते है और जन्म मरण आदि अठारह दोष ग्रथोंमें बताये है वे सिद्ध परमात्माम नहीं रहते है ऐसा तात्पर्य है । सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व – ये आठ गुण है जो आठ कर्मोंके नाशसे सिद्धावस्थामे प्रगट होते है । ४८१ ।

दृष्टिवादरूपी समुद्रसे यह कर्मप्राभृतरूप एक रत्नके समान अश उद्धृत किया है । यह ग्रथ ज्ञान दर्शन चारित्र इन तीनो गुणोंका वर्धक है । इसे जो मोक्षस्थानमे निवास करनेकी इच्छा करते हैं वे ग्रहण करें ॥ ४८२ ॥

बंधं पाकं कर्मणां सत्त्वमेतद्वक्तुं शक्तं दृष्टिवादप्रणीतम् ।
शास्त्रं ज्ञात्वाऽभ्यस्यते येन नित्यं सम्यक् तेन ज्ञायते कर्मतत्त्वम् ॥ ४८३ ॥
कर्मबंधगुणजीवमार्गणास्थानयोजनपरायणोऽस्ति यः ।
सत्तपोदलितकर्मसंहतिः सोऽस्तु तेऽमितगतिः शिवास्पदम् ॥ ४८४ ॥
इति सप्तति समाप्ता ।

इस ग्रंथका पूर्वसंबंध, विषय और पढनेका फल—

यह ग्रंथ दृष्टिवादसे लेकर बनाया है, इसमें कर्मोंका बंध उदय सत्त्व बताया गया है । बंधउदयसत्ताके स्वरूपको प्रतिपादन करनेमें यह ग्रंथ समर्थ है । इस शास्त्रको समझकर जो अभ्यास करते हैं वे अच्छी तरहसे कर्मतत्वको समझने लगते हैं । यही इस ग्रंथके पढनेका साक्षात् फल है । ग्रंथके अध्ययनका परंपरा फल मोक्षप्राप्ति होना भी माना जाता है । क्योंकि कर्मबन्ध ही संसारका कारण है इस बातको जो जानलेगा वह कर्मबंधनसे छूटनेका अवश्य प्रयत्न करेगा । धवलटीकाकारने आरंभमें कहा है कि,

'शब्दात्पदप्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति । अर्थात् तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः ॥

कर्मोंका बंध, गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा, इन सर्व स्थानोंको परस्परमें जोडकर समझनेकेलिये जो तत्पर रहता है वह समीचीन मोक्ष प्रयोजनके लिये तप करके कर्मोंके समूहका नाश करता हुआ 'अमितगति' अर्थात् अनंत ज्ञानको धारण करनेवाला होकर मोक्षस्थानको पाता है । ४८३–४८४ ।

इस प्रकार श्री अमितगति आचार्यप्रणीत इस पंचसंग्रहमें सप्तति नामका पांचवा अधिकार पूर्ण हुआ ।

हस्तलिखित मूल ग्रंथमें 'इति सप्तति समाप्ता' ऐसा ही पाठ है ।

८०

नत्वा जिनेश्वरं वीरं बंधस्वामित्वसूदनम् । वक्ष्याम्योघविशेषाभ्यां बंधस्वामित्वसंभवम् ॥ १ ॥
गुणस्थानं प्रति बंधः कथ्यते- -
सप्तदशैकाधिके शते ततः सप्तति चतुर्युक्ताम् । सप्ततिमथ सप्तयुतां सप्तत्यग्रे क्रमात्षष्टी ॥ २ ॥
एकविहीना षष्टिं प्रकृतीः सप्तादिमा निबध्नंति । षष्टिं द्विचतुर्न्यूनां षड्विंशतिमष्टमस्तस्मात् ॥ ३ ॥
विंशती द्व्येकसंयुक्ते तां ते चैकद्विवर्जिते । नवमं पंचकेशानां सूक्ष्मः सप्तदशैव ताः ॥ ४ ॥

अथ बन्धस्वामित्व नामका छट्ठा अधिकार.

श्री वीर जिनेश्वर, जिन्होंने बंधके अधिकारी जो गुणस्थान तथा मार्गणास्थान, उनका नाश करदिया, उनको नमस्कार करके मैं बंधस्वामित्वको सामान्य विशेषके द्वारा कहूंगा। गुणस्थानोंमें सामान्य वर्णन ही हो सकता है इसलिये गुणस्थानाधिकारको सामान्य कहते हैं। मार्गणाओंमें बंधकी विचित्रता विस्तारसे वर्णन करनेमें आती है इसलिये मार्गणास्थानोंको विशेष कहते हैं।१।

अब आगे गुणस्थानोंमें सबसे प्रथम बंधकी योजना करते हैं।—

सत्रह अधिक सौ, एक अधिक सौ, फिर चार अधिक सत्तरि, फिर सात अधिक सत्तरि, फिर क्रमसे ऊपर सात अधिक साठि, तीन अधिक साठि, एक घाटि साठि-इतनी इतनी प्रकृतियोंको क्रमसे आदिके सात गुणस्थानवाले बांधते हैं। फिर अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानवाला तीन प्रकारकी प्रकृतिसंख्याको क्रमसे बांधता है। प्रथम दो घाटि साठिको, फिर आगे चार घाटि साठिको, फिर अंतमें छब्बीसको बांधता है। २-३।

नौवें गुणस्थानमें पांच भाग हैं। उन पांचों भागोंमें-प्रथमसे अंत पर्यंत क्रमसे प्रत्येक भागमें-कम कम करके प्रकृतियोंको बांधता है। उनकी क्रमसे प्रकृतिसंख्या इस प्रकार है।-प्रथम भागमें दो अधिक वीस प्रकृतियोंको बांधता है, फिर दूसरे भागमें एक अधिक वीसको बांधता है। तीसरे भागमें केवल वीसको बांधता है। 'तां' शब्दसे केवल वीस अर्थ लिया

तस्मादेक त्रय सातमयोगो बधवर्जित । विंशत शतमोवेन बधप्रकृतयो मता ॥ ५ ॥

सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वैकगधस्पर्शसप्तकरसचतुष्कवर्णचतु ष्टयबधनपचकसघातपचकलक्षणामष्टविंशतिं वर्जयित्वा शेषा बधप्रकृतयः १२० । अबधा २८ ।

तीर्थकराहारकद्वये सम्यक्त्वसयमाभ्या बध्येते यस्मात्तस्मात्ताभ्यां विना मिथ्यादृष्टौ–१६,११७। शासने–२५,१०१ ।

गया है । फिर चौथे भागवाला एक घाटि वीसको बाधता है । फिर पाचवें भागवाला दो घाटि वीसको बाधता है। आगे दशवें सूक्ष्मकपाय गुणस्थानमें जो पहुच जाता है वह सत्रह प्रकृतियोंको बाधता है । ४ ।

आगे ग्यारहवें बारहवें तेरहवें इन तीन गुणस्थानवाले योगी एक सातवेदनीयको ही बाधते है । अतिम अयोग केवली चौदहवें गुणस्थानवाला बधसे सर्वथा ही छूट जाता है । इस प्रकार एकसौ वीस प्रकृति गुणस्थानोंके अनुसार बधप्रकृति मानी गई हैं । ५ ।

सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति, एक गध, सात स्पर्श, चार रस, वर्ण प्रकृति चार, बधन पाच, सघात पाच, इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृति बधमे शामिल नहीं की जाती इसलिये सर्व एकसौ अडतालीसमेसे अट्ठाईसको घटानेसे शेष १२० प्रकृति बधयोग्य हैं । २८ अबध प्रकृति हैं ।

तीर्थकरत्व प्रकृति सम्यक्त्वके निमित्तसे बधको प्राप्त होती है और आहारकद्वय सयमके साथ बधयोग्य हैं इसलिये मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ऊपरकी तीनो घट जानेसे बधयोग्य एकसौ सत्रह हैं तथा १६ बधसे व्युच्छिन्न होनेवाली है । अर्थात् सोलह प्रकृति ऐसी हैं जिनका बध आगे चलते ही रुक जायगा । इसलिये जहा वे बध होनेसे रुकेंगी उसके प्रथम उनकी बधव्युच्छिन्नोंमें नियुक्ति हो जाती है । इसी प्रकार आगेके गुणस्थानोंमें भी ऐसा ही समझना चाहिये कि जहा जितनी प्रकृति बधव्युच्छिन्न कहकर बताई हों उनका बध होना रुकता उसके आगे है ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टिमें बधव्यु० १६ । बध ११७ । सासादनमें बंधव्यु २५, बंधयोग्य १०१ ।

नरसुरायुर्भ्यां विना मिश्रे–०,७४ । नरसुरायु-तीर्थकरैः सहासयते–१०,७७ । पंचमे-४,६७ । प्रमत्ते–६,६३ । आहारकद्विकेन सहाप्रमत्ते–१,५९ । अपूर्वे सप्तसु भागेषु-२,५८।०,५६।०,५६।०,५६।०,५६।३०,५६।४,२६ । नवमे पंचसु भागेषु–१,२२।१,२१।१,२०।१,१९।१,१८। सूक्ष्मादिषु- १६,१७ । ०,१ । ०,१ । १ १ । ०,० ।

बंधविच्छेद कथ्यते—

आद्ये षोडश बंधा द्वितीयके पंचविंशतिस्तुर्ये । दश पचमे चतस्र षट् षष्ठे सप्तमे चैका ॥ ६ ॥

मिश्रमें बन्धव्युच्छिन्न नहीं है और मनुष्यायु तथा देवायु इन दो का वध भी नहीं है इसलिये व्युच्छित्तिमें ० है, वंधमें ७४ हैं । असयतमें व्यु. १०, वंधमें ७७ हैं । मनुष्यायु देवायु और तीर्थकरत्व ये तीन प्रकृति यहा बढ जाती है । पाचवें गुण-स्थानमें वधव्यु. ४, वधमें ६७ । प्रमत्तमें व्यु ६, बधयोग्य ६३ । आहारक द्वयके बढजानेसे अप्रमत्त सातवें गुणस्थानमें व्यु १, वधयोग्य ५९ ।

अपूर्वके सात भागोंमें क्रमसे व्युच्छिन्न तथा वधयोग्य इस प्रकार हैं—२, ५८ । ०, ५६ । ०, ५६ । ०, ५६ । ०, ५६ । ३०, ५६ । ४, २६ । यह अपूर्वके सात भागोंमें व्यु और वधयोग्योंकी सख्या हुई । जहा केवल शून्य है वहा व्यु नहीं है ऐसा समझना । नौवें गुणस्थानके भागोंमें इसी प्रकार आगे व्यु तथा वधयोग्य प्रकृति दिखाते हैं–१, २२ । १, २१ । १, २० । १, १९ । १, १८ । सूक्ष्ममें–१६, १७ । उपशातमें–०, १ । क्षीणकषायमें ०, १ । सयोगकेवलीमें १, १ । अयोगकेवलीमें ०, ० । अर्थात् न यहा व्युच्छिन्न होनेयोग्य कोई प्रकृति है और न बंधयोग्य ही कोइ भी प्रकृति है । इसलिये दोनों स्थानोंमें शून्य है ।

अब ऊपर जो वधविच्छेद बताया है उसे मूलकार आगे दिखाते हैं । —

आद्य अर्थात् पहिले गुणस्थानमे सोलह वधप्रकृति व्युच्छित्तिको प्राप्त होती है । दूसरे गुणस्थानमें पचीस व्युच्छिन्न होती हैं । चौथेमे दश व्युच्छिन्न होनेवाली हैं । पाचवें गुणस्थानमे चार वधच्छिन्न होनेवाली हैं । छट्ठे गुणस्थानमें छह प्रकृति

॥६३६॥

द्वे त्रिंशच्च चतस्रोऽपूर्वे नवमे क्षणेपु चैकैकाः । पंचसु विच्छिद्यते पोडश सूक्ष्मे जिने सातम् ॥ ७ ॥
आद्य जातिचतुष्क श्वभ्रत्रिदशायुषी सुरद्वन्द्वम् । सूक्ष्मस्थावरसाधारणातपापूर्णनारकयुगानि ॥ ८ ॥
वैक्रियिकाहारकयोर्युग्मे चैकोनविंशति हित्वा । शतमेकोत्तरमन्या प्रकृती स्वीकुर्वते श्वाभ्रा ॥ ९ ॥
आद्यस्तीर्थंकृताना हूंडासम्प्राप्तपढमिथ्यात्वै । सासादनो विहीनः सप्ततिमथ मिश्रक श्वाभ्रः ॥ १० ॥

बधव्युच्छिन्न होती है। सातवेंमें एक बधच्छिन्न होनेवाली है। अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें क्रमसे प्रथम दो प्रकृति बधविच्छिन्न होती है, फिर आगे तीस बंधच्छिन्न होनेवाली मानी है, फिर उसके भी आगे चार बधव्युच्छिन्न होती हैं। नौवें गुणस्थानके पाच भाग हैं उनमेंसे प्रत्येकमें एक एक प्रकृति बधव्युच्छिन्न होती जाती है। सूक्ष्मलोम दशवें गुणस्थानमें सोलह प्रकृति बधसे व्युच्छिन्न होती है। जिन अर्थात् सयोग केवलीमें एक साता वेदनीय बधसे व्युच्छिन्न होजाती है। ६–७।

इस प्रकार गुणस्थानोंमें बधकी व्युच्छित्ति बताई।

अब आगे मार्गणाओंमें बधव्युच्छित्तिको दिखाते हैं। सबसे प्रथम गतिमार्गणा है। उसमें चार गति हैं उनमेंसे प्रथम नरकगतिमें बधच्छेदको पहिले दिखाते हैं।—

पहिली चार जाति एकेंद्रियादि चतुरिंद्रिय पर्यत, नरकायु, देवायु, देवगतिद्वय, सूक्ष्म, स्थावर, साधारण, आतप, अपर्याप्ति, नारकगति नारकगत्यानुपूर्वी ये दो, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिकागोपाग द्वय, आहारक द्वय–इन उन्नीस प्रकृतियोंका नारकी जीव बंध नहीं करते हैं। शेष बची एकसौ एक प्रकृतियोंको नारकी बांधते हैं। ८–९।

प्रथम गुणस्थानमें रहनेवाला नारकी जीव तीर्थंकर प्रकृतिको नहीं ही बाधता है। सासादन गुणस्थानवर्ती नारकी जीव हुडकसंस्थान असप्राप्तासृपाटिका संहनन, नपुसकवेद, मिथ्यादर्शन–इन चार प्रकृतियोंको नहीं बाधता है। क्योंकि इन चार प्रकृतियोंकी प्रथम गुणस्थानमें बधविच्छित्ति हो जाती है।

मिश्रवाला सत्तरि प्रकृतियोंको बाधता है। इसके मनुष्यायुका बध नहीं है। और सासादन गुणस्थानमें कही हुई

त्यक्त्वा मर्त्यायुषा युक्तामोघोक्तां पंचविंशतिम्। मिश्रे षण्णवतेर्ज्ञेया सप्ततिः शासने स्थिते ॥ ११ ॥
निर्व्रतसम्यग्दृष्टिर्मर्त्यायुस्तीर्थकृत्त्वयुक्ता ताम्। सप्तमनरके हीन नरायुषा शतमुपादत्ते ॥ १२ ॥
मर्त्यद्वितयोच्चोन मिथ्यादृष्टिस्तदत्र बध्नाति। मिथ्यात्वतिर्यगायुर्हुंडासम्प्राप्तषंढोनम् ॥ १३ ॥
बध्नाति शासनाख्य सासादनपंचविंशति त्यक्त्वा। तिर्यग्जीवितहीना मर्त्यद्वयगोत्रसंयुक्ताम् ॥ १४ ॥
मिश्राव्रतसद्दृष्टी बध्नीतः सप्तमे स्फुट श्वभ्रे। श्वभ्रगतिर्निर्णीता विज्ञातव्या परास्त्वेवम् ॥ १५ ।

ओघेन नरके बंधप्रकृतयः–१०१,१९। मिथ्यादृष्टौ–१००,२०। शासने–९६,२४। मिश्रे ७०। निर्व्रते ७२। चतुर्थपंचमषष्ठश्वभ्रेषु चतुर्थगुणे तीर्थकृता विना ७१। पृथिवीषट्के बंधप्रकृतिशत। नरायुषा हीनमोघेन सप्तमे नरके ९९। मिथ्यादृष्टौ ९६। शासने ९१। मिश्रे ७०। निर्व्रते ७०।

एव नरकगति समाप्ता।

सासादनकी पचीस प्रकृतियोंका भी मिश्रमें अभाव हो जाता है। इस प्रकार सासादनकी ९६ प्रकृतियोंमेंसे मिश्रवाला ७० का ही बंध करता है। अव्रतसम्यग्दृष्टि मनुष्यायुका तथा तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करता है। परंतु सातवें नरकमें जीव मनुष्यायुको छोडकर सौ प्रकृति (९९) का ही बन्ध कर सकता है। भावार्थ, ऊपर मिथ्यादृष्टि नारकीके बंधयोग्य सौ प्रकृति बताई हैं परंतु सातवें नरकमें केवल निन्यानवे (९९) ही प्रकृति ओघ समझना। १०–११–१२।

मनुष्यगतिद्वय तथा उच्चगोत्र इन तीन प्रकृतियोंको सप्तम नरकका मिथ्यादृष्टी जीव नहीं बांधता है। अर्थात् निन्यानवेमेंसे तीनको घटाकर ९६ को बांधता है। फिर सासादन सातवें नरकका जीव मिथ्यात्व, तिर्यगायु, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्त सहनन, नपुंसक वेद–इन पांचको छोडकर ९१ को बांधता है। फिर मिश्रवाला जीव ७० को बांधता है। सासादनकी पचीस यहां घटनी चाहिये परंतु तिर्यगायु नहीं घटती और मनुष्यद्वय तथा गोत्र एक उच्च ये तीन बढ जाती हैं। इसलिये ७० रह जाती है। इसी प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि भी ७० को बांधता है। दूसरी गति भी ऐसे ही समझलेनेकी है। १३–१४–१५

नरकमें सामान्यरूपसे बंध और अबंध प्रकृति–१०१, १९। मिथ्यादृष्टिमें–१०० २०। सासादनमें–९६, २४–।

॥६३८॥

प्रकृती रहितास्तीर्थकर्तृत्वाहारकद्विकैः। तिर्यंचो गृह्णते सर्वाः सामान्येन विसंशयम् ॥ १६ ॥
तिर्यञ्चस्तास्तिरश्च्योपि पर्याप्ता वामदृष्टय । बध्नंति प्रकृतीः सर्वाः शासनाः षोडशोज्झिताः ॥ १७ ॥
मिथ्यादृशः ११७,३ । शासनः १०१ ।
मर्त्यदेवायुषी मर्त्यद्वयमौदारिकद्वयम् । पचविंशतिमाद्योक्तां विमुच्याद्यां च सहतिम् ॥ १८ ॥
एकोनसप्तति मिश्रा शेषाः स्त्रीकुर्वते ततः । सप्तति गृह्णते युक्ता निर्व्रतास्ताः सुरायुषा ॥ १९ ॥

मिश्रमें–७० । असयत सम्यग्दृष्टिमें–७२ । चौथे पाचवें छट्ठे–इन नरकोंमें चतुर्थगुणस्थानमें (तीर्थकर प्रकृतिके न होनेसे)–७१ । इसी प्रकार छह पृथिवीपर्यंत बधप्रकृति सौ हैं उनमेंसे सातवें नरकमें मनुष्यायु नहीं इसलिये सामान्यरूपसे ९९ प्रकृति है । मिथ्यादृष्टिमें ९६ है । सासादनमें ९१ है । मिश्रमें ७० है । असयत सम्यग्दृष्टिमें भी ७० है ।

इस प्रकार नरकगतिका निर्णय किया ।

अब आगे तिर्यचगतिमें बध अबध प्रकृतियोंको दिखाते हैं ।—

तीर्थकरत्व और आहारक द्वय – इन तीन प्रकृतियोंको छोडकर शेष सर्व (११७) प्रकृतियोंको तिर्यच जीव सामन्य रूपसे ग्रहण करते हैं । १६ ।

जितनी प्रकृतियोंको पर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यच बाधते हैं उतनी ही प्रकृतियोंको पर्याप्त मिथ्यादृष्टि तिरश्ची (स्त्री) भी बाधती हैं । सासादन गुणस्थानवाले सोलहको छोडकर बाधते हैं । १७ ।

मिथ्यादृष्टिके–११७, ३ । सासादनके १०१ ।

मनुष्यायु, देवायु, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक शरीरद्वय, और गुणस्थानवर्णनमें जो सासादनकी पच्चीस प्रकृति कही है वे, आदिका सहनन–इन बत्तीस प्रकृतियोंको छोडकर शेष उनहत्तरि (६९) प्रकृतियोंको मिश्र गुणस्थानवाले ग्रहण करते है । देवायुको बढाकर सत्तरि प्रकृति हुई । इन सत्तरिको असयत सम्यग्दृष्टि बाधते हैं । १८ – १९ ।

मिश्राः ६९,३२ । निर्व्रताः ७० ।

तिर्यंचो गृह्णते हीना द्वितीयैस्ताः क्रुदादिभिः । एवं स्त्रीपुरुषाः पूर्णा पचाक्षा देशसयताः ॥ २० ॥

मुक्त्वा वैक्रियिक षट्कं नारकात्रिदशायुषी । स्वीकुर्वन्त्योघतोऽपूर्णाः शत शेष नवोत्तरम् । १०९ ॥ २१ ॥

इति तिर्यग्गति समाप्ता ।

प्रथमाः पच बध्नति तिर्यग्वत्प्रकृतीर्नराः । चतुर्थाः पचमास्तत्र पर तीर्थकराधिकाः ॥ २२ ॥

शत नवोत्तरं मर्त्यास्तास्तिर्यग्वदपूर्णकाः । समर्जन्ति प्रमत्ताद्याः प्रकृतीरोघिकीः स्फुटाः ॥ २३ ॥

मिश्रमें वध ६९, घाट ३२ । असंयतमें–७० ।

देशसयत वाले पंचेंद्रिय पर्याप्तक तिर्यंच स्त्री अथवा पुरुष दूसरे क्रोधादि चार कषायोंको छोडकर ऊपरकी शेष प्रकृतियोंको ग्रहण करते हैं । २० ।

अपर्याप्त तिर्यंच छह वैक्रियिक प्रकृतियोंको और देवायुनरकायु द्वयको छोडकर शेष एक सौ नौ [१०९] प्रकृतियोंको सामान्य रूपसे बाधते हैं । २१ ।

इस प्रकार तिर्यंचगति हुई ।

अब आगे मनुष्यगतिमें बंध प्रकृतियोंको बताते हैं ।–

पहिले पाच गुणस्थानवाले मनुष्य, तिर्यंचोंके ही समान प्रकृतियोंको बाधते हैं । विशेष इतना है कि चौथे पाचवें गुणस्थान वाले मनुष्य एक तीर्थकर प्रकृतिको अधिक बाधते हैं । २२ ।

अपर्याप्तक मनुष्य अपर्याप्तक तिर्यंचोंके ही समान एकसौ नौ प्रकृतियोंको बाधते हैं । आगे छट्ठे आदि गुणस्थानवाले मनुष्य ही होते हैं इसलिये जो उन उन गुणस्थानोंमें प्रकृति बताई है उतनी उतनी ही वे बाधते हैं । २३ ।

प्रथमा मिथ्यादृष्ट्याद्यः पंच ११७ । १०१ । ६९ । ७१ । ६७ । प्रमत्ताद्याः सर्वे ६३ । ५९ । ५८ । ५६ । २६ । २२ । २१ । २० । १९ । १८ । १७ । उ० १ । १ । १ । ० । अपूर्णा मनुष्याः १०९ ।

इति मनुष्यगतिः समाप्ता ।

सूक्ष्मं वैक्रियिक षट्क साधारणमपूर्णक । आहारकद्वय द्वन्द्व नारकत्रिदशायुषोः ॥ २४ ॥
विकलत्रितय मुक्त्वा षोडश प्रकृतीरिमाः । अपरा गृह्णते देवाश्चतुर्भिः सहितं शतम् ॥ २५ ॥
ओघेन देवाः १०४ ।
विना तीर्थकृता शेष मिथ्यादृक् त्र्युत्तरं शतं । एकेंद्रियमसंप्राप्तं मिथ्यात्वं हुडमातपम् ॥ २६ ॥
षंढक स्थावर सप्त त्यक्त्वा षण्णवतिः पराः । प्रकृतीः शासनः सर्वाः स्वीकरोति विसंशयम् ॥ २७ ॥

पहिले मिथ्यादृष्टि आदि पांचमें ११७ । १०१ । ६९ । ७१ । ६७ । प्रमत्तादि आगेके सर्वमें ६३ । ५९ । ५८ ५६ । २६ । २२ । १८ । १७ । १ । १ । १ । ० । अपर्याप्त मनुष्यमें १०९ ।

इस प्रकार मनुष्यगति हुई ।

अब देवोंमें प्रकृतिबंधकी संख्याको आगे दिखाते हैं ।—

सूक्ष्म, वैक्रियिक छह, साधारण, अपर्याप्त, आहारकशरीरद्वय, नरकायु देवायु ये दो, विकलेंद्रिय तीन जाति — इन सोलह प्रकृतियोंको देव नहीं बांधते, शेष बची सर्व एकसौ चारको बाधते हैं । २४ । २५ ।

देवोंमें ये १०४ प्रकृति सामान्यरूपसे हैं ।

मिथ्यादृष्टि देव तीर्थंकर प्रकृतिको छोडकर शेष एकसौ तीनको बाधता है । और सासादन देव एकेंद्रियजातिको तथा असंप्राप्त असृपाटिका सहनन, मिथ्यात्व, हुडकसस्थान, आतप, नपुसकवेद, स्थावर—इन सातको छोडकर शेष ९६ प्रकृतिको बांधता है । २६ २७ ।

मिथ्यादृष्टिः १०३ । सासनः ९६ ।

हित्वा सम्यायुषा युक्तामोघोक्तां पञ्चविंशतिं । एताभ्यो गृह्णते मिश्रः सप्तति प्रकृती सुराः ॥ २८ ॥
मर्त्यायुस्तीर्थकृन्नयुक्तां द्वासप्ततिं ततः । प्रकृतीः परिगृह्णाति सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥ २९ ॥
प्रथमे गृह्णते सर्वे निकायत्रितये सुराः । चतुर्निकायजा देव्यः स्थिता गुणचतुष्टये ॥ ३० ॥
प्रकृतीस्त्रिदशोघोक्तास्तीर्थकृन्नवर्जिताः । त्रिदशौघोदिताः सर्वाः सौधर्मेशानकल्पगाः ॥ ३१ ॥

भावनादिष्वोघेन १०३ । मिथ्यादृष्ट्यादिषु चतुर्षु १०३ । ९६ । ७० । ७० । सौधर्मेशानकल्पेष्वोघेन १०४ । मिथ्यादृष्ट्यादिषु १०३ । ९६ । ७० । ७२ ।

आतपस्थावरैकाक्षगतीर्गृह्णते विना । सुराः सनत्कुमाराद्याः सहस्रारान्तगाः १०१ ॥ ३२ ॥

मिश्रगुणस्थानवाले देव सामान्यकी व्युच्छिन्न २५ प्रकृतियोंको तथा मनुष्यायुको छोड़कर सत्तरको बांधते हैं । २८ ।

असंयत सम्यग्दृष्टि देव इनमें ऊपरकी तथा मनुष्यायु तीर्थंकर— इन बहत्तरको बांधता है । २९ ।

प्रथम तीन निकायके सर्व अर्थात् चारों गुणस्थानवर्ती देव और चारों गुणस्थानवर्तिनी चारों निकायकी देवियां ये तीर्थंकरत्वको छोड़कर शेष सर्व देवसामान्यसंबंधी प्रकृतियोंका ग्रहण करते हैं । और सौधर्म ईशान कल्पवासी देव देवसामान्योक्त सर्व प्रकृतियोंको बांधते हैं । ३०—३१ ।

भवन आदि तीन निकायोंमें सामान्य रूपसे १०३ । मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें— १०३ । ९६ । ७० । ७० । सौधर्म ऐशान कल्पवासियोंमें सामान्यरूपसे १०४ । मिथ्यादृष्टि आदिकोंमें—१०३ । ९६ । ७० । ७२ ।

सनत्कुमार तीसरे स्वर्गसे सहस्रार बारहवें स्वर्ग पर्यंतके देव, आतप स्थावर एकेंद्रिय— इन तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष देवसामान्यवाली सर्व [१०१] प्रकृतियोंको बांधते हैं । ३२ ।

एतास्तीर्थकृता हीनाः स्वीकुर्वंति कुदृष्टयः । हुडासंप्राप्तमिथ्यात्वपढोना भ्रष्टदृष्टयः (१०० । ९६) ॥ ३३ ॥
ता मर्त्यायुर्युना हित्वा मिश्रकाः पंचविंशतिम् । बध्नति समनुष्यायुस्तीर्थकृत्नामसयता ७२ । ७० ॥ ३४ ॥
तिर्यग्द्वितयमेकाक्ष तिर्यग्जीवितमातप । उद्योतः स्थावरं चेति मुक्त्वा प्रकृतिसप्तकम् ॥ ३५ ॥
अपरा प्रकृतोर्देवाः स्वीकुर्वंत्यानतादिपु । अत्यग्रैवेयकातेपु देवौघप्रतिपादिता ॥ ३६ ॥
आनतादिष्वोघेन ९७ ।
हीनास्तीर्थकृता मिथ्यादृष्टयः शासनाः पुनः । अंत्यग्रैवेयकांतेपु देवौघप्रतिपादिताः ॥ ३७ ॥
आनतादिष्वोघेन ९७ ।
हीनास्तीर्थकृता मिथ्यादृष्टयः शासनाः पुन । रहिताः पढमिथ्यात्वहुंडासप्राप्तकैरिमाः (९६ । ९२) ॥ ३८ ॥

इनमेंसे जो मिथ्यादृष्टि देव है वे तीर्थकरत्वको छोडकर शेष ऊपर बताई हुई सर्व [१००] प्रकृतियोंको बाधते हैं । और जो भ्रष्टदर्शन अर्थात् सासादनवाले है वे हुडक सस्थान, असंप्राप्त असृपाटिका, मिथ्यात्व, नपुसकवेद— इन चारको छोड कर शेष [९६] को बाधते है । ३३ ।

मनुष्यायु तथा सासादनकी पच्चीस—ऐसे सर्व छब्बीस प्रकृतियोंको छ्यानवेमेसे घटाकर शेष ७० प्रकृतियोंको मिश्र गुणस्थानवर्ती देव बाधते हैं । और असयत देव मनुष्यायु तथा तीर्थकरत्व–इन दोको जोडकर ७२ प्रकृतियोंको बाधते है । ३४ ।

आनत तेरहवें स्वर्गसे लेकर अतिम ग्रैवेयक पर्यंतके देव देवसामान्योक्त १०४ मेसे तिर्यगति द्वय, एकेंद्रिय जाति, तिर्यगायु, आतप, उद्योत, स्थावर इन सातको छोडकर शेष सतानवें (९७) प्रकृतियोंको सामान्यरूपसे बाधते है । ३५–३६

अतिम ग्रैवेयक पर्यंतके देव मिथ्यादृष्टि हों तो तीर्थकरत्वको छोडकर ९६ प्रकृतियोंको बाधते हैं । और सासादन देव नपुसकवेद मिथ्यात्व हुंडकसस्थान असप्राप्तासृपाटिका सहनन इन चारको छोडकर शेष ९२ प्रकृतियोंको बाधते है ॥ ३८ ॥

१–३७ वें नबरका श्लोक उलटा सुलटा लेखककी गफलतसे अधिक पडगया है । उसका कोई उपयोगी अर्थ जुदा नहीं है ।

त्यक्त्वा मर्त्यायुषा युक्तामोघोक्तां पचविंशतिं । मिश्रास्तिर्यग्द्वयोद्योततिर्यगायुरपाकृताम् । ७० ॥ ३९ ॥
सतीर्थकृन्नरायुष्कास्ता स्वीकुर्वन्ति निर्व्रताः । सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तास्ता एवोर्द्ध्व व्यवस्थिताः ॥ ४० ॥
निर्व्रता ७२ । उपरिष्टात्सर्वार्थसिद्धिपर्यन्ता नवानुत्तराद्या' ७२ ।

इति देवगति. समाप्ता ।

पट्कं वैक्रियिकं तीर्थकृत्त्व श्वभ्रसुरायुषी । आहारकद्वय चेति विमुच्यैकादश स्फुटम् ॥ ४१ ॥
शत नवोत्तरं शेषा एकाक्षविकलेन्द्रिया । सामान्येन निबध्नंति घोराज्ञानतमोवृताः । १०९ ॥ ४२ ॥
श्वभ्रायुःश्वभ्रयुग्मोनास्तत संत्यज्य षोडश । वध्नंति शासनाः शेषा पंचाक्षास्त्वौघिकीः पुन ॥ ४३ ॥

मनुष्यायु तथा सासादनकी व्यु पच्चीस ऐसे छव्वीसको घटाकर शेप ७० सत्तरि प्रकृतियोंको मिश्रगुणस्थानवर्ती ये देव बाधते हैं । उन पच्चीसमेंसे तिर्यगतिद्विय उद्योत तिर्यगायु ये चार प्रकृति यहा फिरसे कम नहीं करनी चाहिये क्योंकि, ऊपर ओघ प्रकृतियोंमें ही इन चार को घटा दिया है ।

तीर्थकरत्व और मनुष्यायुको वढाकर वहत्तरि प्रकृतियोंको असंयत देव बाधते है । सर्वार्थसिद्धि पर्यतके भी देव असंयत होते हैं इसलिये उनमे भी ऊपरकी ७२ ही प्रकृति बाधी जाती हैं ॥ ४० ॥

इस प्रकार देवगति हुई । और गतिमार्गणा भी पूरी हुई ।

अब इन्द्रिय मार्गणाके आश्रयसे वंधप्रकृतियोंको आगे दिखाते हैं ।—

एकेंद्रिय और विकलेंद्रिय तीन—ये घोर अज्ञानरूप अंधकारमें रहनेवाले हैं इसलिये वे एकसौ वीसमेंसे ग्यारहको छोटकर एक सौ नौ प्रकृतियोंको बाधते है । वे ग्यारह छूटी हुई प्रकृति इस प्रकार है — छह वैक्रियिक संबधी, तीर्थकरत्व, नरकायु, देवायु, आहारकद्वय । ४१–४२ ।

नरकायु तथा नरकगतिद्वय–इन तीनको छोडकर जो सोलहमेसे तेरह शेप रहती है उन प्रकृतियोंको एकसौ नौ प्रकृतियोंमेंसे घटानेपर ९६ प्रकृतियोंको सासादन जीव बाधता है । पचेंद्रिय तिर्यच जीव सामान्य सर्व प्रकृतियोंको बाधता है । ४३ ।

मिथ्यादृशः १०९ । १३ । शासनाः ९६ । १२० ।

यावच्छरीरपर्याप्तिमेकाक्षविकलोद्भवाः । शासना न प्रपद्यन्ते तावत्तिर्यङ्नरायुषी ॥ ४४ ॥

न बध्नति यतस्ताभ्यां ततस्तेषु विना मताः । चतुर्नवतिरन्येषामभिप्रायेण बधने । ९४ । युग्मम् ॥ ४५ ॥

इतीन्द्रियमार्गणा समाप्ता ।

बध्नत्येकाक्षवज्जीवा धरांभस्तरुकायिकाः ।

नृद्वयोच्चनरायूंषि तेजःपवनकायिकाः । हित्वैकाक्षगताः शेषा गृह्णत्योघगतास्त्रसाः ॥ ४६ ॥

पचेंद्रियोंमेंसे मिथ्यादृष्टि १०९ को बाधते हैं । सासादन १३ को घटाकर ९६ को बाधते हैं । पचेंद्रिय १२० को बाधते हैं । एकेंद्रिय तथा विकलेंद्रियोंमें उत्पन्न हुए सासादन जीव जबतक शरीरपर्याप्तिको पूर्ण नहीं कर पाते तबतक तिर्यगायु और मनुष्यायुको नहीं बांधते हैं । ४४ ।

इन दो प्रकृतियोंको वे सासादन नहीं बाधते इसलिये उन सासादनोंमें उक्त दो प्रकृतियोंको घटाकर शेष चौरानवें प्रकृति बंधको प्राप्त होनेवाली रहती हैं । यह दूसरोंके अभिप्रायसे बधका कथन है । ४५ ।

इस प्रकार इंद्रिय मार्गणामें बंधप्रकृति हुई ।

अब आगे काय मार्गणामें बधको बताते हैं ।—

पृथिवी, जल और वनस्पतिकाय, एकेंद्रियके समान १०९ प्रकृतियोंको बाधते हैं । तेज कायिक और वायुकायिक—मनुष्य गतिद्वय, और उच्चगोत्र मनुष्यायु—इन चार प्रकृतियोंको छोडकर शेष १०४ एकेंद्रियप्रकृतियोंको बांधते हैं । त्रस जीव सामान्य बताई हुई सर्व प्रकृतियोंको बाधते हैं । ४६ ।

१—यह श्लोक मूलमें ठीक नहीं मिला ।

तेजोवातकायिका मिथ्यादृशः १०५ । ओघगतास्त्रसकायिका १२० ।

कायमार्गणा समाप्ता ।

योगेष्वोघगतो भगो वाङ्मानसचतुष्कयोः । भवत्यौदारिके योगे भगो मर्त्यौघसभवः ॥ ४७ ॥

औदारिके ११७ । १०१ । ६९ । ७१ । उपर्योघः ।

सुरश्वभ्रायुषी श्वभ्रद्विकमाहारकद्विकम् । विहायौदारिके मिश्रे स्वीकुर्वन्त्योघत पराः ॥ ४८ ॥

ओघेनौदारिके मिश्रे ११४ ।

देववैक्रियिकद्वन्द्वे हित्वा तीर्थकृता समम् । शत नवाधिक ताभ्यो गृह्णते वामदृष्टयः । १०९ ॥ ४९ ॥

तेज और वायुकायिक मिथ्यादृष्टिमे १०५ । त्रसकायिकमें सामान्यगत १२० है ।

इस प्रकार काय मार्गणा हुई ।

अब योगोंमें बंधप्रकृतियोंको बताते है ।—

योगोंमेंसे चार वचनयोगमें तथा चार मनोयोगमे सामान्य सर्व १२० प्रकृति है । औदारिक योगमे मनुष्यगतिके सामान्य भगको समझो । अर्थात् मिथ्यात्वसे चौथे गुणस्थान पर्यंत औदारिक योगमें—११७ । १०१ । ६९ । ७१ । ऊपर भी सामान्य बधप्रकृतिका नियम लगता है । ४७ ।

औदारिक मिश्रमें देवायु नरकायु नरकगतिद्वय आहारकद्वय– ये ६ प्रकृति बधसे छूटी रहती हैं शेप ओघरूप सर्व प्रकृतियोंका बंध होता है । औदारिकमिश्रमे ओघ प्रकृति ११४ है ॥ ४८ ॥

औदारिक मिश्रमें मिथ्यादृष्टिके ऊपरकी एकसौ चौदहमेसे देवगतिद्वय वैक्रियिकशरीरद्वय और तीर्थंकर प्रकृति ऐसे पाचको घटाकर शेप १०९ का बध होता है ॥ ४९ ॥

श्वभ्रायुश्वभ्रयुग्माभ्यामूनाः सत्यज्य षोडश । तिर्यङ्मर्त्यायुषी ताभ्यः शासना गृह्यते पराः । ९४ ॥ ५० ॥
मुक्त्वा निस्तिर्यगायुष्कामेताभ्य पचविंशतिम् । देववैक्रियिकद्वन्द्वतीर्थकृत्त्वसहिताः पराः ॥ ५१ ॥
पचसप्ततिसंख्याना परिगृह्णत्यसयताः । सयोग सातमेवैक मिश्रकौदारिके स्थितः ॥ ५२ ॥
क्रमेण ७५ । १ ।
योगवैक्रियिके भंगः सामान्यस्त्रिदशोदितः । तिर्यङ्मर्त्यायुषी हित्वा तदीये मिश्रके परा ॥ ५३ ॥
आघेन वैक्रियिके १०४ । मिथ्यादृष्ट्यादिषु १०३ । ९६ । ७० । ७२ । ओघेन वैक्रियिकमिश्रे १०२ ।

जो सोलह प्रकृति प्रथम गुणस्थानकी वधव्युच्छिन्न नरकायु नरकगतिद्वय इन तीनके सिवाय हैं उन्हें छोडकर तथा तिर्यगायु मनुष्यायु इन दोको छोडकर शेष ९४ प्रकृतियोंको सासादनवाले औदारिकमिश्र बाधते हैं। मिथ्यादृष्टि औदारिकमिश्रमें एकसौ नौ प्रकृति थी सो सासादनमे पद्रह घट गई इसलिये ९४ रही ॥ ५० ॥

तिर्यगायुके शिवाय सासादनकी व्युच्छिन्न २५ प्रकृति अर्थात् २४ प्रकृतिको ऊपरकी सासादनकी चौरानवें प्रकृतियोंमेंसे घटाना और देवगतिद्वय वैक्रियिकशरीरद्वय तथा तीर्थकरत्व इन पांचको वढाना तो ७५ संख्या होती है। असयत औदारिकमिश्र इन पचहत्तरिको बाधते हैं। औदारिक मिश्रयोग सयोगकेवलीके भी कपाट समुद्घातके समय रहता है। वह एक साताका ही वध करता है। ५१–५२।

देवोंमें जो सामान्य प्रकृति वताई है उतनी ही वैक्रियिक योगमें हैं। वैक्रियिक मिश्रमे तिर्यगायु मनुष्यायुको छोडकर शेष सर्व १०२ ओघ प्रकृति वधयोग्य है। ५३।

वैक्रियिक योगमें सामान्यसे १०४। मिथ्यादृष्ट्यादि चारमें क्रमसे–१०३ । ९६ । ७० । ७२ । वैक्रियिक मिश्रमें सामान्यसे १०२ हैं।

हीनास्तीथकरेणाद्ये स्थावरैकेन्द्रियातपैः । हुंडासंप्राप्तमिथ्यात्वपंढैरपि च शासने ॥ ५४ ॥
मिथ्यादृष्टौ १०१ । शासने ९४ ।
पंचविंशतिमत्यस्य तिर्यगायुर्विवर्जिताः । युक्तास्तीर्थकरेणान्या निर्व्रताः परिगृह्णते ॥ ५५ ॥
आहारकद्वये योगे षष्ठवद् गृह्णते विना । आहारकद्वयश्वभ्रद्वितयायुश्चतुष्टयैः ॥ ५६ ॥
कार्मणे गृह्णते योगे शेषा मिथ्यादृशस्त्विमाः । देववैक्रियिकद्वन्द्वतीर्थकर्तृत्ववर्जिताः ॥ ५७ ॥
आहारकाहारकमिश्रद्वये ६३ । ओघेन कार्मणे योगे ११२ । मिथ्यादृशः १०७ ।
श्वभ्रायुर्नारकद्वन्द्वत्यक्ताः सत्यज्य षोडश । एताश्च शासना योगे गृह्णते कार्मणे पराः । ९४ ॥ ५८ ॥

वैक्रियिकमिश्रमें आद्य अर्थात् मिथ्यादृष्टिके तीर्थंकरत्व घट जाती है इसलिये १०१ बंध है । सासादनके स्थावर एकेंद्रिय आतप तथा हुडकसंस्थान असप्राप्त सहनन मिथ्यात्व नपुसक वेद—ये सात प्रकृति घटकर शेष ९४ बंध है । ५४ ।

सासादनकी पचीसको और तिर्यगायुको घटाकर तथा तीर्थंकरत्वको बढाकर ऊपरकी सर्व प्रकृतियोंको असंयत सम्यग्दृष्टि वैक्रियिक मिश्रमें बाधते है । ५५ ।

दोनो आहारक काययोगोंके रहते, गुणस्थान छट्ठेमें जो प्रकृति वंधयोग्य हैं वे ही है किंतु आहारक द्वय, नरकगति द्वय, आयु चारों—ये प्रकृति बंधके योग्य नहीं होती । ५६ ।

कार्माण काययोगमें सामान्यसे ११२ प्रकृति वधयोग्य है । मिथ्यादृष्टीके साथ कार्मणयोगमे १०७ वंधयोग्य है । देवगतिद्वय, वैक्रियिक द्वय तथा तीर्थंकरत्व–ये पाच प्रकृति एकसौ बारहमेंसे घट जाती हैं इसलिये १०७ रह जाती है । ५७ ।

आहारक योगमें और आहरक मिश्रयोगमे ६३ । सामान्यसे कार्माणयोगमें ११२ । मिथ्यादृष्टि कार्माण योगमें १०७ ।

सोलह प्रकृति मिथ्यात्वमें वधच्छिन्न वताई हैं उनमेंसे नरकायु तथा नरकगतिद्वय इन तीनके शिवाय तेरहको सासादनमे घटानेसे शेष ९४ प्रकृति सासादनमे वधयोग्य रह जाती हैं ॥ ५८ ॥

नृतिर्यगायुषी हित्वा पचविंशतिमव्रते । सुरवैक्रियिकद्वन्द्वतीर्थकर्तृत्वसयुता. । ७५ ॥ ५९ ॥
सयोगा गृह्णते सात प्रतरे लोकपूरणे । यौगिकी मार्गणाख्याता वेदी सा कथ्यतेऽधुना ॥ ६० ॥

इति योगमार्गणा समाप्ता ।

एकाग्रविंशतिर्यावद्वधकोऽस्त्यनिवृत्तिक । ओघो वेदत्रये तावत्सत्यवेदास्तत परे ॥ ६१ ।

इति वेदमार्गणा समाप्ता ।

ओघोदितः कषायेषु बंधो मिथ्यादृगादिषु । नवम दशम यावन्नि कषायेषु चेरित ॥ ६२ ॥

ओघेन कषायचतुष्काणा १२० । विशेषतो मिथ्यादृष्टयादीनामेकविंशति विंशत्येकोनविंशतिबंधकानिवृत्तिपर्य-न्ताना सकषायचतुष्काणामोघभग , ततः सलोभकषायाणा सूक्ष्मसांपरायाणामोघः, ततोऽकषायाणां शांतक्षीणसयोगानामोघः ।

इति कषायमार्गणा ।

कार्मण योगमें अव्रतसम्यग्दृष्टिके जितनी प्रकृति बधयोग्य हैं उन्हे दिखाते हैं — सासादनमें ९४ वध और २५ बंध-विच्छिन्न है । परतु चौथेमें मनुष्यायु तिर्यगायु इन दोके सिवाय २५ को घटाना बताया है और देवगतिद्वय वैक्रियिकद्वय तथा तीर्थकरत्व ये पाच प्रकृति यहा वढ जाती हैं इस प्रकार ७५ प्रकृति असयत सम्यग्दृष्टिमें वधयोग्य हैं ॥ ५९ ॥

सयोगकेवली कार्मणयोगमें एक सातावेदनीयको वाघते हैं । सयोगमें कार्मणयोग प्रतरके तथा लोकपूरणके समय होता है । इस प्रकार योगमार्गणा वताई । अव आगे वेदमार्गणामें कहते हैं ॥ ६० ॥

इकीस प्रकृतिका जहातक वध है वहातक अनिवृत्तिकरणमें वेदत्रयसवधी बंध गुणस्थानके अनुसार समझना । इसके आगेके गुणस्थान वेदरहित हैं ॥ ६१ ॥

इति वेद मार्गणा ।

सामान्य मिथ्यात्वादि नौवें तथा दशवें पर्यतके गुणस्थानोंमें जो वंधप्रकृति वताई हैं वे कषायोंके साथ वध होने वाली हैं । आगे ,कषायरहितोंमें जो वध है वह ईर्यापथ है । ६२ ।

सामान्य चारो कषायोंमें वधप्रकृति १२० हैं । फिर विशेपरूपसे मिथ्यात्वादि इक्कीसके वधक, वीसके, उन्नीसके वधक,

अज्ञानं ज्ञानमप्यस्ति गुणे यत्र तत्तत । तत्तत्र विदुषा बुद्ध्वा बंधस्यौघो नियोज्यताम् ॥ ६३ ॥

तत्रौघेनाऽज्ञानत्रये ११७ । मिथ्यादृष्टौ ११७ । शासने १०१ । ततोऽसंयतादीनां मत्यादिज्ञानत्रये नवानामोघभंगः । ततो मनःपर्यये प्रमत्तादीनां सप्तानामोघः । ततः केवले सयोगायोगयोरोघः ।

इति ज्ञानमार्गणा ।

ओघः सामायिके वृत्ते छेदोपस्थापनेऽपि च । प्रमत्तादिचतुष्केऽस्ति परिहारेपि चाद्ययोः ॥ ६४ ॥

अनिवृत्ति गुणस्थानके भागों पर्यंत चारो कषाय सहितके बंध है और वे गुणस्थानोंके ही अनुसार है । इसके आगे लोभ कषाय सहितकें जो बंधप्रकृति हैं वे सूक्ष्मसापराय दशवें गुणस्थान पर्यंत है और गुणस्थानोंमें जितनी बताई हैं सर्व उतनी ही है । इसके आगे कषायरहित उपशांत क्षीण तथा सयोगकेवलीकें बंध है वह भी गुणस्थानके अनुसार ही है ।

इति कषायमार्गणा ।

जिस गुणस्थानमें वास्तवमें जो अज्ञान अथवा ज्ञान हो उसको समझकर बंधप्रकृतियोंको गुणस्थानानुसार जोड लेना चाहिये ॥ ६३ ॥

उनमेंसे सामान्य रूपसे अज्ञान तीनके रहते ११७ बंधयोग्य है । मिथ्यादृष्टिमें ११७ है । सासादनमें १०१ है । फिर आगे चौथेसे बारहवें पर्यंतके नौ गुणस्थानोंकी जो गुणस्थानानुसार बंधप्रकृति है वे ही मतिज्ञानादि तीन ज्ञानोंमें समझनी चाहिये । इसी प्रकार, मन पर्यय छट्ठे गुणस्थानसे बारहवें पर्यंतके सात गुणस्थानोंमें होता है उसमें भी बंधप्रकृति गुणस्थानानुसार हैं । फिर आगे केवलज्ञानमें बंधप्रकृति जैसी तेरहवें चौदहवें दो गुणस्थानोंकी है वैसी ही सामान्य समझनी चाहिये ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणामें बंधप्रकृति हुई ।

अब संयममार्गणामें बंधप्रकृतियोंको बताते हैं ।—

सामायिक और छेदोपस्थापनमे प्रमत्तादि चार नौवें पर्यंत गुणस्थान हैं । इनमे ओघ अर्थात् अपने अपने गुणस्थानवत् बंधप्रकृति रहती है । परिहारविशुद्धि तीसरे संयमको धारण करनेवाले स्वामी इन चार गुणस्थानोंमेंसे आदिके दो छट्ठे और

सूक्ष्मे सूक्ष्मकषायेऽसौ यथाख्याते चतुर्ष्वतः । देशे देशचरित्रेऽसौ चतुष्केप्यस्त्यसंयमे ॥ ६५ ॥

इति सयममार्गणा ।

चक्षुषोऽचक्षुषो दृष्टावोघो द्वादशके मत । गुणानामव्रतादीनां नवकेऽवधिदर्शने ॥ ६६ ॥

सयोगायोगयोरोघो ज्ञेय केवलदर्शने । मार्गणा दर्शनस्योक्ता लेश्यानां तां वदाम्यतः ॥ ६७ ॥

आद्यलेश्यात्रयालोढा विमुच्याहारकद्वयम् । एतास्तीर्थकरेणोनाः स्वीकुर्वन्ति कुदृष्टयः ॥ ६८ ॥

सातवेंवाले है । यहा भी सामान्य गुणस्थानवत् ही वध जानना । ६४ ।

सूक्ष्मसापराय संयममें सूक्ष्मसापराय नामका दशवा गुणस्थान है । यथाख्यात नामके पाचवें सयममें ग्यारहवेंसे चारो गुणस्थान है । देशचारित्रमें देशसंयम नामका पाचवा गुणस्थान है । असयतमे पहिले चार गुणस्थान हैं । इसलिये इन भेदोंमें गुणस्थानोंके अनुसार ही वधप्रकृति समझना । ६५ । इस प्रकार सयममार्गणा हुई ।

अव दर्शनमार्गणामें वधस्वामित्वको दिखाते हैं ।—

चक्षुदर्शनमें अचक्षुर्दर्शनमें आदिके वारह गुणस्थान हैं । इन गुणस्थानोंकी जो वधप्रकृति वे ही इन दोनो दर्शनोंमें समझना । अवधिदर्शन असयत चौथे गुणस्थानसे लेकर वारहवें पर्यतके नौ गुणस्थानोंमें रहता है । इसलिये जिस गुणस्थानका अवधिदर्शन हो उसमें वधप्रकृति भी उसी गुणस्थानोक्त समझना । ६६ ।

केवल दर्शन सयोग केवली अयोग केवली इन दो गुणस्थानोंमे होता है इसलिये इन दोनो गुणस्थानोंकी ही वधप्रकृति इस दर्शनमें वधप्रकृति हैं ।

इस प्रकार दर्शन सवधी मार्गणाको स्वामी रखकर वधप्रकृति वताई । अव आगे लेश्यासवधी मार्गणाको लेकर वताते हैं ।६७।

आदिकी तीन लेश्याओंको धारण करनेवाले, आहारकद्वयको छोडकर शेष सर्व वधप्रकृतियोंको वाधते हैं । यदि ये आदिकी तीन लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि हों तो वे तीर्थकर प्रकृतिको भी घटाकर शेष प्रकृतियोंको वाधते है । अर्थात् कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले सामान्यसे ११८ के वधक हैं । मिथ्यादृष्टि ११७ के बंधक हैं । ६८ ।

कृष्णनीलकापोतलेश्याः सामान्येन ११८ । कुदृष्टय १७ ।
शासनाः षोडश त्यक्त्वा मिश्रकाः पचविंशतिम् । देवमर्त्यायुषी चान्याः सप्तति चतुरन्विताम् ॥ ६९ ॥
शासनाः १०१ । मिश्राः ७४ ।
तीर्थकृन्नृसुरायुर्भिर्युक्ता अव्रत्यसयताः । तेजोलेश्या विमुच्यैताः श्वभ्रायुर्विकलत्रयम् ॥ ७० ॥
श्वभ्रद्वयमपर्याप्त सूक्ष्म साधारण पराः । हित्वा वामदृशस्तीर्थकर्तृत्वाहारकद्विके ॥ ७१ ॥
असंयताः ७७ । ओघेन तेजोलेश्याः १११ । वामदृशः १०८ ।
एकेन्द्रियमसंप्राप्त स्थावर पंढहुडके । मिथ्यात्वमातप हित्वा परा बध्नंति शासना १०१ ॥ ७२ ॥
औघिकीः परिगृह्णंति प्रकृतीः सकलाः स्फुटम् । तेजोलेश्यास्थिताः पंच सम्यङ्मिथ्यादृगादय ॥ ७३ ॥
७४ । ७७ । ६७ । ६३ । ५९ ।

सासादन जीव ११७ मेंसे सोलहको छोडकर बाधते है । मिश्र गुणस्थानवर्ती पच्चीसको छोडकर और देवायु मनुष्यायु इन दोको छोडकर चार अधिक सत्तरि [७४] बाधते है । ६९ ।

असयत सम्यग्दृष्टि चौहत्तरिमे तीर्थकरत्व मनुष्यायु देवायु इन तीनको बढाकर सतत्तरि (७७) को बाधते है ।

अब आगे तेजोलेश्यामें बधको बताते है ।— तेजोलेश्यावाले नरकायुको तथा विकलेंद्रिय तीन जातियोंको, एव नरकगतिद्वय, अपर्याप्त, सूक्ष्म, साधारण—इन पाचको छोडकर सामान्य सर्व प्रकृतियोंको बाधनेवाले होते हैं । उनमेंसे मिथ्यादृष्टि तीर्थकरत्व और आहारकद्वयको भी छोडकर बाधते है । अर्थात् सामान्यसे तेजोलेश्यावालोंमें १११ । मिथ्यादृष्टिमें १०८ है । ७०–७१ ।

एकेंद्रिय जाति, असप्राप्त सहनन, स्थावर, नपुसकवेद, हुंडकसस्थान, मिथ्यात्व, आतप—इन सात प्रकृतियोंको एकसौ आठमेंसे घटाकर शेष १०१ को सासादन बाधते है । ७२ ।

सासादनके ऊपर सम्यङ्मिथ्यादृष्टिसे लेकर सातवें गुणस्थान पर्यंतके पाच गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्यायुक्त जीव गुणस्थानानुसार सामान्य सर्व प्रकृतियोंको बाधते हैं । ७४ । ७७ । ६७ । ६३ । ५९ । इस प्रकार वे क्रमसे बंधप्रकृति है ।७३।

श्वभ्रायुर्नारकद्वंद्वसूक्ष्मसाधारणातपान् । एकेन्द्रियमपर्याप्तं स्थावरं विकलत्रयम् ॥ ७४ ॥
पद्मलेश्या निरस्यैता द्वादश प्रकृतीः पराः । आत्मसात्कुर्वते सर्वा अष्टोत्तरशतप्रमाः ॥ ७५ ॥

ओघेन पद्मलेश्याः १०८ ।

विहायाहारकद्वन्द्वतीर्थकृत्त्वं कुदृष्टयः । शासनाः पंढमिथ्यात्वहुंडासंप्राप्तकैर्विना ॥ ७६ ॥

कुदृष्टयः १०५ । शासनाः १०१ ।

स्वीकुर्वन्त्यौधिकीः पंच मिश्रदृष्टिपुरोगमाः । शुक्ललेश्याः प्रबध्नंति स्थावरं नारकद्वयम् ॥ ७७ ॥
तिर्यग्द्वयातपैकाक्षाण्युद्योतं विकलत्रिकम् । तिर्यक्श्वभ्रायुषी सूक्ष्मं साधारणमपूर्णकम् ॥ ७८ ॥

पद्मलेश्यावाले जीव सामान्यसे एकसौ आठ प्रकृतियोंको बांधते हैं । सर्व बंधप्रकृति एकसौ बीस हैं । उनमेंसे— नरकायु नरकगतिद्वय सूक्ष्म साधारण आतप एकेंद्रियजाति अपर्याप्त स्थावर विकलत्रय जाति—इन बारहको घटा देनेसे एकसौ आठ रह जाती हैं । ७४–७५ ।

मिथ्यादृष्टि पद्मलेश्यावाले आहारकद्वयको तथा तीर्थंकरत्वको और भी एकसौ आठमेंसे घटाकर १०५ को बांधते हैं । सासादनवाले नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, असंप्राप्त संहनन—इन चारको घटा कर १०१ को बांधते हैं । ७६ ।

आगे मिश्र गुणस्थानसे लेकर सातवें पर्यंतके पांच गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले ओघ अर्थात् गुणस्थानवत् प्रकृतियोंको बांधते हैं । इन पांच गुणस्थानोंकी बंधप्रकृति ७३ वें श्लोकमें भी ऊपर बतादी है ।

अब आगे शुक्ललेश्याके साथमें कितनी कितनी प्रकृतियोंका बंध होता है वह दिखाते हैं ।—

शुक्ललेश्यावाले सामान्यसे १०४ को बांधते हैं । एकसौ बीसमेंसे सोलह प्रकृति छूट जाती हैं । वे सोलह ये हैं— स्थावर नरकगतिद्वय तिर्यग्गतिद्वय आतप एकेंद्रिय जाति उद्योत विकलेंद्रिय तीन जाति तिर्यगायु नरकायु सूक्ष्म साधारण अपर्याप्ति ।

अब गुणस्थानोंमें शुक्ललेश्यावालोंकी बंधप्रकृतियोंको दिखाते हैं । —१०४ ओघ प्रकृतियोंमेंसे तीर्थंकरत्व तथा आहा-

पोडशेति परित्यज्य प्रकृतीर्गृह्णते पुनः । हित्वा मिथ्यादृशस्तीर्थकारित्वाहारकद्वये ॥ ७९ ॥
असंप्राप्तकमिथ्यात्वपंढहुंडविवर्जिताः । शासना गृह्णते शेपाः शुक्लेश्याव्यवस्थिताः ॥ ८० ॥
ओघेन शुक्लेश्या १०४ । मिथ्यादृशः १०१ । शासनाः ९७ ।
मिश्रास्तिर्यग्द्वयोद्योततिर्यगायुरपाकृताम् । हित्वामरनरायुर्भ्यां सहितां पंचविंशतिम् ॥ ८१ ॥
अपरा गृह्णते शेपाः प्रकृतीरव्रता पुन । तीर्थकृन्नृसुरायुर्भिरोघोक्ता निखिला युतः ॥ ८२ ॥
७४ । अव्रताः ७७ ।

इति लेश्यामार्गणा ।

औविकीर्गृह्णते भव्यास्ता अभव्याः कुदृष्टिगाः । ओघो वेदकदृष्टीनां निर्व्रतादिचतुष्टये ॥ ८३ ॥

रकद्वय इन तीनको छोडकर १०१ को मिथ्यादृष्टि वाधते हैं । सासादनवाले असंप्राप्त संहनन मिथ्यात्व नपुंसकवेद हुंडक संस्थान इन चारको छोडकर ९७ को वाधते हैं ॥ ७७–८० ॥

अब मिश्रगुणस्थानमें वताते हैं–सासादनमें २५ प्रकृतिकी व्युच्छित्ति वताई है परतु शुक्लेश्यामें उन २५ मेंकी तिर्यगतिद्वय उद्योत तिर्यगायु इन चार प्रकृतियोंकी वधयोग्यता सामान्य वधयोग्योंमें भी नहीं वताई है इसलिये ये चार प्रकृति सामान्य वधयोग्योंकी गिनतीमें ही घट जाती है तो यहा फिरसे-दूसरी वार क्यों घटाई जा सकती है ? अत एव यहा नहीं घटाना । तव २५ मेंसे २१ को ही यहा घटाया गया है। और मनुष्यायु तथा देवायुका भी मिश्रमें वध नहीं है इसलिये ये दो भी घटा देनी चाहिये । इस प्रकार सासादन शुक्लेश्यावालेमें जो ९७ वधयोग्य वताई थी सो उनमेंसे २३ के घट जानेपर मिश्रमें ७४ वधयोग्य है । असंयत सम्यग्दृष्टिकें तीर्थकरत्व तथा मनुष्यायु देवायु इन तीनको वढाकर सामान्योक्त सर्व ७७ वंधयोग्य है ॥ ८१–८२ ॥

इति लेश्यामार्गणा ।

भव्यत्व ग्यारहवीं मार्गणा है । इसमें भव्य अभव्य ऐसे दो भेद है । भव्य और अभव्य दोनो ही यथायोग्य ओघ प्रकृतियोंको वाधते है । यह भव्यत्व मार्गणाकी अपेक्षासे वर्णन है ।

ओघः क्षायिकदृष्टीनामेकादशगुणश्रिताम् । वि...सयतादीना योजनीयो यथागमम् ॥ ८४ ॥
औघो म...रायुर्भ्यां हीनः शामिकदर्शने । बध्नति नैकमप्यायुर्यतस्तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८५ ॥
मुक्त्वा द्वितीयकोपादिचतुष्कादिमसहती । नृद्वयौदारिकद्वन्द्वे शेपा गृह्णत्यणुव्रताः ॥ ८६ ॥

असंयताः ७५ । अणुव्रताः ६६ ।

अब सम्यक्त्व मार्गणाको स्वामी रखकर बध प्रकृतियोंको दिखाते हैं ।—

सम्यक्त्वके भेदोंमें एक वेदक सम्यक्त्व बताया है, वह चौथेसे सातवें पर्यंत चार गुणस्थानोंमें रह सकता है । सो वेदकदृष्टिके असयतादि चार गुणस्थानोंमें, जो गुणस्थानोक्त बधप्रकृति है वे ही यहा बंधयोग्य समझना । ८३ ।

इसी प्रकार क्षायिक सम्यग्दृष्टि चौथेसे तेरहवे पर्यंत ग्यारह गुणस्थानोंमें होता है, वह गुणस्थानोंके अनुसार ही बध प्रकृतियोंको ग्रहण करनेवाला होता है सो यथाशास्त्र समझकर लगाओ । ८४ ।

औपशमिक सम्यग्दर्शनमें जो विशेपता है उसे आगे दिखाते हैं ।—

औपशमिक सम्यग्दर्शनमे मनुष्यायु और देवायुको छोडकर शेप गुणस्थानके अनुसार प्रकृति बाधी जाती है । क्योंकि, उपशम सम्यग्दर्शनके रहते एक भी आयु बधको प्राप्त नहीं होती । चार आयुओंमेंसे नरक तिर्यंच दो आयुकी तो क्रमसे, पहिले दूसरे गुणस्थानमें बधव्युच्छित्ति हो जाती है । इसलिये मनुष्यायु देवायु ये दो ही दर्शनके साथ शेप रह जाती हैं । सो इन दोकी उपशम सम्यक्त्वके रहते बधयोग्यताका निपेध कर दिया है । इस प्रकार उपशमवाले यदि चौथेमे हों तो ७५ को बांधते हैं ।

आगे अणुव्रतके धारी पचम गुणस्थानवर्ती होते हैं वे नौ प्रकृति— दूसरे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार कपाय, एक आदिम सहनन, मनुष्यगतिद्वय, औदारिक द्वय—ये हैं इनको छोडकर बाधते है । ८६ ।

हित्वा तृतीयकोपादिचतुष्कं ताः प्रमादिन । शोकास्थिराशुभासातायशोऽरतिभिर्वर्जिताः ॥ ८७ ॥
साहारकद्वयाः शेषाः स्त्रीकुर्वन्त्यप्रमत्तकाः । शान्तान्तेषु परेष्वोघो द्रष्टव्योऽपूर्वकादिषु ॥ ८८ ॥
प्रमत्ताः ६२ । अप्रमत्ताः ५८ । इति भव्यसम्यक्त्वमार्गणा ।

ओघोक्ता संज्ञिनां मिथ्यादृष्टियातास्त्वसंज्ञिनाम् । एतेषां शासनस्थानां ज्ञातव्याः शासनस्थिताः ॥ ८९ ॥
इति संज्ञिमार्गणा ।

अस्त्याहारकेष्वोघः कर्मप्रकृतिबंधने । ज्ञेयः कार्मणयोगस्थो भंगोऽनाहारकेषु तु ॥ ९० ॥
इति आहारकमार्गणा ।

आगे प्रमत्त छट्ठे गुणस्थानवाले उपशम सम्यग्दृष्टि, तीसरे प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चारको छोडकर ६२ को बांधते हैं । अप्रमत्त सातवें गुणस्थानवर्ती बासठमेंसे शोक स्थिर अशुभ असाता अयश कीर्ति अरति—इन छहको घटाकर तथा आहारक द्वयको बढाकर ५८ को बांधते हैं । उपशमसम्यग्दर्शन उपशांतकषाय ग्यारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है । वहां अपूर्वकरणसे लेकर ग्यारहवें पर्यंत गुणस्थानके अनुसार बंधप्रकृति बांधी जाती है । ८७–८८ ।

इति भव्यमार्गणा तथा सम्यक्त्व मार्गणा हुई ।

संज्ञिमार्गणामें संज्ञियोंके मिथ्यादृष्टि संबंधी ओघ प्रकृति है असंज्ञियोंके भी ऐसे ही हैं । इनमेंसे सासादनवाले है उनके सासादनके समान है । ८९ । इति संज्ञिमार्गणा ।

आहारमार्गणामें—आहारकोंके प्रकृतिबंध ओघ है । अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगके समान है । ९० ।

इति अहारक मार्गणा ।
ग्रंथ समाप्त ।